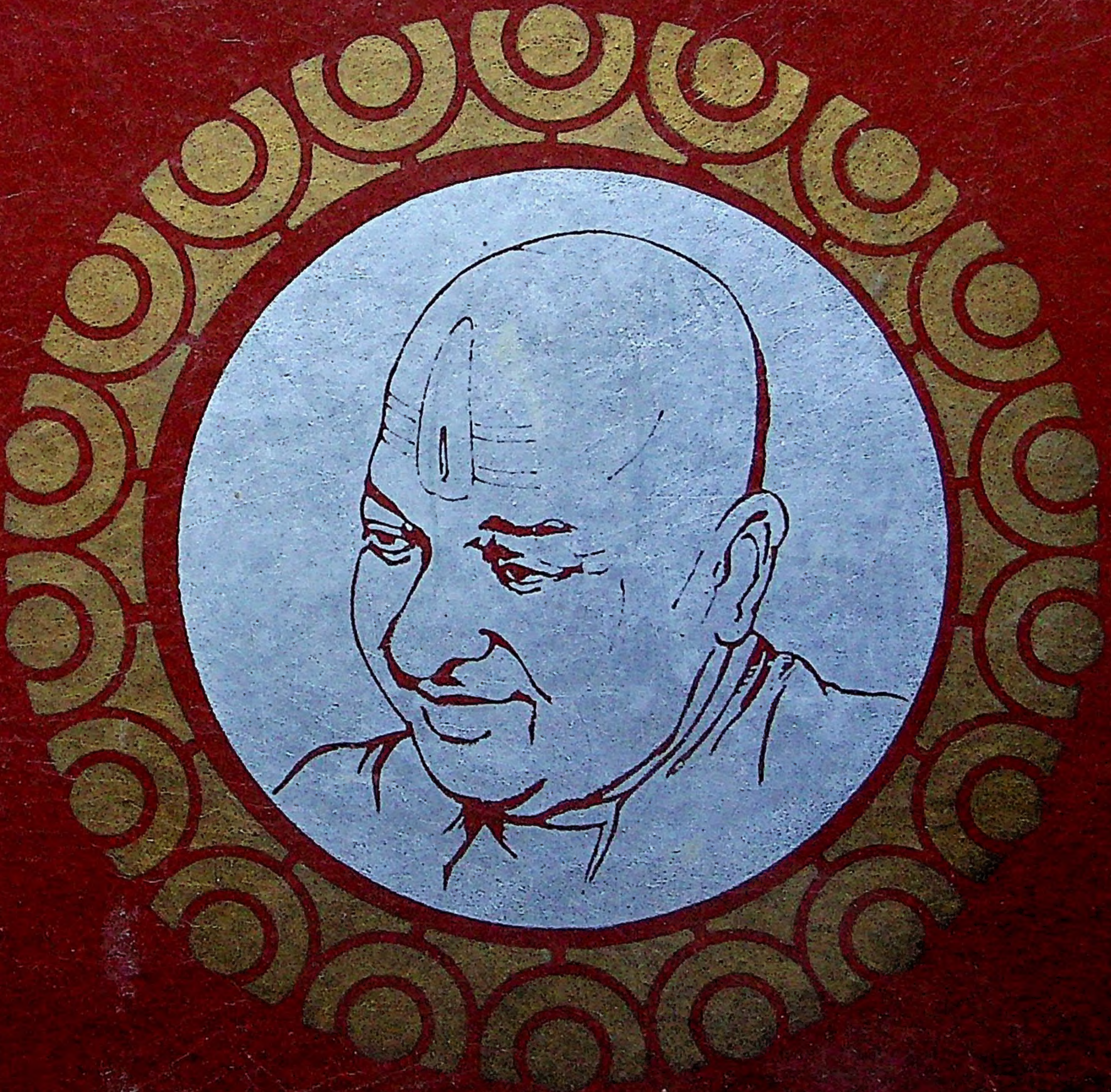
श्रीमद्भागवत-रसामृत

(भागवत रहस्य का नया संस्करण)



पूज्यपाद श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज

श्रीकृष्ण शरणं मम


श्रीकृष्ण शरणं मम

॥ श्रीरामाय श्रीकृष्णाय च नमः ॥

परम पू० श्रीरामचन्द्रजी डोंगरे महाराज के
हृदय-निर्झर से निसृत

श्रीमद्भागवत-रसामृत

[श्रीमद्भागवत के बारह स्कन्धों की सरल हिन्दी भाषा में व्याख्या]

मूल सम्पादक

कृष्णप्रसाद पटेल एवं 'निमित्त मात्र'

अनुवाद

डॉ० भावना बहन मेहता

प्रसारक

सद्विचार परिवार

मंगलमूर्ति, आश्रम रोड, अहमदाबाद-१

प्रकाशक

राधा प्रकाशन

राधा धाम, विहार घाट, वृन्दावन (मथुरा)

फोन - ०५६५ - २४५५६८५

प्राप्ति स्थान, दिल्ली

राधा प्रेस

२४६५, मेन रोड, कैलाश नगर, दिल्ली-११००३१

फोन - ०११ - २२०८३१०७

अपने आसपास के असहाय लोगों की सहायता करके

श्रीराम की कृपा का प्रसाद प्राप्त कीजिए

- राम नाम रटते-रटते अपने हृदय को करुणा और मैत्री भाव के अमृत जल से सींचते रहो और अपने आसपास रहने वाले असहाय लोगों की आँखों के आँसू पोंछने के लिए अपना हाथ बढ़ाते रहो।
- राम का नाम रटते-रटते पीड़ितों के हृदय में विराजमान प्यारे राम को प्रसन्न करने का हमेशा प्रयत्न करो और उसकी भक्ति युक्त सेवा द्वारा अमूल्य हार्दिक आशीर्वाद प्राप्त करके अपने जीवन को धन्य बनाते रहो।
- ईमानदारी की कमाई से जीवन-यापन करो और उसका एक अंश किसी के अँधेरे घर में उजाला करने के लिए एक विनम्र प्रयास के रूप में काम में लो।

प्रकाशक ● राधा प्रकाशन
प्रकाशन तिथि ● बसंत पंचमी वि॰ सं॰ २०६७
संस्करण ● ११०० प्रतियाँ
मुद्रक ● राधा प्रेस,
२४६५ कैलाश नगर, दिल्ली-११००३१
दूरभाष : २२०८३१०७

BHAGWAT RASAMRIT

पैकिंग एवं डाकव्यय अलग

न्यौछावर - ११०/ रुपये

Packing & Postage Extra

Price Rs. 110/-

वन्दना

भारत का यह परम सौभाग्य है कि आधुनिक शुकदेवजी की तरह पू॰ रामचन्द्रजी डोंगरे महाराज पूरे देश में मानव सेवा और दीन-दुखियों की सुश्रुषा से जुड़ी प्रवृत्तियों की मदद के लिए बड़े प्रेम से भागवत कथा की गंगा प्रवाहित करते रहे, जिसके परिणामस्वरूप कई प्रकार की सेवा-प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं, पल्लवित और पुष्पित हुईं।

सद्विचार परिवार के लिए अहमदाबाद में की गई पू॰ डोंगरेजी की भागवत कथा के आधार पर **'श्रीमद्भागवत रसामृत'** नाम ग्रन्थ निर्मित हुआ। महाराजश्री के मुख से कथा-गंगा की जो अस्खलित धारा प्रवाहित हुई, उसका आचमन जनता-जनार्दन कर सके, इसके लिए गुजराती से हिन्दी में संस्करण प्रकाशित किया है।

यह एक स्मरणीय तथ्य है कि जब इस ग्रन्थ का गुजराती संस्करण प्रकाशित हो रहा था, तब पू॰ महाराजश्री ने उसे समय-समय पर देखकर आवश्यक संशोधन परिवर्तन और परिवर्द्धन किए और कई नई सूचनाएँ प्रदान कीं। उन सबका समावेश उन संस्करणों में किया गया, यह आनन्द का विषय है।

ग्रन्थ के गुजराती संस्करणों को इतना अधिक सम्मान और आदर प्राप्त हुआ कि भारत के हिन्दी भाषी जन समुदाय के लिए उसका हि॰दी अनुवाद भी आवश्यक हो गया। श्री डोंगरेजी महाराज को श्रद्धाञ्जलि रूप में इसे अर्पित कर देश की हिन्दी भाषी जनता के हाथों में देते हुए हम हर्ष का अनुभव कर रहे हैं।

इस अनुवाद कार्य को आर्ट्स कॉलेज गाँधीनगर (गुजरात) की हिन्दी प्राध्यापिका डॉ॰ भावना बहन मैहता ने पूरी निष्ठा और निःस्वार्थ सेवा से किया है, इसके लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं।

इस ग्रंथ को आपके हाथों में देते हुए हम एक विनम्र निवेदन कर रहे हैं कि जो तन्मयता, भक्ति भावना, विनम्रता और एकाग्रता पू० महाराजश्री की कथा के समय श्रोताओं ने अनुभव की, वही आप भी इस ग्रंथ के पठन-पाठन के समय अनुभव करें।

यह दिव्य अनुभव आपके सभी परिजनों, इष्ट मित्रों एवं स्नेहियों को प्राप्त हो, इसलिए विभिन्न प्रसंगों पर उन्हें यह ग्रंथ-रत्न भेंट स्वरूप प्रदान करें।

दीन-दु:खियों एवं पीड़ितों में विराजमान परमात्मा की सेवा में आपके जीवन का हर क्षण लगा रहे और इस प्रकार की सेवा-प्रवृत्ति में संलग्न संस्थाओं और व्यक्तियों को आप उदारतापूर्वक सहयोग प्रदान करते रहें, ईश्वर से यही प्रार्थना है।

– प्रकाशक

अनुक्रमणिका

श्रीमद्‌भागवत–रसामृत

क्रं० सं०	विषय	पृ० सं०



मङ्गलाचरण

करारविंदेन पदारविंदं मुखारविन्दे विनिवेषयन्तम् ।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुंदं मनसा स्मरामि ॥१॥
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव ।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥२॥
विक्रेतु काया किल गोपकन्या मुरारिपादार्पित चित्रवृत्तिः ।
दध्यादिकं मोहवशाद्वोचत् गोविन्द दामोदर माधवेति ॥३॥
गृहे-गृहे गोपवधूकदम्बाः सर्वे मिलित्वा समवाय योगे ।
पुण्यानि नामानि पठन्ति नित्यं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥४॥
सुखं शयाना निलये निजेपि नामानि विष्णोः प्रवदन्ति मर्त्याः ।
ते निश्चितं तन्मयतां व्रजन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति ॥५॥
जिह्वे सदैव भज सुन्दराणि नामानि कृष्णस्य मनोहराणि ।
समस्त भक्तार्ति विनाशनानि गोविन्द दामोदर माधवेति ॥६॥
सुखावसानेत्विदमेवसारं दुःखावसानेत्विदमेव गेयम् ।
देहावसाने हृदमेव जाप्यं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥७॥
श्रीकृष्ण राधावर गोकुलेश गोपाल गोवर्द्धननाथ विष्णो ।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥८॥

मधुराष्टक

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥१॥
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥२॥
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥३॥
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥४॥
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं स्मरणं मधुरम् ।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥५॥
गुंजा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा ।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥६॥
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं भुक्तं मधुरम् ।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥७॥
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥८॥

ॐ जय जगदीश हरे

ॐ जय जगदीश हरे, प्रभु जय जगदीश हरे।
भक्तजनों के संकट, क्षण में दूर करे ॥ ॐ जय.........॥

जो ध्यावे फल पावे, दुःख बिनसे मन का।
सुख सम्पति घर आवे, कष्ट मिटे तन का ॥ ॐ जय.........॥

मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी।
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ जिसकी ॥ ॐ जय.........॥

तुम पूरन परमात्मा, तुम अन्तर्यामी।
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी ॥ ॐ जय.........॥

तुम करुणा के सागर तुम पालन कर्त्ता।
मैं मूरख खल-कामी, कृपा करो भर्त्ता ॥ ॐ जय.........॥

तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति।
किस विधि मिलूं गुसाई, तुमको मैं कुमति ॥ ॐ जय.........॥

दीनबन्धु दुःख-हर्त्ता, ठाकुर तुम मेरे।
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा तेरे ॥ ॐ जय.........॥

विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा ॥ ॐ जय.........॥





पूज्यपाद श्री रामचन्द्र डोंगरेजी महाराज

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

१– सच्चिदानन्द-स्वरूप परमात्मा

सच्चिदानंदरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे।

तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः॥ (श्रीमद्भागवत माहात्म्य १-१)

विश्व की उत्पत्ति का कारण स्वयं हरि जो बने।

रूप सत् चित् और आनन्द के मधुर रस से सने॥

दूर करते तीन तापों को कृपामय दृष्टि से।

नमन है श्रीकृष्ण को सुख दें हमें रस-वृष्टि से॥

परमात्मा ने मानव को ही ऐसी शक्ति दी है कि मानव अपनी शक्ति और बुद्धि का सदुपयोग कर सकता है। वह इस शक्ति और बुद्धि का उपयोग भगवान् के लिए करता है, तब मृत्यु से पहले ही उसे परमात्मा के दर्शन होते हैं, पर प्रायः मानव अपनी बुद्धि का उपयोग धन-प्राप्ति के लिए करता है और शक्ति का उपयोग भोग के लिए करता है। इससे वह अन्तकाल में बहुत पछताता है। शक्ति और बुद्धि परमात्मा के लिए हैं। दुर्लभ मनुष्य-शरीर पाकर परमात्मा के दर्शन के लिए जो प्रयत्न नहीं करता है, वह स्वयं अपनी ही हिंसा कर रहा है। ऋषि उसे आत्मघाती कहते हैं।

जिसकी परमात्मा के दर्शन की इच्छा है, जो प्रभु के दर्शन के लिए प्रयत्न करता है, उसे भले ही परमात्मा के दर्शन न हों, पर उसका मरण सुधरता है। अन्तकाल के समय में उसे शान्ति प्राप्त होती है। उसका मरण मंगलमय होता है। किसी भी प्रकार के लौकिक सुख की इच्छा जिसके मन में रहती है, अन्तकाल के समय में उसे बहुत त्रास होता है।

मानवेतर किसी प्राणी को प्रभु के दर्शन नहीं होते हैं। स्वर्ग के देवों को भी भगवान् के दर्शन नहीं होते हैं। स्वर्ग में देव अति सुखी हैं। भले ही वे सुख भोग लें, पर उस सुख का अन्त तो है ही। संसार का एक नियम है-जहाँ सुख है, वहाँ दुःख भी है। जो मर्यादा को छोड़कर सुख

भोगता है, उसकी इच्छा चाहे न हो, उसे दुःख भोगना ही पड़ता है। स्वर्ग के देव हमसे अधिक सुख भोगते हैं, उन्हें अति सुख मिलता है, फिर भी उन्हें शान्ति नहीं मिलती है। शान्ति तो परमात्मा के दर्शन से ही मिलती है।

इससे देव ऐसी इच्छा करते हैं कि उन्हें भारत में जन्म मिले। भारत भक्ति-भूमि है। स्वर्ग में नर्मदाजी नहीं हैं, गंगाजी नहीं है, साधु-संन्यासी नहीं हैं। वहाँ सभी भोगी जीव है। स्वर्ग भोग-भूमि है। जिसने बहुत पुण्य एकत्र किये हों वह सुख भोगने के लिए स्वर्ग में जाता है परन्तु स्वर्ग से भी भारत देश श्रेष्ठ है। देव, भक्ति नहीं कर सकते हैं। भक्ति मानव शरीर से ही होती है। मानव सावधान रहने पर पाप छोड़ सकता है। मानव प्रतिक्षण सावधान रह कर, पाप छोड़कर भक्ति करे तो मृत्यु से पहले उसे भगवान् के दर्शन होते हैं। सभी मानवेतर प्राणियों को भोग ही मिलता है। मानव-शरीर की यही विशेषता है कि मानव, विवेक से थोड़ा सुख भोग करे और भक्ति करे तो उसे भोग और भगवान दोनों मिलते हैं। श्रीकृष्ण-दर्शन मानव-शरीर द्वारा ही हो सकते हैं। मानव में ऐसी शक्ति है।

स्वर्ग के देव पुण्य का फल, सुख भोगते हैं। पशु, पाप का फल, दुःख भोगते हैं। पशु आत्मा को शरीर समझता है। शरीर से आत्मा अलग है, मानव इसे जानता है। ''शरीर ही मैं हूँ, शरीर ही आत्मा है''- ऐसा पशु समझते हैं। इससे वे शरीर-सुख में मग्न रहते हैं। पशु का स्वभाव सुधरता नहीं है। बिल्ली जन्म से लेकर मृत्यु तक चूहे की हिंसा करती है। बिल्ली ने कभी चूहे की हिंसा करना छोड़ दिया हो, ऐसा सुना नहीं है। पशु स्वभाव को छोड़ नहीं सकते। उनका स्वभाव एक-सा रहता है।

मानव चाहे तो अपने स्वभाव को सुधार सकता है। जप करने से, कथा सुनने से आपका स्वभाव सुधरेगा। सत्संग से स्वभाव सुधरता है। भक्ति करने से जीव में परमात्मा के सद्‌गुण आते हैं और तब मानव का स्वभाव सुधरता है। जिसका स्वभाव सुधरता है उसे मृत्यु से पहले ही मुक्ति मिलती है।

मानव चाहे तो पाप छोड़ सकता है और पुण्य कर सकता है। पशु-पक्षी नया पाप नहीं कर सकते हैं। उनसे कदाचित् पाप हो तो प्रभु क्षमा करते हैं। देव, पुण्य नहीं कर सकते हैं। मानव चाहने पर पाप छोड़ सकता है। वह निरन्तर भक्ति कर सकता है। निरन्तर भक्ति करने पर भगवान के दर्शन होते हैं। परमात्मा के दर्शन से जीव कृतार्थ होता है।

आपको लगता होगा कि मंदिर में तो मैं रोज प्रभु के दर्शन करता ही हूँ पर मंदिर में प्रभु के दर्शन तो सामान्य दर्शन हैं। कई व्यक्तियों को मंदिर में प्रभु दीख पड़ते हैं, पर मंदिर के बाहर

निकलने के बाद प्रभु नहीं दिखाई देते और प्रभु जब नहीं दिखाई देते तब आँखें पाप करती हैं। मन बुरे विचार करने लगता है। मंदिर में भगवान की भक्ति करने वाला मानव मंदिर के बाहर पाप करता है। अनेक बार मंदिर में दर्शन करते-करते भी मन बिगड़ता है। मंदिर में बहुत भीड़ हो जाने पर किसी का धक्का लग जाय तो मन अशांत हो जाता है। कइयों को तो ठाकुरजी के समक्ष ही क्रोध आ जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि मंदिर में प्रभु के दर्शन उत्तम दर्शन नहीं हैं। साधारण दर्शन हैं। साधारण दर्शन से शांति भी साधारण ही मिलती है।

थोड़ा सोचिये; मंदिर में आपको क्या दिखलायी देता है?- भगवान् या मूर्ति? आप मानेंगे कि प्रायः मूर्ति दिखाई देती है।

आँख को भले ही मूर्ति दिखायी दे, वैष्णव ऐसी भावना रखते हैं कि यह मूर्ति नहीं है, ये प्रत्यक्ष परमात्मा हैं। जिसका मन शुद्ध है, उसे भावना से मंदिर में भगवान् दिखाई देते हैं। ये प्रत्यक्ष साक्षात् परमात्मा हैं। बैकुण्ठ के नारायण ये ही हैं। जो मंदिर में सिंहासन पर विराजमान हैं, वे साक्षात् प्रभु ही तो हैं।

हृदय में भाव न हो तो मंदिर में पत्थर की मूर्ति दिखाई देती है। वैष्णव मंदिर में मूर्ति के दर्शन नहीं करते, परमात्मा के दर्शन करते हैं। आप बहुत प्रेम-भाव से प्रभु के दर्शन कीजिये। प्रभु के उपकार को अनुभूत करके थोड़ी स्तुति कीजिये। संकल्प कीजिए कि आज से मैंने पाप छोड़ दिये। आज से मैं भगवान् की कथा सुनने वाला हूँ। आज से मैं सत्कर्म करूँगा। अब मैं भगवान् का हो गया हूँ। मैं ऐसा ही बोलूँगा, जो मेरे भगवान् को पसंद होगा। मैं ऐसा ही कार्य करूँगा जो मेरे प्रभु को प्रिय होगा।

जब मानव पाप छोड़कर भक्ति का संकल्प करता है, तब भगवान् मन में धीरे-धीरे हँसते हैं। प्रभु को आनंद होता है कि आज मेरा पुत्र समझदार हो गया है। पत्थर की जड़ मूर्ति कभी नहीं हँसती है। आप से कभी पाप हो जाय तो पाप के बाद दर्शन करने पर आपको ऐसा अनुभव होगा कि आज भगवान् नाराज हो गये हैं। आज प्रसन्न नहीं हैं, आज मुझे देख कर हँसते भी नहीं हैं। भगवान् दृष्टि नहीं डाल रहे हैं बल्कि उपालम्भ दे रहे हैं। मानो कह रहे हैं कि मेरा नाम धारण किया पर अभी तक पाप नहीं छोड़ रहे हो! पुत्र बुरा हो जाता है तो पिता को क्षोभ होता ही है!

जीव ईश्वर का पुत्र है। जीव पाप करके भगवान् के दर्शन करने जाता है तब उसे देखकर भगवान् को क्षोभ-संकोच होता है। भगवान् उलाहना देते हैं। मानो कह रहे हों कि आज तुम्हारी ओर देखने का मन नहीं हो रहा है।

मेरा पुत्र होकर ऐसा पाप कर रहा है? पत्थर की मूर्ति उलाहना नहीं देती है। पत्थर की मूर्ति हँसती भी नहीं है। जिसका हृदय शुद्ध है, जिसकी आँख पवित्र है, जिसके हृदय में भावना है, उसे मंदिर में भगवान् दीखते हैं। आँख से भले ही पत्थर की मूर्ति दिखाई दे, वैष्णव भावना से भगवान् के ही दर्शन करते हैं। सौ रुपये के नोट में एक भी पैसा नहीं दीख पड़ता। आँख को तो कागज ही दिखाई देता है, किन्तु आँख को भले ही कागज दीख पड़े, पर बुद्धि कहती है, यह कागज नहीं है, रुपये हैं। वैष्णव मूर्ति के दर्शन नहीं कर रहे हैं, भावना से प्रत्यक्ष परमात्मा के, नारायण के दर्शन करते हैं। बाजार में हो तब तक वह भले ही पत्थर की मूर्ति रहेगी पर मंदिर में विराजने पर वह साक्षात् भगवान् का स्वरूप ही है। लोहे की छैनी, अग्नि में गर्म हो जाने पर अग्नि-रूप ही हो जाती है। वेद-विधि से प्राण-प्रतिष्ठा हो जाने पर वह मूर्ति नहीं कही जाती वह तो साक्षात् परमात्मा का स्वरूप ही है। भावना से भगवान् मंदिर में विराजमान दिखाई दे रहे हैं, भावना के बिना वे ही पत्थर की मूर्ति दिखाई देते हैं।

आप जिस तरह मंदिर में भावना से भगवान् के दर्शन करते हैं, उसी तरह प्रत्येक मानव-शरीर में भी भगवान् के दर्शन कीजिए। आपको कोई स्त्री दीख पड़े, कोई पुरुष दीख पड़े तो ऐसी भावना कीजिए कि मैं जिन इष्टदेव की पूजा करता हूँ, वे इस शरीर में विराजमान हैं। शरीर में उसी को देव के दर्शन होते हैं, जिसमें देह-दृष्टि नहीं है। मानव के शरीर में देव के दर्शन करने हों तो देह को न देखिये। जो देह को देखता है, उसे देव नहीं दीख पड़ते हैं। वह देव से दूर हो जाता है। मल-मूत्र से पूर्ण यह देह देखने योग्य नहीं है। अगर यह शरीर सचमुच ही अच्छा है तो शरीर से प्राण निकल जाने के बाद उसे घर में सँभाल के क्यों नहीं रख लेते? अगर वह अच्छी वस्तु है तो लोग क्यों जल्दी करते हैं? क्यों कहते हैं कि जल्दी निकालिये, नहीं तो वजन बढ़ जायगा? शरीर के भीतर भगवान् विराजमान हैं। इसी से शरीर की शोभा है। देह की शोभा देव के कारण है। उसे ही देव के दर्शन होते हैं, जो देह से दृष्टि हटा लेता है तथा जो देह का चिंतन नहीं करता है।

आप आज से नियम लीजिए कि मैं किसी के शरीर को नहीं देखूँगा। एक सौ रुपये के नोट में जैसे आप भावना से रुपयों के दर्शन करते हैं, उसी तरह, प्रत्येक मानव-शरीर में भावना से परमात्मा के दर्शन कीजिए। आप जिस देव की पूजा करते हैं, वे देव सर्व में हैं। वे सर्वशक्तिमान् हैं। बोलने की शक्ति परमात्मा देते हैं, सुनने की शक्ति भी वे ही भगवान् देते हैं-

यच्च वाचा नाभ्युदितम्मभ्युद्यते च येन वाक्।
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषा पश्यंति।।

शृणोति यन्न श्रोत्रेण येन श्रोत्रमिदं।
श्रुतं तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।

जिसके प्रकाश से वाणी बोलती हैं, कान सुनते हैं, वे परमात्मा हमारे भीतर हैं। वे प्रकाशमय हैं। ठाकुर जी के शरीर में खून नहीं है। उनका शरीर सिर्फ आनन्द से भरा है।

सच्चिदानंदरूपाय

आपको कोई स्त्री दिखाई दे, कोई पुरुष दिखाई दे तो उसके बाह्य स्वरूप को न देखिये। बाहर का स्वरूप बहुत अच्छा नहीं है। भीतर का स्वरूप सुन्दर है। तुलसीदास महाराज को सभी में सीताराम ही दिखाई देते थे-

सीय राम मय सब जग जानी। करउँ प्रणाम जोरि जुग पानी।।

उनकी आँख जहाँ पड़ती है, दृष्टि जहाँ जाती है, वहाँ उन्हें सीतारामजी के दर्शन होते हैं। वे किसी के वस्त्र नहीं देखते थे। वे प्रत्येक मानव-शरीर में भावना से श्रीसीतारामजी के दर्शन करते थे।

अनेक लोगों को कथा में बैठे-बैठे भी घर दीख पड़ता है। कइयों को घर छोड़ने पर घर बहुत याद आता है। कथा में घर दीख पड़ता है तो भगवान् क्यों नहीं दिखाई देते? आपका प्रेम जिसके प्रति सच्चा है, वे आपको दीख पड़ेंगे। मानव-शरीर में भगवान् के दर्शन करने वालों को बहुत शांति मिलती है। मन को शुद्ध रखना हो तो शरीर को न देखिये, शरीर में विराजमान परमात्मा को देखने की आदत डालिए। इससे आपका मन भी नहीं बिगड़ेगा। जगत् नहीं बिगड़ा है, मन बिगड़ा है। संसार को कोई नहीं सुधार सका है परन्तु जिसने दृष्टि सुधारी है, उसकी सृष्टि दिव्य है। जिसकी दृष्टि दिव्य है, उसकी सृष्टि भी दिव्य है। प्रत्येक में परमात्मा को देखिये।

भगवान् के दर्शन सर्वकाल करिये। बहुत-से लोग मंदिर में दो-तीन बार दर्शन करके संतोष मान लेते हैं। सोचते हैं कि "मैं दो-तीन बार मंदिर में जाता हूँ।" भगवान् कहते हैं-"बेटा! तुम तीन बार मेरे दर्शन करते हो, पर मैं चौबीस घंटे तुम्हारे दर्शन करता हूँ।" भगवान् सारा दिन सभी को देखते हैं भगवान् के दर्शन सर्वकाल करिये। प्रत्येक मानव-शरीर में भगवान् के दर्शन करिये। अरे! पशु-पक्षी में भी भगवान् विराजमान हैं। देह भले ही भिन्न-भिन्न हैं, पर प्रत्येक देह में देव एक ही हैं। ईश्वर अनेक नहीं हैं, शरीर अनेक हैं। अनेक शरीरों में एक ही परमात्मा है। मंदिर में दर्शन करना साधारण दर्शन हैं, परन्तु पशु-पक्षी, प्रत्येक मानव-शरीर में जो परमात्मा के दर्शन होते हैं, वे असाधारण दर्शन हैं। असाधारण दर्शन से बहुत शांति मिलती है।

विश्वोत्पत्त्यादि हेतवे...............

सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण परमात्मा है। परमात्मा ने सृष्टि की रचना की तथा प्रत्येक पदार्थ में प्रवेश किया। हमारा सनातन धर्म तो कहता है कि इस धरती में भगवान् हैं, जल में भगवान् हैं, तेज में भगवान् है। सनातन धर्म में ईश्वर का स्वरूप जैसा समझाया गया है वैसा किसी अन्य धर्म में नहीं समझाया गया है। ईश्वर सर्व में है। ईश्वर कहीं सातवीं मंजिल पर नहीं बैठे हैं। आप जहाँ बैठे हैं, वहीं ईश्वर बैठे हैं। ईश्वर जीव को एक क्षण भी नहीं छोड़ते हैं। यह जीव बर्हिमुख है। वह अगर भीतर जरा सी भी दृष्टि डाल ले, तो उसे ईश्वर दीख पड़ेंगे। विधाता ने इन्द्रियों को बर्हिमुख बनाया है। इससे वह भीतर के भगवान् को नहीं देख पातीं।

पृथ्वी में भगवान् न होते तो पृथ्वी से सुगंध न आती। वैष्णव सुबह उठने के साथ धरती माता को वंदन करके पाँव रखते हैं। वे मानते हैं कि यह पत्थर नहीं है, यह माटी नहीं है, यह जमीन नहीं है। यह मेरे प्रभु की दिव्य शक्ति है–

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमंडले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।

धरती माता सभी का धारण-पोषण करती है। यह मेरी माता है। माता! पाँव रखने से पूर्व मैं वंदन करता हूँ। सुबह दाहिने नथुने से साँस निकलती हो तो धरती-माता को वंदन करके बायाँ पाँव धरती पर रखिये और सुबह बायें नथुने से साँस निकलती हो तो दायाँ पाँव धरती पर रखिये। प्रात: काल दोनों नथुनों से साँस निकलती हो तो धरती-माता को वंदन करके दोनों पाँव धरती पर रखिये। दोनों नथुनों से समान रूप से जब साँस निकलती हो तो वह सुषुम्णा नाड़ी से निकलती होती है। गोपाल-समूह में श्री गोपालजी का नाम है- **'सुषुम्णा मार्ग सचारी'**। सुषुम्णा नाड़ी चलती हो तब ध्यान करने बैठ जाइए, जप कीजिए। दायें नथुने से साँस निकलती है, वह सूर्य नाड़ी है और बायें नथुने से साँस निकलती है उसे चन्द्र नाड़ी कहते हैं।

पृथ्वी माता को प्रणाम करके वैष्णव पाँव रखते हैं। पृथ्वी माता है। पृथ्वी की सुगन्ध प्रभु का स्वरूप है। अपने को प्रगतिशील मानने वाले लोगों को पृथ्वी में परमात्मा नहीं दीख पड़ते हैं। कई लोग गुस्से में धरती पर पाँव पटकते हैं, धरती माता सब सहन करती है। वह सोचती है कि मेरा पुत्र होश गँवा बैठा है, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हुई है। वह भले ही मेरा अपमान करे, मैं उसकी रक्षा करूँगी। मानव कभी गुस्से में पैर पटकता है पर धरती माता को कभी गुस्सा नहीं आता है। कदाचित् धरती माता को गुस्सा आ जाय तो हमारा सभी का **'अच्युतम केशवम्'**- एक साथ हो जाय! फिर जगत में कोई रह ही नहीं पायेगा। पर धरती माता तो सहन ही करती है। माता को क्रोध नहीं आता है, दया ही आती है। धरती माता सभी की माता है।

हमारे गुजरात में जिस तरह श्रीद्वारिकानाथ विराजमान हैं, उसी तरह दक्षिण में श्रीबालाजी महाराज विराजमान हैं। व्यंकटेश बालाजी महाराज का स्वरूप श्रीद्वारिकाधीश जैसा है। हाथ में शंख, चक्र, गदा, पद्म, हैं। बालाजी महाराज का स्वरूप अति दिव्य है। उनका नाम त्रिपति बालाजी है। श्रीदेवी, लीलादेवी और भू-देवी तीनों के ये पति हैं। पति अर्थात् स्वामी हैं, इसी से इनका नाम त्रिपति है। त्रिपति शब्द का अपभ्रंश 'तिरुपति' हो गया है। इस पृथ्वी के पति परमात्मा श्रीकृष्ण हैं। पृथ्वी सबकी माता है। पृथ्वी में सुगन्ध- स्वरूप परमात्मा विराजमान हैं। रास्ते में पुष्प दीख पड़े तो क्या आप उस पुष्प पर पैर रखकर जा सकेंगे? मानव, पुष्प के ऊपर पाँव नहीं रख सकता। आँख को पुष्प में परमात्मा नहीं दीख पड़ते, पर बुद्धि को दीख पड़ते हैं। मानव की बुद्धि कहती है- 'पुष्प में गंध-स्वरूप परमात्मा विराजमान हैं।'

जल में रस-रूप परमात्मा की सत्ता विलसती है। इससे पानी पीने से बहुत शांति मिलती है। किसी को बहुत प्यास लगी हो और आप उसे हजार-दो हजार रुपए देंगे तो क्या उसे शांति मिलेगी? वह कहेगा-'थोड़ा जल दीजिए।' पानी मिलने पर ही प्यास बुझेगी। पानी में जो मिंठास है वही परमात्मा श्रीकृष्ण का स्वरूप है।

मेंहदी में आँख को लालिमा नहीं दीख पड़ती पर उसके कण-कण में लालिमा है, उसी तरह जगत के अणु-अणु में परमात्मा विराजमान हैं। आप सभी में भगवान् के दर्शन करने की आदत डालिए। इस प्रकार एक दिन आपको अपने भीतर विराजमान परमात्मा के दर्शन होंगे। आपके भीतर भगवान् हैं। आपका आनन्द आपके भीतर ही है। जीव को आनन्दमय परमात्मा का आनन्द प्राप्त हो तो जीव जड़ वस्तुओं में आनन्द खोजने न जाय। आपका आनन्द आपको नहीं मिलता है, क्योंकि मानव को अपने स्वरूप का अनुभव नहीं है। आनन्दमय परमात्मा उसके भीतर ही विराजमान हैं।

परमात्मा के तीन स्वरूप शास्त्र में दरसाये गये हैं- सत्, चित् और आनन्द। सत् प्रकट रूप में सर्वत्र है। चित् (ज्ञान) और आनन्द अप्रकट है। जड़ वस्तु में सत् है पर चित और आनन्द नहीं है। जीव में सत् और चित् प्रकट हैं परन्तु आनन्द अप्रकट है, अव्यक्त है, गुप्त है। इस तरह आनन्द हमारे भीतर है, फिर भी मनुष्य उसे बाहर खोजता है। आनन्द किसी स्त्री में किसी पुरुष में या किसी जड़ पदार्थ में नहीं है। आनन्द-रूप परमात्मा भीतर ही है, इसमें एकरूप बनने पर आनन्द प्राप्त होता है।

सत्, चित् और आनन्द ईश्वर में परिपूर्ण है, परमात्मा परिपूर्ण सद्रूप हैं, परिपूर्ण चिद्रूप हैं और आनन्दमय हैं। संसार का प्रत्येक पदार्थ परिणामतः विनाशी होने से परिपूर्ण नहीं होता है, जब

कि सत् नित्य है। चित् ज्ञान है। मनुष्य में ज्ञान आता है पर वह ज्ञान टिक नहीं सकता। श्रीकृष्ण परिपूर्ण ज्ञानी हैं। जिसका ज्ञान नित्य रहता है तथा नित्य टिकता है, उन्हें आनन्द मिलता है, वे जन आनन्दरूप हो जाते हैं। जीव को आनन्दरूप होना हो तो सच्चिदानन्द (सत्+चित्+आनन्द) की शरण लेनी चाहिए। यह जीव जब तक परिपूर्ण नहीं बनता, तब तक उसे शान्ति नहीं मिलती है। जीवात्मा नारायण-रूप बनकर परिपूर्ण हो सकता है और तब उसका जीवन सफल होता है। जीव जब ईश्वर से मिलता है, तब पूर्ण होता है।

सर्वत्र परमात्मा के दर्शन करने की आदत डालिए। यों आपकी दृष्टि दिव्य होगी तथा आपके भीतर विराजमान देव आपको दिखलाई देंगे। अरे, सर्व के भीतर परमात्मा हैं, तो आपके भीतर कौन है?

देहाभिमाने गलिते बिज्ञाते प्रत्यगात्मनः।
यत्र तत्र मानो याति तत्र-तत्र समाधयः।।

गोपी बालकृष्णलाल के दर्शन करने के लिए यशोदा माता के घर जाती है, पर जब प्रेम बढ़ने लगा तब जहाँ-जहाँ उसकी दृष्टि जाती है, वहाँ-वहाँ उसे श्रीकृष्ण दीख पड़ते हैं। भगवान् में मग्न गोपी देह-ज्ञान भूल जाती है। तब गोपी को अपने भीतर श्रीकृष्ण दीख पड़ते हैं-

"लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल"

जब तक देह-ज्ञान है, तब तक परमात्मा नहीं दीख पडते हैं। देव के दर्शन करने हैं तो देह-ज्ञान भूलना पड़ेगा। जिसको याद रहता है कि **"मैं पति हूँ, मैं पत्नी हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ"**-वह परमात्मा के दर्शन उपयुक्त रूप से नहीं कर सकता है। उसे परमात्मा के दर्शन ठीक से नहीं होते हैं। परमात्मा की भक्ति करते हुए जो देह-भान भूलता है, उसे अपने भीतर विराजमान परमात्मा के दर्शन होते हैं। आत्म-स्वरूप में परमात्मा के दर्शन को ही अपरोक्ष दर्शन करते हैं।

२- प्रेमरस-भक्ति

भागवत दर्शन शास्त्र है-

भगवता प्रोक्तम् भागवतम्।

भागवत के प्रधान वक्ता आदिनारायण परमात्मा हैं, सृष्टि के प्रारम्भ में प्रभु ने यह कथा ब्रह्माजी को सुनायी है। ब्रह्माजी ने यह कथा नारदजी को सुनायी। नारदजी ने यही कथा व्यास महर्षि को सुनायी। व्यासजी ने शुकदेवजी को सुनायी। शुकदेवजी ने परीक्षित राजा को सुनायी।

भागवत के प्रधान वक्ता आदिनारायण परमात्मा ही हैं। भगवान को दया आ गयी–'यह जीव मेरे दर्शन करेगा तभी उसके दुःख का अंत आयगा।' धन से आपको सुख मिलेगा, पर धन से दुःख का अंत नहीं आयेगा। जिसके पास धन है, वह भले ही सुख भोग ले, पर उसे दुःख तो भोगना ही पड़ेगा। परमात्मा से जो अतिशय प्रेम करता है, जो परमात्मा के दर्शन करता है, उसीके दुःख का अन्त आता है। प्रभु ने कृपा करके अपने दर्शन के लिए जो सरल साधन दिखाया है, उसे भागवत कहते हैं।

परमात्मा के दर्शन के लिए वेद में, उपनिषद् में, गीता में जो अनेक साधन दिखलाये गये हैं, वे सभी अच्छे हैं, पर व्यास नारायण को लगा कि उपनषिद् में, ब्रह्म सूत्र में, गीताजी में जो मार्ग-दर्शन किया गया है, वह कलियुग के लोगों के लिये उपयोगी नहीं हो सकता। उपनिषद् में परमात्मा के दर्शन के लिए विशेष आज्ञा दी गयी है। वह आज्ञा सर्वस्व का त्याग करने की है–

न कर्मणा न प्रज्या धनेन त्यागनैकेनामृतत्त्वमानशुः।
वरेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजते यद्यत्तयो विशन्ति॥

कर्म से मुक्ति नहीं मिल सकती है, पुत्र से मुक्ति नहीं मिल सकती है, धन से भी मुक्ति नहीं मिलती है। अमृतत्व की प्राप्ति तो त्याग से ही होती है। उपनिषद् कहते हैं–कूड़े से कभी इतर की सुगन्ध नहीं आ सकती है। प्रवृत्ति से राग-द्वेष बना रहता है। विकार-वासना तथा ममता भी बनी रहती है। समभाव नहीं रहता है। जीव विचारता है–'यह सज्जन है, यह दुर्जन है, यह बालक है, यह वृद्ध है।' प्रवृत्ति में जाने-अनजाने विषमता आ जाती है। जहाँ विषमता है वहाँ समता नहीं रहती है। वहाँ ममता आती है। प्रवृत्ति में व्यस्त (फँसे हुए) जीव को परमात्मा के दर्शन नहीं होते हैं।

उपनिषद् कहते हैं कि परमात्मा के लिए सब कुछ छोड़िए। सर्व का त्याग कीजिए। त्याग की बाते करना सरल है, मनसे त्याग करना कठिन है। लोग सब कुछ छोड़कर कथा में बैठते हैं पर कई लोगों को कथा में बैठे हुए भी घर दीख पड़ता है। अरे! घर तो क्या बाहर जूते पड़े हुए हों, तो वे भी दीख पड़ते हैं। लोग सोचते हैं कि नये जूते हैं, कोई ले न जाय कहीं। मानव, मन से कुछ नहीं त्याग पाता–

सच्चा त्याग कबीर का, दिल से दिया उतार।

कलियुग का मानव त्याग नहीं कर सकता। मानव बहिरंग में कुछ त्याग कर ले, तन से त्याग कर ले, पर मन से त्याग नहीं कर पाता है। कई लोग जब कथा में आते हैं तब पान सुपारी साथ में लेकर आते हैं। कलियुग का मानव ऐसी साधारण चीजें भी नहीं त्याग सकता। उससे कहिये कि तुम काम छोड़ दो, क्रोध छोड़ दो, तो वह कहेगा–'मैं कुछ भी छोड़ना नहीं चाहता हूँ। सुख भोगते हुए भगवान् मिल जायँ तो अच्छा है।'

उपनिषद् कहते हैं–भगवान् को प्राप्त करना चाहते हो तो भोग छोड़ दो। भोग का त्याग कीजिए, तभी भगवान् मिलेंगे। कलियुग का मानव सब कुछ एकत्र करता है पर कुछ भी छोड़ नहीं सकता है। एक भाई मुझसे कह रहे थे-'महाराज! आप छोड़ने की बात न करिये। मुझे कुछ छोड़ना नहीं है पर बिना छोड़े हुए आपके भगवान् के दर्शन हो सकें, ऐसा कोई रास्ता दिखलाइए।' मनुष्य कुछ भी छोड़ना नहीं चाहता।

मानव को भगवान् चाहिए पर वह संसार के भोग छोड़ना नहीं चाहता। भोग भोगते हुए भगवान् मिल जायँ तो बहुत अच्छा है। व्यास महर्षि जानते थे कि कलियुग के मानव का जीवन कैसा होगा। कलियुग के मानव का जीवन अर्थ और काम में पूर्ण होगा। वह कुछ भी छोड़ नहीं सकेगा। उपनिषद् का ज्ञान अति दिव्य है पर कलियुग के विलासी जीव उपनिषद् के ज्ञान का पाचन नहीं कर सकेंगे। अति वैराग्य के बिना ज्ञान सफल नहीं होगा। व्यासजी को लगा कि कलियुग के अर्थ-प्रधान और विलासी लोगों पर उपदेश का असर नहीं होगा।

लोगों को घर में शान्ति नहीं मिलती है, इससे शाम के समय वे बगीचे में जाते हैं। मानव घर छोड़ नहीं सकता और घर में शान्ति से रह भी नहीं सकता। ईश्वर की यही माया है।

व्यासजी ने बहुत सोच-विचार के बाद भागवत शास्त्र की रचना की है।

प्रकाशितः कोऽपि नवीन मार्गः।

दिव्य मार्गदर्शन इस ग्रन्थ में किया गया है। भगवान् के लिए घर छोड़ना ही पड़े, ऐसा नहीं है। मीरा को घर में ही भगवान् के दर्शन हुए थे। प्रभु ने आपको जो घर दिया है, उसे छोड़ने की जरूरत नहीं है। वन में जाने से आनन्द मिलता है, ऐसा नहीं है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं कि एक घर छोड़ने के बाद उन्हें दूसरा घर बनाने की इच्छा होती है। एक घर की ममता छोड़ दी, फिर दूसरे घर से ममता कर ली। क्या लाभ हुआ? आप घर में रहते हैं, अच्छा ही है। घर में भी विवेक से रहिए। घर में सावधान होकर ही रहिए। भागवत में ऐसा दिव्य मार्गदर्शन किया गया है कि घर भले ही आप न छोड़ें पर घर परमात्मा का है ऐसी भावना मन में रखिये। घर में रहने मात्र से पाप नहीं होता है, पर जो ऐसा समझने लगता है कि घर का स्वामी मैं हूँ, घर मेरा है-जो घर का स्वामी बन कर रहता है, वह पाप करता है।

जो यह समझता है कि घर मेरा है, उसे घर का जरा भी नुकसान हो तो दुःख होता है, परन्तु घर बेच देने पर, ऐसा समाचार मिले कि वह मकान तो जल कर भस्म हो गया, तो दुःख नहीं होता। मकान की ममता दुःख दे रही थी। घर बेच दिया गया और ममता खत्म हो गई। उसकी ममता धन में थी। पैसे बैंक में हैं और बैंक डूब गया तो दुःख होगा। घर में रहना गलत नहीं है,

स्वामी बनकर रहना गलत है। घर के स्वामी तो ठाकुर जी हैं, श्रीकृष्ण हैं। प्रभु ने कृपा करके यह सब दिया है। जीव तो तन का स्वामी भी नहीं है, तब वह धन का स्वामी कैसे हो सकता है? आज्ञा होने पर घर छोड़ना ही पड़ता है। जीव तन का भी स्वामी नहीं है तो वह धन का स्वामी नहीं हो सकता है। जीव लक्ष्मी-पुत्र है, लक्ष्मी के स्वामी–पति तो नारायण हैं। कई लोग भिखारी को घर के बाहर भी बैठने नहीं देते, कहते हैं–'यह आँगन मेरा है।' अंतिम यात्रा में क्या इसे साथ ले जाना है? मानव को वाणी का विवेक भी नहीं है।

जो कोई कथा सुने, सत्संग करे तो उसका विवेक जाग्रत होगा। यह घर भगवान् का है, मेरा कुछ भी नहीं है। घर में सेवक बनकर रहूँगा। जो कुछ भी है, भगवान् का है। प्रभु ने अनुग्रह करके मुझे सब कुछ दिया है। यह सब प्रभु का है, ऐसा मानकर, कृष्णार्पण-वृत्ति से, विवेक से उपभोग कीजिए। अपना प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय बनाइये। गोपियों ने जगत् को दिखाया है कि घर में रहकर भी भगवान् के दर्शन हो सकते हैं। गोपियों को घर में परमात्मा का साक्षात्कार हुआ है। घर में रहना पाप नहीं है। घर को मन में रखना पाप है। घर में रहिये, पर विवेक से रहिये। मेरा सच्चा घर भिन्न है – ऐसा मानकर रहिये। घर को प्रभु का मंदिर बनाइए। स्वामी बनकर उसका उपभोग न कीजिए। सेवक-भाव से उपयोग कीजिए।

इस शरीर को विवेक से थोड़ा सुख दीजिए। अति सुख न दीजिए। इस शरीर को अति सुख मिलने पर तन और मन दोनों बिगड़ेंगे। शरीर को उतना ही सुख दीजिए कि सुख भोगते हुए, भगवान् को भुलाया न जाय और भक्ति हो सके। घर में जो कुछ है उसके स्वामी भगवान् हैं। घर मेरा नहीं है, भगवान् का है। इसका हिसाब एक दिन देना पड़ेगा। भगवान् को हिसाब देने के पवित्र दिवस को ही मरण कहते हैं।

हिसाब में गड़बड़-घोटाला होता है तो घबराहट होती है। साधारण से इन्कमटैक्स के अफसर को हिसाब देने में भी मनुष्य को घबराहट होती है। मनुष्य मंदिर में ठाकुरजी को वंदन करने जाता है और कहता है, "हे प्रभु, दो प्रकार की हिसाब-बहियाँ रखी हैं, आप जरा ध्यान रखना।" एक वर्ष का हिसाब देने में इतनी घबराहट होती है, तो सारे जीवन का हिसाब जब प्रभु को देना होगा, तब क्या होगा? जिसका हिसाब शुद्ध है उसे घबराहट नहीं होती है। उसे अंतकाल में शांति मिलती है। उसका मन सोचता है–मैं तो अच्छी जगह जाने वाला हूँ। मानव को अन्तकाल में घबराहट क्यों होती है? क्योंकि उसके हिसाब में गड़बड़-घोटाला होता है। भगवान् हिसाब माँगेंगे। भगवान् श्रीमान से पूछेंगे, तुमने अन्नदान क्यों न दिया? गरीब से भी भगवान् पूछेंगे, मैंनें तुम्हें आँखें दी हैं, तुमने आँखों से क्या किया? मैंने मन दिया है, मन से क्या किया? परमात्मा ने तन और धन देने में विषमता रखी है, पर मन सभी को एक समान दिया है।

इसलिए विवेक से व्यवहार कीजिए। प्रभु ने विवेक से व्यवहार करने और भक्ति के लिए इन्द्रियाँ दी हैं। पर अंतकाल में जीव को घबराहट होती है। इसका कारण यह है कि उसे अपने सभी पाप दीख पड़ते हैं। अंतकाल में जीव को पुण्य याद नहीं आता है। कभी किसी को पुण्य याद आ जाय कि मैं एक बार द्वारिका गया था, मैंने द्वारिकानाथ के दर्शन किये थे। मैंने भगवान् के चरणों में तुलसीजी समर्पित की थीं, तो इसकी नाव पार लग जाय परन्तु अन्तकाल में पुण्य याद नहीं आता है, पाप याद आते हैं क्योंकि मानव जब पाप करता है तब बहुत सावधान रहता है, और जब पुण्य करता है तब बहुत गाफिल रहता है। पाप करता है तब ध्यान रखता है – 'मेरा पाप प्रकट न हो जाय।' पाप करता है तब बहुत सावधान रहता है। पुण्य करता है, तब अभिमान में रहता है, गाफिल रहता है। इससे अंतकाल में पुण्य याद नहीं आता है पाप ही याद आते हैं और पाप के याद आने के साथ ही जीव घबराता है, सोचता है–'अब मुझे मार पड़ेगी, सजा मिलेगी।'

जो डरता है, उसने बहुत पाप किये होते हैं। डर का कारण पाप हैं। जो भगवान् की भक्ति करता है, जो पाप छोड़ता है, वह निर्भय होता है। जो उचित रूप से भक्ति करता है, उसे ऐसी अनुभूति होती है कि 'भगवान् मेरे साथ हैं।' मानव भक्ति करता है और डरता है तो समझना चाहिए कि भक्ति कच्ची है। भक्ति करनें वाला निर्भय होता है।

तापत्रय विनाशाय

आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक–तीनों प्रकार के तापों का नाश करने वाले परमात्मा श्रीकृष्ण की शरण में जो जाता है, वह जीव ईश्वर का होता है, वह निर्भय बन जाता है। राजा के घर का सिपाही अकड़ कर चलता है। उसी तरह जीव जब पुरुषोत्तम परमात्मा का हो जाता है तब निर्भय हो जाता है। "मैं किसी का पति नहीं हूँ, पत्नी नहीं हूँ।" व्यवहार दृष्टि से सभी सम्बन्धी यथार्थ हैं, तत्त्व–दृष्टि से भगवान् का सम्बन्ध ही सत्य है। भगवान् मेरे हैं, मैं भगवान् का हूँ–ऐसा जो जानता है वह निर्भय बनता है, उसे काल भी डर नहीं लगता है।

परीक्षित राजा अंतकाल में कहते हैं–अब मुझे तक्षक का डर नहीं है। मेरे भीतर चैतन्य रूप जो नारायण विराजमान हैं, वहीं तक्षक नाग में भी विराजमान हैं। मुझे तक्षक का डर नहीं लग रहा है। यह जीव परमात्मा का अंश है। प्रभु के धाम में जाना है। प्रभु के चरणों में जाना है। भीतर नारायण, बाहर भी नारायण–भीतर–बाहर चैतन्यरूप जो नारायण विराजमान हैं, उनके दर्शन करने की आदत जिसे है, वह निर्भय हो जाता है। जीव–मात्र को तक्षक नाग डसने आने वाला है। तक्षक काल का स्वरूप है। काल तक्षक किसी को भी छोड़ता नहीं है। वह सातवें दिन डसता है। सप्ताह में सात दिन हैं। सात में से किसी एक दिन तक्षक नाग डसने वाला ही है, प्रत्येक जीव को काल

का डर लगता ही है। मनुष्य क्या, स्वर्ग के देवों को भी काल का डर लगता है। मृत्यु का डर मनुष्य को है ऐसा नहीं है। ब्रह्माजी को भी काल का डर है। भागवत की कथा मानव को निर्भय बनाती है, निःसन्देह करतीं है।

भागवत की कथा सुनने वाले के मन में कोई शंका नहीं रहती है। समाप्ति में शुकदेव जी महाराज ने ऐसा कहा है कि राजन्, समय हो गया है, पर अभी भी तुम्हारे मन में कोई शंका हो तो बतला दो, मैं कथा करूँगा और जब तक मैं बैठा हूँ, तक्षक नाग नहीं आयेगा और कदाचित् आ गया तो भी मेरी दृष्टि पड़ने पर उसका विष अमृत हो जाएगा। मैंने ब्रह्मदृष्टि स्थिर की है। शुकदेवजी महाराज मात्र ज्ञानी नहीं हैं उनकी ब्रह्मदृष्टि भी स्थिर है। जिसे पीलिया का रोग होता है उसे सब कुछ पीला दिखाई देता है। जिस की ब्रह्म-दृष्टि स्थिर है, उसे सर्वत्र परमात्मा ही दीख पड़ते हैं, जगत् दिखलाई नहीं पड़ता। ऐसे महापुरुषों की शक्ति कैसी होगी? इसकी कल्पना भी कठिन है।

शुकदेवजी महाराज ने जब ऐसा कहा तब परीक्षित महाराज ने कहा– 'अब मेरे मन में कोई शंका नहीं है।' भागवत की कथा ऐसी मधुर है कि उसको सुनने के बाद मन में शंका नहीं रहती। कई लोग बहुत प्रश्न पूछते हैं। जो अधिक प्रश्न पूछते हैं, वे प्रायः प्रभु के नाम का जप प्रेम से नहीं करते हैं, परमात्मा की प्रेम से पूजा नहीं करते हैं। जो प्रेम से परमात्मा की पूजा-सेवा करते हैं, परमात्मा उसे सब समझाते हैं। प्रश्न वही पूछता है जो प्रेम से कथा नहीं सुनता है।

भागवत की कथा व्यासजी ने इस तरह की है कि वक्ता प्रेम से कथा करता हो और श्रोता प्रेम से कथा सुनते हों तो मन में कोई शंका नहीं रहती है। कभी कथा में आपको ऐसा अनुभव हुआ होगा कि यह कथा आज मेरे लिये ही थी। मैं यही पूछना चाहता था। मेरी शंका का आज समाधान हो गया।

मानव के मन में कैसी-कैसी शंकाएँ उठती हैं, यह सब व्यास भगवान् जानते हैं। इससे व्यासजी उसी तरह से कथा करते हैं। ऐसा महान् बुद्धिमान् जगत में हुआ नहीं है और होगा भी नहीं।

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धये

भागवत में मात्र ज्ञान और भक्ति का वर्णन आता है—ऐसा नहीं है। भागवत में व्यवहार-बोध भी आता है। भागवत में स्त्री-धर्म समझाया गया है, पुरुष-धर्म भी समझाया गया है। माता कैसी होनी चाहिए, पिता कैसा होना चाहिए, भाई कैसा होना चाहिए-सब भागवत समझाती है। कथा में किस तरह खाना, किस तरह रहना चाहिए-आदि बातें भी समझायी गयी हैं। भागवत में व्यासजी ने कोई बात भी नहीं छोड़ी है। व्यासजी को भागवत और महाभारत के लिए ऐसा सात्त्विक

अभिमान है कि जो मेरे इस ग्रन्थ में नहीं है, वह संसार में अन्यत्र कहीं भी नहीं है, किसी ग्रन्थ में नहीं है–

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित् न

भागवत में जो है वह अन्य ग्रंथों में है। वृद्धावस्था में व्यासजी ने भागवत की रचना की है। भागवत की रचना के बाद व्यास जी ने कलम रख दी। "अब मुझे कुछ भी नहीं कहना है, नहीं लिखना है। प्रभु ने मुझे जो कुछ दिया था, उसे जरा भी संकोच क्षोभ न रख कर मैंने समाज सेवा में समर्पित कर दिया।"

भागवत की कथा आपके जीवन को निःसन्देह बनायेगी। आपके स्वरूप का, आप को बोध करायेगी। भागवत की कथा आपको परमात्मा के दर्शन के लिए आँख देगी, परम प्रेम का दान देगी। भगवान् की कथा आपके स्वभाव को सुधारेगी। भागवत की कथा मरण को मंगलमय बना देती है। यह कथा अति दिव्य है।

भागवत के प्रारम्भ में पूजन के लिए व्यासजी ने गणपति महाराज का आवाहन किया है। गणपति महाराज प्रकट हुए। व्यास जी ने कहा–"मुझे भागवत शास्त्र की रचना करनी है, पर लिखेगा कौन?"

गणपतिजी ने कहा–"मैं लिखने के लिए तैयार हूँ, परन्तु में एक क्षण भी खाली नहीं बैठूँगा।" गणपतिजी का वाहन चूहा है। चूहा उद्योग का प्रतीक है। उद्योग करने वाला खाली न बैठना चाहे तो ऋद्धि-सिद्धि उसकी दासी हो जाती हैं। अविरत उद्योग कीजिये। एक क्षण भी ईश्वर के चिंतन के बिना न रहिए। जो खाली नहीं बैठता, उसका अमंगल नहीं होता है।

प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में गणपति की पूजा की जाती है। गणपति का पूजन अर्थात् जितेन्द्रिय होना। गणपति विघ्नहर्ता हैं। गणपति ने व्यासजी से कहा–"मैं एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बैठूँगा। आपको चौबीस घण्टे कथा कहनी पड़ेगी।" तब व्यासजी ने कहा–'मैं जो कहूँ, उसके योग्य-अयोग्य होने का निर्णय करके आप लिखियेगा।'

यों गणपति महाराज हुए लेखक और व्यासजी हुए वक्ता। एक सौ श्लोकों के बाद व्यासजी एक कूट श्लोक कह देते थे। उसके विषय में सोचते हुए गणपतिजी को समय लगता। व्यासजी उसी समय का लाभ उठाकर अपने अन्य कार्य कर लेते थे। जैसा कि वर्णन आता है–चित्रकेतु राजा की एक करोड़ रानियाँ थीं। चित्रकेतु कौन? एक करोड़ रानियों का अर्थ क्या है? गणपतिजी को सोचना पड़ता। ऋषियों को परोक्षता बहुत प्रिय होती है। इन परोक्ष वाक्यार्थों में बहुत कुछ कह दिया गया है। संसार के विषयों में मन रखने वाला ही चित्रकेतु है। सर्व चित्र जिसके मन में हैं

वह चित्रकेतु है। वही मन जब संसार में तन्मय बनता है, तब उसकी वृत्तियाँ करोड़ गुनी बन जाती हैं। इसी कारण लिखा गया कि वह करोड़ रानियों के साथ रमण करता है।

अब कथा का प्रारम्भ करते हैं। अनेक पुराणों में माहात्म्य की कथा आती है। पद्म पुराण में अब भागवत-माहात्म्य का प्रारम्भ होता है–

सच्चिदानन्दरूपाय................श्रीकृष्णाय वयं नुमः।

कथा के प्रारम्भ में श्रीकृष्ण के चरणों में प्रणाम करते हैं। वंदन वही करता है जिसे भगवान् के चरणों के दर्शन होते हैं। दर्शन के बाद वंदन होता है। वंदन, मात्र शरीर की क्रिया नहीं है, हृदय का भाव है। जो इस भाव से प्रभु के दर्शन करता है, कि आज मेरे भाग्य का उदय हुआ है। प्रभु ने मुझे कथा श्रवण की अनुकूलता दी है। परमात्मा के उपकार के स्मरण से जिसका हृदय आर्द्र होता है, उसे भगवान् के दर्शन होते हैं। दर्शन के बाद वंदन होता है।

किसी भी कार्य से पहले भगवान् के चरणों में वंदन कीजिए। वंदन करने वालों को परमात्मा शक्ति प्रदान करते हैं, बुद्धि प्रदान करते हैं। परमात्मा की दी हुई शक्ति और बुद्धि जिसे मिलती हैं, उसकी पराजय कभी नहीं होती है। मानव की पराजय क्यों होती है? क्योंकि मानव को अपनी बुद्धि पर बहुत विश्वास है। मानव की बुद्धि-शक्ति कुछ कार्य नहीं कर पाती है। परमात्मा की शक्ति से ही सफलता मिलती है–

मूकं करोति वाचालं पंगु लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वंदे परमानन्द माधवम्।।

मूकम् करोति वाचालं और वाचालं मूकं करोति--परमात्मा की ऐसी शक्ति है।

घर में आने पर भी प्रथम भगवान् के दर्शन कीजिए। इतना भी आप करेंगे तो धीरे-धीरे भक्ति बढ़ेगी। कोई भी कार्य करने से पहिले भगवान् से कह कर कीजिए। कई वैष्णव बाहर जाते समय भगवान् से प्रार्थना करते हैं, उनको मनाते हैं– 'आपके बिना मुझे चैन नहीं पड़ता, आप एक स्वरूप धारण करके घर में विराजिये और दूसरा स्वरूप धारण करके मेरे साथ चलिये।' भक्त और भगवान् साथ ही रहते हैं। भगवान् को साथ ले ज़ाना अर्थात् भगवान् के स्वरूप को साथ ले जाना? एक भाई बड़ी-बड़ी बातें करते थे। भगवान् के स्वरूप को लेकर यात्रा करते थे। फिर एक बार ऐसा हुआ कि सब सामान तो बैलगाड़ी से उतार लिया, पर भगवान् ही रह गये। भगवान के स्वरूप को उतारना ही भूल गये। भगवान् को मन से साथ रखिये। दो-तीन मिनट हो जायें तो भगवान् के दर्शन करिये। अपने ठाकुर जी का स्वरूप मनसे दूर न रखिये। उसे दृष्टि में रखिये। उसे मन में स्थिर कीजिए। जहाँ जाते हैं, वहीं उन्हीं के दर्शन कीजिए। इससे आपका व्यवहार भक्तिमय होगा।

जीव व्यवहार में ईश्वर से विमुख होता है, भगवान् को भूलता है। वह अपनी बुद्धि पर विश्वास रखकर व्यवहार करता है। इससे दुःखी होता है।

श्रीकृष्णाय वयं नुमः।

अकेले कृष्ण को नहीं, श्रीकृष्ण को वंदन किया गया है। सनातन धर्म में शक्ति- विशिष्ट ब्रह्म की पूजा है। निराकार ब्रह्म की पूजा नहीं हो सकती है। वह मारता भी नहीं; तारता भी नहीं। वह कृपा नहीं कर सकता है। वही ब्रह्म जब शक्ति-विशिष्ट बनता है, तब कृपा कर सकता है और तभी उसकी पूजा हो सकती है। राधा-कृष्ण की पूजा होती है। ब्रह्म जब शक्ति-विशिष्ट बनता है, तब उसकी पूजा होती है। 'श्री' का अर्थ है राधाजी। जगत् का आधार कृष्ण हैं और कृष्ण का आधार राधा हैं। 'आधार' में 'आधार' शब्द मिलाने से 'राधा'-'राधा' होगा। वृन्दावन के साधु सारा दिन-'श्री राधे-श्री राधे' रटते रहते है। श्रीराधाजी की कृपा के बिना जीव श्रीकृष्ण के पास नहीं जा सकता है।

भागवत में लिखा है कि श्रीकृष्ण को कभी क्रोध आता है, पर राधाजी को कभी क्रोध नहीं आया है। द्रौपदी की पाँच संतानों की जब हत्या की गई, तब श्रीकृष्ण को क्रोध आ गया और उन्होंने अश्वत्थामा को शाप दे दिया। श्रीराधाजी को कभी क्रोध नहीं आता है। माया किसी को नहीं छोड़ती है, पर राधाजी का कीर्तन जो करता है, राधाजी के नाम का जो जप करता है, उसे माया त्रस्त नहीं कर सकती है। श्रीराधाजी जीव का ब्रह्म-सम्बन्ध कराती हैं।

जीवन में ऐसा समय आता है, जब मानव कहता है कि 'मैं सुखी हूँ।' भगवान् उसे पूर्ण अनुकूलता देते हैं। अधिक भक्ति के लिए, अधिक परोपकार के लिए भगवान् उसे सुख देते हैं परन्तु अनुकूलता के मिलने पर मानव अधिक भक्ति नहीं करता है। मानव अधिक वासना-सुख भोगता है। भगवान् की दी हुई अनुकूलता का अवसर मानव गवाँ देता है और तब भगवान् को बुरा लगता है। यह जीव योग्य नहीं है। भगवान् उसे सजा देते हैं। प्रभु को जब क्रोध आता है, तब राधाजी समझाती हैं- "दया रखिये, जीव दुष्ट है पर आप तो दयालु हैं। अब जीव सुधर जायगा!" राधाजी सिफारिश करती हैं। परमात्मा की कृपा-शक्ति राधाजी ही हैं। राधाजी प्रभु से विनय करती हैं-"यह जीव हमारी शरण में आया है। मुझे दया आती है।"

पापी जीव भगवान् के समक्ष जाने का साहस नहीं कर सकता पर राधाजी के समक्ष जाता है। व्यवहार में भी ऐसा ही दीख पड़ता है कि कैसा भी लड़का हो, दोपहर में माता के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ा रहता है, तब माता सब-कुछ भूल जाती है। लड़के को प्रेम से भोजन कराती है। उसे लड़के का कोई दोष नहीं दिखाई देता है। साधारण स्त्री में ऐसी शक्ति है, तो राधाजी में कितनी शक्ति होगी!

श्रीधाम वृन्दावन में श्रीराधाजी के साथ परमात्मा नित्य लीला करते हैं। वे कभी बड़ी नहीं होती हैं, आज भी लीला कर रही हैं। अधिकारी वैष्णव को दर्शन भी होते हैं। व्यास महाराज प्रारम्भ में मात्र कृष्ण को नहीं, श्रीकृष्ण को वंदन करते हैं।

श्रीकृष्ण को प्रणाम करने के बाद, शुकदेवजी को प्रणाम करते हैं।

यं प्रवजन्तमनुपेतम पेतकृत्यं....मुनिमानतोस्मि।

भागवत के प्रधान वक्ता श्री शुकदेवदजी महाराज हैं। श्रीशुकदेवजी महाराज शिव स्वरूप हैं। भगवान् शंकर शुकदेवजी का स्वरूप धारण करके प्रगट हुए हैं। भागवत शास्त्र की रचना के बाद व्यासजी को चिंता हुई कि-''यह शास्त्र मैं किसे दूं?'' समाज के कल्याण के लिए इसकी रचना की हैं। बहुत बोला हूँ, बहुत लिखवाया है। अब सम्पूर्ण रूप से ईश्वर के साथ मुझे सम्बन्ध जोड़ना है।

प्रभु से बिछुड़े हुए जीव प्रभु के सम्मुख आ सकें, इस उद्देश्य से मैंने भागवत शास्त्र बनाया है। इस प्रेम शास्त्र का प्रचार वही कर सकता है, जो अतिशय विरक्त होता है। संसार के जड़ पदार्थ से प्रेम करनेवाला भागवत का प्रचार नहीं कर सकता है। ज्ञान से श्रीकृष्ण-प्रेम श्रेष्ठ है। पुस्तक पढ़ने से ज्ञानी हो सकते हैं पर प्रभु-प्रेमी नहीं हो सकते हैं। प्रभु-प्रेमी होने पर ही ज्ञान में दृढ़ता आती है। जब तक ज्ञान स्थिर नहीं होता है, तब तक जीवन कृतार्थ नहीं होता है।

श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य से प्रेम करने वाला भागवत-कथा का अधिकारी नहीं है। संसार के किसी भी पदार्थ के प्रति राग न हो, ऐसा जन्म से वैरागी कौन मिल सकता है? कोई योग्य पुत्र हो तो ज्ञान दे दूँ, जिससे वह जगत का कल्याण कर सके।

इस विचार के कारण वृद्धावस्था में व्यासजी को पुत्रैषणा हुई। भगवान् शंकर वैराग्य के स्वरूप हैं। भगवान् शंकर निरपेक्ष हैं। जगत को जिसकी अपेक्षा होती है, भगवान् शंकर ने उस उपेक्षा का त्याग किया है। गुलाब के लिए कोई लड़ाई-झगड़ा करता है पर-धतूरे के फूल के लिए कौन झगड़ा करेगा? शिवजी महाराज को धतूरे के फूल से ही संतोष है। व्यासजी ने शंकर भगवान् की आराधना की। शिवजी महाराज प्रसन्न हुए। व्यासजी महाराज ने माँगा,-''समाधि में जो आनन्द आप पाते हैं, उसी आनन्द को, जगत को देने के लिए आप मेरे घर में पुत्र रूप में पधारिये।'' व्यासजी की माँग शिवजी ने स्वीकार कर ली। शिव-कृपा से व्यासजी की पत्नी वाटिकाजी को गर्भ रहा। शुकदेवजी का जन्म हुआ। शुकदेवजी शिवजी भगवान् का अवतार होने के कारण जन्म से ही निर्विकार थे। शुकदेवजी में ज्ञान, वैराग्य और भक्ति-तीनों परिपूर्ण थे। सोलह वर्ष की अवस्था में शुकदेवजी ने घर का त्याग किया। जगत के अनेक जीवों के कल्याण के लिए

शुकदेवजी घर का त्याग करके जाते हैं। पर व्यासजी से वियोग सहन नहीं हुआ। वे 'हे पुत्र, हे पुत्र,' कहते हुए शुकदेवजी के पीछे-पीछे जाने लगे।

वृक्षों के द्वारा शुकदेवजी ने उत्तर दिया। वृक्षों ने कहा-'महाराज! आप ज्ञानी हैं और पुत्र के पीछे पड़े हैं।' ज्ञानी वही है जो परमात्मा के पीछे पड़ता है। यह जीव अनेक बार पिता हुआ, पुत्र हुआ। ये सब सम्बन्ध कहाँ गये? यह सब वासना के खेल हैं,- ''पिताजी, मेरे पीछे नहीं, परमात्मा के पीछे पड़िये।'' शुकदेवजी ने वृक्षों द्वारा बोध दिया है-''कौन किसका पिता और कौन किसका पुत्र? वासना पिता बनाती है और वासना ही पुत्र बनाती है।''

अनेक बार ऐसा होता है किसी वृद्ध की वासना घर में रह जाती है और वह मर जाता है। फिर वर्ष दो वर्ष के बाद पुत्र-जन्म हो तो लोग कहते हैं-''पुत्र का चेहरा दादा जैसा है।'' अरे, चेहरा ही मात्र दादा जैसा नहीं, दादा स्वयं ही आये हैं। पिता था अब पुत्र बनकर आया है। यह माया के खेल हैं। जीव का ईश्वर के साथ का सम्बन्ध ही सच्चा है। अन्य सम्बन्ध झूठे हैं।

गंगा-तट पर जब शुकदेवजी ने कथा की, तब कथा में व्यासजी बैठे हैं। उन्हें कथा में आनन्द आया है। बाद में शुकदेवजी महाराज हमारे गुजरात में नर्मदा-तट पर भी रहे हैं। नर्मदा-तट ऐसा दिव्य है कि कोई देव, ऋषि ऐसे नहीं हैं जिन्होंने नर्मदा-तट पर तप न किया हो! नर्मदा माता शिव-कन्या हैं। शंकर भगवान् उनके पिता हैं। यह पानी नहीं है, साक्षात् ब्रह्मविद्या है। नर्मदा माता भोग देती हैं, मोक्ष भी देती हैं।

नर्मदा तट पर शुकदेवजी महाराज विराजमान हैं उन्होंने व्यासजी से कहा-''इस तट पर मैं बैठता हूँ। सामने तट पर आप बैठिये। पिताजी, दूर से मुझे देखिये, परन्तु ध्यान मेरे नारायण का ही कीजिए।'' परमात्मा के ध्यान की आदत हो जाय तो पाप छूट जाते हैं। पाप करने की इस जीव को अनेक जन्मों की आदत है। भक्ति न करने वाले पाप करते हैं।

शुकदेवजी महाराज परमात्मा का ध्यान करते-करते परमात्मा में एकरूप हो गये हैं, परन्तु व्यासजी नारायण कृपा करके आज भी तुम्हारे कल्याण के लिए विराजमान हैं। सात चिरंजीवों में व्यासजी की गणना होती है-

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः।।

इन सात चिरंजीवों में से प्रायः सभी नर्मदा तट पर बैठे हैं। अश्वत्थामा, कृपाचार्य व्यासजी सब नर्मदा तट पर विराजमान हैं।

शुकदेवजी ने जाते हुए व्यासजी को बोल दिया। शुकदेवजी के चरणों में व्यासजी बार-बार वंदन करते हैं- **''तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोस्मि।''**

३– भगवद्-स्वरूप शास्त्र-भागवत

नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम्।
कथामृतरसास्वादकुशलः शौनकोऽब्रवीत्।। (श्रीमद्भागवत माहात्म्य-१-३)

भारत में सात अरण्य प्रधान हैं: नैमिषारण्य, दंडकारण्य, सेवारण्य, कामकारण्य, धर्मारण्य, बद्रिकारण्य और चंपारण्य। नैमिषारण्य में अट्ठासी हजार ऋषियों का ब्रह्म सत्र हुआ है। सत्र और यज्ञ में भेद है। जहाँ एक ही यजमान होता है, वहाँ उसे यज्ञ कहते हैं। जहाँ सभी यजमान होते हैं, वहाँ उसे सत्र कहते हैं। जहाँ फल में समता है, वहाँ वह सत्र है। जहाँ फल में विषमता है, वहाँ वह यज्ञ है। यज्ञ में जो यजमान होकर बैठता है, संकल्प करता है और ब्राह्मणों को दक्षिणा देता है, उसे ही यज्ञ का पूर्णतः सोलहों आने फल मिलता है। यज्ञ में जब कोई सेवा करता है, तो उसे सेवा के प्रमाण में दो आने प्रतिशत पुण्य का अंश मिलता है।

भागवत ज्ञान-सत्र है, जहाँ सब यजमान हैं–

यत्र ऋत्विजारेव यजमानाः

जब सबको एक समान फल मिलता है, तब उसे सत्र कहा जाता है। कथा में गरीब को पैसे खर्च करने की जरूरत नहीं है। भागवत श्रीकृष्ण का माहात्म्य है। जो इस भाव को ग्रहण करके भगवान् श्रीकृष्ण के नाम का जप करता है और शान्ति से कथा सुनता है, उसे सोलहों आने फल मिलता है। हज़ारों खर्च करने वाले को जितना मिलता है, उतना ही फल गरीब को भी मिलता है। सत्र में सभी को सोलहों आने फल मिलता है।

अट्ठासी हजार ऋषियों ने ब्रह्म सत्र किया। ब्रह्माजी से कहा हम सारा दिन भक्ति कर सकें, ऐसी पवित्र व सात्विक भूमि दिखाइए। ऐसी भूमि जो हमें भक्ति में साथ देती रहे। भोग भूमि में सारा दिन भक्ति नहीं हो सकती, गृहस्थ के घर में भी भक्ति नहीं हो सकती। गृहस्थ के घर में काम के परमाणु घूमते हैं, गृहस्थ के घर में विषमता होती है। घर में राग-द्वेष, वैर-वासना की परछाइयाँ पड़ती रहती हैं। घर में जाने-अनजाने पाप होता रहता है। हमें ऐसी पवित्र भूमि दिखाइए, जो सारा दिन भक्ति में साथ देती रहे।

ब्रह्माजी ने इन ऋषियों को एक चक्र दिया और कहा कि इस चक्र के पीछे चलिए और जहाँ चक्र स्थिर हो जाय वहाँ बैठ जाइए।

यह मनोमय चक्र नैमिषारण्य में बिलकुल शांत हो गया। ऋषि वहाँ बैठ गये। भक्ति में साथ दे, ऐसी सात्विक भूमि में ऋषि बैठे हुए हैं। गोमती गंगा के तट पर नैमिषारण्य की यह शांत

भूमि है, जो हृदय को द्रवित करती है। ऋषि वर्ग वहाँ ब्रह्म सत्र करने बैठे हैं। ब्रह्म सत्र के प्रधान आचार्य शौनक मुनि हैं।

इस ब्रह्म सत्र में सूतजी पधारते हैं। सबने सूतजी का सम्मान किया। प्रधान आचार्य शौनक मुनि ने सूतजी से एक सुन्दर प्रश्न पूछा है–

अज्ञानध्वान्तविध्वंसकोटिसूर्यसमप्रभ। सूताख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम्।

(श्रीमद्भागवद् माहात्म्य १-४)

जो हरे अज्ञान को हे सूत! हर ले हृदय-तम।
कान को जो लगे अमृत-सम, हरे सब कुछ विषम।।
कोटि सूर्यों की विभा-सा है प्रभाव सुखद महा।
सुनायें वह कथा का मृदु सार, मन हर्षित अहा!

आज तक बहुत सी पुस्तकें पढ़ी हैं, बहुत सी कथाएँ सुनी हैं। अब कथा सुनने की इच्छा नहीं है। सर्व कथाओं का सारतत्त्व क्या है, यही हमें बतलाइये। कितने ही लोग पुस्तक पढ़ते हैं, उनका शब्द-ज्ञान बढ़ता है; पर वे शान्ति से बैठ कर भक्ति नहीं करते हैं। जिनका शब्द-ज्ञान बढ़ता है वे चर्चा भी करते हैं, उनका सूक्ष्म अभिमान भी बढ़ता है। मैं सब कुछ जानता हूँ। मैंने अनेक पुस्तक पढ़ी हैं। प्रत्येक पुस्तक में मतभेद होता है। साधारण व्यक्ति का लिखा हुआ नहीं पढ़ना चाहिए। साधारण व्यक्ति में बहुत से दोष होते हैं। जिन ऋषियों को परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन हुए हैं, जिन ऋषियों को प्रभु का साक्षात्कार हुआ है। उन ऋषियों का हृदय शुद्ध है। उनकी लिखी हुई पुस्तकें पढ़नी चाहिए। साधारण व्यक्ति की लिखी पुस्तकों में उसकी बुद्धि का दोष भी आता है। इससे भागवत में भी आज्ञा दी गई है कि जिसको भक्ति में आगे बढ़ना है, उसको साधारण व्यक्ति की लिखी पुस्तकें नहीं पढ़नी चाहिए। बहुत-सी पुस्तकों को पढ़ने के स्थान पर शांति से बैठ कर भगवान् के नाम का जप करना अधिक अच्छा है।

ब्रह्म सत्र में, ऋषियों को अब कथा नहीं सुननी है, उनको कथा का सारतत्त्व सुनना है। ये सब ऋषि श्रीबालकृष्ण के सेवक हैं। उनको बालकृष्ण का स्वरूप बहुत प्रिय है। लाला की सेवा करते हैं, श्रीकृष्ण का स्मरण करते हैं। इससे ये ऋषि श्रीकृष्ण जैसे हुए हैं। आप जिनकी सेवा करेंगे, जिनका स्मरण करेंगे उनके सामने होंगे। लाला को माखन-मिश्री प्रिय है। लाला को और कुछ नहीं भाता है। माखन, दूध का सारतत्त्व है। श्रीकृष्ण की सेवा करने वाले वैष्णव सार-भोगी बनते हैं। सेर-दो सेर दूध पीने के स्थान पर एक-दो तोले माखन खाना अधिक अच्छा है। अधिक दूध पीने से वायु-विकार होता है, पेट भारी रहता है। एक-दो तोले माखन खाने से पेट हल्का रहता है। और शक्ति भी तुरन्त आती है।

शौनकजी कहते हैं– ऐसा सार-तत्त्व हमें सुनाइए कि जिससे भक्ति पुष्ट हो, ज्ञान-वैराग्य जाग्रत हो, भगवान् श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शन हों।

वेदान्त कहता है, परमात्मा के दर्शन आँख से नहीं होते हैं। देखने की शक्ति आँख के पास है और इस शक्ति को देने वाले ईश्वर हैं। जिन प्रभु ने आँखों को देखने की शक्ति दी है, वे आँखें भगवान् को देख नहीं सकतीं। वेदान्त का सिद्धान्त है-ईश्वर दृश्य नहीं है, ईश्वर द्रष्टा है। वेदान्त-दर्शन द्रष्टा का दर्शन है। वेदान्त कहता है कि जो दिखाई देता है, जो दृश्य है वह क्षण-क्षण में परिवर्तित होता है। जो दिखाई देता है वह दृश्यरूप है। परमात्मा दिखाई नहीं देते। चर्म चक्षु से कोई भी भगवान् के दर्शन नहीं कर सकता।

वैष्णव सिद्धान्त है; कि परमात्मा की बात सत्य है,परन्तु भक्ति-प्रेम जब अत्यधिक बढ़ता है तब भक्त द्रष्टा बनता है और भगवान् दृश्य बन जाते हैं। गोपियों का प्रेम इतना बढ़ गया कि परमात्मा को दृश्य होना पड़ा। भक्ति भगवान् को दृश्य बनाती है,भक्ति में ऐसी शक्ति है।

शौनकजी कहते हैं–आप ऐसा सारतत्त्व सुनाइए कि जिससे जैसा संसार दिखाई पड़ता है, वैसा ही परमात्मा का स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाई दे, परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन हों और ज्ञान-वैराग्य के साथ भक्ति जाग्रत हो ऐसा सारतत्त्व सुनाइए।

कृष्णप्राप्तिकरं शाश्वत् साधनं तद्वदाधुना।

इस श्लोक को ध्यान में रख कर वक्ता को कथा करनी चाहिए। कथा ऐसी करनी चाहिए कि कथा सुनने के बाद प्रभु में प्रेम बढ़े विषय में अरुचि आ जाय, पाप-कर्म छोड़ने को इच्छा जाग्रत हो और किये गये पाप के लिए हृदय से पश्चात्ताप प्रकट हो, कथा सुनने के बाद सर्व में परमात्मा के दर्शन हों, कथा सुनने के बाद स्वभाव में सुधार हो और नया जीवन प्रारंभ हो।

पाप-कर्म छोड़ने की इच्छा न होती हो, स्वभाव का सुधार न होता हो तो मान लीजिये कि मैंने कथा सुनी ही नहीं है, अथवा मैंने कथा सुनी है, पर महाराज को कथा करना आता ही नहीं था। महाराज ने बराबर कथा की हो, आपने कथा सुनी हो तो कथा सुनने के बाद स्वभाव में थोड़ा सुधार होगा ही और नये जीवन का प्रारंभ होगा।

शौनक मुनि ने सूतजी से प्रश्न पूछा है। सूतजी को आनंद आया-''आपने बहुत ही सुन्दर प्रश्न पूछा है। आप सब कुछ जानते हैं, आप सब प्रभु को प्रिय हैं। आप सब प्रभु के अंश हैं। मेरे श्रीकृष्ण मुझे अनेक रूपों में दर्शन देते हैं। आप सब श्रीकृष्ण के अनेक रूप हैं। वक्ता में दैन्य हो, वक्ता हृदय से दीन होकर, भगवान् के दर्शन और स्मरण करते हुए कथा सुनाने लगे तो कथा में प्रभु पधारते हैं। ''ये श्रोता नहीं हैं, मानव नहीं हैं, ये सब प्रभु के स्वरूप हैं। मैं भगवान् के सम्मुख

बैठा हूँ।'' वक्ता में अभिमान होगा तो उसकी कथा में प्रभु पधारेंगे ही नहीं। ''मैं कुछ विशेष जानता हूँ। इन सब को उपदेश दे रहा हूँ''- ऐसा अभिमान जब वक्ता में होता है। तब वह वक्ता प्रभु को प्रिय नहीं होता है। सूतजी में दैन्य है। सूतजी कहते हैं– आप सब प्रभु के लाड़ले हैं। आप सबको अधिक कथा सुनने की आवश्यकता नहीं है। कथा में जो कुछ कहना है वह आप कर रहे हैं। आचरण में रख रहे हैं। आपका जीवन दिव्य है, भक्तिमय है, फिर भी प्रेम-भाव से आपने प्रश्न पूछा है।

मम त्येतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः।
पुनामीत्यर्थेस्मिन्पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता।।

आप सब कुछ जानते हैं फिर भी अपने मन को पवित्र बनाने के लिए यथामति मैं आपको कथा सुनाऊँगा। संसार का वर्णन करने से जीभ रोती है। परमात्मा के मंगलमय स्वरूप के वर्णन से वाणी निर्मल होती है, मन विशुद्ध होता है। गंगा के तट पर शुकदेवजी ने परीक्षित राजा को जो कथा सुनाई थी, वही कथा मैं आपको सुना रहा हूँ। कलियुग के जीवों को कालरूपी तक्षक के मुख से छुड़ाने के लिए शुकदेवजी ने भागवत की कथा कही है। यह कथा अति दिव्य है और देवों को भी दुर्लभ है। शुकदेवजी महाराज अब कथा प्रारंभ करने ही वाले हैं, उसी समय स्वर्ग से अमृत का घट लेकर देव आये।

परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके।
सुधाकुम्भं गृहीत्वैव देवास्तत्र समागमन्।। (श्रीमद्भागवत माहात्म्य १-१३)

कथा सुनाने शुक बैठे जब सुधी परीक्षित राजा को।
सुधा-कुम्भ ले आये सुर तब ज्यों ले आये बाधा को।।

शुकदेवजी महाराज से देवों ने कहा कि यह अमृत-घट हम आपको देते हैं, इसको स्वीकार कीजिए और इसके बदले में हमें कथामृत दीजिए।

जहाँ अति संपत्ति है वहाँ अभिमान है। देव विवेक से वंदन करके बैठे होते तो शुकदेवजी महाराज कुछ बोलने वाले नहीं थे। देवों ने कहा- ''हम स्वर्ग का अमृत देते हैं।'' शुकदेवजी महाराज सोचने लगे कि इन लोगों ने सत्संग नहीं किया है। स्वर्ग का अमृत लेकर मैं कथा कहने लगूँ, तो ज्ञान के विक्रय का पाप मुझे लगेगा, ज्ञान का विक्रय बड़ा पाप है। इन लोगों में तो वाणी का विवेक भी नहीं है।

स्वर्ग का अमृत लेकर मैं क्या करूँगा? शुकदेवजी ने परीक्षित राजा से पूछा राजन्! आपको स्वर्ग का अमृत पीना है कि कथामृत का पान करना है? राजा ने कहा महाराज, मुझे समुचित रूप

से समझाइये कि स्वर्ग के अमृत को पीने से क्या होता है और कथा के अमृत-पान से क्या होता है? शुकदेवजी कहते हैं- स्वर्ग के अमृत को पीने से स्वर्ग का सुख मिलता है। सुख तो मिलता है पर साथ में वासना भी बहुत बढ़ जाती है। स्वर्ग के अमृत पान से पुण्य का विनाश होता है। कथामृत ऐसा दिव्य पान है कि पाप विकार और वासना का विनाश हो जाता है। कथामृत परमात्मा के चरणों में ले जाता है, स्वर्ग का अमृत काल के मुख में ले जाता है, जीव काल का ग्रास बनता है। स्वर्ग का अमृत पीकर कोई अमर नहीं हो सकता, कथामृत जीव को अमर बना देता है, दिव्य बना देता है। कथामृत जन्म-मरण के संत्रास से मुक्ति दिलाता है। राजा ने कहा मुझे स्वर्ग का अमृत नहीं पीना है। इससे तो वासना बढ़ती है। मुझे ऐसे अमृत की जरूरत नहीं है। मुझे कथामृत का दान दीजिये। शुकद्रेवजी ने देव्रों से कहा-''आप अपना अमृत लेकर स्वर्ग में पधारिये, स्वर्ग के अमृत की यहाँ किसी को भी जरूरत नहीं है''

न ददौ स कथामृतम्।

शुकदेवजी ने देवों को कथामृत नहीं दिया है। स्वर्ग के अमृत से भी कथामृत श्रेष्ठ है। सूतजी कहते हैं- ''जब गंगा तट पर शुकदेवजी ने कथा की, तब बड़े-बड़े ऋषि कथा सुनने बैंठे थे। मैं भी वहाँ गया था। आगे जाने की हिम्मत नहीं थी। मैं दूर से हाथ जोड़ कर खड़ा-खड़ा कथा सुन रहा था। एक बार कथा कहते-कहते शुकदेवजी महाराज की दृष्टि मुझ पर पड़ गई। उनको दया आ गयी। कृपा करके मुझे पास बुलाया। परीक्षितजी के पास मुझे बिठलाया। गंगा तट पर परीक्षित राजा के पास बैठ कर मैंने कथा सुनी है। कथा सुनने के बाद परीक्षित महाराज भगवान् के धाम में गये। तक्षक नाग के द्वारा डसे जाने के पूर्व ही वे विमान में बैठकर बैंकुण्ठ धाम पहुँच गये। तक्षक नाग का दंश शरीर में हो, इससे पूर्व ही दिव्य आत्मा परमात्मा के धाम में पहुँच गया। मैंने स्वयं अपनी आँखों से इसे देखा है।''

कदाचित् किसी को शंका होती होगी कि परीक्षित महाराज कथा सुनकर काल-तक्षक के डसने से पूर्व ही वायुयान में बैठकर स्वर्ग पहुँच गये, तो जब आजकल कई स्थानों में कथाएँ होती हैं तब किसी एक स्थान पर भी कोई वायुयान क्यों नहीं आता है?

वस्तुतः वहाँ तो कथा कहने वाले परमहंस शिरोमणि शुकदेवजी महाराज हैं, जिनको सारा संसार ब्रह्म स्वरूप दिखाई देता है। साधारण ज्ञान में जगत् और परमात्मा अलग-अलग रहते हैं। ज्ञान-निष्ठा परिपूर्ण हो जाने के बाद संसार का अस्तित्व नहीं रहता है। भगवान् ही रहते हैं। शुकदेवजी की ज्ञान-निष्ठा ऐसी थी। खुली आँखों से उन्हें संसार नहीं दिखलाई देता था, पर परमात्मा दिखाई देते थे। उन्हें कोई स्त्री नहीं दिखाई देती थी, न कोई पुरुष दिखाई देता था। उनकी

ब्रह्म दृष्टि स्थिर थी। शुकदेवजी अवधूत हैं, आशा-रहित हैं। वे वासना-रहित, माया-भ्रम-रहित, आत्मरत और तत्वनिष्ठ हैं। परमात्मा के स्वरूप में उनकी दृष्टि स्थिर है। परमहंस शिरोमणि यह कथा कहते हैं। जिनकी दृष्टि में स्त्री-पुरुष का भेदभाव नहीं है। कथा सुनने के लिए बैठे हैं परीक्षित महाराज। वे पृथ्वीं के सार्वभौम राजा हैं। पर मन से सम्पूर्ण त्याग करके, कथा में बैठे हैं। राजा ने सुना कि सातवें दिन मुझे तक्षक-नाग डसने वाला है और मैं मरण की शरण में ज़ाने वाला हूँ। उनको शाप था कि सातवें दिन उनकी मृत्यु होगी। पर राजा ने तो मान लिया कि आज ही मेरी मृत्यु हो चुकी है। संसार के सम्बन्ध छोड़कर, मन से सम्पूर्ण का त्याग कर परीक्षित राजा गंगा के तट पर शान्ति से बैठे हैं। वक्ता शुकदेवजी का आदर्श जीवन में ग्रहण करके जब कथा कहते हैं और श्रोता परीक्षित महाराज के सदृश कथा सुनते हैं, तब कथा में अद्‌भुत शक्ति आती है। जब वक्ता-श्रोता योग्य होते हैं तब सात दिन बहुत हैं। दीपक है, घी है, बाती है और दियासलाई है। सब कुछ तो तैयार है, तब दीपक जलाने में कितनी देर है? अरे, सद्‌गुरु और सद्‌शिष्य के लिये सात दिन तो बहुत हैं। शुकदेवजी के समान सिद्ध पुरुष मिल जाये और परीक्षितजी जैसे साधक परमात्मा के दर्शन के लिए अति उत्कंठित हों, तो ऐसे श्रोताओं को सात दिनों में मुक्ति मिल जाय, तो इसमें क्या आश्चर्य?

इस कथा में ऐसी महान् शक्ति है। कथा में आनन्द आता है। आप जितने समय तक कथा सुनते हैं उतने समय तक मुक्ति के समान ही आनन्द मिलता है। मंडप के बाहर जो होंगे उनको भले ही होली के सदृश अग्नि-ज्वाला की जलन की अनुभूति होती हो पर जो मंडप में बैठे हैं वे शांति से परमात्मा के नाम का जप करते हुए, कथा सुनते रहें तो उन्हें मुक्ति के सदृश ही आनन्द प्राप्त होगा। भागवत की कथा ऐसा नहीं कहती कि मृत्यु से ही मुक्ति होगी। भागवत की कथा, वक्ता विवेक से कहते हों, श्रोता सजग होकर सुनते हों तथा, जितने समय तक कथा होती रहे, उतने समय तक संसार को भुला दिया जाय तो इस प्रकार थोड़ा भी आनन्द मिले तो सार्थक है।

कथा की समाप्ति के बाद वायुयान नहीं आता है, तो यह अच्छा ही है। जिनके मन में विकार-वासना भरी हुई हैं, उनके लिये वायुयान नहीं आता है और शायद वायुयान के आने पर ऐसे व्यक्ति बैठने के लिए तैयार नहीं होंगे। जिसका मन लौकिक सुख में फँसा है वह बैकुण्ठ में नहीं जा सकता और शायद जाने का अवसर उत्पन्न हो तो उसे आनन्द नहीं होगा। एक भाई हमें कह रहे थे–"महाराज, आपको ऊपर जाना है, तो जाइए पर मुझे नहीं चलना है। मेरा लड़का अब विवाह करने वाला है और उसके बच्चों को गोद में लेकर खिलाने की मेरी तीव्र इच्छा है। अभी मुझे बैकुण्ठ में नहीं चलना है।" इसीलिये यह अच्छा ही है कि कथा-समाप्ति के साथ वायुयान

आता ही नहीं है। वायुयान आ जाय और एक-एक को जबरर्दस्ती उठाकर ले जाय तो लोग कथा सुनने के लिये जायेंगे ही नहीं। यह तो सब जानते हैं कि कथा सुनने के बाद घर जाना है, संसार-सुख भोगना है और इसीलिये ये सब कथा सुनने आते हैं।

जिसके मन में कोई विकार नहीं है, जिसका हृदय गंगाजल के समान शुद्ध है, जिसको भीतर से भक्ति का रस चढ़ा है वह जहाँ भी जाता है, वहाँ उसे मुक्ति प्राप्त होती है। वह जहाँ बैठेगा, वहाँ भूमि को बैकुण्ठ बनायेगा। जिसके मन में विकार-वासना है, उसे बैकुण्ठ में भी शान्ति नहीं मिलेगी। बैकुण्ठ में लौकिक सुख नहीं है। संसार का सुख जिसे मधुर लगता है, वह बैकुण्ठ में नहीं जा सकता और कदाचित् चला जाय तो वहाँ उसे अनुकूलता नहीं प्रतीत होगी।

सात ही दिनों में ज्ञान और वैराग्य जाग्रत करने के लिए यह कथा है। हमारे भीतर ज्ञान और वैराग्य हैं पर सोये हुए हैं। उन्हें जाग्रत करना है। ऐसा कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है जो सात दिन में मुक्ति दिला सके। सूतजी ने कहा– सात दिन में परीक्षित को जो कथा सुन कर मुक्ति मिल सकी, वही कथा मैं आपको सुनाता हूँ।

इस कथा के माहात्म्य का वर्णन कौन कर सकता है? सनत्कुमारजी ने नारदजी को यह कथा सुनाई थी।

एकदा हि विशालायां चत्वार ऋषयोऽमलाः।
सत्संगार्थं समायाता ददृशुस्तत्र नारदम्।। (श्रीमद्भागवत माहात्म्य १-२५)

सनक, सनन्दन आदिक ऋषि थे आये क्षेत्र विशाल में।
हो सत्संग, यह अभिलाषा, हृदय-भाव मणि-माला में।।
इतने में नारद ऋषि के दर्शन कर, पाया मोद अपार।
व्यग्र और आकुल ऋषि दीखे, मन में आया बड़ा विचार।।

सनक, सनन्दन सनातन और सनत्कुमार– ये चार महापुरुष विशाल क्षेत्र में सत्संग करने बैठे हैं। बद्रीनारायण की यात्रा जिन वैष्णवों ने की है, उनको मालूम ही है कि जब ठाकुरजी की जय बोली जाती है, तब 'बद्रीविशाललाल की जय'–ऐसा भी बोला जाता है। विशाल राजा सूर्यवंश में प्रकट हुए हैं। उन्होंने वहीं तप करके नारायण के दर्शन किये। प्रभु ने कहा, 'मांग'। तब राजा ने कहा–"महाराज, आपके दर्शन-लाभ के बाद क्या माँगू? इतना ही माँगना चाहता हूँ कि सारा दिन आपके दर्शन करता रहूँ– आपका स्वरूप मेरी दृष्टि से दूर न हो। प्रभु ने आज्ञा दी–तुम्हारी कोई इच्छा नहीं है पर मेरी इच्छा है कि तुम माँगो और मैं तुम्हें दूँ।" विशाल राजा ने कहा–'आप इस तपोभूमि में अखण्ड रूप से विराजिये और यहाँ जो आते हैं, उन्हें आप शीघ्र दर्शन दीजिये।' राजा ने हमारे सबके लिए यह सब माँगा है।

जिसका मन विशाल है, उसका हृदय भी विशाल होता है। कई लोगों के पास विशाल बंगला होता है पर मन विशाल नहीं होता। प्रभु किसी का मकान नहीं देखते, प्रभु हृदय देखते हैं। जिसका मन विशाल है, उसको किसी सुख के भोगने की लालसा नहीं होती है। वे सन्त परमात्मा के दर्शन करना चाहते हैं। प्रभु ने राजा से कहा– बेटा, तेरा नाम विशाल है, तेरा हृदय भी विशाल है। आज से इस क्षेत्र का नाम भी विशाल क्षेत्र होगा।

सनकादि ऋषि विशाल क्षेत्र में विराजे हैं। घूमते-घूमते देवर्षि नारद जी वहाँ पधारे। सनत्कुमारों ने नारदजी का स्वागत किया। आज नारदजी उदास दिखाई देते हैं। सनत्कुमारों को आश्चर्य हुआ श्रीहरि के सेवक कभी उदास नहीं होते। वैष्णव सर्वकाल ऐसा अनुभव करते रहते हैं कि प्रभु का मुझ पर अनुग्रह है, कृपा है। प्रभु जो कुछ कर रहे हैं, मेरे कल्याण के लिये ही कर रहे हैं। मैं प्रभु का हूँ। अरे! प्रभु तो नास्तिक का भी बुरा नहीं करते हैं। संसार में कई जीव ऐसे भी हैं, जो कहते हैं–'हम ईश्वर को नहीं मानते हैं।' भगवान् कहाँ हैं? मुझे सेवा-पूजा की फ़ुरसत नहीं है। भगवान् कहते हैं–'तुम मुझे नहीं मानते पर मैं तुम्हें मानता हूँ।' भगवान् सबको मानते हैं। वे नास्तिक को भी मानते हैं। उससे भी प्रेम करते हैं। नास्तिक का वे बुरा भी नहीं करते हैं। आप सब वैष्णव हैं, प्रभु को प्रिय हैं। आपके जीवन-धन आपके भगवान् हैं। प्रभु में विश्वास रखिए। अपने जीवन में सुख-दुःख का, मान-अपमान का प्रसंग उत्पन्न हो तो मन से ऐसा निश्चय कीजिये कि प्रभु ने अच्छा ही किया। मेरे प्रभु गलत करते ही नहीं हैं। कोई मनुष्य गलत कर सकता है पर प्रभु गलत नहीं कर सकते। मैं भगवान का हूँ।

हरि करे मम हित के लिये, ऐसा भरोसा है सदा

वैष्णव सदैव शान्त और प्रसन्न रहते हैं। सनत्कुमार नारदजी से पूछते हैं– आप वैष्णव हैं, तब–

कुतश्चिंतातुरो भवान्

चिन्ता किस लिए कर रहे हैं? उदास क्यों हैं नारदजी ने कहा,–मैं तो आनन्द में ही हूँ। मुझे कोई दुःख नहीं है पर मेरा देश आज दुःखी है, इसलिये मुझे दुःख हो रहा है। नारदजी महाराज समाज सुधारक सन्त हैं। उनकी इच्छा है कि सब सुखी हों। कोई किसी की बुराई की इच्छा न रखे। कोई भूखा न रहे। सबका कल्याण हो। सब प्रभु की भक्ति करें, परमात्मा की शरण में रहें। नारदजी की ऐसी भावना है। इसलिए ही नारदजी संसार में घूमते रहते हैं। नारदजी ने कहा कि लोग सच नहीं बोलते हैं। झूठ बोलते हैं। जीवमात्र पेट के पीछे पड़े हैं।

सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते।
उदरम्भरिणो जीवा वराकाः कूटभाषिणः॥

मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः।
पाखण्डनिरताः सन्तो विरक्ताः सपरिग्रहाः॥ (श्रीमद्भागवत माहात्म्य १-३१-३२)

सत्य, शौच, तप डूब गये सब, दान-दया का नाम नहीं।
लगे पेट भरने सब, छल-झूठ छोड़ कुछ काम नहीं॥
मन्द-बुद्धि आलसी हुए, कलि का प्रभाव दे दुःख अपार।
तथाकथित सब सन्त हुए पाखण्डी, करते मिथ्याचार॥

कलियुग में स्वच्छता दिखलाई देती है पर पवित्रता नहीं है। सबको भोग की इच्छा होती है। सच्चे सुख की पहचान नहीं हो रही है। व्यवहार में प्रपंच बढ़ा है। इससे किसी को शान्ति नहीं है।

प्रपंच करने वाला अशान्त रहता है, भले ही वह बंगले में रहता हो। नारदजी दुःख के कारण बतलाते हैं—ज्ञान का बहुत विक्रय हो रहा है, इससे ही दुःख बढ़े हैं। अन्न का विक्रय भी होने लगा है—

अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजातयः।
कामिन्यः केशशूलिन्यः सम्भवन्ति कलाविह॥ (श्रीमद्भागवत माहात्म्य १-३६)

बिकता अन्न घोर कलियुग में, बिकता वेद-भाव इसमें।
कामिनि का शरीर बिकता है, धन का लक्ष्य-भान इसमें॥

अन्न-विक्रय होने लगा। आप कहेंगे—महाराज! हमने अन्न का विक्रय कहीं किया है? अन्न विक्रय होटलों में भले ही होता रहे पर" भोजन पाने वाला थोड़ा भी काम कर दे, तो अच्छा है, ऐसी इच्छा रखकर भोजन देने वाला अन्न-विक्रय करता है और उसे अन्न-विक्रय के समान ही पाप लगता है। सनातन धर्म की ऐसी मर्यादा है कि भोजन देने वाला भोजन पाने वाले को रुपया देता है और वंदन भी करता है। पर बाद में अन्न का विक्रय होने लगा और इससे धरती माता अन्न-रस निगलने लगी। ज्ञान का विक्रय होने लगा, इससे ज्ञान अब मस्तिष्क में न रह कर पुस्तकों में ही रहने लगा है। स्त्रियों में स्वेच्छाचार बहुत बढ़ने लगा है। स्वेच्छाचार से दुराचार उत्पन्न होता है। सदाचार रहा ही नहीं है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि स्त्रियों का स्वतन्त्र होकर घूमना अच्छा नहीं है। स्त्री जब बाल्यावस्था में माता-पिता के अधीन रहती है, युवावस्था में पतिदेव के अधीन रहती है और वृद्धावस्था में पुत्र के आश्रय में रहती है, तभी अच्छा रहता है। स्त्री बहुत स्वतन्त्र होकर घूमती है, तब बिगड़ती है। ऐसी स्त्री दुःखी होती है।

नारदजी ने दुःख का कारण दिखा कर कहा—घूमते-घूमते मैं एक बार वृन्दावन में पहुँचा। वहाँ एक युवती रो रही थी। उसके आगे दो मूर्च्छित पुरुष पड़े थे। उस स्त्री ने मुझे बुलाया। मुझे

आश्चर्य हुआ। मैंने सोचा कि कोई दुःखी और भयभीत स्त्री है। उसका दुःख दूर करूँगा। मैं उसकी मदद करूँगा परन्तु यह है कौन? उस स्त्री के साथ बातें करने में संकोच होने लगा। धरती पर दृष्टि रखकर मैं खड़ा रहा। सनातन धर्म की मर्यादा है, बिना कारण पुरुष किसी स्त्री की ओर ताके नहीं और स्त्री भी पुरुष की ओर देखे नहीं। स्त्री ने मुझ से कहा–

भोः भोः साधो क्षणं तिष्ठमचिंचतामपि नाशय।

ठहरो साधु, जरा तुम ठहरो मम चिन्ता हरते जाओ।।

महाराज, आप संत से लगते हैं। आपके दर्शन से मुझे शांति मिली है। संतों का समय बहुमूल्य होता है। मैं अधिक समय नहीं माँग रही हूँ। एक क्षण ही माँग रही हूँ। हमारे शास्त्रों में लिखा है ''भजन में, कथा कीर्तन में बार-बार जाना योग्य है पर साधु-संतों को बार-बार मिलने जाना-योग्य नहीं है। संत परमात्मा में तन्मय होने का यत्न करते हैं। संत निरंतर भक्ति में रहने की इच्छा करते हैं। संसारी जीव संत से जब बार-बार मिलने जाते हैं और संत का समय लेते हैं, तब उनकी भक्ति में विक्षेप होता है।

मैंने जब पूछा–''आप कौन हैं?'' तब उस स्त्री ने मुझे कथा सुनाई–महाराज मेरा नाम भक्ति है। ज्ञान और वैराग्य मेरे दो पुत्र हैं। ये वृद्ध हो गये हैं। मूर्च्छा में हैं। द्रविड़ देश में मेरा जन्म हुआ है। कर्नाटक में मैं बड़ी हुई हूँ। महाराष्ट्र में कहीं-कहीं मुझे सम्मान मिला है। गुजरात में मेरी स्थिति बिगड़ गई है। द्रविड़ देश भक्ति महारानी का पीहर है। श्रीशंकराचार्य स्वामी, श्रीमहाप्रभुजी आदि सब आचार्य दक्षिण भारत में प्रकट हुए हैं। अवतारों का प्राकट्य उत्तर भारत में हुआ और दक्षिण भारत में आचार्य प्रगट हुए हैं। दक्षिण में भक्ति महारानी प्रकट हुई हैं। कर्नाटक में उन्हें पुष्टि मिली है, उनकी वृद्धि हुई है। आचार और विचार जहाँ शुद्ध होते हैं, वहीं भक्ति पुष्ट होती है। सदाचार नींव है। सद्विचार बँगला है। नींव मजबूत नहीं होगी तो विचार स्थिर नहीं रहेंगे।

४– आचार प्रभवो धर्मः

सदाचार के पालन से बुद्धि में बुरे विचार नहीं आते हैं। मन-बुद्धि को पवित्र रखने की इच्छा हो तो सदाचार को छोड़िये ही नहीं। सदाचार अर्थात् शास्त्रानुसार आचार।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणस्ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

क्या करना और क्या नहीं करना–ऐसा मन से मत पूछिये शास्त्र से पूछिये। जब से परदेशी लोगों से सम्बन्ध बढ़ा है, तब से सदाचार नहीं रहा। हमारा भारत देश ऋषियों का देश है। आपका जन्म किसी ऋषि-वंश में हुआ है। परदेश की नकल मत कीजिए। जहां सदाचार नहीं है वहाँ सद्विचार स्थिर नहीं होता। आचार-विचार दोनों जहाँ शुद्ध होते हैं वहाँ भक्ति पुष्ट होती है।

भक्ति महारानी कहती हैं–''गुजरात में मैं जीर्ण हुई। साथ ही कलियुग में मेरी स्थिति बिगड़ गई।'' जीवन में भोग प्रधान बना। काम-सुख प्रमुख हुआ। शरीर-सुख मुख्य माना गया। जीवन अर्थ-प्रधान और काम-प्रधान बन गया और इससे भक्ति छिन्न-भिन्न हो गई। शांति से सोचने पर प्रतीत होता है कि यह हमारे जीवन की ही कथा है। मनुष्य के जीवन में काम-सुख प्रमुख बना है पैसा प्रधान बना है और यों भक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी है। ज्ञान-वैराग्य की किसी को जरूरत ही प्रतीत नहीं होती है। कोई शांति से सोचता ही नहीं कि मैं कौन हूँ? मैं क्यों जी रहा हूँ? मुझे कहाँ जाना है? कलियुग के लोग ज्ञान-वैराग्य की उपेक्षा कर रहे हैं। इससे ज्ञान-वैराग्य मूर्छित हैं। भक्ति कहती है कि वृन्दावन में आकर मैं पुनः नवयुवती हो गयी हूँ पर मेरे ये दोनों पुत्र मूर्च्छा में हैं।

भक्ति महारानी को नारदजी आश्वासन देते हैं–''मैं इसका उपाय सोच रहा हूँ। आपके लिये मैं यत्न करूँगा। ज्ञान-वैराग्य के साथ में मैं भक्ति को जगाऊँगा, भक्ति का प्रचार करूँगा।'' नारदजी ज्ञान-वैराग्य को जाग्रत करने का यत्न कर रहे हैं। वेदों के अनेक पारायण कर रहे हैं। गीता-पाठ कर रहे हैं। ज्ञान-वैराग्य प्रत्येक के भीतर हैं। प्रत्येक के भीतर भक्ति के बीज पड़े हुए हैं। इस संसार में कोई अभक्त नहीं है। जो ऐसा कहते हैं कि मैं नास्तिक हूँ, ईश्वर में मेरी श्रद्धा नहीं है, वे भी भक्त हैं। उनके हृदय में भी, सूक्ष्म रूप से भक्ति पड़ी है। उन्हें जब दुःख होता है, वे भगवान् को स्मरण करते हैं, प्रार्थना करते हैं। प्रत्येक के भीतर भक्ति है पर भक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी है। ज्ञान-वैराग्य मूर्च्छित हो गये हैं। हमारे ही जीवन की यह कथा है। वेदांत के अध्ययन से पाप भस्म हो जाते हैं। मन निर्मल होता है। यद्यपि वेद का अर्थ शीघ्र समझ में नहीं आता है। वेद की भाषा अति कठिन है, वेद का अर्थ अत्यन्त गूढ़ है, तथापि वेद के अध्ययन से कभी-कभी ज्ञान-वैराग्य जाग्रत होते हैं, पर पुनः वे मूर्च्छित हो जाते हैं। मानव जीवन में कभी-कभी ऐसे प्रसंग आते हैं, जब ज्ञान-वैराग्य जाग्रत हो जाते हैं। किसी की अन्तिम यात्रा में जाने पर, जलती हुई चिता को देखकर कभी ज्ञान-वैराग्य जागते हैं। कलियुग का मनुष्य तो ऐसा हो गया है कि उसे श्मशान में भी वैराग्य जाग्रत नहीं होता है। कई लोग श्मशान में भी चाय मँगवाने लगे हैं। श्मशान में वैराग्य जाग्रत होता है, ऐसा हमारे ग्रंथों में लिखा हुआ है। उसे श्मशान-वैराग्य कहते हैं। जीवन में जब कभी-कभी ज्ञान-वैराग्य जाग्रह होते हैं तब वे पुनः मूर्च्छा में भी पड़ जाते हैं। मनुष्य जब दुःखी हो जाता है, तब उसमें थोड़ा वैराग्य जाग्रत होता है। अति दुःख में भीतर से ज्ञान का स्फुरण होता है और थोड़े-से सुख की प्राप्ति के साथ ज्ञान-वैराग्य पुनः मूर्च्छित हो जाते हैं।

नारदजी ने ज्ञान-वैराग्य को जाग्रत करने के अनेक प्रयत्न किये। वेदों के अनेक पारायण किये, पर उन्हें सफलता नहीं मिल रही थी। तब परमात्मा ने आकाशवाणी के द्वारा नारदजी से कहा—"अपनी इच्छा के अनुसार किसी संत से पूछकर उनकी आज्ञा के अनुसार कोई सत्कर्म कीजिए।" साधु-संत जो कुछ कहते हैं, अनुभव प्राप्त करने के बाद कहते हैं। अनुभव का ज्ञान आपको किसी पुस्तक से नहीं मिल सकता। किसी संत से पूछिये, संत की आज्ञा के अनुसार साधन कीजिये।

नारदजी ने सबसे पूछा कि ज्ञान-वैराग्य के साथ भक्ति को जाग्रत करने का कोई रास्ता दिखाइए—परन्तु किसी से कोई मार्गदर्शन नहीं मिला। नारदजी ने बद्रिकाश्रम में सनत्कुमारों को सारी कथा सुनाकर, वही प्रश्न किया। सनत्कुमारों ने कहा कि आप भागवत की कथा कीजिए। आपकी इच्छा पूर्ण होगी। ज्ञान-वैराग्य के साथ भक्ति जाग्रत होगी। यह कथा बहुत मधुर है। इस कथा का श्रवण कीजिए। इससे प्रेम जाग्रत होता है। संसार में अरुचि आ जाती है। पाप भस्म हो जाते हैं। ज्ञान-वैराग्य के साथ वहाँ भक्ति प्रकट होती है। आप भागवत की कथा कीजिए। नारदजी ने कहा कि भागवत में वेद का अर्थ भरा हुआ है। मैंने तो वेदों के अनेक पारायण किये हैं पर कोई परिणाम सामने नहीं आया है। सनत्कुमारों ने कहा कि वेद से ही भागवत निकली है फिर भी भागवत में वेदों से अधिक, दिव्य शक्ति है। दूध से घी उत्पन्न होता है। जब दूध नहीं होता है तब घी उत्पन्न नहीं हो सकता है। पर दूध से अधिक दिव्य शक्ति घी से मिलती है। दो तोले घी होता है तो दीपक जलता है परन्तु दो मन दूध होता है, तब भी वह नहीं जल सकता। भागवत सर्व वेदों में है और भागवत सर्व वेदों का सार भी है—

वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा। (श्रीमद्भागवत माहात्म्य २-६७)

वेद और उपनिषद्-सार की गन्ध भरी है जिसमें।
कथा भागवत की आनन्द-सुधा न भरे किस-किस में।।

वेद-उपनिषद् की भाषा कठिन है। भागवत में व्यासजी ने वेदांत के सिद्धांत ही दिये हैं परन्तु कठिन सिद्धांतों को दृष्टांतों के द्वारा रोचक बनाकर व्यासजी ने भागवत की है। भागवत सर्व का सार है। भागवत की कथा ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को बढ़ाने वाली है। सात्विक भाव जाग्रत करने में भूमि का महत्वपूर्ण योगदान होता है। आप पवित्र गंगा-तट पर विराजिये और भागवत की कथा सुनिये।

सनत्कुमार नारदजी के साथ गंगा-तट पर आनंद घाट पर आये हैं। गृहस्थ के बंगले में कथा हो, किसी साधारण भूमि में कथा हो और गंगा-तट की पवित्र भूमि में कथा हो, उसमें बहुत अंतर

रहता है। साधारण भूमि में सात्विक भाव तुरन्त जाग्रत होते हैं। पवित्र भूमि में जहाँ किन्हीं दिव्य महापुरुषों को परमात्मा के दर्शन हुये हैं। जहाँ किसी महापुरुष ने भगवान् की भक्ति की हो, वह भूमि भी दिव्य होती है। वहाँ सात्विक भाव जागते हैं। आनंद वन ऐसा ही दिव्य वन है।

यत्समीपस्थजीवानां वैरं चेतसि न स्थितम्।

संग रहें सब प्राणी, वैर-कुभाव विलीन हुए सब॥

आनन्द वन ऐसी ही पवित्र भूमि है कि जहाँ पशु-पक्षी वैर भूल जाते हैं। महापुरुष काशी को आनंद वन कहते हैं। गंगा-तट पर कथा होती है। सनत्कुमार वहाँ पधारे हैं। देवों को, ऋषियों को निमंत्रण भेजा गया है। गंगाजी पधारी हैं, यमुनाजी पधारी हैं, सरस्वतीजी भी पधारी हैं। बड़े-बड़े ऋषि पधारे हैं। कुछ आलस्य में बैठे रहे, कुछ अभिमान में बैठे रहे कि भागवत तो मैंने पढ़ लिया है। मुझे सब कुछ मालूम है–

गुरुत्वात्तत्र नायातान्भृगुः सम्बोध्य चानयत्।

(श्रीमद्भागवत माहात्म्य ३-१७)

मिथ्या गौरव के प्रसाद ने जिनको बाँधा।

भृगु ने उनको बोध दिया, लाकर फिर साधा॥

ऐसे कुछ ज़ो कथा में नहीं आये हैं, सब के घर, एक-एक के घर भृगु ऋषि जाते हैं और उन्हें प्रेरणा देते हैं। कहते हैं कि कथा में चलिये, आपको फुरसत न हो तो एकाध घण्टे के लिये बैठिये। फिर चले आइयेगा। भृगु ऋषि ने सोचा कि मेरी प्रेरणा से भी कथा में जायेंगे, कथा सुनेंगे, कथा में प्रभु के नाम का स्मरण करेंगे, तो उनका कल्याण होगा और उनके पुण्य में मेरा भी हिस्सा रहेगा। अर्थ और काम के लिये कहने की या प्रेरणा देने की जरूरत नहीं होती, पर धर्म और मोक्ष के लिये प्रेरणा दिये बिना मनुष्य आगे नहीं बढ़ेगा। भृगु ऋषि एक-एक के घर जाकर कथा में आने के लिये आग्रह कर रहे हैं।

देवर्षि-महर्षि कथा में आकर बैठे हैं। सनत्कुमार व्यासासन पर विराजे हैं और अब कथा का प्रारम्भ करते हैं–श्री गोवर्धननाथजी की जय! कथा में आप भगवान् की जय कहेंगे तो आपको लाभ होगा। प्रभु की कभी भी पराजय नहीं हुई है और होगी भी नहीं। थोड़ा सोचने पर मालूम होगा कि मनुष्य का जीवन एक बड़े युद्ध जैसा है। माया और जीव का युद्ध चलता ही रहता है। माया जीव को परमात्मा के चरणों में जाने से रोकती है। माया जीव को समझाती है कि संसार बहुत सरस है। माया जीव को संसार में फँसा कर रखती है। माया की जीत होती है और जीव की पराजय होती है। माया मानव को मार देती है। मानव बहुत प्रेम-भाव से भगवान् की जय नहीं

कहता। प्रेम से भगवान् की जय कहने लगे तो मानव की पराजय नहीं होती है। आप अपनी जीत चाहते हैं तो जय कहिये–

जयशब्दो नमश्शब्दः शंखशब्दस्तथैव च।
चूर्णलाजाप्रसूनानां निक्षेपः सुमहानभूत्।। (श्रीमद्भागवत माहात्म्य ३-२१)

शंखानन्द की ध्वनि छायी, छाया जय-जय का नाद वहाँ।
नमस्कार कर, नमित सभी, लाया सौन्दर्य प्रसाद वहाँ।।

कथा के प्रारम्भ में जय-जयकार हुआ है। सनत्कुमार सावधान करते हैं। वे बतलाते हैं कि यह कथा अति मधुर है। इस कथा को प्रेम से सुनिये। कान से परमात्मा भीतर आते हैं। आप जिन्हें सुनते हैं, वे आपके मन में आते हैं। संसार को सुनेंगे तो संसार मन में आयेगा–

सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा।
यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत।। (श्रीमद्भागवत माहात्म्य ३-८५)

हृदय के सर में उतरे सदा, सुख-भरी यह भागवती कथा।
सुघर भाव लिये जो जन सुनें, हरि बसें उनके हिय सर्वदा।।

भक्ति में आँख और कान दो प्रमुख अंग हैं। आँख और कान बिगड़ जाते हैं, तब भक्ति में बहुत विघ्न आते हैं। मन पर खराब वस्तुओं का असर होता है। खराब शब्दों के सुनने के बाद मन खराब हो जाता है। इससे वेदों में आज्ञा दी गई है कि कोई खराब शब्द कानों में न आने पाये और कोई खराब चित्र आँखों को दिखाई न दे–

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनुभिरव्यशेम देवहितं यदायुः।।

यह कथा ऐसी मंगलमय है कि कथा-श्रवण से परमात्मा श्रीकृष्ण कान के द्वारा भीतर आते हैं। प्रभु का प्रवेश आँखों द्वारा, कानों के द्वारा हृदय में होता है। परमात्मा की कथा का प्रेम से श्रवण कीजिए तब परमात्मा का कानों के द्वारा भीतर प्रवेश होगा।

यह कथा अति दिव्य है। इस कथा के माहात्म्य का कौन वर्णन कर सकता है? जब भगवान् श्रीकृष्ण स्वधाम में पधारे; तब उन्होंने अपना दिव्य तेज भागवत में रखा, भगवान् स्वधाम पधारे ही नहीं हैं। भागवत के रूप में आज भी पृथ्वी पर वे विराजमान हैं। भगवान् सर्व के हृदय में विराजमान हैं। भगवान् भागवत के एक-एक श्लोक में हैं। भागवत भगवान् नारायण का दिव्य स्वरूप है–

तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः।
सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी।।

भागवत भगवान् की साक्षात् शब्दमयीं मूर्ति है। भागवत के श्रवण से, दर्शन से और पूजन से पापों का नाश होता है। चाहे कैसा भी पापी हो, भागवत की कथा सुन ले तो उसके जीवन में अवश्य सुधार होगा। यह कथा पाप को भस्म कर देती है।

जो शक्ति भगवान् में है वही दिव्य शक्ति इस भागवत शास्त्र में है। महापुरुषों ने तो ऐसा भी कहा है कि भगवान् से भी अधिक शक्ति भागवत में है।

बहुत-से जीव ऐसे होते हैं कि भगवान् के दर्शन करने पर भी अपने जीवन में सुधार नहीं ला पाते हैं। दुर्योधन ने द्वारकानाथ के दर्शन किये थे। द्वारकानाथ ने स्वयं दुर्योधन को समझाया था, फिर भी उसका सुधार नहीं हुआ। उसने प्रभु की बात नहीं मानी। दुर्योधन के सदृश कई जीवों ने भगवान् के साक्षात् दर्शन किये हैं, पर उनका सुधार नहीं हुआ है। वे भी भागवत की कथा सुन लें तो अपना जीवन सुधार सकते हैं।

यह कथा दिव्य है। श्रीकृष्ण भगवान् जब प्रत्यक्ष विराज रहे थे, तब कुछ थोड़े जीव उनकी शरण में गये। जो योग्य थे उनका उद्धार स्वयं प्रभु ने किया। पर जो योग्य नहीं थे, उन्होंने भगवान् के दर्शन तो किये पर उनमें सुधार नहीं हुआ। आज जब परमात्मा प्रत्यक्ष नहीं हैं, तब श्रीकृष्ण-कथा प्रत्येक के जीवन का कल्याण करती है। भगवान् से भी भागवत की कथा में अधिक शक्ति है। दुर्योधन, रावण जैसे दुष्ट भी कथा सुनकर परमात्मा के नाम का जप करने लग जायँ तो उनके जीवन में भी सुधार होगा। चाहे कैसा भी बड़ा पापी हो, इस कथा को सुनकर अपने पाप को भस्म कर सकता है। कथा पाप को भस्म कर देती है। पर एक ही शर्त से पाप भस्म होते हैं, कि कथा को सुनने के बाद पाप नहीं करने चाहिए। कई लोग कथा को सुनते हैं और पाप भी करते रहते हैं। जब पाप करते समय ऐसी अनुभूति होती है कि मैंने कथा में सुना था कि ऐसा पाप करना बहुत बुरा है, तब वे मन को मनाते रहते हैं कि कथा जब दूसरे स्थान पर होगी तब पुनः मैं सुन लूँगा और पाप को वे चालू रखते हैं। आप कथा में बैठे हैं। आपके पाप अब भस्म होने वाले हैं। मन से ऐसा निश्चय कीजिए कि अब मेरा नया जन्म हुआ। अब मैंने पाप-कर्म छोड़ दिये हैं। आज से मैं भगवान् का हुआ हूँ। अब पाप नहीं करूँगा। कथा नया जीवन देती है। कथा सुनने के बाद जो पाप छोड़ते हैं। प्रभु उन्हें क्षमा करते हैं।

दृष्टान्त के बिना किसी सिद्धान्त को बुद्धि ग्रहण नहीं कर पाती। अतः एक दृष्टान्त देता हूँ। तुंगभद्रा नदी के तट पर आत्मदेव नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसके घर में बहुत संपत्ति

थी, पर वह संतति के अभाव में दुःखी रहता था थोड़ा सोच कर देखिए तो पता चलेगा कि हम सब आत्मदेव जैसे हैं यह जीव परमात्मा का अंश है। आत्मा को देव बनना पसंद है। जिसका जीवन दिव्य है, जो परमात्मा से प्रेम करता है, वह देव बनता है। यह जीव तुंगभद्रा नदी के तट पर रहता है भद्र शब्द का अर्थ है कल्याण। बहुत ही कल्याण करने वाली नदी यह देह है। मानव-शरीर में रहने वाला जीवात्मा स्वयं अपने को और दूसरे को भी देव बना सकता है। ऐसी शक्ति प्रभु ने उसे दी है। देव बनने के लिए ही मानव का जन्म हुआ है। आत्मा को देव बनना पसंद है। नर को नारायण की शरण में जाना है। जीव को शिव बनना पसन्द है।

आत्मदेव की पत्नी का नाम है धुँधुली। धुँधुली का वर्णन महर्षि व्यासजी ने किया है। उनका कहना है कि धुँधुली हमारी बुद्धि में बसती है। मनुष्य की बुद्धि धुँधुली के समान है। कुतर्क करने वाली द्विधावृत्ति ही धुँधुली है। प्रायः बुद्धि संसार के विषय में सोचती रहती है। बुद्धि को अन्य की निंदा बहुत भाती है। वह अपने बारे में नहीं सोच सकती कि मैं कौन हूँ? मेरा असली वतन कहाँ है? बुद्धि का पति आत्मा है पर बुद्धि आत्म-स्वरूप के विषय में सोचती नहीं है।

मानव-बुद्धि धुँधुली के समान है। धुँधुली क्रूर है। जो बुद्धि काम-सुख के विषय में सोचती है, वह क्रूर बनती है, कपटी हो जाती है, पत्थर-सदृश कठोर हो जाती है। जब मानव थोड़ा-सा काम-सुख चाहता है, तब वह बहुत बुरा नहीं है, पर काम-सुख का चिंतन बहुत बुरा है।

लोकवार्तारता क्रूरा प्रायशो बहुजल्पिका।
शूरा च गृहकृत्येषु कृपणा कलहप्रिया।। (श्रीमद्भागवत माहात्म्य ४-१९)

बहुत बोलने वाली बुद्धि का पति जीवात्मा है। बुद्धि के साथ जीव का विवाह हुआ है। आत्मा और बुद्धि का संबंध हो जाने के बाद भजनानंदी किसी संत का सत्संग किया जाय तो विवेक-रूपी सत्पुत्र का जन्म होता है। संपत्ति से सत्पुत्र की प्राप्ति नहीं होती है। जब सत्संग करेंगे तब सत्पुत्र की प्राप्ति होगी। विवेक संपत्ति से नहीं मिलता। वह सत्संग से ही मिलता है। जो सत्संग नहीं करते हैं, उन्हें विवेक-रूपी सत्पुत्र की प्राप्ति नहीं होती है।

आत्मदेव ने संपत्ति का उपभोग किया पर सत्संग नहीं किया और इस से वह दुःखी हुआ और एक दिन आत्म हत्या करने के लिये नदी के तट पर गया। एक संन्यासी महात्मा घूमते-घूमते वहाँ आ पहुँचे। उनका नियम था कि वे झोली में मधुकरी लेने जाते और पाँच घरों से मधुकरी माँगकर लाते। मधुकरी का अन्न गंगाजी में डालते। अन्न का स्वाद जल देवता को समर्पित करते और फिर वही स्वाद-विहीन अन्न दिन में एक बार स्वयं ग्रहण करते। वस्तुतः स्वाद में जिसका मन लगा रहता है, उसे भक्ति-रस की प्राप्ति नहीं होती है। संन्यासी की दृष्टि आत्मदेव पर पड़ी।

उन्होंने आत्मदेव से कहा–''दोपहर हो गयी है, आप भूखे दीख पड़ते हैं। थोड़ा प्रसाद ग्रहण कीजिए। फिर मैं आपके सुख-दुःख की बात सुनूँगा और मुझसे जो होगा, वह अवश्य करूँगा। आप थोड़ा प्रसाद लीजिए। आत्मदेव ने कहा–''महाराज! घर में अन्न तो बहुत भरा पड़ा है पर खाने वाला कोई नहीं है, इससे आत्महत्या के लिए आया हूँ।''

संन्यासी महाराज आत्मदेव को समझाने लगे–''तुम आत्महत्या करना चाहते हो, पर आत्महत्या बहुत बड़ा पाप है। तुम आत्महत्या मत करो। तुम्हारे घर में किसी लड़के का जन्म नहीं हुआ, तो इसमें क्या बुरा है? परमात्मा जिस स्थिति में रखते हैं, उसी में संतोष मानना चाहिए। भक्ति इसी प्रकार हो सकती है। जिसको प्राप्त स्थिति में सन्तोष नहीं है, वह भक्ति नहीं कर सकता। लड़के की प्राप्ति से सुख प्राप्त नहीं होता है। आपका लड़का लायक है; तब घर का विचार मत कीजिए। तब आप अधिक भक्ति कीजिए। ''मैं जितनी भक्ति कर रहा हूँ बहुत कम है।'' ऐसा सोच कर भक्ति कीजिए। लड़का योग्य नहीं है तो भी प्रभु की कृपा मानिये। कई लोग ऐसे हैं कि लड़का प्राप्त न होने पर मन में ग्लानि का अनुभव करते हैं और मन-ही-मन जलते रहते हैं। अरे! अपना कल्याण जब आप स्वयं नहीं कर सकते हैं, तब लड़का क्या करेगा! प्रायः माता-पिता अपने पुत्र के लालन-पालन में पढ़ाने में और विवाह आदि में अपना अधिकांश जीवन पूरा कर देते हैं। मनुष्य अपने लिए कुछ नहीं कर पाता और पुत्र भी कुछ नहीं करता। संन्यासी महात्मा आत्मदेव को समझाते हैं–''तुम्हारे कोई लड़का नहीं है तो क्या बुरा है? अपना कल्याण तुम्हें स्वयं करना है। आत्मदेव कहता है–''महाराज! पिंडदान देनेवाला तो कोई होना चाहिए न? संत कहने लगे– ''पिंडदान तुम्हें ही देना है। कलियुग के पुत्रों को अपने माता-पिता के श्राद्ध करने की फुरसत ही नहीं है। कलियुग के पुत्र श्राद्ध करने वाले नहीं हैं, लड़का श्राद्ध करेगा और मेरा उद्धार होगा, ऐसी आशा रखने का यह युग नहीं है। अपना श्राद्ध आप स्वयं कीजिए। अपना पिंडदान अपने हाथ से कीजिए।

इस शरीर को पिंड कहते हैं। शरीर पिंड परमात्मा को समर्पित कीजिए। वैष्णव तुलसी की कण्ठी पहनते हैं। वैष्णव ऐसी भावना रखते हैं कि यह शरीर मैंने श्रीकृष्ण भगवान् को अर्पण कर दिया है। यह शरीर परमात्मा का हुआ। भोग के लिये यह शरीर नहीं है। जिस वस्तु में तुलसी रखते हैं वह वस्तु कृष्णार्पण होती है। गले में तुलसी माला धारण करने का अर्थ होता है कि यह शरीर श्रीकृष्णार्पण कर दिया है। अब शरीर का उपयोग भगवान् के लिए हो सकता है, भोग के लिए नहीं हो सकता। जो निरंतर परोपकार करता है, भक्ति करता है, उसे मुक्ति मिलती है। चावल के या आटे के पिंड से मुक्ति मिलती है क्या? हमारे शास्त्रों में लिखा है कि श्राद्ध से सद्गति मिलती

है। प्रायः ऐसा होता है कि जीवात्मा वासना में लीन रह कर जीव छोड़ता है। किसी की वासना अन्न में तो किसी की धन में रहती है। वासना से मृत्यु बिगड़ती है। उसके लिए श्राद्धादिक कर्म करने से सद्‌गति मिलती है, परन्तु मुक्ति नहीं मिलती है। जन्म-मरण के त्रास से जीव मुक्त नहीं हो सकता है। जन्म-मरण के त्रास से वही मुक्त हो सकता है जिसकी वासना नष्ट हुई हो। जीव को स्वयं अपनी आत्मा का उद्धार करना पड़ता है। जीव स्वयं अपना उद्धार नहीं करेगा तो कौन करेगा? मनुष्य स्वयं अपना श्राद्ध नहीं करेगा तो पुत्रादि क्या करेंगे!

संन्यासी महात्मा आत्मदेव को समझाते हैं–''निश्चय कर लो कि अपना श्राद्ध मुझे स्वयं करना है।'' आत्मदेव कहता है,– ''महाराज, आपका उपदेश मुझे भाता नहीं है। मुझे पुत्र चाहिए। पुत्र होगा तो दीया जलायेगा।'' महात्मा कहने लगे–''अरे! कलियुग के पुत्र दीया नहीं जलाते पर माता-पिता का दीया बुझा देते हैं। तुम्हारे भाग्य में पुत्र का सुख नहीं है। तुम दुःखी हो जाओगे।'' आत्मदेव कहने लगा–भले ही मैं दुःखी हो जाऊँ, पर मुझे पुत्र चाहिए। मेरे भाग्य में नहीं है तो फिर अपने भाग्य से मुझे पुत्र दीजिए। मैं आत्महत्या करने के लिए आया हूँ। मैं आपके समक्ष सिर पटक कर मृत्यु की शरण में जाऊँगा।''

संन्यासी जी को दया आ गयी। उन्होंने आत्मदेव को एक फल दिया और कहा–यह फल अपनी पत्नी को खिला देना। गर्भ रह जाने के बाद तुम दोनों पवित्र जीवन व्यतीत करोगे, निरंतर सत्कर्म करोगे तो उसका असर गर्भ पर भी होगा। बच्चा पेट में हो तभी से उसे अच्छे संस्कार देने चाहिए। हमारे शास्त्र में सगर्भा स्त्री के लिये बहुत से नियम बतलाये गये हैं। गर्भ पेट में आ जाय तब से सावधान रहियेगा। सगर्भा स्त्री के कार्य का असर बच्चे पर होता है। पति-पत्नी पवित्र जीवन व्यतीत करें, सत्संग करें तो पुत्र ज्ञानी होता है, लायक होता है। पुत्र लायक होगा तो सुख मिलेगा पर पुत्र लायक नहीं होता तो बहुत त्रास देता है।

आत्मदेव फल लेकर घर पहुँचा। पत्नी को फल खिलाया नहीं बल्कि हाथ में दिया। पत्नी ने कहा–''अभी मुझे फुरसत नहीं है मैं बाद में खा लूँगी।'' सत्संग में विवेक रूपी फल मिलता है। उसको ले जाकर पत्नी धुंधुली को खिलाइए। आज कथा में क्या सुना? परमात्मा के दर्शन होते हैं तो जीवन सफल होता है। कथा में सुना कि मंदिर में भगवान् के दर्शन करना साधारण दर्शन हैं–प्रत्येक मानव शरीर में भगवान के दर्शन करना असाधारण दर्शन हैं–कथा में जो सुनते हैं उसका मंन न कीजिए। विवेक-रूपी फल बुद्धि को खिलाइए। आत्मदेव ने धुंधुली को फल खिलाया नहीं पर हाथ में दिया। धुंधुली ने फल खाया नहीं। उसने सोचा–''अभी इस फल को खाने से गर्भ रहेगा और इससे घर का काम नहीं हो सकेगा।''

प्रसूतौ दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सहे। (श्रीमद्भागवत माहात्म्य ४-४७)

सगर्भा स्त्री को दुःख होता है। पुत्र से भी क्या सुख मिलता है? लौकिक सुख दुःख देता है। बीच में थोड़े से सुख का आभास होता है। वैराग्य को जाग्रत करने के लिये लौकिक सुख में कितने दुःख हैं, इसका वर्णन इस अध्याय में वर्णित है। ''संतान के लालन-पालन में माँ को बहुत सहना पड़ता है। मुझे सगर्भा नहीं होना है, मैं बाँझ ही अच्छी हूँ पर घर आने पर वे पूछेंगे तो क्या कहूँगी?'' धुंधुली की छोटी बहिन मिलने आयी थी। उसने बहिन से कहा, ''तुम्हारे जीजाजी यह फल लाये हैं और कहते हैं कि इस फल को खा जाओ, तो संतान होगी। मैं यह फल खाना नहीं चाहती। बहिन सलाह देती है-''यह फल तुम गाय को खिला दो, जो कुछ होगा गाय को होगा। तुम्हें कुछ भी नहीं होगा। मेरे पेट में गर्भ है। कुछ महीनों के बाद मैं तुम्हें बच्चा दे दूँगी। तुम आज से ही नाटक करना शुरू कर दो कि तुमने कल फल खाया, और तुम्हें गर्भ रह गया है। आत्मदेव तो भोले हैं। उन्हें कहाँ समझ है।'' बुद्धि की छोटी बहिन है मन। मन, बुद्धि को झूंठ मूठ समझा देता है। मन अनेक बार ठगता है। बुद्धि मन की सलाह लेकर दुःखी होती है। मन पर विश्वास रखने वालों को मन गड्डे में गिराता है, ठगता है। धुँधुली ने फल नहीं खाया। गाय को खिला दिया। धुँधुली ने कपट किया, नाटक किया कि उसके पेट में गर्भ रहा है। एक रात्रि में वह बहिन का पुत्र ले आयी और सुबह जाहिर किया कि उसे पुत्र हुआ है।

आत्मदेव स्नान करके पुत्र-दर्शन करने गये। बालक को देखकर उन्हें थोड़ी शंका हुई। यह बालक कल का जन्मा नहीं प्रतीत होता, यह तो दो-तीन महीने का प्रतीत होता है। धुंधुली आत्मदेव को समझाने लगी-''आप शंका मत कीजिए। यह संत के प्रसाद का बालक है, इसी से जन्म के साथ ही बड़ा हो गया है। मुझे जरा भी कष्ट नहीं हुआ। यह मेरा ही पुत्र है। विश्वास रखिये। मेरा नाम धुंधुली है। मेरी इच्छा के अनुसार पुत्र का नाम धुँधुकारी रखिये।''

संत की प्रसादी गाय माता के पेट में गई है। गाय ने बालक को जन्म दिया है। जिसकी देह मानव-सदृश है। कान गाय के समान हैं। आत्मदेव को आश्चर्य हुआ। सोचने लगे-''मेरे भाग्य का उदय हुआ है।'' गायमाता ने मानवी के समान बालक को जन्म दिया है। उस बालक का नाम गोकर्ण रखा गया।

गोकर्ण मंहान् ज्ञानी हुए और धुंधुकारी दुराचारी हुआ-

गोकर्णः पण्डितो ज्ञानी धुंधुकारी महाखलः।
स्नानशौचक्रियाहीनो दुर्भक्षी क्रोधवर्धितः।।
दुष्परिग्रहकर्ता च शवहस्तेन भोजनम्।। (४-६६-६७)

गोकर्ण महापण्डित ज्ञानी, है भजनानन्दी सन्त परम।
पर इधर धुंधुकारी खल है, स्नान-शौच से किया अलम्॥
शव के हाथों से भोजन ले, दूषित पदार्थ को करे ग्रहण।
वह क्रोधपूर्ण अति पाखण्डी, है क्रियाहीन, करता न भजन॥

शव का हाथ अर्थात् दुराचारी का हाथ। जो हाथ परमात्मा की पूजा नहीं करता जो हाथ परोपकार नहीं करता, वह हाथ शव के हाथ के सदृश है। सत्कर्म न करके जो खाना खाता है, उसका खाना शव के हाथ से खाना खाने के समान है। धुंधुकारी के लिये कहा गया है कि "शवहस्तेन भोजनम्" और वह ठीक से स्नान भी नहीं करता था।

हमारे शास्त्र में स्नान के तीन भेद माने गये हैं—ऋषि, स्नान, मानव-स्नान और राक्षस-स्नान। ब्राह्ममुहूर्त में—जब आसमान में तारे दिखाई देते हैं, तब पवित्र आसन में ध्यान कीजिए। जप कीजिए। आप ऋषि-सदृश होंगे। जब आसमान में तारे दिखाई देते हों तब आप स्नान करते हैं, तो वह है ऋषि-स्नान। जब आसमान में किसी भी तारे के दर्शन न होते हों, और सूर्यनारायण भी उदित न हुए हों, तब आप स्नान करते हैं, वह स्नान है मानव-स्नान। सूर्य उदय के बाद जो स्नान किया जाता है, वह स्नान राक्षसी-स्नान कहलाता है। सूर्यनारायण जब पधारते हैं, तब जिसके हाथ में दाँतुन रहती है, अखबार रहता है, वह व्यक्ति राक्षस है। वह सूर्यनारायण का अपमान करता है। उसके पाप के समान कोई पाप नहीं है। सूर्यनारायण बुद्धि के स्वामी हैं। सूर्यनारायण का अपमान करने से बुद्धि में खराबी आती है। सूर्यनारायण प्रत्यक्ष प्रभु हैं। अन्य देवों के दर्शन भावना से होते हैं पर सूर्यनारायण के लिए भावना की आवश्यकता नहीं है, वे प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं।

धुंधुकारी पंचेन्द्रियों में फँस गया है। नालायक पुत्र माता-पिता को रुलाता है। धुंधुकारी ने घर की सम्पूर्ण सम्पत्ति बर्बाद कर दी। पैसे के लिए वह माता-पिता को मारने भी लगा। आत्मदेव बहुत दुःखी हुआ है। गोकर्ण उन्हें समझा रहा है—

देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं, जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभंगनिष्ठं, वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः॥
धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्, सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिंतनमाशु मुक्त्वा, सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम्॥
एवं सुतोक्तिवशतोऽपि गृहं विहाय, यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः।
युक्तो हरेरनुदिनं परिचर्ययासौ, श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात्॥

(श्रीमद्भागवत माहात्म्य ४-७९/८०-८१)

पीप, अस्थि और मांस-भरी इस काया से मत मोह करो।
सुत से, पत्नी से, ममता रख, अपने जीवन में विष न भरो।।
क्षणभंगुर है यह विश्व सकल; क्षणभंगुर है जो दीख रहा।
वैराग्य-राग का रस पी लो, मन में भर लो शुभ भक्ति-प्रभा।।
लौकिकता का तुम त्याग करो, सन्तों की सेवा कर जाओ।
भोगों के चक्कर में पड़ कर, मन में कटुता मत भर लाओ।।
सेवा के सुख में लीन रहो, औरों के दोष न देखो तुम।
हे पिता! कथा प्यारे प्रभु की, संजीवनि है यह लेखो तुम।।
निज पुत्र-वचन सुनकर, गृह त्यागा आत्मदेव द्विजवर ने जब।
वन में पहुंचे, मनको जोड़ा, श्रीहरि के शुभ चरणों में तब।।

पिताजी! बहुत गई थोड़ी रही, अभी अपकी घर छोड़ने की इच्छा नहीं होती है? मृत्यु सवार है। काल धक्के लगा कर मारेगा, तब 'हाय-हाय' करके सब छोड़ना पड़ेगा। यह सब समझ कर अभी घर छोड़िये, इसमें क्या बुरा है?

आत्मदेव नदी-तट पर गये। वहां दिनभर भक्ति कर रहे हैं। प्रेमपूर्वक दशम्-स्कंध का पाठ करते हैं। ग्यारह घण्टे एक आसन पर बैठ कर शान्ति से पाठ करने से स्कन्ध पूर्ण होता है। अनुसन्धान के साथ, भावपूर्वक परमात्मा के दर्शन के साथ-साथ शरीर के अंगों को बिना हिला-डुला के पाठ कीजिए। जिसके सब अंग स्थिर हैं, वह परमात्मा के प्रिय हैं।

स्थिरैरंगैस्तुष्टुवाँस्तनुभिः

पाठ करते समय हाथ, पाँप, मस्तिष्क को हिलाने पर वह अधम पाठ कहलाता है। मैं अपने प्रभु के समक्ष बैठा हूँ। मैं जो कुछ बोल रहा हूँ, उसे मेरे प्रभु सुन रहे हैं। इस प्रकार भगवान् के दर्शन के साथ-साथ भगवान् के स्मरण के साथ-साथ धीरे-धीरे शान्ति से पाठ कीजिए।

आत्मदेव सुबह से पाठ का प्रारम्भ करते हैं। वह पाठ संध्या के समय पूर्ण होता है। सारा दिन संसार को भूल जाते हैं, भगवान् में तन्मय हो जाते हैं। कन्द-मूल, फल खाते हैं। कई वर्षों से आत्मदेव भक्ति कर रहे हैं। उनका मन धीरे-धीरे निर्मल हो रहा है। जब मन अति निर्मल हो जाता है, तब परमात्मा के दर्शन की तीव्र इच्छा जाग्रत होती है। मन मलिन है, इससे संसार में रम जाता है। मन अति निर्मल होता है, तब प्रभु के दर्शन की ऐसी भावना जागती है– 'संसार का बहुत अनुभव हुआ, अब मुझे इस संसार में नहीं रहना है।'

एक दिन दशम स्कन्ध का पाठ पूर्ण हुआ कि परमात्मा प्रकट हुए। आत्मदेव को द्वारकानाथ के दर्शन हुए। आत्मदेव बारम्बार दर्शन कर रहा है। मन से कहता है कि प्रभु! मुझे अब आपके चरणों में आना है। परमात्मा को दया आती है। प्रभु आत्मदेव को उठाते हैं। उस जीव को वे अपना लेते हैं, हृदय से लगा लेते हैं। आत्मा-परमात्मा का मिलन हुआ है। जो भगवान् के आश्रय में जाता है, वह भगवान् का होता है। आत्मदेव कृतार्थ हुआ।

इस ओर धुँधुकारी वेश्याओं को घर ले आता है। गोकर्ण ने सोचा–'कुसंग से मेरा जीवन पापमय हो जायेगा।' उसने घर का त्याग किया। गोकर्णजी यात्रा पर निकल पड़े हैं।

धुँधुकारी चोरी करने लगा। पाप से पैसा लाता है और वेश्याओं को प्रसन्न करता रहता है। जो पाप करके सुख भोगते हैं, वे सब धुंधुकारी के समान हैं। एक बार लोभ से विवश धुंधुकारी राजमहल में चोरी करने गया। रानी के आभूषण उठा के ले आया और वेश्याओं को दे दिए। वेश्याओं ने सोचा कि यह राजा का धन है, हमें भी सजा होगी। क्यों न हम धुंधुकारी को मार डालें और सभी आभूषण ले लें? इसमें क्या बुरा है? स्वार्थी वेश्या क्या नहीं करती? मधुर वाणी का व्यवहार करती है पर उसके हृदय में पैनी छुरी होती है। हमारे शास्त्रों में वर्णन है कि स्त्री-हृदय कोमल होता है परन्तु कुसंग होने पर वही हृदय वज्र से भी कठोर हो जाता है। ये वेश्याएँ लोभ से धुँधुकारी को मारने के लिये तैयार हो गयीं। धुंधुकारी के हाथों में, पैरों में, गले में रस्सियाँ बाँध दीं, पर धुंधुकारी जल्दी मरता नहीं है। धुंधुकारी बलवान है। आप सब वैष्णव हैं, अपने स्वरूप को मत भूलिये। सोचिये कि मैं श्रीकृष्ण का दास हूँ। मैं परमात्मा अंश हूँ। मैं किसी भी विषय का गुलाम नहीं हूँ। संसार के सुख को भोगते हुए सावधान रहिये। मानव; विषय को भोगता है पर विषय का दास हो जाता है। मानव विषय के अधीन हो जाता है। विषय उसको बाँध लेते हैं। अन्तकाल में उसका मरण बिगड़ता है। धुँधुकारी का मरण बिगड़ा है। उसकी दुर्गति हुई है। वेश्याएँ धन लेकर भाग गई हैं। धुँधुकारी का अग्नि-संस्कार भी किसी ने नहीं किया। धुँधुकारी प्रेत हुआ।

अति पापी भी प्रेत समान है। प्रेत को देखना किसी को पसन्द नहीं है। अति पापी को देखकर घृणा होती है। धुँधुकारी ने बहुत पाप किये है। वह प्रेत-योनि में दुःख पा रहा है। प्रेत को प्यास लगती है। उसे पानी तो दिखाई पड़ता है पर वह पानी पी नहीं सकता। प्रेत-योनि में बहुत दुःख है। अनेक वर्षों तक धुँधुकारी ने प्रेत-योनि में दुःख भोगा।

इस ओर गोकर्णजी यात्रा करते-करते गयाजी पहुँचे। गयाजी में भगवान् नारायण के चरणों में पिंडदान होता है। गयाजी में परमात्मा के चरणों में पितरों के नाम लेकर पिंडदान करने पर पितरों को सद्गति मिलती है। गोकर्णजी वहाँ पहुँचे हैं। उन्होंनें सुना कि मेरे भाई की मृत्यु हुई है।

गोकर्णजी ने धुँधुकारी का श्राद्ध किया है। पिंडदान किया है। फिर गोकर्णजी यात्रा करके जन्मभूमि में आये हैं। जब रात्रि में आँगन में वे सोये हैं तब प्रेत-स्वरूप में धुँधुकारी वहाँ आता है और रोने लगता है। गोकर्णजी पूछने लगे–'तुम कौन हो?' तब प्रेत ने कहा–'मैं आपका भाई हूँ। मैंने बहुत पाप किये, इससे मेरी ऐसी दशा हुई है। मुझे बन्धन से छुड़ाइए।' गोकर्णजी ने कहा–'तुम्हारे लिये मैंने गयाजी में श्राद्ध किया है फिर भी तुम प्रेत-योनि से क्यों मुक्त नहीं हुए हो?' तब धुँधुकारी ने कहा–'मैं बड़ा पापी हूँ। एक बार नहीं, पर अनेक बार श्राद्ध करने पर भी मेरा उद्धार नहीं होगा। आप कोई अन्य उपाय कीजिए।'

गोकर्णजी को आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा–कल मैं सूर्यनारायण से पूछूँगा। सूर्यनारायण ब्राह्मणों के गुरु हैं। ब्राह्मण को जब से यज्ञोपवीत दिया जाता है, तब से उसका सम्बन्ध सूर्यनारायण से हो जाता है। पिता पुत्र से कहते हैं–आज से तुम सूर्यनारायण के पुत्र हुए। जिस तरह राजा के घर का सिपाही गले में राज चिह्न रखता है, उसी तरह यज्ञोपवीत वेदों द्वारा दिया गया स्मृति चिह्न है। यज्ञोपवीतधारी मानता है कि मैं परमात्मा नारायण का दास हूँ। कई लोग मानते हैं कि यज्ञोपवीत चाबी लटकाने के लिए बहुत अच्छा है। पर यज्ञोपवीत चाबी लटकाने के लिए नहीं है। यज्ञोपवीत के एक-एक धागे में एक-एक देव की स्थापना होती है। यज्ञोपवीत में चाबी लटका देने से फिर वहाँ देव रहते नहीं हैं।

दूसरे दिन गोकर्णजी ने ब्राह्मणों के गुरु सूर्यनारायण से पूछा–''मेरे भाई के उद्धार के लिए कोई रास्ता दिखाइए। सूर्यनारायण ने कहा भागवत की कथा करो–

श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु।

(श्रीमद्भागवत माहात्म्य ५-४१)

मुक्त करे भागवत-श्रवण, सप्ताह करे जो।

भागवत मुक्ति शास्त्र है। भागवत से मुक्ति मिलती है। आषाढ़ मास में गोकर्णजी अपने गाँव में ही भागवत की कथा कर रहे हैं। मृत्यु के बाद कथा का होना अच्छा है। मृत्यु से पूर्व भी उनकी कथा सुनिये। पाप छोड़िये। जीवित हैं, तब ही निरन्तर भक्ति की आदत डालिये। अपना श्राद्ध अपने ही हाथों से कीजिये। कथा में अंधे-लूले-लंगड़े भी आये हैं। भीड़ बहुत हो गयी है। जिसके उद्धार के लिये कथा हो रही है, वह धुंधुकारी भी वहाँ उपस्थित है। उसके लिये बैठने की जगह नहीं है। सात गाँठ वाला एक बाँस था। उस बाँस में उसने प्रवेश किया और वहीं बैठ कर कथा सुनने लगा। प्रत्येक दिन बाँस की एक-एक गाँठ टूटती है। सात दिनों में सातों गाँठ टूट गई हैं। थोड़ा सोचिये, तो ध्यान में आ जायेगा कि जीवात्मा जब शरीर छोड़ता है तब प्रायः वासना लेकर शरीर छोड़ता है। वासनाएँ गाँठ हैं। पति-पत्नी की आसक्ति गाँठ है। पुत्र के प्रति आसक्ति

भी गाँठ है। पैसे में आसक्ति गाँठ है। आसक्ति-रूपी गाँठ विवेक से छोड़नी है। इन गाँठों को छोड़ना बहुत कठिन है। परमात्मा से प्रेम कीजिए तब गाँठें छूटेंगी। सातवें दिन गोकर्णजी ने परीक्षित के मोक्ष की कथा सुनायी तब सात गाँठों वाला वह बाँस फटा और बाँस में से तेजस्वी, दिव्य पुरुष बाहर आया। वह भगवान् को बार-बार वंदन करने लगा–''धन्य है भागवत की कथा को, धन्य है शुकदेवजी महाराज को। मेरे जैसे अति पापी का भी उद्धार हुआ।''

गोकर्णजी उसे पहचान नहीं रहे हैं अतः पूछने लगे हैं–''आप कौन हैं?'' तब उत्तर मिला–''मुझे नहीं पहचानते? मैं आपका भाई हूँ।''

धुंधुकारी को सद्गति मिली है। वह वायुयान में बैठ कर प्रभु के धाम में पहुँचा है। गोकर्णजी को आश्चर्य हो रहा है। उन्होंने पूछा–''बहुत-से श्रोताओं ने कथा सुनी है, फिर भी एक ही व्यक्ति को क्यों वायुयान में बैठा कर ले गये?'' तब परमात्मा के पार्षदों ने कहा–''धुंधुकारी ने इस कथा को जिस तरह सुना है, उस तरह किसी ने नहीं सुना। उसने उपवास किये हैं। 'उप' शब्द का अर्थ है पास में तथा 'वास' का अर्थ है रहना। मन से परमात्मा के चरणों में रहना ही उपवास है। भगवान् के स्मरण में तन्मय रहने के लिये उपवास करना है। मन से जो परमात्मा के चरणों में रहता है, मन से जो भगवान् के धाम में रहता है, उसका ही उपवास सार्थक है, योग्य है। धुंधुकारी ने योग्य रूप से उपवास रखकर इस कथा को सुना है, कथा का मनन किया है। धुंधुकारी के समान किसी ने इस कथा को नहीं सुना है, न किसी ने इस कथा पर मनन किया है। एकाग्रता से श्रवण और बाद में मनन करने पर ज्ञान दृढ़ होता है।

अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम्।
संदिग्धो हि हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः॥ (श्रीमद्भागवत माहात्म्य ५-७३)

प्रमाद से किया गया श्रवण व्यर्थ है। इन लोगों ने कथा को योग्य रूप से सुना नहीं है। कथा में बैठे हुये भी कथा में मन नहीं रहता, तब कथा-श्रवण का क्या अर्थ? ऐसे लोगों को अभी पुनः-पुनः कथा सुनने की जरूरत है। श्रावण मास में गोकर्णजी पुनः कथा सुनाने बैठे हैं। लोगों ने निश्चय किया है कि एक बार भूल हो गयी, अब सावधान रहकर कथा सुनेंगे। यह समय भागवत-श्रवण के लिये ही निश्चित है, इसलिये इस समय पर अन्य किसी का विचार नहीं करेंगे–

मनोदोषजयश्चैव कथायां निश्चला मतिः

(श्रीमद्भागवत माहात्म्य ५-७५)

शुकदेवजी सावधान कर रहे हैं, ''राजन्! गोकर्णजी के मुख से मुखरित इस अलौकिक कथाका श्रवण जो श्रोता करेंगे, उनको पुनर्जन्म से मुक्ति मिलेगी। भागवत भव-रोग की दवा है।

भागवत की कथा सुनने से ज्ञान-वैराग्य के साथ भक्ति भी जाग्रत होती है। अति दुःख में मानव भक्ति करता है। मानव में ज्ञान-वैराग्य है पर वह मूर्च्छित है। ज्ञान-वैराग्य के साथ भक्ति को जाग्रत करने के लिये कथा है। भागवत ऐसा ग्रंथ नहीं है कि मृत्यु के बाद मुक्ति दिलवाता है। वह तो ऐसा ग्रन्थ है, जो मृत्यु से पहले ही मुक्ति दिलवाता है। इस ग्रंथ के पाँचवें अध्याय में माहात्म्य की कथा है। छठे अध्याय में विधि समझाई गयी है।

कथा सुनने की इच्छा हो तो कोई भी समय अच्छा है। वक्ता ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिए। शुकदेवजी के आसन में बैठने वाले में वैराग्य होना चाहिए। वैराग्य के बिना शब्दों में शक्ति नहीं आ सकती। वक्ता की आँखें और मन अति शुद्ध होने चाहिए। शुकदेवजी जगत् को देख रहे थे, पर स्वयं निर्विकार थे। हम जगत को देखते हैं, तब आँखों में विकार आ जाता है। शुकदेवजी ब्रह्म दृष्टि रखते थे। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को भगवद्भाव से देखते थे। आप भी प्रत्येक स्त्री-पुरुष को भगवद्भाव से देखिये। वैराग्य का अर्थ क्या है? भोग के अनेक पदार्थ प्राप्त हों पर मन उनके प्रति न ललचाये, वही वैराग्य है। जगत् को छोड़ने की जरूरत नहीं है परन्तु जगत् को जिस दृष्टि से देख रहे हैं उसको छोड़ने की जरूरत है। जगत् को कामदृष्टि से, भोगदृष्टि से मत देखिये।

वक्ता का ब्राह्मण-देह हो, सिर्फ जाति से ब्राह्मण नहीं पर जो तीनों समय संध्या-वंदन करता हो, धीर-गंभीर हो, दृष्टांत-कुशल हो और जो निःस्पृह हो, वही श्रेष्ठ वक्ता हो सकता है-

विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशुद्धिकृत्।
दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिःस्पृहः॥ (श्रीमद्भागवत माहात्म्य ६-२०)
वक्ता हो विरक्त वैष्णव, सब शास्त्र विशारद।
अति गम्भीर धीर हो, अति निष्काम प्रियंवद॥

कथा के प्रारंभ में वक्ता गणपति महाराज की पूजा करता है। पुण्या हवाचन करता है, विधि पूर्वक कथा करता है। विद्वान् ब्राह्मणों को बैठाकर भागवत के अठारह हजार श्लोकों का पठन करवाता है। सत्य भाषण करता है। प्रत्येक इन्द्रिय से ब्रह्मचर्य का पालन करता है तथा सरल भाषा में विवेक से कथा करता है, तब कथा सार्थक होती है। वही कीर्तन भक्ति है, इसी के द्वारा वक्ता भगवद्-गुणगान करता है।

उसके बाद सनत्कुमारों ने नारदजी को भागवत-कथा सुनायी है। उनको परमानन्द हुआ। वस्तुतः जैसा आनंद भागवत की कथा में है, वैसा आनंद वैकुंठ में भी नहीं है।

भक्ति, ज्ञान और वैराग्य श्रीमद्भागवत की कथा में पुष्ट हुये हैं। पूर्णाहुति के समय परमात्मा वहाँ पधारे हैं। भक्तों का दिव्य संकीर्तन हुआ है। परमात्मा ने कहा है-"आपके कथा-कीर्तन से

मैं अत्यंत से मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ, आप वरदान माँगिये। तब सनत्कुमारों ने माँगा–

नगाहगाथासु च सर्वभक्तैरभिस्त्वया भाव्यमिति प्रयत्नात्।

(श्रीमद्भागवत माहात्म्य ६-८९)

जहाँ-जहाँ सप्ताह कथा हो हे प्रभु! मेरे।
आप पधारें तो कट जायें दुःख घनेरे।।

"जो वैष्णव श्रीकृष्ण-कथा का श्रवण करते हैं, श्रीकृष्ण कीर्तन करते हैं, प्रेम-भाव से श्रीकृष्ण-सेवा करते हैं, उन वैष्णवों के हृदय में आप विराजिये।" यह सुनकर–"तथास्तु" कहते हुए हरि अंतर्धान हुए।

सूतजी सावधान करते हैं–"जब वक्ता-श्रोता प्रेम से संकीर्तन करते हैं, यमराज की आज्ञा है कि तब ऐसे वैष्णव कभी यमपुरी में नहीं ले जाये जाते। कथा, नाम संकीर्तन से ही परिपूर्ण होती है। कथा वक्ता-श्रोता के पापों को जला देने वाली है–

एतां यो नियततया शृणोति भक्त्या यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे।
तौ सम्यग्विधिकरणात्फलं लभेते याथार्थ्यान्न हि भुवने किमप्यसाध्यम्।।

(श्रीमद्भागवत माहात्म्य ६-१०३)

।। श्रीमद्भागवत् माहात्म्य समाप्त ।।

।। हरि ॐ तत्सत् ।।

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

प्रथम स्कंध

५– मंगलाचरण–परमात्मा सत्य-स्वरूप

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥ (श्रीमद्भागवत १-१-१)

परमात्मा श्रीकृष्ण के ध्यान से मन शुद्ध होता है। संसार के ध्यान से मन बिगड़ता है। संसार में रहने से मन नहीं बिगड़ता पर संसार के ध्यान से मन बिगड़ता है। जितने भी पाप होते हैं सब संसार के ध्यान के कारण होते हैं। उस व्यक्ति के पाप छूटते हैं, जो संसार के ध्यान को छोड़ता है। जब तक संसार का ध्यान नहीं छूटेगा, तब तक पाप भी नहीं छूटेंगे।

सन्त का हृदय गंगाजल के समान निर्मल होता है। सन्त संसार में रहते हैं पर संसार का ध्यान नहीं करते। वे परमात्मा के मंगलमय स्वरूप का ही ध्यान करते हैं। मल-मूत्र से भरा यह शरीर परमात्मा के मिलन के लिए योग्य नहीं है। इस शरीर से कोई कभी भगवान् को मिल नहीं सकता। मनुष्य के शरीर से दुर्गन्ध निकलती है और इसलिए देव इस शरीर से दूर खड़े रहते हैं। जिसका मूल ही अशुद्ध है, उस मानव-शरीर के पास देवों को आना पसन्द नहीं है। माता-पिता के मल से इस शरीर की रचना हुई है। परमात्मा से इस अशुद्ध शरीर को लेकर नहीं मिला जा सकता। वैष्णव परमात्मा से मन से मिलते हैं। नियम से परमात्मा का ध्यान करेंगे तो मन की चंचलता दूर हो जायगी। निष्काम का ध्यान करने से मन निष्काम होगा। जिन सन्तों को परमात्मा मिले हैं, उन सन्तों का शरीर हमारे शरीर जैसा नहीं है। परमात्मा के ध्यान व स्मरण से उनका शरीर अलौकिक बना हुआ है। सन्तों का तन अलौकिक होता है। परमात्मा को तन से नहीं, मन से मिलना होता है। मन का बिगाड़ और पापों के होने का कारण संसार का ध्यान है। आप भागवत् की कथा सुन रहे हैं, निश्चय कीजिये–'मैं अब संसार का ध्यान नहीं करूँगा।'

परमात्मा का सतत् ध्यान करना, विरक्त सन्त की तरह ध्यान करना, हमारे जैसे साधारण मानव के लिए सम्भव नहीं है। आप परमात्मा का ध्यान नहीं कर पा रहे हैं तो कोई बात नहीं, पर इतना सावधान रहिये कि आपका मन मानव शरीर का ध्यान करने न लग जाय। कई व्यक्ति ऐसी इच्छा रखते हैं कि मुझ से पाप न हो, पर फिर भी पाप हो जाता है। आँख से पाप होता है, जीभ से पाप होता है, मन से पाप हो जाता है। मानव शरीर का ध्यान छोड़िये तो प्रभु-कृपा से पाप नहीं होगा। जिसे देव-दर्शन की इच्छा है, उसे कभी भी देह का ध्यान नहीं करना चाहिए। शरीर के ध्यान से मन बिगड़ जाता है। तन सुन्दर है–यह कल्पना ही काम को जन्म देती है। किसी का तन सुन्दर नहीं है। शरीर में शुद्ध परमात्मा के अंश-रूप जीवात्मा का निवास है, इसी से तन की सुन्दरता है, शोभा है। शरीर में जीवात्मा न होता तो शरीर की शोभा भी नहीं रहती। शरीर में रहने वाला शुद्ध जीव ही सुन्दर है।

स्त्री का शरीर सुन्दर नहीं है। पुरुष का शरीर सुन्दर नहीं है। आत्मा सुन्दर है। शरीर का ध्यान करने पर मन बिगड़ता है। एक बार मन बिगड़ा तो उसे शुद्ध करना बहुत मुश्किल है। अतः शरीर का ध्यान छोड़िये। कई लोग कपड़ों का ध्यान करते हैं। कई चप्पलों का ध्यान करते हैं। ये चप्पलें बहुत सुन्दर हैं। अरे! चप्पलों में क्या सुन्दरता है। वह तो चमड़ा है। उसमें कुछ भी अच्छा नहीं है। शुद्ध जीव ही परमात्मा का अंश है। परमात्मा अति सुन्दर हैं–

सत्यम् शिवम् सुन्दरम्

परमात्मा कल्याणमय हैं। परमात्मा सत्य हैं। सत्य के ध्यान के लिए, सत्य के साक्षात्कार के लिए ही परमात्मा ने मन दिया है। संसार के ध्यान से उत्पन्न पाप के लिए मन नहीं है। मन से परमात्मा के मंगलमय स्वरूप का ध्यान कीजिए। समय मिलने पर दूसरों की निन्दा न करके, ध्यान कीजिए।

परमात्मा की पूजा सर्वकाल में नहीं होती। स्नान करने से पूर्व रात्रि में बारह बजे के बाद पूजा करना उचित नहीं है। पर ध्यान के लिए कोई नियत काल नहीं है। ध्यान सर्वकाल में हो सकता है। पूजा के लिए देह-शुद्धि और स्थान-शुद्धि की जरूरत है, पर ध्यान किसी भी अवस्था में हो सकता है।

मन को शुद्ध करने के लिए ध्यान आवश्यक है। अनेक तीर्थों में स्नान करने पर भी मन शुद्ध नहीं होता। स्नान करने से तन तो शुद्ध होता है, तीर्थ में स्नान करने से थोड़ा-सा पाप भी नष्ट होता है, पर तीर्थ में स्नान करने से बिगड़ा मन शुद्ध नहीं होता।

दान करने से भी मन की शुद्धि नहीं होती। अन्न दान, वस्त्र दान, आदि दान करना अच्छा ही है। दान से पुण्य बढ़ता है। इस जन्म में दान दीजिए, फल दूसरे जन्म में मिलेगा, पर परमात्मा

के दर्शन नहीं होंगे। बड़े-बड़े राजा बहुत दान करते थे पर उनको परमात्मा के दर्शन नहीं हुए। मन शुद्ध होने पर ही परमात्मा के दर्शन होते हैं और संसार के ध्यान से गन्दा बना हुआ मन भी परमात्मा के ध्यान से शुद्ध होता है।

परमात्मा ध्यान से मिलते हैं, दान से नहीं मिलते। अतः परमात्मा के मंगलमय स्वरूप के ध्यान की आदत डालिये। जो स्वरूप आपको प्रिय है, उस स्वरूप के दर्शन से तृप्ति नहीं होती, पर जिस स्वरूप के दर्शन से हृदय द्रवित होता है, प्रेम जाग्रत होता है, उस स्वरूप का ध्यान कीजिए। किसी को बालकृष्णलाल का, किसी को नारायण का, किसी को शिवजी का स्वरूप बहुत प्रिय है। अमुक स्वरूप का ही ध्यान करें, ऐसा व्यासजी नहीं कहते। अरे! शंख, गदा, चक्र, पद्म जिनके हाथ में हैं वे ही ईश्वर हैं? जिनके हाथ में त्रिशूल है, वे क्या ईश्वर नहीं है? जिनके हाथ में धनुष-बाण हैं वे क्या ईश्वर नहीं हैं? वस्तुतः ईश्वर का कोई एक स्वरूप नहीं है। अमुक स्वरूप धारण करने वाला ही ईश्वर है। ऐसा नहीं है। जगत् में जितने रूप दिखाई पड़ते हैं, वे सब परमात्मा के ही स्वरूप हैं। आकार भिन्न हैं पर सभी भिन्न आकारों में एक ईश्वर-तत्त्व ही है। माला में फूल अनेक हैं, अनेक आकार के हैं, पर धागा तो एक ही है। गीताजी में भगवान् ने आज्ञा की है–

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजयः।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

आकार भिन्न-भिन्न होने पर भी सर्व में ईश्वर-तत्त्व एक ही है। गाय काली हो, श्वेत हो या लाल रंग की हो, दूध तो एक रंग का ही होता है। रूप, रंग, आकार का महत्त्व नहीं है, आकार में निहित परमात्म-तत्व का महत्त्व है। नरसी मेहता कहते हैं–

अखिल ब्रह्मांण्ड में एक तुम श्रीहरि विविध रूप से अनन्त दीखते हो!

आकार बना दिये फिर नाम-रूप वैविध्यपूर्ण हो, तो भी अन्त में हेम-हेम ही रहता है! सुवर्ण के अलंकार अनेक आकार-प्रकार के बनते हैं पर अलंकारों का सुवर्ण तो एक ही है। आप बाजार में चन्द्रहार लेकर जाइए। वहाँ क्या चन्द्रहार का मूल्य मिलता है? नहीं। मूल्य तो सोने का ही मिलता है। सोना दस तोला है तो दस तोले का मूल्य मिलता है। चन्द्रहार का मूल्य नहीं मिलता। आकार का मूल्य नहीं है, सुवर्ण का मूल्य है।

हमारे सनातन धर्म में देव अनेक हैं, पर परमात्मा एक ही है। ईश्वर अनेक नहीं हैं। एक ही ईश्वर के अनेक स्वरूप हैं। वे अनेक रूप धारण करते हैं। हाथ में अगर धनुष- बाण है तो लोग कहते हैं कि ये श्रीरामजी हैं। वही परमात्मा हाथ में बाँसुरी धारण करते हैं तो लोग कहते हैं ये मुरलीमनोहर श्रीकृष्ण हैं। ठाकुरजी रोज पीताम्बर पहिन कर ऊब जाते हैं तो एक दिन वे यशोदा

मैया से कहते हैं–'माँ! आज तो मैं बाघम्बर पहिन कर साधु बन कर बैठूँगा।' लाला को नवीनता पसन्द है। कन्हैया पीताम्बर फेंक देता है और बाघम्बर धारण कर लेता है। तब लोग कहने लगते हैं कि वे शंकर भगवान् हैं।

गर्ग-संहिता में एक कथा है। श्रीराधाजी व्रत कर रही थीं। श्रीकृष्ण के मिलन के लिए, श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए राधाजी का यह व्रत था। तुलसीजी में श्रीबालकृष्णलाल को विराजमान करके श्रीराधाजी श्रीबालकृष्णलाल की सेवा करती थीं। परिक्रमा भी करती थीं। राधाजी के पिता वृषभानु ने ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि राधाजी के महल में किसी पुरुष का प्रवेश न हो सके। कोई पुरुष राधाजी के महल में नहीं पहुँच पाता, न राधाजी से मुलाकात कर सकता था। राधाजी के महल में प्रहरी के रूप में भी सखियों को ही रखा गया था

श्रीराधाजी की तीव्र उत्कण्ठा थी कि मुझे श्रीकृष्ण से मिलना है, श्रीकृष्ण के दर्शन करने हैं। इस ओर लाला की उत्कण्ठा भी जागी। लाला ने सोचा कि अगर मैं पीताम्बर पहिन कर जाऊँगा तो मुझे अन्दर नहीं जाने देंगे और मैं तो अन्दर जाना चाहता हूँ। प्रभु ने चन्द्रावली सखी से कहा कि आज अपने सम्पूर्ण शृंगार से मुझे सजा दो। चन्द्रावली सखी ने लाला को सखी के रूप में सजा दिया। श्रीकृष्ण सखी का रूप धारण करके राधाजी के पास पहुँचे। वृषभानु वहाँ उपस्थित थे। उनको लगा कि राधा की कोई सखी राधा से मिलने आई है। श्रीकृष्ण भीतर गये और राधिकाजी से मिलन हुआ। भगवान् जब साड़ी पहनते हैं, तब लोग उन्हें माताजी कहते हैं। श्रीकृष्ण, श्रीराम अनेक स्वरूप धारण करते हैं पर ये स्वरूप एक ही तत्व से बने हैं, अतः वे एक ही हैं। सभी को समानता पसन्द नहीं है। सभी को एक ही में रुचि नहीं है।

रुचीनां वैचित्र्याहजुकुटिल नाना पथ जुषा।
नृणमेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

प्रत्येक जीव की भिन्न-भिन्न रुचि को ध्यान में रखकर परमात्मा ने शिवजी, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीमाताजी आदि अनेक स्वरूप प्रकट किये हैं, पर सरल या टेढ़ी-मेढ़ी प्रवहमान सर्व नदियों का गम्य स्थान एक ही समुद्र है, उसी तरह सर्व जीवों का गम्य स्थान एक परमात्मा ही है।

प्रभु के किसी भी एक स्वरूप को मन से निश्चित कर लीजिए। समग्र देवों को वन्दन कीजिए पर ध्यान उस एक का ही कीजिए।

मंगलाचरण में प्रभु का ध्यान करने की आज्ञा दी है। संसार मंगलमय नहीं है, परमात्मा मंगलमय है। काम जिसके मन में है, काम जिसकी आँखों में है, ऐसे सकाम का ध्यान करेंगे तो आपके मन में भी काम जागेगा। निष्काम का ध्यान करेंगे तो काम नष्ट होगा। संसार सकाम है।

संसार की सर्व प्रवृत्तियाँ सकाम हैं। संसार के सुख भोगने की इच्छा को ही काम कहते है।

आप जिनका ध्यान करते हैं, उन्हीं की तरह और उनके जैसे ही आप होते हैं। परमात्मा का ध्यान करने वाला व्यक्ति परमात्मा के गुणों को पाता है। उसमें भगवान् के सद्गुण आते हैं। जीव अल्प-शक्ति है। परमात्मा अनन्त शक्तिमान् है। जीव जब अनन्त शक्तिमान् परमात्मा का ध्यान करता है, तब उसमें भी अनन्त शक्ति आती है। ध्यान करने से शान्ति मिलती है। जगत् को भूल जाते हैं, आनन्द की अनुभूति होती है। आनन्द जगत् में नहीं है, आंनन्द जगत् को भूलने में है। परमात्मा के ध्यान में जगत् को भूल सकते हैं और जगत् को भूलने पर आन्तरिक आनन्द की वृद्धि होती है। ध्यान करने वाला यह भी भूल जाता है कि मैं ध्यान कर रहा हूँ और इसमें ध्यान करने वाला ध्येय से एकरूप हो जाता है।

आपके अच्छे कर्मों का फल आज ही नहीं मिलेगा। पाप और पुण्य का फल कालान्तर में मिलता है। आज जब कोई झूठ बोलता है, तब वह दुःखी नहीं होता। शायद आज वह सुखी होगा पर इसकी सजा उसको एक दिन मिलकर ही रहती है। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों। एक वर्ष के बाद या दो वर्ष के बाद अथवा दूसरे जन्म में– पर पाप का फल भोगना ही पड़ता है। पाप और पुण्य का फल मिलता ही है। आज भगवान् की सेवा-पूजा प्रेम से करने पर आज ही वे व्यक्ति सुखी नहीं होते पर ध्यान करने वाले को तत्काल शान्ति मिलती है। अन्य सर्व कर्म कालान्तर में फल देते हैं, पर परमात्मा के ध्यान का फल तत्काल मिलता है। परमात्मा के मंगलमय स्वरूप के ध्यान की आदत डालिये।

परमात्मा के ध्यान से अमंगल दूर होता है। मानव जब कभी सत्कर्म करता है तब भी मानव का संचित पाप बिघ्न डालने आ पहुँचता है। इस पाप के विनाश के लिए मंगलाचरण आवश्यक है। उपनिषद् में भी मंगलाचरण है–

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा। शं नो इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णु गुरु श क्रमः नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मास्मि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्माभवतु तद्ववक्तारमवतु। अवतु माम अवतु वक्तारम्।

ॐ शाँतिः शाँतिः शाँतिः।

पाप ही बिघ्न करता है, ऐसा नहीं है। किसी की बहुत भक्ति के कारण देवगण भी बिघ्न खड़े करते हैं–यह हमारे सिर पर पाँव रखकर भगवान् के धाम में पहुँचेगा हम से श्रेष्ठ होगा। ऐसा डर देवों को भी लगता है। हमारे शास्त्रों में वर्णन है कि जब कोई ध्यान करने बैठता है, तब एक

लाख वीर पुरुष भी बिघ्न लेकर खड़े हो जाते हैं। श्रीकृष्ण के दर्शन की और कथा सुनने की इच्छा जाग्रत होने पर पचास हजार वीर-पुरुष बिघ्न डालने आ पहुँचते हैं। दान करने की इच्छा होने पर पच्चीस हजार वीर-पुरुष दाहिना हाथ पकड़ लेते हैं। गंगा स्नान की इच्छा आने पर साढ़े बारह हजार वीर-पुरुष बिघ्न लेकर उपस्थित होते हैं।

एक बार श्रीकृष्ण हस्तिनापुर में विराज रहे थे। धर्मराज के दरबार में सत्संग चल रहा था। तब एक ऋषि ने किसी विषय में कहा कि शास्त्र में ऐसा वर्णन है। भीमसेन वहाँ बैठे हुए थे। भीमसेन ने श्रीकृष्ण की ओर देखा और कहा कि शास्त्र में लिखा हुआ सब सच्चा ही हो, ऐसा नहीं है। कभी-कभी अतिशयोक्ति भी होती है। गंगा-स्नान में कौन बिघ्न डालता है? प्रभु ने कहा–''भीम! शास्त्र जिन्होंने लिखे हैं उन्हें कोई स्वार्थ नहीं था। वे वृक्ष की शाखा के नीचे रहते थे। फल-जल से निर्वाह करते थे। वे क्यों झूठ लिखेंगे? बिघ्न करने वाला दिखाई नहीं देता पर बिघ्न आते ही रहते हैं।''

भीमसेन ने कहा–''अच्छा देखता हूँ, गंगा-स्नान में कौन बिघ्न डालता है? कोई बिघ्न लायेगा तो मैं उसे मार डालूँगा।'' हाथ में गदा लेकर भीमसेन गंगा तट पर खड़े रहे। वे वहाँ बारह घंटे खड़े रहे। कई लोग स्नान कर रहे थे। कोई बिघ्न नहीं डाल रहा था। बारह घंटे के बाद भीमसेन ने कृष्ण के पास जाकर कहा–''महाराज आपका यह श्लोक झूँठा है। मैंने स्वयं अनुभव किया है कि गंगा-स्नान में कोई बिघ्न नहीं डालता है।

प्रभु ने कहा–''भीमसेन, शास्त्र झूँठा है, ऐसा नहीं कहना चाहिये। संत मिथ्या कहते नहीं, स्वार्थी व्यक्ति झूँठ बोलता है। जिनको स्वार्थ नहीं है, वे क्यों झूँठ बोलेंगे? बारह घंटे तुम वहाँ खड़े रहे पर तुमने गंगा-स्नान किया कि नहीं?'' भीमसेन ने कहा–''महाराज मैं तो गदा लेकर खड़ा था।'' श्रीकृष्ण ने पूछा ''तुमने गंगाजी को प्रणाम किया?'' भीमसेन ने उत्तर दिया–''नहीं मैंने प्रणाम नहीं किया?'' श्रीकृष्ण ने कहा–''तब यह श्लोक सच्चा ही है। तुम्हारे जैसे वीर को भी किसी ने पकड़ कर रखा, जिससे तुम स्नान नहीं कर सके।''

सत्कर्म में बिघ्न आते हैं। इससे प्रारंभ में मंगला-चरण करना चाहिए। श्रीकृष्ण पूर्ण निष्काम हैं, इससे श्रीकृष्ण का सब कुछ मंगलमय है, मानव का अधिकांश अमंगलमय होता है। मानव के मन और बुद्धि से काम निकलता नहीं है। इसीसे मंगलमय परमात्मा के ध्यान की आज्ञा दी गयी है।

भागवत में तीन बार मंगला-चरण आते हैं। आरंभ में व्यासजी का मंगलाचरण है और समाप्ति में सूतजी का मंगलाचरण है। व्यासजी मंगलाचरण में कहते हैं 'सत्यं परं धीमहि'। परमात्मा जो सर्व से श्रेष्ठ हैं, प्रकाशमय हैं, सत्य हैं, उनका ध्यान हम कर रहे हैं। परमात्मा सत्य हैं। यह जगत् सत्य न होने पर भी सत्य दिखाई देता है। अतः व्यासजी ऐसे सत्य का ध्यान करते हैं।

जादूगर जादू के खेल में रुपयों का ढेर कर देता है पर ये रुपये झूठे हैं। आँखों को जो दिखाई पड़ते हैं, वे सत्य नहीं है। तीनों काल में जो समान दिखाई दे, वही सत्य है। जगत् में जो कुछ भी दिखाई पड़ता है, वह क्षण-क्षण में परिवर्तित होता है। अभी जो अच्छा लग रहा है, वह एक घंटे के बाद अच्छा नहीं लगेगा। इससे महापुरुष जगत् को सत्य स्वरूप नहीं मानते। जगत् मिथ्या है, ऐसा बोलने पर कोई लाभ नहीं है। पर जगत् मिथ्या है ऐसा समझने से लाभ है। जगत् जिनके आधार पर टिका है, वे परमात्मा सत्य हैं, परमात्मा में जगत् स्थित है। ईश्वर उन्हीं को कहते हैं, जो सर्व का आधार है। जहाँ सब समाविष्ट हो सकता है, पर जो किसी में नहीं समाविष्ट हो सकते, वे परमात्मा हैं। परमात्मा ही सब का आधार हैं। परमात्मा का आधार कोई नहीं है। यह जगत् परमात्मा के आधार पर स्थित है। परमात्मा सत्य हैं, पर यह जगत् सत्य जैसा दिखाई पड़ता है। किसी जीव के गले में सच्चे मोती की माला आप सभी को झूठी प्रतीत होती है, पर किसी धनवान् के गले में झूठे मोती भी सच्चे लगते हैं। जगत् कल्चर्र (नकली) मोती की माला है। जगत् प्रभु ने धारण किया है, इससे सत्य लगता है।

अधिष्ठान ब्रह्म........

परमात्मा सत्य है। आप सत्य से प्रेम कीजिए। सत्य से प्रेम करने से शान्ति मिलती है, परन्तु जो मिथ्या है, जो झूठ है, उस जगत् के साथ मानव बहुत प्रेम करता है।

यह जगत् सबकी दृष्टि में अलग-अलग है। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। किसी को जगत् सुख-रूप लगता है। वही जगत् किसी को इसी समय दुःख रूप लगता है। जगत् पशु को जैसा दीखता है। मानव को वैसा नहीं दीखता। बालक को जगत् जैसा दीखता है, वैसा युवक को नहीं दीखता। बालक को एक सौ रुपयों का नोट दिखाने पर भी उसे उसमें धन नहीं दिखाई देता। वह माँ की गोद छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता। पर आपको कोई सौ रुपये का नोट दिखाता है तो आप दौड़ कर जाते हैं। युवक को जगत् जैसा दिखाई देता है, वैसा वृद्ध को नहीं दिखाई देता। जिसके मन में जैसा भाव हो, उसको वैसा जगत् दीख पड़ता है। उसकी कल्पना में उसीके अनुसार जगत् का चित्र आता है।

ऋषियों ने जगत का विचार नहीं किया है। ऋषि जगत् के विषय में अधिक नहीं सोचते। जो क्षण-क्षण में परिवर्तित है, उसका विचार कौन करेगा? प्रभु का स्वरूप तो सर्वकाल से एक समान रहता है। परमात्मा सत्य है—ऐसा मान कर जो जगत् में रहते हैं उन्हें दुःख नहीं है, पर जो जगत् को सत्य मान कर चलते हैं, उन्हें दुःख होता है। वे दुःखी होते रहते हैं।

परमात्मा सत्य हैं। परमात्मा की इच्छा से ही जगत् में उत्पत्ति, स्थिति और विनाश होते हैं। ये तीनों प्रभु की लीला हैं। सोने की द्वारिका थी। भगवान् ने उसका विनाश कर दिया। प्रभु ने स्वेच्छा से उपसंहार किया। जब वे सोने की द्वारिका में विराजमान थे और जैसे आनन्दमय थे वैसे ही आनन्दमय वे तब थे जब द्वारिका समुद्रा में डूब रही थी। श्रीकृष्ण कहते हैं–उद्धव जगत् झूठा रुपया है।

रामजी से कहा गया कि कल आप राजा होंगे पर दूसरे ही दिन राज्याभिषेक के मुहूर्त्त पर ही कैकेयी ने रामजी को वल्कल दिये और वन में जाने की आज्ञा दी। प्रभु राज्याभिषेक के कारण आनन्दित नहीं हुए थे और वन में गये तो दुःखी भी नहीं हुए। वाल्मीकिजी रामचन्द्रजी के मुखारविन्द के दर्शन करते हैं। रामचन्द्रजी का मुख कैसा लग रहा है? सर्वकाल में वे अति प्रसन्न और शान्त हैं। आपको कोई भोजन का निमन्त्रण देता है। आप जाते हैं वहाँ और निमन्त्रण देने वाला हाथ जोड़ कर कहता है–'यहाँ सब समाप्त हो गया, अब कुछ भी बचा नहीं है। जय श्रीकृष्ण! अब आप जाइये।' ऐसे वचन सुनकर आपको कैसा लगेगा? फोटो लेने लायक आपका चेहरा हो जायेगा उस समय।

श्रीराम सत्य हैं। परमात्मा श्रीकृष्ण सत्य हैं। शिवजी सत्य हैं। समुद्र मंथन किया गया तब अमृत निकला। सब देवों ने अमृत पान किया। तब किसी ने शिवजी को याद नहीं किया और अमृत पी गये, पर जब विष निकला तब सभी घबरा गये और भगवान् शंकर की प्रार्थना करने लगे। 'श्रीराम, श्रीराम, श्रीराम'–कहते हुए भगवान् शंकर विष पी गये। जिन्होंने अमृत पान किया वे देव कहलाये। मन को शान्त रखकर जिन्होंने विष पिया, वे देवों के देव महादेव कहलाये। शिवजी सत्य हैं।

सत्य अविनाशी हैं, अमर हैं, निर्द्वन्द्व हैं। सत्य का कभी विनाश नहीं होता। भूत, भविष्य, वर्तमान में जो एक रूप रहता है वही सत्य है। सत्य के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। सुख–दुः;ख, लाभ–अलाभ में परमेश्वर का स्वरूप परिवर्तित नहीं होता है। इससे सुखी होना है तो सत्य–स्वरूप परमात्मा से प्रेम कीजिए।

जगत् असत्य है। जगत् के पदार्थ दुःखरूप हैं। व्यवहार में जगत् सत्य–स्वरूप दिखाई देता है परन्तु परमार्थ–दृष्टि से, तत्वदृष्टि से सोचने पर जगत् सत्य नहीं है। स्वप्न में सब सच्चा लगता है, पर स्वप्न से जाग्रत की स्थिति आने पर स्वप्न मिथ्या लगता है। उसी तरह भगवान् के साक्षात्कार से जगत् मिथ्या लगता है। ईश्वर के बिना जो दिखाई देता है, वह माया है, असत्य है। आभास–मात्र है। रुपया जब झूँठा होता है, तब रुपये के प्रति मोह नहीं रहता। इसी तरह झूठे जगत् से मोह न रखिये। झूँठा रुपया गिर पड़ता है, तब हंसना या रोना नहीं आता है। जगत् के प्रत्येक

पदार्थ में विरह है। स्त्री-पुरुष के मिलन में सुख होगा पर विरह में अत्यन्त दुःख है। जगत् के जीवों पर प्रेम न रखिये। परमात्मा पर ही प्रेम रखिये।

अँधेरे में पड़ी रज्जु सर्प रूप दीख पड़ती है पर प्रकाश आने के साथ, ज्ञान-बोध होने के साथ, उसके यथार्थ रूप का ज्ञान होता है, प्रतीति होती है। यह संसार असत्य होने पर भी मनुष्य को सत्य दीख पड़ता है। जगत् का आभास अज्ञान के कारण होता है। ईश्वर का ज्ञान नहीं होने पर जगत् सत्य दीख पड़ता है।

संसार झूँठा है और संसार के सुख भी झूँठे हैं। जीवन में दुःख का प्रसंग आ जाय, तब जी को मत जलाइए। दुःख आपके पाप को जलाने के लिए आया है, आपको सुखी बनाने आया है। संसार का ध्यान करने की मन की आदत हो गयी है। इस आदत को छोड़ना जरूरी है। उसे सुधारना ही पड़ेगा। कोई कपड़े का ध्यान करता है, कोई जूते का ध्यान करता है। जब तक परमात्मा का ध्यान नहीं किया जाता, तब तक मानव का जीवन शुद्ध नहीं हो सकता। संसार को विवेक से ग्रहण कीजिए पर संसार को उत्तम न समझिये। भक्ति करने वाले को विश्वास हो जाता है कि संसार कडुआ है। संसार का विषय दो-तीन मिनट से अधिक सुख नहीं दे सकता।

मिट्टी का घड़ा मिट्टी से अलग नहीं हो सकता, पर मिट्टी घड़े से अलग हो सकती है। परमात्मा के जगत के साथ सम्बन्ध अन्वय-व्यतिरेक का सम्बन्ध है। जगत् का कोई भी पदार्थ; जिसका कारण परमात्मा है, परमात्मा से अलग नहीं हो सकता, परन्तु परमात्मा जगत् से अलग रह सकते हैं। किसी भी स्थिति में जगत परमात्मा से अलग नहीं हो सकता। जगत् में सर्व पदार्थ जो दृष्टि गोचर होते हैं परमात्मा की सत्ता के भीतर ही हैं। सब में परमात्मा होने पर भी परमात्मा सब से अलग हैं।

मंगलाचरण में व्यासजी ने यही सब भावार्थ दिया है। परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी को कृपा करके जो दिव्य तत्त्वज्ञान दिया था, वही यह भागवत-शास्त्र है। इस वेदतत्त्व के ज्ञान में बड़े-बड़े ज्ञानी महापुरुष भी मोहित होते हैं। इसी वेदतत्त्व के परम लक्ष्य आदिनारायण परमात्मा का हम ध्यान करते हैं–

सत्यं परं धीमहि,

'धीमहि' बहुवचन में कहा गया है। बहुवचन से व्यासजी शिष्यों को आज्ञा करते हैं– "उन्हीं सत्य-स्वरूप परमात्मा का हम ध्यान करते हैं।" व्यासजी अकेले ही ध्यान नहीं करते। व्यास महर्षि की आज्ञा है कि सब ध्यान करें। व्यासनारायण जगदगुरु हैं। गुरु के गुरु हैं। व्यास-पूर्णिमा

के दिन संतजन व्यासजी की पूजा प्रथम करते हैं। गुरुदेव की पूजा बाद में करते हैं। संत कहते हैं–

'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'

हम व्यासजी का जूँठा खाते हैं। व्यासजी ने जो कुछ कहा है हम कहते हैं। व्यासजी प्रारम्भ में परमात्मा का ध्यान करने की आज्ञा देते हैं।

६ – वैष्णवों की निष्काम भक्ति

श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के दूसरे श्लोक में भागवत की प्रस्तवमा करते हैं–

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां।
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।।

भागवत का प्रमुख विषय है **'प्रोज्झित कैतव धर्म'**–कैतव का अर्थ है कपट। जिस धर्म में कपट नहीं है वही निष्कपट धर्म भागवत का मुख्य हेतु है, विषय है।

जो किसी लौकिक सुख की इच्छा रखता है, उसी में कपट है। आप जो कोई सत्कर्म करते हैं, तब आपको फल मिलने वाला ही है पर आप जब अपेक्षा रखकर सत्कर्म करते हैं, तो उसमें कपट है। सत्कर्म भगवान् के लिए कीजिए। परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए कीजिए।

आपकी इच्छा हो या न हो कर्म का फल मिलता ही है, परन्तु लौकिक फल की इच्छा रखने वाले का मन अशांत रहता है। अपेक्षा से अशान्ति का जन्म होता है। कुछ अपेक्षा है, कुछ चाहिए, और जब यह कुछ नहीं मिल पाता, तब अशांति आती है। कई लोग ऐसे होते हैं कि कथा में बैठने के लिए अच्छी जगह नहीं मिलती तो दस पाँच मिनट दुःखी रहते हैं। आपके हृदय में नारायण का निवास है। लक्ष्मीजी के पति आपके हृदय में विराज रहे हैं, फिर आपको क्या चाहिए? किसी अपेक्षा को न रख कर आप सत्कर्म कीजिए, भक्ति कीजिए। भक्ति भगवान् के लिए कीजिए। भक्ति का फल भोग नहीं है, संसार-सुख नहीं है। संपत्ति नहीं है। संतति भी नहीं है।

कुछ लोग यह समझ कर भक्ति कर रहे हैं कि भक्ति करने से भगवान् धन देंगे। पर भक्ति का फल धन नहीं है। भगवान् की भक्ति भगवान के लिए ही कीजिए। भगवान् साधन नहीं है, वे तो साध्य हैं। भगवान् से कुछ और माँगिये। धन माँगने पर भगवान् साधन होंगे और लौकिक सुख धन साध्य। कुछ लोग मंदिर में जाकर भगवान से माँगते हैं–"हे प्रभो! सभी मनोकामनाएँ पूर्ण करना।" प्रभु कहते हैं–"आज तक मैंने तुम्हारी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण कीं पर उनका कभी अंत ही नहीं आ रहा। एक कामना पूर्ण होने पर दूसरी खड़ी हो जाती है। कई लोग मंदिर में माँगने ही जाते हैं, इससे भगवान् को संकोच होता है, क्षोभ होता है। इससे ठाकुरजी धरती पर नजर रख कर

विराजते हैं। किसी को दृष्टि मिलाकर देखते ही नहीं हैं। पंढरपुर में विट्ठलनाथजी की नजर नाक की नोंक पर स्थित है। द्वारकानाथ की नज़र धरती पर है। प्रभु का कोई लाड़ला आ जाय और प्रभु से अनेकानेक विनती करे तो प्रभु नजर उठाते हैं। मंदिर में जो समर्पित करने आते हैं और माँगने नहीं आते, उन्हीं की ओर प्रभु देखते हैं। ऐसे जन प्रभु से कहते हैं प्रभु, मैं कुछ माँगने नहीं आया आपकी कृपा से मैं सुखी हूँ। मैंने निश्चय किया है कि मैं अपना मन आपको समर्पित करूँगा। आज से यह दृष्टि मैं किसी की ओर नहीं डालूँगा। आप जिन्हें दृष्टि देंगे, उन्हें मन भी देना ही पड़ेगा। जिन्हें आप दृष्टि में रखते हैं, वे मन में भी आते हैं। ऐसा सोचिये कि किसी भी मनुष्य को दृष्टि में नहीं रखूँगा। मैं भगवान् को ही अपनी दृष्टि समर्पित कर रहा हूँ। जगत् में देखने लायक एक परमात्मा श्रीकृष्ण ही है। संत जगत् को देखते हैं पर उपेक्षा से देखते हैं। संत की आँखें और मन श्रीकृष्ण को ही समर्पित होते हैं।

प्रेम में लेने की इच्छा नहीं होती। प्रेम में समर्पण की भावना होती है। प्रभु आपको धन देते हैं; सुख देते हैं। आपको जिसकी जरूरत होती है, प्रभु देते हैं। प्रभु तो नास्तिक को भी देते हैं। माँगने की जल्दी मत कीजिए। माँगने से प्रेम कम हो जाता है। मानव की योग्यता से भी अधिक प्रभु देते हैं। सुख देते हैं, संपत्ति देते हैं। प्रभु को आपकी चिंता है। प्रभु बिना मांगे ही देते हैं, पर मनुष्य को सब कुछ कम़ लगता है। प्रभु के पास माँगने जाते समय प्रभु को ऐसा लगता है कि यह माँगने वाला मुझे कंजूस समझ रहा है। अरे! तुम्हारी योग्यता के अनुसार ही मैंने तुम्हें दिया है।

आप पूछेंगे– 'महाराज, हम भगवान् से धन माँगते हैं तो इसमें क्या बुरा है?' बहुत बुरा नहीं है, पर अच्छा भी नहीं है। आपके घर में क्या है और क्या नहीं है– भगवान् जानते हैं। माँगने की जल्दी मत कीजिए। प्रभु आपको देंगे। प्रभु को देने में संकोच नहीं है। प्रभु अ़ति उदार हैं। लक्ष्मीजी के पति हैं। पर मानवों की योग्यता का विचार करके परमात्मा विवेक बुद्धि से देते हैं।

जिस तरह माता सन्तान को विवेक से देती है। बालक कितना माँगता है यह न देखकर क्या और कितना, क़ब देना योग्य होगा– इसका विवेक रख कर देती है। घर में लड्डू बने हैं पर माँ बालक को नहीं देती है, क्योंकि बालक के पेट में अजीर्ण है। आज लड्डू खाने पर बुखार आ जाय तो? माँ घर में जो कुछ बनाती है, बालक के लिए बनाती है। बालक के खाने से माँ प्रसन्न होती है, पर आज वह बालक को लड्डू नहीं देगी। बालक माँगता है, पर माँ सुनती नहीं है। बालक रोता है, पर माँ उसे नहीं देती है। प्रेम के कारण नहीं देती है। बहुत प्रेम है इसलिए ही नहीं देती है। बालक दुःखी न हो, इसकी चिन्ता माँ को है।

परमात्मा का स्वभाव माता जैसा है। परमात्मा विवेक से देते हैं। प्रभु ने कम दिया हो तो मन को समझाइए–मैं योग्य नहीं हूँ, इससे मुझे कम दिया है। मुझे अधिक धन मिलेगा तो मेरा मन खराब होगा, इससे प्रभु ने मुझे कम धन दिया है। जिसे बहुत सुख मिलता है, वह परमात्मा की भक्ति नहीं करता। प्रभु ने आपको संसार का सुख दिया हो तो समझना कि प्रभु ने कृपा की है। आप मन में ऐसी भावना रखिये कि मेरे प्रभु अति उदार है। अति प्रेम भरे हैं। मेरी योग्यता से अधिक दिया है। वे मुझे अधिक प्रेम करते हैं। मैं ही प्रेम नहीं करता। मुझे भगवान् से नहीं माँगना है, मैं प्रभु को सर्वस्व का समर्पण करना चाहता हूँ। वही भक्ति है, जिसमें सर्वस्व का समर्पण है। आप प्रभु के हो जाइए। परमात्मा से ऐसा प्रेम कीजिए कि उन्हें आपकी चिन्ता हो। वैष्णव तो प्रभु से मुक्ति भी नहीं माँगते।

हरि के जन मुक्ति नहीं माँगें, माँगें जन्म-जन्म अवतार रे,
नित सेवा, नित कीर्तन उच्छव, दर्शन पावें नन्दकुमार रे
जगत् माहि भक्ति श्रेष्ठ, जो ब्रह्मलोक में नहीं है रे.......

निष्काम भक्ति में जो आनन्द है वैसा आनन्द मुक्ति में भी नहीं है। वैष्णव प्रभु से मुक्ति भी नहीं माँगते हैं। 'मुझे दर्शन दो'–ऐसा भी नहीं कहते। वैष्णव कहते हैं–'मैं तो इतना ही माँगता हूँ कि आपकी सेवा करते समय मैं तन्मय हो जाऊँ। माँगने से प्रेम का भंग होता है, प्रेम कम हो जाता है। प्रभु से कुछ भी अनजान नहीं है। लड़का योग्य होता है तब पिता की समग्र सम्पत्ति उसे मिलती ही है, पर लड़का अयोग्य होता है, तब पिता ही उसे एक रुपया भी नहीं देता।

सुदामदेव की स्थिति दीन थी। घर में खाने के लिए भी कुछ नहीं था। सुदामदेव ज्ञानी थे। छः शास्त्र और चार वेदों का ज्ञान उन्हें था। पर उन्होंने संकल्प किया था कि ज्ञान का उपयोग धन प्राप्ति के लिए नहीं करूँगा। ज्ञान का फल धन नहीं है। उन्होंने निश्चय किया कि ज्ञान का उपयोग परमात्मा के ध्यान में करूँगा। सुदामदेव घर में कथा करते थे। पति वक्ता और पत्नी श्रोता। बाद में पत्नी के कहने से सुदामदेव द्वारिका गये। द्वारिका में प्रभु ने सुदामदेव का सम्मान किया। प्रभु ने पूछा–''मित्र तुम्हारा संसार कैसा चल रहा है।'' क्या प्रभु को मालूम नहीं कि इनका संसार कैसे चलता है? ब्राह्मण भूखा है, शरीर पर हड्डियाँ दीख रही हैं। फटी हुई धोती पहिन कर आया है पर श्रीकृष्ण कभी-कभी ऐसी लीला भी दिखाते हैं कि ''मैं निष्ठुर हूँ, मुझे किसी की परवाह नहीं है।'' भगवान् ने पूछा, तब सुदामदेव ने मन बिगाड़ा नहीं, जीभ भी बिगाड़ी नहीं। उन्होंने कहा–''बहुत आनन्द है, मैं तो आपके दर्शन के लिए आया हूँ।''

सुदामदेव ने सोचा कि अपने दुःख की बात कहकर मुझे अपने प्रभु को त्रस्त नहीं करना है। मेरा कन्हैया बहुत मृदु है। दुःख मेरे पाप के फल रूप हैं। प्रभु मुझे ठीक से देख भी नहीं सके और रोने लगे! मैंने प्रभु को त्रस्त करने नहीं आया हूँ। मैं लेने नहीं आया हूँ। मैं तो इन्हें चावल समर्पित करने आया हूँ। मैं सुना है कि ये राजाधिराज हैं, लक्ष्मीपति हैं। रोज छप्पन भोग का भोजन करते हैं। क्या ये मेरे भुने चावल स्वीकार करेंगे?

भक्ति में समर्पण की भावना होती है। जहाँ कुछ लेने की इच्छा है, वहाँ भक्ति नहीं है, मोह है। गुलाब के फूल को देखकर नाक के पास ले जाने का मन हुआ तो वह मोह है पर सुन्दर फूल को देखकर ठाकुरजी के चरणों में अर्पण करने की इच्छा जाग्रत हुई तो वह भक्ति है। सुख को अपनी ओर खींचना मोह है। प्रेम में परमात्मा को सुखी करने की इच्छा होती है।

सुदामदेव ने माँगा होता तो खेल बिगड़ जाता। भगवान् उतना ही देते हैं, जितना माँग लिया जाता है। सुदामदेव ने माँगा नहीं। अपना सर्वस्व अर्पण किया है। लौकिक दृष्टि से उन्होंने मुट्ठी भर दिया होगा, पर सुदामदेव के लिए वही सर्वस्व था। परमात्मा ने उसे स्वीकार किया। उसने अपना सर्वस्व मुझे दिया है। मैं अपना सर्वस्व उसे दे रहा हूँ। श्रीकृष्ण सुदामदेव को अपना सर्वस्व देते हैं। इतना सब दिया पर प्रभु एक अक्षर तक नहीं बोले। सुदामा के चरणों पर मस्तक रखा और कहने लगे–'मित्र! मैंने तुम्हें कुछ नहीं दिया पर तुम्हें दूँ ही क्या? तुम्हारे आशीर्वाद से ही मुझे यह सब मिला है। तुम्हारे आशीर्वाद से मैं सुखी हूँ।'

जीव जब जीवत्व छोड़ कर ईश्वर के द्वार पर जाता है, तब परमात्मा भी ईश्वरत्व भूल जाते हैं। जीव जीवत्व नहीं छोड़ सकता। ईश्वर जीव से कहते हैं–'तुम मेरे हो।' परन्तु जीव यही समझ नहीं सकता, कि ईश्वर मेरे हैं। इससे जीव दुःखी होता है। ईश्वर से विमुख रहता है। द्वारिकानाथ ने सुदामदेव को द्वारिकानाथ बना दिया है! सुदामदेव जैसा कोई याचक नहीं हुआ और श्रीकृष्ण जैसा कोई दानी नहीं हुआ। भगवान् तो परिपूर्ण हैं। परमात्मा परिपूर्ण ही देते हैं, तो भी परिपूर्ण ही रहते हैं–

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

सुदामदेव की निष्काम भक्ति है। निष्काम भक्तों को भक्ति में ही आनन्द आता है। वैष्णव परमात्मा को अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं, और परमात्मा से परमात्मा को ही माँगते हैं। भगवान् ऐसे भक्तों को छोड़ते नहीं हैं। जहाँ भक्ति है, वहीं भगवान् है। भक्ति के बिना भगवान् नहीं है। भगवान् भक्तों के ऋणी रहते हैं। भगवान् गोपियों के ऋणी ही रहे है। गोपियों की निष्काम भक्ति

है। गोपी प्रेम अति शुद्ध है। इसलिए ही उद्धव जैसे ज्ञानी पुरुष गोपियों की चरण-वंदना करते हैं। उद्धव का ज्ञान का अभिमान उतर गया है। व्रजवासी तो ऐसा कहते हैं–'ऊधो सूधो भयौ है।' उद्धव का जब तक गोपियों से सत्संग नहीं हुआ था, तब तक बहुत अकड़ते थे, बोलते थे। गोकुल गये थे गोपियों को उपदेश देने के लिए पर गोपियों का सत्संग उन्हें मिला और गोपियों को उन्होंने गुरु बना लिया।

उद्धव गोपियों को समझाने लगे–'श्रीकृष्ण को भूल जाओ और निर्गुण ब्रह्म का चिंतन करो। आँखें बन्द रखकर चिन्तन करो। ध्यान करो, समाधि लगाओ।'

गोपी कहती हैं–उद्धवजी! हमारा मन तो एक है और वह तो श्रीकृष्ण के पास है। दो-चार मन होते तो एक मन को समाधि में रख लेतीं। उद्धवजी! खुली आँखों से श्रीकृष्ण दीखते हैं, तब आँखें क्यों बन्द रखें?

जिसे खुली आँखों से जगत् दिखाई पड़ता है, वह आँखें बन्द करके ज्योति का ध्यान करता है, पर जिन्हें वृक्ष में भी कन्हैया दीख पड़ता है, वे गोपियाँ क्यों आँखों को बन्द रखें? कई ज्ञानी पुरुषों को आँखें बन्द करने पर परमात्मा दिखाई देते हैं, पर आँखें खुली रहने से जगत दीख पड़ता है। उनका ज्ञान कच्चा है। खुली आँखों से भी जिन्हें परमात्मा ही दीख पड़ते हों, उन्हीं ने ज्ञान को पचा लिया है। उनके लिए जगत् है ही नहीं। गोपियाँ उद्धवजी से कहती हैं–'मेरे कृष्ण मेरे साथ ही हैं। मथुरा में कोई दूसरे कृष्ण होंगे।'

भक्त भगवान् के बिना रह ही नहीं सकते और भगवान् को भी भक्त के बिना चैन नहीं पड़ता। जिन्हें संसार का सुख मीठा लगता है, उनके पास भगवान् नहीं रह सकते। परमात्मा श्रीकृष्ण तो सदैव गोपियों के साथ ही है।

गोपी कहती है–'उद्धवजी! आप कहते हैं ब्रह्म निर्गुण-निराकार है। सगुण क्या, निराकार क्या, साकार क्या–हम यह नहीं जानतीं। मैं तो इतना ही जानती हूँ कि जब प्रेम से मैं श्रीकृष्ण को बुलाती हूँ तब वे मुझे दर्शन देते ही हैं। उद्धवजी! खुली आँखों से भी मुझे श्रीकृष्ण ही दीख पड़ते हैं। जहाँ जाती हूँ, मुझे मेरा लाला ही दिखाई देता है। उनकी तो ऐसी आदत है कि वे असली स्वरूप छिपाते रहते हैं। उद्धवजी! उन्होंने आपको असली स्वरूप दिखाया ही नहीं है। इससे आप निर्गुण निराकार की बात करते हैं। एक बार ही जो मेरे कृष्ण का दर्शन कर लेता है, वह उनको एक क्षण भी छोड़ नहीं सकता। आपको अभी असली स्वरूप के दर्शन नहीं हुए हैं। मेरी तो दृष्टि जहाँ जाती है, वहाँ मुझे मेरे श्रीकृष्ण दीख पड़ते हैं। इस वृक्ष में श्रीकृष्ण हैं, वृक्ष के पत्ते में भी श्रीकृष्ण हैं।'

व्यासजी कहते हैं–ब्रह्म व्यापक है, ब्रह्म सर्वत्र है। उसी ब्रह्म का अनुभव गोपियों को हुआ है। गोपियों को सर्वत्र श्रीकृष्ण ही दीख पड़ते हैं। गोपी कहती हैं–उद्धवजी! आप कहते हैं कि श्रीकृष्ण मथुरा में विराजे हैं। आप उनका सन्देश लेकर आए हैं। पर उद्धवजी मेरे श्रीकृष्ण तो मेरे साथ ही रहते हैं। मेरे बिना एक क्षण भी उन्हें चैन नहीं है। वे मेरे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते। मथुरा में कोई दूसरे श्रीकृष्ण होंगे। श्रीकृष्ण गोपियों को छोड़कर रहते ही नहीं हैं। जहाँ गोपी है, वहीं श्रीकृष्ण हैं। उद्धवजी! आप कहते हैं कि श्रीकृष्ण मथुरा में विराज रहे हैं, पर कल ही वे यमुना के तट पर दीख पड़े थे। सुबह ही मैंने उनकी बाँसुरी सुनी है। वे कदम के वृक्ष पर बाँसुरी बजा रहे थे। आप भले ही कहें कि श्रीकृष्ण मथुरा में विराज रहे हैं पर वे तो यहीं हैं। कल ही मैं जब यमुना तट पर जल भरने गयी तब अँधेरा हो रहा था और मैं डर रही थी। मुझे श्रीकृष्ण के बिना चैन नहीं है। जब मैं 'श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण' कहती हूँ, तब वे मेरी बायीं ओर खड़े होते हैं। कभी ऐसा लगता है कि वे दाहिनी ओर खड़े हैं। उद्धवजी, मूझे अँधेरे में कुछ दिखाई नहीं दिया। पग में काँटा लगा। मैं 'श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण' बोल रही थी। मेरे श्रीकृष्ण दौड़ते हुए आये। श्रीकृष्ण ने उस काँटे को निकाल दिया। मेरे सिर पर पानी का घड़ा रख दिया और मुझे घर तक पहुँचाने वे आयें। मेरे साथ उन्होंने बातें भी कीं। अपने लाला से मैंने पूछा–आप तो मथुरा गये थे? कब लौट कर आये? श्रीकृष्ण ने कहा–अरी सखी! मैं मथुरा गया ही कब हूँ? मैं तो तेरे साथ ही हूँ। मुझे तेरे बिना चैन नहीं पड़ रहा है।

जहाँ गोपी हैं, वहीं श्रीकृष्ण हैं। जहाँ भक्ति है वहीं भगवान् हैं ही। भगवान् को भक्तों के बिना चैन नहीं पड़ता। भगवान् की शोभा भक्तों से ही है। अगर भगवान् के पास भक्त न हों तो भगवान् अकेले बैठे क्या करेंगे? भगवान् की महत्ता भक्तों द्वारा ही बढ़ती है। श्रीकृष्ण गोपियों को छोड़कर रह ही नहीं सकते। गोपी प्रेम से लाला को बाँध रखती है। गोपी के प्रेम का बन्धन परमात्मा भी नहीं छुड़ा सकते।

गोपी प्रेम की महिमा अपार है। एक बार श्रीकृष्ण बीमार पड़े। बीमार तो क्या, उन्होंने ऐसा नाटक किया। जब किसी दवा से सफलता नहीं मिल रही थी, तब प्रभु ने वैष्णव-चरणों की रज माँगी। वैष्णव के चरणों की रज मिल जाय तो रोग का निवारण हो जाय। श्रीकृष्ण की रानियों से चरण-रज की माँग की गयी। रानियों को धक्का लगा, क्षोभ हुआ। प्राणनाथ को चरण-रज देने से पाप होता है और नरक में जाना पड़ता है। नरक में जाने के लिए कौन तैयार होगा? अन्यों से भी चरण-रज की माँग की गई पर कोई तैयार नहीं हुआ। गोपियों ने जब यह बात सुनी कि उनके श्रीकृष्ण बीमार हैं तब उन्होंने कहा–'अगर वे स्वस्थ होते हों तो अपने चरणों की रज देने के लिए

हम तैयार हैं। इसके लिए दुःख भोगना पड़े तो भी हम तैयार है। हमारा कन्हैया सुखी होता है तो हम नरक में जाने के लिए भी तैयार हैं। 'गोपियों ने चरण-रज दी।' श्रीकृष्ण का रोग नष्ट हो गया। सच्चे निष्काम प्रेम की परीक्षा हुई। निष्काम भक्ति भगवान् को प्रसन्न करती है। गोपियों की तरह निष्काम भक्ति का अभ्यास कीजिए। भक्ति जैसा आनन्द मुक्ति में नहीं है। मुक्ति भक्ति की दासी है–

धन्य वृन्दावन धन्य वे लीला, धन्य वे व्रज के वासी रे।
अष्ट महासिद्ध आँगन में खड़ी, मुक्ति तौ है दासी रे।।
भूतल भक्ति पदारथ ऐसा, ब्रह्मलोक में नहीं है रे।।

भगवान् की सेवा व स्मरण करते हुए जो देहभान गवां देते हैं, मुक्ति उनके पीछे-पीछे चली आती है। इस प्रकार निष्काम भक्ति भागवत शास्त्र का प्रमुख विषय है। भगवान् की भक्ति योग के लिए मत कीजिए; भगवान् की भक्ति भगवान् के लिए ही कीजिए। भक्ति का फल भगवान् ही है। भक्ति करने वाले को आनंदमय भगवान् की अनुभूति होती है। भक्ति का अधिकार सबको दिया गया है। ज्ञान का अधिकार सबको नहीं मिला है। चाहे कैसा भी जीव हो भगवान् की भक्ति कर सकता है, परमात्मा की सेवा-पूजा कर सकता है। ज्ञान का अधिकार सबको नहीं है। बँगलों में बहुत विलासपूर्ण जीवन जीते रहें और ब्रह्मज्ञान की बातें करें, वह योग्य नहीं है। ज्ञान तो वैराग्य-पात्र में ही टिकता है। ब्रह्मज्ञान (पारद) पारा है। वैराग्य के बिना उसका पाचन नहीं होता, वह टिकता भी नहीं–

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा.....

साधनचतुष्टय सम्पन्न को ही ब्रह्मविद्या का अधिकार दिया गया है। उपनिषद् ही वेदांत है। वेद के तीन भाग हैं–संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक। संहिता यज्ञरूप है। यज्ञ का उपयोग कैसे करना चाहिए, इसका मर्म ब्राह्मण में है। कंद-मूल, फल खाकर, अरण्य में रहकर ऋषियों ने जिन ग्रंथों की रचना की है, वे आरण्य कहे जाते हैं। वेदांत का अधिकार सभी को नहीं है। कर्म-काण्ड, ज्ञान-काण्ड, उपासनाकाण्ड–इनके भिन्न-भिन्न अधिकारी नियुक्त किये गये हैं, जबकि भागवत सबके लिए है। भागवत का आश्रय लेंगे तो भागवत आपको भगवान् की गोद में बिठा देगी। जगत्-ईश्वर, जीव-जगत् और जीव-ईश्वर का ज्ञान भागवत से मिलेगा। भागवत ग्रंथ पूर्ण है। शुद्ध अंतःकरण वाले पुरुषों के लिये जानने- योग्य परमात्मा का निरूपण भागवत में है।

मत्सर करने वाले के लोक और परलोक दोनों बिगड़ते हैं। मन में मत्सर मत रखिये। मन में स्थित मत्सर को निकालेंगे तो मनमोहन का स्वरूप मन में बैठ जायगा। मन शुद्ध रखिये। निर्मत्सर रखिये। किसी जीव के प्रति दुर्भाव रखेंगे तो ईश्वर के प्रति दुर्भाव रखने जैसा होगा। जैसी

भावना आप दूसरों के लिए रखेंगे। वैसी ही भावना दूसरे आपके लिए रखेंगे। दूसरे के साथ वैर रखने वाला अपने से ही वैर रखता है क्योंकि सब के हृदय में ईश्वर बसते हैं। मनुष्य निर्मत्सर नहीं बनेगा, तब तक उसका उद्धार नहीं होगा।

यह कथा इतनी मधुर है कि जो सुनता है, उसका पाप जल जाता है, उसके हृदय में भगवान् प्रविष्ट होते हैं। कथा के सिद्धान्तों को याद रखकर, जो जीवन में आचरण करता है, जो निरंतर भक्ति करता है वह तर जाता है। जानना कठिन नहीं है, जीवन में उसका उतारना कठिन है। कथा करने वाले बहुत हैं। कथा करवाने वाले और कथा सुनने-वाले भी बहुत हैं पर कथा के एक-एक सिद्धांत को जीवन में उतारने वाले, और निरंतर भक्ति करने वाले बहुत कम हैं।

भोजन की बातों से संतोष नहीं होता। भोजन करने से तृप्ति होती है। ज्ञान जब क्रियात्मक नहीं होता, जब बोझ बन जाता है। ज्ञान जब क्रियात्मक बनता है, तब लाभ होता है। अकेले 'सुश्रूषुभिः' नहीं, 'कृतिभिः' भी बनिये। ज्ञान के अनुसार कार्य कीजिए। ज्ञान के अनुसार कार्य न करने पर कार्य के अनुसार ज्ञान हो जाता है। मानव मूर्ख नहीं है, वह ज्ञानी है, पर ज्ञान के अनुसार कार्य नहीं करता।

कुछ लोग ऐसा मान रहे हैं कि व्यवहार में तो थोड़ा झूठ बोलना ही पड़ता है। यह उनकी भूल है। व्यवहार शुद्ध रखिये। भक्तिपूर्वक भागवत की कथा सुनने वाला निष्काम और निर्मत्सर बनता है।

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं, शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं, मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥ (१-१-३)

भागवत वेदरूपी कल्पवृक्ष का दिव्य, रसात्मक फल है। भक्तिरस का, प्रेमरस का पान कीजिए। भक्ति-प्रेम में मन को निमग्न रखिये। भक्ति में संतोष न रखिये। भक्ति की समाप्ति न कीजिए। हो सके तो भोग की समाप्ति कीजिए। बहुत सुख का भोग न कीजिए। बहुत सुख भोगा, पर अनेक बार भोगा पर आज तक शाँति नहीं मिली। ''मैं अब सुख भोगना नहीं चाहता''-मन से ऐसा निश्चय कीजिए। वैष्णव भोग की समाप्ति करते हैं। वैष्णव कभी भी भक्ति की समाप्ति नहीं करते हैं। भक्ति कब तक? 'रस आंलयम्'-अर्थात् लय पर्यन्त भक्ति करनी है। जीव परमात्मा से मिल जाय, उससे एक रूप हो जाय, उसे लय कहते हैं। भक्ति निरंतर करनी है। भक्ति जीवन की अंतिम साँस तक करनी है।

मंगलाचरण में, प्रस्तावना का थोड़ा भावार्थ समझाया। अब कथा का आरम्भ होता है।

७– कलियुग में श्रेय-प्राप्ति का सरल साधन

परम पवित्र नैमिषारण्य में अट्ठासी हजार ऋषियों का ब्रह्मसत्र हुआ है। ऋषियों को स्वर्ग के सुख भोगने की इच्छा नहीं है। उनकी भगवान् नारायण के चरणों में रहने की इच्छा है, भावना है। सभी ऋषि अग्निहोत्री तपस्वी ब्राह्मण जैसे हैं। अग्नि मन को शुद्ध करता है, इससे अग्नि का नाम है पावक।

पावयति यः सः पावकः

ऋषि अग्नि का उपयोग करते हैं। अग्नि से खाना पकाते हैं। अग्नि से ही जीवन है। अग्नि प्रत्यक्ष परमात्मा का स्वरूप है। ऋषि अग्निहोत्री ब्राह्मण हैं। वे अग्नि में होम करते हैं। अग्निहोत्री ब्राह्मण के घर में चार कुण्ड होते हैं। कई एक कुण्ड का अग्निहोत्र रखते हैं–ठीक है। पर अग्निहोत्र चार कुण्ड का होता है। गार्हवत्याग्नि, दक्षिणाग्नि, आहवन्याग्नि और स्मार्ताग्नि ये चार प्रकार की अग्नि रखते हैं। गार्हवत्याग्नि का कुण्ड चौरस होता है। दक्षिणाग्नि का कुण्ड अष्टमी के चन्द्र जैसा होता है। गोलाकार कुण्ड आहवन्याग्नि का होता है और विवाह के साथ घर आता है, उसे स्मार्ताग्नि कहते हैं–

त एकदातु मुनयः प्रातहुत हुताग्नयः।
सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात्॥

अग्निहोत्री ब्राह्मण नित्य कर्म और नैमित्तिक कर्म–ऐसे दो प्रकार के होम करते हैं। एक बार ये अग्निहोत्री ब्राह्मण दोनों प्रकार के होम करके बैठे थे। तब से व्यास महर्षि दो बार 'हुत' शब्द का प्रयोग करते हैं।

भागवत में एक भी अक्षर व्यर्थ नहीं है। भागवत में से एक भी अक्षर निकालने या बढ़ाने का किसी को अधिकार नहीं है। व्यासनारायण एक भी अक्षर कम या अधिक नहीं बोलते हैं। एक भी अक्षर अधिक बोलना पाप है। तोलकर, नापकर बोलिये। अधिक मत बोलिए जो व्यक्ति अधिक बोलता है, वह प्रायः झूठ ही बोलता है। जो आदमी अधिक बोलता है, वह प्रायः किसी की निन्दा ही करता है। वह निरर्थक अधिक बोलता है। जिन शब्दों का कोई अर्थ नहीं है, उन शब्दों को बोलने से, निरर्थक शब्दों के बोलने से शक्ति का नाश होता है। तब आप कान से सुनिए कि मैं अधिक तो नहीं बोल रहा? मैं निरर्थक शब्दों को उच्चारित तो नहीं कर रहा? वस्तुतः अधिक बोलने, व्यर्थ बोलने की बुरी आदत मनुष्य को होती है। व्यास महर्षि एक अक्षर भी अधिक नहीं बोलते हैं। बाजार से कोई आ रहा है तो कई लोग पूछते हैं–'सब्जी–वब्जी ले आये

हैं?' सब्जी का तो अर्थ है पर वब्जी का क्या अर्थ? व्यवहार में आदमी अनेक शब्द निरर्थक बोलता है। शब्द ब्रह्म का स्वरूप है। एक अक्षर भी अधिक नहीं बोलना चाहिए।

संध्या, गायत्री, अग्नि में दो प्रकार के होम इत्यादि सत्कर्म करके ऋषिगण शाँति से ब्रह्मसत्र में बैठे हैं। उसी समय पर सूतजी वहीं पधारे हैं। सूतजी का स्वागत किया गया। बाद में प्रधान आचार्य शौनक मुनि ने सूतजी से प्रश्न पूछा–'कल्याण का स्वरूप क्या है? श्रेय किसे कहते हैं?' कई लोग ऐसा समझ रहे हैं कि लाख दो लाख रुपये हाथ में आ जाय तो कल्याण हो जाता है। कोई उपाधि नहीं रहेगी। अरे, पैसा आपको भले ही सुख दे, पर पैसे से कभी किसी के दुःख का अन्त आता नहीं है। जिसके हाथ में पैसा है वह भले ही सुख भोगता रहे पर उसे भी दुःख भोगना ही पड़ता है। दुःख का अन्त तो परमात्मा के साथ प्रेम करने पर ही होता है।

शौनकजी पूछते हैं–'श्रेय किसे कहते हैं? तथा प्रेय किसे कहते हैं?'

जो सदैव सर्व को प्रिय होता है वही श्रेय। जो कुछ समय तक प्रिय लगता है, बाद में अप्रिय लगता है उसे प्रेय कहते हैं। संसार के सभी विषय प्रेय-स्वरूप हैं। ये सदैव किसी को प्रिय नहीं लगते हैं। जो थोड़े समय के लिये प्रिय लगता है, बाद में अप्रिय अरुचिकर हो जाता है तथा मन जहाँ से हट जाता है वह है प्रेय। फूल मुरझाने पर प्रिय नहीं लगता। आनन्दमय परमात्मा ही श्रेय हैं। आनन्द सभी को चाहिए और सदैव चाहिए। परमात्मा श्रेय-स्वरूप हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के बिना सभी कुछ क्षणिक है, दुःख-रूप है। इसी से वह प्रेय है। शौनकजी कहते हैं–'कल्याण का, श्रेय का स्वरूप समझाइए। श्रेय-प्राप्ति का सरल साधन बतलाइये। साधन सरल होगा तो कलियुग में लोग इसका उपयोग कर सकेंगे। कलियुग में मानव शरीर में से शक्ति का विनाश हुआ है। आयुष्य का भी विनाश हुआ है। जीवन बहुत छोटा है और छोटे जीवन में बहुत बिघ्न आते हैं। इसका विचार करके आप श्रेय प्राप्ति का सरल साधन बतलाइए–

मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः। (१-१-१०)

कलियुग में लोगों को बहुत-सी सुविधाएँ चाहिए। इससे व्यासजी महर्षि ने वर्णन किया है कि कलियुग में लोग मंदबुद्धि वाले हैं। जिसे सुविधाएँ मिलती हैं, वह अधिक भक्ति नहीं करता है। जिसे अधिक सुविधाएँ मिलती हैं, वह आलसी बन जाता है। शय्या में लेटा रहता है और मजा लूटता है। इससे उसे बहुत सजा मिलती है। जीवन में थोड़ी असुविधा तो होनी ही चाहिए। जिसे सब तरह का सुख मिलता है वह भान भूल जाता है। वह शांति से भक्ति नहीं करता है।

कलियुग का मनुष्य मंदबुद्धि वाला है। कलियुग में शक्ति का क्षय हुआ है। मानव यंत्र के अधीन हुआ है। यंत्र का अर्थ है, जो मानव के अधीन रहता है वह यंत्र परन्तु अब मानव यंत्र के

आधीन बन गया है। यंत्र-युग में शक्ति का नाश हो गया है, आलस्य बढ़ गया है। मानव बहुत दुर्बल हो गया है। परतंत्र हुआ है। प्राचीन काल में मंत्र-शक्ति थी। धीरे-धीरे मंत्र-शक्ति कम होने लगी और यंत्र-शक्ति बढ़ने लगी। सूतजी कथा कर रहे थे, तब अट्ठासी हजार ऋषि कथा सुन रहे थे फिर भी आवाज के लिए इतने बड़े-बड़े लाउड-स्पीकर नहीं थे। अट्ठासी हजार ऋषियों को सुनाई दे, इतनी बड़ी आवाज से बोलना पड़ता होगा न!

कलियुग का मानव मंदबुद्धि वाला है और मंद शक्ति वाला है। कलियुग के लोग ऐसा समझ रहे हैं कि हम बहुत चतुर हैं, समझदार हैं। बहुत से तो ऐसा भी मानते हैं कि हमारे बुजुर्ग मूर्ख थे। हमने यह नयी खोज की है। अरे, वास्तव में हमारे बुजुर्ग ज्ञानी थे, बहुत बुद्धिमान थे। कलियुग का मानव मंदबुद्धि वाला है। जो काम बहुत आवश्यक है, वही काम वह नहीं कर रहा है और जो काम बहुत आवश्यक नहीं है, वही काम वह सबसे पहिले करता है।

हमारे शास्त्रों में लिखा है कि सुबह चार बजे उठकर ध्यान करना चाहिए। लोग सुबह उठकर ध्यान नहीं करते हैं। जब सुबह थोड़ी-थोड़ी सर्दी पड़ती है तब तो इसे शय्या में ही आनंद आता है, सुबह के चार बजे के बाद जिसे शय्या में बहुत आनन्द आता है, उसे ऊपर जाने की सजा भी बहुत मिलती है। उसे मार पड़ती है। शास्त्र में ऐसा लिखा है। अनेक काम-करोड़ों काम छोड़कर भगवान् का ध्यान कीजिए-

शतं विहाय भोक्तव्यं, सहस्त्रं स्नानमाचरेत्।
लक्षं विहाय दातव्यं, कोटिं त्यक्त्वा हरिं भजेत्॥

सौ काम छोड़कर पहले भोजन कीजिए। वह तो आप करते ही होंगे। इससे वह कहने की जरूरत नहीं है। हजार काम छोड़कर स्नान कीजिए। लाख काम छोड़कर दान कीजिए और करोड़ों काम छोड़कर भगवान् की भक्ति कीजिए।

बहुत-से लोग ऐसे होते हैं कि घर के सभी कामों को पूर्ण हो जाने के बाद माला लेकर बैठते हैं और जैसे माला ली कि निद्रादेवी दौड़ती-दौड़ती आ पहुँचती हैं। अरे, घर का काम पहिला कि परमात्मा पहिले? घर किसने दिया? आँखें किसने दीं? घर का काम बाद में किन्तु सुबह पहिले भक्ति कीजिए। कलियुग का मानव मंदबुद्धि का है जो काम बहुत जरूरी है, वह नहीं करता और जो जरूरी नहीं है, उसे पहिले करता है। कलियुग का मानव व्यवहार में बहुत सावधान रहता है परन्तु भक्ति में बहुत गाफिल रहता है। इससे उसे मंदबुद्धि वाला कहा गया है। व्यवहार का काम बहुत सावधानी से करता है। कई लोग जब रुपये गिनते हैं, तब एकाग्र चित्त से गिनते हैं। भूल न हो इसलिए सावधान रहते हैं। कोई आता है तो उन्हें दिखाई नहीं देता। कोई कुछ कहता है तो उन्हें

सुनाई नहीं पड़ता! ''मैं रुपये गिन रहा था, आप कुछ कह रहे थे क्या?'' क्या कह रहे थे, जरा भी ध्यान नहीं है। पर माला करने जब बैठते हैं। तब कोई आता है तो सभी कुछ सुनाई पड़ता है! माताएँ जब खाना बनाती हैं, तब एकाग्र चित्त से नमक डालती हैं। सोचती हैं किं नमक कम न पड़ जाय? कदाचित कम नमक होगा तो मजा नहीं आयगा। और अधिक पड़ जायगा तो दाल-बेस्वाद हो जायगी! व्यवहार में काम करते हुए मानव एकाग्र चित्त से काम करता है। बहुत सावधान होकर काम करता है। पर भगवान् की भक्ति एकाग्र चित्त से नहीं करता। सेवा-पूजा भी नहीं करता। इससे व्यासजी ने हमें मंदबुद्धि वाला कहा है। कलियुग का मानव मंद-भाग्य वाला है। भाग्यशाली कौन है? क्या बहुत भाग्यशाली है? संपत्ति जब बढ़ती है, तब मनुष्य प्रमादी बनता है। अति संपत्ति प्राप्त होने पर मनुष्य में विकार-वासना बढ़ती है। भाग्यशाली तो वह है, जिसे भजनानंदी साधु-सन्तों का सत्संग मिलता है। कलियुग का मानव मंद-भाग्य वाला है, क्योंकि उसे भजनानंदी साधु-संतों का संग नहीं मिलता है और मिलता है तो टिकता नहीं है।

शौनकजी कहते हैं–'' भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए इसका कारण समझाइए।''श्रीकृष्ण-लीला अनेक बार सुनी है परन्तु श्रीकृष्ण-लीला से तृप्ति नहीं होती है। पुनः आज हमें श्रीकृष्ण की कथा सुनाइए। श्रीकृष्ण का स्वरूप ऐसा मधुर है, ऐसा मंगलमय है कि प्रेम से बालकृष्णलाल के दर्शन करते हैं, तब बहुत ही आनन्द मिलता है।

चाहे कैसा भी मानव-शरीर हो, आप एक बार, दो बार, अधिक से अधिक दस बार देखेंगे फिर आपका मन वहाँ से हट जायगा। परमात्मा का स्वरूप अति सुन्दर है इसका वर्णन नहीं हो सकता। करोड़ों कामदेवों से भी श्रीकृष्ण सुन्दर हैं। करोड़ों सूर्यो से भी श्रीकृष्ण प्रकाशमय हैं। करोड़ों चंद्र से भी परमात्मा शीतल हैं, आनन्द देने वाले हैं। परमात्मा का वर्णन शब्दों से नहीं हो सकता। वेद कहते-कहते थक गये। जब दर्शन करते हैं, नया ही आनन्द आता है। दर्शन से जो तृप्त नहीं होता, वह वैष्णव। वैष्णव का मन दर्शन से तृप्त ही नहीं होता। जब-जब 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण हरे हरे' प्रेम से बोलेंगे तब-तब नया ही आनन्द आयेगा। परमात्मा का नाम नित्य नव्य है। प्रेम से जो प्रभु के नाम का जप करता है, उसे आलस्य नहीं आता। उसे नित्य नया आनन्द मिलता है। श्रीकृष्ण कथा भी ऐसी ही मधुर है। जब-जब कथा सुनते हो, तब-तब नया ही आनंद आता है। उसे नित्य नया आनन्द मिलता है। श्रीकृष्ण कथा भी ऐसी ही मधुर है। वक्ता प्रेम से वर्णन करता है और श्रोता प्रेम से श्रवण करता है तो जब-जब कथा होती है, तब-तब नया ही आनन्द आता है।

संसार के विषयों को जब तक नहीं भोगा है, तब तक थोड़ा मीठा लगता है, पर भोगने के बाद तुच्छ लगता है। विषय-भोग के बाद उसमें से मन उखड़ जाता है। उसे देखने तक की इच्छा नहीं होती है। किसी को श्रीखंड बहुत भाता है तो उसे श्रीखंड-पूड़ियाँ खिलाइए। दो-चार ग्रास उसे बहुत स्वादपूर्ण लगते हैं। श्रीखंड बहुत अच्छा है, परन्तु भूख शान्त होने पर उसे श्रीखंड नहीं भाता है। पेट बराबर भर गया और कोई परोसने आ गया है, तो वह कहेगा कि मेरी तो देखने तक की इच्छा नहीं हो रही है। आप इसे यहाँ से ले जाइए। कदाचित् कोई कहेगा कि आपको तो बहुत भाता है न? तो वह कहेगा– ''सच है, यह बहुत सरस है। मुझे बहुत भाता है पर अभी मुझे देखने की भी इच्छा नहीं है।'' कदाचित् घर का कोई व्यक्ति यह कहे कि आपको देखने तक की इच्छा नहीं है तो रास्ते के भिखारी को बुलाकर दे दूँ? तो कहा जायगा–''ना, ना, देने दिलाने की जरूरत नहीं है रख दीजिए। फिर रात में देखेंगे, खायेंगे, अभी तो नहीं। हो सका तो रात में खा लेंगे।'' तो इस प्रकार विषय भोगने के बाद उससे अरुचि हो जाती है, विषय तुच्छ लगते हैं। उनसे वैराग्य हो जाता है। परन्तु यह वैराग्य अधिक टिकता नहीं है। ज्ञान-वैराग्य के साथ भक्ति की आवश्यकता है। ज्ञान की कथा से भी जी ऊबने लगता है। भक्ति की कथा में प्रेम की कथा से कभी अरुचि नहीं होती है। प्रेम नित्य नूतन है भगवत्-प्रेम की कथा में प्रत्येक शब्द में मिठास है। श्रीकृष्ण-कथा अति मधुर है। जब-जब श्रीकृष्ण-कथा आप सुनेंगे, तब-तब आपको नया ही आनंद आयेगा।

शौनकजी कहते हैं–''श्रीकृष्ण-कथा मैंने अनेक बार सुनी है, पर फिर भी मुझे तृप्ति नहीं होती है–

वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे।
यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु-स्वादु पदे-पदे॥ (१-१-१९)

हाँ तो शौनकजी निवेदन करते हैं कि फिर से श्रीकृष्ण-कथा हमें सुनाइए। जगत् में जब अधर्म बढ़ जाता है, तब भगवान् पधारते हैं। अब जब श्रीकृष्ण स्वधाम पधारे हैं, तब किसकी शरण में हैं यह हमें कहिए। अधर्म जब बढ़ जाता है। तब धर्म का क्या होता है? धर्म कहाँ रहता है? प्रथम अध्याय को 'प्रश्नाध्याय' कहते हैं। इस अध्याय में अनेक प्रश्न हैं। अब सूतजी कथा का प्रारम्भ करते हैं। कथा के प्रारम्भ में–

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ (१-२-४)

यह श्लोक कह कर नारायण का वंदन करते हैं। देवी सरस्वती को प्रणाम करते हैं।

इस जगत् के मालिक बद्रीनारायण आश्रम में विराजमान नारायण स्वामी हैं। सब अवतारों की समाप्ति होती है, पर नारायण भगवान् के अवतार की समाप्ति नहीं हुई है। नारायण भगवान आज भी हिमालय में प्रत्यक्ष विराजमान हैं। रामायण में कथा है कि रामचन्द्रजी ने राक्षसों का नाश कर दिया। राम-राज्य में प्रजा बहुत सुखी हुई, फिर रामजी स्वधाम पधारे हैं। अयोध्या में सरयू नदी के तट पर एक घाट है उसका नाम गुप्त घाट है। अयोध्या के सन्त महात्मा ऐसा वर्णन करते हैं कि श्रीसीताराम के अन्तिम दर्शन यहीं हुए थे। यहाँ से श्रीसीतारामजी स्वधाम पधारे, अन्तर्धान हुए, गुप्त हुए। इससे इस घाट का नाम गुप्त घाट रखा गया है। श्रीकृष्ण भगवान् स्वधाम पधारे। उनका वर्णन व्यासजी ने लिखा है, परन्तु भरतखण्ड के मालिक नर-नारांयण भगवान् के अवतार की समाप्ति नहीं हुई है। नर-नारायण आज भी हिमालय में प्रत्यक्ष विराजमान हैं। भारत की प्रजा सुखी हो, भारत का कल्याण हो, इसके लिए नर-नारायण स्वामी हिमालय में कलाप नामक गाँव में तप कर रहे हैं। ढाई हजार वर्ष पहले भगवान् श्रीशंकराचार्य स्वामी कलाप गाँव में नर-नारायण के दर्शन के लिए पधारे थे। वहाँ अति ठंड थी। महान योगी ही ऐसी ठंड सह सकते हैं। साधारण देव भी ऐसी ठंड नहीं सह सकते, तब मनुष्य कैसे सह सकता है? श्रीशंकर स्वामी ने प्रभु से कहा कि कलियुग में लोगों को आपके दर्शन कैसे हो सकते हैं? कलियुग का मनुष्य यहाँ तक आ ही नहीं सकता। आप रास्ता दिखाइए। तब नर-नारायण प्रभु ने आज्ञा की कि आप नारद कुण्ड में स्नान कीजिए। स्नान करते हुए आपको मेरा स्वरूप प्राप्त होगा। उस स्वरूप की स्थापना कीजिए। आपके द्वारा स्थापित किये स्वरूप का दर्शन जो करेंगे उन्हें मेरे दर्शन का फल प्राप्त होगा।

लोग जिन बद्रीनारायण के दर्शन करते हैं, वह भगवान् श्रीशंकराचार्य स्वामी के द्वारा स्थापित स्वरूप है। श्रीशंकर स्वामी ने ताम्रपत्र में आज्ञा की है कि बद्रीनारायण की पूजा करने के लिए हमारे गाँव का ब्राह्मण आना चाहिए। दूसरे किसी ब्राह्मण को नारायण की पूजा करने का अधिकार नहीं दिया गया है। इससे उत्तर भारत में बद्रीनारायण की पूजा करने के लिए दक्षिण भारत से शंकराचार्य की जन्मभूमि से ब्राह्मण आता है। जिसने तीन वेद पढ़े हों, त्रिकाल संध्या ठीक से करता हो, वही बद्रीनारायण की पूजा कर सकता है। बद्रीनारांयण भगवान् का स्वरूप दिव्य है। इनकी बायीं जंघा में दाहिना पग और दाहिनी जंघा में बायां पग है। पद्मासन लगाकर जो बैठे हैं। बद्रीनारायण हैं तो राजाधिराज पर सेवा तपस्वी जैसी है। बद्रीनारायण में लोग नारद कुण्ड के गर्म जल में स्नान करते हैं। पर ठाकुरजी के लिए तो ठण्डा जल ही आता है। ठण्डे जल से ही भगवान् का अभिषेक होता है। इसके बाद गले तक सर्वांग में चन्दन अर्पण किया जाता है। जब मुखियाजी से पूछा गया कि महाराज यहाँ तो ठण्ड बहुत है। ठाकुरजी का श्रीअंग अति कोमल है और इतनी

ठण्ड में इतना चन्दन अर्पण कर रहे हैं? तब मुखियाजी ने कहा, "महाराज, बद्रीनारायण सारा दिन तप करते हैं।, ध्यान करते हैं। इससे श्रीअंग में गर्मी बढ़ जाती है। श्रीअंग को हिमालय में भी गर्मी लगती है, इससे उनको चन्दन अर्पण किया जाता है।"

बद्रीनारायण में नारायण की सेवा के बाद लक्ष्मीजी की सेवा होती है। बद्रीनारायण में विषमता है। लक्ष्मीजी को प्रभु ने ऐसी आज्ञा दी कि आप मंदिर के बाहर बैठिये। मेरे साथ मत बैठिये। मुझे जगत् के समक्ष तपमार्ग का आदर्श दिखाना है। सर्व स्थान पर लक्ष्मीजी और नारायण साथ-साथ विराजते हैं। पर यहाँ लक्ष्मीजी मंदिर के बाहर बैठी हैं। भीतर अकेले नारायण हैं। धन का संग, संतान का संग, स्त्री का संग ज्ञान-भक्ति में बहुत बिघ्न लाता है। जगत् में प्रभु ने आदर्श स्थापित किया है। सुन्दर हीरा भी जब रेत में पड़ जाता है, तब संग के कारण मलिन हो जाता है। माया का संग बड़े तपस्वी होने पर भी मलिन कर देता है। इससे माया से दूर रहिये। भारतखंड के मालिक श्रीनारायण भगवान् कृपा करें और आपको बुलायें, तब प्रत्यक्ष दर्शन कीजिए। आज तो यहाँ कथा में बैठे लोग मन से ही नारायण का दर्शन करें। कई लोगों को तो यहाँ बैठे हुए भी घर की तिजोरी दिखाई पड़ती है। घर दीख पड़ता है, तिजोरी दीख पड़ती है, तो नारायण क्यों नहीं दिखाई देते? आप प्रेम से स्मरण कीजिए कि चतुर्भुज परमात्मा पद्मासन से विराज रहे हैं। मन से पाप करने पर सजा होती है, इसी तरह मन से परमात्मा के दर्शन करने, मन से ठाकुरजी के चरणों में तुलसी अर्पण करने, मन से भोग धरने और मानसी सेवा करने से फल मिलता है। भगवान् नारायण के चरणों भाव से वंदन कीजिए।

किसी भी सत्कर्म के करने से पहिले नारायण को वंदन कीजिए। सूतजी इसके बाद देवी सरस्वती को वंदन करते हैं। सरस्वती ज्ञान-शक्ति हैं। क्रिया-शक्ति, द्रव्यशक्ति और ज्ञान-शक्ति इन तीनों शक्तियों के भीतर ही जगत् है। सनातन धर्म में शक्ति विशिष्ट ब्रह्म की पूजा है। आद्य शक्ति की सेवा, त्रिगुणात्मक शक्ति की उपासना भारत में है। महाकाली क्रिया-शक्ति हैं। महालक्ष्मी द्रव्य शक्ति हैं और महासरस्वती ज्ञान शक्ति है। नवरात्रि में महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती की पूजा होती है। जीवन में तीनों शक्तियों की बहुत आवश्यकता होती है। इससे त्रिगुणात्मक शक्ति माता अंबा, दुर्गा तथा सरस्वती की पूजा होती है। कथा के प्रारंभ में महाशक्ति सरस्वती माता की वंदना करते हैं।

इसके बाद सूतजी व्यास महर्षि को वंदन करते हैं और कथा का प्रारंभ करते हुए कहते हैं कि अनेक वर्षों तक मैंने संत सेवा की है। अनेक महापुरुषों के साथ सत्संग किया है। उन संतों की सेवा करते हुए मुझे जो कुछ मिला है, मैं आपको अर्पित कर रहा हूँ। मैंने अपने मन से यह

निश्चय किया है। यह जीव परमात्मा के चरणों में जायगा, तब ही शांति मिलेगी। जीव ईश्वर का अंश है। जीव जगत् का अंश नहीं है। जीव किसी दूसरे जीव का अंश नहीं है। जीव परमात्मा श्रीकृष्ण का अंश है, फिर भी यह जीव जब से जगत् का अंश हुआ है, जब से किसी स्त्री का अंश हुआ है, जब से किसी पुरुष का अंश हुआ है, तब से दुःखी हुआ है। इस जीव को जब अपने स्वरूप का उचित ज्ञान होगा, तब उसके दुःख का अंत होगा। बाहर से जगत के साथ प्रेम कीजिए भीतर से ईश्वर के साथ प्रेम कीजिए। घर जाकर ऐसा मत कीजिये कि मैं भगवान् का हूँ, पर मन में निश्चय कीजिए कि ईश्वर के सिवा मेरा कोई नहीं है।

हम सब भगवान् के चरणों में थे। भगवान् से जीव जब अलग हुआ तब से दुःखी हुआ है। यह जीव जिनका अंश है, उन परमात्मा के चरणों में जायेगा, परमात्मा से मिलेगा, तब ही इसका कल्याण होगा। कई लोगों को शंका होती है–''महाराज! ईश्वर के चरणों में थे तो वहाँ से दूर कैसे हुए? जीव ईश्वर का अंश है तो ईश्वर से अलग कैसे हुआ? कब से अलग हुआ?'' कई प्रश्न ऐसे होते हैं कि आप भक्ति कीजिए तो अपने आपको उत्तर मिले जायेंगे। मानव के समझाने पर बुद्धि उस समझ को कबूल नहीं करेगी। यह प्रश्न ऐसा ही है। जीव ईश्वर से क्यों अलग हुआ? कब से अलग हो गया? इसका विचार मत कीजिए। रोग होने पर रोग कैसे हुआ? कब से हुआ? क्यों हुआ? इसके बदले तो रोग की दवा और संयम से ही लाभ होता है।

एक भाई कपड़े की बहुत देख-भाल करते थे। वे सोचते थे कि मेरे कपड़े जरा भी गंदे न हों। एक बार ऐसा हुआ कि घर आने पर पता चला कि धोती पर दाग लगा है, फिर ये सोचने लगे कि दाग कहाँ से लगा होगा? बहुत बुद्धिमान थे न। इसलिए एक-एक के घर पूछने गये कि यह दाग आपके घर लगा है क्या? एक सज्जन ने कहा–''दाग दीख रहा है न? वह दूसरे के घर लगा हो कि अपने घर लगा हो, इसकी चिंता छोड़िए। साबुन से धो डालिए, दाग चला जायगा। दाग कहाँ से लगा, कैसे लगा, इसके विचार से दाग दूर नहीं होगा।

जीव का ईश्वर से वियोग कैसे हुआ? किस तरह हुआ? इस बात का विचार छोड़िये। कुछ भूल हो रही है, अब वह भूल सुधारिये। हम सब भगवान् के चरणों में थे फिर ईश्वर से अलग हो गये। जो परमात्मा का अंश है, वह परमात्मा के चरणों में जाता है, तब उसे शांति मिलती है–

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च तदहैतुकम्॥ (१-२-७)

परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान कीजिए। प्रेम से श्रीकृष्ण की सेवा कीजिए। श्रीकृष्ण के नाम का जप करते हुए तन्मय बनिये। आपको परमात्मा के दर्शन होंगे। इस ध्यान, सेवा तथा जप से कल्याण होता है। जिसे परमात्मा के दर्शन होते हैं, वही कृतार्थ होता है–

ज्ञानं यदब्रह्मदर्शनम्

जिसे परमात्मा के दर्शन होते हैं, उसका जीवन कुछ भिन्न कुछ निराला ही होता है। उसे आंतरिक आनन्द मिलता है। उसे बाहर का समग्र सुख तुच्छ लगता है। जिसे परमात्मा का आनन्द मिल जाता है, वह कभी ऐसा नहीं कहता कि मैं ईश्वर को जानता हूँ–

'जिसने पाया उसने छिपाया'

जिसे परमात्मा की अनुभूति होती है, वह ऐसा बोल ही नहीं सकता कि मैं ईश्वर को जानता हूँ। जो ऐसा कहता है कि मैं परमात्मा को जानता हूँ, वह ईश्वर से दूर ही है। परन्तु जो ऐसा कहता है कि मैं ईश्वर को नहीं जान पाया, उसे भी अभी ठीक से ज्ञान नहीं है। परमात्मा को जो जान पाता है, उसका जीवन धन्य हो जाता है। वह अधिक बोल नहीं पाता। जो ईश्वर को जानता है, वह ईश्वर से एक क्षण भी दूर नहीं रह सकता–

खोज डाला कुल जहाँ में, कुछ पता तेरा नहीं।
जब पता तेरा लगा तो, अब पता मेरा नहीं।।

भक्त कहता है–'कई वर्षो से मैं तेरे पीछे लगा था। मैं सब में तुम्हें खोज रहा था, पर तुम मिले नहीं। तुम्हारा पता नहीं मिला। पर जब तुम्हारा दर्शन हुआ तब फिर मैं ही नहीं रहा। प्रेम के अत्यधिक बढ़ जाने पर मैं और तुम अलग रहते ही नहीं–

प्रेम गली अति साँकरी तामें दो न समायें।

प्रेम की गली अति सँकरी है, उसमें दो जा नहीं सकते, रह नहीं सकते। दोनों एक हो जाते हैं।

परमात्मा ज्ञान-स्वरूप है। ज्ञान के विषय नहीं है। जगत् के सम्पूर्ण पदार्थ ज्ञान के विषय हो सकते हैं। जब मैं जानता हूँ कि यह फूलों की माला है, तब मैं हुआ ज्ञाता और फूलों की माला हुई ज्ञेय। व्यवहार के ज्ञान में ज्ञाता और ज्ञेय–ऐसा द्वैत रहता है परन्तु परमात्मा का जिसको अनुभव हुआ, अनुभूति हुई, वह भगवान् से अलग नहीं रह सकता।

सोई जानइ जाहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई।।

परमात्मा का ज्ञान होने पर ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाते हैं। भगवान् के जानने के बाद भगवान् से एक क्षण भी अलग नहीं रहा जा सकता। ब्रह्म-ज्ञान ही परमात्मा का स्वरूप हैं। परमात्मा ज्ञान-स्वरूप हैं। संसार के व्यवहार का ज्ञान द्वैत भाव से भरा हुआ है। परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान अद्वैत भाव से पूर्ण है–

वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।। (१-२-११)

जिन्हें योगी आनन्द कहते हैं, जिन्हें ऋषि परमात्मा कहते हैं, जिन्हें संत भगवान् कहते हैं, उपनिषद् ब्रह्म कहते हैं, वैष्णव श्रीकृष्ण कहते हैं, वह एक ही तत्त्व है। ये सब अनेक नाम एक के ही हैं। परमात्मा से जो प्रेम करता है, भगवान् की जो भक्ति करता है, उसके ही दुःख का अन्त आता है। परमात्मा के मंगलमय स्वरूप का ध्यान करने से, प्रेम से सेवा-स्मरण करने से, आनन्दमय परमात्मा की अनुभूति होती है।

शौनक मुनि ने सूतजी से सुन्दर प्रश्न पूछा है–'भगवान् की भक्ति करते हैं पर आनन्द क्यों नहीं मिलता?' भक्ति कर रहे हैं और आनन्द नहीं मिल रहा है तो समझना चाहिए कि भक्ति में कुछ भूल हो रही है। जो समुचित रूप से भक्ति करता है, उसे आनन्द मिलता ही है, आनन्द मिलना ही चाहिए। बर्फ का स्पर्श करने वाले को ठण्ड लगनी ही चाहिए। परमात्मा आनन्दमय है। आनन्दमय परमात्मा की भक्ति करने वाले को आनन्द मिलता ही है। कई जन तन से भक्ति करते हैं, कई धन से भक्ति करते हैं, पर मन से भक्ति करने वाले बहुत कम हैं। इससे भक्ति में आनन्द नहीं मिलता है। भक्ति में तन और धन गौण है, मन मुख्य है। मनुष्य प्रायः क्रियात्मक भक्ति करता है। जब भावात्मक भक्ति होती है, तब आनन्द मिलता है। मन से भक्ति करने वाले को आनन्द मिलना ही चाहिए, पर मानव मन से भक्ति नहीं करता है। उसका मन वासना-डोर से संसार के विषयों के साथ बँधा है। यह वासना की डोर छोड़ दें तो मन परमात्मा का स्पर्श कर सकता हैं।

मन घर में और तन मन्दिर में है। ऐसी भक्ति किस काम की? वासना की डोर छोड़नी ही पड़ेगी। संसार के विषय मीठे लगते हैं। इसी से मन विषयों से प्रेम करता है। जिसे संसार प्रिय लगता है, वह संसार की भक्ति करता है। संसार सरल लगता है, इससे मन संसार में फँसा है, परन्तु संसार तो झूठा है, संसार का सुख भी झूठा है। संसार का कोई भी सुख तीन-चार मिनट से अधिक टिकता नहीं है। संसार का सुख दुःख ही है, ऐसी प्रतीति होने पर संसार से मन हट जाता है और संसारी सुख को दुःख मानने वाले का मन परमात्मा के चरणों में जाता है। मन को बार-बार समझाइए। सच्चा सुख संसार में नहीं है। संसार झूँठा है और संसार का सुख भी झूँठा है। शरीर के सभी सुख जिसे तुच्छ लगते हैं, वह भगवान् की भक्ति करता है।

धीरे-धीरे संयम को बढ़ाइये। किसी भी सुख को भोगने से पहिले दुःख भोगना पड़ता है और सुख भोगने के बाद भी दुःख सहना पड़ता है। संसार का सुख सच्चा सुख नहीं है। सुख भोगने से पहिले और बाद में भी दुःख है, ऐसा सोचने से विश्वास होगा कि संसार सरस नहीं है। संसार जिसने बनाया है, वह सरस है, रसमय तो वही संसार का सर्जक परमात्मा है धीरे-धीरे संयम बढ़ाइए। वैराग्य का अभ्यास कीजिए तो भक्ति में आनन्द मिलेगा। प्रभु में प्रेम जाग्रत करने के लिए

कथा सुनिए। प्रेम से निरन्तर जप कीजिए तो आनन्द मिलेगा। परमात्मा के निरन्तर जप से प्रभु के प्रति प्रेम बढ़ेगा।

परमात्मा के प्रति प्रेम बढ़ाने के लिए चौबीस अवतारों की कथा कहते हैं। परमात्मा के प्रधान अवतार चौबीस माने गए हैं। इन चौबीस अवतारों की कथा भागवत शास्त्र में वर्णित है।

प्रथम अवतार सनत्कुमारों का है। सनत्कुमार ब्रह्मचर्य के प्रतीक हैं। ब्रह्मचर्य के पालन से अंतःकरण शुद्ध होता है।

दूसरा अवतार वराह का है। वराह अर्थात् श्रेष्ठ दिवस। जिस दिन सत्कर्म होता है, वह श्रेष्ठ दिन है। सत्कर्म में बिघ्न लाता है लोभ। लोभ को सन्तोष से मारिये। वराह अवतार सन्तोष का है। प्रभु जिस स्थिति में रखते हैं, उस स्थिति में सन्तोष रखना–इस अवतार का यही रहस्य है।

तीसरा अवतार नारदजी का है। नारदजी भक्ति के अवतार हैं। ब्रह्मचर्य के पालन से और प्राप्त स्थिति में सन्तोष रखने से भक्ति मिलती है।

चौथा अवतार नर–नारायण का है। भंक्ति द्वारा भगवान् मिलते हैं पर बिना ज्ञान–वैराग्य के भक्ति दृढ़ नहीं हो सकती। भक्ति में ज्ञान–वैराग्य की आवश्यकता है। पाँचवाँ अवतार कपिलदेव का है। कपिलदेव अर्थात् मूर्तिमंत ज्ञान–वैराग्य। ज्ञान और वैराग्य के साथ भक्ति होगी तो भक्ति सदैव के लिए स्थिर होगी।

छठा अवतार है दत्तात्रेय का। ब्रह्मचर्य, संतोष, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य होगा तो आप अत्रि बनेंगे। अत्रि अर्थात् गुणातीत। गुणातीत होंगे, अत्रि होंगे तो आपके घर आत्रेय–दत्तात्रेय आयेंगे। सातवाँ अवतार यज्ञ का है। आठवाँ ऋषभदेव का, नौवाँ पृथुराज का और दसवाँ मत्स्यनारायण का अवतार है। ग्यारहवाँ अवतार कूर्म का, बारहवाँ धन्वन्तरि का और तेरहवाँ अवतार मोहिनी नारायण का है।

चौदहवाँ अवतार नृसिंह स्वामी का है। वे पुष्टि अवतार हैं। नृसिंह अवतार में भगवान् ने प्रह्लाद पर कृपा की है, प्रह्लाद जैसी दृष्टि रखेंगे तो सर्वत्र खंभे में भी आपको भगवान् के दर्शन होंगे। ईश्वर सर्वव्यापक हैं, ऐसा बोलने से नहीं पर अनुभूति से पाप रुकता है। आप पाप छोड़ना चाहते हैं तो सर्वत्र ईश्वर के दर्शन कीजिए।

वामन अवतार पंद्रहवाँ है। जो पूर्ण निष्काम है, जो ईश्वर की निरंतर भक्ति करता है और धर्म का आचरण करता है उसे भगवान् भी नहीं मार सकते। परमात्मा बड़े हैं फिर भी बलिराजा के पास वामन बने हैं।

सोलहवाँ अवतार आवेश–अवतार है। परशुराम का अवतार है वह। सत्रहवाँ अवतार व्यासनारायण का ज्ञानावतार है।

अठारहवाँ रामजी का अवतार है। रामजी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। रामजी की मर्यादा का पालन करेंगे तो कन्हैया आयेगा। उन्नीसवाँ और बीसवाँ अवतार श्रीबलराम और श्रीकृष्ण का है। भागवत में वर्णन है कि उसके बाद बुद्ध और कल्कि–ऐसे दो अवतार होने वाले हैं। इस तरह भगवान् के बाईस अवतार हुये हैं। इसमें धर्म और मनु के दो अवतार और गिनने से भगवान् के कुल मिलाकर चौबीस अवतार हैं।

सूतजी कहते हैं कि ऐसे भगवद् चरित्र से परिपूर्ण भागवत-शास्त्र भगवान् वेद व्यास ने बनाया है। व्यासजी ने यही भागवत पुराण ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ अपने पुत्र शुकदेवजी को पढ़ाया था।

शुकदेवजी महाराज के मुख से मैंने जो कथा सुनी थी, उस कथा को यथामति मैं आपको सुना रहा हूँ–

कुतः संचोदितः कृष्णः कृतवान् संहितां मुनिः॥
तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ् निर्विकल्पकः।
एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढ़ो मूढ इवेयते॥ (१-४-३/४)

८– प्रेम शास्त्र के निर्माण की प्रेरणा

शौनक मुनि ने सूतजी से प्रश्न पूछा–"हमें बहुत आश्चर्य हो रहा है, कि शुकदेवजी महाराज को भागवत पढ़ने की क्या जरूरत थी? जिन्हें परमात्मा का आनंद मिला है, उन्हें कोई अपेक्षा नहीं होती है तो शुकदेवजी महाराज भागवत पढ़ने क्यों बैठ गये? अशांति का जन्म अपेक्षा से होता है। ज्ञानी महापुरुष परमात्मा का आनंद पा रहे हैं, अनुभूति कर रहे हैं। उन्हें कोई अपेक्षा नहीं रहती है। उनका ध्यान परमात्मा के चरणों से एक मिनट के लिये भी विचलित नहीं होता है–

ज्ञानामृतेन तप्तस्य नित्ययुक्त योगिनः।
नैवास्ति किंचित् कर्त्तव्य अस्तीति न स तत्त्ववित्॥

ज्ञान निष्ठा की सफलता के लिए ज्ञानी पुरुष एक क्षण भी परमात्मा का ध्यान नहीं छोड़ते हैं। हमारे शास्त्रों में तो कहा गया है कि गाय माता के सींग की नुकीली नोक पर राई का दाना जितने समय तक टिक सकता है उतने समय तक भी ज्ञानी पुरुष परमात्मा का ध्यान नहीं छोड़ता है। भला गाय के सींग की नोक पर टिक सकता है, राई का दाना कितने समय तक रह सकता है? इतने समय तक भी महापुरुष परमात्मा का ध्यान नहीं छोड़ सकते हैं। तब शुकदेवजी ध्यान छोड़कर क्यों भागवत पढ़ने बैठे? शुकदेवजी महाराज मात्र ज्ञानी ही नहीं हैं। उनकी ब्रह्माकार दृष्टि भी स्थिर हो गयी है। ज्ञान की पुस्तकें पढ़कर कोई भले ही ब्रह्मज्ञानी बन जाय पर ब्रह्मदृष्टि जब

तक स्थिर नहीं होती तब तक ज्ञान टिकता नहीं है, बह जाता है। आजकल तो आराम-कुर्सी में बैठे-बैठे भी ब्रह्मज्ञानी हो जाते हैं। अभी तो आप सब यहाँ कथा में ज्ञानी शंकर भगवान् की तरह बैठे हैं। कितनी शांति रखते हैं आप। आप सबको बार-बार वंदना करने की इच्छा हो जाती है। अभी आप सब ज्ञानी हैं घर जाकर फलाहार की तैयारी न हो तो, फिर आपका ब्रह्मज्ञान टिकेगा या नहीं टिकेगा, इसमें शंका है। कई लोग तो घर में कह कर आये होंगे कि साढ़े बारह बजे फलाहार तैयार रखियेगा। ब्रह्मदृष्टि स्थिर होती है, उसका ही ब्रह्मज्ञान टिकता है। ब्रह्मज्ञानी होना अधिक कठिन नहीं है। सर्वकाल ब्रह्म दृष्टि रखना बहुत कठिन है। शुकदेवजी महाराज ब्रह्मज्ञानी हैं उनकी ब्रह्मदृष्टि स्थिर हुई है-

दृष्ट्वानुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नं देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम्।
तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति स्त्रीपुंभिदा न तु सुतस्य विविक्त दृष्टेः॥

(१-४-५)

शुकदवेजी की देव-दृष्टि थी, देह-दृष्टि नहीं थी। देह-दृष्टि रखेंगे तब तक दुःख है। शुकदेवजी स्नान करती हुई अप्सराओं के पास से निकले फिर भी निर्विकार रहे। एक सरोवर में अप्सराएँ स्नान कर रही थीं, वहाँ से नग्नावस्था में शुकदेवजी निकले। अप्सराओं ने स्नान करना चालू ही रखा और लज्जा अनुभव नहीं की। उस समय शुकदेवजी को समझाकर घर ले जाने के लिए व्यासजी पीछे दौड़कर आ पहुँचे। व्यासजी ने कपड़े पहने थे परन्तु व्यासजी को देखकर अप्सराओं ने तुरन्त कपड़े पहिन लिये। इससे व्यासजी को आश्चर्य हुआ और उन्होंने इसका कारण पूछा। तब अप्सराओं ने कहा-''आप वृद्ध हैं, हमारे पिता के समान हैं, पूज्य हैं, परन्तु आपके मन में स्त्री-पुरुष का भेद है। परन्तु शुकदेवजी के मन में ऐसा भेद नहीं है। शुकदेवजी को अभेद दृष्टि सिद्ध हुई है। उन्हें पता नहीं है यह स्त्री है और यह पुरुष है।''

एक बार ऐसा हुआ कि जनक महाराजा के दरबार में शुकदेवजी पधारे। जनक महाराज महान ज्ञानी थे। शुकदेवजी महाराज पधारे तब सभी उठकर खड़े हो गये। शुकदेवजी को सुन्दर आसन दिया। राजा ने उनकी पूजा की। उसी समय वहाँ नारदजी भी पधारे। तब भी सभी उठकर खड़े हो गये। नारदजी को भी सुन्दर आसन दिया गया। नारदजी की भी पूजा हुई। दरबार में सभी ने जनक राजा से प्रश्न किया कि इन दोनों में प्रथम पंक्ति में कौन और द्वितीय में कौन?

शुकदेवजी महाराज सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी हैं। नारदजी भक्ति संप्रदाय के आचार्य हैं, महान ज्ञानी भक्त हैं। जनक राजा ने कहा 'दोनों श्रेष्ठ हैं।' दरबारी जनों ने कहा कि यह तो हम जानते हैं पर

इनमें प्रथम कौन और द्वितीय कौन? जनक राजा ठीक से उत्तर नहीं दे पाये सोचने लगे कि किन्हें मैं द्वितीय श्रेणी में रखूँ?

जनक राजा की पत्नी थीं रानी सुनयना। सुनयनाजी ने कहा–''इन दोनों साधुओं को मेरे महल में रात भर रखिये, मैं कल आपको बतलाऊँगी कि प्रथम कौन और द्वितीय कौन? दोनों संतों से विनती की गयी कि आपका आवास रानी के महल में है। रात्रि के समय में शुकदेवजी महाराज शांति से ध्यान कर रहे हैं। नारदजी भी ध्यान कर रहे हैं। सुनयना रानी शृंगार करके आती हैं। नारदजी को थोड़ा मालूम हुआ, इससे नारदजी दूर चले जाते हैं। शुकदेवजी की ब्रह्माकार-वृत्ति स्थिर है। सुनयना रानी आती हैं। शुकदेवजी महाराज को मालूम ही नहीं पड़ता कि मैं पुरुष हूँ और वह स्त्री है। उनको भान ही नहीं है कि इस जगत् में स्त्री भी होती है। ज्ञान और भक्ति जब बढ़ जाते हैं, तब जगत् नहीं रहता, परमात्मा ही रहते हैं। तब सुनयना रानी ने निर्णय दिया कि शुकदेवजी का नम्बर प्रथम है, नारदजी द्वितीय हैं। अभी नारदजी को थोड़ा एहसास है कि यह स्त्री है और मैं पुरुष हूँ। स्त्री-पुरुष का भेद-भाव उनके मन में है। शुकदेवजी की दृष्टि में और मन में ऐसा कोई भेदभाव नहीं है–

स्त्रीपुंभिदा न तु सुतस्य विविक्त दृष्टेः

यह स्त्री है और यह पुरुष है। यह काला है और यह गोरा है। यह जवान है और यह वृद्ध है। ऐसे भेद-भाव मानव की दृष्टि में हैं। जहाँ भेद है वहीं भय है। जहाँ अभेद है, वहीं अभय है। जिसमें भेद है, वह ईश्वर से दूर रहता है। शुकदेवजी महाराज की दृष्टि में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं रहा था। महाराज को सारा जगत् ब्रह्म रूप ही दिखाई देता था।

हाँ तो शौनक मुनि पूछ रहे हैं–'ऐसे शुकदेवजी महाराज भागवत पढ़ने क्यों बैठे? वे पूर्ण निरक्षेप हैं, आनन्दमय हैं। शुकदेवजी भागवत् का अध्ययन करें, पर वे परीक्षित राजा के घर कथा करने क्यों गये? राजा के घर तो वे ही जाते हैं, जिन्हें बहुत पाने की इच्छा हो। जिन्हें लँगोटी की भी जरूरत नहीं है, जिनकी आँख उठाकर किसी ओर देखने तक की इच्छा नहीं है, ऐसे शुकदेवजी को राजा के घर कथा करने से क्या लाभ? हमें शंका हो रही है। शुकदेवजी ने उन्हें कथा किस तरह सुनाई? व्यासजी ने भागवत की रचना क्यों की? यह सब विस्तार सहित सुनने की हमारी भावना है।' शौनकजी महाराज ने प्रश्न पूछा। सूतजी अब कथा का प्रारम्भ कर रहे हैं।

जिन वैष्णवजनों ने बद्रीनारायण की यात्रा की है, उन्हें मालूम है कि बद्रीनारायण के रास्ते में अनेक प्रयाग आते हैं। सबसे पहले देवप्रयाग आता है। श्रीरघुनाथजी वहाँ विराजमान हैं। आगे रुद्रप्रयाग है। वहाँ अलकनन्दा और मन्दाकिनी गंगा का संगम है। इसके आगे विष्णु प्रयाग आता

है। बद्रीनाथ के आगे चार-पांच मील की दूरी पर केशव प्रयाग नाम का तीर्थ है। वहीं अलकनन्दा और सरस्वती का मधुर संगम होता है। प्रीति-संगम दुर्लभ बड़े-बड़े पर्वतों को तोड़कर अलकनन्दा वेग से दौड़ती हुई आती है। इसकी प्रतिकूल दिशा से सरस्वती गंगा भी बड़े वेग से आती है। दोनों नदियाँ आमने-सामने से आकर मिलती हैं, टकराती हैं। इससे इनका जल उछलता है। इस स्थल को प्रीति-संगम कहते हैं। इस केशव प्रयाग तीर्थ में व्यास महर्षि का सभ्याप्रास नाम का आश्रम है। व्यासाश्रम का संगम अलौकिक है।

द्वापर युग की समाप्ति का समय है। अब कलियुग का प्रारम्भ हो रहा है। व्यासनारायण गंगा तट पर विराजमान हैं। संध्यादिक नित्यकर्म परिपूर्ण हुए हैं। उदयाचल में सूर्यनारायण के दर्शन हुए। उसी समय व्यासजी को कलियुग के दर्शन हुए है। आजकल जो दीख रहा है, वही व्यासजी को पाँच हजार वर्ष पहिले दीख पड़ा था। व्यासजी को जैसा दीख पड़ा, वैसा ही कलियुग का वर्णन उन्होंने किया है। उन्होंने देखा कि कलियुग में विलासी लोग कुल, गोत्र, जाति का विचार छोड़कर स्नेह-विवाह करेंगे। कलियुग में वर्णसंकर, जातिसंकर लोग बहुत होंगे तथा कलियुग के लोग वेदाध्ययन नहीं करेंगे। इससे व्यासजी ने सोच-विचार कर वेद के अनेक विभाग कर दिये हैं, अनेक शाखाएँ बना दी हैं। अधिक नहीं तो किसी न किसी शाखा का अध्ययन लोग कर सकें। व्यासजी ने सोचा कि कई लोग वेद का अध्ययन तो करेंगे पर वेद का अर्थ ठीक से नहीं समझ सकेंगे। अर्थ-ज्ञान के बिना वेद-पाठ करना 'अधम-पाठ' कहा गया है। अयोग्यता पूर्वक वेद मन्त्र का उच्चाण करना अनुचित है। वेद मंत्र में ह् स्व-दीर्घ स्वरों में जरा भी भूल हो तो वह क्षम्य नहीं है। पर इसकी शिक्षा है। इससे सब वेद के अर्थ को समझ सकें ऐसा शास्त्र रचना चाहिए- इस विचार से प्रेरित होकर व्यासजी ने पुराणों की रचना की है, महाभारत की रचना की है। इति भारतमाख्यानम्–सरल भाषा में दृष्टान्तों के द्वारा वेद का अर्थ रोचक बनाकर व्यासजी ने पुराणों में समझाया है। इसे पढ़ते समय अनेक बार पाठक को ऐसा लगता है कि मेरे मन की ही कथा व्यासजी ने कही है। मेरे मन में कभी-कभी दु:शासन आता है, कभी-कभी मेरा मन दुर्योधन जैसा भी हो जाता है।

कई लोग ऐसा समझ रहे हैं कि महाभारत में केवल कौरव-पाण्डवों की लड़ाई ही है। व्यासनारायणजी कलह की कथा करने नहीं बैठे हैं–"महाभारतं पंचमवेद:।" महाभारत पाँचवाँ वेद है। व्यास महर्षि ने महाभारत में वेद उपनिषद् का अर्थ भर दिया है। अनेक दृष्टान्त दिये हैं। जगत् में एक भी घर ऐसा नहीं है कि जहाँ महाभारत न होता हो। सबके घर में महाभारत होता है।

कदाचित् आप कहेंगे कि ''महाराज! मेरे घर में दुर्योधन नहीं है।'' अरे! वास्तव में तो वह आपको दीख नहीं पड़ता–

इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्रमित्यभिधीयते

इस शरीर रूपी कुरुक्षेत्र में कौरव और पांडव लड़ रहे हैं। उनका युद्ध अनादि काल से चल रहा है। रात में आप साढ़े नौ–दस बजे सो जाइए। दस बजे के बाद कभी जागिये नहीं और सुबह चार बजे के बाद सोइये नहीं। कई लोग रात के राजा होते हैं। रात में ग्यारह बजे तक गप्पें लड़ाते हैं पर उन्हें नींद नहीं आती है। रात में बहुत बातें करते हैं और सुबह सोते रहते हैं। हमारे शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि रात में साढ़े दस बजे के बाद राक्षस जागते हैं और ये राक्षस सुबह चार बजे के बाद सोये दिखाई पड़ते हैं। परन्तु यहाँ तो सब ऋषि बैठे हैं। यहाँ कोई राक्षस नहीं है। भागवत–कथा श्रवण में ऋषि ही आते हैं। सुबह चार बजे के बाद शय्या में लेटने वाले राक्षस जैसे ही हैं। ब्रह्म मुहूर्त में निद्रा पुण्य का विनाश कर देती है। किसी के स्वभाव की परीक्षा करनी हो तो वह सुबह कितने बजे उठता है और क्या करता है, यह जानना चाहिए। जिसे भक्ति का रंग लगा है, वह सुबह चार बजे के बाद कभी शय्या पर नहीं होगा। जाग कर मानव को देखने से रजोगुण बढ़ता है, पर मानव को देखने से पहले भक्ति करने से भक्ति में आनंद आता है। रात को साढ़े नौ बजे सो जाने वाले को भगवान चार बजे जगा देते हैं। धर्मराज आकर जीव से कहते हैं–''अब तुम ध्यान करो! बहुत सो लिये। अब उठकर शांति से प्रभु के नाम का जप करने लगो! धर्मराज आकर जीव को सावधान करते हैं, पर उसी समय दुर्योधन आकर कहता है–पानी तो नल से साढ़े–पांच बजे आता है, अभी से उठकर क्या करना है? ठंड बहुत है। आराम करो! हमारे भीतर ही कौरव और पांडव के निवास हैं। इस शरीर–क्षेत्र में ही धर्म और अधर्म अनादि काल से संघर्षरत हैं। जो शरीर धर्मक्षेत्र था, वह अब रोग क्षेत्र बन गया है। यह शरीर राम–क्षेत्र है, किन्तु अब वह काम–क्षेत्र बन गया है। महाभारत में व्यासजी ने यह सब कहा है। सब कुछ करने पर भी व्यासजी को शांति नहीं मिल रही है। महापुरुषों के मन अशांत होते हैं, तब वे बाहर नहीं देखते। वे अशांति का कारण भीतर ढूंढ़ते हैं। दुःख के कारण को बाहर ढूंढ़ता है, वह दुर्जन है। आपको दुःख देने वाला इस जगत् में कोई नहीं है। आपको दुःख देने वाला तो आपके भीतर ही है। दुःख देने वाला काम है। मन में स्थित अभिमान दुःख पहुँचाता है। दुःख का कारण अज्ञान है। समझ में बहुत सुख है और अज्ञान में बहुत दुःख है। व्यासनारायण का मन अशांत हुआ, तब वे भीतर देखने लगे–''मेरा शत्रु मन में ही है। बाहर कोई नहीं है। मुझसे कुछ भूल हो रही है। मेरे हाथ से कोई पाप हुआ होगा। आज मेरा मन अशांत क्यों हैं? मैंने अपने माता–पिता की बहुत सेवा की है। मेरी

माता ने मेरे मस्तक पर हाथ रखकर मुझे आशीर्वाद दिया है। जिसे माता-पिता के हृदय के आशीर्वाद मिलते हैं, उसे शांति ही होती है। जिसे माता-पिता के आशीर्वाद नहीं मिले हैं, वह कोई पढ़ा-लिखा, बड़ा अधिकारी या धनवान हो, तो भी शांति नहीं पाता है। माता-पिता प्रत्यक्ष परमात्मा हैं। माता-पिता की सेवा भगवान् की सेवा है, भक्ति है। जीवन में भी कोई पाप किया हो, ऐसा मुझे स्मरण नहीं है। मेरा यौवन पवित्रता से और सरलता से व्यतीत हुआ है। मैंने मन से पाप नहीं किया है, तन से भी पाप नहीं किया है, फिर भी आज मेरा मन अशांत है? मेरी कोई भूल अवश्य है। मेरी भूल मुझे दीख नहीं पड़ती है। मेरे घर कोई संत का आगमन हो तो उनके सत्संग से मुझे अपने दोषों का ज्ञान हो सकता है।'' मानव में बहुत-से दुर्गुण होते हैं पर मानव को अपने दुर्गुण सद्गुण जैसे लगते हैं और अन्य के दोष दीख पड़ते हैं। अपने दोष नहीं दीख पड़ते हैं।

व्यासनारायण की संत-दर्शन तथा सत्संग की भावना होती है। उसी समय परमात्मा की प्रेरणा से देवर्षि नारद वहाँ पधारते हैं। नारदजी की आँखों में नारायण हैं। मुख में नारायण हैं तथा मन में नारायण हैं—वे परमात्मा के नाम का कीर्तन करते-करते चलते हैं। गंगा-तट पर व्यासाश्रम में आज दो महापुरुषों का मिलन हुआ है। दोनों सोच रहे हैं—''कलियुग के लोगों का क्या होगा? कलियुग के जीवों के कल्याण के लिए दो महापुरुष गंगा-तट पर मिलते हैं। आज गंगामैया को बहुत आनंद मिला है। इन दो महापुरुषों के सत्संग से कथा-गंगा प्रकट होगी, जो कलियुग के अनेक जीवों का कल्याण करेगी। आज गंगाजी भी शांत हैं। सोचती हैं कि ये दो महापुरुष बातें करेंगे, मैं उन्हें सुनूंगी। गंगाजी मौन धारण कर लेती हैं।

नारदजी को देखकर व्यास महर्षि को आनन्द हुआ। व्यासनारायण खड़े हो गये। उन्होंने नारदजी का स्वागत किया। नारदजी को सुन्दर आसन दिया। नारदजी व्यासजी महर्षि से कुशल समाचार पूछते हैं—'शरीर तो अच्छा है न? आपके मन में तो शांति रहती है न, संसार का कोई भी सुख जिसे मीठा लगता है, संसार के पदार्थ से जो प्रेम रखता है, उसका मन और तन अशान्त रहता है। सन्त सर्वकाल में कुशल रहते हैं। परमात्मा के साथ जिसका प्रेम सम्बन्ध है, वह हर समय कुशल से रहता है। व्यास महर्षि हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं—'परमात्मा की कृपा से आप जैसे सन्तों की दया से सब अच्छा है।' नारदजी कहने लगे—महाराज! आपके मुख को देखते हुए मुझे ऐसा लगता है कि आज आप कुछ चिन्ता में हैं। आपने जानने योग्य सब कुछ जाना है। आपने ब्रह्ममय जीवन जीकर ब्रह्म की प्राप्ति की है। आपको किसकी चिन्ता?'

व्यास महर्षि नारदजी को वंदन करते हुए कहते हैं—'महाराज मेरा अधिक बखान न कीजिए। मुझसे कोई भूल हुई है—

परावरे ब्रह्मणि धर्मतो व्रतैः स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व।

(१-५-७)

मुझसे कोई भूल हुई है अपनी भूल मुझे नहीं दीख रही है। मेरी भूल मुझे बतलाइये। सन्त का हृदय कितना सरल होता है। व्यासनारायण-सा ज्ञानी पुरुष इस संसार में नहीं है। भविष्य में भी नहीं होगा। फिर भी वे नारदजी से कहते हैं–'मेरी कोई भूल है, वह मुझे बतलाइए।' नारदजी ने मन्द स्मित करके कहा–'महाराज आप नारायण के अवतार हैं, ज्ञानी हैं फिर भी आपने बहुत प्रेम से प्रश्न पूछा है इसलिए मैं आपकी थोड़ी सी भूल बतलाता हूँ–

भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम्।

(१-५-८)

परमात्मा में लीन होकर, पागल होकर आपने विस्तार पूर्वक श्रीकृष्ण कथा का वर्णन नहीं किया है। संसार के वर्णन से मन बहुत खराब हो जाता है। इससे परमात्मा के मंगलमय स्वरूप का वर्णन करेंगे तो हृदय कोमल और विशुद्ध बनेगा। पुराणों में आपने धर्म समझाया है। पूर्व मीमांसा में आपने कर्म रहस्य समझाया है। योगसूत्र पर आपने भाष्य लिखा है। समाधि के अंगों, समाधि के भेद समझाये हैं। ब्रह्मसूत्रों की रचना की है। आपने ज्ञान पर बहुत चर्चा की है। ज्ञान, कर्म, धर्म और योग चारों पर आपने लिखा है, परन्तु ये चारों भक्ति के बिना निरर्थक हैं।

प्रभु में प्रेम नहीं जागा तो ज्ञान किस काम का? कितने लोगों में ज्ञान होता है पर कोई उसकी झूठी निन्दा करता है, तब उसका जी दुःखने लगता है किन्तु कोई आपकी निन्दा करता है, इससे आपका बाल भी बाँका नहीं होता, आपका थोड़ा सा भी नुकसान नहीं होता। फिर जी जलाने से क्या? कितने ज्ञानी होंगे पर वे पैसे से बहुत प्रेम रखते हैं। हजार-दो हजार के नुकसान में भी जी जलाते हैं। ज्ञानी होना कठिन नहीं है, प्रभु प्रेमी होना कठिन है। ज्ञानी जब परमात्मा से प्रेम करता है, तब ही सफल होता है। परमात्मा से प्रेम करने वाले पर संसार के सुख-दुःख, मान-अपमान का असर नहीं होता। परमात्मा से प्रेम करने वाला सदैव प्रसन्न रहता है। श्रीकृष्ण-प्रेम के बिना ज्ञान शुष्क है, नीरस है। परमात्मा से प्रेम न रखने वाले ज्ञानी का भी पतन होता है।

कर्म, धर्म, योग, ज्ञान श्रीकृष्ण-प्रेम से ही सफल होता है। परमात्मा के लिए जिसकी आँखों में आँसू नहीं आते, उसका ज्ञान किस काम का? परमात्मा के स्मरण से जिसका हृदय नहीं पसीजता, भगवद् सेवा-स्मरण से जिसकी आँखों में आँसू नहीं आते, उसका ज्ञान, उसका कर्मयोग किस काम का?

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।

(१-५-१२)

यह जीव जगत् से बहुत प्रेम करता है, इससे प्रभु माया के आवरण में रह जाते हैं। यह जीव जब परमात्मा से अति प्रेम करने लगे, तब ही माया का आवरण दूर होगा, और प्रभु प्रकट होंगे। जहाँ कम प्रेम होगा, वहीं जीव भी अपना स्वरूप अदृश्य रखता है, छिपाता है। अतिशय प्रेम होगा, वहीं जीव भी अपने पूर्ण स्वरूप में प्रकट होता है। कितने ही लोग इतने विवेकी होते हैं कि पराये के सामने घर की तिजोरी तक नहीं खोलते। कहते हैं कि इसको जाने दो बाद में खोलूँगा।

नारदजी कहते हैं–'महाराज, भयंकर कलियुग आ रहा है। बहुत ज्ञान की जरूरत नहीं है। कलयुग के विलासी लोग आपके वेदान्त-तत्त्वज्ञान को हजम नहीं कर सकेंगे। कलियुग का मानव बातें तो ब्रह्मज्ञान की करता है पर उसे गर्म पानी(चाय) नहीं मिले तो इससे ही उसका सिर दर्द करने लगेगा।'

त्याग नहीं रे टिकेगा वैराग्य बिना.....

कलियुग के भोगी मानव के लिये आपका योगसूत्र काम का नहीं है। आपने प्रवृत्ति धर्म दिखाया, निवृत्ति धर्म दिखाया, परं ये कलियुग के मानव के लिये उपयोगी नहीं होंगे। महाराज! ये सब चर्चाएँ यहाँ निरर्थक हैं। आप कोई मध्यम मार्ग बतलाइये। कर्म करें, पर कर्म श्रीकृष्ण-प्रेम रहित है तो उसका कोई मूल्य नहीं है। कर्म को प्रेम का साथ चाहिए। मैं यह कर्म प्रभु के लिये कर रहा हूँ–ऐसी भावना रखकर कर्म करना चाहिए। आप ऐसी कथा करिये कि सब को लाभ हो। महाराज! अब बहुत ज्ञान की जरूरत नहीं है। आप जगत् को प्रेम-शास्त्र दीजिए। कथा ऐसी कीजिए कि सुनने वालों को कन्हैया प्रिय लगने लगे, लोग श्रीकृष्ण से प्रेम करने लगें, उनका स्वभाव सुधरने लगे, उनका पाप जल जाय। जो परमात्मा से प्रेम करता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है। संसार से प्रेम करने वाले का पाप नष्ट नहीं होता। यह जीव प्रेम किये बिना रह नहीं पाता। जीव संसार से बहुत प्रेम करता है। जीव परमात्मा से प्रेम करने लग जाय, ऐसा शास्त्र रचिये। जीव के कल्याण के लिए आपका अवतार है। आपका अवतार-कार्य अभी सिद्ध नहीं हुआ है, इसीसे आपका मन अशांत है। आप श्रीकृष्ण-कथा करिये। श्रीकृष्ण प्रेम-स्वरूप हैं। श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण लीला प्रेम से पूर्ण है।

श्रीकृष्ण-लीला का प्रारंभ होता है पूतना-चरित्र से। पूतना एक राक्षसी है। वह बन-ठन के शृंगार करके लाला के पास आती है। पूत अर्थात् पुत्र और ना–अर्थात् नहीं, जिसे पुत्र नहीं है वह

पूतना। पूतना ने लाला से कहा–'बेटा मेरा कोई पुत्र नहीं है, इससे मैं दुःखी हूँ। कन्हैया तो बहुत प्रेम भरा है, अति उदार है। बालकृष्ण कहने लगे–''आज से मैं तुम्हारा पुत्र और तुम मेरी माता।'' बालकृष्ण घुटनों के बल चलते-चलते पूतना की गोद में जा बैठे। पूतना का हृदय एक क्षण के लिए पिघल गया, सोचने लगा कि कैसा सुन्दर बालक है, कितना भोला है! मेरी गोद में आया है। फिर बोली–''बेटा! तू मुझे माँ, माँ कहता है पर मैं बहुत दुष्ट हूँ। स्तन में विष लेकर आयी हूँ।''

लाला ने कहा–''मैंने तुम्हें माँ कहा है। अब तुम जो कुछ दोगी, मैं वह लूँगा।' पूतना ने विष दिया। प्रभु ने सोचा–''कुछ भी हो, पूतना ने माँ का काम किया है, वह मुझे दूध पिला रही है।'' प्रभु ने जो सद्गति यशोदा माँ को दी वही दिव्य सद्गति पूतना को भी दी। विष देने वाले के साथ भी कन्हैया प्रेम करता है।

श्रीकृष्ण-लीला का प्रारम्भ पूतना-चरित्र से होता है और श्रीकृष्ण लीला की समाप्ति बाण के आघात से होती है। जरा बाण मारता है। श्रीधर स्वामी ने लिखा है–जरा रूपी बाण श्रीकृष्ण को लगा ही नहीं है। जरा अर्थात् वृद्धावस्था। वृद्धावस्था भोगी को बाण मारती है। भोगी को वृद्धावस्था लगती है। श्रीकृष्ण तो ब्रह्मचारी थे। आत्मा-रामः, अच्युतः–इन विशेषणों से सिद्ध होता है कि बाण श्रीकृष्ण को लगा ही नहीं है। श्रीकृष्ण से काम का स्पर्श नहीं हुआ है। सूर्य के पास अन्धकार जा ही नहीं सकता। परमात्मा श्रीकृष्ण के पास काम आ ही नहीं सकता। तब स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के पास काम कैसे आ सकता है? भोगी को जरा का बाण लग सकता है पर श्रीकृष्ण तो महान् योगी हैं। जरा का बाण उन्हें लगा ही नहीं है, पर प्रभु ने ऐसी लीला की है। जरा बाण मारता है। उसे पीछे से पश्चात्ताप होता है। वह वंदन करता है। क्षमा माँगता है। प्रभु कहते हैं–''तेरा कल्याण होगा। तुम्हें मैं मुक्ति दूँगा। पारधी को अक्ल कम थी। उसने कहा–आप मुझे मुक्ति देंगे और मेरा उद्धार होगा, पर मेरे बाल-बच्चों का क्या होगा? घर में बच्चे भूखे हैं। मैं उनके लिए आखेट करने निकला हूँ। प्रभु कहते हैं–''लोग मुझे जो भेंट देते हैं, उन्हें मैं तुम्हारे बाल-बच्चों को दूँगा। तुम्हारी संतान का पोषण करूँगा। जरा ने बाण मारा था, फिर भी प्रभु ने उसका कल्याण किया। वह जन्म-मरण के संत्रास से मुक्त हुआ। प्रभु ने उसकी संतानों का कल्याण किया। उनका लालन-पालन परमात्मा ने किया। आप जगन्नाथजी गये होंगे। जगन्नाथजी में ऐसा नियम है कि बारह मास में एक मास भीलों का होता है, उस समय भील सेवा-पूजा करते हैं। भगवान् को जो भेंट आती है, भील लोगों को मिलती है। ये लोग ऐसा कहते हैं कि हम जरा के वंशज हैं। प्रभु ने जरा की संतानों का भी कल्याण किया है।

श्रीकृष्ण जैसा प्रेम करते हैं वैसा प्रेम करने वाला इस संसार में कोई नहीं है। परमात्मा प्रेम करते हैं तब जीव की योग्यता का विचार नहीं करते। वे अति उदार हैं, अति प्रेमपूर्ण हैं। श्रीकृष्ण प्रेमस्वरूप हैं।

नारदजी कहते हैं–''महाराज, सुनने वाला प्रेम में पागल हो जाय ऐसी कथा, विस्तार-सहित कहिये। ऐसी कथा कहिये कि सुनने वाला श्रीकृष्ण से प्रेम करने लगे। श्रीकृष्ण से प्रेम करेंगे, तब ही हमारे दुःख दूर होंगे। महाराज, अधिक क्या कहूँ? मैं अपना ही उदाहरण देता हूँ। मैं एक दासी का पुत्र था। चार महीनों तक मैंने श्रीकृष्ण-कथा सुनी। मेरा जीवन सुधर गया। मेरे पाप नष्ट हो गये। हृदय में प्रेम जागा। मैंने कथा सुनी, इससे मैं पुनर्जन्म में जो दासीपुत्र था, इस जन्म में देवर्षि नारद होकर जन्म ले सका हूँ।''

९– नारदजी की आत्म-कथा

नारदजी को पूर्वजन्म के सद्‌गुरुदेव याद आये और सद्‌गुरुदेव के स्मरण से उनकी आँखों में आँसू आ गये, हृदय गद्‌गद हो गया। दो मिनट तक नारदजी बोल भी न सके। फिर कहने लगे, ''अपने गुरुदेव का उपकार मैं नहीं भूल सकूँगा। गुरुदेव ने मुझे प्रभु का रंग लगाया। उन्होंने मुझे प्रभु के रास्ते की ओर मोड़ दिया, गुरुदेव ने मेरे विकारों व वासना का नाश किया। मैं तो साधारण दासी-पुत्र था। मेरे गुरुदेव ने मुझ पर कृपा की।

व्यास महर्षि ने कहा–''महाराज! अपने पूर्वजन्म की कथा सुनाइए। आपको भक्ति का रंग कैसे लगा? आपके पाप कैसे नष्ट हो गये? मरने के बाद पूर्व जन्म तो याद नहीं आता। अत्यंत विस्मरण को ही मरण कहते हैं। आपको पूर्वजन्म याद आता है, इसका कारण क्या है? पूर्वजन्म के आपके सद्‌गुरुदेव कहाँ हैं?''

अब नारदजी व्यास महर्षि को पूर्वजन्म की कथा सुनाते हैं–पूर्व जन्म में मैं एक दासी-पुत्र था। जब बहुत छोटा था, तभी मेरे पिताजी की मृत्यु हो गई। पिता की याद मुझे नहीं है। अपनी विधवा माँ की याद मुझे आती है। पिताजी की मृत्यु के बाद मेरी माता एक ब्राह्मण के घर में दासी का काम करने लगी। दासी का पुत्र मैं उस ब्राह्मण के घर पर बड़ा हुआ। मेरी माता को सारा दिन काम करना पड़ता था। कपड़े धोना, बर्तन माँजना आदि काम मेरी माँ ही करती थी। मैं अपनी माता के पीछे-पीछे फिरता रहता था। अपनी माता को प्रत्येक काम में सहायता भी देता था। इससे मेरी माता प्रसन्न भी होती थी। वह मुझे बहुत प्रेम करती, लाड़-दुलार करती। मैं एक ही पुत्र था, इससे माँ का बहुत प्यारा था। माता को मुझसे बहुत आशा-आकाँक्षा थी। वह सोचती थी कि

लड़का बड़ा होगा, नौकरी करेगा, उसका विवाह होगा। उसकी बहू आयेगी और मैं सुखी हो जाऊँगी। दस साल का हुआ, पर मैं उस समय भीलों के लड़कों के साथ ही खेलता रहता था। सांसारिक सुखों में मैं फँसा हुआ था।

उस समय कुछ भजनानंदी साधु घूमते-घूमते हमारे गाँव में आये थे। गाँव के लोगों ने उनसे बहुत आग्रह किया। उन्होंने संतों से प्रार्थना करके कहा—आप दो-चार मास इधर रहिये और अपनी भक्ति का लाभ हमें दीजिए। प्रार्थना स्वीकार कर संतगण हमारे गाँव में चार मास तक रहें। गाँव के लोगों ने उनकी सेवा की व्यवस्था की। मुझे संतों के पास जाने की गृह-स्वामी की आज्ञा मिली। मुझे संतों के पास वे ले गये और कहने लगे—'यह एक गरीब विधवा का पुत्र है, आपकी सेवा में इसे देता हूँ; आपके लिए पुष्प, तुलसी आदि ला दिया करेगा। आप जो कहेंगे, वही यह करेगा। यह बहुत ही गरीब है।'' तो इस प्रकार संतों के भोजन के बाद मुझे भी वहाँ प्रसाद मिलने लगा।

सच्चे संतों के दर्शन दुर्लभ हैं। कभी किसी को संत के दर्शन हो भी जायँ, तो सेवा अति दुर्लभ है। कदाचित् किसी को संतों की सेवा का लाभ भी मिल जाय पर संपूर्ण श्रद्धा पाना बहुत ही कठिन है। जिसे चौबीसों घंटे संतों की सेवा में रहना पड़ता है, उसे संत के दोष भी दीख पड़ते हैं। निर्दोष तो एकमात्र परमात्मा हैं। जो मल-मूत्र से भरे शरीर में रहता है, वह कोई-न-कोई भूल तो करता ही है। संत में एकाध दोष होगा, साथ-साथ उनमें अनेक सद्‌गुण भी होंगे। दोष भक्ति से दूर होते हैं। तन और मन मल के आधार पर टिकते हैं। मन अत्यंत शुद्ध हो, तभी भगवान् में मिल पाता है। मन मैला है, इससे ही शरीर जीवन है। संत में भी एकाध दोष होता है। भगवान् की संतों के हाथों से कुछ काम करने की इच्छा होती है। संत पूर्ण निर्दोष होंगे तो कुछ नहीं कर सकेंगे। पूर्ण निर्दोष होकर वे ईश्वर से अलग नहीं रह सकते। जीव मात्र में कोई-न-कोई दोष होता ही है। चौबीसों घंटे संतों की सेवा में रहने वालों को संतों के दोष भी दीख पड़ते हैं, इससे संतों में उनकी संपूर्ण श्रद्धा नहीं होती है। कदाचित् किसी की संतों में संपूर्ण श्रद्धा भी हो जाय, फिर भी संतों के प्रति जिनकी सच्ची सहृदयता नहीं है, उन पर भक्ति का रंग नहीं चढ़ता। संत विषयानंद नहीं देते, भजनानंद देते हैं। कोई संत जब कृपा करते हैं, तब ही भक्ति में आनंद आता है। संत संपत्ति देकर सुखी नहीं करते, संत सन्मति देकर, बुद्धि सुधार कर सुखी करते हैं। संत विकार-वासना का विनाश करके सुखी करते हैं।

नारदजी कहते हैं कि बचपन से ही मुझ में दो सद्‌गुण थे। बचपन से ही ऐसी आदत पड़ गई थी कि सुबह तीन-साढ़े तीन बजे मैं जाग जाता था। मेरे गुरुदेव चार बजे जागते थे। मेरे गुरुदेव

जाग उठते, तब मैं उनको साष्टांग वंदन करता था। गुरुदेव को आनंद होता था। जो सुबह जल्दी उठते हैं, वे संतों को प्रिय हैं। मुझमें एक दूसरा सद्‌गुण था। मैं बहुत कम बोलता था। जो कम बोलते हैं वे संतों को प्रिय लगते हैं।

मुनयरल्पभाषिणः

अधिक बोलना संतों को नहीं भाता है। मैं अपने गुरुदेव के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ा रहता था। मुझमें विनय भाव था। दारिद्र्य में एक बड़ा सद्‌गुण रहता है। दारिद्र्य दैन्य लाता है। 'मेरे पास एक पैसा भी नहीं है। मैं कुछ पढ़ा-लिखा नहीं हूँ। मैं किस बात का अभिमान करूँ? दारिद्र्य से मिले ऐसे भावों के द्वारा अभिमान नष्ट हो जाता है। संपत्ति अपने साथ अभिमान भी लाती है।

नारदजी फिर कहने लगे–'महाराज! मैं आपसे क्या कहूँ? एक बार मैं कथा में गया था। वहाँ कथा में मुझे बहुत आनंद आया। मेरे गुरुदेव बहुत सरस कथा कह रहे थे। बड़े-बड़े ज्ञानियों को भी वे कथा में मग्न कर रहे थे और मेरे जैसे बच्चे और अज्ञानी हों तो उनका भी वे कल्याण करते थे। बहुत विवेक से, बहुत प्रेम से वे कथा कह रहे थे। सुबह वे उपनिषद् की ब्रह्मज्ञान की थोड़ी बातें करते और सायंकाल में श्रीकृष्ण-कथा कहते थे। मेरे गुरुदेव के इष्टदेव थे श्रीबालकृष्णलाल। गुरुदेव को बालकृष्ण का स्वरूप बहुत प्रिय था। गुरुदेव जब श्रीकृष्ण का स्मरण करते, तब उनकी आँखों में आँसू आ जाते, गला भर आता। उनको श्रीकृष्ण-कथा अतिप्रिय थी। गुरुदेव बहुत प्रेम से श्रीकृष्ण-कथा करते। मुझे कथा में अति आनंद आता था। श्रीकृष्ण की बाललीला में प्रेम बढ़ता था। कथा चल रही थी–मधुमंगल, मनसुखा सब दीन ग्वालों के बालक हैं। ये पढ़े-लिखे नहीं हैं। इन बालकों के घर में संपत्ति नहीं है, पर लाला को वे बहुत प्रिय हैं। लाला गरीब-ग्वालों से बहुत प्रेम करता है। वह कहता है–''मैं तुम लोगों के समान ही ग्वाला हूँ। मैं देव नहीं हूँ, ईश्वर नहीं हूँ। यहाँ कोई महान् नहीं है, बड़ा नहीं है। तो इस प्रकार लाला ग्वाल मित्रों से बहुत प्रेम करता है।

मनसुखा बहुत दुबला पतला है। उसके शरीर की हड्डियाँ दीख रही थीं। लाला ने मनसुखा के कंधे पर हाथ रखकर कहा–'तुम मेरे मित्र हो कि नहीं?' मनसुखा ने स्वीकृति में सिर हिलाया। लाला ने कहा–तब ऐसा पतला मित्र मुझे पसंद नहीं है। मेरे मित्र को मेरे समान मोटा ताजा, होना चाहिए। तुम मेरे जैसे हो जाओ। जीव ईश्वर की अनादि काल से मैत्री है। ईश्वर चाहता है कि सब मेरे समान हो जायें। श्रीकृष्ण की बात सुनकर मनसुखा रोने लगा। उसने कन्हैया से कहा–तुम तो राजा के लड़के हो। तुम्हारी माँ तुम्हें रोज माखन-मलाई खिलाती होगी, इससे तुम मोटे हो गये हो। मैंने कभी माखन नहीं खाया है। मेरी माँ मुझे दूध भी नहीं देती। मैं बहुत गरीब हूँ, इससे मेरी माँ मुझे छाछ देती है। लाला, मेरे जैसे गरीब को कौन माखन खिलायेगा? मुझे कोई

माखन खिलाये तो मैं भी मोटा हो सकता हूँ। मनसुखा की बात लाला ने ध्यान में रख ली। लाला मनसुखा को समझा रहा है–'तुम रोना नहीं। कल से मैं तुम्हें रोज माखन खिलाऊँगा। लोग भले ही मुझे माखन चोर कहें। 'लोग लाला को माखन–चोर कहते हैं। लाला ने माखन की चोरी तो की पर सब माखन मित्रों को खिला दिया। मित्रों के लिए वह माखन चोर बना। आपको कोई माखन–चोर कहे तो क्या वह आपको पसंद होगा? लाला को लोग माखन–चोर कहकर पुकारते हैं, पर लाला को बुरा नहीं लगता। वे मित्रों के लिए ही माखन–चोर कहलाये। लाला की भावना थी कि मेरे सब मित्र मेरे जैसे मोटे–ताजे, हृष्ट–पुष्ट बन जायें।

नारदजी व्यास महर्षि से कहते हैं– मेरे गुरुदेव ने लाला का ऐसा वर्णन किया है। मैं बालक था, मेरे मन पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। मुझे कथा में अतिशय आनंद आ रहा था। परमात्मा बालकों से प्रेम करते हैं। प्रभु के दरबार में बालक को तुरन्त प्रवेश मिलता है। जिसका हृदय बालक के समान निर्दोष निर्विकार है, वह परमात्मा को बहुत प्रिय है। गुरुदेव इस तरह कथा करते थे। मुझे कथा में ऐसा आनंद आने लगा कि मेरे खेल–कूद सब बंद हो गये। इसके बाद मैं कभी खेलने नहीं गया। कथा में बहुत आनंद आने लगा। श्रीकृष्ण कथा ऐसी मधुर है। बालकों को आनंद आता है। युवकों को आनंद आता है। साधु–संतों को आनंद आता है। नास्तिकों को भी आनंद आता है। नास्तिक कथा सुनता है तो उसमें भी श्रीकृष्ण–प्रेम जागता है। मैं रोज कथा में जाने लगा। कभी–कभी गुरुदेव मुझे देखते। संतों की आँखों में सदैव प्रेम भरा रहता है। संत जिसे प्रेम से देखते हैं, जिसे प्रेम से स्पर्श करते हैं, उसका कल्याण होता है।

श्रीगौरांग महाप्रभुजी के चरित्र का एक प्रसंग है–''एक काजी था। वैष्णव भक्त कीर्तन करते, तब वह उसे नापसंद करता था। वह चाबुक से भक्तों को मारता था। श्रीमहाप्रभुजी ने यह बात सुनी। महाप्रभुजी ने निश्चय किया–जो मेरे वैष्णवों को मारता है, उसके आँगन में जाकर ही आज कीर्तन करूँगा। वैष्णवों ने मना किया। कहा कि वह जीव योग्य नहीं है, वह आपका अपमान करेगा, पर महाप्रभुजी तो 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' कृष्ण, कृष्ण, हरे हरे–कीर्तन करते–करते काजी के आँगन में जा पहुँचे। वह पापी जीव उन्हें मारने के लिए दौड़ा। जैसे ही वह मारने के लिए पास आया, वैसे ही प्रेमावतार चैतन्य महाप्रभुजी ने उसे गले लगा लिया और उनका स्पर्श पाकर काजी को भक्ति का रंग लग गया। उसका हृदय द्रवित हो गया। वह भी पागल होकर 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' गाने लगा। संत जिसे प्रेम देते हैं, उसे परमात्मा के दर्शन की दृष्टि भी देते हैं। संत जिसका स्पर्श करते हैं, जिसे देखते हैं, उसके रोम–रोम से परमात्मा के नाम के जप प्रकट होते हैं। संतों के श्रीअंग नाममय होते हैं।

नारदजी कहते हैं–गुरुदेव कथा करते-करते अनेक बार मेरी ओर देखते। शायद यह सोचकर कि सुबह यह बालक जल्दी उठकर कथा में आता है। इस जीव का परमात्मा कल्याण करें। संत बुद्धि से सुधारते हैं। भक्ति का रंग लगा देते हैं। संत संसार का यानी लौकिक सुख नहीं देते। संसार का सुख तो जीव अनेक जन्मों से भोगता रहा है। संसार के सुख-भोग से कहाँ शांति मिलती है? संत सच्चा सुख देते हैं, सच्चा आनंद देते हैं।

एक दिन गुरुदेव ने मुझ पर कृपा की। इसकी मुझे याद आ रही है। उत्सव का दिन था। अनेक साधु-महात्मा पधारे थे। सुबह से ही मैं उनकी सेवा कर रहा था। दोपहर को दो बजे साधुओं के भोजन के बाद मैं पत्तलें उठाने के लिए गया, तब गुरुदेव वहीं विराज रहे थे। सन्त का प्रेम शुद्ध होता है। संसार का प्रेम स्वार्थ पूर्ण होता है। जिसे परमात्मा मिले हैं, उसे प्रभु के अतिरिक्त दूसरा कोई स्वार्थ नहीं होता है। जिसे परमात्मा की अनुभूति होती है, वह निःस्वार्थ भाव से प्रेम करता है। सन्त की आँखों से सदैव प्रेम छलकता रहता है। गुरुदेव की दृष्टि मुझ पर पड़ी, और उन्होंने पूछा, 'बेटा, तुमने खाना खाया?' मुझे बहुत भूख थी। मैं बहुत थक गया था। मेरे जैसे गरीब को कौन जल्दी से खाना देता? गुरुजी का अपने प्रति प्रेम-भाव देखकर मेरा हृदय द्रवित हुआ। मेरी आँखों में आँसू आ गये। मैं सोचने लगा कि मेरे गुरुदेव मेरी बहुत सम्भाल रखते हैं। मेरे प्रति उनका कैसा प्रेम है? हाथ जोड़कर मैं खड़ा रहा और कहने लगा–अभी मैं सन्तों की सेवा करूँगा, फिर प्रसादी लूँगा। गुरुदेव को मालूम हुआ कि इस बालक को किसी ने खाना नहीं दिया है। सुबह दो बजे यह उठता है, सारा दिनसेवा करता है। रोज कथा सुनता है। इस जीव का परमात्मा कल्याण करेंगे! इस जीव को भक्ति का रंग लग जाय! इसका मन शुद्ध हो जाय। गुरुदेव को दया आ गयी। मुझ से उन्होंने कहा–'बेटा! मेरी पत्तल में थोड़ा मेरा जूठा भोजन पड़ा है, वही तू खा जा।'

मेरे गुरुदेव का ऐसा नियम था कि वे बालकृष्णलाल को अर्पण किये बिना पानी भी नहीं पीते थे। यह भगवान् का प्रसाद था। मेरे गुरुजी खा गए थे। उन्होंने वही प्रसाद कृपा करके मुझे दिया। महाराज! आप से क्या कहूँ उस प्रसाद के खाने के बाद मुझे नवजीवन मिला। मैं रोज कथा सुनता और कीर्तन करता पर उस दिन कथा-कीर्तन में मैं बहुत तन्मय हो गया। कीर्तन में मैं देह भान भी भूल गया। मुझे प्रभु के स्वरूप का थोड़ा अनुभव हुआ। आनन्द में आकर मैं नाचने लगा। भजन-कीर्तन में बुद्धि पूर्वक बहुत नाचना अच्छा नहीं है, उसमें तन्मयता ही चाहिए। तन्मयता में ही हृदय द्रवित होता है। परमात्मा का स्वरूप दिखाई दे तो भीतर का आनन्द मिलता है। तब मालूम नहीं पड़ता कि शरीर नाच रहा है। तन्मयता में, अति आनन्द में शरीर नाचता है। उस दिन कीर्तन में मैं नाच रहा था। चार महीनों तक मैंने निरंतर सेवा की, कृष्ण कथा सुनी। धीरे-धीरे प्रभु में प्रेम

जागा। प्रेम जागने पर ही पाप नष्ट होते हैं। प्रेम के बिना कोई जीव नहीं रह सकता। जीव जगत् से प्रेम करता है, परमात्मा से प्रेम नहीं करता है। गुरुदेव ने ऐसी कृपा की कि मुझे भजन- कीर्तन में तन्मयता आने लगी; आनन्द आने लगा।

चार मास के बाद जब मेरे गुरुजी जाने की तैयारी करने लगे तब मुझे बहुत दुःख हुआ। दुर्जन का संग बहुत दुःख देता है और सन्त का वियोग बहुत दुःख देता है। मेरे गुरुदेव एकान्त में विराज रहे थे, तब मैंने जाकर साष्टांग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर प्रार्थना की–आपने मुझे बोध दिया, आपने मुझे प्रतीति करवायी कि सच्चा सुख क्या है? अब आप मेरा त्याग न करिये। मैं आपकी सेवा करूँगा। मुझे अपने साथ ले चलिए।

मेरे गुरुदेव ज्ञानी थे। विधाता के लेख वे पढ़ लेते थे। मुझे सामने देखकर उन्होंने मुझसे कहा–बेटा! हम तो ले जायँ हमें क्या हर्ज, पर तुम्हारी माता बहुत दुःखी हो जायगी। बेटा! हमें ऐसा दीख रहा है कि अपनी माता के ऋणानुर्बंधित पुत्र तुम हो। माता का ऋण तुम पर है। तुम उसके एकमात्र पुत्र हो। तुम माता की सेवा करो। माता की सेवा भगवान् की भक्ति ही है। तुम्हें घर में रहकर भक्ति करनी चाहिए।

मैंने गुरुदेव से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि आपने कथा में एक बार कहा था कि आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा के साथ है। देह का सम्बन्ध माता-पिता, भाई-बहिन के साथ है। देह-धर्म से आत्म-धर्म श्रेष्ठ है। जीव, ईश्वर का अंश है। आपने कथा में एक बार समझाया था कि जब देह धर्म और आत्म धर्म के मध्य विरोध खड़ा होता है, तब महापुरुष देह धर्म को गौण मानते हैं तथा आत्म धर्म को मुख्य मानते हैं। आत्मा का धर्म है परमात्मा के प्रति प्रेम रखना। कैकेयी की आज्ञा थी कि भरत सिंहासन पर बैठें और भरत का राज्याभिषेक हो, भरत राजा हों। भरतजी ने माता की आज्ञा का पालन नहीं किया है। भरतजी ने तो कैकेयी का तिरस्कार किया है। उन्होंने अपनी माता से कहा कि वरदान माँगते उस समय तुम्हारी जीभ सड़ क्यों न गई? कैकेयी! मेरे मन में ऐसा आता है कि मैं तुम्हें मार डालूँ, पर मैं क्या करूँ? मेरे राम तुम्हें माँ कहकर पुकारते हैं। इससे ही मैं तुम्हें नहीं मार सकता। इस प्रकार भरतजी ने कैकेयी की आज्ञा का पालन नहीं किया है। प्रह्लादजी ने पिता की आज्ञा का पालन नहीं किया है। हिरण्यकशिपु का दुराग्रह था कि प्रह्लाद भगवान् की भक्ति नहीं करेगा। वास्तव में जीव का ईश्वर के साथ का सम्बन्ध सच्चा है। जगत् के साथ सम्बन्ध झूठा है। भक्ति में जो साथ देते हैं, वही हैं सच्चे गुरु । प्रेम से समझाकर पाप करते हुए रोकते हैं, प्रभु की ओर जो मोड़ देते हैं सच्चे गुरु। संसार-सुख में फँसाकर रखते हैं, वे बैरी हैं। आपने जो-जो कथा में कहा है, वह सब मैंने ध्यान में रखा है। मेरी माता मेरी भक्ति में

बहुत बिघ्न डालती है। मैं आपकी कथा सुनाता हूँ वह भी उसे पसन्द नहीं है। कहती है–अभी से जप कर रहा है? कथा सुन रहा है? तुम विद्या का अभ्यास करो। अभ्यास करोगे तो परीक्षा पास करोगे और परीक्षा पास करोगे तो नौकरी मिलेगी। नौकरी मिलेगी तो बहू आयेगी, सन्तान होगी– इसमें ही मजा है। गुरुदेव! रास्ता चलने वाले भी वंश वृद्धि करते हैं। सच्चा आनन्द कहाँ है, वह मेरी माता नहीं जानती है। सच्चा आनन्द कहाँ है, आपने ही मुझे समझाया है। आपने ही मुझे सन्मार्ग दिखाया है। मेरी माता की इच्छा है कि मेरा विवाह हो, मेरी सन्तान हो। माता का संग मुझे पसन्द नहीं है। आपने कथा में कहा था कि भक्ति में बिघ्न कर देने वालों को छोड़ देना चाहिए। मीराबाई को लोगों ने बहुत त्रस्त किया। सहने की भी सीमा होती है। मीराबाई ने बहुत सहन किया। एक बार बहुत व्याकुल हो गयीं, तब चित्रकूट में तुलसीदासजी महाराज को उन्होंने पत्र लिखा। आशय था कि मैं तीन वर्ष की थी, तब से गिरधर गोपाल के प्रति अनुरक्त हूँ। मेरी इच्छा न होने पर मेरा विवाह हुआ। मैं एक राजा की रानी हूँ। राजमहल का विलासी जीवन मुझे पसन्द नहीं है। मैं पति को परमात्मा मानती हूँ। व्यवहार की मर्यादा से भक्ति करती हूँ फिर भी लोगों से त्रास पाती हूँ। मैं क्या करूँ? तुलसीदासजी महाराज ने उत्तर दिया–बेटी, सुवर्ण की परख कसौटी पर होती है, पीतल की कसौटी पर नहीं होती। मन को समझाना कि कन्हैया तुम्हें कसौटी पर परख रहा है। धैर्य धारण कर लो। जिन्हें श्रीसीताराम प्रिय नहीं लगते, जिन्हें श्रीकृष्ण से प्रेम नहीं है उसे दूर से ही वंदन करो। वैष्णव बैर नहीं रखते, उपेक्षा करते हैं–

जाके प्रिय न राम वैदेही।

तजिये ताहि कोटि वैरी सम, यद्यपि परम सनेही।।

जिन्हें श्रीसीताराम प्रिय नहीं हैं, जिन्हें श्रीराम से प्रेम नहीं है। उनका संग छोड़ दो। मीराबाई ने पत्र पढ़ा। उन्होंने मेवाड़ छोड़ दिया। वे श्रीधाम वृन्दावन में जाकर रहने लग गयीं। इतिहास कहता है कि मीराबाई के मेवाड़ त्याग के बाद मेवाड़ बहुत दुःखी हुआ। यवनों का मेवाड़ पर आक्रमण हुआ। मीराबाई विराजमान थीं, तब देश सुखी था।

जिसे प्रभु से प्रेम नहीं है उसे दूर से वंदन कीजिए। मेरी माता को मेरी कथा सुनना भक्ति करना पसंद नहीं है। माता का संग छोड़कर मैं आपकी सेवा में आना चाहता हूँ। पर गुरुदेव कहने लगे–बेटा! यहीं रहना उचित है। चाहे जैसी भी हो वह तेरी माता है। उसने तुम्हें दो सौ अस्सी दिनों तक पेट में रखा है। माता का प्रेम और उपकार भूलना नहीं। बेटा माता की भक्ति जो करता है, वह भगवान् को प्रिय है। माता ने तन दिया है। हाँ! माता ने मन नहीं दिया है। मन से भगवान् की भक्ति करना और तन से माता की भक्ति करना। घर के लोगों को तेरे मन की जरूरत नहीं है।

घर के लोग तो तन माँगते हैं। भगवान् को तन की जरूरत नहीं है, धन की भी जरूरत नहीं है। भगवान् तुम्हारा मन माँगते हैं। तब मैंने अपने गुरुदेव से पूछा—मन से भगवान् की भक्ति करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए? गुरुदेव ने कहा—बेटा आज से ऐसी भावना रखना कि मैं नंदबाबा के घर का एक साधारण नौकर हूँ। मेरे मालिक जब गायों के पीछे चलते हैं, तब पाँवों में जूते तक नहीं पहिनते। वे नंगे पाँवों चलते हैं। मेरे बालकृष्ण को कष्ट न हो, इसलिए मैं रास्ते में बिखरे काँटे-कँकड़ बीन-बीनकर फेंक देता हूँ और रास्ता साफ कर लेता हूँ। मेरे बालकृष्ण श्रीधाम वृन्दावन में यमुनाजी के तट पर मित्रों के साथ भोजन में बैठे हैं। मैं लाला के लिए सरस द्राक्षा (अंगूर) लेकर जाता हूँ। मैं बालकृष्ण के मुख में अंगूर रख देता हूँ और कन्हैया धीरे-धीरे उन्हें खाता है। मैं दर्शन करता हूँ। इस तरह दर्शन करोगे तो समाधि लग जायगी। नाक पकड़ना नहीं, प्राणायाम करना नहीं। प्राणायाम करने से मन स्थिर रहता है पर प्राणायाम के छूटने पर मन फिर चंचल हो जाता है।

वैष्णव भाव से मन को भगवान् के धाम में, भगवान् की लीला में लगाते हैं। भक्ति में भाव का महत्व अधिक है। मुझे अपने गुरुदेव की आज्ञा थी कि 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' महामंत्र के बत्तीस लाख जप करना। इस महामंत्र के बत्तीस अक्षर हैं। हरि, कृष्ण और राम—परमात्मा के तीन नाम अति दिव्य हैं। हरि नाम के जप से पाप नष्ट होते हैं। 'श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण' प्रेम से कहकर लाला को कहना कि मेरे मन को आप प्रेम से खींच लीजिए। मेरा मन अकारण संसार में भटकता है। अपने मन को मैं सँभाल कर रख नहीं पाता। मेरे मन को आप आकर्षित कीजिए।

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च॥

श्रीकृष्ण की आकर्षण-शक्ति दिव्य है। 'श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण' प्रेम से बोलिये। लाला की प्रेम पूर्वक प्रार्थना कीजिए। इस प्रकार धीरे-धीरे भगवान् आपके मन को खींच लेंगे। भगवान् जिसके मन को आकर्षित करते हैं, उसे राम मिलते हैं। राम अर्थात् आनन्द मिलता है। इस महामंत्र के बत्तीस लाख जप कीजिए।

नारदजी गुरुदेव से कहते हैं—''महाराज! मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ। जप को गिनना मुझे नहीं आता।'' गुरुदेव ने कहा—'बेटा, जप करना तुम्हारा काम है। गिनना भगवान् का काम है।' जो बहुत प्रेम से भगवान् के नाम के जप करता है, परमात्मा का स्मरण करता है, श्रीबालकृष्णलाल उसके पीछे-पीछे चलते हैं। लाला ब्रह्मादि देवों को आज्ञा करते हैं—इस जगत् की उत्पत्ति कीजिए। एक-एक का विनाश कीजिए। उत्पत्ति और विनाश—ये दो काम ब्रह्मादि करते हैं। श्रीबालकृष्णलाल

तो वैष्णवों के साथ खेलते हैं। वैष्णवों से लाला को बहुत प्रेम है। भक्त के पीछे-पीछे चलने की लाला को आदत है। आप बहुत जप कीजिए गिनना नहीं कि कितना जप किया है। गिनने से यह कहने का मन होगा कि मैंने एक करोड़ जप किये हैं। आज तक कितना खाया, इसे मानव भूल जाता है। कितने जप किये, इसे मानव नहीं भूलता!

एक भाई हमसे कह रहे थे कि महाराज! मैंने तीन करोड़ जप किये। अब पूर्णाहुति करने का विचार है। पूर्णाहुति में मुझे क्या करना चाहिए कोई ऐसा नहीं पूछने आता कि कई वर्षों से मैं दाल-भात खाता हूँ। अब मुझे दाल-भात की पूर्णाहुति करनी है। अरे, भोजन की पूर्णाहुति नहीं है तो भजन की पूर्णाहुति कैसे? जीवन की अन्तिम साँस तक प्रभु के नाम के जप करने हैं।

नारदजी ने कहा कि मेरे गुरुदेव ने मुझे आज्ञा की कि बत्तीस लाख नाम जप करना। तुम्हें अनुभव होगा। जप होने के बाद तुम्हारा नया जीवन प्रारम्भ होगा। भगवान् कैसी लीला कर रहे हैं-इसे कोई नहीं समझ सकता। कदाचित् तुम्हारी माता की बुद्धि में सुधार हो जायगा! कदाचित् भगवान् माता को अपने पास ले जायें। बेटा! माँ को पसन्द है, वैसा ही करना। माँ को पसन्द हो वैसा ही बोलना। माता को मान देना। माता को वंदन करना। माता के आशीर्वाद से भक्ति में जरा भी विघ्न नहीं आयेंगे। मेरे गुरुदेव ने मुझे ऐसा उपदेश दिया।

फिर गुरुदेव पधार गये। गुरुदेव के वियोग में मुझे बहुत दुःख हुआ। मुझ पर वे कैसा प्रेम रखते थे। पूर्वजन्म के गुरुदेव के स्मरण से नारदजी की आँखों में आँसू आ गये। कहने लगे कि मुझे कोई सम्मान देता है, तब गुरुदेव को याद आती है। यह सब उनकी कृपा का ही फल है। अपने गुरुदेव के उपदेश की स्मरण करके मैं बारह वर्षों तक घर में रहा। तन से मैंने माता की भक्ति की। मन से मैं वृन्दावन में रहता था। मंत्र के जप करते हुए मैंने श्रीकृष्ण की भक्ति की, सेवा की। बत्तीस लाख जप हो जाने के बाद प्रभु को दया आ गयी। एक दिन ऐसा हुआ कि माता संध्या समय पर दूध दुहने गयी। वहाँ गौशाला में अंधकार था। माता का पाँव सर्प पर पड़ गया। सर्पदंश हुआ। माता का मरण हुआ। माता की मृत्यु से मैं बहुत दुःखी नहीं हुआ। प्रभु ने जो कुछ किया, अच्छा ही किया। मैंने इसे परमात्मा का अनुग्रह माना-

'अनुग्रहं मन्यमानः'

आसक्ति का एक तन्तु था। वह भगवान ने तोड़ दिया। अब मैं भगवान् का हुआ। सोचने लगा कि भगवान् के सिवाय मेरा कोई नहीं है। उसीके आनन्द में मैं मग्न रहने लगा।

घर में जो कुछ था, मैंने माँ के अन्तिम संस्कार के ऊपर खर्च कर दिया। एक वस्त्र के साथ मैंने घर छोड़ दिया। अपने गुरुदेव से कथा में मैंने सुना था कि मेरे प्रभु नास्तिक का भी पोषण

करते हैं। तब मैं तो प्रभु का हूँ। पशु-पक्षी भी खाने की चिंता नहीं करते। पशु संग्रह नहीं करते। वे प्रभु में विश्वास रखते हैं। जिस परमात्मा ने आज भोजन दिया है, वे कल भी देंगे। एक मानव ही खाने की बहुत चिंता करता है। मुझे अपने प्रभु में विश्वास था।

जप करने का मेरा विश्वास इतना दृढ़ था कि रास्ते में चलते-चलते भी मैं जप करता। बातें करते समय भी भीतर चल रही जप की अखण्ड धारा टूटती नहीं थी। स्वप्न में भी मैं प्रभु के नाम का जप करता रहता था। परमात्मा के नाम में जो तन्मय होते हैं, वे एक दिन परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। निरन्तर जप करने वाला ही तन्मय हो सकता है। प्रभु के नाम में मेरी तन्मयता हो गयी। बारह वर्ष में मैंने अनेक तीर्थों का भ्रमण किया। मुझे ठीक से याद है कि मैं कभी माँगने नहीं गया, फिर भी परमात्मा की ऐसी कृपा थी कि मैं एक दिन भी भूखा नहीं रहा। मुझे भूख लगती तब प्रभु किसी को प्रेरणा देते और मुझे बिना माँगे खाना मिलता था।

एक बार घूमते-घूमते मैं गंगातट पर पहुँचा। गंगाजी को वंदन करके गंगाजी में स्नान किया। गंगातट पर वृक्ष के नीचे बैठकर मैं जप करने लग गया। मेरा मन अब पवित्र हो गया था। पवित्र मन में परमात्मा के दर्शन की इच्छा जाग्रत हुई। मानव का मन मैला है, इससे प्रभु-दर्शन की इच्छा जाग्रत नहीं होती। मेरा मन शुद्ध हो गया था। भावना से मैं अनेक बार श्रीकृष्ण के दर्शन कर सका था। अब मेरे मन में भाव जागा कि परमात्मा मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दें और उसी समय मुझे सुन्दर प्रकाश दिखाई दिया, जिसका रंग नीला था। मैंने तेज देखा। मुझे आनन्द मिला। मेरी दृष्टि तेजोमयी थी। 'हरे-कृष्ण' के महामंत्र का जप चल रहा था। उसी समय प्रकाश में से परमात्मा का स्वरूप प्रकट हुआ। मेरे इष्टदेव पाँच वर्ष के श्रीबालकृष्णलाल प्रकट हुए। लाला का स्वरूप मुझे बहुत प्रिय था। यशोदा माता ने लाला को सुन्दर पीताम्बर पहिनाया है। कमर पर करधनी धारण की है। कानों में कुण्डल हैं, नाक में मोती है। भालप्रदेश में तिलक है। रेशम से बाल हैं। मोर-मुकुट शोभित है। हाथ में बाँसुरी है। अधर पर मधुर स्मित है। आँखों में प्रेम भरा है। बालकृष्णलाल मुझे प्रेम से देख रहे हैं। मुझे उस समय के दर्शन से जो आनन्द मिला, उसका वर्णन करना असंभव है। सरस्वती के पास भी शब्द नहीं होंगे ऐसा अकथनीय आनन्द मुझे मिला है। मेरे मन में ऐसा भाव जागा कि मैं दौड़कर जाऊँ। उनके चरणों में शरण ले लूँ। वे मेरे मालिक हैं। मैं उनका एक तुच्छ दास हूँ। ऐसा भाव दृढ़ हुआ। मालिक अति उदार है। अति प्रेम से भरे हैं, मैं चरणों में वंदन करूँगा। मेरे स्वामी मस्तक पर हाथ रखेंगे। मैं वन्दन करने दौड़ा पर उसी समय भगवान् अन्तर्द्धान हो गये।

जिस स्थान पर मुझे प्रभु के दर्शन हुए मैंने उसे प्रभु का धाम मान लिया। यह गंगा तट था। मैंने संकल्प किया कि अब मुझे इस स्थान को छोड़ना नहीं है। मैं यहीं रहा। महाराज! आपसे क्या

कहूँ? अपनी मृत्यु के छः मास पहिले ही मैंने अनुभव किया कि शरीर से आत्मा भिन्न है। यह शरीर जो है, वह मैं नहीं हूँ। मेरी जड़ चेतन की गाँठ खुल गई थी। शरीर जड़ है आत्मा चेतन है। इन दोनों की गाँठ लगी थी। वेदान्त कहता है कि यह झूठी है। झूठ होने पर भी सबको रुलाती है, बहुत त्रस्त करती है। झूठे स्वप्न की तरह दुःख देती है। परमात्मा से अतिशय प्रेम करें तब ही यह गाँठ खुलती है। परमात्मा से जब तक अतिशय प्रेम नहीं होगा, तब तक हृदय की ज्वाला शांत नहीं होगी। मृत्यु के छह मास पहिले ही यह गाँठ छूट गई है, ऐसा मुझे अनुभव हुआ। आप कितनी भी यात्राएँ कीजिए, यह गाँठ नहीं छूटेगी। आप यज्ञ करिये, मन्दिर का जीर्णोद्धार करिये, गरीबों को भोजन दीजिए, इन सत्कर्मों से पुण्य बढ़ेगा पर गाँठ छूटेगी नहीं। अत्यधिक भक्ति से ही जड़-चेतन की यह गाँठ छूटती है। मैंने जो भक्ति की उसका फल मुझे मिला है, यही मैंने अन्तकाल में अनुभव किया।

मृत्यु के समय मुझे जरा भी दुःख नहीं हुआ, जरा भी कष्ट नहीं हुआ। अपने श्रीकृष्ण के ध्यान में मैंने शरीर छोड़ दिया। माखन में बाल होता है तो बाल निकालने में जरा भी कष्ट नहीं होता पर सूखे हुए गोबर के उपले से बाल निकालने में बहुत कष्ट होता है। उसी तरह सन्तों को शरीर छोड़ने में जरा भी दुःख नहीं सहना पड़ता, पर जिसका मन संसार के विषयों में रमा है, उसे शरीर छोड़ने में बहुत दुःख होता है। उसे शरीर छोड़ना पसन्द नहीं है पर फिर भी यमदूत उसे शरीर में नहीं रहने देते। जीव को धक्के मार कर वे शरीर से बाहर निकाल देते हैं तो इस प्रकार शरीर छोड़कर मैं ब्रह्मलोक में गया और ब्रह्माजी के यहाँ नारदजी के रूप में जन्म हुआ। पूर्व जन्म के कर्म का फल मुझे इस जन्म में मिला। पूर्व जन्म में निरन्तर भजन किया था, इससे इस जन्म में मेरा मन परमात्मा में स्थिर हुआ है। मेरा मन अब संसार की ओर नहीं जाता है, आकर्षित नहीं होता है।

एक बार घूमते-घूमते मैं श्रीधाम वैकुण्ठ में गया, जहाँ सुवर्ण सिंहासन पर लक्ष्मीजी के साथ भगवान् नारायण विराजमान रहते हैं। जहां सुवर्ण के सींगों वाली गाय हैं। वहां रजोगुण को प्रवेश ही नहीं मिलता है। वहां शुद्ध सत्वगुण हैं तथा वहां नित्य लीला है। वैकुण्ठ में मात्र आनन्द ही आनन्द है। वैकुण्ठ में काल को प्रवेश नहीं मिलता है। वहां लक्ष्मीनारायण के दर्शन से मुझे अतिशय आनन्द मिला है। दर्शन करते हुए मैंने प्रेम से कीर्तन गान किया। प्रभु बहुत प्रसन्न हुए। प्रभु ने मुझे और कुछ नहीं दिया, केवल यह तम्बूरा दिया और कहा–'इसे हाथ में रखा करो और मेरे नाम का कीर्तन किया करो। जहाँ तुम मेरे नाम का कीर्तन करोगे, वहीं मैं लक्ष्मीजी को लेकर आऊँगा। मेरी कथा में, कीर्तन में परमात्मा को बहुत आनन्द आता है। प्रभु ने मुझे कहा–'बेटा, ऐसी कथा, ऐसा कीर्तन किया करो कि जिसे सुन कर जीव मेरे चरणों में आ जाये। जो जीव मुझसे जुदा

हो गया है, माया के प्रवाह में जो बह गया है, संसार में भटकर रहा है, ऐसे जीव को मेरे सम्मुख ले आओ। मुझे भगवान ने ऐसी आज्ञा दी है। माया के प्रवाह में बहने वाले जीव को मैं परमात्मा के समक्ष ले जाता हूँ। प्रभु की मुझ पर बहुत कृपा है। महाराज आप ऐसी कथा कीजिए कि कथा सुनने वालों को कन्हैया प्रिय लगने लगे, उनका प्रभु में प्रेम जाग्रत हो जाय। कथा सुनने वालों के पाप जल जायँ, उनका जीवन सुधर जाय।

व्यास महर्षि ने नारदजी से कहा कि आप अब कथा कीजिए और मैं लिख लूँ। नारदजी ने कहा–'महाराज आपको कथा कौन सुनायेगा? आप तो सब कुछ जानते हैं। अब समाधि में बैठिए और समाधि में जो कुछ दिखाई दे, वही बोलिये। इस प्रकार 'नारायण-नारायण' कीर्तन करते हुए नारदजी ब्रह्मलोक में पधार गये। अब व्यास महर्षि ने पवित्र गंगाजल का आचमन किया है। व्यासजी प्रणाम कर रहे हैं। उनको दिव्य प्रकाश दिखाई पड़ा, और समाधि लग गई है। प्रकाश में श्रीधाम वृन्दावन के दर्शन हुए। नन्दबाबा का राजमहल दिखाई दिया। यशोदा माता की गोद में बालकृष्ण खेल रहे हैं। उँगली पर गिरिराज गोवर्द्धन उन्होंने धारण किया है। व्यासजी को रास के दर्शन हुए। एक-एक बाल-लीला के दर्शन हुए। समाधि में जो दिखाई दिया, वही व्यास महर्षि कहते हैं।

अन्य पुराणों में व्यासजी की लौकिकी भाषा है। भागवत में समाधि-भाषा है। आँख को झूँठ भी दिखाई देता है। जो आँख को दिखाई दे, वह सत्य नहीं होता। जादूगर के जादू से रुपयों का ढेर दिखाई देता है। आँख को रुपयों का ढेर दिखाई देता है, पर वहाँ तो मिट्टी होती है। वे अगर सच्चे रुपये होते तो जादूगर भीख क्यों माँगता? आँख को झूठ दिखाई देता है। आँखें बन्द करके परमात्मा का ध्यान करते हुए, समाधि में सत्य वस्तुओं का साक्षात्कार होता है। समाधि में जो दीख पड़ता है, वह सत्य है।

१०–अधिकारी वक्ता और श्रोता

स संहितां भागवतीं कृत्वानुक्रम्य चात्मजम्।
शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनिः॥ (१-७-८)

व्यासजी ने अट्ठारह हजार श्लोकों का यह भागवत ग्रंथ बनाया है। भागवत ग्रंथ परमहंसों की संहिता है। व्यासजी ने विचार किया जो जन्म से निर्विकारी हो। वही इस ग्रंथ का प्रचार कर सकेगा। ऐसे लायक वक्ता तो एक शुकदेवजी ही थे। शुकदेवजी जन्मसिद्ध योगी थे। जन्म के साथ

तुरन्त तपश्चर्या के लिए वन में उन्होंने प्रयाण किया। शुकदेवजी सदैव ब्रह्मचिंतन में ही लीन रहते थे। व्यासजी ने सोचा कि जब शुकदेवजी वन से घर आ जायँ तो मैं उन्हें भागवत शास्त्र पढ़ाऊँगा। शुकदेवजी निर्गुण ब्रह्म के चिंतन में लीन थे। उसमें उनका चित्त सगुण ब्रह्म की ओर ले जाने के लिए श्रीकृष्ण लीला के श्लोक सुनाने चाहिए, ऐसा व्यासजी ने सोचा।

व्यासजी के शिष्य जब वन में समिधादि लेने के लिए जाते हैं, तब व्यासजी के पढ़ाये हुए श्लोक गाते हैं। व्यासजी ने चतुराई से शिष्यों को उसी वन में भेजा, जहाँ शुकदेवजी समाधि में लीन थे। शुकदेवजी के चित्त को आकर्षित करने के लिए शिष्यों ने श्लोकों का गान शुरू किया। शुकदेवजी स्नान-संध्या करके समाधि में बैठने की तैयारी कर रहे थे कि शिष्यों का गान शुरू हो गया।

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं, विभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन गोपवृन्दैः, वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥
(१०-२१-५)

श्रीकृष्ण गोप-बालकों के साथ वृन्दावन में प्रवेश कर रहे हैं। मस्तक पर मोर-मुकुट उन्होंने धारण किया है। कान में कर्णिकार के पीले पुष्प धारण किये हैं। पीताम्बर और गले में वैजयंती माला पहिनी है। श्रेष्ठ नट जैसा सुन्दर बिन्यास है। बाँसुरी छिद्रों से अधरामृत भर रहे हैं। पीछे-पीछे गोप-बालक श्रीकृष्ण कीर्ति का जयगान कर रहे हैं। यह वृन्दावन धाम श्रीकृष्ण के चरण चिह्नों से सुशोभित है।

शुकदेवजी ने यह श्लोक सुना। शुकदेवजी को ध्यान में अति आनंद आया। कन्हैया की सुन्दर नयन-मनोहर मूर्ति हृदय में प्रकट हुई। शुकदेवजी को कन्हैया की बाँसुरी के स्वर सुनायी पड़े। उन्होंने निश्चय किया कि अब मैं निराकार ब्रह्म का चिंतन नहीं करूँगा। सगुण-साकार श्रीकृष्ण का चिंतन करूँगा पर फिर विचार आया कि संन्यासी के लिए सगुण का ध्यान योग्य नहीं है। निराकार ब्रह्म का ध्यान ही योग्य है, उत्तम है। मैं तो सब कुछ त्याग कर बैठा हूँ। कन्हैया तो सब कुछ माँगेगा। माखन माँगेगा, मिश्री माँगेगा, मैं कहाँ से लाऊँगा। मैंने तो लँगोट भी छोड़ दिया है। शुकदेवजी दुविधा में पड़ गये निराकार का ध्यान करें कि साकार का। उसी समय व्यासजी के शिष्यों ने एक अन्य श्लोक का गान शुरू किया-

अहो बकी यं स्तनकालकूटं, जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
लेभेगतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं, कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥ (३-२-२३)

अहो! स्तन में विष भरकर मारने की इच्छा से जिस दुष्ट पूतना ने उनको दूध पिलाया था। उस पूतना को भी जिन्होंने सद्गति दी, ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण के सिवाय दूसरा कौन दयालु है, कि

जिसकी शरण ग्रहण की जाय। श्रीकृष्ण की अलौकिक दया का वर्णन व्यासजी ने इस श्लोक में किया है। श्रीकृष्ण ने विष देने वाली पूतना को भी यशोदा माता के समान सद्‌गति दी है। महाभारत में कथा आती है। भीष्मपितामह ने कुरुक्षेत्र के युद्ध में श्रीकृष्ण को जब बाण मारे थे, तब भी भीष्मपिता के मरण के समय श्रीकृष्ण उनके समक्ष आये थे। श्रीकृष्ण तो बाण मारने वाले से भी प्रेम रखते हैं। विष पिलाने वाले से भी प्रेम करते हैं। श्रीकृष्ण को माखन-मिश्री तो क्या, किसी भी वस्तु की जरूरत नहीं है। वे तो माँगते हैं, प्रेम, मन का शुद्ध प्रेम। पदार्थ से प्रसन्न होता है वह है जीव, प्रेम से प्रसन्न होता है वह है ईश्वर।

शुकदेवजी के मन में आशंका थी कि कन्हैया जब माँगेगा तो मैं क्या दूँगा? इस श्लोक से शुकदेवजी के मन का समाधान हुआ। शुकदेवजी ने व्यासजी के शिष्यों को बुलाकर पूछा– आप कौन हैं? आप जिन श्लोकों का गान कर रहे हैं, वे श्लोक किसने रचे हैं?

शिष्यों ने कहा–हम व्यासजी के शिष्य हैं। व्यासजी ने ये मंत्र हमें दिये हैं। ये दो श्लोक तो उदाहरण मात्र हैं। ऐसे अट्ठारह हज़ार श्लोकों का भागवत पुराण व्यासजी ने रचा है।

शुकदेवजी को इस भागवत पुराण को सुनने की इच्छा हुई। कन्हैया की लीला सुनकर उनका चित्त आकर्षित हुआ। निर्ग्रन्थ शुकदेवजी की भागवत शास्त्र के अध्ययन की इच्छा हुई।

शुकदेवजी व्यासाश्रम में आये। पिताजी को उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया। व्यासजी ने शुकदेवजी को गले लगा लिया। व्यासजी ने शुकदेवजी को भागवत का अध्ययन कराया।

इस ग्रंथ के सच्चे अधिकारी आत्मा में लीन रहने वाले ब्रह्मज्ञानी हैं। श्रीकृष्ण सर्व के आत्मा रूप हैं। आत्माराम ऐसे शुकदेवजी महाराज लँगोट छोड़ते हैं पर श्रीकृष्ण कथा नहीं छोड़ते हैं। सूतजी कहते हैं–शौनकजी आश्चर्य न करिये। श्रीकृष्ण-गुण ऐसे मधुर हैं कि सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। तो फिर शुकदेवजी को आकर्षित कर लें, इसमें क्या आश्चर्य?

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः॥ (१-७-१०)

जो ज्ञानी हैं, जिनकी अविद्या की गाँठ छूट गई है। ऐसे आत्माराम भी भगवान् की हेतुरहित भक्ति करते हैं। भगवान के गुण ऐसे मधुर हैं।

शुकदेवजी उत्तम वक्ता हैं। जो कुछ जाना है, उसे जो जीवन में, आचरण में, व्यवहार में लाते हैं, वे ही उत्तम वक्ता होते हैं। संत कहते हैं, इससे पहिले जीवन में अनुभव करते हैं। इससे उनके कथन सत्यरूप होते हैं। ज्ञान जब क्रियात्मक होता है, तब अभिमान मर जाता है। ज्ञान वही

है, जिसमें किसी तरह का अभिमान नहीं होता है। शुकदेवजी पूर्ण निरभिमानी हैं। शुकदेवजी अधिकारी वक्ता है।

संत को संत मिलते हैं और संत वही हैं, जिन्होंने अपने मन को सुधारा है। परमात्मा श्रीकृष्ण अतिशय कृपा करते हैं तब ही मन शुद्ध होता है। परमात्मा कृपा करते हैं, तब अधिक धन नहीं देते हैं पर मन को शुद्ध करते हैं। साधारण व्यक्ति यही समझता है कि बहुत संपत्ति मिलती है तो ठाकुरजी की कृपा का ही यह फल है। अति संपत्ति और सन्मति—दोनों एक स्थान पर नहीं रहती हैं। अति संपत्ति अभिमान लाती है। अति संपत्तिवान किसी को अपमानित करने में संकोच नहीं करता है। परमात्मा कृपा करके धन नहीं देते, मन को सुधारते हैं। इस जगत् में उतना पाप नहीं है, जितना पाप मन में रहता है। परमात्मा से बार-बार कहिये कि मेरा मन शुद्ध करिये। मन चंचल है। मन परमात्मा की लीला में रमता है, तब धीरे-धीरे सुधरता है।

जिसका मन बिगड़ा नहीं हैं, उसका कुछ भी नहीं बिगड़ता है। उसे कुछ भी बिगड़ा हुआ नहीं दीखता है। जगत् नहीं बिगड़ा है, मन बिगड़ा है। कदाचित् जगत् बिगड़ा भी हो तो बिगड़े हुए जगत् को कोई नहीं सुधार सकेगा। जो अपने मन को सुधार लेता है, उसे इस जगत् में कुछ भी बिगड़ा हुआ नहीं दीख पड़ता है। सूर्यनारायण को सब कुछ दिखाई देता है पर अंधकार नहीं दिखाई देता है। जिसका मन अत्यंत शुद्ध है उसे सर्व में परमात्मा का अनुभव होता है। जो मन को सुधार लेता है, वह महान् बनता है। मन भयभीत है। उसे भय लगता है, तब ही यह सुधरता है। साधारण मानव को भय लगता है, तब उसके पाप छूटते हैं। मानव को भय लगता है, तब ही वह भगवान् की भक्ति करता है।

जन्म मृत्युजराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम्।

निर्भय होकर बेपरवाह न बनिये। जो सपने को निर्भय मानता है, वह लापरवाह हो जाता है। काल का भय रखना चाहिए। मृत्यु के दुःख का स्मरण रखना चाहिए, मृत्यु सिर पर है फिर भी मानव पाप करता है, क्योंकि मानव जब पाप करता है तब यही समझता कि मैं मरने वाला नहीं हूँ। मुझे कोई पूछने वाला नहीं है। मानव रोज सुनता है कि वह चला गया, दूसरा जाने की तैयारी में है; पर मानव को ऐसा विचार नहीं आता कि मुझे भी मरना है। जगत में यही बहुत बड़ा आश्चर्य है। पानी का बुलबुला है। उसे फूटने में कहाँ देर लगती है? थोड़ा सोचने पर मालूम होगा कि यह शरीर पानी की बूँद से उत्पन्न हुआ है वह कब छूट जाएगा इसका पता किसी को भी नहीं है। कई लोग ऐसा सोचते हैं कि तक्षक नाग परीक्षित को डँसने गया था। हमें वह भी नहीं डँसेगा। यह तक्षक नाग किसी को भी नहीं छोड़ता है। समय होने पर सबको डँसने वाला है। तक्षक नाग

काल का स्वरूप है। काल–तक्षक सबको डँसता है। जन्म के साथ मृत्यु का समय, स्थान और कारण निश्चित होता है। अमुक कारण से अमुक स्थान में अमुक समय यह शरीर गिर पड़ेगा–

'मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते'

मृत्यु के भय का स्मरण मन में रखिये। मन को भय लगेगा तो पाप छूटेगा। ऐसा सुना है कि जिसे फाँसी की सजा होती है, उसे फाँसी देने से दो घंटे पूर्व सरकार द्वारा पूछा जाता है। कि तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम्हें मिठाई खानी है या और कुछ लेना है। जिस मानव को पता है कि दो घंटे के बाद मुझे फाँसी की सजा मिलेगी, मैं मरने वाला हूँ। वह भीतर से इतना घबराया हुआ होता है कि उसे मधुर मिठाई दो तो भी उसकी खाने की इच्छा नहीं होती है। मरण सिर पर है, मरण सामने दीख रहा है, इससे मन विषय में जाने की इच्छा नहीं करता है। जब मन पाप करने लगे, तब उससे कहिये कि तुम्हें मरना है, तुम्हें मार पड़ेगी। तुम बहुत दुःखी होओगे। खराब विचार क्यों करते हो? तुम पाप क्यों कर रहे हो? पाप करके काई सुखी नहीं हुआ है। आज कोई पाप करके पैसे कमा लेता है पर अंतकाल में उसकी क्या स्थिति होती है? तुम्हारे मन को और कोई नहीं सुधार सकता। अपने मन को तुम्हें ही सुधारना पड़ेगा। तुम्हारा मन अन्य किसी को नहीं दीख पड़ता है, तुम्हें ही दिखाई पड़ता है। अपने मन के आप ही गुरु बनिये। जिन्होंने अपना मन सुधार लिया, वे संत हैं। मन को सुधारिये। आपभी संत होंगे। जिसका अधिकार सिद्ध होता है, उसे संत मिलते हैं। मनुष्य संत बनता है, तब उसे संत मिलते हैं। संत के सद्‌गुण जीवन में उतारिये। आप संत होंगे, तब संत को संत मिलेंगे। दुर्जन के घर संत तुरन्त नहीं जाते हैं, और कभी जाते भी हैं तो दुर्जन को संत के प्रति श्रद्धा होती नहीं है। वह संत को पहिचान ही नहीं सकता है।

सन्त ही सन्त को पहिचान सकते हैं। भागवत कथा करने वाले वक्ता और कथा श्रवण करने वाले श्रोता सन्त बनते हैं। सन्त होने के लिए घर छोड़ने की जरूरत नहीं है। व्यवसाय छोड़ने की भी जरूरत नहीं है। मीराबाई राजमहल में रहती थी। नरसिंह मेहता घर में रहते थे। घर में रहकर मानव सन्त हो सकता है। जो प्रवृत्ति छोड़ देते हैं, वे भक्ति नहीं करते हैं। तब वे और पाप करते हैं। सन्त सर्वकाल भक्ति कर सकते हैं, परन्तु हमारे जैसे साधारण मानव छह घंटे से अधिक समय तक भक्ति नहीं कर सकते हैं। प्रवृत्ति न छोड़िये। प्रवृत्ति कीजिए। पैसे के लिए प्रयत्न करिये पर पाप के भय को मन में रखकर कीजिए। प्रचीन काल में नामदेव महाराज दर्जी का काम करते थे। गोरा कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाकर बाजार में बेचने जाते थे। कबीरदास महाराज जुलाहे का काम करते थे। ये सब सन्त प्रारम्भ में व्यवसाय करते थे तथा भक्ति भी करते थे। भक्ति में वे देहभान भूल गये, जगत् को भूल गये और उनका व्यवसाय छूट गया।

फल परिपूर्ण रूप से परिपक्व होता है तब ही वृक्ष को छोड़ देता है। फल जब तक कच्चा होता है, वृक्ष को पकड़ कर रखता है। उसी तरह भक्ति परिपूर्ण परिपक्व होती है, तब सन्त संसार वृक्ष का सम्बन्ध छोड़ देते हैं। सन्त को जब तक देह का भान रहता है, तब तक किसी की कोई वस्तु वे मुफ्त में लेते नहीं हैं। सन्त ऐसा मानते हैं कि दूसरों के पदार्थ मुफ्त खाने से बुद्धि बिगड़ जाती है। सन्त परिश्रम करते हैं, व्यवसाय करते हैं और व्यवसाय में पाप का भय रखते हैं। मुझे परमात्मा के चरणों में जाना है। मुझे भगवान से मिलना है। ऐसा सोचते हुए जीवन के लक्ष्य को सन्त भूलते नहीं हैं।

किसी के घर जाना पड़े तो बैठे न रहिए। कई लाग ऐसे होते हैं कि दामाद की तरह बैठे रहते हैं। तब गृह-स्वामी को ऐसा लगता है कि अब यह पीड़ा कब जायेगी? जाय तो अच्छा है। कलियुग के लोगों को दो चीजें अच्छी लगती हैं। काम और दाम। किसी का काम करिए तो प्रिय बनेंगे। किसी को कुछ दीजिए तो प्रिय लगेंगे। काम कीजिए। खाली बैठे न रहिए। जो खाली बैठा रहता है, उसकी बुद्धि में खराब विचार आते रहते हैं। निवृत्ति में भी मन पाप करता है। मन को किसी अच्छे काम में प्रवृत्त करिये।

सन्त होने के लिए कपड़े बदलने की जरूरत नहीं है। कपड़े बदलने से सन्त कोई नहीं हो सकता। सन्त होने के लिए चित्त बदलना जरूरी है। जिसने अपना मन सुधार लिया है, वह सन्त है। और कुछ बिगड़ जाता है तो भले ही बिगड़ जाय पर मेरा मन न बिगड़े, यही जो चाहता रहता है, वही सन्त है। मेरा मन पाप करने न लगे—इस बात का ध्यान रखिये। तन की देख-भाल सब करते हैं, जो मन की देख-भाल करता है वही महान् बनता है। लोग कपड़ों की देख-भाल करते हैं। कई माताएँ अचार की देख-भाल रखती हैं। बार-बार अचार को देखती हैं। अचार बिगड़ जायगा तो नया बनेगा पर मन बिगड़ जायगा तो नया नहीं मिलेगा। सन्त मन की बहुत देख-भाल करते हैं।

तीन काम करें तो आप सन्त बन सकेंगे। मन की देख-भाल कीजिये और दृष्टि को गुणमयी बनाइये। जिनकी दृष्टि गुणमयी है, जो किसी के दोष नहीं देखते वे सन्त बनते हैं—

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येत् ब्रह्ममयं जगत्।

जिनको दोष देखने की बुरी आदत पड़ जाती है, उन्हें सदैव सन्तों में भी दोष दीख पड़ते हैं। मानव में दोष अधिक होते हैं, तब उसे जगत् में अधिक दोष दीख पड़ते हैं। मानव में जब सद्गुण अधिक होते हैं तो उसे सब सृष्टि सद्गुण से पूर्ण दीख पड़ती है। दृष्टि को गुणमयी बनाइए। दोष देखने की इच्छा हो जाय तो अपने दोष देखिए। हम में कहाँ कम दोष हैं? बहुत दोष

हैं हम में। मन की खोज-बीन कीजिये। मालूम पड़ेगा कि मन में काम ब्रैठा है, क्रोध बैठा है, द्वेष है, मत्सर है। ईर्ष्या भी मन में बहुत होती है।

हमारे भीतर बहुत सारे दोष हैं। जगत् के दोष देखने की जरूरत नहीं है। ब्रह्माजी की सृष्टि गुण-दोष से भरी हुई है। निर्दोष तो एक मात्र परमात्मा हैं।

जिन्हें दोष देखने की बुरी आदत है उन्हें संतों में भी दोष दीख पड़ते हैं। ऐसे लोग सोचते हैं कि महाराज को क्रोध बहुत आता है। संभव है कि साधु-संतों को क्रोध आता हो, पर उनके क्रोध में भी प्रेम भरा रहता है। हमारे जैसे साधारण व्यक्ति अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए क्रोध में आते है, जबकि संत दूसरे के कल्याण के लिये क्रोध करते हैं। संभव है कि साधु-संतों में आपको लोभ दिखाई दे, पर उसके पीछे उनका भाव बहुत शुद्ध होता है। उन्हें समाज-सेवा में लगाने की प्रभु की प्रेरणा होती है।

संत में भी दोष होते हैं। संत में एक भी दोष न हो तो वे शरीर धारण ही नहीं कर सकते। जो पूर्ण निर्दोष होता है, वह परमात्मा से भिन्न नहीं रहता। वह तो भगवान् में मिल जाता है। वह भगवान् से एक रूप हो जाता है। मानव ने एक बड़ी भूल की है, इसी से वह मल-मूत्र से भरे शरीर में आता है। शरीर धारण करने वाले संत में एकाध दोष होता है पर अनेक सद्‌गुणों के कारण, भक्ति के कारण वह दोष दूर करने में समर्थ होता है। भगवान् संत में एकाध दोष रखते ही हैं। माताएँ जब बाहर जाती हैं, तब बालक का शृंगार करती हैं। उसे स्नान करती हैं। अच्छे वस्त्र पहिनाती है। बालक रो रहा है, उसे स्नान करने की इच्छा नहीं है, उसे ठंड लग रही है पर माता उसे स्नान कराती है। बालक का शृंगार करने में माता को सुख होता है। बालक का शृंगार करने पर माता उसे प्रेम से देखती है। माता प्रसन्न होती है। अब बच्चा सुन्दर दीखता है। मुझे बाहर जाना है। उसे किसी की नजर न लग जाय। जो माता बालक का शृंगार करती है, वही माता काजल की एक बिन्दी भी उसे लगाती है। माता जिस तरह बालक की देख-भाल करती है, उसी तरह प्रभु भी संत को नजर न लग जाय, ऐसा सोचकर काजल की एक बिन्दी लगाते हैं।

प्रत्येक जीव में प्रभु का एकाध सद्‌गुण भी होता है। पशु-पक्षी में भी भगवान् का एकाध सद्‌गुण होता है। जीव ईश्वर का अंश है। जीव में ईश्वर का एक भी सद्‌गुण न हो तो वह ईश्वर का अंश नहीं कहा जा सकता। सिंह का बालक सिंह होता है। जीव में ईश्वर का एकाध सद्‌गुण होता है। आप जिसे अति पापी मानते हैं, आपकी दृष्टि में जो नालायक है, दुराचारी है, उस पापी जीव में भी परमात्मा का एकाध सद्‌गुण होता है।

आपको संत होना है तो दृष्टि को गुणमयी बनाइये, सर्व में सद्‌गुण देखिये। दोष देखने से बुरी आदत आ जाती है। ऐसे व्यक्ति को साधु-संतों में श्रद्धा नहीं रहती। जिसे दोष देखने की बुरी आदत होती है, वह भगवान् की भी भूल खोज लेता है। एक प्रोफेसर साहब हमें मिले थे और कहते थे–महाराज, मैंने रामायण पढ़ ली है। रामायण में लिखा है कि सीताजी सगर्भा थीं, तब श्रीरामजी ने उनका त्याग किया। यह बहुत गलत हुआ है। यह तो प्रोफेसर साहब का कहना है। रामायण में तो ऐसा वर्णन है कि श्रीसीताजी रामजी की प्रशंसा करती हैं। वे कहती हैं कि रामजी को मुझसे अति प्रेम है। वे कभी मेरा त्याग नहीं कर सकते। यह तो प्रभु ने प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए मेरा त्याग करके, लीला की है। रामजी ने सीताजी का त्याग किया ही नहीं है। राजा ने रानी का त्याग किया है। रामजी राजा हैं। एक ओर श्रीसीताजी हैं, दूसरी ओर प्रजा है। मध्य में श्रीरामजी हैं। श्रीरामचन्द्रजी ने यह सोचा कि रानी को प्रसन्न करूँ कि प्रजा को? राजा का सिंहासन रानी को प्रसन्न करने के लिए नहीं है। रामचन्द्रजी ने पति-प्रेम को गौण किया और राज-धर्म को महत्त्व दिया–

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा।।

प्रजा को प्रसन्न करने के लिए श्रीराम श्रीसीताजी का त्याग करते हैं। श्रीराम जानते हैं कि सीताजी निर्दोष हैं, महान पतिव्रता हैं पर रामजी सोचते हैं कि मैं राजा हूँ, प्रजा को प्रसन्न रखना मेरा प्रथम धर्म है। प्रजा के मन में मेरे लिए कोई शंका न रहे, इसी से श्रीरामजी ने सीताजी का त्याग किया है। सीताजी को जरा भी बुरा नहीं लगा है। श्रीराम श्रीसीताजी का त्याग तो क्या करेंगे। श्रीसीतारामजी तो साथ ही विराजते हैं। उनका नित्य संयोग है।

किसी के दोष न देखिये। दोष देखने की इच्छा हो तो अपने भीतर झाँकिये और विचारिये कि मेरा मन कैसा है? वस्तुतः हमारे मन में ही सर्व दोष रहते हैं। जिसकी दृष्टि गुणमयी है, मृत्यु सिर पर है, ऐसी याद रखकर जो पाप नहीं करता है, जो किसी व्यवहार- कार्य में मन खराब न हो जाय, इसकी सावधानी रखता है, यानी जो मन की रखवाली करता है तथा संक्षेप में इन तीन सद्‌गुणों से जिसका जीवन सम्पन्न है वह संत है।

मानव घर में रहकर भी संत हो सकता है। संत को संत मिलता है। जिसका अधिकार सिद्ध होता है, भगवान् उसे संत के दर्शन करवाते हैं। अयोग्य को संत के दर्शन नहीं होते हैं। अयोग्य-व्यक्ति को संत के दर्शन हों तो उसे संत के दोष ही दिखाई पड़ते हैं।

भागवत के प्रथम स्कंध में महापुरुषों ने तीन प्रकरण माने हैं। उत्तमाधिकार, मध्यमाधिकार तथा हीनाधिकार प्रकरण। सूतजी हीन वक्ता हैं और शौनकमुनि हीन श्रोता हैं। व्यास-नारदजी मध्यम वक्ता-और मध्यम श्रोता हैं। शुकदेवजी महाराज उत्तम वक्ता हैं तथा परीक्षित उत्तम श्रोता हैं। सूतजी हीन वक्ता हैं, इसका अर्थ यह नहीं है कि वे निम्न कक्षा के हैं। हमसे वे बहुत-बहुत श्रेष्ठ हैं। शुकदेवजी महाराज की कक्षा के विचार से वे निकृष्ट हैं। सूतजी में ज्ञान परिपूर्ण हैं, पर साथ-साथ थोड़ा अभिमान भी है। ज्ञान अच्छा है, ज्ञान का अभिमान बहुत खराब है। अज्ञान से थोड़ा पतन होता है पर ज्ञानाभिमान से बहुत पतन होता है। किसी को निम्न कक्षा का समझने के लिए ज्ञान नहीं है। कथा में सूतजी का अभिमान दो-तीन स्थान पर प्रकट हुआ है। सूतजी में वैराग्य का अंश थोड़ा कम है, इससे सूतजी को हीन वक्ता कहा गया है।

व्यास और नारदजी का दर्जा दूसरा है। व्यास-नारदजी में ज्ञान-भक्ति परिपूर्ण है। व्यास-नारदजी में अभिमान का अंश भी नहीं है, परन्तु व्यास-नारदजी में वैराग्य का अंश थोड़ा कम है। व्यास और नारदजी समाज-सुधार की इच्छा रखते हैं। जिनको समाज-सुधार की इच्छा है, उनको निम्न कक्षा के व्यक्तियों का संग करना पड़ता है। जिसने प्याज खायी है, उसके पास बैठने पर प्याज की दुर्गन्ध आती ही है। एक भाई कह रहे थे कि, महाराज! मैं समाज-सुधार के लिए ये सब कर रहा हूँ। अरे, जिसने अपना घर नहीं सुधारा, वह समाज क्या सुधारेगा? जो भाई को नहीं सुधार सका, वह बहिन को क्या सुधार सकेगा? समाज-सुधार की खटपट में नहीं पड़ना चाहिए। समाज सेवा से कृष्ण-सेवा श्रेष्ठ है। समाज नहीं सुधरेगा, आप अपने घर को सुधारिये, अपने मन को सुधारिये, अपने स्वभाव को सुधारिये। आप में अधिक शक्ति हो तो आप अपने पड़ोसी को सुधारिये। व्यास महर्षि और नारदजी महाराज सुधारक संत थे। समाज-सुधार की भावना अच्छी है पर भक्ति में बिघ्न लाने वाली है। एक संत परमात्मा के ध्यान में तन्मय हो गये। एक सेवक वहाँ गया और उसने महाराज को हिला-डुला कर कहा-महाराज! आप ध्यान कर रहे हैं पर जगत् को तो देखिये। संत ने उत्तर दिया-अपने प्रभु के दर्शन से अभी मेरा मन तृप्त नहीं हो रहा है। प्रभु के दर्शन से मेरा मन तृप्त होगा, तब मैं संसार को देखूँगा। संत को परमात्मा के दर्शन से ही तृप्ति नहीं होती। संसार को देखने का समय उनके पास कहाँ है?

शुकदेवजी में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य तीनों परिपूर्ण हैं। शुकदेवजी महाराज को जगत् में कुछ बिगड़ा हुआ नहीं दीख रहा है। शुकदेवजी की दृष्टि में जगत् नहीं है, परमात्मा है। शुकदेवजी की कथा से अनेकों के जीवन सुधरते हैं पर महाराज को ऐसा नहीं लगता है कि मैं दूसरों को सुधार रहा हूँ। शुकदेवजी में ज्ञान और भक्ति के साथ वैराग्य परिपूर्ण है। इससे शुकदेवजी महाराज

को उत्तम वक्ता कहा गया है। महाराज की वाणी और वर्तन एक हैं। वे जो कहते हैं, अनुभव से कहते हैं। साधारण मानव पुस्तक का पढ़ा हुआ कहता है, किसी से सुना हुआ, कहता है। शुकदेवजी महाराज जो कुछ कहते हैं, उसका उन्हें पूर्ण अनुभव रहता है।

वक्ता जो कुछ कहता है, वह जीवन में ग्रहण किया हुआ रहना चाहिए। कथनी और करनी एक हो तो शब्दों में शक्ति आती है। कथनी और करनी में एकता रखने वाला उत्तम वक्ता है। एकनाथ महाराज के चरित्र में एक कथा आती है। एक विधवा माता तीन-चार वर्ष के एक बालक को महाराज के पास लेकर आयी और कहने लगी—महाराज! यह लड़का हर रोज स्वादिष्ट मीठी रोटी माँगता है। इसे और कुछ भाता नहीं है। दो-तीन बार मैंने रोटी बनाकर दी। मेरी आर्थिक स्थिति खराब है। रोज-रोज कैसे ऐसी रोटी खिला सकती हूँ। इस बालक को ऐसी बुरी आदत पड़ गई है। आप ऐसा आशीर्वाद दीजिएं कि यह लड़का वह स्वादिष्ट रोटी भूल जाय। यह सुनकर महाराज सोच विचार में डूब गये। उनके घर में विट्ठलनाथजी की पूजा थी, सेवा थी। वे सोचने लगे कि ठाकुरजी के लिए रोज मिष्टान्न तैयार होता है। मैं रोज प्रसाद में मिष्टान्न खाता हूँ, इससे इस बालक को कैसे उपदेश दूँ कि तुम सुस्वाद मीठी रोटी को भूल जाओ। महाराज ने उस बालक की माता के समक्ष हाथ जोड़कर कहा— अब आप तीन-चार दिन के बाद आइए तो मैं ऐसा आशीर्वाद दूँगा। एकनाथ महाराज ने विट्ठलनाथजी को वंदन करके कहा—आपकी इच्छा से ही यह प्रसंग उपस्थित हुआ है। मैं आज से मिष्टान्न का त्याग करता हूँ। अब मिष्टान्न नहीं खाऊँगा। महाराज ने प्रतिज्ञा ली। जब यह जीव परमात्मा के लिए समग्र सुखों का मन से त्याग करता है, तब ही प्रभु दया करते हैं। वे विचारते हैं कि मेरे लिए इसने सब कुछ छोड़ दिया। एकनाथ महाराज ने इस प्रकार मिष्टान्न नहीं खाने की प्रतिज्ञा ली। कोई प्रसाद देता तो उसे हाथ में लेकर वन्दन करके दूसरे को दे देते। प्रसाद ग्रहण कर रहे हैं, ऐसा कहा जाता और प्रतिज्ञा का भंग भी नहीं होता।

महान आचार्य भी व्रत का भंग नहीं करते। देह का होश हो, तब तक लिया हुआ व्रत नहीं छोड़ना चाहिए। महाप्रभुजी को जगन्नाथजी के मन्दिर में चावल का प्रसाद मिला। एकादशी का उपवास था। प्रसाद वे ले नहीं सकते थे। महाराज सारी रात प्रसाद हाथ में रखकर कीर्तन करते बैठे रहे। दूसरे दिन सबेरे उन्होने प्रसाद लिया। आपका कोई व्रत हो और प्रसाद मिले तो प्रसाद ग्रहण कीजिए पर खाइए मत। आप सुबास लेंगे तो प्रसाद लिया है, ऐसा कहा जायगा। व्रत का भंग नहीं करना चाहिए। कई लोग तो प्रसाद के आने पर टूट पड़ते हैं खाने के लिए। प्रसाद आया है, प्रसाद आया है। इससे क्या हुआ? प्रसाद अनुपात में लीजिए। सप्रमाण में लीजिए, विवेक से लीजिए। तीर्थोदक भी आचमन से लेने की आज्ञा है। लोटा भरकर तीर्थोदक पी जाना तीर्थ का अपमान है—

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधि विनाशनम्।
विष्णोः पादोदकं तीर्थं जठरे धारयाभ्यहम्॥

पेट में जाने के बाद तीर्थ मलिन न हो जाय, उसका पाचन हो जाय, उतना ही तीर्थोदक लीजिए। तीर्थोदक प्रमाण में विवेक से लीजिए। उसी तरह प्रसाद भी विवेक से लीजिए। प्रसाद लेने के बाद आलस्य न आए, मन खराब न हो जाय, तन और मन प्रसन्न रहे, शान्त रहे, इतने विवेक से प्रसाद लीजिए। ''प्रसादस्तु प्रसन्नता।'' कितने ही लोगों को पान खाने की बुरी आदत होती है। वह ठाकुरजी को पन्द्रह-बीस पान का प्रसाद चढ़ाया करते हैं और फिर सारा दिन प्रसाद के पान खाते रहते हैं। यह गलत है। पान-सुपारी में बड़ा दोष है। पान-सुपारी खाने से जीभ खराब होती है। मन भी पवित्र नहीं रहता। एकाध बार खाते हैं तो ठीक है। प्रसाद विवेक से लीजिये।

एकनाथ महाराज ने मिष्टान्न का त्याग किया। थोड़े दिन बाद माता बालक को लेकर पुनः आयीं। महाराज ने बालक को आशीर्वाद दिया और कहा—अब कभी मीठी रोटी न खाना। बेटा, इसे भूल जाना। माता ने कहा महाराज, इतने शब्दों के लिए, क्यों मुझे दो बार धक्के खाने के लिए बुलाया? पहले ही ऐसा आशीर्वाद दे दिया होता तो? महाराज ने कहा कि थोड़े दिन पहले मैं ही मिष्टान्न खाता था। इससे मुझे शंका थी कि मेरे आशीर्वाद कैसे फलीभूत होंगे? मैंने जब मिष्टान्न का त्याग किया तब मैं आशीर्वाद देने के योग्य बना। प्रभु को दया आयी। परमात्मा की कृपा से बालक की आदत छूट गयी। त्याग के बिना शब्दों में शक्ति नहीं आती । शरीर का, इंद्रियों का सुख भोगकर जो प्रभु की भक्ति करता है, उस पर प्रभु को दया नहीं आती है पर त्याग करने वाले पर दया आती है। शुकदेवजी में परिपूर्ण वैराग्य है। इससे ही बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने कहा है कि सात दिनों में ही शुकदेवजी मुक्ति दिला सकते हैं। अन्य की ऐसी ताकत नहीं है। शुकदेवजी महाराज उत्तम वक्ता हैं, परीक्षित उत्तम श्रोता हैं।

दो प्रकरण समाप्त हुए। अब तीसरा प्रकरण शुरु होता है। परीक्षित उत्तम श्रोता हैं। मातृ-शुद्धि, पितृ शुद्धि अन्न-शुद्धि, आत्म-शुद्धि और द्रव्य-शुद्धि—पाँच शुद्धियाँ जिन में परिपूर्ण हैं, उन्हें उत्तम श्रोता माना गया है। उनका ही मन शुद्ध होता है। उन्हें ही भगवान् के दर्शन की इच्छा होती है। साधारण मानव को भगवान् के दर्शन की इच्छा नहीं होती है। कई लोग जब हाथ में समाचार पत्र नहीं आता, तब व्याकुल हो जाते हैं। उन्हें अखबार की जल्दी लगी रहती है। आतुरता होती है। उन्हें भगवान् के दर्शन की इच्छा नहीं रहती। गोबर का कीड़ा यही समझता है कि गोबर अच्छा है। गोबर के कीड़े को बर्फी में रखिये, वह बर्फी नहीं खायेगा। वह बर्फी छोड़कर गोबर में ही

जायेगा। साधारण मानव का मन गोबर के कीड़े के सदृश है। कभी-कभी उसे भक्ति में आनंद आता है, पर वह इस आनंद को छोड़कर फिर से विषयानंद भोगने में रस लेने लगता है।

पाँच प्रकार की शुद्धियाँ जिन्हें परिपूर्ण रूप से मिलती हैं, उन्हें ही प्रभु-दर्शन की इच्छा होती हे। जिन्हें परमात्मा के दर्शन की तीर्व इच्छा होती है, उन्हें ही संत प्राप्त होते हैं। पाँच अध्यायों में परीक्षित राजा की पंचविधि शुद्धि दिखायी है। मातृ-शुद्धि के वर्णन के लिए कौरवों पांडवों के युद्ध की कथा कही गयी है। कौरवों पाडवों का भयंकर युद्ध हुआ। कौरवों का विनाश हुआ। कौरव-सेना में कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा तीन रह गये। अश्वत्थामा ने प्रतिज्ञा की कि आज रात जब पांडव घर में सोये होंगे तब मैं उनका विनाश करूँगा। भगवान् जिनका रक्षण करते हैं, उनको कोई नहीं मार सकता। परमात्मा जानते थे कि अश्वत्थामा दुष्ट है। उसके हाथ से संहार होने वाला है। प्रभु ने लीला की। सोये हुए पांडवों को जगाकर कहा-घर में मुझे गर्मी लग रही है, नींद नहीं आ रही है। मैं गंगा-तट पर जा कर आराम करूँगा। आप उठिये। पांडव भगवान् से कुछ नहीं पूछते हैं। पांडवों का प्रभु में ऐसा विश्वास था कि भगवान् उनसे जो कहते थे वही वे करते थे। पांडव अपने को स्वतंत्र नहीं मानते थे, वे अपने को श्रीकृष्ण के अधीन मानते थे। द्रोपदी के पाँच बालक सोये थे, उनको जगाया गया। बालकों ने कहा कि आप लोगों को नींद नहीं आ रही है, इसलिए आप जाइए हमें घर में नींद आ रही है, हमें क्यों जगा रहे हैं? पाँचों पांडवों को लेकर श्रीकृष्ण गंगा-तट पर गये।

यदा मृधे कौरव सृञ्जयानां वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु।
वृकोदराविद्धगदाभिमर्श भग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे।।
भर्तुः प्रियं द्रौणिरिति स्म पश्यन् कृष्णासुतानां स्वपतां शिरांसि।
उपाहरद् विप्रयमेव तस्य जुगुप्सितं कर्म विगर्हयन्ति।।

(१-७-१३/१४)

रात्रि के समय अश्वत्थामा आता है। द्रोपदी की संतानों को वह मारता है। प्रातः काल खबर मिल जाती है। द्रोपदी को अत्यंत दुःख होता है। अर्जुन द्रौपदी को समझाते हैं और बाद में अश्वत्थामा से युद्ध करने जाते हैं। युद्ध का वर्णन किया गया है। अश्वत्थामा को अर्जुन ने पकड़ा है। उसे पशु की तरह बांधकर अर्जुन ले आते हैं। जिसका अभी अग्नि-संस्कार भी नहीं हुआ, ऐसे पाँच सोये बालकों की हत्या करने वाला हमारे आँगन में आया है। यह कोई साधारण बैरी नहीं है। पर द्रौपदी का हृदय कैसा है? पुत्र-वियोग का दुःख भूल गयीं वे, और बाँधे हुए अश्वत्थामा के स्वरूप को देख न सकीं। दौड़कर आयीं और अश्वत्थामा को वंदन किया। आंगन में बैरी आते

हैं तो बैरी में भगवान् का दर्शन कीजिए। उसे 'जय श्रीकृष्ण' कहिये। कई लोग शत्रु को 'जय श्रीकृष्ण' कहते हैं पर प्रेम से नहीं, सद्भाव से भी नहीं दुर्भाव से। द्रौपदी सद्भाव से व्यवहार करती है। अर्जुन से वे कहने लगीं—यह आप क्या कर रहे हैं, इसे मुक्त करिये। मेरे आंगन में खड़े ब्राह्मण की पूजा करिये। उसे मारिये नहीं। आज पुत्र वियोग से मैं रो रही हूँ इसे मारेंगे तो इसकी माता को बहुत दुःख होगा। जो रोता है, उसके पाप जलते हैं। जो रो रहा है, वह प्रभु-कृपा से कभी सुखी हो सकेगा, पर जो दूसरे को रुलाता है, वह कभी सुखी नहीं होता। दौपदी कहती है कि अगर इसे आप मारेंगे तो इसकी माता को बहुत दुःख होगा। मैं सौभाग्यशालिनी सदवा हूँ। मुझे पुत्र-मरण का इतना दुःख हो रहा है तो इसकी माता तो विधवा है। पति के बाद पुत्र के लिए ही ज़ी रही है। उसे कितना दुःख होगा? उसकी आहें लगेंगी। द्रोणाचार्य के घर आप अध्ययन कर रहे थे। क्या वह सब भूल गये? यह गुरुदेव का पुत्र है। इसकी पूजा कीजिए। आंगन में आये हुए का सम्मान करना होता है। आँगन में आये हुए यदि रोते, आहें भरते जायेंगे तो मेरा अतिथि धर्म नष्ट हो जायगा। आप इसे छोड़ दीजिए।

भीमसेन ने कहा कि यह तो आततायी है। आततायी को मारने में पाप नहीं है। अर्जुन विचार में पड़ गये। तब श्रीकृष्ण ने आज्ञा दी कि द्रोपदी जो कह रही है वह योग्य है। ब्राह्मण का अपमान उसके मरण के बराबर है। इसलिए अश्वत्थामा को मारने की जरूरत नहीं है। उसका अपमान करके उसको निकाल दो।

अश्वत्थामा का मस्तक नहीं काटा गया, पर उसके मस्तक में जो मणि थी, उसे निकल लिया गया। अश्वत्थामा तेजहीन बन गया। अश्वत्थामा को जीवित छोड़ दिया गया।

अश्वत्थामा ने सोचा कि पांडवों ने मेरा अपमान किया है, मैं उसका प्रतिशोध लूंगा। उत्तरा के पेट में गर्भ है। पांडवों का वह उत्तराधिकारी है। उस गर्भ का नाश होगा तो पांडव वंश का नाश होगा। उत्तरा के गर्भ में परीक्षित थे। इसे मारने के लिए अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र छोड़ा। उत्तरा का शरीर जलने लगा। उत्तरा व्याकुल हो गयी। वह दौड़कर द्वारिकानाथ श्रीकृष्ण के पास पहुँच गई। दुःख में किसी मानव को किसी जीव का आधार नहीं लेना चाहिए। दुःख में ईश्वर का स्मरण करना चाहिए। द्रौपदी ने पुत्रवधू को यह सीख दी थी। द्रौपदीजी का जीवन भक्तिमय था। दुःख सदैव नहीं रहता। दुःख पाप जलाने के लिए आता है। दुःख में ही मानव को स्वरूप का ज्ञान होता है। द्रौपदी के भक्तिमय जीवन का प्रभाव उत्तरा पर भी पड़ा था। बड़ों का अनुकरण बालक करता है। बालकों के उत्तम संस्कारों के लिए भी भक्ति कीजिए। सास जो सेवा-पूजा करती होगी तो बहू का भी सेवा-पूजा का मन होगा। सास गप्पें मारती होगी तो बहू भी वैसी ही होगी। पिता सुबह

जल्दी उठता होगा तो बच्चों की भी जल्दी उठने की इच्छा होगी। बालक जल्दी ही अनुकरण करता है। इससे बालक के समक्ष पाप न करिये।

द्रौपदी की सीख से उत्तरा पांडवों के पास नहीं गयी, पर वह द्वारिकाधीश के पास गयी। भगवान समझ गये। प्रभु ने लीला की। उन्होंने उत्तरा के गर्भ में प्रवेश किया–

सुदर्शनेन स्वास्त्रेण स्वानां रक्षां व्यधाद्विभुः॥
अन्तःस्थः सर्वभूतानामात्मा योगश्वरो हरिः।
स्वमायया ऽऽवृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतन्तवे॥ (१-८-१३/१४)

प्रभु ने सुदर्शनचक्र से ब्रह्मास्त्र का निवारण किया और परीक्षित का रक्षण किया। परीक्षित ने गर्भ में यह देखा। गर्भ में जीव माँ के मल-मूत्र में लोटता है। गर्भवास नरक-वास है, परन्तु परीक्षित भाग्यशाली है। माता के गर्भ में हीं उन्हें परमात्मा के दर्शन हुए। परमानन्द हुआ। ये चार हाथों वाला तेजस्वी पुरुष चारों ओर घूम रहा है और मेरी रक्षा कर रहा है। परमात्मा ने पांडव वंश की रक्षा की है। थोड़े से सोच-विचार से ध्यान में आयगा कि हम सब परीक्षित सदृश हैं। जीवमात्र का रक्षण भगवान् करते हैं। जन्म के बाद भी भगवान् ही रक्षण करते हैं। बड़े होने पर यौवन में मनुष्य भगवान् को भूलता है। भान खो देता है। अकड़ में रहता है और कहने लगता है, कि परमात्मा कहाँ हैं? मैं ईश्वर में विश्वास नहीं रखता।

आजकल डाक्टर को बहुत यश दिया जाता है। लोग कहते हैं कि डाक्टर ने मुझे बचा लिया डाक्टर सारी रात मेरे पास रहे। प्रत्येक घण्टे के बाद इंजेक्शन देते रहे। अरे! डाक्टर में बचाने की शक्ति होती तो उनका स्वयं का अच्युतम् केशवम् क्यों होता? कभी उसकी भी मृत्यु तो होती ही है। जो स्वयं काल ग्रास है, वह दूसरे को नहीं बचा सकता। रक्षण तो परमात्मा ही करते हैं। डाक्टर की दवा भी श्रीकृष्ण की कृपा से ही सफल होती है, पर जीव प्रभु का उपकार भूल जाता है। ईश्वर को वह नहीं मानता। जब छोटी-बड़ी ढैया आती है, तब शनि महाराज एक-एक को सजा देते हैं। तब कुछ लोग हनुमानजी को तैल चढ़ाने जाते हैं। हमारे जैसे साधारण व्यक्ति पर जब मार पड़ती है, तब अक्ल आती है। मार नहीं पड़ती, तब तक अक्ल आती ही नहीं है। पुस्तकों के अध्ययन से शब्द-ज्ञान बढ़ता है, जीवन नहीं सुधरता। मानव पर जब थोड़ी मार पड़ती है; तब वह सावधान होता है। तब ही वह परमात्मा की शरण में जाता है। भगवान् को न मानने से भगवान् का कुछ भी नुकसान नहीं होता, पर जो नहीं मानता, वह स्वयं दुःखी होता है, उसका अधः पतन होता है, भगवान में विश्वास रखिये। भगवान् को मानिये। भगवान् के प्रति प्रेम रखिये।

११-कुन्ती जी और भीष्माचार्य की स्तुति

उत्तराजी के गर्भ का रक्षण करके श्रीकृष्ण जब द्वारिका जाने के लिए पधारते हैं। कुन्तीजी से भगवान् का वियोग सहन नहीं हो रहा है। परमात्मा के वियोग में जिसके प्राण व्याकुल हैं, जिसे प्रभु-वियोग का दुःख है, वही भक्ति करता है। भक्त चिन्तन करता है कि मैं भगवान से जुदा हो गया हूँ। मैं इतना बड़ा हुआ फिर भी मुझे एक बार भी प्रभु के दर्शन नहीं हुए। मैं कब परमात्मा के चरणों में पहुँच सकूँगा? दूसरी ओर श्रीकृष्ण-वियोग में जिसका मन संसार में रमता है, जिसे संसार सरस लगता है, वह संसार की भक्ति करता है। जीव जब माँ के पेट से बाहर आता है, तब रोता हुआ आता है और जब वह इस संसार से जाता है, तब भी रोता हुआ ही जाता है परन्तु जीव कभी भी परमात्मा के लिए नहीं रोता है। परमात्मा के लिए जो रोता है उसके दुःख का अन्त आता है। कुन्तीजी को श्रीकृष्ण का वियोग असह्य लग रहा है। वे चाहती हैं कि सारा दिन मैं द्वारकानाथ के दर्शन करती रहूँ। मैं अपने प्रभु की सेवा करती रहूँ। प्रभु का स्वरूप मेरी दृष्टि से दूर न हो। कुन्तीजी श्रीकृष्ण के वियोग में व्याकुल हैं। जिस रास्ते से श्रीकृष्ण का रथ जाने वाला है, उसी रास्ते पर वे हाथ जोड़कर खड़ी हैं। वृद्धावस्था है उनकी। दो दासियों ने सहारा दिया है। उन्होंने हाथ जोड़े हैं। शरीर में रोमाञ्च हो रहा है। आँखों से प्रेमाश्रु धीरे-धीरे गिर रहे हैं। सोचती जा रही हैं कि मेरे श्रीकृष्ण मुझे छोड़कर जा रहे हैं।

द्वारिकानाथ का रथ आ पहुँचा। प्रभु ने देखा कि कुन्तीजी रास्ते में खड़ी हैं। श्रीकृष्ण ने रथ खड़ा करवाया। स्वयं रथ से उतर पड़े। रोज का नियम था कि श्रीकृष्ण कुन्तीजी की चरण-वन्दना करते थे। कुन्तीजी वसुदेवजी की बहिन थीं। प्रभु की बुआ थीं। इससे प्रभु प्रतिदिन चरण-वन्दना करते थे पर आज ऐसा हुआ कि श्रीकृष्ण के द्वारा चरण-वन्दना करने के पहले ही कुन्तीजी ने श्रीकृष्ण को प्रणाम किया श्रीकृष्ण को थोड़ा सा संकोच हुआ। प्रभु ने कहा-'ये आप क्या कर रही हैं? मैं तो आपके भाई का पुत्र हूँ।' कुन्तीजी ने कहा-

नमस्ये पुरुषं त्वाऽऽद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम्।
अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम्॥ (१-८-१८)

मैं भी आज तक यही जानती थी पर आज आपकी कृपा से मुझे आपके स्वरूप का ज्ञान हुआ। आप किसी के पुत्र नहीं हैं। आप सब के पिता हैं। आदिनारायण ही आप हैं। आपके चरणों में मैं वन्दन करती हूँ। आपके उपकार मुझे बहुत याद आ रहे हैं।

जब भगवान् आपको अति सम्पति दें, आपको अत्यन्त सुख दें, तब दुःख के दिन भूलियेगा नहीं। जब बहुत सुख मिलता है, तब दुःख के दिन भूल जाते हैं। कुन्तीजी सावधान होकर प्रभु के

उपकार का स्मरण करती हैं। जीवमात्र को प्रभु की कृपा मिलती है, परन्तु जीव दुष्ट है। भगवान् के उपकार मानव भूल जाता है। मानव अनेक बार हिम्मत खो देता है, घबरा जाता है, तब भगवान् उसका रक्षण करते हैं। दो सरल पहिले मैं बीमार पड़ा था। मैंने आशा छोड़ दी थी। डाक्टर भी घबरा गये थे, पर प्रभु ने मुझे बचा लिया। प्रत्येक के जीवन में ऐसे अनुभव होते रहते हैं परन्तु जीव सुख के दिनों में दुःख के दिन भूल जाता है। परमात्मा के उपकार भूल जाता है।

कुन्तीजी को याद आ रहा है—वे दिन कैसे थे! मेरे पतिदेव ने शरीर छोड़ दिया, तब ये सब बच्चे बहुत छोटे थे। मैं विधवा हो गयी, बच्चों को लेकर मैं वन में भटक रही थी। किसी ने मेरी ओर देखा तक नहीं। उस समय आपने मेरा रक्षण किया। मेरा भीम छोटा था। तब उसे मारने के लिए दुर्योधन ने विष के लड्डू खिला दिये। आपने भीम की रक्षा की। पाण्डवों को लाक्षागृह में जला देने का यत्न किया गया। तब आप ही ने रक्षा की। दुःशासन द्रौपदी को सभा में ले गया। दुर्योधन अनाप-शनाप बोलने लगा—यह दासी है, इसे नग्न करो। तब आप ही दौड़ते हुए आये। स्वामी जिसको आवरण में रखता है उसको कौन अनावृत कर सकता है। आपने मेरी द्रौपदी की लज्जा रखी। आपके एक नहीं, अनन्त उपकार हैं। ये मुझे याद आ रहे हैं।

कुन्तीजी प्रेम से प्रभु के चरणों में बार-बार वंदन कर रही हैं। कहती जा रही हैं कि प्रभो! आपके उपकार का ऋण कैसे चुकाऊँ? आपके अनेक उपकार हैं।आपके कारण ही पांडव सुखी रहे हैं। मैं आपका वंदन करती हूँ। आप हमारा त्याग करेंगे तो फिर हमारा कौन है? आपके कारण ही हमारी शोभा है।

जिस घर में श्रीबालकृष्ण की सेवा होती है, जिस घर में ठाकुरजी की पूजा होती है, वह घर वैकुंठ धाम-सा है। भगवान् के कारण ही घर की शोभा है। जिस घर में ठाकुरजी की सेवा नहीं होती है, जिस घर में प्रेम से प्रभु-नाम का कीर्तन नहीं होता, वह घर, घर नहीं श्मशान है। वह घर अशुद्ध है। उस घर का पानी भी नहीं पीना चाहिए। वह घर वीरान हो जाता है। यह कथा सुनने के बाद घर में ठाकुरजी की सेवा पधराइयेगा। कई लोग अपने घर में ठाकुरजी की सेवा पधराते तो हैं पर उन्हें छोटी-सी अलमारियों में बंद रखते हैं। अपने लिए हजारों रुपये खर्च करके फर्नीचर बनवाते हैं, पर वे ठाकुरजी के लिए खर्च नहीं करते। आपको प्रभु ने संपत्ति दी है, तो प्रभु की सेवा में संपत्ति का उपयोग कीजिए। लक्ष्मी, नारायण की हैं। लक्ष्मी भोग के लिए नहीं हैं, उपयोग के लिए हैं। भगवान् के लिए सुन्दर सिंहासन बनाइये, सुन्दर मखमल की गादी बनाइये। आपके घर में जो स्थान सर्वश्रेष्ठ हो, वहाँ भगवान् को विराजमान कीजिये। जिस घर में लक्ष्मी का उपयोग नारायण के लिए होता है, उस घर में लक्ष्मी अखंड भाव से बिराजती है।

कुन्तीजी कह रही हैं–नाथ! कृपा करिये। हमारा त्याग न करिये। प्रभु ने स्मित हास्य से कहा–बहुत दिन यहाँ रहा। द्वारिका से अनेक बार संदेश आये। अब मुझे वहाँ जाना है। कुन्ती जी ने हाथ जोड़े और कहा–आप को तो अनेक स्वरूप धारण करना आता है। एक स्वरूप द्वारिका भेज दीजिये। आप मेरे घर में बिराजिये। आप मेरी दृष्टि से दूर न जाइये। आपका वियोग मैं नहीं सह सकूंगी। कुन्तीजी में दास्य-मिश्रित वात्सल्य भाव था। वे ऐसा मानती थीं कि मैं द्वारिकानाथ की दासी हूँ। वे मेरे मालिक हैं। आप द्वारिका न जाइए–ऐसा कहने का मुझे क्या अधिकार है? परमात्मा तो सर्वतंत्र स्वतन्त्र हैं। वे सर्व-शक्तिमान् हैं। इससे कुन्तीजी ने कहा–भले, आप द्वारिका पधारें किन्तु आज मैं विशेष वरदान माँगने आयी हूँ। मुझे एक वरदान दीजिए। प्रभु ने कहा–माँगिये। कुन्तीजी ने प्रभु से माँगा–

विपदः सन्तुः नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥ (१-८-२५)

आप ऐसी कृपा करिये कि दुःख-विपत्ति के प्रसंग भले ही हमारे पर आयें, किंतु विपत्ति में आपका ही स्मरण करूँ। जिस सुख में भगवान् को भुलाया जाता है, वह संपत्ति ही विपत्ति है। जिस विपत्ति में भगवान् याद आते हैं, वह विपत्ति ही संपत्ति है। जिस सुख में भगवान भुलाये जाते हैं, वह सुख महान दुःख है। वह पतन लाता है–

कह हनुमंत विपति प्रभु सोई।
जब तव सुमिरन भजन न होई॥

सुख में जीव भान गंवा देता है। अति सुख का प्राप्त होना अच्छा नहीं है। दुःख में मानव थोड़ा समझदार बनता है। कई दिनों तक पुस्तकों के अध्ययन से जो ज्ञान प्राप्त नहीं होता, वही ज्ञान दुःख में अनायास प्राप्त हो जाता है। वह भीतर से प्रस्फुटित होता है। कुन्तीजी मानती हैं कि दुःख प्रभु का प्रसाद है। भगवान् जिस जीव को अपने पास रखना चाहते हैं, उस जीव के लिए विपत्ति खड़ी कर देते हैं। मानव का स्वभाव है कि मार पड़ने पर ही वह सुधरता है। कुन्तीजी इसी से दुःख की माँग कर रही हैं। मुझे बहुत सुख नहीं चाहिए। इतना सुख मिले कि सुख भोगते-भोगते भगवान् का स्मरण बना रहे। भगवान् को भुलवा दे, ऐसा सुख मुझे नहीं चाहिए।

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान्।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम्॥ (१-८-२६)

कुन्तीजी ने कहा, ''संपत्ति का मद, विद्या का मद, यौवन का मद, अधिकार का मद–ये सब मद भान गंवा देते हैं और ये चारों एकत्र हों तो फिर क्या कहना? नाथ कृपा करिये। मेरी

संतानों को अभिमान न हो। विद्या का मद, अभिमान देता है। बहुत पढ़े-लिखे लोग प्रायः कथा में नहीं जाते। ये सब मानते हैं कि मैं बी॰ए॰ पास हूँ। भागवत मैंने पढ़ ली है। महाराज और क्या कहने वाले हैं? मुझे सब कुछ आता है बहुत पढ़े-लिखे कथा में नहीं जाते और जाते हैं तो अकड़ कर बैठते हैं और सुनते हैं। वैष्णव प्रेम से ताली बजा-बजाकर कीर्तन गाते हैं। पढ़े-लिखे लोगों का ऐसा मानना है कि ताली बजा-बजाकर कीर्तन करना अनपढ़ लोगों का, मूर्ख लोगों का काम है। हम तो बहुत पढ़े-लिखे हैं, आगे बढ़े हुए हैं। परन्तु जब घर में बच्चा रोने लगता है। तब वकील साहब भी ताली बजाकर उसे चुप कराने का यत्न करते हैं। विद्या का अभिमान पाप लाता है। संपत्ति का अभिमान पाप करवाता है। जिसके पौकिट में बहुत धन है, वह दूसरे को तुच्छ मानता है। उसे लगता है कि वह स्वयं ही समझदार है।

द्वारिकानाथजी के दर्शन से कुन्तीजी का मन तृप्त ही नहीं होता। कुन्तीजी प्रेम से भगवद् स्वरूप को देखती हैं। द्वारिकानाथ से वे कहने लगीं—अब आप बड़े हो गये पर एक बार मैंने आपका बाल-स्वरूप देखा है। एक बार मुझे आपके बाल-स्वरूप के दर्शन हुए हैं। मैं द्वारिकानाथ का ध्यान करती हूँ। चतुर्भुज नारायण की सेवा करती हूँ, स्मरण करती हूँ पर कभी-कभी मुझे आपके बाल स्वरूप की याद आ जाती है—

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्, या ते दशाश्रुकलिलांजनसम्भ्रमाक्षम्।
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य, सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति।।

(१-८-३१)

जब आप छोटे थे, तब मैं गोकुल आयी थी। मैं मथुरा पीहर गयी थी। तब मेरे भाई वसुदेव ने मुझ से कहा था कि बहिन! कोई नहीं जानता पर मैं तुम से कह रहा हूँ कि नन्दबाबा के गोकुल में लोग जिसे कन्हैया कहते हैं, वह मेरा ही पुत्र है। कंस के डर से मैंने उसे नन्दबाबा के घर में रखा है। मैं वहाँ नहीं जा सकता। बहिन आप आई हैं, यह अच्छा ही हुआ है। आप मेरे लाला को देखने के लिए एक बार गोकुल में जाइए। मेरे भाई ने मुझ से कहा और इसी से मैं आपको देखने विशेष रूप से गोकुल आयी थी। उसी दिन आपने घर में चोरी की थी। मटकी फोड़ डाली थी। यशोदा माता का वात्सल्य भाव था। मेरा लाला मेरा बच्चा है उसे चोरी करने की आदत पड़ रही है। यह अच्छा नहीं है। अभी दही-माखन की चोरी कर रहा है। बड़ा होने पर फिर पैसे की चोरी करेगा तो? उन्होंने लाला से कहा—लाला! आज मैं तुझे सजा दूँगी। ऊखल पर चढ़ कर चोरी की थी, इससे यशोदा माँ ने निश्चय किया कि लाला को मैं ऊखल से बाँध दूँगी। यशोदा मैया लाला को बाँधने गयीं। वे तो बालकृष्ण को बच्चा ही मान रही थीं। गोकुल में तो कृष्ण बालक बन कर

ही रहे। श्रीकृष्ण परमात्मा हैं। यशोदा मैया श्रीबालकृष्ण को लाल रस्सी से बाँधने का यत्न कर ही हैं, पर ऐश्वर्य शक्ति मानती है कि श्रीकृष्ण मेरे पति हैं, मेरे पति को कोई बाँध रहा है, मुझसे देखा नहीं जाता। सहन नहीं हो सकता। इससे ऐश्वर्य शक्ति रस्सी में प्रविष्ट होती है। वह रस्सी को छोटी कर देती है। जिस रस्सी से यशोदा मैया श्रीकृष्ण को बाँधने जाती हैं, वह रस्सी दो अंगुल छोटी पड़ती है। यशोदा मैया तीसरी रस्सी लेकर उसमें गाँठ लगाकर बाँध देती हैं। गोपी यशोदा मैया को समझाने लगती है—माँ आज तुम्हें क्या हो गया है? याद है, जब तुम्हारे पुत्र नहीं था, तब तुम रोती थीं। तुमने अनेक देवों की मनौती मानी थी। तब कहीं यह पुत्र मिला है। सारे गाँव को यह प्राणों से भी अधिक प्यारा है। मेरे घर आकर वह अनेक बार ऊधम मचाता है। पर कभी भी उसे बाँधने का विचार मैंने नहीं किया। माँ! तुम्हें जरा भी दया नहीं आती क्या? यशोदा मैया आज आवेश में हैं। वे कहती हैं—आज अपने घर जाइए। मेरा लड़का है मुझे जैसा उचित लगेगा, मैं वैसा करूँगी। आपको चिंता, करने की जरूरत नहीं है। उसे बुरी आदतें पड़ गई हैं। वह किसी की सुनता नहीं है। आज घर की सब रस्सी एकत्र करके भी मैं इसे बाँधूगी। यशोदाजी रस्सी एकत्र करके लाला को बाँधने का प्रयत्न करती हैं। पर रस्सी दो अंगुल छोटी ही पड़ती है। श्रीबालकृष्ण मन में मुस्करा रहे हैं। मंद स्मित उनके चेहरे पर है। यशोदा मैया चिढ़ती है। पाँच साल का लड़का मुझ पर हँस रहा है। कुछ हो, मैं इसे अवश्य बाँधूगी। श्रीबालकृष्ण माँ को मना रहे हैं— 'माँ! अब मैं कभी चोरी नहीं करूँगा। आज तू मुझे छोड़ दे।'

यशोदा माता कहती हैं—नहीं छोड़ँगी, मैं तुम्हें बाँधूगी। यशोदा माता का दुराग्रह है। वैष्णव जब प्रेम से परमांत्मा को बाँधते हें, तब यह जीव माया के बंधन से छूटता है। यह जीव प्रेम से परमात्मा को जब तक नहीं बाँधता तब तक माया इसे नहीं छोड़ती। तब तक माया जीव को बाँध कर रखती है। यशोदाजी को आज लाला को बाँधना ही है।

कुन्तीजी कहती जा रही हैं—आपका व्रह बालस्वरूप उसी दिन मैंने देखा था। काल भी जिससे घबराता है, वह लाला आज डर रहा है। वह माता से कह रहा है कि माँ मुझे छोड़ दे। माँ कहती है—मैं नहीं छोड़ूँगी। मैं तुम्हें सजा दूँगी। लाला ने सोचा कि आँख में आँसू आ जाय और रोने लगूँ तो माँ को दया आ जायगी और वह छोड़ देगी। लाला ने रोने का यत्न किया। पर आँख से आँसू निकल ही नहीं रहे हैं। लाला आँखें मलने लगा। आँख में काजल लगा था, वही काजल कपोल पर आ गया। यशोदा माता देख रही हैं। आज मेरा बालकृष्ण कैसा दीख रहा है। आज बहुत सुन्दर दिखाई पड़ता है। भीतर प्रेम उमड़ रहा है, पर माता बाहर थोड़ा नाटक करती है। लाला से कहती है—तू बहुत ऊधम मचाता है। बहुत नटखट हो गया है। आज मैं तुझे बाँधूगी। तुझे सजा दूँगी।

तू झूठा है, तेरा रोना भी झूठा है। मैं तुझे जानती हूँ, मैं तेरी माँ हूँ। कुन्तीजी कहती हैं–आपका वह बालस्वरूप अभी भी मेरी दृष्टि से दूर नहीं हो रहा है। आपका बालस्वरूप अति सुन्दर है।

कुन्तीजी मान रही हैं कि मुझ में प्रेम की कमी है, इसी से भगवान् मुझे छोड़कर जा रहे हैं। मेरे भीतर सच्चा प्रेम होता तो प्रभु मुझे नहीं छोड़ते। वे श्रीकृष्ण से कहती हैं–यशोदा मैया का प्रेम सच्चा था। यशोदा मैया ने आपको बाँधा था। ऐसा प्रेम मुझ में कहाँ? मैं यशोदा मैया के चरणों में बार-बार प्रणाम कर रही हूँ। मुझे श्रीकृष्ण प्रेम दीजिए। मेरा प्रेम संसार के विषयों में बिखरा पड़ा है–

अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते स्वकेषु मे।
स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु॥
त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत्।
रतिमुद्वहतादद्धा गंगेवौघमुदन्वति॥ (१-८-४१/४२)

पाण्डवों में मेरी आसक्ति है। यादवों से मेरा स्नेह है। संसार के अनेक विषयों में मेरा प्रेम बिखरा पड़ा है।

परमात्मा के दर्शन करने पर भी जीव माया से परे नहीं हो सकता। परमात्मा से अतिशय प्रेम करने पर ही वह माया से छूटता है। कुन्तीजी को ऐसा लगा कि मेरा प्रेम संसार के विषयों में समाया हुआ है। प्रभु में मेरा प्रेम नहीं है। इसी से प्रभु मुझे छोड़ कर जा रहे हैं। कुन्तीजी श्रीकृष्ण को बार-बार प्रणाम करती हैं। जिस तरह हिमाचल से निकलकर भागीरथी सारे पर्वतों को तोड़कर, समुद्र से मिलने जाती है, उसी तरह से मेरी वृत्ति भी आपकी ओर प्रवाहमान हो, ऐसी कृपा कीजिए। मैं आपकी वन्दना करती हूँ। नाथ! मैं आपकी शरण आयी हूँ। कृपा कीजिए। वंदन परमात्मा को बंधन में डालते हैं। वैष्णव वंदन से ही परमात्मा को वश में करते हैं। हर दो-तीन मिनट के बाद ठाकुरजी का दर्शन मन-ही-मन कीजिए। भगवान् के चरणों में वंदन कीजिए। इसमें एक पैसा भी खर्च नहीं होता। शरीर को जरा भी कष्ट नहीं होता। जिस देव की आप पूजा आराधना करते हैं, उस देव का हर दो-तीन मिनट के पश्चात् दर्शन करिए। आप जहाँ भी हैं वहीं से मन-ही-मन दर्शन करिये। प्रभु के चरणों में वंदन करने की आदत डालिये। प्रभु जरूर दया करेंगे। इस जगत् के मालिक परमात्मा हैं। इस जगत् में जो कुछ है प्रभु का है। कई लोग मन्दिर में बहुत सेवा करते हैं। वे समझते हैं कि मैं ही मन्दिर का संचालन कर रहा हूँ। यह सेवा मैंने ही की है। प्रभु कहते हैं–मेरा मन्दिर तुम क्या चलाओगे। तेरा घर तो मैं चला रहा हूँ। तुझे कुछ मालूम ही नहीं है। तुम भान गवाँ बैठे हो। तुम्हें मैंने ही सब कुछ दिया है। अरे! जगत् के मालिक तो परमात्मा हैं। कोई मानव, मालिक नहीं हो सकता। मानव तो मुनीम है। मानव को संचालन का

काम दिया गया है। मानव तन का भी मालिक नहीं है। तब फिर वह धन का मालिक कैसे हो सकता है? मानव सद्‌भावना से बारम्बार प्रभु को वन्दन कर सकता है। कुन्तीजी बार-बार प्रभु का वन्दन करती हैं।

द्वारिका जाने के लिए तैयार थे, फिर भी द्वारिकानाथ वापस आये। कुन्तीजी के महल् में जब प्रभु पधारे, तब वे प्रसन्न हो गयीं। वह तो रास्ते में हाथ जोड़कर खड़ी रही थीं, इसी से प्रभु पुनः पधारे। अर्जुन सोचते हैं कि प्रभु का मुझ पर बहुत प्रेम है, इसी से प्रभु वापस आये। द्रौपदी को लगता है कि मेरे बालकों की मृत्यु से, मुझे दुःखी जानकर रुके हैं। श्रीकृष्ण ने सोचा होगा कि द्रौपदी बहुत दुःखी है। थोड़े दिन द्रौपदी के साथ रहूँ तो अपना दुःख वह भूल जाय। मेरे कृष्ण मेरे लिए नहीं लौटे हैं। सुभद्राजी मान रही हैं कि द्रौपदी तो मुँह बोली बहिन है। मैं तो माँ-जाई बहिन हूँ। प्रभु मेरे लिए ही वापस आये हैं।

परन्तु भगवान् लौकिक सम्बन्ध को बहुत महत्व नहीं देते हैं। परमात्मा प्रेम-सम्बन्ध को ही मानते हैं—सब से ऊँची प्रेम सगाई। भीष्मपितामह का प्रेम भी अति दिव्य था। प्रभु तो उनके मरण को सुधारने के लिए लौटे थे।

१२—भीष्मपितामह को सद्‌गति का दान

गंगातट पर बाण शय्या पर सोये भीष्मपितामह श्रीकृष्ण दर्शन के लिए तड़प रहे थे। सोच रहे थे कि मुझ से प्रभु ने कहा है कि अंतकाल पर आऊँगा, पर वे तो अभी तक पधारे नहीं। भीष्मपितामह श्रीकृष्ण की राह देख रहे थे। हर रोज प्रार्थना करते थे कि श्रीकृष्ण मुझे लेने आ जाय। परमात्मा को मनाइये कि अंतकाल पर आप मुझे लेने आइये। संतों का मरण मंगलमय होता है। संतों का जन्म हमारे जैसा साधारण होता है। पर निरंतर भक्ति से उनका मरण मंगलमय होता है। इससे संतों का जन्म-दिवस नहीं मनाया जाता। संतों का मरण-दिन अर्थात् पुण्यतिथि मनायी जाती है। ठाकुरजी जिस दिन प्रकट होते हैं, उस दिन उत्सव होता है और संतों की पुण्यतिथि मनायी जाती है। गंगातट है। बड़े-बड़े ऋषि भीष्मपितामह के चारों ओर बैठे हैं।

पर्वतो नारदो धौम्यो भगवान् बादरायणः।
बृहदश्वो भरद्वाजः सशिष्यो रेणुकासुतः॥ (१-९-६)

व्यासजी तथा नारदजी पधारे हैं। परशुराम भगवान् आये हैं। ये महापुरुष प्रभु के धाम में कैसे जाते हैं, यही देखने सब आये हैं। भीष्मपितामह ऐसे समर्थ हैं कि युद्ध में जब गिर पड़े, तब काल उन्हें लेने आया था। तब उन्होंने काल से भी कह दिया कि अभी यहाँ से चला जा। अभी

मुझे नहीं जाना है। मैं तुम्हारे अधीन नहीं हूँ। मैं परमात्मा के अधीन हूँ। भगवान् द्वारिकानाथ मुझे लेने आयेंगे। जिन्होंने काम पर विजय पा ली है, वे काल पर भी विजय पा सकते हैं। जो निरंतर भक्ति करते है, वे काम पर विजय पा लेते हैं। भीष्म पितामह बालब्रह्मचारी हैं। उन्होंने काल को वापस भेज दिया है। भीष्मपितामह परमात्मा की राह देख रहे हैं। गंगा-तट पर अनेक संत आये हैं, पर प्रभु नहीं पधारे हैं। भीष्मपितामह कहते हैं कि मुझे द्वारिकानाथ के दर्शन करते हुए प्राण छोड़ने हैं। श्रीकृष्ण-दर्शन के लिए प्राण तड़फ रहे हैं। भीष्मपितामह का प्रेम इतना बढ़ गया कि उनके प्रति स्वयं परमात्मा में आकर्षण जागा। प्रभु ने मन में सोचा—मुझे भीष्म के पास जाना हैं। भीष्मपितामह को दर्शन देने के लिये प्रभु द्वारिका जाने से रुककर हस्तिनापुर में ठहर गये हैं।

युद्ध करने से पहिले अर्जुन को जैसा अनुभव हुआ, वैसा अनुभव राज्य-प्राप्ति के बाद धर्मराज को हुआ। धर्मराज का मन शोक से भर गया। सगे सम्बन्धियों के संहार से प्राप्त इस राज्य का क्या करना है? प्रभु ने कहा—बड़े भाई! आप दादाजी से पूछिये। भीष्मपितामह महान ज्ञानी हैं। उनकी सलाह लीजिए। श्रीकृष्ण की इच्छा थी कि भीष्माचार्यजी मृत्यु से पहिले अपना ज्ञान युधिष्ठिर को दे जायें। पाँचों पांडवों के साथ गंगातट पर भीष्मपितामह जहाँ विराजे थे, वहीं प्रभु पधारे हैं। भीष्माचार्यजी परमात्मा का कीर्तन कर रहे हैं। श्रीकृष्ण को देखकर उन्हें अति आनन्द हुआ। 'कृष्णो दर्शन-मागत:'—दादाजी के चरणों में धर्मराज वंदन करते हैं। धर्मराज को देखकर पितामह की आँखें भर आती हैं। मेरे वंश का यह बड़ा लड़का है। बहुत योग्य लड़का है। कैसा पवित्र जीवन जी रहा है। धर्मराज को देखकर ही पितामह का हृदय द्रवित हुआ। धर्मराज को उन्होंने आशीर्वाद दिया और पूछा कि किस बात की चिंता में हो? बड़े-बड़े ऋषि जिनके दर्शन के लिए तड़प रहे हैं, वे परमात्मा तुम्हारे घर में हैं। प्रभु ने तुमको स्वीकारा है। तुम्हारी चिंता प्रभु को है। 'सुहृत्कृष्णरततो विपत्' आप जिस देव की बहुत प्रेम से पूजा करते हैं, जिस देव के नाम के जप कर रहे हैं, उस देव को आपकी चिंता है। अपनी चिंता तुम्हें नहीं करनी चाहिए। प्रभु में विश्वास रखिये। घर में प्रभु विराजते हैं। ठाकुरजी की सेवा हो रही है और कोई जीव उदास रहता है। भगवान् कहते हैं, कि मैं मर नहीं गया। तेरा बाप घर में है, फिर चिंता किसलिए?' जिसके पिता की मृत्यु हो जाय, उसे चिंता हो सकती है। तुम्हारी चिंता तुम्हारे भगवान् को है। भीष्मपितामह कहते हैं—आपको चिंता किसलिए? यह तो आपको निमित्त बना कर प्रभु यहाँ मेरे मरण को सुधारने के लिये मधारे हैं। भीष्मपितामह दिन में तीन बार परमात्मा की प्रार्थना करते थे। उन्हें वचन दिया था कि आपके अंतकाल पर मैं आऊँगा। वचन सिद्ध करने प्रभु पधारे थे।

आप भी भगवान की तीन बार प्रार्थना कीजियेगा। भगवान् आपको लेने आयेंगे। शरीर स्वस्थ रहता है, तब मानव प्रायः प्रभु की भक्ति नहीं करता है। शरीर स्वस्थ रहता है तब प्रायः बुद्धि बिगड़ी हुई रहती है। शरीर बिगड़ता है, तब बुद्धि अच्छी होती है। शरीर बिगड़ने पर समझ आती है, बुद्धि में सुधार होता है। पर ऐसे समय में यह सुधार होता है कि मानव कुछ कर नहीं पाता। शरीर स्वस्थ है तो खेल आपके हाथ में है। परमात्मा को प्रसन्न कीजिए। प्रभु की विनती कीजिए जिससे अन्तकाल पर प्रभु आपके पास आयें। द्वारिकानाथ के दर्शन करते हुए भीष्माचार्यजी की आँखें भर आयीं। शरीर में रोमाञ्च हुआ। मेरे प्रभु की कैसी कृपा है! आज मेरे मरण को सुधारने प्रभु आये हैं। सचमुच, मैं लायक नहीं हूँ, मैं दुष्ट हूँ, मेरे प्रभु बहुत दयालु हैं।

भीष्मपितामह को याद आ रहा है कि युद्ध में जब प्रभु अर्जुन के रथ के सारथी बन कर विराज रहे थे, तब मैंने उनको बाण मारे थे, पर उन्होंने मुझे एक भी बाण नहीं मारा। ऐसा हुआ कि युद्ध जब चल रहा था, तब दुर्योधन ने भीष्मपितामह को उपालम्भ दिया। महाभारत में इसका वर्णन है। भीष्मपितामह से वह कहता है– दादा! आज तक मेरे घर का खाया है और आज युद्ध के समय आपको पाण्डव बहुत अच्छे लग रहे हैं। दुर्योधन कैसा-कैसा बोलने लगा है। भीष्मपितामह क्षत्रिय वीर हैं। आवेश में आ गये हैं और उन्होंने निश्चय किया है कि कल अर्जुन की खबर लूँगा युद्ध में। उसे दिखा दूँगा कि भगवान् श्रीकृष्ण उसके रथ में विराज रहे हैं, इससे ही उसकी विजय हो रही है। ये श्रीकृष्ण उठकर जायेंगे वैसे ही मैं अर्जुन की खबर लूँगा। अर्जुन को बाण मारूँगा। इससे आज भीष्मपितामह अर्जुन को नहीं, अर्जुन के रथ में सारथी बने बैठे श्रीकृष्ण को बाण मार देतें हैं। आज भीष्मपितामह आवेश में हैं। युद्ध में रंग जमा है। उनके बाण से ही द्वारिकानाथ का कवच फट गया। श्रीकृष्ण घायल हो गये। श्रीअंग से रुधिर की धारा बहने लगी। हनुमानजी ने यह देखा। अर्जुन के रथ पर हनुमानजी विराजमान थे। प्रभु ने हनुमानजी को आज्ञा दी कि तुम्हें रथ पर बैठकर युद्ध दर्शनमात्र करने हैं। तुम्हें और कुछ नहीं करना है। हनुमानजी श्रीहरि के दास हैं। युद्ध के दर्शन के लिए ही हनुमानजी को बैठाया गया है परन्तु श्रीकृष्ण घायल हुए हैं। हनुमानजी से देखा नहीं गया। मेरे मालिक को कौन बाण मार सकता है? वह क्या समझ रहा है? हनुमानजी को थोड़ा क्रोध आ गया। क्रोध में उन्होंने 'हुम, हुम, हुम' गर्जना की। हनुमानजी बाल-ब्रह्मचारी थे। उन्होंने रौद्र रूप धारण किया। तब सब घबराने लगे। भगवान् ने ऊपर दृष्टि डाली और हनुमानजी से पूछा–अरे, 'हुम, हुम,' क्यों कर रहे हो? हनुमानजी कहने लगे– महाराज! आपको बाण मार रहे हैं। अब और मुझसे सहन नहीं हो रहा। आप मुझे आज्ञा दीजिए। प्रभु ने स्मित हास्य किया और हनुमानजी से कहा–हनुमान! मुझे तो कुछ नहीं हो रहा, मैं अति आनन्द में हूँ। यह तो लीला है।

ठाकुरजी के श्रीअंग में रुधिर नहीं है, मांस नहीं है। हड्डियाँ नहीं हैं। श्रीकृष्ण के श्रीअंग में मल नहीं है, मूत्र नहीं है। श्रीकृष्ण-स्वरूप आनन्दमय है–

"आनंदमयोभ्यासात्"

आनन्द ही श्रीकृष्ण हैं। कई लोग ऐसा मानते हैं कि ईश्वर में आनन्द है। ईश्वर में आनन्द है, ऐसा मानने वाले के सिद्धान्त में आनन्द और ईश्वर– दो तत्व भिन्न हो जाते हैं। व्यास महर्षि का सिद्धान्त है कि आनन्द ही श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण और आनन्द–दोनों भिन्न नहीं हैं। एक ही हैं। श्रीकृष्ण के श्रीअंग में मात्र आनन्द ही भरा है। निराकार श्रीकृष्ण-रूप में प्रकट हुआ है। श्रीअंग में से रुधिर कैसे निकल सकता है, यह तो लीला है। परमात्मा आनन्दमय हैं। हनुमानजी को समझाते हैं–तुम हुम-हुम करना नहीं। तुम हुमकार करोगे तो युद्ध यहीं समाप्त हो जायगा। यह तो मेरी लीला है। भीष्मपितामह को याद आ रहा है। हनुमानजी ने हुंकार किया, तब मैं घबरा गया था। मैंने तो युद्ध में श्रीकृष्ण को विवेकहीन होकर बाण मारे हैं, फिर भी मेरे मरण को सुधारने वे आये हैं। श्रीकृष्ण के समान कोई दयालु नहीं है। मेरे जैसा दुष्ट भी इस जगत् में कोई नहीं है। मैंने भगवान् को बाण मारे हैं। मेरे स्वामी का शरीर तो अति कोमल है। ठाकुरजी के चरणों में अधिक तुलसी अर्पण करने में भी वैष्णव संकोच का अनुभव करते हैं। प्रभु के श्रीचरण, कमल से भी कोमल हैं। अधिक तुलसी अर्पण करूँगा तो कदाचित् उन्हें भार लगेगा। इन चरणों में तुलसी अर्पित करने में भी वैष्णव संकोच का अनुभव करते हैं। अरे! धिक्कार है मुझे कि मैंने उनके श्रीअंगों में बाण मारे हैं।

चतुर्भुज द्वारिकानाथ के दर्शन से भीष्माचार्यजी को तृप्ति ही नहीं होती। दोनों हाथ जोड़कर वे कह रहे हैं–आपने बहुत कृपा की। मेरी इच्छा है कि आपके दर्शन करते-करते प्राण छोड़ दूँ। भीष्मपितामह को थोड़ी शंका हुई। ये सब ऋषि द्वारिकानाथ को आसन देंगे, उन्हें सिंहासन पर बिठायेंगे तो मुझे इनके दर्शन नहीं होंगे। अभी तो ये खड़े हैं, इससे इनके चरण से मुखारविन्द तक के दर्शन होते हैं। वे प्रभु से कह रहे हैं–आप मेरे लिए पधारे हैं, इसलिए खड़े ही रहिए। श्रीकृष्ण पूछते हैं–मैं कब तक खड़ा रहूँ तब भीष्मपितामह कहते हैं–जब तक इस शरीर को छोड़कर मैं धाम में न पहुँच जाऊँ।

स देवदेवो भगवान्प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम्।
प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसन्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः॥

(१-९-२४)

भक्त भगवान् को परतन्त्र बनाते हैं। प्रभु ने स्मितहास्य किया। उन्होंने भीष्मपितामह से कहा—धर्मराज को आप समझाईए। उनकी कुछ पूछने की इच्छा है। भीष्मपितामह परमात्मा को वंदन करते हैं। वे कहते हैं—धर्मराज को जो कुछ पूछना हो, भले ही पूछ लें, पर मेरे मन में एक शंका है, वह मैं किससे पूछने जाऊँ? मुझे भी कुछ पूछना है। भीष्मपितामह की ऐसी ख्याति थी कि उनके समान ज्ञानी पुरुष जगत् में कोई नहीं है और न होगा। इससे सबको आश्चर्य हुआ कि ऐसे महान् ज्ञानी को क्या पूछना होगा? प्रभु ने स्मितहास्य किया और कहा—दादाजी, आपको कुछ पूछना है तो पूछिये। भीष्मपितामह द्वारिकानाथ को वंदन करके बोले—मुझे बराबर याद है कि मैंने जीवन में कोई पाप कभी भी नहीं किया है। मैंने तन से तो पाप किया ही नहीं है, कभी मन से भी पाप नहीं किया है। मैं गंगापुत्र हूँ। मेरा मन गंगाजल के समान शुद्ध है। मैंने बहुत पवित्र जीवन व्यतीत किया है। भीष्माचार्यजी यह किससे कह रहे हैं? उन अन्तर्यामी परमात्मा नारायण से कह रहे हैं, जिन्हें तन और मन की सब बातें विदित हैं। प्रभु ने स्मित के साथ संमति देते हुए सिर हिलाया। फिर कहने लगे—सच कह रहे हैं आप। इसीलिए तो मैं आपसे मिलने आया हूँ। भीष्मपितामह कहने लगे मैंने पाप नहीं किया तो यह किसकी सजा मिली है मुझे? दुःख पाप का फल है। मैंने पाप नहीं किया है। फिर भी मेरे जीवन में बाण की नोक पर सोने का प्रसंग क्यों आया? ऐसा क्यों? मैं आपका ध्यान कर रहा हूँ। आपका स्मरण कर रहा हूँ, फिर भी मुझे बहुत वेदना हो रही है। प्रभु ने स्मितहास्य किया और कहा—दादाजी! आपने स्वयं पाप नहीं किया है, पर पाप देखा है, इसकी यह सजा है। पाप देखने वाले को भी सजा मिलती है। जो पाप देखते हैं, पाप का विचार करते हैं, दूसरों के पाप का स्मरण करते हैं—उन सबको सजा मिलती है। धर्म की गति अति सूक्ष्म है।

भीष्मपितामह को याद नहीं आ रहा है कि उन्होंने पाप कब देखा है। प्रभु ने कहा—दादा! आप भूल गये होंगे, पर सब की बातें मैं याद रखता हूँ। दुःशासन द्रौपदी को सभा में ले आया था। उस सभा में आप बैठे थे। दुर्योधन और दुःशासन तो मूर्ख थे, पर आप तो बुद्धिमान् थे। उस सभा में मैं भी आया था। उस सभा में प्रभु ने द्रौपदी को सुन्दर साड़ियाँ पहनायी थीं। अकेली द्रौपदी को ही प्रभु ने दर्शन दिये थे, वह सोच रही थी कि मेरे लिए दौड़कर आयें। सभा में भीष्म, द्रोणगुरु जैसे ज्ञानी बैठे थे, किन्तु, किसी को प्रभु के दर्शन नहीं हुए। आज प्रभु ने भीष्मपितामह को उपालम्भ दिया। एक महान् पतिव्रता स्त्री, आर्य सन्नारी, आपके घर की पुत्रबधू, जिसके ऊपर भरी सभा में अन्याय हो रहा था और आप जैसे ज्ञानीं पुरुष बैठकर देखते रहे! आपने पाप नहीं किया, यह बात सच है, पर आपने पाप देखा है और इसकी यह सजा मिली है। प्रभु के दरबार में अन्याय

नहीं है। जीव के घर में भले ही अन्याय होता रहे किन्तु परमात्मा के यहाँ अन्धेर नहीं है, देर मात्र है। मानव निष्ठुर होकर सजा देता है, मानव के घर में दया नहीं है। भगवान् सजा देते हैं पर दया-भाव के साथ सजा देते हैं। परमात्मा तो दया की मूर्ति हैं।

भीष्मपितामह ने कबूल किया-आपने सच कहा। उस दिन मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। मैंने दुर्योधन के घर का भोजन किया, इसलिए मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। सभा में मैं बैठा रहा। मेरी यह भूल है। परमात्मा की प्रेमपूर्ण दृष्टि भीष्माचार्य पर पड़ी। भगवान् प्रेम से देख रहे हैं। भीष्मपितामह की वेदना शांत हो जाती है। शरीर स्वस्थ है। भीष्मपितामह धर्मराज को उपदेश देते हैं। स्त्री-धर्म, राज-धर्म, आपद्-धर्म, मोक्ष-धर्म की कथा कहते हैं। महाभारत के शांतिपर्व में, अनुशासन पर्व में ये प्रसंग हैं।

धर्मराज का प्रश्न है, परमधर्म क्या है? भीष्मपितामह कहते हैं-विष्णुसहस्त्र नाम का पाठ करिये। चतुर्भुज नारायण के दर्शन करते हुए शांति से पाठ करिये। विष्णुसहस्त्र नाम में बहुत शक्ति है। वेदांत के ग्रंथों में लिखा है कि ज्ञानी पुरुषों को भी प्रारब्ध भोगना पड़ता है। ब्रह्मज्ञान से संचित और क्रियमाण का नाश होता है परन्तु प्रारब्ध का विनाश भोग से होता है। ज्ञानी पुरुष के जीवन में सुख-दुःख, मान-अपमान आते हैं। तब वे शांति रखते हैं। यह सब प्रारब्ध का खेल है। ज्ञान से प्रारब्ध बलवान है, पर प्रारब्ध से प्रभु का नाम प्रबल है। प्रारब्ध का नाश प्रभु-नाम से होता है। प्रभु के नाम में ऐसी शक्ति है-

मेटत कठिन कुअंक भाल के।

विधाता ने किसी के भाग्य में यह लिखा कि पाँच वर्ष के बाद उसको बहुत बीमारी आयेगी। छह-आठ मास उसे शय्या में ही रहना होगा। किन्तु ऐसा व्यक्ति अगर विष्णु सहस्त्रनाम के बारह हजार पाठ उचित रीति से करता है तो उसकी जन्म-कुण्डली का तनु स्थान शुद्ध हो जाता है। उसे महारोग नहीं हो सकता। रोगार्तोमुच्यते रोगात्-प्रारब्ध में लिखा है कि छह मास बहुत दुःख में बीतेंगे, परन्तु पाठ करने से उसके इस प्रारब्ध का विनाश होगा। एकाध दिन उसे बुखार आयगा। जो छह मास भोगना था, वह सब एकाध दिन में भोगकर प्रारब्ध का विनाश होगा। कोई वैष्णव बारह वर्षों तक नियम पूर्वक दोपहर में भोजन से पहिले और रात्रि में सोने से पहिले विष्णुसहस्त्रनाम का पाठ करता हो तो उसे अनुभव होगा कि विष्णुसहस्त्रनाम में बहुत शक्ति है। रात्रि में शय्या में बहुत भक्ति कीजिए। जो शय्या में भक्ति नहीं करता, वह प्रायः पाप करता है। रात्रि में शय्या में भक्ति की बहुत आवश्यकता है। जीवन में सुख-दुःख का कैसा भी प्रसंग आ जाय, भक्ति का

नियम न छोड़िये। दुःख में भोजन करना ही पड़ता है। मानव भोजन को कहाँ छोड़ सकता है? तो भक्ति को क्यों छोड़ देना चाहिए?

कई लोग ऐसे होते हैं कि वे रोज भक्ति करते हैं, पर जब घर में विवाहादि के प्रसंग आते हैं, तब ठाकुरजी को दूसरे के घर में विराजमान कर देते हैं। अब सात-आठ दिनों तक फुरसत नहीं है, बहुत काम रहेगा उनको। यह सब उचित नहीं है। संसार के सुख-दुःख को अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए। संसार के सभी सुख-दुःख बादल के समान हैं। बादल आते हैं, चले जाते हैं। बादल जैसे सदैव नहीं रहते, उसी तरह सुख भी सदैव नहीं रहता, दुःख भी सदैव नहीं रहता।

भीष्मपितामह कहते हैं-मेरा नियम है, विष्णुसहस्त्रनाम का पाठ किये बिना, मैंने कभी पानी भी नहीं पिया है। विष्णुसहस्त्रनाम के उपदेश के बाद भीष्मपितामह मौन हो जाते हैं। बाहर दर्शन करने के बाद वे द्वारिकानाथ के दर्शन भीतर करते हैं। जो आत्मस्वरूप में नारायण के दर्शन करते हैं उसे प्रभु-वियोग नहीं होता है। जिसे बाहर और मन्दिर में ही परमात्मा दीख पड़ते हैं, उन्हें परमात्मा का वियोग होता है। आत्मस्वरूप में प्रभु के दर्शन करिये। परमात्मा के दर्शन में, ध्यान में, तन्मय होकर भीष्मपितामह अन्तकाल में स्तुति करते हैं-

इति मतिरूपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुंगवे विभूम्नि।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः।।

(१-९-३२)

चतुर्भुज नारायण के दर्शन से हृदय द्रवित हुआ है, आँखें गीली हो गयी हैं। दोनों हाथ पितामह ने जोड़े हैं। मन में सोच रहे हैं अपने भगवान् को मैं क्या भेंट दूँ। परमात्मा के दर्शन करते हुए भीष्मपितामह कहते हैं-अपनी निष्काम बुद्धि और अपना निरपेक्ष मन मैं आपको अर्पण करता हूँ। मुझे अब मन की जरा भी जरूरत नहीं है। अब संसार के किसी भी सुख को भोगने की मेरी इच्छा नहीं है। मेरा मन अब शुद्ध है। बुद्धि निष्काम है। अपने मन और अपनी बुद्धि को अर्पण करके अब मुझे कुछ भी माँगना नहीं है। जीव जब ईश्वर को कुछ अर्पित करता है, तब ईश्वर को लेते हुए क्षोभ होता है। क्योंकि जीव देता है, अर्पण करता है, तब कुछ माँगता अवश्य है और अधिक ही वह माँगेगा, ऐसा लगता है। कई लोग जब कचहरी में उपस्थित रहने का दिन आता है, उसी दिन भगवान् के दर्शन करने जाते हैं और भगवान् के समक्ष कुछ भेंट रखते हैं। ग्यारह रुपये भेंट के रखकर वे कहते हैं-'हे भगवान्! कृपा करिये। आज हमारे मुकदमे की सुनवाई है। मुझ पर दया कीजिये अर्थात् मेरे लिये आप कोर्ट में पधारिये। भगवान् कहते हैं-तुम वकील को दो सौ, पांच सौ रुपये देते हो, तब वकील कोर्ट में आता है और मुझे तुम ग्यारह रुपयों से आश्वस्त कर

कोर्ट में ला रहे हो। यह जीव कैसा ठग है। थोड़ा देता है और अधिक लेने की इच्छा रखता है। भीष्मपितामह को कुछ माँगना नहीं है। उनकी स्तुति पर विचार करते हुए लगता है कि भक्ति से मरण सुधर जाता है। ज्ञान के भरोसे न रहियेगा। शरीर स्वस्थ रहता है, तब ब्रह्मज्ञान की बातें करना कठिन नहीं है। शरीर के अस्वस्थ होने पर जीव देहाध्यास में आता है और उसके द्वारा ज्ञान भुला दिया जाता है। आठ-दस वर्ष का बच्चा भी जानता है कि शरीर से आत्मा भिन्न है। लोग शरीर को जलाते हैं, आत्मा को कोई नहीं जला सकता। यह शरीर जो है; वह मैं नहीं हूँ, आत्मा जो है वहीं मैं हूँ। हाँ! तो शरीर स्वस्थ होता है, तब ज्ञान की बातें होती हैं पर शरीर के अस्वस्थ होने पर जीव देहाध्यास में आता है। यह शरीर जो है वही मैं हूँ। देह का सुख ही मेरा सुख और देह का दुःख ही मेरा दुःख। इस प्रकार साधारण बुखार आने पर भी ज्ञान भुलाया जाता है। आत्मा निर्विकार है। आनंदमय है। उसे ठंड नहीं लगती, धूप नहीं लगती। बुखार नहीं आता। पर देह को बुखार आता है, इससे जीव यह समझता है कि मुझे बुखार आता है। साधारण दुःख में भी ज्ञान भुलाया जाता है। अंतकाल में तो अति दुःख आता है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि हजार बिछुओं के डंसने से जितना दुःख होता है, इतना दुःख शरीर को छोड़ते समय जीव को होता है। एक-एक बिच्छु के काटने से भी कितनी पीड़ा होती है सब यह जानते हैं। एक हजार बिच्छुओं के काटने पर कितनी पीड़ा होती होगी? अंतकाल में ज्ञान लुप्त हो जाता है। ज्ञान दगा दे जाता है। जीव तब देहाध्यास में आता है। शरीर से उसको मोह हो जाता है। इससे मरण बिगड़ता है।

भक्ति से मरण सुधरता है। निरंतर भक्ति की आदत डालिये। आपको भगवान् सुख देते हैं तो अकेले सुख को नहीं भोगिये। श्रीकृष्ण को साथ रखकर सुख का भोग कीजिए। जो भगवान् को साथ में रखकर सुख का भोग करता है, वह कभी भी दुःखी नहीं होता। सुख में भगवान् को साथ रखिये। सुख में भक्ति छूट न जाय इसका ध्यान रखिये। आपके जीवन में कोई दुःख का प्रसंग आ जाय तो दुःख में भी प्रभु को साथ रखिये। दुःख में जो प्रभु को साथ रखते हैं, उनके मन पर दुःख का प्रभाव बहुत नहीं पड़ता। सुख और दुःख मन के हैं। आत्मा को सुख की अनुभूति नहीं है और दुःख की भी नहीं है। आत्मा परमात्मा का अंश है। आनंदमय है। सुख-दुःख में प्रभु को साथ रखिये। कैसा भी प्रसंग हो, प्रभु की भक्ति छूट न जाय-इसका ध्यान रखिये। निरंतर भक्ति की जिसको आदत होती है, उसे ही अंतकाल में भगवान् की याद आती है और उसका मरण सुधर जाता है।

भीष्मपितामह ने कहा-मैं आपकी शरण में हूँ। मैं आपका हूँ। नाथ! कृपा करियें। प्रभु ने प्रेम से उपालंभ देते हुए कहा-दादाजी! आज आप कहते हैं कि मैं शरण में आया हूँ और मैं

आपका हूँ। अगर आप मेरे ही थे तो पांडव-पक्ष में रहकर कौरवों के साथ युद्ध में क्यों न लड़े? कौरवों ने अन्याय किया था, यह आप जानते थे फिर भी आप कौरव-पक्ष में क्यों रहे? आप मेरे ही थे तो आपने अर्जुन को बाण क्यों मारे थे? कौरवों में आपकी कोई आसक्ति रही होगी! भीष्मपितामह ने कहा–कौरवों में नहीं, पर श्रीकृष्ण में मेरी आसक्ति थी। इसी से मैं कौरव-पक्ष में रहा। मैंने ऐसा सोचा कि पांडव-पक्ष में रहकर कौरवों के साथ युद्ध करूँगा तो अर्जुन के रथ में विराजित पार्थसारथी श्रीकृष्ण के दर्शन मैं ठीक से नहीं कर सकूँगा। मैं आपके दर्शन करने के लिए ही उस पक्ष में था। पार्थसारथी का स्वरूप मुझे प्रिय है। एक हाथ में बागडोर है, एक हाथ में चाबुक है, एक हाथ अर्जुन के सिर पर धरा हुआ है और एक हाथ ज्ञान-मुद्रावाला है। मैं ठीक से आपका दर्शन कर रहा था। आपने अर्जुन से कहा है–

मामनुस्मर युध्य च।

अर्जुन, मुझे न भूलना, मैं आपको भूल नहीं रहा हूँ। मैं आपके दर्शन करते-करते युद्ध कर रहा था। भीष्मपितामह ने बहुत सुन्दर स्तुति की। फिर उन्हें अपने चारों ओर नारायण दीख पड़े। भीतर नारायण, बाहर नारायण, दायें नारायण, बायें नारायण। नारायण के सिवाय उन्हें कुछ दीख ही नहीं रहा था। भीष्मपितामह ने कहा– अब भक्त भगवान् से भिन्न नहीं रह सकता। साधारण भक्ति में भक्त और भगवान् दोनों भिन्न होते हैं। अतिशय भक्ति मैं भेद नष्ट हो जाता है। अतिशय भक्ति में भक्त और भगवान् दो न रहकर एक हो जाते हैं। फिर भक्त भगवान् से अलग नहीं रह सकता। भीष्मपितामह की भक्ति अब अन्तिम कक्षा की है। भीतर-बाहर नारायण के दर्शन करते-करते गंगा-तट पर उत्तरायण में भीष्मपितामह भगवद् स्वरूप में लीन हो गये हैं। देव जय-जयकार कर रहे हैं। पुष्पवृष्टि हो रही है। ऐसा महान् पुरुष न कभी हुआ है, न कभी होगा। धर्मराज को आनन्द हुआ है। दादाजी को सद्गति मिली। ऐसी सद्गति किसी को नहीं मिली है। वे छोड़कर चले गये इससे थोड़ा दुःख हुआ है। श्राद्धादिक विधि उन्होंने की है। श्रीकृष्ण, धर्म-राज्य की स्थापना करके अब द्वारिका जाने के लिए पधारते हैं।

रथ में विराजित भगवान् के दर्शन करते हुए हस्तिनापुर की स्त्रियाँ प्रभु पर पुष्प बरसाती हैं और परस्पर बातें करती हैं–

स वै किलायं पुरुषः पुरातनो य एक आसीदविशेष आत्मनि।
अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे निमीलितात्मन्निशि सुप्तशक्तिषु।।

(१-१०-२१)

स एव भूयो निजवीर्यचोदितां स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम्।
अनामरूतात्मनि रूपनामनी विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत्॥

(१-१०-२२)

अरी सखी! तू जानती है यह कौन जा रहा है? प्रलयकाल में सभी को पेट में रखकर शेषशय्या में शयन करने वाले आदि नारायण परमात्मा यही हैं। प्रलयकाल में जीव माया के अंधकार में छिपा हुआ रहता है। सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् एक-एक जीव को खोज कर बाहर निकालते हैं और प्रत्येक के कर्म के अनुसार प्रत्येक को जन्म देते हैं, पर फिर प्रभु जगत् में छिप जाते हैं। भगवान् जीव से कहते हैं–एक बार जब तुम छिप गये, तब मैंने तुम्हें ढूंढ़ कर बाहर निकाला। अब मैं छिप जाता हूँ, तुम मुझे ढूंढ़ लो। संसार की रचना करके परमात्मा जगत् में छिप गये हैं। परमात्मा को ढूँढ़ने का प्रयत्न करिए। लाला को लुका-छिपी का खेल बहुत पसन्द है। श्रीबालकृष्णलाल गोकुल में लुका-छिपी का खेल, खेल रहे हैं। बच्चे जब छिप जाते हैं, तब कन्हैया उन्हें खोजने जाता है और जब कभी कन्हैया छिप जाता है तब बच्चे उसे खोजने जाते हैं। यह जीव और ईश्वर का खेल है।

१३– द्वारिका का उपसंहार और पांडवों का स्वर्गारोहण

अनेक देशों को पवित्र करते हुए द्वारिकानाथ द्वारिका पधारे हैं। द्वारिका में सबको दर्शन की उत्कंठा थी। प्रभु ने अनेक स्वरूप धारण किये हैं और सब से एक ही समय में वे मिलते हैं। सब को आनंद दे रहे हैं। श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं। सब को लगता है कि मुझ से उनका बहुत प्रेम है। पहिले मुझे वे मिले, मेरे साथ बातें कीं। ग्यारहवें अध्याय में कृष्ण जब द्वारिका पधारते हैं, उस समय की कथा का वर्णन है।

बारहवें अध्याय में परीक्षित के जन्म की कथा है। द्वारिकानाथ द्वारिका में पधारे हैं। इस पवित्र बेला में उत्तरा ने बालक को जन्म दिया है। बालक चारों ओर देखता है किसी के भी आगमन पर उसे ध्यान से देखता है। उस बालक को याद आ रहा है कि जब मैं माँ के पेट में था तब मैंने चार हांथों वाले एक पुरुष को देखा था। बहुत तेजस्वी पुरुष थे और अपनी गदा से ब्रह्मास्त्र-तेज का नाश करते थे। वे कहाँ हैं? बालक सब में परमात्मा को खेज रहा है? इससे उस बालक का नाम रखा गया है परीक्षित–

स एष लोकेविख्यातः परीक्षिदिति यत्प्रभुः।
गर्भदृष्टमनुध्यायन् परीक्षेत नरेष्विह॥ (१-१२-३०)

युधिष्ठिर महाराज ने ऋषियों को बुलाया है। ऋषियों ने कहा–यह बालक महान् राजा होगा। बड़े यज्ञ करेगा। परन्तु सर्पदंश से इसकी मृत्यु है। किन्तु अंतकाल में उसे महान् आत्मा के दर्शन होंगे। उसकी मृत्यु मंगलमयी होगी। यह इसका अंतिम जन्म है।

परीक्षित धीरे-धीरे बड़ा हो रहा है। तेरहवें अध्याय में धृतराष्ट्र के मोक्ष की कथा है विदुरजी यात्रा करते-करते घर आते हैं। विदुरजी ने छत्तीस वर्ष यात्रा की है। संत तीर्थ-यात्रा करके तीर्थों को पावन करते हैं। तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि। विदुरजी ने सुना कि कौरवों का विनाश हुआ है। हस्तिनापुर के सिंहासन पर धर्मराज विराजित हैं। विदुरजी का भाई धृतराष्ट्र के प्रति प्रेमभाव है। सौ बच्चे मर गये पर अभी तक घर नहीं छोड़ रहे हैं। ये घर में मरेंगे तो इनका मरण बिगड़ेगा। इसी घर में फिर जन्म लेना पड़ेगा। घर में उन्हें अति आसक्ति है। यही सोचकर विदुरजी धृतराष्ट्र का मरण सुधारने आये हैं। सबको आनंद हुआ है। वे धृतराष्ट्र को मध्य रात्रि में समझा रहे हैं–"तुम्हारे मुख पर मृत्यु की छाया दीख पड़ती है। जिस भीम को विष के लड्डू खिलाये, इस भीम के घर शक्कर के लड्डू खाने में तुम्हें क्षोभ नहीं होता? पांडव, धर्म की मूर्ति हैं। तुम्हारे वैर-भाव का बदला प्रेमभाव से देते हैं। तुम में बुद्धि है कि नहीं? अब जाने का समय आ गया है फिर भी तुम्हें विचार नहीं आता? इस घर में तुम्हारी मृत्यु होगी तो इसी घर में तुम्हें पुनः जन्म लेना पड़ेगा। तुम्हारा मरण बिगड़ेगा।

धृतराष्ट्र कहते हैं–मैं समझ रहा हूँ। मुझे बुरे स्वप्न आते हैं। पर मैं अंधा हूँ, क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?

विदुरजी कहने लगे–चलो मैं तुम्हें ले चलूँ। दिन में तो धर्मराज तुम्हें जाने नहीं देंगे। धृतराष्ट्र को इस तरह समझाकर मध्यरात्रि में गंगातट पर हरिद्वार के पास सप्त स्त्रोततीर्थ में विदुरजी धृतराष्ट्र को ले आये। हिमालय से गंगाजी निकलती हैं। रास्ते में सात ऋषि बैठे हैं। ये सातों ऋषि हाथ जोड़ खड़े हो गये। वे गंगाजी की स्तुति करते हैं। माता को मना रहे हैं। माँ, मेरे आश्रम में पधारिये! जब सात ऋषि प्रार्थना कर रहे हैं, तब गंगाजी सात धाराओं में प्रकट होती हैं। एक-एक ऋषि के आश्रम में एक-एक धारा बनकर वे गयीं। सात धाराओं के कारण उसे सप्तस्त्रोत कहते हैं। ये सातों धाराएँ ब्रह्मकुण्ड में इकट्‌ठी होती हैं। गर्मी के दिनों में गंगाजी की अलग-अलग धारा आज भी दीख पड़ती है। वहीं विदुरजी धृतराष्ट्र को ले आये। विदुरजी के सत्संग से अब धृतराष्ट्र भी परमात्मा का ध्यान करने लगे हैं।

धर्मराज का नियम था कि हर रोज चाचा-चाची को वे वंदन करते थे। आज चाचा क्यों नहीं दीख रहे हैं चाची घर में अकेली हैं। मैंने उनके पुत्रों को मार डाला इसलिए आत्महत्या करने

न चले गये हों? धर्मराज परेशान हो गये। भगवान् के लाड़ले भक्त जब दुःखी होते हैं तब बिना निमंत्रण ही संत उनके घर पहुँच जाते हैं। आज नारदजी पधारे हैं। वे धर्मराज को समझा रहे हैं। अब चाचाजी की चिंता छोड़िये। विदुरजी के सत्संग से उनका मरण सुधरेगा आपने आपका कर्त्तव्य पूर्ण किया है। आजतक आपने चाचाजी की सेवा की है पर चाचाजी में अब ममता न रखिये। किसी भी मानव में ममता न रखिये ममता भगवान् में रखिये। किसी स्त्री या किसी पुरुष में ममता रखने वाले बहुत दुःखी होते हैं, बहुत रोते हैं, धर्मराज को नारदजी समझा रहे हैं। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि पचास-पचपन वर्षों तक घर की , परिवार की देखभाल करना अच्छा है। पचपन के बाद यह ममत्व अच्छा नहीं है। पचास-पचपन के बाद पुत्रों को घर सुपुर्द कर दीजिए। और पुत्रों को भगवान् के सुपुर्द कर दीजिए। भगवान् से व्यतीत कहिये कि पुत्र आपके हैं, मेरे नहीं हैं। पचपन वर्ष व्यतीत होने पर प्रायः पुत्र का विवाह हो जाता है, पुत्रवधू घर में आ जाती है। तब मन से निश्चय करिये कि अब मेरा वानप्रस्थान शुरु हुआ है।

घर में पुत्रवधू के आ जाने पर भी कितनों का घर से मोह नहीं छूटता है। घर में बहू के आ जाने पर समझना चाहिए कि अब वन में जाकर भक्ति करने का समय आ गया है। पचपन वर्ष के बाद सजग होकर, जो भक्ति करता है उसका मरण सुधर जाता है। पचपन वर्ष के बाद भी जो घर में परिवार में आसक्ति रखता है, उसका मरण बिगड़ता है।

धर्मराज को नारदजी समझा रहे हैं–अब छह महीने ही शेष हैं। चाचा की चिंता न करिये। आप अपनी चिंता करिये। कितने ही लोग हैं कि मृत्यु-शय्या पर पड़े हैं और घर की चिंता कर रहे हैं। इस भांजे का क्या होगा? पुत्री का क्या होगा? अरे! मृत्यु के बाद आपका क्या होगा इसी की चिंता कीजिए। यह सोचिये कि मृत्यु के बाद मेरा क्या होगा? मैं कहाँ जाऊँगा? आप अपनी–स्वयं की चिंता करिये। पचपन वर्षों के बाद परिवार की चिंता छोड़िये। प्रभु को सौंपिये सब कुछ!

तदिदं भगवान् राजन्नेक आत्माऽऽत्मनांस्वदृक्।
अन्तरोऽनन्तरो भाति पश्य तं माययोरुधा।। (१-१३-४७)

सब जीवों में एक ही परमात्मा है। उसी परमात्मा को परखने का प्रयत्न करिये! चाचा के लिए रोइये नहीं। अपना मरण याद रखिये। मुझे अपनी मृत्यु को सुधारना है, ऐसा निश्चय कीजिए। छः ही महीने बाकी हैं। छह महीनों के बाद द्वापर पूरा होगा और कलियुग का आरम्भ होगा भगवान् स्वधाम में पधारे हैं। ऐसा समाचार मिलने पर सब कुछ छोड़कर हिमालय की ओर प्रयाण करना। नारदजी ने इस तरह धर्मराज को सावधान कर दिया।

चौदहवें और पंद्रहवें अध्यायों में पांडव प्रभु के धाम में जाते हैं, उसका वर्णन आता है। द्वारिका नाथ की उपसंहार करने की इच्छा हुई। प्रभु ने सोचा कि मेरे बाद यह सुवर्ण की द्वारिका न रहे तो अच्छा है। प्रभु ने अपनी इच्छा से सुवर्ण की द्वारिका समुद्र में डुबा दी। यह तो प्रभु ने अच्छा ही किया कि इस युग में सुवर्ण की द्वारिका को रखा ही नहीं। उसे सुवर्ण की रखा होता तो? भगवान् जान रहे थे कि कलियुग में लोग कैसे होंगे। कलियुग के लोग द्वारिका को छिन्न-भिन्न कर दें, इससे मैं ही डुबा दूँ तो क्या बुरा? स्व-इच्छा से जो उपसंहार करता है उसे बहुत शांति मिलती है। जिसे अनिवार्य रूप से कुछ छोड़ना है, उसे बहुत त्रस्त होना पड़ता है। जो समझ कर सर्वस्व छोड़ देता है और परमात्मा के साथ प्रेम करता है, वह इस संत्रास से बच जाता है। प्रभु ने संसार को दिव्य आदर्श दिखाया है कि मेरे बाद यह द्वारिका न रहे। यादवों में कलह हुआ। सुवर्ण की द्वारिका डुबा दी। यादवों का विनाश हुआ। भगवद्-इच्छा से ही यह सब हुआ। उस समय धर्मराज को अनेक अपशकुन दीख पड़े। वे भीमसेन से बातें कर रहे हैं—भीम! नारदजी का कहा हुआ समय अब आ गया है। मेरे पवित्र राज्य में अब कलि का प्रवेश हुआ है। मुझे लगता है कि लोग झूठ बोल रहे हैं। मैंने जीवन में एक बार झूठ बोला है। और अभी तक मैं पछता रहा हूँ। इसका मुझे बहुत दुःख हो रहा है। अब तो झूठ बोलने में किसी को जरा भी दुःख नहीं होता है। मेरे राज्य में अब चोरी होने लगी है। ये कलियुग के लक्षण हैं। अब कुछ-न-कुछ दुःख की बातें सुननी ही पड़ेंगी।

धर्मराज भीमसेन से बातें कर रहे थे, उसी समय द्वारिका से अर्जुन का आगमन हुआ। अर्जुन ने आकर धर्मराज को प्रणाम किया। धर्मराज नै आशीर्वाद दिया। अर्जुन के मुख पर तेज नहीं है—यह देखकर धर्मराज पूछने लगे, तुम्हारा सब तेज कहाँ गया? किसी ने तुम्हारा अपमान किया है क्या? बहुत अपमान होता है, तब चेहरा निस्तेज हो जाता है। आँगन में आये भिखारी को भोजन दिये बिना तुमने भोजन किया है क्या? गृहस्थ का धर्म है कि मध्याह्नकाल में जो आँगन में आता है तो उसे थोड़ा-बहुत देना चाहिए। देने से कम नहीं होता। देने से बढ़ता है। किस वेश में कौन आता है, इसका पता नहीं है। बड़े-बड़े ऋषियों और साधुओं को भी भिखारी के परिवेश में घूमते देखा गया है। तुमने किसी स्त्री का चिंतन किया है क्या? पुरुष किसी भी पर स्त्री का चिंतन करता है या स्त्री किसी पर पुरुष का ध्यान करती है तो व्यभिचार का सा पाप लगता है। मेरा भाई अर्जुन ऐसा पाप नहीं कर सकता। मध्यरात्रि के समय सुन्दर श्रृंगार से सजी उर्वशी अर्जुन से मिलने आयी थी। अर्जुन के मन में अर्जुन की आँखों में विकार नहीं आया। अर्जुन का मन गंगाजल-सा शुद्ध है। उर्वशी को उसने वंदन किया। उर्वशी ने कहा—मैं काम-भाव से आयी हूँ। अर्जुन ने कहा—आपका कैसा भाव हो, मेरा तो मातृभाव है। उर्वशी ने कहा मैं स्वर्ग की अप्सरा हूँ मुझे पाप नहीं

लगता, तुम्हें भी पाप नहीं लगेगा अर्जुन ने कहा—मैं भरतखंड का मानव हूँ। मेरा भारत देश स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है। भारतीय संस्कृति कहती है कि प्रत्येक स्त्री के प्रति मातृभाव रखो। अर्जुन बोले माँ! मैं तुम्हारा बालक हूँ। उर्वशी ने कहा—मैं तुम्हें शाप दूँगी। अर्जुन ने जवाब दिया—माँ, तुम्हें जो योग्य प्रतीत हो, वही कहना। मैं तो तुम्हें वंदन ही करूँगा, एकांत में जो काम को मारता है, वही सच्चा वीर है और काम की मार से जो परास्त होता है वह निर्बल है। मेरा अर्जुन वीर है। वह ऐसा पाप कभी नहीं करेगा। आज तुम्हारे मुख पर तेज नहीं है। इस पर मुझे कलियुग के लक्षण दीख रहे हैं। तुम्हें प्राण से भी प्रिय श्रीकृष्ण का वियोग तो नहीं हुआ है न? धर्मराज, एक-एक नाम ले कर कुशल समाचार पूछ रहे हैं। द्वारिका में सब क्या कर रहे हैं? आनंद में हैं न?

श्रीकृष्ण के वियोग में अर्जुन व्याकुल हुए हैं। अर्जुन वीर हैं पर बालक-सदृश रो रहे हैं। कहते हैं—बड़े भाई! अब मैं आप से किसका कुशल-समाचार कहूँ? भगवान् श्रीकृष्ण स्वधाम पधारे हैं। प्रभु हैं। प्रभु स्वधाम में पधार गये हैं, यह सुनकर धर्मराज बहुत व्याकुल हो गये। सिंहासन पर विराजित थे। किन्तु गिर पड़े। श्रीकृष्ण के बिना जीवन व्यर्थ है। प्रभु ने मुझे आज्ञा न की और स्वधाम में पधारे? यह जीवन अब किसके लिए? श्रीकृष्ण के वियोग में अर्जुन श्रीकृष्ण का स्मरण कर रहे हैं। वे परमात्मा के एक-एक उपकार को याद कर रहे हैं। याद करते हुए कहते जा रहे हैं—मैं उनको समुचित रूप से पहचान न सका मुझ पर उनका अतिशय प्रेम भाव था। मुझे याद आ रहा है। उन्होंने मुझ से एक बार कहा था कि अर्जुन! तुम मुझे बहुत प्रिय हो। तुम कुछ माँग लो। तुम जो माँगोगे, वही मैं दूँगा। मेरी बुद्धि भ्रष्ट थी। मैंने माँगा कि युद्ध में मेरी विजय हो। मुझे माँगना आया नहीं। आज श्रीकृष्ण-वियोग में मुझे प्रीति हुई है कि मुझ में जो शक्ति थी, वह मेरी नहीं थी। वह तो प्रभु का प्रसाद था। मेरे हाथ से ये सब काम करवाने की प्रभु की इच्छा थी। मैं जहाँ गया, वहाँ विजय हुई। पर आज श्रीकृष्ण-वियोग में मैं जब चला आ रहा था तब रास्ते में डाकुओं ने मुझे लूट लिया। मुझे उन्होंने बहुत मारा और मेरी पराजय हुई। आज मुझे विश्वास हो गया कि जहाँ सर्वत्र मेरी विजय हुई, वहाँ वह मेरी नहीं प्रभु की शक्ति की विजय थी। मुझे श्रीकृष्ण के प्रथम दर्शन द्रौपदी के स्वयंवर में हुए वहाँ मत्स्य-वध करना था। यह मन भटकती मछली-सा है। जो मन को मारता है, उसे द्रौपदी मिलती है। द्रौपदी कृष्ण-भक्ति है। भक्ति वही कर सकता है, जो मन को मारता है। उस समय परमात्मा ने मेरी ओर देखा। मुझ में शक्ति का संचार हुआ। मैंने मत्स्यवेध किया। श्रीकृष्ण ने भरी सभा में द्रौपदी को अपमान से बचा लिया था। बड़े भाई। आपको याद है न दुर्योधन ने क्या किया था? चार महीनों तक दुर्वासा मुनि को उसने घर में रखा। दुर्वासा-ऋषि का ऐसा नियम था कि दस हजार ब्राह्मणों को जो भोजन कराये उसके घर भोजन

करते थे। दुर्योधन ने चार महीनों तक संतों की सेवा तो की पर सेवा सद्भाव से नहीं दुर्भाव से की थी। कार्तिक मास के शुक्लपक्ष में द्वादशी के दिन, दुर्वासा-ऋषि से दुर्योधन ने कहा कि मेरे भाई पांडव वन में घूंम रहे हैं, आज वहाँ जाकर पारण करिये और उन्हें आशीर्वाद दीजिए। दुर्योधन बहुत दुष्ट था। सोचा कि महाराज का उपवास है। सूर्यदेव ने द्रौपदी को अक्षय पात्र दिया है, परन्तु द्रौपदी के भोजन कर लेने के बाद उस पात्र से कुछ निकलता नहीं है। इन ब्राह्मणों को पांडवों तक पहुँचने में देर हो जायगी। तब तक द्रौपदी का भी भोजन हो चुका होगा। इससे अक्षय पात्र से कुछ नहीं निकलेगा। दुर्वासा को भोजन नहीं मिलेगा तो वे क्रोध करके पांडवों को शाप देंगे। पांडवों की दुर्गति होगी। दुर्वासा ऋषि भोले थे। दुर्योधन की कपट-चाल को न जान पाये। उन्होंने दुर्योधन से कहा कल निर्जला एकादशी का व्रत किया है। आज द्वादशी का बड़ा दिन है। पारण करूँगा, तुम्हें आशीर्वाद दूँगा और बाद में वहाँ जाऊँगा। दुर्योधन ने कहा—महाराज! मुझे तो बहुत आशीर्वाद मिले अब पांडवों को भी आशीर्वाद दीजिए।

सूर्यनारायण ने पांडवों को अक्षय पात्र दिया था। उसमें से संकल्प के अनुसार अन्न मिलता था। सूर्य की त्रिकाल उपासना करने वाला कभी दरिद्र नहीं होता सूर्योदय और सूर्यास्त के समय में भक्ति करिये सूर्यनारायण में परमात्मा के दर्शन करिये। सूर्यनारायण की त्रिकाल भक्ति करने वाले को रोग नहीं होते। पांडव जब वन की ओर जाने के लिए चले, तब सूर्यनारायण को दया आ गयी। उन्होंने अक्षय पात्र दिया। इस अक्षय पात्र से संकल्प के अनुसार अन्न निकलता था। आँगन में पधारे साधु-संतों से, ब्राह्मणों से द्रौपदीजी हाथ जोड़कर पूछतीं—महाराज, आप की आज क्या भोजन लेने की इच्छा है? संकल्प के अनुसार उस पात्र से भोजन मिलता। जंगल में मंगल था।

द्रौपदी पांडवों के साथ सत्संग कर रही थीं। द्रौपदी कहतीं—मेरे प्रभु को झूँठा काम करना आता ही नहीं है। प्रभु की प्रत्येक लीला जीव के कल्याण के लिए ही है। आपके जीवन में जब उद्वेग का उद्भव हो, दुःख का प्रसंग खड़ा हो तब मन को शांत रखकर सहन करना सीखिये। प्रभु को झूँठा काम करना आता ही नहीं है। जीव झूँठा काम कर सकता है। प्रभु कभी झूँठा और गलत काम करते ही नहीं हैं।

प्रभु में ऐसा दृढ़ विश्वास रखिये। राज्य चला गया था। पाण्डव वन में भटक रहे थे। द्रौपदी कह रही हैं—जो हुआ, बहुत अच्छा हुआ। राजमहल में बहुत-सा राजसी सुख भोग लिया। सात्त्विक आनन्द राजमहल में नहीं मिला। राजमहल में सात्त्विक आनन्द कहाँ से? मैं रानी बनकर राजमहल में रहती थी, वे दिन मुझे याद आ रहे हैं। मैं ध्यान लगाती तो चित्त तन्मय होता ही नहीं था। श्रीकृष्ण-कीर्तन करती थी, पर हृदय द्रवित होता ही नहीं था। वनवास में, ध्यान में तन्मयता आती

है। कीर्तन से प्रेमाश्रु बहते हैं; आनन्द आता है। ऐसे सात्विक आनन्द के लिए ही प्रभु ने हमें वन में भेजा है। प्रभु जो कुछ करते हैं जीव के मंगल के लिए ही करते हैं। भोजन सें निवृत्त होकर द्रौपदी पाण्डवों के साथ सत्संग कर रही थी। उसी समय दुर्वासा ऋषि वहाँ पधारे। धर्मराज ने खड़े होकर पुष्पों से उनका स्वागत किया। दुर्वासा ऋषि ने कहा–ये दस हजार ब्राह्मण आपके घर भोजन करने आये हैं। सुबह से हम हस्तिनापुर से निकले हैं। कल की एकादशी का निर्जला व्रत था। हमें अब बहुत भूख लगी है। धर्मराज ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा–आपने बहुत कृपा की। इन ब्राह्मणों की सेवा का लाभ हमें मिलेगा। आप चलते ही आ रहे हैं। आपको अब थकान होगी। एक बार गंगाजी में स्नान करिये, तब तक भोजन तैयार हो जायेगा। दुर्वासा ऋषि ने कहा– स्नान की तो सबकी इच्छा है, पर भूख भी बहुत लगी है। हम स्नान करके आते हैं, तब तक भोजन तैयार हो जाना चाहिए। धर्मराज ने कहा– हाँ,महाराज! सब कुछ तैयार होगा। धर्मराज धीर गम्भीर हैं। मति उनकी शांत है। वे सोचते हैं–अति दुःख में भी मैंने अपना धर्म नहीं छोड़ा है। अति दुःख में भी मैंने पाप किया नहीं है। अति दुःख में भी मैंने प्रभु को भुलाया नहीं है। ठाकुरजी यह कैसी लीला कर रहे हैं। मैं यही देखना चाहता हूँ। धर्मराज शान्ति से ध्यान में बैठ गये। घर में एक दाना भी नहीं है। द्रौपदी के भोजन ले लेने के बाद अक्षय पात्र से कुछ नहीं मिलता। धर्मराज जान रहे थे यह रहस्य पर फिर भी शान्ति से परमात्मा का स्मरण करने लग गये।

भीम–अर्जुन थोड़े-से घबरा गये। द्रौपदी भी अत्यन्त व्याकुल हो गयी। उन सबने सुना था कि दुर्वासा क्रोधी स्वभाव के हैं। कदाचित शाप देंगे। द्रौपदी प्रेम से प्रभु को पुकारने लगीं। उनका आर्तनाद प्रभु के कानों तक पहुँचता है। द्रौपदी प्रेम से पुकार रही है–'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण, हरे हरे।' यह जीव योग्य नहीं है, पर आप अति उदार हैं। आपने इस जीवन को अपनाया है। एक बार आपने ही कहा था कि द्रौपदी! मैं तुम्हारा भाई हूँ, तू मेरी बहन है। एक बार आपने लज्जा रखी। आपकी बहन अब भिखारिन हो गई है। घर में कुछ भी नहीं है। दस हजार ब्राह्मण भोजन माँग रहे हैं। नाथ! कृपा करिये। गरुड़ पर बैठकर, दौड़कर आइए। विलम्ब न करिये। मेरी लज्जा जायगी, तब जगत में आपका भी उपहास होगा। दुर्वासा ऋषि के आने से पहले द्वारिकानाथ आ जायँ नहीं तो मैं दुर्वासा ऋषि को कैसे मुँह दिखाऊँगी। द्वारिकानाथ आकर दुर्वासा ऋषि को समझा दें। द्रौपदी द्वारिकानाथ की प्रार्थना करती है–नाथ! दौड़कर आइए। प्रेम से कीर्तन करते हुए जो परमात्मा को पुकारते हैं, प्रभु उनकी पुकार सुनते हैं।

प्रभु एकदम जाग उठे हैं। द्वारिकानाथ की सेवा में रुक्मिणीजी हैं। सुवर्ण के थाल में सरस मेवा लायी गयी है। रुक्मिणीजी मना रही हैं–मैं बहुत प्रेम से लायी हूँ आप खाइए। पर द्वारिकानाथ

की आँखें भीग गयीं। रुक्मिणीजी पूछ रही हैं–आपको क्या हुआ है? प्रभु ने कहा–द्रौपदी मुझे पुकार रही है, पाण्डव बहुत दुःखी हैं। रुक्मिणीजी कह रही हैं–मैंने सुना है, पाण्डव वन में गये हैं। आपको जाना है तो अवश्य पधारिये, पर यह मेवा खाकर जाइए। वैष्णव जब बहुत दुःखी होते हैं, तब प्रभु को भोजन का ध्यान नहीं रहता। वे रुक्मिणीजी से बातें करने के लिए नहीं रुकते। प्रभु दौड़ने लगे।

इस तरह श्रीकृष्ण कीर्तन करती हुई द्रौपदी को उनके दर्शन हुए। उन्होंने देखा–श्रीकृष्ण रुक्मिणीजी के महल में विराजे हैं। रुक्मिणीजी भोजने लेने का आग्रह कर रही हैं पर प्रभु तो मेरे लिए दौड़ पड़े हैं। आज मैंने उनके भोजन में विक्षेप डाला है। वे भोजन लेने की तैयारी में ही थे। मैंने अपने प्रभु को बहुत त्रस्त किया है। द्रौपदी ऐसा सोच-विचार कर रही थी कि उन्हें 'द्रौपदी!' शब्द सुनाई पड़ा। द्वारिकानाथ सम्मुख हैं। द्रौपदी को उनकी ओर देखने का साहस नहीं है। मैं स्वार्थी हूँ मैंने अपने प्रभु को बहुत परेशान किया। द्रौपदी की दृष्टि धरती पर है परमात्मा ने स्मित किया। कहा–द्रौपदी! मुझे बहुत भूख लगी है। मैं दौड़ता आया हूँ। मैंने द्वारिका में कुछ खाया नहीं है। अब मुझे तुम्हारे हाथ का भोजन खाना है। तू मुझे भोजन दे। द्रौपदी ने दोनों हाथ जोड़ कर कहा–अब मुझे अधिक लज्जित न करिये। घर में कुछ भी नहीं हैं। प्रभु ने कहा–मेरे लिए कुछ तो रखा ही होगा। आज तुम्हारे हाथ का ही दिया मुझे खाना है। घर में कुछ नहीं है क्या? द्रौपदी मैंने सुना है कि तुम्हें अक्षय पात्र मिला है। मेरे लिए उस अक्षय-पात्र में कुछ तो रखा ही होगा। मुझे वह अक्षय-पात्र दिखा। द्रौपदी ने वह अक्षय-पात्र प्रभु को दिया। कई दिन का भूखा व्यक्ति जिस तरह अन्न को ढूँढता है, उसी तरह द्वारिकानाथ अक्षय-पात्र में अन्न ढूँढ रहे हैं। अंततः प्रभु ने भाजी का एक पत्ता ढूँढ ही लिया द्रौपदी से कहने लगे–यह तूने ही मेरे लिए रखा था। यह भाजी का पत्ता सर्व जीवों को तृप्त करेगा। श्रीकृष्ण सर्व के अंतर्यामी हैं। श्रीकृष्ण को जो प्रसन्न करता है, वह जगत् को प्रसन्न कर सकता है। श्रीकृष्ण को जो भोजन कराता है, वह सारे संसार को भोजन कराने का पुण्य पाता है। लोग गरीबों और साधु-संतों व ब्राह्मणों को भोजन करवाते हैं, जो अच्छा ही है परन्तु अति उत्तम तो यह है कि अति प्रेम से, बहुत पवित्रता से लाला का स्मरण करते हुए उन्हें ही भोजन कराया जाय। वे धन्य हैं जो उन्हें एकांत में मनाते हैं और भोजन करवाते हैं। लाला को ऐसी आदत है। श्रीबालकृष्णलाल के पास बैठकर जब लाल को लाड़ करके वे मनाते हैं, तब लाला थोड़ा-सा भोजन करते हैं। यशोदा मैया जब बहुत मनाती थीं, तब वे थोड़ा-सा खाते थे। श्रीकृष्ण आज भाजी का पत्ता खाते हैं। प्रभु ने संकल्प किया कि संसार के सर्व जीवों की तृप्ति हो। भोजन करते हैं श्रीकृष्ण और डकारें आ रही हैं दुर्वासा को दुर्वासा ऋषि का पेट फूल गया

है। ब्राह्मणों में से कोई संध्या करता है, कोई जप कर रहा है। एकदम सभी को डकारें आने लगीं। सभी को आश्चर्य हुआ कि यह क्या हो रहा है? उसी समय प्रभु ने भीमसेन से कहा—वह महाराज दुर्वासा वहाँ से भाग जाने का विचार कर रहे हैं। तुम उनको बुलाकर इधर ले आओ। भीमसेन दौड़ते गये हैं और दुर्वासा ऋषि से कहने लगे—महाराज, पधारिये। सब तैयार है। दुर्वासा ने पूछा—भीम! तुम सच ही कहना। द्वारिका से श्रीकृष्ण तुम्हारे घर आये हैं? भीम ने कहा—हाँ। आये है, द्रौपदी से बातें कर रहे हैं। मुझसे कहा कि दुर्वासा ऋषि मेरे गुरु हैं। आज तो मैं ही गुरुजी को भोजन परोसना चाहता हूँ। मैं ही उनको भोजन कराऊँगा। दुर्वासा ने कहा—वे आये हैं, तभी से मेरी स्थिति बिगड़ रही है। मैं उनका गुरु नहीं हूँ। वे मेरे गुरु हैं। श्रीकृष्ण जगत्-गुरु हैं। कृष्णं वंदे जगतद्गुरुम्।

दुर्वासा ऋषि ने पांडवों को आशीर्वाद दिये—चार महीनों तक मैंने दुर्योधन का अन्न खाया। मैंने भूल की। कभी भी ध्यान में तन्मयता नहीं आयी। संध्या-गायत्री करते हुए हृदय द्रवित नहीं हुआ। वह पाप का अन्न था। आपके घर में तृप्त हुआ। पांडवों का संयम, सदाचार, सरलता, साधु-सन्तों में सद्भाव और अनत-कृष्ण-भक्ति देखकर मैं प्रसन्न हुआ हूँ। जय जयकार हुआ। सेवा की दुर्योधन ने, आशीर्वाद मिले पांडवों को। जहाँ जाइए, वहाँ दुर्वासा पीछे पड़ते हैं, वासना बंगले में त्रस्त करती है, ऐसा नहीं है। वासना वन में जाने पर भी त्रस्त करती है। सुख भोगने की इच्छा ही है दुर्वासना, जो भक्ति को बिगाड़ती है, छिन्न-भिन्न कर देती है। दूसरों को सुखी करने की वासना भक्ति को पुष्ट करती है। वासना सभी को त्रस्त करती है। दुर्वासना के त्रास से द्वारिकानाथ ही मुक्त करवा सकते हैं। जीव में शक्ति नहीं है सदैव के लिए वह वासना को नष्ट कर सके। कुछ दिन तो कई लोग संयम रख सकते हैं पर बाद में वासना तीव्र हो जाती है। मानव मूर्ख नहीं है पर मानव का सयानापन सदैव रह नहीं सकता। वासना के नाम से तो प्रभु ही मुक्त करा सकते हैं। परमात्मा के चरणों का जिसे आश्रय प्राप्त है। वही श्रीकृष्ण-सेवा में तन्मय बन सकता है। भगवान उसे वासना के त्रास से बचा लेते हैं।

भाजी का एक पत्ता खाकर जिन्होंने जगत् को तृप्त किया उन्हीं परमात्मा श्रीकृष्ण का अर्जुन स्मरण करता है। श्रीकृष्ण-लीला का वर्णन करते हुए सब तन्मय हो गये। सारी रात भगवद्-गुणगान हुआ। प्रातःकाल हुआ। युधिष्ठिर ने परीक्षित को बुलाया और कहा कि आज से तुम राजा हो। परीक्षित को राज्य दिया गया। पाँचों पाण्डव द्रौपदी के साथ हिमालय में प्रयाण कर गये। हस्तिनापुर छोड़ते समय युधिष्ठिर आँखें होने पर भी किसी को देखते नहीं हैं। कान होने पर भी किसी की सुनते नहीं हैं। हस्तिनापुर की प्रजा बार-बार उन्हें प्रणाम कर रही है। प्रजा सोचती है कि ऐसे राजा थे नहीं और होंगे भी नहीं। इनके राज्य में हम बहुत सुखी हुए। धर्मराज अब कहीं

देखते नहीं हैं, न कहीं सुनते हैं। हिमालय में पाण्डव गये। उन्होंने केदारनाथ की पूजा की। जीव और शिव का अन्तिम मिलन वहाँ होता है। केदारनाथ में ऐसी मर्यादा है कि शिवजी की पूजा के बाद स्त्री हो या पुरुष, सभी शिवजी को आलिंगन में लेते हैं। जीव और ईश्वर का वहाँ मिलन होता है। वहीं जीव-भाव दूर हो जाता है। केदारनाथ से ऊपर जाने पर निर्वाणपथ आता है। उसे महापुरुष सत्पथ कहते हैं। पाण्डव जीव-भाव छोड़कर उसी पथ पर गये। चार पाण्डव शरीर छोड़कर प्रभु के धाम में गये। अकेले धर्मराज सदेह धाम में गये हैं।

वेदान्त कहता है कि ज्योति में ज्योति मिलती है, आत्मा, परमात्मा में मिल जाती है, पर भक्ति में ऐसी शक्ति है जो निरन्तर भक्ति करता है, उसका शरीर भी दिव्य हो जाता है। वह दिव्य शरीर के साथ परमात्मा में मिल जाता है। अकेले धर्मराज देह-धाम में गये। मीराबाई सदेह गयीं थीं। तुकाराम महाराज की समाधि नहीं है। तुकाराम महाराज का श्राद्ध नहीं। जो शरीर छोड़ता है, उसका श्राद्ध होता है। तुकाराम महाराज विट्ठलनाथजी की भक्ति करते-करते सदेह धाम में गये। मीराबाई सदेह द्वारिकानाथ में समाविष्ट हो गयीं। मीराबाई के श्रीअंग का किसी से स्पर्श नहीं हुआ। अग्नि-संस्कार नहीं, जल संस्कार भी नहीं। वे द्वारिकानाथ के स्वरूप में समाविष्ट हो गयीं। मीराबाई का चरित्र अति दिव्य है।

यः श्रद्धयैतद् भगवत्प्रियाणां पाण्डोः सुतानामिति संप्रयाणम्।
शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम्।।

(१-१५-५१)

पाण्डव प्रभु के धाम में गये हैं। पाण्डवों के मरण की यह कथा नहीं है, यह प्रयाण की कथा है। मरण और प्रयाण में बहुत फर्क है। स्नान नहीं, संध्या नहीं, अपवित्र अवस्था में हाय-हाय करके जो प्राण छोड़ता है, उसका मरण हुआ—ऐसा कहा जाता है। पर अन्तिम दिन तक जो स्नान करता है, परमात्मा का ध्यान करता है, श्रीबालकृष्णलाल को दूध से नहलाकर, लाला का शृंगार करके, भोग चढ़ाकर, लाला की आरती करके, जो श्रीकृष्ण-दर्शन और स्मरण करते-करते आनन्द में शरीर छोड़कर प्रभु के धाम में जाता है, वह मरा नहीं है, वह अमर हो गया है। पाण्डवों का मरण मंगलमय हुआ। पाण्डव प्रभु के धाम में गये।

१४—परीक्षित को शाप और शुकदेवजी का आगमन

ततः परीक्षिद् द्विजवर्यशिक्षया महीं महाभागवतः शशास ह।
यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः समादिशन् विप्र महद्गुणस्तथा।।

(१-१६-१)

सोलहवें अध्याय से परीक्षित के चरित्र का प्रारम्भ होता है।

परीक्षित राज्य करने लगे। उन्होंने सुना कि मेरे राज्य में कलि का प्रवेश हुआ है। तब उन्होंने कलि को सजा दी। पाण्डव तो कलि के प्रवेश की बात सुनकर हिमालय चले गये पर धन्य है परीक्षित को जिन्होंने कलि को सजा दी। कलि पुरुष की बड़ी इच्छा थी कि मैं राजा के शरीर में प्रविष्ट हो जाऊँ। राजा बिगड़ेंगे तो प्रजा बिगड़ेगी ही। जब आचार बिगड़ता है, तब विचार भी बिगड़ता है। आचार-विचार दोनों जब बिगड़ते हैं, तब घर में कलि का प्रवेश होता है। जिसका पानी बिगड़ता है, उसकी वाणी भी बिगड़ती है। जिसमें पानी अपवित्र होगा, उसका वीर्य बिगड़ता है, जीवन बिगड़ता है। अन्न बिगड़ता है, तब मन बिगड़ता है। पवित्र अन्न पेट में जाता है तो मन पवित्र होता है। विज्ञान भी स्पर्श दोष को मानता है। ऋषि सूक्ष्म दृष्टि वाले थे। वे सूक्ष्म शरीर का भी विचार करते थे। जिसका स्थूल शरीर बिगड़ता है, उसका सूक्ष्म शरीर भी बिगड़ता है। जहाँ सदाचार नहीं है, वहाँ बुद्धि में सद्विचार टिकता नहीं है।

परीक्षित राजा का जीवन बहुत पवित्र था। महाभारत के वन-पर्व में कथा है। नल राजा के पीछे कलि है। नल राजा का जीवन बहुत पवित्र था। नल राजा के शरीर में प्रविष्ट होने की हिम्मत कलि में नहीं है। एक बार नल राजा से छोटी सी गलती हुई। रात्रि में दीर्घशंका के बाद हाथ-पैर की शुद्धि तो की, पर ठण्ड बहुत तेज होने के कारण तथा कुछ आलस्य के कारण पैर की एड़ी का भाग ठीक से धुला नहीं था। कलि ने पैर की एड़ी में से प्रवेश किया। दीर्घशंका, लघुशंका के बाद हाथ की, पैरों की, मुख की शुद्धि ठीक से करिये। अधिक नहीं तो पाँच कुल्ले करिये। शुद्धि के भंग से कलेजा बिगड़ता है और तब ही कलि आता है। आचार बिगड़ते हैं तब विचार भी बिगड़ते हैं। मन-बुद्धि गन्दे विचार में फँस जाते हैं, पर संयम रखने से ये बिगड़ते नहीं हैं। कलि वहाँ जा नहीं पाता है। जो हर किसी के हाथ का खाता है, जहाँ मन हो वहाँ जाता है, वह पवित्र जीवन नहीं बिता सकता। मन को मर्यादा पर रखने पर मन बिगड़ता नहीं है। जो धर्म की मर्यादा का भंग करता है, उसका मन अपवित्र हो जाता है। सनातन धर्म की, सदाचार की मर्यादा न छोड़िये।

परीक्षित राजा का जीवन बहुत शुद्ध था। वेरावल से आगे प्राची सरस्वती आती है। वहाँ कलि और परीक्षित की भेंट हुई थी। सौराष्ट्र में दो स्थान ऐसे हैं, जहाँ द्वारिकानाथ रुक्मिणीजी के साथ विराजित हैं। प्राची सरस्वती के तट पर जहाँ, सरस्वती पूर्व वाहिनी हो जाती हैं, वहाँ सभी देव विराजते हैं। काशी में गंगाजी उत्तर वाहिनी हैं। इससे काशी का माहात्म्य अत्यधिक है। गंगाजी उत्तर वाहिनी और सरस्वती में पूर्व वाहिनी की महिमा है। प्राची सरस्वती के तट पर कलि ने परीक्षित राजा का कपट से स्पर्श करने का विचार किया। उसने माया रचायी। बैल के तीन पैर

किसी ने काट डाले हैं। बैल एक ही पैर पर खड़ा है। पास में एक गाय है वह अत्यन्त क्षीणकाय है। कलि गाय और बैल को त्रस्त कर रहा है। परीक्षित राजा को आश्चर्य हुआ–मेरे राज्य में कौन गाय को त्रस्त कर रहा है?

प्राचीन काल में राजा लोग गाय की बहुत देखभाल करते थे। राजाओं को 'गो-ब्राह्मण प्रतिपाल' कहा जाता था। गाय माता घास खाती हैं और दूध देती हैं। समाज में सबसे कम लेकर गाय माता शक्ति देती हैं। ब्राह्मण ज्ञान देते हैं। समाज में अनेक जीव अज्ञान से दुःखी होते हैं। समझदारी में अति सुख है। अज्ञान में अति दुःख है। ब्राह्मण समाज से कम से कम लेकर समाज का अज्ञान दूर करते हैं। ब्राह्मण ज्ञान देते हैं। गाय माता बल देती है शायद आप यह कहना चाहेंगे कि महाराज! गाय ही दूध देती है, ऐसा नहीं है। भैंस भी दूध देती है। आपकी बात सही है, पर भैंस के दूध से चर्बी बढ़ती है। भैंस का दूध जड़ बनाता है। गाय माता का दूध शक्ति देता है, मन को शुद्ध करता है। कुछ लोगों को गाय के पतले दूध से चाय का मजा नहीं आता है। कोई जब गाय का दूध देता है, तब ऐसे व्यक्ति नहीं लेना चाहते और भैंस का दूध लेते हैं। भैंस का दूध पीने से बुद्धि भैंस के बच्चे जैसी हो जाती है। भैंस का बच्चा जड़ बुद्धि वाला होता है। भगवान् आपको सम्पत्ति दें, तब घर में गाय माता रखियेगा। आज कल के श्रीमान् व्यक्ति गायें नहीं रखते। वे अब कुत्ते की सेवा करते हैं। घर में कुत्ते रखते हैं। जो कुत्ते की सेवा करेंगे, उनको दूसरे जन्म में कुत्ते के रूप में जन्म लेने की तैयारी करनी होगी। कुत्ता जब आँगन में आता है तब उसे रोटी का टुकड़ा दीजिए, उसे मारिये नहीं, पर सेवा तो गाय की ही होती है। हमारे सनातन धर्म में गाय के बिना कोई काम कभी नहीं होता, भारत में गाय बहुत पवित्र मानी जाती है। आप कोई भी सत्कर्म करते हैं, तब देह-शुद्धि करनी पड़ेगी। गो-मूत्र में गंगाजी विराजित हैं। गो-मूत्र देह शुद्धि करता है। गाय का गोबर भूमि की शुद्धि करता है। हमारे शास्त्र में लिखा है कि जिस घर का कोई भी भाग गाय के गोबर से नहीं लीपा जाता वह घर अशुद्ध है, अपवित्र है। गाय माता के एक-एक अंग में देवों का निवास है। जो गाय माता को प्रसन्न करता है, वह दोनों को प्रसन्न करता है।

परीक्षित राजा विचार रहे हैं कि मेरे राज्य में गाय कौन त्रस्त कर रहा है। इस बैल के तीन पैर किसी ने काट डाले हैं। भगवान् शंकर नंदिकेश्वर के ऊपर विराज रहे हैं। नन्दिकेश्वर ही धर्मराज हैं। उनकी दृष्टि शिवजी में है। शिवजी के सिर पर गंगाजी हैं। शिवजी ज्ञान-स्वरूप हैं। जो धर्म का आधार रखते हैं, उनकी बुद्धि में ज्ञान स्फुरण पाता है।

धर्म का स्वरूप इस अध्याय में समझाया गया है। सत्य, तप, पवित्रता और दया–इन चारों का समन्वय ही धर्म है। धर्म का प्रथम अंग है सत्य, दूसरा अंग है पवित्रता, तीसरा अंग है तप

और चौथा अंग है दया। जीवन में सुख-दुःख का, मान-अपमान का कैसा भी प्रसंग आ जाय पर धर्म को छोड़िये नहीं। धर्म पतन से बचाता है। धर्म मृत्यु के बाद भी साथ जाता है। धर्म का प्रथम अंग है सत्य। यह सत्य ही परमात्मा है। सत्य द्वारा नर, नारायण बनता है। धर्म का दूसरा अंग है तप। हर रोज थोड़ा तप करिये। दुःख सहन करके जो भक्ति करते हैं, वही तप है। प्रभु आपको बहुत सम्पत्ति देते हैं पर बहुत सुख का उपयोग न करिये। जो बहुत सुख भोगता है उसके तन-मन दोनों बिगड़ते हैं। समझ कर दुःख सहन करना और भक्ति करना ही तप है।

धर्म का तीसरा अंग है पवित्रता। मन को पवित्र रखिये। मरने के बाद मन साथ जाता है। मन को सम्भालिये। धर्म का चौथा अंग है दया। प्रभु ने आपको दिया है तो उदार होकर अन्य को भोजन कराइए और फिर स्वयं खाइये। प्रभु ने नहीं दिया है तो दूसरे की सेवा में अपने तन को लगाइये।

सत्ययुग में धर्म परिपूर्ण था। त्रेतायुग में धर्म का दूसरा पैर और कलियुग में तीसरा पैर भी कट गया। कलियुग में अब सत्य का दर्शन नहीं हो रहा है। तप भी नहीं रहा। पवित्रता भी नहीं रही। कुछ दान दया है जिस पर धर्म टिका है। धर्म एक पैर पर खड़ा है।

तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्तिताः।
अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसंगमदैस्तव॥ (१-१७-२४)

परीक्षित को आश्चर्य हुआ। उन्होंने धर्म-रूपी बैल से पूछा—तुम्हारे तीन पैर किसने काट डाले? मैं उसको सजा दूँगा। बैल ने कहा—राजन्! कौन दुःख दे रहा है, इसका निर्णय अभी तक ठीक से नहीं हो रहा है। कई लोग मानते हैं कि काल सुख-दुःख देता है। बारह वर्ष के बाद जीवन में कुछ परिवर्तन आता ही है। काल किसी को भी एक स्थिति में, एक ही स्वरूप में, एक ही स्थान पर रहने नहीं देता है। काल के कारण सुखी लोग दुःखी होते हैं, और दुःखी लोग सुखी होते हैं। कई लोग ऐसा मानते हैं कि काल से नहीं पर कर्म से जीव सुखी-दुःखी रहता है। कई लोगों की ऐसी मान्यता है कि कोई काल नहीं, कोई कर्म नहीं, बल्कि सुख-दुःख का कारण स्वभाव है। जिसका स्वभाव ठण्डा है, वह जहाँ जाता है, वहाँ ठण्डक हो पाती है परन्तु स्वभाव जिसका तेज है, वह जहाँ जाता है, (भले ही चारों ओर पंखे चल रहे हों) वहां उसके हृदय में होली ही जलती रहती है। उसे जरा भी चैन नहीं मिलता। जिसके भीतर शांति होती है, जिसका स्वभाव सरल होता है, वह जहाँ जाता है उसे शाँन्ति ही मिलती है। कई लोग ऐसे होते हैं कि उनकी इच्छा के अनुसार खाना न बन सका हो तो वे जलते-कुढ़ते रहते हैं। नमक कम पड़ रहा है, दाल ठंडी हो गई है। अरे! दाल ठंडी हो गई है तो तुम भी ठंडे होकर राम, राम करके खा लो उसे! क्या हर्ज

है? हर रोज तो गर्म-गर्म दाल खाते हो। आज एक दिन ठंडी दाल खा लो। जिसका स्वभाव ही अशान्त है, गर्म है, उसे सब कहीं अशांति ही मिलती है।

काल, कर्म और स्वभाव सुख-दुःख के कारण हैं, ऐसा लोग मानते हैं। कौन सुख देता है, कौन दुःख देता है, इसका निर्णय अभी तक नहीं हो सका है। आप ही सोचिये। पापी के सम्मुख उँगली के निर्देश से भी पाप लगता है। पापी के स्मरण से भी मन में पाप आता है। धर्म-रूपी बैल बोलने में बहुत चतुर है। परीक्षित को आश्चर्य हुआ-यह कैसा बोल रहा है? यह कोई ज्ञानी है। गाय को, बैल को त्रस्त करता है। कलि ही। कलि को मैं मारूँगा। राजा कलि को मारने जाते हैं। कलि ने परीक्षित की बहुत स्तुति की। ध्यान रखिये! आपकी स्तुति हो रही हो, वहाँ खड़े न रहिये। मानव विवेक रखता है, तब निंदा सहन कर सकता है, पर स्तुति का सहन करना बहुत कठिन है कलि-पुरुष ने परीक्षित के पैर का स्पर्श किया और कहा मैं आपकी शरण में आया हूँ, मुझे न मारिये। वीर पुरुष शरणागत को कभी नहीं मारते।

राजा का कलि से स्पर्श हुआ। परीक्षित ने तलवार म्यान में कर ली। उनकी बुद्धि थोड़ी-सी खराब हुई। अति पापी तथा अति कामी के स्पर्श से भी पाप के परमाणु शरीर में आते हैं। बिना किसी कारण किसी को स्पर्श नहीं करना चाहिए। स्पर्श से अनेक दोष आते हैं। कैकेयी की रामजी के प्रति बहुत प्रीत थी। मंथरा के स्पर्श से कैकेयी की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। परीक्षित राजा ने कलि को मारने के लिए तलवार हाथ में उठायी ही थी, पर कलि का स्पर्श हुआ और राजा सोचने लगा-अब मैं कलि को नहीं मारूँगा। पापी को मारना राजा का धर्म है। पापी को सजा मिलनी ही चाहिए परन्तु आज राजा को दया आ गयी। उन्होंने कलि से कहा-मैं तुम्हें मारता नहीं हूँ, पर मेरे राज्य में तुम नहीं रह सकोगे। कलि ने कहा-मैं कहाँ जाऊँ? जहाँ जाता हूँ, आपका ही राज्य है। मैं आपकी शरण में आया हूँ। मुझे अपने राज्य में रहने की जगह दीजिए। परीक्षित ने राज्य में रहने के लिए कलि को जगह दी-

अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ।
द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः॥ (१-१७-३८)

जिस घर में जुए का धन आता हो, वहाँ तुम रहोगे। जुए के धन में कलि का निवास है। सट्टा जीवन को कलंकित करता है। कई लोग साधुओं से पूछने जाते हैं-महराज! आप कोई अंक बताइये? मैं मिलने पर धन धर्म में खर्च करूँगा। सट्टे का अंक साधु बतलाता है तो साधु को पाप लगता है।

जिस घर में जानबूझ कर जीव की हिंसा होती है, वहाँ कलि का आगमन होता है। अनजान में जीव की हिंसा होती है, तब प्रभु क्षमा कर देते हैं। मच्छर और खटमल को भी जानबूझ कर मारने से घर में कलि का प्रवेश हो जाता है। किसी भी जीव की हिंसा न करिये। हिंसा, प्रतिहिंसा को जन्म देती है। आप के शरीर में जो चैतन्यरूप नारायण हैं, उन्हीं की सत्ता मच्छर खटमल में भी है। आप उनको मारेंगे तो अगले जन्म में वह आपको मारने आयेंगे।

जहाँ वैश्याएँ रहती हैं वहाँ कलि का निवास है, वहाँ मांस-मदिरा का सेवन होता है, वहाँ भी कलि आता है। आप सब बैष्णव हैं, प्रभु के प्यारे हैं। प्रभु जो कुछ स्वीकार करते हैं, इसी को प्रसादी के रूप में ग्रहण करिये। प्रभु कोई पान-सुपारी अर्पण करता है तो प्रभु स्वीकार लेते हैं पर प्रभु को कोई तम्बाकू अर्पण करता है तो प्रभु उसे नहीं स्वीकारते हैं। तम्बाकू खाने, पीने और सूँघने से पाप लगता है क्योंकि इस में कलि का वास है। तम्बाकू तन और मन विकृत कर देता है। प्रभु जिस वस्तु को स्वीकार नहीं करते हैं, उसे न लीजिए। उसमें कलि का निवास होता है।

राजा ने कलि को चार स्थान दिये, परन्तु कलि को संतोष नहीं हुआ। कलि पुरुष ने कहा-ये तो गंदी जगह हैं। मुझे किसी सुन्दर जगह में निवास दीजिए। परीक्षित राजा ने कहा-आज से सुवर्ण में तेरा निवास होगा। कलि को सुवर्ण में रहने की उन्होंने आज्ञा दी। सुवर्ण में कलि, अर्थात् चाँदी में नहीं! अरे, जिस घर में पापसे धन आता है, उस घर में कलि का निवास है। अधर्म की लक्ष्मी में कलि का निवास है। कलि-पुरुष खुश हो गया। उसने सोचा कि राजा के घर अन्याय का धन तो आता ही रहता है। अब मैं कभी किसी दिन परीक्षित की बुद्धि भ्रष्ट कर सकूँगा। कलि अदृश्य हो गया। परीक्षित ने धर्म के तीन पैर जोड़ दिये। प्रजा को धर्म का शिक्षण दिया। धन से भी धर्म की महत्ता जब अधिक मानी जाती है, तब जीवन सुधर जाता है। अब जीवन में धन को प्रमुख स्थान मिला है, इसी से पाप बढ़ा है।

एक दिन परीक्षित ने सोचा कि मेरे पूर्वजों ने मेरे लिए क्या रखा है, यह तो मैंने देखा ही नहीं है। इस विचार से वह पूर्वजों की संपत्ति देखने गया। एक पेटी में से सुंदर सुवर्ण का मुकुट मिला। राजा को वह बहुत पसंद आया। राजा ने कुछ सोचा विचारा नहीं और मुकुट सिर पर रख लिया। यह जरासंध का मुकुट था। यह पाप का धन था। भीमसेन इस मुकुट को ले आये थे। धर्म की गति अति सूक्ष्म है। जरासंध का मुकुट मैं पहिनूँगा तो उसके विचार मेरे दिमाग में आयेंगे-ऐसा सोचकर धर्मराज ने उस मुकुट को कभी नहीं पहिना था। परीक्षित ने मुकुट की सुन्दरता से आकर्षित होकर, बिना सोचे समझे इसे अपने सिर पर रखा। कलि-पुरुष ने तुरन्त राजा में प्रवेश कर लिया। मुकुट सिर पर रखने के साथ ही परीक्षित की शिकार खेलने की इच्छा होने

लगी। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि किसी भी वस्तु के उपयोग से पहिले विचारिये कि वह शुद्ध है कि अशुद्ध है? प्रत्येक वस्तु में तीन दोष जाते हैं–काल दोष, कर्त्ता-दोष और निमित्त दोष। यह भी निश्चित है कि अपवित्र समय पर कोई वस्तु आती है तो कालदोष लगता है। शास्त्रों में तो कहा है कि किसी की शय्या में सोना नहीं चाहिए। अन्य की शय्या में सोने का अवसर आ जाय तो आप अपना पवित्र वस्त्र बिछाकर, प्रभु के नाम की पाँच मालाओं का जप करके सोइये। शय्या जब पवित्र हो जाय, तब प्रभु के नाम-स्मरण के साथ सो जाइए। शय्या में किसी ने पाप किया होगा, तो पाप के परमाणु आप में प्रविष्ट हो जायेंगे। उस समय मन न भी बिगड़े तो बाद में मन बिगड़ सकता है। इससे शय्या की शुद्धि के बाद शय्या में सोइये।

एकदा धनुरुद्यम्य विचरन् मृगयां वने।
मृगाननुगतः श्रान्तः क्षुधितस्तृषितो भृशम्।। (१-१८-२४)

परीक्षित राजा ने वन में जाकर शिकार किया। पशु-पक्षी की हिंसा की। कलि का पैर ताकतवर बना। मध्याह्न काल में राजा को भूख लगी। प्यास लगी। मध्याह्नकाल और मध्यरात्रि से सावधान रहिए। मध्याह्नकाल अर्थात् यौवनकाल। राजा घूमते-घूमते श्रमिक ऋषि के आश्रम में आ पहुँचे। श्रमिक ऋषि आदि नारायण का ध्यान कर रहे थे। ध्यान में तन्मय हो गए थे। समाधि लग गयी थी। राजा ने कहा–मैं हस्तिनापुर का राजा हूँ। मुझे भूख लगी है, प्यास लगी है। श्रमिक ऋषि ने सुना नहीं। आज राजा की बुद्धि में, मस्तिष्क में कलि का प्रवेश हो गया था। सिर पर जरासंध का मुकुट था। पाप से धन कमाने वाले की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। घर में बालकों की बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है। धन विष है। धन से मृत्यु आती है। धन से पतन होता है। धन अमृत भी है। धन परमात्मा के चरणों तक ले जाता है। धन कल्याणकारी भी है। धन किस तरह प्राप्त किया गया है और धन का उपयोग किस तरह हो रहा है, उसी पर सब कुछ निर्भर करता है। जरासंध का धन अन्याय का था। वही धन पांडवों के घर आया था। इससे आज परीक्षित की बुद्धि भ्रष्ट हुई थी। उसे विचार आया कि इस ब्राह्मण को परमात्मा का ध्यान छोड़कर मेरा स्वागत करना चाहिए। यह तो ढोंग कर रहा है। राजा का श्रमिक ऋषि की परीक्षा लेने का मन हुआ। उसी समय एक साँप पास से गुजर रहा था। राजा ने उसे बाण से मारा। उस मरे साँप को धनुष से उठाकर राजा ने श्रमिक ऋषि के कंठ में पहिना दिया। ब्राह्मण के गले में पुष्पों की माला पहिनाते थे। आज बुद्धि भ्रष्ट हुई इससे मृत साँप पहिना दिया। रोज ब्राह्मण की पूजा करने वाले राजा आज ब्राह्मण का अपमान करते हैं। बुद्धि भ्रष्ट हो, तब समझना कि अब कोई विपत्ति आने वाली है। किसी के प्रति प्रंपच करने; किसी के प्रति छल-कपट करने की इच्छा हो तो समझना कि अब मेरे लिए बुरा समय

आया है। जो दूसरों के प्रति प्रपंच करता है, वह परमात्मा के प्रति प्रपंच करता है। जो दूसरों के प्रति छल-कपट करता है, वह परमात्मा के प्रति छल-कपट करता है। श्रमिक ऋषि के गले में मृत सर्प है, इससे यही सिद्ध होता है कि ऋषि ने काल पर विजय प्राप्त की है। काल के काल हैं भगवान् नारायण। परमात्मा के ध्यान में जिन्हें अपनी देह का ध्यान नहीं रहता है, जो समाधि में स्थिर है, उसने काल पर विजय प्राप्त की है। मृत सर्प श्रमिक ऋषि के गले में है, पर जीवित सर्प परीक्षित के गले में जायगा।

राजा को विश्वास हो गया कि ऋषि की समाधि-अवस्था सच्ची है। कभी भी किसी साधु-संत की परीक्षा लेनी नहीं चाहिए। संत में श्रद्धा न हो तो उन्हें दूर से वंदन करिये, जय श्रीकृष्ण कहिये। हाथ में थोड़ी-सी अग्नि होती है तो हाथ भी जलेगा। परीक्षित परीक्षा लेने गये। बाद में घर जाकर मन को मना लिया कि मैं तो राजा हूँ, कुछ भी करने का अधिकारी हूँ। ब्राह्मण का अपमान करके राजा अपने घर गये। श्रमिक ऋषि के पुत्र शृंगी को मालूम हुआ। उसे दुःख हुआ। मेरे पिताजी का अपमान किया गया? जिस राजा ने मेरे पिता के गले में मृत सर्प डाला है, आज से सातवें दिन उसके गले में जिन्दा तक्षक सर्प जायगा और उसे डँसेगा। शृंगी ने शाप दिया। परीक्षित ने घर जाकर जैसे ही मस्तक से मुकुट उतारा कि उनकी बुद्धि स्वच्छ होने लगी, पवित्र होने लगी। कलि का असर दूर हुआ। आवेश शमित हुआ। राजा भान में आ गये। उन्हें पश्चात्ताप होने लगा। सोचने लगे कि मैंने बड़ी भूल की। परमात्मा के ध्यान में मग्न ब्राह्मण का मैंने अपमान किया। मैंने पाप-कर्म किया।

परीक्षित राजा ने जीवन में एक ही बार पाप किया है। पर धन्य है कि राजा को कि पाप करने पर उन्होंने प्रायश्चित्त-स्वरूप पानी भी नहीं पिया है। राजा नें सुना कि सात दिनों के बाद तक्षक नाग का दंश होने वाला है। राजा सावधान हो गये। उनकी आँखें खुल गयीं। प्रभु ने मुझे सजा दी है, पर उचित ही है। प्रभु की कृपा ही है कि उन्होंने मुझे सात दिनों का समय दिया है। ऋषि कुमार ने मुझे सात दिनों तक भक्ति करने का समय दिया है। यह तो वरदान है। ऐसा शाप नहीं दिया कि आज ही मृत्यु हो जाय। राजा ने संतोष माना।

जिस दिन पाप हो जाय, उस दिन उपवास करिये। उपवास का अर्थ हलवा खाना नहीं है। उपवास का अर्थ है निराहार रहना। राजा ने विचार किया कि पापी को खाने का क्या अधिकार? धर्म के लिए धरती अनाज उत्पन्न करती है, धर्म के लिए मेघ बरसते हैं। अधर्मी पापी को अन्न-जल का क्या अधिकार? परीक्षित राजा ने अन्न, जल और घर का त्याग किया। गंगातट पर वे आ गये। गंगा-तट पर मरण सुधर जाता है।

या वै लसच्छ्रीतुसलीविमिश्र कृष्णांघ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री।
पुनाति लोकानुभयत्र सेशान् कस्तां न सेवेते मरिष्यमाणः।।

(१-१९-६)

गंगा को वंदन करके परीक्षित ने गंगा में स्नान किया। गंगातट पर दर्भासन बिछाकर वे बैठ गये। बड़े-बड़े ऋषियों को समाचार मिला। वे सभी आमंत्रण की परवाह किये बिना वहाँ पधारे–

अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वानरिष्टनेमिर्भृगुरंगिराश्च।
पराशरो गाधिसुतोऽथ राम उतथ्य इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ।।

(१-१९-९)

परीक्षित अब राजा नहीं ऋषि तुल्य हो गये हैं। विलासी जीवन की समाप्ति हो गयी है। पवित्र जीवन का प्रारंभ हुआ है। ऋषि से मिलने ऋषि जाते हैं। अत्रि ऋषि वहाँ पधारे हैं। वे गुरुदत्तात्रेय के पिता हैं। महान ज्ञानी है, तपस्वी और वयोवृद्ध हैं। रामचंद्रजी को तत्त्वज्ञान का उपदेश देने वाले गुरु वसिष्ठ भी वहाँ आये हैं। इन ऋषियों के स्मरण मात्र से मन पवित्र हो जाता है। परीक्षित आज संतों को वंदन करते हैं। वे संत-समाज में अपना पाप प्रकट करते हैं। हृदय से पश्चात्ताप कर रहे हैं। जो पाप को छिपाते हैं, पाप उनके मन में घर कर लेता है। जो पाप को छिपाते हैं, वे पुनः वही पाप करते हैं। आप अपने पाप को नष्ट करना चाहते हैं तो पाप को छिपाइये नहीं। पाप प्रकट कर दीजिए। जिस दिन पाप हो जाय, उसी दिन-चार साधु-संतों को बुलाकर कह दीजिए कि आज मैंने यह पाप किया है। पाप प्रकट करने से पाप-वृत्ति छूट जाती है, परीक्षित राजा ने जीवन में एक ही बार पाप किया और अपने पाप को प्रकट कर दिया। उन्होंने सोचा कि मुझे शाप मिला है, मैं सातवें दिन मरने वाला हूँ। मैंने जीवन में मृत्यु की तैयारी नहीं की है, इससे मुझे घबराहट होती है। ऋषियों से उन्होंने प्रार्थना की कि मेरे मरण को सुधारिये। मेरा मरण मंगलमय हो, मुझे परमात्मा के दर्शन हों, ऐसा उपदेश दीजिए। यहाँ सुवर्ण-सिंहासन रखा है, उस पर विराजिये और मुझे उपदेश दीजिए।

बड़े-बड़े ऋषि पधारे हैं पर बोलने का साहस किसी का नहीं है। सात दिनों में मुक्ति कैसे हो सकती है? परीक्षित घबरा गये, सोचने लगे कि मुझे यमदूत मारते-मारते ले जायेंगे, अब मेरा क्या होगा? सातवें दिन मैं मरने वाला हूँ। परीक्षित अब परमात्मा की शरण में गये। जिन प्रभु ने मेरा जन्म सुधारा है, वे ही मेरी मृत्यु भी सुधारेंगे। भीति बिन प्रीति नहीं–काल की भीति रखिये। काल के काल, परमात्मा से प्रेम कीजिये। परीक्षित ने प्रभु से कहा–आपके लाड़ले पांडव-कुल का मैं हूँ, मैं योग्य नहीं हूँ पर आपकी शरण में आया हूँ। नाथ! कृपा करिये। वे प्रेम से परमात्मा को प्रसन्न कर रहे हैं–

हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम! हरे राम! राम राम हरे हरे॥

श्रीकृष्ण-कीर्तन करते-करते परमात्मा को वे मनाते हैं। परीक्षित का आर्तनाद प्रभु के कानों में जाता है। परमात्मा को दया आ गयी। शुकदेवजी गंगा-तट पर विचरण कर रहे थे। प्रभु ने शुकदेवजी महाराज को प्रेरणा दी—सेवक लायक है, आप वहाँ पधारिये।

तत्राभवद् भगवान् व्यासपुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः। (१-१९-२५)

चारों ओर प्रकाश छा गया। ऋषियों को आश्चर्य हुआ। सोचने लगे कि सूर्य-नारायण कहीं धरती पर तो नहीं आ गये। नहीं, नहीं यह कोई महान् परमहंस पधारे हैं। कमर पर डोरी तक नहीं है तो लँगोट कहाँ से होगा? नग्न दिगम्बर हैं। वासना समाप्त हो गई है। पूर्ण निर्वसन हैं। उनके मस्तक पर बाल बिखरे हैं। हाथ घुटनों तक पहुँच रहे हैं। दृष्टि नाक के अग्र भाग पर स्थिर है। देह-भान नहीं है तो जगत् का भान कहाँ से होगा? श्रीकृष्ण के ध्यान में रहने से शरीर प्रभु के श्रीअंग जैसा श्याम हो गया है। छोटे-छोटे बच्चे उनके पीछे भाग रहे हैं यह सोचकर कि यह कोई नंगा जा रहा है। कोई रेत-पत्थर भी फेंक रहा है। परमात्मा के ध्यान में जो देह-भान भूलता है, प्रभु उनके पीछे-पीछे जाते हैं। एक ऋषि ने उनको पहिचान लिया है। अरे! ये तो भगवान् शंकर के अवतार हैं। शुकदेवजी महाराज पधारे हैं। इनकी तो बहुत महिमा सुनी थी। आज प्रत्यक्ष दर्शन हुए—सब ऋषि बातें करने लगे। शुकदेवजी ने सभा के मध्य में चरण रखे। सब ऋषि खड़े हो गये। सब उनको सम्मान देने लगे। कौन मान दे रहा है, कौन सम्मान दे रहा है, किसी का उनको ध्यान नहीं है। कहाँ बैठना चाहिए इस बात से भी बेखबर हैं वे! एक ही सिंहासन खाली था। परमात्मा की प्रेरणा से वे सिंहासन पर विराजमान हुए। ऋषियों ने जय-जयकार किया। जय-जयकार की आवाज राजा के कानों में गयी। राजा ने आँखें खोलीं। शुकदेवजी महाराज के दर्शन हुए। राजा को अति आनन्द हुआ। राजा ने शुकदेवजी महाराज की पूजा की। शुकदेवजी के समक्ष अपने पापों को उन्होंने स्वीकार किया और कहा—मैं आपकी शरण में आया हूँ।

प्रसन्न शुकदेवजी महाराज ने राजा के मस्तक पर वरदहस्त रखा। उसी समय राजा को तेजोमय चतुर्भुज श्रीकृष्ण के दर्शन हुए। ब्रह्मनिष्ठ सन्त पुरुष जिसको स्पर्श करते हैं, उसको प्रभु का साक्षात्कार होता है। मन्त्र दीक्षा से स्पर्श दीक्षा श्रेष्ठ है। शुकदेवजी ने कहा—राजा! क्यों परेशान हो? अभी सात दिन तुम्हारे पास हैं। मैं तुम्हें लेने नहीं आया हूँ, मैं तो तुम्हें प्रभु का ध्यान दिलाने आया हूँ। जिन्हें आत्म-स्वरूप परमात्मा का अनुभव होता, वे निरपेक्ष हो जाते हैं—

एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा।
प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान् बादरायणिः॥

(१-१९-४०)

भगवान् बादरायणि के स्थान पर 'शुकदेवजी' शब्द लिखा होता तो? भागवत में एक भी शब्द व्यर्थ नहीं लिखा है। शुकदेवजी का परिपूर्ण वैराग्य दिखाने के लिए यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। बादरम् अयनम् यस्य सः बादरायणः-व्यास महर्षि बेर खाकर जीवन निर्वाह करते हैं, इससे उनको बादरायण कहते हैं। व्यासजी सारा दिन जप-तप करते और जब भूख लगती, तब चौबीस घण्टों में एक बार सिर्फ बेर ही खाते थे। बेर पर निर्भर रहने के कारण उनका नाम हुआ बादरायण। व्यासजी का ऐसा वैराग्य था परन्तु शुकदेवजी को तो बेर याद तक नहीं आते। व्यासजी वस्त्र पहिनते थे। शुकदेवजी के पास कोई आवरण तक नहीं था। शुकदेवजी व्यासजी के पुत्र थे, इससे उनके लिए शब्द प्रयोग हुआ बादरायणि। शुकदेवजी कहने लगे-राजन्! परेशान न होइए। मेरे नारायण का स्मरण करिये। आपका जीवन सुधरेगा। जो समय व्यतीत हो गया, उसका विचार न करिये। वर्तमान को सुधारिये। जो वर्तमान को सुधारते हैं, उनका भविष्य मंगलमय होता है। प्रतिक्षण का सदुपयोग करिये।

राजा को विश्वास हो गया कि ये मेरी मृत्यु को सुधारने आये हैं। मेरे सदृश कामी विलासी के घर ऐसे सन्त नहीं आते पर ये परमात्मा की प्रेरणा से आये हैं। मैं जब माँ के पेट में था, तब अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र छोड़ा था। परमात्मा ने मेरा उसी समय रक्षण किया था। मेरा जन्म उन्होंने सुधारा। अब मेरे मरण को सुधारने के लिए प्रभु ने शुकदेवजी महाराज को भेजा है। परमात्मा की प्रेरणा से ही ये सन्त पधारे हैं।

राजा ने दो प्रमुख प्रश्न श्रीशुकदेवजी से पूछे-मानव मात्र का कल्याण हो, सबका श्रेय हो, ऐसा कोई रास्ता दिखलाइये। जिसकी मृत्यु नजदीक हो, वह क्या करे और क्या न करे, यह भी समझाइए।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कंधे शुकागमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः

इति प्रथमः स्कंधः समाप्तः

हरि ॐ तत्सत

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

द्वितीय स्कंध

१५–जगद्गुरु–परमात्मा

श्रीशुक उवाचः-

वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितो नृप।
आत्मवित्सम्मतः पुँसां श्रोतव्यादिषु यः परः॥
श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्तिः सहस्त्रशः।
अपश्यतामात्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम्॥ (२-१-१/२)

परमात्मा श्रीकृष्ण जगद्गुरु हैं। परमात्मा सद्गुरु-रूप धारण करके अधिकारी जीवात्मा से मिलने आते हैं। सद्गुरु-तत्त्व और ईश्वर-तत्व एक ही हैं। परमात्मा जिस तरह सर्वव्यापक हैं, उसी तरह सद्गुरुदेव भी सर्वव्यापक हैं। सर्वव्यापकता की अनुभूति के लिए योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। सूर्यनारायण का प्रकाश सर्वत्र है। उल्लू की आँख बिगड़ी हुई है, इससे उसे सूर्य के प्रकाश में अंधकार दिखता है। यह उल्लू की आँख का दोष है। सद्गुरुदेव सर्वकाल, सर्वत्र, विराजमान हैं। संत अमर हैं। काल के काल सदृश, परमात्मा से प्रेम करने वाले साधु-संतों को काल नहीं मार सकता। भगवान् श्रीशंकराचार्य, स्वामी श्रीवल्लभाचार्यजी आज भी विराजमान हैं। संतों का पांच भौतिक शरीर आज नहीं दिखाई देता, पर उनका आध्यात्मिक-आधि-भौतिक शरीर आज भी वर्तमान है। कई संत वायुमंडल में घूम रहे हैं। तुकाराम महाराज को अपने जीवनकाल से दो सौ वर्ष पहिले के संत के दर्शन स्वप्न में हुए। गुरु ने उनको मंत्र भी दिया था। जितने संत हो गये, सब विराजमान हैं। जब हम योग्यता प्राप्त करेंगे, परमात्मा उनके दर्शन करायेंगे। जिसे परमात्मा के दर्शन की इच्छा व आतुरता है, जो जन्म-मरण के संत्रास से मुक्त होना चाहता है, प्रभु उसे सद्गुरु का मिलन करा ही देते हैं। सद्गुरु, सद्-शिष्य को खोजते ही हैं। अधिकार सिद्ध होने के बाद सद्शिष्य के पास परमात्मा ही सद्गुरु के रूप में मिलने जाते हैं। सद्गुरुदेव की उपदेश देने की तीव्र इच्छा भी है पर योग्य शिष्य को ही उपदेश देना चाहिए। जगत् में सद्गुरु का अभाव नहीं

है पर सद्शिष्य दुर्लभ है। इस जीव को परमात्मा के दर्शन की इच्छा ही नहीं है। उसे संसार ही मधुर लगता है। वह संसार को सुख-रूप समझकर संसार में ही फँसा रहता है। उसे परमात्मा के दर्शन की उत्कंठा ही नहीं है, भूख ही नहीं है। जिसे भूख लगती है, परमात्मा उसे थोड़ा भी देते हैं। जिसे प्रभु के दर्शन की भूख है, उसे सद्गुरु मिलते ही है।

सूतजी सावधान करते हैं। परीक्षित महाराज राजमहल में विलासी जीवन व्यतीत कर रहे थे तब शुकदेवजी नहीं पधारे। राजा ने सुना कि सातवें दिन मैं मरने वाला हूँ, उसी क्षण से उसके विलासी जीवन की समाप्ति हो गयी। राजा का पवित्र जीवन शुरू हुआ। सब कुछ छोड़कर परमात्मा के लिए वे गंगा-तट पर जा बैठे हैं। जब बिना निमंत्रण पाये शुकदेवजी वहाँ पधारे हैं। जिन्हें लँगोटे तक की जरूरत नहीं है, जो आँख उठाकर किसी की ओर देखते तक नहीं ऐसे संत को—शुकदेवजी को—कौन निमंत्रण दे सकता है? शुकदेवजी महाराज तो बिना निमंत्रण पाये चले आये हैं, परमात्मा की प्रेरणा से आये हैं। जब जीव योग्य बनता है, सद्-शिष्य बनता है, तब परमात्मा उसे सद्गुरु के दर्शन करवाते हैं। जिसे परमात्मा से मिलने की तीव्र इच्छा है, उसे संत मिलते ही हैं। जिसे संसार मीठा लगता है, उसे संत के दर्शन नहीं होते हैं—और संत का मिलन हो तो भी उसके मन में संत के प्रति सद्भाव नहीं जागता है। राजमहल में विलासी जीवन व्यतीत करते समय कदाचित् शुकदेवजी महाराज पधारे होते और उन्होंने राजा से कहा होता, कि राजा, मैं कथा करने आया हूँ—तो राजा ने हाथ जोड़कर कहा होता कि महाराज! आप भले ही पधारे, पर अभी कथा सुनने की मुझे फुरसत नहीं है।

माया मनुष्य को दो तरह से मारती है। घर में सब तरह की अनुकूलता होती है, तब माया भक्ति नहीं करने देती है। तब मनुष्य की अधिक इकट्ठा करने की इच्छा होती है जिसका धंधा अच्छा चलता है, उसे भक्ति करने का समय नहीं मिलता है। जिसे घर में अनुकूलता मिलती है, वह भक्ति नहीं करता है। वह तो अधिक सुख भोगता है। घर में प्रतिकूलता रहने पर मनुष्य पीड़ित होता है। धंधे में नुकसान हो और कोई कहे कि आप परमात्मा की भक्ति करिये, तब वह कहता है कि मेरा मन अशांत हो गया है। इस प्रकार सब तरह की अनुकूलता मिलने पर वासना बढ़ती है, लोभ बढ़ता है और जीव अधिक सुख भोगता है तथा प्रतिकूल परिस्थिति में मानव, 'हाय-हाय' करता है। इस तरह माया जीव को दोनों तरह मारती है—प्रतिकूलता में भी और अनुकूलता में भी। जीव को वह शांति से भक्ति करने नहीं देती है। किसी से आप कहें कि आप कथा सुनने चलिये तो वह कहेगा कि इस ऋतु में इन लोगों ने कथा क्यों रखी है? यह तो हमारे कमाने की ऋतु है। गर्मी के दिनों में कथा रखी होती तो अच्छा था। मानव की ऐसी ही प्रकृति

है, उसका यह स्वभाव है। इसे जो कुछ मिला है, वह उसे पसन्द नहीं आता और जो नहीं मिला है वह उसे पसंद है। मनुष्य को अपनी प्राप्त परिस्थिति से संतोष नहीं है, अतः वह शांति से भक्ति नहीं कर सकता है।

राजा ने जब सुना कि मैं सातवें दिन मरने वाला हूँ तब उसकी आँखें खुल गयीं। सावधान हो गये। इससे वे सब-कुछ छोड़कर गंगा-तट पर जाकर बैठ गये और बिना निमंत्रण पाये, गुरु के रूप में उन्हें शुकदेवजी-जैसे सद्‌गुरु मिल गये।

भगवान् से भी सद्‌गुरु श्रेष्ठ हैं, ऐसा कहने से भगवान् को बुरा नहीं लगता। संतों की प्रशंसा सुनकर भगवान् अत्यंत खुश होते हैं। परमात्मा ने इस संसार की रचना ही ऐसी की है कि प्राय सब का मन संसार में फँसा रहता है। संसार की रचना ऐसी है तथा संसार के विषयों में माया ने ऐसा आकर्षण भर दिया है कि संसार जीव को मीठा लगता है, सुन्दर लगता है। नव-युवकों को नखों में, बालों में, सौंदर्य दीखता है। वे सोचते हैं-बाल बहुत सुन्दर हैं। अरे! बालों में क्या सौंदर्य? नख और बाल तो शरीर का मैल है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि भोजन करते हुए अन्न में बाल आ जाय तो अन्न नहीं खाना चाहिए। बाल के स्पर्श से भोजन अशुद्ध हो जाता है। माया, मानव को मोह-ग्रस्त करके ऐसा समझा देती हे कि नखों में और बालों में सौंदर्य है। वह पुरुष के मन में व आँखों में ऐसा मोह जाग्रत कर देती है कि उसे स्त्री के शरीर में सौंदर्य दिखाई देता है। स्त्री की आँख और मन में भी ऐसा मोह जागता है कि उसे पुरुष के शरीर में सौंदर्य दिखाई देता है, परन्तु सुन्दर तो परमात्मा श्रीकृष्ण ही हैं।

शांत मन से ध्यान करेंगे तो इस शरीर में क्या अच्छा है? आँखों से, कानों से, मुख में से मल ही तो निकलता है। दुर्गन्ध-भरा यह शरीर है! फिर भी मानव यह समझता है कि यह शरीर बहुत सुन्दर है। प्रभु ने मानव में ऐसा मोह न रखा होता तो सब भगवान् की भक्ति करते होते। प्रभु ने ऐसा मोह-तत्त्व क्यों बनाया है? यही समझ में नहीं आता है। प्रभु ऐसा सोच रहे होंगे कि सब भक्ति करेंगे तो मेरे बैकुण्ठ में भीड़ हो जायगी। सब बैकुण्ठ में न आ सकें और संसार में फँसे रहें-इसीलिये शायद प्रभु ने मानव में ऐसा मोह रखा होगा। जीव संसार में फँसा रहता है। उसे संसार मीठा लगता है, सरस लगता है और उसकी परमात्मा के दर्शन की इच्छा ही नहीं होती है। प्रभु ने जीव को संसार में फँसा कर रखा है।

सद्‌गुरु सद्शिष्य को समझाते हैं-अरे! बहुत सुन्दर नहीं है पर संसार जिसने बनाया है, वही बहुत सुन्दर है। माया ने तुम्हें मोहित कर रखा है। तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट कर दी गयी है, इससे तुम्हें संसार में सौंदर्य दिखाई देता है। संसार एक बगीचा है। लोग इस बगीचे को देखते हैं। जब बगीचा

इतना सुन्दर है तब बगीचे को बनाने वाला कितना सुन्दर होना चाहिए, कारण कि गुण कार्य में आते ही हैं। संसार कार्य है, परमात्मा कारण हैं। परमात्मा अत्यन्त सुन्दर हैं।

प्रभु ने संसार के विषयों में ऐसा आकर्षण भरा है कि संसार रुलाता है, त्रस्त करता है फिर भी वह मीठा ही लगता है। मानव के मन में से मोह जाता ही नहीं है। सद्गुरु सद्शिष्य के मोह को निकालता है। सद्गुरु सद्शिष्य को प्रभु की ओर ले जाते हैं। परमात्मा जीव को संसार में फँसा कर रखते हैं। सद्गुरुदेव जीव को प्रभु की ओर ले जाते हैं। हम स्वयं सोचें कि सद्गुरु श्रेष्ठ हैं कि परमात्मा श्रेष्ठ हैं?

गुरुदेव ब्रह्मा जी का स्वरूप है। जिन्हें सद्गुरु मिले हैं, उन्हें नया जन्म ही मिला है। माता-पिता द्वारा प्राप्त जो जन्म मिलता है, उसे इतना पवित्र नहीं माना गया है। सद्गुरु जब दीक्षा देते हैं तब नया जन्म मिलता है। दीक्षा से मानव में मानवता आ जाती है परन्तु जब सद्गुरु दीक्षा देते हैं, तब मानव देव बन जाता है। दीक्षा नया जन्म है। सद्गुरु सद्शिष्य को नया जन्म देते हैं। जिसे सन्त का मिलन नहीं हुआ है, जो परमात्मा के लिए साधना नहीं करता है, वह मानव पशु-सदृश है। संसार का व्यवहार तो पशु पक्षी भी करते हैं। पक्षी घोंसला बनाता है। तब फिर मानव की विशेषता क्या है? सन्त ऐसा वर्णन करते हैं कि जो भगवान् की भक्ति नहीं करता है, परमात्मा के लिए साधना नहीं करता है, वह पशु से भी तुच्छ है। कुत्ते को जिस घर से रोटी का टुकड़ा मिलता है, वह उस घर की रात भर रखवाली करता है। घर के मालिक की सेवा करता है। कुत्ता बहुत देखभाल करता है। जिसका खाता है, उसकी चाकरी करता है। जिस प्रभु ने यह शरीर दिया है, आँख दी है, मानव को सुखी बनाने के लिए संसार की रचना की है, अन्न उत्पन्न किया है, मानव उस परमात्मा की साधना न करे और सेवा न करे तो मानव कुत्ते से भी अधिक पतित है। किसी सन्त का मिलन होता है, सन्त की कृपा प्राप्त होती है और जब मानव परमात्मा के लिए साधना करता है, तब मानव, मानव बनता है। सद्गुरु नया जन्म देते हैं। सद्गुरुदेव ब्रह्माजी का स्वरूप हैं–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।

गुरुदेव विष्णु भगवान् के भी स्वरूप हैं। विष्णु भगवान् सर्व का रक्षण करते हैं। सद्गुरु ऐसा मानते हैं कि जब तक अपने शिष्य को मैं परमात्मा के दर्शन नहीं करवाता, तब तक मैं शिष्य का ऋणी हूँ। शिष्य ने तो मुझ पर विश्वास रखा है। हमारे शास्त्रों में ऐसा वर्णन आता है कि शिष्य को जब पाप की सजा मिलती है तब भगवान् गुरु को भी बुलाते हैं और गुरु को उलाहना देते हैं कि ऐसा यह तुम्हारा चेला है। गुरु पूर्णिमा के दिन आप उसकी पूजा प्राप्त करते थे। आपने इसके

पाप क्यों नहीं छुड़वा दिये? शिष्य के पाप की थोड़ी सजा गुरु को भी होती है। इससे कई साधु गुरु बनना भी पसन्द नहीं करते हैं। जो गुरु होता है, उसके ऊपर बहुत जिम्मेदारी आती है। किसी सन्त को गुरु मानिये पर किसी के गुरु बनने की इच्छा न रखिये।

सद्‌गुरु सद्‌शिष्य की सदैव रक्षा करते हैं। सर्वकाल में रक्षण करते हैं। सद्‌गुरुदेव को शिष्य की कोई वस्तु लेने की इच्छा ही नहीं होती है। सद्‌गुरु स्वयं शिष्य को सर्वस्व दे देते हैं। जिस गुरु को शिष्य का कुछ लेने की इच्छा होती है, वह गुरु शिष्य का कल्याण नहीं कर सकते। गुरु निरपेक्ष होना चाहिए और शिष्य निष्काम होना चाहिए। जिसे परमात्मा मिले हैं, वह ही निष्काम हो सकता है, वही निरपेक्ष होता है। लाख, दो लाख, और दस लाख पाने से कहीं निरपेक्षता नहीं आती है। लोभ से लोभ बढ़ता है। लक्ष्मी पाने से जीव निरपेक्ष नहीं होता है। जिसको लक्ष्मीपति परमात्मा की अनुभूति होती है, वही निरपेक्ष हो सकता है। गुरु निरपेक्ष होना चाहिए।

शिष्य निष्काम होना चाहिए। हमारे उपनिषदों में कहा है–शिष्य जब गुरु के पास जाता है, तब वह हाथ में समिधा लेकर जाता है–

समित्पाणिं श्रोत्रियम् ब्रह्मनिष्ठम्।

हाथ में समिधा लेकर जाना है। समिधा से होम होता है। सन्तों के पास समिधा लेकर जाने का अर्थ है कि संसार के सभी सुखों का मैंने होम किया है। लौकिक सुख के लिए गुरु के चरणों में जाना नहीं है। गुरु के पास निष्काम होकर ही जाना है।

कितने लोग संतों के पीछे पड़ जाते हैं। वे लौकिक भाव से संतों की सेवा करते हैं। वे सोचते हैं कि महाराज कृपा करें और लड़के का जन्म हो तो अच्छा है। कोई धन के लिए, कोई पुत्र के लिए तथा कोई किसी अन्य लौकिक सुख के लिए संतों की सेवा करते हैं। यह उचित नहीं हैं। सच्चे संत अधिक लौकिक सुख देते भी नहीं हैं। लौकिक सुख जीव अनेक वर्षों से भोग रहा है। लौकिक सुख से इसे आज तक शाँति नहीं मिली है। संत विषयानन्द नहीं देते हैं। संत भजनानंद तथा ब्रह्मानंद देते हैं। संत वासना को नष्ट करने की कृपा करते हैं। जिसके संग से वासना का विनाश होता है, मन शुद्ध होता है, भक्ति का रंग लगता है–वही सच्चा संत है। संतों के संग से अलौकिक आनन्द मिलता है।

शिष्य निष्काम हो और गुरु निरपेक्ष हो, तो गुरु-शिष्य समाज को सुखी कर सकते हैं। दूसरे को कृतार्थ कर सकते हें। गुरु के मन में कुछ लोभ हो, शिष्य को संसार का सुख भोगने की बहुत इच्छा हो तो गुरु-शिष्य का कल्याण नहीं होता है।

लोभी गुरु लालची चेला।
होय नरक में हेलम् हेला॥

सद्गुरु तो शिष्य को सर्वस्व दे देने की इच्छा रखते हैं। वे सोचते हैं कि मुझे जो कुछ मिला है, वह मुझे अपने शिष्य को देना है। सद्गुरु, सद्शिष्य को सच्ची राह दिखाते हैं। सद्गुरु सद्शिष्य की बुद्धि को सुधारते हैं। सद्गुरु सद्शिष्य को परमात्मा का दान करते हैं–

सच्चा उपदेश देत, भली भली मति देत,
समता-समबुद्धि देत, कुमति को हरत हैं।
मार्ग को दिखाय देत, भाव देत, भक्ति देत,
प्रेम की प्राप्ति देत, अज्ञान को हरत हैं।........
ज्ञान देत, ध्यान देत, आत्मा को विचार देत,
ब्रह्म को बताय देत, ब्रह्ममय करत हैं॥.........

सद्गुरु सद्शिष्य को सर्वस्व देते हैं। आत्मस्वरूप का बोध कराते हैं। सद्गुरु सर्वकाल शिष्य का रक्षण करते हैं। पिता-पुत्र के प्रेम में स्वार्थ रहता है पर गुरु शिष्य का प्रेम निःस्वार्थ होता है। पुत्र से कुछ न कुछ लेने की इच्छा पिता के मन में होती है। वह सोचता है कि पुत्र वृद्धावस्था में मेरी सेवा करेगा। मुझे कुछ देगा। गुरु शिष्य का प्रेम निःस्वार्थ होता है। सद्गुरु-सद्शिष्य को प्राण तक देते हैं।

एक गुरु तथा उसका शिष्य जंगल से निकलकर जा रहे थे। शाम हो गई। अन्धकार हो गया। इससे एक वृक्ष के नीचे उन्होंने विश्राम किया। सत्संग करके दोनों सो गये। सन्तों को निद्रा कम आती है। ऐसा भागवत में लिखा है। सन्तों में सत्वगुण अधिक होते हैं। सत्वगुण बढ़ता है,तब निद्रा कम आती है। निन्दा तमोगुण का धर्म है। सन्त तीन चार घंटे से अधिक नहीं सोते हैं। रात्रि में एक बजे के बाद गुरुदेव जाग गये पर शिष्य सोया ही रहा।

मध्यरात्रि का समय है। गुरुदेव आसन पर बैठे हैं। ध्यान की तैयारी में हैं–उसी समय वहाँ एक बड़ा सर्प दौड़ता हुआ आ पहुँचा और शिष्य की ओर जाने लगा। गुरुजी ने सर्प से पूछा–भाई! तुम कहाँ जा रहे हो? तुम्हें क्या काम है? सर्प ने कहा–महाराज! यह आपका शिष्य जो सोया हुआ है, मेरा पूर्वजन्म का बैरी है। पूर्वजन्म में उसने मुझे मार डाला था। मैं उसका प्रतिशोध लेने आया हूँ।

गुरुदेव सर्प को समझाने लगे–मेरे शिष्य से भूल हुई है। उसने तुम्हें मारा है। मैं क्षमा माँग रहा हूँ। तुम उसे काट कर क्या पाओगे? मेरे शिष्य को क्षमा कर दो। बैर से बैर बढ़ता है। बैर की शान्ति प्रेम से होती है। सर्प ने कहा–महाराज! अपना ज्ञान अपने पास रखिए। मैं आपका शिष्य

नहीं हूँ। मैं तो सर्प हूँ। आपके ज्ञान से मुझे शान्ति नहीं मिल रही। मैं आपके शिष्य को काटूँगा और वह जब तड़प-तड़प कर मर जायगा, तब मुझे शान्ति मिलेगी।

सर्प का क्रोध भयंकर होता है। अपनी सन्तान से सभी प्रेम करते हैं, पर सर्पों को भूख लगती है, तब अपनी सन्तान को भी वे खा जाते हैं। दूसरों को रुलाकर सर्प को शान्ति मिलती है।

हमारे शास्त्रों में लिखा है कि मानव का जन्म रोते हुए के आँसू पोंछने के लिए है। अन्य को रोते हुए देखकर जो प्रसन्न होता है, वह अगले जन्म में सर्प होता है।

गुरुदेव सर्प को मना रहे हैं– मेरे शिष्य को अभी तक भगवान् के दर्शन नहीं हुए हैं। उसकी मृत्यु हो जायगी तो उसका मरण बिगड़ेगा–

आत्मानम् विदित्वा अस्मांल्लोकात् प्रयाति सः कृपणः

जिसको आत्मस्वरूप का ज्ञान नहीं है, जिसे परमात्मा के दर्शन का अनुभव नहीं हुआ, उसे अन्तकाल में बहुत पछतावा होता है। मेरे शिष्य को अभी भगवान् के दर्शन नहीं हुए हैं। वह साधना करता है मुझे परमात्मा के दर्शन हुए हैं। मैं सिद्ध हूँ। मेरा कोई काम शेष नहीं है। मेरे मन में विकार-वासना नहीं है। मेरी मृत्यु होगी तो मैं परमात्मा के चरणों में जाऊँगा।

जिसके मन में वासना है, वह मृत्यु से डरता है, पर जिसके मन में कोई विकार नहीं है, वासना नहीं है, वह मरण से डरता नहीं है। मैं मरूँगा तो प्रभु के चरणों में जाऊँगा। मृत्यु प्रभु के चरणों में ले जाती है। मृत्यु प्रभु का मिलन कराने वाली है। सन्तों को मरण का डर नहीं है। गुरुदेव सर्प से कहते हैं–मेरे शिष्य के बदले में तुम मुझे डँस लो।

गुरुदेव अपने शिष्य के लिए प्राण का बलिदान देते हैं परन्तु पुत्र को साँप डँसने जा रहा हो तो क्या पिता ऐसा कहेंगे कि तुम मुझे डँस लो। नहीं, पिता तो दौड़कर भाग जायगा। गुरुदेव विष्णु भगवान् का स्वरूप है। वे शिष्य का रक्षण करते हैं–

गुरुर्ब्रह्म गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश–तीनों एक-एक काम करते हैं। ब्रह्मा उत्पत्ति करते हैं। विष्णु भगवान् रक्षण करते हैं और महेश्वर प्रलय करते हैं परन्तु सद्‌गुरुदेव तीनों कार्य करते हैं। गुरुदेव शिव स्वरूप भी हैं। जब शिवजी महाराज प्रलय करते हैं, तब सबका विनाश हो जाता है। अभी शिव अति शान्त हैं, मंगलमय हैं। प्रलयकाल में वे रुद्र रूप धारण करते हैं–

रोदनात् रुद्रः–रोदयति, द्रावयति इति रुद्रः।

सर्व का विनाश होता है तब प्रलय होता है। शिवजी महाराज सर्व का विनाश करके प्रलय करते हैं, पर सद्‌गुरुदेव की बलिहारी है कि वे शिष्य के मस्तक पर प्रेम से हाथ रखकर उसी क्षण परमात्मा के दर्शन करवाते हैं। जगत् है पर दिखाई नहीं देता। परमात्मा दीख पड़ते हैं। शिवजी जगत्

का प्रलय करते हैं, पर सद्गुरुदेव शिष्य को प्रलय दिखाते हैं। गुरुदेव के माहात्म्य का कौन वर्णन कर सकता है? सद्गुरुदेव परमात्मा से भी श्रेष्ठ हैं।

शुकदेवजी महाराज गुरु नहीं हैं, सद्गुरु हैं। शब्द-ज्ञान का उपदेश करने वाला गुरु है। जगत् में गुरु बहुत मिलते हैं, पर सद्गुरु दुर्लभ हैं। सत् शब्द का अर्थ है परमात्मा। सर्वकाल, सर्वस्थान पर जिन्हें परमात्मा के दर्शन होते हैं, वे सद्गुरु हैं।

शुकदेवजी महाराज गंगा तट पर भ्रमण करते हैं। अति सुन्दर देव कन्याएँ गंगाजी में स्नान कर रही हैं। शुकदेवजी महाराज की आँखें खुली हैं, पर उन्हें मालूम ही नहीं हो रहा है कि कोई स्त्री स्नान कर रही हैं। उन्हें यह अहसास तक नहीं हो रहा है कि मैं पुरुष हूँ। खुली आँखों से उन्हें जगत् नहीं दीख रहा है, परमात्मा ही दीख रहे हैं। शुकदेवजी महाराज सद्गुरु हैं। अधिकार सिद्ध हो जाने पर सद्गुरु मिलते हैं। परीक्षित सद्शिष्य हैं। वे गंगा तट पर परमात्मा के लिए बैठे हैं, सर्वस्व का त्यागकर बैठे हैं।

१६–अंतकाल, ध्यान और विराट् पुरुष की धारणा

परीक्षित राजा ने शुकदेवजी से प्रश्न किया है–मानव मात्र का कल्याण हो, ऐसा कोई उपाय बतलाइये। जिसका मरण निकट हो वह क्या करे और क्या न करे–यह भी समझाइये–

वरीयानेव ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप।

शुकेदवजी महाराज को आनंद हुआ–राजा! तुमने बहुत सुन्दर प्रश्न पूछा है। तुम्हारे प्रश्न में समाज का हित समाविष्ट है। राजा ने ऐसा नहीं पूछा कि मेरा कल्याण हो, ऐसा उपदेश दीजिए, पर पूछा कि समाज का कल्याण हो, मानव का कल्याण हो, ऐसा उपदेश दीजिए। शुकदेवजी महाराज राजर्षि को सावधान करते हैं–

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः।
दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्बभरणेन वा।। (२-१-३)

राजन्! मानव-जीवन का बहुत-सा समय निद्रा में बीत जाता है। बहुत-सा समय अर्थोपार्जन में जाता है। मानव को शांति से बैठकर परमात्मा की भक्ति करने का अवसर ही नहीं मिलता है। सब सोचते रहते हैं कि घर में अनुकूलता हो जाय, फिर शांति से सेवा-पूजा करेंगे। जिसको समुद्र में स्नान करना है, उसको तरंगों की मार सहने की तैयारी करनी पड़ती है। संसार-समुद्र में कितनी भी बाधाएँ आयें फिर भी प्रभु की भक्ति करनी है, ऐसा निश्चय करिये। सभी तरह की अनुकूलता सभी को प्राप्त नहीं होती है। दुःख से ही मनुष्य समझदार बनता है। सुख में वह भान गँबा देता है। जीवात्मा संसार में जब आता है, तब पाप-पुण्य दोनों को लेकर आता

है। सुख पुण्य का फल है, दुःख पाप का फल है। सुख-दुःख तो आने वाले ही हैं। राजन्! भूतकाल का विचार नहीं करना चाहिए, वर्तमान को सुधारना चाहिए। प्रत्येक क्षण को सँभालिये।

मानव के जीवन का अधिक समय धन कमाने में जाता है। बहुत-सा समय लौकिक सुख भोगने में व्यतीत हो जाता है। कुछ लोगों का समय पुस्तकों को पढ़ने में भी जाता है। मनुष्य शांति से बैठकर भक्ति नहीं करता है। पुस्तक-पढ़ने से शब्द ज्ञान बढ़ता है। जिसका शब्द-ज्ञान बढ़ता है, वह साधु-संतों की परीक्षा करता है। सोचता है कि इन महाराज से पहिले जो महाराज आये थे, वे कथा बहुत अच्छी तरह कहते थे। उनका स्वर बहुत मीठा था। इस प्रकार बहुत-सी पुस्तकों का पठन अच्छा नहीं है। कई लोग बहुत अच्छी पुस्तकें पढ़ते हैं पर जीवन अच्छा व्यतीत नहीं कर पाते हैं। कई लोग अच्छी बातें सुनते हैं, पर अच्छा जीवन व्यतीत नहीं कर सकते हैं। अच्छी पुस्तकों के पठन से बहुत लाभ नहीं है। शांति से बैठकर ध्यान करिये, जप करिये, भक्ति करिये। जिनको भक्ति करनी है उनको एक-दो ग्रंथों का ही अध्ययन करना चाहिए। 'ग्रन्थान्न सेवेत् बहून्'।

मानव के जीवन का बहुत-सा समय बातें करने में बीत जाता है बहुत-सा समय रोने में भी बीतता है। एक रसोइया था। वह थोड़ी-सी रसोई बनाकर तथा शेष को वैसे ही छोड़कर किसी से मिलने गया और वहाँ जाकर बातों में लग गया । एक-दो घंटे गप्पें लड़ाकर जब वापस आया, तब आधा खाना जल गया था। उसको बहुत दुःख हुआ। फिर वह रोने लगा। एक-दो घंटे रोने में बीत गये। उतने समय तक सब कुछ जलकर खाक हो गया। उसके हाथ कुछ न आया! मानव की दशा ऐसी ही है।

जी हाँ! मानव की दशा ऐसी ही है। वह बहुत-सा समय बातों में व्यतीत कर डालता है और फिर 'हाय-हाय' करता है। अब कुछ नहीं होना हैं काल गला दबा रहा है— अंतकाल में ऐसा सोचकर जीव बहुत पछताता है। मानव-जीवन में अंतिम परीक्षा का समय मरण है। जिसका मरण मंगलमय, उसका जीवन भी मंगलमय। जीवन में किये गये पाप मरण को बिगाड़ते हैं। परमात्मा अति उदार हैं, अत्यंत दयालु हैं। मानव ज़ब साधारण पाप करता है, तब भगवान् क्षमा कर देते हैं पर मानव ऐसे-ऐसे पाप करता है कि फिर भगवान् क्षमा नहीं करते हैं। तब क्षमा के स्थान पर सजा ही जीव को मिलती है।

थोड़े से शान्त मन से सोचने पर ध्यान में आयेगा कि आत्मा का जन्म नहीं होता है। आत्मा का मरण भी नहीं होता है। आत्मा अमर है, अविनाशी है। जन्म शरीर का होता है और मृत्यु भी शरीर की होती है। ज़न्म और मरण आत्मा का धर्म नहीं है। वह देह का धर्म है। शरीर क्षण-क्षण मरता है। शरीर का अर्थ भी वही है। शरीर वह है जिसका क्षय हुआ है—

क्षीर्यते इति शरीरम्।

शरीर का क्षण-क्षण नाश होता है। शरीर के परमाणु परिवर्तित होते हैं। जिसकी वृद्धि होती है, जिसका क्षय होता है, जिसका विकास होता है, उसका विनाश भी होता है। इस शरीर का विकास, विनाश के लिए ही हुआ है। इस क्षण-भंगुर शरीर के लिए पाप क्यों करना चाहिए? किये गये पाप की सजा जीवात्मा को भोगनी पड़ती है। पाप मरण को बिगाड़ता है। जो क्षण-क्षण का ध्यान रखता है, उसका मरण सुधरता है। मानव जन्म की यही विशेषता है उसे आत्मा-अनात्मा का विवेक है। मानव जानता है कि शरीर जो है, वह मैं नहीं हूँ। मैं इस शरीर से भिन्न हूँ। मानव ज्ञानी है, पर उसका ज्ञान टिकता नहीं है। जो प्रत्येक क्षण सावधान रहता है, उसका ज्ञान टिकता है–

एतावान्सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया।
जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः॥ (२-१-६)

जो प्रत्येक क्षण का ध्यान रखता है, उसका मरण सुधरता है। कई लोग ऐसा समझते हैं कि खाओ-पियो और मौज करो। अन्तकाल के क्षण में राम-राम कहेंगे तो विमान आयगा और उसमें बैठकर मस्ती से स्वर्ग में पहुँच जायेंगे। पर ऐसा नहीं होता है अन्तकाल में परमात्मा का स्मरण करना सरल नहीं है बहुत ही कठिन है। इसलिए प्रत्येक क्षण का ध्यान रखियेगा–

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥

अन्तकाल का अर्थ सन्तों ने ऐसा किया है कि प्रत्येक क्षण का अन्तकाल। अन्तकाल अर्थात् मृत्यु का काल–ऐसा नहीं किन्तु प्रत्येक क्षण को सुधारिये। प्रत्येक क्षण में भक्ति की आदत डालिए। कण के अनुचित उपयोग से व्यक्ति दरिद्र होता है तथा क्षण के अनुचित उपयोग से मरण बिगड़ता है। एक कण से अनेक चीटियों का पोषण होता है, जीवों की तृप्ति होती है। घर में एक कण का भी अनुचित उपयोग नहीं होना चाहिए। एक क्षण भी बिगड़ना नहीं चाहिए। कण और क्षण का ध्यान रखने वाले के जन्म-मरण मंगलमय होते हैं।

काल जीव को सावधान करके पकड़ने आता है। कई लोग काल को क्रूर मानते हैं। काल परमात्मा श्रीकृष्ण का भृत्य है। जो भगवान् का सेवक है वह क्रूर नहीं होता है। काल भी परमात्मा के समान कोमल है। अचानक मरण किसी का नहीं होता है। काल पत्र लिखकर ही आता है। अब मेरा समय आ गया है मैं आ रहा हूँ–काल सबको ऐसी खबर देकर आता है। पर जीव लौकिक सुख में ऐसा फँसा हुआ है कि काल का पत्र पढ़ता तक नहीं है।

काल जीव को समझाता है पर वह समझता नहीं है। जब एक-एक करके दाँत गिरने लगते हैं, तब समझना चाहिए कि काल का पत्र आ गया है। जब जन्म हुआ था, तब एक भी दाँत नहीं था तथा जब मरण नजदीक आता है, तब धीरे-धीरे दाँत गिरने लगते हैं। कलियुग के लोग अत्यंत बुद्धिमान हैं। वे दाँत गिर जाने पर दो सौ पाँच सौ रुपये खर्च करके नकली दाँत बनवा लेते हैं। कई लोग ऐसा मानते हैं कि बत्तीसी लगाने पर मुख अच्छा लगता है। अरे! अब अन्तिम यात्रा का समय आ चुका है। तुम किसे मुँह दिखाना चाहते हो? कई लोग ऐसा सोचते हैं कि बत्तीसी से खाने में आनन्द आता है। अरे! जिह्वा से कब तक लाड़ करते रहोगे? बहुत खाने से मन की तृप्ति नहीं होती है। जीभ की; मन को समझाने से ही तृप्ति होती है। जीभ को समझाइये-तुमने बहुत खाया है। दाँत गिर जाय, तब समझिये कि दूध-चावल खाकर भक्ति करने का समय आ गया है। नकली दाँत की बनी बत्तीसी नहीं बनवानी है। अब सादा भोजन खाकर भक्ति करने का समय आ गया है।

काल सभी को सावधान करता है। आसमान में जिसे अरुन्धती तारा न दीख पड़े, उसे समझना चाहिए कि अब एक साल में मेरे मरने का समय आने वाला है। आसमान में सप्त ऋषि दर्शन देते है। भारत ऋषियों का देश है। आप सब ऋषियों की सन्तान हैं। आपका जन्म किसी ऋषि के वंश में हुआ है। आज कल लोगों को अपने गोत्र तक का पता नहीं होता है। एक भाई से हमने पूछा कि आपका गोत्र कौन सा है? उन्होंने कहा कि महाराज! इंगलैंड का सारा इतिहास जानता हूँ पर गोत्र के विषय में कुछ पता नहीं है। प्रत्येक सत्कर्म के प्रारम्भ में गोत्रोच्चार करना पड़ता है। 'वशिष्ठ-गोत्रोत्पन्नोऽहम्'.....शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्नोऽहम्-लोग परदेश का इतिहास जानते हैं, पर भारत का इतिहास नहीं जानते हैं। भारत ऋषि-मुनियों का देश है।

कई लोग ऐसा समझ रहे हैं कि जो ब्राह्मण होता है, वही ऋषि की सन्तान के रूप में सम्माननीय है पर वस्तुतः ऐसा नहीं है। जिनका जन्म भारत में हुआ है, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कोई भी क्यों न हों, सभी ऋषियों की सन्तान हैं। ये सभी परमात्मा के अंग हैं। ऋषियों को स्मरण रखिये। ऋषियों के स्मरण से मन शुद्ध होता है। आप कहीं भी जाइए। पैसे के लिए कोई भी प्रवृत्ति करिये पर इतना याद रखिये कि मैं ऋषि की सन्तान हूँ। मेरे पूर्वज महान् ऋषि थे। अपने पूर्वजों के मार्ग पर- ऋषियों के मार्ग पर मुझे चलना है।

ये सात ऋषि हमारे पूर्वज हैं। आज भी वे तप करते हैं, जिससे भारत की प्रजा सुखी हो। आकाश में सात ऋषि दर्शन देते हैं। सप्त ऋषि के सात तारे सारी रात ध्रुवमण्डल की प्रदक्षिणा करते हैं। सुबह चार बजे उत्तर दिशा में अस्त होते हैं फिर ये संध्या करने बैठते हैं।

कई लोगों को सप्त ऋषियों के नाम का भी पता नहीं हैं। विश्वामित्र, जमदग्नि, भरत, अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, और गौतम। ये सातों ऋषि विवाहित हैं, पर सात ऋषियों में मात्र वसिष्ठ ऋषि की धर्मपत्नी अरुन्धती को ही ऋषियों के साथ बैठने का अधिकार है। अन्य कोई स्त्री ऋषियों के साथ नहीं बैठ सकती है। अरुन्धती महान् तपस्विनी हैं, ब्रह्मवादिनी हैं। पुराणों में अरुन्धती की कथा आती है। अरुन्धती जब सभा में पधारती थीं तब बड़े-बड़े ऋषि खड़े होकर उनका सम्मान करते थे। वे सभा में अरुन्धती माँ को साष्टांग वन्दन करते हैं। सन्त समाज में, ऋषि समाज में, अरुन्धती माता को बहुत मान मिला है। आसमान में अरुन्धती का तारा है। जो आसमान में अरुन्धती के तारे को नहीं देख सकता, उसे समझना चाहिए कि अब एक वर्ष में मरने वाला हूँ।

घबराइए नहीं, किन्तु यह सब याद रखिये। यह काम में आयगा। जिसे अपनी छाया छिद्र वाली दिखलाई दे–छाया में छिद्र दिखालाई देने का अर्थ कि वह व्यक्ति दस-ग्यारह महीने से अधिक नहीं जी सकेगा। घ्राणेन्द्रिय अच्छी होने पर भी घी के बुझे दीपक की जिसे गंध नहीं आती है, उसे समझना चाहिए कि नौ-दस महीने में मेरी मृत्यु होगी। मेरा शरीर कीचड़ में धँसता जा रहा है–ऐसा स्वप्न जो देखता है उसे समझना चाहिए कि सात-आठ मास में मेरी मृत्यु होगी। कदाचित् स्वप्न में ऐसा दीख पड़े कि मैं कुम्हार के घोड़े पर बैठा हूँ तो मानिये कि पाँच, छह महीने में मृत्यु आ रही है। कुम्हार का घोड़ा ध्यान में आय न? भागवत में मृत्यु के अनेक लक्षण दिखलाये हैं। ये सभी लक्षण आप भूल जाते हैं तो हर्ज नहीं है पर अब जो अन्तिम लक्षण है उसे ध्यान में रखिये। डाक्टर पर विश्वास कीजिये पर डाक्टर पर अति विश्वास न कीजिये। कई डाक्टर तो समझते हैं कि अब इसका 'अच्युतम् केशवम्' होने वाला है, फिर भी इन्जेक्शन देते हैं। वे सोचते हैं कि इसका तो जो होगा? वह होगा ही पर मेरे इन्जेक्शन के पैसे तो मुझे मिलते ही हैं। डाक्टर अनेक बार झूठी आशाओं में लोगों को रखता है। स्वार्थ में तथा झूठी आशाओं में वे लोगों को रखते हैं पर हमारे ऋषियों को कोई स्वार्थ नहीं है। भागवत पर पूर्ण विश्वास रखिये।

भीतर से ओम्कार ध्वनि अखण्ड रूप से होती है। गूँगा भी भीतर से ओम् बोलता है। योगी नाद ब्रह्म की उपासना करते हैं। ओम्कार नाद में योगी मन का लय करते हैं। इससे जगत् का सम्बन्ध छूटता है और ब्रह्म सम्बन्ध होता है। मधुर नाद को सुनकर नाग भूल जाता है कि गले में विष है। नाद ब्रह्म की उपासना जगत् को भूलने के लिए है, वैष्णव कीर्तन में ताली बजाते हैं। ताली भी नाद ब्रह्म है, वे ताली बजाते-बजाते धीरे-धीरे जगत् को भूल जाते हैं। पूजा के पहले घण्टा नाद का भी वही अर्थ है कि अब परमात्मा का ही नाद सुनाई देता है, दूसरा कुछ भी नहीं सुनना है–

ओम्कारं विंदु संयुक्तं नित्यं ध्यान योगिनाम् कामदं मोक्षदं चैव।

योगी ओम्कार को सुनते हैं। ओम्कार का ध्यान करते हैं। ओम्कार का जप करते हैं। भीतर से ओम्कार का अखण्ड नाद होता है। मानव का मन बाहर बहुत भटकता है इससे उसे भीतर का नाद नहीं सुनाई देता। अति शान्त होने पर ही भीतर का नाद सुनाई देता है। उसे हमारे शास्त्रों में 'अनाहत्' ध्वनि कहते हैं। अकार, उकार, मकार—भीतर से प्रणव की ऐसी अखण्डात्मिका ध्वनि आती है। कानों के भीतर दो उंगली डालकर रखिये तो थोड़ी सी आवाज सुनाई देगी। कान में उंगली डालकर रखिए और भीतर की ध्वनि न सुनाई दे तो समझिए कि अब सात-आठ दिनों में मुझे जाना हैं बीमारी में आजू-बाजू कोई न हो तो शय्या में पड़े-पड़े ही कानों में उंगलियां डालकर देखिये कि आवाज आ रही है या नहीं। अगर भीतर से आवाज आती है, तो समझिये कि अभी कुछ तकलीफ नहीं है पर आवाज न सुनाई दे तो मानिये कि मृत्यु नजदीक है। जो मिलने आते हैं, उन्हें जय श्रीकृष्ण कह लीजिए।

अंतकाल में जो सावधान रहते हैं, वे काल पर विजय पाते हैं। जो सावधान हैं। वे परमात्मा की शरण में जाते हैं। काल का एक नियम है। सावधान व्यक्ति को काल पकड़ने ही नहीं जाता है। असावधान को ही—गाफिल जीव को ही काल पकड़ता है। अनेक बार ऐसा होता है कि बीमार जिस दिन मरने वाला होता है, वह दिन उसे अच्छा लगता है। वह सोचता है कि आज अच्छा हूँ, आज नहीं मरूँगा। ऐसा समझकर वह जीव असावधान हो जाता है जैसे ही वह असावधान होता है, काल उसे पकड़ने दौड़ता है। ऐसे लक्षणों को देखकर समझना चाहिए कि अब मृत्यु नजदीक है। जिसे पता चल जाय कि अब मृत्यु नजदीक है, वह घर छोड़कर किसी पवित्र स्थान पर चला जाय और वहाँ रहने लग जाय—

अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः।
छिन्द्यादसंगशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम्॥ (२-१-१५)

घर की प्रत्येक वस्तु में हमारी ममता होती है। आँखों से जब तक दिखाई देता है, तब तक मोह टूटता नहीं है। इससे आज्ञा दी गई है कि घर छोड़कर किसी तीर्थ स्थान में जाइए। आपका प्रश्न होगा कि महाराज! हमने जो बंगला बनाया है, वह क्या छोड़ने के लिए बनाया है?

गृहात् प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः।
शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने॥ (२-१-१६)

कैसा भी सुन्दर बंगला हो, एक दिन तो छोड़ना ही पड़ेगा। काल धक्का दे और हाय-हाय करके छोड़ना पड़े, इससे तो अच्छा है कि मन से छोड़ा जाय।

पवित्र, भूमि, सात्विक भूमि है। घर, भोग भूमि है। गृहस्थ के घर में काम के परमाणु घूमते हैं, जो आँख और मन को भ्रष्ट करते हैं। भक्ति में ऐसी भूमि विघ्न लाती है। इससे आज्ञा दी गयी है कि घर छोड़कर किसी पवित्र तीर्थ में जाकर रहिये। ऐसी भूमि सात्त्विक भाव जगाती है। भोग भूमि में सात्विक भाव नहीं जागते हैं।

आप घर में ही रहना चाहते हैं तो अत्यंत विवेक से रहिये क्योंकि घर में रहने से जीव थोड़ा असावधान तो होता ही है। बहुत सावधान होकर रहे, तो हर्ज नहीं है। सावधान रहने का अर्थ क्या? मेरा घर परमात्मा के चरणों में है–ऐसा निश्चय करिये। यह घर मुझे छोड़ना हैं। लोग यात्रा में जाते हैं, तब धर्मशाला में ठहरते हैं। वहां एक-दो दिन रहते हैं। इस स्थान से उन्हें ममता नहीं होती है, क्योंकि वे जानते हैं कि हमें इस स्थान को छोड़कर जाना है। ऐसा भाव उनके मन में रहता है। आप भी घर में रहते समय ऐसा ही भाव अपने मन में रखिये। घर में रहना बुरा नहीं है किन्तु यह घर मेरा है, यह घर मेरे सुख के लिए है–यही ममता मन को भ्रष्ट करती है, पाप करवाती है। घर में रहना बुरा नहीं है पर घर में मन रखना बुरा है।

घर में भले ही रहिये पर मेरा सच्चा घर तो प्रभु के चरणों में है ऐसा मन से निश्चय करिये। सोचिये कि यह घर मेरा नहीं है, यह घर मुझे छोड़ना है। आपके माता पिता का विवाह नहीं हुआ था। क्या तब आप इस घर में रहते थे? तब आप कहाँ थे? जीवात्मा का घर तो परमात्मा के चरणों में ही है। मुझे परमात्मा के चरणों में जाना है–ऐसा सोचकर जो घर में सावधान रहता है, उसका मरण घर में भी सुधरता है, परन्तु घर में जीव जब असावधान हो जाता है, तब उसका मरण बिगड़ता है।

सावधान होकर साधना करिये। शांति से एकान्त में बैठने की आदत रखिये। एक ईश्वर में एकमेव अद्वितीय ब्रह्म में अंत करना एक ईश्वर में सर्व का लय या अंत करना ही एकांत है। एकान्त में मन एकाग्र रहता है ध्यान करते समय, आप पति हैं, पत्नी हैं–यह सब भूल जाइए। पति-पत्नी का पुत्र-पिता का संबंध व्यवहार दृष्टि से सत्य हो तो तत्व दृष्टि से सत्य नहीं है। 'मैं और मेरे प्रभु'–परमात्मा के साथ जब आपकी तन्मयता होगी, तभी ज्ञान प्राप्त होगा। साधारण मानव एकांत में पाप करता है, किन्तु जिसे भक्ति का रंग लगा है, उसे एकांत में बैठने से शांति मिलती है। एकांत में उसका मन शांत होता है।

ध्यान में थोड़ा प्राणायाम करना जरूरी है। हर रोज थोड़ा सा प्राणायाम करने की आदत डालिये। प्राण, वीर्य और मन, प्रायः साथ ही रहते हैं। जिसका वीर्य स्थिर है। उसके प्राण भी

स्थिर रहते हैं। जिसके प्राण स्थिर हैं, उसका मन भी स्थिर रहता है। शक्ति को संग्रहीत करने वाले का मन स्थिर होता है। शक्ति का विनाश करने वाले का मन चंचल होता है। प्राणायाम करने से आयुष्य बढ़ता है। जिसके श्वासों का अधिक व्यय होता है, उसका आयुष्य कम होता है। चौबीस घण्टों में इक्कीस हजार छह सौ श्वास होने चाहिए। एक घण्टे में नौ सौ श्वास होते हैं। शक्ति का जो अधिक विनाश करता है, उसके अधिक श्वास व्यय होते हैं। बत्तीस हजार, चालीस हजार तक श्वासों के व्यय से आयुष्य जल्दी पूरा हो जाता है। ऐसे व्यक्ति का मरण भी जल्दी होता है। श्वास की संख्या कम होती है तो आयुष्य बढ़ता है। नियम से प्राणायाम करने की आदत डालिये। प्राणायाम भी भक्ति के साथ करिये किसी साधन को, किसी भी मार्ग को भक्ति का साथ मिलना चाहिए। ज्ञान मार्ग हो या योग मार्ग हो–इनमें भक्ति को छोड़ने वाले का पतन होता है।

ठाकुरजी की सेवा-पूजा को गौण मत मानिये। परमात्मा की सेवा-पूजा को गौण समझने वाले योगी का पतन होने में देर नहीं लगती है। जो परमात्मा की सेवा-पूजा नहीं छोड़ता है, उसे सदैव परमात्मा का आधार रहता है। उसका पतन ही नहीं होता है और कदाचित् हो भी तो परमात्मा उसे बचा लेते हैं। जीवन के अंतकाल तक तन को और मन को कोई रोग न लगा हो तो मानिये कि इसका कारण योग है। यह योग का फल है परन्तु कई योगी, रोगी दिखलाई देते हैं। योग में भक्ति का साथ न होने के कारण योगी, रोगी हो जाता है।

ज्ञान में भक्ति का साथ न हो तो कई ज्ञानी पुरुष नास्तिक सदृश हो जाते हैं। वेदान्त की बहुत सी पुस्तकें पढ़ने वाले तथा भक्ति को गौण समझने वाले ज्ञानी, नास्तिक सदृश हो जाते हैं। उनका पतन होता है। आत्मा निर्विकार है, आनन्द-रूप है। आत्मा को पाप नहीं है, आत्मा को पुण्य नहीं है। किसी के हाथ का खाने में क्या? आत्मा शुद्ध है ऐसा वे लोग कहते हैं। भगवान् कहते हैं–तू ऊपर आ और मैं तुझे दिखलाऊँगा कि आत्मा को पाप-पुण्य लगते हैं कि नहीं? ज्ञान में, भक्ति का, धर्म का साथ न रहने पर ज्ञानी का पतन होता है।

देह का होश रहने तक ज्ञानी पुरुष धर्म और भक्ति को छोड़ता नहीं है। योग, भक्ति के साथ सफल होता है। प्राणायाम भी भक्ति के साथ करिये। दायीं ओर के नथुने से, बाहर के वायु को धीरे-धीरे भीतर खींचने की क्रिया को प्राणायाम कहते हैं। जब पूरक प्राणायाम करते हों, तब 'श्रीराम' 'श्रीकृष्ण' प्रभु के इन नामों का मन से जप करिये। जब पूरक प्राणायाम करते हों तब ऐसी भावना करिये कि प्रभु मेरे भीतर आ रहे हैं। भावना में बहुत शक्ति है। हृदय में बहुत प्रकाश है, जिसके आधार से मन, बुद्धि और इन्द्रियां काम करती हैं। प्रत्येक के हृदय में प्रकाश होता है। हृदय कमल सदृश है। प्रभु-प्रेम में जब हृदय पिघलता है, तब यह कमल खिलता है। यह प्रभु का

सिंहासन है। भगवान् इस सिंहासन पर विराजते हैं, तब फिर वहाँ किसी तरह का कूड़ा-कचरा नहीं रह सकता है।

पूरक के बाद जो प्राणायाम प्राण को शरीर में रोक रखता है, वह कुम्भक कहलाता है। जब कुम्भक करते हों, तब श्रीकृष्ण के मिलन की भावना करिये। अनुभव कीजिए कि मेरे हृदय कमल पर मेरे श्रीकृष्ण विराजमान हैं। मैं अपने प्रभु की शरण में हूँ। प्रभु ने मुझे उठाया है और हृदय से लगाया है। मैं अपने भगवान् से मिल रहा हूँ। मैं अपने श्रीकृष्ण के साथ एक हुआ हूँ।

थोड़े विचार से हम देखें कि शरीर जब मिलते हैं, तब क्या हमें सुख मिलता है? अरे! शरीर के मिलन में ही सुख है तो मुर्दे के मिलन से भी सुख मिलना चाहिए। मुर्दे के हाथ हैं, पैर हैं, मुख, सब कुछ है पर मुर्दे के मिलन से कोई सुख नहीं मिलता है। दो शरीरों के मिलन में कोई सुख नहीं है। जीव जब किसी जीव से मिलता है, तब सुख मिलता है। जब दो जीव मिलते हैं तब सुख मिलता है। तब फिर जीव ईश्वर से मिलता हो तो कितना सुख मिलता होगा। कितना आनन्द मिलता होगा। आप जब किसी मानव से मिलते हैं, तब सुख होता है और जब परमात्मा से मिलेंगे तब कितना भारी आनन्द होगा।

मानव के संयोग में सुख है पर वियोग में दुःख भी है। जीव जब ईश्वर से मिलता है तब उसका प्रभु से वियोग नहीं होता है। संसार में संयोग-वियोग अनित्य हैं। जीवात्मा का ईश्वर के साथ संयोग नित्य संयोग है। हृदय में भगवान् विराजमान हैं। मैं अपने भगवान् से मिलता हूँ। भगवान् मुझे आलिंगन देते हैं। मैं भगवान् का अंश हूँ—श्रीकृष्ण मिलन की इस भावना के साथ कुम्भक प्राणायाम करिए। कुम्भक में प्राण शरीर में रोकना होता है। यह क्रिया कठिन नहीं है। आप निश्चय करेंगे तो हो सकेगी। छह महीनों का नियम करिए तो आपको अनुभव होगा। आपको भीतर का आनन्द मिलेगा। आपको भीतर की सुगन्ध प्राप्त होगी। दिव्य रस का अनुभव होगा। मन की चंचलता कम होगी। कुम्भक की मात्रा बढ़ेगी, मन धीरे-धीरे स्थिर होने लगेगा।

फिर बांयी ओर के नथुने से प्राणवायु को धीरे-धीरे बाहर निकालिए और तब ऐसी भावना करिये कि मेरे सभी पाप अब धीरे-धीरे बाहर निकल रहे हैं। मेरे हृदय में नारायण विराजमान हैं। मैं भगवान् का हुआ। अब मेरे मन में पाप नहीं रह सकते, विकार वासना भी नहीं रह सकते। बायें नथुने से अब प्राणावायु धीरे-धीरे निकालिये। मेरे पाप अब बाहर जाते हैं—ऐसी भावना करिए। दायीं ओर के अंगों में पुण्य है। बायीं ओर के अंगों में पाप का निवास है, इससे बायां अंग अपवित्र माना गया है। बायें हाथ से कुछ देना नहीं चाहिए। बायें हाथ से कुछ लेना भी नहीं चाहिए।

संध्या में ब्राह्मणों को अघमर्षण करना पड़ता है। अघमर्षण बायें अंगों से पाप बाहर निकालता है। भगवान् भीतर प्रविष्ट हुए, अब पाप वहाँ नहीं रह सकेगा। अब मैं निष्काम-निर्वासन हुआ हूँ। मेरे भीतर अब पाप नहीं रह सकेगा। मेरे मन में कोई विकार, वासना पाप नहीं रह सकेंगे। मेरे सभी पाप अब बाहर निकल गये हैं। मेरा हृदय अब गंगाजल की तरह शुद्ध हुआ है। मेरे हृदय में अब प्रभु पधारे हैं। ऐसी भावना तो करिये?

भावना में बहुत शक्ति है। पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायाम के तीन भेद दिखाए गए हैं। भागवत में यह कथा एक-दो नहीं, अनेक बार आती है। द्वितीय स्कंध में आती है, सप्तम स्कन्ध में आती है। एकादश स्कन्ध में आती है। प्राणायाम से बहुत लाभ होता है। प्राणायाम से मन की चंचलता धीरे-धीरे कम होती है। मन विशुद्ध होता है। प्राणायाम नियम से बराबर करें तो आयुष्य बढ़ता है। प्राणायाम करने से स्थूल मन शुद्ध होता है परन्तु सूक्ष्म मन शुद्ध नहीं होता है। मन दो प्रकार के हैं–स्थूल और सूक्ष्म। स्थूल मन तन के साथ रहता है और सूक्ष्म मन जहाँ फँसा है, वहीं रहता है।

कितने ही लोगों का सूक्ष्म मन कथा में से घर भी चला जाता है। कथा सुन रहा है स्थूल मन, सूक्ष्म मन तो घर चला गया है। कितनों को कथा में आने पर याद आता है–दूध ढका था कि खुला ही रह गया? सूक्ष्म मन प्राणायाम से अच्छा नहीं होता है। सूक्ष्म मन विराट् पुरुष की धारणा करने से शुद्ध होता है। विराट् पुरुष की धारणा करिए। विराट् पुरुष का अर्थ क्या? यह जगत् जिसके आधार पर है, उसे विराट् पुरुष कहते हैं। एक भी वस्तु बिना आधार से टिक भी नहीं सकती। प्रत्येक को आधार की जरूरत है। जगत् का आधार परमात्मा है। परमात्मा का कोई आधार नहीं है। भगवान् निराधार है। जो सबके आधार हैं पर जिनका कोई आधार नहीं है, वे परमात्मा हैं। जहाँ सब कुछ समाविष्ट हो जाता है पर जो किसी जगह समाविष्ट नहीं होते, वे परमात्मा हैं।

पृथ्वी जल पर आधारित है। पृथ्वी से जल-तत्व दस प्रतिशत बड़ा है। तेज वायु में है। वायु से प्रकाश तत्व दश प्रतिशत बड़ा है। वायु आकाश में है। आकाश प्रभु में निहित है। प्रभु आसमान से बड़े हैं, विशाल हैं, व्यापक हैं। सब कुछ आकाश में है। आकाश का आधार प्रभु हैं।

यह जगत् जिस प्रभु में निहित है, उसे विराट् पुरुष कहते हैं। जगत् को प्रभु में देखने की आदत डालिये। जगत् को ईश्वर के साथ देखिये। साधारण मानव जगत् को ईश्वर से भिन्न करके देखता है। जगत् को ईश्वर से भिन्न मानकर जो देखता है, जगत् को देखकर उसकी दृष्टि बिगड़ती है, उसका मन बिगड़ता है। जो जगत् के प्रत्येक पदार्थ में भगवान् को देखता है, जो जगत् को प्रभु के साथ देखता है, उसका मन शुद्ध होता है।

जगत् में किसी के प्रति कुभाव न रखिये। किसी के प्रति रखा गया कुभाव परमात्मा के प्रति रखा गया कुभाव ही कहा जायगा। जगत् के किसी भी पदार्थ को ईश्वर से भिन्न करके देखने में मन बिगड़ेगा। आपको कोई ब्राह्मण दीख पड़े तो उसके दर्शन भगवान् के साथ करिये—

ब्राह्मणेभ्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरु तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥

ब्राह्मण भगवान् का मुख है। मानिये कि मैं अभी परमात्मा के मुख का दर्शन कर रहा हूँ। आपको कोई क्षत्रिय दीख पड़े तो मैं परमात्मा के हाथ का दर्शन कर रहा हूँ—ऐसी भावना रखिये। क्षत्रिय को भगवान् के हाथ में देखिये। वैश्य को भगवान् की जाँघ में देखिये तथा शूद्र को भगवान् के चरणों में देखिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—सभी प्रभु के अंग हैं। सभी को भगवान् के साथ देखिये।

हमारे शास्त्रों में कभी हरिजनों का तिरस्कार नहीं किया गया है। शूद्र प्रभु के चरणों से बाहर निकले हैं। कोई तुच्छ नहीं है। सभी भगवान् के अंग होने से श्रेष्ठ हैं। जो दूसरे को तुच्छ मानता है, वह स्वयं तुच्छ है।

जो अपना फर्ज उचित रूप से नहीं अदा करता, वह तुच्छ है। ब्राह्मण संध्या-गायत्री नहीं करता है तो श्रेष्ठ नहीं है, उसे तुच्छ ही कहना चाहिये। तीन दिनों तक जो संध्या-गायत्री नहीं करता और खाना खाता है तो वह ब्राह्मण शूद्र के सदृश है। जिसका जो फर्ज है उसको वह फर्ज उचित रूप से पूर्ण करना चाहिए। स्वधर्म का त्याग करने वाला तुच्छ है।

किसी को भी प्रभु से भिन्न न करिये। आप किसी क्रोधी को देखें तो उसको भी प्रभु के साथ देखिंये। तब ऐसी भावना करिये कि मैं नृसिंह भगवान् का दर्शन कर रहा हूँ। मैंने कथा में सुना है कि नृसिंह भगवान् को क्रोध आ गया था—कोई भी क्रोधी व्यक्ति दीख पड़े तो उसके आगे हाथ जोड़िये और कहिये कि नृसिंह भगवान् का मैं जय-जयकार कर रहा हूँ। क्रोधी को भगवान् के साथ देखिये। उसे प्रभु से अलग करने पर उसका क्रोध आप में आ जायेगा। यह व्यक्ति बहुत क्रोधी है। किसी रूप में योग्य नहीं है, इसे बहुत गुस्सा आ रहा है—पर ऐसे व्यक्ति को ईश्वर के साथ देखिये। तब आपकी दृष्टि और मन खराब नहीं होंगे।

किसी कपटी व्यक्ति को देखकर ऐसी भावना करिये कि 'मैं अभी वामनजी महाराज के दर्शन कर रहा हूँ।' मैंने कथा मैं सुना था कि वामनजी ने बलि राजा के साथ प्रपंच किया था। वामनजी ने प्रपंच किया था। ऐसे व्यक्ति को वामनजी के साथ देखिये। कैसा भी व्यक्ति हो उसे ईश्वर के साथ देखने की आदत डांलिये। जड़ और चेतन सभी का आधार परमात्मा हैं। यह सब

कुछ परमात्मा में निहित है। जगत् को भोग-बुद्धि से न देखिये, स्वार्थ-दृष्टि से भी न देखिये, जगत् को भगवत्-भाव से देखिये। जगत् भगवान् में है। जगत् का आधार परमात्मा है। यही विराट् पुरुष की धारणा है-

पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम्।
महातलं विश्वसृजोऽथगुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जंघे।। (२-१-२६)

यह चौदह मंजिलों का बंगला है-पाताल, रसातल, महातल, तलातल, सुतल, वितल, अतल, महीतल, नभः तल, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक। सात मंजिलें ऊपर हैं तथा सात मंजिलें नीचे हैं। सबका आधार भगवान् हैं। यह सभी लोक भगवान् के एक-एक अंग में निहित हैं। पाताल ईश्वर के चरण में है। ब्रह्मलोक सबसे ऊपर है। यह परमात्मा के मस्तिष्क में है। विराट् पुरुष की धारणा स्थिर करिये। जगत् को ब्रह्म-भाव से देखिये। जगत् को जो ब्रह्म-भाव से देखता है उसका मन धीरे-धीरे शुद्ध होता है।

भक्ति में, ज्ञान में मन मुख्य है। मन जितना शुद्ध होगा, उतना ही भक्ति में आनन्द आयेगा। मानव का मन मैला है। इससे उसको भक्ति में आनन्द नहीं आता है। विराट् पुरुष की धारणा से मन विशुद्ध होता है। बाद में परमात्मा के चतुर्भुज स्वरूप का ध्यान करने की आज्ञा दी गयी है।

श्रीअंग मेघ-सदृश श्याम है। हाथ में शंख, चक्र, गदा और पद्म हैं। पीताम्बर पहिना है। प्रभु की आँखें प्रेम से भरी हैं। मुखारविंद अति सुन्दर है। मन शुद्ध हो जाने के बाद चतुर्भुज नारायण का ध्यान करिये। ध्यान करते-करते जैसे-जैसे जगत भूलता जाता है, वैसे-वैसे आनन्द बढ़ता जाता है। ध्यान करने वाला यह भी भूल जाता है कि मैं ध्यान कर रहा हूँ। इस प्रकार वह ध्येय में मिल जाता है। प्रारम्भ में ध्यान करने वाला ध्येय से भिन्न होता है। मैं अपने प्रभु का ध्यान कर रहा हूँ-इससे मैं हुआ ध्याता और प्रभु हुये ध्येय। प्रारम्भ में इस प्रकार ध्याता और ध्येय-ऐसा भेद-भाव होता है पर ध्यान में अति तन्मयता हो जाय, तब ध्यान करने वाला ध्येय में मिल जाता है। ध्येय के साथ वह एकरूप हो जाता है। प्रारम्भ में ध्याता, ध्यान और ध्येय-तीन होते हैं। पर ध्यान में अतिशय तन्मयता होने पर तीन से एक ही रह जाता है। त्रिपुटी का लय होता है। त्रिपुटी जैसे-दृष्टि-दर्शन-दृश्य, प्रेमी-प्रेम-प्रियतम, साधक-साधन-साध्य, प्रमाता-प्रमाण-प्रमेय, ध्याता- ध्यान-ध्येय, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, भक्त-भक्ति-भगवान्।

प्रारम्भ में ये तीनों तत्व भिन्न लगते हैं, पर बाद में तीनों एक हो जाते हैं। इसे ही हमारे शास्त्रों में अद्वैत कहते हैं। परमात्मा के सिवा बाद में कुछ नहीं रहता। इसे ही मुक्ति कहते हैं।

१७–कैवल्य मुक्ति और भागवती मुक्ति

ध्यान करने वाला ध्येय के साथ एकरूप हो जाता है। एक चीनी की पुतली थी। उसकी एक इच्छा हुयी सोचने लगी कि यह समुद्र कितना गहरा होगा? मैं समुद्र का नाप लेना चाहती हूँ। उसने अपने वर्ग के सभी भाई-बहिनों को इकट्ठा किया और कहा कि अब मैं समुद्र में कूद पड़ती हूँ। समुद्र का नाप लेकर बाहर आ जाऊँगी और आप लोगों को समझाऊँगी कि समुद्र कितना गहरा है? एक दिन बहुत मेहनत करके वह समुद्र में कूद पड़ी। इसके बाद वह बेचारी कभी बाहर न आ सकी। समुद्र में मिल गयी। समुद्र के साथ एक रूप हो गयी। यह हमारा जीव चीनी की पुतली जैसा है। जीव बिन्दु है, परमात्मा सिन्धु हैं। बिन्दु सिन्धु में मिल जाता है, फिर वह परमात्मा से भिन्न नहीं हो सकता है। इससे दिव्य आनन्द आता है। इस आनन्द को कोई नीरस नहीं बना सकता है।

ज्ञानी महापुरुष ब्रह्मचिंतन करते-करते ब्रह्मरूप हो जाते हैं। ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति। फिर वे परमात्मा से भिन्न नहीं हो सकते हैं। भक्त भगवान् के साथ एक रूप होता है। वेदान्त की भाषा में इसे कैवल्य मुक्ति कहते हैं। कैवल्य मुक्ति में जीव-ईश्वर एक हो जाते हैं। जो परमात्मा के साथ एक बार मिल जाता है, वह परमात्मा से कभी भी भिन्न नहीं हो सकता है। श्रीशंकराचार्य स्वामी पूर्ण अद्वैत को मानते हैं।

भगवान् शंकराचार्य स्वामी के बाद जो आचार्य हो गये, उनमें भगवान् श्रीरामानुजाचार्य स्वामी, भगवान् श्रीमहाप्रभुजी-सभी अद्वैत को तो मानते हैं, पर द्वैत के साथ मानते हैं। पूर्ण अद्वैत उनको मान्य नहीं है। भागवत में दोनों सिद्धान्तों का वर्णन है और दोनों सिद्धान्तों का समन्वय है।

भागवत में खण्डन नहीं है, मण्डन है। खण्डन करने से वैरभाव होता है, रागद्वेष बढ़ता है। मन खराब हो जाता है। सभी आचार्य महान् हैं। देश-काल की स्थिति का विचार करके वे जो उपदेश देते हैं, औचित्यपूर्ण ही होते हैं–

भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतम् द्वैतादति सुन्दरम्।

वैष्णवाचार्य इस सिद्धान्त को समझाने के लिए बहुत सुन्दर दृष्टान्त देते हैं। मछली जो पानी में डूबी हुई है, उसे गर्मी का जरा-सा भी त्रास नहीं होता है, उसे बहुत शीतलता मिलती है। पर उसे अगर पानी पीने की इच्छा हो तो वह पानी में निमग्न रह कर पानी नहीं पी सकती है। मछली को अगर पानी पीना है तो उसे पानी से बाहर आना ही पड़ेगा। उसे ऊपर आना ही पड़ता है। जल से भिन्न होकर ही वह जल पान कर सकती है। ब्रह्मरस का अनुभव करना हो तो उसे ब्रह्म से भिन्न होना ही पड़ेगा।

वैष्णव आचार्यों ने वर्णन किया है– ब्रह्म रसमय है। रसमय ब्रह्म का अनुभव उसे ही होगा जो ब्रह्म से अलग रहता है। आनन्द की अनुभूति करनी हो, ब्रह्म के रसात्मक स्वरूप का अनुभव करना हो तो ब्रह्म से अलग होना पड़ेगा। वैष्णव ब्रह्म–रस का अनुभव करते हैं। अरे! शक्कर खाने में मजा आता है कि शक्कर बनाने में? शक्कर को मालूम नहीं है कि मुझमें कितनी मिठास है। ज्ञानी पुरुष ब्रह्म रूप होते हैं। ब्रह्म–रस में निमग्न हो जाते हैं। उनको कोई दुःख नहीं है पर ब्रह्म का जो रसात्मक आनन्द है, उसके अनुभव के लिए वैष्णव ब्रह्म से अलग रहते हैं। उन्हें नित्य सेवा में ही आनन्द आता है। वेदान्त के ग्रन्थों में ज्ञान के आधार पर अद्वैत का वर्णन किया गया है। वैष्णव शास्त्रों में प्रेम के आधार पर अद्वैत का वर्णन किया गया है। वैष्णव प्रेम से परमात्मा के साथ एक रूप हैं पर परमात्मा की सेवा करने के लिये वे परमात्मा से भिन्न रहना चाहते हैं–

नेक्तां नाथ मे स्पृहास्ति।

वैष्णव ईश्वर से अलग रहकर ईश्वर की सेवा करना चाहते हैं।

पति–पत्नी दोनों भिन्न होने पर भी एक होते हैं। एक होने पर भी भिन्न हैं। भक्त और भगवान् भीतर से एक ही हैं। भक्त भगवान् से अलग नहीं रह सकता है पर भक्तों को भगवान् की सेवा में आनन्द आता है। पूर्ण अद्वैत में बराबर सेवा नहीं हो सकती है इससे ही वैष्णव भगवान् से भिन्न रहते हैं। वे मानते हैं कि मैं भगवान् का दास हूँ। मैं भगवान् की सखी हूँ। मुझे परमात्मा से एक नहीं होना है। मुझे नित्य सेवा में जाना है।

वैष्णवाचार्यों ने वर्णन किया है–मल–मूत्र से भरा यह शरीर ठाकुरजी की सेवा के लायक नहीं है। इस शरीर से भगवान् की सेवा नहीं हो सकती है। वैष्णव भगवान् जैसा अलौकिक, अप्राकृत दिव्य रूप धारण करते हैं। जिस शरीर में मल नहीं है, मूत्र नहीं है। जो शरीर अति दिव्य है। भगवान् जैसा ही अति दिव्य स्वरूप धारण कर, परमात्मा की नित्य सेवा में जाते हैं, सेवा उपयोगी भावात्मक दिव्य स्वरूप श्रीयमुनाजी देती हैं। वैष्णवों को भगवान् के साथ एकरूप नहीं होना है। वैष्णव का संकल्प होता है कि मुझे तो रासलीला में जाना है। मुझे तो श्रीकृष्ण के साथ खेलना है। मुझे अब किसी स्त्री या पुरुष के साथ नहीं खेलना है, परमात्मा के साथ खेलना हैं। मुझे भगवान् की सेवा में जाना है–

ममास्तु तव सान्निध्ये

वैष्णव भावात्मक दिव्य स्वरूप धारण करके बैकुण्ठ धाम में–गोलोक धाम में, नित्य सेवा में, नित्य लीला में जाते हैं। वैष्णवों को जो मुक्ति मिलती है, उसका नाम है 'भागवती–मुक्ति'।

ज्ञानी पुरुष परमात्मा का ध्यान करते हुए परमात्मा के साथ एक रूप होते हैं, उसे कैवल्य मुक्ति कहते हैं।

दोनों का लक्ष्य एक ही है किन्तु साधना में थोड़ा फर्क है–

अद्वैतं सुखबोधाय द्वैतं भजनहेतवे।
तादृशी यदि भक्ति स्यात् सानुमुक्ति सतां अधिकारः॥

भक्त और भगवान् भीतर से एक हैं। फिर भी भक्त सेवा करने के लिए भगवान् से भिन्न रहते हैं। उन्हें सेवा में ही आनंद आता है। उन्हें परमात्मा के साथ एक रूप होना पसंद नहीं है।

एकनाथ महाराज ने भावार्थ रामायण में इस सिद्धांत को समझाने के लिये बहुत सुन्दर दृष्टान्त दिया है। एकनाथ महाराज की भावार्थ रामायण दिव्य है। अनेक रामायण इकट्ठी करके वे कथा करते हैं। श्रीसीताजी रावण की लंका में राम-नाम का जप करती हैं। वे श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान करती हैं, रामजी का साहचर्य था, संयोग था। वे जब राम- सेवा करती थीं, तब इतना ध्यान नहीं करती थीं, पर जब सीताजी का रामजी से वियोग हुआ, तब लंका में रामजी का ध्यान करते-करते वे तन्मय हो जाती थीं।

वे ध्यान में ऐसी तन्मय हो गयीं कि जहाँ उनकी दृष्टि जाती वहाँ उन्हें राम ही दिखाई पड़ते। वृक्ष में राम, वृक्ष के पत्ते में राम–चारों ओर राम ही राम दीखने लगते। माताजी राम-दर्शन में तन्मय हो गयीं। उन्हें बहुत आनंद मिला। इससे इस वन को अशोक वन कहते हैं।

माँ जानकी रावण की लंका में विराज रही थीं। तब त्रिजटा राक्षसी उनकी सेवा कर रही थी वह जानती थी ये परमात्मा की शक्ति हैं। अन्य राक्षस स्त्रियाँ यह बात नहीं जानती थीं। वे माताजी के इस स्वरूप से अनभिज्ञ थीं, पर त्रिजटा जानती थीं। इसीसे वह माताजी की सेवा करती थी। एक बार ऐसा हुआ कि श्रीसीता माँ रामचन्द्रजी का ध्यान करते-करते अतिशय तन्मय हो गयीं। आज तक तो उन्हें बाहर चारों ओर श्रीराम दीख पड़ते थे पर अब तो भीतर भी श्रीराम दिखाई देने लगे। आज तक श्रीराम बाहर ही दीख पड़ते थे। आज ध्यान की अतिशय तन्मयता के कारण, आत्म स्वरूप में भी श्रीराम के दर्शन हुये। तब सीताजी को भान नहीं रहा कि राम मेरे पति हैं, मैं भी–राम की पत्नी हूँ। मैं जनक राजा की पुत्री हूँ। रामजी के साथ मेरा विवाह हुआ है। वे सब-कुछ भूल गयीं। बाहर श्रीराम और भीतर भी श्रीराम। राम के सिवाय और कुछ भी नहीं। तीन-चार घंटे तक ऐसी समाधि लगी रही। बाद में श्रीसीताजी समाधि से उठीं। माताजी का आज स्वास्थ्य ठीक नहीं है। त्रिजटा राक्षसी आती है और सीताजी को वंदन करती है। पूछती है–आज आप क्यों उदास हैं? आपको क्या हो रहा है?

श्रीसीताजी कहती हैं–मैंने एक बार कथा में सुना है कि एक कीड़ी भ्रमरी का चिंतन करती रहती थी और वह भ्रमरी हो गयी। श्रीराम–वियोग में, रामजी के ध्यान में, मैं कदाचित् सीता न रहूँ मिट जाऊँ और राम हो जाऊँ तो?....मुझे यह पसंद नहीं है। त्रिजटा ने कहा–माताजी, तब तो बहुत अच्छा है इस में क्या बुरा है? आप यदि रामजी के ध्यान में राम हो जाती हैं, तब कभी रोने का अवसर ही नहीं आयेगा। आप राम हो जायेंगी तो रावण को मारेंगी।

तब सीताजी कहने लगीं–मैं राम हो जाऊँ, यह तुम्हें पसंद होगा पर मुझे पसंद नहीं हैं। तुमसे मैं सच ही कहती हूँ कि राम–सेवा में जो आनंद है, वह राम होने में नहीं है।

रामजी के चरण मैं गोद में ले लूँ, धीरे–धीरे उन चरणों की सेवा करूँ, प्रेम से परमात्मा मुझे स्वीकार लें। राम सेवा में बहुत आनंद है। मुझे राम नहीं होना है, मुझे राम होना पसंद नहीं है। मुझे तो रामजी की सेवा करनी है। रामजी के वियोग में, रामजी का सतत ध्यान करते–करते में सीता न रहूँ, मिट जाऊँ तो मेरे राम की सेवा कौन करेगा? मेरे राम दृष्टि उठाकर किसी स्त्री की ओर देखते तक नहीं। मेरे राम किसी स्त्री का स्पर्श तक नहीं करते। मैं राम हो जाऊँ तो मेरे रामजी की सेवा कौन करेगा? मैं श्रीराम और वे भी राम दो राम हो जाय तो किसे आनंद होगा? सीताराम की जोड़ी नहीं रहेगी। मुझे राम होना पसंद नहीं है। मुझे राम–सेवा में ही आनंद आता है।

त्रिजटा ने कहा–माताजी, आप चिंता न करिये। कदाचित् रामजी का ध्यान करते–करते आप राम हो जायगीं तो रामजी ध्यान करते–करते सीता बनकर आपकी सेवा करने आवेंगे। जगत् में सीता–राम की जोड़ी सदैव अमर रहेगी।

सीताजी रामजी का ध्यान करते–करते रामरूप हो जायें तो वह ज्ञानी पुरुष की 'कैवल्यमुक्ति' है। जीव ब्रह्म चिंतन करते–करते ब्रह्म रूप हो जाता है।

अनेक बार परमात्मा भी भक्तों की सेवा करते हैं। भगवान् को भक्तों की सेवा करने में आनंद आता है। परमात्मा भक्तों के साथ खेलते हैं। भगवान् की सेवा में नित्य–लीला में आनंद आता है। वैष्णव परमात्मा के धाम में नित्य–लीला में जाते हैं। प्रभु के दरबार में काल नहीं जा सकता? वहाँ काल के काल को प्रवेश नहीं मिलता है। वैकुण्ठ में काल नहीं आ सकता। वहाँ नित्य आनंद है। गोलोक धाम वैकुण्ठ धाम में भक्त भगवान् के साथ खेलते हैं। भगवान् की नित्य सेवा में, नित्य लीला में वे जाते हैं, वैष्णव प्रेम से तो परमात्मा के साथ एक रूप होते हैं, पर अंदर से एक होने पर बाहर से भिन्न रहते हैं। भगवान् की वे नित्य सेवा करते हैं। वैष्णवों की इस मुक्ति का नाम है–भागवती मुक्ति।

शुकदेवजी महाराज राजर्षि परीक्षित को सावधान करते हैं। किसी भी तरह की मुक्ति की प्राप्ति के लिए मन से संसार का त्याग करना पड़ता है। संसार का सुख जिसे अच्छा लगता है, उसके ज्ञान में भक्ति में बहुत बिघ्न आते हैं। उसकी भक्ति बढ़ती नहीं है। योग में शांति नहीं है, त्याग में शांति है। भोग में क्षणिक सुख है, त्याग में अनंत सुख है। संसार का सुख सभी को समान मिलता है। मानव को श्रीखंड पूरी खाने में जैसा मज़ा आता है, वैसा ही आनंद पशु को हरी घास खाने में आता है। जीभ का सुख मानव और पशु को समान लगता है। किसी श्रीमान को बंगले में पलंग पर लेटने में जैसा आनंद आता है, वैसा ही आनंद गधे को कूड़े के ढेर पर लेटने में आता है। गधे को कोई व्यक्ति बंगले में ले जाकर पलंग पर बिठायेगा तो उसे आनंद नहीं आयेगा। दोनों का आनंद तो समान है। इन्द्रियों का सुख सभी को समान रूप से मिलता है। इन्द्रिय-सुख में भेदभाव नहीं रहता है।

अनेक बार गरीब लोग मन को बिगाड़ते हैं कि ये धनवान लोग बहुत सुख भोगते हैं, ऐसा सुख हमें नहीं मिलता है, परन्तु अन्य के सुख का विचार नहीं करना चाहिए। लौकिक सुख भोगने वालों का विचार न करिये। उनका स्मरण तक न करिये। वे तो दया के पात्र हैं। उन्हें सच्चे सुख का पता नहीं है। उनकी बुद्धि बिगड़ी हुई है इससे वें लौकिक सुख में फँसे हैं। जिन्होंने लौकिक सुखों का त्याग किया है। जो परमात्मा के ध्यान में तन्मय हैं, ऐसे महापुरुषों का स्मरण करिये-

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम्॥ (२-२-३६)

आनंद परमात्मा का स्वरूप है। एक-एक इन्द्रिय से परमात्मा की भक्ति करने की जरूरत है। भोग से इन्द्रिय घिस जाती है क्षीण हो जाती है। भक्ति से इन्द्रियों को पुष्टि मिलती है। एक-एक इन्द्रिय को भक्ति-रस दीजिए। भक्ति-रस से इन्द्रिय को निमग्न करिये। जिस इन्द्रिय से मानव, भक्ति नहीं करता है, उस इन्द्रिय से वह जाने-अनजाने पाप करता है। प्रत्येक इन्द्रिय को प्रभु के साथ संलग्न कर दीजिए। श्रीकृष्ण का नाम है हृषीकेश, हृषिक शब्द का अर्थ है इन्द्रिय, इन्द्रियों के स्वामी हैं परमात्मा श्रीकृष्ण। आँख का स्वामी कौन? कान का पति कौन? कदाचित् कोई व्यक्ति यह समझ रहा है कि मधुर ध्वनि सुनने पर कान वहाँ जाते हैं। मधुर ध्वनि या शब्द कान का स्वामी नहीं है। सुन्दर रूप देखने पर आँखें वहाँ दौड़ती हैं। लौकिक रूप आँख का स्वामी नहीं है। आँख को रूप दिखायी दे तो नींद नहीं आती। कान को कोई शब्द सुनाई दे तो नींद नहीं आती। ये इन्द्रियाँ लौकिक रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गंध-विषयों को छोड़ देतीं हैं, तब परमात्मा के साथ सोती हैं, इन्द्रियों के स्वामी परमात्मा हैं।

एक-एक इन्द्रिय को परमात्मा के साथ संलग्न करिये। आँखों से भक्ति करिये। कानों से भक्ति करिये। जीभ से भक्ति करिये। मन से भक्ति करिये। जो प्रत्येक इन्द्रिय को प्रभु के मार्ग की ओर मोड़ देता है, जो प्रत्येक इन्द्रिय से भक्ति करते-करते अपने देह का भान भूलता है, उसका मरण सुधरता है। आँखें श्रीकृष्ण के दर्शन करें, मन श्रीकृष्ण का स्मरण करे, जीभ प्रभु के नाम के जप करे, कान परमात्मा के नाम को सुनें। प्रत्येक इन्द्रिय से भक्ति करने की आदत डालिये। तब जीवन व मरण मंगलमय होंगे–

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया।
गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने।।

(२-४-१२)

तीनों अध्यायों की कथा तक शुकदेवजी महाराज को देह का भान-ध्यान न था। चौथे अध्याय में कुछ सचेत हुए, तब उन्होंने मंगलाचरण किया है। कथा का ऐसा नियम है कि वक्ता को कथा के आरम्भ में मंगलाचरण करना चाहिये, परन्तु शुकदेवजी महाराज को तो देह तक का ध्यान न था। भगवत्-भाव में उनका हृदय निमग्न था। परमात्मा के दर्शन में उनकी तन्मयता थी। परमात्मा की प्रेरणा से ही वे पधारे हैं, सिंहासन पर बैठे हैं और कथा का आरम्भ किया है। तीनं अध्यायों तक की कथा कहने पर भी महाराज को मालूम नहीं है कि मैं क्या कर रहा हूँ।

जब वक्ता को याद रहता है कि मैं शास्त्री हूँ और मैं बोल रहा हूँ, तब प्रभु तुरन्त नहीं आते हैं। वक्ता श्रीकृष्ण दर्शन में, स्मरण में तन्मय होकर जब बोलते हैं, तब 'मैं वक्ता हूँ'–यह भी भूलते हैं। तब उनके मुख के द्वारा भगवान् ही बोलते हैं।

तुकाराम महाराज बहुत सुन्दर कथा कहते थे। एक वैष्णव ने कहा–आप कथा बहुत सुन्दर कहते हैं। तुकाराम महाराज ने कहा–ऐसा न कहिये, मैं तो अपने विट्ठलनाथजी के दर्शन करता हूँ। मैं अपने प्रभु का स्मरण करता हूँ। मैं बोलता ही नहीं हूँ। मैं अपने प्रभु के दर्शन में, स्मरण में लीन रहता हूँ।

शुकदेवजी महाराज श्रीकृष्ण दर्शन में ऐसे तन्मय थे कि तीन अध्यायों की कथा कहने तक थोड़ा सा देह भान उनको हुआ। मैं कहाँ बैठा हूँ? ऐसा उन्होंने विचारा और गंगाजी के दर्शन उन्हें हुए। उन्हें पता चला कि मैं गंगा-तट पर बैठा हूँ ये बड़े-बड़े ऋषि, महात्मा मेरी कथा सुनने बैठे हैं।

शुकदेवजी महाराज कथा कर रहे हैं। वहाँ उनके पूज्य पिताजी व्यासनारायण भी हाथ जोड़कर बैठे रहते हैं। वे सोचते हैं कि यह मेरा पुत्र है, पर मुझे लगता है कि मुझ से श्रेष्ठ है। कैसा बोल रहा है। मैंने भागवत बनाई पर भागवत के रहस्य को तो मेरा पुत्र जैसा समझा रहा है, वैसा मैं भी नहीं समझ हूँ। शुकदेवजी के मुँह से कथा सुनते हुए व्यासजी को आनन्द हुआ। व्यासनारायण बैठे

हैं। बड़े-बड़े ऋषि शुकदेवजी की कथा में बैठे हैं। इन सबको देखकर शुकदेवजी को थोड़ा संकोच हुआ। देहातीत स्थिति में जो रहता है, उसे किसी मर्यादा की अपेक्षा नहीं, परन्तु देह-भान होने पर धर्म की मर्यादा रहती है। इससे देह-भान के बाद शुकदेवजी ने चौथे अध्याय में मंगलाचरण किया—

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यदवंदनम् यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥

(२-४-१५)

परमात्मा श्रीकृष्ण मंगलमय हैं, संसार अमंगल रूप है। संसार में जहाँ देखते हैं वहाँ अधिकांश रूप से काम राज्य है। सभी कामातुर होकर प्रवृत्ति करते हैं। प्रायः सभी जीव काम सुख में फँसे हैं—

पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरां उन्मत्तः सृष्टजगत्।

वासना ही मदिरा है। इस मदिरा को पीकर संसार सकाम है, इससे संसार मंगलमय नहीं है। परमात्मा निष्काम है, मंगलमय है।

हमारे शास्त्रों में लिखा है कि काम अमंगलरूप है। जिसकी आँखों में काम है, जिसके मन में काम है, उसका सब कुछ अमंगलमय है। श्रीकृष्ण का काम से स्पर्श नहीं है। परमात्मा के पास काम नहीं आ सकता। सूर्यनारायण के पास अंधकार नहीं जा सकता। परमात्मा का सब कुछ मंगलमय है। श्रीकृष्ण का स्वरूप मंगलमय, श्रीकृष्ण का नाम मंगलमय, श्रीकृष्ण की लीला मंगलमयी, श्रीकृष्ण का धाम मंगलमय। मंगलाचरण में मंगलमय परमात्मा के चरणों में वंदन करते हैं। श्रीकृष्ण का कीर्तन, श्रीकृष्ण स्मरण, श्रीकृष्ण का अर्चन मंगलमय है। श्रीशुकदेवजी भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में बार-बार वंदन करते हैं।

१८–चतुःश्लोकी भागवत

राजा परीक्षित ने प्रश्न किया है—इस जगत् की उत्पत्ति किस तरह होती है; इस जगत् का प्रलय किस तरह होता है—यह मुझे जानना है। शुकदेवजी ने कहा—एक बार नारदजी ने ब्रह्माजी से ऐसा प्रश्न पूछा था। ब्रह्माजी ने नारदजी को जो कथा सुनायी थी, वही मैं तुम्हें सुनाऊँगा।

प्रलय-काल में सभी को पेट में रखकर परमात्मा शयन कर रहे थे। सृष्टि के आरम्भ में प्रभु की खेलने की इच्छा हुई। 'एकोऽहम् बहुस्याम'—इस संकल्प से पुरुष प्रकृति का जोड़ा उत्पन्न हुआ। माया-रहित शुद्ध ब्रह्म कुछ कर नहीं सकता। निर्गुण, निराकार, ब्रह्म सर्व का आधार है, परन्तु

वह निष्क्रिय है। माया-विशिष्ट ब्रह्म जगत् उत्पन्न करता है। चावल को बोने से चावल उत्पन्न नहीं होते। धान के बोने से ही चावल उत्पन्न होते हैं। चावल पर छिल्के का आवरण होने पर उसे धान कहते हैं। उसी तरह शुद्ध ब्रह्म पर माया का आवरण हो, तभी ज़गत् उत्पन्न हो सकता है। परमात्मा की खेलने की इच्छा हुई। उसे ही माया कहते हैं। तब प्रकृति-पुरुष का जोड़ा उत्पन्न हुआ। प्रकृति-पुरुष में से महत्तत्व हुआ। महत्तत्व से अहंकार हुआ। अहंकार के तीन भेद हुए--सात्त्विक, राजस और तामस। तामस अहंकार से पंचतन्मात्राएँ हुई। राजस अहंकार से इन्द्रियों के अभिमानी देव उत्पन्न हुए।

ये सभी तत्त्व भगवान् के संकल्प में से उत्पन्न हुए। परमात्मा के संकल्प में ऐसी ही दिव्य शक्ति है। मानव की बुद्धि इसका विचार तक नहीं कर पाती। यह सभी संकल्प सृष्टि है। ये सभी तत्व शक्तिहीन होने से शव जैसे पड़े थे। प्रभु ने एक-एक में प्रवेश किया। परमात्मा का सभी में प्रवेश हुआ। तब दिव्य शक्ति आयी। बाद में भगवान् की नाभि से कमल प्रकट हुआ। उस कमल में से ब्रह्माजी प्रकट हुए। ब्रह्माजी सोचने लगे--जिस कमल पर मैं बैठा हूँ, उस कमल का मूल कहाँ है? वे मूल खोजने गये पर उन्हें पता नहीं चला। तब ब्रह्माजी के कान में सोलहवाँ और इक्कीसवाँ अक्षर आ पड़ा। सोलहवाँ अक्षर 'त' और इक्कीसवां अक्षर है 'प'।

'तप, तप, तप,'--ऐसी आकाशवाणी ब्रह्माजी ने सुनी। सौ वर्षों तक ब्रह्माजी ने तपश्चर्या की। ब्रह्माजी को चतुर्भुज नारायण के दर्शन हुए। परमात्मा के दर्शन से आनन्द हुआ। प्रभु ने सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी को चार श्लोकों की भागवत-कथा सुनायी उसे महापुरुष चतुश्लोकी भागवत कहते हैं--

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चाव चेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रवष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यतस्यात्सर्वत्र सर्वदा॥

(२-९-३२/३३/३४/३५)

जब यह जगत् न था, तब मैं था। जब यह जगत् दीख रहा है, तब भी सर्व में चैतन्य रूप में मैं ही रहता हूँ। जब इस जगत् का विनाश होगा, तब भी मैं रहने वाला हूँ। जगत् में मेरे सिवाय जो कुछ भी दिखाई देता है, वह मेरी माया है।

माया की दो शक्तियाँ हैं–आवरण शक्ति और विशेष शक्ति। माया की आवरण शक्ति प्रभु को ढक कर रखती है और माया की विक्षेप शक्ति परमात्मा के आधार पर जगत् का भास कराती है। अंधकार दो काम करता है। रज्जु को वह ढक कर रखता है और रज्जु में सर्प का भास भी उत्पन्न करता है। सर्प नहीं है पर अंधकार में पड़ी हुई रस्सी, रस्सी नहीं दीखती है। सर्प ही दीख पड़ता है। सर्प-समान दीख पड़ती है। जो है, वह नहीं दिखाई देता पर वह जो नहीं है, वह दीख पड़ता है। यही माया है।

राजा ने प्रश्न किया–महाराज! यह माया के साथ सम्बन्ध कैसे हुआ और कब से हुआ?

शुकदेवजी महाराज सावधान करते हैं–राजा! माया झूठी है, तथा माया का जीव के साथ सम्बन्ध भी झूठा है। यह प्रश्न ही उचित नहीं है। तत्व-दृष्टि से सोचने पर जो सम्बन्ध ही नहीं है, उसके बारे में ऐसा प्रश्न ही नहीं उठता है।

स्वप्न में सारा जगत् दीख पड़ता है। परन्तु स्वप्न की क्रिया सत्य नहीं है। एकमात्र स्वप्न देखने वाले का स्वप्न के दृश्य पदार्थ के साथ सम्बन्ध हुआ ही नहीं है। स्वप्न देखने वाला घर में है। शय्या पर है। स्वप्न-द्रष्टा का स्वप्न के दृश्य पदार्थ के साथ का सम्बन्ध झूठा है। किसी ने स्वप्न में देखा कि मैं जंगल में गया हूँ लेकिन स्वप्न का जंगल झूठा है। स्वप्न के जंगल में जो पुरुष गया है, वह भी झूठा है। शय्या में जो पुरुष है, वही सच्चा है किन्तु उसे स्वप्न सच्चा लगता है। स्वप्न में एक कोहने पर भी अनेक दीख पड़ते हैं। स्वप्न देखने वाला जंगल में गया नहीं है, पर स्वप्न में दो पुरुष दीख पड़ते हैं–मैंने देखा कि मैं जंगल में गया हूँ।

स्वप्न के जंगल में किसी बाघ को देखकर डर लगता है। स्वप्न का बाघ झूठा है। स्वप्न में लाख दो लाख रुपये मिल जायें तो सुख लगता है। स्वप्न के रुपये भी झूठे हैं, स्वप्न का बाघ भी झूठा है। स्वप्न का संसार ही झूठा है। झूठा स्वप्न जिस तरह सुख-दुःख देता है, उसी तरह झूठी माया भी जीव को सुख-दुःख देती है। माया जीव को रुलाती है। माया झूठी है। माया के साथ जीव का सम्बन्ध भी झूठा है। माया के साथ जीव का सम्बन्ध हुआ ही नहीं है।

स्वप्न-काल अर्थात् अज्ञान-काल। स्वप्न देखने वाले का अपने अज्ञान से स्वप्न का उद्भव होता है। स्वप्न का संसार जिस तरह स्वप्न द्रष्टा को अपने से अनभिज्ञ रखता है, इसी तरह इस जगत् का भी हिसाब है। जगत् मन का विलास है। स्वप्न के जगत् और जाग्रत अवस्था के जगत्

में विशेष अंतर नहीं है। स्वप्न-जगत् थोड़े समय के लिए रहता है। जाग्रत-जगत् अधिक समय तक रहता है पर विनाश दोनों का ही है। जिसका विनाश निश्चित है, वह सत्य नहीं है।

माया, छाया के समान है। छाया झूठी है। छाया किसी के हाथ नहीं आती है। छाया को कोई नहीं पकड़ पाता, पर छाया दीख पड़ती है। मानव जब दीपक के समक्ष रहता है, तब छाया नहीं दिखाई देती। दीपक से विमुख होने पर छाया आगे आ जाती है। उसी तरह जीव जब तक परमात्मा के सम्मुख रहता है, तब तक माया नहीं दीख पड़ती। जीव परमात्मा से विमुख हुआ कि माया आगे आकर खड़ी हो जाती है। इस प्रकार परमात्मा का विस्मरण ही माया है। परमात्मा का निरंतर स्मरण ही ज्ञान है। ब्रह्म-हत्या जैसा कोई पाप नहीं है। अरे ब्रह्म को कोई मार सकता है। क्या ब्रह्म-हत्या अर्थात् ब्रह्म से विमुख होना। विमुख होने वाला ही पाप करता है। माया उसे घेर लेती है, त्रस्त करती है। स्वप्न सोये हुए व्यक्ति को सुख-दुःख देता है। जाग्रत को स्वप्न का सुख नहीं है, दुःख भी नहीं है। सोये हुए जीव को संसार मिलता है, जाग्रत को भगवान् मिलते हैं। जो जाग्रत हुआ है, उसे भगवान् के दर्शन होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण जब प्रकट हुये, तब सारा जगत् गहरी नींद में था, वसुदेव-देवकी जाग्रत थे। उन्हें परमात्मा के दर्शन हुए। जो जाग्रत है, वह परमात्मा के सम्मुख रहता है। जो परमात्मा से विमुख रहता है, वह सोया हुआ है। माया, जीव को संसार में फँसाकर रखती है, ईश्वर से विमुख रखती है।

जीव का माया के साथ माना जाने वाला सम्बन्ध सच्चा नहीं है। वह तो झूठा ही है। माया का आदि नहीं है, माया का अन्त आता है। माया अनादि किन्तु स-अन्त है और परमात्मा अनादि अनन्त है। अज्ञान का प्रारम्भ कब हुआ, किसी को भी मालूम नहीं है। अज्ञान अनादि है पर अज्ञान का अंत आता है।

गुजरात में रहने वाले किसी भाई से पूछिए-तुम्हें कन्नड़ भाषा आती है? वह कहेगा कि मुझे कन्नड़ भाषा नहीं आती है। आप पूछिए तुम्हें कन्नड़ का अज्ञान कितने वर्षों से है? दस वर्षों से है कि बीस वर्षों से है? वह तो इतना ही जानता है कि मेरा जन्म गुजरात में हुआ है, मेरा जन्म जब से हुआ तब से मुझे कन्नड़ भाषा नहीं आती है। आप पुनः पूछिये-तुम्हारा जन्म जब नहीं हुआ था, तब तुम्हें कन्नड़ भाषा आती थी। कन्नड़ भाषा का अज्ञान क्यों है? कब से है? वह कुछ नहीं बता सकेगा। गुजरात का कोई व्यक्ति कर्नाटक में दो-चार वर्षों से रहने लगता है, तब उसे कन्नड़ भाषा आ जाती है। तब वह कह सकता है कि अब मुझे भाषा का ज्ञान हुआ है।

ज्ञान कब हुआ, नहीं कह सकते, अज्ञान कब से है, नहीं कह सकते हैं। अज्ञान का अन्त ज्ञान से आता है। ईश्वर ज्ञान का तथा माया अज्ञान का प्रतीक है। माया का अंत आता है। जीव जब ईश्वर के सम्मुख रहता है, तब उसे माया नहीं दिखाई देती।

एक बार सुदामा को परमात्मा ने सम्पत्ति दी। सुदामा अधिक भक्ति करने लगे। वे निरन्तर भक्ति कर रहे हैं, परमात्मा के ध्यान में तन्मय रहते हैं। एक बार उनको संकल्प हुआ कि माया की बातें हो रही हैं पर माया मुझे क्यों नहीं दिखाई देती। यह माया कैसी होगी? उन्होंने प्रभु से कहा–मुझे माया दिखाइये। परमात्मा ने कहा–तुम मुझे भूल जाओ तो तुम्हें माया दिखाई देगी। जो परमात्मा के सम्मुख रहता है, उसे माया कैसे दिखाई देगी?

श्रीकृष्ण और सुदामा गोमती नदी में स्नान करने गये, जल्दी-जल्दी में, सुदामा स्नान करने लगे। वहाँ वे श्रीकृष्ण को भूल गये। प्रभु ने उनको माया दिखलाई। जैसे ही सुदामा ने नदी में डुबकी लगाई कि गोमती में बाढ़ आई। सुदामा प्रवाह में खींचे जाने लगे। पानी में डूबते-तैरते वे एक घाट के पास आ पहुँचे। सुदामा घाट के ऊपर चढ़ गये। उसी समय एक हाथी ने आकर उनके गले में हार पहनाया। गाँव के राजा मर गये थे। इससे लोगों ने उन्हें राजा बनाया। सिंहासन पर बैठाया और राजकुमारी से उनका विवाह करवा दिया। सुदामा सब कुछ भूल गये। पूर्व का कुछ याद नहीं आ रहा था। उनकी कई सन्तानें हुईं एक बार बीमारी से उनकी रानी की मृत्यु हुई। इससे सुदामा रोने लगे। लोगों ने कहा–रोइये नहीं, वह जहाँ गयी है, वहाँ आपको भी पहुँचा देंगे। स्त्री की मृत्यु होने पर पुरुष को भी उसके साथ चिता में चढ़ा देने का रिवाज था वहाँ। सुदामा को श्मशान में वे लोग ले गये। सुदामा घबरा गये। घबराहट में प्रभु का स्मरण करने लगे। उन्हें याद आया कि मैं तो ब्राह्मण हूँ। मुझे संध्या करनी चाहिए। सुदामा ने स्नान करने के लिये डुबकी लगायी और तुरन्त वे गोमती में पहुँच गये। अभी तो श्रीकृष्ण ने स्नान करके पीताम्बर भी पूरा पहिना नहीं था। वहाँ सुदामा रोते-रोते आ पहुँचे। श्रीकृष्ण पूछने लगे–मित्र क्यों रोते हो? सुदामा कहने लगे–यह सब कहाँ चला गया? यह क्या है? भगवान् कहने लगे–भैया! यह मेरी माया है। मेरे बिना जो कुछ दिखाई देता है, वह मेरी माया है।

माया नाचती है। माया को नाचती हुई देखकर उससे मोहित हुआ जीव भी नाचता है। माया को नर्तकी कहा गया है। नर्तकी माया के त्रास से मुक्त होना है तो नर्तकी शब्द को उल्टा करके कीर्तन कीजिये। परमात्मा का कीर्तन करिये। प्रभु का स्मरण करिये श्रीकृष्ण का ध्यान-स्मरण करिये। माया आपको दिखाई नहीं देगी। माया असावधान को रुलाती है। जो सावधान रहता है, उसे माया नहीं रुला सकती है।

सूतजी सावधान करते हैं। चार श्लोकों में भागवत की कथा परमात्मा ने ब्रह्माजी को सुनायी। ब्रह्माजी ने वही कथा नारदजी को सुनायी। नारदजी ने वही कथा व्यास महर्षि को सुनायी। व्यासजी ने उन चार श्लोकों के आधार पर अट्ठारह हजार श्लोकों का भागवत शास्त्र बनाया है।

राजा ने अनेक प्रश्न पूछे हैं। शुकदेवजी महाराज कहते हैं–राजन्! आप जैसे प्रश्न पूछ रहे हैं, वैसे ही प्रश्न एक बार विदुरजी ने मैत्रेय स्वामी से पूछे थे। मैत्रेय स्वामी ने विदुरजी को जो उपदेश दिया, उसकी कथा मैं आपको सुनाऊँगा। इस प्रसंग के साथ ही छोटा सा द्वितीय स्कंध पूर्ण हुआ–

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे अष्टादशसाहस्र्यां
संहितायां पुरुष संस्थानुवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः
इति द्वितीयः स्कन्धः समाप्तः
हरि ॐ तत्सत्

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव। गोविन्द दामोदमाधवेति॥

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

तृतीय स्कंध

श्रीशुक उवाचः-

एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयी भगवान् किल।
क्षत्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत्॥ (३-१-१)

परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान करने से मन शुद्ध होता है। एक स्थान पर बैठकर परमात्मा का ध्यान करते-करते, सेवा-स्मरण करते-करते, जो प्रभु को प्रसन्न करता है, उसका मन धीरे-धीरे स्थिर और शुद्ध होता है। जिसका मन शुद्ध हुआ है, जिसको भीतर से भक्ति का रंग लगा है, जिसको भक्ति में आनन्द आता है, वह व्यक्ति तीर्थयात्रा करने जाय या न जाय—समान ही है—

तुलसी जब मन शुद्ध भयौ,
तब तीरथ तीर गयौ न गयौ॥

जिनके हृदय भक्ति रस में निमग्न हैं, वैसे वैष्णव जहाँ विराजमान होते हैं, वहाँ की भूमि को वे तीर्थ बना देते हैं। तीर्थों में बहुत भटकना अच्छा नहीं है। बहुत भटकने से मन चंचल होता है।

राजा ने तृतीय स्कंध के प्रारम्भ में शुकदेवजी से सुन्दर प्रश्न पूछा है। वे पूछते हैं—महाराज! विदुरजी यात्रा क़रने क्यों गये थे? विदुरजी तो महान वैष्णव थे। उन्हें यात्रा करने की क्या जरूरत थी? उसका क्या कारण था?

शुकदेवजी महाराज कहते हैं—राजन्! धृतराष्ट्र ने पांडवों के साथ अन्याय किया। विदुरजी को वह बुरा लगा। उन्होंने धृतराष्ट्र को उलाहना दिया—तुम चोर हो। तुम यह सब गलत कर रहे हो। राज्य पांडवों का है, फिर भी तुम इन्हें नहीं दे रहे हो। यह चोरी के बराबर है।

मेहनत करके, धर्म से-नीति से लोग कमाते हैं तो जगत् में अन्याय नहीं होगा। चोर कौन है? अरे! ताला तोड़कर जो ले जाता है वह चोर है। जिसका है, उसे दिए बिना जो खाता है, वह चोर है। ताला तोड़कर ले जाना वाला तो चोरों का सरदार है पर चोरी अनेक रूपों से होती है। अनेक बार मन चोरी करता है। हमारे शास्त्रों में तो यहाँ तक लिखा है कि कम मेहनत से अधिक पाने को चोरी कहा जाता है। मेहनत के अनुसार मुनाफा लेना उचित है। पर अब आलस्य

बहुत बढ़ गया है। कम मेहनत और अधिक मुनाफा प्राप्त करने की वृत्ति हो गयी है। कम मेहनत से अधिक पैसा मिलेगा तो बुद्धि भ्रष्ट होगी।

वृद्ध माता-पिता की सेवा न करने वाला चोर है। जिसका हक है उसे दिए बिना जो खाता है वह चोर है। ठाकुरजी को भोग लगाये बिना जो खाता है, वह चोर है। आंगन में आये हुए भिखारी को दिए बिना जो खाता है, वह चोर है। अग्नि में बिना आहुति दिये जो खाता है, वह चोर है। अग्नि के आधार से ही खाना बनता है–

'अग्निर्वै देवानां मुखम्'

अग्नि द्वारा परमात्मा खाते हैं। जो अग्नि में आहुति दिए बिना खाता है, वह चोर है। सोचिए कि मैं किस प्रकार का चोर हूँ।

विदुरजी ने धृतराष्ट्र से कहा–आपकी वृत्ति बहुत बिगड़ गयी है। आप यह चोरी कर रहे हैं। संत तो सभी के प्रति समभाव रखते हैं। पर यह धृतराष्ट्र ऐसा दुष्ट है कि साधु-संतों को भी वह पसन्द नहीं है। गीताजी के प्रारम्भ में–'धृतराष्ट्र उवाच'–ऐसा पाठ आता है। धृतराष्ट्र पूछते हैं–'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।' उनका पूछना भगवान् श्री शंकराचार्य को पसन्द नहीं आया है।

धृतराष्ट्र ने जो कुछ पूछा है, उसकी व्याख्या श्रीशंकराचार्य ने नहीं की है उसे छोड़ दिया है। धृतराष्ट्र जो बोल रहा है, उसकी मैं क्या व्याख्या करूँ? वह तो चोर है, दुष्ट है। धृत अर्थात् कपटी, राष्ट्र अर्थात् संपत्ति। धृतराष्ट्र शब्द का अर्थ है कि जो परायी संपत्ति को हड़प कर लेता है, बिना हक का, बिना मेहनत का या किसी दूसरे की मेहनत का धन जो ले लेता है, वह धृतराष्ट्र है, वह चोर है। इससे शंकराचार्य ने गीताजी को प्रारंभ से माना है जहाँ से श्रीकृष्ण बोलते हैं। दूसरे अध्याय के ग्यारहवें श्लोक से भगवान् श्रीकृष्ण बोलते हैं। गीता के शांकरभाष्य का प्रारंभ वहीं से किया गया है। प्रथम अध्याय और दूसरे अध्याय के दस श्लोक छोड़ दिये गये हैं।

धृतराष्ट्र दुष्ट है। विदुरजी ने धृतराष्ट्र को उलाहना दिया है तुम यह बहुत गलत कर रहे हो। आधा राज्य पांडवों को दो तो अच्छा है, नहीं तो मैं तुम्हारे राज्य में रहना नहीं चाहूँगा। धृतराष्ट्र ने उनकी बात नहीं मानी। आप भी ध्यान रखिये। सगा भाई भी कोई बड़ा पाप कर रहा हो तो उसका संग छोड़ दीजिए।

परमात्मा श्रीकृष्ण अतिशय कृपा करते हैं, तब सच्चे संतों का, भजनानंदी संतों का सत्संग देते हैं। इस जगत् में ज्ञानी पुरुषों का संग सुलभ है। ज्ञानी पुरुष मिलते हैं पर भीतर से जिसे भक्ति का रंग लगा हो, संसार के विषयों से जिसे घृणा हो गयी हो, वैसे भजनानंदी संतों का संग नहीं

प्राप्त होता है। भगवान् जिस जीव पर कृपा करते हैं, उसे अधिक सुख संपत्ति नहीं देते हैं। उसे अधिक सत्संग देते हैं। मानव, जन्म से बिगड़ा हुआ नहीं है। मानव तो संग से बिगड़ता है और संग से ही सुधरता है। जब जन्म हुआ था तब चांय पीने की आदत नहीं थी। जब जन्म हुआ तब तम्बाकू सूँघने की आदत नहीं थी। मानव का जन्म हुआ, तब वह शुद्ध था। उसे कोई व्यसन न था। बड़ा होने पर वह जिसके संग में रहा, उसके जैसा होने लगा। संग का रंग मन को लगता है, जो ज्ञान में, वैराग्य में भक्ति में आपसे बढ़कर है, जो निरंतर भक्ति करते हैं, ऐसे महापुरुषों का संग करिये। उनका स्मरण करिये। संतों का अनुकरण करिये। संसार-सुख में फँसे किसी विलासी गृहस्थ का स्मरण न करिये। ऐसों को जीवन का आदर्श न बनाइए। विरक्त साधु-संतों को दृष्टि में रखिये। उनका संग करिये। घर में सत्संग हो तो घर छोड़कर यात्रा करने की भी जरूरत नहीं है। सत्संग ही बड़ा तीर्थ है।

चारों धामों की यात्रा करने पर भी लोगों का स्वभाव नहीं सुधरता है। यात्रा के बाद भी मन शुद्ध नहीं होता है। सत्संग ही ऐसा तीर्थ है जिसमें स्नान करने से मन का मैल धुलता है। घर में पति-पत्नी सत्संग करें। पति-पत्नी का पवित्र सम्बंध परमात्मा के लिए है। एकान्त में मन बिगड़ता है और एकान्त में ही मन को शुद्ध करना है। पति-पत्नी एकांत में बैठकर ध्यान करें। एकान्त में बैठकर किसी पवित्र ग्रंथ का वाचन करें। घर में सत्संग करें। घर में जिसे सत्संग मिला है, उसे यात्रा करने की भी जरूरत नहीं है। घर में कुसंग हो तो घर में न रहिये किन्तु यदि घर में सत्संग हो तो घर छोड़ना नहीं चाहिए।

हमारे शास्त्रों में लिखा है चोरी और व्यभिचारी ये दो महापाप हैं। वैष्णव बैर नहीं करते पर उपेक्षा करते हैं। किसी ने बड़ा पाप किया हो तो उसे दूर से जय श्रीकृष्ण करते हैं, उसके संग में नहीं रहते हैं। विदुरजी ने सोचा कि मेरा भाई पाप करता है तो उसके संग में मेरी बुद्धि भी भ्रष्ट होगी। मुझे अब घर में नहीं रहना है। विदुरजी ने घर का त्याग किया। हस्तिनापुर में ही गंगा-तट पर कुटीर बनाकर विदुरजी पत्नी के साथ रहते हैं। पति-पत्नी सारा दिन प्रभु की भक्ति करते हैं। ऐसा कार्यक्रम बनाकर रखा है कि मन को संसार के किसी विषय में जाने का अवसर ही नहीं मिलता है। मानव, मन को जब पाप करने की अनुमति देता है, तब ही मन पाप करता है। आप अपने मन के स्वामी हैं। मन आपका दास है। आत्मा की प्रेरणा के बिना मन पाप ही नहीं करता है। मन को किसी अच्छे काम में व्यस्त रखिये। फुरसत मिलने पर ही मन भोगे हुए विषयों का चिंतन करता है, पाप करता है। एक बार मन को पाप करने की अनुमति दे देने पर मन पुनः

अनुमति माँगेगा। फिर उसे पाप करने में मजा आयेगा। उसे सुख का आभास होगा। मन को एक क्षण भी पाप करने की अनुमति न दीजिए।

विदुरजी और उनकी पत्नी प्रातःकाल में नियमपूर्वक तीन घंटों तक ध्यान करते हैं। ध्यान के बाद बहुत प्रेम से बाल-कृष्ण लाल की सेवा करते हैं। वन से सुन्दर पुष्प चुनकर लाते हैं। लाला का पुष्पों से श्रृंगार करते हैं। सहस्रनाम के पाठ करते-करते चरणों में तुलसीजी अर्पित करते हैं। बाल-कृष्णलाल इसे ग्रहण करते हैं। मैं दर्शन कर रहा हूँ-ऐसी भावना वे करते हैं। लौकिक भावना से मन बिगड़ता है, अलौकिक भावना से मन शुद्ध होता है। बाद में तीन घंटों तक बालकृष्णलाल को प्रसन्न करके, भगवान के दर्शन करते- करते कीर्तन गाते हैं। कीर्तन के बाद तीन घंटों तक ठाकुरजी के सम्मुख कथा करते हैं। मानते हैं कि मेरे प्रभु कथा सुनते हैं, मैं अपने भगवान् की कथा भगवान् को ही सुना रहा हूँ।

कथा, कीर्तन, जप, ध्यान, सेवा में दिन-भर तन और मन को भगवान् में निमग्न रखते हैं। आप भी मन को श्रीकृष्ण से दूर न जाने दीजिए। अतिशय थकान न लगे, तब तक आराम न करिये। भक्ति के साथ, परोपकार के काम करते-करते जब अति थकान की अनुभूति हो, तब ही आराम करना चाहिए।

कितने लोगों की ऐसी आदत होती है कि घर का काम पूरा हो जाने के साथ ही वे शय्या में पड़ते हैं। सोचते हैं कि करिये अब आराम। शय्या में जब नींद नहीं आती तब मन पाप करता है। कितने लोग शय्या में पड़े-पड़े सोचते हैं-दाम घटेंगे कि बढेंगे? अब क्या होगा? शय्या में जिसे तुरन्त निद्रा नहीं आती, वह पैसे का चिंतन करता है, वह काम-सुख का चिंतन करता है। जब तक आपका विश्वास न हो जाये कि शय्या में पड़ने पर दो-तीन मिनटों में ही नींद आ जायेगी, तब तक कोई सत्कर्म करिये। इस शरीर को बहुत आराम न दीजिए। सत्कर्म में शरीर को कष्ट दीजिए। सत्कर्म में मन को निमग्न रखिये। थकान लगने पर ही आराम करिये।

पति-पत्नी सारा दिन भक्ति करते हैं। विदुरजी की भक्ति अलौकिक है। धृतराष्ट्र को मालूम हुआ कि मेरा भाई विदुर गंगा-तट पर कुटीर में रहता है। घर से उसने कुछ नहीं लिया है। मेरा भाई है। अगर भिक्षा माँगने जायेगा तो अच्छा नहीं लगेगा। धृतराष्ट्र को शर्म लगी। उसने सेवकों को आदेश दिया- विदुर को कष्ट न होना चाहिए। उसे अनाज दीजिए, वस्त्र दीजिए, बर्तन और सब कुछ दीजिए। धृतराष्ट्र के सेवक सब कुछ लेकर पहुँचे हैं। पापी भाई का अनाज लेने की विदुरजी की इच्छा नहीं थी। पर पत्नी की उन्होंने परीक्षा ली। विदुरजी ने पत्नी से कहा-मेरे भाई ने यह अनाज भेजा है, उसे घर में रखो। विदुर-पत्नी मना करती हैं। कहती हैं-यह अनाज पेट में जायेगा

तो मन बिगड़ेगा, भक्ति में बिघ्न आयेगा। अन्न-दोष मन को बिगाड़ता है। यह अनाज मुझे नहीं लेना है। गंगा-तट पर मैं जीभ के स्वाद को तृप्त करने नहीं आयी हूँ। मुझे सारा दिन भक्ति करनी है।

कई लोग घर छोड़कर गंगातट पर भक्ति करने तो जाते हैं पर बाद में उन्हें घर याद आता है। वे घर पर पत्र लिखते हैं—अचार का एक मर्तबान और मुरब्बे का एक डिब्बा भेज दीजिए। अरे! तुम्हें अचार ही खाना था तो घर छोड़कर क्यों आये? घर क्या बुरा था?

जरूरतें कम करिये, आपका पाप छूटेगा। जरूरतें कम होंगी तब भक्ति करने का समय मिलेगा। बढ़ती हुई जरूरतें पाप करने की स्थिति को ला देती हैं। तब परायों की खुशामद तक करनी पड़ती है। जिसे भाजी-रोटी में संतोष है वह उचित रूप से भक्ति कर सकता है।

जिसे अच्छा खाने में रस आता है, मजा आता है, वह क्या भक्ति कर सकेगा। वह तो जीभ को लाड़ कराता है। पेट को जितनी जरूरत है, उतना ही खाना पुण्य है, परन्तु जीभ को जिसका लालच हो, वही दे देना पाप है। एक बार उसका माँगा हुआ देंगे तो दूसरी बार वह अधिक माँगेगी।

पति-पत्नी ने निश्चय किया—अतिशय भूख लगेगी तब भाजी-रोटी बनायेंगे। गंगा-तट पर चौलाई खूब उगती ही है। उससे काम चला लेते हैं। अतिशय भूख लगने पर जो कुछ मिलता है, वह अमृत से भी मीठा लगता है। स्वाद भूख में है। जिसे भूख नहीं है, उसे नखरे सूझते हैं। बहुत भूख लगने पर ही विदुरजी व उनकी पत्नी भाजी-रोटी बनाते हैं। भगवान् को अर्पण करते हैं। गंगातट पर आदिनारायण परमात्मा की आराधना करते हैं। पांडवों ने वन में भक्ति की है और विदुरजी ने हस्तिनापुर में गंगातट पर पत्नी के साथ कुटीर में रहकर भक्ति की है। वे सारा दिन लाला को प्रसन्न करने में व्यतीत करते हैं। भाजी-रोटी में संतोष मनाते हैं।

जगत का आकर्षण श्रीकृष्ण करते हैं पर वैष्णवों का प्रेम परमात्मा को आकर्षित करता है। विदुरजी की भक्ति इतनी बढ़ गयी कि भगवान् आकर्षित हुये। भगवान एक लीला में अनेक कार्य करते हैं। पांडवों का वनवास पूर्ण हुआ। उन्होंने राज्य माँगा, दुर्योधन ने मना किया। तब धर्मराज ने द्वारिकानाथ से कहा—आप एक बार दुर्योधन को समझाइये। वह मान जाता है, तब अच्छा है। आधा राज्य हमारा है, पर हम आधा भी नहीं माँगते हैं। मात्र दो-तीन गाँव दे दे तो भी हमें संतोष है। मुझे युद्ध नहीं करना है। युद्ध से मेरा देश दुःखी होगा। क्षत्रिय को भिक्षा माँगने का अधिकार नहीं है, इससे छोटे-से राज्य की जरूरत है।

द्वारिकानाथ हस्तिनापुर में सन्धि कराने के लिये पधारने वाले हैं। धृतराष्ट्र ने यह सुना। उन्होंने विचार किया—सुना है कि वे द्वारिका में छप्पन भोग का भोजन करते हैं, मैं अच्छी तरह

से उनका स्वागत करूँगा। उनको समझाऊँगा कि दो भाइयों का झगड़ा है। आपको बीच में पड़ने की क्या जरूरत? श्रीकृष्ण को समझाकर मैं अपने पक्ष में ले लूँगा।

स्वागत की तैयारी हो गई। छप्पन भोग तैयार हो गये। द्वारिकानाथ पधारने वाले हैं, इससे हस्तिनापुर में अनेक देशों से ऋषि तथा महात्मा आये हैं। उन्हें आशा थी कि श्रीकृष्ण के दर्शन होंगे, उनका भाषण होगा, उनकी दिव्य-वाणी सुनेंगे। अनेक राजा आये हैं सबकी इच्छा है कि कौरवों-पाँडवों का युद्ध न हो तो अच्छा है। विदुरजी स्नान करने गंगा-तट पर आये हैं। आज गंगा तट पर सन्तों की भीड़ है। साधु-महात्मा बैठे हैं। बातें कर रहे हैं। कल द्वारिकानाथ पधारने वाले हैं, रथ में विराजेंगे। उनकी बहुत बड़ी सवारी निकलेगी, ऐसा हमने सुना है।

विदुरजी को बहुत आनन्द हुआ—कल मुझे द्वारिकानाथ के दर्शन होंगे। विदुरजी घर आये; पत्नी के साथ सत्संग में बैठे हैं। पति-पत्नी का ऐसा नियम था कि सारा दिन वे मौन रहते। जब सत्संग करने बैठते, तब ही बोलते। कहा जाता है कि घर में रहते हैं, इससे बातें करनी ही पड़ती हैं न? पति-पत्नी के दाम्पत्य में बहुत समय बातों में व्यतीत हो जाता है। जितना बोलना जरूरी है, उतना ही बोलना चाहिए। उतना ही बोलिए। अधिक न बोलिये।

पति-पत्नी सत्संग करने बैठे। तब विदुरजी कहने लगे—देवी! एक सन्त के मुख से कुछ सुना है, वह सब मुझे याद आ रहा है। एक साधु ने मुझे कहा था कि कोई वैष्णव बारह वर्षों तक एक स्थान में रहे और संसार के सभी सुखों का त्याग करके परमात्मा में तन्मय रहे, तो प्रभु को दया आती है। प्रभु सोचते हैं कि मेरे लिए इसने सब कुछ छोड़ दिया। जीव पात्र न हो तो प्रभु स्वप्न में दर्शन देते हैं, और पात्र हो तो प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं।

विदुरजी पत्नी को समझाते हैं कि बारह वर्षों तक इस कुटीर में तुमने बहुत कुछ सहन किया पर कल तुम्हें इसका फल मिलेगा। कल द्वारिकानाथ श्रीकृष्ण पधारने वाले हैं। लोग यही बातें कर रहे हैं कि वे दर्योधन को समझाने के लिये आने वाले हैं; पर मैं तुमसे सच कहता हूँ कि मेरे प्रभु मुझे दर्शन देने के लिये आ रहे हैं। दुर्योधन दुष्ट है, वह नहीं मानेगा। दुर्योधन तो एक निमित्त है। बारह वर्षों तक इस कुटीर में रहकर मैंने लाला की सेवा की है। श्रीकृष्ण-स्मरण में तन्मय हुआ हूँ। बारह वर्षों की भक्ति के बाद फल मिलना ही चाहिए। मेरे प्रभु मेरे लिए ही पधारेंगे। कल द्वारिकानाथ के दर्शन होंगे। विदुरपत्नी ने यह सुना। खुश हो गयीं वे। उनकी आँखें प्रसन्नता से गीली हो गयीं। विदुरपत्नी ने कहा—तीन दिनों से मुझे सुन्दर-सुन्दर स्वप्न दीख रहे हैं। मैंने ऐसा स्वप्न देखा कि मैं द्वारिका गयी हूँ। मेरे स्वामी सुन्दर-सुवर्ण सिंहासन पर विराजे हैं। बहुत भीड़ होती है। मैं तो वहाँ बहुत दूर खड़ी थी। सुवर्ण-सिंहासन पर विराजमान अपने नाथ के मैं

दर्शन कर रही थी। मैंने दोनों हाथ जोड़े थे। प्रभु ने मेरी ओर दृष्टि डाली। मेरी ओर देखा। मुझे देखकर होंठो पर स्मित् हास्य बिखरा और मैं जाग्रत हो गयी। कल मैंने स्वप्न देखा कि मैं बालकृष्ण लाल की आरती कर रही हूँ। अपने ठाकुरजी को मैं माला अर्पण कर रही हूँ।

मन की परीक्षा जाग्रत अवस्था में नहीं होती है। स्वप्न की अवस्था में होती है। प्रवृत्ति में नहीं होती है, निवृत्ति में होती है। देखना चाहिये कि निवृत्ति के समय में आपका मन कहाँ जाता है। पूर्ण निवृत्ति में मन जैसे विचार करता है वैसे विचारों से मन कहाँ फँसा है, इसका निर्णय होता है। मन जिनमें मग्न रहता है, स्वप्न में वे ही आते हैं। स्वप्न में भगवान् दीख पड़ते हैं। स्वप्न में प्रभु के नाम के जप हों, स्वप्न में परमात्मा की सेवा हो तो मानिये कि अब मैं वैष्णव हो गया हूँ। भीतर से जब भक्ति का रंग लग जाता है, तब स्वप्न में भगवान् याद आते हैं, स्वप्न में प्रभु का स्वरूप दीख पड़ता है। आपको स्वप्न में जो कुछ दीख पड़ता है, इसमें मन फँसा हुआ है ऐसा मानिये।

प्रभु जब कृपा करते हैं, तब पहिले स्वप्न में दर्शन देते हैं। विदुरजी ने कहा–यह स्वप्न बहुत सुन्दर है। कल हमें द्वारिकानाथ के दर्शन होंगे। विदुर पत्नी ने हाथ जोड़े और पूछा–क्या प्रभु के साथ आपका परिचय है? प्रभु आपको पहिचानते हैं कि नहीं? विदुरजी ने भी दोनों हाथ जोड़े और कहा–मुझे वे अच्छी तरह पहिचानते हैं। मुझ पर उनका बहुत प्रेम है, मैं तुम्हें क्या कहूँ? मेरे जैसे साधारण जीव को भी वे मान देते हैं। मैं जब वंदन करता हूँ, तब ठाकुरजी मुझे मेरे नाम से नहीं बुलाते हैं। मैं योग्य नहीं हूँ पर उम्र में बड़ा हूँ इससे मेरे प्रभु मुझे 'चाचा' कहकर बुलाते हैं। वे जब मुझे चाचा कहते हैं तब मुझे बहुत आनंद आता है। मुझे चाचा कहते हैं; इससे अंतकाल में मेरा मरण सुधरेगा। विदुरपत्नी ने सुना– प्रभु मेरे पति को चाचा कहते हैं। इससे जब वे कभी मेरे घर पधारेंगे तब मुझे चाची कहकर ही पुकारेंगे। वह दिन कब आयगा? भगवान् मेरे घर पधारें, मेरे घर भोजन करें और मैं दर्शन करूँ। मुझे वे प्रेम से 'चाची' कहकर बुलायें। मुझे उनसे कुछ नहीं माँगना है। किसी सुख की मुझे इच्छा नहीं है। वे मुझे चाची कहेंगे तो मेरा मरण सुधरेगा। भगवान् जिसे अपनाते हैं, उसे अंतकाल में लेने आते हैं। मैं रोज प्रार्थना करती हूँ कि 'बालकृष्णलाल भोजन कर रहे हैं' पर मुझे भावना से संतोष होता नहीं है। ठाकुरजी भोजन कर रहे हैं। मुझे इस दृश्य को प्रत्यक्ष देखना है, दर्शन करना है। आपको इतना मान दे रहे हैं तो उन्हें निमंत्रण दीजिए। कहिये कि राजमहल का काम पूर्ण होने पर इस गरीब की कुटीर में पधारिये। इस कुटीर को नाम दिया गया है–श्रीकृष्ण कुटीर। हमने जो नाम दिया है आगमन से सकल–सार्थक होगा निमंत्रण अवश्य दीजिए।

भक्ति जब उचित रूप से होती है, तब अभिमान जल जाता है, हृदय दीन बनता है। भक्ति करने पर अहम्–'मैं'–बढ़ जाये तो समझना चाहिए कि मेरी भक्ति झूठी है। बराबर भक्ति करने वाले का 'अहम्' मरता है। कई व्यक्ति भक्ति करते हैं तब बहुत अकड़ कर चलते हैं। वे सोचते हैं कि मैने चार घण्टों तक सेवा की है। उनका हृदय पत्थर की तरह कठोर होता है। उनकी भक्ति में भूल रहती है। विदुरजी सोच रहे हैं–निमन्त्रण देने के लिए भी योग्यता चाहिए। मैं निमन्त्रण देने के लिए भी कहाँ योग्य हूँ? वे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डके नायक हैं। मैं प्रभु से किस तरह कहूँ कि मेरे घर भोजन के लिए पधारिये। मैं निमन्त्रण दूँगा तो वे मुझे मना तो नहीं करेंगे, पर मुझे क्षोभ होता है। प्रभु कृपा करके पधारेंगे तो अच्छा ही है पर मुझे लगता है कि परमात्मा को मेरे कारण श्रम पड़ेगा। मैं वैष्णव हूँ पर दरिद्र हूँ। इस छोटी सी कुटी में रहता हूँ। प्रभु पधारेंगे तो कहाँ बैठेंगे? घर में कोई अच्छा आसन भी नहीं है। प्रभु को हम क्या अर्पण करेंगे?

विदुरपत्नी की आँखों में आँसू आ गये। विदुरपत्नी ने हाथ जोड़ कर कहा–हम भाजी–रोटी खाते हैं, वही हम ठाकुरजी को अर्पण करेंगे। विदुरजी कहने लगे–ना, ना, भाजी भगवान् के समक्ष अर्पित नहीं की जा सकती। इस भाजी को मैं भगवान् के समक्ष कैसे अर्पण करूँ? मेरे लिए प्रभु को परिश्रम न होना चाहिए। वे राजमहल में विराजमान हों। वहाँ उनका सम्मान होता है। वे राजाधिराज हैं। सुना है, धृतराष्ट्र ने उनके लिए छप्पन भोग की सामग्री तैयार की है। मेरे जैसे मुझ गरीब के घर आयेंगे तो मुझे आनन्द आयेगा पर मेरे प्रभु को बहुत कष्ट होगा। अपने सुख के लिये मैं प्रभु को त्रस्त करना नहीं चाहता। मैं निमन्त्रण देने योग्य नहीं हूँ। विदुरपत्नी का हृदय द्रवित हुआ है। मैं गरीब हूँ, इसलिए भगवान् मेरे घर नहीं आयेंगे? मैं गरीब हूँ, पर मैंने कोई पाप नहीं किया है। मैंने अपने बालकृष्ण को अर्पण किये बिना कभी पानी भी नहीं पिया है। सभी कुछ प्रभु को समर्पित करती हूँ। सारा दिन उन्हें मनाती हूँ, उन्हें प्रसन्न करती हूँ। वे तो भाव के भूखे हैं, प्रेम के प्यासे हैं। वे हमारे घर नहीं आयेंगे? मैंने तो सुना है कि गरीब वैष्णव परमात्मा को बहुत प्रिय हैं।

गरीबी में एक बड़ा सद्‌गुण है। जो गरीब हैं वे हृदय से दीन होते हैं। दरिद्रता में अभिमान मर जाता है। सम्पत्ति और अभिमान साथ रहते हैं। विदुरपत्नी सोचती हैं–प्रभु मेरे घर पधारेंगे, ऐसा मुझे लगता है। मेरे पतिदेव को निमन्त्रण देते हुए संकोच हो रहा है। विदुरपत्नी ने निश्चय किया–कल भगवान् के दर्शन करते–करते मैं हाथ जोड़कर कहूँगी–मेरे घर पधारिये, मुझे बहुत आनन्द होगा। मेरे पतिदेव को संकोच हो रहा है पर मुझे लगता है कि प्रभु अवश्य पधारेंगे। मेरा प्रेम सच्चा होगा तो वे अवश्य पधारेंगे, मेरे प्रेम में प्रपंच होगा तो नहीं पधारेंगे। वे अन्तर्यामी हैं। वे सब कुछ जानते हैं।

पति-पत्नी को नींद आ रही है। आज की रात कब पूर्ण होगी? कल द्वारिकानाथ के दर्शन होंगे। प्रातः काल उन्होंने स्नान किया। बालकृष्णलाल की सेवा की। आज लाला के दर्शन में बहुत आनन्द आया। ऐसा आनन्द कभी नहीं आया। आज मुझे देख कर वह हँस रहा है। बहुत प्रसन्न दीख पड़ता है। आज क्या होने वाला है? आज सेवा में हृदय द्रवित हो रहा है। प्रत्यक्ष दर्शन की आतुरता है। दोनों दौड़कर पहुँचे। बहुत भीड़ है। उस भीड़ में विदुरपत्नी हाथ जोड़कर खड़ी हैं। द्वारिकानाथ का रथ दिखाई दिया। दूर से प्रभु के रथ के दर्शन हुए। सोने का रथ है उसमें चार घोड़े जुते हैं। दारुक सारथि हैं। उद्धव और सात्यकि दोनों ओर खड़े हैं। उनके हाथ में पंखे हैं। वे स्वामी की सेवा कर रहे हैं। ब्राह्मण विष्णु सहस्त्र नाम का पाठ कर रहे हैं। बड़े-बड़े ऋषि वेद मन्त्रों से स्तुति कर रहे हैं। जय-जयकार हो रहा है।

वैष्णव प्रेम से परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए, 'हरे-कृष्ण हरे-कृष्ण' कीर्तन गा रहे हैं। आनन्द से नाच रहे हैं। सबकी मनोकामना है कि प्रभु एक दृष्टि से देख लें। प्रभु की दृष्टि धरती पर है। वे किसी की ओर नहीं देखते हैं। किये हुए पापों के लिए इस जीव को जब हृदय से पश्चाताप होता है, उसका हृदय सभी तरह से अभिमान छोड़ कर जब प्रभु की शरण में जाता है, तब परमात्मा दृष्टि डालते हैं।

विदुरजी को रथ में विराजमान द्वारिकानाथ के दर्शन करके आनन्द हुआ- वे विचारने लगे कि मेरे प्रभु का कैसा वैभव है! उनका रथ कैसा है! मेरे प्रभु लक्ष्मी पति हैं। दर्शन करते-करते विदुरजी की आँखों में आँसू आ जाते हैं। शरीर में रोमांच होने लगा। दोनों हाथ उन्होंने जोड़े हैं। स्वामी के दर्शन करते हुए, स्वामी को प्रसन्न कर रहे हैं। प्रभो! यह जीव शरण में आया है। हे नाथ मैं आपका हूँ। हजारों वर्षों से जुदा हो गया हूँ। प्रभो! कृपा करिये। मुझे एक बार तो निहारिये-

विना यस्य ध्यानं व्रजति पशुतां सूकरमुखाम्।
विना यस्य ज्ञानं जनिभृति भयं याति जनता।।
विना यस्य स्मृत्या कृमिशतजनियांति स विभुः।
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोक्षिविषयः।। (कृष्णाष्टकम्)

विदुरपत्नी ने सोचा-मेरे पतिदेव सच ही कह रहे हैं, यह जीव भगवान् को निमंत्रण देने की योग्यता नहीं रखता है। उनका कैसा अतुल वैभव है! मैं उन्हें कैसे कहूँ कि, भोजन के लिए मेरे घर पधारिये। विदुरपत्नी को भी निमंत्रण देते हुए संकोच हुआ। वे सोचने लगीं कि मुझे एक बार दृष्टि भरकर प्रभु देख लें तो मैं मान लूँगी कि प्रभु मेरे घर पधारेंगे।

श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए दम्पति के प्राण तड़फ रहे हैं। बारह वर्षों से दर्शन के लिये साधना कर रहे थे। आज द्वारिकानाथ के दर्शन करके अति आनंद हुआ। आँखों से धीरे-धीरे प्रेमाश्रु बह रहे थे। दर्शन करते-करते जब आँखें गीली हो जाती हैं, तब दर्शन उचित रूप से होते हैं। अभी तक तो स्वामी की दृष्टि धरती पर थी। विदुरजी पत्नी के साथ खड़े हैं। वहाँ द्वारिकानाथ का रथ आ पहुँचा। पति-पत्नी स्वामी को मना रहे हैं-आप एक बार दृष्टिपात करिये। आप एक बार दृष्टि डालेंगे तो हम मानेंगे कि आप हमारे घर पधारे हैं। क्या प्रभु एक बार भी दृष्टिपात नहीं करेंगे? इनके लिए मैंने बहुत दुःख सहन किये हैं। बारह वर्षों से इनके पीछे लगी हूँ-प्रभु! एक बार दृष्टि भर देखिये! अंतर्यामी को प्रतीति हुई कि मुझे कोई बुला रहा है। इस भीड़ में मेरा कोई लाड़ला खड़ा है। प्रभु ने जहाँ आँख उठायी, पति-पत्नी पर दृष्टि पड़ी। इन्होंने बहुत कष्ट सहा था। शरीर की हड्डियाँ दीख रही थीं। बहुत दुर्बल हो गये थे। इन्होंने साधारण वस्त्र पहिने हैं, हाथ जोड़े हैं। कैसा पवित्र जीवन बिता रहे हैं! मेरे लिए सब कुछ छोड़ा है। सारा दिन मुझे मना रहे हैं। मैं सोच ही रहा था कि हस्तिनापुर आया हूँ, किसके घर जाऊँ? जहाँ अतिशय प्रेम है, जहाँ अतिशय पवित्रता है, वहाँ परमात्मा पधारते हैं। यह घर बहुत अच्छा है। पति-पत्नी पर प्रभु ने दृष्टि डाली। मंद स्मित हास्य बिखेरा और आँखों से कहा-मैं आपके घर आ रहा हूँ। प्रभु ने आँखों से कहा तो पर ये समझ न सके।

पति-पत्नी बहुत आनंद में हैं। आनंद जब हृदय में समाविष्ट नहीं होता है, तब आँखों से टपकने लगता है। दोनों सोच रहे हैं। मेरे प्रभु ने मुझ पर दृष्टि डाली है। इतने लोग खड़े हैं किसी को भी दृष्टि नहीं दी और मुझे देखकर स्मित हास्य बिखेरा है। मुझ पर उनकी बहुत कृपा है।

विदुरजी पत्नी के साथ श्रीकृष्ण का स्मरण करते-करते घर गये। द्वारिकानाथ दरबार में पधारे। वहाँ उनका सम्मान हुआ। प्रभु ने सुन्दर भाषण किया। श्रीकृष्ण सर्वसे श्रेष्ठ हैं पर श्रीकृष्ण को अभिमान का स्पर्श तक नहीं है। सभा में कहने लगे-धर्मराज का दूत होकर आज मैं संधि के लिए आया हूँ, द्वारिका का राजा होकर नहीं आया हूँ। 'मैं पाँच पांडवों का दूत हूँ'-ऐसा कहते उनको जरा भी संकोच न हुआ।

प्रभु ने दुर्योधन को अनेक प्रकार से समझाया है। तुम्हारे अनेक अपराध हैं फिर भी धर्मराज क्षमा कर रहे हैं। तुम दो-तीन गाँव दे-दो, तो भी वे संतोष मानेंगे वे युद्ध करना नहीं चाहते हैं। प्रभु दुर्योधन को समझाते हैं किन्तु वह मूर्ख मानता नहीं है। स्वामी के समक्ष क्रोध करता है। अनुचित वचन बोलता है। स्वामी को अनुचित प्रत्युत्तर देता है। कहता है कि भीख माँगने से कहीं

राज्य मिलता है? पांडवों में शक्ति हो तो युद्ध करें। सुई की नोक जितनी जमीन भी मैं युद्ध के बिना नहीं देना चाहूँगा।

भगवान् समझ गये कि अब यह नहीं सुधरेगा। यह जब तक मार नहीं खायेगा तब तक इसे अक्ल नहीं आयेगी। मूर्ख को जब कोई समझाता है, तब मूर्ख नहीं समझता है। मूर्ख को मार खाने पर ही समझ आती है। प्रभु सोचते हैं कि मुझे अब इसको मारना ही पड़ेगा। प्रभु ने सभा का त्याग किया। धृतराष्ट्र ने हाथ जोड़कर कहा छप्पन भोग की सामग्री मैंने तैयार करवा रखी है। भोजन का समय हुआ है। आप एक बार भोजन करिये। प्रभु ने सोचा–ऐसे चोर के घर का खाऊँगा तो मेरी बुद्धि भ्रष्ट होगी। यह तो मुझे निमंत्रण दे रहा है। प्रभु ने कहा–तुम्हारे घर का मुझे नहीं खाना है।

धृतराष्ट्र पूछ रहे हैं–क्यों मना कर रहे हैं आप? प्रभु ने कहा–शत्रु के घर का नहीं खाना चाहिए। मैं आपका बैरी हूँ। वैष्णव का बैरी तो मेरा भी बैरी है।

अति दुःख में पांडवों ने धर्म नहीं छोड़ा है। अति दुःख में पांडवों ने पाप नहीं किया है। अति दुःख में पांडव परमात्मा को नहीं भूले हैं। इसीलिए प्रभु को पांडव प्राण से भी अधिक प्यारे हैं।

२०–बिना निमन्त्रण प्रभु पधारे

प्रभु ने धृतराष्ट्र के निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया। इससे अन्य राजाओं को ऐसी आशा हुई कि आज हमारा जीवन सफल होगा। हम श्रीकृष्ण की सेवा करेंगे। राजा लोग हाथ जोड़ते हैं, निमन्त्रण देते हैं–पधारिये प्रभु! सब कुछ तैयार है। आज हमें सेवा का लाभ दीजिए। प्रभु ने राजाओं को भी मना कर दिया।

राजाओं को 'ना' कह देने पर सभा में बैठे ऋषियों को ऐसा लगा–हम तो चार वेद पढ़े हुए हैं, प्रभु हमारे घर पधारेंगे। ऋषि प्रभु को निमन्त्रण देते हैं। सभी ऋषियों को प्रभु वंदन करते हैं। अधिक पढ़े हैं इससे क्या? प्रभु के प्रति इनके हृदय में भाव कहाँ है? ज्ञान का फल तो श्रीकृष्ण-प्रेम है। सच्चा ज्ञानी परमात्मा के साथ प्रेम करता है। ज्ञानी होकर ज्ञान के साथ प्रेम करना प्रभु को पसन्द नहीं है। प्रभु ने ऋषियों से मना कर दिया। उन्होंने सोचा कि मैं किसी ऋषि के घर जाना नहीं चाहता हूँ। प्रभु दरबार से बाहर आते हैं। तब द्रोणाचार्य पूछते हैं– आप सबको ना कह रहे हैं तो फिर कहाँ जायेंगे? प्रभु ने कहा– गुरुजी! मेरी चिन्ता न करिये। गंगा-तट पर मेरा एक घर है। श्रीकृष्ण सबके घर नहीं जाते हैं, जिस घर के वे स्वामी हैं, वहीं वे जाते हैं। विदुर दम्पत्ति

की यह भावना थी कि यह कुटीर द्वारिकानाथ की है। यहाँ जो कुछ है, द्वारिकानाथ का है। प्रभु ने कृपा करके हमें सब कुछ दिया है।

द्रोणाचार्य को भी आश्चर्य हुआ। हम चार वेद पढ़े हैं। हमारे सामने भी ये देखना नहीं चाहते हैं। विदुरजी तो निमन्त्रण देने भी नहीं आये हैं और फिर भी वे वहाँ जाना चाहते हैं परन्तु विदुरजी ने ऐसी भक्ति की है। बारह वर्षों तक भक्ति की है। दारुक सारथि को प्रभु ने आज्ञा दी है, रथ चल पड़ा है। विदुरजी के आँगन में रथ आ पहुँचा। जब द्वारिकानाथ पधारे, तब कुटीर का दरवाजा बन्द था। पति-पत्नी द्वार बन्द करके एकान्त में कीर्तन करते-करते तन्मय हो गये हैं। आप मन्दिर में जाकर भजन-कीर्तन करते हैं, अर्थात वह अच्छा है पर इससे आपकी भक्ति का प्रकटीकरण अर्थात् प्रचार हो जाता है। जब भक्ति का प्रचार होगा, तब भक्ति में प्रगति रुक जायगी। भक्ति को गुप्त रखिये। भक्ति जगत् को दिखाने के लिए नहीं है। भक्ति भगवान् को प्रसन्न करने के लिए है। भक्ति भगवान् में तन्मय हो जाने के लिए है। भक्ति के प्रचार से भक्ति में बिघ्न आयेगा। घर के द्वार बन्द रखकर एकान्त में भक्ति करिये। इस प्रकार आपका घर प्रभु का धाम बन जायगा। विदुर जी के घर के द्वार बन्द हैं। एकान्त से वे दोनों कीर्तन कर रहे हैं। आज कीर्तन करते-करते विदुरपत्नी बालकृष्णलाल के साथ बातें कर रही हैं। आज कीर्तन में हृदय द्रवित हुआ है। लाला से कहती हैं—लाला कथा में एक बार सुना था कि गोकुल की गोपियाँ कहती हैं कि 'यह कन्हैया कपटी है। मैं ऐसा कहती नहीं हूँ मैं तो गोपियों के चरणों में वन्दन करती हूँ। गोपियाँ प्रेम की मूर्ति हैं। मुझे ऐसा लगता है कि गोपियाँ जो कह रही हैं यह कहाँ झूँठ है? आप ऐसे हैं ही। मुझे बहुत आशा थी कि आज हस्तिनापुर आये हैं तो मेरी कुटिया में अवश्य पधारेंगे। मैं आशा रखकर भक्ति कर रही थी पर आज मेरी आशा, निराशा में परिणत हुई। मुझे ऐसा लगता है कि जो आपके पीछे-पीछे घूमता है, उसे आप रुलाते हैं। आपकी यह आदत अच्छी नहीं है। आप इस तरह वैष्णव को रुलायेंगे, तो आपकी भक्ति कौन करेगा? वैष्णवों के कारण ही आपकी शोभा है। जगत् को प्रेम का आदर्श दिखाने के लिए ही आप आए हैं। आपके प्रति अति प्रेम रखने वाले के लिए ही रोने का अवसर आता है। क्या यही आपको पसन्द है? मैं आपसे कुछ नहीं माँगती हूँ। मुझे किसी सुख को भोगने की इच्छा नहीं है। यह मेरी वृद्धावस्था है। शरीर अब अधिक दिन नहीं रहेगा। इस जीवन की यह अंतिम मनोकामना थी कि एक बार प्रभु मेरे घर पधारें। मेरे घर का भोजन ग्रहण करें। मैं दर्शन करूँ, पर आप मेरे घर नहीं आयेंगे आप श्रीमानों के घर ही जाते हैं।

विदुरपत्नी प्रेम से उलाहना देती हैं। बालकृष्णलाल होठों में हँसते हैं। प्रभु ने विचार किया कि ये मुझे उलाहना दे रही है और मैं तो इसके आँगन में खड़ा हूँ। वैष्णव जब प्रेम से कीर्तन करते

हैं तब परमात्मा दौड़कर आते हैं। खड़े रहकर कीर्तन सुनते हैं। विदुरपत्नी श्रीकृष्ण-कीर्तन करते-करते परमात्मा को मना रही हैं। शरीर का ध्यान तक नहीं है। हृदय प्रेम से द्रवित है। भगवान् कीर्तन सुन रहे हैं। सोचते हैं कि इन लोगों का कीर्तन कब पूर्ण होगा? कुछ भी समझ में नहीं आता। आज प्रभु को भूख लगी है। किसी भी वैष्णव का हृदय जब पूर्ण प्रेम से भर जाता है, तब परमात्मा को भूख लगती है।

उपनिषद् कहते हैं—परमात्मा आनन्दमय हैं। उनको भूख नहीं लगती है। प्यास नहीं लगती है। वे खाते नहीं है, पीते नहीं है। वे सभी को खिलाते हैं, सभी का पोषण करते हैं वे विश्वम्भर हैं। वेदों में वर्णन आता है कि यह संसार वृक्ष है। संसार वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं। यह जीव पक्षी है विषय-फल खाने पर भी दुर्बल है। परमात्मा साक्षी भाव से देख रहे हैं। वे आनन्दमय हैं। वे किसी विषय-फल को नहीं खाते हैं। वे पुष्ट हैं—

अन्यः स्वादूत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति......

वेद भगवान् वर्णन करते हैं कि भगवान् को भूख लगती ही नहीं है। वेद-उपनिषद् का यह सिद्धान्त सत्य है परन्तु जब किसी वैष्णव का हृदय प्रेम से आकण्ठ भर जाता है, तब परमात्मा को भूख लगती है। प्रेम निष्काम को सकाम बनाता है। प्रेम निराकार को साकार बनाता है। जो सबसे बड़ा है, जो सर्व का पिता है, वह प्रेम के वश होकर छोटा बच्चा बन जाता है। प्रेम परमात्मा को बालक बना देता है। प्रेम में ऐसी शक्ति है, आज परमात्मा को भूख लगी है।

श्रीकृष्ण ने द्वार खटखटाया और कहा—काका मैं आया हूँ। विदुरजी के कानों में शब्द पड़े—मुझे चाचा कहने वाले भगवान् मुझे बुला रहे हैं? ना, ना, बारह वर्षों तक इस कुटीर में रहा किसी ने मुझे बुलाया नहीं। मेरे जैसे दरिद्र के घर कौन आयेगा? प्रभु ने फिर कहा—चाचा जी मैं आया हूँ। अब विदुरजी को विश्वास हो गया कि परमात्मा पधारे हैं। उनको आशा नहीं थी कि प्रभु पधारेंगे। अतिशय आनन्द हुआ। पति-पत्नी दोनों दौड़ते हुए पहुँचे।

जब द्वार खुलते हैं, तब शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी श्रीद्वारिकानाथ के दर्शन होते हैं। मेरे घर भगवान् पधारे हैं। दम्पती को अति आनंद हुआ। पलकें स्थिर हो गयीं। अपलक दृष्टि डाली उन्होंने। दोनों हाथ जोड़े हैं। पति-पत्नी दर्शन में तन्मय हो गये हैं। प्रभु को आसन देना भी भूल गये हैं। प्रभु ने सोचा—बाहर भी इन्होंने मुझे खड़ा रखा, अब घर में भीं खड़ा ही रखते हैं। जहाँ अतिशय प्रेम रहता है, वहाँ मान पाने की इच्छा नहीं रहती है। प्रभु ने सोचा कि यह तो मेरा घर है। मुझे कौन मान देगा प्रभु ने स्वयं आसन ग्रहण किया। आसन पर द्वारिकानाथ विराजमान हैं। विदुरजी का हाथ पकड़कर उन्होंने पास में बैठाया है। श्रीकृष्ण कहते हैं—चाचा। क्या देख रहे हैं? मुझे बहुत

भूख लगी है। भक्ति तभी सफल है, जब भगवान् को भूख लगती है और वे भक्त से माँगकर खाते हैं। परमात्मा माँग रहे हैं। विदुरजी ने दोनों हाथ जोड़े हैं। अच्छे-से-अच्छा जो कुछ हो, वही ठाकुरजी को अर्पण करना चाहिए। खराब-से-खराब हो वह मेरे लिये और अच्छे-से-अच्छा ठाकुरजी के लिये—ऐसा विचारना ही भक्ति है। अच्छा मेरे लिये—ऐसा सोचना आसक्ति है—यह भाजी मैं प्रभु को कैसे दूँ? मेरे प्रभु लक्ष्मीजी के पति हैं। दम्पत्ती देने का साहस नहीं जुटा पा रहे हैं। विदुरजी ने धैर्यभाव से, हाथ जोड़कर कहा—आप वहाँ छप्पन भोग का भोजन लेकर आये होंगे।

प्रभु ने स्मित हास्य करके कहा—चाचा मैंने वहाँ पानी भी नहीं पिया है। मुझे भूख लगी है परन्तु पति-पत्नी भाजी देने की हिम्मत नहीं कर पाये। आँखों से प्रेमाश्रु बह रहे हैं। प्रभु ने देखा कि चूल्हे पर पतीली तो है। मैं ही घर का स्वामी हूँ। स्वामी को कोई कैसे देगा? इन लोगों को देने में संकोच हो रहा है। प्रभु ने पतीली उतार ली। बहुत दिनों के भूखे की तरह प्रभु खाने लगे। परमात्मा आनंदमय हैं। उन्हें किसी वस्तु की भूख नहीं है। परमात्मा को प्रेम की भूख है। प्रेम-रस अति मधुर रस है।

बड़े-बड़े राजा और ऋषियों ने निमंत्रण दिया पर प्रभु किसी के घर नहीं गये। वे ही परमात्मा बिना निमंत्रण पाये विदुरजी के घर पहुँच गये। जहाँ अतिशय प्रेम है, जहाँ अतिशय पवित्रता है, वहाँ परमात्मा बिना निमंत्रण जाते हैं। जहाँ अतिशय प्रेम है, वहाँ परमात्मा माँगकर खाते हैं। जहाँ कम प्रेम है, वहाँ मानव भी माँगता नहीं है। कम प्रेम हो और कोई देता है, तब लेने की इच्छा तक नहीं होती है।

परमात्मा के साथ प्रेम करिये पाप छोड़कर ऐसी भक्ति करिये, ऐसा पवित्र जीवन व्यतीत करिये कि प्रभु की भी आपके घर का खाने की इच्छा हो जाय। प्रेम परमात्मा को प्रकट करता है। ईश्वर का अर्थ सर्वव्यापक है। परमात्मा माया के आवरण में ढँके हुए हैं। जीव ईश्वर के साथ जब अतिशय प्रेम करता है तब माया का आवरण छेदकर प्रभु प्रकट होते हैं। आज प्रभु को भूख लगी है। प्रभु माँगकर खा रहे हैं। गोपियों का प्रेम ऐसा था कि प्रभु गोपियों के घर माखन खाने आते हैं। यशोदा मैया तो लाला को समझाती हैं कि बेटा! तुम माखन की चोरी करते हो, यह अच्छा नहीं है। घर में बहुत सा माखन है। मैं तुम्हें दूँगी, तुम्हारे सखाओं को भी दूँगी। तुम गोपियों के यहाँ क्यों माखन खाने जाते हो? बेटा! आज से प्रचार हो जाय कि यह बालक चोरी करता है, तो बड़े होने पर तुम्हें कौन अपनी बेटी देगा? लाला तू लोगों के घर क्यों माखन खाने जाता है? घर का माखन क्यों नहीं खाता है?

कन्हैया माँ से कहता है–माँ!मुझे घर का माखन नहीं भाता है। गोपियों के माखन में मिठास है। अरे! गोपियों के माखन में मिठास है कि गोपियों के प्रेम में मिठास है? मिठास किसी चीज में नहीं है, मिठास तो प्रेम में है। प्रेम–रस अति मधुर है। बैरी की दी हुई मिठाई मधुर नहीं, कड़वी लगती है। प्रेम में सब मधुर लगता है। गोपी–प्रेम श्रीकृष्ण को आकर्षित करता है। लाला को घर का माखन नहीं भाता है, गोपियों का माखन भाता है। जहाँ अतिशय प्रेम है वहाँ प्रभु को भूख लगती है। सचमुच अगर प्रभु को भूख लगी हो तो उनकी भूख कौन शाँत कर सकता है? परमात्मा की भूख शाँत करने की शक्ति किसी भी देव में नहीं है। परमात्मा निष्काम हैं, आनंदमय हैं।

विदुरजी के घर द्वारिकानाथ माँगकर खाते हैं। परमात्मा ने आज भाजी की प्रशंसा की है। विदुर पत्नी की मनोकामना थी कि द्वारिकानाथ भोजन करें और मैं दर्शन करूँ। प्रभु से उन्हें कुछ माँगना नहीं है। आज विदुरपत्नी की मनोकामना पूर्ण हुई है। जिसकी इच्छा शुद्ध होती है, उसकी क्रिया भी शुद्ध होती है। इच्छा–शुद्धि के बिना क्रिया शुद्धि नहीं होती है। इच्छा विकारी होती है, तब क्रिया शुद्ध नहीं होती है। विदुरजी की पत्नी की इच्छा शुद्ध थी। परमात्मा शुद्ध इच्छा को परिपूर्ण करता है।

सत्यनारायण की कथा में प्रसंग है। गरीब ब्राह्मण की इच्छा हुई कि मुझे सत्यनारायण की पूजा करनी है। ब्राह्मण बहुत गरीब है। एक पैसा भी पास नहीं है। किस तरह पूजा करे? उसके मन में सत्यनारायण की पूजा की भावना थी। हलुवा खाने की इच्छा नहीं थी। हलुवा खाने की इच्छा कदाचित भगवान् परिपूर्ण न भी करें। उसकी तो सत्यनारायण की पूजा करने की इच्छा थी। उसका संकल्प था कि जो कुछ मिलेगा मैं वही सब सत्यनारायण को अर्पण करूँगा। परमात्मा ने उसे बहुत धन दिया।

प्रचुर धनमाप्नुयात्।

शुभेच्छा का परमात्मा साथ देते है। आप भी ऐसी इच्छा करिये कि परमात्मा मेरे घर पधारें, भोजन करें और मैं उनके दर्शन करूँ। ठाकुरजी किस तरह भोजन कर रहे हैं, मैं यह देखना चाहता हूँ। आप ऐसी भावना रखिये। ऐसा भाव रखकर भक्ति करिए।

विदुरजी को कृतार्थ करके प्रभु धर्मराज से मिलने गए। विदुरजी ने सोचा कि कौरवों के घर में भगवान् ने पानी तक नहीं पिया है। कदाचित अब श्रीकृष्ण कौरवों का विनाश करेंगे। एक बार मैं धृतराष्ट्र को समझा तो लूँ और वह मान जाय तो अच्छा है। किसी भी जीव का संग भक्ति में विघ्न करने वाला हो तो उसे छोड़ दीजिए, परन्तु किसी भी जीव के लिए मन में कुभाव न रखिये।

विदुरजी ने धृतराष्ट्र का त्याग तो किया पर मन में सद्भाव ही रखा। किसी के लिए कुभाव न रखिये। पापी का तिरस्कार न करिये। पाप का तिरस्कार करिये, पाप बुरा है। कोई जीव बुरा नहीं है। जीव, ईश्वर अंश है। किसी के प्रति दुर्भाव रखने वाले का मन अशान्त रहता है।

धृतराष्ट्र लायक नहीं है। वह चोर है, दुष्ट है। इससे ही विदुरजी ने उसका त्याग किया है, पर मन में उसके प्रति प्रेम रखा है। मानव त्याग करता है, तब मन में दुर्भाव रखता है। दुर्भाव रखकर जो त्याग करता है, वह मन को बिगाड़ता है। सद्भाव से त्याग करिये। विदुरजी को स्नेह है। वे सोचते हैं कि धृतराष्ट्र का कल्याण हो। इनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है, उनका संग अच्छा नहीं है। अभी एक बार समझाऊँ। वह मान जाय तो अच्छा है।

मध्य रात्रि के समय में विदुरजी धृतराष्ट्र को समझाने पधारे हैं।

यदोपहूतो भवनं प्रविष्टो मंत्राय पृष्टः किल पूर्वजेन।
अथाह तन्मन्त्रदृशां वरीयान् यन्मन्त्रिणो वैदुरिकं वदन्ति॥

(३-१-१०)

विदुरजी ने उपदेश किया है। महाभारत के उद्योगपर्व में उसे विदुरनीति कहते हैं। विदुरजी धृतराष्ट्र को समझा रहे हैं–यह दुर्योधन तुम्हारा पुत्र नहीं है, तुम्हारा पाप है। वह वंश का विनाश करने आया है। अति पाप बढ़ जाता है तब एक नालायक दुराचारी पुत्र होता है। अति पुण्य बढ़ जाय, तब सुपुत्र का जन्म होता है।

दशरथ सुकृत रामु धरि देही। जनक सुकृत मूरति वैदेही॥

सूर्यवंश के अनेक राजाओं के पुण्य एकत्र होने पर पुण्यों के फलस्वरूप श्रीराम प्रकट हुए हैं। वंश में दुराचारी लड़का पैदा हो, तब समझना कि पाप एकत्र हो गए हैं। विदुरजी कहते हैं कि दुर्योधन तुम्हारा पाप है। तुम उसके साथ प्रेम करते हो? लड़का जब अति पापी होता है, तब पिता को उसे एक पैसा भी नहीं देना चाहिए। अति पापी को पैसा देना पाप की प्रेरणा देने के समान है। दुर्योधन दुराचारी है, दुष्ट है, धृतराष्ट्र यह जानता है। पुत्र के पाप को वह आवरण में ढँक देता है। पुत्र के प्रति वह प्रेम रखता है। विदुरजी उसे प्रताड़ित करते हैं– जिसे क्षय रोग होता है, उसे क्षय रोग मारता है, पर दुराचार बहुत बड़ा क्षय रोग है। दुराचार घर में आता है तो घर का विनाश होता हैं। इस दुर्योधन से प्रेम रखने पर तुम्हारे घर का ही विनाश होगा। वह लायक नहीं है। उसने बहुत पाप किये हैं। उसे पाप करने में मजा आता है। दुर्योधन वही है, जो पाप करने में सुख समझता है। पाप करके कोई सुखी नहीं होता है। दुर्योधन यह जानता है फिर भी पाप करता है। धृतराष्ट्र उसको पाप में सम्मति देता है।

विदुरजी प्रताड़ना देते हैं– यह तुम्हारी बड़ी भूल है। दुर्योधन का मोह छोड़ दो। अपने वंश का रक्षण करो। धृतराष्ट्र ने कहा–पाण्डव युद्ध नहीं करेंगे। धर्मराज धर्म की मूर्ति हैं। वे ऐसा मानेंगे कि भले ही सारा जीवन वन में कन्दमूल खा लेंगे पर राज्य के लिए लड़ाई कौन करेगा? युद्ध से सारा देश दुःखी होगा। धृतराष्ट्र को ऐसा विश्वास था कि धर्मराज धर्म की मूर्ति हैं। वे युद्ध नहीं करेंगे। राज्य देने की जरूरत नहीं है। मेरे वंश का विनाश नहीं होगा।

विदुरजी ने कहा–पाण्डव युद्ध नहीं करेंगे तो श्रीकृष्ण युद्ध करेंगे। श्रीकृष्ण धर्म पक्षपाती हैं। गीता में भगवान् कहते हैं–मेरा कोई शत्रु नहीं हैं, कोई मित्र नहीं है। मैं सबके प्रति समभाव रखता हूँ, पर महाभारत पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण पाण्डवों का पक्षपात करते हैं। पाण्डवों के प्रति पक्षपात धर्म के प्रति पक्षपात है। जहाँ धर्म है, वहाँ भगवान् हैं, उस घर में कुछ नहीं है। जहाँ धर्म नहीं है, वहाँ ज्ञान नहीं टिकता है।

कई लोग वेदान्त की पुस्तकें पढ़कर ब्रह्मज्ञान की बातें करते हैं, पर धर्म का पालन नहीं करते हैं। जहाँ धर्म नहीं है, वहाँ ज्ञान बह जाता है। धर्म से ही ज्ञान का रक्षण होता है। धारणात् धर्म–जो पतन से बचा लेता है, वही धर्म हैं। कई लोग ऐसा कहते हैं कि हम ज्ञान में आगे बढ़े हुए हैं। अब हमें धर्म-पालन की क्या जरूरत?

भागवत में वर्णन आया है कि जिस देह का भान नहीं है, उसे धर्म की जरूरत नहीं है। जिसे याद है कि मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ– वह धर्म छोड़ेगा तो उसका पतन होगा। जो देह-भान भूला है, परमात्मा के ध्यान में जो देहातीत दशा में है, जो देह से अलग रहता है। जहाँ पुरुष भान नहीं है, स्त्री भान नहीं है, तू नहीं है, मैं पन नहीं है–जहाँ मात्र तेजोमय परमात्मा हैं। भगवत-स्वरूप में जो स्थिर है, जिसे जगत् का अनुभव नहीं होता है, वह कदाचित् धर्म छोड़ दे तो चलता है।

विरक्त ज्ञानी पुरुष भी समाज को शिक्षण देने के लिए धर्म का पालन करते हैं। ज्ञान और भक्ति के अभिमान में जो धर्म छोड़ते हैं, उनका पतन होता है। धर्म विरुद्ध भक्ति भगवान् को प्रिय नहीं है। धर्म का ज्ञान और भक्ति के साथ विरोध नहीं है। कुछ भी हो जाय, धर्म न छोड़िये। जो धर्म को पकड़कर रखता है, परमात्मा उसे नहीं छोड़ते हैं।

लोग थोड़ी भक्ति करते हैं पर धर्म का पालन नहीं करते हैं। लोग विदेश की नकल करते हैं। आप सब भारत के हैं। हमारा देश, हमारा धर्म, हमारी संस्कृति बहुत श्रेष्ठ है। हमारा धर्म हमारे लिये श्रेष्ठ है। लोगों को चोटी रखते हुए भी शर्म लगती है। बातें तो बहुत ब्रह्मज्ञान की करते हैं किन्तु तिलक, माला धारण करते हुए शर्म आती है। पाप करते, झूठ बोलते, निन्दा करते शर्म नहीं आती है। एकादशी के दिन दाल-भात खाते शर्म नहीं आती है। धर्म सदाचार न छोड़िए। पाण्डवों

ने अति दुःख में भी धर्म नहीं छोड़ा है, इससे श्रीकृष्ण पाण्डवों का पक्षपात करते हैं। प्रभु को स्वार्थ नहीं है, पर धर्म की पराजय प्रभु को पसन्द नहीं है। धर्म की जय के लिए श्रीकृष्ण कभी-कभी प्रपंच करते हैं। प्रपंच करके भी धर्म को विजय दिलाते हैं। अधर्म का विनाश करवाते हैं।

महाभारत पढ़ते-पढ़ते ऐसा लगता है कि कदाचित श्रीकृष्ण की ही इच्छा थी कि कौरवों का विनाश हो। कर्ण को कपट से मारा गया। कर्ण का रथ रेत में दबता जाता है। वह रथ को बाहर निकालने के लिए यतन कर रहा है। तब भगवान् अर्जुन से कहते हैं—कर्ण को अब मारो। कर्ण कहता है—अर्जुन! मेरे हाथ में हथियार नहीं है। इस समय तुम मुझे मारते हो तो इसे अधर्म युद्ध कहा जायेगा। मैं रथ को बाहर निकाल लूँ, हाथ में धनुष-बाण लूँ, तब ही तुम मुझे मारो। अर्जुन सोचने लगा—इसे अभी मारूँ कि न मारूँ? भगवान् कहते हैं—क्या देख रहा है मार इसे।

श्रीकृष्ण अनेक प्रश्न कर्ण से पूछते हैं—द्रौपदी को सभा में ले आओ—ऐसा तुमने ही कहा था कर्ण उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ था? अनेक वीर पुरुषों ने एकत्र होकर अकेले अभिमन्यु को मारा था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ था? श्रीकृष्ण के प्रश्नों का उत्तर कर्ण के पास नहीं है। भगवान् अर्जुन से कहते हैं—मूर्ख है, अब इसे धर्म याद आ रहा है। मार इसे। श्रीकृष्ण जो कहते हैं, वही धर्म है।

भगवान् को धर्म अतिशय प्रिय है। प्राण चले जायँ पर धर्म न जाय। जहाँ धर्म है वहाँ परमात्मा हैं। ब्राह्मण संध्या गायत्री न करें और ठाकुरजी की पूजा-सेवा करें तो उसके हाथ की सेवा-पूजा परमात्मा स्वीकार नहीं करते। भगवान् सोचते हैं कि यह संध्या नहीं करता है, सूर्य को अर्घ्य नहीं देता है और मुझे पुष्पों की माला अर्पण करने आया है। अरे! तुम्हारे हाथ की माला मुझे नहीं लेनी है।

कई लोग घर में अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा नहीं करते हैं। मन्दिर में सेवा करने जाते हैं। माता-पिता को वन्दन नहीं करते हैं, मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं। जो अपने माता-पिता की सेवा नहीं करते, माता-पिता को वंदन नहीं करते, वह मन्दिर में जाते हैं तो भगवान् उनका मुँह तक नहीं देखते हैं। वे कहते हैं—मूर्ख है—माता-पिता की आज्ञा नहीं मानता। सेवा नहीं करता। मैं तुम्हारा मुख देखना नहीं चाहता हूँ। जिसका जो धर्म प्रभु ने निश्चित किया है, वह जब स्वधर्म का पालन करता है, तो वही भक्ति है।

विदुरजी धृतराष्ट्र को समझा रहे हैं—पाण्डव धर्म की मूर्ति हैं। प्रभु ने पाण्डवों को अपना लिया है। भगवान् उन्हें अपना मानते हैं। पाण्डवों ने वन में बहुत दुःख सहन किये हैं। जब तक

पाण्डव सुखी नहीं होंगे, तब तक भगवान् को चैन नहीं होगा। पाण्डव युद्ध नहीं करेंगे तो श्रीकृष्ण युद्ध करेंगे। कौरवों का विनाश होगा। अभी सब तुम्हारे हाथ में है। आधा राज्य पाण्डवों को दे दो।

२१–विदुर जी तीर्थ-यात्रा में

दुर्योधन के सेवक घूमते-घूमते वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने सभी बातें सुनीं। उन्होंने दुर्योधन से सब कुछ कहा–आपके पिताजी के समक्ष विदुरजी आपकी प्रतिकूल बातें कर रहे थे। आपके निन्दा कर रहे थे और पाण्डवों की प्रशंसा करते थे।

दुर्योधन ने यह सब सुना और वह क्रोधित हुआ। उसने विदुरजी को सभा में आने का निमन्त्रण भेजा। जब विदुरजी सभा में आये तब दुर्योधन गालियाँ देने लगा। निन्दा करने लगा। कहने लगा–मेरे घर का अन्न खाकर मोटे-तगड़े हुए हो और मेरे ही विरुद्ध बोल रहे हो? पाण्डवों की प्रशंसा करते हो? दुर्योधन विदुरजी का जान-बूझ कर अपमान करता है। विदुरजी शान्ति से सुन रहे हैं। निन्दा का असर जिसके मन पर हो, उसने ज्ञान को अभी हजम नहीं किया है, ऐसा समझना चाहिए। जिसे भक्ति का आनन्द मिला नहीं है, जिसकी भक्ति अभी कच्ची है, उसके मन पर निन्दा का असर होता है। जिसे भक्ति का रंग लगा है, जिसने ज्ञान को हजम किया है, उस पर निन्दा का असर नहीं होता। किसी के द्वारा की गई निन्दा का प्रभाव उसके मन पर नहीं पड़ता है।

कितने ही लोग गीताजी का पाठ करते हैं, पर अर्थ को समझकर उचित ढंग से गीता का पाठ नहीं करते हैं। गीताजी में कहा गया है–निन्दा और स्तुति में मन को जो लोग शान्त रखते हैं, वे महान् भक्त हैं। जिसका मन शांत रहता है, वही भक्ति कर सकता है। निन्दा स्तुति का प्रभाव जिसके मन पर होता है वह भगवान् से दूर है। मन को शांत रखिये। आपके जीवन में कैसा भी प्रसंग खड़ा हो, आपकी निन्दा कोई कर रहा हो तो इससे आपको जरा भी क्षति होने वाली नहीं है।

निन्दा सहन करना महान् पुण्य है। निन्दा करना महान् पाप है। समर्थ होने पर भी जो सहन करता है, वह संत है। विदुरजी में शक्ति है। विदुरजी महान् तपस्वी हैं। वे यमराज के अवतार हैं। फिर भी सहन करते हैं। सत्वगुण बढ़ता है, तब सहन-शक्ति आती है। शरीर में तमोगुण और रजोगुण बढ़ता है, तब सहन नहीं हो सकता है। सात्विक अन्न लेने वाला सहन कर सकता है। विदुरजी गंगा-तट पर भाजी खाकर संतुष्ट रहते हैं और भक्ति करते हैं। बहुत ही सात्विक जीवन व्यतीत करते हैं। सभा में निन्दा हुई पर उसका प्रभाव उनके मन पर नहीं पड़ा। जो गम खाता है, भगवान् को प्रिय लगता है। मानव को सब कुछ खाना आता है पर गम खाना नहीं आता है। मानव गम नहीं खाता है, इससे ही स्वामी को वह पसंद नहीं है।

आप कहेंगे कि महाराज! जब आप कथा में यह कहते हैं, तब अच्छा लगता है पर घर पहुँचने पर याद नहीं रहता है। भूख लग आयी है और घर में खाना नहीं है। तब कोई कहता है कि गम खाइए–तो गम किस तरह खा सकते हैं? कई लोग घर पर कह कर आते हैं, कि सात् बजे खाना तैयार रखिये। सारा दिन उपवास रखा है, इससे भूख लगती है और घर जाकर जरा भी तैयारी न तो हो फिर क्रोध आता है। कहते हैं कि मैंने कहा था न? आप क्या कर रहे थे? रुआब में आप पूछते हैं। ऐसा रुआब नहीं रखना चाहिए। प्रभु ने जो सोचा होगा वही होगा। मानव जो सोचता है, वह नहीं होता है। जो गम खाता है, वही प्रभु को प्रिय है। सादा भोजन करेंगे तो सत्वगुण बढ़ेगा, सहन–शक्ति आयेगी। गम खाने की इच्छा हो तब 'गम' का उलटा करिये–'मग' होगा। बारह मास तक उवाले हुए मग (मूंग) मात्र खाइए। मग (मूंग) में लाल मिर्च, घी न डालिये, थोड़ा सा नमक डालिए। इस महंगाई में ऐसा करने से आपके घर का खर्च भी कम होगा। आपके पाप जलेंगे। आप में सत्वगुण बढ़ेगा। आप में सहन–शक्ति आयेगी। मान अपमान का प्रभाव भी मन पर नहीं पड़ेगा।

आज कल लोगों में सहन–शक्ति भी कम हो गयी। साधारण दुःख के प्रसंग में भी लोग जी को जलाते हैं। आजकल लोगों से कुछ भी सहन नहीं होता। माता–पिता संतान को सीख के दो शब्द कहते हैं तो बच्चों से सहन नहीं होता है। आजकल माता–पिता बच्चों से डरते हैं। सोचते हैं कि बच्चों से कुछ कहेंगे और वे कुछ कर बैठेंगे तो। प्राचीनकाल में बच्चों को माता–पिता का डर रहता था। अब तो सब–कुछ बदल गया है। बहू को सीख देने के लिये सास एक–दो वचन कहती है तो बहू से सहन नहीं होता हैं। सारा दिन जी जलाती है और पति से कहती है–आपकी माता बहुत खराब है। हम तो अलग रहेंगे। आपका तबादला बम्बई होता है तो करवा लीजिए।

कथा हँसने के लिए नहीं है, सावधान होने के लिए है। आपके माता–पिता, बुजुर्ग आप से दो शब्द कहें तो सहन कर लीजिए। आप बहुत सुखी होंगे। जो मन को शांत रखकर सहन करता है, प्रभु उसके पक्ष में रहते हैं। दुःख सहन करिये। आपकी कोई निन्दा करे, कुछ कहे, अन्याय करे, तो सहन करिये। निन्दा सुनने के बाद जी को न जलाइये। आपको शब्द कहाँ काटते हैं? शब्द तो आकाश में या अवकाश में उड़ जाते हैं। मन को शांत रखकर, निंदा सहन करने वाला बहुत सुखी होता है। जो जी को जलाते हैं, वे प्रभु के मंदिर को जलाने जैसा पाप करते हैं। हृदय में प्रभु विराजमान हैं, इसलिए हृदय को न जलाइये।

सभा में निंदा हो रही है। विदुरजी शांति से सह रहे हैं। उनके मन पर जरा भी असर नहीं है। लोग निंदा करते हैं तो करते रहें। सभी कुछ प्रभु की इच्छा से होता है। सर्व में प्रभु हैं। मेरे निंदक

में भी श्रीकृष्ण का निवास है। सज्जन में परमात्मा का दर्शन करने वाला साधारण वैष्णव है, पर जो दर्शन में परमात्मा का दर्शन करते हैं, वे महान् वैष्णव हैं। विदुरजी सोचते हैं कि भगवत्-इच्छा सर्व का कारण है। भगवत्-इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता है। मेरे प्रभु की इच्छा ही मेरी इच्छा है। प्रभु की इच्छा और आपकी इच्छा में भिन्नता होगी तो भक्ति में आनंद नहीं आयगा। भगवान् की इच्छा में अपनी इच्छा सम्मिलित कर दीजिए। भगवान की इच्छा से सुख-दुःख, मान-अपमान–कैसा भी प्रसंग आ जाय, मन को शांत रखकर सहन करिये।

संसार झूठा है। संसार में प्राप्त मान-अपमान भी झूठे हैं। प्राप्त मानपत्र मृत्यु के समय काम नहीं आयेंगे। जिसे परमात्मा मान देते हैं उसका ही मान सदैव रहता है। कई लोग ऐसे हैं कि प्रत्यक्ष में मान देते हैं, प्रशंसा करते हैं पर पीछे से निंदा करते हैं। लोग सम्मान दे रहे हैं तो खुश न होइए और कदाचित् कोई अपमान करता है तो भी नाराज न होइए। मान-अपमान में मन को शांत रखिये। मान-अपमान में जिसका मन शांत रहता है, वही भक्ति कर सकता है। मेरे प्रभु को जो पसन्द है, वही मुझे भी पसन्द है। मेरे प्रभु की जो इच्छा है वही मेरी इच्छा है। मेरे प्रभु की जो इच्छा है वही मेरी इच्छा है। प्रभु की इच्छा और भक्त की इच्छा भिन्न-भिन्न होती है, तो भक्ति में बिघ्न आता है। प्रभु की इच्छा और भक्त की इच्छा जब एक होती है, तब भक्ति में प्रगति होती है। प्रभु की इच्छा से निन्दा होती है तो भले ही निन्दा हो।

दुर्योधन ने अपने नौकर से कहा कि इसे धक्के मारकर निकालो। विदुरजी ने सोचा कि नौकर धक्के मार कर बाहर निकालने लगे, इससे पहिले ही मैं सभा छोड़कर चला जाऊँ, तो क्या गलत है? धनुष-बाण छोड़कर विदुरजी ने सभा का त्याग किया। जाते-जाते दुर्योधन को उपदेश देते हैं–'तुम्हें पाण्डवों से लड़ाई करनी है तो जीभ से लड़ना शस्त्र से लड़ाई न करना।

विदुरजी सभा छोड़कर जैसे ही बाहर निकले, वैसे ही उन्हें चतुर्भुज द्वारिकानाथ के दर्शन हुए। उन्होंने स्मित करके विदुरजी से कहा–आपका पुण्य कौरवों की रक्षा कर रहा है। मुझे कौरवों का विनाश करना है। इसलिए आप यात्रा पर जाइए। हर-एक घर में पुण्यशाली आत्मा है। उसके रहने तक घर सुखी रहता है। विदुरजी को यात्रा पर जाने की इच्छा नहीं है पर परमात्मा कहते हैं–मेरी यात्रा पर जाने की बहुत इच्छा है। मैं आपके साथ चलूँगा। आपको वहाँ दर्शन देता रहूँगा। यह सुनकर विदुरजी यात्रा के लिए निकले–

स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात्तीर्थपदः पदानि।
अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोर्व्यां स्वधिष्ठितो यानि सहस्रमूर्तिः॥

(३-१-१७)

आजकल जब लोग यात्रा पर जाते हैं, तब बड़े-बड़े डिब्बे भरकर खाने की सामग्री साथ ले जाते हैं। विदुरजी, कौरवों का जितना पुण्य था, लेकर गये क्योंकि कौरवों ने उनकी निन्दा व अपमान किया था। आपकी निन्दा कर रहा हो तो सहन करिये। आप सहन करेंगे तो आपका पाप उसके सिर पर जायगा और उसके पुण्य आपको मिलेंगे।

यात्रा विधि पूर्वक करिये। तीर्थ में जाने के दिन उपवास करिये। तीर्थ में पहिले माता-पिता की पूजा होती है। पितृ पूजन पहिले है, देव-पूजन बाद में हैं। तीर्थ में साबुन लगाकर जो स्नान करता है, उसे पाप लगता है। तीर्थ में जो कुल्ला करता है, उसे भी पाप लगता है। एक-एक तीर्थ में एक-एक विकार-वासना का त्याग करना चाहिए। गयाजी में अक्षयवट के नीचे अंतिम श्राद्ध होता है। आप परमात्मा के चरणों में आये हैं। परमात्मा के लिए किसी प्रिय वस्तु का त्याग करिये। काम छोड़िये, क्रोध छोड़िये।

हमारे भारत में अनेक पवित्र तीर्थ हैं, पुष्कर, प्रयाग, काशी, अयोध्या, चित्रकूट, वृन्दावन आदि। क्षेत्र में और तीर्थ में थोड़ा भेद है। जल प्रधान तीर्थम्-स्थल प्रधान क्षेत्रम्-जहाँ ठाकुरजी का स्वरूप मुख्य है, उस स्थान को क्षेत्र कहते हैं, और जहाँ जल देवता का प्राधान्य होता है, उसे तीर्थ कहते हैं। पुष्करराज क्षेत्रराज है। साक्षात् ब्रह्माजी महाराज वहाँ प्रकट-प्रत्यक्ष विराजमान हैं। तीर्थों का राजा प्रयाग है, जहाँ गंगाजी, यमुनाजी, और सरस्वती का संगम है।

काशी ज्ञान-भूमि है, अयोध्या वैराग्य भूमि है। वृन्दावन प्रेमभूमि है। वृन्दावन के कण-कण में श्रीकृष्ण-प्रेम भरा है। काशी ज्ञान-भूमि है। काशी में रहकर गंगा-स्नान करने वाले, पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले की बुद्धि में ज्ञान-स्फुरण होता है। भीतर से प्रकट होने वाला ज्ञान सदैव रहता है। पुस्तकों को पढ़कर प्राप्त किया गया ज्ञान भुलाया जाता है। जो ज्ञान बाहर से आता है, सदैव नहीं रहता है। ज्ञान को भीतर से प्रकट होने दो। जिस तरह शिल्पी पत्थर से मूर्ति प्रकट करता है, उसी तरह महापुरुषों का ज्ञान भीतर से प्रकट होता है। जो ज्ञान, भक्ति से प्रकट होता है, वही टिकता है।

अयोध्या, चित्रकूट वैराग्य भूमि है। विरक्त सन्तों के दर्शन अयोध्या में, चित्रकूट में होते हैं। आज अनेक भजनानन्दी साधु अयोध्याजी में, चित्रकूट में रहते हैं। चित्रकूट के सन्तों का एक नियम है-प्राण जाने पर भी मानव से कुछ न माँगना। फटी धोती पहनना, बहुत भूख लगने पर सत्तू खाना तथा सारा दिन सीताराम-सीताराम जप करना। वे आपके सामने नहीं देखेंगे। हम किसी से माँगते नहीं हैं, ऐसी उनकी भावना रहती है। श्रीसीताजी हमारा पोषण कर रही हैं, वे हमें बहुत देती हैं। हम किसी मानव से माँगने लगे तो माँ नाराज हो जाएगी। मेरा बेटा, होकर जगत् से भीख

माँगता है? इससे मानव से माँगना नहीं है। विरक्ति साधु अयोध्या, चित्रकूट में विराजते हैं। चित्रकूट वैराग्य भूमि है।

नर्मदा तट तपोभूमि है। तपस्वी महापुरुष नर्मदा के तट पर भगवान् शंकर की स्थापना करके तप करते हैं। वृन्दावन प्रेम भूमि है। श्रीकृष्ण-प्रेम बढ़ाना है तो महीने दो महीने तक वृन्दावन में जाकर रहिये। आज भी अनेक भजनानन्दी साधु वहाँ रहते हैं। जो लोग यात्रा करने जाते हैं, एक-दो दिन रहते हैं, मिठाई-रबड़ी खाकर लौट आते हैं, उन्हें कोई लाभ नहीं होता है। तीर्थ में सन्त रहते हैं, सन्तों से स्नेह करिये। सन्तों के सत्संग से यात्रा सफल होती है। प्रेमधाम वृन्दावन का वर्णन कौन कर पाता है? जहाँ श्रीकृष्ण की नित्य लीला है, श्रीबालकृष्णलाल का बाल रूप है। वृन्दावन में आज भी रास होता है। रासलीला नित्य है। वृन्दावन में श्रीकृष्ण का अखण्ड निवास है।

कभी जाते हैं तो याद रखकर दर्शन करिये। वृन्दावन में सेवाकुञ्ज है और सेवाकुञ्ज में नित्य रास होते हैं। आप दिन में दर्शन करने जाते हैं, तब वहाँ बहुत से बन्दर देखेंगे। अन्धकार हो जाने पर वहाँ कोई नहीं रह सकता है और अगर कोई रह जाय तो वह पागल हो जाता है।

विदुरजी की अनेक तीर्थों की विधि पूर्वक यात्रा

विदुरजी यमुना तट पर आए हैं। कलि के पाँच हजार वर्ष पूरे होने पर गंगाजी यमुनाजी बैकुण्ठ धाम में जाती हैं पर व्यासजी ने एक अपवाद लिखा है कि कैसा भी कलियुग हो, पर काशी में गंगाजी और वृन्दावन में यमुनाजी अखण्ड विराजमान हैं। काशी में गंगाजी उत्तर वाहिनी हैं।

विदुरजी वृन्दावन में आए हैं। जहाँ पक्षी भी राधाकृष्ण-राधाकृष्ण-कीर्तन गाते हैं। विदुर जी सुनते हैं। व्रजरज अति पावन है। द्वारिका लीला में श्रीकृष्ण राजा हैं, इसमें ऐश्वर्य मुख्य है। ब्रज में प्रेम मुख्य है, ऐश्वर्य गौण है। व्रज में श्रीकृष्ण किसी के बालक हैं, मित्र हैं, सखा हैं। नंगे पाँव गायों के पीछे वे घूमते हैं गायें उन्हें बहुत प्रिय हैं। यशोदा मैया जूते पहनने का आग्रह करती हैं। लाला कहता है-मैं गोपालकृष्ण कहलाता हूँ। गायों की सेवा करने वाला नौकर ही गोपालकृष्ण। माँ पूर्वजन्म में मैं बड़ा राजा था। मैंने सब कुछ किया पर गायों की सेवा नहीं की। इससे गायों की सेवा करने के लिए ही आपके घर आया हूँ। रामजी ने गायों की पूजा की थी पर राजाधिराज होने के कारण नौकर उन्हें गायों की सेवा नहीं करने देते थे। इससे सेवा करने के लिए ही ग्वाला के घर प्रभु ने जन्म लिया है। गायें जूते नहीं पहिनती हैं तो गायों का नौकर कैसे जूते पहिन सकता है?

गाय पशु नहीं है। तुलसी पेड़ नहीं है। तुलसी परमात्मा के साथ विवाह करती है। गंगाजी, नर्मदाजी, यमुनाजी पानी नहीं है। गावः विश्वस्य मातरः-गाय को जो पशु मानता है, वह परमात्मा

को पसन्द नहीं आता है। लाला ने गायों की बहुत सेवा की है। नंगे पाँव उनके पीछे चले हैं। इससे ही व्रजरज अतिशय पवित्र है। वह मिट्टी नहीं है, वह अति पवित्र है।

विदुरजी श्रीयमुनाजी को वंदन करके, स्नान करके रमणरेती में बैठे-बैठे श्रीकृष्ण की लीलाओं का चिंतन करते हैं। एक-एक लीला का चिंतन करते हैं। विदुरजी श्रीकृष्ण लीला के दर्शन करते हैं। इस कदम्ब को गोपियाँ 'टेर' कदम्ब कहती है। श्रीकृष्ण इस कदम्ब में विराजमान हैं, वे जब-जब प्रिय गायों को पुकारते हैं, तब-तब गायों को अति आनंद आता है। 'हम्-हम्'-करते हुए गायें दौड़ती आती हैं। कई गायें प्रेम से श्रीकृष्ण-को चाटने तक लगती हैं। विदुरजी गायों के मध्य में गोपालकृष्ण के दर्शन करते हैं तथा आनंदित होते हैं। श्रीकृष्ण के ध्यान-दर्शन से मन तुरन्त शुद्ध होता है और इन्द्रियों का निरोध होता है। विदुरजी लाला की बाँसुरी सुनते हैं। सोचाते हैं कि ये गायें लाला से मिलने के लिये दौड़ती जाती हैं पर मैं तो पत्थर-सा बैठा हूँ। अभी भी प्रभु से मिलने की तीव्र इच्छा नहीं हो रही है। वृन्दावन की गायें मुझसे श्रेष्ठ हैं। विदुरजी लाला के साथ परमात्मा का ध्यान करते हैं।

ज्ञानी, निराकार ज्योति का ध्यान करते हैं। यह अच्छा है, पर निराकार ब्रह्म के ध्यान से मन थक जाता है, और भटकने लगता है। साकार के चिंतन में अनेक जन्म बीत गये। मन को साकार के चिंतन की आदत हो गयी है। निराकार न किसी को उबारता है, न किसी को डुबाता है। निराकार न किसी को सुख देता है, न किसी का दुःख हरता है। निराकार ब्रह्म का अनुभव होता है पर कृपा तो साकार ब्रह्म-परमात्मा ही करते हैं। निराकार, निष्क्रिय है, साकार परमात्मा लीला करते हैं। लीला के साथ श्रीकृष्ण का ध्यान करिये। वैष्णव साकार श्रीकृष्ण का ध्यान करते हैं। उनके कानों में बाँसुरी की आवाज सुनाई देती है। वैष्णव लाला की गायें हैं। गाय दैन्य का प्रतीक है। जैसे-जैसे भक्ति बढ़ती है, वैसे-वैसे अभिमान घटता है। दैन्य सदैव रहता है। परमात्मा जीवमात्र को बाँसुरी सुनाकर पुकारते हैं। संसार के विषय क्षणिक सुख देते हैं, फिर बाद में रुलाते हैं। अक्षय आनन्द देने के लिए परमात्मा बाँसुरी बजाकर पुकारते हैं।

श्रीनाथ के मन्दिर में श्रीनाथजी का एक हाथ ऊँचा है, भगवान् कहते हैं कि संसार एक मेला है और मेरे सब बालक माया के खिलौनों में फँसे हैं। उनको बुलाने के लिये ही मैंने एक हाथ ऊँचा कर रखा है पर कोई मेरी बात नहीं सुनता है। संसार, माया की लीला है। माया की लीला देखने से, माया की लीला के चिन्तन से मन बिगड़ता है। श्रीकृष्ण-लीला का जो दर्शन करता है, श्रीकृष्ण-लीला का जो चिंतन करता है, धीरे-धीरे उसका मन शुद्ध होता है। कन्हैया

बाँसुरी बजाता है। गोपाल, मित्रों के साथ खेलता है। विदुरजी को एक-एक लीला का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हुआ है।

इस ओर परमात्मा द्वारिका लीला का उपसंहार करते हैं। सोचते हैं कि अब यह सोने की दुनिया डूब जाय तो अच्छा है। मानव को बढ़ाना तो आता है, पर उपसंहार करना नहीं आता है। प्रभु ने उपसंहार किया है। प्रभु ने उद्धव के सम्मुख घोषणा की है–यादवों का विनाश होगा। द्वारिका समुद्र में डूबेगी। इसलिए, हे उद्धव, अब तुम बदरिकाश्रम में जाओ। उद्धवजी श्रीकृष्ण को साथ में पधारने के लिये विनती करते हैं। उद्धवजी से श्रीकृष्ण का वियोग सहन नहीं हुआ। वे बालक की तरह रोने लगे, कहने लगे कि मैं अकेला बदरिकाश्रम कैसे जाऊँ? मेरे स्वामी मेरे साथ चलें, मैं अकेला कभी कहीं नहीं गया हूँ। मैं आपके पीछे-पीछे चलूँगा। भगवान् कहते हैं कि उद्धव! तुम मुझे बहुत प्रिय हो, पर नियम मना करते हैं। जीव अकेला आता है और अकेला ही जाता है। मैं तुम में चैतन्य रूप में सदैव रहता हूँ। तुम ऐसी भावना रखना कि मेरे साथ श्रीकृष्ण हैं। उद्धवजी भावना रखने के लिये आधार माँगते हैं। भगवान् उन्हें पादुकाएं देते हैं।

रामायण में ऐसा वर्णन आता है कि चित्रकूट में जब प्रभु ने भरतजी को आज्ञा दी कि तुम अब अयोध्या जाओ, तब भरतजी बालक की तरह रोने लगे। विचारने लगे कि प्रभु ने मुझे कभी नाराज नहीं किया है। मुझे बहुत आशा थी कि श्रीसीतारामजी अयोध्या वापस पधारेंगे! मैं अकेला अयोध्या कैसे जाऊँ? भरतजी से श्रीराम-वियोग सहन नहीं होता है। भरतजी रोने लगे। तब प्रभु ने लीला की है। वे भरतजी को समझा रहे हैं–भरत मेरा एक स्वरूप वन में जायेगा पर एक स्वरूप तुम्हारे साथ अयोध्या चलेगा। भरतजी को प्रभु ने चरण-पादुकायें दीं। भरतीजी को ऐसा आनंद हुआ कि मानो ये प्रत्यक्ष श्रीसीताराम हैं। भरतजी को पादुका में सीताराम के दर्शन हुए। उन्होंने गद्दी पर पादुका की स्थापना की। चौदह वर्ष पादुकाओं से आज्ञा लेकर उन्होंने राज्य किया। भरतजी का ऐसा नियम था कि सायंकाल में वे पादुकाओं का पुष्पों से शृंगार करते, श्रीराम-चरण-पादुका में दृष्टि स्थिर करते और 'सीताराम-सीताराम' नाम का जप करते। कभी-कभी भरतजी बहुत व्याकुल होते। कहते कि कैकेयी तुमने यह क्या किया? मेरे राम को वनवास दिया। मेरे राम मुझे छोड़कर चले गये। भरतजी जब राम-वियोग में व्याकुल होकर, रोने लगे, तब पादुका में से श्रीसीताराम प्रकट होते। भरतजी को वे समझाते थे– मैं वन में नहीं गया हूँ, मैं घर में ही हूँ। भरतजी को ऐसा लगता कि श्रीसीताराम इधर ही हैं। रामायण में भरतजी को चरण-पादुकाएँ दीं। भागवत में उद्धवजी को चरण-पादुकाएँ दी गयी हैं।

अतिशय प्रेम में जड़ पदार्थ भी चैतन्यमय हो जाते हैं। पादुकाएँ मात्र काष्ठ नहीं हैं, उनमें श्रीकृष्ण-लीला का निवास है। ये पादुकाएँ मात्र नहीं हैं, ये परमात्मा हैं। उद्धवजी पादुकाएँ लेकर बदरिकाश्रम की ओर जाते हैं। रास्ते में व्रजभूमि के दर्शन से उनका हृदय द्रवित हुआ है। व्रज की एक-एक वस्तु श्रीकृष्ण प्रेम को जाग्रत करती है। व्रज परमात्मा का स्वरूप है। वृन्दावन प्रेम भूमि है। श्रीराधा की आठ सखियाँ हैं और श्रीधाम वृन्दावन में एक-एक सखी की निकुंज हैं-अष्टनिकुंज। १-विशाखाजी का चन्द्र सरोवर, २-चंपकलताजी की श्रीसघन कन्दरा, ३-पद्माजी का श्रीअप्सरा कुण्ड, ४-भामाजी की श्रीकदम खंडी ५-सुशीलाजी का श्रीरुद्रकुण्ड ६-इन्द्रसहचरी की श्रीमानसी गंगा ७-चन्द्रभागाजी का श्रीसुरभि कुण्ड और ललिताजी का श्रीबीलछु कुण्ड। वृन्दावन अति पवित्र, अति पावन है। इसके कण-कण में श्रीकृष्ण-प्रेम भरा हुआ है। यह दिव्य भूमि है। वृजभूमि को देखकर उद्धवजी का हृदय द्रवित हुआ है। उन्होंने संकल्प किया है कि व्रजभूमि में मुझे थोड़े समय के लिए रहना है। आज सारी रात्रि रहूँगा। यमुना महारानी किसी लाड़ले वैष्णव के दर्शन करायेंगी तो उनसे सत्संग करूँगा और किसी वैष्णव के दर्शन नहीं होंगे तो मौन रहकर श्रीकृष्ण का ध्यान करूँगा।

जिसे भक्ति का रंग नहीं लगा, उससे बातें करने से क्या फायदा? आप जिस व्यक्ति से बातें करते हैं उसी का असर आप पर पड़ता है। बातचीत से स्नेह हो जाता है। जिसे भक्ति का रंग नहीं लगा है, जिसे पाप का डर नहीं है, जिसे प्रभु से प्रीति नहीं है, उस व्यक्ति से अधिक नहीं बोलना चाहिए। यमुनाजी के तट पर उद्धवजी विराजमान हैं। श्रीकृष्ण की वे मानसी सेवा कर रहे हैं। उनका कन्हैया ग्यारह वर्ष का है और राधाजी नौ वर्ष की हैं। हजारों वर्ष व्यतीत हो गये हैं पर वृन्दावन के राधा-कृष्ण बड़े नहीं होते हैं। उनका बाल स्वरूप निर्विकार है दिव्य है। विदुरजी मन से राधा-कृष्ण की सेवा करते हैं, तब वे मानसी सेवा में राधा-कृष्ण की मन से आरती करते हैं। उनकी आँखों से प्रेमाश्रु बहते हैं। उनका हृदय आर्त हुआ है। उनके शरीर में रोमांच हुआ है। उद्धवजी की दृष्टि वहाँ एक स्थान पर पड़ती है। देखते ही सोचते हैं कि यह कोई महान् वैष्णव प्रतीत होता है। यह प्रभु को मना रहा है। यह ध्यान कर रहा है, सेवा कर रहा है-ऐसा लगता है। उद्धवजी जैसे नजदीक आते हैं, तो विदुरजी के दर्शन होते हैं। वे पहिचान कर मन-ही-मन कहते हैं कि ये तो महान् वैष्णव विदुरजी विराजे हैं! मैं उनको वंदन करूँ। उद्धवजी के मन में वंदन करने की इच्छा हुई पर उसी समय विदुरजी अपनी आँखें खोलते हैं। उद्धवजी को देखकर उन्हें भी आनंद हुआ। उद्धवजी के वंदन से पहिले ही विदुरजी साष्टांग प्रणाम करते हैं। वैष्णव, विनय की मूर्ति होते हैं।

दीनता, भक्ति महारानी का सिंहासन है। वैष्णवों का हृदय दीन है। वैष्णव वंदन नहीं माँगते। वंदन माँगने वाला वैष्णव नहीं है। वंदन करने वाला वैष्णव है। कुछ लोग मंदिर में जाकर भी राह देखते हैं कि खड़े हुए भाई जब 'जय श्रीकृष्ण' करेंगे, तब, बाद में मैं हाथ उठाकर नमन करूँगा। आप वन्दन माँगिये नहीं, वन्दन कीजिये।

उद्धवजी को विदुरजी साष्टांग वंदन करते हैं। उद्धवजी दौड़ते हुए पहुँचे। सोचते हैं कि मेरी इच्छा वंदन करने की थी और ये तो मुझे वंदन कर रहे हैं! उद्धवजी ने विदुरजी को उठा लिया। यमुनाजी के तट पर दो सन्त मिले हैं–

चार मिले चौंसठ खिले, बीस रहे कर जोड़।
हरिजन से हरिजन मिले, तो बिहँसे सात करोड़॥

दो वैष्णव जब मिलते हैं, तब चार आँखें मिलती हैं और तब चौंसठ खिलते हैं। दोनों के बत्तीस-बत्तीस दाँत खिलते हैं। जिन्हें भक्ति का रंग लगा है, ऐसे लाड़ले जब मिलते हैं, तब एक शरीर के साढ़े तीन करोड़ रोम-छिद्रों के भीतर से आनन्द प्रकट होता है। सायंकाल में विदुरजी और उद्धवजी का यमुना तट पर मिलन हुआ। बाद में सत्संग का प्रारम्भ हुआ।

दोनों पागल से थे। पागल बने बिना तो पैसा भी नहीं मिलता है, परमात्मा कैसे मिल सकेंगे? अति लोभी मानव पैसे के लिये पागल सा हो जाता है, बहुत भटकता है। बहुतों की खुशामद करता है, भूख-प्यास भूलता है, तब पैसा प्राप्त होता है। पागल बने बिना पैसा भी नहीं मिलता है। अति कामी जीव काम-सुख के लिये पागल-सा हो जाता है। उसे देश-काल का ध्यान नहीं रहता है। जीव जब परमात्मा के लिये पागल होता है, तब उसका जीवन सफल होता है।

विदुरजी और उद्धवजी–दोनों में से किसी ने पानी का भी स्वागत नहीं किया है। दोनों भीतर से रंग गये हैं। वैष्णवों के मन में एक ही विषय होता है–श्रीकृष्ण। संसार की बातों में जिसे रस आता है, वह भगवान् से बहुत दूर है, उसे भक्ति का रंग नहीं लगा है। जिसे भक्ति का रंग लगा है, उसे लौकिक बातें सुनना नहीं भाता है। दोनों ने रात-भर श्रीकृष्ण-कथा की, श्रीकृष्ण-कीर्तन किया।

भागवत में ऐसे दो प्रसंग आते हैं। श्रीकृष्ण गोकुल से मथुरा पधारे हैं, तब उद्धवजी गोकुल में नन्द बाबा को और यशोदा माता को आश्वासन देने गये हैं। उसी समय यशोदा माता ने रात भर लाला की बातें की हैं। कन्हैया उन्हें याद आता है। नन्द-यशोदा लाला का स्मरण करते हैं–रोते हैं। सारी रात व्यतीत हो जाती है।

यमुनाजी के तट पर उद्धवजी और विदुरजी का सत्संग भी सारी रात चलता है। सूर्योदय हुआ, तब ध्यान आया। उद्धवजी विदुरजी से बोले–रात पूर्ण हो गई। उद्धवजी यमुना जी में स्नान

करते हैं। संध्यादि नित्य-कर्म करते हैं। उद्धवजी महान ज्ञानी-भक्त हैं। सूर्यनारायण को वे अर्घ्य देते हैं, संध्या करते हैं। महापुरुष समाज को शिक्षण देने के लिये भी धर्म पालन करते हैं। उद्धवजी विदुरजी को वन्दन करके कहने लगे–अब मुझे आज्ञा दीजिए, मुझे बद्रिकाश्रम जाना है।

वैष्णव का वियोग दुःख देता है। उद्धवजी जब जाने के लिए तैयार हुए, तब विदुरजी व्याकुल हो गये। बोले–कुछ दिन यहाँ रह जाइये। मैंने आपका स्वागत नहीं किया है। मैं आपका स्वागत करना चाहता हूँ, आपके सत्संग से भक्ति का रंग लगता है, आपके सत्संग में मुझे आनन्द आता है।

उद्धवजी ने कहा–मुझे तुरन्त ही बद्रिकाश्रम पहुँचने की आज्ञा। प्रभास में परमात्मा ने मुझे भगवान् का उपदेश किया है। और मुझसे कहा है कि तुम बद्रिकाश्रम जाओ। मुझे ये चरण-पादुकाएँ उन्होंने दी हैं। विदुरजी ने हाथ जोड़े और कहा–प्रभु ने आपको जो उपदेश किया है, उसे सुनने की मेरी इच्छा है–

ज्ञानं परं स्वात्मरहः प्रकाशं यदाह योगेश्वर ईश्वरस्ते।
वक्तुं भवान्नोऽर्हति यद्धि विष्णो-र्भृत्याः स्वभृत्यार्थकृतश्चरन्ति॥

(३-४-२५)

वैष्णव दया के समुद्र जैसे होते हैं। विदुरजी ने प्रार्थना की कि मैं आपकी शरण आया हूँ। मैं आपका दास हूँ। प्रभु ने आपको जो उपदेश किया है, उसे सुनने की मेरी इच्छा है। यह जीव लायक नहीं है पर प्रभु ने अब इस जीव को एक बार अपनाया है। हस्तिनापुर जब आए थे तब मेरी कुटिया में वे पधारे थे। प्रभु ने मुझे अपना लिया है। मैं प्रभु का हूँ।

उद्धवजी ने कहा–विदुरजी! आप महान् जीव हैं। आप भले ही कहें कि मैं साधारण जीव हूँ, मैं लायक नहीं हूँ, किन्तु आप कौन हैं, यह मैं जानता हूँ। प्रभास में परमात्मा विराजमान थे, तब प्रभु के मुख से ये शब्द निकले थे कि सब मिले पर मेरा विदुर मुझे नहीं मिला। ये शब्द मैं आपको प्रिय लगने के लिये नहीं कह रहा हूँ, पर सत्य कह रहा हूँ। मेरे मालिक के मुख से 'मेरा' शब्द आपके लिए ही निकला था।

प्रभु तुरन्त किसी से भी नहीं कहते हैं कि तुम मेरे हो! मन्दिर में बहुत से लोग जाते हैं और कहते हैं–

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

आप मेरे माता-पिता हैं आप सर्वस्व हैं। मैं आपका हूँ। प्रभु सबकी सुनते हैं पर किसी से ऐसा नहीं कहते कि 'तुम मेरे हो!' प्रभु तो जानते हैं कि जब मन्दिर में आता है तो बहुत भला बनकर आता है, पर घर जाने पर इसका भलापन सयानापन चला जाता है। घर जाकर अपने पुत्र की माता से कहता है कि तुम मेरी हो और मैं तुम्हारा हूँ। मूर्ख को ऐसा कहने में शर्म भी नहीं आती है। जो मन्दिर में प्रभु का था, घर जाकर स्त्री का हो जाता है, पुरुष का हो जाता है। प्रभु तुरन्त किसी से भी नहीं कहते कि तुम मेरे हो!

मोर-मोर सब कोई कहत, बहुत मचावत शोर।
मोर पंखवारे प्रभू, वेग कहत ना मोर॥

भगवान् जिसके लिए कहते हैं कि यह जीव मेरा है, उसका ही सच्चा ब्रह्म-सम्बन्ध होता है।

उद्धवजी कहते हैं कि विदुरजी! आप बहुत भाग्यशाली हैं। प्रभु ने स्वयं कहा है कि विदुर मेरा है।

विदुरजी ने सुना तो उनकी आँखों में आँसू आ गये। अहा! ऐसा कहा कि विदुर मेरा है। मैंने कभी भक्ति की ही नहीं है, मैंने परमात्मा का ठीक से ध्यान भी नहीं किया है, सेवा भी नहीं की है। प्रभु के नाम के जप भी नहीं किये हैं फिर भी प्रभु ने कृपा करके इस जीव को अपनाया है। भक्ति करने पर जब भीतर का अहम् बढ़ जाता है तब वह भक्ति नहीं रहती है। भक्ति से तो अभिमान मरता है। विदुरजी ने बहुत सेवा की है पर उन्हें लगता है कि उनके द्वारा सेवा नहीं हो सकी है। साधारण जीव को भोग से सन्तोष नहीं होता है। भक्त को भक्ति से सन्तोष नहीं होता है। भोग में संतोष रखिये, भोजन में सन्तोष रखिये, संसार सुख में सन्तोष रखिये, सम्पत्ति में सन्तोष रखिए, किन्तु भक्ति में लोभ रखिये। जिसे भक्ति में सन्तोष होता है, तृप्ति होती है; उसकी भक्ति कच्ची है उसकी उन्नति रुक जाती है। विदुरजी ऐसा मानते हैं कि मैंने कभी भक्ति की ही नहीं है। मेरे द्वारा कुछ भी नहीं हुआ है, फिर भी प्रभु ने कृपा करके इस जीव को अपनाया है। मेरे प्रभु का नाम ही पतित पावन है। मेरे जैसे पापी को नहीं अपनायेंगे तो कौन उन्हें पतित पावन कहेगा? विदुरजी को आनन्द हुआ है। उद्धवजी ने कहा है कि जब प्रभु ने मुझे भागवत का उपदेश सुनाया तब मैत्रेय ऋषि वहाँ बैठे थे और उनको परमात्मा ने आज्ञा दी है कि मेरा विदुर आपको मिल जाय तो यह सारी कथा आप उन्हें सुनाइएगा। गंगा तट पर मैत्रेय ऋषि विराजमान हैं, आप वहाँ जाइए। मुझे तो बद्रिकाश्रम जाना है।

उद्धवजी चरण-पादुकाएँ सिर पर धारण करके बद्रिकाश्रम पहुँचे हैं। बद्रीनारायण के पास पाँडुकेश्वर में गंगाजी के तट पर उद्धवजी बैठे हैं। भागवत में जैसा लिखा है वैसा ही आज भी

वहाँ है। भागवत में शुकदेवजी महाराज बोले हैं कि हिमालय से निकली गंगाजी के दर्शन जो करते हैं, उनका मन शुद्ध और शान्त रहता है। आज भी वहाँ ऐसा ही दृष्य है। हिमालय का सौन्दर्य मन को शुद्ध और शान्त करने वाला मन को चंचल करने वाला दृश्य सौन्दर्य वहाँ नहीं है। हिमालय का सौंदर्य अति सात्विक है। गंगाजी के दर्शन से मन स्थिर होता है। मन में सात्विक भाव जागते हैं तथा मन की चंचलता कम होती है।

विदुरजी गंगा तट पर मैत्रेय ऋषि के आश्रम में आते हैं। श्रीयमुनाजी भक्ति देती है। श्रीगंगा माता ज्ञान और वैराग्य देती हैं। ज्ञान-वैराग्य-विहीन भक्ति बाँझ है। लोग भक्ति करते हैं पर प्रायः दुःख में ही भक्ति करते हैं। मानव को जब बहुत सुख मिलता है, तब भक्ति छूट जाती है। भक्ति में ज्ञान और वैराग्य का भाव होना चाहिए। संसार के सुख को बहुत महत्व नहीं देना चाहिये। संसार का कोई भी सुख दो-तीन मिनट से अधिक नहीं रहता है। सब सुख कच्चा है। भक्ति में ज्ञान वैराग्य न हो तो सुख में भक्ति छूट जाती है। ज्ञान-वैराग्य से भक्ति का स्फुरण होता है।

विदुरजी श्रीगंगा मैया को साष्टाँग प्रणाम करते हैं। गंगाजी में उन्होंने स्नान किया है। गंगा तट पर आते हैं तब उनका हृदय द्रवित हो जाता है। विचारते हैं कि मुझे ऐसा लगता है कि गंगाजी के पत्थर मुझ से श्रेष्ठ हैं। मैत्रेय ऋषि जैसे महापुरुष गंगाजी में स्नान करके, नारायण के नाम का स्मरण करते-करते चलते हैं, तब गंगाजी के इन पत्थरों को भी सन्तों की चरण-रज मिलती है। मेरा हृदय पत्थर से भी कठोर है। परमात्मा से मिलने की तीव्र इच्छा मुझे नहीं होती है। मैं गंगा तट का पत्थर हुआ होता तो मेरा कल्याण होता। गंगाजी के तट के पत्थरों पर पांव रखते भी विदुरजी को संकोच होता है। प्रेम में उनका हृदय द्रवित हो जाता है। विदुरजी का यह अंतिम जन्म है।

समर्थ सद्गुरु रामदास स्वामी ने दासबोध में अन्तिम जन्म के कुछ लक्षण दिखाये हैं। ऐसे लक्षण दीख पड़ें, तब समझना चाहिये कि यह अन्तिम जन्म है। जिसका हृदय चौबीसों घण्टे प्रेमपूर्ण रहता है। जो भावावेश में, भक्ति में निरन्तर तन्मय हो जाता है, उसका यह अन्तिम जन्म है। जिसकी बुद्धि से काम निकल गया है; उसका यह अन्तिम जन्म है। काम शरीर में से निकल जाता है, इन्द्रियों से निकल जाता है, पर बुद्धि में सुषुप्त अवस्था में पड़ा रहता है। काम को संस्कृत भाषा में 'हृच्छयः'-कहते है। 'हृदिशेते इति हृच्छयः'-साधारण ज्ञान से अथवा भक्ति से बुद्धि में बसा हुआ काम नहीं निकलता है।

खेत में पड़ा बीज अगर जल नहीं जाता तो अगले साल पुनः वर्षा होने पर उग आता है। बीज जल जाता है, तब ही अंकुर प्रस्फुरित नहीं होते। काम-बीज जलता नहीं है। काम, बुद्धि में घर करके बैठा है। साधारण बुद्धि से या भक्ति से काम-बीज जलता नहीं है। वही काम पुनः दूसरे

जन्म में उग आता है। फिर से पति-पत्नी का भाव जागता है और वही पतन की ओर ले जाता है। जब बुद्धि से काम निकल जाता है, अभिमान बह जाता है, हृदय में दैन्य आ जाता है और जहाँ दृष्टि जाती है, वहाँ भगवद्भाव जागता है तो मानिये कि ये सब अंतिम जन्म के लक्षण हैं।

विदुरजी का यह अंतिम जन्म है। विदुरजी का हृदय भगवद्-चरणों में रत रहता है। भगवद्-चरण का स्मरण करते वे चलते हैं। मैत्रेय ऋषि के आश्रम में विदुरजी आते हैं। मैत्रेय ऋषि को साष्टांग वंदन करते हैं।

मैत्रेय स्वामी ने विदुरजी का स्वागत किया है। उन्हें सुन्दर आसन दिया है। ऋषि बोले कि आज भले ही साष्टांग वंदन करें, मैं आपको पहिचानता हूँ। आप महापुरुष हैं। एक दिन तो ऐसा आता है कि जब सभी जीव आपके समक्ष हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं। आप यमराज के अवतार हैं। मैं आपको जानता हूँ, पहिचानता हूँ।

यमराज की यही एक भूल हो गयी कि उन्होंने मांड़व्य ऋषि को शाप दिया। राजमहल में से चोरी करके कुछ चोर भाग गये। रास्ते में मांडव्य ऋषि का आश्रम आता था। चोरों ने आश्रम में चोरी का माल फेंक दिया पर सैनिकों ने चोरों को पकड़ लिया। चोरी का माल मांडव्य ऋषि के आश्रम से मिला, इससे उनको भी पकड़ा गया। कहा गया कि यह तो चोरों का सरदार है। राजा ने हुक्म दिया कि सभी को शूली पर चढ़ा दो। सभी चोर शूली पर चढ़ कर मर गये पर मांडव्य ऋषि के शरीर में शूल का प्रवेश ही नहीं हो रहा था। राजा को विश्वास हो गया कि यह चोर नहीं है। यह कोई संत हैं। मांडव्य ऋषि से राजा ने क्षमा माँगी। मांडव्य ऋषि ने कहा कि तुम्हें क्षमा कर रहा हूँ पर यमराज की खबर लूँगा। मैंने कोई पाप नहीं किया है तो भी यमराज ने मुझे क्यों सजा दी? जिसने पाप किया है, उसे डर लगता है। जिसने पाप नहीं किया उसे यमराज का डर कैसा? यमराज मेरा क्या करेंगे? मैंने पाप किया ही नहीं है। मानव को जो डर लगता है, वह अपने पाप का ही डर है।

मांडव्य ऋषि यमपुरी में गये। यमराज के दो स्वरूप हैं—एक क्रूर और दूसरा सौम्य। पापी के लिये वे क्रूर-स्वरूप हैं, वैष्णवों के लिये सौम्य-स्वरूप हैं। यमराज उठकर खड़े हो गये। बोले पधारिये, पधारिये! मैं आपकी पूजा करूँगा। मांडव्य ऋषि ने कहा—'आज तुम्हारी पूजा लेने नहीं आया हूँ। आज तुम्हारी खबर लेने आया हूँ। तुमने मुझे फाँसी के तख्ते पर कैसे चढ़ाया? मैंने पाप नहीं किया है। ऋषि के नाम कोई भी पाप नहीं है पर यमराज का कार्य-व्यवहार बहुत बड़ा है। उसमें कभी-कभी गलती हो जाती है। लाखों जीवों को सजा करनी होती है। यमराज को पता चला कि भूल हो गयी है। महाराज को भूल से सजा हो गयी है।

यमराज घबरा गये सोचने लगे कि ऋषि कदाचित् मुझे शाप देंगे। यमराज ने मांडव्य ऋषि से कहा–महाराज! आप तीन वर्ष के थे, तब आपने एक पतंगे के पंख में काँटा चुभाया था। उसी की यह सजा है। मांडव्य ऋषि ने कहा कि बालक जो कुछ भी पाप करता है, उसे उसकी सजा स्वप्न में होती है, ऐसा नियम है। छह वर्ष तक बालक अज्ञान अवस्था में होता है। अज्ञान अवस्था में किये गये पाप की थोड़ी सजा माता-पिता को भी होती है। थोड़ी सजा उस जीव को भी होती है; पर यह सजा स्वप्न में होती है। मैं तीन वर्ष का था और मैंने पतंगे के पंख में काँटा चुभोया तो उस पाप की सजा स्वप्न में करनी चाहिये। जाग्रत अवस्था में तुमने मुझे फाँसी पर चढ़ाया। तुमने नियम भंग किया है, अब मैं तुम्हें सजा दूँगा।

भरतखंड का मानव न्यायाधीश को भी सजा दे सकता है। पाप का फल भोगना पड़ता है। जानकर या अनजाने में किये गये पाप का फल भोगना ही पड़ता है। अपनी इच्छा से या दूसरे की इच्छा से किये गये पाप का फल भोगना ही पड़ता है। पाप का नाश भोगने से होता है। पाप कृष्णार्पण नहीं हो सकता। पुण्य कृष्णार्पण होता है। सत्कर्म प्रभु को अर्पण करना होता है–

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वा प्रकृतेः स्वभावात्।
करोमि यद्यद् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयामि।।

कई लोगों का ऐसा नियम होता है कि संध्या समय में घर जाते हुए मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं। मन्दिर में भगवान् के समक्ष हाथ जोड़कर कहते हैं कि सब कुछ आपको अर्पण करने आया हूँ–'नारायणायेति समर्पयामि'–'कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा' इसका अर्थ तो यह है कि शरीर वाणी और मन से जो पुण्य हुआ है, उसे मैं परमात्मा को समर्पित करता हूँ। भगवान् को कोई पाप अर्पण करने जाता है तो भगवान् पाप लेते नहीं हैं। पाप तो भोगना ही पड़ता है। अज्ञान में किये गये पाप की भी सजा होती है।

कोई जब अच्छा काम करता है, तब भगवान् उसे बख्शीश देते हैं। फिर बख्शीश लेने वाला उसे वापिस देता है। वह कहता है कि मुझे कुछ भी लेना नहीं है। मैं सरकार को समर्पण करता हूँ। इसका सदुपयोग कीजिए। बख्शीश का समर्पण होता है, पर क्या सजा का समर्पण होता है? कोई बड़ा गुनाह किया हो और सरकार सजा दे और फिर गुनाहगार हाथ जोड़कर कहने लगे कि यह सजा मैं सरकार सादर समर्पित करता हूँ तो क्या यह चलेगा? अरे, सजा का समर्पण नहीं होता है, बख्शीश का समर्पण होता है। पुण्य कृष्णार्पण हो सकता है, पर पाप कभी कृष्णार्पण नहीं होता। पाप भोगना ही पड़ता है। अनजाने में पाप किये जाने पर उसकी सजा स्वप्न में होती है।

मांडव्य ऋषि ने यमराज से कहा है कि तुमने मुझे गलत सजा दी है। मैं तुम्हें शाप देता हूँ। तुम्हें दासी पुत्र बनना पड़ेगा।

मांडव्य ऋषि के शाप के कारण यमराज विदुरजी के रूप में प्रकट हुए हैं। दासीपुत्र हुए हैं। यमराज महान् देव हैं। देव गलती करते हैं, तब मानव होते हैं। मानव गलती करता है, तब मृत्यु के बाद चार पांवों का बनता है। मानव का जन्म देव बनने के लिए है। ऐसा पाप न करिये कि भगवान् हमें पशु का जन्म दें। इतनी भक्ति नियम से करिए कि हमारा अगला जन्म किसी सन्त के घर में हो। विचारते रहिये कि इस जन्म में तो बहुत उम्र के बाद सावधान हुआ। मुझे देर से ज्ञान हुआ। अब मुझे सन्त के घर जन्म लेना है, जिससे कि दूसरे जन्म में मैं बचपन से ही सावधान हो सकूँ। आप देव नहीं हो सकते तो चिन्ता नहीं है, पर पशु जन्म मिले, ऐसा पाप न हो जाय, इसका ध्यान रखिये।

विदुरजी अब बहुत सावधान हैं। सोचते हैं कि मुझ से एक बार भूल हुई। अब दूसरी बार भूल होगी तो मैं पशु होऊँगा। अब सावधान होकर वे भक्ति करते हैं।

मैत्रेय ऋषि विदुरजी से कहते हैं कि आपको मैं जानता हूँ। आप यमराज के अवतार हैं। मेरे परमात्मा की मुझे आज्ञा हुई है कि मेरे विदुर को तुम उपदेश देना। विदुरजी! आपकी जो शंका हो, आपको जो पूछना हो, मुझसे कहिये। विदुरजी ने बहुत सुन्दर प्रश्न पूछा है–

सुखाय कर्माणि करोति लोको न तैः सुखं वान्यदुपारमं वा।
विन्देत भूयस्तत एव दुःखं यदत्र युक्तं भगवान्वदेन्नः॥
जनस्य कृष्णाद्विमुखस्य दैवादधर्मशीलस्य सुदुःखितस्य।
अनुग्रहायेह चरन्ति नूनं भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य॥

(३-५-२/३)

यह जगत् प्रभु ने क्यों बनाया? संसार की रचना से जीव दुःखी होते हैं। भगवान् जगत् न बनाते तो कोई दुःखी नहीं होता। भगवान् क्यों इस संसार की रचना करते हैं? यही मुझे समझाइए। आप ऐसा कहेंगे कि भगवान् जगत् उत्पन्न करते हैं। यह उनकी लीला है, किन्तु परमात्मा जब आनन्दमय हैं तब ऐसी लीला क्यों करते हैं? जिससे जीव दुःखी होता है।

मैत्रेय स्वामी विदुरजी को समझाते हैं–अरे किसी को दुःखी करने के लिए प्रभु ने जगत् नहीं बनाया है। यह जीव ईश्वर का अंश है। ईश्वर से यह जुदा हो गया है। प्रचण्ड अग्नि जब धधकती है, तब उसमें से चिनगारियाँ निकलती हैं। परमात्मा अग्निस्वरूप हैं। चिनगारी स्वरूप यह जीव है। जीव, ईश्वर की चिनगारी है। वह भगवान् से जुदा हो गया है। जीव वापस प्रभु के चरणों

में आयेगा और प्रभु से मिलेगा, तब ही जीव को शांति प्राप्त होगी। माया के अधीन होकर जीव विकार-वासना से लौकिक सुख भोगता है और सुख भोगते हुए आँखों को और मन को बिगाड़ता है। वह पाप करता है और इसी से दुःखी होता है। किसी को दुःखी करने के लिये प्रभु ने इस जगत् को नहीं बनाया है। अनादिकाल से ईश्वर से जुदा पड़ा जीव भटकता है। इस जीव को अपने स्वरूप का ज्ञान करा के, किये गये पापों का फल भोगने के बाद, उसके पापों का विनाश करके, जीव को अपनी ओर खींचने के लिये भगवान् संसार की रचना करते हैं, जिससे कि अपने किये पापों के फल को भोगकर जीव निष्काम बने, निरन्तर भक्ति करे। प्रभु चाहते हैं कि मुझ से जुदा हुआ जीव पुनः मेरे चरणों में आये और कृतार्थ हो।

यह संसार प्रभु ने बनाया है। जगत् को देखकर मानव परमात्मा का विचार करता है। किसी सुन्दर बालक को देखकर लोग सोचते हैं कि ऐसा सुन्दर बालक जिनका होगा वे माता-पिता कितने सुन्दर होंगे? मानव को भी ऐसा कौतूहल हो परमात्मा के दर्शन की भावना उसके मन में आये इसलिये जगत की रचना हुई है। इस उत्पत्ति की कथा भागवत में एक नहीं अनेक बार आती है।

जो कथा पहले वर्णित हो गयी है, वही फिर से इस अध्याय में आती है। आदिनारायण परमात्मा की खेलने की इच्छा हुई। प्रकृति-पुरुष का जोड़ा उत्पन्न हुआ। प्रकृति पुरुष में से महत्तत्व हुआ, महत्तत्व में से अहंकार आया। अहंकार के तीन भेद हुये—सात्विक, राजसिक और तामसिक। तामसिक अहंकार से पंच तन्मात्राएँ हुईं। पंच तन्मात्राओं से पंच महाभूतों की सृष्टि हुई। राजसिक अहंकार से इन्द्रियाँ हुईं। सात्विक अहंकार से इन्द्रियों के अभिमानी देवता हुए। ये सभी तत्व, मात्र परमात्मा के संकल्प से उत्पन्न हुए। बाद में भगवान् की नाभि में से कमल उत्पन्न हुआ। कमल में से ब्रह्माजी प्रकट हुए। जब ब्रह्माजी ने सौ वर्षों तक तपश्चर्या की, तब उनको नारायण के दर्शन हुए।

आजकल तो पाँच-दस वर्षों तक भक्ति करके जप करके लोग अभिमान से बातें करते हैं। अकड़कर कहते हैं कि दस वर्षों से जप कर रहा हूँ पर अभी तक भगवान् के दर्शन नहीं हुए हैं। सोचिये कि क्या प्रभु इतने सुलभ हैं? आप भक्ति करिये। प्रभु के दर्शन नहीं होते तो भी आपकी भक्ति सफल है। यह जीव योग्य नहीं है, इससे भगवान् दर्शन नहीं देते हैं। ऐसा कौन पिता है जिसकी अपने पुत्र का मुख देखने की इच्छा न हो, किन्तु अगर पुत्र नालायक हो तो पिता की पुत्र को देखने की इच्छा तक नहीं होती है। यह जीव योग्य नहीं है इसी से भगवान् अपना स्वरूप छिपाते हैं, परन्तु फिर भी भक्ति व्यर्थ नहीं जाती है। किसी मानव से आशा न रखिये और भगवान् की आशा न छोड़िये। भगवान् दर्शन देंगे। जीव योग्य बनता है, तब भगवान् दर्शन देते हैं। प्रभु की

आशा रखकर निरंतर भक्ति करिये। ब्रह्माजी को भी सौ वर्षों तक भक्ति करनी पड़ी थी, तब नारायण के दर्शन हुए थे।

ब्रह्माजी ने स्तुति की है–

ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम्।
नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि।।

(३-९-१)

आज सौ वर्षों के बाद मुझे आपके दर्शन हुए। आज आपके दर्शन करके मैं कृतार्थ हुआ हूँ। जीव जब तक परमात्मा का नहीं होता तब तक उसके दुःख का अंत नहीं आता है। जीव जब परमात्मा की शरण में जाता है, जब परमात्मा का हो जाता है, तब वह निर्भय हो जाता है। वह निश्चिंत हो जाता है। आपको जो पहिचानता है, उसका जीवन सफल हो जाता है। ब्रह्माजी ने बड़ी स्तुति की। प्रभु ने ब्रह्माजी को आज्ञा दी कि आप प्रजा का निर्माण कीजिये। ब्रह्माजी ने कहा कि इस संसार की रचना करने के बाद मुझे कभी ऐसा अभिमान न हो कि मैंने संसार बनाया है–ऐसा वरदान दीजिए। प्रभु ने ब्रह्माजी को वरदान दिया। प्राकृत-वैकृत सृष्टि ब्रह्माजी ने उत्पन्न की। ब्रह्माजी ने देवों को उत्पन्न किया और उनको सृष्टि-रचना की आज्ञा दी पर सभी देव सात्त्विक होने के कारण तैयार नहीं हुए। बाद में ब्रह्माजी ने सभी ऋषियों से कहा कि आप प्रजा उत्पन्न करिये। ऋषियों ने भी स्वीकार नहीं किया। वे बोले कि हमें ध्यान में आनन्द आता है, हमारी प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा नहीं है। ब्रह्माजी ने सोचा कि मुझे जगत् में कुछ आकर्षण रखना चाहिये, जिसके अधीन होकर सभी प्रजोत्पत्ति करें। ब्रह्माजी ने काम को उत्पन्न किया। कामदेव से उन्होंने कहा कि बाल्यावस्था और वृद्धावस्था में किसी को त्रस्त न करें। कामदेव इधर-उधर देखने लगे। इतने में ऋषियों के हाथ से माला गिर पड़ी। ब्रह्माजी हँसने लगे। सोचने लगे कि अब किसी से नहीं कहना पड़ेगा कि प्रजा उत्पन्न करिये। प्रथम पिता को काम ने मोह वश कर दिया।

ब्रह्माजी दायें अंग से पुरुष और बायें अंग से स्त्री उत्पन्न करते हैं। पुरुष का नाम रखा मनु और स्त्री का नाम शतरूपा। मनु और शतरूपा रानी को ब्रह्माजी ने आज्ञा दी कि तुम मिथुन-धर्म से प्रजा का निर्माण करो; परन्तु उस समय पर राक्षस इस धरती को पाताल में ले गये थे। मनु महाराज बोले कि प्रजा को मैं किसके आधार पर रखूँ? पृथ्वी को राक्षस लोग रसातल में ले गये हैं। ब्रह्माजी उसी समय आदिनारायण परमात्मा का ध्यान करते हैं। परमात्मा के ध्यान में ब्रह्माजी को छींक आयी। उससे नासिका से अंगुष्ठ-परिमाण वराहनारायण प्रकट हुए। धीरे-धीरे वराहनारायण ने स्वरूप बढ़ाया। गर्जना की। विशाल स्वरूप धारण करके वे रसातल में पहुँचे और धरती को

बाहर ले आये। उस समय रास्ते में हिरण्याक्ष नाम का राक्षस मिला। उसके साथ उनका युद्ध हुआ। हिरण्याक्ष को वराहनारायण ने सद्‌गति दी। हिरण्याक्ष का उद्धार किया। पृथ्वी की स्थापना जल में हुई। मनु महाराज को पृथ्वी का राज्य दिया गया और वराहनारायण वैकुण्ठ में भगवान् के धाम में गये।

२२–वराहनारायण का अवतार

मैत्रेयीजी ने बहुत संक्षेप में वराह महाराज की कथा सुनायी है। विदुरजी को इससे सन्तोष नहीं हुआ। बोले कि महाराज! आपने कथा में बहुत संक्षेप किया। यह कथा विस्तार से सुनने की इच्छा है। यह हिरण्याक्ष कौन था, जो सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा के साथ युद्ध करने गया? यह धरती रसातल में गयी, अर्थात् क्या हुआ था? वराहनारायण का चरित्र विस्तारपूर्वक और रहस्य के साथ श्रवण करने की इच्छा है।

एक अध्याय में हिरण्याक्ष के पूर्वजन्म की कथा की है और बाद के पाँच अध्यायों में वराह महाराज के चरित्र की कथा है। अग्निहोत्री तपस्वी ब्राह्मण कश्यप ऋषि एक बार संध्या समय में अग्नि में होम करने की तैयारी कर रहे थे। उसी समय अग्निहोत्री तपस्वी कश्यप ऋषि की पत्नी दिति वहाँ आयीं। दिति ने बहुत सरस शृंगार किया था। दिति वहाँ पति के पास आकर कहने लगीं कि यह काम मुझे त्रस्त कर रहा है। मेरी इच्छा परिपूर्ण करिये। कश्यप ऋषि दिति से कहते हैं कि यह आप क्या कह रही हैं? यह संध्या का समय है। प्रभु के नाम का दीपक जलाइए। प्रेम से परमात्मा के नाम का कीर्तन करते हुए कहिए कि मेरे भीतर सदैव प्रकाश रहे। परमात्मा प्रकाशमय हैं। प्रभु को दीपक की आवश्यकता नहीं है। दीपक की जरूरत मानव को है।

दशम स्कन्ध में आगे श्लोक आयेगा। उसका भाव है कि यशोदा मैया गोपियों को समझाती हैं–अरी सखियों, आपके घर कन्हैया चोरी करता है, तो आप कन्हैया को दीख न पड़े, ऐसी जगह माखन रखिये। अँधेरी जगह रखिये। एक गोपी ने कहा–माँ मैंने अंधेरे में ही रखा था पर कन्हैया मेरे घर में आया कि अचानक प्रकाश फैल गया। लाला को दीपक की जरूरत ही नहीं है। लाला का श्रीअंग ही दीपक सा है। परमात्मा प्रकाशमय हैं, स्वयं प्रकाश हैं। परमात्मा जहाँ विराजमान हैं, वहाँ अंधेरा आता ही नहीं है।

दीपक की आवश्यकता तो मानव को है। मानव के मन में अन्धकार आता है। अज्ञान ही अंधकार है। वासना ही अंधकार है। प्रभु के समक्ष दीपक रखकर कहिये, कि आपको दीपक की जरूरत नहीं है। आप ऐसी कृपा करिए कि मेरे भीतर भी प्रकाश सदैव रहे। मेरे भीतर अन्धकार

न आने पावे, इसलिए मैंने दीपक जलाया है। प्रभु के पास दीपक प्रज्वलित करने से आपको ही लाभ होगा। सूर्य अस्त होने पर बाहर भटकना नहीं चाहिए। कई लोगों की ऐसी बुरी आदत होती है कि सूर्यास्त होने पर घर को ताला लगाकर भटकने जाते हैं। सूर्य अस्त हो, तब घर में रहिये संध्या समय पर ब्राह्मण संध्या करते हैं। आप घर में ठाकुरजी के समक्ष दीपक जलाइये। प्रेम से प्रभु के नाम का दीपक जलाइये। संध्या समय पर भक्ति की बहुत जरूरत रहती है। सूर्य अस्त होने पर बुद्धि में काम प्रवेश होता है। रात्रि समय में भी वह बुद्धि में आता है। बुद्धि के स्वामी सूर्यनारायण हैं। सूर्य जब अस्त होता है, तब बहुत दुर्बल होता है। सूर्योदय और सूर्यास्त का समय हो, तब सावधान रहिए। उस समय पर सजग स्वस्थ रहने पर काम आपकी बुद्धि में नहीं आ सकेगा। सूर्योदय के समय पर अन्य कोई काम न करिये। सूर्य जब बाहर आयें, तब हाथ जोड़कर खड़े रहिये। आप जिन देव की पूजा करते हैं, वे आपके इष्टदेव सूर्यमण्डल में विराजमान हैं, ऐसा सोचकर, ऐसे भाव से तेजोमय मंडल के साथ इष्टदेव का ध्यान करिये और साथ में जप करिये।

सूर्य जब अस्त होते हैं, तब सावधान होकर भक्ति करिये। सूर्य अस्त होते हैं तब काम बुद्धि में प्रविष्ट होता है। जब काम भीतर आ जाता है, तब वह ज्ञान को धक्का मारता है। तब हमारी बुद्धिमानी टिक नहीं पाती। हमारा विवेक बह जाता है। ऐसा सादा और सरल जीवन व्यतीत करिये कि काम भीतर आने ही न पावे।

कश्यप ऋषि दिति को समझाते हैं कि काम के विनाश के लिये विवाह है। किसी भी सुन्दर वस्तु को देखकर मन चंचल होता है। एक ही पुरुष अथवा एक ही स्त्री में मन स्थिर करने के लिये ही विवाह है। विवाह, विलास के लिये नहीं है, विवाह काम को नष्ट करने के लिये है।

हमारे शास्त्रों में तो ऐसा भी लिखा है कि जिसका मन एक ही स्त्री में है, एक ही पुरुष में है, देव, ब्राह्मण, अग्नि की साक्षी में जिस किसी पुरुष के साथ अथवा किसी स्त्री के साथ विवाह हुआ हो और वह उसी एक स्त्री या पुरुष में काम-भाव रखता है, वह व्यक्ति गृहस्थ होने पर भी संन्यासी है। मन को पवित्र रखने के लिए ही विवाह है। गृहस्थाश्रम, काम के विनाश के लिये है। गृहस्थाश्रम में पति-पत्नी संयम रखते हैं, तब सत्पुत्र का जन्म होता है। लोग समझते हैं कि काल बिगड़ा है, इससे पापी पुत्र उत्पन्न हुआ है। काल बहुत बिगड़ा नहीं है, पर मन बिगड़ा है। जीवन में संयम नहीं रहा है। कश्यप ऋषि दिति को समझाते हैं, कि यह समय पवित्र नहीं है। इस समय में तुम्हारे पेट में गर्भ रहेगा तो राक्षस बनकर आयेगा। संध्या समय में शंकरजी की पूजा होती है। संध्या को प्रदोष काल कहते हैं। समय अच्छा नहीं है। देव और ऋषि भगवान् शंकर की इस समय पूजा करते हैं—

ब्राह्मादयो यत्कृतसेतुपाला यत्कारणं विश्वमिंद च माया।
आज्ञाकारी तस्य पिशाचचर्या अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम्।।

(३-१४-२८)

ब्रह्मादि देव भी भगवान शंकर की मर्यादा को भंग नहीं करते हैं। इस समय पर शिवजी महाराज तुम्हें और मुझे देखें तो वे हमें दंड देंगे। देवाधिदेव महाराज की मर्यादाओं को भंग मत करो। तुम धैर्य रखो। इस समय भगवान् शंकर श्रीअंग में भस्म धारण करके संसार में भ्रमण करते हैं।

एक वैष्णव ने शंकर दादा से पूछा कि महाराज! आप भस्म क्यों लगाते हैं? शिवजी ने कहा कि मैं जगत् को बोध देता हूँ कि शरीर भस्म है। भले ही वह राजा का शरीर हो या रंक का शरीर हो। मानव, शरीर का बहुत शृंगार करता है। उसको बहुत लाड़ करता है। शरीर का सुख ही मेरा सुख है, ऐसा मानता हैं। शरीर तो भस्म है। भस्मान्तम शरीरम्– शरीर में प्राण हैं, तब तक मूल्य है। प्राण निकल जाने पर इस शरीर को कोई घर में नहीं रखता। श्माशान में ले जाते हैं। वहाँ शरीर भस्म बन जाता है। भगवान् शंकर श्मशान में विराजमान हैं। श्मशान ज्ञानभूमि है। आपको ज्ञानी होना है तो श्मशान में जाने की जरूरत नहीं है पर दिन में दो-चार बार श्मशान को याद करिये। शरीर एक दिन श्मशान में ही जायेगा। श्मशान को न भूलिये। जिस शरीर का आप इतना लाड़ करते हैं, वह एक दिन छोड़ना ही पड़ेगा। जो शरीर पर थोड़ा-सा विचार करता है, उसका वैराग्य जागता है। इस शरीर में मल-मूत्र, रुधिर मांस और हड्डियाँ हैं। यह सभी चमड़ी से ढँका है। चमड़ी हट जाय और ये सभी बाहर आ जायें तो देखकर घृणा हो जायगी। मानव को चमड़ी का मोह होता है।

कश्यप ऋषि दिति को समझाते हैं–गृहस्थाश्रम में पति-पत्नी संयम रखते हैं तो काम का विनाश कर के परमात्मा के चरणों में जाते हैं। श्रीकृष्ण मिलन में काम बिघ्न लाता है। जीव और ईश्वर–दोनों साथ ही होते हैं। ईश्वर जीव को देख सकते हैं, पर जीव ईश्वर को नहीं देख पाता। दोनों के बीच एक पर्दा है– उसे ही काम कहते हैं। काम के विनाश के लिये विवाह करना है।

कश्यप ऋषि दिति को समझाते हैं, पर दिति नहीं मानती है। दिति कामान्ध, मोहान्ध है। उसने बहुत दुराग्रह किया। जब दिति ने दुराग्रह किया तब अंत में कश्यप ऋषि दिति के दुराग्रह से सम्मत हुए। दिति सगर्भा हुई। सगर्भा दिति को बहुत पश्चाताप हुआ। सोचने लगी कि मैंने बहुत भूल की है। मुझ से उन्होंने कहा पर मैंने उनका कहना नहीं माना। दिति भगवान् शंकर की पूजा करती है, पतिदेव की सेवा करती है।

कश्यप ऋषि ने दिति से कहा–देवी! समय अच्छा नहीं था। मेरा मन भी अशांत था। तुमने दुराग्रह किया। मुझे दीख रहा है कि तुम्हारे पेट में दो राक्षस हैं। वे जगत् को रुलायेंगे, बहुत त्रस्त करेंगे। पति-पत्नी संयम नहीं रखते, तब पापी उत्पन्न होता है। कश्यप ऋषि दिति को उलाहना दे रहे हैं कि राक्षस उत्पन्न होंगे लोगों को त्रस्त करेंगे, तब भगवान् प्रकट होकर तुम्हारे पुत्रों को मारेंगे। दिति ने सुना और कहा कि मेरे पुत्रों को भगवान् मारेंगे, तब इनको अंतिम समय में भगवान् के दर्शन होंगे? कश्यप ऋषि ने कहा कि हाँ, दर्शन होंगे। दिति ने कश्यप ऋषि की बहुत सेवा की है। एक दिन कश्यप ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और दिति से उन्होंने कहा कि देवी, तुम्हारे दो पुत्र तो राक्षस ही होंगे पर मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ। तुम्हारे पुत्र का पुत्र-तुम्हारा पौत्र महान् भगवद् भक्त होगा। कश्यप ऋषि ने वरदान दिया है–

स वै महाभागवतो महात्मा महानुभावो महतां महिष्ठः।
प्रवृद्धभक्त्या ह्यनुभाविताशये निवेश्य वैकुण्ठमिमं विहास्यति।।

(३-१४-४७)

महान् भगवद् भक्त कौन? ठाकुरजी की सेवा-पूजा जो करता है, वह है साधारण वैष्णव। जिसके संग में आने पर भक्ति का रंग लग जाता है, वह है महान् वैष्णव। ऐसी भक्ति करिये कि आपके घर के लोगों को भी भक्ति करने की इच्छा हो जाय। आपकी भक्ति सच्ची होगी तो आप. लोगों को भी भक्ति का रंग लगेगा। अरे! घर में एक वृद्धा चाय पीने वाली है तो घर में धीरे-धीरे चाय का बंश बढ़ेगा। आप भक्ति बराबर करेंगे तो आपके संग में जो कोई रहेगा, उसे भक्ति की इच्छा होगी।

देवों को चिंता होने लगी कि दिति के पेट में कौन आया है? देव ब्रह्मलोक में आये और ब्रह्माजी को वंदन करके कहने लगे कि दिति के पेट में कौन है? कितने दिन बीत गये, अभी तक बच्चा बाहर नहीं आ रहा है। ब्रह्माजी आदिनारायण परमात्मा का ध्यान करने लगे और उस ध्यान में उन्हें दर्शन हुए। पता लगा कि मेरे नारायण की यह लीला है। प्रभु को किसी तरह का स्वार्थ नहीं है। परमात्मा आनंदमय है। जगत् के जीवों के कल्याण के लिये ही भगवान् लीला करते हैं। दिति के पेट में कौन है? यह अब मेरी समझ में आया है। ब्रह्माजी देवों को यह कथा सुनाते हैं–

मेरे मानस-पुत्र, सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार ऋषियों को प्रवृत्ति-धर्म पसंद नहीं आया है। निवृत्ति-धर्म पसंद आया है। प्रवृत्ति तो पशु-पक्षी भी करते हैं। प्रवृत्ति -धर्म का फल है काम। निवृत्ति-धर्म का फल है परमात्मा श्रीराम। सनकादि ऋषियों ने प्रवृत्ति धर्म का त्याग किया है और पूर्ण निवृत्ति ले ली है। हमें परमात्मा से मिलना है, परमात्मा के साथ एक होना है, ऐसा

उन्होंने निश्चय किया है। ऋषिगण निवृत्ति धर्म के आचार्य हैं। वे ऐसे निर्विकार हैं कि उनको एक बार देखने वाला भी निर्विकार हो जाता है। एक बार ये बालक मेरे पास आये और कहने लगे– पिताजी हम सारा जगत् देखकर आये हैं। हमें इस संसार में सार नहीं दीख पड़ता है। जहाँ देखिये, वहाँ काम का ही राज्य है। सभी कामातुर होकर संसार रचते हैं। इस संसार में रहना हमें पसंद नहीं है। हमें इस संसार से अरुचि होती है।

संसार काममय है। मानव ऐसा मानता है कि मैं स्वतंत्र हूँ किन्तु मानव स्वतंत्र नहीं है। वह तो काम के अधीन है। काम सभी को मारता है। किसी को नहीं–छोड़ता है। सनकादि ऋषियों ने कहा कि हम इस जगत् को छोड़कर चले जायेंगे। जगत् में कोई ऐसा स्थान है, जहाँ काम न हो, जहाँ काल न हो, जहाँ मात्र आनंद ही हो! ये बालक ऐसा कहने लगे। बालक संसार छोड़कर चले जायँ, यह मुझे अच्छा न लगा। मैंने पूछा कि तुम कहाँ–कहाँ गये थे? सनत्कुमारों ने कहा कि सारा संसार घूमकर आये हैं, हम। ब्रह्माजी ने सारी सृष्टि काममयी बनायी है। ब्रह्माजी की सारी सृष्टि काममय है। सृष्टि का मूल ही काम है। काम ही संसार है। काम नहीं है तो संसार नहीं है। हमें इस संसार में नहीं रहना है। हमें ऐसा स्थान दिखाइये जहाँ काम न हो, जहाँ कभी काल न आ सके।

मैंने बालकों से पूछा कि तुम कभी बैकुण्ठ गये हो? बैकुण्ठ–धाम में काम को प्रवेश नहीं मिलता है। काम रजोगुण का पुत्र है–

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद् भवः। बैकुण्ठ अति शुद्ध, सत्यमय भूभि है। दिव्य भूमि है। वहाँ मात्र आनंद है। वहाँ लक्ष्मीजी के साथ भगवान् नारायण विराजमान हैं। बैकुण्ठ में काल नहीं जा सकता है। वस्तुतः जहाँ काम जाता है, वहीं काल जाता है। जहाँ काम की गति नहीं है, वहाँ काल की भी गति नहीं है। देखने योग्य तो प्रभु का धाम बैकुण्ठ है। तुम लोग बैकुण्ठ में जाओ। नारायण के दर्शन करो।

बालकों ने कहा कि हम बैकुण्ठ जायेंगे। हमें बैकुण्ठ में रहना है। जहाँ काम नहीं है, वहाँ हमें रहना है। मैंने बालकों से कहा कि आप वहाँ जाइए, पर वहाँ जाकर गड़बड़ न करना। सनत्कुमारजी ने कहा कि जिनके मन में काम है, वे ही गड़बड़ करते हैं। जिनके हृदय में राम है, जिनकी आँखों में राम हैं। वे गड़बड़ नहीं करते हैं। हमने काम पर विजय पायी है। हम जरा भी गड़बड़ करने वाले नहीं हैं।

बालक बैकुण्ठ में गये। दक्षिण भारत की यात्रा जिन वैष्णवों ने की है, उनको मालूम है कि दक्षिण भारत में कावेरी नदी के तट पर श्रीरंगम् हैं। भगवान् श्रीरामनुजाचार्य के ग्रंथों में बैकुण्ठ का जैसा वर्णन आता है, वैसा ही श्रीरंगम् का मन्दिर है। ग्रंथों में लिखा है कि बैकुण्ठ के सात

गढ़ है। सात परकोटों को पार करके जो जाता है, उसे लक्ष्मीनारायण के दर्शन मिलते हैं। श्रीरंगम् मन्दिर के भी सात परकोटे हैं।

समाधि के सात अंग माने गये हैं–यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार, ध्यान और धारणा–ये सातों अंग सिद्ध करने वाले को परमात्मा के दर्शन होते हैं। आसन पर बैठने की आदत डालिये। जिसका तन स्थिर है, जिसकी आँखें स्थिर हैं, उसका मन स्थिर होता है। निश्चय करिये कि घंटे-दो-घंटे मैं आसन नहीं बदलूँगा। आँखें स्थिर रखूँगा। मन को स्थिर करना कठिन है। आँखों को परमात्मा के स्वरूप में स्थिर करना इतना कठिन नहीं है। घर में ठाकुरजी का स्वरूप रखिये। भगवान् को सुन्दर श्रृंगार से सजाइये। श्रीकृष्ण के स्वरूप में आँखें फँस जायँ तो नैया पार हो जाय।

मानव को संसार में सौंदर्य दिखाई देता है, इससे मानव संसार की भक्ति करता है। मन को समझाइये कि मेरे प्रभु अति सुन्दर हैं। मन चंचल है पर आप आँखों को परमात्मा में स्थिर करके प्रभु के नाम के जप करिये। अपने मन को भक्ति के नियम से बाँधकर रखिये। वैष्णव मन को नियम से बाँधकर रखते हैं। वे निश्चय करते हैं कि मेरा मन संसार का चिंतन नहीं करेगा।

मन पर विश्वास न रखिये। मन दगा देता है। मन चंचल है। उसे एक बार भी पाप करने की छूट न दीजिए। मन को भक्ति के नियम से बाँधकर रखिये। संकल्प कीजिये कि मेरा नियम है कि मैं संसार का चिन्तन नहीं करूँगा। मन पाप करने के लिये नहीं है। मन परमात्मा के ध्यान के लिये है। विवेक से व्यवहार करके भक्ति करने के लिये भगवान् ने इन्द्रियाँ दी हैं। एक आसन पर बैठकर ध्यान करिये। परमात्मा के एक-एक अंग का चिंतन करना ध्यान कहलाता है। सर्वांग का चिंतन धारणा है। धीरे-धीरे संयम बढ़ाइये।

बैकुण्ठ के सात दरवाजे हैं। एक-एक द्वार में दो-दो पार्षद पहरा देते हैं। भगवान् के घर के पार्षद भी भगवान् की तरहं चतुर्भुज हैं। बैकुण्ठ में विषमता नहीं है। बैकुण्ठ में भगवान् सभी को समान आनंद देते हैं। घर में विषमता न करिये। व्यवहार में विषमता करनी पड़ती है। व्यवहार में भले ही विषमता रखिये, पर भोजन में कभी भी विषमता न रखिये। कुछ लोग घर में दो चार प्रकार के चावल बनाते हैं। नौकर के लिये अलग, ब्राह्मण के लिए अलग, सेठ के लिये अलग। सेठ के लिये दिल्ली से चावल मँगाते हैं। जो नौकर खाते हैं, वही मालिक को खाना चाहिये। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जो भोजन में विषमता रखते हैं, उन्हें अगले जन्म में पेचिश का रोग होता है। कई माताएँ परोसने में बहुत चतुर होती हैं। रसोई घर में ही निश्चित कर लेती हैं कि कौन सी रोटी किसको देनी है, अरे, पेट में जाने पर सभी की विष्ठा होती है। भोजन में जरा भी विषमता न करिये। सभी को समान दीजिए।

बैकुण्ठ में विषमता नहीं है। भगवान् के पार्षदों के हाथ में शंख, चक्र, गदा, पद्म हैं। वे भगवान् के समान ही हैं। सनत्कुमार बैकुण्ठ धाम में लक्ष्मी नारायण के दर्शन को तीव्र इच्छा से दौड़ते जाते हैं। संत, भगवान् के दर्शन के लिये दौड़ते हैं। आप भले ही दौड़कर न जाइये। उस ओर थोड़ा सा चलिये। धीरे-धीरे भक्ति बढ़ाइये। संकल्प कीजिये कि मुझे भगवान् के चरणों में पहुँचना हैं। मुझे इस जन्म में भगवान् के दर्शन करने हैं। भक्ति में संतोष न रखिये, भोग में संतोष रखिये-

श्री रूपिणी क्वणयती चरणारविन्दं लीलाम्बुजेन हरिसद्मनि मुक्तदोषा।
संलक्ष्यते स्फटिककुड्य उपेतहेम्नि सम्मार्जतीव यदनुग्रहणेऽन्ययत्नः॥

(३-१५-२१)

शुकदेवजी महाराज कथा ही नहीं करते हैं, वे दर्शन करते-करते इतना सब बोलते हैं। बैकुण्ठ में लक्ष्मीजी बहुत सावधान होकर सेवा करती हैं। अनेक दासियाँ हैं, अनेक नौकर हैं पर लक्ष्मीजी को बैठे रहना पसंद नहीं है। उन्हें नारायण की सेवा करने में आनन्द आता है। सेवा प्रेम से करने से हृदय द्रवित रहता हैं। सेवा में थकान नहीं लगती है। आप किसी भी काम को आनंद से करिये, थकान नहीं लगेगी।

हजार पंखुड़ियों का कमल है। माँ ने उस कमल की बुहारी बनायी है। अंतःपुर में माताजी बुहारी से सेवा करती हैं। बुहारी की सेवा सर्वश्रेष्ठ है। मन्दिर में बुहारी से सेवा करिये। जो बुहारी से सेवा करते हैं, उन्हें संतों की चरण-रज मिलती है। चरण-धूलि में वासना का विनाश करने की शक्ति है। माताजी का श्रीअंग बहुत कोमल है। बुहारी से सेवा करते-करते कमर दुःखने लगी है, परिश्रम बहुत हुआ है। वे कमल हाथों में लेकर खड़ी हैं। वहाँ एक खंभे में अनेक रत्न जड़ित हैं। रत्नों में माताजी अपना प्रतिबिम्ब देखती हैं। अपना प्रतिबिम्ब देखकर लक्ष्मीजी को भी आश्चर्य हुआ। विचारने लगी कि मैं कितनी सुन्दर हूँ। अपने प्रतिबिम्ब को देखकर परमात्मा को भी मोह होता है।

परमात्मा को प्रतिबिम्ब का दर्शन करना पड़ता है। वैष्णव कितने भाग्यशाली हैं कि बिम्ब के दर्शन करते हैं। परमात्मा तो अपने प्रतिबिम्ब को देखते हैं। नंदजी के आँगन में बालकृष्णलाल घुटनों के बल चल रहे थे। तब उन्हें एक स्थान पर अपना प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। नंदजी के घर में श्रीकृष्ण बालक बनकर खेलते हैं वे मानते हैं कि मैं देव नहीं हूँ, परमात्मा नहीं हूँ, बाबा और माँ का बालक हूँ। रत्न में दृष्ट प्रतिबिम्ब बालकृष्णलाल को बहुत पसंद आया। वे प्रतिबिम्ब को पकड़ने दौड़े। प्रतिबिम्ब तो कैसे हाथ में आ सकता था। वह बालक के हाथ में नहीं आया? बालकृष्णलाल रोने लगे। यशोदा माता दौड़ते-दौड़ते बाहर आ गयीं हैं। लाला को उन्होंने गोद में

उठा लिया है। पूछने लगीं– बेटा, क्या हुआ? क्या हुआ? तुम्हें क्या चाहिये? लाला ने कहा–'भीतर एक बालक बैठा है। वह बालक मुझे चाहिये। वह बहुत सुन्दर है।'

यशोदा माता समझा रही हैं– बेटा, अंदर बालक नहीं है। वह तो तुम्हारा ही प्रतिबिम्ब है। जब प्रतिबिम्ब के दर्शन से परमात्मा भी सुध-बुध भूलते हैं, तब बिम्ब के दर्शन से वैष्णव का देह-भान बिसर जाय तो क्या आश्चर्य? वैष्णव प्रत्यक्ष प्रभु के दर्शन करते हैं और प्रभु अपने प्रतिबिम्ब के ही दर्शन कर पाते हैं।

सनकादिक ऋषि, 'नारायण-नारायण', कीर्तन करते दौड़ते हैं। आप भी प्रभु के दर्शन करने जब जायें, तब सनत्कुमारों को साथ लेकर जाइए। सनत्कुमार चार हैं। वेदान्त के ग्रंथों में वर्णन है कि अंतःकरण के चार भेद हैं– मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। अंतःकरण जब संसर का चिंतन करता है, तब उसे मन कहते हैं। अंतःकरण जब किसी विषय का निश्चय करता है, तब उसे बुद्धि कहते हैं। अंतःकरण में 'मैं' अर्थात् अहम् आता है, तब उसे अहंकार कहते हैं–अभिमान कहते हैं। अंतःकरण जब परमात्मा का चिंतन करता है, तब उसे चित्त कहते हैं। सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार क्रमशः इन चारों के स्वामी हैं। मन-बुद्धि को शुद्ध करके दर्शन के लिये जाइए। लोग जब दर्शन करने जाते हैं, तब प्रायः कपड़े बदल कर जाते हैं, मन को बदलकर नहीं जाते हैं। प्रभु किसी के कपड़े नहीं देखते हैं। आप भी किसी के कपड़े न देखिये। कपड़ों में माया है। सुदामाजी द्वारिकानाथ के दर्शन के लिये गए, तब उनके कपड़े साधारण से थे। फटी धोती पहिनकर वे गये थे। सुदामाजी के कपड़े अच्छे नहीं थे पर उनका मन शुद्ध था। द्वारिकानाथ दौड़ते हुए आये। सुदामाजी को हृदय से लगाकर प्रभु मिले थे। परमात्मा के दर्शन करने जायें तब मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार–इन चारों को शुद्ध करिये। सनत्कुमार को साथ ले जाइये। जो प्रत्येक इन्द्रिय से ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उनके मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार शुद्ध होते हैं।

सनत्कुमार संयम के स्वरूप हैं। प्रत्येक इंद्रिय का संयम रखकर दर्शन करिये। सनत्कुमार दौड़ते गये हैं। छह दरवाजों को पार कर वे गये हैं। नारायण नारायण कीर्तन करते-करते दौड़ते हैं। उनकी भावना है कि लक्ष्मीजी हमारी माता हैं, नारायण हमारे पिता हैं। उनकी आधी आँखें खुली हैं और आधी आँखें बंद हैं। आँखें खोल दें तो जगत् दिखाई पड़े और मन चंचल हो जाय। सनत्कुमार शांत भाव के उपाशक हैं। उन्हें जगत् को देखने की इच्छा नहीं हैं। देखने योग्य तो लक्ष्मी-नारायण हैं। उन्हें लक्ष्मीनारायण के मिलन की, दर्शन की तीव्र आतुरता है। सातवें द्वार तक आ गये हैं, जहाँ जय और विजय प्रहरी हैं ये जय और विजय सनत्कुमार को भीतर नहीं जाने देते। सोचते हैं कि ये बालक हैं और हमें पूछते भी नहीं। भीतर चले जा रहे हैं। प्रहरियों ने छड़ी आगे

रख दी और कहा– महाराज! खड़े रहिये। अब ये जय विजय दर्शन में विलम्ब कर रहे हैं, प्रतिबंध लगा रहे हैं। ये बिघ्न खड़ा कर रहे हैं। तब सनत्कुमार को थोड़ा क्रोध आ गया। सनत्कुमार काम पर विजय प्राप्त कर आये हैं पर आज काम छोटे के भाई क्रोध के अधीन हो गये। काम पर विजय पाने वाले क्रोध के अधीन होकर शक्ति का नाश करते हैं। शक्ति का नाश ही पाप है। शक्ति के बिना भक्ति नहीं हो सकती है।

इन जय-विजय को पार करके जाना बहुत कठिन है। बदरीनारायण की यात्रा जिन वैष्णवों ने की है, उन्हें मालूम होगा कि विष्णु प्रयाग से आगे जाने पर दो बड़े-बड़े पहाड़ आते हैं–जय और विजय। इन जय-विजय को पार करके जो जाते हैं, उन्हें नारायण के दर्शन होते हैं। जय-विजय पहड़ को पार करने पर यात्री थक जाते हैं। ये जय-विजय भीतर जाने नहीं देते हैं। स्वदेश में प्रतिष्ठा ही जय है। परदेश में कीर्ति ही विजय है।

काम का त्याग करने वाले, द्रव्य त्याग करने वाले साधुओं को ज्ञानी पुरुषों को माया कीर्ति में फँसा कर रखती है। कई साधु ऐसी आकाँक्षा रखते हैं कि मेरे बाद मेरा आश्रम चलता रहे। मेरा नाम रहे। अरे! किसी का नाम रहा भी है कि तुम्हारा ही रहेगा? नाम रूप मिथ्या हैं बड़े-बड़े महारथी हो गये। उन्हें कोई याद नहीं करता। प्रभु का नाम प्रभु का स्वरूप ही सत्य है। माया गृहस्थ को काम-सुख में फँसाकर रखती है। साधु-संतों को कई बार माया-कीर्ति में फँसाकर रखती है।

सनत्कुमारों ने सोचा कि हम तो अपने माता-पिता से मिलने जाते हैं। हमें रोकने वाला कौन है? ये हमारा अपमान कर रहे हैं। ज्ञानी-पुरुषों को काम त्रस्त नहीं करता, ज्ञानी पुरुषों को क्रोध त्रस्त करता है। ज्ञानी-पुरुष आत्म दृष्टि को साध्य बनाते हैं। वे किसी के शरीर को नहीं देखते हैं। देखने योग्य यह शरीर नहीं है, देखने योग्य परमात्मा है। जिनकी देह-दृष्टि है, काम उन्हें त्रस्त करता है। जो शरीर का चिंतन करता है, वह कामाधीन हो जाता है। किसी के शरीर को न देखिये। शरीर देखने योग्य नहीं है। शरीर सुन्दर है, शरीर सरस है–इस कल्पना से ही काम उत्पन्न होता है। शरीर सुन्दर नहीं है। शरीर के भीतर का शुद्ध चेतन जीवात्मा सुन्दर है। आत्मदृष्टि जिसे साध्य है, वह काम के अधीन नहीं है। हाँ! ज्ञानी पुरुष का शत्रु क्रोध है। ज्ञानी पुरुष जहाँ जाते हैं, वहाँ उन्हें सम्मान मिलता है, पर अति मान अच्छा नहीं है। जिन्हें अति मान मिलता है, तब उन्हें अपमान जैसा लगता है।

जय-विजय अपमान नहीं कर रहे हैं पर वे इतना ही बोले कि प्रभु की आज्ञा मिल जाय तो आप को प्रवेश मिल सकता है। आज्ञा के बिना आप कैसे भीतर जा रहे हैं? सनत्कुमार को बुरा

लगा उन्हें क्रोध आया। कर्म-मार्ग में काम शत्रु है, ज्ञान-मार्ग में क्रोध शत्रु है और भक्ति मार्ग में लोभ शत्रु है।

कश्यप ऋषि कर्मयोगी तपस्वी ब्राह्मण हैं। पत्नी के निमित्त से वे भी कामाधीन हुए। काम कर्म-मार्ग में शत्रु है, ज्ञान मार्ग में क्रोध शत्रु है।

कामेन कर्मनाशं स्यात् क्रोधेन ज्ञान नाशनम्।

सनत्कुमार को आज क्रोध आया है। क्रोध आता है, तब आँखें लाल हो जाती हैं। क्रोध चाँडाल का स्वरूप है। क्रोध आ जाय, तब एक अक्षर भी न बोलिये, मौन रखिये। क्रोध आ जाय, तब स्नान करिये।

हमारे शास्त्रों में लिखा है कि काम और लोभ से भी क्रोध भयंकर है। कामी कुछ सुख भोगता है। लोभी पैसा इकट्ठा करता है पर क्रोधी को कुछ नहीं मिलता है। क्रोध करने पर पुण्य का नाश होता है। प्रभु के धाम में–बैकुण्ठ तक पहुँचे हुए सन्त भी भूल करते हैं। सनत्कुमार आज प्रभु के द्वार तक पहुँचे हैं, फिर भी क्रोध के अधीन हुए हैं। कभी आपको ऐसा लगेगा कि अब मैं भक्ति कर रहा हूँ, मुझे क्रोध नहीं आता है। मेरे मन में काम नहीं आता। वास्तव में आपका ऐसा सोचना गलत है। हमारे मन में काम, क्रोध, लोभ–सभी विकार हैं ही। मानव सावधान होकर भक्ति करता है, तब तक विकार दिखाई नहीं देते। मानव थोड़ा-सा लापरवाह हुआ कि भीतर के विकार बाहर आते हैं। जीवन के अंतिम साँस तक सावधान रहियेगा। सनत्कुमार को क्रोध कहाँ से आया? अरे! जो भीतर था, वही बाहर आया है। मन पर विश्वास रखने वालों को मन गढ्ढे में डाल देता है। महापुरुष मन पर विश्वास नहीं रखते हैं। मन पर वे भक्ति का अंकुश रखते हैं।

सनत्कुमार क्रोध में जय-विजय को शाप देते हैं। कहते हैं कि तुम क्या समझ रहे हो? हमारी योग्यता न होती तो क्या हम छह दरवाजे पार कर आ सकते थे? आप हमें बालक मान रहे हैं? हमारा अपमान कर रहे हैं? आपकी आँखों में आपके मन में विषमता है। बैकुण्ठ में प्रभु विषमता नहीं रखते हैं। आप ऐसी विषमता क्यों रख रहे हैं? ज्ञानी पुरुष सर्व में एक ही परमात्मा के दर्शन करते हैं। मेरे भीतर जो नारायण हैं, वे सर्व में हैं। जहाँ विषमता आती है, वहाँ सभी विकार जाग्रत होते हैं। आप में ऐसी विषमता कहाँ से आयी? वैष्णव का सर्व में समभाव होता है। विषमता राक्षस रखते हैं। तुम राक्षस बनोगे। तुम्हारे तीन राक्षस-जन्म होंगे। प्रभु के धाम में रहने की योग्यता तुम में नहीं है। सनत्कुमारों ने जब शाप दिया, तब जय-विजय बहुत घबरा गये। उन्होंने सनत्कुमारों के चरणों में वंदन किया और कहा कि भले ही हम राक्षस हो जायँ, पर आप ऐसी कृपा करिये कि राक्षस हो जाने पर भी हमें नारायण का निरंतर स्मरण रहे, हम कभी भगवान् को

न भूलें। जय-विजय यह आशीर्वाद माँग रहे हैं। भीतर नारायण, लक्ष्मीजी के साथ विराजमान हैं। प्रभु ने सोचा कि सनत्कुमार क्रोध कर रहे हैं। अभी भी क्रोध पर उन्होंने विजय नहीं पायी है। ये मेरे धाम में आने के लिये योग्य नहीं हैं। मैं ही बाहर जाकर दर्शन दूँ।

भगवान् के एक-एक अंग को कमल की उपमा दी जाती है। चरण-कमल,नेत्र-कमल, मुख-कमल-भगवान् के श्रीअंगों से कमल की सुगंध आती है। सनत्कुमार निराकार ज्योतिर्मय ब्रह्म का ध्यान करने वाले हैं। शांत भाव से उपासना करने वाले हैं। आधी आँखें खुली हैं, आधी बंद हैं। कमल की सुगंध जैसे नाक से भीतर जाती है, वैसे ही सनत्कुमारों की आँखें खुल जाती हैं और जैसे ही संपूर्ण आँखें खोलते हैं, कि लक्ष्मीनारायण के दर्शन पाते हैं। अक्षर ब्रह्म का ध्यान करने वालों को लक्ष्मीनारायण के दर्शन होते ही अति आनंद होता है। प्रेम से लक्ष्मीनारायण के मुख को वे देखते हैं। तब, दर्शन पाते ही उन्हें ध्यान आया कि भूल हो गयी है। भगवान् दर्शन का फल है स्वदोष-दर्शन।

मानव में बहुत-से दोष हैं पर मानव अपने दोषों को गुण समझता है। उसे अन्यों की भूलें दिखाई पड़ती हैं पर अपनी बड़ी-से-बड़ी भूल भी नहीं दिखाई पड़ती है। जो भगवान् के दर्शन पाता है, उसे अपना बोध होता है। सनत्कुमार लक्ष्मीनारायण के दर्शन में तन्मय हो गये हैं और दर्शन से ही उन्हें अपनी भूल का बोध हुआ है वे स्वीकार करते है कि भगवान् के धाम में आकर उन्होंने क्रोध किया है। प्रभु के पार्षदों को शाप दिया है।

मन्दिर में क्रोध करने वालों को बहुत सजा मिलती है। मन्दिर में ठाकुरजी के समक्ष क्रोध न करिये। प्रभु के समक्ष ऊँचे स्वर से न बोलिये। किसी के अति तीव्र स्वर में बोलने से लाला को डर लगता है। लाला सोचता है कि यह क्या मार-पीट करने आया है! कन्हैया बहुत कोमल है। मन्दिर में प्रेम से बोलिये। सबको प्रेम से देखिये। मन्दिर में तीव्रता से हँसने वाले को पाप लगता है। वह भगवान् का अपमान करता है। मन्दिर में बहुत सावधान रहना चाहिए। मन्दिर में किये गये पाप की बहुत कड़ी सजा मिलती है।

सनत्कुमार नारायण के दर्शन करते-करते बारम्बार वन्दन करते हैं। कहते हैं कि हमसे भूल हो गई है। आपके पार्षदों को हमने शाप दिया है। हमें सजा दीजिए। प्रभु ने स्मित हास्य किया और कहा-आपने कोई भूल नहीं की है। आप जैसे ज्ञानी मुझे बहुत प्रिय हैं। आपका अपमान मेरा अपमान है। प्रभु ने सनत्कुमारों की बहुत प्रशंसा की पर उन्हें बैकुण्ठ में नहीं रखा। सनत्कुमारों से उन्होंने कहा-इन लोगों ने भूल की है। आपने शाप दिया है तो उचित ही किया है। भले ही उनके तीन जन्म हों, पर तीन जन्मों के बाद ये मेरे ही धाम में आ सकें, ऐसी कृपा करिये। परमात्मा ऐसा

मधुर बोले हैं कि द्रवित सनत्कुमार बारम्बार उनका वन्दन करते हैं। सोचने लगते हैं कि हमारी महत्ता प्रभु बढ़ा रहे हैं! सनत्कुमार परमात्मा का स्वरूप आँखों से भीतर उतार रहे हैं। प्रदक्षिणा करके सनत्कुमार ब्रह्मलोक में पहुँच गये हैं। प्रभु ने जय विजय से कहा कि तुम्हारे तीन जन्म होंगे, पर तुम्हारे उद्धार के लिए मैं चार अवतार धारण करूँगा।

भागवत के प्रमुख टीकाकार श्रीधर स्वमी हैं। भागवत पर अनेक टीकाएँ प्राप्य हैं। श्रीधर स्वामी की टीका बहुत प्राचीन है। बारह सौ वर्ष पंहिले गंगा तट पर माधव राय के दर्शन करते-करते स्वामी ने यह टीका लिखी है। श्रीधर स्वामी की टीका महाप्रभुजी को बहुत अच्छी लगी है। श्रीधर स्वामी ने अपनी टीका में लिखा है कि यह सब उचित नहीं है। यह योग्य नहीं है। यह मुझे पसन्द नहीं है। जय-विजय भगवान् के पार्षद हैं। भगवान् के पार्षद तो भगवान् के समान ही होते हैं। जय-विजय सनत्कुमारों को पहिचान न सके और उन्हें बालक समझ कर रोक दिया, यह उन्हें शोभा नहीं देता। सनत्कुमार जैसे ज्ञानी पुरुषों को क्रोध आ जाय और वे जय-विजय को शाप दें– यह भी उचित नहीं है और अगर बैकुण्ठ से जीव का पतन हो तो बैकुण्ठ का कुछ महत्व ही नहीं रहता है। भगवान् ने कहा है–

यदगत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

जय-विजय बैकुण्ठ के पार्षद हैं, उनका पतन हो और उन्हें जन्म लेना पड़े–यह कुछ उचित नहीं लगता है। प्रभु भी उन्हें इस तरह भेज दें–यह भी योग्य नहीं है। इस लीला में तो ठाकुरजी पर भी दोष आता है। आश्रितों का त्याग नहीं किया जाता है। जय-विजय भगवान् के आश्रित हैं। प्रभु एक बार जिसे अपनाते हैं, उसे त्यागते नहीं है। भगवान् जय-विजय का त्याग करें, यह भगवान् को शोभा नहीं देता है।

श्रीधर स्वामी ने टीका में लिखा है, कि यह योग्य नहीं हुआ है। फिर समाधान दिया है कि ना,ना, यह सब योग्य हुआ है। भगवान् नारायण लीला कर रहे हैं। लीला ही प्रभु का अनुग्रह है–आनन्दमय परमात्मा का कोई स्वार्थ नहीं है। जीव को अपनी ओर खींचने के लिए ही प्रभु लीला कर रहे हैं। वे सोचते हैं कि जीव मेरा है और मेरा होने पर भी जगत् का हुआ है। मेरा होने पर भी वह ऐसा मान रहा है कि मैं स्त्री का हूँ, पुरुष का हूँ। जीव ईश्वर का है, पर वह अपने स्वरूप को भूल रहा है। मेरा जीव मुझ से जुदा हो गया है, ऐसा सोचकर प्रभु जीव को अपनी ओर खींचने के लिये ही लीला कर रहे हैं। वे चाहते हैं कि ऐसी लीला करूँ कि लोग मेरी लीला सुनें और मुझ में उनका प्रेम जाग्रत हो।

आप जितने समय तक कथा सुनते हैं, उतने समय तक आपका मन पाप नहीं करता है। परमात्मा की लीला जीव के कल्याण के लिये है। बैकुण्ठ में जीव वर्षों से आराम कर रहे थे, परन्तु बहुत आराम के बाद उनका कुश्ती करने का मन हुआ। भगवान् के साथ कुश्ती कौन कर सकता है? भगवान् के पार्षद भगवान् की तरह ही बलवान हैं। प्रभु ने सोचा कि ये पार्षद राक्षस बनें तो मैं उनके साथ युद्ध कर सकूँ। मैं ऐसी लीला करूँगा। भगवान् की इच्छा से जय-विजय में अज्ञान आया। ज्ञान भगवान् देते हैं, यह बात सच है। साथ ही ठाकुरजी को कोई लीला करनी हो तो जीव को अज्ञान में भी वे रखते हैं।

यशोदा मैया बालकृष्णलाल को परमात्मा नहीं मानती हैं। वे मानती हैं कि कन्हैया मेरा पुत्र है। लाला ने अनेक राक्षस मारे हैं, पर यशोदा मैया का वात्सल्य भाव कम नहीं हुआ है। उनका विश्वास है कि कन्हैया देव नहीं है, परमात्मा नहीं है, मेरा पुत्र है। यशोदा परमात्मा को देव मानने लगे तो लीला नहीं हो सकती। भगवान् जिस तरह ज्ञान देते हैं, उसी तरह अज्ञान में भी रखते हैं। भगवान् ही लीला करने के लिये जय-विजय को अज्ञान में रखते हैं। भगवद्-इच्छा से ही जय-विजय सनत्कुमारों को नहीं पहिचान सके। सनत्कुमारों को क्रोध आया-उस में भी भगवद्-इच्छा ही थी। भगवान् को लीला करनी है। जय-विजय का पतन नहीं हुआ है। बैकुण्ठ से जिस तरह भगवान् धरती पर आते हैं, जगत में आते हैं, उसी तरह भगवान् के पार्षद भी आते हैं। तीन जन्मों के बाद पुनः जय-विजय बैकुण्ठ धाम में आने वाले हैं यह जो कुछ भी हुआ, सब ठीक ही हुआ है।

सनत्कुमारों ने जय-विजय को शाप दिया, तब कश्यप और दिति का संबंध हुआ। जय-विजय दिति के गर्भ में आये हैं। ब्रह्माजी देवों को समझा रहे हैं-भगवान् की लीला है। भगवान् की लीला है। भगवान् प्रकट होंगे। भगवान् मंगल ही करेंगे। भगवान् की प्रत्येक लीला जीव के कल्याण के लिये ही है। आप चिंता न करिये, नारायण का चिंतन करिये।

इस ओर अपवित्र समय पर दिति ने दो बालकों को जन्म दिया। एक का नाम हिरण्याक्ष रखा गया और दूसरे का नाम हिरण्यकशिपु रखा है। बालक बहुत प्रतापी हैं। हर रोज चार-चार हाथ बढ़ते हैं। हिरण्याक्ष ऐसा बलवान हुआ कि जब वह चलता, तब उसके पाँव धरती पर रहते, और मस्तक स्वर्ग को छूता रहता।

भागवत समाधि भाषा ग्रंथ है। हिरण्याक्ष शब्द पर थोड़ा विचार करिये। हिरण्याक्ष लोभ है। 'अक्ष' शब्द का अर्थ है आँख और 'हिरण्य' शब्द का अर्थ है सुवर्ण। जिनकी आँखों में सुवर्ण है-पैसा है, वह है हिरण्याक्ष। जिसकी आँखों में लोभ है, वह हिरण्याक्ष है। भक्ति में आँखें मुख्य हैं। आँखों मे पैसा नहीं, परमात्मा को रखिये। नीति से पैसा मिलता है तो वह पैसा तार देता है

पर अनीति का पैसा डुबा देता है। आप जिस देव की पूजा करते हैं, उस देव को मात्र घर में ही न रखिये पर आँखों में भी रखिये। दो-तीन मिनट हो जाय कि दर्शन करिये। आँखों में भगवान् को रखने वाला पाप से बचता है।

कई लोग थोड़ी भक्ति करते हैं, भगवान् की सेवा-पूजा करते हैं, भोग लगाते हैं, आरती करते हैं और बाद में भगवान् से कहते हैं, कि अब इस अलमारी में बैठे रहिये। अब मुझे फुरसत नहीं है। भगवान् कहते हैं कि तुम्हें मेरे सामने देखने की फुरसत नहीं है तो तुम्हारी अलमारी में बैठने की मुझे भी फुरसत नहीं है।

भगवान् को आँखों में रखिये। आँखों में काम आता है, आँखों में पैसा आता है, आँखों में लोभ है तो वही हिरण्याक्ष का स्वरूप है। जिसकी आँखों में काम है, जिसकी आँखों में लोभ है, वह मन्दिर में जाकर भक्ति नहीं करता है, पाप करता है।

हिरण्याक्ष लोभ का प्रतीक है। लोभ दिनों दिन बढ़ता है। शरीर दुर्बल होने पर काम थोड़ा शांत होता है। घर के लोग मेरी सुनते नहीं हैं—ऐसा जानने पर बूढ़ा क्रोध भी नहीं करता है। काम और क्रोध समय पर शांत हो जाते हैं पर लोभ दिनों दिन बढ़ता है। हिरण्याक्ष का लोभ इतना बढ़ा कि पृथ्वी के सभी राजाओं को पराजित करने पर भी उसे संतोष नहीं हुआ। उसकी ऐसी इच्छा हुई कि स्वर्ग में जाऊँ और देवों के साथ युद्ध करूँ। देवों को पराजित करके स्वर्ग से संपत्ति ले आऊँ। धरती के राज्य से उसे संतोष नहीं है। स्वर्ग का राज्य ही उसे लेना है। लोभ से लोभ बढ़ता है। पाप का जनक लोभ है। जीव को जो कुछ भी मिला है। उसे कम ही लगता है। तभी वह पाप करता है। लोभ बढ़ता है, तब पाप भी बढ़ता है। हिरण्याक्ष के राज्य में पाप बहुत बढ़ गया। पाप बढ़ता है, इससे दुःख भी बढ़ता है। तब प्रजा बहुत दुःखी हुई। धरती रसातल में धँस गई। देवों ने परमात्मा से प्रार्थना की। भगवान् वराहनारायण प्रकट हुए हैं। हिरण्याक्ष वरुणलोक में गया है। वह वरुणदेव से युद्ध करने के लिये प्रस्तुत है। वरुणदेव ने कहा—सभी देवों के देव परमात्मा वराह स्वरूप धारण कर प्रकट हुए हैं, तुम वराहनारायण से युद्ध करो। हिरण्याक्ष दौड़ता हुआ पहुँचा वराहनारायण धरती को रसातल में से बाहर लेकर आ रहे थे कि दोनों की मुलाकात रास्ते में हो गयी। वराहनारायण का स्वरूप देखकर हिरण्याक्ष हँसने लगा, सोचने लगा कि यह तो सुअर दीख रहा है—

ददर्श तत्राभिजतं धराधरं प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया।
मुष्णन्तमक्ष्णा स्वरुचोऽरुणश्रिया जहास चाहो वनगोचरो मृगः॥

(३-१८-२)

हिरण्याक्ष हँस रहा है। वराहनारायण की वह निन्दा कर रहा है। श्रीधर स्वामी ने हिरण्याक्ष के निन्दा पूर्ण शब्दों से स्तुति का अर्थ निकाला है। हिरण्याक्ष अभिमान से कैसा-कैसा बोल रहा है, पर वागदेवी के पति नारायण हैं। वागदेवी भगवान् की निन्दा कभी नहीं करती हैं। वह तो सदैव परमात्मा की स्तुति ही करती हैं।

निन्दा करने वाले और सुनने वाले-दोनों को पाप लगता है। कई निन्दा नहीं करते हैं पर सुनते हैं। उन्हें निन्दा सुनने में रस आता है। पूछते हैं कि फिर वहाँ क्या हुआ? निन्दा सुनने वाला निन्दा करने वाले को प्रेरणा देता है। निन्दा सुनना भी बड़ा पाप है। हिरण्याक्ष परमात्मा के लिये बोला है-

'वनगोचरः मृगः' अर्थात् वन में भटकने वाला सुअर, श्रीधर स्वामी ने उसका अर्थ परिवर्तन करके कहा है- 'वन जले, गोचरः जले शयानः'-जल में शयन करने वाले आदिनारायण परमात्मा। योगी मृत्रते सः मृगः-योगी और महापुरुष जिन्हें खोजते हैं- वे यही कहते हैं वराहनारायण। जिसका संस्कृत का ज्ञान ठीक है, उसे श्रीधर स्वामी के भाव में आनन्द आता है। श्रीधर स्वामी ने शब्दों से दिव्य भाव प्रकट किया है।

हिरण्याक्ष और वराहनारायण का युद्ध हुआ है। युद्ध की कथा बहुत कही है। परमात्मा ने हिरण्याक्ष से बहुत खेल करवाया। ब्रह्मादिक देव प्रार्थना करते हैं कि अब इसका तुरन्त उद्धार करिये। वराहनारायण हिरण्याक्ष के गले के ऊपर मुष्टि-प्रहार करते हैं। तब हिरण्याक्ष रुधिर उगलने लगा। हिरण्याक्ष नीचे गिर पड़ा तभी देव-गन्धर्वो ने 'वराहनारायण भगवान की जय' कहकर जय-जयकार किया। हिरण्याक्ष का प्रभु ने उद्धार किया। प्रभु ने धरती की जल में स्थापना की। मनु महाराज को उन्होंने धरती का राज्य दिया और कहा कि प्रजा को सुखी तथा प्रसन्न रखने के लिये राजा का सिंहासन है। आप प्रजा को सुखी करिये। वराहनारायण बैकुण्ठ गये। मनु महाराज मानव-समाज के नेता हैं। मनु महाराज ने समाज की सेवा में सम्पंत्ति का सदुपयोग करने की प्रेरणा दी है।

इन वराहनारायण की कथा सुनने पर इस कथा का मनन करना चाहिये। शुकदेवजी राजर्षि को सावधान करते हैं कि हिरण्याक्ष लोभ हैं। वराहनारायण सन्तोष का स्वरूप हैं। सन्तोष से लोभ को मारिये। भोजन में सन्तोष मानिये। सोचिये कि आज तक मैंने बहुत खाया। जिसे भोजन में सन्तोष नहीं है, वह पाप करता है। वह जिस किसी के हाथ का खाता है। जो कुछ भी मिले खाता है। सम्पत्ति में संतोष्र मानिये। संसार-सुख में सन्तोष मानिये। स्वीकार कीजिये कि प्रभु ने योग्यता से अधिक मुझे दिया है तथा मैं बहुत सुखी हूँ। सम्पत्ति में, संसार सुख में जिसे सन्तोष है, वही

लोभ को मार सकता है और उसी का पाप रुक जाता है। पाप होते हैं लोभ से। मानव को जो मिलता है, वह कम ही लगता है। कई लोग ऐसा मानते हैं कि प्रभु ने पड़ोसी को बहुत दिया है। इतना मुझे नहीं दिया है। ऐसा नहीं है। भगवान् अति उदार हैं। मानव की योग्यता से अधिक ही देते हैं। प्राप्त स्थिति में संतोष मानिये संतोष नहीं है तो पाप होंगे।

लोग भक्ति करते हैं, पर पाप भी करते हैं। पाप छोड़कर भक्ति करिये, तो भक्ति में बहुत आनन्द मिलेगा। आप अधिक भक्ति नहीं कर सकते, तो चिंता नहीं है पर आप सावधान रहिये कि आपकी आँखों में काम न आने पाये। आपका मन पाप न करे। मानव आँखों से बहुत पाप करता है। मानव मन से बहुत पाप करता है। आँखें पाप करने के लिये नहीं हैं। आँखें भक्ति के लिये हैं। आँखों में काम आता है तो जीवन बिगड़ता है। जिसकी आँखों में काम है, वह राक्षस है। जगत् के स्त्री-पुरुषों को निष्काम भाव से अर्थात् लक्ष्मीनारायण के भाव से–भगवद् भाव से देखिये। आपका मन काम में प्रवृत्त न हो, इसके लिये जाग्रत रहिये। पाप छोड़ना ही महान् पुण्य है। इन्द्रियों में भक्ति-रस भरिये। इन्द्रियाँ शुद्ध होंगी, तब भक्ति रस स्थायी होगा। ग्रंथों में लिखा है कि सिंहनी का दूध सुवर्ण-पात्र में ही टिकता है। सिंहनी के दूध में इतनी शक्ति रहती है कि चाँदी या पीतल के बर्तनों में छेद करके बाहर निकल जाता है। किसी को अनुभव है या नहीं यह मालूम नहीं है, पर ग्रन्थों में ऐसा ही लिखा है। इन्द्रियाँ कंचन की तरह शुद्ध होंगी तो भक्ति-रस टिक सकेगा। इन्द्रियाँ पाप का साधन नहीं हैं, भक्ति का साधन हैं। इन्द्रियाँ विवेक से व्यवहार करने तथा भक्ति करने के लिये हैं।

आदि-नारायण परमात्मा के दर्शन-स्मरण करने वालों के हाथों से पाप नहीं होते हैं। महापुरुष लोभ को संतोष से मारते हैं। वे मानते हैं कि मैंने संसार के सर्व सुखों को अनेक बार भोगा है। सुख भोगने पर आज तक हमें शांति नहीं मिली है। संसार के सर्व प्रकार के सुख भोगकर भी शांति नहीं मिलती है। संसार के सुखों में जो संतोष मानते हैं, उनके पाप छूटते हैं। पाप छूटते हैं, तब भक्ति में बहुत आनंद आता है।

वराह भगवान् यज्ञ-स्वरूप हैं। सत्कर्म को यज्ञ कहते हैं। आप कोई भी अच्छा काम करते हैं तो वह यज्ञ है। अग्नि में आहुति देने से ही यज्ञ होता है, ऐसा नहीं हैं। परमात्मा प्रसन्न हो सकें, ऐसा कोई भी कार्य करिये तो वह यज्ञ ही है। प्रभु प्रसन्न हुए कि नहीं ऐसा जानने की युक्ति है। जो काम करते हैं, उसके पूर्ण होने पर आपको आनंद की अनुभूति होती हो, आपका मन प्रसन्न रहता हो, शांत रहता हो तो मानिये कि परमात्मा प्रसन्न हैं और जो काम करने पर मन चंचल हो, अशांत हो, भीतर से उद्वेग हो तो मानिये कि प्रभु नाराज हैं।

तन को तथा मन को सत्कर्म में व्यस्त रखिये। मन को अवकाश ही न दीजिये। मन को जब अवकाश मिलता है, तब मन अनुचित बातें सोचता है। निवृत्ति के समय में मन पाप करता है। अपने तन को—मन को सत्कर्म में व्यस्त रखिये। एक सत्कर्म पूरा हो जाय तो दूसरे को प्रारंभ करिये। दूसरे के बाद तीसरा कार्य करिये। सत्कर्म करने पर जब अतिशय थकान आ जाय, तब आराम करिये। थकान न हो और आराम कर रहे हैं तो अच्छा नहीं है। आराम हराम हैं। परोपकार में शरीर को कष्ट दीजिए। परमात्मा का ध्यान करिये। प्रभु के नाम के जप करिये। किसी पवित्र ग्रंथ का पठन करिये। सत्कर्म करते हुए जब भीतर से मन शुद्ध हो जाता है, तब भीतर से ज्ञान प्रस्फुटित होता है। बर्तन पर जैसे काई लग जाती है, वैसे मन पर काई लग गई है। एक बार, दो बार, चार बार माँजने पर भी बर्तन उज्वल नहीं होता है। उसे अनेक बार माँजना पड़ता है। इस मन पर अनेक जन्मों की वासनाओं की काई ज़म गई है।

मन बहुत बिगड़ा है। इस मन को किसी भी सत्कर्म में व्यस्त रखिये। निरंतर सत्कर्म करिये। सत्कर्म में संतोष न रखिये। उसमें लोभ रखिये। भोजन में संतोष रखिये। संसार-सुख में संतोष रखिये। संपत्ति में संतोष मानिये पर सत्कर्म में लोभ रखिये। सत्कर्म करने की इच्छा बहुतों को होती है, पर उनसे सत्कर्म नहीं होता है। मन के विचार मन में ही रह जाते हैं, वह सत्कर्म नहीं कर पाता। काल उसे पकड़ने आता है। सत्कर्म में बिघ्न करने वाला हिरण्याक्ष है। हिरण्याक्ष लोभ का प्रतीक है। वह लोभ का स्वरूप है। लोभ है। लोभ मानव को सत्कर्म करने से रोकता है। द्रव्य का लोभ, कीर्ति का लोभ, किसी लौकिक सुख का लोभ मानव के सत्कर्म में बिघ्न खड़ा कर देता है। लोभ को संतोष से मारिये। जिसे संतोष है, वह पाप नहीं करता है। मन को बार-बार समझाइए कि मेरी योग्यता से अधिक ही प्रभु ने मुझे दिया है। धन को धर्म की मर्यादा में रखिये—

अर्थमनर्थं भावय नित्यम्—

धर्म की मर्यादा के विरुद्ध जाने वाला धन मन को बिगाड़ता है। लोभ पाप करवाता है। लोभ मरता है, तभी पाप बंद होते हैं। तब ही भक्ति में आनंद आता है। जिन इन्द्रियों से भक्ति करनी है, उनसे पाप नहीं किया जाता। आँखों से जो पाप करते हैं वे मन्दिर में जाने पर शांति से दर्शन नहीं कर पाते हैं। वहाँ भी वे पाप करेंगे। प्रभु ने इन्द्रियों को पाप करने के लिये नहीं बनाया है। इन्द्रियाँ व्यवहार का काम विवेक से करके भक्ति करने के लिये दी गयी हैं। इन्द्रियों को शुद्ध रखिये।

वराहनारायण की कथा सुनने के पश्चात् उस पर मनन करिये। इस परम पवित्र वराह नारायण की कथा का जो वक्ता प्रेम से वर्णन करता है तथा जो श्रोता श्रद्धा-भक्ति से इसको श्रवण

करते हैं, उनके अनेक पाप विनष्ट होते हैं। वक्ता-श्रोताओं को भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में अनन्य भक्ति प्राप्त होती है।

तृतीय स्कंध में दो प्रकरण आते हैं। पूर्व मीमाँसा प्रकरण और उत्तर मीमाँसा प्रकरण में वराह नारायण की कथा है। एक प्रकरण समाप्त हुआ। तृतीय स्कंध का तीसरा प्रकरण अब शुरू होता है। दूसरे प्रकरण में कपिल महामुनि की कथा है।

२३– कपिलदेव नारायण का अवतार

मनु महाराज के दो पुत्र और तीन पुत्रियों का जन्म हुआ। प्रियव्रत तथा उत्तानपाद–दो पुत्र और आकूति, देवहूति तथा प्रसूति–तीन पुत्रियाँ हुईं। आकूति का विवाह रुचि के साथ, प्रसूति का विवाह दक्ष प्रजापति के साथ देवहूति का विवाह कर्दम ऋषि के साथ हुआ। कर्दम ऋषि के घर कपिल नारायण भगवान् प्रकट हुए। कपिल महामुनि ने माता देवहूति को तत्वज्ञान का सुन्दर उपदेश दिया। विदुर जी ने प्रश्न किया है–कपिल नारायण की कथा सुनने की मुझे बहुत इच्छा है। कपिल महामुनि का प्राकट्य किस तरह हुआ? उन्होंने माताजी को क्या उपदेश दिया? मेरी यह सब सुनने की अत्यन्त इच्छा है।

शुकदेवजी महाराज परीक्षित राजा को तथा मैत्रेय स्वामी विदुरजी को यह कथा सुनाते हैं–

सरस्वती नदी के तट पर कदर्म ऋषि आदिनारायण परमात्मा का स्मरण करते हैं। उनके घर कपिलदेव प्रकट हुए हैं। आप भी कर्दम ऋषि जैसा जीवन व्यतीत करिये कपिलदेव आपके घर आयेंगे। कपिल ज्ञान-स्वरूप हैं। कर्दम शब्द का विचार करिये। जो दमन करता है, जो प्रत्येक इन्द्रियों को संयम में रखता है, वह कर्दम है। आप सब स्वामी हैं इन्द्रियाँ आपकी सेवक हैं। जो स्वामी सेवक के वश में रहता है, वह बहुत दुःखी होता है। सेवक तो स्वामी के अधीन रहता है, सेवक में अक्ल कम रहती है। मालिक को जहाँ जाना होता है, सेवक वहीं जाता है, पर सेवक को जहाँ जाना हो वहाँ स्वामी नहीं जाते हैं। आपको जाना है श्रीकृष्ण-शरण में, श्रीकृष्ण-चरण में। आपकी दृष्टि श्रीकृष्ण-चरण में ही रहे। आत्मा को जहाँ जाना है, वहीं इन्द्रियाँ जाती हैं। इन्द्रियों को जहाँ जाना है, वहाँ आत्मा नहीं जाती। इन्द्रियाँ सेवक हैं और आत्मा स्वामी है। प्रत्येक इन्द्रिय को संयम में रखिये। सम्पत्ति से थोड़ा सुख मिलता है। संयम से बहुत सुख मिलता है। भगवान् श्रीशंकराचार्य स्वामी से पूछा गया है कि महाराज! इस जगत् में शत्रु कौन है? महाराज ने कहा–

शत्रवः निजेन्द्रियाणि

अपनी स्वयं की इन्द्रियाँ ही शत्रु हैं। प्रश्न पूछा गया कि जगत् में मित्र कौन? शंकराचार्य जी ने कहा कि अपनी इन्द्रियाँ ही मित्र हैं। इन्द्रियाँ आपके अधीन हैं तो मित्र हैं, पर आप इन्द्रियों के अधीन हैं तो वे शत्रु हैं। आपकी इच्छा के अनुसार इन्द्रियों को काम करना चाहिए। आपको इन्द्रियों की इच्छा के अनुसार काम नहीं करना है। कर्दम ऋषि जितेन्द्रिय हैं। एक-एक इन्द्रिय को संयम में रखते हैं। वे कर्मयोगी हैं। कर्दम, संयम के प्रतीक हैं। वे सरस्वती नदी के तट पर रहते हैं। सरस्वती का तट अर्थात् सत्कर्म का तट। सरस्वती कर्म-स्वरूपा हैं। श्रीयमुनाजी भक्ति महारानी का स्वरूप हैं। श्रीगंगामाता ज्ञान-स्वरूपा हैं। सरस्वती नदी के तट पर कर्दम ऋषि तपश्चर्या करते हैं। वे ध्यान करते हैं। ध्यान करने से थकान होती हैं, तब वे जप करते हैं। जप करने में जब मन भटकने लगता है, तब वे नारायण की सेवा करते हैं। सेवा करते-करते जब मन चंचल हो उठता है, तब पाठ करते हैं। आश्रम के वृक्षों की सेवा करते हैं। सारा दिन सत्कर्म करते हैं। निरन्तर सत्कर्म करने से मन शुद्ध होता है और ज्ञान का स्फुरण होता है। ज्ञान बाहर से नहीं, भीतर से प्रकट होता है।

परमात्मा श्रीकृष्ण की एक आँख में ज्ञान और एक आँख में वैराग्य है। भगवान् जिसे प्रेम से देखते हैं, उसकी बुद्धि में ज्ञान प्रस्फुटित होता है। भगवान् का स्वरूप घर में रखिये। लाला का सुन्दर शृंगार करिये। श्रीकृष्ण में दृष्टि स्थिर करके प्रभु की आँखों में आँखें मिलाकर प्रभु के नाम का जप करिये। प्रभु से कहिये कि वे आपको दृष्टि दें। प्रभु जिसको दृष्टि देते हैं, उसकी बुद्धि में ज्ञान स्फुरित होता है। परमात्मा की आँखें जीव को आकर्षित करने के लिए हैं।

संसार के विषय मानव को अनेक बार रुलाते हैं, त्रस्त करते हैं, फिर भी विषय मीठे ही लगते हैं। संसार के विषयों में माया ने ऐसा आकर्षण भरा है। ये विषय दुःख देते हैं फिर भी उन्हें छोड़ने की इच्छा नहीं होती है। मानव उनका मोह नहीं छोड़ पाता है। भगवान् जिसे दृष्टि देते हैं, उसकी बुद्धि में वैराग्य जागता है तथा ज्ञान का प्रस्फुटन होता है। ज्ञान परमात्मा का स्वरूप है। आत्मा ज्ञान-स्वरूप हैं। इस जगत में कोई मूर्ख नहीं है, सभी ज्ञानी हैं। जीव ईश्वर का अंश है। जीव अज्ञानी नहीं हो सकता। आसमान में बादल छा जाने पर सूर्य नहीं दीख पड़ता। ज्ञान रूपी सूर्य आपके हृदय में है पर मानव का ज्ञान, अज्ञान से आच्छादित रहता है। इससे उसे ज्ञान का अनुभव नहीं होता है। सभी जानते हैं कि सत्य बोलना चाहिए पर क्या सभी सत्य बोलते हैं? थोड़े से लाभ को देखकर झूठ बोल देते हैं। झूठ बोलने पर मन में थोड़ा सा क्षोभ भी होता है पर बाद में वे मन को समझाते हैं कि व्यवहार में थोड़ा झूठ बोलना पड़ता है। थोड़ा झूठ बोलने से चलता है। मन से ही सब निश्चित कर लेते हैं हम। मन को समझाते हैं कि मन्दिर में सेवा करेंगे गरीबों

को भोजन देंगे और प्रभु सभी पापों को जला देंगे। इस तरह पापों का नाश नहीं होता। थोड़ा भी असत्य हो, थोड़ा भी पाप हो तो सजा मिलती है।

मानव का ज्ञान, अज्ञानं से आच्छादित है। अज्ञान के दूर होने पर भीतर से ज्ञान प्रस्फुटन होता है। जो ज्ञान उत्पन्न होता है, जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका विनाश भी होता है। ज्ञान को उत्पन्न न करिये। ज्ञान को प्रकट करिये। आप सब ज्ञानी हैं। जो दूसरे को मूर्ख मानता है वह स्वयं ही मूर्ख होता है। आत्मा परमात्मा का स्वरूप है, प्रभु का अंश है। वह अज्ञानी नहीं है। पत्थर के भीतर स्वरूप होता है पर हमें नहीं दिखाई देता। कलाकार शिल्पी को दीख पड़ता है। उसकी बुद्धि सूक्ष्म होती है। शिल्पी पत्थर से मूर्ति उत्पन्न नहीं करता, पर मूर्ति को ढँक देने वाला अंश युक्ति से निकाल देता है और तुरन्त मूर्ति दृष्टिगत होती है। आत्मा ज्ञान-स्वरूप है पर ज्ञान, अज्ञान से ढँका हुआ है। अज्ञान दूर होने के साथ ही ज्ञान भीतर से प्रकट होता है।

लोग आरोग्य के लिये दवाई नहीं खाते हैं, पर रोग दूर करने के लिए दवाई खाते हैं। रोग नष्ट हो जाता है और आरोग्य प्राप्त होता है। आरोग्य नाम की कोई अलग वस्तु नहीं है। रोग की निवृत्ति और आरोग्य की प्राप्ति एक ही समय पर होती है। शरीर में रोग होता है तो आरोग्य की अनुभूति नहीं होती है। दवा खाने से रोग का नाश होता है और शरीर में कोई रोग नहीं रहता। आरोग्य अपने आप ही आता है। उसी तरह अज्ञान नहीं रहेगा। तब ज्ञान प्रकट होगा। ज्ञान को प्रकट करिये।

तुकाराम कहीं भी वेदांत पढ़ने नहीं गये थे। पंडित वर्ग पुस्तक में लिखा ज्ञान, दिमाग में रख लेते हैं और फिर उसे प्रकट करते हैं किन्तु प्रभु के प्रेम में मग्न संतों के द्वारा तो स्वयं परमात्मा ही बोलते हैं। सन्त ज्ञान को भीतर से प्रकट करते हैं। शुद्ध मन में ही ज्ञान टिक सकता है। छिद्र वाला घड़ा कभी भरा नहीं जाता। यह शरीर भी घड़े जैसा है। इसमें नौ छिद्र हैं। कई व्यक्तियों का ज्ञान आँखों के द्वारा बह जाता है। कितनों का ज्ञान कानों से बह जाता है। इन्द्रिय-रूपी छिद्रों को बंद करिये, तब ही ज्ञान टिकेगा। जो जितेन्द्रिय है, उसका ही ज्ञान टिकता है। ज्ञान को महापुरुष संयम से प्रकट करते हैं। जगत् में ज्ञान बहुत बढ़ा है। प्राचीन काल में इतनी अधिक पुस्तकें नहीं थीं। वेद को श्रुति कहते हैं–'श्रूयते इति श्रुतिः' ऋषि सारे ज्ञान को मस्तिष्क में ही रखते थे। अब जीवन में संयम नहीं रहा। इससे ज्ञान बढ़ने पर भी शांति नहीं मिलती है। समग्र ज्ञान पुस्तकों में ही आ रहा है। लोगों के मस्तिष्क में कुछ नहीं है।

कर्दम ऋषि ने वर्षों तक परमात्मा की आराधना की। जीव के लायक होने पर भगवान् दर्शन देते ही हैं। तब चतुर्भुज नारायण प्रत्यक्ष प्रकट होते हैं। कर्दम ऋषि भगवान् के दर्शन हैं। दर्शन में वे अति आनंद पाते हैं। मानते हैं कि आज मेरी आँखों का होना सार्थक है! परमात्मा के दर्शन

में ही आँखों की सार्थकता है। जगत् को देखने में उनकी सार्थकता नहीं है। जगत् में जो कुछ दिखाई देता है, वह दो घंटे के बाद बिगड़ जायगा। पुष्प अभी सुन्दर प्रतीत होता है किन्तु दो-चार घंटों में वह मुरझा जायगा। पुष्प की तरह सारा जगत् मुरझाता है। संसार का सौंदर्य क्षणिक है, कृत्रिम है। आपको जो अच्छा लगता है, वह दूसरे को अच्छा नहीं लगता है और आप जिसे अच्छा नहीं मानते, दूसरे को वह अच्छा लगता है। संसार का सौंदर्य मन की कल्पना है। मन में विकार-वासनाऐं हैं। आँखों में काम-भाव है, इससे संसार में सौंदर्य दीख पड़ता है।

जब धन बढ़ जाता है, तब लोगों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। धन बढ़ जाने पर लोग घूमने निकल पड़ते हैं। कश्मीर देखने जाते हैं। एक भाई ने मुझसे कहा, कि महाराज! कश्मीर बहुत सुन्दर है। आप चाहें तो मैं आपको ले चलूँ! अरे! काश्मीर सरस है तो काश्मीर जिसने बनाया है, वह कितना सरस होगा! भगवान् अति सुन्दर हैं। कारण का गुण कार्य में आता ही है। परमात्मा कारण हैं, जगत कार्य है। भगवान् का सौंदर्य संसार में भी दृष्टिगोचर होता है, पर जगत् का सौंदर्य मन को चंचल बनाता है, और परमात्मा का सौंदर्य मन को स्थिर करता है—

'तव दर्शनात् नः अक्ष्णो सांसिध्यम्'

जगत् को देखने से आँखें चंचल होती हैं, मन चंचल होता है। ज्ञानी जगत् को देखते हैं, पर उपेक्षा से देखते हैं। देखने योग्य भगवान् हैं, इस बात को ध्यान में रखकर जगत् को उपेक्षा से देखिए। परमात्मा के दर्शन से ही आँखें शुद्ध होती हैं। परमात्मा के स्पर्श से त्वचा सफल होती है। आप किसी व्यक्ति का स्पर्श करते हैं तो सुख का अनुभव होता है। आप जब भगवान् का स्पर्श करेंगे तब कितना आनंद होगा। इन्द्रियों को जब ब्रह्म-संबंध होता है, तब वे सार्थकता पाती हैं।

कर्दम ऋषि नारायण के दर्शन करते हैं। परमात्मा प्रेम से कर्दम ऋषि को देखते हैं। कर्दम ऋषि के शरीर में हड्डियाँ ही रह गयी हैं। उन्होंने बहुत दुःख सहे हैं, बहुत तपस्या की है। शरीर अति दुर्बल दीख पड़ता है। उनके दुर्बल शरीर को देखकर प्रभु की आँखों में आँसू आ जाते हैं। ठाकुरजी की आँखों से बहे इन प्रेमाश्रुओं से बना है सरोवर, जिसे वैष्णव बिन्दु सरोवर कहते हैं।

सिद्धपुर की यात्रा जिन वैष्णवों ने की होगी, उन्हें मालूम होगा कि सिद्धपुर में बिन्दु सरोवर है। दक्षिण भारत में ऋष्यमूक पर्वत के पास श्रीशबरीमाता का आश्रम है। शबरीमाता का आश्रम पंपा सरोवर के पास है। श्रीरामचन्द्रजी वहाँ पधारे हैं। बड़े-बड़े ऋषि रामजी को आमंत्रण देते हैं कि हमारे आश्रम में पधारिये, हमारे आश्रम में पधारिये। श्रीराम सभी से पूछते हैं कि शबरीमाता का आश्रम कहाँ है? मुझे शबरीजी के घर जाना है। सारा जीवन शबरीमाता राम को ढूँढ़ती रहीं।

परमात्मा कहते हैं कि जो मुझे ढूंढ़ते हैं, एक दिन मैं उन्हें ढूढ़ता हुआ उनके घर पहुँच जाता हूँ। श्रीराम शबरीजी के घर पधारे हैं।

उत्तर भारत में हिमालय में मानस सरोवर है। जीव-शिव का वहाँ मिलन होता है। जिन वैष्णवों ने ब्रज चौरासी कोस की परिक्रमा की है, वे जानते हैं कि ब्रज की परिक्रमा में मुख्य प्रेम-सरोवर है, जहाँ श्रीराधा-कृष्ण का प्रथम मिलन हुआ था। श्रीराधाजी तीन वर्ष की थीं और कन्हैया पाँच वर्ष का था। श्रीकृष्ण ग्वालों के साथ खेल रहे थे, एक बार खेल-खेल में वे निकुंज में छिप गये। श्रीराधाजी भी सखियों से बिछुड़ गयी और जहाँ श्रीकृष्ण छिपे थे वहाँ निकुंज में जा पहुँचती हैं। राधाजी को श्रीकृष्ण का प्रथम दर्शन हुआ। श्रीकृष्ण श्रीराधाजी को देखते हैं। श्रीराधा -कृष्ण प्रेम-मूर्ति हैं। प्रथम दर्शन में अति आनंद जब हृदय में नहीं समा सकता, तब वह आँखों से प्रस्फुटित होता है। दोंनों की आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे। उन आँसुओं का बना सरोवर। वैष्णव उसे कहते हैं प्रेम-सरोवर।

बिन्दु सरोवर की कथा आगे बढ़ती है—नेत्रान्नपतन्नश्रुबिंदवः—परमात्मा की आँखों से अश्रु बहने लगे। प्रभु ने कर्दम ऋषि को वरदान माँगने के लिये कहा। कर्दम ऋषि ने परमात्मा से कहा—

जुष्टं बताद्या खिलसत्त्वराशेः सांसिध्यमक्ष्णोस्तव दर्शनान्नः।
यद्दर्शनं जन्मभिरीड्य सद्भिराशासते योगिनो रूढयोगाः॥

(३-२१-१३)

आपके दर्शन होने पर अब मैं क्या माँगू? प्रभु के दर्शन के बाद जो प्रभु से लौकिक सुख माँगता है, वह अज्ञानी है। जिसे परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान है, जिसे भगवान् के स्वभाव का ख्याल है, वह कभी भी लौकिक सुख नहीं माँगता है। लौकिक सुख तो पशु-पक्षी को भी मिलता है। कर्दम ऋषि बोले कि मैं यह बोल रहा हूँ, पर मैं यह तपश्चर्या की है। मुझे विवाह करना है पर मेरे मन में ऐसी भावना है कि घर में सत्संग मिले। मैं स्त्री का संग नहीं माँग रहा हूँ। मैं घर में सत्संग माँग रहा हूँ। मैं काम-पत्नी नहीं धर्म-पत्नी चाहता हूँ।

हमारे ऋषि स्त्री को धर्म का साधन मानते हैं। स्त्री भक्ति का साधन है, भोग का साधन नहीं है। स्त्री धर्म-पत्नी है। कन्यादान का जब संकल्प होता है, तब कन्या के पिता जामाता को सावधान करके कहते हैं कि यह कन्या तुम्हारी धर्मपत्नी है। स्वेच्छाचारी और विलासी जीवन के लिये अपनी कन्या नहीं देता हूँ पर धर्म का पालन करने के लये अपनी कन्या तुम्हें देता हूँ। कन्यादान महान् पुण्य है। सुवर्ण का दान चांदी का दान तो जड़ पदार्थ का दान है। कन्यादान महान् दान है।

पति–पत्नी का पवित्र संबंध परमात्मा के लिये है, धर्म के लिये है। कर्दम ऋषि परमात्मा से माँगते हैं कि आप ऐसी कृपा करिये कि मेरा विवाह किसी धर्म–कन्या के साथ हो। कदाचित् कभी मेरे मन में पाप आ जाय तो मेरी पत्नी मुझे समझाकर पाप करते हुए रोक दे, मुझे परमात्मा की राह में ले जाय। मुझे प्रभु के लिये वह स्थिर बनाये और भक्ति में वह मेरा साथ दे।

प्रभु ने स्मितहास्य किया और कहा कि परसों मनु महाराज कन्या लेकर आयेंगे। मेरे भक्तों के मन में जब कोई संकल्प जागता है, वह मुझे मालूम पड़ जाता है। मैंने सभी तैयारियाँ कर रखी हैं। भक्तों के हृदय में भगवान् विराजमान होते हैं। भक्तों के मन में जब कोई लौकिक संकल्प जागता है, तब भगवान् को मालूम पड़ ही जाता है। भगवान् ने कहा कि कन्या अति सुशील है। आप उसी कन्या से विवाह करिये। आपका गृहस्थाश्रम जगत् में आदर्शरूप बनेगा। आपके घर पुत्र रूप में मैं जन्म लूँगा। मैं जगत् को उपदेश देना चाहता हूँ। प्रभु ने कर्दम ऋषि को वरदान दिया। प्रभु अंतर्धान हो गये।

इस ओर मनु महाराज को कन्या की चिंता हुई है। विचारने लगे कि अब इसका विवाह करना चाहता हूँ। अब यह बड़ी हो गयी है। मनु महाराज चिंता में हैं। उसी समय देविर्षि नारदजी वहाँ आये हैं। कुशल समाचार पूछ रहे हैं। पूछते हैं कि आज आप उदास हैं, चिंता में हैं–ऐसा लग रहा है? मनु महाराज कहते हैं– कि गृहस्थाश्रम चिंता का घर है। गृहस्थ को प्रभु में विश्वास न हो तो उसका जीवन चिंता में ही बीत जाता है। गृहस्थाश्रम में संपत्ति की चिंता और संतान की चिंता होती है। जो मिला है, उसे देखभाल कर रखने की चिंता है। अधिक इकट्ठा करने की चिंता है। संतानों की बहुत चिंता होती है। लड़का परीक्षा में असफल होता है तो माता–पिता को चिंता होती है। परीक्षा में पास होने के बाद उसकी नौकरी की चिंता होती है। नौकरी के बाद विवाह की और विवाह के बाद लड़के का जन्म हो, ऐसी चिंता रहती है। गृहस्थाश्रम में अधिकतम जीवन चिंता में व्यतीत हो जाता है। मुझे कन्या की बहुत चिंता होती है। कन्या बड़ी हो गयी है। अब मैं इसका विवाह करना चाहता हूँ।

नारदजी ने देवहूति के हाथ की रेखाएं देखी हैं और उन्हें देखकर नारदजी को मालूम पड़ा कि यह राजा की कन्या है, पर ऐसा योग है कि यह किसी राजा की रानी नहीं होगी, महान् ऋषि की पत्नी होगी। मनु महाराज कहते हैं कि जो आप कहते हैं, वह सच है। इसका जन्म तो राजमहल में हुआ है, पर राजमहल का विलासी जीवन इसे पसंद नहीं है। यह सुबह जल्दी उठ जाती है, स्नान करती है और साधु–सदृश जीवन बिता रही है। इसकी ऐसी इच्छा है कि कोई भगवद्भक्त

और महान ज्ञानी पति हो तो विवाह करूँ। ज्ञानी हो भगवद्भक्त हो, किन्तु ऐसा व्यक्ति राजकन्या से कैसे विवाह करेगी? इसकी मुझे चिंता हो रही है।

नारदजी ने विचार करके कहा–इस कन्या के लिये योग्य वर तो कर्दम ऋषि ही हैं। वे महान् ज्ञानी हैं, योगी हैं, भगवद्भक्त हैं। इस कन्या को आप कर्दम ऋषि को अर्पण करिये। मनु महाराज कहने लगे कि मैंने कर्दम ऋषि की बहुत प्रशंसा सुनी है पर कर्दम ऋषि महान् योगी हैं, ज्ञानी हैं। क्या वे राजकन्या से विवाह करेंगे? नारदजी ने कहा कि करेंगे। उन्हें विवाह करने की इच्छा हुई है।

मनु महाराज और शतरूपाजी देवहूति, कन्या के साथ रथ में बैठकर कर्दम ऋषि के आश्रम में आते है। कर्दम ऋषि का आश्रम अति दिव्य है। गाय के गोबर से लिपा–पुता है। सात्विक शोभा वहीं है। सुन्दर वृक्ष हैं। पशु–पक्षी प्रेम–भाव से वहाँ खेल रहे हैं। जो मन, वचन और कर्म से हिंसा छोड़ देता है और जो अहिंसा का उपासक है, उसके संसर्ग में आने वाले पशु–पक्षी भी हिंसा छोड़ देते है। ऋषि के आश्रम के वृक्ष भी सात्त्विक होते हैं। गृहस्थ के बगीचे के वृक्ष राजसी होते हैं। उन वृक्षों की छाया में विलासी लोग बैठते हैं घर और संसार की बातें वहीं होती है। ऋषि के आश्रम के वृक्षों की छाया में ऋषि कुमार संध्या करते हैं, गायत्री के जप करते हैं, विष्णुसहस्रनाम का पाठ करते हैं। अतः आश्रमों में, वृक्षों में भी सात्विकता आती है। ऋषि के आश्रम के वृक्षों को देखकर मनुजी कहते हैं, कि ये कैसे वृक्ष हैं! सभी फलों से लदे हुए हैं। ऐसे सरस फल हमारे यहाँ नहीं होते हैं। इस आश्रम में मेरी पुत्री रहने वाली है।

मनु महाराज पधारे हैं, ऐसे समाचर पाकर कर्दम ऋषि खड़े हो गये और मनु महाराज का स्वागत किया। कर्दम ऋषि ने देखा कि मनु महाराज के पीछे उनकी कन्या खड़ी है। भविष्य में यही कन्या मेरी पत्नी होगी। प्रभु ने मुझसे कहा है। परमात्मा ने तो कन्या की बहुत प्रशंसा की है। मैं एक बार कन्या की परीक्षा करके देखूँ।

कर्दम ऋषि ने कन्या की परीक्षा बहुत विवके से की है। कन्या की परीक्षा क्या कन्या के साथ बहुत बातें करने से या प्रश्नों के पूछने से होती है? कर्दम ऋषि ने दर्भ के तीन आसन बिछा दिये। मनु महाराज से उन्होंने कहा कि आप आसन पर विराजिये। कर्दम ऋषि को प्रणाम करे मनु महाराज आसन पर बैठ गये। फिर शतरूपा रानी से कहा कि यह आसन आपके लिए है। तीसरे आसन की ओर इंगित करके कन्या से कहा कि यह आसन आपके लिए है। आप आसन पर बैठिए।

कन्या देवहूति बहुत पढ़ी–लिखी न थी वह स्त्री–धर्म को जानती थी। देवहूति ने सोचा कि पति मेरे लिए परमात्मा हैं। भविष्य में ये मेरे पति होंगे। ये आसन बिछा दें और मैं उस बैठ जाऊँ

तो मुझे पाप लगेगा। बेचारी पुराने विचार की स्त्री है, इससे ऐसा सोचती है। आजकल की स्त्री तो पति को हुक्म देती हैं। जिस स्त्री को पति में परमात्मा नहीं दीखते, उस स्त्री को मन्दिर में, मूर्ति में परमात्मा के दर्शन नहीं होंगे। उसकी भक्ति फलती नहीं है। देवहूति सोचती है कि आसन पर नहीं बैठूँ तो भी उन्हें बुरा लगेगा। सोचेंगे कि मैंने आसन दिया पर इस कन्या ने उसको स्वीकार नहीं किया। आसन पर बैठूँगी मुझे तो पाप लगेगा। नहीं बैठूँगी तो उनका अपमान होगा। अब क्या करूँ? कन्या चतुर है। उसने युक्ति की। उसने बायाँ हाथ उस आसन पर रखा और स्वयं छतरी पर बैठ गयी। कहने लगी कि आपने जो आसन दिया है, इसको मैंने सहर्ष स्वीकार किया पर मैं आपकी दासी हूँ। आप मेरे भगवान् हैं। आप आसन बिछा दें और मैं बैठूँ यह उचित नहीं है। मैं धरती पर ही बैठूँगी। कर्दम ऋषि ने यह देखा। उन्होंने सोचा कि परीक्षा में पास है। तकलीफ नहीं होगी।

मनु महाराज से कर्दम ऋषि कुशल समाचार पूछते हैं। मनु महाराज कहते हैं कि आपके आशीर्वाद से सब कुशल है। एक विशेष काम के लिए मैं आया हूँ। इस कन्या का दान करने की मेरी इच्छा है। आप कन्या दान को स्वीकार करिये।

सच्चे सन्त हृदय के बहुत सरल होते हैं। सन्त जानते हैं कि कपट करने से बहुत नुकसान होता है। जो कपट करते हैं, उन्हें शान्ति नहीं मिलती है। उनका हृदय बहुत टेढ़ा होता है। उनके हृदय में परमात्मा का प्रवेश नहीं होता है। वे शान्ति से भक्ति भी नहीं कर पाते है। कपट करने वाला समझता है कि मैं बहुत समझदार हूँ पर वह मूर्ख होता है। कपट करने वाले का मन अशांत रहता है। कपट करने से कदाचित थोड़ा सा लाभ होगा पर नुकसान भी बहुत होगा। जिसके व्यवहार में छल-कपट दीख पड़ते हैं, उसका व्यवहार कितना भी सरल हो, वह प्रभु से दूर ही होता है। जिसे परमात्मा की थोड़ी भी अनुभूति होती है, वह कपट नहीं कर सकता है। उसका व्यवहार बहुत शुद्ध होता है।

कर्दम ऋषि महायोगी हैं, ज्ञानी हैं वे सच ही कहते हैं, जो मन में है, वही कहते हैं। कहते हैं कि मेरी विवाह करने की इच्छा है पर मुझे सावधान होकर विवाह करना है। सावधान होकर जो विवाह करता है, वह बहुत सुखी होता है। उसका गृहस्थाश्रम दिव्य होता है। विवाह करना पुण्य है पर लापरवाह होकर विवाह करना पाप है। विवाह का रहस्य क्या है, उसको ध्यान में रखकर विवाह करना चाहिए। सावधान होकर विवाह करना चाहिए। सावधान होकर विवाह करने के लिए ही विवाह के समय पर ब्राह्मण कहते हैं कि शुभ लग्न सावधान। वे जानते हैं कि विवाह करने वाले भाई अब सावधान नहीं रह सकेंगे। अब लापरवाह हो जायेंगे। इसीलिए उनको सावधान करते हैं, जाग्रत करते हैं।

कर्दम ऋषि कहते हैं कि मुझे विवाह करना है पर सावधान होकर करना है। मुझे काम का विनाश करना है। विवाह विलास के लिए नहीं है। विवाह काम के विनाश के लिए है। देव, ब्राह्मण, अग्नि–तीनों की साक्षी में जिस स्त्री के साथ पुरुष के साथ विवाह हुआ हो, इस एक ही स्त्री में–एक ही पुरुष में काम भाव रखकर, धर्म की मर्यादा में रहकर काम-सुख भोगने और काम-त्याग के लिए विवाह है। निष्काम होने के लिए विवाह है। श्रीकृष्ण-मिलन में काम बिघ्न लाता है। अकेला पुरुष अथवा अकेली स्त्री धर्म का उचित से पालन नहीं कर सकते हैं। पुरुष को स्त्री की जरूरत होती है, स्त्री को पुरुष की जरूरत होती है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि स्त्री-हृदय में स्नेह अधिक होता है। स्त्री-हृदय में सेवा की, समर्पण की भावना अधिक रहती है पर स्त्री में विवेक की कमी रहती है। स्नेह करने के लिए लायक कौन है? तथा किसको कितना समर्पण करना चाहिये, इसकी परीक्षा पुरुष कर सकता है। स्त्री और पुरुष स्नेह और विवेक एक होकर भक्ति प्रकट होती है। पति-पत्नी का पवित्र सम्बन्ध परमात्मा के लिए होता है।

कर्दम ऋषि कहते हैं कि मैंने ऐसा निश्चय किया है कि एक पुत्र हो जाने पर पति-पत्नी का लौकिक सम्बन्ध नहीं रखूँगा। मेरा विवाह एक सत्पुरुष के लिये है। बाद में संन्यास लूँगा। आदि नारायण परमात्मा का ध्यान करूँगा। कदाचित संन्यास न लेकर घर में रहूँ तो भी जिस तरह भाई-बहिन का जीवन होता है वैसा ही पवित्र जीवन हम बितायेंगे। विवाह की बात चल रही है और कर्दम ऋषि कहते हैं कि मुझे संन्यास लेना है।

मनु महाराज को आश्चर्य हुआ। देवहूति की ओर देखते हैं। कहते हैं–बेटी तुमने सुना न? ये तो संसार छोड़कर संन्यास लेने वाले हैं। देवहूति सोच रही है कि पत्नी नाव है और पति हैं नाविक। एक नाव नाविका के बिना तट पर नहीं पहुँच सकती। नाविका भी नाव के बिना सामने के तट पर नहीं पहुँच सकता। नाविका को नाव की और नाव को नाविका की आवश्यकता है। मेरे पति जो कह रहे हैं, वही मुझे भाता है। मैं भी संन्यासी जैसा जीवन बिता दूँगी। मेरी ऐसी इच्छा नहीं है कि मेरे पति मेरे अधीन रहें, मुझमें आसक्त रहें एक सत्पुत्र के बाद वे संन्यास लेंगे तो उचित ही है। देवहूति ने पूर्ण समत्ति दी।

फिर वेद-विधि के अनुसार विवाह किया गया। शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं–राजन्! मनुजी ने वस्त्र आभूषण दिये हैं। मनु महाराज शतरूपा रानी के साथ घर जाते हैं। देवहूति भी अब राजकन्या नहीं है। देवहूति अब ऋषि-पत्नी हैं। देवहूति ने सोचा कि मेरे पतिदेव तपस्वी जीवन बिताते हैं। मुझे भी अब तपश्चर्या करनी है। अब मैं ऋषि-पत्नी हूँ, तपस्विनी हूँ। उसने सभी आभूषण उतार दिये हैं। सादा परिधान पहिन लिया है। कपड़ों में माया होती है। कपड़े का असर मन पर पड़ता है जिसका भोजन सादा है, जिसका परिधान सादा है, वह साधु है।

कर्दम ऋषि देवहूति के साथ आश्रम में विराजे हैं। कर्दम ऋषि ने विचार किया कि मुझे देवहूति की परीक्षा करनी है। परीक्षा यही कि वह मेरी तरह जितेन्द्रिय है कि नहीं? विवाह के बाद उन्होंने संयम बढ़ा दिया। देवहूति अति सुन्दर है। पति-पत्नी में अतिशय प्रेम है परन्तु कर्दम ऋषि देवहूति के सामने आँखें उठाकर देखते तक नहीं हैं, बोलते भी नहीं हैं। घर में पति-पत्नी मौन रखते हैं। परिपूर्ण संयम रखते हैं। कर्दम ऋषि ने परीक्षा करनी शुरू की है।

देवहूति ने विचार किया है कि बोलने कि क्या जरूरत है? उनकी बोलने की इच्छा नहीं है तो मुझे भी नहीं बोलना है। मैं तो उनकी सेवा करूँगी और ऐसी सेवा करूँगी कि इनको बोलना ही न पड़े।

पति-पत्नी मन से एक होते हैं तो गृहस्थाश्रम सफल होता है। पति को क्या पसन्द है? उनकी क्या इच्छा है? वह पतिव्रता स्त्री स्वयं जान जाती है। विवाह का अर्थ यही है। तन दो पर मन एक-उसे ही विवाह कहते हैं। देवहूति पति की सेवा ऐसे कर रही हैं कि पति को बोलने का अवसर नहीं आता। राजकन्या, राजमहल में बड़ी हुई है फिर भी कर्दम ऋषि की ऐसी सेवा कर रही है कि पतिदेव की सेवा में इसका शरीर दुर्बल हो गया है। शरीर पर मात्र हड्डियाँ दीख रही हैं। एक दिन कर्दम ऋषि की दृष्टि पड़ी। उन्होंने सोचा कि यह कैसी सेवा कर रही है! कर्दम ऋषि प्रसन्न हुए। देवहूति से वे कहते हैं-

तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः शुश्रूषया परमया परय च भक्त्या।
यो देहिनामयमतीव सुहृत्स्वदेहो नारवेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे॥

(३-२३-६)

सभी को शरीर प्रिय होता है। धन्य है तुम्हें! तुमने मेरी सेवा में अपना शरीर घिस डाला है। शरीर का मोह तुमने नहीं रखा। तुमने मेरी बहुत सेवा की है। मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम माँग लो, जो तुम्हें माँगना है। तुम जो माँगोगी, मैं वह तुम्हें दूँगा। देवहूति ने कहा-जब आप जैसे ज्ञानी, तपस्वी, भगवद्भक्त पति मिले हैं, तब मुझे सब कुछ मिला है। मुझे कुछ नहीं माँगना है। मैं हर रोज तुलसी की पूजा करती हूँ। श्रीबालकृष्ण की सेवा करके, बालकृष्ण के समक्ष तुलसीजी को प्रस्तुत करके परिक्रमा करती हूँ और माँगती हूँ कि मेरे पतिदेव का आयुष्य बढ़े। मेरे पतिदेव आनन्द में रहें और अपने पतिदेव की सेवा करते-करते ही मेरे शरीर का अन्त आ जाय। मेरी अन्य कोई इच्छा नहीं है। मैं चाहती हूँ कि पहिले मैं जाऊँ। मेरे बाद आप आइये। इस घर में आप मुझे लाये हैं। इस घर से आप ही मुझे विदा दीजिये। प्रभु के धाम आप ही मुझे भेजिये। देवहूति ने ऐसा कहा।

देवहूति की वाणी सुनकर कर्दम ऋषि बहुत प्रसन्न हुए। बोले कि–आप महान् पतिव्रता हैं। आपका सौभाग्य अखण्ड रहेगा। आज मेरी बहुत इच्छा है कि आप माँगिये।

कर्दम ऋषि कहने लगे–तुम्हारी इच्छा नहीं है पर मुझे सन्तोष हो, इसलिए भी तुम कुछ माँग लो। देवहूति ने कहा कि आप एक बार कह रहे थे कि एक पुत्र की प्राप्ति के बाद संन्यास ग्रहण करेंगे। आपकी इच्छा हो तो मेरे मन में थोड़ी भावना है कि एक पुत्र हो तो अच्छा! कर्दम ऋषि समझ गये कि देवहूति की सूक्ष्म वासना है। देवहूति से वे कहने लगे–देवी मानव शरीर बहुत ही नाजुक है। वह मर्यादित सुख या दुःख भोग सकता है। जहाँ मर्यादा टूटती है, वहाँ भोगी, रोगी होता है। भोग के बाद रोग खड़ा ही रहता है। मैं तुम्हें ऐसा सुन्दर शरीर दूँगा कि जिसे कभी वृद्धावस्था न आ सकेगी, कभी रोग भी न आयेगा। यौवन ही सदैव रहे, ऐसा दिव्य शरीर मैं तुम्हें दूँगा। इस सरस्वती गंगा में स्नान करके तुम आ जावो। उसी समय देवहूति वल्कल वस्त्र उठाकर सरस्वती गंगा में स्नान करने को जाती है। तब कर्दम ऋषि कहने लगे–इस वस्त्र को अब ले जाने की जरूरत नहीं है। आप खाली हाथ ही वहाँ जाइए। वहाँ एक दासी आकर आपके लिए वस्त्र लायेगी। देवहूति स्नान करने जाती है। उसी समय कर्दम ऋषि हाथ में जल लेते हैं। उन्होंने सौ वर्षों की तश्चर्या कृष्णार्पण कर दी है। तब अनेक दासियाँ प्रकट हुई हैं। वे सभी देवहूति को प्रणाम करने लगती हैं। सोने के पटड़े पर बैठाकर देवहूति को मांगलिक स्नान करवाती हैं। जैसे ही देवहूति ने स्नान कर लिया, देवहूति की काया बदल जाती है। अति सुन्दर स्वरूप उन्हें मिल जाता है। उसी समय दासी देवहूति का शृंगार करती हैं।

कर्दम ऋषि भी कामदेव के समान सुन्दर बन जाते हैं। तब एक सुन्दर विमान भी उत्पन्न होता है। उस विमान में सभी प्रकार के सुख के साधन हैं। विमान में कर्दम ऋषि और देवहूति विराजते हैं और विहार करते हैं। ग्रन्थ में कर्दम-देवहूति के शृंगार का बहुत वर्णन किया गया है।

वक्ता को कभी भी शृंगार की कथा नहीं करनी चाहिए। शृंगार का निरूपण नहीं करना चाहिए–ऐसी संतों की आज्ञा है। वक्ता को किस तरह कथा करनी चाहिए–इसका विवरण समर्थ सद्गुरु रामदास स्वामी ने 'दासबोध' के एक अध्याय में दिया है, कथा कोई मनोरंजन का साधन नहीं है। कथा किसी को प्रसन्न करने के लिये नहीं है। कथा धन-प्राप्ति के लिये भी नहीं है। कथा मन को पवित्र करने के लिये है। कलुषित बने हुए मन को शुद्ध करने के लिये कथा है। वक्ता विवेक से कथा कहता रहे, शांत और करुण रस में कथा करता रहे, तब उत्तम है। शांत और करुण–दोनों रस ऐसे हैं कि वे मन को शुद्ध करते हैं। अन्य रस मन को अशुद्ध करते हैं।

शांत और करुण रस प्रमुख हैं। कथा में हास्य रस निम्न कोटि का है। कई लोग ऐसा समझते हैं कि महाराज, कथा में बहुत हँसाते हैं, इसलिए मजा आता है। अरे! कथा क्या हँसने के लिये है। कथा सुनने के बाद दुःख होना चाहिए कि 'आज तक मेरा जीवन कैसा बीता? मैंने आज तक परमात्मा के लिये कुछ नहीं किया। कथा हँसने के लिये नहीं है। हमारे शास्त्रों में ऐसा कुछ लिखा है कि जो बहुत हँसता है, वह मन को बिगाड़ता है। हास्य रस मन को बिगाड़ने वाला रस है। जो बहुत हँसता है, वह रोने की तैयारी में होता है। अति हास्य अच्छा नहीं है। कथा में वक्ता को बहुत विवेक से बोलना चाहिए। श्रृंगार मन को बिगाड़ने वाला रस है। श्रृंगार का अधिक निरूपण नहीं करना चाहिए। व्यास महर्षि संस्कृत में उसका वर्णन भले ही करते हैं पर प्राकृत में उसके निरूपण से अश्लीलता का दोष आता है। कथा सुनने के बाद श्रोता के मन में प्रभु के प्रति प्रेम उत्पन्न हो और संसार के विषयों के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो—ऐसी कथा होनी चाहिए। अतः वक्ता को अन्य रसों का निरूपण नहीं करना चाहिए।

कामाधीन कर्दम ऋषि विमान में सौ वर्षों तक विहार करते हैं। उनके घर एक भी पुत्र का जन्म नहीं हुआ किन्तु नौ कन्याओं का जन्म हुआ। एक दिन कर्दम ऋषि के मन में वैराग्य जाग्रत होता है। विलासी जीवन के प्रति मन में घृणा आ जाती है। श्रृंगार रस को उन्होंने फेंक दिया। लंगोट धारण कर लिया। तन पर भस्म रमा ली है। हाथ में कमण्डल ले लिया। देवहूति ने देखा। सोचा कि ये हम सबको छोड़कर संन्यास लेने जा रहे हैं। देवहूति ने हाथ जोड़कर कहा—आपकी संन्यास लेने की इच्छा है तो मैं मना नहीं करूँगी पर आपकी ऐसी प्रतिज्ञा थी कि आप एक पुत्र होने के बाद संन्यास लेंगे। नौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं पर एक भी पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। पुत्र होना ही चाहिए, ऐसा मेरा आग्रह नहीं है पर इन पुत्रियों को योग्य स्थान पर स्थिर करके आप संन्यास ग्रहण करिये। अभी आप संन्यास ले लेंगे तो इनका विवाह कौन करेगा?

कर्दम ऋषि सोचने लगे—प्रभु ने मुझ से कहा था कि तुम्हारे घर पुत्र होकर आऊँगा पर परमात्मा अभी आये नहीं! प्रभु क्यों नाराज हो गये हैं? मैं तपस्वी था। मैंनें तपश्चर्या छोड़ दी। ऐसा लगता है कि मैं बहुत विलासी हो गया और प्रभु को यह पसंद नहीं आया। विलासी से प्रभु दूर रहते हैं। विलासी का संग मन को बिगाड़ता है। इससे ही प्रभु नहीं आ रहे हैं। वे कहने लगे, कि यह विलासी जीवन मुझे पसंद नहीं है। देवहूति ने कहा कि आपको जो पंसद नहीं है, वह मुझे भी पसंद नहीं है। मुझे भी साधु-जीवन पसंद है।

विलासी जीवन की अब समाप्ति हुई। पति-पत्नी पुनः सरस्वती के तट पर सात्विक जीवन बिताने लगे। वे सारा दिन जप करते हैं, ध्यान करते हैं। बहुत भूख लगने पर थोड़े फल खाते हैं।

कंद-मूल और फल खाकर सारा दिन भक्ति करते हैं। पुनः पवित्र जीवन का प्रारम्भ हुआ। अनेक वर्षों तक उन्होंने तपश्चर्या की। देवहूति के पेट में गर्भ रहा है। कर्दम ऋषि को विश्वास आ गया। सोचने लगे कि देवहूति के मुख पर बहुत तेज है। मेरे इष्टदेव नारायण इसके पेट में आ गये हैं। इसे अनेक बार गर्भ रहा पर ऐसा तेज मैंने पहले कभी नहीं देखा है।

देवहूति के पेट में विराजमान परमात्मा की देव और गन्धर्व स्तुति करते हैं। परमात्मा के प्राकट्य का अब समय आ गया है। आज साधु-संन्यासी-योगी सब आनंदित हैं। संत आज बहुत प्रसन्न हैं। संतों के गुरुदेव कपिल-नारायण आज प्रकट होने वाले हैं। साधु-संत-महापुरुष-सभी कपिलदेव को गुरु मानते हैं।

आप कुंभ मेले में गये होंगे। कुंभ मेले में हजारों साधु-महात्मा आते हैं। नागाबाबा भी आते हैं। निरंजनी अखाड़ा, निर्वाणी अखाड़ा इत्यादि एक-एक अखाड़े में हजारों संत महात्मा आते हैं। इन संतों के अखाड़ों में कपिलदेव की पूजा होती है। वे सभी कपिलदेव को सद्गुरु मानते हैं।

परम पवित्र समय प्राप्त हुआ है। दसों दिशाएँ प्रसन्न हैं। परम पवित्र कार्तिक, मास, कृष्ण पक्ष, पंचमी तिथि, बुधवार के दिन मध्याह्न काल में कपिल नारायण का प्राकट्य हुआ है। कपिल नारायण के दर्शन के लिये ब्रह्मादिक देव भी आये हैं। परम आनंद हुआ है। ब्रह्माजी ने कर्दम ऋषि को धन्यवाद दिया है। वे कहते हैं कि आपका गृहस्थाश्रम सफल हुआ है। यह बालक साधारण नहीं है। परमात्मा आपके घर पुत्र-स्वरूप में प्रकट हुए हैं। इस बालक के चरण में कमल का चिह्न स्पष्ट दिखाई देता है। ये आदिनारायण हैं। आज आप जगत्-पिता के भी पिता हुए हैं। यह बालक माता का उद्धार करेगा। यह माता को तत्वज्ञान का उपदेश देगा। अब आपको संन्यास लेना है तो ले सकते हैं।

कर्दम ऋषि कहते हैं कि पुत्र के जन्म से मुझे आनंद हुआ है, पर इन नौ पुत्रियों के विवाह की मुझे चिन्ता है।

ब्रह्माजी ने कहा कि तुम्हारे घर भगवान् विराजमान हैं। तुम्हारी चिंता तुम्हारे भगवान् को है-

चिंता कापि न कार्या, निवेदितात्मभिः कदापीति।
भगवानपि पुष्टस्थो, न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्॥

आप जिन देव की प्रेम से पूजा करते हैं, जिन देव के नाम का जप करते हैं, उनको आपकी बहुत चिंता है। चिंता न करिये मैं भगवान् का हूँ, भगवान् मेरे हैं-ऐसा भाव रखकर परमात्मा के नाम का जप करिये। ब्रह्माजी ने कहा-तुम्हारे प्रभु तुम्हारे घर पधारे हैं। चिंता क्यों कर रहे हो? तुम्हारी कितनी पुत्रियाँ हैं? कर्दम ऋषि कहते हैं-महाराज! मेरी नौ पुत्रियाँ हैं। ब्रह्माजी के साथ नौ

ऋषि पधारे थे। ब्रह्माजी ने कहा–ये नौ ऋषि तुम्हारे नौ जामाता हैं। ये बिना निमंत्रण तुम्हारे घर पधारे हैं। भाग्यवान के घर ही जमाई राजा बिना निमंत्रण पधारे हैं। एक-एक को कन्यादान करिये और फिर दूध-भात का भोजन करिये, सब कुछ आनन्द पूर्ण हो जायगा। विवाह में सादगी रखिये। विवह में धर्म प्रमुख है, काम गौण है। सादगी से वर-कन्या को उत्तम संस्कार मिलेंगे। कई लोग ऐसे भी होते हैं कि जिनके सभी रुपये विवाह में ही खर्च हो जाते हैं। बहुतों के पैसे पत्थरों में वह जाते हैं। पैसे का दुरुपयोग करने पर पैसे विष बन जाते हैं। पैसा मारता है, पैसा पतन कराता है। पैसे का सदुपयोग करने पर पैसा तारने वाला बनता है। विवाह में विवेक से खर्च करिये।

कर्दम-ऋषि बहुत प्रसन्न हैं। उन्होंने ऋषियों को पुत्रियों का दान दिया है। मरीचि ऋषि को कला नाम की पुत्री दी है। अथर्व-ऋषि को शांति नाम की कन्या दी है। भृगु ऋषि से ख्याति का विवाह हुआ है। वशिष्ठ का विवाह अरुन्धती के साथ संपन्न हुआ है। अत्रि ऋषि को अनसूया, कृतु को क्रिया, अंगिरा को श्रद्धा, पुलस्त्य को हविर्भु तथा पुलह को गति का कन्यादान दिया है। ये सभी कपिल भगवान् की नौ बहनें हैं। कन्याऐं विवाह के बाद अपने-अपने पति के घर गई हैं। कर्दम-ऋषि बहुत प्रसन्न हैं। अब उन्हें किसी तरह की चिन्ता नहीं है।

धीरे-धीरे कपिल नारायण बड़े हुए। एक बार कर्दम ऋषि ने सोचा कि अब बालक बड़ा हो गया है। यह अपनी माता की देखभाल कर सकेगा माता का उद्धार करेगा। अब मुझे घर में रहने की कोई जरूरत नहीं है। एकान्त में बैठे कपिलदेव के पास वे गये और संन्यासी लेने की अपनी इच्छा प्रकट की । कपिल देव ने कहा–पिताजी! आपका विचार बहुत सुन्दर है। बहुत गई, थोड़ी रही। पिताजी! आपको क्या उपदेश दूँ पर इतना कहता हूँ कि अधिक परोपकार की चिंता में नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि परोपकार करने पर अहम् बढ़ जाता है। भाव आता है कि मुझे कोई स्वार्थ नहीं है, मैं तो लोगों के लिये कर रहा हूँ। परोपकार करते हुए प्रभु को भुलाया जाय तो पतन होता है। संन्यांस भी विधिपूर्वक लेना होता है। संन्यास की विधि उचित रूप से संपन्न होती है, तो देखने वाले के मन में भी वैराग्य के भाव जागते हैं। जिस दिन संन्यास लेना हो उस दिन गंगाजी में एक सौ आठ बार स्नान करना पड़ता है अन्तिम स्नान के बाद प्रायश्चित करना पड़ता है। स्नान करते समय शिखा, जनेऊ लंगोट सभी पानी में छोड़कर नग्न होकर बाहर आना पड़ता है। बाहर बैठे परिवार के सभी सदस्यों को साष्टांग प्रणाम करना पड़ता है। मानना होता है कि हमारा सम्बन्ध अब पूरा हो गया। पत्नी में मातृभाव रखना पड़ता है। पति-पत्नी का सम्ब्रन्ध भूल जाना पड़ता है। कहना होता है कि आज से तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध परिवर्तित हो गया है। तुम माता हो, मैं तुम्हारा पुत्र हूँ और उसी समय पत्नी पति के हाथ में लंगोट देती है। कहती है आप निर्विकार हैं, अब

आपको कपड़ों की जरूरत नहीं है पर लोक लज्जा के लिये आप यह लंगोट पहनिये। पत्नी जो लंगोट देती है, उसे पहिनकर अग्नि में होम करना पड़ता है। उसे विरजा होम कहते हैं। वेदों में विरजा होम का वर्णन आता है—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधा मे शुद्धयंता विरजा विपाप्मा मूँयासं स्वाहा।

देव, ब्राह्मण और अग्नि—इन तीनों की साक्षी में संसार के सभी सुखों का होम करना होता है। विश्वास रहता है कि अब कोई सुख भोगना नहीं है। अब मेरा जीवन परमात्मा के लिये है। परमात्मा के लिये सभी सुखों का न्यास अर्थात् त्याग—यही संन्यास है। वैराग्य से संन्यास की शोभा है। वैराग्य के बिना ज्ञान स्थिर नहीं रहता है।

कपिलदेव कर्दम ऋषि से कहते हैं कि पिताजी संन्यास लेने पर घर का स्मरण तक न करना। संन्यासी घर का स्मरण करता है, तब उसे पाप लगता है। माता का विचार न करिये। माता का उद्धार मैं करूँगा। माता को उपदेश दूँगा। आप सब भूल जाइए। ओम्कार का निरंतर जप करिये। परमात्मा का निरंतर ध्यान करिये। पिताजी सावधान रहिये कर्दम ऋषि ने विधिपूर्वक संन्यास ग्रहण किया और आदिनारायण परमात्मा का ध्यान करने लगे—

इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्र समचेतसा।
भगवद्भक्तियुक्तेन प्राप्ता भागवती गतिः॥ (३-२४-४७)

जगत् के साथ वैर नहीं और जगत् के साथ प्रेम भी नहीं। मेरा कोई शत्रु नहीं है और मेरा कोई मित्र नहीं है। मैं परमात्मा का हूँ परमात्मा मेरे हैं—ऐसी निष्ठा से आदिनारायण परमात्मा का ध्यान करते हुए कर्दम ऋषि परमात्मा के चरणों में लीन हो गये हैं, कर्दम ऋषि को सद्गति मिली है।

२४—कपिल गीता

अब कपिल गीता की कथा आती है। भागवत में इस कथा का प्रकरण महत्त्वपूर्ण है। कपिल-गीता की कथा अति मधुर है। कपिलनारायण माता देवहूति को सुन्दर उपदेश देते हैं।

प्रातःकाल का पवित्र समय है। संध्यादिक नित्य-कर्म परिपूर्ण हो गया है। कपिल नारायण दर्भासन पर शान्ति से विराजमान हैं। उसी समय माता देवहूति को याद आता है—मेरे कपिलदेव के जन्म के समय जब ब्रह्माजी पधारे थे तब उन्होंने कहा था—यह बालक साधारण व्यक्ति नहीं हैं। आदिनारायण परमात्मा का अवतार हैं। ये माता के उद्धार के लिए आये हैं। देवहूति माता को इन बातों का स्मरण हो आया। यह मेरा पुत्र है और मैं इसकी माता हूँ—यह लौकिक सम्बन्ध माता देवहूति भूल गयीं। सद्गुरु हैं और मैं सद्शिष्या हूँ— ऐसा अलौकिक भाव उनके हृदय में जागा। माता देवहूति ने कपिलनारायण को बार-बार प्रणाम करके कहा है—

तं त्वा गताहं शरणं शरण्यं स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारम्।
जिज्ञासयाहं प्रकृतेः पूरुषस्य नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम्॥

(३-२५-११)

आप आज्ञा दीजिए। मेरी कुछ पूछने की इच्छा है। कपिलदेव ने कहा—माता जरा भी संकोच न करिये। आप जो पूछेंगी, मैं आपसे कहूँगा।

माता देवहूति ने सुन्दर प्रश्न पूछा है—वे पूछती हैं कि इस संसार में सच्चा आनन्द है कि नहीं है? ऐसा आनन्द है कि नहीं जो सदैव रहता है? जो असत्य है, वह अस्थायी है। जो सत्य है, वह स्थायी है। सत्य का नाश नहीं होता है। ऐसा आनन्द प्राप्य है कि नहीं जो आनन्द सदैव रहता है। उसकी प्राप्ति के बाद कभी दुःख नहीं आता है। जो आनन्द सर्वश्रेष्ठ है, जो सदैव रहता है जो नित्य है, ऐसा नित्य आनन्द कहाँ है? उस आनन्द की प्राप्ति के साधन क्या हैं? आज तक मैंने इन इन्द्रियों का बहुत लालन-पालन किया है। इन्हें बहुत लाड़ कराया है। इन्द्रियों का सुख भोगने पर शान्ति मिलेगी—ऐसी मेरी कल्पना गलत थी। इन्द्रियों का सुख भोगने से थोड़े समय के लिए शान्ति मिलती है, पर मन अधिक अशांत हो जाता है, वासना बढ़ती है। मानव समझता है कि वह सुख भोग रहा है पर वस्तुतः यह मन की भ्रान्ति है। आँखें बिगड़ती हैं, मन बिगड़ता है। इन्द्रियाँ एक-एक विषय में मन को फँसाती हैं। अग्नि में घी की आहुति देने से अग्नि शान्त नहीं होती, प्रदीप्त होती है। मुझे इस जीवन से अरुचि हो गई है। मैं थक गई हूँ। मन और बुद्धि के भ्रष्ट होने से जीवन बोझ लगता है। वासना राक्षसी मेरे मन में घर करके बैठ गई है। मुझे यह बहुत रुलाती है, त्रस्त करती है। उसके संत्रास से मैं मुक्त होना चाहती हूँ पर वह मुझे मुक्त नहीं होने देती। किसी भी इन्द्रिय को कभी तृप्ति नहीं होती। जीभ रोज-रोज नयी चीजें माँगती है। वासना राक्षसी है। वह एक ऐसी राक्षसी है कि उसे जितना खिलाओगे, वह उतनी अधिक भूखी हो जायगी। वासना एक ऐसी राक्षसी है कि वह खिलाने वाले को ही खा जाती है, फिर भी तृप्त नहीं होती है। वासना राक्षसी के त्रास से मुझे मुक्त करवाइये।

कई व्यक्ति ऐसी याद रखते हैं कि आठ-दस दिनों से पकौड़े नहीं खाये हैं, उसका हिसाब तो रखा पर आज तक कितने पकौड़े खाये हैं क्या इसका भी हिसाब रखा है? हिसाब रखा होता तो पता चलता कि आज तक आठ-दस मन पकौड़े पेट में चले गये होंगे। खाने से तृप्ति नहीं होती है। जीभ नया-नया माँगती रहती है। इस जीभ में एक भी हड्डी नहीं है। यह तो लूली-लंगड़ी है पर बैठे-बैठे नचाती है। कई व्यक्ति ऐसे हैं कि उनका मन रसोई घर से बाहर निकलता ही नहीं है, वहीं रमा रहता है। हमने खाने कग लिए जीवन धारण नहीं किया है। जीभ की तो कभी तृप्ति

नहीं होती। जीभ को खुश रखेंगे तो आँखें त्रस्त करेंगी। आँखें रूप-विषय में खींचकर ले जायेंगी। कई-कई लोग कहते हैं कि पड़ोसी तो महीने में दो बार सिनेमा देखने जाते हैं। आप तो हमें एक बार भी फ़िल्म नहीं दिखाते हैं। आधुनिक वर्ग ऐसा मानता है कि हम सिनेमा घर देखते हैं, हम होटल में खाते हैं, इसी से हम आधुनिक हैं, बुद्धिमान हैं। पैसा खर्च करके अन्धेरे में बैठने वाला बुद्धिमान् है कि मूर्ख है?

एक भाई कहते थे कि महाराज! व्यक्ति सारा दिन काम करता है, प्रवृत्ति करता है, उसे कुछ मनोरंजन तो चाहिये। सिनेमा देखने से मेरी थकान दूर हो जाती है, मनोरंजन होता है। अरे! सिनेमा देखने से मन बिगड़ता है कि मन का रंजन होता है? जो शृंगार के गीत सुनते हैं,शृंगार के दृश्य देखते है, उनका मन दुर्बल होता जाता है। सिनेमा देखने से थकान उतर जाती है–यह गलत कल्पना हैं निद्रा से थकान दूर होती है। काम करने से थकान आती है। तन और मन जब निष्क्रिय बनते हैं, तब थकान दूर होती है। निद्रा से थकान दूर होती है। सिनेमा देखने से आँखों को, मन को काम करना पड़ता है। उस समय आँख और मन क्रियाशील रहते हैं। इससे सिनेमा देखने से थकान दूर नहीं हो सकती है।

त्वगेन्द्रिय स्पर्श सुख भोगने के लिए पागल बना देती है। मानव का विवेक नष्ट हो जाता है। कर्णेन्द्रिय शब्द विषय में खींचती है। किसी भी इन्द्रिय की तृप्ति आज तक नहीं हुई भोग से तृप्ति नहीं होती है। त्याग से तृप्ति होती है। मन को समझाकर, मन को, इन्द्रियों को विषयों से हटाने से तृप्ति होती है।

देवहूति कहती है–ये इन्द्रियाँ मेरे विवेक धन को लूट लेती हैं और मुझे गर्त में गिरा देती हैं। चोर अन्य के घर चोरी करने जाता है पर वह अपने घर में चोरी नहीं करता है। ये इन्द्रियाँ ऐसी चोर हैं कि आत्मा का विवेक-धन ही लूट लेती हैं। इन्द्रियाँ नौकर हैं, आत्मा मालिक है। ये मालिक के घर में भी चोरी करती है। मैं थक गई हूँ। झूठे सुख को भोगने में मेरा जीवन नष्ट हो गया है। झूठे सुख को भोगने से शरीर रोगी हो गया है। मन भ्रष्ट हो गया है। सच्चा सुख सच्चा आनन्द कहाँ है– इसका मुझे पता नहीं है। जिस सरल भाषा में मैं समझ सकूँ, ऐसी सरल वाणी में मुझे उपदेश दीजिए। मेरी बुद्धि भी मन्द है।

कपिल नारायण प्रसन्न हुए हैं। माता देवहूति को वे सुन्दर उपदेश देते हैं–माता, तुमने बहुत सुन्दर प्रश्न पूछा है। माता! मैं, संक्षेप में तुम्हें थोड़ा बोध दूँगा–

योग आध्यात्मिकः पुंसां मतो निःश्रेयसाय मे।
अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च।। (३-२५-१३)

माता मन में किसी तरह का सुख भोगने की इच्छा जब तक है, तब तक दुःख का अन्त नहीं है। सुख की इच्छा के पीछे दुःख पड़ा है। माता! सुख और दुःख साथ में रहते हैं। जहाँ सुख है, वहाँ दुःख भी है तथा जहाँ दुःख है, वहाँ सुख है। जीव को आनन्द की भूख है। आनन्दमय एक चेतन परमात्मा ही है। आनन्द किसी जड़ पदार्थ में नहीं रहता है। संसार के सभी जड़ पदार्थ परिणामतः दुःख ही देते हैं। आनन्द किसी जड़ वस्तु में नहीं रह सकता। आनन्द चेतन परमात्मा का स्वरूप है। रोज का अनुभव है–आपको निद्रा में कौन शान्ति देता है? निद्रा में आपको भोजन नहीं मिलता है। निद्रा में हाथ में पैसे नहीं आते हैं पर निद्रा में शान्ति मिलती है। राजा को भी निद्रा में ही शान्ति मिलती है। वह रानी को, राजमहल को–सर्व को भूल जाता है और सो जाता है, तब उसे आनन्द मिलता है। शय्या में पड़ने के बाद धीरे-धीरे जगत् भुलाया जाता है। तब मन से संसार निकल जाता है। दीपक में जब तक तेल है, तब तक दीपक जलता है। दीपक में तेल न रहने पर दीपक शांत हो जाता है। मन में संसार रहता है, तब तक मन जलता है, मन से संसार निकल जाता है तो शान्ति मिलती है। शय्या में पड़ने पर धीरे-धीरे मन में से संसार निकल जाता है। मन यों निर्विषय बनता है और तभी वह चेतन परमात्मा का स्पर्श कर पाता है। निद्रा में जैसा मन रहता है, वैसा ही वह जाग्रत अवस्था में रह पाता है तो नैया पार लग जाती है। माता! आनन्द किसी जड़ पदार्थ में नहीं है। आनन्द चेतन परमात्मा श्रीकृष्ण का स्वरूप है। आनन्द का–आत्मा का वास्तविक रूप आपका ही स्वरूप है। आपके भीतर जो प्रभु हैं, जो आनन्द रूप में आपके भीतर हैं, वे ही आपको आनन्द देते हैं। निद्रा में अन्य से आनन्द नहीं मिलता है। निद्रा में जीव जगत को भूल जाता है। तब जगत् की पूर्ण विस्मृति होती है और तब मन परमात्मा का स्पर्श करता है।

भगवान् कपिलदेव माता देवहूति को सावधान करके आगे कहने लगे–माता, आत्मा, परमात्मा का अंश है। वह आनन्दमय है। अग्नि के सम्पर्क से पानी गर्म होता है फिर ठण्डा हो जाता है। शीतलता जिस तरह जल का स्वरूप है, उसी तरह आनन्द परमात्मा का स्वरूप है। सुख-दुःख स्थिर नहीं हैं, वे भुलाये जाते हैं। सुख-दुःख परमात्मा का सहज स्वरूप नहीं है। सुख-दुःख स्थिर है, वे भुलाये जाते हैं। सुख-दुःख परमात्मा का सहज स्वरूप नहीं है। वे तो मन के धर्म हैं। आत्मा को सुख नहीं होता है, आत्मा को दुःख भी नहीं होता है। सुख-दुःख मन को होते हैं और मन की अनुभूति सुख-दुःख का आरोप आत्मा अपने स्वरूप में करता है।

स्फटिक मणि धवल है, पर उसके पास गुलाब के पुष्प रखिये तो स्फटिक मणि गुलाबी रंग की दीख पड़ेगी। आत्मा शुद्ध है। वह परमात्मा का अंश है। अज्ञात के कारण मन के सम्बन्ध से मन के सुख-दुःख का, आत्मा अपंने में आरोप कर लेती है। सुख-दुःख मन की अनुभूति हैं। व्यवहार में भी लोग कहते हैं कि मेरे मन को बहुत त्रास होता है या मेरे मन को दुःख हुआ। मन

को दुःख हुआ—इसकी पहचान जिसे हुई, वह आत्मा है। व्यवहार में लोग कहते हैं कि मेरा मन बिगड़ गया है। बिगड़ा हुआ मन जिसे दीख पड़ता है, वह आत्मा है। आप बिगड़े हुए मन के सुधारक हैं। आप तन नहीं हैं, आप मन भी नहीं हैं, आप मन के साक्षी हैं–

अहंममाभिमाननोत्थैः कामलोभादिभिर्मलः।
वीतं यदा मनः शुद्धमदुःखमसुखं समम्॥ (३-२५-१६)

मन को सुख-दुःख क्यों होते हैं? अहंकार और ममता के कारण सुख-दुःख होते हैं। मन विषयों का चिन्तन करता है और ये विषय सूक्ष्म स्वरूप से मन में आते हैं। इससे अहंता-ममता आती है। अहंकार-ममता के कारण सुख-दुःख मन की कल्पना है। मन मान जाय तो सुख, मन नहीं मानता तो दुःख। बहुत गर्मी लग रही है, बहुत भीड़ है और इस भीड़ के बीच आपका कोई विशेष व्यक्ति आपके पास उल्टे आकर बैठता है तो जरा भी गर्मी नहीं लगती, शीतलता मिलती है पर कोई पराया व्यक्ति आकर आपके पास बैठ जाय तो त्रास होता है। तब आप सोचते हैं कि यह यहाँ कहाँ आ बैठा। यह सुख-दुःख कहाँ से आये? मन की कल्पना से ही ये उत्पन्न हुए हैं। मन ऐसी कल्पना करता है कि यह मेरा भाई है। तब आपको सुख मिलता है, और मन ऐसी कल्पना करता है कि यह मेरा नहीं है। तब दुःख होता है। सुख और दुःख मन की कल्पना मात्र हैं। आत्मा आनन्दमय है।

माता! सावधान होकर आप थोड़ा सोचिये। जगत् बिगड़ा नहीं है, मन बिगड़ा है। आपके मन को कौन सुधार सकता है? अपने मन को आप स्वयं ही सुधार सकेंगी। माता! लौकिक वासना से ही मन बिगड़ता है और जब मन अलौकिक वासना में फँस जाता है, तब सुधर जाता है। किसी मानव से मिलने की इच्छा को वासना कहते हैं, परमात्मा श्रीकृष्ण से मिलने की इच्छा को भक्ति कहते हैं। वासना का विषय जब कोई स्त्री-पुरुष है तो वासना पतन कराती है। वासना का विषय जब परमात्मा हैं, तब वह भक्ति हो जाती है। वासना का विनाश वासना से ही करना है। लोहे को लोहे से ही काटना पड़ता है। अन्य किसी धातु से लोहा नहीं काटा जा सकता। वासना लोहे जैसी है। वह कठिन है, भयंकर है। अतः वासना से ही वासना का विनाश करना है।

एक विद्यार्थी ने एक बार पूछा—महाराज, आपकी बात सत्य है। सिनेमा देखने से आँखें खराब होती हैं, मन भी खराब होता है पर मुझे इसकी बुरी आदत हो गई है। जब मैं छोटा था, तब मेरे माता-पिता मुझे सिनेमा देखने ले जाते थे। मुझे ऐसी बुरी आदत हो गई है कि जब तक मैं आठ-दस दिनों में सिनेमा नहीं देखता, तब तक बेचैन रहता हूँ मैं समझ रहा हूँ कि सिनेमा देखने से आँखें बिगड़ रही हैं, मन बिगड़ रहा है। मैं समझ कर दुःखी हो रहा हूँ। यह जो वासना है,

उसके विनाश का रास्ता दिखलाइए। मैंने कहा–तुम आज से ऐसी इच्छा रखो कि परीक्षा में प्रथम कक्षा में पास होना है। परीक्षा में प्रथम आने की वासना बढ़ जायगी तो पुस्तक-प्रेम होगा और पुस्तक-प्रेम होगा तो धीरे-धीरे सिनेमा की वासना कम हो जायगी।

भगवान् कपिलदेव कहते हैं कि माता! लौकिक वासना से मन बिगड़ता है, वही मन अलौकिक वासना में रहने से सुधरता है। यह मन पानी जैसा है। पानी कभी ऊपर नहीं चढ़ता, पानी ऊपर से नीचे गिरता है। आकाश से छप्पर पर और फिर धरती पर गिरता है, गटर में गिरता है, ऊपर नहीं चढ़ता है। पानी का स्वभाव नीचे गिरना है। मन पानी जैसा है। मन ऊपर चढ़ना नहीं चाहता है। संसार वृक्ष का मूल परमात्मा ऊपर हैं, पर मन की गति नीचे है। मन ऊपर नहीं जाता है। मन नीचे जाता है। मन गर्त में ही गिरता है।

मन पाप करता है, किसी का सुन्दर बंगला देखकर मन उस बंगले का चिन्तन करता है कि बँगला बहुत सुन्दर है। अरे! बँगला सुन्दर है पर तुम्हें उसमें कौन रखने वाला है? दूसरे की सम्पत्ति का चिन्तन तुम क्यों करते हो? मेरे प्रभु ने मुझे जो घर दिया है, वह तो इन्द्र के राजमहल से भी अच्छा है। मेरे प्रभु ने मुझे सब कुछ बहुत अच्छा दिया है–ऐसा सन्तोष मन में रखिये। पर सम्पत्ति का चिन्तन मन करता है। मन समझ रहा है कि यह मेरा नहीं है। यह कभी मुझे मिलने वाला नहीं है। मन यह सब जान रहा है। फिर भी उसका चिन्तन कर रहा है, यही पाप है।

मन परमात्मा के चरणों में नहीं जाता है, मन संसार के विषयों की ओर जाता है। मन की ऐसी आदता हो गई है। मन ऊपर नहीं जाता है, वह नीचे ही गिरता है। परन्तु माता! यन्त्र का संग होने पर पानी चढ़ता है। पानी पाँचवी मंजिल तक भी चढ़ जाता है। यन्त्र के संग से जिस तरह पानी ऊपर चढ़ जाता है, उसी तरह मन मन्त्र के साथ मैत्री कर ले तो मन भी ऊर्ध्व गति पाता है। परमात्मा के चरणों तक पहुँच जाता है। परमात्मा दिखाई नहीं देते। प्रश्न आ सकता है कि जो परमात्मा नहीं दिखाई देते, उनसे प्रेम कैसे करें? ठीक है, जो प्रभु दिखाई नहीं देते उन प्रभु की भक्ति करना कठिन है। प्रभु नहीं दीख पड़ते पर प्रभु का नाम दिखाई देता है। परमात्मा ने जगत् में अपना स्वरूप छिपाया है, पर नाम प्रकट रखा है। कदाचित किसी को परमात्मा दीख पड़ें तो वह परमात्मा को पकड़ नहीं सकता। भगवान् के स्वरूप को कोई नहीं पकड़ सकता है। भगवान् के नाम को सब पकड़ पाते हैं। परमात्मा के किसी भी नाम के साथ प्रीति करिये। मन को भगवान् के नाम में रखिये तब ही मन सुधरेगा। अन्य कोई उपाय नहीं है। जगत् बिगड़ा नहीं है, मन बिगड़ा है। मन शब्द को पलटकर रखिये तो मन सुधरेगा 'मन' का उल्टा 'नम' होता है। ये सभी नारायण के स्वरूप हैं। सभी के देह भिन्न-भिन्न हैं, पर सभी में मेरे प्रभु विराजमान हैं–ऐसी भावना से सभी

को नमस्कार करिये। जो सर्वत्र नारायण का दर्शन करता है, जो हृदय से नमता है, उसका मन शुद्ध होता है। नम और नाम– दोनों साधन हैं, जिनसे मन शुद्ध होता है अर्थात् बिगड़ा हुआ मन सुधरता है।

भक्ति–मार्ग में सभी के साथ प्रेम करना, ज्ञान मार्ग में सभी का त्याग करना है। प्रेम करना है तो सभी से प्रेम करिये, अन्यथा सभी का मोह छोड़ दीजिये। सभी को परमात्मा का स्वरूप मानकर प्रेम करिये। ज्ञानी सोचता है कि लकड़ी में अग्नि छिपी है–लकड़ी के काटने से अग्नि नहीं कटती है, उसी तरह मैं शरीर नहीं हूँ, आत्मा हूँ। इस प्रकार वह ज्ञानी शरीर से आत्मा को अलग करके रहता है। भक्ति मार्ग में सभी के साथ निरपेक्ष भाव से प्रेम करने से सिद्धि मिलती है। ज्ञान मार्ग में सर्व–त्याग से सिद्धि मिलती है। तीसरा कोई मार्ग नहीं है।

मन अनके जन्मों से बिगड़ा हुआ है। वह तुरन्त नहीं सुधर सकता। कपिल भगवान माता देवहूति को सावधान करते हैं–

त एते साधवः साध्वि सर्वसंगविवर्जिताः।
संगस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः संगदोषहरा हि ते॥ (३-२५-२४)

माता! सत्संग करने से बिगड़ा हुआ मन शुद्ध होता है। हर रोज नियम से सत्संग करिये। संग का रंग मन को लगता है। ज्ञान–वैराग्य मे जो आगे बढ़े हैं, ऐसे सन्तों का मन से सत्संग करिये।

देवहूति माता ने कहा कि सत्संग करने की मेरी बहुत इच्छा हो रही है पर सच्चे सन्त नहीं मिलते हैं। नकली माल बहुत बढ़ गया है। कपिल नारायण समझा रहे हैं– माँ! सच्चे सन्त दुर्लभ हैं, यह सच है परन्तु सच्चे सन्त नहीं हैं, ऐसा कहना गलत है। सच्चे सन्त हैं। प्रत्येक गाँव में एक सच्चा सन्त होता ही है। अगर आपके गाँव में कोई संत न होता तो आपका गाँव डूब जाता। बरसात न आती! प्रत्येक गाँव में एक पतिव्रता स्त्री भी होती है। सती और सन्त के आधार पर ही धरती टिक रही है। पाप बहुत बढ़ गया है। सती और सन्त धरती की आराधना करते हैं। धरती की साधना करते हैं। उनके प्रभाव से ही अनाज उत्पन्न होता है। माता! संत हैं। संत पृथ्वी को स्थिर रख रहे हैं। माँ! तुम सत्संग करो। संत को पहिचानना बहुत कठिन है। संत की परीक्षा कैसे करेंगे? संत को खोजने के बदले स्वयं संत बनने का यत्न करो। आप सन्त होंगे तो प्रभु स्वयं आपको किसी संत के दर्शन करवायेंगे। संत की परीक्षा कपड़े से नहीं होती। साधु–संत की परीक्षा जाति से नहीं होती। बहुत सुन्दर व्याख्यान करता है उसे संत नहीं कहा जाता। उसे विद्वान् कह सकते हैं। बहुत ग्रन्थ पढ़ने वाला सुन्दर व्याख्यान दे सकता है। वह विद्वान है। संत नहीं है।

संत की परीक्षा मनोवृत्ति से होती है। जिसका मन परमात्मा के चरणों में ही रहता है। मन जब श्रीकृष्ण के नाम को भूलता है, तब अशांत होता है। संतों का तन कहीं भी हो, उनका मन भगवान् के चरणों में ही रहता है, प्रभु के नाम में ही रहता है। संत सुख दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान को महत्ता नहीं देते हैं। सुख पाने पर वे खुश नहीं होते, दुःख के आने पर 'हाय-हाय' नहीं करते। अति प्रतिकूल परिस्थिति में जिनका मन शांत रहता है, उन्हें ही सच्ची शाँति मिलती है। मन के अनुसार सब कुछ होता रहे और फिर मन शांत रहे तो इसमें क्या आश्चर्य है? संत अति प्रतिकूल परिस्थिति में भी किसी की गालियों से, किसी के तिरस्कार से बहुत हानि होने पर भी मन को शांत रखते हैं। जिसके मन पर संसार के सुख-दुःख, मान-अपमान का असर होता है, उसको अभी परमात्मा की अनुभूति नहीं हुई है, ऐसा समझना चाहिये।

तुकाराम महाराज का चरित्र बहुत दिव्य है। तुकाराम महाराज सदेह प्रभु के धाम में गए हैं–शरीर उन्होंने छोड़ा नहीं है। तुकाराम महाराज को जीवन में कभी क्रोध नहीं आया था। घर में सभी स्थितियाँ प्रतिकूल थीं। पत्नी बहुत त्रस्त करती थी। तुकाराम महाराज वैश्य थे। व्यापार करते थे। सभी कुछ अच्छा था। फिर क्या हुआ? भक्ति का ऐसा रंग चढ़ा, भक्ति में ऐसा आनन्द आया कि व्यापार छूट गया। थोड़ा नुकसान भी हुआ। पत्नी समझ नहीं रही थी। वह सोचती थी कि मेरे पति पागल हो गए हैं। उन्होंने सब कुछ छोड़ दिया है और 'विट्ठल-विट्ठल' कहते रहते हैं सारा दिन वे भक्ति करते हैं। वह अपने पति को नहीं पहचान सकी। तुकाराम महाराज को पत्नी बहुत त्रस्त करती थी। घर में क्लेश होता था। परन्तु महाराज को कभी क्रोध नहीं आया। महाराज का मन अतिशय शाँत रहता था। एक बार महाराज बाहर कथा करने के लिए गये थे और उसी समय बाहर से कई वैष्णव तुकाराम महाराज के दर्शन करने के लिए आये। पत्नी ने उनसे कहा–महाराज को और क्या काम-धंधा है? सारा दिन 'विट्ठल-विट्ठल' कहते रहते हैं। मेरा पति तो पागल हो गया है। आपको बैठना हो तो बैठिये और चले जाना है तो चले जाइए। वैष्णव जानते थे कि इस स्त्री का स्वभाव बहुत तेज है। वे सभी महाराज के दर्शन करने के लिए बैठे रहे।

महाराज एक किसान के घर कथा करने गए थे। महाराष्ट्र में जो कीर्तन-भक्ति है, वह नारद परम्परा की है। गुजरात में जो भक्ति है वह और उत्तर प्रदेश में जो भक्ति है, वह व्यास परम्परा की है। व्यास महाराज गद्दी पर बैठकर शाँति से कथा करते थे। नारदजी ठाकुरजी के समक्ष खड़े रहते। वे मानते हैं कि मैं अपने प्रभु का एक साधारण नौकर हूँ। मैं भगवद् गुणगान करता हूँ। भगवान के सम्मुख खड़े होकर खड़े-खड़े वे कथा कहते हैं। तुकाराम महाराज खड़े होकर कथा करते हैं। ज्ञान, वैराग्य भक्ति का ऐसा सुन्दर वर्णन करते, प्रेम से कीर्तन करते हुए नाचते। सबको

आनन्द होता। वह किसान पांवों में पड़कर कहने लगा–महाराज आपने बहुत कृपा की। वह मिठाई, फल और ईख लाया था। कहने लगा कि महाराज, यह विट्ठलनाथजी का प्रसाद है, आप इसे घर ले जाइए। प्रभु के प्रसाद के रूप में ले जाने की बात सुनकर महाराज 'ना' न कह सके।

कथा में एक व्यक्ति बैठा था वह दौड़कर गया और महाराज की पत्नी से उसने कहा–आज तुम्हारे पति को बहुत कुछ मिला है। वे बहुत लेकर आ रहे हैं। महाराज की पत्नी खुश हुई–आज कुछ लायेंगे, आज बच्चों को कुछ खाने को मिलेगा। वह दरवाजे पर बैठकर महाराज की राह देखने लगी।

महाराज सब कुछ लेकर आ रहे थे। रास्ते में बहुत से लोग मिले। महाराज किसी को ईख देते हैं, किसी को मिठाई देते हैं। सभी 'जय श्रीकृष्ण' कहते हैं और चले जाते हैं। महाराज जान गये हैं कि ये मुझे 'जय श्री कृष्ण' नहीं कहते पर इस मिठाई को जय श्रीकृष्ण कहते हैं परन्तु फिर भी जो व्यक्ति भगवद् स्मरण करते हैं, उन सबको महाराज मिठाई देते हैं, फल देते हैं। महाराज जब घर पहुँचते हैं तब उनके हाथ में एक ही ईख रह जाती है। और तो सब कुछ दे दिया गया है। इससे पत्नी का क्रोध बहुत बढ़ गया। मेरे बच्चे भूखे हैं और इन्होंने सब कुछ बेच दिया–ऐसा वह सोचने लगी। वह अपने पति का तिरस्कार करने लगी, कटु वचन कहने लगी। अनेक वैष्णव वहाँ बैठे थे। महाराज मन्द-मन्द मुस्कराते रहते हैं। उनके मन पर जरा भी कलुष नहीं है! महाराज की शान्ति अटूट है। वे मन से प्रभु के चरणों में थे। यह तो ठाकुरजी की लीला है। मेरे प्रभु कदाचित मेरी कसौटी कर रहे होंगे। देख रहे होंगे कि तुकाराम की भक्ति सच्ची है या झूठी है। मैंने जो प्रभु के चरण पकड़े हैं उन्हें मैं छोड़ने वाला नहीं हूँ–चाहे कुछ भी हो जाय।

पत्नी का क्रोध बढ़ गया। मैं ऐसे-ऐसे वचन सुना रही हूँ और इस पर जरा भी असर नहीं होता है। ये पागल हो गये हैं! पत्नी का विवेक जाता रहा। महाराज के हाथ से उसने ईख छीन ली और उसी से महाराज को पीटने लगी। ईख के दो टुकड़े हो गये। महाराज ने स्मित किया और कहा–मेरे मन की बात एक तुम ही जान सकी हो। मैं इस ईख के दो टुकड़े करना चाहता था। इस एक को तुम लो और दूसरा मुझे दो।

चरित्र में ऐसा लिखा है कि उस दिन से पत्नी को ऐसा विश्वास हो गया कि मेरे पति पागल नहीं है, पर महान सन्त हैं। मैंने अनेक बार इनका तिरस्कार किया पर इन्हें क्रोध नहीं आया है। ये प्रेम कर रहे हैं। मेरे लिए अच्छा ही कहते हैं। कभी बुराई नहीं करते हैं। पत्नी ने पति के चरणों में मस्तक झुकाया बोली कि मेरी भूल हो गई है। मैं आपको पहिचान न सकी। आप महान् हैं। महाराज ने कहा–नहीं ऐसा कुछ नहीं है। यह तो प्रभु की लीला है।

संसार के सुख-दुःख, मान-अपमान कभी स्थिर नहीं रहते हैं, प्रभु ही स्थिर रहते हैं। सन्त नित्य आनन्दमय परमात्मा के साथ प्रेम करते हैं। सन्तों की तितिक्षा–सहन–शक्ति अलौकिक होती है। आपके जीवन में मान-अपमान का, सुख-दुःख का जब प्रसंग आ जाय तब दिल को न दुखाइयेगा। मन को शान्त रखिये संसार में जीव दुःख भोगने के लिये ही आता है। अरे सन्तों के जीवन में भी दुःख आते हैं। यह जीव अनेक प्रकार से पाप करता है। जीवन में थोड़ा सा दुःख आता है तो क्या गलत है? सन्त अजातशत्रु होते हैं। वे ऐसा मानते हैं कि जगत् में मेरा कोई शत्रु नहीं है। किसी ने मेरा कुछ बिगाड़ा नहीं है। सन्तों में बहुत दया होती है।

सन्त संसार सुख को समझकर मन से त्याग करते हैं। वे जानते हैं कि एक दिन सभी कुछ छोड़ना पड़ेगा। अनिवार्य रूप से छोड़ना पड़ेगा और तब बहुत त्रस्त भी होना पड़ेगा। समझकर छोड़ने पर बहुत सुख मिलता है। अपने मन को बार-बार समझाइए। संसार के सभी सुख क्षणिक है। संसार के सभी सुखों के अन्त में दुःख ही है। संसार के विषय वैभव आपको त्याग दें, इससे पहिले आप स्वयं ही त्याग करिये।

आपके पास पाँच रुपये हैं। एक दरिद्र नारायण के दर्शन आपको होते हैं। दरिद्र नारायण का ही स्वरूप है। किसी भिखारी को, किसी गरीब को देखने पर उसमें नारायण के दर्शन करके उसे दीजिए। मानिये कि प्रभु इसी स्वरूप में मुझ से मिलने आये हैं। भीतर से ऐसी प्रेरणा लेकर पाँच रुपये दरिद्र नारायण को हाथ जोड़ कर दीजिये।

सन्त मन को समझाते हैं। वे मानते हैं कि परमात्मा आनन्दमय हैं तथा संसार का सुख कच्चा है। इन्द्रिय और विषय के सम्बन्ध से दो-तीन मिनट तक सुख का भास होता है। परिणाम तो दुःख में ही है। सन्त संसार के विषयों से मन को हटा लेते हैं। लौकिक सुख का त्याग वे समझ कर ही करते हैं।

माता! संतों को मौन पसन्द है। अधिक बोलना उन्हें अच्छा नहीं लगता। अधिक बोलने से शक्ति का विनाश होता है तथा मन चंचल रहता है। मौन से मन को शांति मिलती है। संत अधिक नहीं बोलते हैं और जब बोलते हैं तब लौकिक बातें नहीं करते है। वे भगवद् संबंधी बातें ही करते हैं। संतों के संग में श्रीकृष्ण-कथा श्रवण करने का संयोग मिलता है। भगवान् श्रीकृष्ण की मंगलमयी कथा सुनने पर प्रभु में श्रद्धा उत्पन्न होती है और श्रद्धा से सेवा-स्मरण करने पर धीरे-धीरे मन भगवान् में आसक्त होता है। ठाकुरजी के स्वरूप में जब मन आसक्त होता है और वह जब आसक्तिपूर्ण सेवा करता है, तब वही आसक्ति प्रेमलक्षणा-भक्ति बनती है। धीरे-धीरे प्रभु में प्रेम जागता है। प्रेमलक्षणा भक्ति वासना का विनाश करती है। माँ! वासना का बीज जब

तक भीतर है, तब तक दुःख का अंत नहीं है। वासना ही दुःख है। जिसकी वासना का विनाश होता है, उसे ही आनन्द मिलता है। माँ! साधारण ज्ञान से साधारण भक्ति से वासना का विनाश नहीं होता है। तीव्र भक्ति से धीरे-धीरे वासना का विनाश होता है। तीव्र भक्ति अर्थात् निरंतर भक्ति करनी है। ईश्वर से विभक्त न होना ही भक्ति है। व्यवहार के किसी भी कार्य में प्रभु को साथ ही रखिये। व्यवहार में भगवान् को नहीं भूलेंगे तो भगवान् आपको शक्ति-बुद्धि देंगे। आपका व्यवहार तब सुखमय होगा–

मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम्।
मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबान्धवाः॥ (३-२५-२२)

माता! भक्ति करने की निरंतर आदत डालिये। संत परमात्मा के साथ विवाह करते हैं। संत एक क्षण भी परमात्मा को नहीं छोड़ते हैं। थोड़े समय के लिये परिणय नहीं होता। यह विवाह तो सदैव के लिये होता है। संत सावधान रहते हैं। वे प्रभु से कभी भी अलग, नहीं होते। प्रभु से विभक्त व्यवहार दुःख देता है। हृदय-कमल में परमात्मा का स्वरूप स्थिर रखिये। मन से परमात्मा से दूर न जाइए। यही भक्ति है। इसे ही भक्ति कहते हैं। तीव्र भक्ति अर्थात् भक्ति का व्यसन। भगवान् ने माता देवहूति को समझाया कि जगत् की उत्पत्ति कैसे होती है। प्रलय कैसे होता है। वे समझाते हैं कि प्रत्येक इन्द्रिय के तीन-तीन स्वरूप हैं–आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। बाहर से जो आँखें दीख पड़ती हैं वे भौतिक नेत्र हैं पर आँखों की शक्ति है, देखने की वह शक्ति आध्यात्मिक है। आँख के मालिक देव; अधिदेव कहलाते हैं। आध्यात्मिक और अधिभूत का संबंध जो जोड़ देता है, उसे अधिदेव कहते हैं। कपिल भगवान् ने माता देवहूति से कहा कि माता! यह जो बाहर दीख पड़ता है, वह सच्चा नहीं है। जो दिखाई पड़ता है, वह सच्चा नहीं है पर जो अमर है, वह सच्चा है।

माता! जो स्नेह करता है, वही सुखी होता है। स्वप्न का संसार जिस तरह सत्य नहीं है, उसी तरह तत्वदृष्टि से सोचने पर जगत् सत्य नहीं है। जगत् के विषयों से जो स्नेह करता है, वह भक्ति नहीं कर सकता। उसे शान्ति नहीं मिल सकती।

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा॥ (३-२७-४)

जगत् में जो दिखाई देता है, वह सच्चा नहीं है। जगत् जिनके आधार पर है, वे परमात्मा सत्य हैं–

स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निर्वतनम्।
दैवाल्लब्धेन सन्तोष आत्मविच्चरणार्चनम्॥ (३-२८-२)

माता! स्वधर्म का पालन करिये। धर्म छोड़िये नहीं। जो धर्म छोड़ता है, उसकी भक्ति में बिघ्न आता है। उसका ज्ञान टिकता नहीं है, वह जाता है। ज्ञान और भक्ति का धर्म के साथ विरोध नहीं है। अपना कर्त्तव्य पूर्ण कीजिए। परधर्म का अनुकरण न करिये। हमारा धर्म हमारे लिये श्रेष्ठ है। जिसके लिये जो धर्म प्रभु ने निश्यत किया है, उसे वही धर्म पालना चाहिये। ज्ञान और भक्ति का बहाना करके जो स्वधर्म को छोड़ता है, उसका पतन होता है। माता! तुम अपना धर्म न छोड़ना। इस तरह कपिलदेव माता देवहूति को सावधान करते हैं। जिसे भक्ति में आगे बढ़ना है, जिसे परमात्मा के चरणों तक पहुँचना है, उसे 'अति' नहीं करनी चाहिये। उसे अति उपवास नहीं करने चाहिये। उसे अति भोजन भी नहीं करना चाहिये। अति भोजन से जिस तरह तन और मन खराब होता है, उसी तरह अति उपवास से भी मन अशांत हो जाता है।

कई लोग अति उपवास करते हैं। अति उपवास से भीतर विराजमान प्रभु त्रस्त होते हैं। अति उपवास करने वाले प्रभु को भूलते हैं। ऐसे व्यक्ति सारा दिन दाल-चावल आदि याद करते रहते हैं। सोचते रहते हैं कि मैंने कुछ भी नहीं खाया है, मैंने कुछ भी नहीं खाया है। अरे! प्रभु भुलाये जायँ और अन्न का स्मरण हो तो क्या सार्थकता है? साधक के लिये चार उपवास अति आवश्यक माने गये हैं। दो एकादशी, पूर्णिमा और अमावस्या। अमावस्या का दिन बहुत ही पवित्र माना गया है। चन्द्र और सूर्य उस दिन एक हो जाते हैं। मन का स्वामी चंद्र है और बुद्धि का स्वामी सूर्य है। पूर्णिमा और अमावस्या पवित्र दिन है। एकादशी का दिन भी बहुत पवित्र है। ये चार उपवास अवश्य कीजिए। उपवास से तन और मन की शुद्धि होती है। आरोग्य प्राप्त होता है। पाप भस्म हो जाते हैं। मास में चार उपवास करिये। पवित्र अन्न का सेवन करिये। प्रत्येक इन्द्रिय से बह्मचर्य का पालन करिये–

सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं वज्रांकुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम् ।
उत्तुंरक्तविलसन्नखचक्रवाल ज्योत्सनाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम् ।। (३-२८-२१)

माता देवहूति को भगवान् ने आज्ञा की है–माँ! एक आसन पर बैठने की आदत डालिये। परमात्मा के मंगलमय स्वरूप का ध्यान करिये। माता! संसार का ध्यान करने से मन बिगड़ता है, परमात्मा का ध्यान करने से मन सुधरता है। बहुत दान देने से पुण्य बढ़ता है, यज्ञ करने से भी पुण्य बढ़ता है। पुण्य बढ़ने से ऐसा अभिमान उत्पन्न हो सकता है कि मैंने यज्ञ किया है, मैंने दान दिया है। इस अभिमान के कारण जीव पाप करता है। मता! दान से पुण्य बढ़ता है पर मन शुद्ध नहीं होता है। मन तो संसार का ध्यान करने से बिगड़ता है। संसार का ध्यान छोड़िये, परमात्मा का ध्यान करिये। शंङ्ख, चक्र, गदा, पद्म जिनके हाथ में हैं, ऐसे नारायण का ध्यान करने की आज्ञा प्रभु ने दी है।

घर में भगवान् का स्वरूप रखिये। लाला का सुन्दर शृंगार करिये। भगवान् के दर्शन से तृप्त न होइये। आँखें प्रभु में स्थिर करके प्रभु के नाम का जप करिये। आँखों से उन्हें भीतर प्रविष्ट करवाइए। फिर आँखें बंद करके उनके स्वरूप के दर्शन भीतर हृदय में करिये। प्रभु के एक-एक अंग में आँखें रखिये। प्रभु के चरण कैसे हैं। चरण लाल हैं। चरण में कमल का चिह्न है। प्रभु के नख तो रत्न जैसे हैं। उनके अँगूठे से धीरे-धीरे गंगाजी प्रस्फुटित होती हैं। ठाकुरजी का श्रीअंग श्याम है। सुन्दर पीताम्बर उन्होंने पहिना है। हाथों में शंख,चक्र, गदा और पद्म हैं भगवान् के मस्तक पर सुन्दर मुकुट है। मुकुट में रत्न जड़ित हैं। मुकुट के चारों ओर सुन्दर प्रकाश प्रकट हो रहा है। प्रभु का श्रीअंग आनन्दमय है। ठाकुरजी के रोम-रोम में आनन्द भरा है। प्रभु के अंग में रुधिर नहीं है, माँस नहीं है, मल-मूत्र नहीं है, हड्डियाँ नहीं हैं, सिर्फ आनन्द ही भरा है। प्रभु का मुखारविंद अति सुन्दर है—

हासं हरेरवनताखिललोकतीव्र शोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम्।
सम्मोहनाय रचितं निजमाययास्य भ्रूमण्डलं मुनिकृते मकरध्वजस्य॥

(३-२८-३२)

कोई भी व्यक्ति शांति से परमात्मा का ध्यान करने बैठता है, तब भगवान् मंद-मंद मुस्कुराते हैं सोचते हैं कि अब बच्चा समझदार हो रहा है अब बच्चे को विश्वास हो रहा है कि संसार में कुछ भी सार नहीं है। सब कुछ छोड़कर यह मेरे लिये बैठा है। प्रभु की आँखों में प्रेम भरा है। जो उनका ध्यान करता है उसे वे प्रेम से देखते हैं। प्रभु के मुखारविंद का ध्यान करिये।

माता! प्रभु के एक-एक अंग का ध्यान करिये। एक-एक अंग का ध्यान, ध्यान है और सर्वांग का ध्यान, धारणा है। इस तरह सर्वांग के ध्यान में जीव जब जगत् को भूलता है, तब उसे आनंद मिलता है। माता! सच्चा आनंद इस सृष्टि में नहीं है। जगत् तो सुख और दुःख से भरा है, पर जहाँ सुख नहीं है, दुःख भी नहीं है, वहाँ आनंद है। माता! उस आनंद का वर्णन असंभव है। वह अवर्णनीय है। परमात्मा के ध्यान में जगत् भुलाया जाता है। तब जगत् की विस्मृति हो जाती है। देह-भान भी नहीं रहता। तब जीव को अति आनंद होता है। देह-भान भूलने पर आत्मा शरीर से विभक्त हो जाता है, तब वह परमात्मा से बँध जाता है। परमात्मा से उसका संबंध दृढ़ हो जाता है। वह जब परमात्मा से मिलता है, तब कृतार्थ होता है। ज्ञानी भक्त सर्व से श्रेष्ठ हैं। जड़ और चेतन में चेतन श्रेष्ठ है। चेतन में पक्षी से पशु श्रेष्ठ है। पशु से मानव श्रेष्ठ है। मानव में भी ब्राह्मण श्रेष्ठ है। ब्राह्मण में भी वेद-ज्ञानी ब्राह्मण श्रेष्ठ है। जिसके मुख में वेद है, वेदाध्ययन जिसने परिपूर्ण किया है, वह ब्राह्मण श्रेष्ठ है। माता! वेद-पढ़ा ब्राह्मण भी वेद का अर्थ समझकर, वेदाध्ययन करता

है तो वह श्रेष्ठ है। वेदार्थ जानने वाला ब्राह्मण, जो तीन बार संध्या करता है, जो गायात्री की उपासना करता है, वह ब्रह्म, तेजस्वी, तपस्वी ब्राह्मण श्रेष्ठ है। माता! परमात्मा के ध्यान में जो देह-भान भूलता है, वह सर्व श्रेष्ठ है। उसके जैसा जगत् में कोई नहीं है। इस तरह ज्ञानी भक्त की महत्ता समझाई गई है।

फिर दो अध्यायों में संसार-यात्रा का वर्णन किया गया है। भगवान् कपिदेव कहते हैं—माता! जो भगवान् को भूला है, वह चाहे सुख भोगता हो पर अन्त में उसे दुःख भोगना ही पड़ेगा। संपत्ति से सुख मिलता है किन्तु संपत्ति से दुःख का अन्त नहीं आता है। माता! जो परमात्मा से प्रेम करता है, उसके दुःखों का ही अंत आता है। माता! जीव जब तक परमात्मा से अतिशय प्रेम नहीं करता, तब तक जन्म-मरण के संताप से मुक्त नहीं होता है।

वृन्दावन में एक सन्त रहते थे। वे सारा दिन भक्ति करते, ध्यान करते, जप और सेवा करते, पाठ करते थे। सन्त ने निश्चय किया कि मन एक ही है। मन अगर भक्ति नहीं करता है तो पाप करेगा। सन्त सारा दिन भक्ति करते। एक बार ऐसा हुआ कि महाराज जब शान्ति से राधा-कृष्ण का ध्यान कर रहे थे, तब एक बिल्ली चूहे को मारने के लिए दौड़ कर आयी और घबराया हुआ चूहा महाराज की गोद में आकर बैठ गया। सन्त एकदम ध्यान से जाग गये और चूहे को आश्वासन देने लगे कि तुम मेरी गोद में बैठ गये। अब तुम्हें कोई नहीं मारेगा। तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम्हें क्या पसन्द है? तुम जो माँगना चाहते हो माँग लो, तुम्हें वह मिलेगा। चूहा सोचने लगा कि मैं चूहा हूँ, इसलिए दुःखी हूँ। मैं बिल्ली हो जाऊँ तो आनन्द आ जाय। चूहा सोचता है कि बिल्ली बहुत सुखी है। चूहे में ऐसा अज्ञान है। उसने कहा—महाराज एक बार बिल्ली बना दें तो बहुत अच्छा। बहुत आनन्द आयेगा। मुझे बिल्ली होना पसन्द है। सन्त ने आशीर्वाद दिया। वह चूहा बिल्ली बन गया। थोड़े दिन उसे सुख जैसा लगा फिर उसे लगा कि बिल्ली बनकर तो बहुत संताप है। एक बार एक कुत्ता उसे मारने दौड़ा। वह बिल्ली रोते-रोते साधु के पास पहुँची और कहने लगी कि बहुत दुःखी हूँ। महाराज कहने लगे कि अब तुम्हारी क्या इच्छा है? उसने कहा कि मैं बिल्ली के स्थान पर कुत्ता हो जाऊँ। तब बहुत मजा आ जाय। कुत्ता बहुत सुखी होता है। आप मुझे कुत्ता बना दीजिए। बिल्ली को ऐसा लगता है कि कुत्ता बहुत सुखी है। सन्त ने आशीर्वाद दिया। वह बिल्ली से कुत्ता हो गया। थोड़े दिन उसे सुख लगा। फिर उसे लगा कि कुत्ते को बहुत सन्ताप है। एक बाघ उसे मारने आता है। अतः वह कुत्ता रोते-रोते महाराज के पास आ पहुँचा। कहने लगा कि महाराज! मुझे बहुत दुःख है। सन्त ने पूछा—अब तुम्हारी क्या इच्छा है? कुत्ते ने कहा कि महाराज! मेरी ऐसी इच्छा है कि एक बार बाघ बन जाऊँ तो बहुत आनन्द आ जाय। मुझे बाघ बना दीजिये। मैं सभी

को मार सकूँगा। मुझे कोई नहीं मार सकेगा। सन्त ने आशीर्वाद दिया। वह कुत्ता बाघ बन गया पर बाघ बनने के बाद उसके मन में हिंसा के भाव जागृत हुए। उसने सोचा कि चूहा था, कुत्ता था। इन साधु ने मुझे बाघ बनाया पर वे कभी नाराज होकर मुझे पुनः कुत्ता या चूहा बना दें तो? इससे तो मैं सन्त को मार कर खा जाऊँ तो सदैव बाघ बनकर रह सकूँगा। तब मुझे कोई नहीं मार सकेगा। जिस सन्त उसे बाघ बनाया, उसे ही वह मारने दौड़ा।

सन्त परमात्मा की सृष्टि में परिवर्तन नहीं करते हैं। कोई परिवर्तन करना चाहता है तो उसके पुण्य का नाश होता है। बाद में उसे पछताना पड़ता है। सन्त ने कहा–प्रभु ने तुझे चूहा बनाया था। मुझे दया आ गयी और मैं बुद्धिमानी करने गया। अब तुम ही मुझे मारने दौड़े हो! तुम चूहे थे, वही अच्छा था। अब तुम पुनः चूहा हो जाओ। वह बाघ से चूहा हो गया।

थोड़े शान्त भाव से सोचने पर मालूम पड़ेगा कि यह चूहे-बिल्ली की कथा नहीं है। यह हमारी कथा है। यह जीव एक बार चूहा था, बिल्ली था। एक दिन कुत्ता भी था। मानव कभी-कभी पशु-सदृश भी बोलता है। पशु-सदृश क्रिया करता है। पशु-संस्कार जागने पर वह पशु जैसा हो जाता है। यह जीव पहिले पशु ही था। जीव के पीछे काल पड़ा है। इससे वह घबराया हुआ है। जिसे काल की भीति है, उसे शान्ति कहाँ? एक बार जीव प्रभु की गोद में गया था। प्रभु को दया आ गयी, प्रभु ने दया करके उसे मानव बनाया। उसे ऐसी शान्ति दी, ऐसी बुद्धि दी कि मानव बनकर वह शक्ति का, बुद्धि का सदुपयोग कर सके। मानव निरन्तर भक्ति करने की आदत डाले और काम पर विजय प्राप्त करके काल पर भी विजय प्राप्त कर ले। काम और काल सभी को मारते हैं।

जीव को शान्ति नहीं है। परमात्मा ने विजय पाने के लिये–काल पर और काम पर विजय प्राप्त करने के लिए तथा मरण सुधारने के लिए जीव को मानव बनाया है। पूर्व जन्म में मरण बिगड़ा, उसको सुधारने के लिए मानव-जन्म मिला है। मानव को ऐसी बुद्धि दी है, ऐसी शक्ति दी है कि शान्ति से सोचने पर वह पाप छोड़ सकता है तथा पुण्य कर सकता है। निरन्तर भक्ति भी वह कर सकता है। प्रभु ने कृपा करके इस जीव को काल के संत्रास से बचाने के लिए ही तथा मुक्त कराने के लिए ही मानव बनाया है पर मानव बनने के बाद कुसंग से, अशिक्षा से वह बिगड़ता है। वह ऐसा हो जाता है कि प्रभु को नहीं मानता है। कई लोग ऐसा कहते हैं कि ईश्वर कहाँ है? मैं ईश्वर को नहीं मानता हूँ। कई व्यक्ति ईश्वर को मानते हैं पर भक्ति करने की फुरसत इनके पास नहीं है, ऐसे व्यक्ति ईश्वर को मानें या न मानें, समान ही हैं। प्रभु कहते हैं कि बेटा, तुम मुझे नहीं मानते हो तो याद रखना तुम्हें फिर से चूहे से कुत्ता बनाऊँगा। तुम कहाँ भागकर

जाओगे? परमात्मा को जो नहीं मानता है, वह जन्म-मरण के संत्रास से मुक्त नहीं होता है। वह बार-बार जन्म लेता है। उसे संसार में भटकना ही पड़ता है। यह आवागमन सदैव बना रहता है। उसका अन्त ही नहीं आता।

जिसे भक्ति का रंग नहीं लगा, भक्ति का आनंद नहीं मिला, उसे अच्छा-अच्छा खाने की इच्छा जागती है। शरीर वृद्ध होता है पर मन वृद्ध नहीं होता है। जीभ बहुत संताप देती है। वृद्धावस्था में खाया हुआ पचता नहीं है, जठराग्नि मंद हो जाती है पर खाने की बहुत इच्छा होती है। कई बार माँ की खाने की बहुत इच्छा हो तो बेटे का नाम लेकर कहती है, बेटा कह रहा था कि कई दिनों से पकोड़े नहीं खाये हैं। बेटा तो कुछ नहीं कहता पर वृद्धा की नीयत खराब हो रही है! उसकी खाने की इच्छा हो रही है। तेल-मिर्च की बनी गर्म चीजें खाती है और ठंडा पानी पीती है तो फिर वृद्धा रात में क्या करेगी?

वायुनोत्क्रमतोत्तारः कफसंरुद्धनाडिकः।
कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरघुरायते॥ (३-३०-१६)

भागवत में सब लिखा है। कफ बढ़ जाता है, खाँसी आती है, तब घर के सभी लोगों को त्रस्त होना पड़ता है। वे कहते हैं कि आपको खाया हुआ नहीं पचता, तो आप खाते क्यों हैं? मन ऐसा जड़ और लापरवाह-सा हो जाता है कि घर का काई कहता है तो भी उसका असर नहीं होता। वैराग्य फिर भी नहीं जागता। वृद्धावस्था में अति दुःख है। पैसा नहीं होता तो पैसे के लिये पाप करते हैं। पैसे के लिये क्रोध करते हैं, पैसे के लिये हिंसा भी करते हैं, वैर भी करते हैं। वृद्धावस्था में जिसे भीतर से भक्ति का रोग नहीं लगा उसे दुर्दशा भोगनी पड़ती है। घर के लोग पैसे को ही मान देते हैं। पत्नी की मृत्यु हो जाय तो पत्नी का वृद्ध लोग बहुत चिंतन करते हैं। अति पापी को यमदूत दीख पड़ते हैं। तब वह बहुत घबराता है। अति पापी को नरक का दुःख शय्या में ही भोगना पड़ता है। अति पुण्यशाली को मुक्ति का आनंद मृत्यु से पहिले मिलता है-

अत्रैव नरकः स्वर्ग इति मातः प्रचक्षते।
या यातना वै नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः॥ (३-३०-२९)

अति पापी व्यक्ति प्रेत-योनि में जाता है। पुण्यशाली देवलोक में जाते हैं। जिसने निरंतर भक्ति की है, वह प्रभु के धाम में जाता है। जिसके पाप पुण्य साधारण प्रमाण में हैं वे घर में रहते हैं। जीवात्मा घर में रहते हैं। श्राद्धादिक विधि को देखते हैं। कभी श्मशान में जीव जाता है। जीव स्थूल शरीर में प्रविष्ट नहीं हो पाता। वह बहुत तड़पता है। पंद्रह- दिन के बाद सभी क्रिया-विधि पूर्ण हो जाने पर उसे यमपुरी का मार्ग दिखाई देता है। जीव अकेला जाता है-रोते-रोते जाता है।

उसे किसी का साथ नहीं मिलता है। अकेला धर्म उसके पीछे-पीछे चलता है। धर्म उसे धैर्य दिलाता हुआ कहता है—मैं तुम्हारे साथ हूँ। मैं तुम्हारे लिये प्रभु को मनाऊँगा। तुम्हें सजा न हो, यह देखूँगा। तुम्हें सजा न हो, यह देखूँगा। मृत्यु-पथ पर जाने वाले मानव का अकेला धर्म ही साथ देता है। रास्ते में उसे अनेक कुत्ते काटने आते हैं। कंटक से भरे जंगल से तप्त रेत में चलने के प्रसंग भी आते हैं। जीव तब तड़पता है।

यमपुरी में जाने के बाद उसे यमराज के समक्ष खड़ा किया जाता है। चित्रगुप्त अपना पोथा खोलता है। जीव के द्वारा किये गये पाप-पुण्य सुनवाये जाते हैं। तन से इतना पाप किया है, मन से इतना पाप किया है। चित्त की गुप्त बातें चित्रगुप्त कहता है। मन से किये पापों की सजा भी होती है। तन से किये पाप की सजा भी होती है। चित्रगुप्त सभी का वर्णन करते हैं। वहाँ अनेक साक्षी आते हैं। दिन में किये पापों की साक्षी सूर्यनारायण देते हैं, रात में किये पापों की साक्षी वायुदेव देते हैं। मानव सोच रहा है कि द्वार बंद है और कोई नहीं देख रहा है, पर प्रभु तो तुम्हारे भीतर बैठे हैं। वे सब कुछ देखते हैं। तुम क्या कर रहे हो? क्या बोले रहे हो? वासुदेव सब कुछ देखते हैं। जीवात्मा बाद में स्वीकार कर लेता है कि यह सब सच है। मैंने ये पाप किये हैं। पापों के अनुसार इसे तामिस्त्र अंध तामिस्त्रु आदि नरकों में भेज दिया जाता है। साक्षी जिस तरह पाप की साक्षी देते हैं? उसी तरह पुण्य की साक्षी भी देते हैं। पाप कम हों तो जीव को पशु-पक्षी का जन्म मिलता है। अनेक बार जन्म-मरण के दुःख सहन करते-करते जब पाप-पुण्य समान हो जाते हैं, तब जीवात्मा चन्द्रलोक में जाता है। चन्द्र-किरणों के द्वारा जीव बादल में आता हैं। जीव अति सूक्ष्म है। बादल से बरसात में, बरसात से अन्न में और अन्न द्वारा जीव पुरुष के पेट में जाता है।

चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः।
षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे।। (३-३१-४)

हमारे शास्त्रों में लिखा है कि चालीस दिनों तक यह जीव शक्ति तत्व के आधार से पुरुष के पेट में रहता है। चालीस दिनों के बाद जीव स्त्री के पेट में प्रविष्ट होता है। जिस दिन वह गर्भ में रहता है, उस दिन पानी के बुलबुले जैसा होता है। दस दिनों के बाद वह फल जैसा बड़ा होता है। एक महीने के गर्भ का सिर बन जाता है, दो महीनों में हाथ और पाँव आ जाते हैं। तीन महीनों के गर्भ के नख और बाल उग आते हैं। चार महीनों के गर्भ में सप्त धातुएँ प्रकट होती हैं। पाँच महीनों में उसे भूख लगती है, प्यास लगती है।

परमात्मा की यह लीला है। माँ के शरीर में जिस नाड़ी से अन्न-रस बहता है उस नाड़ी से दूसरी नाड़ी जुड़ जाती है। यों उसका संबंध नाभि के साथ हो जाता है। नाभि के पीछे जठराग्नि

है। अन्न-रस धीरे-धीरे टपकता है। छह महीने का गर्भ माँ की विष्ठा और मूत्र में लोटता है। गर्भवास नरक-वास है। अति दुर्गन्ध में जीव रहता है, तड़पता है। सात महीने के गर्भ का सिर नीचे और पैर ऊपर हो जाते हैं। उसे पूर्वजन्म याद आ जाता है। वह परमात्मा को मनाता है। स्तुति करता है–

तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयात्तनानातनोर्भुवि चलच्चरणारविन्दम्।
सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे येनेदृशी गतिरदर्श्यसतोऽनुरूपा।। (३-३१-१२)

जीव कहता है कि मुझसे अब सहन नहीं होता है। जगह बहुत सँकरी है। बहुत दुर्गंध आती है। प्रभो! मुझे बाहर निकालिये। जीव गर्भ में अनेक प्रकार की प्रतिज्ञाएँ करता है। कहता है कि अब मैं पाप नहीं करूँगा। मैं आपकी भक्ति करूँगा। भगवान् कहते हैं कि तुमने अनेक बार मुझे दगा दी। जीव कहता है कि अब दगा नहीं करूंगा। दो सौ अस्सी दिन माँ के पेट में रहना पड़ता है। वायु द्वारा जीव बाहर निकल आता है। जब बाहर आता है, तब बहुत तड़पता है। माँ को जितना दुःख होता है, इससे हजार गुना दुःख जीवात्मा को होता है। अति दुःख में वह गर्भ का ज्ञान भूल जाता है। राजा के घर जन्म हो या रंक के घर जन्म हो, जन्म तो दुःख का कारण है।

जन्मदुखम् जरादुःखम् जायादुखम् पुनः पुनः, अंतकाले महादुखम्.........

यह जीव दुःख भोगने के लिए ही जन्म लेता है। बाल्यावस्था में वह बोल नहीं सकता। बालक को क्या हो रहा है, माँ को अनेक बार पता तक नहीं चलता। बाल्यावस्था में अति दुःख है। जीव परमात्मा के साथ प्रेम नहीं करता, तब उसके दुःखों का अंत नहीं आता। जीव प्रेम के बिना रह नहीं सकता। प्रेम तो जीव मात्र करता है पर परमात्मा से प्रेम नहीं करता। बालक माता से बहुत प्रेम करता है। कोई एक-हजार रुपया दें तो भी बालक माता को नहीं छोड़ेगा। बड़ा होने पर वह माता का प्रेम भूलने लगता है। अब वह खिलौनों से प्रेम करने लगता है। माता के बुलाने पर भी जाता नहीं है। थोड़ा बड़ा होने पर पिता पढ़ाते हैं। पढ़ने में उसका मन नहीं लगता। पिता मारते हैं, धमकाते हैं फिर पुस्तकों से प्रेम होता है। थोड़ा बड़ा होने पर, दो-चार उपाधियाँ मिलने पर वह पैसे से प्रेम करने लगता है। सोचता है कि भाग्योदय कब होगा और पैसा कब मिलेगा? पैसे कमाने की जीव की बहुत उत्कंठा रहती है। थोड़ा बड़ा होने पर जवानी में प्रवेश होने पर, विवाह होता है। अब नव-वधू से वह प्रेम करने लगता है। माँ से सीधे मुँह बात तक नहीं करता। विवाह के बाद बुद्धि भ्रष्ट हो ज़ाती है। स्त्री के प्रति ऐसा मोह जागता है कि वह माता-पिता का अपमान करने लगता है।

हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जो गृहस्थ पत्नी का पक्ष लेकर माँ को अपमानित करता है, उसके पुण्य का विनाश होता है। ऐसे व्यक्ति को अपनी स्त्री में कोई दोष नहीं दीख पड़ता। स्त्री के प्रति उसे ऐसा मोह हो जाता है। वह स्त्री-शरीर से प्रेम करने लगता है। उसे वृद्धा के पास बैठना

अच्छा नहीं लगता। बहुत पढ़े-लिखे और परदेश से विद्या- अभ्यास से संपन्न होकर आने वालों को अपनी वृद्धा के पास बैठना अच्छा नहीं लगता। ऐसा व्यक्ति सेवा क्या करेगा? वह तो दुलहिन के पास हाथ जोड़ कर खड़ा रहता है। जवानी का यह एक मद है। वस्तुतः स्त्री-शरीर के प्रति भी सदैव मोह नहीं रहता। उससे भी अरुचि हो जाती है। व्यक्ति को बुद्धि तो आती है पर प्रायः शरीर क्षीण होने के बाद बुद्धि आती है। शरीर अच्छा है, तब व्यक्ति को बुद्धि आये तो जीवन सफल है। शक्ति के बिना भक्ति नहीं होती है। शरीर दुर्बल होने पर भक्ति कैसे की जायगी? उस समय तन की ही भक्ति करनी पड़ती है। परमात्मा का ध्यान तब नहीं हो पाता।

माता! अनादिकाल से जीव संसार में भटक रहा है। माता! अनेक बार तुम पत्नी हुई होंगी। अनेक जन्मों में तुम पति हुई होंगी। माता! अनेक संतानों को तुमने गोद में खिलाया होगा। अनेकों की शादी रचाई होंगी। अपने पूर्वजन्म की संतानों की क्या तुम्हें याद है? वे सब कहाँ गयीं? माता जीव अनेक बार पति या पत्नी बनता है पर उसे शांति नहीं मिलती है। जो परमात्मा से प्रेम करता है, उसे ही शांति मिलती है। उसके दुःखों का ही अंत आता है।

माता देवहूति को भगवान् कपिलदेव सावधान करते हैं–'माता, मैंने जो उपदेश किया वह तुम अपने मन को देना। आप बनिये वक्ता और अपने मन को बनाइये श्रोता। आपका मन अन्य किसी को नहीं दीख पड़ता। आपका मन आपको ही दिखाई देता है। अपने मन को आप सुधार सकते हैं। आपके मन को अन्य कोई नहीं सुधार सकता। माता तुम तन नहीं हो, तुम मन भी नहीं हो, तुम तो बिगड़े मन को और तन को सुधारने वाली आत्मा हो। तुम परमात्मा का अंश हो। माता! मन से ही बंधन है और मन से ही मुक्ति है। लोग जिस चाबी से ताला लगाते हैं, उसी चाबी से ताला खोलते हैं। खोलना और बन्द करना–दोनों क्रियाएँ जिस तरह एक ही चाबी से होती हैं, उसी तरह माता! बंधन भी मन से है तथा मोक्ष भी मन से मिलता है। मन संसार के विषयों से बहुत प्रेम करता है, विषयों का चिंतन करता है और विषयों में फँस जाता है तो बंधन में आता है। मन परमात्मा के नाम का चिंतन करे, प्रभु के नाम में तन्मय हो जाय, परमात्मा से प्रेम करे, तो वह परमात्मा के चरणों तक ले जाता है।

माता! मन मित्र है और मन ही शत्रु है। मन विषयों में फँस जाय तो शत्रु है और परमात्मा से प्रेम करे तो मित्र है। माता! जो मन की देख-भाल कर सकता है वह महान् बनता है। मन जिसके हाथ में है वह परमात्मा के चरणों में पहुँच जाता है। माता देवहूति को यह सुनकर आनन्द हुआ है। कहती हैं कि कैसा सुन्दर बोध थोड़े समय में आपने दिया है! अब अपने मन को मैं समझाऊँगी। कदाचित् मेरा मन बिगड़े तो मुझे आपका आधार है। आप कृपा करिये।

कपिलदेव ने कहा—माता! मैंने तो तुम पर कृपा की ही है, अब तुम ही अपने पर कृपा करो। आत्म कृपा के बिना प्रभु-कृपा सफल नहीं होती है। माता! तुम ऐसा निश्चय कर लो कि अब मुझे किसी गर्भ में नहीं जाना है। पति नहीं होना है, पत्नी नहीं बनना है। अब मुझे परमात्मा के साथ एक हो जाना है। माता! पशु-पक्षी भी पति-पत्नी होते है। चिड़ियाँ भी संसार रचाती हैं। मानव भी ऐसा ही करता है तो मानव और पशु-पक्षी में क्या भेद रहेगा?

कपिलदेव ने कहा—मेरा एक काम हो गया। अब मुझे यहाँ से जाना है। कपिल देव जाने के लिये तैयार हो गये, तब देवहूति की आँखों में पानी आ गया। कहने लगीं कि मुझे छोड़कर जा रहे हैं? मुझे अकेला यहाँ रहना होगा? कपिलदेव ने कहा—माता! संसार का संयोग, वियोग के लिये ही है। इस जीव का परमात्मा के साथ नित्य संयोग है। तुम्हारे हृदय में नारायण हैं। प्रभु के नाम का आधार है। और क्या चाहिए? माता! मन पर विश्वास न रखिये। निरन्तर भक्ति करिये। कपिलदेव ने माता देवहूति को साष्टाँग प्रणाम किया। भागवत में ऐसा लिखा है कि कपिलदेव ने माता की तीन प्रदक्षिणायें कीं। माता की प्रदक्षिणा महान् पुण्य है। जो माता-पिता की सेवा करते हैं, माता-पिता की प्रदक्षिणा करते हैं उन्हें पृथ्वी-प्रदक्षिणा का पुण्य मिलता है।

कपिल नारायण वहाँ से गंगा-सागर संगम तीर्थ जाते हैं। कलकत्ता से आगे जाने पर गंगासागर संगम तीर्थ आता है। वहाँ गंगाजी और सागर का सम्बन्ध हुआ है। हमारे शास्त्र में गंगाजी के माहात्म्य का बहुत वर्णन है। समुद्र जिस नदी में मिलता है उस नदी का पानी नमकीन बना देता है, पर गंगासागर संगम में श्रीगंगा माता समुद्र को मीठा बना देती हैं। तीन-चार मील तक का समुद्र श्रीगंगा माता के स्पर्श से मधुर बन जाता है। गंगा सागर संगम तीर्थ में गंगा तट पर कपिल नारायण विराजमान हैं। वहाँ उन्होंने ऋषियों को साँख्य योग का उपदेश दिया है।

इधर माता देवहूति सरस्वती गंगा में त्रिकाल स्नान करती हैं। आदिनारायण परमात्मा का प्रेम से ध्यान करती हैं। ध्यान करते-करते उनका हृदय द्रवित हो जाता है और तन्मयता आ जाती है। आनन्द आने लगता है। देवहूति माता के बाल बहुत सुन्दर थे। धीरे-धीरे इन सुन्दर बालों की पीली जटाएँ बन गईं। माता अब योगिनी बन गयीं। परमात्मा के ध्यान में अब देह का ध्यान नहीं रहता। यद्यपि देवहूति माता को अभी भी देह त्रस्त करती थी। मन को बुरी आदत पड़ गई है। मन ने जो सुख भोगा है, उस सुख का वह बार-बार स्मरण करता है। देवहूति माता को याद आती है कि हम विमान में घूमते थे, कितना आनन्द आता था। देवहूति माता मन को समझाती हैं—जिसका तुमने त्याग किया, उसका विचार क्यों कर रहे हो? फिर भी कभी-कभी मन भटकने लगता है, मचलता है। मन में बहुत ताकत है। मन ज्ञान को धक्के मार कर हटा देता है। मन को समझाइए

फिर भी वह नहीं मानता है। ऐसे समय में देवहूति माता प्रभु की शरण में जाती हैं, कहती हैं–प्रभो! आपकी शरण में हूँ। अपने मन को नियन्त्रित नहीं कर पातीं, मेरा मन पाप कर रहा है। नाथ! कृपा करिये। परमात्मा को मना कर आदिनारायण परमात्मा का ध्यान कीर्तन करके मन को तन्मय बनाती हैं। मन जब पाप करने लगे, खराब विचार करने लगे, ज्ञान को धक्के मारने लगे, तब प्रभु के नाम का कीर्तन करिए। परमात्मा पाप करने से रोक लेते हैं। माता देवहूति परमात्मा का ध्यान करते-करते परमात्मा में लीन हो जाती हैं। माता देवहूति को वहाँ सिद्धि मिली, इससे इस क्षेत्र को लोग सिद्धपुर कहते हैं। कपिल महामुनि ने माता देवहूति का उद्धार किया, इससे महापुरुष इसे मातृगया भी कहते हैं। मातृगया काशी के पास है। हमारे गुजरात में मातृगया सिद्धपुर है–

य इदमनुश्रृणोति योऽभिधत्ते कपिलमुनेर्मतमात्मयोगगुह्यम्।
भगवतिकृतधीः सुपर्णकेतावुपलभते भगवत्पदारविन्दम्॥

(३-३३-३७)

कपिल नारायण की मंगलमय कथा वक्ता-श्रोता के पापों को जलाने वाली है। जो वक्ता इस कथा को प्रेम से कहता है, जो श्रोता सावधान होकर इसे सुनते हैं, मनने करते हैं, उन वक्ता और श्रोताओं को श्रीकृष्ण के चरणों में अनन्य भक्ति प्राप्त होती है।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादश साहस्त्रयां
पारमहंस्यां संहितायां तृतीय स्कंधे
कापिलेयोपाख्याने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः
इति तृतीयः स्कन्धः समाप्तः
हरि ॐ तत्सत्

श्रीमन्नारायण नारायण नारायण
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण
लक्ष्मीनारायण नारायण नारायण
लक्ष्मीनारायण नारायण नारायण
बद्रीनारायण नारायण नारायण
बद्रीनारायण नारायण नारायण

श्री गणेशाय: नम:
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्‌भागवत-रसामृत

चतुर्थः स्कन्धः

२५- हरि और हर-तत्त्व से एक ही हैं

मनोस्तु शतरूपायां तिस्त्रः कन्याश्च जज्ञिरे।
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः॥ (४-१-१)

परमात्मा श्रीकृष्ण के हृदय में तप का निवास है। तप ही परमात्मा का हृदय है। मानवेतर प्राणी तप नहीं कर सकता है। पशु-पक्षी अज्ञान में रहते है। पशु-पक्षी शरीर को ही आत्मा मानते हैं। आप सब जानते हैं कि इस शरीर से मैं भिन्न हूँ, 'मैं' शरीर नहीं हूँ। मानव को प्रभु ने बुद्धि दी है, ज्ञान दिया है। तप मानव शरीर से ही होता है। मानव तप नहीं करता है, तब उसका पतन निश्चित है।

'तप'-शब्द का उल्टा करके 'पत' होता है। जब मानव तप नहीं करता, तब उसका पतन होता है। सुवर्ण अग्नि में शुद्ध होता है, उसी तरह तप से मन शुद्ध होता है, दुःख सहकर भक्ति करना तप है। प्रभु आपको बहुत सम्पत्ति दें, पर आप बहुत सम्पत्ति का भोग न कीजिये, अति सुख का भोग न कीजिये। अति सुख भोगने वाले का पतन होता है। अति सुख भोगने वाले के तन और मन दोनों बिगड़ जाते हैं।

कई लोग ऐसा समझते हैं यह सब मैंने कमाया है, मैं क्यों अधिक सुख न भोग लूँ? परमात्मा जिसे अधिक धन देते हैं, उससे अधिक आशा रखते हैं, सोचते हैं कि यह मेरी सन्तानों की सेवा करेगा! आपको जो कुछ मिला है, वह मात्र आपके लिए ही नहीं है। सुख, विवेक से भोगना चाहिए। सुख अन्य को भी दीजिए। जो अन्य को सुख देता है, वह कभी दुःख नहीं पाता है। मैं सुख भोग लूँ, ऐसी इच्छा रखने वाला कभी सुखी नहीं हो पाता है। दुःख सहन करके भक्ति करना, मौन रखकर भगवान् के नाम का जप करना ही तप है।

हमारे शास्त्रों में तप की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं। किसी भी प्रकार के तप में दुःख सहन करना पड़ता है। दुःख सहन किये बिना तप नहीं होता है।

गीताजी में प्रभु ने अर्जुन को एक ऐसा तप बतलाया है कि तप करते समय जरा भी दुःख सहन नहीं करना पड़ता। एक पैसे का भी खर्च नहीं होता और अतिशय पुण्य मिलता है। तप करने वाले का जिससे कल्याण होता है ऐसा एक दिव्य तप बतलाया है। वह तप है कि सर्व के प्रति सद्भाव रखिये–

भाव संशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते........

भाव-शुद्धि अर्थात् सद्भाव। 'सत्' शब्द का अर्थ है परमात्मा। सर्व में सद्भाव अर्थात् भगवान् में भाव रखिये। सर्व के प्रति सद्भाव रखने वाला महान् तप करता है। किसी के प्रति भी बुरा विचार न रखिये। किसी के लिए बुरे शब्द न बोलिये। प्रत्येक में भगवद्भाव रखिये। प्रत्येक में भगवद्भाव सिद्ध करिये। जो आपकी निन्दा कर रहा है। जिसने आपका बहुत नुकसान किया है, जो आपको त्रास देता है उस जीव के प्रति भी सद्भाव रखिये। आज से ऐसा निश्चय कीजिये कि इस जगत् में मेरा कोई शत्रु नहीं है, किसी ने मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा है। किसी ने मुझे जरा भी दुःख नहीं दिया है। मेरे दुःख का कारण मेरा पाप है। वस्तुतः जगत् में कोई आपका शत्रु नहीं है। आपका शत्रु आपके मन में है। मन में बैठा काम आपका शत्रु है। मन में बैठा अभिमान आपका शत्रु है। बाहर के एक शत्रु को मारेंगे, तो अन्य दस खड़े हो जायेंगे। भीतर के शत्रु को मारेंगे तो जगत में कोई आपका शत्रु नहीं रहेगा।

सर्व के प्रति सद्भाव रखने वाले को सत्कर्म का अधिकार मिलता है। किसी मानव के लिए कुभाव न रखिये। किसी को भी काम भाव से न देखिये। जगत् के प्रत्येक स्त्री-पुरुष को भगवद्भाव से देखिये। कुभाव अर्थात् काम भाव, सद्भाव अर्थात् ईश्वर का भाव। किसी का भी कुभाव से चिन्तन करने से मन बिगड़ता है। सर्व के प्रति सद्भाव अर्थात् भगवद्भाव स्थिर करिये।

ब्राह्मण कभी नहीं कहते हैं कि मेरे परिवार को सुखी करिये, मेरी सन्तान को सुखी करिये। ब्राह्मण सत्कर्म करने पर प्रभु को कहते हैं–'सर्वेत्र सुखिनः सन्तु। वे चाहते हैं कि जगत् में कोई भूखा न रहे, जगत् में कोई किसी का बुरा न चाहे। सभी को सुखी करने की भावना सनातन धर्म में है। आप सभी में सद्भाव रखिये।

कई लोग ऐसे हैं कि ठाकुरजी की पूजा करने के बाद हाथ जोड़कर कहते हैं कि मेरी सन्तान को सुखी रखना! मेरे बच्चों को सुखी रखिये–ऐसी प्रार्थना करना गलत नहीं है, पर कई तो प्रभु से ऐसा भी कहते हैं कि मेरे शत्रु का सर्वनाश करना। मेरे शत्रु दुःखी हो जायँ, ऐसा करना। ऐसा सोचना गलत है, अनुचित है। जगत् में कोई आपका शत्रु नहीं है। आप किसी भी सत्कर्म को

करते हैं, तब प्रभु के समक्ष आपको प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि इस जगत् में मेरा कोई शत्रु नहीं है, मैं किसी का शत्रु नहीं हूँ–

अपकामन्तु भूतानि पिशाचास्सर्वतो दिशम्।
सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभेत्।।

सत्कर्म में भाव मुख्य है, क्रिया गौण है। मानव कैसे भाव से सत्कर्म करता है, भगवान् यही देखते हैं। जो सद्भाव रखते हैं, उनके कार्य सफल होते हैं। धर्म भी कुभाव से करने पर अधर्म हो जाता है।

आप किसी के लिये बुरा विचार करेंगे, तो वह जीव भी आपके लिये बुरा विचार करेगा। शरीर सबके अलग-अलग हैं पर अनेक शरीरों में ईश्वर तो एक ही है।

जो परमेश्वर आपके शरीर में विराजमान हैं वे ही अन्य के शरीर में भी विराजमान हैं। पुष्पों की माला में पुष्प अनेक हैं पर धागा एक ही है। जिस तरह एक धागे में अनेक पुष्प हैं, उसी तरह एक ही ईश्वर के आधार पर यह सभी कुछ टिका है। सभी में भगवान् एक ही हैं। आप सभी के प्रति सद्भाव रखेंगे तो लोग आपके प्रति सद्भाव रखेंगे। कुभाव मन बिगड़ता है।

एक गाँव में एक सेठ और राजा की मैत्री थी। सेठ वैष्णव था और राजा भी वैष्णव था। राजमहल में ठाकुरजी की सेवा थी। सेठ सत्संग करने जाते रहते थे। सेठ का चन्दन का व्यापार था। एक बार ऐसा हुआ कि व्यापार में बहुत नुकसान हुआ। दो-तीन वर्ष इस तरह के नुकसान उठाने से सेठ घबरा गये। बड़ा परिवार था। पालन-पोषण की जिम्मेदारी सिर पर थी। उन्होंने मुनीम से पूछा कि अब इस वर्ष क्या होगा? मुनीम ने कहा—माल खराब हो रहा है। चन्दन को दीमक खा रही है। कोई खरीदने नहीं आता है। अब दुकान बन्द करनी पड़ेगी। सेठ घबराये कि अब मेरा क्या होगा? दीमक लगा चन्दन कौन लेगा?

सेठ ने सोचा कि ठाकुरजी दया करें और राजा को कुछ हो जाय तो उसे जलाने में यह दीमक लगा चन्दन काम आ जाय। सेठ ने राजा के लिये बुरा विचार किया। राजमहल में राजा ठाकुरजी की सेवा में था। आज सेवा करते-करते उसके मन में भी सेठ के लिये खराब विचार आया। वह सोचने लगा कि इस सेठ को मारना चाहिये। उसे सजा देनी चाहिये। सेठ कपटी है। वह बातें भगवान् की करता है किन्तु वह प्रपंची है। राजा का मन भी बिगड़ा है।

मन बिगड़ जाने पर भक्ति में आनन्द नहीं आता है। भक्ति में तन और धन गौण हैं, भक्ति में मन ही मुख्य है। मन जरा भी बिगड़ने न लगे, मन में एक भी खराब विचार न आने पाये— इसका ध्यान रखिये। कई लोग ऐसे हैं कि सेवा करते-करते प्रभु के नाम के जप में अगर आँखों

में आँसू आ जायँ तो मानने लगते हैं कि आज सेवा अच्छी हुई है। आज भक्ति में आनन्द आ गया। किन्तु आज राजा का मन पत्थर जैसा जड़ हो गया है। मन बिगड़ गया है। आज हृदय द्रवित नहीं हुआ। आँखें गीली नहीं हुयीं। राजा ने भावात्मक के स्थान पर क्रियात्मक सेवा की। सेठ राजा के घर सत्संग करने गये। राजा ने कहा कि आज मैंने सेवा की पर सेवा में आनन्द नहीं आया! रोज ठाकुरजी की सेवा में आनन्द आता है, हृदय द्रवित होता है, तन्मयता आती है, आज ऐसा कुछ नहीं हुआ। आज मेरा मन बिगड़ा हुआ था। आपके लिये मेरे मन में बुरे विचार आ रहे थे। राजा ने सोचा कि मन में से पाप निकाल दूँ। मैं अपने मन में पाप छिपाना नहीं चाहता। पाप मन में छिपायेंगे तो वह मन में घर कर लेगा। फिर वह जल्दी नहीं निकल सकेगा। पाप सबके समक्ष प्रत्यक्ष करके बाहर निकालिये।

सेठ ने कहा कि आज मेरा मन भी बिगड़ा था। आपके लिये मेरे मन में भी बुरे विचार आ रहे थे। मेरा धन्धा-व्यापार नहीं चल रहा है। मुझे ऐसा हुआ कि आपको कुछ हो जाय तो अच्छा। दोनों ने अपने बिगड़े मन का इकरार किया। राजा ने सेठ को सजा नहीं दी, पर प्रेम से उपालम्भ दिया—आप वैष्णव होकर ऐसे बुरे विचार क्यों करने लगे थे। आपके मन में ऐसा विचार पवित्र क्यों नहीं आया कि मैं राजा से कहूँगा कि यह चन्दन आपको लेना ही पड़ेगा। इसमें से ठाकुरजी का झूला—(हिंडोला) बनाइए चन्दन का मन्दिर बनाइये। इसमें प्रभु विराजेंगे। वैष्णव प्रेम से दर्शन करेंगे।

सेठ ने कहा कि मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। दोनों ने अपने मन का पाप निकाल दिया। दोनों के मन शुद्ध बने। दोनों सुखी हुए।

यह संसार भावमय है। जिसके मन में जैसे भाव हों, उन्हीं भावों के अनुसार वह सृष्टि उत्पन्न करता है। शुद्ध हृदय वाले ब्राह्मण को सुन्दर स्त्री देखकर लक्ष्मीजी का स्मरण हो आता है और वह मन से उसे प्रणाम करता है। स्त्री के भीतर स्थित परमात्मा उसे आशीर्वाद देते हैं। कुदृष्टि से देखने से उसके भीतर स्थित ईश्वर शाप देते हैं। धर्म में क्रिया को बहुत महत्व नहीं दिया गया है, क्रिया करने वाले के मन में कैसे भाव हैं—इसका ही महत्त्व है।

चतुर्थ स्कन्ध में, पहला प्रकरण 'धर्म' है। 'धर्म' नामक प्रकरण में दक्ष प्रजापति के यज्ञ की कथा है।

दक्ष कर्मकाण्डी हैं पर वे तत्वज्ञान को नहीं पहिचानते हैं। मनु भगवान् की कन्या प्रसूति का दक्ष के साथ विवाह हुआ है। उससे सोलह पुत्रियाँ हुई हैं। उनमें से तेरह का धर्म से, एक का अग्नि से, एक का पितृगण से और सोलहवीं कन्या सती का शिवजी से विवाह हुआ है।

धर्म की तेरह पत्नियाँ हैं–श्रद्धा, दया, मैत्री, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, लज्जा, तितिक्षा और मूर्ति। ये तेरह सद्‌गुण जो जीवन में लाते हैं, उनका धर्म सफल होता है। दक्ष प्रजापति की छोटी पुत्री सती का विवाह शिवजी से हुआ पर दक्ष प्रजापति शिवजी से वैर-भाव रखते हैं। दक्ष प्रजापति ने बड़े विष्णु-यज्ञ का आयोजन किया है पर भगवान् शंकर के लिये उनके मन में कुभाव है। जो किसी जीव के लिये कुभाव रखता है, उसका कभी कल्याण नहीं हो सकता है। तब भगवान् शंकर के लिये कुभाव रखने वाले का कल्याण कैसे हो सकता है?

दक्ष प्रजापति शिवत्त्व को नहीं जानते हैं। शिवजी के लिये वे ऊँटपटांग बोलते हैं। उनकी निन्दा करते हैं। कहते हैं कि शिव तमोगुणी हैं। श्मशान में रहने वाले हैं। अरे! शंकर भगवान् तमोगुणी नहीं है। शिव तो निर्गुण ब्रह्म हैं। प्रायः शिवजी महाराज समाधि में ही रहते हैं। समाधि से जागते हैं, तब राम कथा एवं कृष्ण कथा करते हैं। कथा पूर्ण होने पर पुनः समाधि में बैठ जाते हैं। समाधि और कथा–ये दो ही काम शिव करते हैं। भगवान् शंकर तीसरा कोई काम नहीं करते हैं। शिवजी तमोगुणी होते तो समाधि लगा ही नहीं सकते थे।

कई लोग ऐसा मानते हैं कि ब्रह्माजी रजोगुणी हैं, विष्णु भगवान् सत्वगुणी हैं और शिव तमोगुणी हैं। भगवान् शंकर को तमोगुणी समझने वाले अज्ञानी हैं। शिवजी के मस्तक पर गंगाजी हैं। शिवजी शुद्ध सत्वमय हैं, आनंदमय हैं। शिवजी को तमोगुण का स्पर्श नहीं है। ये सभी देव गुणों को नियंत्रण में रखकर लीला करते हैं। ब्रह्माजी जब जगत् को उत्पन्न करते हैं। तब रजोगुण को स्वीकार करते हैं, पर अभी ब्रह्माजी रजोगुणी नहीं हैं। अभी वे शुद्ध सत्वगुण में हैं। ब्रह्माजी नारायण का ध्यान करते हैं। सृष्टि के प्रारंभ में ब्रह्माजी रजोगुण को स्वीकार करते हैं। प्रलयकाल में भगवान् शंकर जब जगत् का विनाश करते हैं, तब तमोगुण को स्वीकार करते हैं। कई लोग भगवान् विष्णु को मात्र सत्त्वगुणी मानते हैं। अरे! विष्णु भगवान् भी हिरण्याक्ष को मारते ही हैं। तब वे क्रोधित होते ही हैं। विष्णु भगवान् मात्र सत्त्वगुणी ही होते तो क्या क्रोधित हो सकते थे? जब देव, लीला करते हैं, तब एक-एक गुण को नियंत्रण में रखते हैं। वे किसी गुण के अधीन नहीं होते हैं।

यह जीव एक-एक गुण के अधीन हो जाता है। अभी कथा में आप सब सत्त्वगुण में है, भगवान् के समान ही आप हैं। अभी आप में सत्त्वगुण है पर कथा पूर्ण होने के बाद सत्त्वगुण रहेगा कि नहीं, यह शंकास्पद है। जैसे ही कथा समाप्त होती है, सभी को घर याद आता है कि मुझे जल्दी घर पहुँचना है। कथा पूर्ण होने के बाद सत्त्वगुण नहीं रहता, रजोगुण आ जाता है। मन चंचल हो जाता है। कथा से घर जाने के लिए तैयार हुए कि देखा कि जूते कोई ले गया है! आप तुरन्त

रजोगुण से तमोगुण में आ जाते हैं। यह जीव एक-एक गुण के अधीन है। देव एक-एक गुण को नियंत्रण में रखते हैं।

दक्ष प्रजापति अज्ञानी है। वे समझ रहे हैं कि शिव तमोगुणी हैं। भागवत में अनेक बार ऐसा वर्णन आता है कि भगवान् शंकर परमात्मा है। वे तीनों गुणों से परे हैं, ब्रह्मरूप हैं, आनंदमय हैं। शिव-स्वरूप को प्रजापति दक्ष नहीं जान पाते हैं। वे ऊँटपटांग बोलते हैं। बड़ा विष्णुयज्ञ किया है और भगवान् शंकर की पूजा नहीं कर रहे हैं।

कई लोग अनन्य भक्ति का ऐसा अर्थ करते हैं कि एक ही देव को मानना और अन्य देवों को नहीं मानना ही अनन्य भक्ति है। हमारे शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि जब तक देह की सुध-बुध है, तब तक सभी को मानिये। किसी का अनादर न करिये। आप भगवान की सेवा व स्मरण में जब देह का होश खो देते हैं, तब किसी को मानने की जरूरत नहीं है।

वैष्णव होकर शिवजी को न मानने वाले की भक्ति भगवान् को अप्रिय लगती है। दक्ष प्रजापति ने कहा कि मैं विष्णु भगवान् को ही मानता हूँ, शिवजी की पूजा नहीं करूँगा। उनके यज्ञ में नारायण भी नहीं पधारे हैं। जहाँ भगवान् शंकर की पूजा नहीं है, वहाँ परमात्मा नारायण नहीं पधारते हैं। दक्ष प्रजापति के यज्ञ में ब्रह्माजी भी नहीं गये हैं। यह यज्ञ दक्ष प्रजापति की मृत्यु का कारण बन गया है। मन को कलुषित करने लिये भक्ति करनी होती है क्या? क्या राग-द्वेष बढ़ाने के लिये भक्ति करनी है? अनन्य भक्ति का जहाँ वर्णन है, वहाँ पतिव्रता स्त्री का दृष्टाँत दिया गया है।

पतिव्रता स्त्री समग्र प्रेम अपने पति में रखती है परन्तु आवश्यकता आने पर देवर की सेवा करती है, ननद की सेवा भी करती है। इष्टदेव एक ही रखिये किन्तु अन्य देवों को अंशरूप समझकर वंदन करिये। अनन्य प्रेम अर्थात् इष्टदेव से अधिक प्रेम किसी में नहीं रखना है किन्तु किसी भी देव का अनादर न करिये। पंचदेवों की उपासना सनातन धर्म में है। इष्टदेव को मध्य में रखना है। इस शरीर में पंचमहाभूत हैं-पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। पंचतत्त्वों के पाँचों देव स्वामी हैं। पृथ्वी तत्त्व के स्वामी गणेशजी हैं, जल तत्त्व के स्वामी शिवजी हैं। तेज तत्त्व के सूर्यनारायण हैं, वायु तत्त्व की आद्या शक्ति जगदम्बा हैं और आकाश तत्त्व के स्वामी भगवान् विष्णु हैं। ये पांचों देव तत्त्व-दृष्टि से एक ही हैं। यह शरीर ही पंचायतन है। शरीर में आधा पृथ्वी तत्त्व है। शेष में अन्य तत्त्व समान रूप से है।

गणपति की पूजा प्रत्येक के लिये आवश्यक है। कोई श्रीरामजी की भक्ति कर रहा हो, श्रीकृष्ण की भक्ति कर रहा हो, पर गणपति महाराज को न मानना अच्छा नहीं है। गणपति महाराज

विघ्नहर्ता हैं। आप किसी भी उत्तम कार्य का प्रारंभ करते हैं तो पहिले गणपति की पूजा करनी ही पड़ती है। सत्कर्म में बिघ्न आते हैं। गणपति महाराज हाथ में लड्डू लेकर बैठे हैं। जो गणपति की पूजा करता है, उसे हर रोज लड्डू मिलते हैं। उसके कार्य में कोई बिघ्न नहीं आता है। वेदों में गणपति महाराज का माहात्म्य बहुत वर्णित है। वे साक्षात् परमात्मा के स्वरूप हैं। शंकर पार्वती के विवाह में भी गणपति की पूजा की गई है। गणपति महाराज यद्यपि पार्वतीजी के घर प्रकट हुए हैं, पर वे अनादि ब्रह्म हैं। सभी देव हाथ में शस्त्र लेकर बैठे हैं। किसी के हाथ में सुदर्शन चक्र है, किसी के हाथ में गदा है, तो किसी के हाथ में धनुष है। कोई त्रिशूलधारी है। एक गणपति ही ऐसे हैं कि जो शस्त्र नहीं, लड्डू लेकर बैठे हैं! गणपति की पूजा प्रत्येक के लिये आवश्यक है।

सूर्यनारायण की पूजा भी प्रत्येक के लिये आवश्यक है। अन्य देव प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देते, भावना से दर्शन देते हैं। जैसे–ये गणपति महाराज हैं, यह हनुमानजी महाराज हैं। पत्थर मूर्ति में इनकी भावना करनी पड़ती है किन्तु सूर्यनारायण प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। सूर्योदय के समय आप हाथ जोड़कर खड़े रहिये, उदित सूर्य की किरणें जब शरीर पर पड़ती हैं, तब तन और मन दोनों शुद्ध होते हैं। सूर्यमण्डल में आपके इष्टदेव विराजमान हैं, ऐसी भावना करके तेजोमय मण्डल में परमात्मा का ध्यान करिये। सूर्यनारायण की उपासना न करने से बुद्धि भ्रष्ट होती है। सूर्यनारायण बुद्धि के स्वामी हैं, बुद्धि शुद्ध करते हैं। जब तक सूर्य नारायण की भक्ति नहीं करते, तब तक बुद्धि शुद्ध नहीं होती है। सूर्यनारायण आरोग्य देते हैं–

आरोग्यं भास्करादिच्छेत्।

आजकल रोग बहुत बढ़ गये हैं। डाक्टरों का धन्धा बहुत चलता है। पहिले हमारे भारत में इतने अधिक रोग नहीं थे। भारत की प्रजा निरोग थी, सुखी थी। लोग अब सूर्यनारायण का अपमान करते हैं तथा सूर्यनारायण की भक्ति नहीं करते हैं, इससे रोग बढ़ गये हैं। सूर्योदय से पहिले स्नान करिये सूर्यनारायण को अर्घ्य दीजिए। अधिक नहीं तो बारह बार नमस्कार करिए। कई लोग ऐसा मान रहे हैं कि जो ब्राह्मण हैं वे ही सूर्यनारायण को अर्घ्य देते हैं। ऐसा नहीं है। सूर्य के प्रकाश का जो लाभ लेते हैं, वे सभी सूर्य के ऋणी हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, साधु–संन्यासी सभी को सूर्य की भक्ति करनी चाहिए।

आद्या शक्ति जगदम्बा की पूजा भी बहुत आवश्यक है। माता दुर्गा भवानी शक्ति देती हैं, सम्पत्ति देती है। भगवान् नारायण की पूजा की बहुत जरूरत है। वे प्रेम देते हैं, मुक्ति देते हैं।

भगवान् शंकर ज्ञान देते हैं। शंकर भगवान् की पूजा प्रत्येक के लिये आवश्यक है। शिवजी के मस्तक पर ज्ञान–गंगा है। भगवान् शंकरजी की प्रेम से पूजा करने वाले, ध्यान करने वाले और

पंचाक्षर शिवमन्त्र का जाप करने वाले की बुद्धि में ज्ञान प्रस्फुटित होता है। भगवान् शंकर की प्रेम से पूजा करिये। शिवजी महाराज ज्ञान देते हैं, भक्ति देते हैं, वैराग्य देते हैं। शंकर भगवान् की पूजा बहुत सरल है। कभी भी जाइए। शंकर भगवान का दरबार खुला ही है। रात्रि में बारह बजे द्वारिकानाथ के दर्शन के लिए जाइए। क्या वे दर्शन देंगे? वे तो राजाधिराज हैं। रात्रि में बारह बजे उनके दर्शन नहीं हो सकते हैं। शंकर भगवान् कहते हैं कि मैं रात्रि में बारह बजे क्या दो बजे भी तुम आना चाहो तो आ सकते हो! द्वार खुले ही हैं। कोई भी आ सकता है—जा सकता है। कभी भी आ सकता है। जहाँ माया का आवरण है, वहाँ द्वार बन्द करने पड़ते हैं। शिवजी माया रहित हैं। शिवजी शुद्ध ब्रह्म हैं। शिवजी का द्वार कभी बन्द नहीं होता है। कोई भी आये, शिवजी के दरबार में सभी को प्रवेश मिलता है। रामजी के दरबार में सभी को प्रवेश नहीं है। श्री सीताराम जी के दर्शन करने कोई जाता है तो श्रीरघुनाथजी महाराज उसकी परीक्षा करते हैं। वे कहते हैं कि मर्यादा पुरुषोत्तम का दरबार है। क्या तुम धर्म की मर्यादा का पालन करते हो? प्रत्येक स्त्री में मातृभाव रखते हो? माता-पिता की सेवा करते हो?

रामदुवारे तुम रखवारे, होत न आज्ञा बिनु पैसारे।

कोई साधारण व्यक्ति दर्शन करने आता है तो हनुमानजी उसे गदा दिखलाते हैं। राम राजाधिराज हैं, परमात्मा हैं। साधारण तो कोई जा नहीं सकता । हनुमानजी महाराज मना करते हैं। कन्हैया के दरबार में भी गोपी बने बिना प्रवेश नहीं मिलता है—

पुरुष एक पुरुषोत्तम और सब ब्रज नारी हैं।

एक विश्वनाथ शंकरदादा का दरबार ही ऐसा है कि भूत आये कि प्रेत आयें कोई आ जाय, शिवजी का दरबार सबके लिए खुला है।

भगवान् शंकर की पूजा देव करते हैं, ऋषि करते हैं। अरे, भूत-प्रेत भी शिवजी के दरबार में आते हैं। शिव अति शान्त स्वरूप हैं। ब्रह्मरूप है। शिवजी की पूजा सभी करते है। जगत् में जितने भी महान् लोग हुए, वे सभी शिवजी की पूजा करके ही महान् हुए हैं। शिवजी कृपा के बिना भक्ति नहीं मिलती, ज्ञान नहीं मिलता। शिवजी की कृपा से यह जीव काम पर विजय पा लेता है। शिवजी ने काम को भस्म कर दिया है। शिव कृपा के बिना मानव काम पर विजय नहीं पा सकता है। शंकर की पूजा अति सरल है। राज भोग तो वे खाते ही नहीं हैं। कभी शृंगार भी नहीं करते हैं। लोटा भरके जल ले जाइए। बेल पत्र ले जाइए और अर्पण करिये। भोले नाथ प्रसन्न हो जाते हैं। शिवजी अति सरल हैं। अति उदार है। कोई कुछ माँगे, वे देते हैं।

श्रीकृष्ण भी अति उदार हैं पर माँगने पर तुरन्त नहीं देंगे। विचार करके देंगे। माँगने वाले को अक्ल कम होती है। वह तो कुछ भी माँग लेता है।

कुबेर भंडारी शिवजी की सेवा करते थे। एक बार ऐसा हुआ कि उन्होंने शिवजी से कहा कि महाराज! मैं आपकी सेवा में बहुत कुछ करना चाहता हूँ। मुझे आज्ञा दीजिये। शंकर दादा ने कहा कि मेरी कोई सेवा नहीं है। मुझे किसी चीज की जरूरत भी नहीं है। तुम मेरे रामजी की सेवा करो। श्रीराम मेरे स्वामी हैं, मेरे इष्टदेव हैं। श्रीकृष्ण भगवान् की तुम सेवा करो। मुझे कुछ नहीं चाहिए। कुबेर ने कहा—महाराज! इनकी सेवा तो करता ही हूँ। मैं आपके लिये भी कुछ खर्च करना चाहता हूँ। आपकी सेवा करना चाहता हूँ। शिवजी महाराज कुछ भी लेते नहीं हैं। जगत् को जिन चीजों की जरूरत है, शिवजी उनका त्याग करते हैं। घर में एक ही गुलाब का फूल है तो विचार आता है कि किसे अर्पण करूँ? गणपति देव को कि हनुमानजी को? देव अनेक हैं, फूल एक ही है। शंकर भगवान् कहते हैं कि मुझे गुलाब के फूल पसन्द नहीं हैं। मुझे तो धतूरे के फूल प्रिय हैं। गुलाब के लिए कदाचित कोई विवाद हो धतूरे के लिये कौन विवाद करेगा?

जगत् को जिन चीजों की जरूरत है, शंकर उनका त्याग करते हैं। जगत् जिनका त्याग करता है शंकर उनको अपनाते हैं। शिव स्वरूप अति दिव्य है। भगवान् शंकर के माहात्म्य का कौन वर्णन कर सकता है?

कुबेर भंडारी ने कहा—महाराज! मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ। फिर उन्होंने माता पार्वतीजी से कहा कि शिवजी मुझे आज्ञा नहीं दे रहे हैं। पार्वतीजी ने कहा कि तुम एक सुन्दर बंगला बना लो, फिर मैं उनको समझाकर ले आऊँगी। कुबेर भंडारी प्रसन्न हो गये और सर्व संपत्ति देकर उन्होंने सोने का एक बंगला बनाया। देवों को भी आश्चर्य हुआ। कुबेर के वैभव का क्या कहना! पर उन्होंने सब कुछ भगवान् शंकर को समर्पित कर दिया। माता पार्वती प्रसन्न हो गयीं। माताजी ने शंकर भगवान् से कहा—उसने सुंदर बंगला बनवाया है। उसकी भावना है। थोड़े दिन आप वहाँ विराजिये। आपके लिये तो सब कुछ समान है।

भगवान् शंकर ने कहा—बंगला बहुत सुन्दर है, इससे जल्दी न करिये। वास्तु-पूजा किये बिना वहाँ कैसे रहेंगे? वास्तु-पूजा करनी ही पड़ती है। वह रावण ब्राह्मण का पुत्र था। शिवजी की त्रिकाल पूजा करता था। शिवजी ने उससे पूछा—भाई! तुम वास्तु-पूजा करना जानते हो? रावण ने कहा— हाँ, महराज मैं वेद पढ़ा हूँ। रावण वेद पढ़ा था। रावण बना पुरोहित और शिवजी हुए यजमान। रावण ने वास्तु-पूजा कर दी पर वह लालची था। बंगला देखकर उसकी नीयत बिगड़ गयी। शिवजी ने कहा—आपकी जो दक्षिणा हो, वह माँग लीजिए। रावण ने कहा—यह बंगला जो

अपने लिये बनाया है, मुझे दक्षिणा में दीजिये। शिवजी ने सोने की लंका रावण को दे दी। रावण को लगा—ये तो भोले हैं, जो माँगते हैं, देते हैं। उसने शिवजी से कहा—महाराज! मुझे सोने की लंका दी पर मैं कुछ और भी माँगू तो आप देंगे? शिवजी ने कहा कि मैं किसी को मना नहीं करता हूँ।

रावण जैसा कोई मूर्ख नहीं हैं और भगवान् शंकर जैसे कोई उदार नहीं हैं। रावण ने कहा—महाराज! पार्वतीजी बहुत सुन्दर हैं, मुझे दे दीजिये। रावण ने पार्वतीजी को माँग लिया। शिवजी ने कहा—यह तो द्वारिकानाथ ने बहुत आग्रह किया, इससे मैं विवाह करने गया था। मुझे ऐसी कोई जरूरत नहीं है। तुम्हें चाहिये तो तुम ले जाओ। शिवजी ने पार्वती को दे दिया। ऐसा उदार व्यक्ति जगत् के इतिहास में कोई देखा नहीं है, देखेंगे भी नहीं। रावण पार्वतीजी को लेकर चलने लगा। माता पार्वतीजी ब्रह्म विद्या—स्वरूपा है। रावण के घर में माताजी विराजतीं तो रावण की कभी मृत्यु न होती। वह अमर हो जाता। देवों को चिंता हुई। माताजी को भी रावण के साथ जाना न था। इससे वे भगवान् कृष्ण का स्मरण करने लगीं। कन्हैया भोला है, बहुत प्रेम करता है। उस जैसा कपट किसी को नहीं आता है। वह कपट में बड़ा चतुर है। उसने रावण को ठग लिया। रास्ते में श्रीकृष्ण गोपाल—स्वरूप में रावण से मिले। रावण को वंदन करके रावण की प्रशंसा करने लगे।

जीव प्रशंसा को पचा नहीं सकता। स्तुति परमात्मा ही पचा सकते हैं। परमात्मा का जिन्हें साक्षात्कार हुआ है, ऐसे महात्मा स्तुति का पाचन कर सकते हैं साधारण मानव स्तुति सह नहीं सकता। उसके लिये स्तुति को सहन करना कठिन हो जाता है। कथा में अनेक बार सुना है कि आपकी कोई निन्दा कर रहा हो तो पाप जल जाते हैं, पाप कम हो जाते हैं इससे अगर आपकी कोई निन्दा कर रहा है तो भले ही करता रहे। आप आशा करिये कि मेरी निन्दा करने वाला सुखी हो! यों निन्दा सहना सरल है किन्तु स्तुति सहना कठिन है। स्तुति सुनकर अभिमान बढ़ता है। प्रत्येक के भीतर सूक्ष्म अभिमान होता है। जहाँ प्रशंसा होती हो, वहाँ न बैठिये प्रशंसा न सुनिये।

श्रीकृष्ण प्रभु ने रावण की प्रशंसा की—आप वीर हैं। तब रावण होश खो बैठा। श्रीकृष्ण ने रावण से पूछा—यह किसे ले जा रहे हैं?

रावण ने कहा—यह पार्वती हैं। शंकर भगवान् ने इनको मुझे दिया है। सोने की लंका दी है और पार्वती भी दी हैं। अब मैं अमर हो गया। मुझे कोई नहीं मार सकता। प्रभु ने उसको ठगा। आश्चर्य—भाव दिखाकर पूछा—यह आपके कंधे पर कौन है, पार्वती हैं? रावण ने कहा ''हाँ''। प्रभु हँसने लगे। रावण को आशंका हो गई। पूछा—क्यों हँस रहे हो? भगवान् ने कहा—यह पार्वती हों, ऐसा लगता नहीं है। यह तो पार्वती की दासी सी लगती है। मैंने ऐसा सुना है कि शिवजी पार्वती को पाताल में छिपा कर रखते हैं। उन्होंने तुम्हें पार्वती नहीं, पार्वती की दासी दी है। पार्वती माता

का श्रीअंग ऐसा पवित्र है कि उसमें से कमल की सुगंध आती है, कमल की सुगंध आती हो तो पार्वती होंगी, नहीं तो पार्वती नहीं होंगी। माताजी को रावण के साथ जाना नहीं था। इससे माताजी ने श्रीअंग से दुर्गन्ध प्रसारित की। कमल की सुगन्ध नहीं आती है–ऐसा जानकर रावण को विश्वास हो गया कि यह पार्वती नहीं है। यह पार्वती की दासी है। वह उन्हें रास्ते में छोड़कर चल पड़ा।

दक्षिण भारत में गोकर्ण महाबलेश्वर की यात्रा जिन वैष्णवों ने की है, उन्हें मालूम है कि गोकर्ण महाबलेश्वर से तीन–चार मील की दूरी पर "दैवय्यावती जगदंबा" पार्वती का स्थान है। रावण को श्रीकृष्ण ने ठगा और माताजी की वहाँ स्थापना की। बलरामजी महाराज यात्रा करने जाते हैं, तब गोकर्ण–महाबलेश्वर के दर्शन करते हैं। वहाँ से माता पार्वती का दर्शन करने जाते हैं। ऐसा भागवत के दशम स्कंध के उत्तरार्ध में वर्णन है।

दक्ष प्रजापति शिवजी के लिये ऊँटपटांग बोलते हैं। श्रीधर स्वामी ने उसके निंदा के शब्दों से स्तुति–पूर्ण अर्थ प्रकट किया है। दक्ष प्रजापति ने कहा–शिव श्मशान में रहने वाले हैं। श्रीधर स्वामी ने अर्थ निकाला–सारा जगत् श्मशान है। घर भी श्मशान है। यह शरीर भी श्मशान है। घर चींटी–मकोड़ों का श्मशान है। यह शरीर अनेक सूक्ष्म जंतुओं का श्मशान है। सारा जगत् श्मशान है। शिवजी जगत् की सभी चीजों में विराजमान हैं, अर्थात् श्मशान में विराजमान हैं। शिवजी व्यापक ब्रह्म-स्वरूप हैं। दक्ष ने कहा–शिवजी मर्कटलोचन हैं, उनकी आँखें वानर जैसी हैं। श्रीधर स्वामी कहते हैं–वानर जैसे चंचल जीवों पर जिनकी कृपा–दृष्टि है, ऐसे शिवजी मर्कट-लोचन हैं। दक्ष ने कहा–शिवजी गुणहीन हैं। स्तुति में अर्थ किया गया कि शिवजी गुणातीत हैं। तीनों गुणों से परे हैं निर्गुण ब्रह्म हैं।

यज्ञ में दक्ष प्रजापति ने शिवजी की पूजा नहीं की। शिवजी का पूजन नहीं करने से दक्षकुल–गुरु दधीचि ने भी यज्ञ का बहिष्कार किया। तब उसने भृगु ऋषि को आचार्य पद दिया। देव यज्ञ में जाते हैं। सती ने यह देखा और शिवजी से यज्ञ में पधारने का आग्रह किया। शिवजी ने ना कर दी। सतीजी को भी उन्होंने न जाने की सलाह दी। सती बुद्धि, शिव के साथ है तो समुचित है पर उनको छोड़कर अकेले घूमने लगे तो अनर्थ होता है। माताजी अकेली यज्ञ में गयीं। यज्ञ में शिवजी का पूजन नहीं हुआ। सतीजी को यह पसन्द नहीं आया। सतीजी ने अग्नि स्नान किया। उन्होंने श्रीअंग को जला दिया। माताजी के श्रीअंग को कौन जला सकता है? अग्नि को जलाने की शक्ति तो शिवजी ने दी है। यह तो माताजी की लीला है। सती का श्रीअंग वहाँ जलकर भस्म हो गया। बाद में जब वीरभद्र वहाँ आये तब उन्होंने यज्ञ का विध्वंस किया। यजमान के मस्तक की ही यज्ञ में पूर्णाहुति हुई है यज्ञ करने के बाद यजमान का कल्याण होता है। पर दक्ष

के यज्ञ में सभी का विनाश होता है। दक्ष के यज्ञ में जो ब्राह्मण गये थे, उन पर भी मार पड़ी है। देवों को सजा मिली है।

ब्रह्मादिक देवों ने शिवजी की स्तुति की है। शिवजी से उन्होंने कहा कि आप पधारिये, तब यह यज्ञ सफल होगा। शिवजी को मान-अपमान की चिन्ता नहीं। वे अति सरल हैं। पधारिये-कहा कि वे आ पहुँचते हैं। यज्ञ-मण्डप में पधारते हैं। दक्ष के धड़ के ऊपर बकरे का सिर उन्होंने लगा दिया है। शिवजी कृपा-दृष्टि से देख रहे हैं। दक्ष जाग्रत हो गया और शिवजी की स्तुति करने लगा है।

हरिद्वार के पास कनखल तीर्थ है। उसी कनखल तीर्थ में गंगा तट पर दक्षणेश्वर महादेव का मन्दिर है। दक्ष प्रजापति ने शिवजी का वहीं पूजन किया है, क्षमा माँगी है। वहाँ चतुर्भुज नारायण प्रकट हुए हैं। प्रभु ने सभी को उपदेश दिया है। प्रभु ने कहा है-शिव मेरी आत्मा हैं। शिवजी में कुभाव रखने वाले मुझे में ही कुभाव रखते हैं। हरि और हर दोनों एक हैं-

सेवक सखा स्वामि शिव मेरे।

भगवान् शंकर नारायण के सेवक हैं, श्रीरामचन्द्रजी के सेवक हैं, सखा हैं, स्वामी हैं। शिवजी के माहात्म्य का कौन वर्णन कर सकता है? दो अक्षरों का नाम शिव है। शिव नाम मुख से निकला कि अनेक पाप नष्ट हुए। देवों को प्रभु ने उपदेश दिया है कि शिवजी में और मुझमें कोई भेद नहीं है। भक्त और भगवान् भीतर से एक ही होते हैं। जब प्रभु ने रामेश्वर की स्थापना की, तब ऋषियों ने रामचन्द्रजी से पूछा कि महाराज! रामेश्वर का अर्थ समझाइए। तब रामचन्द्रजी ने सरलता से अर्थ किया कि राम के जो ईश्वर हैं, वे रामेश्वर हैं। शिव मेरे स्वामी हैं। मैं उनकी पूजा करता हूँ। रामजी ने ऐसा अर्थ किया पर शंकर भगवान् को यह अर्थ पसन्द नहीं आया। शिवजी महाराज प्रकट हुए और कहने लगे-नहीं, नहीं ऐसा नहीं है। रामः ईश्वरः यस्य सः रामेश्वरः। रामेश्वर का अर्थ ऐसा ही है कि राम हैं, ईश्वर जिनके। मैं, तो रामदास हूँ। श्रीराम, मेरे स्वामी हैं। मैं सारा दिन राम-नाम का जप करता हूँ। ऋषियों ने निर्णय दिया कि राम और शिव एक ही हैं। श्रीकृष्ण और शिव एक ही हैं। हरि-हर में भेद नहीं मानना चाहिये-

शिवस्य हृदयं विष्णुः विष्णोर्हृदयं शिवः।

भक्त और भगवान् एक ही होते हैं। हरि-हर में भेद मानने वाले का कल्याण नहीं होता है। शिवजी के प्रति कुभाव रखने वाला अति कामी होता है। उसे ब्रह्म-विद्या प्राप्त नहीं होती है, कभी मुक्ति भी नहीं मिलती है। भगवान् शंकर जगद्गुरु हैं-

कस्तं चराचरगुरुं निर्वैरं शान्त विग्रहम्।
आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतो दैवतं महत्॥ (४-२-२)

माधव और उमा–धव दोनों तत्त्व से एक हैं। शिवजी और श्रीकृष्ण में अभेद भाव है। दोनों में अतिशय प्रेम भाव है। ऐसा प्रेम भाव वैष्णवों और शैव में परस्पर रहना चाहिए। प्रभु ने सभी को यह उपदेश दिया है।

सतीजी हिमालय के घर पार्वती स्वरूप में प्रकट हुईं। माताजी ने तपश्चर्या की। उन्होंने चाहा कि शंकर भगवान् मेरे पति हों। विवाह से पहिले ही शिवजी ने काम को जलाकर भस्म कर दिया। जब जीव विवाह करने जाता है तब काम उसके सीने पर चढ़कर बैठ जाता है। भगवान् शंकर जब विवाह करने जाते हैं, तब काम को भस्म करके गये हैं। प्रभु ने, भगवान् नारायण ने कहा कि आप विवाह करने जाइए। इससे शिवजी महाराज विवाह करने जाते हैं। नारदजी द्वारा हिमालय को समझाया गया है। पार्वतीजी के साथ विवाह निश्चित हुआ है। सभी ऋषि और देव कैलाश धाम में आये हैं।

साधारणतः भक्त भगवान् का श्रृंगार करते हैं पर कभी प्रभु के हृदय में ऐसा भाव जागता है कि भगवान् भक्त का श्रृंगार करें। भगवान् का मन है कि शिवजी का श्रृंगार करें। उन्होंने शिवजी से कहा–आप पीताम्बर पहिनिये। अपना बाघाम्बर मुझे दीजिए। अपनी वैजयन्ती माला मैं आपको पहिनाता हूँ। आज आपका विवाह है। आज आप श्रृंगार करिये।

शंकर दादा ने कहा–शरीर का श्रृंगार कौन करता है? मैं तो शरीर को सादा रखता हूँ। श्रृंगार रामजी को फबता है, श्रृंगार श्रीबालकृष्णलाल को भी फबता है। शिवजी बोले कि श्रृंगार नहीं करना है। जिस कलश में पच्चीकारी होती है, उसमें मिट्टी भर जाती है। शरीर का श्रृंगार नहीं करना चाहिये। शिवजी वैराग्य का आदर्श दिखाते हैं। वे मानते हैं कि यह शरीर तो भस्म है। हमारा सादा श्रृंगार अच्छा है। बाघाम्बर उन्होंने ओढ़ा है। श्रीअंग में भस्म धारण की है। उनके गले में रुद्राक्ष की माला है। हाथ में सर्प-त्रिशूल हैं। प्रभु ने सोचा कि इन वर राजा को कौन कन्या देगा? कैसा श्रृंगार है इनका? प्रभु ने कहा कि महाराज, विवाह में बिघ्न आयेगा तो आपकी बेइज्जती होगी। शंकर दादा ने कहा–मेरी क्या बेइज्जती? आपने विवाह पक्का किया है। बेइज्जती तो आपकी होगी। मैं तो निर्विकार हूँ।

परमात्मा की बहुत इच्छा है कि शंकर भगवान् श्रृंगार करें पर शिवजी नहीं मानते हैं। भगवान् ने नारदजी को साथ लिया। बोले कि नारद! तुम कुछ युक्ति करो। जिससे शिवज़ी को श्रृंगार करना पड़े। नारदजी ने कहा कि शायद मैं कोई युक्ति निकाल सकूँ, पर कदाचित शिवजी नाराज हो जायँ तो आपका नाम ले दूँगा। भगवान् ने कहा–अच्छी बात है, मेरा नाम ले लेना।

नारायण......नारायण.......करते हुए नारदजी हिमालय के घर पहुँचे। वहाँ बड़ा मण्डप बाँधा गया है। जहाँ जगत-माता पार्वती प्रकट हैं, वहाँ के वैभव का वर्णन कौन कर सकता है? बड़े-बड़े महात्मा हिमालय में आकर रह रहे हैं। जगत-माता पार्वती के प्रकट होने से हिमालय का माहात्म्य बहुत बढ़ गया है। पार्वतीजी की माता का नाम मेनादेवी है। मेनादेवी पुत्री के विवाह की तैयारी में लगी हैं। नारदजी के आगमन से मेनादेवी प्रसन्न हुईं। कहने लगीं कि पुत्री का विवाह है। आपको आठ-दस दिन रहना होगा। नारदजी ने कहा-विवाह में हमें प्रायः कोई नहीं बुलाते, पर आपका प्रेम है तो रहूँगा। आपने किसके साथ कन्या का विवाह निश्चित किया है? मेनाजी ने कहा-बड़े-से-बड़े देव-महादेव को कन्या दी है। नारदजी हँसने लगे।

मेनाजी को शंका हुई-जमाई का नाम सुनकर नारदजी क्यों हँसने लगे? नारदजी ने पूछा-सासुजी! कभी जमाई राजा के दर्शन हुए हैं कि नहीं? मेनाजी ने कहा-ना, जमाई राजा को देखा नहीं है पर बहुत प्रशंसा सुनी है। नारदजी ने पूछा-अपने जमाई को तुम देखना चाहती हो? मेनाजी ने कहा-हाँ! देखने की बहुत इच्छा है। नारदजी ने कहा-चलिये! मैं आपको दिखा देता हूँ। जिस मार्ग से बारात आ रही थी, उसी मार्ग में वृक्षों के पीछे नारदजी मेनादेवी को लेकर खड़े हो गये। शिवजी की बारात है। सभी देव ऋषि आये हैं। सबसे आगे पालकी में ब्रह्माजी बैठे हैं, ऋषि पालकी उठाकर वेद-मन्त्रों का पाठ करते हुए आगे-आगे चलते हैं। मेनाजी देख रही हैं कि पालकी में ये जो बैठे हैं कैसे दीख रहे हैं? नारजी से पूछा-यह जो पालकी में बैठे हैं, मेरे जमाई के क्या लगते हैं? पिता होते हैं? दादा होते हैं? नारदजी ने कहा-आपका जमाई ऐसा है कि उसकी कोई माता नहीं है, पिता नहीं है और माता-पिता नहीं है तो दादा कहाँ से होंगे? रुद्र का जन्म होता है। शिवजी अजन्मा हैं-ऐसा हमारे शास्त्रों में लिखा है। शिवजी मंगलमय है, आनन्दमय हैं, रुद्र रोते हैं। शिवजी का तामस रूप रुद्रस्वरूप में प्रकट हुआ है। रुद्र का जन्म हुआ है। शिवजी का जन्म नहीं होता है। शिवजी के माता-पिता नहीं हैं। मेनाजी ने पूछा-ये जो पालकी में बैठा है, वे कौन हैं? नारदजी ने कहा-ये तो शिवजी के ज्योतिषी हैं। ज्योतिषी महाराज आज पालकी में बैठ गये हैं। बहुत तेजस्वी दीख रहे हैं। मेनाजी खुश हुईं। सभी देव आते हैं। मेनाजी पूछती हैं कि ये जमाई हैं? नारदजी कहते हैं-ना,ना, ये तो सभी उनके नौकर हैं। मेनाजी ने सोचा-जिसके घर के नौकर ऐसे हैं उस घर का मालिक कैसा होगा! नारदजी कहते हैं कि आप धीरज रखिये, अभी मालूम पड़ेगा। इन्द्र ऐरावत हाथी पर बैठकर आये हैं। मेनाजी ने सोचा कि जो हाथी पर बैठा है, वही मेरा जमाई होगा? नारदजी ने कहा-ना,ना, यह तो घर का हिसाब रखने वाला आज हाथी पर चढ़कर आ गया है। आज सभी बहुत खुश हैं। आनन्द से आये हैं।

मेनाजी ने कहा मुनीम हाथी पर बैठा है तो स्वामी कहाँ बैठे हैं? नारदजी ने कहा–अभी तुम्हें सब मालूम पड़ेगा! भगवान् नारायण भी पधारे हैं। मेनाजी ने नारदजी से पूछा कि क्या ये जमाई हैं? नारदजी ने कहा–ना, ना, ये तो तुम्हारे जमाई के मित्र हैं। सब कुछ इनके हाथ में हैं। इनकी इच्छा से सब कुछ होता है। फिर शंकर भगवान् की सेना आयी। भूत, प्रेतगण, पिशाचगण, ब्रह्म राक्षस हैं। कई दो सिरों वाले हैं, कई चार हाथों वाले हैं। कइयों का सिर नहीं है, मात्र धड़ चल रहा है तो कई नग्न दिगम्बर हैं। शिवजी के दरबार में सभी आते हैं। नाम ही है विश्वनाथ। विश्व अर्थात् जगत्।

जगत् में सब अच्छा नहीं हैं और बुरा भी नहीं है। शुभ और अशुभ–दोनों का मिश्रण ही जगत् है। जगत के नाथ शिवजी हैं, इससे उन्हें विश्वनाथ कहते हैं। भगवान् शंकर श्रीअंग में चिता-भस्म धारण करते हैं। आप उज्जैन गये होंगे। वहाँ महाकाल की पूजा प्रातः काल जब होती है तब श्माशान से भस्म आती है। शिवजी को अभिषेक के बाद सर्व प्रथम चिता-भस्म अर्पण होती है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि चिता-भस्म अति अपवित्र है। शिव स्पर्श से चिता-भस्म पवित्र हो जाती है। चिता-भस्म अति अपवित्र है, श्रीगंगा माता अति पवित्र है। गंगाजी के समान कोई पवित्र नहीं है। शिवजी के ऊपर गंगाजी हैं, तथा श्रीअंग में चिता-भस्म है।

पवित्र और अपवित्र, शुभ और अशुभ दोनों का आधार शिव हैं, इससे उन्हें विश्वनाथ कहते हैं। उनके गले में विष है, मस्तक में अमृत है। जगत में विष और अमृत दोनों हैं। विष और अमृत दोनों के आधार शिव हैं। इसी से उन्हें विश्वनाथ कहते हैं। शिवजी के दरबार में सभी आते हैं। देव, ऋषि, भूत-प्रेत, नागा लोग सभी आते हैं। शिव-कृपा से काम का विनाश होता है। वस्त्र जिस तरह शरीर को ढँकता है, बादल जिस तरह सूर्य को ढँकता है उसी तरह वासना परमात्मा के स्वरूप को ढँक देती है। शिव-कृपा से जीव वसनहीन बनता है, अर्थात् वासना-रहित बनता है। शिवजी पूर्ण निष्काम हैं, निर्विकार है।

शिवजी नन्दिकेश्वर पर विराजमान हैं। वे विवाह करने जाते हैं पर उनके हाथ में माला है। श्रीराम, श्रीराम जप चल रहा है। हृदय में राम मुख में राम–काम का विनाश करके हृदय में राम को रखकर शिवजी विवाह करने जाते हैं। मस्तक में गंगाजी हैं। नारदजी ने मेनाजी से कहा–यह जो बैल पर बैठा है, वह तुम्हारा जमाई है। मेनाजी को बहुत दुःख हुआ। मेरी पुत्री अतिशय सुन्दर है। मेरे पति ने कुछ भी नहीं सोचा। नारदजी समझाने लगे–ऐसे को कन्या देने के बदले तुम अपनी कन्या को लेकर कुएँ में डूब मरो। ऐसे को कन्या दी जाती है कहीं! मेनाजी ने कहा–महाराज, अब सब तय हो गया है। नारदजी ने कहा–तय हो गया है तो क्या हुआ? ये सब वापस जायेंगे। मैं उत्तम

वर, अच्छे से अच्छा देव ले आऊँगा। तुम्हारी कन्या की चिन्ता अब मुझे है। ऐसे को कन्या देना उचित नहीं है। तुम कन्या को लेकर भीतर बैठ जाओ। द्वार बन्द रखना। मेनाजी रोने लगीं। सोचने लगी कि पुत्री कैसी सुन्दर है। और जमाई कैसा है?

माता पार्वती मन में मन्द-मन्द मुस्कराती हैं! यह सब लीला है। शिवजी महाराज पधारते हैं पर कोई बाहर नहीं आता है। सभी चले गये हैं। कोई स्वागत करने भी नहीं आता है। शिवजी को पता चला कि अब ये अपनी कन्या देना नहीं चाहते हैं। वह नारद वहाँ गया है। उसने कुछ गड़बड़ की होगी। शिव गण दौड़ते हुए पहुँचे और नारद को पकड़ कर ले आए। नारदजी हाथ जोड़कर खड़े रह गये हैं। शिवजी ने स्मित हास्य करके कहा–नारद क्या तुमने मेरी बेइज्जती करने का निश्चय किया है? तुम्हारी क्या इच्छा है? नारदजी ने कहा–महाराज आप जगद्‌गुरु हैं। मेरे भी आप गुरु हैं। आपकी बेइज्जती कोई नहीं कर सकता। मैंने जो कुछ किया है वह सब नारायण के कहने से किया है। महाराज! आप शृंगार क्यों नहीं करते? सबकी इच्छा है। आज तो शृंगार करना ही चाहिये। महाराज! मैं आपसे सच-सच कहता हूँ कि आप शृंगार करेंगे, तब ही विवाह होगा और नहीं करेंगे तो फिर जय श्रीकृष्ण। तब तो आप यहाँ से वापस पधारिये!

विवाह करने आये थे, वापस जाना अनुचित होगा। शंकर दादा को शृंगार करना हो तो दर्पण में क्या देखना? उनके हृदय में नारायण हैं। वे तो मुझे कैलास में ही कहते थे कि शृंगार करिये। मेरा पीताम्बर पहनिये। अपनी बैजयन्ती माला आपको अर्पण करता हूँ पर मैंने नहीं माना। शिवजी ने एक क्षण भर नारायण का ध्यान किया और तुरन्त नारायण का सभी शृंगार शिवजी को आ गया और शिवजी का शृंगार नारायण को मिल गया। भीतर से दोनों एक हैं। चारों ओर दिव्य प्रकाश व्याप्त हो गया। दिव्य प्रकाश में से शिव-स्वरूप प्रकट हुआ है। नारदजी को आनन्द हुआ। दौड़कर वे मेनाजी को बुला लाये। सभी को वर बहुत पसन्द आया। जीव-शिव का विवाह हुआ। पार्वतीजी पधारीं। विजयमाला अर्पण की है। जय-जयकार हुआ। पार्वतीजी के साथ विराजमान शिवजी को देखकर सभी को आनन्द हुआ। सभी ने कहा–शिवजी! यह शृंगार सदैव के लिए रखिए। शिवजी ने कहा–मैं शृंगार सदैव रख लूँ तो मेरा मन खराब हो जायगा। शिवजी ने निवृत्ति धर्म का उपदेश दिया है। भगवान् ने प्रवृत्ति धर्म का उपदेश दिया है। शिवजी ने कहा है कि प्रवृत्ति छोड़कर निवृत्ति लेकर एकान्त में बैठेंगे तो भगवान् मिलेंगे परन्तु जिस तरह कोई व्यक्ति सारा दिन मीठा खाकर रह नहीं सकता, उसी तरह भक्ति करना कठिन है। विरक्त साधु वर्ग ऐसा कर सकता है। प्रवृत्ति छोड़कर साधारण व्यक्ति सारे दिन में छः-सात घंटे तक भक्ति कर सकता है। बाद में उसका मन कुछ और भी चाहता है। मानव के जीवन में प्रवृत्ति की जरूरत होती है। प्रवृत्ति और निवृत्ति सनातन

धर्म के दो अंग हैं। प्रवृत्ति-धर्म श्रीकृष्ण समझाते हैं और निवृत्ति धर्म भगवान् शंकर समझाते हैं। प्रवृत्ति करिये पर अपने लक्ष्य को–परमात्मा को न भूलिए। सोचिये कि मुझे श्रीकृष्ण के चरणों में जाना है। मुझे इस जन्म में ही भगवान् के दर्शन करने हैं। लक्ष्य को स्थिर करके विवेक से प्रवृत्ति करिये। प्रवृत्ति करिये पर फल की अपेक्षा न रखिये। निरपेक्ष होकर प्रवृत्ति करिये। अपेक्षा से अशान्ति का जन्म होता है। अपेक्षा होती है, तब मन अशान्त रहता है। किसी भी प्रकार की अपेक्षा के बिना प्रवृत्ति करिये। कर्म करने का अधिकार जीव को है, कर्म का फल कितना देना और कब देना–यह ईश्वर के द्वारा निश्चित होता है। निरपेक्ष होकर प्रवृत्ति करना ही प्रवृत्ति धर्म है। निष्काम कर्मयोग का आदर्श श्रीकृष्ण समझाते हैं। सारा दिन प्रवृत्ति न करिये। एकान्त में बैठकर ध्यान करिये, जप करिये। आपको भजनानन्द मिलेगा, ब्रह्मानन्द मिलेगा। निवृत्ति-धर्म का आदर्श शिवजी समझाते हैं।

हरि और हर–तत्व से एक ही है। हरि-हर धर्म की मूर्ति है। शिव-चरित्र का वर्णन कौन कर सकता है? शिव के माहात्म्य या शिव तत्त्व का वर्णन करते-करते वेद भी थक गये हैं। शंकर भगवान् पार्वती के साथ कैलास में विराजमान हैं। बहुत संक्षेप में यहाँ शिव-चरित्र का थोड़ा भावार्थ समझाया गया है। धर्म-प्रकरण परिपूर्ण हुआ। अब अर्थ-प्रकरण प्रारम्भ होता है।

२६–ध्रुव-चरित्र

विदुरजी प्रश्न करते हैं कि मनु महाराज के दो पुत्रों के वंश की कथा सुनने की इच्छा है।

अथातः कीर्तये वंशं पुण्यकीर्तेः कुरूद्वह, स्वायम्भुवस्यापि मनोर्हरेरंशांशजन्मनः।
प्रियव्रतोत्तानपादौ शतरूपापतेः सुतौ, वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतः स्थितौ॥

(४-८-६/७)

मनु महाराज के घर दो पुत्र हैं–प्रियव्रत और उत्तानपाद। प्रियव्रत महाराज के वंश की कथा पंचम स्कंध में वर्णन है। चतुर्थ स्कंध में उत्तानपाद राजा के वंश का वर्णन है।

उत्तानपाद राजा की दो रानियाँ हैं–सुरुचि और सुनीति। सुनीति में बहुत-से सद्गुण हैं पर सौंदर्य का अंश बहुत कम है। सुरुचि में कोई सद्गुण नहीं है, पर सौंदर्य है। राजा को सुनीति अप्रिय है, सुरुचि अतिप्रिय है। राजा रुचि के अधीन हैं। नीति का उन्होंने त्याग कर दिया है। आँखें दो प्रकार की हैं–बाहर की आँखें चर्मचक्षु हैं भीतर की आँखों को ज्ञान-चक्षु कहते हैं, सभी को ज्ञान-चक्षु से देखने की आदत डालिये। चर्मचक्षु से किसी को न देखिये। चर्मचक्षु प्रायः चमड़ी को देखते हैं। चमड़ी का मोह होता है, सौंदर्य का मोह होने पर ज्ञान बह जाता है। जीव स्वरूप का

होश खो बैठता है। सुरुचि के सौंदर्य में राजा का मन फँस गया। सुरुचि के कहने से राजा ने सुनीति का त्याग किया। राजा सुरुचि रानी के साथ राजमहल में रहते हैं। सुनीति राजमहल के बाहर रहती है।

शांति से सोचने पर ध्यान में आयेगा कि हम सब उत्तानपाद जैसे हैं। पाद–शब्द का अर्थ है पाँव। 'उत्तान' शब्द का अर्थ है ऊपर। जिसके पाँव ऊपर हैं और सिर नीचे है, वह उत्तानपाद है। जब जीवात्मा माता के पेट में होता है, तब सिर नीचे और पाँव ऊपर रहते हैं जीव जब बाहर आता है, तब पहिले सिर आता है। माता के पेट में सभी उत्तानपाद होते हैं। उत्तानपाद जीवात्मा की दो रानियाँ हैं, सुनीति और सुरुचि। जिसे नीति प्रिय नहीं है, उसे रुचि प्रिय है। संयम किसी को भी अच्छा नहीं लगता है। इन्द्रियों के भोग भोगने की इच्छा को ही सुरुचि कहते हैं। इन्द्रिय जो माँगे वही सुख इन्द्रियों को दीजिए तो वे खुश रहती हैं, इन्द्रियाँ दासी हैं। दास को अक्ल कम होती है। वह तो गड्ढे में गिरा सकता है। दास कुछ भी माँगता है, कभी भी माँग लेता है। आप स्वामी हैं। दास जो माँग रहा है, वही उसे तत्काल न दीजिए। घर मैं केसर का पेड़ा था। जीभ ने कहा–पेड़ा खा ले– बहुत मीठा है। जीभ माँग रही है तो जीभ को न दीजिए। जीभ को देंगे तो फिर जीभ बहुत त्रास देगी। बहुत नचायेगी। जीभ माँग रही है तो कहिये कि अभी नहीं कदाचित् कहा जायगा कि यह तो प्रसाद का पेड़ा है, तुम्हें मिला है, खाने में कोई हर्ज नहीं है। तब कहना कि प्रसादी है, मेरे लिये है, पर दूसरों को दिये बिना खाना नहीं। इस जीभ को ऐसा लगता है कि मैं जो माँगती हूँ, वह मुझे मिलता है। तब तक वह बहुत नाच नचायेगी। पर एक बार उसे मालूम पड़ जाय कि मैं जो माँग रही हूँ, वह मुझे नहीं मिलेगा तो वह शांत हो कर बैठ जाती है। भक्ति में जीभ प्रमुख है। जिसकी जीभ अति शुद्ध है, वह ही भक्ति कर सकता है।

सुरुचि के पुत्र का नाम उत्तम है सुनीति के पुत्र का नाम ध्रुव है। जिसे रुचि प्रिय है, उसे उत्तम फल मिलता है। उत्तम–शब्द पर थोड़ा विचार करिये। 'उत्' शब्द का अर्थ है ईश्वर। जन्माष्टमी का उत्सव उत् अर्थात् ईश्वर और सब अर्थात् प्राकट्य–ईश्वर का प्राकट्य। यहाँ 'उत्' शब्द के बाद तम रखा है। तम अर्थात् अंधकार, अज्ञान। ईश्वर के प्रति अज्ञान–वही सुरुचि का फल है। जिसे ईश्वर का अज्ञान है, वह उत्तम है। जिसे रुचि प्रिय है उसके घर उत्तम पुत्र होता है अर्थात् उसे ईश्वर का ज्ञान नहीं होता है। जो रुचि के अधीन हैं, इन्द्रियों के दास हैं, उन्हें परमात्मा का ज्ञान कभी नहीं होता है। भगवान् की भक्ति वह ही कर सकता है, जो जितेन्द्रिय है। सुनीति के पुत्र का नाम ध्रुव है। 'ध्रुव' शब्द का अर्थ है–अविनाशी यानी जिसका कभी विनाश नहीं होता है। रुचि से निष्पन्न आनंद–विषयानंद क्षणिक है। नीति से निष्पन्न आनंद–भजनानंद सदैव रहता है। विषयानंद दो-चार मिनट से अधिक नहीं रहता है। भागवत में शुकदेवजी महाराज

ने बहुत सुन्दर उदाहरण दिया है। विषयानंद कैसा है? वह दाद को खुजलाने जैसा है। दाद होने पर लोग मरहम लगाते हैं। जब दाद के ठीक हो जाने का समय आता है, तब बहुत खुजली होती है। खुजलाहट सहन करने वाला सुखी होता है। कई लोग खुजली सहन नहीं कर सकते। वे नाखूनों से दाद को खरोंचते हैं, इससे नाखून का विष लग जाता है और दर्द बढ़ जाता है। परिणाम खुजलाने वाला दुःखी होता है। दाद में खुजली होती है, उसी तरह इन्द्रियों में भी खुजली होती है। इन्द्रिय को विषय-सुख देने से सुख का भास होता है पर विषयानंद दो-चार मिनट से अधिक नहीं रहता है। भक्ति में तुरन्त आनंद नहीं आता है पर एक बार आनंद आ जाय तो फिर वह आनंद कभी छूटता नहीं है। उसे छोड़ने की इच्छा ही नहीं होती भक्ति का आनंद-भजनानंद सदैव रहता है। भक्ति में आनंद न आये तो भी भक्ति चालू ही रखिये। अनेक बार भक्ति में आनंद नहीं आता। तब जीव विषयानंद भोगने जाता है। विषयानंद प्रारंभ में दुःख देता है, अन्त में भी दुःख देता है, बीच में थोड़े क्षण के लिए वह सुख का भास कराता है। किसी भी प्रकार के सुख को भोगने की इच्छा होती है, तब मन चंचल हो जाता है। मन चंचल होने से पाप होता है। पाप शुरु होने से शक्ति का नाश होता है।

भोग अन्त में वियोग देता है, दुःख देता है। भगवान् के दर्शन की इच्छा से पाप नष्ट होते हैं। भगवान् जब हृदय में आते हैं, तब मन शुद्ध होता है। आप ऐसी इच्छा रखिये कि मुझे इस जन्म में ही भगवान् के दर्शन करने हैं। भगवान् जिसे मिलते हैं, परिपूर्ण रूप से मिलते हैं। भोग सभी को अधूरा मिलता है। भोग किसी को परिपूर्ण नहीं मिला है। भोग परिणाम में वियोग देता है परन्तु भगवान् एक बार भी मिल जायँ, उसको कभी प्रभु का वियोग नहीं होता है।

विषयानन्द और भजनानन्द-ये दोनों आपके समक्ष रखे हैं। विवेक से पसन्द कर लीजिये। भक्ति में तुरन्त आनन्द नहीं आयेगा परन्तु भक्ति चालू ही रखिये। भक्ति में एक दिन ऐसा आनन्द आयेगा कि फिर वह सदैव बना रहेगा।

प्राचीनकाल में जब लोग यात्रा करने जाते थे, तब उनके पास गाड़ी की सुविधा नहीं थी। वे चलकर यात्रा के लिए जाते थे। तब जिन चीजों की बहुत जरूरत होती उन्हें ही रखते थे। अब तो गाड़ियों की सुविधा हो गयी है। लोग यात्रा करने जाते हैं तब सारा घर उठाकर ले जाते हैं। कई तो सूची बनाते हैं कि यह चाहिए, यह चाहिए। पर 'यह चाहिये'-का तो अंत नहीं आता है। हम को तो सभी कुछ चाहिये। दो मित्र यात्रा करने निकले। एक को ऐसी आदत थी कि पलंग में ही नींद आती थी। उस व्यक्ति ने सोचा कि पलंग साथ रखना चाहिए, कहीं मिले, कहीं न भी मिले। शौकीन व्यक्ति क्या नहीं करता? उसने पलंग साथ में रखा। उसने सोचा कि मुझे कहाँ उठाना है।

मजदूर ही उठाने वाला है। पलंग और दो-चार रजाइयाँ आदि लेकर यात्रा करने वे निकले। रास्ते में एक स्थान पर कोई मजदूर ही न मिला। अब कौन उठायेगा? सोचा, अब आज मैं ही मजदूर बन जाऊँ। उसने पलंग रखा सिर पर और उस पर रखा सामान। सिर पर बोझा है, धूप तेज है। रास्ते में एक सज्जन मिले। उनको आश्चर्य हुआ। प्रेम से उलाहना दिया-यात्रा करने जा रहे हो और इतना बोझं रखा है। आपको देखकर मुझे तकलीफ हो रही है। आपको कितना सन्ताप हो रहा होगा? उस यात्री ने कहा-इसमें कोई सन्ताप नहीं हो रहा है। रात्रि में बहुत आनन्द आता है। अरे! रात्रि में क्या आनन्द आता होगा? यह तो एक यात्री की कथा है किन्तु यह आपकी भी कथा है। मानव क्षणिक विषयानन्द के लिए सारे दिन दुःख का पहाड़ सिर पर रखता है, अति दुःख सहकर वह क्षणिक सुख भोगता है। मानव, लौकिक सुख भोगने के लिए जितना दुःख सहन करता है, उतना दुःख परमात्मा के लिए सहन करने लगे तो परमात्मा को दया आ जाय, परमात्मा प्रकट हो जाय। विषयानन्द परिणामतः रुलाते हैं।

विषयानन्द उत्तम का स्वरूप है। ध्रुव अर्थात् भजानन्द-ब्रह्मानन्द का स्वरूप है। वह सुनीति का बालक है राजा ने सुनीति का त्याग किया है। सुनीति बालक को समझा रही है। सुरुचि रानी में राजा का मन फँसा है। ध्रुवजी पाँच वर्ष के हो गये हैं। एक बार जब ध्रुवजी मित्रों के साथ खेल रहे थे, तब एक बालक बोला-इस ध्रुव को इसके पिता ने निकाल दिया है। इसकी माँ को भी वे रखते नहीं हैं। ध्रुवजी दौड़ कर घर आये और माता से पूछने लगे-माँ मेरे पिताजी कहाँ हैं? माता का हृदय भर आया। पुत्र अब बड़ा हो गया है। समझने लगा है। उससे मैं कैसे कहूँ कि तुम्हारे पिता ने मेरा त्याग किया है। सुनीति पुत्र को समझाने लगी-बेटा! उस राजमहल में तुम्हारे पिताजी रहते हैं। हम इधर रहते हैं। बालक ने कहा-माँ! मुझे पिताजी से मिलना है और वह दौड़कर राजमहल में पहुँच गया।

राजा ने सुनीति का त्याग किया, पर राजमहल के दास-दासियाँ सुनीति को बहुत सम्मान देते हैं। सुनीति का पुत्र आज महल में आया है। सभी उसे प्रेम करने लगे, सभी उसे सम्मान देने लगे। ध्रुवजी सभी से पूछते हैं-मेरे पिताजी कहाँ हैं? जबाब मिला-भीतर विराजमान हैं। बालक तुरन्त भीतर गया।

सुवर्ण के सिंहासन पर उत्तानपाद राजा बैठे हैं। उनकी गोद में उत्तम है, जिसे वे खिला रहे हैं। सुन्दर श्रृंगार करके सुरुचि रानी वहाँ खड़ी है। बालक दौड़कर आ पहुँचा। कोई भी बालक आपके पास आये तो आप उसमें बालकृष्णलाल की भावना करिये। बालकृष्णलाल के उसमें दर्शन करिये। बालक में जब तक विकार-वासना नहीं है, तब तक बालक भगवान् का रूप होता है। तब

तक वह प्रभु का स्वरूप है। वासना जागने के बाद वह जीव भाव में आता है। निर्दोष-निर्विकार बालक परमात्मा का स्वरूप होता है। कई पुस्तकें पढ़ने से जो ज्ञान नहीं मिलता, वह बालकों के साथ खेलते हुए अनयास मिल जाता है। समर्थ रामदास स्वामी बालकों के साथ खेलते रहते थे। बड़े सन्त बालकों जैसे ही होते हैं। बालकों को देखने से मन पवित्र होता है। बालक की प्रत्येक क्रिया निर्विकार होती है। बालक के रूप में जो होता है, वह ही बालक बोलता है। मन, वाणी और क्रिया–जिसकी एक रूप होती हैं, ऐसा शुद्ध हृदय बालक का ही होता है। बालक को कपट करना नही आता है। माता-पिता सिखाते हैं, तब बालक कपट सीखता है। बालक को झूठ बोलने की अक्ल नहीं होती है। कई मातायें स्वार्थवश बालक को झूँठ बोलना सिखाती हैं। बालक के समक्ष पाप न करिये। बालक के समक्ष भक्ति करिये। आप भक्ति करेंगे तो आपके बालक भी बहुत भक्ति करेंगे। बालक का स्वभाव अनुकरण का है। खेल में भी बालक को पाप करना न सिखाइये।

एक बार ऐसा हुआ कि एक घर पर सेठ पैसे वसूल करने आये। पिता ने देखा कि पैसा माँगने आ रहे हैं। उसने अपने तीन वर्ष के बालक से कहा–बेटा बाहर जाओ, और वे सेठ जो आ रहे हैं, उनसे कहना कि मेरे पिता घर में नहीं हैं। बालक विचार में पड़ गया। कहने लगा कि आप घर में हैं, फिर कैसे कहूँ कि आप नहीं हैं? पिता ने कहा–मैं तुम्हें पेड़ा दूँगा, पर तुम बाहर जाकर इतना कह दो। बालक बाहर आया और सेठ से कहने लगा–मेरे पिता ने मुझे पेड़ा देने को कहा है। मेरे पिता मुझे पेड़ा देंगे। मेरे पिता घर में नहीं हैं। बालक को कपट करने का ज्ञान कहाँ होता है वह तो भोला है। वह शुद्ध है। बालक को कपट करना न सिखाइये। बालक को अच्छे संस्कार दीजिये।

थोड़ा पाकर भी उसे जो अधिक मानते हैं, वे ईश्वर हैं पर अधिक पाकर भी उसे जो थोड़ा मानता है, वह जीव है। बालक को थोड़ा देने पर भी वह सन्तुष्ट हो जाता है। बड़े व्यक्ति को थोड़ा देने पर वे बुरा मान जाते हैं। कोई भी बालक आपके पास आये तो उसके हाथ में कुछ दीजिये। उसे प्यार करिये।

ध्रुवजी की ऐसी इच्छा हुई कि मुझे पिता की गोद में बैठना है। ध्रुवजी दौड़ते गये और कहने लगे कि मुझे गोद में बैठाइए। बालक को गोद में बैठाने की इच्छा राजा की हुई, क्योंकि बालक प्रेम से आया था। राजा ध्रुवजी को गोद में लेने के लिये तैयार हुए। सुरुचि रानी वहाँ खड़ी थी, उससे सहन नहीं हुआ, उसकी आँखों में विषय था। आँखों में अमृत रखिये। जिसकी आँखें बिगड़ी हैं वह भक्ति नहीं कर सकता। बहुत ध्यान रखिये। आँखों में विष न आना चाहिये। जिसकी आँखों में प्रेम है, वही भक्ति कर सकता है सुरुचि रानी ने मना कर दिया। बोली खबरदार! जो इसे गोद में लिया तो! आपका पुत्र उत्तम है। आप इस बालक को गोद में नहीं ले सकते।

राजा रानी के अधीन हुआ। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि स्त्री में विश्वास रखना चाहिये पर स्त्री में अति विश्वास नहीं रखना चाहिये। स्त्री कह रही है तो ठीक कह रही है या नहीं, विचार करिये। जो पुरुष स्त्री के अधीन रहता है, उसे देखकर भी पाप लगता है–

विश्वापत्रं न किमस्ति लोके–नारी।

स्त्री में अति विश्वास रखने वाले का पतन होता है। कई माताएँ ऐसी होती हैं कि उन्हें झूठ-मूठ रोना भी आता है। स्त्री की आँखों के आँसू देखकर पुरुष का हृदय द्रवित हो जाता है। यह रो रही है पर वह तो कपट से रोती है, प्रेम से नहीं। लोक-समाज में जाकर झूठ-मूठ रोती है और नखरे करके घर लौटती है।

राजा रानी का दास था, रानी के अधीन था। अति कामी पुरुष को स्त्री का सब-कुछ अच्छा लगता है। उसे स्त्री का दोष नहीं दिखाई देता वह स्त्री में अति विश्वास रखता है। वह स्त्री के अधीन रहता है। कितने लोग यह समझते हैं कि यह तो घोंघे की तरह है। बहुत भोली है। अरे! भोली नहीं है, वह तो कपटी है। घोंघे जैसी नहीं है, यह तो भैंसे जैसी है। तुम्हें मोह हो गया है इससे ऐसा दीखता है। हमारे शास्त्रों में स्त्री की कहीं निंदा नहीं की गयी है। स्त्री तो आद्यशक्ति जगदम्बा का स्वरूप है। कामांध पुरुष के कामांध रूप की आसक्ति की ही निंदा की गयी है।

राजा ने सोचा कि बालक को गोद में लूँगा तो रानी नाराज होगी। कामी पुरुष दूसरा कोई विचार नहीं कर सकता। वह तो स्त्री नाराज न हो–इतना ही सोचता है। इस बालक के दिल को दुःख होगा–इसका विचार वह नहीं कर पाता। बालक प्रेम से मिलने आया है पर रानी को खुश रचने के लिये राजा ने मुँह फेर लिया। ध्रुवजी को अभी आशा है, वह प्रेम से पिता को देखते रहते हैं। सुरुचि से यह भी सहन नहीं हुआ। उसने बालक का तिरस्कार किया। कहने लगी–तुम यहाँ से चले जाओ। वह बहुत घमंड से बोल उठी। जी हाँ सावधान रहिये। आपके जीवन में कैसा भी प्रसंग आ जाय, बहुत घमंड में न बोलिये। बहुत रुआब से बोलने पर दूसरे के हृदय को ठेस लगती है। मिठास रखिये विनय रखिये। जिसकी वाणी में विनय है, मिठास है वह परमात्मा को भी वश में कर सकता है। अच्छा बोलिये, सत्य बोलिये और मीठा बोलिये।

सुरुचि को बहुत घमंड है। वह मानती है कि राजा मेरे आधीन हैं। मैं जो कहूँगी वही करेंगे। वह रुआब में और क्रोध में बोली–अरे! तुम इधर से चले जाओ। इस गद्दी पर बैठने के लिये तुम लायक नहीं हो। तुम इस गद्दी पर बैठना चाहते हो तो वन में जाकर भगवान् की भक्ति करो। प्रसन्न होने पर भगवान् से वरदान माँगना कि तूम्हारा जन्म सुरुचि के घर हो। मेरे घर जन्म होने तुम गद्दी पर बैठ पाओगे।

अरे! भगवान् प्रसन्न हो जाय, फिर तुम्हारे घर ज़न्म लेने की क्या जरूरत? वह मूर्ख है– बकवास कर रही है। बालक ने हाथ जोड़े और कहा–माता! क्या मैं पिताजी का पुत्र नहीं हूँ, सुरुचि ने कहा– राजा का पुत्र कैसा रानी तो मैं हूँ, तुम्हारी माता तो दासी है। दासी का लड़का और गद्दी पर बैठने चला! नालायक! जा, यहाँ से चला जा।

माता को दासी कहा– इससे ध्रुव को बहुत दुःख हुआ। बालक के हृदय में तीर की तरह शब्द चुभ गया। मेरी माता को दासी कहती है और पिताजी ने भी मुँह फेर लिया। मेरी ओर देखा तक नहीं बालक के हृदय में ठेस लगी। बहुत दुःख हुआ। वह रोने लगा। दौड़ कर माता के पास पहुँचा। बालक रोता हुआ आता है। माता ने यह देखा। सोचने लगी कि मेरा पुत्र क्यों रोता है? बालक प्राण से भी प्रिय था। वह दौड़कर पहुँची और बालक को गोद में उठा लिया। माँ ध्रुव को घर में ले आयी, हृदय से लगाया। प्यार किया, बोली बेटा! तुम क्यों रो रहे हो? तुम्हें क्या हुआ है?

सुनीति माता का पुत्र सुशील ही होता है। माता-पिता के विचार बालक में आते ही हैं। माता पुण्यशाली है तो पुत्र ज्ञानी होता है। माता पूछ रही है, पर बालक कुछ बोलता नहीं है। बालक ने सोचा कि मैं कहूँ कि सौतेली माँ ने तिरस्कार किया और पिता ने देखा तक नहीं, मुँह फेर लिया तो माता-पिता की निन्दा होती है और मुझे पाप लगेगा। बालक धीर गम्भीर है, पर रो रहा है। कुछ कहता नहीं है। सुनीति प्यार कर रही है–बेटा, तुम्हें क्या हुआ? खेलने गया, क्या किसी ने मारा? बेटा, किसी ने तुम्हें मारा हो तो बता दो। मैं तुम्हारे पिता से कहूँगी। बेटा! तुम राजा के पुत्र हो तुम्हारे पिताजी उन्हें सजा देंगे।

सुनीति ने जब कहा–कि तुम राजा के पुत्र हो, तब ध्रुवजी अधिक रोने लगे। माता का हृदय भर आया सोचने लगी कि मेरा पुत्र बुद्धिमान है, मेरी स्थिति समझ रहा है। यह कभी इतना नहीं रोया है। आज इस बालक को किसने रुलाया होगा?

इतने में दासी आ गयी। उसने सारी बातें बता दीं। सुनीति ने सुना कि मेरे पुत्र का तिरस्कार किया गया? किसी कारण के न रहते हुए भी निरर्थक वह क्यों बैर रख रही है? मैंने उसका कुछ भी बिगाड़ा नहीं है। दो क्षण बैठने दिया होता तो क्या हर्ज था? मेरे बालक को उन्होंने रुलाया? सुनीति को दुःख हुआ।

सुनीति ने सोचा कि आज दुःख में, आवेश में अगर मैं कटु वचन बोलूँगी तो बालक के मन में बैर भाव के बीज पड़ जायेंगे। मेरे बालक को राज सम्पत्ति न मिले तो कोई बात नहीं, पर मैं उसे अच्छे संस्कार दूँगी। सम्पत्ति से थोड़ा सुख मिलता है। अच्छे संस्कार, संयम, सदाचार और

सरलता होगी तो बहुत सुख मिलेगा। हजार शिक्षक जो नहीं दे सकते वही माता बोध दे सकती है। माता गुरु है। माता के अनन्त उपकार सन्तान पर हैं।

हमारे शास्त्रों में लिखा है कि माता की इच्छा के अनुरूप सन्तान बनती है। किसी माता की ऐसी तीव्र इच्छा हो कि मेरा पुत्र महान ज्ञानी भगवद्भक्त हो तो ऐसा ही होता है। माता बालक को जैसा समझा सकती है, वैसा कोई नहीं समझा सकता।

जब पुत्र बड़ा साधु, ज्ञानी, संन्यासी होता है, तब पिता भी पुत्र को वंदन करते हैं। संन्यासी महात्मा, परमात्मा के स्वरूप हैं पर हमारे शास्त्रों में लिखा है कि पुत्र बड़ा साधु, ज्ञानी, संन्यासी होता है, तब भी माता उसे वंदन नहीं कर सकती है। संन्यासी-महात्मा माता को वंदन करते हैं। संन्यास ग्रहण करने के बाद श्री शंकराचार्यजी ने माता की बहुत सेवा की थी। सुनीति माता की इच्छा है कि मेरा पुत्र वीर बने, महान् भगवद्भक्त बने! सुनीति बालक को समझा रही है कि बेटा! तुम्हारी सौतेली माता ने जो कहा, वही मैं कहती हूँ। उन्होंने कहा कि वन में जाकर भक्ति करो परन्तु सौतेली माता बहुत घमण्ड में कह गई थी। सुनीति माता वही उपदेश देती है। बहुत प्रेम से बालक को समझाती है, मधुर वाणी में बोध देती है–

आतिष्ठ तत्तात विमत्सरस्त्वमुक्तं समात्रापि यदव्यलीकम्।
आराधयाधोक्षजपादपद्मं यदीच्छसेऽध्यासन मुत्तमो यथा।।

(४-८-१९)

सुनीति ने बालक से कहा– बेटा! जगत से भीख न माँगना। भीख माँगनी है तो भगवान् से माँगना। इस जगत् में श्रीमान एक श्रीकृष्ण हैं, श्रीकृष्ण के बिना सारा जगत् दरिद्र है।

आपके जीवन में कोई दुःख का प्रसंग आ जाय तो घबराइये नहीं। दुःख आपके घर में सदैव के लिये रहने नहीं आया है। दुःख आपके पाप को जलाने आया है। वह आपको सुखी करने आया है। अपने दुःख की कथा किसी मानव से न कहिये! किसी भी दुःख के प्रसंग पर लाला को दूध से स्नान कराइए। लाला का शृंगार करिये। थोड़ी धूप करिये। लाला की आरती करिये। द्वार बन्द करिये और एकान्त में हरे-कृष्ण, हरे-कृष्ण-प्रेम से कीर्तन करिये। पन्द्रह-बीस मिनट प्रेम से कीर्तन करिये तो तन्मयता आ जायगी। हृदय आर्द्र होगा। आँखें भीग जायगी। कीर्तन में तन्मयता के बाद लाला से कहिये कि मैं बहुत दुःखी हूँ। मेरी ऐसी दशा है। कन्हैया बहुत वत्सल है, वह सब शान्ति से सुनेगा। वह बहुत उदार है। वह बहुत देगा। वह देगा पर किसी से कहेगा नहीं, दिखायेगा भी नहीं। जब कोई मानव देता है तो सभी से कहता है, बहुत दिखावा करता है। कहता

है कि भगत माँगने आये थे, मैंने दिया। मानव की ऐसी बुरी आदत है। उसे बिना बोले चैन नहीं पड़ता है।

बालक को माता समझा रही है कि तुम्हारी सौतेली माता ने तुम्हें क्या गलत कहा है? जिस घर में मान नहीं रहता, उस घर में नहीं रहना चाहिए। तुम अब वन में जाकर भक्ति करो, परमात्मा का ध्यान करो, आराधना करो। बालक ने रोते हुये कहा–माता मुझे अकेले वन में भेज रही हो? माता इस घर में तुम्हारा भी मान नहीं है, तुम्हें सब ऐसा क्यों कहते हैं? सुरुचि माँ ने कहा था कि तुम्हारी माता दासी है। माता इस घर में अब तुम भी न रहना। हम दोनों वन में जायेंगे। प्रभु को कभी तो दया आयेगी।

सुनीति बालक को समझा रही है–बेटा! मैं जानती हूँ। इस घर में मेरा मान नहीं है पर मैं यह घर छोड़ना नहीं चाहती हूँ। मेरे पिता ने पतिदेव को मेरा दान दिया है। मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, मैं परतन्त्र हूँ, अपने पतिदेव के अधीन हूँ। मेरे पतिदेव भले ही मेरा त्याग करें, मुझे तो उनका सत्कार ही करना है। वह चाहें तो मेरा तिरस्कार करते रहें, मैं तो उनकी सेवा ही करूँगी। मेरे लिये मेरे पतिदेव परमात्मा हैं। बेटा! आज तक मैं उनकी सेवा करती रही हूँ, पर आज से सावधान हूँ। मेरे पतिदेव को जो प्रिय है, उसकी भी मैं दासी हूँ। वह मेरा तिरस्कार करें, तो भी मैं सहन करूँगी। मुझे यह घर नहीं छोड़ना है। मेरा धर्म मुझे रोक रहा है। धर्म विरुद्ध भक्ति सफल नहीं होती है, धर्म-विरुद्ध भक्ति में बहुत बिघ्न आते हैं। बेटा! मैं तो तुम्हारे साथ नहीं आती हूँ पर मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। पतिदेव की सेवा करते हुए मैं परमात्मा से प्रार्थना करूँगी कि मेरे बालक की देखभाल रखना। बेटा! तुम अब इस घर में न रहना। तुम वन में जाओ। आज से तुम नारायण के पुत्र हो। प्रभु के चरणों में मैं तुम्हें समर्पित कर रही हूँ। सुनीति ने परमात्मा का स्मरण किया। दोनों हाथ जोड़े और कहा–आपके आधार पर इस बालक को वन में भेज रही हूँ। सुनीति परमात्मा से प्रार्थना करने लगी।

बालक ने पूछा–माता! मेरे जैसे बालक को परमात्मा दर्शन देंगे? सुनीति ने कहा–बेटा, तुम्हारे जैसे बालक परमात्मा को बहुत प्रिय हैं। मैंने कथा में ऐसा सुना है। बालकों के लिए प्रभु माखन चोर बने थे। चोरी करके स्वयं माखन नहीं खाया पर मित्रों को खिलाया। परमात्मा के नाम के जप करते हुए प्रेम से परमात्मा को पुकारना। बेटा! वन में जाते हुए कोई साधु-संत मिल जाय तो उन्हें साष्टाँग प्रणाम करना। साधु-संत, निःस्वार्थ भाव से प्रेम करते हैं। वे सभी के लिये पिता-सदृश होते हैं।

माता की गोदं में बैठे हुए ध्रुवकुमार तत्काल खड़े हो गये। सुनीति माता को उन्होंने साष्टाँग प्रणाम किया। माता का हृदय भर आया। मेरा कैसा पाप है? मुझे घर में रहना है और इस पाँच वर्ष के बालक को वन में भेजना है। इसका प्रभु में कैसा विश्वास है! भगवान् सभी का भला करेंगे। फिर बोली–बेटा! मुझे विश्वास है, तुम मेरे पेट में थे, तब जिन परमात्मा ने तुम्हारा रक्षण किया, वे ही परमात्मा वन में तुम्हारी रक्षा करेंगे, मंगल करेंगे। तुम्हारा कल्याण होगा। माता ने बालक को आशीर्वाद दिये। ध्रुवजी जाने लगे। माता का हृदय आर्द्र हो गया। सुनीति ने सोचा कि अभी मैं रोऊँगी तो बालक भी रोने लगेगा। माता ने हृदय को पत्थर की तरह कठोर बना लिया। हृदय के वेग को दबा दिया।

सुनीति–माता बालक को जाते हुए देखती हैं। बालक द्वार तक पहुँचा। माता का हृदय भर आया। सोचने लगीं कि न जाने अब मुझे फिर कब मिलेगा? मुझे माता कह कर यह कब बुलायेगा? इसे भूख लगेगी तो कौन खाना देगा? सुनीति दौड़कर पहुँची–बेटा। बेटा! खड़े रहो। बालक को आशीर्वाद दिया। अपने आपको निछावर किया प्यार किया और कहा–बेटा! तुम मेरे बुद्धिमान पुत्र हो। मैं सच कहती हूँ कि अगर तुम मुझे प्रणाम नहीं करोगे तो भी मैं तुम्हें आशीर्वाद दूँगी, पर बेटा! मेरी बहुत इच्छा है कि तुम अपने पिता की प्रिय, अपनी सौतेली माता को भी प्रणाम कर लो। सुरुचि में अरुचि न रखना। मान–अपमान, लोभ–हानि, सुख–दुःख–सब हमारे कर्म के फल हैं। इसमें किसी का दोष नहीं है। मैं तो मानती हूँ कि पूर्व जन्म में तुमने सौतेली माता का अपमान किया होगा, जिसका यह बदला तुम्हें मिला है। बेटा! वैर की शांति वंदन से होती है। तुम सौतेली माता को प्रणाम करके जाओ।

सुनीति ने सोचा कि सौतेली माता ने उपालम्भ दिया है, इससे वन में जाने पर बालक के मन में इसका चिंतन रह सकता है। यह अच्छा नहीं है, इससे वह सावधान करती है।

ध्रुवजी सुरुचि को वंदन करने आये। वह घमंड में गद्दी पर बैठी थी। उसे बहुत घमंड था। वह अकड़कर बैठी थी। ध्रुवजी सौतेली माता को साष्टांग वंदन करते हैं। वह सोचने लगी कि जिस बालक का मैंने तिरस्कार किया, वह मुझे वंदन कर रहा है! कितना भोला है यह। इसका हृदय कितना शुद्ध है। सुरुचि का हृदय थोड़ा पिघला। उसने पूछा–बेटा! क्यों प्रणाम कर रहा है? बालक कहता है कि मैं जा रहा हूँ। सुरुचि दुष्ट है। उसका हृदय थोड़ा पिघला है पर प्राण और प्रकृति जीवन के साथ ही जाते हैं। स्वभाव सुधरता नहीं है। आप चारों धाम की यात्रा करिये। आप मन्दिरों में सेवा करिये। यज्ञ करिये। सब अच्छा है पर स्वभाव नहीं सुधरता है। यात्रा करने से, तब जीव पाप करता है। पुण्य का अभिमान पाप करवाता है। पुण्य करने से स्वभाव नहीं सुधरता है। स्वभाव

को सुधारने की इच्छा है तो एक आसन पर बैठकर जप करिये। परमात्मा के मंगलमय स्वरूप का ध्यान और प्रभु के नाम के जप जो करते हैं उन जीवों में ईश्वर के सद्गुण आते हैं। तब ही स्वभाव सुधरता है–

कस्तूरी की क्यारी करी, केसर की बनी खाद।
पानी दिया गुलाब का, पर प्याज रह गई प्याज।।

प्याज की दुर्गन्ध कभी नहीं जाती। चाहे आप कुछ भी उपाय करें। स्वभाव सुधर जाय तो जगत् में कुछ भी दुःख नहीं है। जिसका स्वभाव सुधरा, उसको जहाँ वह जाये वहीं सुख है, शांति है। मानव का स्वभाव सुधरता है तो मुक्ति भी सुलभ होती है।

बालक ध्रुव साष्टाँग वन्दन करता है। पांच वर्ष की उम्र है। सुरुचि नहीं कहती कि बेटा! तुम घर में रहो। सुरुचि ने सोचा कि वन में जायेगा तो अच्छा है। घर में रहेगा तो कुछ देना पड़ेगा। उत्तम के राज्य में सारा भाग आयेगा, अच्छा है। यदि यह वन में जायेगा तो सारा राज्य उत्तम को ही मिलेगा। सुरुचि ने कहा–तुम वन में जाओ, मेरा आशीर्वाद है।

दोनों माताओं को वंदन करके बालक ने घर छोड़ा। पांच वर्ष का बालक थोड़ा घबरा गया। सोचने लगा कि अब कहाँ जाऊँ? सुना है कि जंगल में बाघ-भालू रहते हैं। मुझे कोई मार डाले तो? ना, ना, मेरी माता ने आशीर्वाद दिये हैं। मैं अकेला नहीं हूँ मेरी माता के आशीर्वाद साथ में हैं। बालक वन में गया। आज बैकुण्ठ में परमात्मा को चिन्ता हुई। एक महान् पतिव्रता स्त्री ने मुझ पर विश्वास रखकर बालक को वन में भेजा है। उसका कैसा पति-प्रेम है। पति तिरस्कार कर रहे हैं, फिर भी वह पति को परमात्मा मानती है। पति में परमात्मा की भावना रखने वाली पतिव्रता स्त्री प्रभु को अति प्रिय है। भगवान् ने सोचा कि उसने कहा है कि यह बालक मैं प्रभु के चरणों में समर्पित कर रही हूँ अतः आज से वह मेरा पुत्र है। इसका बाल भी बाँका नहीं होने दूँगा।

प्रभु ने नारद जी को प्रेरणा की–बालक घर छोड़कर निकला है। आप उसे रास्ते में मिलिये। उसकी परीक्षा कीजिये। उसे उपदेश दीजिये। ध्रुवजी जिस मार्ग से जा रहे हैं, उसी मार्ग पर सामने से देवर्षि नारदजी आ रहे हैं। उन्होंने कछनी पहन रखी है। गले में तुलसी की माला है। भाल पर सुन्दर तिलक है, मुख में राम हैं, मन में राम हैं, आँखों में राम हैं। परमात्मा के नाम के जप करते हुए चलते हैं।

ध्रुवजी नहीं पहचान सके कि ये नारदजी हैं, पर माता ने सीख दी थी कि साधु संन्यासी को साष्टांग वंदन करना। परिधान से पता चला कि कोई सन्त हैं बालक ने रास्ते में साष्टाँग प्रणाम किया। नारदजी का हृदय आर्द्र हो आया। सोचा कि बालक बहुत बुद्धिमान है। इस जीव का

कल्याण हो! नारदजी बालक के सिर पर हाथ रखते हैं। उनके मुख से निकला–बेटा, तुम कहाँ जा रहे हो? बेटा–शब्द सुन कर बालक को सुनीति माता की याद आ गयी। मैं घर में था तब मेरी माता मुझे बेटा, बेटा! कहकर पुकारती थी। माता कैसा प्रेम करती थी।

नारदजी को देखकर बालक रोने लगा। उसे ऐसा लगा कि ये मेरी माता हैं। नारदजी ने बालक को हृदय से लगाया। प्यार किया। सद्गुरु माता हैं। एक माता बालक को दूध पिला कर पुष्ट करती है, जबकि माता-रूपी सद्गुरु सदैव के लिए प्रभु के मार्ग की ओर उन्मुख कराते हैं। फिर कभी किसी के पेट में जाने का प्रसंग ही नहीं आता। माता के स्तनपान का अवसर ही नहीं आता।

नारदजी प्रेम से पूछ रहे हैं–बेटा तुम्हें क्या हो रहा है? क्यों रो रहे हो? तुमने घर क्यों छोड़ दिया? बालक ध्रुवजी कहते हैं–मेरी माता ने मुझे कहा है कि भगवान् नारायण मेरे पिता हैं। मैंने परमात्मा के लिये घर छोड़ा है। मुझे भगवान् की गोद में बैठना है। इसलिए मैंने घर छोड़ा है। नारदजी ने परीक्षा की। कहा–बेटा तुम्हें भगवान् के दर्शन नहीं होंगे। तुम छोटे हो। तुम्हारी खेलने को उम्र है। तुम्हारी सौतेली माता ने तुम्हें कुछ कहा होगा पर वह मन में न रखना। चलो मैं तुम्हें घर ले चलता हूँ। बालक ने कहा–मुझे घर नहीं जाना है। मैंने परमात्मा के लिये घर छोड़ा है। भगवान् के दर्शन के बिना मैं किसी को मुँह दिखाना नहीं चाहता हूँ।

कई लोग घर छोड़कर साधु होते हैं, पर साधु होने के बाद उन्हें याद नहीं रहता कि मैंने घर क्यों छोड़ा है?

नारदजी ने कहा–बेटा! इस जन्म में तुम्हें भगवान् के दर्शन नहीं होंगे। ध्रुवजी ने कहा–गुरुजी! इस जन्म में दर्शन नहीं होंगे तो दूसरा जन्म लूँगा। मेरी माता ने कहा है कि भगवान् के नाम के जप करते-करते भगवान् को प्रेम से पुकारना। तभी उनके कानों तक ध्वनि पहुँचेगी। वे अवश्य कृपा करेंगे। मेरी माता ने ऐसा कहा है। मुझे घर नहीं जाना है।

नारदजी को विश्वास हो गया कि जो बीज बोया जायगा तो वह व्यर्थ नहीं जायगा, शिष्य लायक है–

तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि।
पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरेः॥ (४-८-४२)

नारदजी उसे समझा रहे हैं–तुम्हारी माता ने तुम्हें उचित उपदेश दिया है। पास ही मधुवन है। मधुवन में यमुनाजी विराजमान हैं। श्रीयमुना महारानी तुम्हें द्वारिकानाथ की गोद में बैठायेंगी। तुम्हारा ब्रह्म सम्बन्ध वे करा देंगी। तुम्हारे लिए प्रभु को मनायेंगी। तुम यमुनाजी के तट पर मधुवन में जाओ।

चतुर्भुज नारायण का ध्यान कैसे लगाना चाहिये, यही नारदजी सिखाते हैं–पहिले मानसी सेवा करनी है, फिर ध्यान लगाना। बेटा! बारह अक्षर का एक महामन्त्र है–ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। आँखें दर्शन करें, मन नारायण का स्मरण करे। जीभ जप करे और कान मन्त्र के अक्षरों को सुनें। तुम जप करना। तुम्हें नारायण के दर्शन होंगे। परमात्मा तुम्हें गोद में लेंगे। मेरा आशीर्वाद है कि छः मास में तुम्हें भगवान् के दर्शन होंगे। तुम जप करना तुम्हें नारायण के दर्शन होंगे। गीता में परमात्मा कहते हैं–

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।

आचार्यों ने यहाँ 'बहूनाम' का अर्थ 'त्रिभिर्जन्मभिः' किया है। तीन जन्म तो लेने ही पड़ते हैं पर नारदजी जैसे सद्गुरु मिल जायँ तो तीन महीनों में परमात्मा के दर्शन होते हैं। नारदजी बालक को मधुवन में जाने की आज्ञा देते हैं।

इधर उत्तानपाद राजा ने सुना कि बालक घर छोड़कर वन में गया है। राजा को आश्चर्य हुआ। पाँच वर्ष का बालक वन में पहुँचा है। राजा ने सिपाहियों को ध्रुवजी की खोज में भेजा। कहा कि मेरे पुत्र को खोज के लाइए। जो खोज कर लायेगा, उसे मैं बख्शीश दूँगा पर फिर भी ध्रुवजी का पता न मिला। त्याग में कितनी शक्ति है। आज राजा के भीतर की आँखें खुली हैं। ध्रुवजी घर में रहते तो राजा की मति सुधरने वाली न थी पर उसके घर छोड़ने पर राजा की बुद्धि शुद्ध हुई। वे सोचने लगे कि मैंने यह क्या किया? पाँच वर्ष का बालक सब कुछ छोड़ सकता है और मैं एक स्त्री को नहीं छोड़ सकता? मेरा मन स्त्री में फँस गया है। धिक्कार है मुझे, मेरे जैसा अधम जगत् में कोई नहीं होगा। सुनीति का कोई दोष नहीं है। सुरुचि के कहने से मैंने उसका त्याग किया। सुनीति महान् पतिव्रता है। उसकी कोई भूल नहीं है, मैंने उसको बहुत कष्ट दिये हैं।

आज राजा को सुनीति प्रिय लग रही है। आज कई दिनों के बाद उत्तानपाद सुनीति के घर आते हैं। सुनीति घर में रो रही है। विचारती है कि बालक कहाँ गया होगा? उसकी रक्षा कौन करेगा? एक दासी ने आकर कहा कि राजा आये हैं, सुनीति को आश्चर्य हुआ। कभी मेरे घर नहीं आये हैं, आज क्यों आये होंगे? अब मुझे कुछ सुनायेंगे–ऐसा लगता है। वह धीरज रखकर बाहर आयी। राजा के हृदय का परिवर्तन हुआ है आज वह सुरुचि में फँसा कामाँध उत्तानपाद राजा नहीं है। आज उसे सुनीति प्रिय लग रही है। सुनीति जैसे ही बाहर आती है, राजा उसके चरणों में झुकने लगता है। सुनीति मना करके कहती है–आप मेरे भगवान् हैं, मैं आपकी दासी हूँ। मुझे वंदन न करिये। राजा की आँखों में आँसू आ गये। अपने किये पापों पर पश्चात्ताप होने लगा। सोचा कि मैंने भूल की है। फिर कहा कि तुम दासी नहीं हो, तुम देवी हो। मैं तुम्हें पहिचान न सका।

बहुत दिनों के बाद पति-पत्नी का मिलन हुआ है। मन में जो पाप था, आँखों से बाहर आया है। राजा का हृदय अब शुद्ध हुआ है। उन्हें ध्रुव याद आता है। सोचते हैं कि मेरा ध्रुव कहाँ होगा? जीव का एक स्वभाव है। उसे संयोग में दोष दीख पड़ते हैं और वियोग में गुण याद आते हैं। जीव संयोग में प्रायः उपेक्षा करता है और वियोग में अपेक्षा करता है। आज राजा को ध्रुवजी के गुण याद आते हैं। विचारते हैं कि बहुत योग्य पुत्र है, मैंने इसका तिरस्कार किया। ध्रुव जहाँ हो, वहीं तुम मुझे ले चलो। अपने पुत्र को मैं देखना चाहता हूँ।

सुनीति ने कहा—उसे मैंने वन में भेजा है पर वह कहाँ गया है, वह मैं भी नहीं जानती हूँ। मेरा एक पुत्र घर में है। वह हमारी सेवा करेगा। एक पुत्र वन में गया है, वह परमात्मा की भक्ति करेगा। प्रभु को दया आयेगी। भगवान कृपा करके उसे दर्शन देंगे तो पुत्र घर आयगा।

नारदजी उस समय वहाँ आये हैं। नारदजी ने निश्चय किया है कि मुझे राजा को सुधारना है। ध्रुव मेरा शिष्य हुआ है। ध्रुव यमुनाजी के तट पर भक्ति कर रहा है और उसके पिता राजमहल में विलासी जीवन व्यतीत कर रहे हैं, यह उचित नहीं है। वह मेरे शिष्य का पिता है। मैं उसे सुधारना चाहता हूँ। सन्त जिसे अपना लेते हैं, उसके परिवार की भी चिन्ता करते हैं। नारदजी राजा का कल्याण करना चाहते हैं। उन्होंने राजा से कुशल समाचार पूछे हैं। राजा ने कहा—महाराज मैं ऐसा कामी हूँ। कि एक स्त्री के कहने से मैंने बालक का तिरस्कार किया। मेरा पुत्र मुझे छोड़कर चला गया है। नारदजी सब कुछ जानते थे पर राजा को सुधारने के लिये उलाहना देते हैं—अब रोने से क्या लाभ? बालक का अपमान प्रभु का अपमान है। आपने बहुत बुरा किया। अब रोने से बालक वापस नहीं आयेगा। राजा ने कहा—महाराज! आप जो कहेंगे, वह मैं करूँगा। नारदजी ने कहा—आप जैसे कामी राजा, जिनका मन स्त्री में फँसा है वे क्या कर सकेंगे? तुम स्त्री के अधीन हो। तुम से कुछ नहीं होगा। राजा ने कहा—महाराज! आप जो कहेंगे वही करूँगा। नारदजी ने कहा छह मास तक तुम्हें अनाज नहीं खाना है। छः मास दूध पर रहना है।

जीभ सुधरती है। तब ही जीवन सुधरता है। जीभ इन्द्रियों को विषयों में दौड़ाती है। जीभ सुधरती है, तब मन सुधरता है। छह मास दूध पर रहना है। अनाज नहीं लेना है, फल नहीं लेने हैं। छह मास दूध लेना है और ब्रह्मचर्य का पालन करना है। नारदजी ने सोचा कि छह मास दूध लेकर भगवान् के नाम का जप करेगा तो सुरुचि उसके मन से निकलेगी, सुरुचि में यह बहुत फँसा है। राजा को नारदजी ने छह मास का अनुष्ठान बतलाया और कहा कि छह मास तक इस महामन्त्र का निरन्तर जप करना है—

हरे राम! हरे राम! राम राम हरे हरे!
हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! कृष्ण कृष्ण हरे हरे!!

भगवान् के तीन नाम अति श्रेष्ठ हैं–'हरि' नाम पाप को जला देता है। श्रीकृष्ण की आकर्षण-शक्ति अलौकिक है। श्रीकृष्ण-कीर्तन करते हुए परमात्मा को मनाइए। श्रीकृष्ण-कीर्तन बराबर करने पर भगवान् मन को अपनी ओर खींच लेते हैं। श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण–प्रेम से बोलिये। भगवान् से कहये कि मैं अपने मन को नियंत्रित नहीं कर पाता। मेरा मन मेरे हाथ से छिटक ज़ाता है। बिना कारण संसार विषयों में भटकता है, मेरे मन का आकर्षण करिये, कुछ लोग 'कृष्ण कृष्ण' कहते हैं, कुछ लोग 'क्रष्ण-क्रष्ण कहते हैं–ये शुद्ध नहीं है। हमें 'कृष्ण कहना है। 'राम' परमानन्द परमात्मा हैं। अन्य मंत्र ऐसे हैं, कि गुरु के द्वारा ही ग्रहण किये जा सकते हैं। जिसने मंत्र सिद्ध किया है वही वह मंत्र दूसरे को दे सकता है पर यह मंत्र ऐसा दिव्य है कि इसको ग्रहण करने में गुरु की जरूरत नहीं रहती है। यह महान् मंत्र शय्या में बैठ कर भी जप सकते हैं।

नारदजी राजा को सावधान करते हैं–इस मंत्र का छह मास तक जप करना है। दूध ही आहार में लेना है। यदि तुम छह मास उचित रूप से जप करोगे तो बालक घर आयेगा।

ध्रुवजी मधुवन में यमुना-तट पर आ पहुँचे हैं। एक दिन का उन्होंने उपवास किया। दूसरे दिन से तपश्चर्या का प्रारंभ किया। तीन दिनों तक एक ही आसन पर बैठ कर चतुर्भुज नारायण का ध्यान करते हुए महामंत्र का जप करते हैं। तीन दिन पूर्ण होने पर उठते हैं, कंद-मूल भगवान् को समर्पित करते हैं। स्वयं एक बार खाते हैं। पुनः स्नान करके ध्यान-जप करने बैठ जाते है।

एक मास इस तरह ध्रुवजी ने तपश्चर्या की। जब दूसरा मास शुरू हुआ, तब संयम और बढ़ा दिया। अब तीन दिन नहीं, पर छह दिनों तक एक आसन पर बैठ कर तपश्चर्या करते हैं। ध्यान के साथ महामंत्र का समुचित रूप से जप करते हैं। तीसरे मास और भी संयम बढ़ा दिया। अब नौ दिनों तक एक आसन पर, बैठकर तपश्चर्या करते हैं। धीरे-धीरे आप भी संयम बढाइए मानव को सुख देने वाला संयम ही है। जिसके जीवन में इन्द्रियों का संयम है, जिसके जीवन में भक्ति का नियम है, उसे यमराज भी सजा नहीं देते हैं–

भगवद्गीता किंचितदधीता, गंगाजल लवकणिका पीता।
सकृदपि येन मुरारिसमर्चा, क्रियते तस्ययमेन न चर्चा।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते।।

कई लोग ऐसे होते हैं कि जब कथा होती है तब बहुत भक्ति करते हैं। वे एक बार भोजन करते हैं। किसी की निन्दा नहीं करते। सब तरह के संयम का पालन करते हैं पर जैसे ही कथा

पूर्ण हुई कि भक्ति की भी पूर्णाहुति हो जाती है। कथा की भले ही पूर्णाहुति हो पर भक्ति की पूर्णाहुति न करिये। भक्ति धीरे-धीरे बढ़ाइए। संयम भी बढ़ाइए। चौथा मास शुरु हुआ कि ध्रुवजी ने संयम और बढ़ा दिया। अब वे बारह दिनों तक एक आसन पर बैठते हैं। नारायण का ध्यान लगाते हैं, जप करते हैं। अब फल भी नहीं खाते हैं। यमुनाजी के जल का पान करते हैं यमुना जल के पान से ही काम चला लेते हैं। पाँचचा मास आया। पन्द्रह दिनों तक एक आसन पर बैठकर तपश्चर्या करते हैं। ध्यान के साथ जप करते-करते अब तन्मयता प्रकट हुई है। हृदय में नारायण का स्वरूप प्रकट हुआ है। नाम रूप को प्रकट करता है। रूप नाम के अधीन है। जिस नाम का आप निरन्तर जप करते हैं, वह उसी रूप को प्रकट करेगा। रूप परतन्त्र है। नाम स्वतन्त्र है। ध्रुव परमात्मा के नाम को पकड़ कर रखते हैं।

शान्ति से सोचने पर ध्यान में आयेगा कि आपके भीतर नारायण हैं। भीतर परमात्मा विराजमान हैं। फिर भी जीव दुःखी है, अज्ञानी और माया के बन्धन में है। अन्र्यामी नारायण किसी को सुख नहीं देते, किसी का दुःख भी दूर नहीं करते। अन्तर्यामी नारायण दयालु भी नहीं हैं और निष्ठुर भी नहीं है। अन्तर्यामी नारायण दीपक जैसे हैं। क्या दिये को दया आती है? किसी के पेट में दर्द उठ रहा हो तो अन्तर्यामी नारायण को जरा भी दया नहीं आयेगी। भीतर जो नारायण हैं, वे दीपक जैसे हैं, प्रकाशमय हैं। वे किसी को सुख नहीं देते, किसी के दुःख को दूर भी नहीं करते हैं। आपका प्रश्न होगा कि तो फिर ये भीतर बैठकर क्या करते हैं? अन्तर्यामी नारायण तो मन, बुद्धि और इन्द्रियों को प्रकाश देते हैं। वे और कुछ भी करते नहीं है। यह पुष्पों की माला है। वह जैसी भी दिखाई देती है, केवल आँखों के कारण। आँखों को प्रकाश मन देता है। मन को प्रकाश बुद्धि देती है और बुद्धि को प्रकाश अन्तर्यामी नारायण देते हैं। अन्तर्यामी नारायण को नाम से प्रकट करिये। परमात्मा के नाम से अति-प्रेम करिए। प्रभु के नाम के जप करते-करते तन्मय बनिये।

लौकिक नाम-रूप मिथ्या है, परमात्मा का नाम सत्य है परमात्मा का स्वरूप ही सत्य है आपको बहुत प्यास लगी हो और आप पानी, पानी, पानी की पुकार करते हैं पर इससे पानी आपके पास नहीं आता है। पानी जड़ है आपको पानी के पास जाना पड़ेगा। पर आप बहुत प्रेम से 'श्रीराम-श्रीराम' प्रभु का नाम जपिये। आप जहाँ भी होंगे, प्रभु आपके पास आयेंगे। अरे! प्रभु आयेंगे—ऐसा कहना भी उचित नहीं है क्योंकि प्रभु सर्व व्यापक हैं। आप जहाँ होंगे, वहाँ प्रभु प्रकट होंगे। सर्वव्यापक प्रभु नाम से प्रकट होते हैं। सर्वव्यापक परमात्मा माया के आचरण में हैं। परमात्मा के साथ अति प्रेम करने पर परमात्मा के नाम जपने पर भगवान् माया का आवरण दूर करके प्रकट होते हैं।

कदाचित आप कहेंगे कि महाराज़! आप भले ही कहिये। हम राम नाम के, श्रीकृष्ण नाम के जप करते ही हैं पर भगवान् श्रीकृष्ण हमारे पास कहाँ आते हैं? मानिये कि परमात्मा के तेज को सहने की शक्ति मानव में नहीं है। इससे परमात्मा दर्शन नहीं देते हैं। हमारे जैसे साधारण व्यक्ति परमात्मा का तेज नहीं सह सकते। इसी से प्रभु ने अपना स्वरूप छिपाया है। आप प्रभु के नाम के जप करिये। प्रभु के दर्शन भले ही न हों पर बहुत प्रेम से प्रभु के नाम के जप करिये। इससे आपको आनन्द मिलेगा। आनन्द परमात्मा का स्वरूप है, आनन्द ही भगवान् हैं।

आज ध्रुव के हृदय में नारायण का स्वरूप प्रकट हुआ है। ध्रुवजी को प्रत्यक्ष नारायण दीख पड़े हैं। परमात्मा के नाम के साथ जो तन्मय बनते हैं, उनके भीतर आनन्द प्रकट होता है। जिसे भीतर का आनन्द मिलता है, उसे बाहर का सुख तुच्छ लगता है। उसकी किसी की ओर देखने की इच्छा भी नहीं होती है। भीतर के आनन्द को पाने वाले का पाप नष्ट हो जाता है। भीतर का आनन्द प्रकट करिये। ध्रुवजी के हृदय में आनंदमय नारायण का स्वरूप प्रकट हुआ है। शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी नारायण के दर्शन उन्हें हुए है। ध्रुवजी अति आनंद में है। छठा मास आया, तब ध्रुवजी ने निर्णय किया कि अब तो शरीर से प्राण निकल जायें तो भी उठना नहीं हैं। भगवान् आज्ञा देंगे तभी उठना है।

जगत् भगवान् में निहित है। जगत के आधार भगवान् है। आज भगवान् के आधार ध्रुव हुए हैं। ध्रुवजी के हृदय में नारायण का स्वरूप है। जगत् भगवान् में है। भगवान् ध्रुवजी में है। ध्रुवजी का भार इतना बढ़ गया है कि धरती से सहन नहीं हो रहा है। आज देव–गन्धर्व ऋषियों ने नारायण से प्रार्थना की कि अब ध्रुवजी को दर्शन दीजिए। परमात्मा ने स्मित-हास्य किया और कहा—इसे मैं क्या दर्शन दूँ? महामंत्र के जप करते-करते वह कैसा तन्मय हो गया है। मेरा स्वरूप इसके हृदय मे प्रकट हुआ है। मेरे दर्शन इसे भीतर होते हैं। दर्शन देने की नहीं, पर बालक को देखने की मेरी भी तीव्र इच्छा हो रही है। मेरा पुत्र बहुत बुद्धिमान है। पाँच वर्ष का बालक है किन्तु सब कुछ इसने छोड़ दिया है। मेरे लिये यह शांति से बैठा है। अब मेरी बालक को देखने को तीव्र इच्छा हो रही है—

त एवमुत्सन्नभया उरुक्रमे कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम्।
सहस्त्रशीर्षापि ततो गरुत्मता मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः।।

(४-९-१)

भक्त भगवान् के दर्शन के लिये तड़पते रहते हैं पर कभी-कभी भगवान् की भी ऐसी इच्छा होती है कि मैं अपने भक्त के दर्शन करूँ! भक्त को देखकर भगवान् को आनंद होता है। ध्रुवजी को दर्शन देने नहीं पर ध्रुवजी के दर्शन करने भगवान् आज पधारे हैं। ध्रुवजी के समक्ष चतुर्भुज

नारायण प्रकट हुए हैं। ध्रुवजी की आँखें बंद हैं। उन्हें भीतर नारायण दीख रहे हैं। आँखें खोलने की इच्छा भी नहीं हो रही हैं। भगवान् ने सोचा कि दो-चार दिन खड़ा रहूँगा तो भी यह बालक आँखें खोलेगा नहीं। महामंत्र के जप से इसके हृदय में मेरा स्वरूप प्रकट हुआ है। प्रभु ने लीला की। ध्रुवजी के हृदय में जो स्वरूप प्रकट हुआ था, उसको प्रभु ने अंतर्धान कर दिया अब भीतर नारायण नहीं दीख रहे। ध्रुवजी व्याकुल हो रहे हैं। सोचते हैं कि मेरी कुछ गलती हुई है। मुझे प्रभु नहीं दीख रहे हैं और जब उन्होंने आँखें खोलीं कि जो स्वरूप भीतर दिखाई देता था, वही स्वरूप प्रत्यक्ष हुआ नारायण के प्रत्यक्ष दर्शन वे अब बाहर कर रहे हैं। लगा कि ये ही मेरे पिता हैं। बालक प्रेम से परमात्मा को देख रहा है। बार-बार वंदन कर रहा है। एक दृष्टि डालकर, हाथ जोड़कर बालक खड़ा है। वह दर्शन ही नहीं कर रहा, वह परमात्मा को पी रहा है। परमात्मा बालक को देखते हैं। ध्रुवजी की बोलने की इच्छा हो रही है पर कुछ भी पढ़े-लिखे नहीं हैं, इससे कुछ बोलना नहीं जानते हैं। फिर क्या कह सकते हैं?

परमात्मा को दया आ गयी। भगवान् के हाथ में जो शंख है, वह वेदतत्त्व है। बुजुर्ग जब प्रेम करते हैं, बालक के गाल पर स्पर्श करते हैं। परमात्मा ने लीला की है। शंख से ध्रुवजी के गालों पर प्रभु ने स्पर्श किया। जैसे ही स्पर्श हुआ सरस्वती जाग्रत हुई। एक जन्म नहीं जन्मान्तर तक पुस्तकों को पढ़ने पर भी ज्ञान का अन्त नहीं आता है। श्रीकृष्ण दर्शन में ही ज्ञान की समाप्ति है। जो भगवान् के दर्शन पाता है, वह सब-कुछ जान जाता है। जो परमात्मा को जान पाता है, वह सब कुछ जानता है। जो श्रीकृष्ण को प्रसन्न कर सकता है। वह सभी को प्रसन्न कर सकता है। परमात्मा को पाने को बाद कुछ शेष नहीं रहता है। अब सरस्वती जाग्रत हुई है। ध्रुवजी परमात्मा की सुन्दर स्तुति करते हैं–

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन् प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्॥

(४-९-६)

मेरे भीतर प्रवेश करके, मन, बुद्धि, इन्द्रियों को सत्कर्म में प्रेरणा देने वाले आदि नारायण परमात्मा के चरणों में मैं बार-बार वंदन करता हूँ। आपने बहुत कृपा की, इससे मुझे आपके दर्शन हुए। श्रीकृष्ण साधन-साध्य नहीं हैं, कृपा साध्य हैं। बहुत भक्ति करिये पर सावधान रहिये, भीतर अहम् न बढ़ने पाये। ऐसी भावना रखिये कि मेरे द्वारा कुछ नहीं हुआ है, मैंने कुछ भी नहीं किया है। कई लोग भक्ति करते हैं और बहुत अकड़कर रहते हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि मैं चार घंटा तक भक्ति कर रहा हूँ। पड़ोस के लोग कुछ नहीं करते हैं, उनसे मैं बहुत अच्छा हूँ। भक्ति में अहम्

बढ़ जायं तो समझिये कि भक्ति में कुछ भूल हो रही है। भक्ति समुचित रूप से होती है, तो अहम् नहीं रहता, अभिमान मर जाता है और हृदय दीन बनता है। मानव के पाप पहाड़-से हैं। मानव कितनी भक्ति करेगा? भगवान् कृपा-साध्य है। जीव थक जाता है और दीन भाव से प्रभु के सम्मुख रोता है, तब परमात्मा को दया आती है। प्रभु के दर्शन के बाद प्रभु के भक्त एक क्षण भी सेवा-स्मरण छोड़ नहीं सकते। भक्त और भगवान् एक हो जाते हैं। अद्वैत सिद्ध होने पर भी वैष्णव सेवा करते हैं-

त्वद्दत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं सुप्तप्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः।
तस्यापवर्ग्यशरणं तव पादमूलं विस्मर्यतं कृतविदा कथमार्तबन्धो॥

(४-९-८)

ऐसी कृपा करिये कि आपके भक्त आपका स्मरण करते-करते कथा कहें। ऐसी कथा सुनने की मेरी इच्छा है। सामान्य मानव जब बोलता है, तब नाभि से वायु ऊपर आती है और मुख से निकलती है। अज्ञानी पुरुष बोलते हैं और भक्त हृदय बोलता है। उसमें बहुत फर्क है। भक्त जब बोलते हैं तब परमात्मा के दर्शन-स्मरण में तन्मय हो कर बोलते हैं और तब वायु परमात्मा के चरण-कमल की सुगंध लेकर बाहर आती है। योगियों को समाधि में जो ब्रह्मानंद मिलता है, उससे भी कथा-कीर्तन का आनंद श्रेष्ठ है-

या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्म ध्यानाद्भवज्जनकथा श्रवणेन वा स्यात्।
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत किं त्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात्॥

(४-७-१०)

उपनिषद् में वर्णन आता है कि ब्रह्मानंद सर्वश्रेष्ठ है। चक्रवर्ती राजा से देवों का आनंद सौ गुना अधिक है। देवों के आनंद से ब्रह्मनिष्ठ योगी का आनंद अनेक गुना श्रेष्ठ है। जिसे काम मारता नहीं है, ऐसे निष्काम श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ को ब्रह्माकार वृत्ति में स्थिर होने के बाद जो आनंद मिलता है, वह सर्वश्रेष्ठ है। कथा-कीर्तन का आनंद मुझे इस ब्रह्मानंद से भी श्रेष्ठ लगता है। ब्रह्मानंद में एक-दो दोष हैं। ब्रह्मानंद निष्क्रिय है। पूर्ण निष्क्रिय हुये बिना ब्रह्मानंद नहीं मिलता है। भजनानंद निष्क्रिय नहीं है। ब्रह्मानंद एकांत निष्ठ है। वह किसी एक-अकेले को मिलता है, अनेक को नहीं मिलता है। भजनानंद निष्क्रिय नहीं है। कथा-कीर्तन का आनंद-भजनानंद अनेक भाष्य है। परमानंद-परमात्मा ने ध्रुवजी से कुछ माँगने के लिये कहा। ध्रुवजी ने कहा-मुझमें माँगने की शक्ति नहीं है। आपको जो उचित लगे, वही दीजिये। परमात्मा ने कहा-'बेटा! मेरी बहुत इच्छा है कि तुम कुछ वर्षों तक राज्य करो फिर मैं तुम्हें अपने धाम में ले जाऊँगा।'

परमात्मा ने ध्रुवजी को घर जाने की आज्ञा की। ध्रुवजी ने कहा–अब मुझे राज्य की इच्छा नहीं है। जब तक आपके दर्शन नहीं हुए थे, तब तक मेरे मन में राजा बनने की थोड़ी इच्छा थी, पर आपके दर्शन में मुझे ऐसा आनन्द मिला है कि अब मुझे राजा बनने का सुख तुच्छ लगता है। मुझे राजा नहीं होना है। अब मुझे पूर्व जन्म याद आ रहा है। पूर्व जन्म में गंगातट पर जब मैं परमात्मा का ध्यान कर रहा था, तब वहाँ एक राजा-रानी आये। रानी में मेरा मन ललचाया। इससे इस जन्म में मुझे राज-पुत्र के रूप में जन्म लेना पड़ा है। अब मैं राजा होऊँगा। तो किसी रानी के साथ मेरा विवाह होगा। कदाचित मेरा मन फिर बिगड़ जाय तो? परमात्मा ने कहा–नहीं भाई, अब तेरा मन नहीं बिगड़ेगा। जो मेरे पीछे पड़ते हैं मैं उनके पीछे पड़ता हूँ। कई लोग पैसों के पीछे पड़ते हैं। इस कथा को सुनकर अब परमात्मा के पीछे पड़िये। लक्ष्मी स्वयं आपके घर आयेगी। परमात्मा ध्रुवजी से कहते हैं–जो मेरे पीछे पड़ते हैं, मैं उनके पीछे पड़ता हूँ। बेटा! सुन्दर रानियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी। पर तुम्हारी आँखों में, मन में विकार नहीं आयगा। काम बहुत बलवान् हैं। बड़े-बड़े को यह मारता है पर भगवान् जिसकी रक्षा करते हैं, उसका काम कुछ नहीं बिगाड़ सकता है–

जेहि राखे रघुवीर ते उबरे तेहि काल महँ।

थोड़े दिनों तक तो बहुत से व्यक्ति संयम रखते हैं। कई लोग पन्द्रह दिनों तक रखते हैं। कई महीने भर रखते है। दो-तीन महीने संयम रखने पर शक्ति बढ़ती है और शक्ति बढ़ने पर काम थप्पड़ लगाकर पतन कराता है। ऐसा कुछ निमित्त बन जाता है। काम बहुत बलवान् है। भगवान् जिसकी रक्षा करते हैं वही कामाधीनं नहीं होता है। जीव में ऐसी ताकत नहीं है कि जीव सदैव के लिए काम के ऊपर विजय पा सके। मानव मूर्ख नहीं है पर मानव की बुद्धि सदैव जाग्रत नहीं रहती है।

भगवान् जिसकी रक्षा करते हैं, काम उसका कुछ नहीं कर सकता है। परमात्मा ध्रुवजी से कहते हैं कि बेटा! तुम्हारी राजा होने की इच्छा भले ही न हो, पर अपने ध्रुव को राजा होकर बैठे हुए देखने की मेरी बहुत इच्छा है। भगवान् लौकिक आनन्द भी देते हैं। पुरुषोत्तम सहस्र में भगवान् के दो नाम हैं–लौकिकानन्ददाता और ब्रह्मानन्द प्रदाता। जिस भक्त पर भगवान् को विश्वास है कि अधिक सुख पाने पर यह अधिक भक्ति करेगा, भगवान् ऐसे जीव को लौकिक आनन्द भी देते हैं।

ऐसा नहीं है कि मृत्यु के बाद ही आनन्द मिलता है। जिसके बारे में भगवान को विश्वास है कि अधिक सम्पत्ति मिलने पर यह अधिक परोपकार करेगा–भगवान् उसे अधिक सुख-सम्पत्ति देते हैं। जिसके बारे में भगवान् को शंका होती है कि अधिक सुख मिलने पर यह होश खो बैठेगा, उससे भगवान् दिया हुआ भी वापस ले लेते हैं। परमात्मा ने कहा कि मेरी बहुत इच्छा है कि

ध्रुव राजा हो। ध्रुव! तुम्हारे पिता तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अब तुम जल्दी घर जाओ। भगवान् की आज्ञा हुई। भगवान् अन्तर्धान हुए।

आज राजा उत्तानपाद को शुभ शकुन हो रहे हैं। उत्तानपाद महाराज की दायी आँख फड़क रही है। दायीं भुजा भी फड़क रही है। गाँव के बाहर बाग में ध्रुवजी बैठे हैं। राजा का एक सेवक वहाँ फूल चुनने, तुलसी लेने आता है। उसे ध्रुवजी के दर्शन हुए। वह दौड़ते-दौड़ते राजमहल पहुँचा और कहने लगा–बधाई है, बधाई है। राजकुमार आये हैं। राजा को अति आनन्द हुआ। सारे गाँव सुशोभित किया और राजा स्वयं ध्रुवजी का स्वागत करने पहुँचे।

थोड़ा सोचिये। छह मास पहिले ध्रुवजी राजा से मिलने गये थे, तब राजा ने उनकी ओर देखा तक न था। मुँह फेर लिया था। आज ध्रुवजी गाँव से बाहर बगीचे में बैठे हैं और वहाँ राजा स्वागत करने जा रहे हैं! आप जगत् के पीछे पड़ेंगे तो दुःखी होंगे पर यदि भगवान् के पीछे पड़ेंगे तो जगत् आपके पीछे-पीछे चलेगा। राजा रथ में बैठे हैं। दोनों रानियाँ पालकी में बैठी हैं। राजा सोच रहे हैं कि मैं वहाँ जाता हूँ पर मुझे ऐस लगता है कि मैंने बालक का बहुत अपमान किया था, इससे बालक अपनी माता के पास ही आयेगा, मेरे पास नहीं आयेगा। बालक मुझे प्रणाम करे, यह अच्छा भी नहीं है। मैं उसके योग्य भी कहाँ हूँ? अभी भी कभी-कभी सुरुचि याद आ जाती है। अभी भी मन से सुरुचि निकलती नहीं है। मैं स्त्री में फँसा हूँ। मैं अधम हूँ। वंदन के लायक भी नहीं हूँ। वंदन के योग्य तो मेरा यह पुत्र है। मेरा पुत्र अपनी माता को प्रणाम करेगा। उसकी माता देवी है। मैं दूर से देखूँगा।

ध्रुवजी ने देखा कि पिता का रथ आ रहा है। ध्रुवजी दौड़कर पहुँचे। रथ के आगे पहुँचकर वे साष्टाँग प्रणाम करते हैं। सारथि ने राजा को खबर दी कि महाराज, राजकुमार आपको वंदन कर रहे हैं।

जिस बालक का मैंने तिरस्कार किया, वही मेरे रथ के समक्ष साष्टाँग वंदन कर रहा है! कितना भोला है! कितना बुद्धिमान है! बालक वंदन कर रहा है–सुनकर राजा रथ में नहीं बैठ सके, रथ से कूद पड़े। राजा की आँखें भीग गईं। ध्रुव दीख नहीं रहा है। सोचते हैं कि मेरा पुत्र कहाँ गया? ध्रुवजी ने पिता के चरणों का स्पर्श किया। बोले–पिताजी! आपके चरणों में हूँ। राजा ने बालक को उठाकर हृदय से लगा लिया। पिता-पुत्र एक हुए। राजा की आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे। ये आँसू ध्रुवजी के सिर पर पड़ने लगे। राजा ने वहीं राज्याभिषेक किया है। ध्रुवजी ने कहा–पिताजी! मैं माताओं को वंदन करने जाता हूँ। दो पालकियों में दोनों माताएँ बैठी हैं। ध्रुवजी को याद आ रहा है कि मेरी माता ने कहा था कि मुझे तुम वन्दन नहीं करोगे तो भी मैं तुम्हें आशीर्वाद दूँगी। बेटा!

तुम्हारे पिता को जो प्रिय है उस सौतेली माता को प्रसन्न रखना। ध्रुवजी सुरुचि को प्रथम प्रणाम करते हैं। सुरुचि का हृदय द्रवित होता है। वह बालक को आशीर्वाद देती है। उसके हृदय का आज परिवर्तन हुआ है। सोचती है कि जिस बालक का मैंने तिरस्कार किया था, वही बालक वन में जाते समय भी मुझ को वंदन करने आया था। आज परमात्मा के दर्शन करके आया है। सारा संसार इसे वंदन करता है। अभी अपनी माता से भी नहीं मिला है और मुझे वंदन करने आया है। मन शुद्ध होने पर शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। ध्रुवजी का मन अति शुद्ध है। सुरुचि के हृदय में प्रेम जाग्रत होता है–

यस्य प्रसन्नो भगवान् गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः।
तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम्॥ (४-९-४७)

जिसका हृदय गंगा-जल के समान शुद्ध है, श्रीकृष्ण-प्रेम में जिसका हृदय आर्द्र हुआ है, ऐसा भगवान् का लाड़ला भक्त जब चलता है, तब रास्ते के पशु-पक्षी भी उससे प्रेम करते हैं, उसका वंदन करते हैं। रास्ते के वृक्ष भी झुक-झुक कर उसका वंदन करते हैं। सुरुचि के हृदय का परिवर्तन हुआ यह क्या कम आश्चर्य है? सुनीति माता ने देखा तो उनके हृदय में बहुत आनन्द हुआ। इसने सौतेली माता को प्रणाम किया, बहुत अच्छा किया। पुत्र बहुत समझदार है।

सुनीति माता प्रतीक्षा कर रही थी। ध्रुवजी दौड़ते हुए आ पहुँचे। सुनीति माता को उन्होंने प्रणाम किया। पुत्र को देखकर माता का हृदय भर आया। सुनीति माता ने पुत्र को हृदय से लगा लिया। उसका गला आर्द्र हुआ। मुख से शब्द नहीं निकल रहे हैं। स्तन से दूध की धारा बहने लगी–विचारने लगी कि यह मेरा ध्रुव है! लोग मेरे पुत्र ध्रुव की कथा करेंगे। मेरा भी नाम लेंगे। उसे परमात्मा के दर्शन हुए हैं। मैं लायक नहीं हूँ पर मैं उसकी माता हूँ। वह कभी मुझे भी परमात्मा का दर्शन करायेगा। इस प्रकार माता को अति आनंद हुआ है।

सुन्दर हथिनी को सजाया गया है। सब की इच्छा है कि ध्रुवजी उसके ऊपर विराजमान हों। राज्यारोहण की सवारी निकालनी है। ध्रुवजी ने कहा–'मैं अकेला नहीं बैठूँगा। ध्रुवजी से पूछा कि दूसरा कौन बैठेगा? ध्रुवजी ने कहा कि 'मेरे भाई को बुलाइए।' उत्तम को बुलाया गया। दोनों भाई प्रेम से मिले हैं। ध्रुवजी अकेले न बैठे पर भाई को साथ लेकर बैठे। जिसे भाई में भगवान् नहीं दिखाई देते, उसे मंदिर में भी भगवान् नहीं दिखाई देते। जिसे घर में बैठकर भक्ति करनी है, उसे घर के प्रत्येक व्यक्ति में भगवान् के दर्शन करने चाहिये। प्रत्येक जीव में भगवान् का निवास है।

ध्रुवजी मानते हैं कि मेरी माता भगवान् हैं, मेरे पिता भगवान् हैं, मेरा भाई भगवान् का स्वरूप है। भाई के साथ प्रपंच न करिये। पाप और पारा बाहर आता ही है। आज नहीं तो दो वर्षों के बाद प्रकट होकर ही रहेगा। भाई को कभी ठगना नहीं चाहिये। अपने भाई के साथ शुद्ध भाव से प्रेम करिये। जो घर के लोगों से प्रेम करता है, वह एक दिन परमात्मा के साथ भी प्रेम कर सकता है। जो भाई को ठगता है, वह परमात्मा को भी ठग सकता है।

माताएँ आरती कर रही हैं। अति आनंद प्रकट हो रहा है। ध्रुवजी को गोद में बैठाकर राज्याभिषेक किया गया है। उत्तानपाद राजा ने सोचा कि पुत्र योग्य है, वह अब राजा हुआ। अब मुझे घर में रहने की क्या आवश्यकता है? ध्रुव को सिंहासन पर बैठा कर उत्तानपाद राजा गंगातट पर भक्ति करने चले जाते हैं। प्राचीनकाल में बड़े-बड़े राजा राजमहल छोड़कर गंगातट पर भगवान् की भक्ति करने जाते थे, पर आजकल लोग भगवान् को छोड़कर बंगलों में बैठे रहते हैं।

उत्तानपाद राजा वन में जाते हैं, यही देखकर सुनीति ने भी विचार किया कि अब मुझे भी घर में रहना नहीं है। सुनीति के लिये अब सुख के दिन आये हैं पर सुनीति घर में नहीं रहती। सोचती है कि 'मेरे पतिदेव वन में जाते हैं और मैं घर में रहूँ, यह उचित नहीं हैं। पतिदेव के पीछे-पीछे वह भी वन में जाती है।

ध्रुवजी का विवाह हुआ। ध्रुवजी के पुत्र हुए—कल्प और वत्सर। ध्रुवजी के भाई एक दिन शिकार खेलने गये थे, वहाँ उनका यक्षों-गंधर्वों से युद्ध हुआ। युद्ध में उनकी मृत्यु हो गयी। फिर ध्रुवजी युद्ध में गये। भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध में ध्रुवजी के दादा स्वयंभू मनु भी आये हैं। वे ध्रुवजी को समझाते हैं कि बेटा! वैष्णव कभी वैर नहीं रखते। मरण के लिये कुछ निमित्त होता है। तुम्हारे भाई का आयुष्य पूरा हुआ, उसका यह निमित्त मात्र है। तुम यक्षों और गंधर्वों से युद्ध कर रहे हो, यह शोभास्पद नहीं है।

तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति॥ (४-११-१३)

सुख-दुःख में मन को शांत रखकर जो सहन करता है, जो प्रत्येक इन्द्रिय को नियंत्रण में रखता है और जो सर्व से मैत्री रखता है, उस जीव पर परमात्मा कृपा करते हैं।

यक्षों के मालिक कुबेर-भण्डारी को वंदन करके, उनसे क्षमा माँगकर ध्रुवजी महाराज घर आये। कई वर्षों तक उन्होंने राज्य किया और फिर अपने पुत्र वत्सर को सिंहासन पर बैठाकर

बदरी-आश्रम में गंगातट पर भक्ति करने गये। छोटे थे, तब यमुनाजी के तट पर गये थे। यमुनाजी भक्ति देती हैं, श्रीगंगाजी मुक्ति देती हैं। गंगामाता मरण सुधारती हैं–मरणं जाह्नवी तटे....श्रीगंगाजी गौर हैं, श्रीयमुनाजी श्याम हैं। गंगामाता का वाहन मगर हैं। यमुनाजी का वाहन कच्छप है। बदरी आश्रम में ध्रुवजी गंगातट पर बैठे हैं। हृषीकेश से जब आप स्वर्गाश्रम जाते हैं, तब रास्ते में एक स्थान आता है। जहाँ ध्रुवजी बैठे हैं, उसे 'ध्रुवजी का टीला' कहते हैं। वहाँ ध्रुव नारायण का मंदिर है। आज भी वहाँ बड़ा चमत्कार है। जब कभी जाइए तो अवश्य दर्शन करिये। ध्रुवजी जहाँ बैठे हैं, वहाँ गंगाजी अति शांत हैं। हृषीकेश से ऊपर जाने पर किसी भी स्थान पर गंगाजी के शाँत रूप का दर्शन नहीं होता है। वहाँ गंगाजी का अति प्रवेग है। बड़े-बड़े पर्वतों को उखाड़कर क्लकल ध्वनि में गंगाजी दौड़ती हैं। कमर तक पानी में खड़े रहकर स्नान करने की हिम्मत नहीं होती है–ऐसा तीव्र वेग है, पर एक ध्रुव-आश्रम में गंगाजी अति शाँत हैं। ध्रुवजी जहाँ बैठे थे, वहाँ भी गंगा का वेग बहुत प्रबल था। क्लकल ध्वनि से गंगाजी दौड़ती थीं। ध्रुवजी का मन स्थिर नहीं हो पाता था। ध्रुवजी ने सोचा कि अब वन में जाकर किसी वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान करना चाहिये। गंगाजी की ध्वनि तो बहुत है। ध्रुवजी जाने के लिये उठकर खड़े हुए। तुरन्त श्री गंगामाता प्रत्यक्ष बाहर आयीं। श्री गंगामाता चतुर्भुजी हैं। ध्रुवजी वंदन करते हैं। माता ने पूछा–'बेटा! तुम क्यों खड़े हो गये?' ध्रुवजी ने कहा–'इस क्लकल ध्वनि के कारण मेरा मन स्थिर नहीं हो पाता है। अब जंगल में वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान करूँगा। गंगाजी ने कहा–'बेटा! तुम्हारे जैसे लाड़ले भक्त आते हैं, तब मुझे बहुत आनंद आता है। तुम मेरे तट को न छोड़ना। आज से मैं मौन रहूँगी। अब मैं एक शब्द भी नहीं कहूँगी।

ध्रुवजी के लिये गंगाजी ने मौन धारण किया है। आज तक मौन चालू ही है। ध्रुवाश्रम में गंगाजी अति शांत हैं। ध्रुवजी का प्रेम बहुत बढ़ा है। अब परमात्मा को ध्रुवजी के बिना चैन नहीं आता है। पार्षद, विमान लेकर आये हैं। ध्रुवजी ने गंगा में स्नान किया है। गंगा-तट पर जितने संत-महात्मा थे सभी को वे साष्टाँग वंदन करते हैं–

तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शान्तकमागतम्।
मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहादद्भुतं गृहम्॥ (४-१२-३०)

विमान के पास ध्रुवदेव आ पहुँचे हैं। मृत्युदेव ने सिर झुका लिया है। एक पाँव उन्होंने मृत्यु के सिर पर रखा और दूसरा पाँव विमान में रखा। ध्रुवजी ने स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीर छोड़ दिये।

तेजोमय दिव्य स्वरूप धारण कर लिया। काल एक-एक की छाती पर चढ़ कर बैठता है किन्तु भगवान् के लाड़ले भक्त काल के सिर पर पाँव रखते हैं। काल के काल परमात्मा की जो भक्ति करते हैं, वे भगवान् के लाड़ले भक्त ही मृत्यु के सिर पर पाँव रख सकते हैं। ध्रुवजी बैकुण्ठ धाम में जा रहे हैं, उसी समय उन्हें माता सुनीति का स्मरण हुआ। सोचंते हैं कि आज मैं विमान में बैठकर बैकुण्ठ धाम में जा रहा हूँ। मैं छोटा था, तब माता मुझे कैसा बोध देती थी। माता के आशीर्वाद से मैं विमान में बैठा हूँ। कई वर्ष हो गये, मेरी माता ने शरीर छोड़ दिया है। वह जीवात्मा इस समय कहाँ होगा? उसकी कैसी गति होगी? माता के स्मरण से ध्रुवजी की आँखें गीली हो गई हैं। परमात्मा के पार्षद समझ गये कि ध्रुवजी को माता का स्मरण हो रहा है। उन्होंने ध्रुवजी से कहा—जरा ऊपर दृष्टि डालिये। ध्रुवजी ने ऊपर देखा, तो एक विमान जा रहा था। उसमें सुनीति माता बैठी थी। विमान के भीतर भगवान् के पार्षद सुनीति माता को समझा रहे हैं—आपका पुत्र महान् भगवद्भक्त हुआ, उसके प्रताप से आप विमान में बैठी हैं। ध्रुवजी जैसा पुत्र पहिले माता-पिता को मुक्ति दिलाता है और फिर स्वयं मुक्ति प्राप्त करता है।

पुत्र की प्रशंसा सुनकर माता का हृदय पिघलने लगा। वे सोचने लगी कि मैंने कभी ध्यान नहीं किया, कभी भक्ति नहीं की। अपने ध्रुव के कारण मैं विमान में बैठी हूँ। मेरे पुत्र ने मेरा उद्धार किया। मैंने उसे जन्म दिया, उसने मुझे मुक्ति दिलायी है। जन्म मरण के त्रास से मुझे छुड़ाया है। वह मुझे प्रभु के धाम में ले जा रहा है। सुनीति ने पूछा—मेरे पुत्र की आप प्रशंसा कर रहे हैं पर मेरा पुत्र ध्रुव कहाँ है? अपने पुत्र को मैं एक बार देखना चाहती हूँ। पार्षदों ने कहा—माता, आप नीचे दृष्टि डालिए। ऊपर विमान में विराजमान सुनीति नीचे देख रही है, ध्रुवजी के ऊपर दृष्टि डालती है। माता-पुत्र की दृष्टि का मिलन हुआ। ध्रुवजी को माता के दर्शन हुए। आनन्द हुआ। ध्रुवजी ने हाथ जोड़े, सिर झुकाया। माता ने दोनों हाथ ऊँचे किये हैं। बेटा! जय-जयकार होगा। सूर्य-चन्द्र रहेंगे, तब तक लोग तुम्हारी कथा करेंगे।

ध्रुवजी बैकुण्ठ धाम में पधारे तब प्रभु ने बैकुण्ठ में बड़ा उत्सव मनाया। भगवान् जब जीव के घर आते हैं, तब जीव उत्सव मनाता है उसी तरह जब कोई जीव संसार छोड़कर प्रभु के धाम में जाता है, तब भगवान् भी उत्सव मनाते हैं कि मेरा पुत्र आज घर आया है परमानन्द हुआ है। सभी प्रसन्न हुए हैं। जब नारदजी ने सुना कि मेरा शिष्य मृत्यु के सिर पर पाँव रखकर विमान में बैठकर बैकुण्ठ में पहुँच गया है, तब वे भी खुश हुए, पर उनको थोड़ा बुरा भी लगा। नारदजी

ने सुना, कि मेरा शिष्य विमान में बैठकर वैकुण्ठ पहुँच गया और गुरु तो अभी भटक ही रहे हैं। मेरे लिए विमान भी नहीं आते हैं? नारदजी ने सोचा कि मैंने कथाएँ तो बहुत-सी की हैं पर ध्रुव जैसी भक्ति नहीं की है।

भोजन की बहुत-सी बातों को करने से तृप्ति नहीं होती है। भोजन करने से ही तृप्ति होती है। कई लोग कथा करवाते हैं और समझ बैठते हैं कि मेरे लिए बैकुण्ठ में स्थान रखा गया होगा। मैंने भागवत की कथा करवाई है। कथा करिए, कथा करवाइए बहुत अच्छा है। कथा से पाप जलते हैं। कथा स्वदोष का ज्ञान करती है पर कथा सुनने के बाद भक्ति करनी ही पड़ती है। नारदजी को विश्वास हो गया कि मैंने बहुत सी कथाएँ की हैं, अब शान्ति से बैठकर भक्ति करनी चाहिए–

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः।

कई बार ऐसा होता है कि कथा करने वाला भटकता रहता है और कथा सुनने वाला तैर जाता है। कथा का एकाध शब्द भी मर्म को स्पर्श कर लेता है तो जीवन सुधर जाता है। कथा करने वाला धन और कीर्ति में फँसा रहता है। धन और कीर्ति को छोड़कर परमात्मा से प्रेम न करने पर, ध्रुवजी के सदृश भक्ति न करने पर, मुक्ति कहाँ से मिलेगी? नारदजी ने सोचा कि बहुत-सी कथाएँ कीं पर ध्रुव जैसी भक्ति नहीं की। नारदजी जहाँ जाते हैं, ध्रुव चरित्र की कथा करते हैं पर नारदजी बहुत विवेक से कथा कहते हैं। ऐसा कभी नहीं कहते–ध्रुव मेरा शिष्य था और मैं उसका गुरु हूँ। नारदजी सोच रहे हैं कि मेरा शिष्य मुझ से श्रेष्ठ है। वह मृत्यु के सिर पर पाँव रखकर बैकुण्ठ पहुँचा है। नारदजी कथा में विवेक से कहते हैं कि सुनीति माता ने समझाया और बालक वन में गया। वहाँ एक साधु मिला–ऐसा नहीं कहते कि वन में मैं मिला। नारदजी कथा में बहुत विवेक से बोलते हैं। वे सुनीति माता की बहुत प्रशंसा करते हैं। कहते हैं कि धन्य है माता सुनीति को उनका अपने पति में कैसा भाव था। वे महान् पतिव्रता थी। इसी से उनका पुत्र भी महान् भगवद्भक्त बना।

परमात्मा श्रीकृष्ण के चरणों में आश्रय पाने से जीवात्मा निर्भय बनता है इस जीव में बहुत कम शक्ति है और बुद्धि भी बहुत अल्प है। अल्प शक्ति, अल्प बुद्धि होने से जीव बहुत घबराता है। मानव को भय लगता है, ऐसा नहीं है, स्वार्थ के देव भी काल से भयभीत होते हैं। काल के काल परमात्मा के साथ जो प्रीति करते हैं उन्हें काल की भीति नहीं रहती है। काल जगत् का भक्षण करता है। उसी काल का भक्षण परमात्मा करते हैं। परमात्मा महाकाल हैं। काल, परमात्मा का दास है। किसी भी जीव का हिसाब लेने का मन होने पर परमात्मा काल को आज्ञा देते हैं कि

उस जीव को पकड़ कर ले आओ। जीव काल से भय खाता है, स्वामी से प्रेम होता है तो दास से भय नहीं लगता है। परमात्मा से प्रेम करिये। संबंध के बिना प्रेम नहीं हो सकता है। परमात्मा को पिता मानिये, आप पुत्र बनिये। परमात्मा को स्वामी मानिये, आप दास बनिये। परमात्मा से संबंध जोड़िये। संबंध से ही स्मरण होता है। जीव कथा सुनता है, मन्दिर में दर्शन करता है, पर परमात्मा से कोई संबंध नहीं रखता है। जब संसार के संबंध छोड़ने का समय आता है, तब जीव बहुत घबराता है। सोचता है कि अब मैं कहाँ जाऊँ? मेरा क्या होगा परमात्मा से संबंध जोड़कर रहिंये। अंतकाल में वही सार्थक बनेगा।

ध्रुवजी ने प्रभु के साथ संबंध रखा था। उन्होंने माना कि परमात्मा मेरे पिता हैं, मैं उनका पुत्र हूँ। कई भक्त भगवान् को स्वामी मानते हैं, अपने को दास मानते हैं। कई परमात्मा को पति मानते हैं। परमात्मा सभी के स्वामी हैं, पति हैं, जीव पत्नी है–

पाति इति पतिः।

जो रक्षा करते हैं, जो पोषण करते हैं, उन्हें पति कहते हैं। सच्चे पति तो श्रीकृष्ण हैं। लौकिक पति, पत्नी को मृत्यु के मुख से नहीं बचा सकता है।

गीताजी के सातवें अध्याय में जीव को प्रकृति रूप माना गया है। परमात्मा की दो प्रकृति हैं–परा-प्रकृति और अपरा-प्रकृति। अपरा-प्रकृति यानी जगत् और परा-प्रकृति यानी जीव। जीव प्रकृति रूप है। स्त्री है। सभी जीव काल से भयभीत होते हैं पर काल किसी को नहीं छोड़ता है। सभी को वह मारता है।

हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जिसे भय लगता है, वह स्त्री है। जो निर्भय है वह पुरुष है। निर्भय एक परमात्मा श्रीकृष्ण हैं। यह जीव परतंत्र है, स्वतंत्र नहीं है। परतंत्र है, वह स्त्री है। जो स्वतंत्र है, वह पुरुष है। स्वतंत्र एक परमात्मा श्रीकृष्ण ही हैं। तभी कहा गया है–

पुरुष एक पुरुषोत्तम है और सब व्रजनारी हैं।

कई लोग ऐसा मानते हैं कि 'मैं स्वतंत्र हूँ', मुझे कोई कुछ कहने सुनने वाला नहीं हैं यह भूल है। कलियुग का मानव एक साधारण वस्तु के आधीन हुआ है। कई लोगों को तम्बाकू के बिना नहीं चलता। कई कथा में आते हैं तो भी पान-सुपारी लेकर आते हैं। कईयों के मन में ऐसा है कि कथा में जा रहा हूँ और पान-सुपारी खाना अच्छा नहीं है। फिर भी मन में ऐसा है कि कथा में जा रहा हूँ और पान-सुपारी खाना अच्छा नहीं हैं। फिर भी मन को मना लेते हैं कि 'मुझे तो दूर बैठना है। महाराज की दृष्टि मुझ पर नहीं पड़ेगी। इससे कोई हर्ज नहीं है। कलियुग का मानव

एक साधारण वस्तु का गुलाम बन गया है। वह स्वतंत्र कहाँ है? सभी काम के अधीन हैं। जीव स्वतंत्र नहीं है; स्वतंत्र एक परमात्मा ही हैं।

परमात्मा को पिता मानिये, पति मानिये, स्वामी मानिये—प्रभु के साथ किसी प्रकार का संबंध रखिये। संबंध से स्नेह आता है। गाँवों में कई लोगों को बुखार आ रहा है। सभी के घर खबर लेने आप नहीं जाते हैं। जिनके साथ आपका संबंध है, उनके घर ही जाते हैं। उनके प्रति स्नेह-संवेदन रहता है। परमात्मा के साथ संबंध जोड़िये। परमात्मा के साथ संबंध जोड़ने के पर ध्रुवजी महाराज मृत्यु के सिर पर पाँव रखकर प्रभु के धाम में पहुँच गये।

ध्रुव-चरित्र की समाप्ति में मैत्रेय स्वामी ने विदुरजी से कहा था कि एक बार प्रचेत्ताओं ने बड़ा ब्रह्मसत्र किया था। उस ब्रह्मसत्र में अनेक ऋषि-महात्मा पधारे थे। नारदजी महाराज भी वहाँ पधारे थे। नारदजी ने उन प्रचेत्ताओं के ब्रह्मसत्र में ध्रुव-चरित्र की कथा की थी। वह कथा विदुरजी, मैंने आपको सुनायी। परम पवित्र ध्रुव-चरित्र की यह कथा, वक्ता और श्रोता—दोनों के पापों को जलाने वाली है। वक्ता प्रेम से कथा का वर्णन करें और श्रोता प्रेम से श्रवण करें तो उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में अनन्य भक्ति प्राप्त होती है।

२७—मुझे दस हजार कान दीजिये

निशम्य कौषार विणोपवर्णितं ध्रुवस्य वैकुण्ठपदाधिरोहणम्।
प्ररूढभावो भगवत्यधोक्षजे प्रष्टुं पुनस्तं विदुरः प्रचक्रमे।।
के ते प्रचेतसो नाम कस्यापत्यानि सुव्रत।
कस्यान्ववाये प्रख्याताः कुत्र वा सत्रमासत।।

(४-१३-१/२)

विदुरजी ने प्रश्न किया कि महाराज ये प्रचेता कौन हैं? प्रचेताओं का ब्रह्मसत्र कहाँ हुआ था? यह कथा विस्तार से श्रवण करने की इच्छा हो रही है। शुकदेवजी महाराज ने परीक्षित को, मैत्रेय स्वामी ने विदुरजी को यह कथा सुनायी है।

प्रचेता ध्रुवजी के वंश में ही प्रकट हुए हैं। ध्रुवजी महाराज के बाद ध्रुवजी के पुत्र वस्तर सिंहासन पर बैठे। वत्सर महाराज का विवाह स्वर्वीथि रानी के साथ हुआ था। वत्सर के इस रानी से पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्ज, वसु और जय नाम के छह पुत्र हुए।

इस वंश में अँग नाम का राजा हुआ। अँग राजा का विवाह मृत्यु की कन्या सुनीथा के साथ हुआ था। सुनीथा द्वारा अँग का वेन नाम का पुत्र हुआ। अँग राजा सदाचारी थे पर पुत्र वेन दुराचारी

हुआ। पति-पत्नी भूल करते हैं तो पापी प्रजा उत्पन्न होती है। अँग राजा की भूल न थी, पर रानी की भूल थी। सुनीथा को शाप था कि उसे क्रूर-हिंसक पुत्र मिलेगा। इससे उसके साथ कोई विवाह नहीं करना चाहता था। तब उसने वशीकरण मन्त्र से अँग राजा को वश में कर लिया और उनके साथ विवाह किया। इससे पुत्र अति पापी दुराचारी हुआ। वेन ऐसा दुष्ट हुआ कि वह बालकों की हिंसा करता रहता। लोगों को बहुत त्रास देता रहता था। अँग राजा उसको समझाते रहते पर वह मानता न था। पुत्र सुधरता नहीं है—ऐसा सोचकर अँग राजा बहुत दुःखी हो रहे हैं। एक दिन एक सन्त अँग राजा के घर आये। सन्त, अंग राजा को समझाते हैं—भगवान् की भक्ति कीजिये और सोचते रहिये कि भगवान् की मुझ पर बहुत दया है। मैं जितनी भक्ति करता हूँ, उतनी कम है। ऐसा निश्चय कीजिये।

जो यह समझ रहा है कि भगवान् की मुझ पर बहुत कम कृपा हैं, वह भक्ति नहीं कर सकता। प्रभु के उपकार स्मरण करिये। अँग राजा ने कहा—मुझ पर प्रभु की कृपा नहीं है। मेरा पुत्र दुष्ट है। यह मुझे बहुत त्रस्त करता है। सन्त समझाने लगे कि इसी से ही मैं कहता हूँ कि तुम पर प्रभु की बहुत कृपा है—

कदपत्यं वरं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात्।
निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत्क्लेशनिवहा गृहाः।। (४-१३-४६)

भागवत का एक सिद्धान्त है कि भगवान् जिस स्थिति में रखते हैं, उस स्थिति में सन्तोष रखिये। प्रभु का उपकार मानकर भक्ति कीजिये। भगवान् में ऐसा दृढ़ विश्वास रखिये कि भगवान् को कुछ गलत करना आता ही नहीं है। भगवान् कभी गलत कर ही नहीं सकते। जीव गलत कर सकता है। जीव अन्याय कर सकता है। प्रभु के दरबार में अन्याय नहीं है। जीव निष्ठुर हो सकता है, परमात्मा निष्ठुर नहीं है। वे बहुत दयालु हैं। भगवान् जो कुछ करते हैं, मेरे कल्याण के लिए करते हैं, मेरे मंगल के लिये करते हैं।

घर में लायक पुत्र है तो मन को समझाइए—पुत्र बहुत लायक है। मैं जो भक्ति कर रहा हूँ, बहुत कम है। अब मुझे घर के काम में दखल नहीं देना चाहिये। पुत्र सब कुछ सम्भाल रहा है। मैं सारा दिन भक्ति करता रहूँगा। पुत्र लायक होता है तो प्रभु का उपकार मानकर निरन्तर भक्ति करिये। कदाचित पुत्र लायक न हो तो भी भगवान् का उपकार ही मानिये। मन को समझाइये कि पुत्र लायक नहीं है। अच्छा ही है। पुत्र लायक होता है तो पुत्र में माता-पिता की आसक्ति रहती है। पुत्र में आसक्ति रहती है और पुत्र के पुत्र-पौत्र में अधिक आसक्ति रहती है। काँटे को पाँव तले कुचलना सरल है, पर फूल को पाँव तले कुचलना कठिन है। पाँवों में जूते हैं तो काँटों पर

पाँव रखकर चल सकते हैं पर फूलों पर पाँव रखकर चलना असम्भव हो जाता है। घर के लोग काँटे जैसे हैं, त्रस्त करते हैं तो उनका मोह छूटता है पर घर के लोग अनुकूल हैं, सुख देने वाले हैं, तो सुख में मन फँसा रहता है। पुत्र लायक हो, माता-पिता की सेवा करने वाला हो तो पुत्र में माता-पिता की आसक्ति रहती है पर घर में नालायक पुत्र हो तो भी अच्छा ही है, मन से सोचिये कि मेरा मन पुत्र में फँस न जाय इसलिये प्रभु ने मुझे ऐसा नालायक पुत्र दिया है। पुत्र मेरे बाद कुछ नहीं करने वाला है, इसंसे अपने द्वारा ही मुझे जो कुछ करना है, करना चाहिए। पुत्र नालायक हो तो भी मन को शान्त रखिये और भक्ति कीजिये।

कार्तिक मास में एक बार ऐसा हुआ कि तुकाराम महाराज, एकनाथ महाराज, नरसिंह मेहता–देश–विदेश से अनेक संत–महात्मा पंढरपुर में इकट्ठे हुए। एकनाथ महाराज विट्ठलनाथजी के दर्शन करते हैं। एकनाथ महाराज की पत्नी बहुत लायक थीं, महान् पतिव्रता थीं। एकनाथ महाराज को भगवान् के दर्शन करते हुए आँखों में आँसू आ गये हैं–'प्रभु ने मुझ पर बहुत कृपा की, घर में मुझे स्त्री-संग नहीं दिया, पर सत्संग दिया है। कभी मुझे क्रोध आ जाता है तो पत्नी प्रेम से समझाकर पाप करने से बचा लेती है। मुझे प्रभु के नाम की ओर ले जाती है। पत्नी कहती है–आप क्रोध क्यों कर रहे है? मन को शांत रखिये। आप भगवान् की भक्ति कीजिए। मैं आपकी भक्ति करूँगी, आप मेरे भगवान् हैं। मैं घर की देखभाल करूँगी। घर की चिन्ता न रखिये, सारा दिन भक्ति करिये। वह स्त्री नहीं है, संत है। आपने लायक पत्नी दी है, इससे मैं सारा दिन भक्ति कर सकता हूँ। आपके अनंत उपकार हैं। एकनाथ महाराज भगवान् का उपकार मानते हैं।

उनके पीछे तुकाराम महाराज खड़े थे। तुकाराम महाराज के भी विट्ठलनाथजी के दर्शन करते हुए आँखों में आँसू बह रहे हैं–कहते हैं। कि मेरे प्रभु ने जो किया, अच्छा ही किया है। प्रभु ने मुझे ऐसा रत्न दिया है कि मुझे कभी घर का स्मरण ही नहीं होता है। मेरी घर जाने की जरा भी इच्छा नहीं होती है। तुकाराम महाराज के घर में कर्कशा पत्नी थी। महाराज को बहुत त्रस्त करती थी। महाराज सारा दिन एक पर्वत पर बैठकर भक्ति करते रहते। घर जाते ही न थे। घर जाते तो पत्नी टंटा कर सकती है न! इससे तुकाराम महाराज कहते हैं कि प्रभु ने जो किया है, अच्छा ही किया है। मुझे घर का स्मरण तक नहीं होता। मैं सारा दिन 'विट्ठल-विट्ठल' जप करता हूँ, ध्यान करता हूँ। मेरे प्रभु जानते थे कि तुकाराम को अनुकूल पत्नी मिलेगी तो पत्नी में आसक्त हो जायगा। पत्नी में मेरी आसक्ति न हो, इससे ऐसी प्रतिकूल पत्नी दी है। अनुकूल पत्नी होती तो मैं भगवान् की नहीं, पत्नी की भक्ति करता होता! पत्नी के त्रास के कारण मुझे विश्वास हो गया है कि संसार में सार नहीं है, संसार में सच्चा सुख नहीं है, इससे मैं प्रभु के पीछे पड़ा हूँ,

नहीं तो मैं प्रभु को भूलने ही वाला था! मेरे प्रभु! आपने जो कुछ भी किया, अच्छा ही किया, विचारपूर्वक किया है। आपके अनंत उपकार हैं।

उनके पीछे नरसिंह मेहता खड़े थे। उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई थी। वे विट्ठलनाथजी के दर्शन करते-करते नाचने लगे। आनंद में नाचने लगे। 'राधे-गोविन्द.... भजो राधे-गोविन्द'...... विचारने लगे कि प्रभु ने बहुत अच्छा किया! मेरे देखते ही उसकी यात्रा निकली। अब मुझे कोई चिन्ता नहीं है। पत्नी होती तो चिन्ता रहती। आपने उचित ही किया। अब घर में कोई पूछने वाला नहीं रहा। घर में आपका और मेरा– हम दोनों का राज्य स्थापित हो गया है। मैं और मेरे प्रभु–बहुत भक्ति करूँगा। आनंद आयगा। भक्त और भगवान् के बीच तीसरे के कारण बहुत गड़बड़ होती है। भक्ति में बिघ्न आते हैं। नरसिंह मेहता भगवान् को मना रहे हैं कि आपने अच्छा ही किया! 'अब झंझट दूर हुआ। अब सुख से प्रभु का स्मरण करेंगे!'

एकनाथ महाराज की पत्नी बहुत अनुकूल थी, इससे प्रभु का उपकार मानते हैं। तुकाराम महाराज की पत्नी प्रतिकूल मिलीं, इससे प्रभु का उपकार मानते हैं और नरसिंह मेहता की पत्नी की मृत्यु हो गयी, इससे परमात्मा का उपकार मानते हैं। प्रभु जिस स्थिति में रखते हैं, उस स्थिति में संतोष मानिये, मन को शांत रखिये। भक्ति का शत्रु लोभ है। प्राप्त स्थिति में जिसे संतोष नहीं है वह भक्ति नहीं कर पाता।

संत अँगराजा को समझाते हैं–'तुम्हारे घर नालायक पुत्र है तो वह प्रभु की कृपा हैं। पुत्र त्रास दे रहा है फिर भी पुत्र में तुम्हारी आसक्ति है। अभी तुम घर नहीं छोड़ रहे हो! पुत्र बिगड़ा हुआ है, तुम भी पुत्र में आसक्ति रख रहे हो तो अब तुम्हारा भी मरण बिगड़ने वाला है। पुत्र मूर्ख है, तुम तो समझदार हो!'

घर के लोगों को एक बार–दो और तीन बार समझाइए। वे मान जाते हैं तो अच्छा है, नहीं तो फिर सोचिये कि 'जय श्रीकृष्ण'। प्रभु ने सोचा होगा। मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा किया। आप अपना कर्त्तव्य करिये। यों किसी मानव में आप ममता न रखिये। कोई स्त्री मेरी नहीं है, कोई पुरुष मेरा नहीं है, भगवान् मेरे हैं। मानव में ममत्व रखने वाले को बहुत सहना पड़ता है ।

संत राजा से कहते हैं कि 'पुत्र में ममता न रखो। घर को 'जय श्रीकृष्ण' करो और गंगा-तट पर चले जाओ। अंगराज के भीतर की दृष्टि खुल गई। अँगराजा ने निश्चय किया कि अपना मरण मुझे सुधारना है। रात्रि में घर में जब सब सोये थे, तब सभी को 'जय श्रीकृष्ण' करके, घर छोड़कर अँगराजा गंगाजी के तट पर पहुँच गये। वहाँ अँग राजा आदि- नारायण परमात्मा का आराधन करते-करते कृपार्थ हुए।

इस ओर वेन राजा के राज्य में प्रजा बहुत दुःखी हुई। वेन राजा धर्म को नहीं मानता था। ब्राह्मण उन्हें समझाने गये। तब वेन राजा को क्रोध आ गया और वह उन्हें मारने दौड़ा। ब्राह्मणों को राजा का व्यवहार पसंद नहीं आया। उन्होंने मारण-मंत्र का प्रयोग किया। इससे राजा की मृत्यु हो गई। वेन राजा की मृत्यु से प्रजा अधिक दुःखी हुई क्योंकि वेन राजा की मृत्यु से राज्य में चोरी होने लगीं, अन्याय होने लगा। वेन राजा के राज्य में चोरी नहीं होती थी। वह नीतिं को मानता था। वह धर्म को नहीं मानता था। कई लोग धर्म को मानते हैं, नीति को नहीं मानते हैं। किसी तरह वे धन कमाते हैं और फिर धर्मादा में धन देतें हैं। कई लोग नीति को मानते हैं पर धर्म को नहीं मानते हैं। ये दोनों भूल कर रहे हैं। धर्म में नीति की जरूरत है और नीति में धर्म की जरूरत है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि धर्म जब नीति से रहित होता है, तब विधुर है और नीति जब धर्म से रहित होती है, तब विधवा है। जीवन में धर्म और नीति—दोनों की जरूरत है। एक चक्र से रथ नहीं चलता। रथ के दो चक्र होने ही चहिये। तब ही रथ चलता है।

वेन राजा की मृत्यु से राजा के बिना प्रजा बहुत दुःखी हुई। ब्राह्मण सोचने लगे कि राजा तो होना ही चाहिए। ब्राह्मण का अवतार प्रजा को सुख करने के लिये है। समाज किस तरह सुखी होगा—इसका विचार ब्राह्मण करते हैं। एक ब्राह्मण ने कहा—वेन में पाप भी है, पुण्य भी है, क्योंकि उसका जन्म पुण्यशाली वंश में हुआ है। इससे उसके पाप बाहर निकाल लीजिये। ब्राह्मणों ने वेन राजा के शव से पाप निकाल लिये। ब्राह्मणों के पास ऐसे वेद मंत्र होते हैं। वेद-मन्त्रों को उचित रूप में सिद्ध करने पर वेद-मन्त्रों में ऐसी शक्ति है कि उनमें शरीर के पाप, शरीर से बाहर आप निकाल सकते हैं।

शरीर के तीन भाग हैं। पाँव से नाभि तक जो अंग है, उसे अधमाँग कहते हैं। नाभि से गले तक का भाग मध्याँग है, और गले से ऊपर का भाग उत्तमाँग कहा जाता है। नाभि के नीचे का भाग अत्यन्त अशुद्ध और अपवित्र है। अधमाँग में पाप होता है। ब्राह्मण वेद-मन्त्र बोलते हैं और वेदमन्त्रों द्वारा वेन राजा के शरीर का पाप निकाल लेते हैं।

ब्राह्मण आदिनारायण परमात्मा की स्तुति करते हैं। कहते हैं कि यह स्वायंभुव मनु का वंशज है। इस वंश का विनाश न हो, इसलिये इस वंश की रक्षा करिये। प्रजा बहुत दुःखी हो रही है। आप कृपा करिये। आप भी अब अवतार धारण करियें जो ब्राह्मण तपस्वी जीवन व्यतीत करता है, उसके वचन को प्रभु सत्य सिद्ध करते हैं। ब्राह्मणों की इच्छा हुई है कि यह वंश बढ़ता रहे। इस वंश का विनाश न हो। ब्राह्मणों की बहुत भावना हैं। विष्णु सूक्त का उन्होंने पाठ किया है और भगवान् नारायण को मना रहे हैं।

ब्राह्मण परमात्मा का मुख है। प्रभु को दया आयी। उन्होंने लीला की। पृथु महाराज ने जन्म लिया। भगवान् नारायण के ये अंशावतार हैं। अर्चि रानी के साथ पृथु महाराज का विवाह हुआ। शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं–राजन्! अर्चि रानी को साथ सिंहासन पर बैठा कर राज्याभिषेक किया। पृथु राजा सारा दिन पूजा करते हैं। अर्चन-भक्ति के आचार्य पृथु हैं। सन्त ऐसा मानते हैं कि जब परमात्मा की पूजा नहीं होती है, तब पाप होता है। जो व्यक्ति सारा दिन प्रभु की पूजा करते हैं, उनका पाप छूट जाता है। आप चाहते हैं कि अपके पाप छूट जायें तो आप भी सारा दिन पूजा करिये। यह सुनकर कदाचित आपको व्याकुलता होगी कि महाराज! आप यह क्या कह रहे हैं? सारा दिन पूजा करना–अर्थात् हम अपना धन्धा छोड़ दें। अरे प्रभु की पूजा मन्दिर में ही हो ऐसा नहीं है, प्रभु तो सर्व स्थानों पर विराजमान हैं। सर्व व्यापक परमात्मा की पूजा सर्वकाल होती है, सर्व स्थानों पर होती है। कई लोग मन्दिर में प्रभु की पूजा करते हैं पर मन्दिर से बाहर निकलने पर पाप करते हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि प्रभु तो मन्दिर में ही हैं यहाँ कहाँ हैं? परमात्मा तो सर्व के आधार हैं। जगत् में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ भगवान् नहीं है। राजा तो राजमहल में रहते हैं। पर राजा की सत्ता उसके राज्य के अणु-परमाणु में व्याप्त है। राज्य-सत्ता को मानना ही पड़ता है। राज्य-सत्ता को न मानने वाले को दण्ड होता है। उसी तरह अणु-परमाणु में परमात्मा व्याप्त है।

जिस तरह लड्डू में चीनी है पर दीख नहीं पड़ती है, या लड्डू के उठाने पर चीनी हाथ में नहीं अती है, पर बुद्धि स्वीकारती है कि लड्डू के प्रत्येक कण में चीनी मिली हुई है। लड्डू की मिठास आटे की नहीं चीनी की है। लड्डू के कण-कण में चीनी मिली हुई है, उसी तरह जगत् के आणु-परमाणु में परमात्मा मिले हुए हैं। सारा दिन पूजा कीजिये, रास्तें में पूजा कीजिये, घर में काम-काज करते हुए पूजा कीजिये। किसी भी जीव को ईश्वर से भिन्न न कीजिये। प्रत्येक जीव को ईश्वर का स्वरूप समझकर व्यवहार कीजिये। प्रत्येक जीव को सम्मान दीजिये। उसके समक्ष हाथ जोड़िये। उसे 'जय श्रीकृष्ण' कहिये। यह परमात्मा की पूजा ही है। मधुर वाणी परमात्मा की पूजा ही है। किसी जीव के साथ छल न कीजिये। किसी जीव का अपमान न कीजिये, किसी जीव का तिरस्कार न कीजिये। प्रत्येक जीव में परमात्मा विराजमान है। जीव ईश्वर से भिन्न नहीं है। जिस किसी को जो चाहिये, उसे दीजिये। यह देना परमात्मा की पूजा ही है। यथा शक्ति दूसरे को संतोष दीजिये। सुख देना परमात्मा की पूजा है। जीव और ईश्वर में तत्त्व दृष्टि से कोई भिन्नता नहीं है। चावल में जितनी भिन्नता है उतनी ही भिन्नता जीव और ईश्वर में है। माया के आवरण से युक्त चैतन्य जीव है। माया के आवरण से रहित चैतन्य ईश्वर है। घटावच्छिन्न और घटानवच्छिन्न आकाश एक ही है–घड़े का आकाश और घड़े के बाहर का आकाश-तत्त्व एक ही

है। कई लोग ऐसे हैं कि जब अपना पुत्र गलती करता है, नुकसान करता है, जरा भी बुरा नहीं लगता, पर नौकर नुकसान करता है तो बहुत बुरा लगता है। वे नौकर को गाली देते हैं कि तुम मूर्ख हो, तुम्हें जरा भी अक्ल नहीं है। नौकर को डाँटिये पर नौकर में भी भगवान् हैं—यह याद कर डाँटना चाहिये। कई वृद्धाऐं ऐसी हैं कि पुत्री की गलती चला लेती हैं पर पुत्र-वधू की गलती को हरगिज नहीं चलाती हैं। तब वे सास की सत्ता का उपयोग करती हैं और तब घर में झगड़े भी होते हैं। व्यवहार में कुछ कहना तो पड़ता है पर विवेक से कहना चाहिये। समभाव से कहना चाहिये। प्रत्येक जीव को ईश्वर का स्वरूप मानकर उसके साथ व्यवहार कीजिये।

पृथु की पत्नी का नाम अर्चि रानी था। वे अर्चना-भक्ति का स्वरूप है। समाज को सुखी करने के लिये पृथु की प्रत्येक कार्य-प्रवृत्ति है। राजा को एक ही चिंता है कि मेरे देश की प्रजा को दुःख न हो। जिसकी आँखों में प्रेम है, जिसका हृदय विशाल है, वही प्रभु की सेवा कर सकता है। पृथु महाराज परमात्मा की आराधना करते हैं। प्रजा को धर्म की शिक्षा देते हैं। दुःख का कारण अज्ञान है। अज्ञान को दूर करने का कार्य ब्राह्मण का है। ब्राह्मण समाज को ज्ञान देता है, धर्म का शिक्षण देता है। किसी दुर्बल को बलवान त्रास देता है, तो उसके दुःख को दूर करने का कार्य राजा का है। अभाव दुःख वैश्य दूर करते हैं। अभिमान कृत दुःख शूद्र दूर करते हैं। वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा में प्रजा सुख रहती है। नीति से धर्म रहता है। धन श्रेष्ठ नहीं है, धर्म श्रेष्ठ है। जिनका बड़ा भाई धर्म है, उनके सारथी श्रीकृष्ण हुए हैं। जो धर्मानुकूल पवित्र जीवन व्यतीत करता है, परमात्मा उसके सारथी बनते है।

लोग धर्म को भूले हैं, इसी से धरती माता अन्नरस पी गई हैं, नहीं तो भारत में अकाल न आता! धरती माता है, धर्म पुत्र है। कई लोग वेदान्त की पुस्तकें पढ़कर ब्रह्मज्ञान की बातें करते हैं, पर धर्म का पालन नहीं करते हैं। जहाँ धर्म नहीं है, वहाँ भक्ति नहीं है, जिस घर में धर्म नहीं है, उस घर में भगवान् नहीं है। परमात्मा श्रीकृष्ण को सनातन धर्म अतिशय प्रिय है। घर में और सब छूट जाय तो भले ही छूटे, पर धर्म न छोड़ना। हमारा धर्म सर्वश्रेष्ठ है।

सनातन धर्म सृष्टि के प्रारंभ से चला आता है और जगत् रहेगा, तब तक वह रहेगा। अन्य धर्मों में से कोई एक हजार वर्षों का, कोई दो हजार वर्षों का तो कोई पाँच हजार वर्षों का है। अन्य धर्मों में थोड़े साधु-संत हुए हैं, पर हमारे धर्मों में अनेक साधु-संत हो गये हैं। सनातन धर्म ही विश्व-धर्म हो सकता है। सनातन धर्म में सर्व को सुखी करने की भावना है। सनातन धर्म कहता है कि प्रत्येक जीव ईश्वर का स्वरूप है, और इसलिए सनातन धर्म परमात्मा को अतिप्रिय है। धर्म के रक्षण के लिये भगवान् आते हैं।

जीवन में कैसा भी अवसर आये, धर्म को न छोड़िये। जो धर्म को नहीं छोड़ता है। भगवान् उसे नहीं छोड़ते हैं। जो धर्म का त्याग करता है, वह भगवान् को प्रिय नहीं है। भले ही वह बड़ा ज्ञानी हो कि योगी हो। पढ़ा लिखा भी हो तो क्या?

धरती माता ने पृथु राजा से कहा कि आपके पिता के राज्य में अधर्म बहुत बढ़ गया था, इससे मैं अन्न रस पी गयी हूँ। मुझ में सभी रस है। अगणित सोना है, हीरा- माणिक्य हैं। इस धरती माता में क्या नहीं है? धरती में सब-कुछ है। जहाँ धर्म है, धरती माता वहाँ सब प्रकट करती है, पर जहाँ अधर्म है, वहाँ धरती माता सब कुछ निगल जाती है। धरती ने पृथु राजा से कहा कि मेरे भीतर सभी रसों का सिञ्चन करो। पृथु महाराज रसों का सिंचन करते हैं। पृथु महाराज प्रेम से यज्ञ करते हैं। यज्ञं में देवों की पूजा होती है। देव पवन देते हैं। देव प्रकाश देते हैं। पानी देते हैं। अनाज देते हैं। देवों का उपकार न भूलिये। जो देवों को मानते हैं, देव उनको मानते हैं। देवों को वे ही मानते है। जो देवों की प्रेम से पूजा करते हैं। यज्ञ में एक-एक देव की पूजा होती है। गरीबों की पूजा होती है। ब्राह्मणों की पूजा होती है। कई लोग ऐसा समझते हैं कि यज्ञों में ब्राह्मणों की ही पूजा होती है; पर ऐसा नहीं है। यज्ञ में समाज की पूजा होती है। यज्ञ में सुनार, जुलाहा, मोची, माली, धोबी सभी की जरूरत होती है और सभी की पूजा होती है। समाज के प्रत्येक अँग की पूजा यज्ञ में होती है।

भागवत में जिन यज्ञों का वर्णन है, वे सभी श्रौत यज्ञ हैं। आजकल जो यज्ञ होते हैं, वे प्रायः स्मार्त यज्ञ होते हैं। चार-कुडों का अग्नि होत्र जिनके घर में होता है, वे ही श्रौत यज्ञ कर सकते हैं। गुजरात में अब कहीं भी श्रौत अग्नि होत्री हैं–ऐसा सुनने में नहीं आता है। दक्षिण भारत में क्वचित् श्रौत यज्ञ होता है। श्रौत यज्ञ के दर्शन में बहुत आनंद आता है। तीन वेद पढ़े ब्राह्मणों को ही वरेण्य माना जाता है। स्मार्त यज्ञ में सरलता है। जिस देव का यंज्ञ करना हो, उस देव की स्थापना की जाती है। अग्नि में आहुति दी जाती है। विष्णु यज्ञ करना है तो लक्ष्मी नारायण की स्थापना की जाती है और पुरुष सूक्त के मंत्रों से विष्णुसहस्त्र के नामों से पायस की अग्नि में आहुति दी जाती है।

श्रौत यज्ञ में तो तीन वेद जब एकत्र होंगे तब ही होम हो सकेगा। श्रौत यज्ञ में किसी देव की स्थापना नहीं होती है। देव मंत्राधीन होते हैं। तीन बार संध्या करने वाले तपस्वी ब्राह्मण जिस देव का जब मंत्र बोलता है, तब मन्त्र पूर्ण होने से पहिले ही वे देव यज्ञ-मंडप में आते हैं। चावल कूटना है तो यज्ञ-मंडप में ही, चावल पीसमा है तो यज्ञ मंडप में ही, और फिर यज्ञ-मंडप में ही चावल के आटे का हलुवा बनाते हैं, जिसे पुरोडाश कहते हैं। जितने देवों के होम करने हैं, उतने

ही मिट्टी के बर्तन रखे जाते हैं। प्रत्येक देव के नामोच्चार करके ये मिट्टी के बर्तन अलग रखने पड़ते हैं। एक देव को आहुति देने के बाद शेष को (जो अवशिष्ट है) उच्छिष्ट-सा माना जाता है। इससे अलग- अलग मिट्टी के पात्रों में आहुति के लिए पुरोडाश रखते हैं।

बाद में, अध्वर्यु आज्ञा करते हैं कि अब विष्णु भगवान को बुलाइये- 'विष्णुदेवं बूभृहि'। ऋग्वेद के मन्त्र से आह्वान करते हैं। आह्वान पूरा मन्त्र उदात्त स्वर में बोलना पड़ता है। मन्त्र बोलने वाला ब्राह्मण बलवान होना चाहिए। वह तपस्वी और जितेन्द्रिय होना चाहिये। दुर्बल ब्राह्मण उदात्त स्वर में मन्त्र नहीं बोल सकता है। स्वर में जरा भंग न होना चाहिए। वेद मन्त्र में जरा भी भूल न होनी चाहिए। भूल में क्षमा नहीं है, सजा है। कोई भी वेद मन्त्र बोले, कहीं भी बोले तो यह उचित नहीं है। वेद का अधिकार सभी को नहीं है। अध्वर्यु आज्ञा करते हैं कि अब शिवजी महाराज को बुलाइए अब अश्विनी कुमार को बुलाइए। अध्वर्यु आज्ञा करते हैं अर्थात् वे वेद मन्त्र बोलते हैं।

ब्राह्मण मन्त्र बोलते हैं, तब ऐसा लगता है कि आकाश मार्ग से देव नीचे उतरते हैं। देव के आगमन के बाद उद्गाता नाम का ब्राह्मण सामगान करता है, देव की स्तुति करता है। देवों को गान प्रिय है। उद्गाता गीत शैली में मन्त्र बोलते हैं। मधुर गान सुनकर देव प्रसन्न होते हैं। आग्नीध्र नाम का ब्राह्मण यज्ञ-मण्डप में द्वार पर हाथ में तलवार लेकर खड़ा रहता है। अध्वर्यु उससे पूछते हैं कि तुम सावधान हो न? उचित रूप से मन्त्र बोल रहे हैं कि नहीं? बाहर कोई राक्षस तो नहीं आया है? हम होम करें कि नहीं? आग्नीध्र की आज्ञा के बिना होम नहीं हो सकता है। आग्नीध्र हाथ में तलवार लेकर राक्षोस मन्त्र का जप करता है और वहाँ से आज्ञा करता है कि मैं सावधान हूँ। योग्य रूप से मन्त्र बोल रहा हूँ। यहाँ कोई राक्षस नहीं आया है। आप शान्ति से होम कीजिये।

बाद में यजुर्वेद के मन्त्र से होम होता है। सामभिः स्तुवन्ति यजुभिर्यजन्ति....! ऋग्वेद के मंत्र से आवाहन, सामवेद के मन्त्र से गान-स्तुति और यर्जुवेद के मन्त्र से होम। ऋग्, यजु॰ और साम्-तीनों वेदों का जिसे समुचित ज्ञान हो, उसकी वरणी श्रौत यज्ञ में होती है।

पृथु महाराज अग्निहोत्री, तपस्वी ब्राह्मण हैं, राजा हैं। पृथु महाराज के यज्ञ में प्रत्यक्ष देव आते हैं। ये सभी यज्ञ कलियुग में हमारे द्वारा हों-ऐसा नहीं लगता है। यह नहीं होगा। पर, आप घर में रोज थोड़ा यज्ञ करना। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जिस घर में खाना बनता है, उस घर में अनेक जीव मरते हैं। अनेक जीवों की हिंसा के बिना खाना नहीं बनता है। इस हिंसा का पाप अन्न में आता है और पाप खाने वाले के सिर पर पड़ता है। अन्न-दोष मन को बिगाड़ता है। अन्न-दोष भक्ति में बिघ्न लाता है। हिंसा का पाप अन्न में आता है उसे दूर करने के लिये यज्ञ

करिये। कदाचित् यह सब सुनकर आपको यज्ञ करने का मन हो जाय। पर आप कहेंगे कि महाराज! हम कुछ पढ़े नहीं हैं, हमें कुछ भी नहीं आता है, हम क्या करें? अरे! आपको, 'हरे कृष्ण हरे राम' आता है कि नहीं? अग्नि भगवान् का मुख है। अग्नि की ज्वाला ठाकुरजी की जीभ है–

अग्निर्वै देवनां मुखम् अग्निमुखा वै देवाः।

आपको और कुछ भी नहीं आता तो 'हरे कृष्ण–हरे राम'– कहकर अग्नि में आहुति दीजिये। भात में थोड़ा घी डालकर उस घी–युक्त भात को अग्नि देव को अर्पण कीजिये। अग्नि के आधार पर रसोई होती है। अग्नि न हो तो रसोई नहीं होती है। अग्निदेव को तृप्त किये बिना जो खाता है, उसे पाप लगता है। अग्नि में आहुति दीजिये। भगवान् को भोग लगाइये। जिस घर में भोग लगाया जाता है उस घर में लक्ष्मीजी और अन्नपूर्णा अखंडरूप से विराजमान रहती हैं। भागवत में विश्वास रखकर छह महीने तक प्रयोग करके देखिये। बहुत पवित्रता से खाना बनाकर प्रभु को भोग लगाइये। अग्नि को आहुति दीजिये। फिर उस अन्न को खाने से बुद्धि भ्रष्ट नहीं होगी। छह महीनों तक पवित्र अन्न पेट में जायेगा तो धीरे–धीरे बुद्धि सुधरेगी।

पृथु के निन्यावे यज्ञ पूर्ण हुए। अंतिम यज्ञ चालू था। इस यज्ञ में राजा इन्द्र ने बहुत बिघ्न डाले। इन्द्र की इच्छा थी। कि सौ यज्ञ कोई भी परिपूर्ण न कर पाये। यज्ञ का घोड़ा उठाकर इन्द्र ले जाते हैं। यह दिव्य यज्ञ है। मन घोड़े जैसा है। मन–रूपी घोड़ा किसी स्थान पर बँध जाता है तो यज्ञ नहीं हो सकता है। यजमान को बहुत सावधान रहना पड़ता है कि मेरा मन रूपी घोड़ा संसार के किसी विषय में न बँधे और यदि बँध जायेगा तो युद्ध करना पड़ेगा। आत्मा–परमात्मा का मिलन ही यज्ञ है। संसार विषयों में मन फँसा है तो आत्मा–परमात्मा का मिलन नहीं होगा।

अत्रि ऋषि जप करने बैठे थे। उन्हें मालूम हुआ कि बिघ्न आया है। पृथु का पुत्र इन्द्र के साथ युद्ध कर के युद्ध का घोड़ा लौटा लाया है! इन्द्र ने दो–तीन बार ऐसा किया। इससे पृथु इन्द्र को मारने को तैयार हुए। ब्राह्मणों ने कहा कि यजमान किसी को मारें, यह अच्छा नहीं है। हमें आज्ञा दीजिये, हम इन्द्र को होम देंगे।

आज्ञा मिलने पर इन्द्र का आवाहन किया गया। इन्द्रासन डोल उठा। ब्रह्माजी दौड़ते आये। राजा से कहा–आपको स्वर्ग का सुख नहीं चाहिये। आप तो मात्र परमात्मा के मिलन के लिये यज्ञ कर रहे हैं, तो आप आग्रह छोड़ दीजियें। इन्द्र परमात्मा का अँग है। उसका विरोध छोड़ दीजिये।

सत्कर्म करने पर दुराग्रह छूट जाय, अभिमान छूट जाय, हृदय कोमल हो जाय तब ही सत्कर्म करना यथार्थ है। ब्रह्माजी ने कहा–अपना अंतिम यज्ञ अधूरा रखिये। राजा ने यज्ञ अधूरा

रखा। अधूरा यज्ञ परमात्मा को प्रिय लगा और चतुर्भुज परमात्मा प्रत्यक्ष प्रकट हुए। अनाग्रही प्रभु को प्रिय है, दुराग्रही किसी को प्रिय नहीं होता।

परमात्मा के साथ इन्द्र भी आये हैं। पृथु ने वैर का त्याग किया है। इन्द्र का उन्होंने सम्मान किया। किसी को आशा न थी कि यज्ञ में परमात्मा पधारेंगे। पृथु राजा को परमात्मा के दर्शन से आनंद हुआ। वे यह देखकर प्रसन्न हुए कि आज भगवान् पधारे हैं! प्रभु ने बहुत कृपा की है। दर्शन करते-करते पृथु राजा की आँखें भर आयीं। ठीक से वे देख भी नहीं पाते। दर्शन में जब हृदय आर्द्र हो जाता है और आँखें भीग जाती हैं, तब ही सच्चे दर्शन होते हैं। राजा ने विधिपूर्वक पूजा की। जो सर्व में भगवद् भाव रखकर, सर्व की पूजा करता है, एक दिन सर्वेश्वर स्वयं उसकी पूजा लेने आते हैं। पृथु राजा सर्व की पूजा करते थे, सर्व में भगवद्-भाव रखते थे। आज उनके यहाँ सर्वेश्वर परमात्मा पधारे हैं। प्रभु तो आनन्दमय हैं। भगवान् की ऐसी इच्छा नहीं है कि कोई मुझे चंदन अर्पण करे, पुष्पों की माला अर्पण करे। जिसके श्रीअंग से कमल की सुगंध प्रस्फुटित होती है, ऐसे प्रभु को चंदन-पुष्प की क्या आवश्यकता? पर कोई प्रेम से कुछ देता है तो प्रभु स्वीकारते हैं। आनंदमय परमात्मा की ऐसी इच्छा नहीं है कि लोग मेरी पूजा करें, पर प्रेम से प्रभु की पूजा करने से प्रभु प्रसन्न होते हैं, वे अनंत रूप से उसे लौटाते हैं। पृथु राजा की पूजा को प्रभु ने स्वीकार किया है।

प्रभु ने कहा कि राजन्, मुझे कोई अपेक्षा नहीं है फिर भी मैंने तुम्हारी पूजा को स्वीकार किया है। मेरी बहुत इच्छा है कि अब तुम कुछ माँगो, मैं तुम्हें वरदान दूँ। तुम कुछ माँग लो! पृथु राजा ने हाथ जोड़े—आपके दर्शन के बाद अब क्या माँग लूँ? सारा दिन आपके दर्शन करता रहूँ, आपका स्वरूप मेरी आँखों से दूर न हो, ऐसी कृपा कीजिये। प्रभु ने कहा—मेरे दर्शन तुम्हें अखंड होंगे, पर मेरी इच्छा है कि तुम माँगो और मैं तुम्हें दूँ। मुझे प्रसन्न रखने के लिये तुम कुछ माँगो।

पृथु राजा ने कहा—महाराज! मेरी तो ऐसी इच्छा है कि आपकी कथा सुनने के लिये आप मुझे दस हजार कान दीजिये—

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः।।

(४-२०-२४)

महाराज! मेरे इन दोनों कानों को ऐसी शक्ति दीजिए कि जब गंगा-तट पर, यमुना-तट पर, नर्मदा-तट पर—अनेक तीर्थों पर विराजमान आपके लाड़ले भक्त आपकी प्रशंसा करें, आपकी कथा करें, तब इन सभी कथाओं को मैं इधर बैठा-बैठा सुन पाऊँ। मुझे कथा से तृप्ति नहीं होती

है। आप ऐसी कृपा कीजिये कि संसार व्यवहार की बातों को सुनने के समय मेरे कान बहरे हो जायँ, मुझे कुछ सुनाई न दे।

जो कुछ आप सुनते हैं, वह आपके मन में घर कर लेता है। कई लोगों की ऐसी आदत होती है कि जब कोई दो व्यक्ति बातें कर रहे हों, तब वे कानों से कहते हैं कि जा, तू भी सुनकर आ कि ये क्या बातें कर रहे हैं। आप जिनकी बातें सुनते हैं, वे आपके मन में आवेंगे।

परमात्मा ने पृथु राजा को वरदान देकर कृतार्थ किया। पृथु के यज्ञ-मंडप में सनकादि ऋषि आये हैं। राजा ने पूजा कर के कहा—मुझे कुछ उपदेश दीजिये। ऋषियों ने कहा—

शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणां क्षेमस्य सध्र्यग्विमृशेषु हेतुः।
असंग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि दृढा रतिर्ब्रह्मणि निर्गुणे च या।।

(४-२२-२१)

इस जगत् में दो पदार्थ हैं—जड़ और चेतन। जड़ से चेतन श्रेष्ठ है। उन व्यक्तियों का कल्याण होता है जो जड़ का मोह छोड़कर चेतन के साथ प्रीति करते हैं। चेतन परमात्मा आपके हृदय में है। लक्ष्मी पति आपके पास हैं। कदाचित किसी जड़ पदार्थ का नाश हो जाय तो जी न जलाइये। दुःख का कारण यह है कि मानव जड़ के साथ अधिक प्रेम करता है। वस्तुतः जो चेतन के साथ प्रेम करता है, उसका ही कल्याण होता है।

पृथु ने निश्चय किया। पुत्र विजिताश्व को सिंहासन पर बैठा कर पृथु महाराज अर्चिरानी के साथ वन में तप करने गये। वहाँ आदिनारायण परमात्मा की आराधना करके वे भगवद्-स्वरूप में लीन हो गये।

२८—भगवान क्या चाहते हैं?

विजिताश्वोऽधिराजाऽऽसीत्पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः।
यवीयोभ्योऽददात्काष्ठा भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सलः।। (४-२४-१)

विजिताश्व राज्य करता है। इस विजिताश्व के वंश में हर्यश्व नाम का राजा हो गया। हर्यश्व राजा के वंश में प्राचीन बर्हि राजा हुआ था। प्राचीन बर्हि राजा का विवाह शतद्रुति रानी के साथ हुआ था। उनके घर दस बालक हुए। ये दस बालक ही दस प्रचेता हैं। इन दस प्रचेताओं को प्राचीन बर्हि राजा ने आज्ञा की—आप तप कीजिये तप से शक्ति बढ़ती है। प्रत्येक इन्द्रिय को संयम में रखिये। शक्ति का संग्रह करिये। जो बलवान है, वह सब कुछ कर पाता है। जो दुर्बल है, वह कुछ नहीं कर सकता है। जो दुर्बल है, वह धरती को भी भार रूप है। जो अति दुर्बल है,

वह किसी की सेवा नहीं कर सकता है। वह ऐसी इच्छा रखता है कि सब मेरी सेवा करें। बलवान बनिये। शक्ति के संग्रह में बहुत सुख है। शक्ति के विनाश में महा दुःख है। शक्ति का विनाश न हो, इसका ध्यान रखिये। ये दस प्रचेता कच्छ प्रांत में, जहाँ नारायण सरोवर है, तप करने आए। नारायण सरोवर अति दिव्य, सात्विक भूमि है। नारायण सरोवर में कोटेश्वर महादेव हैं। प्रचेता वहाँ आये।

शुद्ध भाव से जो घर छोड़ते हैं, भगवान् शंकर उन्हें रास्ते में दर्शन देते हैं। भागवत में एक नहीं, अनेक स्थानों पर ऐसा वर्णन है। भगवान् शंकर सर्व के सद्गुरु हैं। सदाशिव भगवान जगद्गुरु हैं। प्रचेताओं को शिवजी के दर्शन हुए। शिवजी ने प्रचेताओं को रुद्रगीत का आदेश दिया और कहा–

इदं जपत भद्रं वो विशुद्धा नृपनन्दनाः।
स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो भगवत्यर्पिताशयाः॥ (४-२४-६९)

इस रुद्र गीत का जप कीजिये। जप करने से पाप जलते हैं, स्वभाव सुधरता है, वासना का विनाश होता है और जीवन दिव्य बनता है।

दान देना, यात्रा करना, यज्ञ करना सरल है। शांति से एक आसन पर बैठकर जप करना कठिन है। आजकल श्रीमान लोगों को विश्वास हो गया है कि अधिक धन पाने से सरकारार्पण करना पड़ता है। इससे वे समझकर कृष्णार्पण करने लगे हैं। आपके पास धन है तो यज्ञ कराना मंदिर का जीर्णोद्धार कराना आदि अच्छा है, पर इससे पाप छूटेगा नहीं। यज्ञ करने से, मन्दिर में सेवा करने से पुण्य बढ़ता है, पर पाप छूटता नहीं है, वासना का विनाश नहीं होता है। शांति से एक आसन पर बैठकर जप कीजिये, निरंतर जप करने से जीवन सुधरेगा। निरंतर जप किये बिना जीवन सुधरता नहीं है। पाप की आदत भी नहीं छूटती है तथा वासना का विनाश नहीं होता है। निरंतर जप करने की आदत डालिये।

प्रचेताओं को शिवजी की आज्ञा हुई कि रुद्रगीत का जप कीजिये। प्रचेताओं ने पूछा कि कब तक जप करें? शिवजी ने कहा भगवान् नारायण जब तक आपके सम्मुख प्रकट न हों, तब तक जप छोड़िये नहीं। शिवजी की आज्ञा के अनुसार प्रचेताओं ने धैर्य रखकर शांति से नारायण सरोवर में दस हजार वर्ष तक रुद्रगीत का जप किया। कितने दिन जप किया? दस हजार वर्षों तक। सादा भोजन करते हैं, और सारा दिन जप करते हैं। कई लोग पांच-दस वर्ष जप करते हैं, और कहते हैं, कि अभी भगवान् नहीं दीख रहे हैं! भगवान् क्या इतने सुलभ हैं कि पाँच-दस वर्ष भक्ति करने पर आपके समक्ष आकर खड़े हो जायेंगे? भक्ति से, जप करने से पाप जलते हैं। भगवान् के दर्शन न हों तो भी भक्ति करते ही रहिये। भगवान् दर्शन देंगे ही ऐसा कौन पिता है कि जिसकी पुत्र को देखने की इच्छा नहीं है? पर पुत्र बहुत नालायक हो तो पिता को उसका मुँह देखने की इच्छा नहीं

होती है। यह जीव लायक नहीं है, इसी से परमात्मा दर्शन नहीं देते हैं। जीव थोड़ा भी लायक होता है तो परमात्मा दर्शन देते हैं। धैर्य धारण करके निरंतर भक्ति कीजिये एक आसन पर बैठकर परमात्मा के स्वरूप में मन को स्थिर कीजिये।

मन अस्थिर होने के लिये, चंचल हो उठे तो आँखें स्थिर कीजिये। मन को स्थिर रखने की चिंता में न पड़िये आँखों को परमात्मा के स्वरूप में स्थिर रखने का प्रयत्न कीजिये, मन आँखों का आधार रखता है। आँखें जहाँ जाती हैं, मन वहाँ जाता है। आँखें स्थिर करिये, साथ में जप करिये। आशा के साथ उत्साह से भक्ति करिये। कभी भगवान् कृपा करके दर्शन देंगे।

बाद मे प्रचेताओं के पिता प्राचीन बर्हि राजा को नारदजी ने अध्यात्म विद्या का उपदेश दिया है। प्रचीन बर्हि राजा कर्मकण्डी थे। एक यज्ञ पूर्ण होता कि वे दूसरा यज्ञ शुरु करते। दूसरा पूरा होता कि तीसरा शुरु करते। अनेक यज्ञ उन्होंने किये एक बार यज्ञ में नारदजी पधारे हैं। नारदजी ने पूछा कि भाई तुमने बहुत से यज्ञ किये क्या तुम्हें शांति मिली? राजा ने कहा कि नहीं महाराज, शांति नहीं है। नारदजी ने पूछा कि शांति नहीं है तो तुम यज्ञ क्यों कर रहे हो? राजा ने कहा कि प्रभु ने मुझे बहुत धन दिया है, तो यज्ञ को निमित्त करके संपत्ति का समाज-सेवा में सदुपयोग कर रहा हूँ। नारदजी ने कहा–राजा! यह उत्तम है, पर शांति उसे मिलती है, जो आत्मरूप को जानते हैं, जिन्हें परमात्मा के दर्शन होते हैं। तुम्हें तो अपने स्वरूप का भी ज्ञान नहीं है, शांति कैसे मिल सकेगी? यह जीव संसार-सुख में इतना फँसा रहता है कि उसे परमात्मा का ज्ञान नहीं है, पर उसे अपने स्वरूप का भी ज्ञान नहीं है कि मैं कैसा हूँ? कहाँ से आया हूँ? मेरा असली वतन कहाँ है, और मुझे कहाँ जाना है?

जिसे आत्म-स्वरूप का ज्ञान नहीं है, उसका जगत् संबंधी समग्र ज्ञान निष्फल है। एक भाई मुझ से कहते थे कि महाराज! मैं सब कुछ जानता हूँ, सारा संसार घूमकर आया हूँ। बहुत से वर्ष परदेश में रहा हूँ। मैंने सब-कुछ देखा है। उससे हमने पूछा कि भाई! तुमने सब कुछ देखा, पर क्या तुमने अपने को देखा है? क्या अपना स्वरूप तुमने देखा है?

नारदजी ने प्रचीन बर्हि राजा को एक कथा सुनायी–प्राचीन काल की एक कथा है। यह दो मित्रों की कथा है। एक का नाम था पुरंजन और दूसरे का नाम था अविज्ञात। अविज्ञात अति सरल है, अति उदार है, मित्र की बहुत देख भाल रखता है। सोचता है कि मेरा मित्र दुःखी न हो। उसको प्रत्येक कार्य में वह सहयोग देता है, मदद देता है। अविज्ञात का स्वभाव ऐसा सरल था कि वह सोचता कि मित्र के हाथ में मैं कुछ वस्तु दूँगा तो उसे लेने में संकोच होगा। अपने मित्र का मुझे बहुत-बहुत देना है। लेने वाले को संकोच न हो, इस तरह से, ऐसे विवेक-भाव से देना है।

अविज्ञात पुरंजन की सहायता करते हैं पर अपना स्वरूप छिपाकर करते हैं। अविज्ञात ईश्वर हैं, पुरंजन जीव है–

योऽविज्ञाताहृ तस्तस्य पुरुषस्य सखेश्वरः।
यन्न विज्ञायते पुम्भिर्नामभिर्वा क्रियागुणैः॥ (४-२९-३)

जीव और ईश्वर की मैत्री है। प्रत्येक कार्य में परमात्मा जीव को सहायता देते हैं, पर स्वरूप छिपाकर देते हैं। यह बरसात कैसे आती है? बरसात देने वाला क्या वहीं दीख पड़ता है? भगवान् कहते हैं–भाई? एक काम तुम करो और एक मैं करता हूँ। बरसात बरसाने का काम मेरा है, धरती में हल चलाकर खेती करने का काम तेरा है। बरसात के बरसने के बाद बीज बोने का काम तुम्हारा है। बीज से अंकुर उत्पन्न करने का काम मेरा है। अंकुर प्रस्फुटित हो जाने पर खेत की रक्षा करने का काम तेरा है। अनाज उत्पन्न करने का कार्य मेरा है। अनाज उत्पन्न होने के बाद खाने का काम तेरा है। तुम्हारे पेट के अनाज को पचाने काम मेरा है–

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥

परमात्मा खाते नहीं हैं, मानव जो कुछ खाता है उसे पचाते हैं। प्रत्येक के पेट में अग्नि स्वरूप में नारायण विराजमान हैं।

भगवान् कहते हैं कि खाना खाने के बाद सो जाने का कार्य तुम्हारा है और तुम्हारे पास बैठकर सारी रात जागने का कार्य मेरा है। भगवान् सोते नहीं हैं, भगवान् जागते हैं। निद्रा में वे जीव का रक्षण करते हैं। नींद में हैं और कान में कोई जीव जाता है, तो क्या होता है? गाड़ी में जगह मिल जाय तो आप सो जाते हैं पर गाड़ी चलाने वाला ड्राइवर सो जाय तो? वह आधा घण्टा आराम करे तो गाड़ी का क्या होगा? भगवान् कहते हैं यह जीव तो मुसाफिर है। वह भले ही सो जाय। मैं तो गाड़ी चला रहा हूँ।

भगवान् जाग रहे है। इसका एक प्रमाण भी है। आप शय्या में बैठकर भक्ति करिये। सोने से पहिले आधा घंटा भी भक्ति करना जरूरी है। एकदम शय्या में न घुस जाइए। शय्या को पवित्र कीजिए। आधा घण्टा प्रभु के नाम के जप कीजिये। परमात्मा के चरणों में बार-बार वंदन कीजिए। भगवान् के साथ प्रेम से बातें करिए। भगवान् से कहिये कि आपकी कृपा से आज का दिन पूरा हुआ। सुबह चार बजे उठकर आपका ध्यान करना है, आप मुझे चार बजे जगा दीजिये। भगवान् को इतना कहकर सो जाइए। आपके भगवान् आपको चार बजे जगा देंगे।

जीव ईश्वर की मैत्री है। पुरं शरीरं जनयति सः पुरंजनः—अपना शरीर जीव स्वयं उत्पन्न करता है। पूर्व जन्म में जो कुछ वासना थी, उसीके अनुसार शरीर मिला है। इस जन्म में जो वासना दृढ़ होगी, उसीके अनुसार भावी शरीर निश्चित होता है। पुरंजन जीवात्मा है, अविज्ञात ईश्वर है। एक बार पुरंजन ने अविज्ञात से कुछ न पूछा और घूमने चला गया। वह नौ द्वारों वाली नगरी में प्रविष्ट हुआ। मानव शरीर वही नौ द्वारों वाली नगरी है। पाँच द्वार—दो आँखें, दो नाक और एक मुख पूर्व में है। एक द्वार एक कान दक्षिण में है और एक द्वार दूसरा कान उत्तर में है। दो द्वार पश्चिम में है। जीवात्मा ईश्वर से बिछुड़ गया है और नौ द्वारों वाली नगरी में प्रविष्ट हुआ है। बुद्धि के साथ उसका विवाह हुआ है। बुद्धि ने कहा कि अपने माता-पिता को मैं नहीं जानती हूँ। मेरा वतन कहाँ है, यह मुझे ज्ञान नहीं है। मैं स्वयं जानती नहीं हूँ। ग्यारह नौकर मेरी सेवा करते हैं। ये ग्यारह हैं—पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय और ग्यारहवाँ मन।

पुरंजन ने सोचा कि चाहे किसी भी जाति की हो, पर है बहुत सुन्दर। आजकल प्रगतिशील लोग जाति का विचार नहीं करते हैं वे सोचते हैं कि हम आगे बढ़े हुए हैं। हम बहुत बुद्धिमान हैं। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जाति-धर्म नहीं छोड़ना चाहिए। जाति जन्म से मिलती है और मृत्यु के बाद परिवर्तित होती है। चाहे कुछ भी करिये, करेले को चीनी की चाशनी में दो-चार मास डुबोकर रखिये। करेले में बहुत मिठास आ जायगी, पर क्या करेले की कड़वाहट कम होगी? मृत्यु के बाद ही जाति परिवर्तित होती है। कोई जाति निम्न नहीं है। प्रत्येक जाति में साधु-सन्त हो गये हैं। जाति-धर्म न छोड़िये। जाति-धर्म छोड़ने वाले का कल्याण नहीं है। उसका मन शुद्ध नहीं होता है। पुरंजन ने कुछ न सोचा। उसने सोचा कि किसी भी जाति की हो, पर है सुन्दर और उसने उस स्त्री के साथ विवाह किया। स्त्री का वह आशिक बना। एक क्षण भी उसे नहीं छोड़ता है। वह जहाँ जाती है, वहाँ जाता है। वह कहे कि पानी पीना है तो यह कहता है प्यास लगी है। थोड़े समय में उसके ग्यारह सौ लड़के हुए। बुद्धि के साथ विवाह के बाद एक-एक इन्द्रिय के सुख का वह संकल्प करता है। एक-एक इन्द्रिय के संकल्प सौ से अधिक होते हैं। ये लड़के बहुत शोरगुल करते हैं। बहुत शरारत करते हैं। एक दिन उसे शरीर छोड़ना पड़ा। स्त्री में बहुत आसक्त था, इससे दूसरे जन्म में स्त्री हुआ। वासना के अनुसार कलेवर बदलता है—

अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुञ्चति।
हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विन्दति॥ (४-२९-७५)

पुरुष स्त्री से बहुत प्रेम करे, स्त्री-शरीर का बहुत चिंतन करे तो वह पुरुष मृत्यु के बाद स्त्री होता है। स्त्री, पुरुष शरीर का बहुत चिंतन करे तो वह स्त्री मृत्यु के बाद पुरुष होती है।

पुरंजन पुरुष था पर उसकी स्त्री में बहुत आसक्ति थी। उसने स्त्री का चिन्तन करते-करते शरीर छोड़ा, इससे दूसरे जन्म में वह स्त्री हुआ। पूर्वजन्म में बोलता था–मैं आया। अब मैं आयी, कहने लगा और ऐसा लगा समझने लगा कि मैं स्त्री हूँ।

प्राचीन बर्हि राजा को नारद जी समझा रहे हैं कि स्त्रीत्व, पुरुषत्व देह के भाव हैं। आत्मा पुरुष नहीं है, आत्मा स्त्री भी नहीं है। आत्मा शुद्ध ब्रह्म स्वरूप है, परमात्मा का अंश है पर अनेक जन्मों के देहाध्यास के दृढ़ हो जाने से जीव ऐसा समझता है कि मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ। इस देह-भाव की तरह ज्ञान दृढ़ हो जाय तो समझ में आ जाय कि मैं पुरुष नहीं हूँ, मैं स्त्री भी नहीं हूँ, मैं परमात्मा का अंश हूँ। ऐसा ज्ञान जब दृढ़ हो जाता है, तब जीवन नैया पार हो जाती है। जब आपको थोड़ा भी समय मिले, तब चिंतन करिये कि मैं स्त्री नहीं हूँ, मैं पुरुष नहीं हूँ। इस शरीर से मैं भिन्न हूँ, मैं परमात्मा का अंश हूँ। इस शरीर का सुख मेरा सुख नहीं है–

अतस्तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिम्।
पश्यंस्तदात्मकं विश्वं स्थित्युत्पत्त्यप्यया यतः॥ (४-२९-७९)

जब थोड़ा भी समय मिल जाय, तब आत्म-स्वरूप का चिंतन कीजिए। जिसका भी आत्म स्वरूप का ज्ञान दृढ़ होता है, उसे उतनी ही जल्दी परमात्मा का दर्शन होता है। देह सम्बन्ध छूटता है, तब ब्रह्म सम्बन्ध होता है। देह-सम्बन्ध उसका छूटता है, जिसका आत्म-स्वरूप का ज्ञान दृढ़ होता है। आत्म-स्वरूप के ज्ञान को दृढ; करने के लिए जप कीजिए। ध्यान कीजिए। यज्ञादि कर्म मन को शुद्ध करने के लिए हैं–'चित्तस्य शुद्धये कर्म' मन के शुद्ध होने के बाद ध्यान करना चाहिए। नारदजी ने बोध दिया। प्राचीन बर्हि राजा को आत्म-स्वरूप का ज्ञान हुआ। प्राचीन बर्हि महाराजा आदिनारायण परमात्मा का ध्यान-कीर्तन करते हुए, कृतार्थ हुए हैं और ब्रह्म में लीन हुए हैं। प्राचीन बर्हि राजा की दस सन्तानें–दस प्रचेता, नारायण सरोवर में रुद्र गीत का जप कर रहे थे। इनको भी चतुर्भुज नारायण के दर्शन हुए। प्रभु ने आज्ञा दी कि घर जाकर आप विवाह करिये। प्रचेताओं ने कहा–हमें विवाह नहीं करना है। भगवान् समझा रहे हैं कि विवाह किये बिना ही संन्यास लेंगे ओर मन में कभी विकार वासना जागेगी तो बड़ा पतन होगा। विवाह सावधान होकर करिये। एक-दो सन्तान हो जाने के बाद संन्यास लेने में हर्ज नहीं है। यह जीव अनेक जन्मों से काम-सुख भोग रहा है। माता-पिता के मन में काम-वासना के उदय होने से ही इस शरीर का जन्म हुआ है। शरीर का मूल काम है। विवाह करने पर काम को एक ही पुरुष में, एक ही स्त्री में स्थिर करके धर्म की मर्यादा में काम सुख भोग कर उसका त्याग कीजिये। दो सन्तानों के जन्म के बाद आप सन्यास लीजिये।

प्रचेताओं ने कहा महाराज! विवाह होने के बाद कैसा भी सावधान जीव असावधान हो जाता है। गृहस्थ का जीवन ही ऐसा होता है। गृहस्थाश्रम में सावधान रहना बहुत कठिन है। कई लोग समभाव नहीं रख पाते हैं। कई मातायें बहुत चतुर होती हैं। भतीजे को छोटा पेड़ा देंगी और अपने पुत्र को बड़ा पेड़ा देंगी। जहाँ ममता है, वहाँ समता नहीं रहती है। जब भतीजे और पुत्र में समता नहीं रह पाती, तब जगत् में कैसे समता रहेगी? भगवान् कहते हैं कि तुम्हारी बात सच है। गृहस्थ जीवन ऐसा ही है। गृहस्थ जीवन में ज्ञान आवरण में रहता है। भक्ति में तब बिघ्न आता है पर आप एक काम करेंगे तो मैं असावधान नहीं रहने दूँगा। वैष्णव शय्या में प्रभु के साथ सो जाते हैं, जो प्रभु के साथ सोते हैं, उन्हें काम का स्पर्श नहीं होता है।

गृहेष्वाविशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम्।
मद्वार्तायातयामानां न बन्धाय गृहा मताः॥ (४-३०-१९)

प्रचेताओं के निमित्त से सभी गृहस्थों को यह उपदेश दिया गया है। प्रभु कहते हैं कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश के बाद चौबीस में से चार घण्टों तक जो शान्ति से भक्ति करेंगे, उन्हें पाप से मैं रोकूँगा। उन्हें असावधान होने नहीं दूँगा। आठ-दस घण्टे पेट के लिये धंधा करिए। पाँच-छह घण्टे निद्रा में व्यतीत करिये तो कोई हर्ज नहीं है। परमात्मा के लिए चार घण्टे का समय रखिये। भगवान् सम्पत्ति नहीं माँगते वे तो समय चाहते हैं। धन से गरीब प्रसन्न होता है, लक्ष्मीपति को कभी कोई धन से प्रसन्न नहीं कर सकता। मन्दिर से दो सौ, पाँच सौ की भेंट से भगवान् की प्रसन्नता का तो पता नहीं, हाँ! मन्दिर का पुजारी प्रसन्न होगा। अरे धन से प्रभु मिल सकते होते तो धनवान प्रभु को भी खरीद लेते। लाख दो लाख भेंट देते और कहते प्रभु! आपको दो लाख भेंट दिये हैं, अब आप बैठे रहिए पर क्या दो लाख रुपयों को लेकर प्रभु उसके घर में रहेंगे?

प्राचीन समय में जितने भी साधु हुए, वे प्रायः गरीब थे। श्रीमन्त भक्त बहुत कम हुए हैं। भक्ति में धन गौण है, परमात्मा आपके पास से समय माँगते हैं। कथा सुनने के बाद अधिक नहीं पर चार घण्टों का समय प्रभु के लिए रखिये। एक साथ चार घण्टे नहीं बैठ पाते तो सुबह एक घंटा दोपहर में एक घंटा और रात्रि में सोने से पहिले भक्ति में बैठिए। रात्रि में जो भक्ति नहीं करते वे पाप करते हैं, उन्हे काम मारता है। रात्रि में बहुत भक्ति करिये। चौबीस घण्टों में से चार घंटे भी जो भक्ति करते हैं,उन्हें पाप से प्रभु बचाते हैं।

प्रचेता घर गये और मारिषा नाम की कन्या से उन्होंने विवाह किया। उनके घर पुत्र हुआ, जिसका नाम रखा गया दक्ष प्रजापति पुत्र के बड़ा होने पर उसे राज्य सुपुर्द करके प्रचेता पुनः नारायण सरोवर आये। आदि नारायण परमात्मा का वे आराधन करने लगे। एक बार उन्हें नारदजी

का दर्शन हुआ। नारदजी के साथ उनका सत्संग हुआ। प्रचेताओं ने कहा कि गृहस्थ जीवन में अनजान में ही, ज्ञान का आवरण पूर्ण करने के लिए अज्ञान आता है और मन अशुद्ध होता है। बुहारी लगाने से घर स्वच्छ होता है तथा सत्संग करने से मन स्वच्छ होता है। हमें आप उपदेश दीजिये। नारदजी कहते हैं–जन्म उसका सफल है, जो परमात्मा के ध्यान में देह-भान भूल जाता है। विद्या, वही है जो जन्म-मरण के त्रास से मुक्त करती है। जगत् को प्रसन्न करना अशक्य है। परमात्मा को प्रसन्न करना शक्य है। प्रचेताओं ने तब परमात्मा की सुन्दर स्तुति की–

नमो नमः क्लेशविनाशनाय निरूपितोदारगुणाह्वयाय।
मनोवचोवेगपुरोजवाय सर्वाक्षमार्गैरगताध्वने नमः।। (४-३०-२२)

दर्शन देकर भगवान् अंतर्धान हो गये। यह सुनने का निश्चय करिये कि भगवान् मेरे लिए क्या कह रहे हैं। यह भी निश्चय कीजिये कि लोग क्या कह रहे हैं, यह मुझे नहीं सुनना है। आप आज शांति से भगवान् के नाम के जप के साथ कथा सुन रहे हैं, इससे मुझे लगता है कि बैकुण्ठ में आज भगवान् थोड़ी-थोड़ी बातें करते होंगे कि यह सब कुछ छोड़ कर मेरी कथा सुन रहा है, मेरा जप कर रहा है। लोग अच्छा कहते हैं, इससे लाभ नहीं है। लोग बुरा कहते हैं तो भी नुकसान नहीं है। जगत् के साथ जीव का सम्बन्ध कच्चा है, जीव का ईश्वर के साथ का सम्बन्ध सच्चा है। जगत् के पीछे नहीं, परमात्मा के पीछे पड़िये–

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या।। (४-३१-१४)

वृक्ष के मूल में जो जल रहता है, वह जल वृक्ष को प्रसन्न करता है। वृक्ष के एक-एक पत्ते को पानी देने की जरूरत नहीं है। संसार-वृक्ष का मूल परमात्मा है। जो परमात्मा को प्रसन्न करते हैं, वे जगत् को प्रसन्न करते हैं। मैत्रेयजी विदुरजी से कहते हैं कि इसके बाद नारदजी ने प्रचेताओं को ध्रुव चरित्र की कथा सुनाई थी। विदुरजी! वही कथा मैंने आपको सुनायी है। आपने प्रश्न पूछा कि ये प्रचेता कौन हैं? वह कथा भी मैंने समयानुसार आपको सुनायी है। प्रचेता नारायण-सरोवर में नारायण का ध्यान करते हुए प्रभु के चरणों में लीन हुए हैं। कहिये, अब आपको और क्या सुनना है?

विदुरजी ने कहा–अब मुझे कुछ नहीं सुनना है। आपने मुझे बहुत सुन्दर बोध दिया है। मैंने जो कुछ सुना है, उसका मुझे मनन करना है। गौ माता को आप घास खिलाते हैं, तब वे निगले हुए चारे को पेट में नहीं उतार देती, वे उसे जुगाली करके थोड़ा-थोड़ा उतारती है। घर जाने पर कथा का चर्वण करिये, रोमंथ करिये। जुगाली करने का यत्न करिये। सोचिये कि आज मैंने कथा

में क्या सुना? पुरंजन कौन? अविज्ञात कौन? कथा का एक-एक सिद्धांत याद करिये। कई व्यक्ति ऐसे हैं कि कथा से उठकर कथा स्थान पर सब कुछ छोड़कर घर जाते हैं। लोग कथा में बैठते हैं, तब तरह-तरह के नियम लेकर बैठते हैं। कई लोग सम्पूर्ण कथा उपवास करके सुनते हैं, मात्र दूध-फल लेते हैं। कई लोग सारा दिन उपवास करके रात्रि में एक बार भोंजन लेते हैं, पर कई ऐसा नियम भी लेते हैं कि महाराज जो कुछ कहते हैं, वह महाराज को अर्पण और ऐसे स्वयं घर जाते हैं। तब वे कुछ नहीं ले जाते। सोचते हैं कि हम देने आये हैं लेने नहीं आये हैं। अरे! कथा में से कुछ लेकर आना है। सोचिये! कथा से क्या मिला? आप सभी प्रवृत्तियों को छोड़कर बैठे हैं, आपको कुछ लाभ होना चाहिये। कथा पूर्ण होने पर सोचिये कि आज मेरे लिये कथा में क्या सुनाया गया। कथा ऐसी मधुर है कि वक्ता विवेक से कहता है तो कथा में सभी को—बालक, युवक, स्त्री, साधु, संन्यासी गृहस्थ—सभी को लाभ होता है। व्यासजी ने ऐसी ही कथा कही है। कथा सुनने के बाद थोड़ा सोचिये। चिंतन कीजिये।

विदुरजी गंगा-तट पर आदिनारायण परमात्मा की आराधना करके कृतार्थ हुए हैं।

इति चतुर्थः स्कंधः समाप्तः

हरि ॐ तत्सत्

श्री गणेशाय नमः
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

पंचम स्कन्धः

२९–ज्ञानी परमहंस और भागवत परमहंस

प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने।
गृहेऽरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः॥ (५-१-१)

परमात्मा श्रीकृष्ण चेतन स्वरूप हैं। आत्मा, परमात्मा का अंश है। इससे आत्मा भी चेतन रूप है। ईश्वर और जीव चेतन हैं तो जगत् क्या है? जगत् जड़ और चेतन का मिश्रण है। जगत् में दो पदार्थ हैं–जड़ और चेतन। आत्मा चेतन है, शरीर जड़ है। जो क्षण-क्षण में परिवर्तित होता है, उसे जड़ कहते हैं तथा जिसका स्वरूप सदैव एक-सा रहता है, वह चेतन है, उसे चेतन कहते हैं। जड़ प्रत्येक क्षण परिवर्तित होता है और चेतन अपरिवर्तित रहता है। ये दोनों तत्त्व भिन्न है। भिन्न होने पर भी एक रूप हुए हैं। दूध और पानी को एक-रूप होने के बाद अलग करना कठिन है, उसी तरह शरीर के जड़ से चेतन को अलग करना कठिन है।

हंस में एक बड़ा सद्गुण है। दूध और पानी को एक करके हंस के समक्ष रखिये। हंस पानी को छोड़ देता है और दूध पी जाता है। इस जगत् में दूध पानी इकट्ठे हो गये हैं। जड़ शरीर और चेतन आत्मा का मिश्रण हो गया है? परमहंस शरीर से आत्मा को अलग कर देते हैं। वे मानते हैं कि इस शरीर से मैं भिन्न हूँ, मैं परमात्मा का अंश हूँ, देह का दुःख मेरा दुःख नहीं है, देह का सुख भी मेरा सुख नहीं है। मैं आनंद रूप हूँ। पंचम स्कंध में परमहंसों की कथा है। श्रीमद्भागवत परमहंसों की संहिता है।

नारियल के ऊपर कवच होता है और कवच के भीतर नारियल का गर्भ–फल होता है। कवच कठोर होता है और फल कोमल होता है। कवच नीरस होता है और फल सरस होता है। कवच में स्वाद नहीं होता, फल में स्वाद होता है। जब तक नारियल में पानी रहता है, तब तक कवच फल को पकड़कर और जकड़कर रखता है। तब कवच से फल को अलग करना कठिन

होता है। बहुत तेज़ गर्मी पड़ती है, तब नारियल के भीतर का पानी सूख जाता है और तब नारियल का फल और कवच अलग हो जाते हैं।

थोड़ा सोचिएं तो ध्यान में आयेगा कि शरीर, कवच जैसा है। शरीर के भीतर स्थित आत्मा नारियल फल जैसा है। आत्मा रसमय है। रस फल में है, कवच में नहीं है। कवच से गर्भ अलग पड़ता है तब नारियल का पाक होता है। नारियल में जब तक पानी रहता है, तब तक कवच गर्भ को छोड़ता नहीं है। उससे वह चिपका रहता है। संसार के विषय जिसे सरस लगते हैं, संसार के विषय जिसे मीठे लगते हैं, संसार का सुख जिसे भाता है, वह शरीर से आत्मा को भिन्न स्वरूप में नहीं देख सकता है। जब विषय रस सूख जाते हैं तब शरीर से आत्मा भिन्न दिखाई देता है। तब संसार के सभी सुख तुच्छ प्रतीत होते हैं। संसार के विषय कड़वे लगते हैं और तब मन वहाँ से हट जाता है। आनन्द का स्वाद कवच में नहीं है, रस तो फल में है। शरीर रसमय नहीं है, आत्मा रसमय है। आनन्दमय तो परमात्मा हैं। ज्ञानी शरीर से आत्मा को अलग करते हैं। ज्ञानी दो प्रकार के हैं–भागवत परमहंस और ज्ञानी परमहंस। ज्ञानी परमहंस ऐसा मानते हैं कि जो दीख रहा है, वह सब असत्य है, जिसे ये दीख पड़ते हैं, वे परमात्मा सत्य हैं। परमात्मा सभी के द्रष्टा हैं, साक्षी हैं। दृश्य मिथ्या है, दृष्टा सत्य है। दृश्य क्षण-क्षण में परिवर्तित होता है, दृश्य दुःख रूप है। ज्ञानी पुरुष जो दीख रहा है। उसका मोह छोड़ते हैं, जिसे दीख पड़ता है, उस परमात्मा के साथ वे प्रेम करते हैं। वे दृश्य से दृष्टि हटाकर दृष्टा में दृष्टि को स्थिर करते हैं। भगवान् श्रीशंकराचार्य स्वामी जगत् को मिथ्या मानते हैं।

श्रीशंकराचार्य स्वामी के बाद के आचार्य–श्रीरामानुजाचार्य स्वामी, भगवान् श्रीमहाप्रभु जी आदि सभी वैष्णवाचार्य जगत् को सत्य मानते हैं। भागवत में दोनों सिद्धान्त हैं। जगत् असत्य है ऐसा अगर समझ में आ जाय तो जगत् में दुःख नहीं रहता है, परन्तु जगत् को सत्य मानकर ही लोग व्यवहार करते हैं। संसार सुख रूप है, ऐसा मानकर ही व्यवहार करते हैं। संसार के सुख दुःखमय हैं, ऐसा कहना सरल है, किन्तु यह समझना बहुत कठिन है। ज़गत् असत्य है, यही ठीक से समझ में नहीं आता है।

कथा पूर्ण हुई और घर जाने के लिए तैयार हुए। देखा कि कोई जूते ले गया है। उससे कोई अगर कहेगा कि जगत् असत्य है, तो वह कहेगा कि भाई अपना ज्ञान अपने पास ही रखिये। बिना जूते पहिने धूप में चलना पड़ेगा तो जगत् असत्य है। यह ज्ञान क्या टिक सकेगा? जगत् असत्य है–इस ज्ञान को मानव समझता नहीं है, मात्र बोलता है। जगत् असत्य है–ऐसा बोलने में लाभ नहीं है, अनुभव में लाभ है। साधारण व्यक्ति के लिए यह सिद्धान्त कठिन है।

वैष्णव आचार्य कहते हैं कि जगत् आपको सत्य प्रतीत होता है। जगत् सत्य है, पर जगत् में जो कुछ भी है परमात्मा का है। तुम्हारा कुछ भी नहीं है। इस शरीर का मालिक भी ईश्वर है, जीव इसका मालिक नहीं है। वैष्णव आचार्य जगत को प्रभु का स्वरूप मानते हैं। ये सभी सीता-रामजी के स्वरूप हैं। अनेक स्वरूपों में प्रभु दर्शन देते हैं–

हरिदेव जगत जगदेव हरिः।

जगत् का मोह छोड़कर जगदीश्वर के साथ प्रेम करो। परमात्मा के स्वरूप में तन्मय हो जाओ।

सूतजी सावधान करते हैं। किसी तरह जगत् का मोह छोड़कर परमात्मा के साथ प्रेम करना है। ज्ञानी परमहंस और भागवत परमहंस का ध्येय एक ही है। मार्ग थोड़ा सा भिन्न है। आचार्यों में थोड़ा मतभेद है। सभी का लक्ष्य एक ही है। किसी का खंडन नहीं करना है। खण्डन करने से मन बिगड़ता है। मंडन कीजिए। भागवत में दोनों सिद्धान्तों का समन्वय है। जिसे जगत् असत्य लगता है, वह ज्ञान मार्ग के द्वारा भगवान् की आराधना करता है। जगत् जिसे सत्य लगता है, वह भक्ति मार्ग के रास्ते से प्रभु की भक्ति करता है। ऋषभदेवजी ने ज्ञानी परमहंस का आदर्श दिखाया है और समझाया है। भरतजी महाराज ने भागवत परमहंस का आदर्श दिखया है। साध्य एक ही है, साधन में थोड़ा फर्क है।

प्रियव्रत राजा के वंश में ऋषभदेवजी का प्राकट्य हुआ था। प्रियव्रत राजा की विवाह की इच्छा न थी। ब्रह्माजी समझा रहे हैं कि जो लापरवाह रहता है, उसका पतन होता है, जो सावधान रहता है उसको कोई तकलीफ नहीं होती है। प्राप्त प्रारब्ध भोग कर पूर्ण कीजिए।

प्रियव्रत राजा ने विवाह किया। उनके वंश में नाभि हुए। उनके घर भगवान् ऋषभदेवजी स्वरूप में प्रकट हुए। ऋषभदेवजी में सभी सद्गुण थे। इन्द्र ने एक बार मेघ को आज्ञा दी कि बरसात न होनी चाहिए। ऋषभदेव क्या कर रहे हैं, यह मैं देखना चाहता हूँ ऋषभदेव ने योग-शक्ति से मेघ उत्पन्न किये। ऋषभदेव ने सन्तानों को उपदेश देते हुए कहा–

नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्।।

(५-५-१)

मानव-शरीर तप के लिये है। संसार-सुख तो पशु-पक्षी भी भोगते हैं। जो तप नहीं करता है, उसका पतन होता है। पुत्र भरत को राज्य देकर ऋषभदेव घर छोड़कर जाते हैं, लंगोट का भी उन्होनें त्याग कर दिया है। नग्न, दिगम्बर हैं। पागल की तरह घूमते हैं, पर भीतर से सावधान हैं। कोई पीछे न पड़ जाय, ध्यान में– भक्ति में विक्षेप न आने पावे, इससे जगत् के समक्ष पागल

का स्वरूप धारण करके घूमते रहते हैं। कई लोग इन्हें पागल समझकर मारते हैं, तिरस्कार करते हैं। ऋषभदेव की निष्ठा है कि शरीर को कोई मारता है तो मुझे नहीं मारता है। मैं शरीर नहीं हूँ, मैं शरीर से भिन्न हूँ। आत्मा को कोई नहीं मार सकता है। मुझे इसका दुःख नहीं होता है। मैं आनंद में हूँ। लकड़ी को काटने से क्या लकड़ी में स्थित अग्नि काटी जा सकती है? शरीर लकड़ी है। मैं लकड़ी नहीं हूँ। मैं तो अग्नि हूँ, तेजोमय हूँ। मुझे कोई नहीं जला सकता है। मैं आनंद-स्वरूप हूँ। ऋषभदेवजी परमात्मा के स्वरूप में स्थिर हैं। उन्होंने अवधूतवृत्ति ग्रहण कर ली है। जो आशा-रहित, वासना रहित और तत्त्वनिष्ठ है, उसे अवूधत कहते हैं।

कई लोग इन्हें महात्मा समझकर सम्मान देते हैं। ऋषभदेव के लिये कोई मान दें, या अपमान करें–सभी असत्य है। जहाँ मान नहीं है, अपमान नहीं है, जहाँ सुख नहीं है, दुःख नहीं है–ऐसे आनंद में ऋषभदेव स्थिर हैं। परमात्मा सत्य हैं, आनंदमय हैं। ऋषभदेव परमात्मा में स्थिर हैं। ऋषभदेव को जब लोग बहुत त्रस्त करने लगे, तब वे अवधूती वृत्ति छोड़कर अजगरी वृत्ति ग्रहण कर लेते हैं। अजगर बैठा ही रहता है। वह हिलता नहीं, डुलता नहीं है। ऋषभदेव जहाँ बैठे हैं वहाँ बैठे रहे। जहाँ बैठे हैं, वहीं लघुशंका, दीर्घशंका करते हैं, पर परमात्मा के निरंतर ध्यान करने से ऋषभदेव के विष्ठा-मूत्र में से सुगन्ध प्रस्फुटित हो रही है। भरतजी बाहर से निष्क्रिय दीख पड़ते हैं, भीतर से निरंतर ध्यान करते हैं। उन्हें अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, परन्तु ऋषभदेव उनको स्वीकार नहीं करते हैं। सिद्धि प्रभु-मिलन में विघ्न करने वाली है। ऋषभदेव ने जगत् को आदर्श दिखलाया है। ज्ञानी को सिद्धि की उलझन में नहीं पड़ना चाहिये। परोपकार के लिये प्रयुक्त सिद्धि भी पतन की ओर ले जाती है। सिद्धि के उपयोग से प्रसिद्धि आती है। प्रसिद्धि से अहम् आता है। अभिमान से पतन होता है। ऋषभदेव ज्ञान की अंतिम कक्षा में पहुँच गये हैं। ज्ञान की अंतिम कक्षा में पहुँचने के बाद शरीर बीस-इक्कीस से अधिक दिनों तक टिकता नहीं है। एक बार जंगल में दावाग्नि जल उठी। उसमें ऋषभदेव ने शरीर को जला दिया। सह तेन ददाह। ऋषभदेवजी परमात्मा में लीन हो गये हैं। ज्ञानी परमहंसों को जगत् में किस तरह रहना चाहिये, इस आदर्श की स्थापना के लिय भगवान् का यह अवतार है। ऋषभदेवजी की कथा संक्षेप में वर्णित है। उसका हमारे लिये बहुत उपभोग नहीं है पर भरतजी का चरित्र वर्णन हमारे लिये बहुत उपयोगी होने के कारण शुकदेवजी महाराज भरतदेव के चरित्र का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं–

भरतस्तु महाभागवतो यदा भगवतावनितलपरिपालनाय।
सञ्चिन्तितस्तदनुशासनपरः पञ्चजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे॥

(५-७-१)

जब से भरतजी राज्य करने लगे, तब से इस खंड का नाम भरत खंड हुआ है। प्राचीन काल में इस खंड को 'अजनाभि खंड' कहते थे। भरतजी का नाम अजनाभ भी था।

भरतजी महाराज महान योगी थे, तपस्वी थे। मन में सूक्ष्म वासना रह जाती है तो भी ज्ञानी और योगी का पतन होता है। वासना भयंकर है। भरतजी वैराग्य को पूर्णतः नहीं पा सके हैं—इससे घर छोड़कर वन में गये तो वन में उनका पतन हुआ। घर में रहकर धीरे-धीरे संयम बढ़ाइए। अपने मन को समझाइए। मन को शुद्ध कीजिये। मन में कोई वासना न रहनी चाहिये। घर छोड़कर जाने पर क्या एकदम प्रभु मिलते हैं? घर में रहकर भी जो सावधान हो कर भक्ति करता है, उसे घर में भी प्रभु मिलते हैं पर जो वन में जाकर लापरवाह या असावधान रहता है, उसे माया बहुत त्रास देती है। घर छोड़ने की जरूरत नहीं है किन्तु मन में से घर को त्यागने की जरूरत है। जिसके मन में घर है, वह जहाँ जाता है। संसार रचा लेता है। जिसके मन में संसार है, वह मन्दिर में जाकर भी चकवी चकवा के जोड़े को देखकर संसार पा लेता है। वह आँख से, मन से पाप करता है। संसार छोड़कर कहाँ जायेंगे? मन से संसार निकाल देने का यत्न कीजिये।

भागवत की कथा सब के लिये है। जिसे घर में रहकर भक्ति करनी है, उसके लिये प्रह्लाद का चरित्र-वर्णन आगे आयेगा। कई लोग ऐसा समझते हैं कि घर में भक्ति नहीं हो सकती है। प्रह्लादजी की भक्ति घर में सफल हुई। प्रह्लादजी ने घर नहीं छोड़ा था। कई लोग ऐसा कहते हैं कि घर में प्रभु सभी तरह से अनुकूलता दें तब भक्ति करनी है। सभी तरहसे अनुकूलता कभी किसी को नहीं मिली है, न मिल सकती है। जीव जब जगत् में आता है, तब पाप-पुण्य दोनों लेकर आता है। पुण्य का फल सुख है, पाप का फल दुःख है। इस से घर में सुख-दुःख यानी अनुकूलता प्रतिकूलता तो रहेगी ही।

एक भाई ने कथा में सुना था कि पूर्णिमा के दिन समुद्र-स्नान से सभी तीर्थों के स्नान का फल मिलता है। समुद्र में गंगाजी हैं, जमुनाजी हैं, नर्मदाजी हैं—सभी तीर्थ समुद्र में मिलते हैं। इससे वे भाई समुद्र-तट पर जाकर बैठ गये पर स्नान नहीं करते हैं। एक सज्जन ने पूछा कि आप क्यों स्नान नहीं करते हैं? भाई ने कहा—मुझे स्नान करना है पर समुद्र में बहुत-सी लहरें उठ रही हैं। मैं राह देख रहा हूँ कि समुद्र की तरंगें बंद हो जायँ समुद्र शांत हो जाय, तो समुद्र में जाकर स्नान कर लूँ। समुद्र कभी शांत नहीं होता है। समुद्र कभी शांत होने वाला भी नहीं है। जो समुद्र में स्नान करना चाहता है, उसे समुद्र की तरंगों का त्रास सहना ही पड़ता है।

संसार, समुद्र है। संसार—समुद्र में कष्ट-रूपी तरंगें हर रोज उठती हैं। एक कष्ट दूर होगा तो दूसरा आयेगा। कष्ट आता है और जाता है। जो जगत् में आया है, वह कुछ-न-कुछ दुःख सहन

करने के लिये ही आया है। पाप लेकर आया है। जीवन में किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं रहेगा, ऐसी आशा नहीं रखनी चाहिये। ऐसा दिन क़भी नहीं आयेगा। कैसी भी कष्ट दायक स्थिति हो, भक्ति छोड़िये नहीं। अरे, कष्ट में क्या भोजन को छोड़ते हैं? भोजन तो करना ही पड़ता है। इसी तरह भक्ति करिये। घर में रहकर जो भक्ति करना चाहता है, उसे प्रह्लाद का चरित्र याद रखना है, और जिन्होंने घर छोड़ा है, वे भरतजी का चरित्र याद रखें–कभी न भूले।

भरतजी घर छोड़कर वन में गए। घर में बच्चों को खिला रहे थे, उनकी सूक्ष्म वासना मन में थी। जंगल में जाने पर भी वह मन में जाग्रत हुई। मात्र वासना का विषय बदल गया। वन में जाने के बाद हिरन को खिलाने लगे। वासना ज्ञानी पुरुष का महान योगी का किस तरह पतन करती है। वासना के प्रवेग में ज्ञान बह ज़ाता है। भरतजी अब हिरन के बच्चे को गोद में खिलाते हैं। हिरन में उनका मन फँसा है। शुकदेवजी महाराज उस चरित्र क़ा दिव्य वर्णन करते हैं। भरतजी महाराज़ नेपाल में गंडकी नदी के तट पर तप करने गये हैं। नेपाल में पशुपतिनाथ विराजमान हैं। यह जीव पशु है। पशु उसे कहते हैं, जिसे बाँध कर रखा जाता है। जीव को काम बाँधकर रखता है। काम जीव को नहीं छोड़ता है। जीव बँधा रहता है। जीव के पति श्रीशिव हैं। इससे उन्हें पशुपतिनाथ कहते हैं। पशुपतिंनाथ शिवजी का स्वरूप अति दिव्य है। गंडकी नदी है। गंडकी का दूसरा नाम शालिग्रामी है, क्योंकि गंडकी से शालिग्राम प्रकट होते हैं। भरतजी महाराज वहाँ तप करने गये हैं। पृथ्वी के सार्वभौम राजा थे। सब कुछ छोड़कर वन में गये हैं। साथ में कोई नौकर नहीं रखा है। एकांत में अकेले भक्ति करते हैं। सुबह चार बजे उठकर, स्नान करके कमर तक पानी में खड़े रहकर तेजोमय नारायण का ध्यान करते-करते गायत्री जप करने का उनका नियम है। सूर्यनारायण की भक्ति करने से बुद्धि शुद्ध होती है। बुद्धि के मालिक सूर्य नारायण हैं। सूर्य उदित होने पर भरतजी जल से बाहर आते हैं। सूर्यनारायण की स्तुति करते हैं, शलिग्राम की पूजा करते हैं, जो बहुत भक्ति करते हैं, माया उन्हें बहुत त्रास देती है। माया सोचती है कि यह बहुत भक्ति क़र रहा है, मेरे सिर पर पाँव रखकर भगवान् के धाम में जायगा। माया के प्रवाह में बहने वाले को माया त्रास नहीं देती है। जो बहुत क्रोधी है, बहुत कामी है उसे देखकर माया कहती है कि ऐसा व्यक्ति तो मृतवत ही है। उसे क्या मारना? जो निरन्तर भक्ति कर रहे हैं, ऐसे भरतजी को माया त्रास देने पहुँच गई।

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि राजन्! जो असावधान हैं, वह वन में जाता है तो उसे वन में माया त्रास देती है। जो बहुत सावधान है, वह घर में भक्ति करके भगवान् के दर्शन करता है। माया जीव को असावधान बना देती है। माया ने भरतजी के लिये ऐसा प्रसंग खड़ा कर

दिया। एक बार गर्मी के दिन थे। सूर्य उदित हुआ। भरतजी जल से बाहर आये। उसी समय नौ मास परिपूर्ण किये हुए सगर्भा हरिणी वहाँ जलपान करने आयी। उसे बहुत प्यास लगी थी। वह जैसे ही जलपान करने पहुँची कि एक सिंह ने गर्जना की। जंगल में बाघ-सिंह रहते ही थे। सिंह ने फिर गर्जना की। सिंह की गर्जना सुनकर हरिणी घबरा गई। जिस ओर से आवाज आ रही थी, उस ओर देखने लगी। सिंह ने फिर गर्जना की। गर्जना सुनकर हरिणी को विश्वास हो गया कि मेरी गंध सिंह को आती होगी। वह दौड़कर अभी आयेगा और मुझे मार डालेगा। अब मैं कहाँ जाऊँ? मेरा रक्षण कौन करेगा?

गंडकी नदी का लघु प्रवाह था हरिणी ने सोचा कि जोर से कूदकर सामने के तट तक पहुँच सकूँ तो बच सकती हूँ। उसने छलाँग लगा दी। प्रसव का समय था। उसके कूदते ही गर्भ का बच्चा पेट से बाहर निकल आया। हरिणी को प्रसव की वेदना हो रही थी। वह तड़पने लगी थी। उसका बच्चा जल में पड़ा था। बच्चे को देखती रही। भरती जी वहाँ खड़े थे। हरिणी भरतजी की ओर देखने लगी। मानो कह रही हो कि महाराज! मेरी सन्तान आपके सुपुर्द है। उसे बड़ा करना। भरतजी को इस बच्चे में श्रीहरि के दर्शन हुए। भगवान् सभी में हैं। भरतजी जगत् को ब्रह्म रूप में देखते थे। सोचने लगे कि यह बच्चा कैसा है? जन्म से माँ से बिछुड़ गया है। इसके पिता का भी पता नहीं है। प्रसव वेदना में हरिणी के तत्काल ही प्राण निकल गये। भरतजी दौड़कर गये और उन्होंने उस हरिण-शावक को उठा लिया। उसे अपने कुटीर में ले आये। भरतजी ने सोचा कि इसका माता-पिता अब मैं ही हूँ। इसका लालन-पालन अब मुझे करना चाहिए। भरतजी हरिण-शावक को बहुत प्यार करने लगे। जंगल में अकेले रहते थे। अब साथी मिल गया। इससे वे बहुत प्रसन्न रहने लगे। उसे गोद में लेते हैं, हृदय से लगाते हैं। दर्शन करने जाते हैं तो इसे साथ लेकर जाते हैं। स्नान करने जाते हैं तो इसे साथ लेकर जाते हैं। जहाँ भी जाते हरिण-शावक को कंधे पर चढ़ा कर ले जाते। बहुत बुरा हुआ। हरिण बालक को पानी से निकाला तो बुरा नहीं है। उसे कुटीर में रखा तो भी बुरा नहीं है, पर उस हरिण बालक को हृदय में रख लिया, यही बुरा हुआ। घर में चाहे जिस किसी को रखिये पर हृदय में तो श्रीकृष्ण को ही रखिये। श्रीकृष्ण के बिना किसी को हृदय में न रखिये। श्रीकृष्ण के बिना आप जिसे मन में रखेंगे, वह रुलायेगा, मरण बिगाड़ेगा। मन में परमात्मा को ही रखिए। भरतजी ने हरिण-शावक को मन में रखा। भरतजी उसका लालन-पालन करने लगे। आज तक संध्या-गायत्री करते हुए भरतजी को तेजोमय नारायण के दर्शन होते, अब गायत्री-जप करते हुए वह हरिण-शावक दिखाई देने लगा। भरतजी श्रीहरि के

लिए घर छोड़कर आये थे किन्तु हरिण में फँस गये। भरतजी का प्रारब्ध हरिण-बालक के स्वरूप में आया था।

नाव पानी में रहती है, पर पानी नाव में भर जाता है तो नाव डूबती है और नाव में बैठे व्यक्ति भी डूबते हैं। नाव में बैठने वाले को बहुत सावधान रहना होता है। संसार समुद्र है। मानव का शरीर नाव है। संसार के विषय जल हैं। विषय स्वरूप जल नाव में आ जाता है तो नाव डूबती है। संसार के विषय मन में आ जाते हैं तो पतन होता है। भरतजी ने हरिण को मन में रखा। ध्यान में तथा भक्ति में अब विक्षेप होता था। कभी-कभी भीतर से आवाज आती कि क्या इस हरिण के लिये घर छोड़ा है? मैंने तो प्रभु के लिये घर छोड़ा है। मेरा मन हरिण में फँसा है। यह अच्छा नहीं है। पर नहीं, नहीं, मैं तो परोपकार कर रहा हूँ। मैं उसकी उपेक्षा करूँगा तो बाघ-भालू उसे मार डालेंगे। मैं तो इसका रक्षण कर रहा हूँ।

अरे! जो स्वयं काल का ग्रास है, वह अन्य का क्या रक्षण करेगा? रक्षण तो परमात्मा करते हैं, प्रारब्ध के अनुसार। किसी मानव में रक्षण करने की शक्ति होती तो कभी किसी की मृत्यु होती ही नहीं। जीव रक्षण कर ही नहीं सकता है पर भरतजी ने ऐसा मान लिया कि मैं इसका रक्षण कर रहा हूँ। मुझे इसकी देख-भाल करनी चाहिए।

धीरे-धीरे भक्ति के नियम छूटने लगे। भक्ति में विक्षेप आने लगा। अब ठीक से ध्यान नहीं हो रहा है। हरिण-बाल दीख पड़ता है। माया जीव को इस तरह ठगती रहती है। कोई भक्ति करता है, तब माया बिघ्न लाती है और जीव संसार के विषयों में जैसे-जैसे फँसता है, माया ताली बजा-बजाकर हँसती है—अब कैसा फँसा है! बहुत भक्ति कर रहा था न! माया ने भरतजी को फँसा लिया। मन भरतजी को समझा रहा है कि यह तो परोपकार का काम है। जो बहुत परोपकार करता है वह प्रभु को भूलता है। भक्ति मार्ग में अति परोपकार अच्छा नहीं है। बहुत परोपकार से निम्न कोटि के व्यक्तियों का साथ होता है। बहुत परोपकार से अहम् बढ़ जाता है, अभिमान आ जाता है। भरतजी भगवान् को भूल गये। हरिण-बाल में उनका मन फँसा है। हरिण-बाल धीरे-धीरे बड़ा होने लगा।

एक बार ऐसा हुआ कि जंगल में हरिण को हरिणी दीख पड़ी, वह उस हरिणी के पीछे-पीछे चला गया। भरतजी के आश्रम में वापस नहीं आया। संध्या हुई। अंधकार हो गया फिर भी वह क्यों नहीं आया? भरतजी प्रतीक्षा कर रहे थे। अभी तक क्यों नहीं आया? मेरा पुत्र कहाँ गया होगा? क्या रूठ गया होगा? अरे! मैं प्रेम नहीं करता हूँ। उसे सुबह मैंने पानी तक नहीं पिलाया है। वह ही मुझे प्रेम कर रहा था। जब मुझे पीठ में खुजली होती, वह समझ जाता और अपने

कोमल-कोमल सींगों से खुजलाने लगता। तब कैसा आनन्द आता। तब मुझे बहुत सुख मिलता था। भरतजी उसे खोजने निकले। जहाँ कन्दमूल लेने जाते, जहाँ स्नान करने जाते, वहाँ सभी जगह ढूँढने गये, पर वह कहीं नहीं मिला। भरतजी घबरा गये। सोचने लगे कि जंगल में बाघ, सिंह घूमते हैं। किसी बाघ ने उसे पकड़ा होगा? मार डाला होगा? मेरे पुत्र को बाघ ने मार डाला होगा? यह सोचकर भरतजी रोने लगे। महान योगी, महान ज्ञानी पर माया में फँस गये। पुनः सोचते हैं....ना, ना, जो मेरा पुत्र है, प्रभु उसका रक्षण करते हैं। मैं उसे पुत्र मानता हूँ। मैं प्रभु की बहुत भक्ति करता हूँ तो प्रभु क्या मेरे हरिण-बाल की रक्षा नहीं करेंगे? मुझे लगता है कि वह मरा नहीं है, जी रहा है। पर अब बड़ा हो गया है, शादी करने गया होगा। अब आयेगा तो अकेला नहीं, पर बहू को लेकर आयेगा।

भरतजी ने भगवान् के लिये घर छोड़ा था, फिर जंगल में बैठे-बैठे ऐसे विचार करने की क्या जरूरत थी? मानव असावधान होता है। काल नहीं सोचता कि इसका काम अभी बाकी है। भरतजी का प्रारब्ध पूर्ण हुआ था। मरण का समय आ गया। भरतजी को बुखार आया। दर्भ की शय्या पर पड़े थे। शय्या में अन्तिम साँस ले रहे थे।

इधर वह हरिण, हरिणी के पीछे-पीछे गया। आठ-दस दिन वह उसके साथ रहा। वहाँ एक बलवान हिरण आया। उसके साथ उसका हरिणी के लिए युद्ध हुआ। आने वाला हिरण बलवान था। उसने इसको मार भगाया। यह हरिण घायल, रोता हुआ भरतजी के आश्रम में आ पहुँचा। पशु भी प्रेम को समझते हैं। हरिण समझ गया कि मेरे पिता अन्तिम साँस ले रहे हैं। वह हरिण भरतजी के चरणों में आकर बैठ गया। भरतजी ने एक बार आँखें खोलीं और हरिण को देखा। उसको देखते ही भरतजी खुश हो गये।

गंडकी नदी के तट पर जो घटना हुई थी, उसका स्मरण भरतजी को मृत्यु-शय्या पर हुआ। अन्तकाल में, उस हरिणी का स्मरण हुआ। शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि उसी हरिणी के पेट में भरतजी गये। मन वासना में जहाँ फँसा होता है, उसके अनुसार अन्तकाल में चित्र दीख पड़ता है और उस चित्र को-यह मैं हूँ-ऐसा जानकर जीवात्मा इस शरीर को छोड़ता है। भरतजी को अन्तकाल में वही हरिणी दिखाई दी, जिसने कूदकर प्राण गंवाये थे। वह हरिणी कालंजर पर्वत पर पुनः हरिणी बनकर घूम रही थी। भरतजी को उस हरिणी का स्मरण हुआ, भरतजी उस हरिणी के पेट में गये।

हमारे सनातन धर्म में इसी से मूर्ति-पूजा को बहुत महत्व दिया गया है। कई ज्ञानी पुरुष ऐसा मानते हैं कि मूर्ति-पूजा गौण है। ऐसा नहीं है। मूर्ति-पूजा करते हुए परमात्मा का स्वरूप मन

में रह जाता है और अन्तकाल में जब परमात्मा के इस दिव्य स्वरूप का चित्र खड़ा होता है तब हमारी जीवन-नैया पार हो जाती है।

परीक्षित राजा शुकदेवजी महाराज से पूछते हैं कि महाराज, बहुत से वर्षों तक भरतजी ने भक्ति की तो क्या वह व्यर्थ हो गई? शुकदेवजी कहते हैं कि राजा! भक्ति कभी व्यर्थ नहीं जाती है। भरतजी से एक भूल हुई, इससे हरिण हुए पर इस पशु-देह में भी उनको ज्ञान था।

एक राजा को मालूम हुआ कि वह अगले जन्म में सुअर होगा। मरण का समय आने पर उसने कहा कि भाल में सफेद टीके वाले सुअर को मार डालना क्योंकि वह मैं होऊँगा। मुझे सुअर के रूप में गन्दगी में लौटना नहीं है। पर जब उसे मारने गये, तब उसने कहा कि मुझे आनन्द है। मारने की जरूरत नहीं है।

जीव जहाँ जाता है, वहाँ सुख समझकर ही रहता है। भरतजी हरिण हुए पर हरिण के स्वरूप में भी उन्हें ज्ञान था। हरिण के समूह को त्याग कर वे गंडकी नदी के तट पर अपनी कुटीर में पहुँच गये। उन्हें सबका स्मरण हुआ। भरतजी रोने लगे हैं। नदी में स्नान करते हैं। वृक्ष के सूखे पत्ते खाते हैं। हिंसा के डर से घास भी नहीं खाते हैं। एकादशी का व्रत करते हैं। सभी के संग से दूर रहते हैं। आधा शरीर जल में, आधा जल के बाहर रख कर रहते हैं। पूर्व जन्म में 'हरये नमः' मन्त्र का जप करते थे। उस मन्त्र का स्मरण होते ही वे पशु-शरीर में भी जप करते हैं-

श्रीकृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

जितने दिन हरिण बालक का संग किया उतने दिन हरिण के रूप में रहे। प्रारब्ध पूर्ण हुआ। हरये नमः बोलते-बोलते शरीर छोड़ दिया। पवित्र ब्राह्मण के घर प्रकट हुए। यह भरतजी का अन्तिम जन्म था। बाल्यावस्था में ही उनको परिपूर्ण ज्ञान था। सोचा कि हरिण के संग से हरिण हुआ। मानव के संग से मानव होऊँगा। अब मुझे जन्म नहीं लेना है। वे माता-पिता का संग छोड़कर कोने में बैठ गये। माता उनको हँसाती है, बुलाती है पर वे कभी हँसते नहीं हैं, न कभी रोते हैं। महाज्ञानी के सभी लक्षण उनमें हैं। यह बालक कैसा है। यह तो पागल है क्या? पिता को भी आश्चर्य होता है। पिता ने जनेऊ दिया। ॐकार प्रणव का मंत्र पढ़ाते हैं। भरतजी कुछ बोलते नहीं हैं। बोलने से स्नेह होता है। पिताजी ॐकार मन्त्र पढ़ा रहे हैं, भरतजी कुछ नहीं बोलते हैं। वे तो निरन्तर परमात्मा के ध्यान में रहते हैं। कोई उनको पहिचान नहीं सकता। सभी उन्हें जड़ समझ रहे हैं। माता-पिता के अवसान के बाद भरतजी गाँव में पागल की तरह घूम रहे हैं। भाई-भाभी उनका तिरस्कार करते हैं। भरतजी ने घर छोड़ दिया। वे बाहर घूमते रहते हैं। मुफ्त में मजदूरी करते हैं।

कोई देता है तो लेते हैं। नहीं देता तो माँगते नहीं हैं। भाइयों ने उन्हें पकड़ कर खेत में रखा, और खेत की रखवाली सौंपी। भरतजी बैठे-बैठे ध्यान कर रहे हैं। गाय-बैल खेत में आते हैं, उन्हें वे रोकते नहीं हैं। भरतजी सभी में भगवान् के दर्शन करते हैं-

खाने वाला राम खिलाने वाला राम।
तो रोकने का मेरा क्या है फिर काम॥

बैठे-बैठे दर्शन करते हैं। भाइयों ने सोचा कि यह तो मूर्ख है। इसे अकल नहीं है। कोई इसे पहिचान नहीं सकता। संसारी जीव परमात्मा का त्याग करके संसार-सुख में फँसता है और ज्ञानी संसार-सुख छोड़कर परमात्मा का ध्यान करते हैं। भरतजी ध्यान में रहते हैं। जंगल में भीलों का राजा रहता था। उसने भद्रकाली माता की मनोती मानी थी कि मेरे घर पुत्र-जन्म होगा तो मैं तुम्हें नरबलि अर्पण करूँगा। उसके घर पुत्र-जन्म हुआ। राजा ने किसी हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति को पकड़कर लाने का आदेश दिया। भील खोजने निकले। भरतजी को कोई चिंता नहीं है। वे शरीर से हृष्ट-पुष्ट हैं। फटी धोती पहनी है। पंचकेश बढ़े हैं। बाहर से पागल से दीख रहे हैं। भीतर से सावधान हैं। भीलों ने कहा कि पकड़ो इसे! पकड़ो-कहा, तो वे खड़े रह गये। वे प्रत्येक को भगवद्भाव से देखते थे। सभी भगवान के स्वरूप हैं। जो मुझे पकड़ने के लिये कहता है, वह भी भगवान् है। ऐसी भरतजी की निष्ठा थी। भरतजी उनके पीछे-पीछे चलते हैं। भीलों के सरदार ने कहा कि यह तो पागल हैं। इसे बाँधने की जरूरत नहीं है। इस पर दृष्टि रखिये। भील इन्हें जंगल में ले आये। उनको मल-मल कर स्नान करवाया। लाल कपड़ा पहिनने के लिए दिया। भाल पर रक्त चन्दन का तिलक किया। जासुद के पुष्पों की माला पहिनायी। गर्म मिठाई खाने के लिये दी। भरतजी शान्ति से नारायण का स्मरण करते-करते खाने लगे। विचार किया कि मरेगा तो शरीर मरेगा, मैं असावधान नहीं हूँ-सावधान हूँ। परमात्मा के चरणों में जाने वाला हूँ। भीलों को आश्चर्य हुआ। सोचने लगे कि यह कैसा मूर्ख है! दो घण्टे के बाद मरना है, फिर भी शान्ति से खा रहा है! इसे जरा भी डर नहीं है! भोजन पूरा हो गया। भीलों ने मदिरा पान किया। गाते-बजाते भरतजी को महाकाली के मन्दिर में ले गये। भद्रकाली के समक्ष बैठने की आज्ञा की। भरतजी सिर झुकाकर बैठ गये। भाव आया कि यह मेरी माँ है। माता कभी बालक को नहीं मारती है और कदाचित माता कभी मारती है तो प्रेमवश मारती है। माता की मार में भी प्रेम रहता है। भीलों का राजा वहाँ आ पहुँचा। भद्रकाली की पूजा करके कहने लगा कि माता! तुमने मुझे पुत्र दिया, मैं तुम्हें नरबलि अर्पण करता हूँ। यह हृष्ट-पुष्ट है, तुम रुधिर-पान करना। मेरे पुत्र को मार्कण्डेय जैसी आयु वाला बनाना। राजा ने भरतजी को मारने के लिए तलवार उठा ली।

भरतजी को जरा भी डर नहीं है। वे मानते हैं कि मेरे मालिक चतुर्भुज हैं। चारों ओर से रक्षण करते हैं। यह दो हाथों वाला मुझे क्या मारेगा? भरतजी निर्भय थे पर भद्रकाली माता से यह सहन नहीं हुआ। उन्होंने सोचा कि यह मेरा लाड़ला पुत्र है। यह महान् ज्ञानी है। इसने ब्रह्म-दृष्टि स्थिर की है। इन मूर्खों को होश नहीं है।

बालक को जब कोई मारता है तो माता से सहन नहीं होता। भील राजा जैसे ही तलवार उठाकर मारने लपके, कड़्-कड़्-कड़्-कड़्-शब्द ध्वनि हुई। मूर्ति को तोड़ कर अष्टभुजा देवी भद्रकाली बाहर आयी। वही तलवार राजा के हाथ से खींचकर राजा का मस्तक काट डाला। उसके मस्तक को गेंद बनाकर माता खेलने लगी। भरतजी को–मैं बच गया–इसका सुख नहीं था तथा यह मर गया–इसका दुःख भी नहीं था। भरतजी पर संसार के सुख-दुःख का असर नहीं होता है। जहाँ सुख नहीं है, जहाँ दुःख नहीं है, जहाँ केवल आनन्द है, भरतजी उस आनन्दमय परमात्मा के स्वरूप में स्थिर हैं।

३०–भवाटवी में भूला हुआ जीव

भद्रकाली माता ने भरतजी का रक्षण किया। भरतजी ने निश्चय कर लिया कि अब घर नहीं जाना है। अब खेत पर भी नहीं जाना है। शरीर का प्रारब्ध पूरा करना है। घूमते-घूमते भरतजी इक्षुमती नदी के तट पर आये। कच्छ प्राँत का राजा रहूगण कपिल महामुनि के आश्रम में तत्त्वज्ञान का उपदेश लेने जा रहा था। चार दास पालकी उठाकर चल रहे थे। इक्षु नदी के तट पर जलपान के लिए तथा विश्राम के लिये वे लोग रुक गये। एक दास भाग गया। अब राजा ने कहा– रास्ते में भटकते किसी व्यक्ति को पकड़ लाइए। सेवकगण खोजने निकले। भरतजी शरीर से हृष्ट-पुष्ट थे। सेवकों ने कहा कि अरे चल! तुझे मजदूरी देंगे। 'चल' कहा इससे भरतजी चलने लगे। कहा कि यह पालकी उठानी है। पूर्व जन्म में अनेक बार पालकी में विराजमान हुए थे, पर पालकी उठाने का प्रसंग पहिली बार आया। भरतजी ने कंधे पर पालकी रख ली। नारायण का स्मरण करके चलने लगे। पांवों तले किसी जीव की हिंसा न हो यह सोच कर भरतजी धरती पर नजर डालकर चल रहे थे। रास्ते में छोटा भी जन्तु दीख पड़ता तो तुरन्त कूद कर आगे बढ़ते। बार-बार कूदते इससे पालकी में बैठे राजा रहूगण को धक्का-सा लगता और पालकी का डंडा उनके सिर पर टकराता था। दो-चार बार उन्होंने सहन किया। पर अन्त में राजा ने सेवकों को धमकाया। ठीक से चलो, हमें त्रास होता है। सेवकों ने कहा कि हम तो ठीक से चलते हैं पर यह जो नया आदमी आया है, पागल-सा दीखता है। कभी दौड़ने लगता है, कभी खड़ा रह जाता है। कभी खड़े-खड़े रोता

है, कभी हँसता है। भरतजी रास्ते में परमात्मा का ध्यान करते हैं। प्रभु को मनाते हैं। विचारते हैं कि अभी मेरे कितने पाप हैं? मैं अपने प्रभु से बिछुड़ गया हूँ। मैं संसार में भटक रहा हूँ। मेरा श्रीकृष्ण से वियोग हुआ। है। भरतजी वियोग में व्याकुल होते तब उनकी आँखों में आँसू आ जाते। श्रीकृष्ण के वियोग में जब रोने लगते तब बालकृष्ण-लाल रास्ते में प्रकट होते और धैर्य देते। कहते कि यह अन्तिम जन्म है। अब तुम मेरे चरणों में आने वाले हो। श्रीकृष्ण के दर्शन होते तब भरतजी को आनन्द होता और वे हँसने लगते।

रहूगण राजा ने भरतजी पर दृष्टि डाली। भरतजी को रास्ते में चीटियां दीख पड़ीं। चींटी में भी श्रीकृष्ण विराजमान हैं, ऐसी ब्रह्म दृष्टि से भरतजी जगत् को देखते थे। चींटियों को देखकर वे कूद पड़े। अब राजा रहूगण से सहन न हुआ। उसने भरतजी का तिरस्कार किया। कहा कि जीवित होकर भी मृत के समान दीख पड़ते हो। वैसे तुम मोटे दीख पड़ते हो, पर तुमने उल्टे होकर पालकी उठायी है। क्या तुम्हें बहुत भार लगता है? ठीक से चलो। क्या तुम मुझे नहीं पहिचानते हो? मैं कच्छ प्रान्त का राजा हूँ। मैं तुम्हें सजा दूँगा। मार जब पड़ेगी तब तेरा पागलपन चला जायेगा।

राजा से भरतजी ने एक पैसा भी नहीं लिया। राजा के घर का कुछ खाया भी नहीं है। रास्ते में जाते हुए को जबर्दस्ती वे लोग पकड़ लाये और उस पर मारने को तैयार हुए। भरतजी का मन शांत है। राजा ने बहुत तिरस्कार किया, पर भरतजी के मन पर कोई प्रभाव नहीं है। वे मान-अपमान को पी गये हैं। मान भी असत्य, अपमान भी असत्य, मेरे श्रीकृष्ण सत्य हैं। कंधे पर पालकी है और चल रहे हैं। सोच रहे हैं कि कोई भी हो मैंने इसे कन्धे पर बैठाया है। मेरा अपमान यह कर रहा है, इसका मुझे दुःख नहीं है। मैं आनन्द हूँ पर कदाचित मेरा अपमान करने वाले को मेरे प्रभु दण्ड देंगे। इस जीव का कल्याण हो, इसकी दुर्गति न हो, इसे मैं प्रभु के धाम में ले जाऊँगा। सत्संग के माहात्म्य को समझाने के लिए आज भरतजी की बोलने की इच्छा हुई।

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि सारा जगत् यह मान रहा है कि यह गूँगा है। भरतजी को कोई पहिचान नहीं पाता। भगवान् की इच्छा हुई कि अपने भक्त के ज्ञान को प्रकट करना है। अपने भरत की कीर्ति मुझे बढ़ानी है। लोग इन्हें पहिचानते नहीं हैं, इसे पागल समझते हैं, इसे गूँगा मानते हैं।

प्रभु की इच्छा थी। प्रभु ने लीला की। आज भरतजी की बोलने की इच्छा हुई। जीवन में एक बार बोले हैं, पर जिस रहूगण के साथ बोले हैं उसका उन्होंने कल्याण किया है। बोलना है तो ऐसा बोलिए कि सुनने वाले को कन्हैया प्रिय लगे। ऐसा बोलिये कि सुनने वाले के पाप जल जायँ। चलते-चलते भरतजी, राजा रहूगण को बोध देते हैं—

**त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं भर्तुः स मे स्याद्यदि वीर भारः।
गन्तुर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा पीवेति राशौ न विदां प्रवादः।।**

(५-१०-९)

राजन्! तुमने कहा कि मैं मोटा हूँ, पर यह तो शरीर का धर्म है, आत्मा का नहीं। मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर का साक्षी हूँ। मैं दुबला नहीं हूँ, पुष्ट नहीं हूँ। आपने कहा कि मैं जिन्दा भी मृत सदृश हूँ पर मुझे तो सारा जीवित जगत् मृत लगता है। जो आज है, वह कल नहीं है। यह पालकी जीवित ही मृत सदृश है। पालकी में जो पुतला बैठा है, वह भी जीवित-मृत है। आपने मुझ से कहा कि तुम्हें वजन लग रहा है क्या? अरे! वजन नाम की कोई चीज ही नहीं है। ज्ञानी पुरुष ऐसा मानते हैं कि जगत् असत्य है तो वजन कहाँ से सत्य होगा? मेरे प्रभु सत्य हैं। परमात्मा के सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं है। वजन तो मन की कल्पना है। मन मानता है, तब वजन होता है। माता बालक को उठाकर ले जाती है। बालक में माता की ममता होती है। माता को जरा भी वजन नहीं लगता। अपना बालक माता को फूल के समान हलका लगता है परन्तु पड़ोसी का पुत्र पहाड़ जैसा भारी लगता है। पाव भर मिठाई हाथ में है तो वह भारी लगती है पर उसे खा जाने के बाद, पेट में जाने के बाद वजन नहीं लगता है। अगर वजन है तो उसका सम्बन्ध मन के साथ है, आत्मा के साथ नहीं है। मैं मन नहीं हूँ, मन का साक्षी हूँ। मैं चेतन हूँ। मैं परमात्मा का अंश हूँ। राजा मुझ से तुमने कहा कि मैं तुम्हें मारूँगा। इस शरीर से मैं अलग हूँ। शरीर को कोई मारे तो इससे मेरी चाल नहीं सुधरेगी। मैंने ब्रह्म दृष्टि स्थिर की है। बोलते-बोलते भरतजी की ब्रह्म-निष्ठा प्रकट हुई है।

सन्त स्वरूप को छिपाते हैं। भरतजी ने कहा– ना, ना, मैं ब्रह्मनिष्ठ नहीं हूँ, मैं तो पागल हूँ। पग के नीचे किसी जीव की हिंसा न हो जाय, इसलिए कूदता रहता हूँ। जो पाप लेकर आया हूँ, वही भोग रहा हूँ। इससे नया पाप नहीं करता हूँ। जगत् को साक्षी के रूप में देखता हूँ। तुम्हें जो कुछ करना है, वही तुम कर सकते हो। मेरी चाल नहीं सुधर सकती है। अगर कोई पागल को मारता है तो पागल बुद्धिमान नहीं हो सकता। मार खाने से अगर पागल बुद्धिमान हो जाता है तो जगत् में कोई पागल न रहता।

भरतजी ने निर्भय होकर जवाब दिया है। पालकी में बैठा रहूगण सोचता है कि यह क्या बोल रहा है? यह तो वेदांत के सिद्धाँत कह रहा है। यह पागल नहीं है। यह कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। यह कौन होगा? पालकी में से देखा कि भरतजी के कंधे पर जनेऊ था। इसे देखकर राजा को विश्वास हो गया था कि यह ब्राह्मण है। वह भी केवल जाति से नहीं। इसने तो ब्रह्म दृष्टि स्थिर की है। ऐसे पवित्र ब्राह्मण के द्वारा मैंने पालकी उठवायी? धिक्कार है मुझे। मैंने बड़ी भूल की।

मेरी दुर्गति होगी। मैं अब नरक में जाऊँगा। राजा पालकी में से कूद पड़ा। भरतजी के चरणों में उसने साष्टाँग वंदन किया। राजा ने भरतजी को बहुत मान दिया। पालकी से गद्दी निकल कर भरतजी को उस पर सादर बैठाया।

राजा ने बहुत अपमान किया तब भरतजी नाराज न हुए, अति मान दिया तो प्रसन्न नहीं हुए। जहाँ मान नहीं है, जहाँ अपमान नहीं है, जहाँ सुख नहीं है, जहाँ दुःख नहीं है, भरतजी ज्ञान की उस अन्तिम भूमिका में—वहाँ आनन्दमय परमात्मा के स्वरूप में स्थिर थे। साधारण व्यक्ति मान मिलने पर वह प्रसन्न होता है। अपमान होने पर जी जलाता है। जिसे मान पसन्द है, उसे अपमान बहुत दुःख देता है। जिसे मान पसन्द नहीं है, वंह अपमान में शान्ति नहीं खोता है। राजा ने पूछा—महाराज! आप कौन हैं? मैंने सुना है कि गुरुदत्तात्रेय भगवान् पागल के रूप में अनेक बार घूमते रहे हैं। आपगुरु दत्तात्रेय हैं? आप शुकदेवजी हैं? जिन कपिल नारायण के आश्रम में मैं तत्त्वज्ञान का उपदेश लेने जा रहा हूँ, वे कपिल भगवान् मेरी परीक्षा लेने, रास्ते में तो नहीं आये हैं? मैरे जैसा कामी विलासी आपको क्या पहिचान सकेगा? मैं अंधा हूँ। जिसकी आँखों में काम है, वह आँखों के होने पर भी अंधा ही है। मैं आपको पहिचान नहीं रहा हूँ। महाराज! आप अपना परिचय दीजिये। मुझे कुछ उपदेश दीजिये। आपने कहा कि वजन जैसी कोई वस्तु नहीं है। आत्मा आनन्द रूप है सूक्ष्म है। यह सत्य है, पर आत्मा का सम्बन्ध बुद्धि के साथ, बुद्धि का मन के साथ, मन का इन्द्रियों के साथ और इन्द्रियों का शरीर के साथ रहता है। इससे अगर शरीर को दुःख होता है तो आत्मा को भी दुःख होना चाहिये। प्रत्यक्ष अग्नि के साथ सम्बन्ध न होने पर भी चावल पकते है। भरतजी कहते हैं कि आत्मा पूर्ण निर्विकार है। चावल विकारी है, जड़ है। मन बन्धन में आता है। आत्मा समझ रहा है कि मैं बन्धन में हूँ। मन विषयों का चिंतन कर रहा है तो वह जीव का शत्रु है, और परमात्मा का चिंतन करता है तो मित्र है। पानी होने पर कीचड़ होती ही है। और पानी से ही कीचड़ धोयी जाती है। कीचड़ का कारण पानी है। कीचड़ धुलने का कारण भी पानी है। बन्धन का कारण मन है और मोक्ष का कारण भी मन है। मन संसार का बहुत चिंतन करता है तो विषयों में फँसता है। विषय मन में घर कर लेते हैं। मुझसे एक बार भूल हुई थी। मैं हरिण का ध्यान करता था इससे मुझे हरिण का अवतार मिला। मैं एक बार पशु हुआ। अब मैं सावधान हूँ। मैं मन पर जरा भी विश्वास नहीं रखता हूँ। मैं निरन्तर भक्ति करता हूँ। नारायण का ध्यान कर रहा हूँ। ज्ञान और भक्ति, वैराग्य से दृढ़ होती है। संसार का कोई भी सुख जब मीठा लगता है, तब भक्ति ज्ञान बह जाते हैं। वैराग्य के बिना ज्ञान और भक्ति में दृढ़ता नहीं आती है।

वैराग्य को जाग्रत करने के लिये भवाटवी की कथा भरतजी राजा रहूगण को सुनाते हैं। संसार जंगल में जीव अनादि काल से भटक रहा है। इसका कोई अंत नहीं है। जीव होश खो बैठा है। वह यह नहीं सोच पाता कि मैं कहाँ था और कहाँ जा रहा हूँ? संसार-जंगल में जीव अनादि काल से भटक रहा है। वहाँ रास्ते में उसे छह ठग मिलते हैं—

यस्यामिमे षण्नरदेव दस्यवः सार्थं विलुम्पन्ति कुनायकं बलात्।
गोमायवो यत्र हरन्ति सार्थिकं प्रमत्तमाविश्य यथोरणं वृकाः॥

(५-१३-२)

ये छह ठग विवेक रूपी धन लूट लेते हैं और गड्ढे में फेंक देते हैं। पंच ज्ञानेन्द्रिय और छठा मन—ये छह ठग हैं। ये आत्मा का विवेक-धन लूट लेते हैं और इसे ठग लेते हैं। यह स्त्री बहुत सुन्दर है, यह पुरुष बहुत सुन्दर है—ऐसा समझाकर सभी ठग संसार में जीव को, फँसाकर रखते हैं। घर के लोग भी ऐसा झूठमूठ का प्रेम दिखाते हैं। सोचते हैं कि यह अधिक सुख भोगे और संसार में ही लीन रहे। वासना के वश में आकर जीव सुख भोगता है, इससे आँख और मन—दोनों अधिक बिगड़ते हैं। जब मन बिगड़ता है, तब यह सब बहुत अच्छा लगता है। सब मालूम होने पर भी मन, वासना में फँस जाता है। वासना के बीज जलते नहीं हैं। मानव का मन वासना का खेत है। खेत में पड़े बीज जलते नहीं हैं। पुनः-पुनः उग आते हैं। मन के भीतर कितने ही वासना के बीज पड़े हुए हैं। राजन्! तुम्हें मालूम नहीं है कि साधारण ज्ञान और भक्ति से वासना के ये बीज जलते नहीं हैं। दूसरे जन्म में फिर उग आते हैं। जीव कामान्ध और मोहान्ध बनता है। इस जंजाल का कोई अन्त नहीं है तीव्र भक्ति से, ज्ञान-निष्ठा से वासना के बीज जलते हैं।

साधारण भक्ति से वासना का बीज जलता नहीं है। जीव जन्म-मरण के त्रास से मुक्त नहीं होता है। संसार-जंगल में जीव भटकता है। कभी वह गंधर्वनगर में जाता है। वहाँ उसे सुख का आभास होता है, मजा आता है, पर गंधर्वनगर का सुख सदैव नहीं रहता है, वह क्षणिक होता है। अनुकूल गृहस्थाश्रम, गंधर्वनगर है। पैसे हैं, बंगला है, सुन्दर स्त्री है, और वहाँ ऐसा सोचता है कि मैं बहुत सुख भोग रहा हूँ, मैं बहुत सुखी हूँ। भोगी रोगी बनता है। गंधर्वनगर का सुख क्षणिक है। जब शरीर बिगड़ता है तब बुद्धि आती है। मेरी मति बहुत भ्रष्ट हो गई थी। माया ने मुझे ठग लिया है। मैंने लौकिक सुख में बहुत पाप किये थे। मैं संसार में फँसा था। मैं सोच रहा था कि मैं बहुत सुखी हूँ। मेरी कल्पना तो गलत थी। संसास्वन में जीव को कभी दावाग्नि जलाने आती है। लोग झूंठी निंदा करते हैं। तिरस्कार करते हैं तो उसे बहुत दुःख होता है। वही तो दावाग्नि है। हाथ में

पैसा भी न हो, वह स्थिति भी दावाग्नि है। पैसे के लिए जीव वैर-वैमनस्य करते हैं, क्रोध करते है। हिंसा करते हैं और पाप करते हैं।

संसार-जंगल में जीव भटकता है, तब कभी उसे हंस मिलते हैं। परमहंस, विरक्त साधु, संन्यासी, महात्मा, भजनानंदी संत ही हंस हैं। संतों का सत्संग हंसों का मिलन है पर उसे हंस भाते नहीं हैं। सुबह चार बजे उठकर ध्यान करना, सूर्य के उदय होने से पहले स्नान करना, संध्या करना, पूजा करना, गायत्री-जाप करना, सादा भोजन करना आदि नियम हंसों के समूह के होते हैं, जो उसे पसंद नहीं आते हैं। वह जीव, हंसों के टोले को छोड़कर बंदर की टोली में शामिल होता है। विलासी का संग, बंदर की टोली का संग है। मन चाहे तब उठना, मन चाहे उसके हाथ का खाना, आचार नहीं और विचार भी नहीं। वहाँ स्वेच्छाचार है और दुराचार भी है।

अनादिकाल से जीव संसार-जंगल में इस तरह भटक रहा है। उसके भटकने का अन्त नहीं है। अन्त तब आता है, जब पाप छूटते हैं। पापों से छूटने की इच्छा है तो पवित्र भावना रखिये। शुभेच्छा है तो पाप छूटते हैं। पवित्र और अपवित्र–सभी प्रकार की इच्छा-वासना छोड़कर परमात्मा का चिन्तन करने पर परमात्मा के साथ प्रेम करने पर इस संसार जंगल से जीव मुक्त होते हैं–

यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान् प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयाबलोकाम्।
नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट् सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः॥

(५-१४-४४)

राजा, अनादि काल से तुम भटक रहे हो। अनेक बार तुम राजा बने, अनेक बार रानी बने, अभी तुम्हें संसार-सुख से घृणा नहीं होती? यह सब तुम कब तक करोगे? राजा को भरत जी ने ऐसा सुन्दर बोध दिया है। राजा के भीतर की आँखें खुल गयी हैं। राजा सावधान हुए हैं। राजा को अब सुवर्ण की पालकी और मिट्टी एक समान दीख पड़ती है। नौकरों से उन्होंने कहा–यह सोने की पालकी ले जाओ मुझे रास्ते में सद्गुरु मिले हैं। मुझे अब घर नहीं आना है। भरतजी का सत्संग हुआ। भरतजी ने दीक्षा दी। ध्यानयोग की विधि सिखायी आदिनारायण परमात्मा का ध्यान करते-करते रहूगण कृतार्थ हुए। भरतजी परमात्मा का ध्यान करते-करते भगवान् के चरणों में लीन हुए।

एक अध्याय में, भरतजी के वंश का वर्णन किया गया है। बाद में भूगोल-खगोल का वर्णन है। जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाकद्वीप, शाल्मलीद्वीप, कैंचद्वीप, कुशद्वीप, पुष्करद्वीप–अनेक द्वीपों का वर्णन है। उन द्वीपों में अनेक नदियां हैं, पर्वत हैं, उनका भी वर्णन है। जम्बूद्वीप में नौ खंड हैं– उत्तर, इलावृत, दक्षिण इलावृत, किम्पुरुष, हरिवर्ष, कुरुवर्ष, भद्राश्व, केनुमाल, हिरण्मय और

भारत अर्थात् भरतखंड। एक-एक खंड में परमात्मा के स्वरूप अनन्य भक्तों के साथ विराजमान हैं। भरतखंड के मालिक नर-नारायण स्वामी हैं। उनकी सेवा नारदजी करते हैं।

भरतखंड की महत्ता समझायी गयी है। ग्रहों की नक्षत्रों की गति, राशि गति- दोनों प्रकारों को समझाया है। पृथ्वी के नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, और पाताल-ये सप्त पाताल हैं, इनकी कथा कही गई है। समाप्ति के अंतिम अध्याय में नरकों का वर्णन है। जितने पाप हैं, उतने नरक हैं। यमदूत पापी जीव को वहाँ ले जाते हैं और नरक का दुःख भोगने के लिये शरीर देते हैं। जीव वहाँ अपने किये पापों का फ़ल भोगता है।

भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभः समुद्र पातालदिङ्‌ नरकभागणलोकसंस्था।
गीता मया तव नृपाद्‌भुतमीश्वरस्य स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम॥

(५-२६-४०)

इति पंचमः स्कंधः समाप्तः
हरि ॐ तत्सत्

❀

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्‌भागवत-रसामृत

षष्ठः स्कन्धः

३१- भवरोग की औषधि-नाम-जप

न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तप आदिभिः।
यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया॥

(६-१-१६)

परमात्मा श्रीकृष्ण जब अतिशय कृपा करते हैं, तब ही प्रभु के नाम में प्रीति होती है। प्रभु के नाम में प्रीति नहीं होती, तब तक पाप नहीं छूटता है। परमात्मा के नाम में प्रीति करने और परमात्मा के नाम के जप करने पर ही पाप छूटता है। पुण्य करना सरल है, पाप छोड़ना कठिन है। प्रायः सभी पाप करते हैं। पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी पाप करता है, अनपढ़ भी पाप करता है, गरीब भी पाप करता है, श्रीमान् भी पाप करता है। मानव पाप छोड़ नहीं पाता है। और तो क्या कहूँ? भगवान् के दर्शन करने पर भी व्यक्ति पाप छोड़ नहीं सकता। रावण को रामचन्द्रजी के दर्शन हुए फिर भी रावण की बुद्धि सुधर नहीं सकी। वह रामजी के साथ युद्ध करने को तैयार हो गया। योग्य तो यह था कि रावण रामजी की शरण आ जाए, रामजी को वंदन करे। परन्तु रावण की बुद्धि राम-दर्शन के बाद भी न सुधर सकी। दुर्योधन को द्वारिकानाथ के दर्शन हुए थे। द्वारिकानाथ दुर्योधन को समझाने गये थे, उसके साथ मित्रता करने गये थे, पर दुर्योधन न सुधर सका। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कई जीव भगवान् के दर्शन पाने पर भी सुधरते नहीं हैं।

रावण और दुर्योधन प्रभु के नाम के जप करते तो सुधर सकते थे। रावण और दुर्योधन तो मर गये पर इस कलियुग में उनके वंश बढ़ गये हैं। रावण के क्या दो-चार सींग थे? ब्राह्मण था वह, पर गणना राक्षसों में होती थी उसकी रावण-पढ़ा-लिखा था, ब्राह्मण था, पर उसकी आँख में काम था। जगत् के स्त्री-पुरुषों को वह काम-भाव से देखता था। इससे उसका जीवन नष्ट हुआ, उसका पतन हुआ।

सूतजी सावधान करते हैं कि आँखों में काम-भाव जो रखता है, वह रावण है। जगत् में किसी स्त्री को, किसी पुरुष को काम-भाव से न देखिये। आँखों में काम न आने पावे, इसका ध्यान रखिये। सभी को निष्काम भाव से-भगवद्-भाव से देखिए।

दुर्योधन मूर्ख न था, वह पढ़ा-लिखा था, पर उसकी नीयत बिगड़ गयी। वह जानता था कि आधा राज्य पांडवों का है, फिर भी वह देना नहीं चाहता था। परायी संपत्ति जो लेना चाहता है, वह दुर्योधन जैसा है। दुर्योधन कहता है कि मैं धर्म जानता हूँ पर धर्मानुकूल पवित्र जीवन जीने की मेरी इच्छा नहीं हो रही है। मैं अधर्म जानता हूँ पर पाप छोड़ने की मेरी इच्छा नहीं हो रही है। मुझे पाप करने में आनंद आता है। मेरे भीतर कोई देव बैठे हैं, जो यह सब कर रहे हैं। पाप के संस्कार पाप करवाते हैं, कोई देव पाप नहीं करवाते हैं। अनेक जन्मों के पाप के संस्कार बुद्धि में दृढ़ हुए हैं। पाप के ये संस्कार जागते हैं, तब बुद्धिमान भी मूर्ख बन जाते हैं। उनका ज्ञान नहीं टिकता है और वे पाप कर बैठते हैं। जिसे पाप करने में सुख का भाव होता है, वह दुर्योधन जैसा है।

षष्ठ स्कंध के प्रारंभ में परीक्षित राजा ने प्रश्न पूछा कि महाराज नरक की कथा सुनने के बाद मुझे डर लगने लगा है क्योंकि जाने-अनजाने जीव पाप करता है। कभी नरक में जाने का प्रसंग न आये, ऐसा उपाय बतलाइये।

शुकदेवजी महाराज राजा को समझाते हैं कि जिस दिन पाप हो जायें, उस दिन रात्रि में सोने से पहिले प्रभु को वंदन करके पाप कबूल कीजिए पाप करना साधारण अपराध है पर पाप को स्वीकार न करना बहुत बड़ा अपराध है। पाप स्वीकार न करने वाले को बहुत बड़ी सजा होती है। पाप को स्वीकार करना चाहिए। प्रत्येक पाप के लिये शास्त्रों में नियत प्रायश्चित है। विधिपूर्वक प्रायश्चित कीजिए। चोरी, व्यभिचार महापाप है। महापाप के प्रायश्चित के लिये गायमाता को जौ खिलाइये, जब वही जौ गोबर में निकलें तब उन्हें निकालकर उबालकर खाना चाहिये। धीरे-धीरे खाने के ग्रास कम करते जाइये। छह मास जप के साथ ऐसा तप करने पर प्रायश्चित होता है। प्रायश्चित करने से पाप का विनाश होता है राजा ने प्रश्न पूछा कि प्रायश्चित करने से पाप का विनाश होता है पर पाप करने की इच्छा तो मन में रह जाती है। प्रायश्चित से पाप की वासना का विनाश नहीं होता है। एक बार पाप हो गया, उसका प्रायश्चित किया। पुनः पाप करने की इच्छा होती है। ऐसा उपाय बताइये कि पाप करने की कभी इच्छा ही न हो। शुकदेवजी महाराज कहते हैं कि राजा! प्रभुनाम के जप करने वाले का ज्ञान टिकता है। जो ज्ञान को टिका सकता है, उसमें अज्ञान नहीं आता है। अज्ञान नहीं आता है तो वासना भी नहीं जागती है और वासना नहीं जागती तो पाप नहीं होता है। पाप का मूल है वासना। वासना का मूल है अज्ञान। अज्ञान का नाश ज्ञान

से होता है। ज्ञान को टिकाने के लिये परमात्मा के नाम से प्रेम करिये। परमात्मा के नाम से जो निरंतर प्रेम करता है, उसका ज्ञान टिकता है।

परमात्मा का निर्गुण-निराकार अथवा सगुण-साकार स्वरूप नहीं दिखाई देता है। निर्गुण-निराकार ईश्वर आँखों से नहीं दीख पड़ते हैं, बुद्धि से अनुभूत होते हैं। सगुण-साकार परमात्मा दीख पड़ते हैं पर तेजोमय होने के कारण उन्हें देखने की हमारी शक्ति नहीं है। परमात्मा का नाम स्वरूप दीख पड़ता है। सर्वव्यापक परमात्मा को वैष्णव नाम से प्रकट करते हैं। वैष्णव नाम का जहाँ-प्रेम भाव से कीर्तन करते हैं वहाँ कन्हैया जाता है। कन्हैया आता है पर चोरी-चोरी आता है। एक वैष्णव ने लाला से पूछा कि कई लोग आपके दर्शन की कामना करते हैं तो आप अपना स्वरूप क्यों छिपाते हैं? आप स्वरूप प्रकट कीजिए। लाला ने कहा कि मैं बहुत सुन्दर हूँ, इससे स्वरूप छिपाता हूँ। सोचता हूँ कि मुझे किसी की नजर न लग जाए! कन्हैया बहुत सुन्दर है। मानव आँख से पाप करता है। मानव की आँख बिगड़ती है। परमात्मा को भी नजर लग जाती है।

परमात्मा ने जगत् में अपना स्वरूप छिपाया है पर नाम प्रकट रखा है। परमात्मा का स्वरूप नहीं दीख पड़ता पर प्रभु का नाम दिखाई देता है। कदाचित् किसी को प्रभु का स्वरूप दीख पड़े पर वह प्रभु को पकड़ नहीं सकता। रूप हाथ में नहीं आता है। आप नाम को पकड़ सकते हैं। नाम छूटता नहीं है। कुछ भी हो, परमात्मा के नाम का जप करने वाले के साथ परमात्मा रहते हैं। वे उसे पाप करने से रोकते हैं। भगवान् से भी भगवान् के नाम में अधिक शक्ति है।

रामायण में वर्णन आता है कि राम-नाम से पत्थर तैर गये थे। पत्थर पर 'श्रीराम' तीन अक्षर लिखकर पत्थर उलटा कर दिया और पत्थर श्रीराम के नाम के आधार से तैर गया। रामजी के मन में विचार आया कि मेरे नाम से पत्थर तैर गये तो मेरे द्वारा फेंका गया पत्थर क्या नहीं तैर सकता? समुद्र-तट पर, जहाँ कोई नहीं होगा वहाँ जाकर परीक्षा करनी चाहिये। अगर मेरे फेंकने से पत्थर तैर जायेगा तो कहूँगा कि लिखने की मेहनत न कीजिए। मैं जिस पत्थर को स्पर्श करूँगा, वह तैरेगा। रामचन्द्रजी अकेले दूर समुद्र-तट पर पहुँचे। पीछे कोई नहीं है, यह देखा, परखा और फिर श्रीरामचन्द्रजी ने पत्थर उठाया।

श्रीहनुमानजी का एक नियम था। जब कोई भी कार्य करते श्रीरामचरण में नजर रखकर करते। आप भी ऐसी आदत डालिये। जिस देव की आप प्रेम से पूजा करते हैं, उनमें दृष्टि स्थिर रखिए। देव का स्वरूप दृष्टि से दूर न हो। देव को घर में रखने वाला, देव को सिंहासन पर रखने वाला वैष्णव तो साधारण वैष्णव है; सच्चा वैष्णव देव को दृष्टि में रखता है। अपने प्रभु को दृष्टि

में रखिये। आँख से प्रभु का स्वरूप दूर न हो, प्रभु में दृष्टि रखकर काम करिये। प्रभु को दृष्टि में रखकर बोलिये।

कई लोग ऐसे हैं कि घर का काम करते-करते दृष्टि तिजोरी पर रखते हैं, धन में रखते हैं। आप भगवान् में दृष्टि रखिये। भगवान् में दृष्टि रखने वाले को भगवान शक्ति देते हैं। बुद्धि देते हैं। परमात्मा जिसे शक्ति और बुद्धि देते हैं, उसकी हार कभी नहीं होती है। मानव ईश्वर से विमुख होकर व्यवहार काम करता है भगवान् को भूलता है। तब वह ठोकर खा जाता है। अपनी बुद्धि पर बहुत विश्वास न रखिये क्योंकि मानव की बुद्धि अल्प है, क्षुद्र है। परमात्मा की शक्ति प्राप्त करके काम कीजिये। आप जो काम करेंगे, वह सफल होगा। आपकी कभी हार नहीं होगी। हनुमानजी महाराज की कभी हार नहीं हुई है। वे जहाँ गये, वहाँ उनकी जीत हुई है क्योंकि हनुमानजी का नियम था– श्रीरामचन्द्रजी को दृष्टि में रखकर काम करना। अकेले रामजी समुद्रतट पर दूर तक गये है। हनुमानजी ने विचार किया कि अकेले प्रभु वहाँ क्या करते होंगे? किसी से कहा नहीं और अकेले गये हैं। हनुमानजी कूद पड़े और रामजी के पीछे आकर खड़े हो गए। रामचन्द्रजी सोच रहे हैं कि यहाँ कोई नहीं है, मैं अकेला ही हूँ। रामजी ने पत्थर उठाया और समुद्र में डाला। पत्थर डूब गया। रामचन्द्रजी को अच्छा नहीं लगा। सोचा कि मेरे हाथ से डाला हुआ पत्थर तैरा नहीं! यह तो अच्छा हुआ कि यहाँ देखने वाला कोई नहीं है, मैं अकेला ही हूँ। रामजी ने दूसरा पत्थर उठाया। जोर लगाकर समुद्र में डाला। वह भी डूब गया। रामजी को जंचा नहीं। सोचा कि अब एक बार अंतिम प्रयत्न करके देखूँ। रामचन्द्रजी ने तीसरी बार पत्थर उठाया और फिर जोर लगाकर समुद्र में डाला। वह भी डूब गया। तब रामचन्द्रजी को विश्वास हो गया। वे थोड़े नाराज भी हुए। मेरे नाम से पत्थर तैरते हैं पर मेरे हाथ से डाला पत्थर नहीं तैरता है। रामजी ने जहाँ पीछे देखा तो वहाँ हनुमानजी महाराज हाथ जोड़कर खड़े थे। रामजी ने पूछा कि हनुमान! तुम यहाँ कब से आये हो? तब हनुमानजी ने कहा–आपने पहिला पत्थर डाला, तब से मैं खड़ा हूँ। मैंने सब-कुछ देखा है।

कोई व्यक्ति जब गिर पड़ता है, तब उसे गिरने-पड़ने का उतना दुःख नहीं होता, वहाँ देखने वाले कितने हैं, उसका दुःख होता है। हनुमानजी ने देखा कि रामजी को यह अच्छा नहीं लगा है। यह तो वहाँ जाकर सभी वानरों को कह देगा कि उनके हाथ से डाला पत्थर भी तैरा नहीं है।

प्रभु नाराज हुए हैं, हनुमानजी महाराज मुखारविंद का दर्शन करते हैं। सोचते हैं कि आज मेरे स्वामी नाराज हुए हैं। स्वामी नाराज होते हैं तो मेरी सेवा किस काम की? वे आनंद में विराजमान हों तो ही सार्थक है। हनुमानजी ने कहा कि महारज! आप नाराज न होइए। जो हुआ

सो अच्छा ही है। उचित ही हुआ है। मैंने तो कथा में ऐसा सुना है कि जो मेरे राम की शरण में आता है, श्रीराम, कृपा करके जिसे अपनाते हैं, श्रीरामजी जिसे अपना मानकर हाथ में रखते हैं, वह तैरता है, पर रामजी जिसे फेंक देते हैं, जिसका त्याग करते हैं, वह तो डूबेगा ही। महाराज! जो हुआ सो उचित ही है। आप नाराज न होइए।

हनुमानजी ने ऐसा अर्थ किया तब रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हो गये। हनुमानजी से कहा– हनुमान, तुम बहुत बुद्धिमान हो। मैं तो मान रहा था कि तुम मात्र बलवान हो, पर अब मुझे विश्वास हो गया कि तुम बहुत बुद्धिमान भी हो।

जगत् में बल और बुद्धि का विरोध-सा है। जो बहुत बुद्धिमान हैं, वे प्रायः दुर्बल होते हैं और जो बहुत बलवान हैं, उनकी बुद्धि मंद होती है पर हनुमानजी के सदृश कोई बलवान नहीं हुआ, न हनुमानजी के सदृश कोई बुद्धिमान हुआ है। रामचन्द्रजी ने हनुमानजी को पुरस्कार दिया। 'जितेन्द्रिय बुद्धिमतां वरिष्ठम्'–'मानव प्रायः बुद्धि का उपयोग धन के लिए करता है। पैसे तो वैश्या भी कमा लेती है पर बुद्धि का उपयोग पैसे के लिये करने वाला बुद्धिमान नहीं है।

परधन परमन हरन को, वेश्या बड़ी प्रवीण।
तुलसी सोई चतुरता, रामचरन लवलीन।।

बुद्धि का उपेयाग जो परमात्मा के लिये करता है, वही बुद्धिमान है। हनुमानजी को प्रभु ने पदवी दी तो हनुमानजी प्रसन्न हुए। हनुमानजी ने कहा–महाराज, यह तो आप नाराज हो गये थे, इससे आपको मनाने के लिए मैंने ऐसा अर्थ लिया। पर सच्चा अर्थ तो यह है कि आपके नाम में जो शक्ति है, महाराज, आप बुरा न मानिये–ऐसी शक्ति आप में भी नहीं है, रामनाम में जो शक्ति है, वह रामचन्द्रजी में भी नहीं है।

रामजी प्रत्यक्ष विराजमान थे, तब रामजी की शरण में जो आये उनका प्रभु ने उद्धार किया, पर आज जब रामजी प्रत्यक्ष विराजमान नहीं हैं, तब रामनाम बहुत से जीवों का उद्धार करता है, बहुतों की बुद्धि सुधारता है। रामनाम में बहुत शक्ति है। जगत् में जितने भी महापुरुष हुए, वे सभी परमात्मा के किसी भी नाम में तन्मय बने हैं, तब ही महान बने हैं। जब तक परमात्मा के नाम में तन्मय नहीं होते तब तक ब्रह्म सम्बन्ध नहीं होता है। सगाई के बाद विवाह होता है। जब तक सगाई नहीं होती है, तब तक विवाह नहीं होता है। सगाई का अर्थ है शब्द–सम्बन्ध। वाग्दान का अर्थ है शब्द का सम्बन्ध। परमात्मा से विवाह करना है। प्रभु के साथ शब्द–सम्बन्ध, नाम–सम्बन्ध जोड़ना ही पड़ेगा।

जगत् भगवान् के अधीन है, पर भगवान् नाम के अधीन हैं। जिस देव का नाम प्रेम से जपते हैं उस देव के दर्शन भले ही आपको न हों, पर देव आपके साथ ही रहते हैं। नाम प्रभु को प्रकट करता है। प्रभु के नाम में ऐसी दिव्य शक्ति है। जेब में पांच-दस हजार रुपये हों तो कई व्यक्तियों को प्रत्येक साँस के साथ रुपया ही आता है। जेब में रुपये हैं...रुपये हैं। आप पैसे का तो स्मरण रखते है। परमात्मा के स्मरण की आदत डालिये। परमात्मा के स्मरण के लिये परमात्मा से प्रीति कीजिये। जो प्रेम से परमात्मा के नाम का जप करता है, उसे पाप करने की इच्छा नहीं होती है। मन में जब पाप आने लगे तब प्रेम से बोलिये–

''नारायण नारायण नारायण नारायण नारायण नारायण''

आदिनारायण परमात्मा का ध्यान और कीर्तन जो करता है, उसका पाप छूटता है। आदिनारायण से विमुख बनने पर ही पाप होता है। परमात्मा के सम्मुख रहने वाला पाप नहीं कर सकता है। परमात्मा के नाम के जप जो प्रेम से करता है, परमात्मा का जो निरंतर अनुसंधान रखता है, उसकी बुद्धि में ज्ञान स्फुरण पाता है, उसका पाप छूटता है। तुलसीदास महाराज ने कहा है–

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम।।

ऐसा हो तो वासना जागती ही नहीं और पाप करने की इच्छा ही नहीं होती है। दृष्टांत के बिना सिद्धांत बुद्धि में आता ही नहीं है; इससे अजामिल की कथा कही है।

शांति से सोचने पर ध्यान में आयेगा कि हम सब अजामिल जैसे हैं। यह जीव परमात्मा का अंश है, ब्रह्म का अंश ब्रह्म में मिल जाता है। प्रभु के साथ एक होने में ही लाभ है, वही योग्य है। यह जीव ईश्वर का अंश होने पर भी माया में मिल जाता है। प्राय: माया में सभी का मन फँसा रहता है। माया अर्थात् क्या? विधाता ने पाँच छह जगहों में माया को रखा है। भोजन में माया है। कई लोगों की ऐसी आदत होती है कि हर रोज अचार चाहिये। पापड़ के बिना काम चलता ही नहीं है। मानव का मन भोजन में फँसा रहता है। भोजन में माया है। काम-सुख में माया है। जीव अनेक बार काम-सुख भोगता है फिर भी उसका तिरस्कार नहीं कर पाता उसे घृणा नहीं होती, मन वहाँ फँसा रहता है। पैसे में माया है। लाख मिले, दो लाख मिल जाय पर ऐसी इच्छा नहीं होती कि अब मुझे पैसा भी न मिले। मन पैसे में फँसा रहता है। थोड़ी माया कपड़ों में रहती है। आप जिस घर में रहते हैं, उस स्थान में माया रहती है। अधिक तो क्या? कथा में जिस स्थान पर बैठते हैं, उस स्थान में थोड़ी माया रहती है। कई व्यक्तियों की ऐसी इच्छा रहती है कि मैं देर से आऊँ तो भी मेरी निश्चित जगह मुझे मिलनी चाहिए। ग्यारह-बारह दिनों के बाद कोई इधर बैठने

वाला नहीं होगा पर अभी यह स्थान मेरा है। जगह के प्रति माया होती है। पुस्तकों में भी माया रहती है। कई व्यक्तियों की ऐसी आदत होती है कि किसी के घर जाते हैं और अच्छी पुस्तक देख ली तो अपनी थैली में रख लेते हैं। सभी को जय श्री कृष्ण करते हैं और पुस्तक थैली में रख लेते हैं। शास्त्र में लिखा है कि पुस्तक की चोरी करने वाला अगले जन्म में गूंगा होता है। सुवर्ण की चोरी करने वाला अन्धा होता है। अन्न की चोरी से भिखारी होता है। विधाता ने छह जगहों में माया रखी है। माया बुरी नहीं है। माया अनेक बार भक्ति में साथ देती है पर मैं ईश्वर का अंश हूँ–ऐसा मन में रखकर विवेक से माया का उपयोग कीजिये। माया के दास न बनिये। अग्नि उपयोगी वस्तु है, परन्तु अग्नि का उपयोग विवेक से करते हैं। अग्नि के बिना व्यवहार नहीं होता। अग्नि को संड़ासी से पकड़ते हैं। जब-जब माया को छूने का प्रसंग आ जाय, तब-तब विवेक संड़ासी से माया को पकड़िये। आप परमात्मा के दास हैं, आप माया के दास नहीं हैं। जीव ईश्वर का दास होने के बदले माया का दास बनता है, तब माया उसे रुलाती है। जीव ब्रह्म का अंश है। ब्रह्म का अंश ब्रह्म में लीन हो, वही अच्छा है– योग्य है। जीव ब्राह्मण होने पर भी माया में फँस जाता है, तब वही अजामिल है।

जो जीव माया में मिल गया है वही है अजामिल। वह कुसंग में बिगड़ा है। एक बार अजामिल शिकार खेलने जंगल में गया। तभी कुछ साधु उसके घर आये। साधुओं को मालूम नहीं है कि यह पापी अजामिल का घर है। वैश्या ने देखा साधु अनजाने से आ गये हैं। वे मेरे घर आये हैं, मैं उनकी सेवा करूँगी, उसने खाना बनाने के लिए अनाज दिया। वैश्या का अनाज लेना शास्त्रों में मना है। संतों ने खाना बनाया। भगवान् को भोग लगाया। भोजन किया। बाद में पता लगा कि वैश्या का अन्न शरीर में गया है। सच्चे सन्त जिसके घर का खाते हैं, उसका कल्याण करते हैं। सन्तों को ममता हुई। सन्तों को जिस जीव के प्रति ममत्व हो जाता है, उस जीव का पाप छूटता है, उसे भक्ति का रंग लगता है। किसी साधु-सन्त से स्नेह कीजिये, जिससे उन्हें आप से ममता हो जाय। भक्ति करने की बहुतों की इच्छा होती है, पर मानव भक्ति नहीं कर सकता है। सन्त जिसे हृदय से आशीर्वाद देते हैं, उसे भजनानन्द मिलता है।

अजामिल घर आया। वैश्या के कहने से उसने सन्तों को वंदन किया। सन्त सोचने लगे– इस जीव का कल्याण कैसे हो? आज इसके घर का भोजन लिया है। इससे हम कहेंगे कि तुम भगवान् का ध्यान करो तो वह ध्यान नहीं करेगा। इससे हम कहेंगे कि प्रेम से प्रभु की पूजा करो तो वह पूजा नहीं करेगा। प्रेम से पूजा करना सरल नहीं है। बहुत कठिन है। यह पूजा नहीं करेगा, ध्यान नहीं करेगा। अब इस जीव का कल्याण कैसे हो? वैश्या सगर्भा थी। सन्तों ने सोचा कि

अजामिल की यह अन्तिम संतान हैं, अन्तिम सन्तान के प्रति माता-पिता को विशेष स्नेह होता है। इस पुत्र का नाम नारायण रखा जाय तो अजामिल 'नारायण, नारायण' बोलेगा। पुत्र के निमित्त से भी नारायण जप होगा। इसका थोड़ा पाप जलेगा। भगवान् इस जीव पर कृपा करे! सन्तों ने कहा कि आपके घर हमें भोजन मिला, पर दक्षिणा नहीं मिली है। थोड़ी दक्षिणा देंगे? अजामिल हँसने लगा। उसने कहा– महाराज, मुझे नहीं जानते हैं। पैसा माँग रहे हो। आपके पास जो है वह मैं लूट नहीं लेता हूँ, वही मेरी दक्षिणा मानिये। आप चलते बनिये यहाँ से। मैं किसी को मानता नहीं हूँ। मैं तो लोगों को मार डालता हूँ, लूट लेता हूँ। यह तो आपका अच्छा योग हुआ कि आपके पास जो है,उसे मैं लूटता नहीं हूँ। इसे ही दक्षिणा मानिये। मैं दक्षिणा नहीं दूँगा। सन्तों ने कहा– तुम्हारे घर पुत्र का जन्म हो तो उसका नाम नारायण रखना। यही हमारी दक्षिणा है। हमें और कुछ नहीं माँगना है।

अजामिल को आश्चर्य हुआ–महाराज! मेरे पुत्र का नाम नारायण रखने से आपको क्या मिलने वाला है? आपको क्या लाभ है? सन्तों ने कहा– भाई, हम नारायण के सेवक हैं। हमारे इष्ट देव नारायण हैं। हम तुम्हारे घर आये थे, इसकी स्मृति रहेगी।

भागवत की कथा सुनने के बाद आपके घर पुत्र का जन्म हो तो उसका नाम नारायण रखिये परन्तु आजकल पढ़े-लिखे, सुधारवादी लोगों को पुराने नाम पसन्द नहीं हैं। ये लोग ऐसा मानते हैं कि जो पुराना है वह सब निकम्मा है इससे इन्होंने सब नया खोज लिया है। हमारा पुराना धर्म बहुत श्रेष्ठ है। नया सब विवेक से ग्रहण लेना। अपना पुराना धर्म न छोड़ना। सनातन धर्म जैसा कोई धर्म नहीं हैं। आजकल लोगों को पुराने नाम तक पसन्द नहीं हैं। पुराने नाम निकाल कर नये नाम खोज लिये हैं। अशोक भाई, बसन्त भाई–ऐसा नाम रखते हैं। अशोक भाई की सूरत ऐसी होती है कि उसको देखते ही दूसरे को शोक होता है। इससे तो अच्छा है कि राम, कृष्ण, गोविन्द, वासुदेव–ऐसे नाम रखे जायें इससे बोलने और सुनने वाले का कल्याण होता है। पुत्र के नाम से माता-पिता की बुद्धि की, उसके स्वभाव की परीक्षा होती है। नाम ऐसा रखिये कि बोलने से सत्कर्म की कुछ प्रेरणा मिले।

संतों के दर्शन से अजामिल का हृदय द्रवित हुआ था, शुद्ध भी हुआ था। उसने कहा– नारायण नाम रखने में मुझे क्या हर्ज है? भगवान् की कृपा से अगर पुत्र का जन्म हो तो उसका नाम नारायण रखेंगे। संत चले गये। अजामिल के घर पुत्र का जन्म हुआ। संतों की आज्ञा के अनुसार उन्होंने बालक का नाम नारायण रखा। अजामिल सारा दिन नारायण के साथ व्यतीत करता है– नारायण, तुमने खाना खाया? नारायण, नारायण....कहता रहता है, गोद में नारायण को खिलाता है। अजामिल को नारायण... नारायण.....बोलने की आदत हो गयी।

नारायण सात-आठ वर्ष का हुआ। अजामिल को एक बार यमदूत पकड़ने आये। अजामिल ने बहुत पाप किये थे, इससे आयुष्य होने पर भी मर रहा था। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि आयुष्य होने पर भी जो मरता है, उसे अप-मृत्यु कहते हैं। मृत्यु के दो भेद हैं– महामृत्यु और अपमृत्यु। पूर्ण आयुष्य भोग कर मरना महामृत्यु है। आयुष्य होने पर भी मृत्यु होती है तो उसे अपमृत्यु कहते हैं। जो अति कामी है, जिसने अति पाप किये हैं, वह आयुष्य होने पर भी मरता है। अति पापी पूरा आयुष्य नहीं भोग पाता। अजामिल ने जीवन में बहुत पाप किये थे, इससे उसको आयुष्य के बारह वर्ष शेष होने पर भी यमदूत उसे पकड़ने आये थे। भयंकर यमदूतों को देखकर वह घबरा गया। उसे अपना पुत्र नारायण याद आया। पुत्र को बुलाने के लिये वह नारायण-नारायण पुकारने लगा। पुत्र खेलने गया था। वह पिता के पास न आ सका, पर बैकुण्ठ से भगवान् नारायण के पार्षद वहाँ दौड़कर आ पहुँचे।

यमदूतों से पार्षदों ने कहा–इस अजामिल को छोड़िये। यमदूत विष्णु दूतों को समझाते हैं–यमराज की आज्ञा से हम आये हैं; यह महापापी जीव है। इसका चरित्र हम जानते हैं, ब्राह्मण के घर इसका जन्म हुआ है, घर में वैश्या रखता है। बीस-इक्कीस वर्ष की अवस्था तक यह सेवा करता था, गायत्री-जप करता था। एक बार यह जंगल में समिधा लेने गया। वहाँ उसने शूद्र के साथ एक वैश्या को देखा। वह वैश्या को बार-बार देखने लगा। वह कामाँध–मोहाँध हो गया।

काम आँख में पहिले आता है, मन में बाद में आता है। मन को पवित्र रखना है तो सावधान रहिये। काम आँख में न आने पावे। आँखें बिगड़ती हैं, तब मन बिगड़ता है। मन के बाद वाणी बिगड़ती है। जिसकी वाणी बिगड़ती है, उसका व्यवहार बिगड़ता है, उसका जीवन बिगड़ता है। रावण की आँख बिगड़ी, उसका मन बिगड़ा, वाणी बिगड़ी–व्यवहार बिगड़ा। रावण का जीवन बिगड़ा। और तो क्या कहूँ? रावण का नाम भी बिगड़ा। आज हजारों वर्ष व्यतीत हो गये किसी ने अपने पुत्र का नाम रावण भाई रखा हो– ऐसा कहीं सुना नहीं है।

पाप का प्रारंभ आँख से होता है, भक्ति का प्रारंभ भी आँख से होता है। पाप से पतन होता है, भक्ति से जीवन सुधर जाता है।

शुकदेवजी महाराज राजा को सावधान करते हैं। अजामिल बाद में वैश्या के घर जाता था। माता-पिता को मारता था घर का धन वैश्या को देता था। विष्णु-दूतों को यमदूत उसकी कथा सुनाते हैं। महाराज यह तो हीन जाति की वैश्या है और यह ब्राह्मण है, चोरी करता है। इसने अनेक ब्रह्म-हत्याऐं की हैं। यमराज की आज्ञा से हम इसे पकड़ने आये हैं–'यत्र दण्डेन शुद्ध्यति'–हम इसको पकड़कर यमपुरी ले जायेंगे। इसे सजा होगी। हमारे यहाँ जरा भी अन्याय नहीं है।

विष्णु दूतों ने कहा–अजामिल ने पाप किये हैं, यह आप जानते हैं, पर अजामिल ने पाप का थोड़ा प्रायश्चित भी किया है, जो आप नहीं जानते हैं। अभी वह दो बार नारायण–नारायण बोला। उसके पाप का प्रायश्चित्त हुआ। यमदूतों ने कहा–इसने नारायण–नारायण कहा पर यह कोई बैकुण्ठ के नारायण का नाम तो नहीं लिया है। इसके घर नारायण नाम का पुत्र है। वह अपने पुत्र को–नारायण को बुलाता था। विष्णु दूतों ने कहा–

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥ (६-२-१८)

पुत्र के निमित्त से भी नाम तो परमात्मा का ही उसके मुख से निकला। उसका थोड़ा पाप जल गया। बारह वर्षों का उसका आयुष्य शेष है। संभव है, अब वह सुधरेगा। नहि वस्तु शक्तिर्ज्ञानम पेक्षते–वस्तु में निहित शक्ति काम करती है, उसका ज्ञान हो या न भी हो। अनजान में भी पाँव अगर अग्नि पर पड़ता है तो अग्नि उसे जलाती ही है। तब इसने तो भगवान् का नाम लिया है, अनजाने में भी परमात्मा का नाम मुख से निकलता है तो लाभ ही है। जल्दी में खाया गया भोजन स्वाद नहीं देता पर भूख को तो तृप्त करता ही है। शांति से स्मरण के साथ प्रभु के नाम का जप उत्तम है, पर जब मन व्यग्र हो, तब प्रभु के नाम लेने से थोड़ा भी लाभ तो होता ही है।

रास्ते में चलते–चलते ठोकर लग जाय तो तब हाय! हाय! न करिये; हरि, हरि, श्रीराम, श्रीकृष्ण बोलिये। प्रेम से प्रभु का नाम लेने से, जप करने से दुःख का असर कम होता है। प्रायः लोग दुःख में बहुत हाय–हाय करते हैं। जो व्यक्ति बहुत हाय–हाय करता है, वह अंत में हाय–हाय करके ही जाता है। प्रभु की कथा सुनने के बाद हाय–हाय करना छोड़ दीजिए। हो सके तो नियम रखिये कि जो कुछ भी हो, मैं मन में संताप नहीं करूँगा, जी नहीं जलाऊँगा। मैं प्रभु के नाम के जप करूँगा। हरि–हरि कहने की आदत डालिये। कई लोग बहुत उदार होते हैं। खर्च करते हैं, तब हजार का खर्च कर देते हैं, पर हिसाब करने पर अगर दो सौ–पांच–सौ का हिसाब नहीं मिलता तो दो–चार दिन जी जलाते हैं। अरे! हिसाब न मिले तो क्या जी जलाना? मन को समझाइए कि अन्याय का धन घर में आया होगा, प्रभु ने इस गंदगी को बाहर निकालने की राह बना दी है। बहुत अच्छा हुआ। मुझे जी नहीं जलाना है। कई माताएँ ऐसी होती हैं कि घर में थोड़ा भी नुकसान होता है तो जी जलाती हैं। घर में काम करती हों और दूध में उफान आ जाय, दूध छलक जाय, अग्नि में गिरने लगे तो वे हाय–हाय करती हैं। हाय–हाय! ऊपर की सब मलाई गिर गयी! अरे! मलाई ही गयी है, तुम तो नहीं गयी हो? जी न जलाइए। कैसा भी प्रसंग आ जाय, परमात्मा का नाम न छोड़िए।

विष्णु दूतों ने कहा कि परमात्मा का नाम अजामिल के मुख से निकला है, उसका थोड़ा पाप जल गया है। उसे आप छोड़िये। यमदूत यमराज के पास गये हैं। यमराज भगवान् के नाम की महत्ता जानते हैं। यमराज ने यमदूत से कहा है–

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्॥

(६-३-२९)

इस तरह विष्णु दूतों ने अजामिल को छुड़ाया है। अजामिल शय्या में पड़े-पड़े यह सब देख रहा है कि ये मुझे मारने आये थे आज मैं मरने वाला था, पर मैं नारायण-नारायण बोला, तो दो व्यक्ति मुझे छुड़ाने आ पहुँचे। मैं बच गया। अति पापी के जीवन में जब ऐसा कोई प्रसंग घटित हो जाता है, तब वह तुरन्त सुधर जाता है। अति पापी महान भगवद् भक्त बन जाता है। आज अजामिल को अपने पापों पर पछतावा हो रहा है कि ब्राह्मण होकर मैंने ऐसे पाप किये, धिक्कार है मुझे। वह रोने लगा। कई व्यक्ति जब पाप करते हैं, तब मन में दुःखी होते हैं, पर बाद में अपने मन को समझाते हैं कि पड़ोस के लोग तो बहुत पाप करते हैं उनसे मैं अच्छा हूँ। पाप को साधारण नहीं समझना चाहिए। साधारण पाप भी बहुत अनर्थ करता है। पाप करने के बाद हृदय से पश्चात्ताप होना चाहिए।

अजामिल को आज पश्चात्ताप हुआ है कि मैंने भूल की है। प्रभु की कृपा हो और इस बीमारी से ठीक हो जाऊँ तो मैं अपना जीवन प्रभु को अर्पण करूँगा। अब पाप नहीं करूँगा। अब कोई पाप-प्रकृति भी नहीं करूँगा। सारा दिन भक्ति ही करूँगा। अजामिल की ऐसी तीव्र भावना है। जीवन में सच्चे सन्तों की सेवा की थी, जो आज सफल हुई है। उसकी अपमृत्यु टल गई। आज उसका जीवन सुधर गया।

अजामिल स्वस्थ हो जाने पर घर में न रहा, घर छोड़कर गंगा-तट पर गया। जीर्ण मन्दिर में रहने लगा। अब सारा दिन 'ॐ नमो नारायण' महामन्त्र का जप करता है वह अब मौन रहता है। आँख उठाकर किसी की ओर देखता भी नहीं है। बहुत भूख लगने पर मधुकरी माँगने जाता है। मधुकरी में जो कुछ भी मिलता है, उसे गंगाजी में डुबाकर पवित्र करता है। जल देवता को स्वाद देता है और एक बार खाता है। भोजन बहुत सरस होता है, तब भूख से अधिक खाया जाता है। भोजन नीरस होने पर पेट में जितनी भूख होती है, उतना ही खाया जाता है। जिसका भोजन नीरस है, उसका जीवन सरस है। स्वाद और वाद छोड़ने वाला भक्ति कर सकता है। लौकिक स्वाद में जिसका मन फँसा है वह भक्ति नहीं कर पाता है। स्वाद छोड़िए, वाद छोड़िए, तो ही भक्ति बढ़ेगी।

कई लोगों की ऐसी आदत होती है कि अपनी ही बात को सच्चा सिद्ध करने पर वे तुल जाते हैं। वाद-विवाद नहीं करना चाहिए-ऐसा हमारे शास्त्रों में लिखा है। भूख और प्यास रोग है, अन्न और जल दवाई है। कड़वी दवा व्यक्ति कितनी खा सकता है? कड़वी दवा व्यक्ति उतनी ही खाता है, जितनी अनिवार्य है। मानव विवेक से दवा लेता है। भोजन भी विवेक से लीजिए। भूख के रोग को मारने के लिए भोजन रूपी औषध लीजिए। भीतर दृष्टि डालकर भोजन कीजिये। जीभ जो माँगती है वह जीभ को न दीजिये। पेट जो माँग रहा है, वह पेट को दीजिए। भोजन करना पुण्य है, जीभ को लाड़ करना पाप है। भजन और भोजन भीतर दृष्टि डालकर कीजिए। भोजन करते समय बाहर न देखिये। प्रभु के नाम का जप कर रहे हो, तब भीतर नारायण के दर्शन करते हुए जप करिए। भजन में भीतर दृष्टि रखिये। भोजन में भी भीतर दृष्टि रखिए।

कई बार भीतर से आवज आती है कि अब न खाइए, पर फिर भी हम सोचते हैं कि दस-पन्द्रह दिनों से पकोड़े नहीं खाये हैं। थोड़े और खा लूँ अभी! अजीर्ण हो जायेगा तो दो गोलियाँ खा लूँगा। ऐसा नहीं करना चाहिए। भोजन साधन है, साध्य नहीं है। इस शरीर से भगवान् की भक्ति होती है, इससे इस शरीर को कुछ न कुछ किराया देना पड़ता है। कई व्यक्ति सुबह उठकर यही सोचते हैं कि दाल बनाऊँ या कढ़ी बनाऊँ? क्या बनाऊँ? कई व्यक्ति सब्जी-भाजी का विचार करते हैं। एक किलो सब्जी लेनी हो तो भी सारा बाजार घूमते हैं। आधा घण्टा गँवाते हैं। भोजन में स्वाद न रखिये। भोजन को औषधि समझकर विवेक से भोजन कीजिए। सादा भोजन जीभ को सुधारता है, जीभ के सुधरने से भक्ति होती है। भक्ति में जीभ मुख्य है। बहुत बोलने वालों की जीभ बिगड़ती है। जो कम बोलते हैं उनकी जीभ सुधरती है। बहुत बोलने से शक्ति नष्ट होती है। जरूरत के अनुसार बोलिए। मौन रखने से जीभ सुधरती है। परमात्मा के नाम के जप करने से जीभ सुधरती है। जिसकी जीभ सुधर गई उसका जीवन सुधर गया। आँखें सुधरने से मन सुधरता है। जीभ सुधरने से जीवन सुधरता है। भगवान् के नाम के जप जीभ से होते हैं। शरीर घर है, जीभ देहली है और प्रभु का नाम दीपक है। घर में एक ही दीपक होने पर लोग उसे देहली पर रखते हैं। इससे भीतर भी प्रकाश होता है और बाहर भी प्रकाश होता है-

राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर-बाहेरहुँ जो चाहसि उजियार।।

हरि नाम का दीप जीभ पर रखिये। जीभ से ही जप करने की आदत डालिये। कई लोग ऐसा समझते हैं कि मैं मन से जप करता हूँ, पर मन से तो दो-तीन मिनट ही जप होता है। बाद में मन छिटक जाता है। जिसने कई वर्षों तक जीभ से जप किये होंगे, वे ही धीरे-धीरे मन से जप

कर सकेंगे। जिनका मन मैला है जो मन से पाप करते हैं वे मन से जप नहीं कर पाते हैं। ऐसा जप अशक्य है। जीभ से जप कीजिए। जीभ को समझाइए कि तुम्हें श्रीखंड खाने की इच्छा होती है तो मैं बाजार से श्रीखंड ले आता हूँ और खिलाता हूँ, पर मैं तुम से रोज कहता हूँ कि 'श्रीराम-श्रीकृष्ण' जप करो तो तुम मेरी बात नहीं मान रही हो। अब मैं तुम्हें सजा दूँगा। हमारे जैसे साधारण व्यक्ति सजा पाने पर ही सुधरते हैं। आपके गाँव में नीम होगा। नीम के पत्ते ले आइए। बारह एक बजे जब भूख लगे तब, इन पत्तों का रस जीभ को पिलाइए। जीभ कहे कि 'यह क्या? तब कहिये कि तुम बहुत बातें करती हो, तुम्हें सजा दी है इसकी।' जीभ को सुधारिए।

अजामिल की जीभ सुधर गयी है। वह सादा भोजन करता है। 'ॐ नमो नारायण' महामन्त्र का निरन्तर जप करता है। 'अज' शब्द का अर्थ है—ईश्वर। गीताजी के चतुर्थ अध्याय में 'अज' शब्द का अर्थ ईश्वर किया है। अज अर्थात् ईश्वर और अजा अर्थात् माया। आज तक अजामिल माया में फँसा हुआ था। अब वह परमात्मा के नाम से प्रेम करता है। अजामिल की जीभ सुधरती है, आँख सुधरती है, जीवन सुधरता है। अब वह प्रभु के धाम में जाता है। अजामिल के लिए विमान आया है। अजामिल जगत् को वंदन करके सावधान करता है कि अति पापी को निराश होने की जरूरत नहीं है। प्रभु के द्वार सब के लिए खुले हैं। कैसा भी पापी हो, पाप का हृदय से पश्चात्ताप होना चाहिए। अजामिल ने दिखाया कि मैंने बहुत पाप किये हैं। ऐसा कोई बड़ा पाप नहीं है, जो मैंने बार-बार न किया हो, फिर भी आज विमान में बैठकर प्रभु के धाम में जा रहा हूँ। अजामिल आज परमात्मा के चरणों में लीन होता है।

३२– नारायण कवच

अजामिल कृतार्थ हुआ, इसकी कथा वर्णन की गई है, बाद में उत्पत्ति का थोड़ा क्रम समझाया गया है। दक्ष प्रजापति के घर हर्यश्व, शबलाश्व आदि अनेक बालकों का जन्म हुआ। नारदजी ने सभी को संन्यास दिया, इससे दक्ष प्रजापति को बहुत दुःख हुआ। तब ब्रह्माजी ने उसे आश्वासन देकर, साठ कन्याएँ दीं। दक्ष प्रजापति की इन अनेक कन्याओं के वंश का वर्णन किया गया है। प्रमुख कन्याएँ हैं—दिति और अदिति। अदिति के घर बारह सन्तानें हुई हैं—विवस्वान, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शुक्र और ऊरुक्रम। एक-एक वंश का वर्णन किया है। त्वष्टा के घर विश्वरूप का जन्म हुआ है। विश्वरूप देवों का गुरु बना है। उसने देवों को नारायण कवच की विद्या दी थी। नारायण कवच के प्रताप से ही देवों ने राक्षसों का विनाश किया और स्वर्ग का राज्य पा लिया।

राजा ने प्रश्न किया है कि महाराज! यह नारायण कवच क्या है? मेरी सुनने की बहुत इच्छा है। शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि राजन्! श्रवण कीजिए। वीर पुरुष जब लड़ने जाते हैं, तब लोहे का बख्तर पहिन कर जाते हैं कवच अर्थात् बख्तर। यह मन्त्रात्मक कवच है। जिसे नारायण कवच धारण करने की इच्छा हो, वह पहिले स्नान करे फिर पवित्र आसन पर बैठकर पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख रखकर नारायण कवच का पाठ करे। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि दक्षिण दिशा अपवित्र है। पश्चिम दिशा अपवित्र नहीं है, पर पवित्र भी नहीं है। नारायण कवच के पाठ से पहिले अंगन्यास-करन्यास कीजिए। देव जैसा ही जो पवित्र है, उसे ही देव-पूजा का अधिकार है। पूजा में बैठने से पहिले शरीर के प्रत्येक अंग की शुद्धि करनी चाहिए। एक-एक अंग में परमात्मा की स्थापना करके नारायण कवच का पाठ करना चाहिए–

ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां न्यस्ताङ्घ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे।
दरारिचर्मासिगदेषुचाप पाशान् दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः॥

(६-८-१२)

जल में मत्स्य नारायण स्थल में वामनजी, प्रवास में राजाधिराज रामचन्द्र भगवान्, अरण्य में नरसिंह भगवान् मेरा रक्षण करें। नारायण कवच के अन्तिम श्लोक बहुत महत्त्व के हैं। जब भय लगता हो, तब उनका पाठ करना चाहिए–

तथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत्।
सत्येनानेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः॥
यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम्।
भूषणायुधलिंगाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया॥
ते नैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान् हरिः।
पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः॥
विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समन्तादन्तर्बहिर्भगवान् नारसिंहः।
प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्तसमस्ततेजाः॥

(६-८-३१-/३२/३३/३४)

मैं जिन देव के नाम का जप करता हूँ, उसी अर्थ में वे वहाँ स्थित हैं। आकार भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु तत्व एक ही है। आकार का जो बहुत चिंतन करते हैं, उनके मन में विकार आता है। सर्व आकारों में ईश्वर विराजमान हैं। अनेक अलंकारों में सुवर्ण तो एक ही होता है। अनेक में एक के दर्शन करना ही ज्ञान है। सर्व में एक ही परमात्मा के दर्शन करना ही भक्ति है। परमात्मा सर्व

शक्तिमान हैं, सर्व में विराजमान हैं। आकार की मुझे जरूरत नहीं है। आकार में निहित ईश्वर की मुझे जरूरत है। अलंकार का आकार मूल्यवान नहीं है, उनमें निहित सुवर्ण मूल्यवान है। मेरे प्रभु सर्व में विराजमान हैं। वह सिद्धान्त सत्य हो जाय तो किसी प्रकार का दुःख नहीं है, कोई दुःख नहीं दे सकता है।

विश्व के दो अर्थ हैं–विश्व अर्थात् जगत्, और विश्व अर्थात् विष्णु भगवान्। विश्व के प्रत्येक पदार्थ में जो विष्णु का स्वरूप देखते हैं, वे उसे विश्व रूप कहते हैं। विश्वरूप नारायण कवच देते हैं। नारायण कवच ब्रह्म-विद्या है। ब्रह्म-विद्या का उपदेश वे ही कर सकते हैं, जिनकी ब्रह्म-दृष्टि स्थिर हुई है। विश्वरूप की ब्रह्म-दृष्टि स्थिर थी। ब्रह्म-दृष्टि स्थिर न हो तो ब्रह्म-ज्ञान बह जाता है। ब्रह्मज्ञानी बहुत से हैं पर ब्रह्म-दृष्टि को स्थिर रखकर व्यवहार करने वाले थोड़े ही हैं। 'नारायण-कवच' के आधार से ही देवों ने राक्षसों का विनाश किया है– काम-राक्षस, क्रोध -राक्षस, का विनाश करके देवों ने स्वर्ग का राज्य प्राप्त कर लिया।

एक बार राक्षस विश्वरूप के पास आये और कहने लगे कि यज्ञ में हमें आहुति दीजिए। विश्वरूप के पास ब्रह्म-दृष्टि थी। विश्व की दृष्टि में कोई शत्रु नहीं है। कोई मित्र नहीं है। वे जगत् को ब्रह्मभाव से देखते हैं। वे मानते हैं कि सर्व में मेरे नारायण विराजमान हैं। मेरे भीतर चैतन्य रूप में जो परमात्मा है, वे ही सर्वत्र है। ये राक्षस क्या करेंगे? इन्हें किसी का भय नहीं है। विश्वरूप राक्षसों को भी यज्ञ में आहुति देने लगे। देवों को यह अच्छा नहीं लगा। इन्द्र राजा ने विश्वरूप का मस्तक काट डाला। त्वष्टा प्रजापति को बहुत दुःख हुआ कि मेरा पुत्र बहुत भोला है। अति सरल है। देवों ने अपना कार्य पूर्ण करके उसे मार डाला। अब मैं ऐसा यज्ञ करूँगा कि इन्द्र को मारने वाला पुत्र पैदा होगा। इन्द्र को मारने वाला पुत्र पैदा हो, ऐसी इच्छा से त्वष्टा प्रजापति ने यज्ञ प्रारम्भ किया।

भागवत में सकाम कर्म की निन्दा है। आप कोई भी कार्य करते समय अपने भगवान् को खुश करने की इच्छा से कार्य करिये। लोग मेरे लिये अच्छा बोलें, ऐसी भी इच्छा न रखिये। ऐसी इच्छा रखने वाले का मन अशांत रहता है। कई व्यक्ति परोपकार में शरीर को कष्ट देते हैं पर ऐसे व्यक्तियों के मन में यही इच्छा रहती है कि लोग मेरे लिए अच्छा कहें। कोई बुरा कहता है तो इन्हें बहुत दुःख होता है। कई माताएँ घर में काम करती हैं, पर ऐसी इच्छा रखती हैं कि लोग मेरी प्रशंसा करें। घर के लोग जब अच्छा नहीं बोलते, तब वे जी जलाती हैं कि मेरे भाग्य में यश नहीं हैं। मैंने इतना किया फिर भी मेरे लिये ऐसा कहते हैं। मेरी कद्र नहीं है! कोई आपकी कद्र करें,ऐसी इच्छा न रखिये। यह जीव ऐसा दुष्ट है कि यह ईश्वर की भी कद्र नहीं करता है तब यह जीव की कद्र किस तरह करेगा? मानव परमात्मा की कद्र कहाँ करता है? आपकी कद्र तो भगवान् करेंगे?

शुकदेवजी महाराज राजर्षि को सावधान करते हैं कि परमात्मा को प्रसन्न करने की भावना से सत्कर्म कीजिए। ऐसे सत्कर्म में थोड़ी भूल हो तो भगवान् क्षमा करते हैं। सकाम कर्म में थोड़ी भी भूल हो तो क्षमा नहीं है, सजा है। ऐसी भूल के परिणाम भी विपरीत आते हैं। इन्द्र को मारने वाला पुत्र हो, ऐसी इच्छा रखकर त्वष्टा यज्ञ करने लगे। आज यज्ञ के मन्त्र में थोड़ी भूल हुई। इससे इन्द्र के हाथों से मरने वाला पुत्र उत्पन्न हुआ। इन्द्र शत्रु विवर्धस्व बोलने के स्थान पर ईन्द्रशत्रू विवर्धस्व बोला गया। इन्द्र से द्वैष होने के कारण 'इ' को 'ई' गुरु किया और शत्रु का शत्रू 'उ' गुरु किया इससे इसका भावार्थ परिवर्तित हो गया। इन्द्र को मारने वाला के स्थान पर–इन्द्र के हाथों मरने वाला–ऐसा अर्थ हुआ। मन्त्र में भूल होने से अनर्थ हो जाता है। भार्या रक्षतु भैरवी के स्थान पर भार्या भक्षतु भैरवी बोला जाय तो क्या होगा?

यज्ञ–कुण्ड से एक भयंकर राक्षस बाहर आया। उसका नाम वृत्रासुर रखा। वृत्रासुर देवों को त्रस्त करने लगा। देवों ने परमात्मा की स्तुति की। प्रभु ने आज्ञा दी। उस आज्ञा के अनुसार दधीचि ऋषि की अस्थियों का वज्र बनाया और वज्र में परमात्मा ने अपना तेज डाला। उसी वज्र को हाथ में लेकर इन्द्र वृत्रासुर के साथ युद्ध करने गया। भयंकर युद्ध हुआ। इन्द्र के हाथ में वज्र था। वज्र में नारायण विराजमान थे। इन्द्र को भगवान् के दर्शन न हुए, पर वृत्रासुर को नारायण के दर्शन हुए। राक्षस था पर कृपापात्र दैवी जीव था। वृत्रासुर ने इन्द्र से कहा–इस युद्ध में जीत तुम्हारी होगी, मेरी हार होगी, पर मैं मान रहा हूँ कि भगवान् की मुझ पर विशिष्ट कृपा है–

त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र।
ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो यो दुर्लभोऽकिञ्चनगोचरोऽन्यैः॥

(६-११-२३)

जीत होने पर लोग मानते हैं कि भगवान् की मुझ पर कृपा है। जीव लौकिक सुख के लिए प्रत्यन करता है तो प्रभु को पसन्द नहीं है। लौकिक सुख तो जीव अनेक जन्मों से भोगता आ रहा है। आज तक उसे शांति नहीं मिली है। शरण में आये जीव को भगवान् अलौकिक आनन्द देते हैं। प्रभु के साथ लौकिक सुख का प्रयत्न सफल हो तो समझिये कि भगवान् की थोड़ी कृपा है। लौकिक सुख का प्रयत्न सफल न हो तो समझिये कि भगवान् की आप पर बहुत कृपा है। लौकिक बिगड़ता है तो मन लौकिक सुख से हट जाता है, लौकिक सुधरता है तो मन लौकिक में फँसा रहता है।

वृत्रासुर कहता है कि इन्द्र! तुम्हें स्वर्ग का राज्य मिलेगा, पर एक दिन तुम्हारा पतन होगा। मैं तो वहाँ जाने वाला हूँ, जहाँ जाने पर जीव कभी पुनः संसार में नहीं आता है। जहाँ जाने पर

कभी पतन नहीं होता है। मैं प्रभु के चरणों में जाने वाला हूँ। तुम्हें लौकिक सुख मिलेगा,मुझे मेरे प्रभु अलौकिक सुख देंगे। वृत्रासुर ने परमात्मा की सुन्दर स्तुति की है–

अहं हरे तव पादैकमूल दासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः।।
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठयं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे।।
अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्।।
ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः।
त्वन्मायायाऽऽत्मात्मजदारगेहे-ष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात्।।

(६-११-२४/२५/२६/२७)

जब भक्ति समुचित रूप से होती है, तब अभिमान मरता है। वृत्रासुर मानता है कि प्रभु की सेवा के लिए मैं योग्य नहीं हूँ। भगवान् की सेवा करने वाले वैष्णवों का मैं नौकर बन जाऊँ। बड़ों का नियम होता है कि वे जिस घर में जाते हैं, वहाँ के नौकरों को बहुत प्रेम से देखते हैं। वृत्रासुर कहता है कि आपके लाड़ले भक्तों का मैं नौकर बन जाऊँ, तो कभी जब आप वहाँ जायेंगे तब आपकी प्रेमपूर्ण दृष्टि मुझ पर भी पड़ेगी। स्वर्ग का सुख मुझे तुच्छ लगता है। ब्रह्मलोक का राज्य मुझे नहीं चाहिये। एक बार कृपा दृष्टि से आप मेरी ओर देखिये। आपकी दृष्टि मुझ पर पड़ जाय तो मुझे और कुछ नहीं चाहिए। मेरी वाणी कृष्ण-कृष्ण कीर्तन करती रहे, मेरा मन आपके मंगलमय स्वरूप का ध्यान करता रहे। बछड़ा जिस तरह गाय माता से मिलने के लिए उत्कण्ठित रहता है, उसी तरह मैं आपके दर्शन के लिए उत्कण्ठित रहूँ। मेरे प्राण आपके लिए तड़पते रहें। मरे पापों के लिए मुझे पशु का जन्म मिले तो मुझे वैष्णव के घर की गाय बनाइएगा, जिससे मेरा दूध बालकृष्णलाल की सेवा में जाये, किसी पवित्र ब्राह्मण के पेट में जाये। मुझे किसी विलासी के पेट में नहीं जाना है। विलासी के पेट में जाने पर भोग-विलास में वह मेरा विनाश करेगा। आपके लाड़ले भक्तों का मुझे सत्संग मिले। आपके घर जो अनाज है, उसे भी ऐसी इच्छा रहती है कि मुझे किसी कामी अथवा विलासी के पेट में नहीं जाना है, किसी साधु-सन्त के पेट में जाना है। किसी ब्राह्मण के पेट में जाऊँ, जो परमात्मा का ध्यान करता हुआ, गायत्री का जप करता हुआ, मेरा पाचन करे। वृत्रासुर ऐसा सुन्दर बोला कि इन्द्र को भी आश्चर्य हुआ। एक वर्ष तक युद्ध चला। अंत में इन्द्र ने व्रज से वृत्रासुर का मस्तक काट डाला।

शुकदेवजी की बात सुनकर परीक्षित राजा को आश्चर्य हुआ। वृत्रासुर महान भगवद् भक्त है, वह राक्षस है, पर उसका भगवान् के प्रति कैसा प्रेम है। भगवान् की कृपा हो तो तुरन्त मुक्ति मिलती है, पर वे भक्ति तुरन्त नहीं देते हैं। भक्ति भगवान् को परतन्त्र बनाती है, अनन्य भक्तों की सेवा कभी भगवान् को भी करनी पड़ती है। भगवान् को भक्तों के अधीन रहना पड़ता है। इससे भगवान् अनन्य भक्ति तुरन्त नहीं देते हैं। वृत्रासुर तो राक्षस था, उसे अनन्य भक्ति कैसे मिली होगी? शुकदेवजी महाराज ने वृत्रासुर के पूर्वजन्म की थोड़ी कथा कही है–

पूर्व जन्म में वृत्रासुर चित्रकेतु नाम का राजा था। उसकी अनेक रानियाँ थीं, पर एक ही रानी के घर एक ही पुत्र था। सौतेली माता के मन में मत्सर जागा। उसने दूध में विष मिलाकर बालक को पिला दिया। बालक का मरण हो गया। एक ही पुत्र था, उसकी मृत्यु से राजा-रानी बहुत कलपने लगे। जिस सौतेली माता ने विष दिया था, वह भी दिखावा करने लगी। झूँठ-मूठ रोने लगी। उसी समय नारदजी अँगिरा ऋषि के साथ वहाँ आये। उन्होंने चित्रकेतु को समझाया कि अब रोने से क्या लाभ? जिसका मरण हुआ वह परमात्मा के चरणों में गया है, ऐसा मानना चाहिए। जिसका मरण हुआ, वह मृत्यु के बाद भी वापस नहीं आता है। आप अन्यों के लिये रोते हैं, पर अपने लिए क्यों नहीं रोते? अपने लिए भी थोड़ा रोइए। सोचिये कि आज तक मैंने प्रभु के लिए कुछ नहीं कियां, मेरा जीवन वृथा गया। अन्यों के लिए रोने से कुछ भी लाभ नहीं है। पुत्र चार प्रकार के होते हैं–शत्रु पुत्र, ऋणानुबंध पुत्र, उदासीन पुत्र, सेवक पुत्र। यह तो तुम्हारे पूर्व जन्म का शत्रु पुत्र बनकर आया था। वैर के प्रतिशोध के लिए शत्रु पुत्र बनकर आता है। कई बालक रात में बहुत रोते हैं। मां को जागरण करवाते हैं। कई माताएँ जब बहुत त्रस्त हो उठती हैं, तब कहती हैं कि मेरा बैरी आया है। बालक बहुत त्रस्त करता है और बड़ा होकर माता-पिता को बहुत त्रस्त करता है। राजा! शत्रु का मरण हुआ है, ऐसा सोचकर सन्तोष मान लो। तुम अपना मरण सुधारने का यत्न करो। यमुनाजी के तट पर चित्रकेतु राजा को नारदजी ले गये। उन्हें ७१ अक्षर का संकर्षण मन्त्र दिया। अनेक वर्षों तक यमुनाजी के तट पर उन्होंने इस मन्त्र के जप किये। उन्हें शेषनारायण के दर्शन हुए। चित्रकेतु ने शेषनारायण की स्तुति की। प्रभु ने उन्हें अपना पार्षद बनाया और विद्याधर लोक का राज्य दिया। विद्याधरों का राजा, शेषनारायण का पार्षद चित्रकेतु एक बार विमान में बैठकर घूमते-घूमते कैलास धाम में आ पहुँचा। वहाँ सिद्ध महात्माओं की बड़ी सभा का आयोजन था। सिद्धों के अखाड़े कैलास धाम में हैं। जन्मसिद्ध, मन्त्रसिद्ध तथा औषधसिद्ध–कैलास धाम में ऐसी दिव्य वनस्पति प्राप्त होती है कि यह वनस्पति जो एक बार खाता है तो बारह वर्षों तक भूख नहीं लगती, शक्ति का विनाश नहीं होता। कैलास में ऐसे औषधसिद्ध महात्मा हैं।

योगसिद्ध, ज्ञानसिद्धि–ऐसे सिद्ध महापुरुष कैलास में रहते हैं। सिद्धों के सद्‌गुरु सदाशिव हैं। कैलास में बड़ी सभा थी और उसके अध्यक्ष के स्थान पर भगवान् शंकर विराजमान थे। आज शिव-स्वरूप दिव्य था। गोद में पार्वतीजी थीं। आलिंगन देकर वे बैठे थे। आज इस तरह शंकर भगवान् विराजमान थे। उसका कारण था कि कामदेव शिवजी के साथ लड़ने के लिए आये थे। शिवजी ने कामदेव से कहा कि एक बार मैंने तुम्हें जलाकर भस्म कर दिया था। क्या तुम भूल गये? तुम्हारी स्त्री बहुत रोने लगी, तब मैंने तुम्हें भस्म में से सजीव किया। कामदेव ने कहा कि महाराज, मैं भूला नहीं हूँ। मुझे याद है कि आपने मुझे जलाकर भस्म कर दिया पर मेरे मन में ऐसा रह गया है कि आप समाधि में बैठे थें और मैं लड़ने आया था, वह मेरी भूल थी। जब शत्रु बेपरवाह हो तब उसके साथ युद्ध करना चाहिए। आप समाधि में अति सावधान थे, आपने आँख खोली और मैं भस्म हो गया। शिवजी ने कहा कि भाई तुम्हारी क्या इच्छा है? कामदेव ने कहा कि पार्वतीजी से आप दूर बैठते हैं। मेरी इच्छा है कि आप पार्वती को आलिंगन दीजिए, और मैं बाण चलाऊँ और तब भी आपके मन में जरा भी विकार न आने पाये तो मैं मानूँगा कि आप सच ही महादेव हैं और विकार आ गया, आप कामाधीन हो गये तो मैं महादेव। शिवजी ने कहा कि भाई, तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो मैं ऐसा करता हूँ। पार्वतीजी को आलिंगन देकर शिवजी बैठे हैं। कामदेव बाण चलाते हैं।

भगवान् शंकर-पार्वती की कोई पूजा करे या स्मरण करे, तो उसे काम का स्पर्श नहीं होता है। भगवान् शंकर का काम क्या कर सकता है? जिनके मस्तक पर ज्ञानगंगा है, ऐसे शिवजी और पार्वतजी निर्विकार हैं। जो काम की मार नहीं खाता है, वह शिव है। कामदेव को विश्वास हो गया कि शंकर देव नहीं है, पर सर्व देवों के देव हैं। उन्हें परम आश्चर्य हुआ।

यह शिव-पार्वतीजी का निर्विकार रूप था, पर देखने वाले चित्रकेतु की आँखों में विकार था। भक्ति में ज्ञान-वैराग्य का साथ न हो तो भक्त भूल करता है। ज्ञान में भक्ति की जरूरत है, भक्ति में ज्ञान की जरूरत है। ज्ञान-भक्ति में वैराग्य की जरूरत है। चित्रकेतु भगवत्-भक्त था, पर उसकी भक्ति में ज्ञान-वैराग्य का साथ न था। वह शिव-स्वरूप को नहीं समझ सका। शिवजी के लिए चाहे जैसा कहने लगा। शिवजी पर जरा भी असर नहीं हुआ। शिवजी शान्त रहे। होठों में हँसने लगे पर माता पार्वतीजी से सहन नहीं हुआ। पार्वती ने शाप दिया कि तुम राक्षस हो जाओगे। जगत् में किसी भी स्त्री-पुरुष को काम भाव से देखने वाला राक्षस–सदृश हो जाता है। जगत् के किसी भी स्त्री-पुरुष को लौकिक भाव से देखने वाले के मन में बुरे चित्र आते हैं और ऐसे चित्र मन में गढ़ जाने से वह राक्षस हो जाता है। जगत् के सभी स्त्री-पुरुषों को लक्ष्मीनारायण की भावना

से देखिये। भगवान् के स्वरूप को हृदय में स्थिर करना ही भक्ति कहलाता है। संसार के चित्र जिसके मन में स्थिर हो जाते हैं, वह भक्ति किस तरह कर सकता है?

बाद में चित्रकेतु को पश्चात्ताप हुआ। माताजी को वंदन करके उसने क्षमा माँगी। वही चित्रकेतु वृत्रासुर हुआ। संसार के चित्र जिसके मन में आते हैं, उसकी वृत्ति बहिर्मुख होती है। मनोवृत्ति बहिर्मुख होने पर आनन्द चला जाता है। अंतर्मुख वृत्ति में आनन्द है। संसार के चित्रों को नष्ट करने के लिए लक्ष्मीनारायण की पूजा कीजिए। जगत् के सभी स्त्री-पुरुषों को लक्ष्मीनारायण के भाव से देखिये। जो सभी लक्ष्मीनारायण के भाव से देखते हैं, उनके मन में परमात्मा का स्वरूप स्थिर होता है। गलत चित्र नष्ट हो जाते हैं, वह कृतार्थ बनता है।

इसके बाद दिति के वंश का वर्णन किया गया है। दिति की दो सन्तानें हुई—हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु। हिरण्यकशिपु का प्रह्लाद हुआ। प्रह्लाद का विरोचन हुआ। विरोचन का बलि हुआ। बलि का बाणासुर हुआ। दिति की इच्छा थी कि इन्द्र को मारने वाला पुत्र हो। कश्यप ऋषि ने दिति को एक वर्ष के लिए पुँसवन व्रत दिया। इसके बाद इस पुँसवन व्रत की विधि का वर्णन दिया गया है। दिति से व्रत में थोड़ी भूल हुई, इससे इन्द्र को मारने वाले पुत्र का जन्म नहीं हुआ। ४९ मरुत गणों का जन्म हुआ। पुंसवन व्रत की कथा तथा मरुत गणों के जन्म की कथा करके, यह षष्ठ स्कन्ध परिपूर्ण किया गया है—

तुष्टाः प्रयच्छन्ति समस्तकामान् होमावसाने हुतभुक् श्रीर्हरिश्च।
राजन् महन्मरुतां जन्म पुण्यं दितेर्व्रतं चाभिहितं महत्ते॥

(६-१९-२८)

इति षष्ठः स्कन्धः समाप्तः

हरि ॐ तत्सत्

*

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

सप्तम स्कन्धः

३३-अंगना-अंगना मध्य माधव

समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन् भूतानां भगवान् स्वयम्।
इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषमो यथा।। (७-१-१)

परमात्मा श्रीकृष्ण मथुरा में अथवा भगवान् श्री रामचन्द्रजी अयोध्या में प्रकट हों तो इससे हमें क्या लाभ? हमारे घर प्रभु पधारते हैं तो हमें लाभ होता है। मन्दिर में दीपक जलाने से मन्दिर में प्रकाश होता है। घर में दीपक जलाने से ही घर में उजाला होता है। प्रभु हमारे भीतर प्रकट हों, भीतर नारायण विराजमान हों, तो ही सार्थकता है। यह हृदय-सिंहासन भगवान् का है पर उस पर काम चढ़ बैठा है। काम मित्र नहीं, शत्रु है। काम स्त्री-पुरुष किसी को भी सुख नहीं देता है। काम प्रायः सभी को रुलाता है। काम शत्रु होने पर भी मित्र-सा लगता है। काम का तिरस्कार करके, धक्के मारकर बाहर निकालिये। हृदय-सिंहासन पर प्रभु को बैठाना है। अब नृसिंह भगवान् प्रकट होने वाले हैं। सातवें सर्ग में नृसिंह प्रभु की-प्रह्लाद की कथा अति मधुर है।

सप्तम स्कन्ध के प्रारम्भ में राजा ने प्रश्न पूछा-शुकदेवजी महाराज! आपने कथा में अनेक बार कहा है कि परमात्मा सर्व व्यापक है, सर्व में समभाव से विराजमान हैं, पर जगत् में समता नहीं दिखाई देती, विषमता ही दीख पड़ती है। ईश्वर सर्व में समभाव से विराजमान हैं तो यह विषमता कौन उत्पन्न करता है? विषमता से वैर जागता है, विरोध होता है। ईश्वर दोनों स्थनों में समभाव से विराजमान हैं तो बिल्ली चूहे को क्यों मारती है? झगड़ा कौन खड़ा करता है?

शुकदेवजी ने कहा कि राजन्, प्रश्न बहुत सुन्दर है। परमात्मा की समता भाव में है, क्रिया में नहीं है। सूर्यनारायण सभी को समान प्रकाश देते हैं। सूर्यनारायण की जो पूजा करता है, उसके घर में प्रकाश देते हैं, न पूजने वाले के घर में भी प्रकाश देते हैं। आस्तिक, नास्तिक, सज्जन, दुर्जन सभी को समान रूप से प्रकाश देते हैं। सूर्यनारायण के प्रकाश में कोई पुण्य करता है, कोई पाप करता है, पर सूर्य नारायण सभी को समान प्रकाश देते हैं। भगवान् की समता सूर्यनारायण-सी है।

वेदांत का सिद्धांत है कि ब्रह्म की क्रिया नहीं है और माया की सत्ता नहीं है। क्रिया व्याप्य को होती है। व्यापक जाता नहीं है, आता भी नहीं है। व्याप्य उसे कहते हैं, जो एक जगह है और दूसरी जगह नहीं है। व्यापक तो सभी जगह सर्वत्र है। यह शरीर व्याप्य है। यह शरीर मंडप में है, मंडप के बाहर नहीं है। भगवान् मंडप में भी हैं, मंडप के बाहर भी हैं। व्यापक की क्रिया नहीं है, क्रिया व्याप्य की होती है। जो सर्वकाल सर्व में है, उसकी कोई क्रिया नहीं है, वहाँ विषमता कहाँ से? भगवान् में विषमता नहीं आती है, विषमता माया लाती है। माया की सत्ता नहीं है, प्रभु के आधार पर माया क्रिया करती है। परमात्मा की सत्ता और माया की क्रिया–दोनों का मिश्रण है जगत्। भगवान् कुछ नहीं करते हैं, माया सब कुछ करती है, रात्री में दीपक के प्रकाश में मानव सब कुछ करता है, दीपक कुछ नहीं करता है, पर दीपक के बिना मानव कुछ नहीं कर पाता है। भगवान् की सत्ता से माया क्रिया करती है। क्रिया माया की है, पर माया की क्रिया का आरोप भगवान् पर होता है। वेदांत के ग्रन्थों में उसे अध्यारोप-अपवादन न्याय करहते हैं। लोग गाड़ी में बैठकर बम्बई जाते हैं। क्रिया गाड़ी की है पर गति की क्रिया का आरोप बम्बई पर होता है। इससे लोग कहते हैं कि बम्बई आ गयी। सच तो यह है कि गाड़ी आयी है–आ पहुँची है। बम्बई आयी भी नहीं है, गयी भी नहीं है। बम्बई तो स्थिर है। सर्व आधार-सर्व व्यापक आते भी नहीं हैं, जाते भी नहीं हैं, प्रभु के आधार से माया क्रिया करती है। निर्गुण, निराकार भगवान् निष्क्रिय हैं। उनकी कोई क्रिया है ही नहीं, तो विषमता कहाँ से होगी? कैसे होगी?

हाँ, सगुण-साकार भगवान् लीला करते हैं। वैष्णव आचार्य वर्णन करते हैं कि ठाकुरजी करते हैं उसका नाम है लीला और जो जीव करता है उसका नाम क्रिया है। क्रिया और लीला में बहुत भेद है। जहाँ स्वार्थ है, सुख भोगने की इच्छा है, और मैं कर रहा हूँ, ऐसा सूक्ष्म अभिमान है, वहाँ क्रिया है। जहाँ स्वार्थ नहीं है, अहंकार नहीं है, सुख भोगने की इच्छा नहीं है, वहाँ लीला है। श्रीकृष्ण रास रचाते हैं, गोपियों को आनन्द देने के लिए। उन्हें आनन्द की इच्छा नहीं है। गोपियों के साथ रास खेलने में क्या भगवान् को कुछ सुख मिलता है? क्या रास न खेलने से भगवान् दुःखी है? परमात्मा की किसी प्रकार के सुख भोगने की इच्छा नहीं है। परमात्मा आनन्दमय हैं, स्वयं आनन्द हैं। श्रीगंगा माता को प्यास नहीं लगती है। आनन्दमय परमात्मा की सुख भोगने की इच्छा नहीं होती है।

जीव को आनन्द का दान देने के लिए परमात्मा लीला करते हैं। श्रीकृष्ण करते हैं वह है लीला, जीव करता है वह है क्रिया। क्रिया बंधन लाती है, लीला बंधन से छुड़ाती है। भगवान् की लीला में आपको विषमता जैसी दीख पड़ती है, पर उसमें विषमता नहीं है, समता है–

भावा द्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं न कर्हिचित्।

अद्वैत क्रिया में नहीं है, भावना में है। क्रिया में अधिकार के अनुसार विषमता करनी पड़ती है। क्रिया की विषमता, विषमता नहीं है । भाव में विषमता ही विषमता है।

हमारे आँगन में गाय माता आती है, तो हम घास खिलाते हैं और आँगन में गरीब आता है तो हम अन्न देते हैं। यह विषमता है कि समता है? गाय में भी नारायण हैं और गरीब में भी नारायण हैं। गाय में विराजमान नारायण की सेवा घास से होती है और गरीब में विराजमान परमात्मा की सेवा अन्न से होती है। यह विषमता नहीं, समता है। दोनों में भाव समान है, भाव में समता ही समता है, क्रिया में अधिकार के अनुसार विषमता करनी ही पड़ती है। माता भी अपनी दो सन्तानों के साथ समान क्रिया नहीं करती है। बड़े बेटे को अधिक खाना देती है, छोटे बेटे को थोड़ा कम खाना देती है। माता का प्रेम दोनों के प्रति समान ही है।

भगवान् माता जैसे हैं। प्रभु की लीला में आपको विषमता जैसी दीख पड़ती है, पर वह विषमता नहीं, समता है। राजा का प्रश्न यह था कि राक्षस वृत्रासुर भगवद् भक्त था, फिर भी उसे क्यों मारा? भगवान् देवों के पक्ष में रहकर राक्षस को मारते हैं तो वह भगवान् की समता है कि विषमता? वृत्रासुर तो भगवद् भक्त था, फिर वृत्रासुर को प्रभु ने क्यों मारा?

शुकदेव जी महाराज वर्णन करते हैं कि वृत्रासुर को प्रभु ने मारा नहीं, तारा है। श्रीकृष्ण की मार में प्यार है। श्रीकृष्ण के क्रोध में प्रेम भरा है, भगवान् की प्रमुख दो शक्तियाँ हैं। निग्रह और अनुग्रह की शक्ति। अनुग्रह शक्ति से देवों का कल्याण करते हैं और निग्रह शक्ति से राक्षसों का कल्याण करते हैं। भगवान् की लीला में विषमता दीख पड़ती है पर वहाँ विषमता नहीं, समता है।

राजा! आप जैसा प्रश्न कर रहे हैं, वैसा ही प्रश्न एक बार आपके दादा धर्मराज ने राजसूय यज्ञ में नारदजी से पूछा था। राजसूय यज्ञ में हजारों ऋषियों ,साधुओं, महात्माओं का आगमन हुआ था। प्रश्न था कि प्रथम पूजा किसकी करनी है? यही प्रश्न उपस्थित हुआ था? सभी ने निर्णय दिया कि द्वारिकानाथ विराजमान हैं। प्रथम पूजा तो द्वारिकानाथ की ही होनी चाहिये। धर्मराज ने द्वारिकानाथ की पूजा की। सभी प्रसन्न हुए पर सभा में दो-चार ऐसे भी थे, जिन्हें यह पसन्द नहीं आया। शिशुपाल उठ खड़ा हुआ और सभा के समक्ष श्रीकृष्ण को गालियाँ देने लगा। जिस सभा में प्रथम पूजा का सम्मान मिला, उसी सभा में शिशुपाल गालियाँ दे रहा है, अपमान कर रहा है।

यह संसार ऐसा ही है। अब इस संसार में भगवान् पधारें तो कितने ही जीव भगवान् की भी निन्दा करें। ऐसी इच्छा नहीं रखनी चाहिए कि सब मेरे लिये अच्छा ही कहें, सभी मेरी प्रशंसा करें। आपका व्यवहार कैसा भी हो,पर कई जीव आपके लिये बुरा कहेंगे ही। यह जीव तो ऐसा

दुष्ट है कि भगवान् के लिये भी बुरा कहता है। परमात्मा निर्दोष हैं। जो भगवान् के लिये भी बुरा कहता है, उनके लिये भी कई लोग अच्छा नहीं कहते हैं, तो आपके लिये कैसे अच्छा कहेंगे? हमारे लिये कई लोग बुरा कहते हैं, तो अच्छा ही है। इसमें हमारा कल्याण है। जो सहन करता है वह खुशी होता है। आपके लिये कोई बुरा कहते हैं तो इससे आपका बाल भी बाँका नहीं होगा। आपका नुकसान नहीं होगा। आपके लिये जो बुरा कहते हैं, वे ही दुःख होंगे। निंदा सहन करना महान् पुण्य है, निंदा करना महान् पाप है।

शिशुपाल सभा में श्रीकृष्ण की निंदा करते हैं, चाहे जैसा भी बोलते हैं। भगवान् शांति से सुनते हैं। शिशुपाल ने एक सौ गालियाँ दी हैं। जहाँ मर्यादा पूर्ण हुई कि प्रभु ने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट डाला। शिशुपाल के शरीर से निकला हुआ दिव्य तेज श्रीकृष्ण के चरणों में लीन हुआ। सोचने लगे कि प्रभु की निन्दा करने वाले को तो दुर्गति मिलनी चाहिए, उसे सद्गति कैसे मिली?

धर्मराज ने नारदजी से प्रश्न पूछा। नारायण के स्मरण से नारदजी का हृदय द्रवित हुआ। नारदजी ने कहा कि मेरे भगवान् अति उदार हैं। मेरे श्रीकृष्ण अति प्रेमपूर्ण हैं। कन्हैया बहुत प्रेम करता है। किसी भी निमित्त के द्वारा जगत् भुलाया जाय और परमात्मा के दर्शन में, स्मरण में, तन्मयता आ जाय तो जीव का कल्याण होता है। इस जगत् में रहकर जगत् को भूल जाइए। परमात्मा के स्वरूप में तन्यम बनिये, तो ही कल्याण है। यह शिशुपाल वैर भाव से भी परमात्मा का स्मरण कर रहा था, चिंतन कर रहा था। हथौड़ा कदाचित पारसमणि को तोड़ दे पर पारसमणि तो हथौड़े को भी सुवर्ण बना ही देती है। परन्तु पारसमणि लोहे को पारसमणि नहीं बनाती है। हाँ, मन से श्रीकृष्ण का जो स्पर्श करते हैं, उन्हें श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण बना देते हैं–

तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् (७-१-३१)

परमात्मा का तन से कोई स्पर्श नहीं कर सकता है। यह शरीर मल-मूत्र से भरा है। यह शरीर प्रभु से मिलने के योग्य नहीं है। परमात्मा से मन से मिलिये। मन से परमात्मा का स्पर्श करिये। किसी निमित्त के द्वारा इस जगत् को भूल जाइए और परमात्मा के दर्शन में, स्मरण में तन्मय बनिये।

शिशुपाल श्रीकृष्ण को शत्रु मानता है। मन मित्र से भी अधिक स्मरण शत्रु का करता है। शिशुपाल कोई साधारण जीव नहीं है, बैकुण्ठ धाम का पार्षद है। सनत्कुमार बैकुण्ठ धाम में दर्शन करने गये, तब जय-विजय ने प्रतिबन्ध किया था। इससे सनत्कुमारों ने जय-विजय को–राक्षस योनि में तीनजन्म लेने पड़ेंगे–ऐसा शाप दिया था। यही जय-विजय हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु हुए। वे ही रावण-कुम्भकर्ण हुए और वे ही शिशपाल-दंतवक्त्र हुए।

वराहनारायण ने हिरण्याक्ष का उद्धार किया पर हिरण्यकशिपु जब प्रह्लादजी को मारने दौड़ा तब स्तम्भ में से नृसिंह स्वामी का प्राकट्य हुआ था। उन्होंने प्रह्लादजी का रक्षण किया। हिरण्यकशिपु का उद्धार किया।

धर्मराज ने प्रश्न पूछा—महाराज, प्रह्लादजी की कथा विस्तार से सुनने की बहुत इच्छा है। पिता पुत्र को मारने दौड़ा। प्रह्लादजी तो महान् भगवद् भक्त थे। शुकदेवजी महाराज परीक्षित को तथा नारदजी धर्मराज को कथा सुनाते हैं—

वराहनारायण ने हिरण्याक्ष का उद्धार किया, तब दिति को बहुत दुःख हुआ। उसका दूसरा पुत्र हिरण्यकशिपु उसे शान्त रहने के लिये कहता है। कहता है कि मैं ब्रह्माजी का तप करूँगा। वे मुझे अजर अमर होने का वरदान देंगे। तब हिरण्याक्ष को मारने वाले विष्णु की मैं खबर लूँगा। विष्णु के साथ मैंने वैर किया है, पर अभी कुछ नहीं कहना है। माता को समझा कर हिरण्यकशिपु मन्दराचल पर्वत पर तप करने चला गया। वहाँ वह ब्रह्माजी के मंत्र का जप करने लगा। अन्न-जल का उसने त्याग किया। हिलना-डुलना उसने छोड़ दिया।

बहुत उग्र तप उसने किया। कई वर्षों तक तपस्या की। हिरण्यकशिपु का उग्र तप देखकर ब्रह्माजी को भी आश्चर्य हुआ। ब्रह्माजी वरदान देने आये। कमंडल का जल हाथ में लिया और उसके ऊपर छिड़का। अग्निकुंड में से जैसे अग्नि बाहर आती है, हिरण्यकशिपु बाहर आया। कई वर्षों तक संयम रखा था। उसकी काया कंचन सी हो गयी थी। हिरण्यकशिपु ने अजर-अमर होने का वरदान माँगा। ब्रह्माजी ने कहा—जिसका जन्म हुआ उसे मरना तो पड़ेगा ही, मरने की कोई शर्त रख लो। हिरण्यकशिपु ने कहा—दिन में न मर पाऊँ, रात्रि में भी न मर सकूँ, भीतर न मर सकूँ, बाहर न मर सकूँ, पशु से न मर सकूँ, मानव भी न मार सके, ऐसा वरदान दीजिए।

शांति से सोचने पर ध्यान में आयेगा कि यह कौन बोल रहा है और क्या वरदान माँग रहा है। भागवत में समाधि भाव मुख्य है। दिति शब्द का अर्थ होता है भेद बुद्धि। जहाँ भेद होता है, वहाँ भय होता है। जहाँ अभेद है वहाँ अभय है।

ज्ञानी पुरुष ऐसा मानते हैं कि मेरे भीतर जो परमात्मा विराजमान हैं, वे सर्व में हैं। वे जगत को अभिन्न भाव से देखते हैं। साधारण मानव भेद-भाव से देखता है। यह काला है, यह गौर है, यह जवान है, यह वृद्ध है, यह अच्छा है यह बुरा है। जहाँ भेद-भाव आता है वहाँ विकार आ जाता है, वहाँ राग-द्वेष आते हैं, वहाँ भय लगता है।

इस जगत् में क्या अच्छा और क्या बुरा, यह कहना कठिन है। आप छोटे थे, तब आपको खिलौने बहुत भाते थे। बच्चे के खिलौने कोई उठा लेगा तो बच्चा रोने लगेगा। बालक को खिलौनों

में सौंदर्य दीख पड़ता है। क्या आपको खिलौनों में सौंदर्य दीख पड़ता है? आज जो आपको अच्छा लगता है, कल अच्छा नहीं लगेगा। अपने मन को शुद्ध और शांत रखा है तो जगत् का विचार छोड़िये। जगत् जिसे अच्छा लगता है, उसका मन बिगड़ता है, जगत् को जो बुरा मानता है, उसका मन भी बिगड़ा है। जगत् बुरा नहीं है पर जगत में श्रीकृष्ण के सिवाय कुछ भी अच्छा नहीं है। जगत क्षण-क्षण में परिवर्तित है। अभी जो अच्छा है दो घंटों के बाद बिगड़ जायगा। परमात्मा का स्वरूप एक समान रहता है।

दिति शब्द का अर्थ है भेद-बुद्धि। दिति की दो संतानें हैं—हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु। जहाँ भेद-बुद्धि है, वहाँ ये दो बालक आते हैं—अहंता और ममता। हिरण्याक्ष ममता का स्वरूप है और हिरण्यकशिपु अहंता का है। ममता को मारना थोड़ा-सा सरल है, अहंता को—देहाभिमान को मारना बहुत कठिन है। देहाभिमान दिन को नहीं मरता, रात को नहीं मरता; मानव से नहीं मरता, पशु से नहीं मरता, भीतर नहीं मरता, बाहर नहीं मरता। देहाभिमान को मध्य में ही मारना है। जो शरीर है, वह मैं हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं पत्नी हूँ, मैं पति हूँ—ऐसा समझने को देहाध्यास कहते हैं। आप पति नहीं, आप पत्नी भी नहीं। जब आपका जन्म हुआ तब क्या किसी के पति थे? जन्म से कोई पति नहीं है, कोई पत्नी नहीं है। पति-पत्नी का संबंध व्यवहार दृष्टि से सत्य है, तत्वदृष्टि से सोचने पर सत्य नहीं है। पत्नी की मृत्यु हो जाय तब जिन्दा रहने पर भी पति नहीं कहा जाता। पत्नी के होने पर ही वह पति है। पत्नी नहीं है तो पति कहाँ है? पति-पत्नी का संबंध सापेक्ष है। जन्म से सम्बन्ध नहीं है, मृत्यु के बाद भी नहीं रहता है। जीव, ईश्वर का अंश है। जीव ईश्वर का संबंध सच्चा है। मैं परमात्मा का हूँ—निरंतर ऐसा स्मरण रखिये।

देहाध्यास अनेक जन्मों से मन में घर करके बैठा है। जिसे याद आता है कि मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, उसे काम मारता है। जो ऐसा समझ रहा है कि मैं पति हूँ,मैं पत्नी हूँ, उसे काम त्रस्त करता है। वह पाप कराता है, रुलाता है।

यह देहाध्यास मध्य में मरता है, वह भीतर नहीं मरता, बाहर नहीं मरता, उसे मध्य में ही मरना पड़ेगा। शांति से थोड़ा सोचने पर ध्यान में आयगा कि मन संकल्प के बिना नहीं रह सकता है। एक संकल्प पूरा होगा कि वह दूसरा संकल्प करेगा। दूसरे के बाद तीसरा संकल्प करेगा। दीये में जब तक तेल है, तब तक दीया जलता है। दीये में तेल के न रहने पर दीया शांत हो जाता है। मन संकल्प से ही जीता है, मन संकल्प-रहित होने पर भगवान् में मिल जाता है। प्रत्येक संकल्प की संधि की महत्ता को संभालिये। संकल्प की समाप्ति हुई कि दूसरा संकल्प शुरु होने वाला ही

है। एक की समाप्ति और दूसरे का प्रारंभ। उनके मध्य में, उनकी संधि में भगवान् को रखिये। ब्राह्मण संधि में संध्या करते हैं।
रात्रि की समाप्ति और दिन का प्रारंभ हुआ कि प्रातः संध्या करते हैं। ब्राह्मण तो समय की संधि संभालते हैं, जब कि संत-महात्मा प्रत्येक दो संकल्पों की संधि को संभालते हैं।

एक संकल्प की समाप्ति हुई, दूसरे संकल्प का प्रारम्भ होने वाला है, उनके मध्य में श्रीकृष्ण को रखिये। रासलीला में वर्णन आता है। दो गोपियों के मध्य में श्रीकृष्ण हैं। अंगना-अंगना मध्य माधव। एक संकल्प की समाप्ति और दूसरे संकल्प के प्रारम्भ के मध्य में जो परमात्मा को रखते हैं, परमात्मा का चिंतन करते हैं, उनका देहाध्यास मरता है। मैं पति हूँ, मैं पत्नी नहीं हूँ, मैं परमात्मा का अंश हूँ, मुझे परमात्मा के चरणों में जाना है–दो मनोवृत्तियों के मध्य में–संधि में इस प्रकार के आत्म-चिंतन करने की, परमात्मा का स्मरण करने की आदत डालिये। अनेक जन्मों का देहाध्यास ऐसा दृढ़ हो गया है कि साधारण ज्ञान से या भक्ति से वह मरेगा नहीं, निरन्तर भक्ति की आवश्यकता है। देहाभिमान शस्त्रों से नहीं मरता, निरन्तर भक्ति से मरता है।

हिरण्यकशिपु देहाध्यास है, वह सभी को रुलाता है। उसे भगवान् मध्य में–देहली पर मारते हैं। हिरण्यकशिपु ने कहा– दिन में न मरूँ, रात्रि में न मरूँ, भीतर न मरूँ, बाहर न मरूँ। ब्रह्माजी विचार में पड़ गये। उन्होंने नारायण का स्मरण किया और कहा कि ऐसा ही होगा। हिरण्यकशिपु को उन्होंने वरदान दिया। तप के प्रताप से हिरण्यकशिपु की शक्ति बहुत बढ़ गयी। शक्ति का उपयोग जो भोग-विलास के लिये करते हैं, वे राक्षस-से हो जाते हैं। शक्ति का उपयोग भक्ति के लिए कीजिए, परोपकार के लिए कीजिए, परमात्मा के लिये कीजिए। समय, सम्पत्ति और शक्ति का जो सदुपयोग करता है वह है देव तथा दुरुपयोग करता है वह है दैत्य। हिरण्यकशिपु की गणना राक्षसों में हुई, प्रह्लादजी की गणना देवों में हुई। बाप राक्षस पुत्र देव।

आप मन से निश्चय कीजिये कि आपको क्या होना है? देव होना है कि राक्षस। हिरण्यकशिपु ने सर्व राजाओं का पराभव किया, फिर वह स्वर्ग में गया। देवों से युद्ध करके, देवों को उसने पराजित किया और उनकी सम्पत्ति लेकर आ गया। पंजाब में मुलतान शहर है। वहाँ हिरण्यकशिपु ने राजधानी की स्थापना की। मुलतान शहर को पंजाब के लोग प्रह्लादपुरी कहते हैं। नृसिंह स्वामी का प्राकट्य पंजाब में हुआ। पंजाब के कुछ लोग अपने नाम के पीछे सिंह लगाते हैं। गुरुदत्तसिंह, गुलाबसिंह, भगतसिंह आदि पंजाब में नरसिंह प्रकट हुए इससे पंजाब के लोग सिंह जैसे वीर हुए। हमारे गुजरात के लोग अब बकरी जैसे होने लगे हैं। जरा भी शक्ति नहीं है उनमें। बाजार की चाट बहुत खाते हैं, ऊपर से चाय पीते हैं। शक्ति कहाँ से आयेगी? आप पंजाब में जाइए। आज भी

वहाँ चाय का प्रचार नहीं है। पंजाब के लोग कसरत करके दूध पीते हैं। पाव भर नहीं, एक दो लीटर पीते हैं। गुजरात में किसी युवक से कहिए कि दो लीटर दूध पीना है तो वह युवक कहेगा– अरे मुझे जुलाब हो जायगा। जो एक–दो लीटर दूध नहीं पचा सकता, वह देश की क्या सेवा करेगा? शक्ति से ही भक्ति होती है। शक्ति का विनाश न हो, इसकी सम्भाल रखिये।

हिरण्यकशिपु ने शक्ति का भोग–विलास में दुरुपयोग किया। हिरण्यकशिपु के राज्य में देव–ऋषि बहुत दुःखी हुए। उन्होंने परमात्मा की स्तुति की। प्रभु ने कहा– मेरे भक्त प्रह्लाद को जो त्रास देगा, मैं उसकी खबर लूँगा। तब तक धैर्य रखिये।

हिरण्यकशिपु के घर प्रह्लादजी का जन्म हुआ। प्रह्लादजी जन्म से ही महान् भगवद् भक्त थे। पूर्व जन्म के महायोगी भक्त थे। जहाँ भक्ति है, वहाँ धीरे–धीरे सभी सद्गुण आते हैं, जहाँ अभिमान हैं, वहाँ सभी दुर्गुण एकत्र होते हैं। जहाँ भक्ति है, वहाँ विनय है, विवेक है, उदारता है, समर्पण की भावना है। भक्ति सर्व सद्गुणों की माता है। प्रह्लादजी में सभी सद्गुण एकत्र हुए हैं। प्रह्लादजी सभी को आनन्द देते हैं। प्रह्लादजी निरन्तर भक्ति करते हैं पर प्रह्लादजी ने भक्ति को गुप्त रखा है।

भक्ति का विज्ञापन नहीं होता। अपने घर का धन आप छिपाकर रखते हैं, उसी तरह भक्ति अलौकिक धन है, उसे गुप्त रखिये। भक्ति जाहिर होती है तब भक्ति में बिघ्न आते हैं। भक्ति जगत् को दिखाने के लिये नहीं है।

जगत् को दिखाइये कि मैं संसार में फँसा हुआ साधारण जीव हूँ। बाहर से जगत् के साथ प्रेम करिये। भीतर से परमात्मा के साथ प्रेम करिये। भक्ति निरन्तर करिये, भक्ति में सन्तोष न मानिये।

न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत्तन्मनस्तया।
कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम्॥ (७-४-३७)

प्रह्लादजी की भक्ति गुप्त है। किसी को मालूम नहीं है कि ये भक्ति कर रहे है। प्रह्लादजी निरन्तर नारायण का ध्यान करते हैं, नारायण का स्मरण करते हैं। नारायण के नाम का जप करते हैं। पाँच–छह वर्ष की उनकी उम्र है।

हिरण्यकशिपु ने दैत्यों के कुलगुरु शण्डामर्क को कहा कि इस बालक को राजनीति पढ़ाइए। शण्डामर्क प्रह्लादजी को घर ले गये। उन्हें पढ़ाने लगे। जिसे प्रभु के ध्यान में, स्मरण में, भक्ति में आनन्द आता है उसे संसार का सब कुछ तुच्छ लगता है। उसकी अच्छी पुस्तकें पढ़ने की भी इच्छा नहीं होती है। पुस्तक की वासना भक्ति में बिघ्न करने वाली है जिसे भीतर का आनन्द मिला है उसे अधिक पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। प्रह्लादजी की भी पढ़ने की इच्छा

नहीं होती है पर प्रभु के लाड़ले भक्तों का नियम है कि जब तक देह का होश है तब तक वे व्यवहार की मर्यादा नहीं तोड़ते हैं। किसी का अनादर न हो, यह वे देखते हैं। गुरुजी पढ़ा रहे हैं और मैं न पढ़ूँ तो गुरुजी का अपमान होगा– ऐसा सोचकर, गुरुजी को प्रसन्न रखने के लिए प्रह्लादजी पढ़ते हैं। जब वे पढ़ने बैठते, तब एक-एक अक्षर में उन्हें भगवान् का स्वरूप दीख पड़ता है। प्रह्लादजी की स्वरूप-आसक्ति दिव्य है।

भक्ति अर्थात् क्या? भगवान् के स्वरूप में आसक्ति को भक्ति कहते हैं। जिसे स्त्री में सौन्दर्य दीख पड़े, जिसे पुरुष में सौन्दर्य दीख पड़े, वह संसार की भक्ति करता है–वह भगवान् की भक्ति नहीं करता है। लौकिक रूप में आसक्ति ही माया है। लौकिक रूप में मन ललचाता है, तब पतन होता है। वही मन परमात्मा के सौन्दर्य में ललचाता है, तब नैया पार हो जाती है। जिसे ऐसा विश्वास हो गया है कि मेरे श्रीकृष्ण अति सुन्दर हैं, वही भक्ति कर सकता है। जिसकी दृष्टि दिव्य, उसकी सृष्टि दिव्य। इस सृष्टि को कोई नहीं सुधार सका है। आप दृष्टि को सुधारिये। अपने प्रभु को आँखों में रखिये। जहाँ दृष्टि जाती है, वहाँ भगवद्-स्वरूप को देखने की आदत डालिये।

प्रह्लाद की स्मरण–शक्ति अलौकिक है। गुरुजी पूछते हैं, उसका वे उत्तर देते हैं। गुरुजी को आश्चर्य होता है कि यह लड़का बहुत बुद्धिमान है, धीर गंभीर है, शांत है। गुरुजी छह मास के बाद प्रह्लादजी को हिरण्यकशिपु के दरबार में ले गये। प्रह्लादजी ने पिताजी को प्रणाम किया। पिता ने बालक को गोद में लिया और कहा–बेटा तुम्हें जो पाठ उत्तमोत्तम आता हो, वही कहो।

प्रह्लादजी ने सोचा कि गुरुजी ने जो विद्या सिखाई है, वह बहुत उत्तम नहीं है। गुरुजी ने तो राजनीति पढ़ायी है। शत्रु के साथ कैसे छल प्रपंच किया जाय यही पढ़ाया है। पिताजी मुझे उत्तम पाठ पढ़ने को कहते हैं। इसिलए मुझे उत्तम पाठ बोलना चाहिए प्रह्लादजी कहते हैं–

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्।
हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत॥ (७-५-५)

पिताजी! मेरे अनेक जन्म मुझे याद आते हैं। अनेक बार मैं राजा हुआ, अनेक ज़न्मों में रानी बना, अनेक बार मन्त्री हुआ, सिपाही हुआ। अनेक जन्मों के अनुभव से मुझे विश्वास हो गया है कि इस संसार में स्वार्थ के सिवा और कुछ नहीं है। मानव, मानव के साथ कहाँ प्रेम करता है? वह तो स्वार्थ के साथ प्रेम करता है। पति सुख देता है, इससे पत्नी प्रेम करती है। पत्नी से सुख मिलता है, इससे पति प्रेम करता है। पति, पत्नी के साथ प्रेम नहीं करता है। पर अपने स्वार्थ के साथ प्रेम करता है। पत्नी बहुत त्रास देती है तो पति पत्नी के साथ प्रेम नहीं कर सकता है। कभी ऐसा हो जाय कि पत्नी बीमार हो और पति पाँच-दस हजार खर्च करके उसकी सेवा करे, फिर

भी उसका स्वास्थ्य अच्छा न हो तो पति सोचता है कि इसका कुछ हो जाय तो अच्छा है। यह घर में जीवित है, तब तक दूसरा विवाह भी नहीं हो सकता। इसकी मृत्यु हो जाय तो मैं विवाह कर सकूँ। क्या पति, पत्नी के साथ प्रेम करता है? पति-पत्नी का प्रेम, पिता-पुत्र का प्रेम स्वार्थ से भरा है! पिताजी! जहाँ स्वार्थ है, वहाँ छल-प्रपंच है। जहाँ सुख भोगने की इच्छा होती है, वहाँ प्रपंच करना पड़ता है। कि यह तुम्हारा-यह मेरा! माता भी पुत्री के साथ ऐसा प्रपंच करती है, पिता भी पुत्र के साथ प्रपंच करता है। संसार का प्रेम स्वार्थ और छल-प्रपंच से भरा है। इस जीव के साथ निःस्वार्थ भाव से, निष्कपट भाव से प्रेम एक परमात्मा ही करते हैं। श्रीकृष्ण को कोई स्वार्थ नहीं है, फिर भी जीव के साथ वे प्रेम करते हैं। परमात्मा का प्रेम शुद्ध है, निःस्वार्थ है। मुझे तो ऐसा लगता है कि एकाँत में बैठकर नारायण का ध्यान करूँ, एकांत में प्रभु के नाम का जप करूँ। बोलने की इच्छा हो, तब लाला के साथ बात करूँ, जगत् के साथ अब बोलना नहीं है। खेलने की इच्छा हो तो ठाकुरजी के साथ खेलूँ। बालकृष्ण के साथ ही खेलता रहूँ। अब किसी स्त्री के साथ, किसी पुरुष के साथ खेलने की जरा भी इच्छा नहीं है। संसार का बहुत अनुभव कर लिया। अनेक जन्मों के अनुभव से निश्चय किया है कि अब मुझे परमात्मा के साथ ही खेलना है।

प्रह्लादजी तो बहुत सुन्दर बोले हैं, पर हिरण्यकशिपु को पसंद नहीं आया वह सोचने लगा कि यह क्या कहता है? मेरे शत्रु विष्णु की यह भक्ति करता है, यह मेरा शत्रु है इसे मार डालूँ। हिरण्यकशिपु ने बालक को गोद में से धकेल दिया। राक्षस मारने दौड़े। पाँच वर्ष का बालक निर्भय है। वह परमात्मा के नाम का निरंतर जप करता है। प्रह्लादजी को चारों ओर नारायण दीख पड़ते हैं। प्रह्लादजी की दृष्टि दिव्य थी। जिसे पीलिया का रोग होता है, उसे सब पीला ही दिखाई देता है। उसे दूसरा रंग नहीं दिखाई देता। एक रोग में जब ऐसी शक्ति है तब निरन्तर भक्ति करने वाले प्रह्लादजी को सर्व में नारायण दिखाई पड़ने लगे तो क्या आश्चर्य? प्रह्लादजी की ऐसी निष्ठा है। राक्षस मारने दौड़े पर प्रह्लादजी के चारों ओर नारायण दिखाई पड़े। वे प्रह्लादजी का बाल भी बाँका नहीं कर सके। प्रह्लादजी को मारने के बहुत यत्न किये परन्तु उन्हें कुछ भी सफलता नहीं मिली।

हिरण्यकशिपु को आश्चर्य हुआ कि यह बालक जादूगर लगता है। इसे अँधेरे में बंद कर दो। इसे अन्न-जल न देना, अन्न जल के बिना यह मर जायेगा। प्रह्लादजी को कैद में रखा। प्रह्लादजी जरा भी डरे नहीं हैं। उन्होंने सोचा कि अच्छा हुआ कुसंग गया। अब में शांति से अपने प्रभु का स्मरण कर सकूँगा।

स्वामी का एक नियम है। जगत् में एक भी जीव भूखा है, तब तक वे बैकुण्ठ में भोजन नहीं लेते हैं। उनका नाम विश्वंभर है। वे सभी का पालन करते हैं। सर्व को तृप्त करते हैं, बाद में स्वयं भोजन लेते हैं। परमात्मा ने लक्ष्मीजी से कहा कि मेरा पुत्र भूखा है। आज मुझे भोजन नहीं करना है। आज स्वामी ने खाने के लिए मनाकर दिया है। सुवर्ण की थाली में लक्ष्मी जी ने सुन्दर प्रसाद सजाकर पार्षद के हाथ भेजा है। पार्षद वही प्रसाद कारागृह में ले गया? पार्षद ने कहा– माता लक्ष्मी जी ने यह प्रसाद आपके लिये भेजा है। प्रह्लादजी को आनन्द हुआ। मेरी माता ने मेरे लिए प्रसाद भेजा है। मेरी बहुत देख-भाल करती हैं वे! प्रह्लादजी ने प्रसाद को वंदन करके, भगवान् का स्मरण करते हुए प्रसाद ग्रहण किया। भोजन में जो व्यक्ति प्रभु का स्मरण नहीं करते, उनका भोजन के बाद मन बिगड़ता है, उन्हें आलस्य आता है। भोजन में भी भक्ति करिये। भगवान् का नाम लेकर ग्रास ग्रहण करिये।

प्रह्लादजी के लिए वैकुण्ठ से भोजन आया था। उसमें से केसर-कस्तूरी की सुगंध आती थी। हिरण्यकशिपु के सैनिक कारागार में पहरा दे रहे थे। उनके मुँह में पानी आने लगा। उन्होंने हिरण्यकशिपु को समाचार भेजे–द्वार बन्द है, हम चौकसी पर हैं पर बालक भीतर कुछ खा रहा है। हिरण्यकशिपु क्रोध में दौड़ता हुआ आ पहुँचा। लात लगाकर उसने द्वार तोड़ दिये। भीतर जाकर प्रह्लाद से पूछा–तुम्हें कौन खाना देता है? प्रह्लादजी ने कहा–पिताजी! जब मैं माँ के पेट में था, तब क्या आप भोजन देते थे? यह कमरा बहुत बड़ा है। जिस प्रभु ने माता के गर्भ स्वरूप छोटे से कमरे में मेरा रक्षण किया, वही परमात्मा कारागृह में मेरा रक्षण करते हैं। हिरण्यकशिपु घबरा गया। उसने मारने के बहुत प्रयत्न किये पर यह मरता नहीं है। सोचने लगा कि यह बालक मुझे मारने के लिए ही आया है क्या? शण्डामर्क समझा रहा है यह तो बालक है, कुछ ही दिनों में भूल जायेगा। इसे वरुणपाश में बाध कर हम घर में ही रखेंगे। चार दिनों के बाद शुक्राचार्यजी आयेंगे तब वे जैसा कहेंगे वैसा करियेगा। प्रह्लादजी को वरुणपाश में बाधकर शण्डामर्क घर ले गये।

अनेक बालक वहाँ पढ़ रहे थे। एक दिन गुरुजी जब बाहर गये थे, तब बालक गेंद लेकर खेलने के लिए तैयार हुए। प्रह्लादजी ने कहा–आप सब इधर आइए, आज मैं आपको एक नया खेल सिखाऊँगा। सभी प्रह्लादजी के चारों ओर बैठ गये। प्रह्लादजी ने बालकों को भागवत धर्म का उपदेश दिया–

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्।। (७-६-१)

८३ अथवा ९९ अथवा ९९९ जन्मों के बाद यह शरीर मिला है। मानव-शरीर अति दुर्लभ है। यह शरीर भोग के लिये नहीं, भगवान् के लिये मिला है। मानवेत्तर पशु, पक्षी भोग भोगते हैं, मानव-शरीर के द्वारा ही भगवान् की भक्ति होती है। यह शरीर अति दुर्लभ है। आज से आप मेरे नारायण की भक्ति करिये। लौकिक सुख के लिए बहुत यत्न करने की जरूरत नहीं है। संसार के सभी सुख प्रारब्ध अधीन है। जिसके प्रारब्ध में सुख लिखा ही नहीं है, वह जंगलों में रहता है, पर दुःखी ही रहता है और हृदय को जलाता है। जिसके भाग्य में सुख लिखा है, वह जंगल में वृक्ष के नीचे भी सुख-शांति पाता है। अरे! दुःख के लिए कोई प्रयत्न नहीं करता है, फिर भी दुःख आकर खड़ा हो जाता है। बिना यत्न से जिस तरह दुःख आता है, उसी तरह बिना यत्न से सुख आता है। लौकिक सुख प्रारब्ध के अधीन है। परमात्मा प्रयत्न से मिलते हैं। मेरे प्रभु को पाने के लिए प्रयत्न कीजिये। आज से आप भक्ति कीजिये।

बालकों ने कहा—प्रह्लाद! अभी तो हमारी खाने-खेलने की उम्र है। वृद्धावस्था में पेंशन-निवृत्ति के बाद, 'राम-राम' करेंगे। अभी से भक्ति की क्या जरूरत?

प्रह्लादजी समझा रहे हैं कि आज आपका शरीर स्वस्थ है पर मन चंचल है, वृद्धावस्था में शरीर रोग का घर हो जायगा। शरीर अस्वस्थ होगा तो मन अधिक चंचल हो जायेगा। आज बाजी आपके हाथ है, बहुत भक्ति कीजिये। वृद्धावस्था में शरीर के बिगड़ने पर भगवान् की भक्ति ठीक से नहीं हो सकेगी।

बालकों ने कहा—प्रह्लाद! हम जवानी में भक्ति करें तो? प्रह्लादजी ने कहा—अभी आप छोटे हैं, इससे ऐसा कहते हैं। यौवन में मद आ जाता है। वह ऐसा समय है कि बड़े-बड़े बुद्धिमान हों, ज्ञानी हों कि अज्ञानी हों, कुछ न कुछ भूलकर बैठते हैं। बहुत पवित्रता से, बहुत सरलता से, जिसका यौवन व्यतीत हुआ हो, ऐसे महान् पुरुष बहुत कम हैं। जवानी में भक्ति नहीं होगी तो, सारा दिन जीव धन के पीछे पड़ जायेगा। थोड़ा सा समय मिलेगा तब सुख भोगने में लग जायेगा। बच्चों को, बेटी-बेटे को खिलाने में भी बहुत समय जायगा। बच्चे तोतले बोल बोलते हैं और उस मिठास में माता-पिता खो जाते हैं। उनके पीछे पागल हो जाते हैं। कहते हैं कि हमारा बेटा अब बोलने लगा। अरे बोल रहा है तो क्या बड़ी बात है? सारा जीवन बोलने ही वाला है।

जवानी में भक्ति नहीं होगी। आज से आप भक्ति के संस्कार दृढ़ कीजिये। तब वे ही जवानी में काम आयेंगे। जब हृदय कोमल होता है तब उत्तम संस्कार देने चाहिए। आज से आप भक्ति कीजिए। मैं आपकी ही कथा नहीं कहता हूँ। बड़े-बड़े पण्डित, विद्वान्, सारा दिन पैसे के

पीछे पड़ते हैं और रात्रि में कामाँध-मोहाँध बनते हैं। विद्या का उपयोग भोग के लिए करने वाला विद्वान् नहीं है। जो विद्या का उपयोग भगवान् के लिए करता है, वही विद्वान् है–

विद्वान्पीत्थं दनुजाः कुटुम्बं पुष्णन्स्वलोकाय न कल्पते वै।
यः स्वीयपारक्यविभिन्नभावस्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः॥

(७-६-१६)

आप लोगों ने देखा है कि मुझे मारने के अनेक यत्न किये गये हैं पर क्या मेरा बाल भी बाँका हो सका है? मेरा रक्षण मेरे प्रभु करते हैं। इस जगत् को प्रसन्न करना अशक्य है, पर प्रभु को प्रसन्न करना अशक्य नहीं है। इस जगत् को कोई प्रसन्न नहीं कर सका है। आप जगत् के पीछे पड़ेंगे तो दुःखी होंगे, पर भगवान् के पीछे पड़ेंगे तो सुखी होंगे। भगवान् के पीछे पड़िये।

प्रह्लादजी बालकों को सावधान करते हैं कि प्रेम से प्रभु के नाम के कीर्तन करेंगे तो प्रभु प्रसन्न होंगे। आपको प्रभु के दर्शन होंगे। जिस दृष्टि से जगत् दीख पड़ता है, उस दृष्टि से प्रभु नहीं दिखाई देते। हाँ जिस दृष्टि के द्वारा स्वप्न दीखते हैं, उसी दृष्टि के द्वारा प्रभु दिखाई देते हैं। भीतर की दृष्टि खुलती है, तब परमात्मा के दर्शन होते हैं। ज्ञानी परमात्मा के दर्शन ज्ञान-चक्षु से करते हैं। आप बाहर की दृष्टि बंद करिये तो भीतरी दृष्टि खुल जायगी। प्रह्लादजी के कहने से सभी बालकों ने आँखें बन्द कर लीं प्रह्लादजी ने एक-एक को स्पर्श किया और सभी को तेज दीख पड़ा। प्रह्लादजी ने कहा–यह जो प्रकाश है, उसे ही ज्ञानी निर्गुण ब्रह्म कहते हैं। इस प्रकाश में दृष्टि रखिये और प्रेम से मेरे प्रभु के नाम का जप करिये। इस प्रकाश में से ही श्रीकृष्ण प्रकट होंगे। ताली बजा-बजाकर कीर्तन करिये। जगत् को भूलने के लिए ही ताली बजानी है। ताली नादब्रह्म है। ताली बजाकर कीर्तन करने पर आपको यह याद नहीं आयेगा कि इस गाँव का नाम क्या है। मैं कहाँ हूँ। मधुर नाद सुनने पर नाग डोल उठता है; उसे याद नहीं आता कि मुझ में विष है नाद ब्रह्म की उपासना करने वाला जगत् को भूलता है, जिसका संबंध जगत् से छूट जाता है, उसका ब्रह्म संबंध हो जाता है। नादब्रह्म और नामब्रह्म एक हो जायँ, वहाँ परब्रह्म प्रकट होते हैं। कइयों को ताली बजाने में शर्म लगती है। इससे प्रभु को बुरा लगता है, प्रभु नाराज होते हैं कि मैंने इसे दो हाथ दिये हैं, पर इसे मेरे भजन-कीर्तन में ताली बजाने में शर्म आती है। मेरी ही भूल है कि मैंने इसे दो हाथ दिये हैं। अगले जन्म में इसे एक भी हाथ नहीं दूँगा। दो पैर ही अधिक दूँगा। प्रेम से, ताली बजा-बजाकर कीर्तन कीजिये।

श्रीकृष्ण-कीर्तन करते-करते अति आनंद में आकर प्रह्लादजी नाचने लगे। श्रीराधा-कृष्ण के उन्हें दर्शन हुए। अति आनंद में जीव नाचता है। प्रह्लादजी के सत्संग का रंग लगा और सभी

बालक भी कीर्तन करते हुए नाचने लगे। बाहर से जब शण्डामर्क घर आये तो उन्होंने देखा कि सभी बालक कीर्तन में तन्मय हो गये हैं। गुरुजी को लगा कि प्रह्लाद बालकों को बिगाड़ रहा है। यह तो अभी नहीं सुधर सकेगा। दौड़कर वे वहाँ पहुँचे और प्रह्लादजी से कहने लगे कीर्तन बंद करिये, कीर्तन बंद करिये पर कौन सुन रहा है? कान खुले हैं मन श्रीकृष्ण-चरण में है। प्रह्लादजी को सुनाई नहीं देता। शण्डामर्क ने सोचा कि बालक के दो हाथ पकड़ लूँ। उसकी तालियाँ बंद होंगी तो कीर्तन भी बंद होगा। शण्डामर्क प्रह्लादजी के दोनों हाथ पकड़ने गये। प्रह्लादजी के रोम-रोम से श्रीकृष्ण-नाम का जप होता था। सारा श्रीअंग कृष्णमय था। प्रह्लादजी का स्पर्श हुआ कि शण्डामर्क को भी भक्ति का रंग लगा। शण्डामर्क 'हरे कृष्ण-हरे-कृष्ण' कीर्तन करते हुए तन्मय हो गये। सत्संग का यही महात्म्य है। सत्संग करने वाला संत बनता है।

हिरण्यकशिपु ने सोचा कि गुरुजी बालकों को किस तरह पढ़ाते हैं, यही मैं देखना चाहता हूँ। एक सिपाही को खबर लेने भेजा गया। उसने आकर देखा तो गुरुजी नाच रहे थे और सब बालक भी नाच रहे थे। सिपाही को आश्चर्य हुआ। उसने शण्डामर्क से कहा कि गुरुजी, गुरुजी, महाराजा देखने आ रहे हैं, पर कौन सुनता है? सिपाही ने गुरुजी के हाथ पकड़ कर बैठा देने का विचार किया पर जैसे ही हाथ पकड़ने लगा, उसे भी रंग लग गया।

सिपाही कीर्तन में तन्मय हुआ। हिरण्यकशिपु विचार करने लगा कि जो गया वह वापस क्यों नहीं आता है? उसने दूसरे सिपाही को भेजा। दूसरे ने देखा कि मेरा भाई तो नाच रहा है! उसे सावधान करने गया, और उसे भी रंग लग गया। वह भी नाचने लगा। करंट लगने पर बल्ब से प्रकाश निकलने लगता है। सद्गुरु सद्-शिष्य को शक्ति देते हैं।

प्रह्लादजी के सत्संग का यही माहात्म्य था। आज घर के सिपाही 'हरे कृष्ण' कीर्तन करके नाचते थे। हिरण्यकशिपु को आश्चर्य हुआ कि यह क्या है? जो जाता है, वापस ही नहीं आता है! क्रोध में वह दौड़ता पहुँचा, देखा कि घर के सभी सिपाही भी 'हरे कृष्ण' कीर्तन कर रहे हैं, आनंद से नाच रहे हैं, यह क्या? यह क्या? ये मेरे शत्रु का कीर्तन करते हैं! मुझ से यह कैसे सहन होगा? प्रह्लाद सभी को बिगाड़ रहा है। यह लड़का नहीं सुधरेगा। हिरण्यकशिपु ने क्रोध में आकर प्रह्लाद को उठा लिया-जिसको प्रह्लाद का स्पर्श हुआ भक्ति का रंग लगा पर हिरण्यकशिपु को स्पर्श होने पर भी रंग नहीं लगा। कंडम बल्व को चाहे कितना भी करंट लगे, प्रकाश नहीं निकलता। हिरण्यकशिपु बालक को उठाकर दरबार में ले आया और जमीन पर पटक दिया। धरती माता ने बालक को गोद में उठा लिया। बालक का बाल भी बाँका नहीं हुआ। बालक हाथ जोड़कर खड़ा रहा। हिरण्यकशिपु का क्रोध बढ़ गया। वह बोला कि तुम मेरी आज्ञा मानते नहीं हो और

झूठी विनय दिखा रहे हो? मैं तुम्हें मारूँगा। मैंने ब्रह्मादिक देवों का पराभव किया है। सभी देव मुझ से काँपते हैं और तुम निडर होकर खड़े हो! तुम्हें किसने ऐसा बल दिया है–

न केवलं मे भवतश्च राजन् स वै बलं बलिनां चापरेषाम्।
परेऽवरेऽमी स्थिरजंगमा ये ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः॥

(७-८-८)

पिताजी जिनकी शक्ति के कारण आप बोल पाते हैं, उन्हीं की शक्ति मुझे मिली है। मेरे प्रभु आपको शक्ति देते हैं और आप बोल पाते हैं। मेरे रक्षक तो आपके भीतर भी बैठे हैं। पिताजी! बाहर का दिग्विजय किस काम का? जिसने मन जीता है, उसने जगत् जीत लिया है; जो मन से हार गया है, जगत् में उसकी सर्वत्र हार है।

दस्यून्पुरा षण्न विजित्य लुम्पतो मन्यन्त एके स्वजिता दिशो दश।
जितात्मनो ज्ञस्य समस्य देहिनां साधोः स्वमोहप्रभवाः कुतः परे॥

(७-८-११)

पिताजी! वीर तो वही है, जो काम पर विजय पा लेता है। जिसे क्रोध आता है, जो काम की मार खाता है, वह वीर नहीं है। जिसने मन जीता है, वही वीर है। पिताजी, वीर वही है जो भीतर के शत्रुओं को मारता है। बाहर के शत्रु को मारने वाला वीर नहीं है। जिसने मन को जीत लिया है, वही वीर है। पिताजी! आज मुझे दुःख होता है। आपके मुख पर मुझे मृत्यु की छाया दीख पड़ती है। समय आ गया है कि अब क्रोध न करिये। प्रेम से श्रीकृष्ण-कीर्तन करते हुए तन्मय बनिये। मरण मंगलमय होगा।

हिरण्यकशिपु को यह बोध पसंद नहीं आया। वह कहने लगा कि मेरे पुत्र होकर तुम मुझे समझा रहे हो? मैं तुम्हें मारूँगा। तुम्हारी रक्षा करने वाले तुम्हारे विष्णु कहाँ हैं? प्रह्लाद ने कहा–पिताजी वे सर्वत्र हैं। विविष्टि इति विष्णुः–वे सर्वव्यापक हैं। इससे ही उन्हें विष्णु कहते हैं। हिरण्यकशिपु बड़बड़ाने लगा कि तुम कहते हो कि विष्णु सर्वव्यापक हैं तो इस खंभे में क्यों नहीं दिखाई देते–

कस्मात्स्तम्भे न दृश्यते।

प्रह्लाद ने कहा–पिताजी, जिसकी आँखों में काम है, उसे भगवान् के दर्शन नहीं होते हैं। मुझे वे दिखाई देते हैं। वे खंभे के भीतर विराजमान हैं। जिसकी आँखें शुद्ध हैं, जिसका मन पवित्र है, उसे ही परमात्मा के दर्शन होते हैं।

हिरण्यकशिपु ने कहा—मैं व्यायामशाला में जाकर हजार मन की गदा ले आता हूँ। आज यह खंभा तोड़ डालता हूँ, भीतर विष्णु बैठा होगा तो उसे भी मार डालूँगा और बाद में तुम्हें मारने वाला हूँ। हिरण्यकशिपु क्रोध में दौड़ता हुआ गदा लेने गया। प्रह्लादजी का हृदय भगवद्भाव में द्रवित हुआ। कृष्ण-कृष्ण कीर्तन करता हुआ बालक दौड़ा। प्रह्लादजी का सत्त्वगुण और हिरण्यकशिपु का तमोगुण—दोनों का यह युद्ध है। सत्त्वगुण जब बढ़ता है, तब तमोगुण नष्ट होता है। सत्त्वगुण बढ़ता है, तब परमात्मा प्रकट होते हैं। बालक कृष्ण-कृष्ण कीर्तन करते हुए दौड़कर स्तंभ से भेंट करने लगा। भीतर-बाहर मेरे विष्णु बैठे हैं। अंतर्बहिश्च व्याप्य तर्स्वं नारायणः स्थितः। पर बालक है, थोड़ी-सी शंका हुई कि यह खंभा सघन है, भीतर जगह नहीं है। इसमें भगवान् किस तरह विराजमान होंगे। मैंने तो कहा कि इस खंभे में प्रभु हैं। बालक परमात्मा को मनाने लगा कि मेरा वचन सत्य कीजिए मेरे लिए खंभे में से प्रकट होइए। आज भगवान् स्तंभ में से प्रकट नहीं होंगे तो मेरे भगवान् को कौन सर्वव्यापक मानेंगे? प्रह्लादजी अपने स्वामी को मनाने लगे। दूध के एक-एक कण में—माखन होता है। दूध के अणु-परमाणु में—जिस तरह माखन है, उसी तरह जगत् के प्रत्येक पदार्थ में परमात्मा हैं। प्रह्लादजी के प्रेम के कारण आज वे प्रकट होने वाले हैं। स्तंभ में सूक्ष्म रूप से विराजमान प्रभु ने लीला की। बालक को आश्वासन देने के लिए भीतर विराजमान प्रभु ने लीला की। बालक को आश्वासन देने के लिए भीतर विराजमान परमात्मा ने सिंह-गर्जना की। बालक को आश्वासन दिया कि मैं भीतर बैठा हूँ। मैं तुम्हारा वचन सत्य सिद्ध करूँगा। सिंह-गर्जना सुनकर बालक को विश्वास हो गया कि भीतर नरसिंह स्वरूप में प्रभु विराजमान हैं। बालक आनंद में कीर्तन करके नाचने लगा।

संध्या का समय हो रहा था। हिरण्यकशिपु व्यायामशाला में जाकर हजार मन की गदा उठाकर क्रोध में कदम उठाते हुए, आ पहुँचा। बोला कि दिखा दो, कहाँ है तुम्हारा प्रभु? निडर होकर बालक ने कहा—पिताजी! इस स्तंभ में हैं। हिरण्यकशिपु ने अतिशय क्रोध में आकर स्तंभ पर जैसे ही प्रहार किया, स्तंभ फट गया और नरसिंह स्वामी का प्राकट्य हुआ। मुखारविंद सिंह के समान है, श्रीअंग मानव जैसा है। आँखें लाल हैं। दाढ़ें भयंकर दीख रही है। बार-बार मस्तक हिला-हिलाकर गुड-गुड-गुड गर्जना करते रहे, धरती काँपने लगी। यह क्या प्रलय हो रही है? देव घबराने लगे। हिरण्यकशिपु को विश्वास हो गया कि मेरा काल आ गया है। वह बहुत घबरा गया। प्रभु ने दोनों हाथ बढ़ाये और हिरण्यकशिपु को उठा लिया। बाहर से बहुत क्रोध में दीख पड़ते हैं, भीतर प्रेम भरा है। कैसे भी हो, मेरे प्रह्लाद के पिता हैं और इससे ही उसे गोद में लेकर पूछा कि बेटा, कह दे कि रात है या दिन है? मानव है कि पशु? भीतर है कि बाहर? शस्त्र है कि अस्त्र?

मैं तुम्हें नाखून से मारूँगा। घबराया हुआ हिरण्यकशिपु एक अक्षर भी न बोल सका। वज्र-नाखून के प्रहार से उसे प्रभु ने काट डाला। उसी समय देवों ने, गंधर्वों ने नरसिंह भगवान् की जय-जयकार के स्वर फैला दिये। हिरण्यकशिपु का उद्धार हुआ पर अभी नरसिंह भगवान् का क्रोध शाँत नहीं हो रहा है। मस्तक हिला-हिलाकर गुड्-गुड-गुड गर्जना कर रहे थे। ब्रह्माजी घबराये। ब्रह्माजी ने स्तुति की कि अब शाँत हो जाइए, शाँत हो जाइये। राक्षस मर गया है। अन्य देवों ने भी स्तुति की पर अब भी क्रोध शाँत नहीं हुआ है ब्रह्माजी ने प्रह्लादजी से कहा कि बेटा! तुम्हारे लिए भगवान् प्रकट हुए हैं, अब तुम ही उन्हें शाँत करो। सिंह का बालक सिंह से नहीं घबराता है। बालक ने हाथ जोड़कर वंदन करते हुए चरणों में प्रणाम किये। वह नरसिंह स्वामी के चरणों में गया। जब प्रह्लाद ने साष्टाँग प्रणाम किया, तब उसे देखते ही परमात्मा की आँखें आर्द्र हो आयीं। हृदय द्रवित हुआ। जो प्रभु हिरण्यकशिपु के लिए वज्र से भी कठोर थे, वह प्रह्लाद के लिए माखन से भी कोमल हुए।

बालक को उठाकर उन्होंने गोद में लिया। उसका सिर सूँघा। पीठ पर ममत्व से हाथ रखा। प्रभु वात्सल्य से संचित लाड़-दुलार दिखाने लगे। बेटा तुम बहुत कोमल हो। तुम्हारे पिता ने तुम्हें बहुत त्रास दिया? मेरा बेटा धीर-गम्भीर है। उसने बहुत दुःख सहन किया। बेटा! आज तुम्हारी कोमलता देखते हुए मुझे लगता है कि मैंने बहुत देर कर दी। इसलिए मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ। प्रह्लादजी की भक्ति ऐसी है कि आज भगवान् स्वयं क्षमा माँगते हैं। प्रह्लादजी ने प्रभु के चरणों में बार-बार वंदन करते हुए कहा—ऐसा न कहिये। आप मेरे स्वामी हैं मैं आपका सेवक हूँ। आपने सर्वकाल मेरी रक्षा की है। मैंने जरा भी दुःख नहीं सहन किया। मैं तो आपके स्मरण में—दर्शन में अति प्रसन्न रहा हूँ। बालक ऐसा मधुर बोला कि नरसिंह स्वामी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। बालक को हृदय से लगाकर उन्होंने आलिंगन दिया। भक्त और भगवान् एक हुए, तब नरसिंह भगवान् का क्रोध शाँत हुआ।

बाल भक्त प्रह्लादजी के वचन सत्य सिद्ध करने के लिए और जगत् में सर्व स्थान पर हूँ, ऐसी अपनी सर्व-व्यापकता सिद्ध करने लिए स्तम्भ में से भगवान् प्रकट हुए। नरसिंह अवतार में प्रभु ने जगत् को बोध दिया है कि मैं सर्वत्र हूँ। परमात्मा सर्वकाल और सर्व स्थान पर विराजमान हैं, ऐसा जिसे अनुभव होता है वह पाप नहीं कर सकता है, पर ऐसी अनुभूति करने वाले बहुत कम लोग हैं।

साधारण मानव जब पाप करता है, तब ऐसा समझता है कि भगवान् बैकुण्ठ में विराजमान हैं, मन्दिर में विराजमान हैं। यहीं नहीं हैं। आप जहाँ हैं, वहाँ आपके भगवान् हैं। जगत् में ऐसा कोई

स्थान नहीं है, जहाँ परमात्मा विराजमान न हों। सर्वव्यापक परमात्मा सर्व में अति सूक्ष्म रूप से हैं। उन्हें हम आँख से नहीं देख पाते हैं, बुद्धि से उनका अनुभव किया जाता है। दूध के एक-एक कण में माखन है, पर दूध में माखन दिखाई नहीं देता। दूध पीने से माखन का स्वाद भी नहीं आता, दूध में हाथ डालने पर माखन हाथ में भी नहीं आता, पर दूध में माखन है, यह बात सत्य है, आँख को भले ही वह दीख न पड़े। बुद्धि से ही अनुभव किया जाता है। बुद्धि स्वीकार लेती है कि दूध के अणु-परमाणु में माखन है। जगत् के अणु-परमाणु में परमात्मा की सत्ता है। सर्वत्र परमात्मा को अनुभव करने वाले का व्यवहार शुद्ध होता है। जिसका व्यवहार शुद्ध है, उसे ही भक्ति में आनंद आता है।

लोग थोड़ी भक्ति करते हैं पर उन्हें भक्ति में आनन्द नहीं आता है, इससे वे भक्ति छोड़ देते हैं। अगर उन्हें भक्ति में आनन्द आने लगे तो वे भक्ति नहीं छोड़ पाते। भक्ति में आनन्द नहीं आता है। इसका भी एक ही कारण है। वे भक्ति करते हैं पर पाप छोड़ते नहीं हैं। उनका व्यवहार शुद्ध नहीं है। जिसका व्यवहार अति शुद्ध है, उसे भक्ति में आनन्द आता है। संत भक्ति और व्यवहार को भिन्न नहीं मानते हैं। संतों का प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय होता है। संत रास्ते में चलते हुए भी भक्ति करते हैं। वे संसार के व्यवहार का कोई भी काम नहीं करते हैं। वे ईश्वर से विभक्त नहीं रहते। वे परमात्मा को साथ में रखकर कार्य करते हैं। सन्तों का प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय बनता है। प्राचीन समय में जितने भी साधु-संत हुए वे सभी काम धंधा करते थे। वे किसी का मुफ्त का नहीं लेते थे। गोरा कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाते थे और बाजार में बेचने ले जाते थे। संत व्यापार भी करते थे। दुकान पर आये ग्राहक में भी उन्हें भगवान् दीख पड़ते हैं, परमात्मा के दर्शन होते हैं। वस्तुतः परमात्मा के दर्शन करके जो व्यापार करते हैं, उनका व्यापार भी भक्ति है।

कई दुकान में ठाकुरजी का स्वरूप मूर्ति रखते हैं, दीया जलाते हैं, अच्छा ही है। पर वे जब ग्राहक के साथ बात करते हैं तब समझ लेते हैं कि भगवान् बहरे हैं, आप जो बोलते हैं, भगवान् उसे सुनते हैं। आप जो कुछ करते हैं, भगवान् उसे देखते हैं। व्यापार को भक्तिमय बनाइए।

हमारे शास्त्रों में लिखा है कि वैश्य श्रेष्ठ हैं। वैश्य सर्व का पोषण करते हैं, इससे उन्हें श्रेष्ठ माना है। श्रेष्ठ शब्द का अपभ्रंश सेठ हैं। जगत् में जितनी भाषाएँ हैं, उन सभी की माता तो संस्कृत है, संस्कृत से ही सभी भाषाएँ निकली हैं। संस्कृत में जिसे श्रेष्ठ कहते हैं। गुजराती में जिसे शेठ कहती हैं, हिन्दी में उसे सेठ कहते हैं, वैश्य श्रेठ है। वे समाज का पोषण करते हैं। महाभारत में वर्णन आता है कि जाजलि ऋषि महातपस्वी ब्राह्मण थे। एक बार जाजलि ऋषि को अभिमान हुआ कि मैं बड़ा ज्ञानी हूँ, तपस्वी हूँ। उनके अभिमान को दूर करने के लिए प्रभु ने लीला की।

आकाशवाणी हुई कि महाराज, अभिमान न करिये। जनकपुरी में तुलाराम नाम का एक वैश्य है, वह महाज्ञानी है। आप उनका सत्संग करिये। पवित्र तपस्वी ब्राह्मण वैश्य के घर सत्संग करने गये। तुलाराम के साथ बातें करते हुए जाजलि ऋषि को विश्वास हो गया कि ये महाज्ञानी हैं। जाजलि ऋषि ने पूछा, आपका गुरु कौन है? यह सब ज्ञान किसने दिया? तुलाराम ने कहा कि महाराज, अभी तक मैंने किसी को गुरु नहीं किया है। ब्राह्मणों और साधुओं को मैं वंदन करता हूँ, गुरु मानता हूँ। पर मेरा जो धंधा है, वही मेरा गुरु है। मुझे जो ज्ञान मिला है, सब मेरे धंधे से ही मिला है। मैं कम नहीं देता, मैं अधिक भी नहीं देता। दिखाने का माल एक और देने का माल दूसरा—ऐसा मैं नहीं करता हूँ। मेरे प्रति लोगों के मन में विश्वास है। सत्यवादी हूँ। उचित मुनाफा लेता हूँ। तराजू को जिस तरह सरल सीधा—रखना चाहिए उसी तरह मैं मन और बुद्धि को सीधा-सरल रखता हूँ। कपट से मन टेढ़ा होता है। कपट करने वाले का मन अशांत रहता है। मैं व्यवहार में—व्यापार में जरा भी कपट नहीं करता हूँ। ग्राहक की सरलता का दुरुपयोग मैं नहीं करता हूँ। मेरी दुकान पर जो आते हैं, उन्हें मैं प्रभु का स्वरूप मानता हूँ। व्यवहार शुद्ध रखिये। व्यवहार उनका शुद्ध रहता है, जो सर्व में ईश्वर का दर्शन करते हैं। प्रत्येक व्यवहार को भक्तिमय बनाइए। ऐसा कोई व्यवसाय नहीं है, व्यापार धंधा नहीं है, जिसके साथ-साथ भक्ति न हो सके। रात्रि में शय्या में बैठकर जो लोग भक्ति नहीं करते हैं, उनके मन में पाप आता है, काम आता है। शय्या में पड़े-पड़े धीरे-धीरे मन भीतर आता जाता है,जगत् भुलाया जाता है। जगत् की विस्मृति ही जाग्रत अवस्था की समाप्ति है। जाग्रत अवस्था की समाप्ति और निद्रा के आरंभ की संधि में भगवान् को याद रखिये। दोनों की संधि बेला में ही भगवान् ने हिरण्यकशिपु को मारा है। परमात्मा का स्मरण करते हुए जिसे निद्रा आती है,उसकी निद्रा भी समाधि-सदृश होती है। जागने पर परमात्मा को याद करिये। निद्रा आने तक परमात्मा का स्मरण करने और निद्रा से जागने पर परमात्मा का स्मरण करने पर भगवान् मानते हैं कि इसने निद्रा में मेरा भजन किया है—

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं।
संचार स्तुपदोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो॥
पूजा ते विविधोपभोग रचना निद्रासमाधिस्थितिः।
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम्॥

घूमने जा रहे हैं, तब प्रभु का स्मरण करिये, तो प्रभु मानेंगे कि मेरी परिक्रमा कर रहा है। बातें करते हुए भी प्रभु को याद करके बोलिये तो प्रभु मानेंगे कि मेरी स्तुति कर रहा है। व्यवहार

और भक्ति भिन्न-भिन्न नहीं हैं। ईश्वर का अनुसंधान रखकर व्यवहार करने से व्यवहार भी भक्ति बनता है।

घंटे-दो-घंटे भक्ति करते हैं किन्तु आप सारा दिन भगवान् को भूल जाते हैं, तो यह भक्ति नहीं है। ईश्वर से विभक्त न होइए-तब ही भक्ति है। आपको जो पसन्द नहीं है, वह किसी को भी न दीजिए। पुत्री भूल करती है तो चलता है और पुत्रवधू भूल करती है तो नहीं चलता है। व्यवस्था के लिए उलाहना तो देना पड़ सकता है पर सब में ईश्वर है, यही याद रखकर उलाहना दीजिए और प्रेम से दीजिए। भगवान् ने जगत् से कहा है कि खंभे में भी मैं स्थित हूँ। जिसको पान-सुपारी खाने की आदत है, वे चाहे जहाँ थूकते हैं। कई लोग तो दीवार पर थूकते हैं। कई लोग खम्भे पर थूकते हैं-उन्हें पाप लगता है। दीवार में देव हैं। स्तंभ में नरसिंह भगवान् विराजमान हैं। व्यवहार को शुद्ध रखिये। भक्ति नहीं करते हैं, हर्ज नहीं, पर व्यवहार शुद्ध रखिये।

नरसिंह स्वामी जब स्तंभ से प्रकट हुए, तब गुरु गुरु गुरु ऐसी गर्जना हुई। किसी भी संत के चरण पकड़ कर रहिये। किसी महापुरुष को मन से गुरु मानकर उनकी सेवा करिये, उनका स्मरण करिये। सद्गुरु कृपा करते हैं, तब ही परमात्मा के दर्शन की दृष्टि देते हैं। संत हैं। संत सम्पत्ति देकर सुखी नहीं करते। किसी श्रीमान् की आप प्रशंसा करेंगे तो वे आपको दस-बीस हजार रुपये देंगे। संपत्ति से सुखी करने का काम संतों का नहीं है; संत स्वभाव को सुधारते हैं, मन शुद्ध करते हैं। परमात्मा के दर्शन की दृष्टि देकर सुखी करते हैं। संत परमात्मा के दर्शन के लिए दृष्टि देते हैं, तब ही, मन शुद्ध होता है। मानव मूर्ख नहीं है, पर मानव की बुद्धिमानी टिकती नहीं है। आपका मन सर्वकाल में शुद्ध और शांत रह सके, ऐसी इच्छा हो तब किसी महान् संत के अधीन रहिए। गुरु के बिना न रहिये। गुरु बनाने की बहुत जल्दी भी न कीजिये।

पानी पीना छानके और गुरु करना जान के। गुरु को ही अगर परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ होगा तो शिष्य को परमात्मा के दर्शन नहीं करा सकेंगे। कलियुग में कोई संत नहीं मिलता तो शंकराचार्यजी अथवा महाप्रभुजी को सद्गुरु मानकर कर मन से सेवा कीजिये।

शुकदेवजी सावधान करते हैं कि नरसिंह स्वामी की गोद में प्रह्लादजी विराजमान हैं। प्रह्लादजी अब नरसिंह स्वामी की स्तुति कर रहे हैं। आपको जब समय मिलता है, तब भगवान् की स्तुति करिए। संसार की निंदा-स्तुति करने वालों का और सुनने वालों का मन बिगड़ता है। एक की बहुत प्रशंसा और एक की निंदा से दूसरे की निंदा और अन्य की प्रशंसा हो जाती है। प्रशंसा सुनने पर मानव का अभिमान बहुत बढ़ जाता है। प्रत्येक जीवन में थोड़ा भी अभिमान होता है तो प्रशंसा सुनने पर वह बढ़ जाता है। स्तुति परमात्मा की कीजिए। आपको जब भी समय मिलता

है तब परमात्मा की स्तुति कीजिए। परमात्मा उदार हैं, अतिशय प्रेम करते हैं। भगवद् स्वरूप का वर्णन करिये आपका मन शुद्ध होगा। परमात्मा की स्तुति करने से अभिमान मर जाता है। दैन्य भाव आता है। स्तुति सुनने से परमात्मा को भी दया आ जाती है। तीन समयों पर स्तुति करने की जरूरत है–सुख के समय पर। जब आपको सुख मिलता है, भगवान् की स्तुति कीजिए। सुख में प्रभु को साथ में रखिये, आपके घर कभी दुःख नहीं आयगा। भगवान् से कहिये कि मैं लायक नहीं हूँ फिर भी आपने मुझे बहुत धन भी दिया है। सुख में प्रभु का उपकार मानिये।

आपके जीवन में कोई दुःख का प्रसंग आ जाय तो भी भगवान् का उपकार मानिये। दुःख में भगवान् की स्तुति कीजिये। अपने मन को बार-बार समझाइए कि प्रभु ने मुझे सुधारने के लिए यह सजा दी है। हमारे जैसा साधारण मानव बहुत पुस्तकों को पढ़ने से नहीं सुधरता है। बहुत पुस्तकों के पढ़ने से अक्षर-ज्ञान बढ़ता है, शब्द-ज्ञान बढ़ता है। साधारण मानव मार पड़ने पर सुधरता है। मन को समझाइए कि प्रभु ने सुधारने के लिये सजा दी है। प्रभु ने मेरे पाप के प्रमाण में बहुत कम सजा दी है। मानव सजा करता है, तब बहुत निष्ठुर होकर करता हैं पर परमात्मा सजा करते हैं, तब बहुत दया रखते हैं। मानव के पाप पहाड़ जितने हों, मानव को पाप के प्रमाण में परमात्मा सजा दें तो कदाचित मानव को खाना भी न मिलता। मानव को मालूम नहीं है कि मैंने कितना पाप किया है। लोग पुण्य का हिसाब रखते हैं पर पाप का हिसाब नहीं रखते हैं, आपके हाथ से कोई अच्छा कार्य हो तो उसे भूल जाइए पर पाप को भूलिए नहीं। सत्कर्म श्रीकृष्ण को समर्पित कीजिये। 'अनेन कर्मणा परमेश्वर प्रीयताम न मम।' प्रत्येक सत्कर्म के बाद ऐसा संकल्प करना होता है। किसी को कम दिया हो तो मानव याद रखता है। आज तक जीभ के स्वाद के लिए और मौज में कितना खर्च किया, इसका हिसाब मनुष्य नहीं रखता है। मानव पाप को भूल जाता है, पुण्य को याद रखता है। मानव बहुत पाप करता है। महाभारत में वर्णन है कि धर्मराज एक बार थोड़ा सा झूठ बोले और इससे उन्हें नरक के दर्शन करने पड़े। हम तो आज तक कितने झूठ बोले हैं, क्या इसका हिसाब रखा है? पाप याद रखने से अभिमान नहीं बढ़ता है। पाप का स्मरण रखिये। पाप को साधारण न मानिये।

दुःख में भगवान् का उपकार मानिये कि मैंने बहुत पाप किया है, पर प्रभु ने कृपा करके मुझे थोड़ी ही सजा दी है। प्राय: अति सुख में–सम्पत्ति में परमात्मा किसी को नहीं मिले हैं। अति दुःख में–विपत्ति में ही परमात्मा के दर्शन हुए हैं। सुख में–जो साथ देता है, वह है जीव परन्तु दुःख में–विपत्ति में जो साथ देता है, वह तो ईश्वर ही है। जिस जीव को भगवान् सजा देते हैं, गुप्त रूप से उसकी देखभाल भी करते हैं। जीव भले ही दुःख में भगवान् को भूल जाय, भगवान्

उसे नहीं भूलते हैं। जिस मानव को प्रभु सजा देते हैं उसी के साथ प्रभु रहते भी हैं। आपके जीवन में कभी कोई दुःख का प्रसंग आ जाय तो घबराइये नहीं। दुःख पाप के विनाश के लिए ही आया है। दुःख आपको सावधान करने के लिये आया है। दुःख में मानव समझदार बनता है। प्रायः दुःख के बिना बुद्धिमानी नहीं आती है। दुःख में भगवान् का उपकार मानिये। दुःख में मन को शाँत रखकर प्रभु का स्मरण करिये। दुःख में प्रभु को स्मरण करने वाले के मन पर, भगवान् की स्तुति करने वाले पर दुःख का असर नहीं होता है।

शरीर के जिस हिस्से का आपरेशन होता है, उस पर डाक्टर दवा लगाते हैं। उस हिस्से को वे अचेतन करते हैं। फिर आपरेशन करते हैं। शस्त्र क्रिया करते हैं, उसे काटते हैं। मालूम ही नहीं पड़ता कि कोई हिस्सा कट रहा है। एक दवाई की जब ऐसी शक्ति है कि उससे अंग अचेतन हो जाता है और दुःख का पता नहीं लगता, तो परमात्मा की स्तुति से दुःख का असर कम लगने लगे तो क्या आश्चर्य? दुःख में भगवान् की स्तुति कीजिए, परमात्मा का उपकार मानिये। अति दुःख में परमात्मा को साथ रखिये। दुःख का असर आपके मन पर नहीं होगा। सुख में भक्ति करने वाला दुःखी नहीं होता है। दुःख में भगवान् की स्तुति करने वाले के मन पर दुःख का असर नहीं होता हैं–

सुखावसाने इदवमेव सारं, दुःखावसाने इदमेव ज्ञेयम्।
देहावसाने इदमेव जाप्यम्, गोविंद दामोदर माधवेति॥

देहावसान पर भी प्रभु की स्तुति कीजिए। दिन में तीन बार प्रभु की स्तुति करिये। भगवान् की स्तुति संस्कृत भाषा में ही करनी चाहिए– ऐसा नहीं है। भगवान् को सभी भाषाओं का ज्ञान है। अपनी भाषा में भगवान् की स्तुति कीजिए। अपने हृदय के भाव प्रकट कीजिये। भगवान् का वर्णन कीजिए कि आप अति उदार हैं, मुझे सुधारने के लिए थोड़ी सजा दी। आपके अनन्त उपकार हैं।

३५–प्रह्लाद-स्तुति

आज प्रह्लाद नरसिंह भगवान् की गोद में विराजमान हैं और तब परमात्मा की स्तुति करते हैं–

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः।
नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः॥
मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौजस्तेजः प्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय॥

(७-९-८/९)

ब्रह्मादिक देव, विश्वामित्रादिक ऋषि हजारों वर्षों से तपश्चर्या करते हैं, पर उन्हें परमात्मा के दर्शन नहीं होते हैं। आज प्रभु ने बहुत कृपा की मुझे गोद में लिया। परमात्मा मेरे सिर पर अपना वरद् हस्त रखते हैं। आज मैं निर्भय हुआ हूँ। अब मुझे कोई चिंता नहीं है। आज मैं कृतार्थ हूँ। मुझे विश्वास हो गया कि ब्राह्मण के घर जन्म लेना पड़े, ऐसा नहीं है। यज्ञादिक सत्कर्म का अधिकार सर्व को नहीं है पर भक्ति का अधिकार सभी को है। इससे सभी वर्ग-जातियों में भक्त हुए हैं। भगवान् को प्रसन्न करने के लिए अधिक धन कमाने की भी जरूरत नहीं है। क्या अधिक धन कमाने और मन्दिर में बहुत सेवा करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं? भक्ति में धन गौण है। कभी-कभी गरीब लोगों को दुःख होता है कि धनवान बहुत दान-पुण्य करते हैं पर हमसे नहीं हो पाता है। कोई धनवान एक सौ रुपये दे और कोई गरीब एक पैसा दे, भगवान् का मन दोनों के लिये समान है। धन से परमात्मा को प्रसन्न नहीं किया जाता है। प्राचीन समय में जितने भी भक्त हुए प्रायः सभी गरीब थे। भगवान् बहुत सम्पत्ति या बहुत शिक्षण से प्रसन्न नहीं होते हैं। बहुत पढ़ाई की, तो क्या भगवान् प्रसन्न होते हैं? बहुत पढ़े-लिखे से भगवान् दूर रहते हैं। बहुत पढ़े-लिखे प्रभु को भी प्रपंच से ठगते हैं। वे बोलने और लिखने में बहुत प्रवीण होते हैं। उन्हें एक शब्द के अनेक अर्थ आते हैं। वे कहते हैं कि उस समय मैंने ऐसा कहा था पर इसका अर्थ भिन्न था। बहुत पढ़े-लिखे पर विश्वास न रखिए। सब ऐसे नहीं होते हैं, पर अधिकतर ऐसे ही होते हैं। बहुत पढ़ा-लिखा भगवान् को प्रिय नहीं है। क्योंकि उसमें बहुत दोष आ जाते हैं। अधिक पढ़ा-लिखा तब ही नमस्कार करता है, जब चमत्कार दिखाई पड़ते हैं, चमत्कार के बिना वे नमस्कार नहीं करते हैं। महाराज! कुछ चमत्कार दिखा दें तो मैं उनको मानूँ! चमत्कार के बाद नमस्कार अभिमान को प्रकट करता है। चमत्कार के बिना नमस्कार मानवता है। अनपढ़ सभी को नमस्कार करते हैं। वे प्रभु को प्रिय हैं। वे ऐसा समझ रहे हैं कि मैं अनपढ़ हूँ, मैं मूर्ख हूँ। मुझे कुछ भी आता नहीं है। अनपढ़ चमत्कार के बिना नमस्कार करते हैं।

चमत्कार करने वाला सन्त नहीं है। संत कभी चमत्कार नहीं करते। चमत्कार तो जादूगर करते हैं। जिसको धन कमाना है, जिसकी ऐसी इच्छा है कि मेरी कीर्ति बढ़ जाय, मुझे प्रसिद्धि मिले, उसके पुण्य का नाश होता है। उसका अंतकाल बिगड़ता है। संतों के चरित्र में चमत्कार दीख पड़ते हैं, पर इसे भगवान् करते हैं, संत की ऐसी इच्छा नहीं होती है कि मुझे कोई अधिक मान दें, धन दें–

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभपादारविंद विमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः।।

(७-९-१०)

बहुत पढ़े-लिखे तर्क-वितर्क करते हैं, चर्चा करते हैं। बहुत पढ़े-लिखों में अंधश्रद्धा नहीं होती है। वे शांति से सेवा-पूजा नहीं करते हैं। एक गाँव में हमें एक प्रोफेसर साहब मिले। वे कहते थे कि महाराज! आप कथा तो अच्छी करते हैं, पर आप कथा में कहते हैं कि ठाकुरजी को अर्पण किये बिना पानी भी न पीना, पर भगवान् कहीं पानी पीते हैं? भगवान् खाते भी नहीं हैं, भगवान् पीते भी नहीं हैं। यह अर्पण करने की बात और भोग लगाने की बात मैं नहीं मानता हूँ। यह तो नाटक है। भगवान् को भोग लगाने की जरूरत नहीं है। भगवान् आनन्दरूप हैं, निराकार हैं, अगर भोग लगाने के बाद भगवान् खाते हैं तो खाना कम होना चाहिए, पर खाना जरा भी कम नहीं होता है। इससे मैं मानता हूँ कि भगवान् खाते ही नहीं हैं। आपको सिद्ध करना पड़ेगा कि भगवान् खाते हैं।

व्यासनारायणजी ने इस सभी शंकाओं का निराकरण भागवत में किया है। फूल की चार-पाँच बार सुगन्ध लीजिए, इससे फूल हलका नहीं हो जाता। परमात्मा इसी तरह आपकी भोग लगाई हुई सामग्री से अपनी दिव्य शक्ति द्वारा रस खींच लेते हैं। परमात्मा रस-स्वरूप हैं, रसौ वै सः-साधारण प्रेम में ठाकुरजी रस रूप में भोजन ग्रहण करते हैं। विशिष्ट प्रेम में परमात्मा प्रत्यक्ष भोजन लेते हैं। शबरी के बेर रामजी ने प्रत्यक्ष खाये थे।

अंध श्रद्धा रखकर जब तक भक्ति नहीं की जाती, भक्ति नहीं होती है। प्रारम्भ में अंध श्रद्धा रखनी ही पड़ेगी। बाद में बुद्धि से अनुभव होता है। बहुत तर्क-वितर्क न कीजिये। श्रद्धा रखकर भक्ति कीजिए। प्रेम से परमात्मा की सेवा कीजिए। सेवा और पूजा में अंतर है। जहाँ मंत्राधीन देव हैं, वहाँ पूजा है, जहाँ प्रेमाधीन परमात्मा हैं, वहाँ सेवा है। सेवा में प्रेम प्रमुख है, मंत्र गौण है। पूजा में मंत्र प्रमुख है, प्रेम गौण है। ब्राह्मण परमात्मा की पूजा करते हैं। वैष्णव परमात्मा की सेवा करते हैं। ब्राह्मण जो मंत्र बोलता है वही मंत्र का अधिष्ठाता देव उस मंत्र के अधीन होता है। पूजा में ब्राह्मण प्रभु को भोजन करवाते हैं-

प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा।
उदानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा॥

जैसे मन्त्र पूर्ण हुआ, ठाकुरजी को भोजन पूर्ण करना पड़ता है। ब्राह्मण तो तुरन्त ठाकुरजी को आज्ञा करते हैं-'हस्त प्रक्षालनं समर्पयामि।' अब हाथ धो डालिये। एक मिनट में वे प्रभु के हाथ धुला लेते हैं। भगवान् की अभी भोजन की इच्छा है तो भी ब्राह्मण के वचन को मान देते हैं, खाना बन्द करके हाथ धो डालते हैं।

आप खाना खाने बैठे हैं। आपके समक्ष थाल रखकर 'प्राणाय स्वाहा' मंत्र कह कर और फिर तुरन्त थाल उठाकर, एकदम कोई चला जाय तो आपकी दशा कैसी होगी? फोटो लेने योग्य

चेहरा हो जायगा! आप भोज करते हैं, तब दस-पन्द्रह मिनट तो लगते ही हैं। ठाकुरजी भी धीरे-धीरे भोजन करते हैं।

अपने शरीर से आप जैसा प्रेम करते हैं, उससे भी भगवद्-स्वरूप में हजार गुना प्रेम रखिये। यथा देहे तथा देवे यथा देवे तथा गुरो। भगवान् बहुत सुकोमल हैं। लोग सेवा-पूजा करते हैं, पर बहुत प्रेम से नहीं करते हैं। ठाकुरजी को पंचपात्र में पधराते हैं और कोई मित्र अगर मिलने आ जाय तो पन्द्रह-बीस मिनट बातें करते रहते हैं। ठाकुरजी बेचारे वहीं बैठे रहते हैं! सुबह-सुबह आपको अगर कोई तालाब में आधा घंटा बैठाकर रखे तो आपकी दशा क्या होगी? अरे, ऐसा करने से प्रभु को परिश्रम पड़ता है। सेवा इस तरह कीजिए कि भगवान् आनन्द से विराजमान रहें। आपका घर छोड़कर अन्य किसी स्थान पर जाने का उनका मन ही न हो। सेवा प्रेम से कीजिये, भावपूर्वक करिये। प्रत्येक जीव का धर्म है परमात्मा की सेवा करना। अनेक बार ऐसा होता है कि पत्नी घर में सेवा करती है और पति सन्तोष मानते हैं कि ये सब कुछ करती है। अरे,ये सब करती है, इससे आपको क्या मिलने वाला है? पत्नी भोजन करे तो पति को तृप्ति नहीं होती है। पत्नी सेवा करे तो इसका फल पति को नहीं मिलता है।

आजकल लोग पैसे अलग-अलग रखते हैं। इससे इन्कम टैक्स कम देना पड़ता है। घर में ठाकुरजी तो सभी के एक ही होते हैं। अपने प्रभु को अलग रखिये। यह मेरे ठाकुरजी हैं, इनकी सेवा के बिना मुझे पानी भी पीने की इच्छा नहीं होती है। मेरे प्रभु की सेवा कोई दूसरा करे यह मुझे पसन्द नहीं है। अपने प्रभु की सेवा मैं खुद ही करूँगा। आपके ठाकुरजी की पूजा कोई दूसरा करे और आपको खाना भावे तो समझना कि आपकी भक्ति झूठी है। आपके ठाकुरजी की सेवा-पूजा कोई दूसरा करता है तो आपको कैसे पसन्द आता है? किसी मानव में ममता रखना बहुत अच्छा नहीं है, भगवान् में ममता रखनी चाहिए। भगवान् मेरे हैं—ऐसा समझने वाला ही भक्ति कर सकता है। स्त्री मेरी है, और पुरुष मेरा है—ऐसा समझने वाला भक्ति कर सकता होगा?

मृत्यु की शय्या पर पड़े-पड़े सभी को बुद्धिमानी आती है। अब मेरा कोई नहीं है, अब मुझे अकेले ही जाना है। एक भगवान् ही मेरे हैं। सभी काल में ममता भगवान् में ही रखिये। सेवा आप स्वयं करिये। ठाकुरजी की सेवा कोई और करता है तो काम नहीं चल सकता—

नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते।
यद् यज्जनो भगवते बिदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः॥

(७-९-११)

परमात्मा आनन्द-रूप हैं। उन्हें किसी चीज की इच्छा नहीं है। धरती को भूख नहीं लगती है, उसकी इच्छा नहीं है कि कोई मुझे एक दाना भी दे, पर धरती को कोई चार दाने भी देता है तो धरती उसे चार हजार गुना करके देती है। प्रेम से भगवान् को जो अर्पण करेंगे, भगवान् उसको स्वीकार करेंगे। परमात्मा के किसी भी स्वरूप को इष्टदेव मानकर प्रेम से भक्ति कीजिये, सेवा कीजिये। जिसका मन मूर्ति में स्थिर है, उसका मन ही स्थिर होता है। मूर्ति में मन स्थिर नहीं होता, तब तक मन शुद्ध नहीं होता और तब तक व्यापक परमात्मा का अनुभव भी नहीं होता है। प्रभु ने सम्पत्ति दी है तो प्रभु के लिए सिंहासन बनवाइए। प्रभु की भावपूर्वक सेवा कीजिए। सब कुछ भगवान् को अर्पण करके ही लेना चाहिए। आपका कल्याण होगा। घर के स्वामी तो श्रीकृष्ण हैं। घर में स्वामी बनकर न रहना, सेवक बनकर रहना। मानव तो कृतघ्नी है, कपट करता है। परमात्मा उदार हैं। भावपूर्वक उनकी सेवा करेंगे तो प्रभु उसे कभी नहीं भूलेंगे। थोड़ा करना पर प्रेम से करना, तो उसे प्रभु भूलेंगे नहीं, वे प्रसन्न होंगे। प्रभु ने कृपा करके सब दिया है। प्रभु का सब कुछ है और प्रभु को ही अर्पण करना है।

सेवा में बैठने से पहिले दस-पंद्रह मिनट आँखें बंद करके ध्यान कीजिए। जिसे याद आता है कि मैं पति हूँ, पिता हूँ, पुत्र हूँ, भाई हूँ—उसका ब्रह्म-संबंध नहीं होता है। ब्रह्म-संबंध करना है तो संसार के संबंध छोड़ने पड़ेंगे।

ध्यान के बिना सेवा-पूजा नहीं हो सकती है। ध्यान में ऐसी भावना रखिये कि बैकुण्ठ से लक्ष्मी नारायण मेरे घर पधारें। आप जिस स्वरूप की सेवा करते हैं, उस स्वरूप में भगवान् का प्रवेश होता है, ऐसी भावना रखिये। लोहे की शलाका अग्नि में डालने के बाद वह लोहा नहीं रहता, वरन् अग्नि हो जाता है। उसे कोई लोहा समझकर छूने जाता है तो क्या होता है? अग्नि की तरह वह उससे जल जायगा। अब वह लोहा नहीं है, अग्नि है। बाजार में दुकान में जब मूर्ति होती है, तब मूर्ति कही जाती है, परन्तु वेद-विधि से प्राण-प्रतिष्ठा के बाद वह मूर्ति नहीं है, वह साक्षात् प्रभु का स्वरूप है। पत्थर की मूर्ति हँसती नहीं है पर अगर आप प्रेम से सेवा करेंगे तो ठाकुरजी धीरे-धीरे हँसने लगेंगे, प्रसन्न होंगे। वैष्णव मूर्ति-पूजा नहीं करते, वे प्रत्यक्ष परमात्मा के स्वरूप की सेवा करते हैं। ऐसी भावना रखिये कि ये भगवान् हैं।

जो एकाग्र होकर ध्यान करता है, प्रेम से ध्यान करता है उसका संसार-संबंध छूट जाता है। हमारे शास्त्रों में ऐसा वर्णन है कि भगवान् का ध्यान करने से पहिले भगवान् के धाम का ध्यान कीजिए। आप रामजी का ध्यान कर रहे हैं, तो ऐसा ध्यान कीजिए कि अभी मैं श्रीधाम अयोध्या में बैठा हूँ। मैंने श्री सरयू-गंगा में स्नान किया। कनक भवन में श्री सीता रामजी विराजमान हैं। प्रभु

के धाम का ध्यान करेंगे तो आप अपने गाँव को, घर को भूल जायेंगे। श्रीकृष्ण भगवान् का ध्यान करते हैं तो ऐसा ध्यान कीजिए कि अभी मैं वृन्दावन में हूँ। आपके प्रभु जिस धाम में विराजमान हैं, उस धाम का चिंतन करना है। शंकर भगवान् की सेवा करते हैं तो ध्यान कीजिये की अभी मैं काशी में हूँ। मैंने गंगाजी में स्नान किया है। गंगाजी के जल का घड़ा भरकर मैं काशी-विश्वनाथ के मंदिर में गया हूँ।

भावना में बहुत शक्ति है। सेवा में क्रिया का बहुत महत्व नहीं है, भावना से ही भक्ति बढ़ती है। परमात्मा जहाँ विराजमान हैं, उस धाम का ध्यान कीजिए, बाद में भगवद्-स्वरूप का ध्यान कीजिए। भावपूर्वक प्रेम से सेवा कीजिए। ये साक्षात् भावना कीजिये। भगवान् हैं, ये भोजन कर रहे हैं। प्रेम से जो कुछ भी अर्पण करेंगे, भगवान् उसको स्वीकार करेंगे।

कई लोगों को तो ठाकुरजी के समक्ष बैठना भी नहीं आता है। कई व्यक्ति ठाकुरजी के समक्ष पाँव-पर-पाँव चढ़ाकर बैठते हैं, मंदिर में, कथा में, सेवा में, भगवान् के समक्ष पैर पर पैर चढ़ाकर बैठने से पाप लगता है। इस तरह बैठना पद्मासन कहलाता है। पद्मासन वर्ज्य है। आपके घर कोई बड़े साहब आते हैं, तब आप जोर से नहीं बोलते हैं। कई व्यक्ति ठाकुरजी के समक्ष जोर-जोर से बोलते हैं। ऐसों को पाप लगता है। प्रभु के समक्ष उवासियाँ बहुत आती हैं। यह भी अच्छा नहीं है। प्रेम से सेवा कीजिए तो उबासी नहीं आयगी। ठाकुरजी की सेवा में बैठने के बाद अपानवायु न छूटे इसका ध्यान रखना चाहिए। रात्रि में मटर-चना बहुत खाने पर सुबह अपानवायु हो जाती है। वायु के बढ़ने से तन-मन दोनों बिगड़ते हैं। सादा भोजन कीजिए।

भावना कीजिये कि प्रभु मेरे स्वामी हैं। सेवा में दास्य-भाव हृदय को त्वरित ही द्रवित कर देता है। मानिये कि ठाकुरजी मालिक हैं, मैं उनका तुच्छ सेवक हूँ। अपने स्वामी की कृपा से मैं सुखी हूँ। मैं योग्य नहीं हूँ पर प्रभु ने कृपा करके मुझे सब कुछ दिया है। दास्य भाव दैन्य लाता है।

कई लोग सखा भाव या वात्सल्य भाव से सेवा करते हैं। यह भी अच्छा है पर दास्य भाव मन को तुरन्त शुद्ध करता है। दास्यभाव से सेवा कीजिए। धन के लोभ से जैसे लोग श्रीमान्तों की खुशामद करते हैं, उसी तरह एकान्त में प्रभु की खुशामद कीजिए। भगवान् को अनेक बार कहिये कि नाथ! आप भोजन कीजिए। आपके घर जब कोई बड़ा साहब आता है तब आप मनाते हैं कि साहब! थोड़ा तो खाना ही पड़ेगा। साहब के आगे चाय रखेंगे, तो साहब नहीं लेंगे। उनसे दो तीन बार कहना पड़ेगा। साहब अंधे नहीं हैं, उन्हें दीख पड़ता है कि चाय रखी है पर अभिमान में रहते हैं। सोचते हैं कि मुझसे कोई कहे तो बाद में चाय लूँ।

भगवान् तो सर्व से श्रेष्ठ हैं। परमात्मा को एक-दो बार नहीं अनेक बार कहना पड़ता है। लाला के पास कोई बैठे लाला को मनाये, लाला को बखान करे, तब कन्हैया थोड़ा-सा खाता है। लाला की ऐसी आदत है। मेरे पास बैठे, मेरा कीर्तन करे, मुझे समझाये, बाद में मैं खाऊँगा। आप लाला से प्रार्थना कीजिए। अनेक बार उसे मनाइए। कन्हैया सर्व से श्रेष्ठ है। बहुत मनाइए तो परमात्मा भोजन लेंगे।

नामदेव के चरित्र में कथा आती है– नामदेव महाराज जब पाँच वर्ष के थे, तब विट्ठलनाथजी की सेवा करते थे। नामदेव के घर विट्ठलजी की सेवा थी। पिताजी जब सेवा करते, तब बालक नामदेव पास में बैठकर देखते। एक बार ऐसा हुआ कि पिताजी को कहीं बाहर जाना पड़ा। उन्होंने बालक नामदेव को कहा–कल ठाकुरजी की सेवा तुम्हें करनी है। बालक ने पूछा–पिताजी। सेवा कैसे करनी है? पिताजी ने कहा–बेटा, घर में जो कुछ है उसके स्वामी ये विट्ठलनाथजी हैं। यह सब प्रभु ने हमें दिया है। मालिक की सेवा किये बिना खाना पाप है। बालक ने पूछा–पाप लग जाय तो ठाकुरजी मारते हैं, सजा करते हैं। बालक ने पूछा–पिताजी। आज तक मैंने ठाकुरजी की सेवा नहीं की है तो क्या ठाकुरजी मुझे मारेंगे? पिता ने कहा–ना बेटा, तुम्हें नहीं मारेंगे, वे बहुत उदार है। बहुत प्रेमपूर्ण हैं। जीव अपराध करता है, पर भगवान् भूल जाते हैं। बालक ने कहा– पिताजी,कल से मैं सेवा करूँगा पर सेवा किस तरह करनी है, सो मुझे बताइए। पिताजी ने कहा– बेटा! ठाकुरजी के जागने से पहले तुम्हारा स्नान हो जाना चाहिए। ठाकुरजी को शयन करवायी है, कल तुम ठाकुरजी को जगाना। प्रेम से ताली बजाकर 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे– पाँच-दस मिनट कीर्तन करते हुए, भगवान् को वंदन करते हुए, कहना कि नाथ, अब आप जागिये। मैंने सब तैयारी कर रखी है। आप सेवा में बैठने से पहिले सभी तैयारी करके रखिये, जिससे बीच में से उठने का प्रश्न ही उपस्थित न हो, बोलने का प्रसंग भी न आये। एक तुच्छ नौकर जिस प्रकार अपने मालिक को विवेक से जगाता है–ऐसा भाव रखिये। भावना रखिये कि भगवान् मेरे स्वामी हैं, भगवान् को जगाना है– तो इस प्रकार आपका प्रेम भी बढ़ेगा।

जब आपका हृदय प्रेम से पसीजेगा, आर्द्र होगा तब ठाकुरजी जागेंगे। बांद में उनको सिंहासन पर बैठाइए, आचमन करवाइए। जागने पर लाला को बहुत भूख लगती है। उसे माखन-मिसरी, गाय का दूध अर्पण कीजिए पर बेटा, हमारे घर माखन कहाँ है? बेटा, बंगलों में माखन अर्पण करना होता है। हमारे घर तो दही भी नहीं है। मेरा तो ऐसा नियम है कि शृंगार के बाद मैं ठाकुरजी को दूध का भोग अर्पण करता हूँ और उस समय हाथ जोड़कर कहता हूँ कि मंगला का और शृंगार का यह भोग है–ऐसा आप मान लीजिए। ये लोग बहुत गरीब हैं माखन कहाँ से लाते?

बाद में पुत्र को समझाते हैं कि बेटा ठाकुरजी के चरण पखारना। भगवान् के चरण तो कमल से भी कोमल होते हैं। मानव हाथ कठोर होते हैं। भगवान् को जरा भी श्रम न हो–इस तरह मांगलिक स्नान करवाना, भगवान् के श्रीअंग पर धीरे-धीरे हाथ लगाना। जब आप गर्म पानी से स्नान करते हैं, तब आप अपने ठाकुरजी को ठंडे जल से स्नान करवायें तो यह क्या उचित है? शंकर भगवान् की लीला तो सबसे अनोखी है।

शिवजी को तो हिमालय में भी गर्मी लगती है परन्तु बालकृष्णलाल की सेवा करने पर या श्रीरामजी की सेवा करने पर इतना ध्यान में रखिये कि वे अति कोमल हैं। सर्दी के दिनों में ठाकुरजी को गर्म पानी से स्नान करवाइए। बेटा! सेवा करते हुए भगवान् को वंदन करके कहना कि मेरी कोई गलती हो तो क्षमा कीजिये। मुझे कुछ आता नहीं है। मैं मूर्ख हूँ। मेरे दोष मुझे गुण–सदृश लगते हैं। मानव में बहुत दोष होते हैं पर मानव को अपने दोष गुण–सदृश दीखते हैं। प्रभु से अपने आप दीन भाव से कहिये कि मुझे कुछ आता नहीं है तो आपके प्रभु आपके हृदय में आयेंगे। जिस स्वरूप की आप सेवा करते हैं वह स्वरूप आपके हृदय में आयेगा और आपको प्रेरणा भी देगा और वे आपको समझायेंगे। ठाकुरजी जैसा समझायेंगे, ऐसा समझाना मानव को नहीं आता है। प्रभु को दया आती है। मीराबाई के चरित्र में आता है कि मीराबाई गोपाल के साथ बातें करती हैं। कई लोग ऐसा समझते हैं कि भगवान् कहाँ बोलते हैं। अरे, भगवान् नहीं बोलते तो आप भगवान् के साथ बोलिए। प्रभु को दया आयेगी और जीवन में कभी एक-दो शब्द बोलेंगे तो जीवन-नैया पार हो जायेगी। लाला की खुशामद कीजिए। लाला को मनाइये। भगवान् नहीं बोलते हैं तो भी आप भगवान् के साथ बोलिये। मीराबाई भगवान् के साथ बातें करती हैं। मीराबाई की सेवा में वीणा नाम की एक दासी रहती थी। दासी ने मीराबाई से पूछा कि आप किसके साथ बातें करती हैं? मीराबाई ने कहा–अपने गोपाल के साथ बातें करती हूँ। वीणा ने पूछा– वे तो बोलते नहीं हैं, आप क्यों बोलती हैं। मीरा ने बहुत सरस उत्तर दिया, कि वे मेरे साथ नहीं बोलते हैं। लायक नहीं हूँ न! इससे नहीं बोलते। मैं कहाँ लायक हूँ पर मुझे विश्वास है कि वे कभी तो बोलेंगे ही। दो वर्षों के बाद, बारह वर्षों के बाद भी बोलेंगे। मेरे जीवन के अंतिम दिन तो वे अवश्य बोलेंगे। वे मुझे लेने आयेंगे,ऐसी मेरी निष्ठा है। कभी किसी मानव से आशा न रखनी चाहिये, और कभी प्रभु की आशा न छोड़नी चाहिये। कोई मानव मुझे सुख देगा, ऐसी आशा न रखिये। जो मानव से आशा करता है, वह महादुःख पाता है। भगवान् की आशा न छोड़िये।

वैष्णव आशा रखकर प्रभु सेवा स्मरण में तन्मय बनते हैं। वे आशा रखते हैं कि प्रभु बारह वर्ष बाद बोलेंगे, जीवन की अंतिम साँस के समय बोलेंगे। भगवान् एक बार दो शब्द बोलें तो

जीवन सफल हो जाय। अपने भाव प्रभु के समक्ष रखिये। भगवान् से कहिये कि मैं पापी हूँ, मेरा मन बहुत पाप करता है। मैं समझ रहा हूँ, पर अपने मन को सम्भाल नहीं पा रहा हूँ। मेरा मन बहुत बिगड़ गया है। आप प्रभु से ऐसा कहिये। प्रभु प्रेम से सुनते हैं।

पिता नामदेव को समझा रहे हैं कि बेटा! ठाकुरजी के साथ बातें करना। कहना कि आपको परिश्रम तो नहीं हो रहा है? मेरी कोई गलती हो तो मुझ से कहिये। प्रेम से प्रभु को स्नान कराना। बाद में प्रेमपूर्वक प्रभु का शृंगार करना। आप स्वयं नये-नये वस्त्र पहनते हैं, प्रभु को भी नये वस्त्र पहिनाइये। प्रभु ने आपको दिया हो तो प्रभु-सेवा में भगवद् भक्ति में लक्ष्मी का सदुपयोग कीजिए। जहाँ लक्ष्मी का उपयोग नारायण की सेवा में होता है। वहीं लक्ष्मी अखंड विराजमान है। शृंगार करने से प्रभु को लाभ नहीं है पर आपको लाभ है। प्रभु का स्वरूप तो ऐसा सुन्दर है बिना शृंगार के भी शोभायमान है। शृंगार से क्या प्रभु की शोभा बढ़ती है? अरे! शृंगार ही प्रभु से शोभित है। प्रभु तो बिना शृंगार के भी शोभित हैं।

रामायण में वर्णन है कि रामचन्द्रजी जब वन में गये थे, तब उन्होंने जरा भी शृंगार नहीं किया था। मोटे-खुदरे वल्कल पहिने थे। मस्तक पर जटायें थीं, पर रामचन्द्रजी ऐसे सुन्दर दीख रहे थे कि शूर्पणखा ने रामचन्द्रजी को देखते ही मन में इच्छा की कि राम मेरे पति हो जायँ! मैं राम से विवाह करना चाहती हूँ। शूर्पणखा तो राक्षसी थी। राक्षस-राक्षसी भी रामचन्द्रजी के दर्शन करके मुग्ध हो जाते थे। रामचन्द्रजी ने कहीं शृंगार किया था? शृंगार न करने पर भी भगवान् सुन्दर ही हैं। भगवान् को शृंगार की जरूरत ही नहीं है। भगवान् को शृंगार करने से भगवान् की शोभा नहीं बढ़ती है पर जो प्रेम से भगवान् का शृंगार करता है, उसका मन शुद्ध होता है। छोटा सा स्वरूप हो तो उनके शृंगार करते समय आपको आँखें और मन दोनों उसमें केन्द्रित करना पड़ता है, तब ही शृंगार हो सकता है। जितने समय तक आप भगवान् का शृंगार करेंगें, उतने समय तक आँखें और मन भगवान् में स्थिर रहेंगे। आप प्रेम से शृंगार करिये, आपका मन शुद्ध होगा।

ठाकुरजी का स्नान और फिर ठाकुरजी का शृंगार करना होता है। ठाकुरजी को शृंगार करके उनको दर्पण दिखाना होता है। दर्पण में दर्शन करते हुए भगवान् होंठों में मंद-मंद हँसने लगें तो समझना कि शृंगार समुचित हुआ है। शृंगार के बाद अगर प्रभु मंद मुस्कराने न लगें तो समझना कि आज ठीक से सेवा नहीं हो सकी है। जो वैष्णव प्रेम से प्रभु की सेवा करते हैं, उन्हें ऐसा अनुभव होता है कि आज ठाकुरजी आनन्द में हैं, आज बहुत प्रसन्न दीख रहे हैं!

कभी जब मानव पाप करता है, तब ठाकुरजी की सेवा करते समय ठाकुरजी उलाहना देते हैं-मेरे होकर ऐसा पाप करते हो? तुम छल क्यों करते हो? तुम्हारी सब चिन्ता मुझे है। मैं तुम्हारे

घर में बैठा हूँ। मानव पाप करता है, तब प्रभु को पसन्द नहीं आता है। तब ठाकुरजी प्रसन्न नहीं दीखते हैं। ठाकुरजी प्रसन्न रहें, ऐसा व्यवहार रखिये। नियम से सेवा करने वाले और शृंगार करने वाले के मन में सेवा-भाव जाग उठता है। दर्शन में उसे आनन्द आता है। पिताजी नामदेव को समझा रहे हैं कि बेटा! ठाकुरजी का शृंगार करना। उन्हें गोपीचन्दन बहुत प्रिय है, तिलक करना। चरणों में तुलसी जी समर्पण करना। शृंगार के बाद प्रभु को भूख लगती है। शृंगार के बाद प्रभु को भूख लगती है। शृंगार के बाद दूध अर्पण करना। उन्हें हाथ जोड़कर अनेक बार मनाना पड़ता है कि यह दूध आप पीजिये। तुम अनेक बार मनाओगे, तब ठाकुरजी दूध को स्वीकार करेंगे।

बालक नामदेव ने पूछा कि क्या भगवान् दूध पीते हैं? पिता ने कहा– क्यों नहीं? प्रेम से अर्पण कने पर वे अवश्य स्वीकारते हैं। बालक के मन में यह बात स्थित हो गयी कि भगवान् दूध पीते हैं। पिताजी ने आगे कहा, कि बेटा बाद में ठाकुरजी को प्रसन्न करने के लिये थोड़ा कीर्तन करना और उनकी स्तुति करना। घर में रसोई तैयार हो तो थाल सजाकर प्रभु को समर्पित करना। हाथ जोड़कर प्रार्थना करना कि मैं आपको क्या अर्पण करूँ? आपकी ही वस्तु मैं आपको अर्पण करता हूँ। आप इसको ग्रहण कीजिये। मैं दर्शन करूँगा। भगवान् जब भोजन ग्रहण कर लें, तब जल अर्पण करना, आरती भी विधि से करना। आरती का अर्थ भी समझने जैसा है। परमात्मा के मिलन के लिये, प्रभु-दर्शन के लिये हृदय आर्त हो जाय, तब आरती हो सकती है। मैं अपने प्रभु से बिछुड़ गया हूँ। मैं इतना बड़ा हो गया, फिर भी अभी तक मुझे अपने प्रभु के दर्शन नहीं हुए हैं। मैं अध म हूँ, पापी हूँ। मेरा भगवान् से वियोग हुआ है। भगवान् के वियोग में जिसे दुःख है, जिसका हृदय आर्त बना है, वही समुचित रूप से आरती कर सकता है।

आरती का क्रम है कि तीन बार चरण पर से आरती उतारिये, तीन बार वक्षः-स्थल के ऊपर से और तीन बार मुखारविन्द के ऊपर से आरती उतारिये। सात बार सर्वांग की आरती उतारिये। धीरे-धीरे आरती उतारिये। आरती के समय भगवान् के एक-एक श्रीअंग के दर्शन कीजिये। भगवान् के चरण कैसे हैं? भगवान् की अँगुलियाँ कैसी हैं? भगवान् के हाथ कैसे हैं? ठाकुरजी का श्रीअंग आनन्दमय है। भगवान् के श्रीअंग में आनन्द के सिवाय कुछ नहीं है। बेटा! इस तरह की आरती के बाद भगवान् को साष्टांग वन्दन करना और फिर क्षमा माँगना–

मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे॥

मुझे कुछ भी आता नहीं है। आप मान लीजिये कि मैं शरण में आया हूँ। आपका ही हूँ। ऐसा कहकर भगवान् का वन्दन कीजिये। मैं आपका हूँ, ऐसा कहकर वंदन करने पर प्रभु को कभी दया आती है।

पिताजी नामदेव से कहते हैं कि बेटा! भावपूर्वक सेवा करना। पिता बाहर चले गये। नामदेव ने निश्चय किया कि कल मैं सेवा करूँगा। आज तक मैंने सेवा नहीं की है। कल मैं मुँह अँधेरे जाग जाऊँगा। बालक को स्वप्न में विट्ठलनाथजी का स्वरूप दिखाई दिया। सारा दिन वह सोचता है कि कल मुझे सेवा करनी है। इससे उसे स्वप्न में प्रभु का स्वरूप दीख पड़ा । बालक प्रातः काल जाग पड़ा। उसने स्नान किया। ठाकुरजी की सेवा में वह आ पहुँचा। ठाकुरजी को जगाया। आज प्रभु होठों में मन्द-मन्द हँसते हैं। प्रभु को बालक बहुत प्रिय हैं। आपका ज्ञान बहुत बढ़ जाय, प्रभु आपको बहुत सी सम्पत्ति दें, तो भी ठाकुरजी की सेवा में अज्ञान बालक से बन जाइये। ज्ञान अच्छा है, ज्ञान का अभिमान बहुत बुरा है। सेवा-पूजा के समय अभिमान त्यागकर बैठिये। मैं भगवान् का साधारण बालक हूँ—ऐसा भाव रखिये। जिसका हृदय बालक-सा है, प्रभु उसको जल्दी स्वीकार करते हैं।

आज सेवा में नामदेव हैं, इससे प्रभु बहुत प्रसन्न हैं। मेरा पुत्र मेरी सेवा में आया है। उसका कितना प्रेम है! आज वह प्रातः काल में ही जाग गया है! मेरे प्रति उसके मन में कैसा भाव है! बालक ठाकुरजी को जगाता है। ठाकुरजी के चरण धीरे-धीरे पखारता है। प्रभु के चरणों को हाथ से सहलाते-सहलाते उसकी आँखें भर आयीं कि मेरे भगवान् के चरण कितने कोमल हैं। परमात्मा का स्पर्श करने पर शरीर में रोमाञ्च हो जाता है। नामदेव सेवा करते-करते भगवान् से पूछते हैं कि आपको कुछ त्रास तो नहीं हो रहा है? मुझे कुछ नहीं आता है। मैं मूर्ख हूँ, पर आपकी शरण में आया हूँ। मैं आपका दास हूँ। ठाकुरजी नामदेव की बात सुनते हैं कि कैसा मीठा बोल रहा है। ऐसा तो पढ़ा-लिखा भी नहीं बोल पाता! ठाकुरजी उसकी बातें सुनकर प्रसन्न होते हैं। ठाकुरजी को स्नान कराया। सुन्दर पीताम्बर पहनाया,शृंगार किया। ये बहुत गरीब वैष्णव है। हीरा-मोती कहाँ से लाये? ठाकुरजी को गुँजामाला अर्पण की, तुलसी माला अर्पण की। शृंगार बहुत सादा है। पर आज परमात्मा बहुत प्रसन्न हैं। बालक के हृदय का प्रेम उस मूर्ति में प्रविष्ट हो जाता है। प्रेम में ऐसी शक्ति है। प्रेम जड़ को चेतन बना देता है।

नामदेव को दर्शन में आनंद आ गया है। उसको याद आ गया, कि पिताजी ने कहा है कि भगवान् का शृंगार हो जाता है, तब भगवान् को भूख लग आती है। बालक ने भगवान् को दूध अर्पण किया। हाथ जोड़े और कहा कि 'आप मेरे स्वामी हैं, इस घर में जो कुछ है आपका ही है। कृपा करके आपने सब कुछ हमें दिया है। मैं आपकी शरण आया हूँ। इस दूध को प्रेम से लाया हूँ। आप इस दूध को पीजिये। मैं आँखें बंद करके कीर्तन कर रहा हूँ। तब तक आपको दूध पी लेना है।'

बालक आँखें बंद करके 'हरे कृष्ण...हरे कृष्ण'–कीर्तन करने लगा। उसने सोचा कि मैं कीर्तन करता हूँ तब तक आप सारा दूध प्रभु पी जायेंगे। भगवान् उसका कीर्तन सुनते हैं कि कैसा मधुर बोल रहा है! मुझसे कहता है कि 'आप दूध पी जाइये।' मुझे दूध मिल गया है। मेरा नामदेव प्रातः काल जागा है। उसे भूख लगी होगी। वह बालक है। वह यह सब कुछ पी जाय तो अच्छा। प्रभु दूध नहीं पीते हैं। पाँच मिनट बाद नामदेव ने आँखें खोलीं। कटोरे में दूध दीख रहा है। ठाकुरजी ने दूध नहीं पिया है। नामदेव ने कहा–आप क्यों दूध नहीं पीते हैं! मुझसे पिताजी कह रहे थे कि आपको बहुत मनाना पड़ता है, फिर आप दूध पी लेते हैं। पिताजी घर में नहीं है, क्या इसलिए आप दूध नहीं पीते हैं? वे तो आठ-दस दिन के बाद आयेंगे। मेरी भूल हुई हो तो मुझे क्षमा कर दीजिये। मेरे पिताजी कह रहे थे कि आप सब-कुछ भूल जाते हैं। मैं अपराधी हूँ, पापी हूँ, पर आप इसे भूल जाइये। आज तक मैंने आपकी सेवा नहीं की है पर आप अति उदार हैं। नाथ, कृपा कीजिये। इतना दूध आप पी जाइये। आपको भूख लग आयी होगी। इस दूधमें शक्कर कम है, इससे आपको पसंद नहीं है क्या? बालक को ऐसा लगा कि ठाकुरजी सिर हिला रहे हैं। शक्कर कम लग रही है, ऐसा सोचकर बालक घर में गया और दूसरी शक्कर ले आया। उसे दूध में डालकर प्रभु के समक्ष रखा। फिर प्रभु को समझाने लगा कि अब मीठा लग रहा है कि नहीं। आपको भाता है न! ऐसा कहकर पुनः कहने लगा कि मैं कीर्तन करता हूँ, इतने में आप दूध पी जाइये।

बालक आँखें बन्द रखकर प्रेम से हरे कृष्ण-हरे कृष्ण कीर्तन करने लगा। उसकी ऐसी भावना है कि 'मैं आँखें बन्द रखकर कीर्तन करूँ तो भगवान दूध पी लेंगे। प्रभु बालक का प्रेम देखकर प्रसन्न हो गये। पाँच मिनट के बाद जब नामदेव ने आँखें खोलीं और देखा तो कटोरी में दूध वैसा ही पड़ा था। बालक प्रभु को मनाता है कि आज आपको क्या हुआ है? आज आप क्यों बोलते नहीं? कुछ लेते भी नहीं। पिताजी देते हैं, तब लेते हैं। आज मैं सेवा करने बैठा हूँ, तब नहीं लेते हैं? आज तक मैंने आपकी सेवा नहीं की है, इससे नाराज हो गये क्या? आप नाराज न होइए। आप मेरे स्वामी हैं, मैं आपका सेवक हूँ। आप नाराज होंगे तो मेरा क्या होगा? मैं कहाँ जाऊँगा? मेरी गलती हुई है, क्षमा माँगता हूँ। मैं सच,सच कह रहा हूँ कि आप भूखे रहेंगे तो घर के सभी लोग भूखे रहेंगे। कोई पानी भी नहीं पियेगा। आप भूखे रहेंगे तो पिताजी घर आने पर मुझे मारेंगे। मुझसे वे कहकर गये हैं कि बराबर प्रेम से सेवा करना, प्रभु को परिश्रम न हो, प्रभु भूखे न रहें। कैसा भी हूँ, मैं आपका हूँ। मुझे कोई मारे तो आपसे देखा नहीं जायेगा।

भगवान् को नामदेव की बातें सुनकर आनन्द आ रहा है। ज्ञान से प्रायः अभिमान आता है। शुद्ध भक्ति में अभिमान मरता है। भक्त दैन्य भाव से भगवान् से कहता है–

नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम्।
कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं तस्मिन्कथं तव गतिं विमृशामि दीनः।।

(७-९-३९)

भक्ति में दैन्य आता है। बालक सोच रहा है कि भगवान् मेरे हाथ से दूध नहीं ले रहे हैं। मैं अधम हूँ, पापी हूँ। बालक एक घंटे तक ठाकुरजी को मना रहा है। बाद में व्याकुल हुआ। बोला कि आप स्वामी हैं, मैं आपका दास हूँ। आप नाराज हैं तो मेरा जीवन वृथा है। अब मैं आपको अंतिम बार कह रहा हूँ कि अगर आप दूध नहीं लेंगे तो मैं सिर पटक कर मर जाऊँगा। मैं जीकर करूँ भी क्या और सचमुच बालक सिर पटकने लगा। अब परमात्मा से वह सहन नहीं हुआ। इसका कारण प्रेम है। निष्काम प्रेम परमात्मा को सकाम बनाता है। प्रभुने वह कटोरा उठाया है और एक हाथ नामदेव के मस्तक पर रखकर कहा–'मैं दूध पीता हूँ। नामदेव ने आँखें खोलकर देखा। भगवान् दूध पीने लगे। धीरे-धीरे भगवान् सब दूध पी जाने वाले थे। नामदेव ने याद दिलाया–अकेले न पी जाना। मेरे लिये प्रसाद रखना। मैं भूखा हूँ। पिताजी तो रोज मुझे प्रसाद देते थे। परमात्मा ने हँसकर नामदेव को दूध पिला दिया। सेवा, प्रेम से सफल होती है। शुद्ध भाव से, प्रेम से परमात्मा को मनाइये।

आप परमात्मा से जैसा प्रेम करेंगे, इससे हजार गुना प्रेम भगवान् आपके साथ करेंगे। वे अति उदार हैं। वे बहुत प्रेम करते हैं। प्रेम अन्योन्य है। प्रेम से, भावपूर्वक सेवा कीजिये। भगवान् के नाम जप करते हुए, भगवान् का स्मरण कीजिये। परमात्मा को प्रसन्न करने के लिये बहुत पढ़ने-लिखने की जरूरत नहीं है। बहुत धन कमाने की भी जरूरत नहीं है। जरूरत है प्रेम की–

तत् तेऽर्हत्तम नमः स्तुतिकर्मपूजाः कर्मस्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम्।
संसेवया त्वयि विनेति षडंगया किं भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत।।

(७-९-५०)

परमात्मा को प्रसन्न करने के लिये दो साधन हैं–सेवा और स्मरण। आनन्दमय परमात्मा आपका प्रेम देखकर बहुत प्रसन्न होंगे। आप प्रेम से जो समर्पित करेंगे, उसे अनन्त बनाकर आपको वे देंगे। प्रह्लादजी ने स्तुति तो बहुत बड़ी की है। यहाँ दो-चार श्लोकों का थोड़ा भावार्थ दिया है। प्रह्लादजी कहते हैं–

यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्।।

इन्द्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः।
ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना॥

(७-१०-७/८)

भगवन्! किसी भी तरह के सुख भोगने की इच्छा हो तो मन चंचल हो जाता है, शक्ति का विनाश होता है, पाप शुरू होता है। भगवद्-इच्छा से किसी तरह का सुख मिले तो प्रभु का प्रसाद मानकर परमात्मा को स्मरण करते-करते प्रभु को साथ रखकर भोग लो तो कोई हर्ज नहीं है पर बहुत सावधान रहना। सावधान रहिये कि आपका मन किसी सुख को भोगने का विचार न करने लग जाय। किसी भी तरह का लौकिक सुख भोगने का संकल्प मन करे तो शक्ति का नाश होता है, पाप का आरंभ होता है तथा मन बिगड़ता है। प्रह्लादजी भगवान् से कहते हैं कि आप ऐसी कृपा कीजिये कि कभी किसी तरह के सुख को भोगने की मुझे इच्छा न हो।

नरसिंह स्वामी ने आज्ञा की है कि प्रह्लाद! कुछ वर्षों तक तुम्हें राज्य करना है। बाद में मैं तुम्हें अपने धाम में ले जाऊँगा।' नरसिंह स्वामी की आज्ञा से प्रह्लाद ने हिरण्यकशिपु के शरीर का अग्नि-संस्कार किया। श्राद्धादिक विधि की गयी। बाद में ब्रह्माजी ने प्रह्लाद को सिंहासन पर बैठाकर राज्याभिषेक किया। प्रह्लाद राजा हुए। नरसिंह स्वामी बहुत प्रसन्न हुए। प्रह्लादजी नरसिंह स्वामी के चरणों में वंदन करके कहने लगे—अब मुझे कुछ माँगने की इच्छा हो रही है। आप ऐसी कृपा कीजिये कि मेरे पिताजी को सद्गति मिले, वे आपकी बहुत निन्दा करते थे, आपके लाड़ले भक्तों को त्रस्त करते थे, फिर भी मैं चाहता हूँ कि मेरे पिता की दुर्गति न हो।

प्रभु ने स्मित हास्य करके कहा—तुम्हारे जैसे भगवद्भक्त जिस वंश में प्रकट हुए हों, तो वे वंश के अनेक पुरुषों को तार देते हैं। तुम्हारी भक्ति से तुम्हारे पिता को मुक्ति मिली है। पिता पुत्र को धन का वारिस बनाते हैं, पुत्र की भक्ति के, पुत्र के सत्कर्म के वारिस पिता होते हैं। पुत्र प्रह्लाद जैसा हो तो माता-पिता तर जाते हैं। दुर्योधन जैसा पापी पुत्र हो तो माता-पिता की दुर्गति होती है। पुत्र प्राप्त करने पर माता-पिता की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। पुत्र के लिए बैंक में रुपये न रख सकें तो अपराध नहीं है, पर पुत्र को अच्छे संस्कार न दें तो अपराध है। पुत्र को प्रभु के मार्ग की ओर प्रेरित कीजिए। बाल्यावस्था में जब हृदय कोमल होता है तब संस्कार दीजियें। उसें सिखलाइए कि बेटा ठाकुरजी को अर्पण किये बिना खाने से पाप लगता है। कोमल हृदय में संस्कार तुरन्त दृढ़ होते हैं। जवानी में हृदय पत्थर के समान कठिन हो जाता है। उस समय उसे कितना ही समझाइए, वह मानता नहीं है। दुराचारी पुत्र माता-पिता की दुर्गति करते हैं।

एक वृक्ष पर एक कौआ रहता था। सायंकाल जब अँधेरा हुआ तब एक हँस-हँसिनी का जोड़ा घूमते हुए वहीं आ पहुँचा। उसने कौए से कहा कि अँधेरा हुआ है, हम यहाँ आज रात भर रहना चाहते हैं। कौए ने कहा कि अच्छा। हँस-हँसिनी वृक्ष पर रह गये। कौए की आँख बहुत बुरी होती है। आँख से जो पाप करते हैं वे दूसरे जन्म में कौआ होते हैं। हँसिनी को देखकर काग की नीयत बिगड़ गयी। सुबह जब हँस-हँसिनी जागे तब कौए ने हँसिनी को पकड़ कर रखा। हँस ने कहा कि आप यह क्या कह रहे हैं? कौए ने कहा--यह अब मेरी है। दोनों में झगड़ा हुआ। अदालत में केस चला। कौआ बड़ा ही चालाक था। उसने न्यायाधीश को रिश्वत दी, कहा कि कल अगर मेरे पक्ष में आप न्याय देंगे तो मैं आपको आपके मृत माता-पिता के पास ले जाऊँगा। काग को पितृ दूत मानते हैं, इससे मृत पितरों को वह देख सकता है। न्यायाधीश ललचा गये। उसने झूठा न्याय दिया कि यह हँसिनी हँस की नहीं, पर कौए की है। हँस बहुत दुःखी हुआ। न्यायाधीश ने कौए से कहा- मैंने तुम्हारी इच्छा के अनुसार न्याय दिया है अब मेरे माता-पिता मुझे दिखा दो। कौआ उसे कूड़े पर ले गया। वहाँ कई कीड़े पड़े थे। उनमें से एक को दिखाकर कहा- यह कीड़ा तुम्हारा पिता है। न्यायाधीश ने पूछा- क्यों मेरे पिता कीड़े हुए? कौए ने कहा- जिसका पुत्र न्यायासन पर बैठकर लोभ से झूठा न्याय देता है, उस पुत्र का पिता कीड़े के सिवाय क्या हो सकता है? तुम भी कीड़ा ही होने वाले हो। तुमने लोभ से झूठा न्याय दिया है। पुत्र अति पापी हो तो उसके पाप के कारण माता-पिता की दुर्गति होती है। प्रह्लाद से भगवद्भक्त पुत्र हों तो उनके माता-पिता को सद्गति प्राप्त होती है।

३६-अयं ब्रह्म

प्रह्लादजी की यह कथा राजसूय यज्ञ में नारदजी धर्मराज को सुनाते हैं। धर्मराज सिर पर हाथ रखकर उदास बैठे हैं। नारदजी को यह बात अच्छी न लगी। सन्त हृदय सरल होता है। नारदजी ने सरलता से पूछा- राजा, कथा में आनन्द नहीं आया? आज मेरी कुछ भूल हुई है क्या? धर्मराज ने कहा- नहीं, महाराज! आपकी कोई भूल नहीं है। आपने तो बहुत सुन्दर कथा सुनायी। मुझे कथा में तो आनन्द आया पर मैं तब से यह सोच रहा हूँ कि पाँच वर्ष के प्रह्लाद का प्रभु प्रेम कैसा! प्रभु में उनका कितना विश्वास! खम्भे में प्रभु बैठे हैं। उनके शब्द और वाणी को सत्य सिद्ध करने के लिये प्रभु प्रकट हुए। धन्य है पाँच वर्ष के प्रह्लाद को। मैं पचपन वर्ष का हुआ पर अभी एक बार भी मुझे प्रभु के दर्शन नहीं हुए। अन्तकाल में मेरी हालत क्या होगी? पाप करके कोई बहुत धन कमाता है। और बहुत सुख भोगता है। आज भले ही सुखभोग ले, पर अन्तकाल में कहाँ

जायेगा? मैंने भगवान् के लिए कुछ नहीं किया। जिस तरह कुत्ता रोटी के लिये भटकता है, उसी तरह मैं भी धन के लिए भटकता रहा। पशु को भूख लगती है, तब खाते हैं, मैंने जीभ को बहुत लाड़ करवाये। अपने जीवन के प्रति अब मुझे घृणा आती है। जो करना चाहिए, वह मैंने नहीं किया। मेरा जीवन वृथा व्यतीत हुआ–

शरीरं सुरूपं यथा वा कलत्रं यशश्चारुचिरं धनं मेरुतुल्यम्।
मनश्चेन्न लग्नं हरेरङ्घ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्?

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में द्वारिकानाथ स्वयं विराजमान थे, पर भगवान ऐसी लीला करते हैं कि वे ईश्वर हैं, ऐसा कोई जान नहीं पाता। वे स्वरूप छिपाकर रखते थे। धर्मराज से कहते– बड़े भाई, ऐसा यज्ञ आप ही कर सकते हैं आपके यज्ञ में लाखों महात्मा, साधु, गरीब भोजन लेते हैं। धन्य हैं आप। ऐसा यज्ञ किसी ने नहीं किया और भविष्य में कोई नहीं कर सकेगा। इस यज्ञ में ब्राह्मणों को भोजन करवाने का पुण्य आपको मिलेगा, पर दोना उठने का कार्य मैं कर रहा हूँ, इससे मुझे भी थोड़ा पुण्य मिलेगा।

श्रीकृष्ण तुच्छ से तुच्छ कार्य करते थे। श्रीकृष्ण सर्व से श्रेष्ठ हैं, पर उनको जरा भी अभिमान नहीं है। उन्हें अभिमान का स्पर्श नहीं होता है। भगवान् ऐसी लीला करते कि मैं तुम्हारे मामा का लड़का हूँ। धर्मराज ऐसा मान रहे थे कि हम मामा–बुआ के भाई–भाई है। श्रीकृष्ण परमात्मा हैं, ऐसा धर्मराज भूल गये। भगवान् को गुप्त रहना पसन्द है। प्रभु को प्रकट होना अच्छा नहीं लगता और मनुष्य को जाहिर हुए बिना चैन नहीं आता। थोड़ा–सा अच्छा कार्य करने पर अखबार में जाहिर करता है। दो–चार बार जाहिर करेंगे कि हम विष्णुयाग करने वाले हैं। दर्शन का लाभ लीजिए। अरे! तुम्हें कभी दर्शन का लाभ हुआ है? तुम्हें दर्शन हुए हैं? तुम लोगों को लाभ देने वाले हो! मानव थोड़ा सा सत्कर्म करके बहुत दिखाता है। ऐसा सुन्दर विश्व प्रभु ने बनाया है, पर प्रभु ने कभी नहीं अपना नाम लिखा है? आज कल लोग दो मंजिल का बंगला बनाते हैं तो भी अपना नाम लिखवाते हैं–'मगन निवास।' अरे मगन भाई की अंतिम यात्रा निकलेगी कि नहीं? फिर 'मगन निवास' कहीं होगा? आप बंगला बनवाते हैं तो अपने ठाकुरजी का नाम लिखवाइए–'श्रीराम निवास', 'श्रीकृष्ण निवास'। आप अपना नाम न लिखवाइए। ठाकुरजी की कृपा से यह हुआ। आजकल लोगों को नाम और रूप का बहुत मोह है। किसी–किसी की ऐसी बुरी आदत होती है कि जहाँ भी देखा अपना नाम लिख दिया। अरे प्रभु का नाम लिखिए। मानव का नाम मिथ्या है। कई व्यक्ति अपने हाथ पर नाम लिखवा कर रखते हैं, 'डाहीबेन'। क्या

डाहीबेन को कोई चुरा कर ले जाने वाला है? हाथ पर नाम लिखवाने की क्या जरूरत है। मानव प्रत्येक वस्तुपर नाम लिखता है कि यह मेरा है,यह मैंने बनाया है।

सत्कर्म का विज्ञापन न कीजिए। कस्तूरी खुली रखने से उड़ जाती है। पुण्य का विज्ञापन पुण्य का विनाश करता है। श्रीकृष्ण भगवान् ने अपना स्वरूप छिपाकर रखा था। धर्मराज ने जब कहा कि मुझे एक बार भी परमात्मा के दर्शन नहीं हुए हैं, तब नारदजी ने धर्मराज से कहा कि आप यह क्या कह रहे हैं। आपके यज्ञ में आये हुए कई ऋषि ऐसे हैं, जो कहीं जाते नहीं हैं। वे आपके यज्ञ में आये हैं। कई बिना निमन्त्रण के आये हैं। वे सभी मिष्टान्न खाने के लिए नहीं आये हैं। उन्हें दक्षिणा का भी लोभ नहीं है; फिर भी आपके यज्ञ में आये हैं। आपके यज्ञ में भगवान् के दर्शन होंगे, इसी लोभ से आये हैं। आपके घर में भगवान् विराजमान हैं। युधिष्ठिर को आश्चर्य हुआ कि महाराज, मेरे घर में भगवान् कहाँ हैं? घर में भगवान् विराजमान हों पर नारदजी जैसे सद्‌गुरु कृपा करके दृष्टि देते हैं, तब ही वे दीख पड़ते हैं। जब तक सद्‌गुरु दष्टि नहीं देते, तब तक परमात्मा के दर्शन नहीं हो सकते। नारदजी ने कहा कि अरे! सभा में ही विराजमान हैं, मानव-सदृश स्वरूप उन्होंने धारण किया है—

साक्षाद् गूढं परंब्रह्म मनुष्यलिंगम्

धर्मराज ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। श्रीकृष्ण की ओर दृष्टि की। श्रीकृष्ण की ओर दृष्टि तो गई। पर सोचा कि ये ही भगवान् होंगे? जो दोना उठाते हैं,वे प्रभु कैसे हो सकते हैं! श्री कृष्ण की लीला ऐसी विचित्र है कि बड़े-बड़े मोहग्रस्त हो जाते हैं। धर्मराज की भी ऐसी स्थिति हुई। वे होश खो बैठे।

नारदजी द्वारिकानाथ के समक्ष कथा कह रहे थे। प्रभु के दर्शन करते-करते बोलते थे। भगवान् को विश्वास हो गया कि यह नारद अब मेरा विज्ञापन कर देगा। प्रभु ने नारद जी को इशारा करके मना किया। नारदजी ने कहा कि प्रभु आपको प्रगट होना पसन्द नहीं है पर आपके स्वरूप को प्रकट किये बिना मेरी मुक्ति नहीं है। धर्मराज तो समझ ही नहीं रहे हैं।

सभा में किसी महान् पुरुष की उँगली से परख करवाना, उस महान् पुरुष का अनादर करना है। नारदजी बहुत विवेकसे बोल रहे थे। मर्यादा के कारण उँगली से पहिचान नहीं कराते थे पर जब धर्मराज ने पुनः पूछा कि भगवान् कहाँ हैं, तब नारदजी ने मर्यादा छोड़कर द्वारिकाधीश की ओर उँगली से संकेत करके कहा—

स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्य कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः।
प्रियः सुहृद् वः खलु मातुलेय आत्मार्हणीयो विधिकृद् गुरुश्च॥

(७-१५-७६)

श्रीकृष्ण ही परमात्मा हैं, वे ही लक्ष्मी के पति हैं। वे अनन्त कोटि ब्रह्मांडों के नायक हैं। हम श्रीकृष्ण के दर्शन करने इस यज्ञ में आये हैं। नारदजी ने यह बात सभा में प्रकट की, तब प्रभु को संकोच हुआ। धरती की ओर दृष्टि करके प्रभु ने मस्तक हिलाया कि यह अनुचित है। मैं भगवान् नहीं हूँ। धर्मराज को शंका हुई कि नारदजी कहते हैं कि 'श्रीकृष्ण परमात्मा हैं, पर ये मना कर रहे हैं। अयोग्य को प्रभु के दर्शन नहीं होते हैं और कभी हो जायँ तो उसे दर्शन में विश्वास नहीं आता है। धर्मराज ने कहा कि ये तो मना कर रहे हैं। नारदजी ने कहा कि भले ही मना करते हैं। यह तो उनकी बचपन की आदत है, उन्हें स्वरूप छिपाने की आदत बचपन से है।

यशोदा जी के आँगन में बड़े-बड़े साधु, संन्यासी-महात्मा आते थे। यशोदा मैया जब भिक्षा देने जाती तब साधु हाथ जोड़कर कहते– माता, मैं भिक्षा लेने नहीं आया हूँ। चालीस वर्षों से मैं साधु हूँ, ध्यान कर रहा हूँ। पर माता, मैं क्या कहूँ। अभी एक बार भी मुझे प्रभु के दर्शन नहीं हुए हैं। मेरे पाप भी बहुत हैं। मैंने सुना है कि आपकी गोद में परमात्मा खेल रहे हैं। माता मुझे बालकृष्णलाल के दर्शन करवाइए। उन्हें भिक्षा नहीं चाहिए। वे बालकृष्णलाल के दर्शन करना चाहते हैं।

यशोदा मैया भीतर जाती हैं और बालकृष्ण को समझा 'ती हैं। बेटा! बाहर महाराज आये हैं, चलो, मैं तुम्हें ले जाऊँ, वे तुम्हें आशीर्वाद देंगे। कन्हैया मना करता है कि मुझे आशीर्वाद नहीं लेने हैं, तुम्हें चाहिए तो तुम बाहर जाकर उन्हें चरण वंदन कर लो, साधु महाराज की दाढ़ी बहुत बड़ी है, मुझे डर लगता है।

प्रभु तो सब कुछ जानते हैं। वे अंतर्यामी हैं। साधु हुए तो क्या हुआ? अभी हृदय निर्मल नहीं हुआ है। मन में से विकार वासना अभी तक नहीं निकली है। इससे प्रभु दर्शन देना नहीं चाहते हैं। इससे वे बारह आना नहीं चाहते हैं।

साधु चार छह घण्टे बाहर बैठे रहते हैं, पानी भी नहीं पीते हैं, कहते हैं– माता लाला के दर्शन करने हैं, लाला के दर्शन करवाइए। यशोदा माता को दया आती है, बेचारे, चार-चार घण्टों से हमारे आँगन में बैठे हैं! पर कन्हैया कैसा नटखट है। हर रोज खेलने जाता है और आज आँगन में साधु बैठे हैं, इससे बाहर भी नहीं निकलता है।

यशोदा माता को दुःख होता है। आँगन में साधु भूखा बैठा है। यशोदा माता लाला को जबर्दस्ती पकड़ कर ले जाती हैं। पर कन्हैया ऐसा है कि दर्शन देनें की इच्छा न होने के कारण बाहर आकर माता की साड़ी में मुँह छिपाकर, साधु को पीठ मात्र दिखा देता है। पीठ के दर्शन कीजिए। हठ करने से कभी दर्शन होते हैं। अरे लायक बनने से दर्शन होते हैं।

जब जीव योग्यता नहीं रखता, तब परमात्मा स्वरूप छिपाते हैं। धर्मराज से नारदजी कहते हैं– इनकी बचपन से ऐसी आदत है। स्वरूप छिपाते हैं, अरे! यही परमात्मा हैं।

न यस्य सक्षाद्भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम्।

मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः प्रसीदतामेष सः सात्वतां पतिः॥ (७-१५-७७)

नारदजीने जब गम्भीरता से कहा तब युधिष्ठिर को विश्वास हो गया और उन्होंने द्वारिकाधीश की जय कहकर, प्रभु के चरणों में वंदन किया।

प्रह्लाद चरित्र की समाप्ति के बाद धर्मराज को श्रीकृष्ण–परमात्मा के दर्शन हुए, उसकी कथा है। बाद में विशेष धर्म की–वर्णाश्रम की कथा सुनाई है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, गृहस्थ वानप्रस्थी, संन्यासी महात्माओं के धर्म का संक्षेप में वर्णन करके सप्तम स्कन्ध परिपूर्ण किया गया है।

इति सप्तमः स्कन्धः समाप्तः

हरि ॐ तत्सत्

श्रीमन्नारायण नारायण नारायण
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण
लक्ष्मीनारायण नारायण नारायण
लक्ष्मीनारायण नारायण नारायण
ब्रदीनारायण नारायण नारायण
ब्रदीनारायण नारायण नारायण
प्रथम खण्ड समाप्त।

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

अष्टम स्कन्धः

३७. गजेन्द्र मोक्ष

स्वायम्भुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः।
यत्र विश्वसृजां सर्गो मनूनन्यान्वदस्व नः॥ (८-१-१)

परमात्मा श्रीकृष्ण अजन्मा हैं, अविनाशी हैं। अविनाशी अजन्मा परमात्मा का जन्म नहीं होता है, प्रभु का प्राकट्य होता है। प्रत्येक मन्वन्तर में भगवान् अवतार धारण करते हैं। अष्टम स्कन्ध में मन्वन्तर की कथा है। ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनु राज्य करते हैं। प्रत्येक मनु के राज्य में भगवान् का विशिष्ट अवतार अवश्य होता है। हमारे शास्त्रों में वर्णन है–हमारे बारह लाख और बत्तीस हजार वर्ष होते हैं तब कलियुग परिपूर्ण होता है। बारह लाख छियानवे हजार वर्ष पूर्ण पर त्रेता युग पूर्ण होता है। हमारे सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्ष पूर्ण होने पर सत्युग की समाप्ति होती है। इस तरह इन चार युगों की समाप्ति जब एक हजार बार होती है, तब ब्रह्माजी का एक दिन पूर्ण होता है।

इस तरह जब एक सौ वर्ष पूर्ण होते हैं, तब ब्रह्माजी का आयुष्य पूर्ण होता है। ब्रह्माजी के एक दिन में भगवान् के अनेक अवतार होते हैं। ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मन्वन्तर हैं। स्वायंभुव मन्वन्तर में भगवान् का यज्ञावतार कपिलावतार हुआ है। द्वितीय मन्वन्तर में भगवान् का विभु नामक अवतार हुआ है। तृतीय तामस मन्वन्तर में भगवान् का हरि नामक अवतार हुआ है। हरि अवतार में गजराज का प्रभु ने उद्धार किया। परीक्षित राजा ने प्रश्न पूछा; मेरी गजेन्द्र मोक्ष की कथा सुनने की इच्छा है।

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं–त्रिकूट चल पर्वत पर एक अतिशय बलवान हाथी रहता था। वह जंगल का राजा था। उसके मस्तक से मद झरता था। उस मद की गन्ध से बाघ-सिंह आदि पशु घबराते रहते थे। वह अनेक हथिनियों का स्वामी था। एक बार बहुत ही गर्मी पड़ रही थी। तब हाथिनियों के साथ अपने बच्चों को लेकर वह सरोवर में जल क्रीड़ा करने लगा। उस

सरोवर में रहने वाला मगर वहाँ आ पहुँचा और उसने हाथी का पैर पकड़ लिया। मगर की पकड़ से पैर छुड़ाने के अनेक यत्न करने पर भी हाथी को सफलता न मिली। वस्तुतः जल में मगर का बल बहुत बढ़ जाता है क्योंकि हाथी तो थलचर प्राणी है। हथिनियाँ और बच्चे हाथी को छुड़ाने के बहुत यत्न करने लगे, परन्तु छुड़ा न सके। बलशाली मगर हाथी का पैर छोड़ता ही न था। बहुत दिनों तक गजग्राह-युद्ध चला। मगर हाथी को खींचकर भीतर पानी की ओर ले जाने लगा।

हथिनियों को विश्वास हो गया कि अब यह डूबकर मर जायगा और जी नहीं सकेगा। सब हथिनियाँ उसे छोड़कर चलीं गयीं। हाथी अकेला रह गया। बड़े परिवार का स्वामी था, पर कोई उसके साथ नहीं रहा। तब उसके चित्त में व बुद्धि में ज्ञान का स्फुरण हुआ। वह सोचने लगा कि मेरा कोई नहीं है। हाथी पशु है, पर फिर भी वह हाय-हाय नहीं करता था। वह तो 'हरि-हरि' करने लगा। मृत्यु की शय्या पर मानव 'हाय-हाय' बहुत करता है।

शांति से थोड़ा विचार करेंगे तो ध्यान में आयेगा कि जगत में एक भी घर ऐसा नहीं है, जिस घर में गजेन्द्र-मोक्ष की कथा न होती हो। सभी के घर में कथा होती है। गजराज जीवात्मा है, वह संसार सरोवर में परिवार के साथ सुख भोग रहा है। मनुष्य जिस घर में सुख भोग रहा है, वहीं उसका काल तो बैठा ही है। मानव गाफिल है और काल सावधान है। काल उसके पैर को पकड़ता है। पैर की शक्ति क्षीण हो जाती है और जब पैर की शक्ति क्षीण हो जाय तब समझना चाहिए कि मृत्यु निकट है।

काल पैर को पकड़ लेता है। अन्तकाल में जो सावधान रहता है, उसका मरण सुधरता है तथा जो गाफिल रहता है, उसका मरण बिगड़ता है। जब काल पैर को पकड़ता है तब घर के लोग यत्न करते हैं, पर यत्न सफल नहीं होते हैं। काल के काल परमात्मा सुदर्शन चक्र लेकर आते हैं,तब ही काल-मंगर छोड़ता है। मगर काल का प्रतीक है। काल के काल भगवान् हैं। परमात्मा सुदर्शन-चक्र लेकर आयें तो ही बचा जा सकता है सर्व में श्रीकृष्ण-दर्शन ही सुदर्शन है। सुदर्शन-चक्र कालरूपी मगर को मार सकता है। काल जब पैर को पकड़ता है, तब घर के लोग प्रयत्न तो करेंगे, पर बहुत दिनों तक सेवा करनी पड़ेगी तो ऊब जायेंगे-सोचेंगे कि तीन वर्ष हुए, शय्या में पड़े हैं। अब प्रभु उनके सामने देखें तो अच्छा है। उनके सामने देखना-अर्थात् ये मर जायँ तो अच्छा है।

गजेन्द्र को ज्ञान हुआ। अगले जन्म में जिस महामन्त्र का जप कर रहा था, वही महामन्त्र इस जन्म में याद आ गया। अन्तकाल में अति दुःख आता है, तब जीव सब कुछ भूल जाता है। वह बहुत तड़पता है। किसीं मन्त्र के साथ ऐसा प्रेम कीजिए कि सुख में, दुःख में उसे हम भूल न जायँ। यह यदि आ जाय। साधारण दुःख में भी जीव ईश्वर को भूल जाता है, तब अन्तकाल

में क्या स्थिति होगी? अन्तकाल में ईश्वर को भूल न जायँ, इसलिए निरन्तर जप करने की आदत डालिए। गजराज को महामन्त्र याद आ गया। पूर्व जन्म में कितने जप किये थे, इसका उल्लेख भागवत् में नहीं है। शुकदेवजी महाराज इतना ही बोले हैं–

जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम्।

जिसका संस्कार अति दृढ़ हो जाता है, वही अन्त समय में याद आता है। परमात्मा के नाम के साथ ऐसा प्रेम करिये कि अन्त समय उन्हीं का नाम याद आ जाय! जगत् परमात्मा के अधीन हैं। परमात्मा नाम के अधीन हैं। गजेन्द्र स्तोत्र जपता है।

मादृक्प्रपन्नपशुपाश विमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते॥

(८-३-१७)

काल के काल परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ, मैं उनकी शरण हूँ। योगी-महात्मा जिनके मंगलमय स्वरूप को हृदय में स्थापित करके ध्यान करते हैं, मैं उन परमात्मा की शरण में हूँ। नाथ! ऐसी कृपा कीजिये। वहाँ मुझे ले चलिए, जहाँ कभी काल-मगर न आने पाये। जिस घर में काल आने वाला है, वहाँ कैसे शान्ति रह सकती है? जहाँ काम जाता है, वहाँ काल आता है। जहाँ काल की गति है, वहाँ भीति है। धीरे-धीरे संयम बढ़ाइए। निरन्तर भक्ति की आदत डालिए। काम का विनाश कर सकेंगे तो काल पर विजय पा सकेंगे। जहाँ निरन्तर भक्ति होती है, वहीं काल-मगर नहीं आ सकता है।

जीव जब आर्त भाव से प्रभु को पुकारता है, तब प्रभु आते हैं, दौड़ते हुए आते हैं। प्रभु के कान तक गजेन्द्र का आर्तनाद पहुँचा। भगवान् ने दौड़कर आते हुए सुदर्शन-चक्र से मगर को मार डाला। गजराज को उन्होंने सद्गति दी। इस गजेन्द्र मोक्ष का पाठ जो नित्य करते हैं, उनकी मृत्यु सुधरती है। भागवत में इस कथा के लिए तीन अध्याय हैं परन्तु प्रमुख श्लोक पैंतीस हैं। मगर हाथी के पैर पकड़ता है। हाथी परमात्मा की स्तुति करता है, भगवान् उसे छुड़ाते हैं, इतनी कथा तक पैंतीस श्लोक हैं। नित्य पैंतीस श्लोक का पाठ करने वाला व्यक्ति अपना मरण सुधारता है।

ठाकुरजी की सेवा करिए। भोग लगाइए। आरती करिये। भगवान् आनन्द में विराजमान हैं, उनके दर्शन करिये, और ऐसी भावना करिये कि आज मुझे काल मारने आया है। मेरा गला पकड़ रहा है। मैं व्याकुल हूँ। आर्त भाव से गजेन्द्र मोक्ष का पाठ कीजिये–

ये मां स्तुवन्त्यनेनांग प्रतिबुध्य निशात्यये।
तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां मतिम्॥ (८-४-२५)

गजेन्द्र मोक्ष का पाठ करने वाला कदाचित् अन्तकाल में प्रभु को भूल जाय, पर प्रभु उसे नहीं भूलते हैं। परमात्मा उसका स्मरण रखते हैं, उसका मरण सुधरता है।

चतुर्थ मन्वन्तर में गजराज के उद्धार के लिए प्रभु ने हरि का अवतार धारण किया। पंचम मन्वन्तर में रमा बैकुण्ठ बनाया, बैकुण्ठ का अवतार लिया। षष्ठ मन्वन्तर है चाक्षुष मन्वन्तर। चाक्षुष मन्वन्तर में समुद्र मंथन हुआ, तब प्रभु ने अनेक अवतार धारण किये। देवों को प्रभु ने युक्ति से अमृत पिलाया। राजा ने प्रश्न पूछा–महाराज! इस कथा को सुनने की मेरी इच्छा है।

३८. हरि और हर एक ही हैं

शुकदेवजी महाराज कथा कह रहे हैं–एक बार इन्द्रराजा को रास्ते में दुर्वासा ऋषि के दर्शन हुए। अपने कंठ से माला उतार कर ऋषि ने इन्द्रदेव को दी। अति संपत्ति में जीव भाव खो देता है। कभी कोई साधु-संत आपको फल दें या फूल दें तो उसे सिर पर चढ़ाइए। आपके पास से कुछ लेने की इच्छा से वे नहीं देते हैं, आपके कल्याण की भावना से वे देते हैं।

दुर्वासा ऋषि ने प्रेम से वह माला इन्द्र को अर्पण की थी पर इन्द्र राजा ने उसे ग्रहण नहीं किया। इन्द्रदेव ने वही माला हाथी के मस्तक पर फेंक दी। हाथी सूँड़ से माला को नीचे गिराकर पाँव तले कुचलने लगा। दुर्वासा ऋषि को यह समुचित नहीं लगा। संपत्ति में जो होश गवाँ बैठा है, वह दरिद्र होता है, तब होश में आता है। पुष्पमें लक्ष्मी का निवास है।

जिस घर में पुष्प पाँव तले कुचले जाते हैं, उस घर में लक्ष्मीजी विराजमान नहीं रहतीं। जिस घर में संध्या समय पर झगड़े होते हैं उस घर में लक्ष्मीजी विराजमान नहीं रहतीं। संध्या समय पर लक्ष्मी-नारायण घर आते हैं। जिस घर में भिखमंगे का अपमान होता है उस घर में लक्ष्मीजी विराजमान नहीं रहतीं। अगर आप भिखमंगों को कुछ नहीं दे पाते तो उसे हाथ जोड़कर कहिए– 'जय श्रीकृष्ण'। कुछ लोग भिखमंगे को जली-कटी सुनाते हैं–'तुम मोटे तगड़े हट्टे-कट्टे हो तुम्हें मजदूरी करने में क्या होता है? मुफ्त में खाना है! अरे, वह क्या आपका खाकर हट्टा- कट्टा हुआ है? आँगन में आये भिखारी का अनादर न करो संध्या समय पर अगर सौभाग्यवती स्त्री सिर गूँध ने बैठ जाती है तो लक्ष्मीजी विराजमान नहीं रहतीं। सौभाग्यवती के बालों में लक्ष्मीजी का निवास है। जिस घर में सूर्यास्त और सूर्योदय के काल में भोजन करते हैं, उस घर में लक्ष्मी विराजमान नहीं होती हैं। दुर्वासा ऋषि ने इन्द्रराजा को शाप दिया–तुम्हें बहुत अभिमान है, तुम दरिद्र हो जाओगे। देव-दैत्यों का युद्ध हुआ। उस युद्ध में देवों की पराजय हुई। स्वर्ग राज्य राक्षसों को मिला! इन्द्र के पास से स्वर्ग का राज्य चला गया। देवगण दुःखी हुए। उन्होंने परमात्मा की स्तुति की। प्रभु

ने आज्ञा दी—तुम समुद्र-मंथन करो, उसमें से अमृत निकलेगा, अमृत मैं तुम्हें पिला दूँगा युक्ति करके। समुद्र-मंथन का कार्य बहुत बड़ा है तुम लोग अकेले नहीं कर सकोगे। दैत्यों की मदद लेलो। शत्रु को वंदन करके वश में कर लो। शत्रु तुम्हारे कार्य में बिना कारण बिघ्न खड़ा करेंगे। अपने शत्रु दैत्यों के साथ मैत्री कर लो। वंदन करने से मान देने से मधुर वाणी से वैर भाव का अंत आ जाता है, मैत्री सिद्ध होती है। दैत्य जो कुछ माँगें, उन्हें दे दीजिए।

देव-दैत्यों की मैत्री हुई। मंदराचल पर्वत की मथानी बनायी गयी, उसे समुद्र में डाल दिया, समुद्र में विविध औषधियाँ डालीं, और मथने लगे, उसी समय मंदराचल पर्वत समुद्र में डूबने लगा। सभी घबरा गये। तब कूर्म-नारायण भगवान् प्रकट हुए। उन्होंने अपनी पीठ पर मंदराचल पर्वत को धारण किया।

शांति से थोड़ा विचार करने पर ध्यान में आयेगा कि पंद्रह वर्ष पूर्ण हो जायें और सोलहवाँ वर्ष शुरु हो, तब से मन मंथन होता है। यह जीव यौवन में जब से प्रवेश करता है, तब से मंथन होता है। पूर्व जन्म में जिसने सुख भोगा है, उसके मन में सुख के संस्कार जागते हैं। धीरे-धीरे वासना जाग्रत होती है। समुद्र-मंथन विवेक से करना है। पंद्रह वर्ष पूर्ण हों कि सावधान हो जाइए। यौवन बहुत बुरा समय है। उसमें बड़े-बड़े होश गवाँ बैठे हैं। मानव मन से पाप करता है, तब भगवान् थोड़ी-सी क्षमा देते हैं पर तन से पाप होता है तो क्षमा नहीं मिलती है। जीवन नष्ट हो जाता है। यौवन काल के शुरु होने पर बहुत सावधान रहना पड़ता है। अपने मन को पर्वत की तरह स्थिर बनाइए। पर्वत बोलता नहीं, हिलता-डुलता नहीं है। इस मन को कूर्म नारायण की पीठ पर रखिए। मूर्ति और मन्त्र जिसका आधार है, उसका मन स्थिर रहता है। स्वरूप सेवा और नाम-सेवा का आधार मन को स्थिर रखता है। निराधार मन समुद्र में डूबता है। मन को मूर्ति में रखिये। मन को मंत्र में रखिये। मन्त्र से मन हट जाय तो मूर्ति में रखिये, मूर्ति से मन हटने लगे तो मन्त्र में ले जाइये। तीन-चार घण्टे तक नियम पूर्वक जो मन को मन्त्र में, मूर्ति में रखते हैं, उसे एक दिन अमृत प्राप्त होता है।

देव-दैत्य मंथन कर रहे थे, अमृत के लिए, पर निकला विष। भक्ति अमृत है, ज्ञान अमृत है। ज्ञान भक्ति-स्वरूप अमृत पान करना हो तो प्रथम विष मिलता है। जो व्यक्ति भगवान् की खोज करते हैं, भगवान् पहिले उस व्यक्ति की परीक्षा लेते हैं, कसौटी करते हैं, बाद कृपा करते हैं, जो भगवान् की खोज करते हैं, उनके जीवन में दुःख के प्रसंग ही विष-रूप हैं, विष हैं, दुःख-प्रसंग। प्रतिकूल परिस्थिति भी विष है। जगत् में ऐसे व्यक्ति की निंदा भी होगी। निन्दा भी विष है। कर्कश वाणी भी विष है। विष सहन करिये। सहन करने वाला सुखी होता है।

भगवान् शंकर की पूजा करने से बुद्धि में ज्ञान का स्फुरण होता है। ज्ञान-गंगा जिनके मस्तक में है वे विष सह सकते हैं। शिवजी के मस्तक पर गंगाजी हैं। देवों-दैत्यों ने भगवान् की स्तुति शुरू की। देवों ने कहा-यह विष हमें जलाता है।

तत्तस्य ते सदसतोः परतः परस्य नाञ्जःस्वरूपगमने प्रभवन्ति भूम्नः।
ब्रह्मादयः किमुत संस्तवने वयं तु तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम्॥

(८-७-३४)

शिवजी ने पार्वतीजी से कहा-ये सभी मुझ से विष पीने के लिए कहते हैं। पार्वतीजी ने कहा-परोपकार कीजिये, पर ऐसा परोपकार किस काम का जिसमें हमारा विनाश ही हो जाय? शिवजी ने कहा-मुझे जो हो सो भले ही हो, ये लोग तो सुखी होंगे?

प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभंगुरैः।
बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया॥ (८-७-३९)

भगवान् शंकर वहाँ पधारे। राम-नाम का जप करते हुए शिवजी महाराज विष पी गये। शंकर दादा ने विष को पेट में नहीं उतारा, गले में रोक रखा। ज्ञानी महापुरुष हृदय में नारायण के दर्शन करते हुए, नामामृत से भगवान् की निरंतर पूजा करते हैं। शिवजी की भावना है-मेरे हृदय में नारायण हैं, मैं पेट में विष उतारना नहीं चाहता हूँ। जिनके पेट में विष है, वे भक्ति नहीं कर सकते हैं। शिवजी ने विष बाहर नहीं निकाला, पेट में भी नहीं उतारा। यही हमें बोध देता है कि विष को गले में रोक रखो। तब वह आपका कोई नुकसान नहीं करेगा। आपको कोई त्रास नहीं देगा। अगर आपका कोई नुकसान करे या आपको कोई त्रास दे और आपका उसे कटु वचन कहने का मन हो, तब उसे गले तक ही रोक रखिये। उन शब्दों को बाहर न निकालिये। आपके लिए कोई बुरा कहता है तो उसे सहन कीजिये। पर किसी को जरा भी दुःख हो, ऐसे शब्द न बोलिये। किसी को ताने मारने के लिए जीभ नहीं है, किसी की निन्दा करने के लिए जीभ नहीं है। विष बाहर न निकालिये, पेट में भी न उतारिये। पेट में विष रखने वाले का जीवन बिगड़ता है।

यस्मान्नो द्विजते लोको लोकोन्नो द्विजते च यः।

जो किसी का उद्वेग नहीं करता और किसी को उद्वेग न हो, यह देखता है उसे अमृत मिलता है। आँखों में वैर विष न रखिये, प्रेम रखिये। शिवजी महाराज ने विष को गले में रोक रखा, इससे उनका कंठ नीला हो गया। देव-गंधर्व शिवजी महाराज की जय-जयकार करने लगे।

शंकर भगवान् विष पी रहे थे, उसमें से थोड़ा विष नीचे गिर पड़ा। वह किसी के पेट में गया और किसी की आँख में पड़ा। किसी को अधिक मिलता है, कोई बहुत सुखी होता है, यह

देखकर कई व्यक्तियों की आँखों में जलन होती है, वे सोचते हैं कि कैसा बँगला बना लिया है। अरे! प्रभु ने तुम्हें क्या कम दिया है? किसी को सुखी देखकर प्रसन्न हो जाइए। शिवजी ने जगत् को ऐसा बोध दिया है? आँखों में प्रेम रखिये। पेट में प्रेम रखिये। जिसकी आँखों में, जिसके पेट में प्रेम है वही भक्ति करता है।

देव-दैत्य समुद्र-मंथन करने लगे। उसी समय समुद्र में से काम धेनु (गाय माता) प्रकट हुई, जिसे ब्राह्मणों को अर्पित किया गया। इसके बाद समुद्र में से उच्चै:श्रवा नामक घोड़ा बाहर आया। दैत्यों को यह घोड़ा बहुत पसंद आया। दैत्यों ने माँग की कि यह घोड़ा हमें मिलना चाहिए। अत: राक्षसों को उच्चै:श्रवा घोड़ा दिया गया। मन को जो पर्वतसा स्थिर करते हैं, जो विष सहन करते हैं और भक्ति करते हैं, उनके पास यही घोड़ा आता है। 'उच्च' शब्द का अर्थ है कीर्ति। 'श्रव' का अर्थ है संपत्ति। कीर्ति और संपत्ति का ढेर लग जाता है परन्तु इस कीर्ति और इस संपत्ति में मन फँस जाय तो भक्ति-फल का अमृत नहीं मिलता है। राक्षसों ने वही उच्चै:श्रवा घोड़ा माँग लिया।

बाद में समुद्र में से ऐरावत नाम का हांथी निकला। हाथी देव-पक्ष में आया। जिसे हाथी मिलता है, उसे अमृत मिलता है। हाथी के शरीर को देखकर लगता है कि उसकी आँखें बहुत छोटी हैं। जिसकी सूक्ष्म दृष्टि है उसे अमृत मिलता है। जिसकी स्थूल दृष्टि है उसे अमृत नहीं मिलता है। स्थूल दृष्टि अर्थात् देह दृष्टि सूक्ष्म दृष्टि अर्थात् आत्म दृष्टि। भक्तिरूपी अमृत पान करता हो तो सूक्ष्म दृष्टि न रखिये। इस शरीर को जो देखता है, शरीर बहुत अच्छा है, ऐसा जो समझ रहा है, वह ठीक तरह से भक्ति नहीं कर सकेगा। आत्मा के लिए शरीर की शक्ति है, शोभा है। शरीर में प्राण नहीं रहेगा, तब कोई शरीर को घर में रखने के लिए तैयार नहीं होगा। जो आत्म दृष्टि को साध्य करता है, उसे अमृत मिलता है। जिसकी देह-दृष्टि है, उसका मन बिगड़ता है। हाथी सूक्ष्म दृष्टि का प्रतीक है। हाथी के बाद कौस्तुभ मणि निकली, जो नारायण को समर्पित की गयी। इसके बाद पारिजात कल्पवृक्ष और इसके बाद अप्सराएँ निकलीं। समुद्र में से श्री महालक्ष्मी .....साक्षात् महालक्ष्मीजी प्रकट हुईं। महालक्ष्मी को सुवर्ण के सिंहासन पर बैठाकर ब्राह्मणों ने वेदमंत्रों के साथ अभिषेक किया-

हिरण्यवर्णा हरिणीं सुवर्णरजतस्त्रजान्।
चन्द्रां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥

सखियों ने माताजी का सुन्दर श्रृंगार किया है। सबकी ऐसी इच्छा हुई कि यह लक्ष्मी मुझे मिलें तो अच्छा! लक्ष्मी ने कहा कि स्वयंवर में मैं योग्य पति को विजयमाला अर्पित करूँगी।

एक ओर देव बैठे हैं, दूसरी ओर राक्षस बैठे हैं। ऋषि-मुनियों ने भी आज सभा में बैठना स्वीकार किया है। सखियाँ स्वयंवर के लिए लक्ष्मीजी को सभी जगह ले जाने लगीं। महान् तपस्वी के पास गयीं। तपश्चर्या और भक्ति का साथ न हो तो तपस्वी क्रोधी बन जाते हैं। ऐसे तपस्वी का पतन होता है। ज्ञान और तप में भक्ति का साथ होता है तभी क्रोध पर विजय पायी जाती है। भक्ति में—प्रेम में जिसका हृदय द्रवित रहता है वह सभी में भगवान् का दर्शन करता है। वह कभी क्रोध नहीं करता है। लक्ष्मी जी ने सखी से कहा—यह तपस्वी है पर इसके तप में भक्ति का साथ नहीं है। ये बहुत क्रोध करते हैं, तुम आगे बढ़ो। जो क्रोध करते हैं, वे लक्ष्मी को नहीं पा सकते, क्रोधी के पास लक्ष्मीजी नहीं विराजमान होती हैं।

आगे देव विराजमान थे। सखियों ने परिचय दिया। लक्ष्मीजी ने ना कह दी—देव बहुत कामी होते हैं। आगे परशुराम भगवान् विराजमान थे। सखियों ने परिचय दिया—ये कामी नहीं हैं, क्रोधी भी नहीं हैं, महान् वीर हैं। लक्ष्मीजी ने कहा—सभी अच्छा है पर.....पर 'जब 'पर' आ जाय, तब समझना कि ये उपयुक्त नहीं है.....' यह निष्ठुर दीख पड़ते हैं। क्षत्रियों के छोटे-छोटे बच्चों की हिंसा करते रहे हैं। जहाँ दया नहीं है, वहाँ लक्ष्मीजी नहीं विराजती हैं। लक्ष्मीजी आगे-आगे चलीं। आगे मार्कण्डेय ऋषि विराजमान थे। सखियाँ समझाने लगीं—यह कामी भी नहीं हैं, क्रोधी भी नहीं हैं, निष्ठुर भी नहीं हैं। प्रलयकाल तक इनका आयुष्य है। महान् ज्ञानी हैं। विचार करिये। मार्कण्डेय ऋषि सभा में आँखें बन्द करके बैठे थे। सोच रहे थे—लक्ष्मीजी से भी मेरे नारायण अति सुंदर हैं। अकेले लक्ष्मीजी को देखने वालों को नारायण के दर्शन नहीं होते हैं। संत अकेले लक्ष्मीजी को नहीं देखते, पर लक्ष्मीजी के साथ नारायण का दर्शन करते हैं। आज अकेले लक्ष्मीजी आयीं हैं इससे मार्कण्डेय ऋषि ने आँखें बन्द कर लीं हैं। लक्ष्मीजी खड़ी रहीं पर मार्कण्डेय ने आँखें न खोलीं। उन्होंने कहा—माताजी! आप बहुत सुन्दर हैं, पर सच-सच बता दूँ, आपसे भी मेरे नारायण सुन्दर हैं। नारायण के दर्शन से मैं कभी तृप्त नहीं होता हूँ। लक्ष्मी जी ने सखी से कहा—ये तो आँखें खोलने के लिए भी तैयार नहीं हैं तुम आगे चलो। जैसे ये आगे बढ़ीं, भगवान् शंकर विराजमान थे। सखियाँ समझाने लगीं—ये देवों के देव हैं। इन्होंने काम को भस्म कर दिया है। बहुत सरल हैं। कभी क्रोध करते ही नहीं हैं। सिर पर गंगाजी विराजमान हैं। लक्ष्मीजी ने कहा—सब कुछ अच्छा है पर वेश-भूषा अच्छी नहीं है। बाघम्बर पहिना है। हाथ में गले में साँप दीख रहे हैं। तुम आगे बढ़ो।

लक्ष्मीजी आगे चल रही हैं। भगवान् शंकर के पास शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज नारायण विराजमान हैं। लक्ष्मीजी दर्शन करती हैं। सर्वसद्गुण सम्पन्न हैं, एक भी दोष नहीं है।

आधी आँख खुली है, आधी बन्द है। लक्ष्मीजी को विश्वास आ गया कि ये ही नारायण हैं। लक्ष्मीजी ने भगवान् नारायण को विजयमाला अर्पण की। देवों-गन्धर्वों ने लक्ष्मी-नारायण की जय-जयकार कर दी।

लक्ष्मीजी ने जब माला अर्पण की तब भगवान् चारों ओर देखने लगे। लक्ष्मी जब आपके घर आयें तब आप भी चारों ओर दृष्टि रखिये-मेरी गली में किसके पास कपड़ा नहीं है? ऐसा कौन है जो भीख नहीं माँग सकता पर आज की मँहगाई में दो बार खाना नहीं खाता है? किसी को पता भी न चले और आप उसके घर जाकर सहायता दे आइए। जो चारों ओर देखता है, लक्ष्मीजी का सदुपयोग करता है लक्ष्मीजी उसके घर अखण्ड रूप से विराजमान होती हैं। कई लोग ऐसे भी हैं कि उनके घर लक्ष्मी के आने के बाद उन्हें दूसरा कुछ नहीं दीख पड़ता, सिवाय इसके कि मेरी पत्नी, मेरा पुत्र, मेरी पुत्री-लक्ष्मी आज है कल नहीं होगी। लक्ष्मी का सदुपयोग कीजिये।

देव-दैत्यों ने पुनः समुद्र-मंथन किया, तब उसमें से धन्वन्तरि नारायण का प्राकट्य हुआ। अमृत का घट लेकर धन्वन्तरि नारायण बाहर आये। दैत्यों ने दौड़कर घड़ा ले लिया। देव बहुत दुःखी हुए सोचने लगे कि ये तो हमें अमृत की बूँद भी नहीं देंगे। प्रभु ने आश्वासन दिया। जिसके हाथ में अमृत-घट आया वह कहने लगा-पहिले मैं पिऊँगा। एक बलवान राक्षस ने कहा-हमने मेहनत की है, घट नीचे रख दे अन्यथा मारा मारी हो जायगी। जिसके घर में झगड़े होते हैं उसके घर में किसी को भक्ति का अमृत नहीं मिलता है। घर में प्रेम से रहिये। घर में जरा भी झगड़ा न करिये। घर के एक-एक जीव में भगवान् की भावना रखिये। दैत्य झगड़ने लगे। उसी समय भगवान् ने लीला की। भगवान् मोहिनी नारायण रूप में प्रकट हुए। आज पीताम्बर पहिनकर नहीं आये हैं। ऐसा सुन्दर स्वरूप था कि सभी दैत्य अमृत को भूल गये और मोहिनी नारायण को टकटकी लगाकर देखने लगे। दौड़कर मोहिनी नारायण से पूछने लगे-आपका घर कहाँ है? आपके माता-पिता कौन हैं? आपका विवाह हो गया कि अभी होने वाला है? यह सब पूछने की क्या आवश्यकता थी? पर मोह हो जाने पर विवेक बह जाता है। मोह हो जाने पर ज्ञान नहीं टिकता है। दैत्य अमृत भूल गये।

संसार के विषयों में माया ने मोहिनी छिपा रखी है। जिसका मन मोहिनी में फँस जाता है उसे अमृत नहीं मिलता है। श्रीकृष्ण के सौन्दर्य में जब आँख और मन फँस जाते हैं, तब अमृत मिलता है। मोहिनी नारायण मन में मुस्कराते हुए धीरे-धीरे कहते हैं-आप मेरे घर के विषय में पूछ रहे हैं? मेरा घर नहीं है। जो पुरुष मेरे लिए रोता है, जो मुझे सोलह आने प्रेम करता है, उसके घर मैं जाती हूँ। जिसके हाथ में अमृत का घड़ा था, उस दैत्य को मोहिनी नारायण देखने लगे और

होठों में हँसने लगे। दैत्य तो उन्हें देख पागल-सा हो गया। मुझे देखकर हँसते हैं। इसे मुझ पर अधिक प्रेम आ रहा है। उसने कहा—बहुत मेहनत से यह अमृत पाया है, इसे मैं आपको देता हूँ। प्रभु ने घड़ा हाथ में लिया और पूछा—इसमें क्या है? दैत्यों ने कहा—इसमें अमृत है, इसके लिये हमारे मध्य झगड़ा हुआ है। आप परोसिये तो कोई झगड़ा नहीं करेगा। सभी मोह में थे। आँख से इशारा किया है। एक ओर देव बैठ गये और दूसरी ओर दैत्य बैठ गये।

मोहिनी नारायण हाथ में अमृत-घट लेकर परोसने लगे। उनके मुख पर ऐसी मोहनी थी कि सभी पागल-से हो गये। दैत्यों के मंडल में आकर उन्होंने कहा—यह घड़ा आप लोगों ने मुझे दिया है, इसलिये आपका भला सोचना मेरा धर्म है, आपका कल्याण करना मेरा फर्ज है। प्रभु ने विचार किया कि दैत्यों को अमृत न मिले, इसी में दैत्यों का कल्याण है। अमृत मिलेगा तो बहुत नखरे करेंगे, इसमें इन्हीं का अकल्याण होगा। मोहिनी नारायण ने दैत्यों से कहा—मेरी इच्छा ऐसी है कि आपको अमृत दूँ, पर देव टकटकी लगाकर देख रहे हैं, इससे मुझे ऐसा लगता है कि घड़े के ऊपर जो पानी जैसा अमृत है वह उन्हें दे दूँ। उनकी नजर लगा अमृत आपको पचेगा नहीं। उनकी नजर अच्छी नहीं है। अतः ऊपर का अमृत देवों को पिला दूँ और नीचे जो शुद्ध रहेगा वह आपको दूँ। दैत्यों ने कहा—स्वीकार्य है। मूर्खों को अक्ल नहीं है कि अमृत में पानी और शुद्ध अमृत—जैसे भेद नहीं होते। मोहिनी में मन फँसा है, पागल से हो रहे हैं। मोहिनी नारायण अमृत दे रहे हैं देवों को और देख रहे हैं राक्षसों को। सभी दैत्य बातें करने लगे कि हमें तो शुद्ध माल मिलने वाला है। सभी धैर्य रखकर बैठे रहे। दैत्यों के मंडल में राहु नाम का एक दैत्य था। वह चतुर था, उसे प्रपंच का शक हुआ। इससे वह देव का स्वरूप धारण करके, सूर्य-चन्द्र के बीच में जाकर बैठ गया। उसका देवों की पंक्ति में (पंगत में) जाकर बैठना प्रभु को अच्छा नहीं लगा। पंगत में विषमता लाना अच्छा नहीं लगा। वे जानते थे कि वह देव नहीं है, राक्षस है। देव-पंगत में बैठने के कारण राहु को भी अमृत दिया गया। राहु अमृत पीने लगा। सूर्य-चन्द्र आँखों से इशारा करने लगे। प्रभु ने सुदर्शन चक्र से राहु का सिर काट डाला परन्तु वह अमृत पी चुका था, इससे मरा नहीं। उसका सिर और धड़ अमर हो गये।

शुकदेव जी महाराज वर्णन करते हैं—राजन्! इन्द्र को अमृत दिया तब राहु न आया। अश्विनी कुमार को अमृत दिया तब भी राहु न आया। राहु तो सूर्य-चन्द्र को अमृत मिले, तब ही आता है। सूर्य, बुद्धि के स्वामी देव हैं। चन्द्र मन के स्वामी देव हैं। बुद्धि और मन भक्ति रस में निमग्न हो जाते हैं, तभी राहु आता है। आँख से कोई भक्ति करे, शरीर से भक्ति करे, उसे राहु त्रस्त नहीं करता। मन से जो भक्ति करता है उसे विषय-स्वरूप राहु त्रस्त करता है। उसका सिर काट दिया

गया है पर वह मरा नहीं है, अजर-अमर है। विषय-राहु मरता नहीं है। वह कब सिर निकालकर खड़ा होगा, कहा नहीं जा सकता। आपको कभी ऐसा लगे कि मैं भक्ति करता हूँ, ज्ञानी हूँ, मेरे मन में क्रोध नहीं है, काम नहीं है तो आपका यह सोचना गलत है। ये सभी विकार भीतर बैठे हैं। मानव जब तक सावधान होकर भक्ति करता है, तब तक ये विकार नहीं दीख पड़ते हैं। मानव जरा भी गाफ़िल हुआ कि भीतर के विकार बाहर आ जाते हैं। जीवन की अन्तिम साँसों तक मन पर विश्वास न रखिये। मन कब गड्ढे में गिरा देगा, इसका पता नहीं है। महापुरुष मन पर विश्वास नहीं रखते हैं। मन पर भक्ति का अंकुश रखते हैं। निरन्तर भक्ति करने की आदत डालिये।

मोहिनी नारायण ने सब अमृत देवों को पिला दिया और रीता घड़ा दैत्यों के समक्ष ला पटका। चतुर्भुज नारायण प्रकट हुए। दैत्यों को आश्चर्य हुआ—दगा, दगा, दगा! यह विष्णु साड़ी पहिन कर आया, हम उसे पहचान न सके, उसने प्रपंच किया। देव-दैत्यों का युद्ध हुआ। अमृत के कारण देवों की शक्ति बढ़ी हुई थी, सो दैत्य हार गये। दैत्यों पर बहुत मार पड़ी। देवों को स्वर्ग का राज्य मिला। मृत्यु पाने वाले दैत्यों को शुक्राचार्य ने संजीवनी मंत्र के प्रताप से पुनः जीवित कर दिया।

एक बार नारदजी कैलास धाम में गये। उन्होंने शंकर भगवान् से पूछा—आपको मोहिनी नारायण के दर्शन हुए शिवजी ने कहा—ना! मुझे नहीं हुए—नारदजी ने प्रशंसा करते हुए कहा—ऐसा सुन्दर स्वरूप था कि सभी देव—ऋषि भी पागल हो गये थे। शिवजी ने कहा—ऐसा है तो मैं वहाँ जाऊँगा नारायण मेरे लिए पुनः मोहिनी होंगे। पार्वतीजी ने कहा कि मुझे भी दर्शन करने हैं।

शंकर पार्वती मोहिनी स्वरूप के दर्शन करने कैलास से बैकुण्ठ धाम में आये। प्रभु ने स्वागत किया। पूछा—कैसे पधारना हुआ? शिवजी ने कहा—आपके दर्शन करने आये हैं। प्रभु ने कहा—आप मेरे हृदय में हैं, मैं आपके हृदय में हूँ। आपको इधर आने की जरूरत कहाँ है? शिवजी ने कहा—आप मेरे हृदय में हैं, पर वह तो पीताम्बरधारी नारायण रूप में हैं। मैंने सुना है कि आपने साड़ी पहिनी थी और तब बहुत ही नखरे आपने दिखाये। वह नारायण मैंने देखे नहीं हैं। प्रभु ने कहा—मैं साड़ी पहिन कर आऊँ, नखरे भी करूँ और तब आप नाचने लग गये तो? शंकर दादा ने कहा—मैं नाचने लगूँ तो आप भी नाचने लग जाइयेगा। हम दोनों नाचेंगे। आनंद आ जायगा। भगवान् नारायण बहुत वर्षों तक बैकुण्ठ में निद्रा में थे। जागने पर उन्हें इच्छा हुई कि आलस्य आ रहा है। मैं नाचने लगूँ तो आलस्य भाग जायगा। पर किसके आगे नाचूँ? कोई नाचने वाला आ जाय तो नाच सकेंगी न। हरि और हर की यह दिव्य लीला है। नाटक का पर्दा जिस तरह उठता है, उसी

तरह एक सुन्दर बाग दिखाई दिया। मोहिनी नारायण का दिव्य स्वरूप प्रकट हुआ। बाग में एक अति सुन्दर युवती गेंद से खेल रही थी। शिवजी ने देखा। ये ज्ञानी पुरुषों का एक नियम है कि वे जो काम करते हैं उसमें ऐसे तन्मय हो जाते हैं कि और सब भूल जाते हैं।

मोहिनी के दर्शन करते हुए शिवजी ऐसे तन्मय हो गये कि यह भी भूल गये कि साथ में पार्वतीजी भी आयी हैं। आप मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं, वहाँ कौन आता है, कौन जाता है– यह न देखिये। कई लोग सारे गाँव की बातों को जानने के लिये मन्दिर जाते हैं। मन्दिर में घर की बातें न सुनिये। मन्दिर में बधिर हो जाइये अंधे हो जाइये। निश्चय कीजिये कि मुझे किसी पुरुष पर दृष्टि नहीं डालनी है, न किसी स्त्री की ओर दृष्टिपात करना है। मैं तो परमात्मा पर दृष्टि डालने आया हूँ। शिवजी महाराज परमात्मा के दर्शन में तन्मय हो गये। दर्शन में थोड़ा द्वैत भी रहता है। यह जीव ईश्वर से थोड़ा भी भिन्न होता है, तब पूर्ण आनंद नहीं आता है। पूर्ण आनंद अद्वैत में है। जीव, ईश्वर से थोड़ा भी दूर होता है तो काल उसे मारता है। शिवजी को तो अद्वैत प्रिय है– अपने नारायण से मैं एक हो जाऊँ। शंकर भगवान् दौड़ते हुए गये और मोहिनी नारायण को आलिंगन दिया। हरि–हर–दो से एक हो गये।

दक्षिण भारत में हरि–हर क्षेत्र है। हुबली से वहाँ जा सकते हैं। वहाँ ठाकुरजी का आधा अंग नारायण का है, आधा अंग शिवजी का है। आधा श्रीअंग श्याम है, आधा श्रीअंग गौर है। दो हाथों में शंख, चक्र हैं, दो हाथों में त्रिशूल, माला है। एक ओर पीताम्बर है, एक ओर बाघम्बर है। एक ओर सुवर्ण मुकुट है, एक ओर जटा मुकुट है।

इस अध्याय में भगवान् ने शिवजी की स्तुति की है।

दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थितः।
यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यंग मायया॥
को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान्।
तांस्तान्विसृजतीं भावान्दुस्तरामकृतात्मभिः॥

(८-१२-३८/३९)

स्वां निष्ठामात्मना स्थितः–आप अपने स्वरूप में स्थिर हैं। मेरी माया आपका क्या कर सकती है? –पर यह सब सुनकर शिवजी अभिमान में नहीं आये। दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने नारायण भगवान् की स्तुति की–आपको जो हृदय में रखता है, उसे माया त्रस्त नहीं कर सकती है। हरि–शरण, हरि–स्मरण जो निरंतर करते हैं, माया उन्हें त्रस्त नहीं कर सकती है।

शिवजी महाराज पार्वतीजी के साथ कैलास में लौट आये। वहाँ पार्वतीजी को और सप्त-ऋषियों को शिवजी ने उपदेश दिया है–

अपि व्यपश्यस्त्वभजस्य मायां परस्य पुंसः परदेवतायाः।
अहं कलानामृषभो विमुह्ये ययावशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः।।

(८-१२-४३)

मन पर विश्वास न रखिये। माया में बहुत बल है। माया गड्डे में डाल देती है। बड़े-बड़े भुलावे में आ गये हैं। यह संसार भयंकर है। संसार में जो आता है, माया उसे मारती है। माया किसी को भी नहीं छोड़ती है। जो निरंतर भक्ति करता है, प्रतिक्षण जो सावधान रहता है, वह माया की मार नहीं खाता है।

३९. भिक्षु नारायण

षष्ठ मन्वन्तर में समुद्र-मंथन हुआ है। सप्तम मन्वन्तर में कश्यप ऋषि के घर श्रीवामनजी महाराज प्रकट हुए हैं। आठवें मन्वन्तर से चौदहवें मन्वन्तर तक भविष्य में जो-जो अवतार होने वाले हैं, उन अवतारों की कथा बहुत संक्षेप में वर्णन की गई है।

परीक्षित राजा ने प्रश्न किया–

बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धरिरयाचत।
भूत्वेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबन्ध तम्।। (८-१५-१)

वामनजी की कथा सुनने की बहुत इच्छा है। लक्ष्मीपति जो नारायण हैं, वे भिक्षा माँगने गये थे, ऐसा सुना है, उसका क्या कारण था? वामनजी का प्राकट्य किस तरह हुआ?

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं–राजन्! श्रवण करिये। दैत्यों ने शुक्राचार्य जी की बहुत सेवा की। शुक्राचार्य जी प्रसन्न हुए। उन्होंने दैत्यों के राजा बलि के हाथ से विश्वजित नाम का यज्ञ करवाया। पूर्णाहुति के समय पर अग्निकुण्ड से सोने का बना रथ बाहर आया। बलि राजा को उस रथ में बैठा कर, शुक्राचार्यजी ने अपना ब्रह्म तेज उसे दिया। बलि राजा से उन्होंने कहा–आप जहाँ जायेंगे, आपकी विजय होगी। बलि महाराज स्वर्ग में युद्ध करने के लिये गये। बलि राजा की विजय हुई, दोनों की पराजय हुई। जिसको शुक्राचार्यजी का तेज मिलता है, उसकी जीत ही होती है। इस शरीर का राजा शुक्र है। शक्ति को ही शुक्र कहते हैं, शक्ति का नाश सर्वनाश है। शुक्राचार्यजी की सेवा का अर्थ है प्रत्येक इन्द्रिय का संयम। संयम से शक्ति का संग्रह होता है। जो शक्ति का संग्रह करता है वह बलि होता है। शक्ति के संग्रह में अति सुख है। शक्ति के

विनाश में अति दुःख है। जो शुक्र की सेवा करता है उसका बल बढ़ता है। बलि राजा को इन्द्रासन पर बैठाकर शुक्राचार्यजी ने उसका राज्याभिषेक किया।

शुक्राचार्यजी ने बलि को समझाया–आप अश्वमेध यज्ञ करेंगे तो आप सदैव के लिए इन्द्र हो जायेंगे। शुक्राचार्यजी बलि राजा को नर्मदा के तट पर ले आये। नर्मदा नदी के तट पर बृहस्पति तीर्थ में बलि महाराज अश्वमेध यज्ञ करने लगे।

इस ओर देवों के हाथ से स्वर्ग का राज्य चला गया, इससे माता अदिति को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने कश्यप ऋषि की बहुत सेवा की। प्रसन्न कश्यप ऋषि ने कहा–देवि! आप वरदान माँगिये। अदिति ने कहा–मेरे शत्रुओं का नाश हो जाय मेरी सन्तान को स्वर्ग का राज्य मिले, ऐसी कृपा करिये। कश्यप ऋषि अदिति को समझाते हैं–आपके शत्रु दैत्य अब बहुत बलवान हो गये हैं। जिसके सिर पर शक्ति का छत्र है, जिसने संयम का बख्तर पहना है जो सर्व प्रकार के पापों को छोड़कर पवित्र जीवन जी रहा है, उसे तो युद्ध में परमात्मा भी नहीं मार सकते हैं। जो पाप करते हैं, उन्हें ही परमात्मा मारते हैं। अरे! भगवान् तो किसी को भी नहीं मारते, पाप ही मारता है। आपके शत्रु दैत्यों ने पाप छोड़ दिया है। वे बहुत पवित्र जीवन जी रहे हैं। युद्ध में उन्हें कोई नहीं मार सकता है, परन्तु युक्ति से मैं तुम्हारा काम कर दूँगा। शत्रु का मरण नहीं होगा, हमारे बालकों को राज्य प्राप्त हो जायगा। आप बारह दिनों का पयोव्रत करिये आपके घर भगवान् नारायण पुत्र स्वरूप में प्रकट होंगे। फाल्गुन मास में यह व्रत किया जाता है। सिर्फ दूध पीकर यह व्रत करना होता है। माघ कृष्ण अमावस्या के दिन जाने-अनजाने में जो कोई पाप हो गया हो तो उसके विनाश के लिए देह-शुद्धि प्रायश्चित करिये। फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा से द्वादशी तक बारह दिनों तक सिर्फ दूध लेकर रहना है। व्रत के लिए सोलह मंत्र हैं। लक्ष्मीनारायण की स्थापना के करिए। षोडशोपचार से पूजा करिये। पूजा के बाद यज्ञ करिये। दिन में तीन बार स्नान करिये। अग्नि प्रकट करके 'ॐ नमो नारायण स्वाहा' मन्त्र से पायस की आहुतियाँ दीजिये। त्रिकाल लक्ष्मीनारायण की पूजा कीजिये। कश्यप ऋषि अदिति को पयोव्रत की विधि समझाते हैं–किसी जीव की हिंसा नहीं करनी चाहिए। किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिये। रजस्वला स्त्री के साथ बोलना नहीं चाहिये। हर रोज दो ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। फल भी नहीं खाना है। सिर्फ दूध पीकर यह व्रत करना होता है। लक्ष्मीनारायण का स्मरण करते हुए रात्रि में पवित्र आसन पर सोना है। बारह दिनों तक यह पयोव्रत करें और त्रयोदशी का दिन उद्यापन का है। उद्यापन के दिन यथाशक्ति गायों का दान कीजिये।

फाल्गुन मास आ गया। अदिति ने कश्यप ऋषि से कहा–मैं अकेली व्रत नहीं करूँगी, आप भी साथ दीजिए। पति–पत्नी एक विचार से सेवा–स्मरण करते हैं तब भगवान् शीघ्र कृपा करते हैं। पति–पत्नी का लक्ष्य एक होना चाहिए। एक को धन चाहिये और एक के मन में परमात्मा के दर्शन की इच्छा है तो घर में ऐसा मतभेद होने पर, लक्ष्य भेद होने पर शाँति नहीं मिलती है।

परमात्मा श्रीकृष्ण अतिशय कृपा करते हैं, तब ही घर में सत्संग देते हैं। बाहर का सत्संग साधारण कृपा का लक्षण है, परन्तु घर में जिसको सत्संग मिला हो, वह परमात्मा की अतिशय कृपा का पात्र है। सत्संग ही बड़ा तीर्थ है। जिसे घर में सत्संग मिला हो, उसे बाहर तीर्थ में जाने की जरूरत नहीं है। गृहस्थाश्रम भक्ति में बाधक नहीं किन्तु साधक है। गृहस्थाश्रम में पति–पत्नी एकान्त में बैठकर ध्यान करें, सत्संग करें, किसी पवित्र ग्रंथ का पठन करें। पति–पत्नी का पवित्र सम्बंध परमात्मा के लिये है। गृहस्थाश्रम, विलास के लिये नहीं है। पर काम को एक ही स्थान पर संकुचित करके काम के विनाश के लिये है।

हमारे शास्त्रों में संन्यास का माहात्म्य बहुत गाया गया है। परमात्मा के लिए संसार के सर्व सुख का जो न्यास अर्थात् त्याग करता है वह है संन्यासी। संन्यासी महात्मा नारायण का स्वरूप है। वे सर्व से श्रेष्ठ हैं पर अनेक बार संन्यास के मठ में भगवान् का अवतार नहीं हुआ है। भगवान् के सभी अवतार गृहस्थ के घर हुए हैं। साधु–संन्यासी महापुरुष ब्रह्म–चिंतन करते हुए ब्रह्म रूप हुए हैं, पर गृहस्थाश्रम में ऐसी शक्ति है कि पति–पत्नी सावधान रहें, धीरे–धीरे संयम बढ़ाते जायें, भक्तिमय जीवन व्यतीत करें तो परमात्मा को अपना बालक बना सकते हैं। संन्यासी महापुरुष तो ब्रह्म रूप हो जाते हैं, पर गृहस्थाश्रम में ऐसी शक्ति है कि गृहस्थ परमात्मा का पिता हो सकता है।

आज भी पुरुष का जीवन कश्यप ऋषि जैसा हो और स्त्री अदिति बन सके तो भगवान् पुत्र स्वरूप में प्रकट होने के लिए तैयार होते हैं। थोड़ा विचार कीजिये, भगवान् के अवतार का अर्थ क्या है? जहाँ भगवान् नहीं हैं, वहाँ भगवान् आकर खड़े हो जाते हैं? जगत् में ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ परमात्मा विराजमान नहीं हैं। सर्वव्यापक परमात्मा सर्व में व्याप्त हैं। सर्वव्यापक परमात्मा माया के आवरण से ढँके हुए रहते हैं। लकड़ी के एक–एक अणु में अग्नि है। अगर बहुत ठंड पड़ रही हो और कोई लकड़ी का स्पर्श करे तो लकड़ी में रमी हुई अग्नि गर्मी नहीं देती है, परन्तु लकड़ी में अग्नि है–यह बात भी सत्य है। जब लकड़ी की अग्नि का उपयोग करना होता है, तब लकड़ी पर अग्नि रखनी पड़ती है। बाहर की अग्नि और भीतर की अग्नि जब एक हो जाती है, तब ही ज्योति प्रकट होती है। आपके भीतर भगवान् हैं, ईश्वर भीतर होने पर भी जीव दुःखी है, अज्ञानी है। भीतर जो परमात्मा हैं, वे लकड़ी में छिपी हुई अग्नि के समान गुप्त हैं। वे

नारायण आपका दुःख दूर नहीं कर रहे हैं। वे दीपक की तरह हैं। दीपक निर्लेप है। दीपक कहता है कि आप पाप करिये या पुण्य करिये, हँसिये या रोइये, मैं तो प्रकाश दूँगा ही।

अन्तर्यामी नारायण प्रकाशमय हैं। वे मन, बुद्धि, इन्द्रिय को प्रकाश देते हैं, शक्ति देते हैं, भीतर का चेतन देते हैं। वे किसी को सुख नहीं देते हैं, वे किसी का दुःख भी दूर नहीं करते हैं। घर में ठाकुरजी का स्वरूप विराजमान कीजिये। भगवान् का सुन्दर शृंगार करिये। परमात्मा के सौंदर्य में आँख, कान, नाक फँस जाय तो जीवन नैया पार हो जाय। अपने मन को बार-बार समझाइए कि कोई स्त्री सुन्दर नहीं है, कोई पुरुष सुन्दर नहीं है। परमात्मा श्रीकृष्ण अति सुन्दर हैं। घर में भगवान् का स्वरूप स्थापित करके नन्दलाला का शृंगार कीजिये। भगवान् के दर्शन में कभी मन को परितृप्त न मानिये। कभी न अघाइये। बार-बार दर्शन करिये। दर्शन से तृप्त हो जाय, वह वैष्णव नहीं है। भगवान् के दर्शन करते-करते प्रभु के नाम का जप करिये। घर में आप जिस स्वरूप की पूजा करते हैं, उसे अर्चा-स्वरूप कहते हैं। भगवान् के इस स्वरूप को आँखों के द्वारा भीतर उतारिये। बाहर से भगवान् जब भीतर आते हैं, तभी माया का पर्दा दूर होता है। सर्वव्यापक परमात्मा-स्वरूप चैतन्य प्रकाशमय हैं। माया के आवरण से आच्छादित हैं। ब्रह्माकार-वृत्ति विशिष्ट चैतन्य इस माया के पर्दे को दूर करता है। स्वरूप-चैतन्य कुछ नहीं कर सकता है। अंतर्यामी नारायण और अर्चा-स्वामी नारायण जब एक हो जाते हैं, तब माया का पर्दा दूर हो जाता है। तब भीतर के नारायण का साक्षात्कार होता है।

अदिति बने बिना माया का पर्दा दूर नहीं होता है। अदिति अर्थात् ब्रह्माकार वृत्ति। अदिति और कश्यप ऋषि ने बारह दिनों का पयोव्रत किया है। सारा दिन दूध पीकर नारायण का ध्यान, नारायण की पूजा, नारायण का स्मरण उन्होंने किया है।

व्रत किसलिए करते हैं? व्रत का लक्ष्य क्या है? व्रत का लक्ष्य यही है कि जगत् को भुलाया जाय, और परमात्मा के दर्शन में स्मरण में तन्मयता आ जाय। कई व्यक्ति ऐसा समझते हैं कि व्रत में साबूदाना और आलू बहुत खा सकते हैं, दाल-भात नहीं खाना है। वस्तुतः साबूदाना खाने मात्र से व्रत परिपूर्ण नहीं होता है। व्रत का लक्ष्य है, विषयाकार वृत्ति का विनाश। मन विषयों का चिंतन करता है। मन विषयाकार बनता है। वही मन श्रीकृष्णाकार बन जाय—इसके लिये व्रत करते हैं। कई लोग उपवास करते हैं, पर भगवान् का स्मरण नहीं करते हैं, उदास बैठे रहते हैं। कोई जब पूछता है—आज आप उदास कैसे दीख रहे हैं? तो वे कहेंगे—आज मैंने दाल-भात नहीं खाया है, इससे अशक्ति लग रही है। अशक्ति हो और भगवान् को भुलाया जाय तो उपवास का विशेष

महत्व नहीं है। उप अर्थात् समीप और 'वास' अर्थात् रहना। मन से परमात्मा के समीप रहना, प्रभु के चरण में, प्रभु के नाम में रहना–उपवास है। फलाहार से उपवास नहीं होता है। फलाहार करके परमात्मा का ध्यान-स्मरण करने से उपवास होता है। जगत् को भूलने के लिए उपवास है, व्रत है। परमात्मा के दर्शन में स्मरण में तन्मय होने के लिये व्रत है। कश्यप और अदिति पति-पत्नी की वृत्ति नारायणाकार बन गई है। जो वस्तु जैसी है उसका ज्ञान तब होता है, जब तदाकार मन हो ज़ाता है। तदाकार मन होने पर ही उसका ज्ञान होता है। यह पुष्प है। मुझे पुष्प का ज्ञान तब होगा जब मेरा मन पुष्पाकार हो जायगा। मन किसी अन्य वस्तु में है तो समक्ष पड़ा हुआ पुष्प भी नहीं दीख पड़ेगा। जो चीज है, जैसी है, तदाकार मन नहीं होगा, तब तक उसका ज्ञान नहीं होगा।

परमात्मा ने सभी के मन में थोड़ी विषमता दी है। किसी को कुछ अधिक दिया है, किसी को कम दिया है पर परमात्मा ने मन सभी को समान दिया है। मन पाप करने के लिए नहीं दिया है। मन खराब विचारों के लिए भी नहीं दिया है। मन पवित्र विचारों के लिए दिया है, परमात्मा का ध्यान करने के लिए दिया है। मन विषयों का चिंतन करने से विषयाकार बनता है, नारायण चिंतन करने पर नारायणाकार बनता है। श्रीकृष्ण द्वारिका में विराजमान हैं, पर गोपियों का मन श्रीकृष्ण में तदाकार होने से श्रीकृष्णाकार होने से उन्हें गोकुल में भी श्रीकृष्ण दीख पड़ते थे।

बारह दिनों का व्रत पूर्ण करके त्रयोदशी के दिन उद्यापन के बाद रात्रि में प्रसाद ग्रहण करके माता अदिति जब सोयी हुई थीं, तब स्वप्न में चतुर्भुज नारायण भगवान् के दर्शन हुए। मन की परीक्षा जाग्रत अवस्था में नहीं होती है, स्वप्न में होती है। आपको स्वप्न में क्या दीख पड़ता है? स्वप्न में आपको जो याद आता है, मन उसी में फँसा हुआ होता है। स्वप्न में नारायण का स्वरूप दिखाई दे, नारायण के नाम का जप हो, सेवा हो, तो समझिए कि मुझे भक्ति का थोड़ा रंग लगा है। अदिति स्वप्न में भगवान् के दर्शन करती हैं और स्वप्न में ही वे प्रभु की स्तुति करती हैं–

यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवणमंगलनामधेय।
आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्य शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः॥

(८-१७-८)

यज्ञपति आप हैं लक्ष्मी के स्वामी आप हैं। जगत् के पिता आप हैं। 'पति' शब्द का अर्थ है जो काल से रक्षण करता है, जो काल से बचा सकता है, वह ही सच्चा पति है।

जीवमात्र के सच्चे पति तो परमात्मा नारायण हैं। अदिति को प्रभु ने आज्ञा दी–मेरे, संपूर्ण रूप के दर्शन करिये। मेरे स्वरूप को भीतर उतारिये। निरंतर मेरे इस स्वरूप का ध्यान करिये।

आपके घर थोड़े दिनों के बाद मैं पुत्र के रूप में आने वाला हूँ, प्रकट होने वाला हूँ। मेरे दर्शन हुए हैं, इस बात को मन में रखिये, किसी से भी न कहिये।

आपको भी भक्ति में आनंद आ सकता है। कदाचित् कृपा करके भगवान् आपको दर्शन दें, तो किसी से न कहिये। इस बात को आप प्रकट करेंगे तो भगवान् कभी दर्शन नहीं देंगे। अदिति को आज्ञा करके भगवान् अंतर्धान हो गये।

अदिति के पेट में गर्भ रहा है। माता के मुख पर अति तेज दीख रहा है। माताजी के उदर में विराजमान परमात्मा की देव-गंधर्व स्तुति करते हैं। अब भगवान् प्रकट होने वाले हैं। मध्याह्न काल में कश्यप ऋषि मध्याह्न संध्या करने गये हैं। अकेली अदिति माता आश्रम में विराजमान हैं। परमात्मा के दर्शन के लिये प्राण तड़प रहे हैं। कब प्रकट होंगे? वैष्णव जब भगवान् के दर्शन के लिये आतुर होते हैं, तब अवतार होता है। आतुरता के बिना अवतार नहीं होता है। परम पवित्र समय प्राप्त हुआ है। दसों दिशाएँ प्रसन्न हैं। मंद, सुगंध, शीतल हवा चलने लगी। आसमान में देव दुँदभी बजाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं। आज अग्निहोत्री ब्राह्मणों के घर में अग्निकुण्ड में विराजमान अग्निदेव बाहर आये! ब्राह्मणों को बहुत ही आनंद हुआ। आज भगवान् पधारने वाले हैं। परम पवित्र भाद्र मास, शुक्ल पक्ष तथा द्वादशी तिथि-जिसे महापुरुष वामन द्वादशी कहते हैं, मध्याह्न काल में अभिजित मुहूर्त में माता अदिति के सम्मुख चतुर्भुज स्वरूप नारायण प्रकट हुए। देवों ने पुष्पवृष्टि की। कश्यप ऋषि को पता चला कि मेरे घर भगवान् पधारे हैं। संध्यादिक नित्य कर्म उन्होंने पूर्ण किया है। दर्शन की आतुरता से वे दौड़ने लगे। पैरों में पादुकाएँ पहिनी हैं। हाथ में कमंडल है। कश्यप ऋषि दौड़ रहे हैं। घर में प्रवेश करते ही देखते हैं कि चारों ओर प्रकाश फैला हुआ है। उस प्रकाश में शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज नारायण के दर्शन उन्हें हुए अतिशय आनंद की अनुभूति हुई। सोचने लगे-गायत्री मंत्र के जप करते हुए इस स्वरूप का मैं ध्यान करता हूँ। मेरे इष्टदेव आज मेरे घर प्रकट हुए हैं। अतिशय आनंद हुआ। भगवान् का उन्होंने जय-जयकार किया। माता पिता को स्वरूप का बोध प्रभु ने कराया। चतुर्भुज स्वरूप अंतर्धान हो गया। दो हाथोंवाले वटुक ब्रह्मचारी श्रीवामनजी महाराज की जय-

यत् तद् वपुर्भाति विभूषणायुधै-रव्यक्तचिद् व्यक्तमधारयद्धरिः।
बभूव तेनैव स वामनो वटुः संपश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः॥

(८-१८-१२)

बटुक ब्रह्मचारी श्रीवामन महाराज के दर्शन के लिये ब्रह्मादिक देव भी वहाँ आये हैं। ब्रह्माजी ने कश्यप ऋषि को धन्यवाद दिये-आज आपका गृहस्थाश्रम सफल हुआ। आज आप

जगत-पिता के पिता हैं। यह बालक कोई साधारण बालक नहीं है, आदि नारायण परमात्मा आपके घर पुत्र रूप में प्रकट हुये हैं। ब्रह्मादि देव वामनजी महाराज की पूजा करते हैं, आरती उतारते हैं। नारायणाकार–श्रीकृष्णाकार मनोवृत्ति ही अदिति है, कश्यप और अदिति आदिनारायण परमात्मा के ध्यान में ऐसे तन्मय हुए कि माया का पर्दा अब दूर होने ही वाला है। भगवान् प्रकट होने वाले ही हैं।

वामनजी की बाल-लीला नहीं है। सात वर्ष का बाल स्वरूप उन्होंने प्रकट किया है। ब्राह्मण का पुत्र सात वर्ष का हो, तब उसे जनेऊ धारण कराना चाहिये। माता-पिता ने जो जन्म दिया है, उसे पवित्र नहीं माना गया है। जब ब्राह्मण को जनेऊ धारण कराया जाता है, तब उसका ब्रह्म-संबंध होता है। जनेऊ के मन्त्र ही ऐसे हैं। जनेऊ के मिलने पर माता-पिता बदल जाते हैं, नया जन्म होता है। पिता पुत्र से कहते हैं–आज से तुम मेरे पुत्र नहीं हो, आज से तुम सूर्यनारायण के पुत्र हो। मैं तुम्हें सूर्यनारायण को समर्पित करता हूँ। अब सूर्य नारायण तुम्हारे पिता हैं, और ब्रह्मविद्या-स्वरूपा गायत्री माता तुम्हारी माता हैं।

जनेऊ वेदों की दी हुई छाप है। जनेऊ बाजार से ले आयें और जेब में रखें, इसका कोई अर्थ नहीं है। ब्राह्मण घर में जनेऊ बनाते हैं, छियानवे बार उसे लपेटना पड़ता है। वेदों के छियानवे हजार मंत्रों के अधिकार जनेऊ धारण करने वाले को मिलते हैं।

हमारे शास्त्रों में ऐसा वर्णन है–प्रत्येक जीवात्मा का शरीर उसकी उँगली से नापने पर चौरासी अँगुल का होता है। देवों का स्वरूप छियानवे अँगुलवाला होता है। जो समुचित रीति से जनेऊ पहनता है, वह देव जैसा होता है। ब्रह्माजी जनेऊ बनाते हैं। जनेऊ के धागे को विष्णु भगवान् त्रिगुणित करते हैं। उसमें श्रीशंकर भगवान् गाँठ लगाते हैं। जनेऊ का अभिमंत्र होता है गायत्री से। जनेऊ के एक-एक धागे में एक-एक देव की स्थापना है। जनेऊ में अगर कोई चाबी लगाता है तो फिर उसमें देव नहीं रहते सभी उठकर चले जाते हैं। जनेऊ में चाबी लगाना पाप है।

कश्यप ऋषि वामनजी को जनेऊ धारण कराने की बात सोचते हैं। साक्षात् सूर्यनारायण ने पधारकर वामनजी को एकांत में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी है। दीक्षा दी, इससे वे देव हुए। दीक्षा में ऐसी शक्ति है। गायत्री मंत्र का उपदेश दिया है। मंत्र को गुप्त रखिये। मंत्र के विज्ञापन से मंत्र की शक्ति का विनाश होता है। नाम की धुन होती है; मंत्र की धुन नहीं होती है। मंत्र एकांत में, पवित्र अवस्था में जपने का होता है। वामनजी अब ब्रह्मचारी हुए। ब्रह्माजी वामनजी को कमंडल अर्पण करते हैं। धरतीमाता ब्रह्मचारी को बैठने के लिए। मृगचर्म का आसन देती हैं। अदितिमाता लँगोट देती हैं। साक्षात् माता पार्वतीजी भिक्षा देती हैं।

अगर छह-सात वर्ष का बालक लँगोट पहन ले, सँध्या-गायत्री करे और भिक्षा माँगने जाय तो वह वामनजी जैसा ही दीखता है। आज कल तो बारहवें, पन्द्रहवें वर्ष में जनेऊ कराते हैं। कई लोग तो विवाह के आगे के दिन इसकी खटपट कर लेते हैं। बृहस्पति वामनजी को ब्रह्मचारी-धर्म समझाते हैं—बेटा! आज से तुम ब्रह्मचारी हुए। त्रिकाल संध्या करना। अगर ब्राह्मण तीन बार समुचित रूप से संध्या करता है तो उसकी चिंता सूर्यनारायण को होती है। मनु महाराज ने ब्राह्मण के धर्म को समझाया है। ब्राह्मण वेदाध्ययन करें, अग्निहोत्र करें, पर यह सब न कर पायें तो तीन बार संध्या अवश्य करें। मनु महाराज को लगा कि कलियुग में यह सब नहीं हो सकेगा, इसलिए केवल संध्या करने का आग्रह किया है।

संध्या के समान श्रेष्ठ कोई सत्कर्म नहीं है। संध्या में भक्ति है। संध्या में ज्ञान है। ब्राह्मण संध्या का अर्थ समझकर तीन बार अवश्य संध्या करें। ब्रह्मविद्या स्वरूपा गायत्री माता का हृदय में आह्वान है—माता! आप मेरे हृदय में विराजिये। मेरे हृदय में बसी हुई विकार-वासना का नाश कीजिए। संध्या में प्रायश्चित भी होता है। संध्या में सूर्य को अर्ध्यदान देते हैं। ध्यान के साथ जप भी हैं। संध्या में ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों का समन्वय है।

रात्रि में कोई पाप हुआ हो तो प्रातः संध्या समुचित रूप से करने पर पाप का विनाश होता है। दिन में कोई पाप हुआ हो तो साँध्य-संध्या समुचित रूप से करने पर दिन के पाप का विनाश होता है। अन्न-जल में कोई पाप आया हो तो मध्याह्न संध्या के किये बिना ब्राह्मण को खाने का अधिकार नहीं है। ब्राह्मण के सिर पर बहुत जिम्मेवारी है।

संध्या न करने वालों को सूर्य भगवान् शाप देते हैं। तब उनकी बुद्धि भ्रष्ट होती है। ब्राह्मण मन्दिर में दर्शन के लिए नहीं जाता तो प्रभु को बुरा नहीं लगता, पर ब्राह्मण अगर संध्या नहीं करता तो भगवान् को बहुत बुरा लगता है। जो संध्या नहीं करते वे अतिशय अपवित्र हैं, उनके हाथ का पानी भी नहीं पीना चाहिए। जब से ब्राह्मणों के मन में संध्या के प्रति श्रद्धा कम हुई है, तब से उनका पतन हुआ है।

बृहस्पतिजी वामनजी को समझा रहे हैं—बेटा! त्रिकाल संध्या करना। आज से तुम ब्रह्मचारी हुए हो। किसी भी स्त्री का स्पर्श न करना। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि स्त्री, साधु, संन्यासी और ब्रह्मचारी को दूर से प्रणाम कर लें, स्पर्श न करें। शास्त्रों में तो लिखा है कि ब्रह्मचारी, साधु संन्यासी किसी लकड़ी की बनी गुड़िया का भी स्पर्श न करें—

न स्पृशेत् दारवीमपि

दाखी अर्थात् लकड़ी की बनी गुड़िया। बहुत भीड़-भाड़ में, अनजाने में किसी स्त्री का स्पर्श हो जाय तो भगवान् क्षमा करते हैं, पर जान कर किये गये स्पर्श के लिए क्षमा नहीं है, सजा है। वृहस्पतिजी कह रहे हैं-बेटा! सावधान रहना, किसी भी स्त्री के साथ एकान्त में न रहना। इन्द्रियाँ बहुत बलवान होती हैं। किसी स्त्री के साथ बोलने का प्रसंग आ जाय, तो उसमें मातृभाव रखना। जहाँ तक सम्भव हो, स्त्री के चरणों में दृष्टि रखना-

बलवानिन्द्रियगामः विद्वांसमिप कर्षति।

स्त्री के मुख में और बालों में काम का निवास है। स्त्री-शरीर अग्नि के समान है और पुरुष घी के भरे घड़े के समान है। अग्नि के पास घी को रखने से घी पिघलता है। बड़े-बड़े भुलावे में आ गये हैं।

एक साधु महाराज कहते थे कि हमारे देश में जब से सह-शिक्षण शुरू हुआ है, तब से दशा बिगड़ने लगी है। लड़के-लड़कियाँ साथ में पढ़कर संयम नहीं रख सकते। एक बार मन बिगड़ जाय फिर तुरन्त शुद्ध नहीं होता है। सनातन धर्म का जितना पालन करेंगे, मन उतना ही शुद्ध और शाँत होगा। धर्म की मर्यादा की जितनी उपेक्षा करेंगे, उतना ही मन बिगड़ेगा।

माया में बहुत बल है। साधारण ज्ञान का, भक्ति का माया पर असर नहीं होता। माया परवाह नहीं करती। इसलिये बहुत सावधान रहने की जरूरत है। रामायण में वर्णन है-वनवास में चौदह वर्षों तक सीता-रामजी की सेवा में लक्ष्मण जी रहे। एक बार रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण की परीक्षा ली-लक्ष्मण! यह तुम्हारी भाभी के कंगन हैं। तुमने देखें हैं न? लक्ष्मण ने इन्कार कर दिया। बोले-मैंने कंगन नहीं देखे हैं। लक्ष्मण! यह तुम्हारी भाभी का चन्द्रहार है। लक्ष्मणजी ने कहा-मैंने कभी देखा ही नहीं। रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण से पूछा-लक्ष्मण! तुमने कुछ भी नहीं देखा? लक्ष्मण ने कहा-मैं अपनी भाभी के चरणों में प्रणाम करता हूँ और तब मैंने चरणों में पहिने नुपूर देखे हैं, दूसरा कुछ भी नहीं देखा है। इन्द्रियजित राजा इन्द्र से भी बड़ा है, श्रेष्ठ है। रामचन्द्रजी उठकर खड़े हो गये और लक्ष्मण को गले लगा लिया। लक्ष्मण इन्द्रजित हैं। लक्ष्मण सावधान हैं। माया मारती है पर गाफ़िल को मारती है। प्रतिक्षण सावधान होकर परमात्मा की भक्ति करने वाले को माया नहीं मारती है। लक्ष्मण जी प्रतिक्षण सावधान हैं रामायण में रामचन्द्रजी ने ऐसा कहा है- रावण को मारना सरल है पर इन्द्रजित को मारना दुष्कर है। इन्द्रजित मरा तो समझना रावण भी मरेगा। इन्द्रजित मोह है। मोह मरेगा तब काम भी मरेगा। मोह को मारना बहुत कठिन है इन्द्रियजित ही इन्द्रजित को-मोह को मार सकता है।

बृहस्पतिजी ब्रह्मचारी के धर्म समझाते हैं– बेटा! ब्रह्मचारी हो। आज से घर में भोजन नहीं करना। मधुकरी माँगनी है, उसमें जो कुछ मिले वह सब गुरु को अर्पण करना है। गुरुजी जो दें वही खाना है। राजसी, तामसी खाना खाने वाले के शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है। वही ब्रह्मचर्य का भंग करवाती है। दूध-भात, दूध-रोटी ऐसा सादा भोजन करना है।

वामनजी महाराज ब्रह्मचर्य धर्म का पालन कर रहे हैं। संध्या कर रहे हैं, भिक्षा माँग रहे हैं। गुरुदेव को वे भिक्षा अर्पण करते हैं। गुरुजी ने कहा–बेटा! मेरा परिवार बहुत बड़ा है, तुम थोड़ी भिक्षा लाये हो। मुझे अधिक भिक्षा की जरूरत है। वामनजी ने कहा–मुझे कोई बड़े यजमान का परिचय दीजिए तो मैं अधिक भिक्षा ले आऊँ। गुरुजी ने कहा–अरे! बड़े यजमान तो बलि महाराज हैं। वे नर्मदा-तट पर यज्ञ कर रहे हैं, तुम वहाँ ज़ाओ। वामनजी पधार रहे हैं। श्रीसीतामाता का जहाँ जन्म हुआ है, वहीं जनकपुरी जाते हुए रास्ते में सिद्धाश्रम आता है। वहीं बिहार में वामनजी महाराज प्रकट हुए और पधारे हमारे गुजरात में नर्मदा-तट पर भृगु कच्छ तीर्थ में, जिसे लोग भरुच कहते हैं।

वामनजी महाराज धीरे-धीरे चलते हैं पैर में पादुकाएँ हैं, हाथ में कमंडल है, लँगोट पहिना है। वही भाग्यवान् है, जिसका लँगोट शुद्ध है–

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः।
अशोकवन्तः करुणैकवन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥
देहाभिमानं परिहृत्य दूरा दात्मानमात्मन्यवलोकयन्तः।
अहर्निशं ब्रह्माणि ये रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥

जो व्यक्ति परमात्मा के स्वरूप में रम जाता है, जो भगवान् के नाम में रम गया है, वह भाग्यवान है। शरीर के साथ रमण करने में सुख है–ऐसा मानने वाला भाग्यहीन है। शरीर के साथ तो पशु-पक्षी भी रमण करते हैं। वामनजी महाराज के पास लँगोट के सिवाय कोई वस्त्र नहीं है। मुख पर ब्रह्मतेज है, वही ब्रह्मतेज ललाट में है, आँखों में है। जिसके दर्शन से सत्कर्म की प्रेरणा मिलती है, जिसके दर्शन से मन शुद्ध होता है, जिसके दर्शन से भगवान् याद आते हैं, उसे ब्रह्म तेज कहते हैं। शीतकाल में कई लोग पाक खाते हैं। इससे उन लोगों का तेज बढ़ता है। वह तेज अलग है। ब्रह्मतेज इससे भिन्न है। वामनजी महाराज को जो लोग रास्ते मिलते हैं, वे दर्शन करते हैं, साष्टांग वन्दन करते हैं। परिचय के बिना ही जब प्रणाम करने की भावना जागती है तो समझना कि वहाँ ब्रह्मतेज है।

अनेक प्रदेशों को पवित्र करते हुए वामनजी नर्मदा-तट पर आ पहुँचे। बड़ा मंडप बँधा हुआ है। यज्ञ मंडप में विराजमान भार्गव ब्राह्मण वेदमंत्र बोल रहे हैं, अग्नि में आहुति दे रहे हैं।

तं नर्मदायास्तट उत्तरे बलेर्य ऋत्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके।
प्रवर्तयन्तो भृगवः क्रतूत्तमं व्यचक्षतारादुदितं यथा रविम्॥

(८-१८-२१)

चारों ओर प्रकाश छा गया है। ब्राह्मणों को आश्चर्य हुआ। क्या सूर्यनारायण नीचे उतर आये हैं? यह कौन आ रहा है? न, न, यह तो लँगोट पहिने हुए हैं, हाथ में कमंडल है, यह तो कोई ब्रह्मचारी आ रहा है।

वामनजी यज्ञ मंडप में पधारे। जैसे ही वामनजी महाराज पधारे सभी खड़े हो गये आनंद प्रसारित हुआ है। ब्राह्मणों में ब्रह्मतेज को मान दिया जाता है, धन को वहाँ मान नहीं है। क्षत्रियों में बल को मान है, वैश्यों में धन को मान है। शूद्रों में अवस्था को मान प्राप्त है। ब्राह्मणों की दिवाली श्रावण मास में पूर्णिमा के दिन है। क्षत्रियों की दिवाली विजयादशमी के दिन है। वैश्यों की दिवाली लक्ष्मीपूजन के दिन और शूद्रों की दीवाली होली के दिन है।

वामनजी महाराज सात वर्ष के हैं। अन्य ऋषि वयोवृद्ध हैं फिर भी सब खड़े हो गये हैं और श्री वामनजी महाराज की जय, वामनजी महाराज की जय—ऐसा जय-जयकार हुआ। राजा बलि के कानों तक आवाज पहुँची। वे दौड़ते हुए आये हैं। वामनजी के दर्शन से आनन्द हुआ। सात वर्ष की बालमूर्ति हैं। श्रीअंग मेघ-सा श्याम है। पाँवों में पादुकाएँ हैं, हाथ में कमंडल है। लँगोट के सिवा अन्य कोई वस्त्र नहीं पहिना है। ब्रह्मतेज दृष्टिगत हो रहा है। यह कोई साधारण संत नहीं हैं। स्वागतम् स्वागतम् पधारिये पधारिये।

वामनजी महाराज को सुन्दर आसन दिया गया है। राजा बलि ने विंध्यावली रानी को आदेश दिया कि ब्रह्मचारी महाराज की पूजा करनी है। आप तुरन्त तैयारी कीजिए। चंदन, श्रीफल, फूलों की माला, पंचामृत—पूजा की सभी सामग्री प्रस्तुत की गयी है। सुवर्ण की झारी में नर्मदा का पवित्र जल लाया गया है। विंध्यावली रानी के साथ अनेक स्त्रियाँ भी ब्रह्मचारी को देखने आयी हैं। स्त्रियों को वामनजी के दर्शन से अतिशय आनंद हुआ है। वे बातें कर रही हैं—इस बालक की माता ने बहुत पुण्य किया होगा। कैसा तेजस्वी दीख रहा है। ऐसा सुन्दर बालक जिस माता की गोद में खेल रहा हो, उसे कैसा आनन्द होता होगा। विंध्यावली रानी वामनजी के चरणों पर जल डालती हैं। बलि महाराज चरणों को हाथों में लेकर पखार रहे हैं। चरण अति कोमल हैं। तलवे लाल-लाल हैं। चरणों में स्वस्तिक का चिह्न है। कमल का चिह्न है। चरणों के नाखून रत्न जैसे हैं। चरणों की सेवा करते हुए बलिराजा को नाखून में अपना मुख दिखाई पड़ा। चरण का तीर्थ, बलि राजा ने मुख में डाला, मस्तक पर रखा। जिसके चरण पखारे जाते हैं, उसका पुण्य नष्ट होता है और जो

चरण पखारता है, उसको पुण्य मिलता है। बलिराजा वामनजी की पूजा करते हैं। उस समय पर सब ब्राह्मण वेदमंत्र बोलते हैं। बलि राजा बार-बार वंदन करते हैं और कहते हैं—महाराज! आपके माता-पिता को मैं वंदन करता हूँ, धन्यवाद देता हूँ। जिनके घर आपका जन्म हुआ, वे आपके माता-पिता बहुत पुण्यशाली होंगे मैंने बहुत से ब्राह्मण देखे हैं, बहुतों की पूजा की है पर आप जैसा ब्राह्मण नहीं देखा है। ब्रह्मतेज से ही विधाता ने आपको बनाया है—

स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन्किं करवाम ते।
ब्रह्मर्षीणां तपःसाक्षान्मन्ये त्वाऽऽर्य वपुर्धरम्॥ (८-१८-२८)

आपके दर्शन से मुझे बहुत आनन्द हुआ। आज आपके चरणों का तीर्थ मुझे मिला है। मेरे सभी पाप जल गये। मैं आज पवित्र हुआ। मेरे पितृ आज प्रसन्न हुए होंगे। आज आपकी पूजा का सौभाग्य मुझे मिला। मेरा ऐसा मन है कि अपना सम्पूर्ण राज्य आपको अर्पण कर दूँ।

यद् यद् वटो वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये।
गां काञ्चनं गुणवद् धाम मृष्टं तथान्नपेयमुत वा विप्रकन्याम्।
ग्रामान् समृद्धांस्तुरगान् गजान् वा रथांस्तथार्हत्तम सम्प्रतीच्छ॥

(८-१८-३२)

जहाँ प्रेम जागता है, वहाँ कुछ भी लेने की इच्छा नहीं होती है, समर्पण की भावना जागती है। वामनजी महाराज कहते हैं—तुम्हारा सब कुछ लेने के लिये ही मैं वामन होकर आया हूँ।

राजा बलि ने कहा—महाराज! गायों का, सुवर्ण का, भूमि का, लक्ष्मी का सभी का दान मैं करता हूँ। आपका विवाह का मन हो तो मैं कन्यादान करने के लिए भी तैयार हूँ। ऐसा जामाता कहाँ मिलेगा? आप जरा भी संकोच न करिये जो माँगेंगे वही दूँगा।

किसी के घर माँगने जाना है तो उसके घर जाकर उसका बखान कीजिये, फिर माँगिये। उसकी प्रशंसा करिये उसके माता-पिता की प्रशंसा करिये। चीनी से भी प्रशंसा मधुर होती है। वामनजी महाराज जगत् को इसका ज्ञान कराते हैं। वामनजी महाराज ने बलिराजा को कहा—राजा! धन्य है। प्रह्लादजी के वंश में तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम्हारे दादा प्रह्लादजी अनन्य प्रभु-भक्त थे। पाँच वर्ष के प्रह्लादजी का वचन सत्य करने के लिये स्तंभ से नरसिंह भगवान् प्रकट हुए थे। आपके पिता विरोचन महाराज अति उदार थे। मैंने सुना है कि विरोचन महाराज ने ब्राह्मण को अपने आयुष्य का दान दिया था। आपके परदादा हिरण्यकशिपु तो महान वीर थे। ब्रह्मादिक देवों को उन्होंने पराजित किया था। मुझे ऐसा दीख रहा है कि परदादा हिरण्यकशिपु की शक्ति, दादा प्रह्लादजी की भक्ति और पिता विरोचन की उदारता—सभी गुण आप में सोलह आने उत्तर आये हैं। आप अति उदार

हैं, महान भक्त हैं। बलिराजा को आश्चर्य हुआ–यह कैसा बोल रहा है? है तो सात-आठ वर्ष का बालक और मेरे दादा, परदादा की बातें कर रहा है। बहुश्रुत ब्राह्मण है। बलि राजा ने कहा–महाराज! माँगिये, जो माँगोगे मैं दूँगा। वामनजी बोले–राजा मैं संतोषी ब्राह्मण हूँ। मैं कुछ अधिक लेने नहीं आया हूँ। अपने पैरों से नापकर तीन कदम पृथ्वी का दान लेने के लिए मैं आया हूँ। इतना दो। तुम्हारा कल्याण होगा।

बलि राजा ने सुना। उनको बहुत आश्चर्य हुआ मन में सोचा–अभी छोटी अवस्था के हैं, बुद्धि कच्ची है। महाराज पढ़े हैं पर व्यवहार-ज्ञान नहीं है। माँगना नहीं आया। वामनजी से उन्होंने कहा–आपने बहुत कम माँगा। आप अभी छोटे हैं, बड़े होंगे, विवाह होगा। विवाह के बाद परिवार के पोषण की जिम्मेवारी सिर पर आयेगी। आपके सदृश तपस्वी ब्राह्मण को पैसा माँगने की प्रवृत्ति करनी पड़ेगी तो पंसद नहीं आयेगी। आज आप ऐसा कुछ माँग लीजिए कि जिससे परिवार का अच्छी तरह लालन पालन होता रहे, और आप सारा दिन सेवा करते रह सकें, गायत्री-जप कर सकें। अपना परिचय मैं आपको कैसे दूँ? आत्म-परिचय से पुण्य का नाश होता है, आयुष्य कम होता है। आपका परिचय भले ही कोई दें, आप न दीजिए। अपने मुख से आत्म परिचय न दीजिए। बलि राजा ने कहा–आज मुझे अनिवार्य परिस्थिति के कारण कहना पड़ रहा है, कि इस संसार में मेरी ऐसी प्रसिद्ध है कि जिस ब्राह्मण की मैं पूजा करता हूँ, उसको दान देता हूँ, वह फिर कभी किसी से दान लेने नहीं जाता है। आज आप मेरे घर दान लेने आये हैं। तीन कदम पृथ्वी से क्या होगा? यह बहुत कम है। पुनः आप किसी अन्य के घर दान लेने जायेंगे तो मुझे दुःख होगा। आपके दर्शन से ही मैं समझ गया कि आप लोभी नहीं, संतोषी हैं, पर यह तो बहुत ही कम है, अभी कुछ और माँगिये।

वामनजी ने यह सुनकर स्मित हास्य किया। वे बोले–राजा, आप तो सब देने के लिये तैयार हैं, पर लेने के लिये मुझे सोचना चाहिए न? अति संग्रह के लिए अगर ब्राह्मण दान लेता है तो यजमान का पाप उसके सिर पर आता है। जिसकी जितनी आवश्यकता है, उतना ही वह ले तो पाप नहीं लगता है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि क्षत्रिय और वैश्य लोभ करते हैं तो ठीक है पर ब्राह्मण लोभ न करें। ब्राह्मण-साधु अगर लोभ करते हैं तो यह बात प्रभु को पसंद नहीं आती है। साधु-ब्राह्मण के जीवन में पूर्ण संतोष होना चाहिये। मैं संतोषी ब्राह्मण हूँ। अधिक लेकर क्या करूँगा? आज तक मैं किसी के घर दान लेने नहीं गया हूँ पर लाचारी से आपके घर आया हूँ। एक गृहस्थ के घर के आँगन में मैं बैठा था गायत्री संध्या के लिए। मैं गायत्री जप कर रहा था। घर के स्वामी गृहस्थ बाहर से आये, मुझसे कहने लगे–इधर मेरे आँगन में क्यों बैठे हो? आप कौन

हो? मैंने कहा–मैं ब्रह्मचारी हूँ, संध्या कर रहा हूँ। संध्या पूर्ण होने के साथ ही उठकर चला जाऊँगा। गृहस्थ ने कहा–मैं आपको जानता नहीं हूँ। आज कल कई चोर-लफँगे दिन में देख जाते हैं और रात में वे चोरी करने आते हैं। तुम यहाँ से उठ जाओ। संध्या में विक्षेप हुआ तब मुझे बहुत दुःख हुआ। मेरी अपनी जगह नहीं थी इसलिए ऐसा हुआ, ऐसा विक्षेप पड़ा। मेरी अपनी जगह हो तो मैं सारा दिन संध्या कर सकूँ, गायत्री कर पाऊँ। मुझे वहाँ से कोई उठा भी नहीं सकता। अधिक लेकर मैं क्या करूँ? मुझे जब भूख लगती है तब मैं मधुकरी माँगने जाता हूँ। ब्रह्मचारी हूँ। मधुकरी में जो कुछ मिलता है, उससे संतोष मानता हूँ। मुझे अधिक नहीं लेना है। इस जगत् में जितने भी सुख के साधन हैं, संपत्ति हैं, वह एक मनुष्य को दे दी जाय, किन्तु उसको संतोष न हो, विवेक न हो तो उसे शांति नहीं मिलती है। लाभ से लोभ बढ़ता है। बड़े-बड़े राजा लोभ के कारण पाप करते थे, ऐसा मैंने सुना है। मुझे लोभ नहीं करना है मैं ब्राह्मण हूँ।

बलि राजा को थोड़ा गुमान था कि मैं अति उदार हूँ। बहुत दान देता हूँ। वामनजी ने कहा–राजा, तुम्हारे जैसा दान देने वाला जगत् में नहीं है, पर याद रखना कि मेरे जैसा भी दान लेने वाला भी इस जगत् में नहीं है। तुम तो सब कुछ देने के लिये तैयार हो पर मैं अधिक लेना नहीं चाहता हूँ।

बलि राजा को आश्चर्य हुआ। जगत् में पाप बहुत बढ़ गये हैं, पर ऐसे संतोषी, तपस्वी ब्राह्मण भी हैं, इससे ही यह धरती टिक रही है। बलि राजा को आनंद हुआ। उन्होंने कहा–आज तो आपकी इच्छा के अनुसार तीन कदम पृथ्वी का दान दे रहा हूँ–पर मुझे संतोष नहीं हो रहा है। आपको पुनः कभी किसी वस्तु की जरूरत पड़ जाय तो मुझे सेवा का अवसर दीजिएगा। इस घर में जो कुछ है, आपका ही है। वामनजी ने कहा–राजा! आज तीन पग पृथ्वी का दान दो, बाद की बात बाद में करेंगे।

बलि राजा दान का संकल्प करने के लिए तैयार हुए। शुक्राचार्य यज्ञ-मंडप में विराजमान थे। टकटकी लगाकर, अपलक वामनजी के दर्शन कर रहे थे–सोचने लगे कि यह कौन होगा? शुक्राचार्य महान् ज्ञानी, तपस्वी ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। वे सोचते हैं–यह कोई साधारण ब्राह्मण नहीं है, परन्तु परमात्मा स्वयं हैं। उन्होंने बलिराजा से कहा–

एष वैरोचने साक्षाद् भगवान्विष्णुरव्ययः।
कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः॥ (८-१९-३०)

राजन्! दान देने की त्वरा न कीजिए। इस ब्रह्मचारी के कदम कैसे हैं, यह तुम नहीं जानते हो। यह जैसा दीख रहा है, वैसा नहीं है। देवों के कार्य को सिद्ध करने के लिए आदिनारायण

परमात्मा कश्यप ऋषि के घर पुत्र रूप में अवतरित हुए हैं। ये साक्षात् परमात्मा हैं। तुम्हारा सारा राज्य इनके दो कदमों में समाविष्ट हो जायगा। तीसरे कदम की जगह ही नहीं रहेगी।

दान देने का मुख्य अधिकार गृहस्थ को दिया गया है। साधु अधिक इकट्ठा न करें और दान लेने की इच्छा न करें। साधु-संन्यासी , ब्रह्मचारी कोई भी आँगन में आ जायँ, तो उनका स्वागत करना गृहस्थ का धर्म है। कर्म से जो कुछ भी धन आता है, उसका पंचमांश धर्म के लिए रखिये। सौ रुपये आते हैं तो बीस रुपये दान के लिए अलग रखिये। धन की शुद्धि दान से होती है। तन की शुद्धि स्नान से होती है और मन की शुद्धि परमात्मा के ध्यान से होती है। बहुत दान करने से मन की शुद्धि नहीं होती है। संसार का ध्यान करने से मन बिगड़ गया है। परमात्मा का ध्यान करने से, परमात्मा के मंगलमय स्वरूप का ध्यान करने से बिगड़ा हुआ मन शुद्ध होता है। दान देने से धन की शुद्धि होती है। प्रत्येक धंधे में पाप होते हैं। जिसका धन शुद्ध नहीं है, उसका व्यवहार शुद्ध नहीं हो सकता है। भागवत में आज्ञा दी गयी है कि गृहस्थ अपनी आय का पाँचवाँ हिस्सा धर्म के लिए रखे किन्तु कलियुग में मँहगाई के कारण, मनु महाराज ने (जिनको इसका ध्यान था–पहिचान थी, कि पाँचमाँश धर्मादा में देने से लोगों को त्रास होगा) दशमाँश देने को कहा। सौ रुपये घर में आते हैं तो दश रुपये धर्म में देना चाहिए। परोपकार में, भगवत् सेवा में अपने हाथों से इसका सदुपयोग कीजिए। अपने हाथ से जितना व्यय करेंगे उतना साथ में जायगा। बैंक में रखा साथ में नहीं जायगा, परन्तु दान भी विवेक से दीजिए। अति दान भी अच्छा नहीं है। शुक्राचार्य बलिराजा को समझाते हैं–

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते।। (८-१९-३७)

धन का एक भाग धर्म के लिए रखना चाहिए। धन का एक भाग मौज के लिए व्यय करना क्षम्य है। भागवत में 'कामाय' शब्द है। मौज शौक में खर्च करिये परन्तु अधिक व्यय न कीजिए। कई लोगों का धन फैशन के लिए ही खर्च हो जाता है तथा कई लोगों का धन व्यसन में व्यय हो जाता है। धन का दुरुपयोग विष के समान है। मौज-शौक में थोड़ा खर्च कीजिए। धन का एक भाग कीर्ति के लिए भी व्यय कीजिए। बारह वर्षों के बाद काल परिवर्तित होता है। आज जितना न आता है, इतना नहीं आयगा। ध्यान रखिए। कि वृद्धावस्था में सन्तानों के पास माँगने का समय न आये। वृद्धावस्था में धन होगा तो सन्तति सेवा करेगी। पास में धन नहीं होता तो घर में दुर्दशा होती है।

एक वृद्ध अन्तकाल पास में हैं–ऐसा सोच कर अपना सब कुछ लड़कों के सुपुर्द कर देता है। बाद में वह तो ठीक हो गया, परन्तु पास में धन न होने के कारण दुःखी हुआ। लड़कों से

धन माँगना पड़ा। अच्छे कामों में धन खर्च करने की उसे जरूरत थी परन्तु लड़कों ने ना कह दी। वृद्ध दुःखी हुआ। उसका एक परम मित्र था। मित्र ने सलाह दी–प्रभु ने भजन करने के लिए तुम्हारा आयुष्य बढ़ाया है। मैं तुम्हें एक युक्ति बतलाता हूँ एक लकड़ी की पेटी मेरे पास है। उसमें पत्थर भर कर घर ले जाओ। लड़कों से कहना कि गुप्त धन रखा था, वह आ गया है। अब मैं गंगा–तट पर जाकर रहूँगा।

वृद्ध ने उसी तरह बातें बनाकर ढोंग रचाया। लड़कों से कहा–पेटी आ गई–पेटी आ गई। अब मुझे गंगा–तट पर जाना है। लड़कों ने सोचा कि इसमें दस–पन्द्रह हजार तक की रकम तो होगी ही। वृद्ध बाहर जायगा तो धन खर्च कर देगा। वृद्ध घर में रहेगा तो पेटी भी घर में रहेगी। सब उसके पैरों में गिर पड़े। घर में रहने का आग्रह करने लगे। बड़े लड़के की बहू वृद्ध को समझा–बुझाकर पेटी अपने साथ ले गई। लड़का और बहू अब हर रोज वृद्ध को पैसा देते हैं खर्च के लिए। रोज उनकी सेवा करते हैं। एक दिन बहू ने पूछा–बापू यह सन्दूक किसे देंगे? वृद्ध ने कहा–मेरी अंतकाल की सेवा तुम कर रही हो इससे तुम्हें ही देना है।

सुर नर मुनि सब कै यह रीती, स्वारथ लागि करैं सब प्रीति।

वृद्ध का आदर–सम्मान बढ़ गया। उसकी बहुत सेवा–चाकरी की गई। एक दिन वृद्ध की मृत्यु हो गई बहुत दान दिया गया। सब व्यवहार पूरा हो गया। सगे–स्नेही सब अपने घर चले गये। पेटी खोल कर देखी गयी तो भीतर पड़े हुए पत्थर मिले। संतान माता–पिता की सेवा करेगी–ऐसी आशा रखने का यह युग नहीं है। विवाह होने के साथ लड़कों की बुद्धि बिगड़ जाती है। कई तो माता–पिता को अनाथाश्रम में भर्ती कर आते हैं। इसलिए भविष्य की सोचकर थोड़ा संग्रह कीजिये।

शुक्राचार्य बलि राजा को समझाते हैं–हाथ में आये धन का विवेक से उपयोग कीजिए। ऐसा दान न कीजिए कि दान देने के बाद घर के लोग दुःखी हो जायँ। दान विवेक से देना है। इस ब्रह्मचारी को तुम तीन कदमों तक की धरती का दान दोगे तो तुम्हारे लिये बैठने की जगह न रहेगी। बलि राजा ने कहा–महाराज! एक बार मैंने वाणी से जो दान दिया, अब तो जल छोड़ना ही बाकी है। अब न दूँगा तो मुझे झूठ बोलने का पाप लगेगा। असत्य के समान कोई पाप नहीं है। शुक्राचार्य समझाते हैं–

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्॥ (८-१९-४३)

अति दुःख में–विपत्ति में झूठ बोलना चलता है। यह शुकदेवजी नहीं बोल रहे हैं। दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य की वाणी है। वे बोलते हैं। अति दुःख में, थोड़ा झूठ बोलने में हर्ज नहीं है।

ऐसे वचन निन्दनीय नहीं है। प्राण संकट में हों, गायों के लिए, ब्राह्मणों के लिए, किसी के विवाह के निश्चित करने में सहायक हो, तो ऐसा झूठ बोलने में हर्ज नहीं है। आपको कोई पूछने लगे कि–कन्या कैसी है? आप जानते हैं कि कन्या शलिग्राम भगवान् जैसी है, पर आप एकदम सच कह दें कि काली है, तो लड़के वाले न कर देंगे। वहाँ विवेक से कहना जरूरी है। किसी का विवाह हो रहा हो तो थोड़ा झूठ बोलना क्षम्य है।

शुक्राचार्य बलिराजा को समझा रहे हैं–यह तो तुम्हारे लिए प्राण-संकट आया है। तुम इन्कार कर दो और अगर तुम दान देना चाहते हो तो अपने कदम से नापकर दान देना। यह ब्रह्मचारी धरती को नापेगा तो अनर्थ करेगा। बलि राजा वंदन करके कहते हैं–आपने मुझे सुन्दर बोध किया है पर मैं क्या करूँ? मैं वैष्णव हूँ। प्रह्लादजी के वंश का हूँ। वैष्णवों का ऐसा नियम है कि ठाकुरजी की सेवा के बाद ठाकुरजी के चरणों में तुलसीजी अर्पण करते हैं और भगवान् की प्रार्थना करते हैं–आज से मैं आपका हुआ। मेरा शरीर इन्द्रियाँ प्राण, धन सर्वस्व आपको अर्पण करता हूँ। मैं शरण में आया हूँ। मैं आपका हूँ कृष्णः तवास्मि–वैष्णव गले में तुलसी की कंठी पहिनते हैं। उनकी ऐसी भावना रहती है कि अब यह शरीर श्रीकृष्ण को अर्पण हुआ है। अब यह शरीर भोग के लिये नहीं, भगवान् के लिए है।

बलिराजा कहते हैं–मैं प्रह्लादजी के वंश का हूँ। अभी तक मैं मानता था कि यह कोई ब्राह्मण का लड़का है। आपने आज कहा कि ये तो परमात्मा पधारे हैं। अब तो मैं अपना सर्वस्व अर्पण करूँगा। भले ही, मैं दरिद्री हो जाऊँ। ऐसा सुयोग फिर से नहीं मिलेगा। संपत्ति को सन्मार्ग में उपयोग करने से बड़ी विपत्ति आये तो भी उस विपत्ति में मन शांत रहता है। मैंने संपत्ति का दुरुपयोग नहीं किया है। परमात्मा को सर्वस्व अर्पण करने के बाद मैं दरिद्री हो जाऊँगा तो जगत् में मेरी कीर्ति रहेगी। आप बतायें कि दान देने वाला बड़ा कि दान लेने वाला बड़ा?

अरे, दान देने वाला बड़ा है। जिनका विवाह हो रहा है वे वर राजा बहुत अकड़ कर चलते हैं। वे सोचते हैं कि मैं वरराजा हूँ, इसलिए बहुत बुद्धिमान हूँ। मेरी सवारी निकलेगी, सब मेरी पूजा करेंगे, किन्तु वरराजा में अक्ल नहीं है। वह नहीं जानता कि भिखारी और वरराजा समान हैं। भिखारी रोते-रोते भीख माँगता है। वर राजा हँसते, हुए बाजे ढोल बजा-बजाकर भीख माँगने आते हैं, तुच्छ तो जामाता है। कन्या का दान देने वाला पिता तो बहुत बड़ा है। कन्यादान महान् पुण्य है। दान देने वाले का हाथ ऊँचा रहता है। दान लेने वाले का हाथ नीचा रहता है। बलि राजा ने कहा–लोग मेरी प्रशंसा करेंगे। कुछ भी हो, मैं इस ब्राह्मण को तीन कदम की धरती का दान दूँगा। गुरुजी आप संकल्प कराइए। शुक्रचार्यजी ने मनाकर दिया वे बोले कि मुझे दीख रहा है कि तुम्हारा राज्य

जायगा। जिसमें यजमान का कल्याण नहीं है, जो यजमान का कल्याण-सूचक नहीं है, वैसा संकल्प मैं नहीं करा सकता हूँ। यजमान के हित का जो विचार करता है, वह पुरोहित कहाता है।

जब शुक्राचार्य ने मना कर दिया, तब वामनजी ने कहा—राजा! मैं सब कुछ पढ़-लिख कर आया हूँ। मुझे संकल्प करवाना आता है। वामनजी संकल्प करवाते हुए तिथि व नक्षत्रों का उच्चारण करते हैं। दान लेने वाले में महाविष्णु के दर्शन करने होते हैं। भगवान् इस स्वरूप में लेने आये हैं। महाविष्णु स्वरूप ब्राह्मणाय—ऐसा वामन जी बोलते हैं। उन्होंने बलि राजा से कहा—राजन्, झारी में से थोड़ा जल मेरे हाथ में डालिये। राजा ने झारी को टेढ़ी किया पर जल बाहर नहीं निकल रहा था। शुक्राचार्य झारी के भीतर जाकर बैठ गये थे। वामनजी महाराज समझ गये। उन्होंने दर्भ की एक तीली भीतर डाली कि शुक्राचार्य की एक आँख फूट गई। शुक्राचार्य जी ने सोचा कि अधिक बिघ्न डालूँगा। तो मुझे ये अन्धा कर देंगे।

मानव सजा देता है, तब निष्ठुर होकर देता है, किन्तु जब भगवान् सजा देते हैं, तब दया रखकर देते हैं। वामनजी ने शुक्राचार्यजी की दोनों आँखें नहीं फोड़ीं, एक ही फोड़ी है। रामायण में जयंत की कथा आती है। जयंत का अपराध अक्षम्य था। फिर भी श्रीरामचन्द्रजी ने जयंत की एक ही आँख फोड़ी है। वामनजी महाराज शुक्राचार्यजी की एक आँख फोड़कर सावधान करते हैं—आप ब्रह्मज्ञानी हैं, तपस्वी हैं, पर दो आँखों से जगत् को देखते हैं, इससे आपका ज्ञान बह जाता है। ज्ञान को टिकाये रखना है तो एक ही आँख से जगत् को देखिये। दोनों आँखों से जगत् को देखना ही तो विषमता है। एक आँख से जगत् को देखना ही समता है। सभी को एक ही आँख से देखिये। आप जिस देव की पूजा करते हैं, जिस देव के नाम का जप करते हैं, वही देव सभी में विराजमान हैं, ऐसा सद्भाव रखकर सभी को एक ही आँख से देखिये। आँख में विषमता आती है तो ज्ञान बह जाता है।

शुक्राचार्यजी झारी में से निकल आये। दान संकल्प परिपूर्ण हुआ। 'परमात्मनः प्रियताम् न मम' फिर वामनजी ने स्वरूप का विस्तार किया—

तद् वामनं रूपमवर्धताद्भुतं हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम्।
भूःखं दिशो द्यौर्विवराः पयोधय-स्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत॥

(८-२०-२१)

हजार हाथ हैं। वामनजी के चरण धरती में हैं, पर उनका मस्तक ब्रह्मलोक में गया है। वामनजी के श्रीअंग में सभी देव-ऋषी दीख पड़ते हैं।

वामनजी ने सारा जगत् व्याप्त कर लिया है। जगत् में व्याप्त होकर जगत् के बाहर वामनजी दस-अँगुल विराजमान हैं। वेदों में वर्णन आता है कि परमात्मा जगत् में सभी जगह हैं और जगत् के बाहर दस अँगुल हैं। भागवत के दूसरे स्कंध में वर्णन है–

सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत्।
तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति॥ (२-६-१५)

दस उँगलियों से वंदन होता है। वेद परमात्मा का वंदन करते हुए थक जाते हैं। भगवान् को बार-बार वंदन कीजिए। दो-तीन मिनट हों कि ठाकुरजी के दर्शन करके, वंदन कीजिए। परमात्मा का स्मरण कीजिए। वे जैसे हैं, वैसे आपको दिखाई देंगे।

विशाल वामनजी का दिव्य स्वरूप है। एक ही कदम में पृथ्वी आ गई है, दूसरा कदम उठाया, जिसे वह ब्रह्मलोक तक ले गये हैं। ब्रह्माजी वामनजी के चरण की पूजा करते हैं। दो ही कदमों में बलिराजा का समग्र राज्य आ गया है। तीसरे कदम को रखने की जगह नहीं है, तब उन्होंने बलिराजा से कहा–राजन्! तीन कदम पृथ्वी के दान का संकल्प किया है। संकल्प के अनुसार जो दान नहीं देते, उनकी दुर्गति होती है। ब्राह्मण से कपट करते हो? अरे! बलिराजा कपट कर रहे हैं कि वामनजी कपट कर रहे हैं? दान का संकल्प किया, तब छः वर्ष का बाल स्वरूप था और धरती नापते हैं तब विराट् स्वरूप प्रकट किया है। वामनजी ने कहा–राजा! अभी मेरा एक कदम बाकी है। बलिराजा थोड़े घबराये। बलि बंधन में आ गये हैं। प्रभु ने सेवकों को आज्ञा दी–बलि को बाँध लो। बलि महाराज ने ऐसा कहा था कि दान लेने वाला तुच्छ है, देने वाला बड़ा है। बलि में थोड़ा अभिमान था कि मैं बड़ा हूँ। उन्होंने परमात्मा को धन दिया, मन दिया पर अभिमान न दिया, तन न दिया। अभी तक कदम बाकी है। बलिराजा को बाँधने के लिए परमात्मा जब तैयार हुए तब विन्ध्यावली रानी आयीं। उन्होंने परमात्मा की बार-बार वंदन करके स्तुति की–

क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः।
कुर्तः प्रभोस्तव किमस्यत आवहन्ति त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः॥

(८-२२-२०)

यह संसार आपकी लीला-भूमि है। आप स्वामी हैं। कोई भी मानव स्वामी नहीं हो सकता। जीव तो तन का भी स्वामी नहीं है, तो धन का, घर का स्वामी कैसे हो सकता है? स्वामी तो परमात्मा हैं, यह मानव स्वामी नहीं है। वह तो केवल मुनीम है। उसे प्रबन्ध करने का काम दिया गया है। अज्ञान से ही जीव ऐसा समझता है कि मैं ही स्वामी हूँ। घर में सेवक बनकर रहना। घर में स्वामी बनकर रहने वाला दुःखी होता है। आपके घर के स्वामी प्रभु हैं। प्रभु को स्वामी मानिये,

तो समग्र चिंता प्रभु को होगी। विन्ध्यावली ने कहा–आपको कौन दान दे सकता है? मेरे पतिदेव के बोलने में गलती हुई है। हमने आपको कोई दान नहीं दिया है। जो कुछ था, आपके चरणों में अर्पण किया है, आपका ही आपको अर्पण किया है। उनको बोलना नहीं आया, मैं क्षमा माँगती हूँ। मेरे पतिदेव को न बाँधियेगा।

बलिराजा घबरा गये थे। विन्ध्यावली ने उन्हें धीरज बँधाया और समझाया–आपके राज्य में इनके दो कदम समाविष्ट हो गये। अभी शरीर शेष है। पति के शरीर पर पत्नी का अधिकार होता है। पत्नी की अनुज्ञा के बिना पति अपना शरीर नहीं दे सकता। पति-पत्नी मिलकर दिव्य तत्त्व बनता है।

विन्ध्यावली रानी ने कहा–भगवान् के चरणों में आप वंदन कीजिये। दाहिने चरण में आप वंदन कीजिये। बाँये चरण में मैं वंदन करती हूँ। किसी भी सत्कर्म की समाप्ति वंदन से होती है। बलिराजा को सूक्ष्म अभिमान है, अकड़े खड़े हैं। दान देने के बाद अहम् बढ़ जाता है। दान देने के बाद दीनता आती है। हृदय सरल बनता है और अभिमान मरता है, तब ही दान सार्थक होता है। दान देने के बाद अगर अभिमान बढ़ता है, तो दान भी पतन लाता है।

बलि जीवात्मा है, श्रीवामनजी महाराज परमात्मा हैं। यह जीव जब बलवान बनता है, तब परमात्मा आँगन में आते हैं। बलवान अर्थात् पहलवान नहीं। जिसका प्रेम-बल बढ़ा है वही बलवान है। द्रव्य-बल, बुद्धि-बल, ज्ञान-बल, शरीर-बल सबकी जब हार होती है तब प्रेम-बल की विजय होती है। जो प्रेम-बल बढ़ाता है, जो परमात्मा की सेवा कीजिए। शरीर में जो शक्ति है, उसे शुक्र कहते हैं। शक्ति की जो सेवा करत है, शक्ति का संग्रह करता है, जो प्रत्येक इंद्रिय से संयम रखता है, उसका प्रेमबल बढ़ता है। मानव की आँखों में बहुत शक्ति है, परन्तु मानव चाहे किसी से आँख मिलाता है। उसकी एक-एक इन्द्रिय में दिव्य शक्ति है। शक्ति का दुरुपयोग बड़ा पाप है, शक्ति का सदुपयोग ही पुण्य है। जो शुक्राचार्य की सेवा करता है, प्रत्येक इन्द्रिय का संयम रखता है, वह ही परमात्मा से प्रेम कर सकता है। प्रेमबल जब बढ़ता है, तब परमात्मा वामन बनकर आते हैं।

वामन शब्द का अर्थ होता है ठिगना! यह जीव जब ईश्वर के साथ अतिशय प्रेम करता है, तब वे चार कदम नहीं माँगते हैं, दो कदम भी नहीं माँगते हैं, किन्तु तीन कदम माँगते हैं। तन, मन और धन–ये तीन कदम हैं। प्रभु की सेवा में शरीर को कष्ट दीजिये। शरीर को बहुत सुख न दीजिए। शरीर से बहुत लाड़ न कीजिये। भगवद् सेवा में–परोपकार में शरीर को कष्ट दीजिए। तन से सेवा कीजिये, मन से सेवा कीजिए। कई लोग धन से सेवा करते हैं पर तन से सेवा नहीं करते हैं। सिर्फ धन से सेवा करने वाले का अभिमान बढ़ता है। तन से सेवा करने से अभिमान मरता

है। हां, धन से सेवा करने पर धन के प्रति ममत्व घटता है। लक्ष्मी मेरी नहीं है, लक्ष्मी नारायण की है, तब ऐसा भाव आता है। लक्ष्मी मेरी है–ऐसा समझने वाले पर मार पड़ती है। लक्ष्मी नारायण की है, ऐसा भाव रखने पर लक्ष्मीजी कभी जीव को नारायण की गोद में बैठा भी देती हैं। प्रभु ने धन दिया है तो धन से सेवा कीजिये। भगवद् सेवा में परोपकार में, इसका सदुपयोग कीजिये।

परमात्मा की सेवा मन से कीजिये। मन से सेवा करने पर सेवा में थकान नहीं होगी। प्रेम से भावपूर्वक सेवा कीजिये। कोई भी काम प्रेम से करने से थकान नहीं होती है। मन में ऐसी शक्ति होती है। कई लोग सेवा-पूजा के बाद कहते हैं–अब मैं ऊब गया हूँ! थक गया हूँ! सेवा करने पर थकने वाला सेवा नहीं करता वह तो ढोंग करता है। प्रेम से प्रभु-नाम के जप करते-करते भावपूर्वक सेवा करने से थकान नहीं होती। भगवान् आपको ऐसी सेवा करने की शक्ति प्रदान करेंगे। परमात्मा तन, धन और मन–तीनों चीजें माँगते हैं। ईश्वर को जीव देता है पर थोड़ा अपने लिए रख कर देता है। बलि राजा ने धन दिया, मन दिया पर तन नहीं दिया। जब बलि राजा तन अर्पण करते हैं, तब वे वस्तुत देहाभिमान अर्पित करते हैं। समर्पण करने पर मैंने दिया है–यह भूल जाइए। आप जब कभी अच्छा कार्य करते हैं, तब अन्त में संकल्प करना पड़ता है। परमात्मनः प्रियताम् न मम। कहकर जल छोड़ना पड़ता है। इसका अर्थ है–मैंने कुछ भी किया नहीं है। सत्कर्म करने पर, दान देने पर जिसे याद रहता है कि मैंने दिया है–उसका दान कृष्णार्पण नहीं हुआ है। जो कृष्णार्पण नहीं हुआ है। जो कृष्णार्पण करता है उसे याद ही नहीं आता कि मैंने दिया है।

आप जब किसी को भी दान देते हैं, तब श्रीकृष्ण स्मरण करते हुए ऐसी भावना रखिये–मेरे बालकृष्णलाल देते हैं। यह सब लाला का है। आप जब देते हैं, तब लेने वाले में परमात्मा का दर्शन करके दीजिये। आप जब देते हैं, तब परमात्मा श्रीकृष्ण देते हैं, ऐसी भावना से दीजिये। यों आपको दान का हजार गुना फल प्राप्त होगा। दान लेने वाले भी भगवान्, दान देने वाले भी भगवान्–मैं तो हाथ जोड़कर खड़ा हूँ–ऐसे सद्भाव से दीजिये।

बलि में सूक्ष्म अभिमान था और इसी अभिमान के कारण वे अकड़कर खड़े थे। बलि नम्र नहीं होते हैं, तभी प्रभु को वे प्रिय नहीं लगते। विन्ध्यावली रानी कहती हैं–ये साक्षात् परमात्मा है। आप प्रणाम करिये। प्रभु से कहिये कि एक कदम बाकी है, उसे मेरे सिर पर रखिये। दसवें स्कन्ध में एक पद है, गोपियाँ भगवान् को मनाती हैं और कहती हैं–

करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्। (१०-३१-५)

अपना हाथ मेरे सिर पर रखिये। मस्तक में बुद्धि है और बुद्धि में काम बैठा है। वही श्रीकृष्ण मिलन में बिघ्न लाने वाला है। जप-तप के द्वारा शरीर से काम निकल जाता है। इन्द्रियों

में से वह निकलता है, पर बुद्धि में सुप्त रहता है। बुद्धि में बैठा हुआ काम दूसरे जन्म में जाग उठता है। सद्गुरुदेव कृपा करके मस्तक पर हाथ रखते हैं, तब बुद्धिगत काम का विनाश होता है। मानव साधन करता है किन्तु सद्गुरु की कृपा होती है, तब ही बुद्धि से काम निकलता है। बुद्धि में बैठा काम पुनर्जन्म का कारण बनता है।

विन्ध्यावली के सत्संग से बलि राजा का अभिमान उतर गया। बलि को होश आया। तब बलि महाराज सद्भाव से भगवान् के चरणों में वंदन करते हैं और कहते हैं—मैं तो मात्र वंदन करता हूँ। मैंने कुछ भी नहीं दिया है। इस जगत् में जो कुछ है, उसके मालिक आप हैं। आपको कौन दान दे सकता है? मुझ से भूल हुई है। एक क़दम बाकी है उसे आप मेरे मस्तक पर रखिए।

भगवान्, वामनजी के मस्तक पर चरण रखते हैं। बलि बहुत भाग्यवान हैं। देव-गंधर्व बलि को धन्यवाद देते हैं। परमात्मा के चरण इसके मस्तक पर आये। दैन्य आता है, तब प्रभु प्रसन्न होते हैं। बलि महाराज अब दीन बने हैं। परमात्मा का हृदय आर्द्र हुआ। परमात्मा ने बलि राजा से कहा—स्वर्ग का राज्य मैंने देवों को दिया है। पाताल का राज्य मैं तुम्हें देता हूँ। तुम पाताल पर राज्य करो। तुमने सर्वस्व अर्पण क़िया है। मैं तुम्हें क्या दूँ? आज से मैं तुम्हारे द्वार पर पहरा दूँगा।

४०– लक्ष्मी से भेंट

बलिराजा पाताल में गये। तन, मन धन से सेवा-स्मरण करते हुए जो तन्मय बनता है, भगवान् उसके घर पहरा देते हैं। इन्द्रियाँ शरीररूपी घर के दरवाजे जैसी हैं। आँख में श्रीकृष्ण, काम में श्रीकृष्ण, मुख में श्रीकृष्ण, मन में श्रीकृष्ण—प्रत्येक इन्द्रिय में प्रभु को पधराइये। आप जिस इन्द्रिय से प्रभु-भक्ति नहीं क़रेंगे, उस इन्द्रिय से जाने-अनजाने पाप होता रहेगा।

वक्ता जब कथा करता है, तब श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए बोलता है। श्रोता ज़ब कथा सुनते हैं तब भगवान् में दृष्टि रखकर, भगवान् में कान रखकर भगवान् में मन रखकर कथा श्रवण करते हैं। कथा में कई लोग कान से भक्ति करते हैं, पर आँख से नहीं करते। चारों ओर देखते हैं। आँखे भक्ति नहीं करेंगी तो चंचल होंगी, पाप क़रेंगी। प्रत्येक इन्द्रिय से भक्ति करने की आदत डालिये।

तन, मन और धन से जो सेवा-स्मरण करते हैं, तन्मय बनते हैं, उनकी एक-एक इन्द्रिय के द्वार पर भगवान् विराजमान रहते हैं जहाँ परमात्मा विराजमान हैं, वहाँ काम नहीं आता है। मानव जिस इन्द्रिय से भक्ति नहीं करता है, उस इन्द्रिय से काम भीतर प्रविष्ट हो जाता है और उस इन्द्रिय द्वारा पाप होता है। काम बहुत बलवान् है। काम जीव को ठगता है, मारता है, इससे उसे मार कहते हैं।

बलि महाराज एक-एक द्वार में प्रभु चतुर्भुज नारायण के दर्शन करते हैं। जहाँ वे दृष्टि डालते हैं, वहाँ भगवान् का स्वरूप देखते हैं। कान श्रीकृष्ण कथा सुनते हैं। मन में परमात्मा का स्वरूप स्थिर हुआ है। एक-एक इन्द्रिय के द्वार में प्रभु विराजमान हैं, बलिराजा को स्वर्ग से भी अधिक पाताल में आनंद आ रहा है। सब प्रसन्न हैं, देवों को स्वर्ग का राज्य मिला, इससे प्रसन्न हैं। पर एक माता महालक्ष्मीजी वहाँ नाराज हैं। बैकुण्ठ में माताजी अकेली विराजमान हैं। माता की प्रसन्नता नहीं हैं। उनका मन नहीं लग रहा है। एक दिन उन्होंने नारदजी से पूछा-नारद! तुम कुछ जानते हो। भगवान् कहाँ विराजमान हैं? नारदजी ने हाथ जोड़कर कर कहा-बलिराजा के घर दान लेने गये थे और बंधन में आ गये हैं। मैंने ऐसा सुना है कि बलिराजा के द्वार पर हाथ में लकड़ी लेकर सिपाही के समान खड़े रहते हैं और पहरा देते हैं। लक्ष्मीजी ने पूछा घर कब पधारेंगे? नारदजी ने कहा-बलिराजा जब अनुमति देंगे, तब ही प्रभु पधारेंगे। परमात्मा बलि राजा के अधीन हुए हैं।

माता महालक्ष्मीजी ने लीला की। ब्राह्मण-पत्नी का रूप उन्होंने धारण किया। बहुत सादा श्रृंगार किया और बलिराजा के दरबार में आयीं। जहाँ नारायण विराजमान रहते हैं, वहाँ बिना निमंत्रण लक्ष्मीजी पधारती हैं।

आजकल बहुत से लोग धन के पीछे पागल हैं। लक्ष्मीजी महान् पतिव्रता हैं। अकेली किसी के घर नहीं जाती हैं और जाती भी हैं तो उल्लू पर बैठकर जाती हैं और रुलाती हैं। जिसके घर पर लक्ष्मीजी, नारायण के साथ पधारती हैं, उसे बहुत शांति देती हैं। माताजी से कहिये-माता! आप अकेली नहीं पर नारायण के साथ पधारिये। जो नारायण को पाते हैं, लक्ष्मीजी उनके घर गरुड़ पर बैठकर बिना निमंत्रण के पधारती हैं। लक्ष्मीजी जिसके घर गरुड़ पर बैठकर जाती हैं, उसे बहुत शांति मिलती है।

बलि महाराज लक्ष्मीजी को नहीं पहिचान सके परन्तु बलिराजा ने बहुत विनय से पूछा-आप कौन हैं? क्यों आयी हैं? लक्ष्मीजी ने कहा-मैं ब्राह्मण की पत्नी हूँ। मेरे माता-पिता नहीं हैं, भाई भी नहीं है। पीहर में जाने की इच्छा होती है, तब कहाँ जाऊँ? मैंने सुना है कि बलि राजा की कोई बहिन नहीं है। मैं तुम्हारी धर्म की बहिन होने के लिए आयी हूँ। तुम मेरे धर्म के भाई हो जाओ न! माताजी ने श्रृंगार नहीं किया था, पर उनका तेज कहाँ छिप सकता था? बलि राजा ने सोचा-ये लक्ष्मी जैसी दीख रही हैं। ये कौन होंगी? बलि राजा ने लक्ष्मीजी को प्रणाम किया और कहा-आज से मैं आपका छोटा भाई हुआ। आप मेरी बड़ी बहिन हैं। यह तुम्हारा पीहर हुआ। इस घर में जो कुछ है, तुम्हारा है। जरा भी संकोच न रखियेगा।

बलि महाराज के घर साक्षात् लक्ष्मीजी पधारी हैं। जब से लक्ष्मीजी पधारी हैं, सारा गाँव सुखी हो गया है। गाँव में कोई दीन-हीन नहीं रहा। कोई रोगी नहीं रहा। किसी ने झगड़ा नहीं किया। बलि महाराज को आश्चर्य हुआ। सोचने लगे—ये बड़ी बहन जबसे आई हैं, तब से मैं सुखी हुआ। ये यहीं रह जायँ तो अच्छा है। सब सुख में हैं, आनन्द में हैं पर माताजी का मन नहीं लग रहा है। सोचती हैं कि स्वामी हाथ में लकड़ी लेकर सिपाही जैसे खड़े रहते हैं। यह माताजी से सहन नहीं होता। ये बन्धन में हैं। कोई अवसर आ जाय तो मैं इनको बन्धन से छुड़ा लूँ।

सावन की पूर्णिमा का दिन आ गया। लक्ष्मीजी ने बलि राजा से कहा—भाई! आज रक्षाबन्धन है। मैं तुम्हारे लिये सुन्दर राखी लायी हूँ। बलि राजा बहुत भाग्यवान् हैं। जगन्माता महालक्ष्मी उनके हाथ में राखी बाँधती हैं। बलि राजा को आनन्द हुआ। अब तो मुझे काल का भी भय नहीं है। मैं निर्भय हूँ। बलि राजा ने लक्ष्मीजी के चरणों में बार-बार वंदन करके कहा—बड़ी बहिन! आप जब से आयी हैं, सारा गाँव सुख में रहता है। आज आपने मेरे हाथ में राखी बाँधी है। मेरा धर्म है कि आपको कुछ देना चाहिये। आपके घर में क्या है, क्या नहीं है, मैं नहीं जानता पर मेरी बहुत इच्छा है कि जो आपके घर न हो वह माँग लीजिये।

लक्ष्मीजी ने कहा—मेरे घर में सब कुछ है पर एक नहीं। बलि राजा ने कहा—जो नहीं है, वही माँग लीजिये। आज मुझे देना ही है। बहिन जब राखी बाँधती है, तब खाली हाथ नहीं लौटती है। लक्ष्मीजी ने कहा—भाई, तुम्हारे द्वार पर जो पहरा दे रहा है, उसे तुम सदैव के लिये स्वतन्त्र कर दो। बलि राजा ने पूछा—बहिन, मेरे द्वार पर पहरा देने वाले तुम्हारे कुछ लगते हैं क्या?

चतुर्भुज स्वरूप धारण करके लक्ष्मीनारायण साक्षात् प्रकट हुए। लक्ष्मीनारायण के दर्शन करते हुए बलि राजा को अत्यन्त आनन्द हुआ। उन्होंने लक्ष्मीनारायण की पूजा की। बलि के बंधन से छुड़ाकर परमात्मा के साथ लक्ष्मीजी बैकुण्ठ गयीं—

क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे।
यत्र यत्रानुकीर्त्येत तत् तेषां सुकृतं विदुः।। (८-२३-३१)

परम पवित्र वामन चरित्र की यह कथा वक्ता-श्रोता के पापों को जलाने वाली है। पितृ तिथि के दिन वामन-चरित्र की कथा सुनने पर पितरों को सद्गति प्राप्त होती है।

तेंतीसवें अध्याय में वामन चरित्र की समाप्ति की गई है। चौबीसवाँ अध्याय अष्टम स्कन्ध का अन्तिम अध्याय है। इस अध्याय में मत्स्यनारायण की कथा कही है।

दक्षिण भारत में कृतमाला नदी के तट पर सत्यव्रत मनु ध्यान कर रहे हैं। मानव सत्कर्म करता है तो लक्ष्मी प्राप्त होती है और लक्ष्मी पति भी आते हैं। एक सत्कर्म पूर्ण हो जाय तब दूसरा

सत्कर्म कीजिये। दूसरा पूर्ण हो जाय तो तीसरा शुरू कीजिये। सत्कर्म में सन्तोष न मानिये। उसका निरन्तर लोभ ही रखिये। जो सत्कर्म के साथ स्नेह करता है, सारा दिन सत्कर्म करता है, उसके हाथ में भगवान् आते हैं। सत्यव्रत मनु के हाथ में मत्स्यनारायण पधारे हैं। मनु महाराज को मत्स्य संहिता का उन्होंने उपदेश दिया है। प्रलयकाल में सर्वत्र विनाश हुआ, तब भी मनु का विनाश नहीं हुआ। सत्य के साथ स्नेह करने वाले का विनाश नहीं होता। वह अमर बनता है। उसे काल नहीं मार सकता। संक्षेप में मत्स्यनारायण की कथा सुनाकर अष्टम स्कन्ध परिपूर्ण करते हैं–

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा।
दितिजमकथयद् यो ब्रह्म सत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि॥

(८-२४-६१)

इति अष्टमः स्कन्धः समाप्तः

हरि ॐ तत्सत्।

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

नवम स्कन्धः

४१- सूर्य वंश राजा अम्बरीष

मन्वन्तराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे।
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च॥ (९-१-१)

परमात्मा श्रीकृष्ण को सनातन धर्म अतिशय प्रिय है। धर्म की मर्यादा में जो रहता है, वही बड़ा है। धर्म की मर्यादा का भंग करने वाला निम्न है। भागवत में श्रीराम-कथा इसलिये कही गयी है। श्रीराम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं। जो श्रोता प्रभु की मर्यादा का यथोचित पालन करते हैं, वे श्रीकृष्ण का रहस्य समझ सकते हैं।

श्रीराम पहले आते हैं, श्रीकृष्ण बाद में आते हैं। रामायण में श्रीकृष्ण की कथा नहीं आती है, पर भागवत में राम की कथा अनेक बार आती है। जब तक श्रीराम नहीं पधारते, तब तक श्रीकृष्ण भी नहीं पधारते हैं।

नवम सर्ग में दो प्रकरण हैं-सूर्यवंश और चन्द्रवंश। सूर्यवंश में राजाधिराज श्रीराम प्रकट हुए, चंद्रवंश में श्रीकृष्ण का प्राकट्य हुआ है। रामजी की सब लीलाएँ सरल हैं, श्रीकृष्ण की लीलाएँ रहस्यमयी हैं। वे जन्म से ही लौकिक हैं। श्रीकृष्ण मथुरा के कारागृह में प्रकट हुए, रामजी महाराज दशरथ महाराज के राजमहल में प्रकट हुए हैं। श्रीकृष्ण रात्रि में बारह बजे प्रकट हुए। रामजी महाराज़ दिन में बारह बजे प्रकट हुए, जिससे किसी को कष्ट न हो। एक वैष्णव ने लाला से पूछा आप रात्रि के बारह बजे के बाद प्रकट हो कर आते हैं, इससे सारी रात जागना पड़ता है। आप दिन में क्यों नहीं आते हैं? लाला ने कहा-रामजी तो राजाधिराज हैं। राजाधिराज दिन में पधारते हैं। श्रीराम की बारात निकलती है, प्रजा को उनके दर्शन होते हैं। मैं राजा नहीं हूँ; मैं तो माखन चोर हूँ, इससे रात्रि में बारह बजे के बाद आता हूँ। चोर तो रात में ही आते हैं न? श्रीराम की मर्यादा का पालन करना बहुत कठिन है। श्रीकृष्णलीला का रहस्य समझना बहुत कठिन है। रामजी की लीला अनुकरणीय है। भागवत में रामलीला इसलिये है कि भागवत की कथा कहने

वाला वक्ता और सुनने वाले श्रोता रामजी की मर्यादा का समुचित पालन करें, व्यवहार भी रामजी जैसा ही रखें श्रीकृष्ण भगवान् की भक्ति करने वालों का जीवन रामजी जैसा होना चाहिए। श्रीकृष्ण की सभी लीलाएँ अनुकरणीय नहीं हैं। कुछ लीलाएँ अनुकरणीय हैं, कुछ चिंतनीय हैं। श्रीकृष्ण जो कर रहे हैं, उसको नहीं, पर श्रीकृष्ण जो कहें वही करना चाहिये।

श्रीकृष्ण माखन–चोरी करते थे, और हम भी करें तो? कीजिए, तो। सब मालूम पड़ जायगा। श्रीकृष्ण चोरी करते थे, ऐसा शुकदेवजी महाराज ने कहा ही नहीं है। शुकदेवजी महाराज बहुत विवेक से कथा करते हैं–गोकुल की गोपियाँ कहती हैं कि कन्हैया माखन–चोर हैं। मैं नहीं कहता हूँ। जो जगत् के स्वामी हैं, जो सर्वश्रेष्ठ हैं वे माखन–चोरी करते थे, ऐसा मैं कैसे कहूँ? गोपियाँ तो प्रेम की मूर्ति हैं। गोपी लाला को माखन–चोर कह सकती हैं। प्रेम में गाली कभी बुरी नहीं लगती हैं। गोपियाँ भले ही माखन–चोर कहकर बुलायें; हमारे जैसे साधारण व्यक्ति लाला को माखन चोर कह दें, तो लाला को कैसे पसंद आये? वह तो तुरंत कह देगा–मैं चोर नहीं हूँ, तुम चोर हो, तुम्हारा बाप चोर है। यह सब माल कैसे इकट्ठा किया है, मैं जानता हूँ।

श्रीकृष्ण ने चोरी करने से पहले पूतना का विष पी लिया था और बाद में चोरी की थी। जिसको श्रीकृष्ण का अनुकरण करना हो वह पहिले श्रीगणेश पूतना–चरित्र से करे तो कोई हर्ज नहीं है हमें। श्रीकृष्णलीला का प्रारंभ पूतना–चरित्र से हुआ है। श्रीकृष्ण विष पी गये। श्रीकृष्ण देव नहीं पर देवों के देव हैं, परमात्मा हैं। अभी कोई आ कर कह दें कि कथा के इस मंडप में नाग आया है तो क्या आप कथा में बैठेंगे? बालकृष्णलाल तो खेल–खेल में काली नाग का दमन करते हैं। श्रीकृष्ण परमात्मा हैं। श्रीकृष्ण जो करते थे, उसे न कीजिये। ऐसा कोई देव नहीं कर सकता है। श्रीकृष्ण वृन्दावन में रास लीला करते हैं, पर उसका भी नियम है। छह–सात वर्ष के बालक को ही रासलीला में रखते हैं। यह अति दिव्य, निर्दोष लीला है। रासलीला के दर्शन कीजिये और सुनिये पर रासलीला करियेगा नहीं। रासलीला का चिंतन कीजिये। मध्य में राधा–माधव हैं। एक–एक गोपी के पास श्रीकृष्ण का स्वरूप है। प्रेम से वे खेल रहे हैं। रासलीला के अनुकरण की अनुमति नहीं है। श्रीकृष्ण की सब लीलाऐं अनुकरणीय नहीं हैं। रामचन्द्रजी की प्रत्येक लीला अनुकरणीय है। रामजी महाराज जैसा आप कीजिये। श्रीराम परमात्मा हैं, पर रामजी की प्रत्येक लीला समाज को धर्म का शिक्षण देने के लिये ही है।

श्रीराम सनातन धर्म की मूर्ति हैं। श्रीराम मर्यादा के अवतार हैं, श्रीकृष्ण प्रेमावतार हैं। भगवान् शंकर करुणावतार हैं।

कर्पूर–गौरं करुणावतारं संसार सारं भुजगेन्द्रहारं–शिवजी करुणा का स्वरूप हैं; श्रीकृष्ण प्रेम–स्वरूप हैं। श्रीराम मर्यादा–स्वरूप हैं। भागवत की कथा के वक्ता और श्रोताओं को मर्यादा में रहना चाहिये। राम की मर्यादा का समुचित पालन करें तो मन शुद्ध हो जायगा और तभी रास का रहस्य समझ में आ सकेगा।

कुछ लोगों को रासलीला में शंका होती है। मानव जब अल्प बुद्धि से रासलीला पर विचार करने लगता है, तब उसमें कुभाव आता है। रासलीला निर्दोष लीला है। गंगा तट पर यह कथा कही गई है। कथा कहने वाले शुकदेवजी महाराज हैं। उनकी कमर में रस्सी तक नहीं तो लंगोटी कहाँ से होगी? वे नग्न दिगम्बर हैं। यह पुरुष हैं और यह स्त्री हैं–ऐसा भेदभाव जिनकी दृष्टि में नहीं है, जिनके मन में नहीं है। जिन्हें सारा जगत ब्रह्म रूप दीखता है। वे ही महान् पुरुष यह कथा कहते हैं। रासलीला में काम–सुख का निरूपण होता तो शुकदेव जी कथा कह ही नहीं पाते। शुकदेवजी पूर्ण निष्काम हैं, निर्विकार हैं। तीन–चार वर्ष का बालक शृंगार की बात सुनकर भी समझता नहीं है, बोल भी नहीं सकता है। वह निर्विकार होता। शुकदेवजी भी पूर्ण निष्काम होने से काम सुख का निरूपण नहीं कर सकते हैं। रासलीला में जीव ईश्वर के मिलन का वर्णन करते हैं। परीक्षित कथा सुनने बैठे हैं। एक–दो दिन में जिनकी मृत्यु होने वाली है और जो कथा के प्रमुख श्रोता हैं, वे ही परीक्षित यदि रासलीला में काम सुख का निरूपण होता तो सुनते ही नहीं। जिसकी मृत्यु नजदीक हो, उसे शृंगार की बातें नहीं भाती हैं। श्रोता ऐसा है कि थोड़े ही समय में जिसकी मृत्यु होने वाली है और वक्ता परम हँस शिरोमणि हैं। रासलीला में जिसे काम की गन्ध आती है, उसकी बुद्धि कलुषित है, उसने सत्संग नहीं किया है।

श्रीकृष्ण की रासलीला अति दिव्य है, मधुर है, निष्काम है। रामचन्द्रजी की मर्यादा का पालन करने वाला ही श्रीकृष्णलीला का महत्व समझ सकता है।

एक भाई ने मुझ से कहा कि–महाराज! आप कहते हैं कि रासलीला निर्दोष है; पर रासलीला में तो वर्णन आता है कि भगवान् गोपियों को बांहों में भरकर आलिंगन देते हैं। भगवान् आलिंगन देते हैं–इसका अर्थ यह है कि भगवान् में विकार आ गया है? अरे! श्रीकृष्ण का स्मरण करने वाले को कभी काम स्पर्श नहीं होता तो स्वयं श्रीकृष्ण को किस तरह होगा? सूर्य के पास अंधकार जा ही नहीं सकता। श्रीकृष्ण गोपियों को आलिंगन देते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि श्रीकृष्ण में विकार है। श्रीकृष्ण में विकार नहीं है। यह निर्विकार विशुद्ध लीला है।

कभी–कभी ऐसा भी होता है कि पिता, पुत्री को आलिंगन देता है। अट्ठारह–बीस वर्ष की कन्या है। उसका विवाह हुआ है। जब कन्या ससुराल जा रही है, तब विदा के समय पिता रोने

लगता है। कन्या घर छोड़कर जा रही है। माता-पिता को उसे छोड़ने का अति दुःख हो रहा है। कन्या पिता को वंदन करती है, उसी समय पिता कन्या को उठाकर गले लगा लेते हैं। कन्या के मन में विकार नहीं है, पिता के मन में भी विकार नहीं है, रास की क्रिया तो लौकिक-सी है। पर पिता कन्या का मिलन जितना निर्मल है, उससे, हजार गुना, सहस्र गुना शुद्ध-निर्मल मिलन गोपी और श्रीकृष्ण का है। इस मिलन में जरा भी विकार नहीं है। रासलीला में यह रहस्य है। यह दिव्य लीला है। किन्तु श्रीकृष्ण-लीला का यह रहस्य समझना बहुत कठिन है।

रामचन्द्रजी की मर्यादा का जो पालन करता है, वह रावण-काम को मार सकता है। रावण-काम को जो मार सकता है, रासलीला का महत्व उसी की समझ में आता है। इससे भागवत में मुख्य कथा श्रीकृष्ण की होने पर भी रामचरित्र पहिले आता है। इसे इसलिये दिया गया है कि भागवत को कहने वाला वक्ता और श्रोता सनातन धर्म की मर्यादा भंग न करें। धर्म की मर्यादा का भंग करने वाला बड़ा ज्ञानी हो या बड़ा योगी हो, वह भगवान् को प्रिय नहीं लगता। वह श्रीकृष्ण लीला का महत्व भी नहीं समझ सकता है।

सूर्यवंश में श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए हैं। राजा ने प्रश्न पूछा कि महाराज इस सूर्यवंश की कथा सुनने की मुझे बहुत इच्छा है। शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं-राजन् इस वंश की कथा अनेक दिनों तक कहता रहूँ तो भी इसका अंत नहीं आयेगा। समयानुसार इसे मैं संक्षेप में कहूँगा।

आदिनारायण परमात्मा की नाभि में से कमल प्रकट हुआ। उस कमल में से ब्रह्माजी प्रकट हुए। ब्रह्माजी के पुत्र मरीचि हुए। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। कश्यप के पुत्र विवस्वान सूर्य हुए। सूर्य के घर वैवस्वत मनु महाराज का प्राकट्य हुआ। वैवस्वत मनु के वंश में इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, पृषध्र, नरिष्यन्त नभग और कवि-ऐसे बालक पैदा हुए। एक-एक के वंश का वर्णन हुआ है। मनु महाराज के बड़े पुत्र जो इक्ष्वाकु हैं, उनके वंश में रघुनाथजी प्रकट होने वाले हैं।

मनु महाराज के दूसरे पुत्र राजकुमार पृषध्र के द्वारा अनजाने में गाय की हिंसा हुई। उसका वंश न बढ़ सका। मनु महाराज का दूसरा पुत्र नभग हुआ। नभग के घर नाभाग का जन्म हुआ। नाभाग के घर भक्तराज अम्बरीष महाराज प्रकट हुए-

नाभागादम्बरीषोऽभून्महाभागवतः कृती।
नास्पृशद् ब्रह्मशापोऽपि यं प्रतिहतः क्वचित्॥ (९-४-१३)

अम्बरीष राजा की कथा शुकदेवजी ने बहुत प्रेम से की है। शुकदेवजी महाराज संन्यासी महात्माओं के आचार्य हैं। शुकदेवजी महाराज भगवान् श्रीशंकराचार्य स्वामी के परमगुरु हैं। श्रीशंकर स्वामी के गुरु हैं गोविंद भगवद्पाद, गोविंद भगवान् के गुरु हैं गौड़पाद, और गौड़पाद शुकदेवजी

महाराज के शिष्य हैं। ब्रह्मविद्या की परम्परा इस तरह, चलती आ रही है। शुकदेवजी विद्या के आचार्य हैं, परमहंस शिरोमणि हैं। कथा राजा-रानी की कर रहे हैं। शुकदेवजी को राजा-रानी की कथा करने से क्या लाभ? विरक्त साधु, विलासी गृहस्थ के घर की बात भी नहीं सुनना चाहते हैं। विलासी गृहस्थ के घर की बातें सुनने पर भी मन बिगड़ने की संभावना रहती है। विलासी जन से साधु दूर ही रहते हैं। विलासी के घर में संतों को दुर्गन्ध आती है।

भागवत में किसी राजा की कथा नहीं है और किसी रानी की कथा भी नहीं है। भागवत के प्रत्येक अध्याय के अंत में लिखा है–

पारहंस्यां संहितायाम्

भागवत में परमहंस की कथा है। अम्बरीष महाराज राजमहल में परमहंस का जीवन व्यतीत करते हैं। परमहंस हैं, इसलिये भगवे वस्त्र पहिने हैं, ऐसा कुछ नहीं है। वे भक्ति के रंग में रंग गये हैं। राजमहल में सन्यासी के समान जीवन व्यतीत करते हैं। काँकरोली में जो द्वारकानाथ विराजमान हैं, वे अम्बरीष राजा के ठाकुरजी हैं। अम्बरीष राजा की प्रभु में निष्ठा है। स्त्री और संपत्ति भक्ति के साधन हैं, भोग के साधन नहीं हैं। अकेला पुरुष या अकेली स्त्री समुचति भक्ति नहीं कर सकते हैं। पुरुष को स्त्री की जरूरत है और स्त्री को पुरुष की जरूरत है। पति-पत्नी का पवित्र संबंध परमात्मा के लिये है।

अम्बरीष राजा के महल में रानियाँ सेवा में लीन हैं, पर राजा की आँखों में विकार नहीं है। राजा-रानी द्वारकानाथ की सेवा बहुत प्रेम से भाव-पूर्वक करते हैं। द्वारकानाथ स्वामी हैं, मैं सेवक हूँ–ऐसी उनकी निष्ठा है। मंदिर में बुहारी भी स्वयं लगाते हैं–

स वै मनः कृष्ण पदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये।।

(९-४-१८)

भगवान् आपको संपत्ति दें तो आप अपने काम के लिये भले ही नौकर रखिये, पर ठाकुरजी की सेवा के लिये नौकर न रखिये। ठाकुरजी की सेवा आप स्वयं कीजिये। अनन्य भाव से अम्बरीष महाराज द्वारकानाथ की सेवा करते हैं।

कई लोग ऐसा समझते हैं कि यह सब मैंने प्राप्त किया है। मैं अधिक सुख क्यों न भोग लूँ? आपको प्रभु जो देते हैं, वह आपके लिये ही देते हैं? जिसे प्रभु अधिक देते हैं, उससे प्रभु ऐसी आशा करते हैं कि यह मेरे बालकों की सेवा करे। संपत्ति भोग के लिये नहीं है, सेवा के लिये है, भक्ति के लिये है। ग्रन्थों में वर्णन है कि अम्बरीष महाराज के ठाकुरजी बावन मन काली मिर्चों

का भोजन करते थे। बावन मन मिर्चों के उपयोग से कितने मन खाद्य पदार्थ बनते होंगे? राजा सरस-सरस सामग्री बनवाते हैं, द्वारकानाथ को भोजन करवाते हैं और प्रभु का प्रसाद गरीबों, ब्राह्मणों, साधुओं को दान में बांट देते हैं अम्बरीष राजा संपत्ति का सदुपयोग करते हैं।

अम्बरीष महाराज निर्जला एकादशी का व्रत करते हैं। आप भले ही निर्जला एकादशी न करें, दूध पीकर व्रत कीजिए, फल खाकर व्रत कीजिये। एकादशी के दिन दो-तीन बार भूख लग जाये तो दो-तीन बार दूध पीजिये। दूध और फल के आधार पर एकादशी करने वाले को एकादशी का फ़ल मिलता है। कढ़ी-भात खाने वाले को फल नहीं मिलता है। कढ़ी या दाल-भात खाने वाले को पाप लगता है।

कुछ लोग एकादशी के आने पर यह समझते हैं कि दिवाली आ गयी है। एकादशी के दिन संयम रखकर भक्ति करनी चाहिये। एकादशी का व्रत तीन दिनों का है दशमी के दिन एक बार सादा, सात्विक भोजन करना चाहिये। एकादशी के दिन सुयोग्य रूप से व्रत करने के लिये रात्रि में जागरण करना चाहिये। द्वादशी के दिन भी एक ही बार भोजन करना चाहिये इन तीनों दिनों का तप ऐसा है कि इसकी शक्ति से आप ग्यारह-बारह दिनों तक पाप से दूर रह सकेंगे। एकादशी के समान श्रेष्ठ कोई भी व्रत नहीं हैं। बारह मास एकादशी का व्रत कीजिये। जिसे एकादशी का व्रत नहीं करना है, उसे भागवत की कथा भी नहीं सुननी चाहिये, क्योंकि कथा सुनने के बाद भी व्रत नहीं करते हैं, तो बहुत पाप लगता है।

हमारे शास्त्रों में लिखा है कि एकादशी के दिन अन्न दान महान पाप है। एकादशी के दिन अन्न का दान नहीं देना चाहिए। अन्न खाने वाले और अन्न खिलाने वाले दोनों को पाप लगता है। अन्न में सभी प्रकार के पाप आकर बसते हैं। व्यभिचार का पाप, ब्रह्म-हत्या का पाप, चोरी का पाप-सभी एकादशी के दिन अन्न में आते हैं। जो खाता है और जो खिलाता है, उसके सिर पर पाप जाता है। एकादशी के दिन आपके घर मेहमान आयें और ऐसा कहें कि मैं एकादशी का व्रत नहीं करता हूँ तो आप हाथ जोड़कर, मेहमान से कहिये-आप मेरे घर आये हैं तो एकादशी करनी ही पड़ेगी। कदाचित् उसे बुरा लगे तो भले ही लगे, दूसरी बार वह आपके घर नहीं आयेंगे।

कई लोग चातुर्मास की एकादशी करते हैं पर उनकी नीयत बिगड़ती है। वे कहते हैं-हम चारों महीने की एकादशी करते हैं तो क्या भगवान् पर उपकार करते हो? बारह महीनों की एकादशी कीजिये। पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय और ग्यारहवाँ मन-इन्हीं से सारा दिन भक्ति कीजिये। एकादशी के दिन हो सके तो अन्य प्रवृत्तियाँ छोड़िये। थोड़ी प्रवृत्तियाँ कीजिये। एकादशी

की रात्रि में 'श्रीकृष्ण-कृष्ण प्रभु का जप कीजिये। प्रभु के जप करते हुए कम से कम दो घंटे का जागरण कीजिये।

आप पंढरपुर गये होंगे। पंढरपुर में विट्ठलनाथजी महाराज एकादशी की रात में जागरण करते हैं। ठाकुरजी की शयन होती ही नहीं है। तुकाराम महाराज, एकनाथ महाराज श्री विट्ठलनाथजी के सम्मुख खड़े रहकर सारी रात कथा कहते हैं। ठाकुरजी सुनते हैं। प्रभु को ऐसी आदत हो गई है कि वे एकादशी की सारी रात जागते हैं। रात में भगवान् के नाम के जप करते हुए जागिये। आपके पाप जल जायेंगे। प्रभु आप पर बहुत कृपा करेंगे।

अम्बरीष राजा निर्जला एकादशी का व्रत करते हैं। शुकदेवजी महाराज इससे प्रसन्न होकर अम्बरीष राजा की कथा बहुत प्रेम से कहते हैं। कोई गरीब व्यक्ति निर्जला एकादशी का व्रत करे तो इसमें विशेष आश्चर्य नहीं, पर राजमहल में सब कुछ होने पर भी अम्बरीष राजा एकादशी का निर्जल व्रत करते हैं। शुकदेवजी इससे इन्हें बहुत चाहते हैं। कार्तिक शुक्ल पक्ष द्वादशी का दिन है। द्वारिकानाथ के सम्मुख सुन्दर सामग्री रखी है। अम्बरीष महाराज द्वारिकानाथ के नाम का जप करते हुए भावना से भोजन ले रहे हैं। आंखें उनकी बंद हैं।

उसी समय वहाँ दुर्वासा ऋषि पधारते हैं। अम्बरीष राजा स्वागत करते हैं और कहते हैं– महाराज आपने बहुत कृपा की। भोग की अब तैयारी हो रही है। प्रसाद लेकर पारण कीजिये। दुर्वासा ऋषि ने कहा–अपनी मध्याह्न संध्या करने से पहिले, मैं कुछ भी नहीं खाता हूँ।

अम्बरीष राजा ने कहा–महाराज! मेरा ऐसा नियम है कि त्रयोदशी शुरू होने से पहिले द्वादशी का पारण करना है। आप संध्या करके तुरन्त ही पधारिये। दुर्वासा ऋषि ने निमन्त्रण स्वीकार किया। श्रीयमुनाजी में स्नान करके वे मध्याह्न संध्या करने बैठे। संध्या में गायत्री के जप में ऐसे तन्मय हुए कि समय का ध्यान ही न रहा। दुर्वासा ऋषि ने जानबूझ कर विलम्ब नहीं किया है। किन्तु अम्बरीष राजा घबरा गये हैं। सोचते हैं कि अब द्वादशी पूर्ण होती है। व्रत के नियमानुसार त्रयोदशी से पहले मुझे पारण करना है। पारण करता हूँ तो ब्राह्मण का अपमान है, नहीं करता हूँ तो व्रत का भंग होता है! एक ब्राह्मण ने सलाह दी–आप ठाकुरजी को अर्पण करके थोड़ा जल पी लीजिये। निर्जल व्रत का पारण जल से कीजिये। ब्राह्मण का अपमान भी नहीं होगा। अम्बरीष राजा ने जल से पारण कर लिया और फिर शान्ति से दुर्वासा की राह देखने लगे।

जब सूर्यनारायण मस्तक तक आ पहुँचे, तब दुर्वासा ऋषि को ख्याल आया कि बहुत देर हो गयी है। मैंने राजा के व्रत का भंग करवाया है। संध्यादिक नित्यकर्म परिपूर्ण करके दुर्वासा ऋषि विचार करते-करते चलते हैं–शायद राजा ने पारण कर लिया होगा। न, न मेरे जैसे ब्राह्मण को

निमंत्रण देकर कैसे पारण कर लेंगे? सोचते-सोचते वे आ पहुँचे। अम्बरीष राजा खड़े हो गये स्मित करके ऋषि का उन्होंने स्वागत किया।

दुर्वासा ऋषि ने अनुमान किया—व्रत का भंग हो तो राजा हँस नहीं सकते। राजा तो प्रसन्न दीख रहे हैं, मुझे लग रहा है कि राजा ने पारण कर लिया है। दुर्वासा का अनुमान गलत नहीं था। राजा ने पारण किया तो था पर जल से ही किया था। दुर्वासा को लगा कि राजा ने भोजन किया होगा। उन्होंने राजा से कहा—तुमने मुझे निमंत्रण दिया और फिर भोजन क्यों कर लिया? तुम्हें भक्ति का अभिमान हो गया है क्या? अम्बरीष राजा ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज! मैंने आपका अपमान नहीं किया है। मैंने भोजन नहीं किया है, जल ही पी लिया है। पर जिसे क्रोध आ गया हो, वह दूसरे की बात तक नहीं सुन पाता। दुर्वासा ऋषि ने मस्तक से एक केश निकालकर वहाँ पटका, तुरन्त एक भयंकर राक्षसी उत्पन्न हो गयी। उस कृत्या राक्षसी से ऋषि ने कहा—इस अम्बरीष को मार डाल।

जैसे ही कृत्या अम्बरीष राजा को मारने दौड़ी, वैसे ही सुदर्शन चक्र ने आकर कृत्या को जलाकर भस्म कर दिया। अम्बरीष राजा नहीं जानते थे कि सुदर्शन चक्र चारों ओर से उनका रक्षण कर रहा है। आप जिस देव की प्रेम से पूजा करते हैं, जिसके नाम का जप करते हैं,वे देव भले ही दिखाई न पड़े पर वे आपके साथ ही रहते हैं। वे गुप्त रूप से आपका रक्षण करते हैं। कृत्या को जलाकर भस्म कर देने के बाद सुदर्शन चक्र दुर्वासा के पीछे दौड़ा। सुदर्शन चक्र का तेज दुर्वासा ऋषि से सहन न हुआ। दुर्वासाजी घबराते हुए, दौड़ते-दौड़ते बैकुण्ठ में पहुँचे।

भगवान् ने कहा—पधारिये, पधारिये। दुर्वासा ने कहा— क्या पधारिये? आपका चक्र मेरे पीछे पड़ा है। भगवान् ने कहा—चक्र मेरा नहीं है, चक्र तो अम्बरीष का है।

वैष्णव अपना सर्वस्व मुझे अर्पण करते हैं और इससे मैं अपना सर्वस्व वैष्णवों को देता हूँ। पतिव्रता स्त्री पति की अनन्य भाव से सेवा करके जिस तरह पति को वश में करती हैं, उसी तरह वैष्णव मेरी निरंतर सेवा और स्मरण करके मुझे परतंत्र बना देते हैं।

तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा।। (९-४-७०)

महाराज! तप और विद्या, विनय से सुशोभित होती है। विनय का साथ न हो तो विद्या विनाश कर देती है। किसी को निम्न समझने के लिये विद्या नहीं है। परमात्मा के दर्शन करने के लिये ज्ञान है। राजा ने आपका अपमान नहीं किया है। आपने बिना कारण क्रोध किया हैं। आपका अपराध है। दुर्वासा ऋषि ने कहा—अपराध हुआ है, तो मैं क्षमा माँगता हूँ। परमात्मा ने कहा—मुझ

से क्षमा माँगने से क्या लाभ? जिसका अपराध किया है, उससे क्षमा माँगिये। दुर्वासा ऋषि अम्बरीष के चरणों में वंदन करने दौड़ पड़े। भगवान् के लाड़ले भक्त कभी भी सनातन धर्म की मर्यादा नहीं तोड़ते हैं। अम्बरीष ने कहा–आप वंदन कर रहे हैं, यह उचित नहीं है। अम्बरीष राजा ने सुदर्शन चक्र की प्रार्थना कीं। सुदर्शन चक्र का वेग शांत हुआ। अम्बरीष राजा ने दुर्वासा को प्रेम से भोजन करवाया। दुर्वासा ऋषि ने राजा को बहुत-बहुत आशीर्वाद दिये।

भक्ति में दुर्वासना बिघ्न लाती हैं। लोग मुझे मान दें, लोग मेरी बात मानें, मैं सुख भोग लूँ–ये सब दुर्वासनाएँ हैं।

आप सब को मान देने की इच्छा रखिये। मान पान की इच्छा न रखिये। सुख भोगने की इच्छा न रखिये। जिसको सुख भोगने की इच्छा रहती है उसका मन अशांत रहता है। जो दूसरे को सुख देने की इच्छा रखता है, उसकी भक्ति बढ़ती है। भक्ति में दुर्वासना बिघ्न लाती है। सद्वासना भक्ति को पुष्ट करती है। दुर्वासना से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध के कारण मानव कर्कश वाणी का प्रयोग करता है। कर्कश वाणी ही कृत्या है। भक्ति माता है, ज्ञान-वैराग्य बालक हैं। भक्ति करने से ज्ञान का प्रस्फुटन होता है। जहाँ शुद्ध भक्ति होती है, वहीं सुदर्शन चक्र का–ज्ञान-चक्र का पहरा रहता है। भक्त की कोई प्रत्यक्ष निंदा करे या अप्रत्यक्ष निंदा करे, सच्ची निंदा करे या झूठी निंदा करे, जिस भक्त को भक्ति का आनन्द मिला है, उस पर निंदा का असर नहीं होता है। शब्द आकाश में जाते हैं। शब्द आकाश का धर्म है। वह आपको चिपटता नहीं है। आप तो आत्मा हैं। कर्कशवाणी सहन करने वाला बहुत सुखी होता है। कर्कशवाणी बोलने वाला बहुत दुःखी होता है। दुर्वासा ऋषि कर्कशवाणी बोले हैं, इसलिये वे ही दुःखी हुए हैं।

अम्बरीष राजा के तीन पुत्र हैं–विरूप, केतुमन् और शंभु। अम्बरीष राजा के वंश में अनेक राजा हो गये हैं। बाद में मनु महाराज के बड़े पुत्र इक्ष्वाकु के वंश का वर्णन किया गया है।

इक्ष्वाकु के वंश में श्रीरघुनाथजी का प्राकट्य होने वाला है। इक्ष्वाकु राजा के विकुक्षि, दंडक, निमि इत्यादि अनेक पुत्र हुए थे। इस वंश में ककृस्थ शाबस्त, नाम का राजा हो गया। ककृस्थ के वंश में अनेना, पृथु, विश्वरंधि, चंद्र, युवनाश्व, वृहदश्व, धन्धुमार दृढाश्व, हर्यश्वर, निकुम्भ, वर्हणाश्व, सेनजित, त्रसदस्य और मान्धाता हुए। उनके बाद अम्बरीष यौवनाश्व, हारीत, पुरुकुत्स, अनरण्य, हर्यश्व और सत्यव्रत हुए। सत्यव्रत का दूसरा नाम था त्रिशंकु। त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चन्द्र, हरिश्चन्द्र के रोहित हुए। उसके हरित, चम्प, विजय भरुक, वृक, बाहुक और बाहुक के पुत्र सगर राजा हुए।

सगर राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया। सगर राजा के यज्ञ का घोड़ा इन्द्रदेव उठाकर पाताल में ले गये और कपिल नारायण के आश्रम में रखा। सगर राजा के पुत्र उस घोड़े को खोजने के लिये निकले। कपिलदेव के आश्रम में वह घोड़ा मिला, इससे वे कपिल नारायण को चोर समझकर मारने दौड़े। कपिल नारायण ने आँखें खोलीं कि वे सब जलकर भस्म हो गये। सगर राजा ने पुत्र असमंजस के पुत्र, अपने पौत्र अंशुमान को आज्ञा की। अंशुमान घोड़े को खोजने के लिये निकला। उसने कपिल नारायण के आश्रम में घोड़ा देखा। तब उसने कपिल नारायण की स्तुति की। कपिलदेव ने कहा–आपके पिताजी जलकर भस्म हो गये हैं। श्रीगंगा मैया पधारें तब ही उनका उद्धार होगा। अंशुमान घोड़े को लेकर दादा के यज्ञ में गया। यज्ञ परिपूर्ण हुआ। अंशुमान ने श्रीगंगामैया को पधारने के लिये तपश्चर्या की पर श्रीगंगामैया के दर्शन उसको नहीं हुए। अंशुमान का पुत्र दिलीप हुआ। उसने भी तपश्र्चा की, पर श्रीगंगामैया के दर्शन न हुए। दिलीप का पुत्र भगीरथ हुआ। भगीरथ ने तपश्चर्या की और वह फलीभूत हुई। तीन–तीन पीढ़ियों का तप इकट्ठा हुआ, तब श्रीगंगामैया के दर्शन हुये। गंगाजी ने कहा–मेरी गति धरती से सहन नहीं होगी। धरती रसातल में डूब जायेगी। कोई मुझे मध्य में ही धारण कर ले तो मैं उतर सकूँगी।

भगीरथ राजा ने शंकर भगवान् की प्रार्थना की। शिवजी महाराज प्रसन्न हुये। गंगोत्री में शंकर, कमर पर हाथ रखकर खड़े हैं। गंगोत्री अति दिव्य, पवित्र भूमि है। आकाश–मार्ग से श्रीगंगाजी पधार रही हैं। शिवजी महाराज ने जटाओं का ऐसा जाल बिछा दिया कि गंगाजी जटाओं में चक्कर काटती रहीं उन्हें बाहर निकलने का रास्ता ही न मिला! भगीरथ राजा ने शिवजी से कहा–गंगाजी को पधराइए। शंकर दादा ने कहा– भले ही मस्तक पर रहें। बहुत गर्मी हो रही है। शीतलता मिलेगी।

भगीरथ राजा ने कहा–महाराज! आपकी शीतलता के लिये यह सब मेहनत नहीं की है, मुझे अपने पितरों का उद्धार करना है। तब शिवजी ने गंगाजी को बाहर निकलने का रास्ता दिया। अनेक देशों को पवित्र करते हुए श्रीगंगा माता पाताल में पधारीं। सगर राजा के पुत्र जहाँ भस्म बनकर मिट्टी के रूप में पड़े थे वहीं श्रीगंगाजी का स्पर्श हुआ। उसी समय मिट्टी से दिव्य पुरुष बाहर आये। उन्होंने बार-बार श्रीगंगा माता की वंदना की। .....श्रीगंगा माता की जय–गंगाजी का जय–जयकार हुआ। मृत्यु के बाद उनके शरीर की मिट्टी को गंगाजी का स्पर्श हुआ, सगर राजा के सभी बालकों को सद्गति मिल गयी। मृत्यु से पहिले जो गंगाजी में स्नान करते हैं, गंगाजी की पूजा करते हैं, उन्हें मृत्यु के बाद सद्गति मिलती है तो क्या आश्चर्य? स्नान सत्कर्म के लिये है।

और कुछ भी न हो तो घर में स्नान करते हुए, मन से गंगा मैया का वंदन कीजिए और गंगा-गंगा शब्द बोलिये। आपके घर श्रीगंगा मैया पधारेंगी, आपको गंगा-स्नान का फल मिलेगा।

आज कल सभ्य बने लोग गंगा-गंगा नहीं बोलते। कई लोग तो सिनेमा के गीत गाते-गाते स्नान करते हैं और ऐसा समझते हैं कि हम बहुत सुधर गये हैं। वे सुधरे हैं या बिगड़े हैं, यह तो प्रभु ही जानते हैं। सनातन धर्म की मर्यादा में रहने पर ही जीवन सुधरता है। जीवन संयम से सुधरता है, सदाचार से सुधरता है। स्वेच्छाचार से वह बिगड़ता है। आप सब ऋषियों के बालक हैं। आपका जन्म किसी ऋषि के वंश में हुआ है। आप सनातन धर्म की मर्यादा का पालन कीजिये। भगीरथ राजा गंगाजी को ले आये हैं, इससे गंगाजी को भागीरथी गंगा भी कहते हैं। शिवजी महाराज ने गंगाजी को मस्तक में धारण किया है, इससे शिवजी का नाम गंगाधर पड़ा है। आप भी गंगाधर बनिये। ज्ञान-गंगा को सिर पर धारण कीजिये।

शिवजी के समक्ष अनेक बार भूत-प्रेत नाचते हैं, पर शिवजी की शांति का भंग नहीं होता है। वे श्मशान में भी अति शांत रहते हैं, अति आनन्द में रहते हैं। सत्यम् शिवम् सुन्दरम्। ज्ञान गंगा को सिर पर रखने वाला जीव शिव-स्वरूप होता है, कृतार्थ होता है, गंगाजी के माहात्म्य का वर्णन कौन कर सकता है?

भगीरथ राजा का वंश बढ़ा। आगे चलकर श्रुत, नाभ, सिन्धुद्विप और अयुतायु इस वंश में हुए। इस वंश में ऋतु वर्ण नाम का राजा हुआ है। उसका पुत्र सर्वकाम, सर्वकाम का पुत्र सुदास और उसका पुत्र कल्माषांघ्रि। कल्माषांघ्रि राजा के वंश में अश्मक नाम का राजा हुआ। अश्मक का मूलक और उसका पुत्र नारी कवच हुआ। इस वंश में दशरथ ऐडविज और विश्वसह राजा हुए। विश्वसह के बाद खट्वाँग राजा हुए। खट्वाँग राजा को मृत्यु की खबर पहिले से ही हो गयी थी। राजा सावधान हो गये और आदिनारायण का ध्यान करते हुए कृतार्थ हुए-

खट्वांगद् दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात् पृथुश्रवाः।
अजस्ततो महाराजस्तस्माद् दशरथोऽभवत्।। (९-१०-१)

खट्वाँग राजा के वंश में दिलीप राजा हुए। दिलीप राजा ने गाय माता की बहुत सेवा की। एक गोमाता की रक्षा के लिये दिलीप राजा ने सिंह को अपने शरीर का भाग दिया था। उन्होंने सिंह से कहा कि मुझे मारकर तुम खा जाओ, पर इस गाय को छोड़ दो। राजा दिलीप को गोमाता ने आशीर्वाद दिये थे।

दिलीप राजा के पुत्र का नाम रघु। रघु महाज्ञानी, महान वीर, अति उदार राजा था। रघु राजा ने एक बार सर्वदक्षिण नामका यज्ञ किया था। इस यज्ञ में उसने अपने पहने हुए वस्त्रों के सिवाय

सर्वस्व का दान दे दिया था। रघु राजा की कीर्ति बहुत बढ़ी और सूर्यवंश नाम के स्थान पर इस वंश को रघुवंश नाम मिला।

४२. भगवान् रघुनाथजी का प्राकट्य

रघु राजा का पुत्र अज हुआ। अज राजा का विवाह इन्दुमती रानी के साथ हुआ। उनके घर जो बालक हुआ, उसका नाम था दशरथ। चक्रवर्ती सार्वभौम राजा श्रीदशरथजी अयोध्या में राज्य करते थे। उनकी तीन प्रधान रानियाँ थीं, पर पुत्र-संतति नहीं थी। राजा ने वसिष्ठ ऋषि की प्रार्थना की। वशिष्ठ ऋषि ने राजा द्वारा पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करवाया। पूर्णाहुति के समय पर अग्निकुंड से अग्नि नारायण हाथ में सुवर्ण पात्र में प्रसाद लेकर आये।

अग्नि ने दशरथ राजा से कहा—आपके घर चार बालक होंगे। वे आपको अति सुख देंगे। वे आपका यश बढ़ायेंगे। यही प्रसादी पायस है। अग्निनारायण ने दशरथ राजा को प्रसादी-पायस दिया। राजा को आनन्द हुआ। उन्होंने प्रसाद मस्तक पर चढ़ाया। राजा ने वसिष्ठ ऋषि से पूछा—महाराज! आपकी कृपा से यह प्रसाद मिला है। इस प्रसाद का क्या करूँ?

वशिष्ठ ऋषि ने कहा—राजन्, कौशल्या आपकी धर्म-पत्नी हैं। प्रसाद में प्रमुख अधिकार उनका है। उनको प्रसाद दो। कैकेयी और सुमित्रा की भी प्रसाद लेने की इच्छा थी। कैकेयी और सुमित्रा धर्मपत्नी नहीं थीं, वे भोग-पत्नियाँ थीं। अन्त में वसिष्ठ ऋषि ने विचार करके कहा—पहिले आधा प्रसाद कौशल्या को दो और आधे प्रसाद के दो भाग करके एक भाग कैकेयी को और एक भाग सुमित्रा को दो।

कैकेयी को बाद में प्रसाद मिला, इससे वह मन में नाराज हुई। उसे क्रोध आया। कैकेयी को अभिमान था कि मैं सुन्दर हूँ, राजा मेरे अधीन हैं। जहाँ अभिमान होता है वहाँ धीरे-धीरे सभी दोष आते हैं, दुर्गुण आते हैं। सौंदर्य का अभिमान, सम्पत्ति का अभिमान, विद्या का अभिमान पतन लाता है। कैकेयी क्रोध में अनाप-शनाप बोलने लगी। उसने महाराज का भी अपमान किया। पतिदेव का अनादर करे, वह कैकेयी है। क्रोध में जो पति का तिरस्कार करे, कर्कश वाणी से जो पतिदेव को दुःखी करे, उस स्त्री के पुण्य का नाश होता है। स्त्री पति में परमात्मा की भावना रखें। कैकेयी को पतिदेव में परमात्मा के दर्शन नहीं होते थे। कैकेयी ने दशरथ राजा से कहा—आपने मुझे बाजार से खरीदकर नहीं लिया है। मुझे तो प्रसाद चाहिये। उसी समय एक चील उड़कर आयी और कैकेयी के हाथ में से प्रसाद उठाकर उड़ गयी। अंजन पर्वत पर अंजनी माता पंचाक्षर शिवमंत्र का जप कर रहीं थीं। उनकी कामना थी कि भगवान् शंकर जैसा पुत्र मुझे हो। महान् ज्ञानी, महान् वीर

पुत्र मुझे हो। शिवजी की प्रेरणा से चील ने वह प्रसाद कैकेयी के हाथ से उठाया और अंजनी माता के हाथ में दिया। माताजी की आँखें बन्द थीं–शिवजी ने ही मुझे यह प्रसाद दिया है, ऐसा समझकर कर अंजनी माता प्रसाद खा गयीं। प्रसाद खाने पर उनके पेट में गर्भ रहा।

नव मास परिपूर्ण हुए। परम पवित्र चैत्र मास, शुक्ल पक्ष पूर्णिमा तिथि थी। ठीक सूर्योदय के समय पर श्री हनुमानजी का जन्म हुआ। श्रीहनुमानजी महाराज की जय। श्रीहनुमानजी का प्राकट्य हुआ। वे जन्म से ही बलवान थे। जन्म के समय पर सूर्य का उदय हुआ था। उन्होंने उस सूर्य को लाल फल समझा। उन्हें बहुत भूख लग आयी थी। इससे जन्म होते ही हनुमानजी एक बड़ी छलाँग लगाकर, सूर्य को फल समझकर खाने दौड़े। चारों ओर हाहाकार हो गया। इन्द्र ने क्रोध करके हनुमानजी पर वज्र फेंका। इससे ही उनका दाहिना जबड़ा (हनु) टूट गया। तब से उन्हें हनुमान कहने लगे। पुत्र को घायल देखकर पवनदेव को क्रोध आ गया। उन्होंने तीनों लोकों में आना-जाना बन्द कर दिया। सभी देव घबरा गये। पवनदेव को प्रसन्न करने के लिये ब्रह्माजी ने वरदान दिया–यह, तुम्हारा पुत्र युद्ध में किसी शस्त्र-अस्त्र से अच्छा होगा। हनुमानजी की लीला दिव्य है।

इस ओर चील ज़ब प्रसाद उठाकर ले गयी, तब कैकेयी को बहुत दुःख हुआ। वह रोने लगी। कौशल्या जी को दया आ गयी। प्रसाद में से थोड़ा भाग उन्होंने दिया। सुमित्रा ने भी थोड़ा भाग कैकेयी को दिया। प्रसाद खाने से तीनों रानियाँ सगर्भा हुई। श्रीरामचन्द्र जी माता के पेट से बाहर नहीं आये हैं, वे तो बाहर से प्रकट हुए हैं। कौशल्याजी को भ्रांति है कि पेट में गर्भ है। भगवान् माता के पेट से बाहर नहीं आये हैं। श्रीराम-कृष्ण का जन्म दिव्य है। भगवान् ने गीता जी में कहा है–

जन्म कर्म च दिव्यम्।

वसिष्ठ ऋषि ने राजा से कहा–सगर्भा स्त्री की इच्छा परिपूर्ण करना पति का धर्म है। रानियों को प्रसन्न कीजिये। रानियाँ जो माँगें वह दीजिये। दशरथ महाराज ने सुमित्रा जी से पूछा–महारानी! आपकी क्या इच्छा है? सुमित्रा जी ने कहा–मेरे लिये यह स्वतन्त्र महल है, मुझे इसमें रहना पसन्द नहीं है। मुझे अब अलग नहीं रहना है। मेरी ऐसी इच्छा हो रही है कि मैं कौशल्या जी की सेवा करूँ, तो ही मेरा कल्याण होगा। मुझे कौशल्याजी के पास उनके महल में उनकी सेवा में रखिये।

वशिष्ठ ऋषि ने यह सुनकर कहा–राजन्! भविष्य बहुत सुन्दर है। इनके पेट में कोई महापुरुष होगा। नहीं तो किसका सौतकी सेवा करने का मन होता है? यह कितना सुन्दर कह रहीं हैं।

कौशल्याजी के हृदय में परमात्मा पधारे हैं। माताजी की बोलने की भी इच्छा नहीं होती है। सारा दिन ध्यान करती हैं। दशरथ महाराज जब पधारते हैं, तब वे ध्यान में हैं। दाहिनी जंघा पर बाँया पैर है और बायीं जंघा पर दाहिना पैर है। बाल उनके खुले हैं। दृष्टि नाक की नोंक पर स्थिर है। नाक की नोंक पर दृष्टि रखने वाले की दृष्टि स्थिर होती है। मन स्थिर होता है। कौशल्याजी ध्यान करते हुए, तन्मय हुई हैं। दशरथ राजा पधारे हैं पर उन्हें ध्यान नहीं है। दशरथ राजा ने पूछा—महारानी! आपकी क्या इच्छा है? गुरुदेव की आज्ञा से मैं आया हूँ। कौशल्याजी ध्यान में ऐसी तन्मय थीं कि उन्होंने राजा की बात सुनी तक नहीं। दासी ने सावधान करके कहा, तब उनका ध्यान टूटा। जब दशरथ राजा ने पुनः पूछा तब उन्हें मालूम पड़ा। कौशल्या जी ने कहा—मैं अति आनन्द में हूँ। मेरी कोई इच्छा नहीं है। जीव जब सुख भोगने की इच्छा रखता है, तब से दुःखी होता रहा है। सुख भोगने की इच्छा ही महादुःख है। कौशल्या जी ने कहा—आनन्दमय श्रीराम मेरे हृदय में हैं—

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा कामक्रोधादिराक्षसान्।
शान्तिसीता समायुक्त आत्मारामो विराजते।।

अब बोलने की इच्छा नहीं होती है। मेरी कोई सुख भोगने की इच्छा नहीं है। मुझे ध्यान करना है। वसिष्ठ ऋषि ने जब यह सुना, तब कहा—राजन्! यह तो वेदान्त के सभी सिद्धान्त कह रही हैं, भविष्य बहुत सुन्दर है।

माता कौशल्या के हृदय में विराजमान परमात्मा की देव-गंधर्व स्तुति करते हैं। अब श्रीराम अयोध्या में प्रकट होने वाले हैं। अयोध्या शब्द का अर्थ विचारणीय है। युद्धः न भवति इति अयोध्या। जहाँ युद्ध नहीं है, उस स्थान को अयोध्या कहते हैं।

हम सब अयोध्या में जाकर रहने लगें तो वहाँ पर बहुत भीड़ हो जायगी। वहाँ के साधु-संतों को त्रास पहुँचेगा। प्रभु ने आपको घर दिया है, घर को ही अयोध्या बनाइये। तीर्थ में रहना अच्छा है, पर परमात्मा ने जो घर दिया है, उसे तीर्थ बनाइये तो अधिक अच्छा है। घर में प्रेम से रहिये, जरा भी झगड़ा न कीजिये। जहाँ युद्ध नहीं है, जहाँ शुद्ध प्रेम है, वहाँ अयोध्या है। जो सरयू के तट पर रहते हैं, भक्ति के तट पर रहते हैं, उनका शरीर अयोध्या जैसा होता है। सरयूजी का तट अर्थात् भक्ति का तट। भक्ति न छोड़िये। भक्ति के तट पर रहिये।

दशरथ महाराज जितेन्द्रिय हैं, तपस्वी हैं। पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, दस इन्द्रियों को जो नियंत्रण में रखता है, उसका रथ सीधा चलता है। परमात्मा उनके घर पधारे हैं। प्रभु के प्राकट्य का समय हुआ है। चैत्रमास, शुक्लपक्ष, अष्टमी तिथि, रात्रि के समय पर दशरथ राजा निद्राधीन

थे। तब उन्हें एक सुन्दर स्वप्न दीखा। दशरथ राजा ने स्वप्न में देखा कि बड़े-बड़े साधु-महात्मा उनके आँगन में आये हैं और सब उन्हें आशीर्वाद दे रहे हैं। कह रहे हैं कि जागिये, आपके भाग्य का उदय हुआ है। दशरथ राजा ने स्वप्न में देखा कि उन्होंने स्वयं सरयू नदी में स्नान किया। भगवान् की सेवा की। दशरथ राजा के घर में लक्ष्मीनारायण की सेवा थी। राजा ने स्वप्न में सेवा की । ब्रह्मा गण वेदमंत्र बोल रहे थे। दशरथ महाराज ने दूध, दही पंचामृत से ठाकुरजी का अभिषेक किया। स्वप्न में राजा ने नारायण का शृंगार किया। भगवान् को तिलक किया। पुष्प की माला अर्पण की। भोग समर्पित किया, आरती की।

अपने स्वप्न में जब आप भगवान् की समुचित सेवा करें, तब समझ लीजिये कि अब आपके भाग्य का उदय होगा। दशरथ राजा स्वप्न में नारायण की आरती कर रहे थे। दर्शन में उन्हें बहुत आनंद आया। ठाकुरजी मंद-मंद हँस रहे थे। आज ठाकुरजी बहुत प्रसन्न दीख रहे थे। ऐसा लग रहा था कि अभी बोलेंगे। और उसी समय दशरथ राजा ने देखा कि ठाकुरजी के श्रीअंग से दिव्य प्रकाश निकला और कौशल्याजी के पेट में गया। दशरथ राजा ने स्वप्न में देखा कि परमात्मा ने कौशल्याजी के पेट में प्रवेश किया है। दशरथ राजा जागे। आज की सुबह कितनी मधुर है। आज का स्वप्न कितना सुन्दर था! राजा, वसिष्ठजी के आश्रम में गये। ब्रह्ममुहूर्त में वसिष्ठ ऋषि ध्यान में बैठे थे। दशरथ राजा ने प्रणाम किया और कहा–क्षमा चाहता हूँ। आपके ध्यान में विक्षेप करने चला आया। आज मुझे एक स्वप्न दिखाई दिया है। राजा ने स्वप्न का पूरा वर्णन सुनाया।

वसिष्ठ ऋषि ने स्वप्न सुनकर कहा–राजन्! स्वप्न बहुत सुन्दर है। मुझे लगता है कि आपके घर पुत्र का जन्म होगा और पुत्र भी ऐसा होगा, जैसा किसी के घर नहीं हुआ है और कभी होगा भी नहीं। मुझे लगता है कि परमात्मा पुत्र-स्वरूप में आने वाले हैं। इसका सूचक ही यह स्वप्न है।

दशरथ राजा को आनन्द हुआ। उन्होंने विचार किया कि मेरे गुरुदेव जो कहते हैं वह सच्च ही होता है। राजा की आँखें हर्ष से गीली हो गई। राजा ने दोनों हाथ जोड़े और पूछा–प्रभु कब पधारेंगे। वसिष्ठजी ने कहा–कब पधारेंगे? यह मैं कैसे कह सकता हूँ? जगत् काल के आधीन है और काल रामजी का नौकर है। श्रीराम काल के भी काल हैं। वे राजाधिराज हैं। उनकी जब इच्छा होगी, कृपा करके पधारेंगे। पर राजा ब्रह्म मुहूर्त का स्वप्न है, इसलिए चौबीस घण्टों में फल मिलेगा। स्वप्न की बात मुझ से कह दी तो भले ही कह दी, पर अब किसी से न कहियेगा। अब स्नान करके जप कीजिए। थोड़े ही समय में आनन्द की वार्ता सुनेंगे।

गुरुदेव की आज्ञा हुई। रामनवमी का प्रातः काल पूर्ण हुआ। आज सुवर्ण का सूर्य उदित हुआ है। कौशल्या माता सुबह से ध्यान में तन्मय हुई हैं। कौशल्या माता ने नौकरों, दासियों को

आज्ञा दी—आप सब बाहर जाइए। मुझे एकान्त में ध्यान करना है। जब तक मैं न बुलाऊँ किसी को भीतर नहीं आना है। सब बाहर गये। अकेली कौशल्या माता ध्यान में तन्मय हुई हैं। आज विरक्त साधु, संन्यासी, महात्मा, महापुरुष सभी अयोध्या में पधारे हैं। सभी ने सरयूजी में स्नान किया है। सब सीताराम-सीताराम कीर्तन करने लगे। श्रीराम दर्शन के लिए उनके प्राण तड़पने लगे। अनेक वैष्णव दर्शन के लिये उत्कण्ठित होते हैं, तभी प्रभु का अवतार होता है।

भगवान् शंकर कैलाश धाम छोड़कर अयोध्या में पधारे हैं। वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया है। चार वेद शिवजी के चार शिष्य बनकर आये हैं। भगवान् शंकर के इष्टदेव बालक श्रीराम हैं। शिवजी को बालस्वरूप बहुत प्रिय है। शिवजी बालक राम का ध्यान करते थे। श्रीराम श्रीराम नाम का जप करते थे। शिवजी महाराज अयोध्या की गलियों में घूम रहे थे। श्रीराम दर्शन के लिये उनके प्राण तड़प रहे थे। शिवजी सोच रहे थे कि कौशल्याजी के महल में मैं जाऊँगा। कौशल्याजी को राम कहते हैं—मेरा नाम सदाशिव जोशी है। ज्योतिष शास्त्र में प्रवीण हूँ।

परम पवित्र समय प्राप्त हुआ है। दशों दिशाएँ प्रसन्न हैं। मन्द, सुगन्ध, शीतल हवा चल रही है। देवगण आसमान में तडिंग-डिंग, तडिंग-डिंग दुंदुभि बजाने लगे हैं। साधुओं का मन आज शाँत है। अग्निहोत्री ब्राह्मणों के घर में अग्निकुण्ड में विराजमान अग्निदेव भी कुण्ड से बाहर आये। वे भी श्रीराम के दर्शन के लिए तड़प रहे थे।

चैत्र मास, शुक्ल पक्ष, परिपूर्ण नौमी तिथि पुनर्वसु नक्षत्र का सुयोग है। मध्याह्नकाल में माता कौशल्या के सम्मुख चतुर्भुज स्वरूप में प्रकट हुए—

भए प्रकट कृपाला, दीनदयाला कौशल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मनहारी अद्भुत रूप विचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला शोभा सिंधु खरारी॥

जय-जयकार हो गया। चारों ओर प्रकाश फैल गया और प्रकाश में कौशल्या माता को चतुर्भुज नारायण के दर्शन हुए। चतुर्भुज का अर्थ है—चारों ओर से अपने भक्तों के दर्शन करने वाले। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—किसी भी वर्ग के हों। रामजी की सेवा करें, श्रीराम नाम के जप करें तो उनके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ परमात्मा करते हैं।

चतुर्भुज स्वरूप के दर्शन करते हुए कौशल्या माता को बहुत आनन्द हुआ— सोचने लगीं कि कैसा सुन्दर दिव्य स्वरूप है! मेरे लिए प्रकट हुए हैं। कौशल्याजी ने प्रार्थना की है—

दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करौं अनंता।
कीजे सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।।

स्वरूप बहुत सुन्दर है। पर लोगों को आशंका होगी कि ऐसा बड़ा और चार हाथों वाला पुत्र कैसे हुआ? आप दो हाथों वाले बनिये, आप बालक बनिये।

कीजे सिसुलीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनूपा।

आपको मैं गोद में खिलाऊँ। आपको दूध पिलाऊँ आप माँ-माँ कहकर पुकारें—ऐसी बाल-लीला आप कीजिए। माताजी को स्वरूप का बोध कराकर, चतुर्भुज स्वरूप अंतर्ध्यान हुआ और दो हाथों वाले बालक श्रीराम का प्राकट्य हुआ—

विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार।।

कौशल्या माता को अति आनंद हुआ है। उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया है। बालक राम का श्रीअंग मेघ-सा श्याम है, माखन से भी कोमल है। रामजी की आँखें कमल-सदृश विशाल हैं। रेशम से मुलायम बाल हैं। मेरे राम को नजर न लग जाय—ऐसा सोचकर नारायण-नारायण-नारायण स्मरण करते हुए माता आरती उतारती हैं।

एक दासी को मालूम हुआ कि कुछ गड़बड़ जैसा लगता है। वह दौड़ते-दौड़ते आ पहुँची। चारों और प्रकाश है और प्रकाश में कौशल्याजी की गोद में सोये रामजी के दर्शन हुए उसे। भीतर जाने के लिये निकली कि दासी को ऐसा लगा कि वह आनंद सरोवर में प्रविष्ट हो रही है। इसके रोम-रोम से आनंद प्रकट हुआ। श्रीराम के दर्शन से दिव्य आनंद प्रकट हुआ। दासी ने हाथ जोड़े। उसकी पलकें हिल रहीं थी। दासी अपलक देखती ही रही। कौशल्या माता ने देखा कि एक दासी आयी है। माता के गले में नवरत्न-जड़ित हार था माता ने हार उतारकर दासी को पुरस्कार रूप में दिया। दासी को दर्शन में ऐसा आनंद आ रहा था कि उसकी हार लेने की इच्छा ही नहीं होती थी। कौशल्याजी ने आग्रह किया—आप सभी के आशीर्वाद से बालक हुआ है। आज तो यह भेंट लेनी ही पड़ेगी।

दासी ने हाथ जोड़े और कहा—माता! यह तो उसके गले में ही शोभित होता है। मैं हार लेने नहीं आयी हूँ। पर आज तो मैं जो माँगूँ, आपको देना होगा। कौशल्याजी ने कहा—तुम माँग लो। तुम जो माँगोगी मैं दूँगी। दासी ने कहा—माँ, मैं हार लेने नहीं आयी हूँ। मैं राम लेने आयी हूँ। लाला को दो मिनट मेरी गोद में दीजिये। कौशल्या माँ ने दासी को पास में बैठाकर, उसकी गोद में राम को अर्पित किया। हजारों वर्षों से यह जीव ईश्वर से बिछुड़ गया है। आज दासी का

ब्रह्म-सम्बन्ध हुआ दासी ने बालक राम को हृदय से लगा लिया। जीव-ईश्वर एक हुए दासी की समाधि लग गई। अति आनंद हुआ। एक दासी दौड़ते-दौड़ते राजा दशरथ के पास पहुँची और कहा–बधाई है, बधाई है....... पुत्र हुआ पुत्र हुआ। दशरथ राजा ने सुना उन्हें याद आया कि गुरुजी ने कहा था–चौबीस घन्टों में आनंद के समाचार मिलेंगे। दशरथ राजा ने पूछा–बालक कैसा है? दासी ने हाथ जोड़े कहा–बालक कैसा है? कोई वर्णन नहीं कर सकता वे अनिर्वचनीय है अति सुन्दर है। हमारे घर में विराजमान ठाकुरजी जैसा दिखाई देता है। ठाकुरजी-सी उसकी आँखें हैं। श्रीअंग मेघ-सा श्याम है। वे कैसे हैं? गिरा अनयन, नयन बिनु बानी। श्रीराम के स्वरूप वर्णन वेद भी नहीं कर सके हैं। दासी क्या कहेगी?

सेवक राजा को सरयूजी के तट पर ले गये। दशरथ राजा ने सरयूजी को वंदन किया और फिर स्नान किया आज वृद्धावस्था में पुत्र-जन्म के निमित्त स्नान करने का सुयोग आ गया। सेवक राजा का शृंगार करने लगे। आज तक दशरथ राजा ने कभी शृंगार नहीं किया था। घर में पुत्र के बिना राजा बहुत दुःखी रहते थे। उनका ऐसा नियम था कि घर पर आने वाले साधु, ब्राह्मण या गरीब को आसन पर बैठाकर सुन्दर भोजन देते थे। सुन्दर वस्त्र आभूषण देते थे। वे औरों के शृंगार करते थे। दशरथ राजा बहुत प्रेममय थे। बहुत उदार थे। कभी तो घर के दास को आसन पर बैठाकर वस्त्र आभूषण देते थे, उसका सम्मान करते थे। इस से ही उन्हें सब के आशीर्वाद मिले थे। जिसे सबों के आशीर्वाद मिलते हैं, उसके घर सर्वेश्वर पधारते हैं। आज सब सेवक आग्रह करने लगे–आज आपको शृंगार करना पड़ेगा। आज आप इन्कार करें तो वह अच्छा नहीं है। आज हम बहुत बड़ा उत्सव करने वाले हैं।

सारी अयोध्या नगरी को सुशोभित किया गया। दशरथ राजा का शृंगार किया गया उन्हें सुवर्ण के आसन पर बिठाया गया। वशिष्ठादिक ऋषि वहाँ आये। गणपति महाराज की पूजा की गई। पुण्याह–वाचन हुआ। नांदी श्राद्ध में पितरों की पूजा की गई। दशरथ राजा ने गरीबों को, ब्राह्मणों को बहुत दान दिया। इतना दान दिया कि दान लेने वाला कोई रहा ही नहीं।

सुवर्ण कटोरी में शहद रखा गया वशिष्ठ ऋषि ने वेद मंत्र का पठन कर मधु को अभिमंत्रित किया ऋग्वेद, यजुर्वेद के मंत्र बोलते हैं–बालक का आयुष्य बढ़े, बालक का बल, बालक का तेज बढ़े। शहद को अभिमंत्रित करके दशरथ राजा के हाथ में दिया गया, राजा को उन्होंने समझाया–आपको अब भीतर जाना है। अपनी अनामिका उँगली को शहद में डुबाकर बालक को शहद चटाइये।

गुरुदेव की आज्ञा हुई। इससे हांथ में शहद की कटोरी लेकर, दशरथ राजा श्रीराम के दर्शन करने जाने लगे। आज कौशल्याजी के महल में बहुत भीड़ हुई है, जो भीतर जाता है, वह श्रीराम

के दर्शन में ऐसा तन्मय होता है कि उसे बाहर निकलने की इच्छा ही नहीं होती है। हर रोज तो जब दशरथ राजा पधारते, तब दासियाँ घूँघट निकालकर एक ओर खड़ी हो जाती थीं, पर आज तो दासियाँ घूँघट भी नहीं निकाल रही हैं। आज दासों की 'हटिये, हटिये' की आवाज तक कोई नहीं सुनता है। राम-दर्शन का ऐसा आनन्द है कि सब देह का होश भुला बैठे हैं और तब घूँघट की बात ही कैसे याद आ सकती है? दशरथ राजा ने दासों से कहा कि आप 'हटिये-हटिये' न कहिये, किसी का अपमान न कीजिए। ये सब आनन्द में तन्मय हुए हैं।

दशरथ महाराज बहुत भोले हैं। आज घर में ऐसी भीड़ जमा हो रही है कि घर के स्वामी भीतर नहीं जा पा रहे हैं। घर का स्वामी बाहर खड़ा है। रामजन्म-महोत्सव में सभी को आनन्द है। अकेला चन्द्रमा नाराज है। रामजी के पास आकर वह रोने लगा। रामजी ने पूछा-भाई, तुम क्यों रो रहे हो? चन्द्रमा ने कहा-महाराज, इन सूर्य को आप समझाइए। बारह घंटों से एक ही स्थान पर ये स्थिर हैं। आज का दिन बहुत बड़ा हो गया। सूर्यनारायण स्थिर होकर खड़े रहे। आज सूर्यनारायण अति आनन्द में हैं। मेरे वंश में परमात्मा पधारे हैं। चन्द्रमा को लग रहा है कि यह सूर्य जब अस्त हों, तब मैं बाहर आऊँ। सूर्य मुझे आने नहीं देता। चन्द्र रोने लगा। रामजी को दया आ गयी। उन्होंने कहा-मेरा जन्म भले ही सूर्यवंश में हुआ, पर कोई मुझे 'रामसूर्य'-नहीं कहेगा। मैं तुम्हारा नाम धारण करता हूँ। लोग मुझे रामचन्द्र ही कहेंगे परन्तु फिर भी चन्द्र को सन्तोष न हुआ। तब रामचन्द्रजी ने चन्द्रमा को आश्वासन दिया-इस अवतार में मैंने सूर्य को लाभ दिया है पर अब कृष्णावतार में रात में बारह बजे आऊँगा और तुम्हें लाभ दूँगा।

बालकृष्ण लाल जब प्रकट हुए तब सारा जगत् प्रगाढ़ निद्रा में था। जगत् में दो जीव जाग रहे थे-वसुदेव और देवकी। आसमान में चन्द्रमा जाग रहा था। जागने वाले को परमात्मा मिलते हैं, सोये हुए को संसार मिलता है। सावधान होकर जो निरंतर भक्ति करता है, वह ही जागता है। जो गाफिल रहता है, वह सोया हुआ है।

दशरथ महाराज की रामजी को देखने की उत्कण्ठा बढ़ रही है। लोग बातें कर रहे हैं और वे सुन रहे हैं। ऐसा पुत्र हो सकता है क्या? यह तो परमात्मा पधारे हैं-ऐसा लगता है। दशरथ राजा सुनते हैं। सोचते हैं कि मेरे राम को लोग परमात्मा कहते हैं। लोग भले ही परमात्मा कहें, पर वह तो मेरा बालक है। मैं उसका पिता हूँ। ये सब पराये हैं परन्तु सबने राम के दर्शन कर लिये हैं। मैंने अभी तक उसके दर्शन नहीं किये हैं। मैं कैसे कहूँ कि मुझे भीतर जाना है। लोग समझकर रास्ता दें तो अच्छा है। दशरथ राजा के हृदय में प्रेम बहुत उत्कट हो रहा है। आँखों से वही बहने लगा है। श्रीराम-दर्शन के लिये उनके प्राण तड़प रहे हैं।

दशरथ महाराज के भाव वशिष्ठजी समझ गये। वशिष्ठजी ने कहा–राजन्! आप मेरे पीछे-पीछे आइए। राजदरबार, राजमहल में वशिष्ठ ऋषि का बहुत आदर मान था। वशिष्ठजी जब पधारते, तब सब हाथ जोड़कर खड़े हो जाते। वशिष्ठजी के पीछे-पीछे राजा दशरथ महाराज आते हैं। श्रीराम-दर्शन करने वे जाते हैं।

कौशल्याजी की गोद में सर्वांग-सुन्दर बालक श्रीराम के दर्शन करते ही महाराज दशरथ को अति आनन्द हुआ। श्रीराम और दशरथ की आँखें मिली हैं और तब बालक राम होंठों में हँसने लगे। दशरथ महाराज को अति आनन्द हुआ। इतने लोग आये पर हँसता न था। मुझे देखकर हँसने लगा। मुझे पहिचान रहा है। मैं उसका पिता हूँ। यह बालक मेरा है। दशरथ जी ने वशिष्ठ ऋषि से कहा–मैं शहद चटा रहा हूँ। आप कोई मंत्र-पाठ कीजिये।

श्रीराम के दर्शन में वशिष्ठजी की समाधि लग गयी है। ब्रह्मनिष्ठ तपस्वी ब्राह्मण हैं। उन्हें देह का भान नहीं है। कोई मंत्र याद नहीं आ रहा है। वशिष्ठजी ने कहा–मुझे कोई मन्त्र याद नहीं आ रहा है। मंत्र क्या मुझे अपना नाम भी याद नहीं आ रहा है। राम-दर्शन से मैं अपने को ही भूल गया हूँ कि मैं कौन हूँ?

ब्रह्म-साक्षात्कार में वेद भुलाया जाता है–'तत्र वेदाः अवेदाः भवन्ति'–वशिष्ठ ऋषि की समाधि लग गयी है। वे अपने नाम को भूल गये हैं। लौकिक नाम-रूप की पूर्ण विस्मृति होती है, तब ब्रह्म-दर्शन होता है। वशिष्ठ ऋषि ब्रह्म दर्शन में लीन हैं। अन्य ब्राह्मण मन्त्र बोलते हैं। दशरथ महाराज शहद चटा रहे हैं।

अयोध्या की स्त्रियाँ बहुत भाग्यवान हैं। वे भीतर जाती हैं। कौशल्या माता को बार-बार वंदन करती हैं और मनाती हैं–माँ! मेरी गोद में लाला को दो मिनट के लिये दीजिये। मैं राम को लेने आयी हूँ। कौशल्या माता अति उदार हैं। एक-एक की गोद में बालक राम को देती हैं। पुरुष भी वहाँ आये हैं, परन्तु सिपाहियों का पहरा है। पुरुष वहाँ नहीं जा पाते हैं। पुरुषों को बहुत दुःख हुआ। हम स्त्रियाँ होते तो हमें भीतर जाने का लाभ मिलता।

दशरथ राजा के पास सब ने जाकर कहा–हम बहुत आशा लेकर आये हैं। आज हमें निराश न कीजिये। कौशल्या माता की गोद में बालक राम के दर्शन हमें करने हैं। कौशल्या माता हमारी माँ हैं। हमें भीतर प्रवेश मिलना चाहिये। प्रजा दशरथ राजा को प्राण से भी प्रिय हैं। दशरथ राजा ने बाहर दृष्टिपात किया। आँगन में बहुत से लोग हैं। बहुत भीड़ है। दशरथ राजा सोच रहे हैं कि इतने सारे लोग हैं, भीतर कैसे आ सकेंगे? बाहर भी कैसे निकल सकेंगे? उन्होंने सोचकर कौशल्याजी से कहा–महारानी! मेरी इच्छा है कि आप अब आँगन में आकर बैठिये। बालक राम को गोद में

लेकर बैठेंगी तो सब दर्शन कर सकेंगे। ये सब मेरे राम को आशीर्वाद देने आये हैं। आशीर्वाद से बालक सुखी होगा। आज किसी को भी नाराज नहीं करना है।

कौशल्या माता आँगन में आकर बैठी हैं। बालक राम गोद में हैं। अयोध्या की प्रजा बहुत भाग्यशाली है। वह श्रीराम-दर्शन कर रही है। श्रीराम-दर्शन में सभी को ऐसा आनन्द आ गया कि किसी को भूख नहीं लग रही है, न किसी को प्यास लगती है। उत्सव के दिन परमात्मा के दर्शन करते हुए भूख-प्यास भुलाई जाय तो उत्सव सफल है। जगत् को भूलने के लिये उत्सव है। आज अयोध्या की प्रजा उत्सव मना रही है। श्रीराम के दर्शन करके अयोध्या की प्रजा कृत्यकृत्य हो रही है।

४३– मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम

श्रीराम के बिना आराम नहीं मिलता है। जगत् में जिन महापुरुषों को शांति मिली है, उन सभी महापुरुषों ने श्री सीतारामजी के दर्शन किये हैं। श्रीरामजी की अनन्य भाव से उन्होंने सेवा की है। श्रीराम-दर्शन के लिये जो प्रयत्न नहीं करता है, वह स्वयं अपनी हिंसा करता है। वाल्मीकि ऋषि ने उसे आत्म-हत्यारा कहा है। श्रीराम-दर्शन के लिये जो प्रयत्न नहीं कर रहा है, उसे अन्तकाल में बहुत पछतावा होता है। श्रीरामदर्शन के लिये साधना कीजिए। श्री सीतारामजी की प्रेम से सेवा कीजिये। श्रीराम-सेवा सभी के लिये अनिवार्य है।

ज्ञान-मार्ग या योग-मार्ग–आपका कोई भी मार्ग हो, आप चाहे किसी भी सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण करें पर श्री सीता-रामजी की सेवा के बिना किसी का भी मन शुद्ध नहीं होता है। राम-सेवा से जीवन सफल होता है। रामजी को पुष्प की माला समर्पित कीजिए, भोग चढ़ाइये, आरती कीजिये। यह तो रामजी की साधारण सेवा है। रामजी की उत्तम सेवा तो है कि आप रामजी जैसा जीवन व्यतीत कीजिये। रामजी की मर्यादा का पालन कीजिये। श्रीराम-चरित्र अनुकरणीय है। पुरुष का जीवन रामजी के जीवन-सा होना चाहिये। स्त्री का जीवन सीताजी के जीवन-सा होना चाहिये। श्रीसीताजी ने स्त्री धर्म समझाया है, श्रीरामचन्द्रजी ने पुरुष का धर्म समझाया है। श्रीरामचन्द्रजी धर्म की मूर्ति हैं। श्रीराम-सेवा सभी के लिये अति आवश्यक है। श्रीकृष्ण भगवान् की भक्ति करने वाला वैष्णव श्रीराम-सेवा नहीं करेगा तो उसे कृष्ण-दर्शन नहीं होंगे। शंकर भगवान् की सेवा करने वाला श्रीराम सेवा नहीं करेगा तो उसकी भक्ति सफल नहीं होगी। शिवजी महाराज जो कर रहे हैं, वह आप न कीजिये, पर श्रीरामजी जो कर रहे हैं, वह आप कीजिये। शिवजी महाराज तो श्मशान में विराजमान हैं। गले में मुण्डमाला पहिनते हैं। शिवजी विष पी जाते हैं। जो शिवजी करते हैं, वह कोई भी नहीं कर सकता है। शिवजी का चरित्र अनुकरणीय नहीं है। रामजी की प्रत्येक

लीला अनुकरणीय है। व्यवहार रामजी-सा रखिये। श्रीरामचन्द्रजी में सभी सद्गुण एकत्र हुए हैं। सर्व सद्गुणों के भंडार श्रीरामजी हैं। श्रीरामचन्द्रजी की मातृ-पितृ भक्ति रामजी का भ्रातृ-प्रेम, रामचन्द्रजी का सदाचार, श्रीरामजी की सरलता, रामजी का धैर्य, रामजी का गाँभीर्य, रामजी का एक पत्नीव्रत रामजी की उदारता–ये सभी दिव्य सद्गुण आपको और कहीं भी एक ही जगह पर देखने को नहीं मिलते हैं।

वाल्मीकि ऋषि रामायण में रामजी का वर्णन करने लगे, तब रामजी के लिये उपमा खोजने पर उन्हें कोई देव या ऋषि उपमा के योग्य नहीं मिल सका। वाल्मीकि थक गये। उन्होंने लिखा है–रामजी को किसकी उपमा दूँ? श्रीरामजी तो राम-से ही हैं।

रामजी जैसी मातृ-पितृ भक्ति जगत् में अन्यत्र नहीं हैं रामजी का नियम था कि माता-पिता की आज्ञा सिर पर धारण करना तथा उनके समक्ष कभी विपरीत वाणी न कहना। आजकल तो पढ़ने-लिखने के बाद एक शिक्षित भाई को माता-पिता की सेवा करने में भी संकोच होता है। माता-पिता की सेवा न करने वाला बालक प्रभु को प्रिय नहीं लगता है। जो माता-पिता की भी सेवा नहीं करता है, वह भगवान् की भक्ति क्या करेगा? कोई कभी अपने पिता से कहता है– बँगला मेरे नाम पर करना, इससे आपके बाद उपाधि न हो। पिता की मिल्कियत लेनी है पर पिता की सेवा नहीं करनी है। माता-पिता की सेवा महापुण्य है। आप भगवान् की भक्ति अधिक न कर सकें तो चल सकता है, पर आप अपने माता-पिता की बहुत सेवा कीजिए। आप पर प्रभु कृपा करेंगे। रामजी ने कभी माता-पिता के समक्ष कुछ भी कहा नहीं है। रामजी ने कभी भी कैकेयी से नहीं पूछा कि मुझे क्यों बनवास के लिये भेज रही हैं? आजकल के लड़कों को माता-पिता के अधीन रहना पसंद नहीं है। स्वेच्छाचार बहुत बढ़ गया है। लोग स्वतंत्रता की बहुत बातें करते हैं परन्तु सच्चा स्वतंत्र तो वही है, जो जितेन्द्रिय है। स्वेच्छाचार से पतन होता है। सदाचार परमात्मा के चरणों तक ले जाता है। सदाचार अर्थात् शास्त्र सम्मत आचार। क्या करना क्या न करना– स्वयं निर्णय न लीजिए, किसी संत से पूछिये, शास्त्रों में पढ़िये।

हित का शासन जो करता है, वह शास्त्र है। शास्ति इति शास्त्र:। नि:स्वार्थ ऋषियों ने इन शास्त्रों की रचना की है। ऋषियों ने बहुत सोचकर शास्त्र रचे हैं। शास्त्रों में श्रद्धा रखिये।

तस्माच्छस्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ

रामजी की मातृ-पितृ-भक्ति अनन्य है। रामजी का बंधु-प्रेम आलौकिक है। बंधु-प्रेम का आदर्श प्रभु ने जगत् को दिखाया है। आप अपने भाई के साथ प्रेम कीजिये। भाई के साथ कपट न कीजिए। आपके भाग्य का धन किसी को नहीं मिलने वाला है और अन्यों के भाग्य का धन

आपके हाथ नहीं आने वाला है। धन प्रारब्ध के अनुसार मिलता है। लोग धन के लिये छल-कपट करते हैं। भाई से प्रपंच करते हैं। आजकल तो अपने भाई से बैर रखने वाले अनेक दीख पड़ते हैं और कुछ तो अपने साढ़ू से प्रेम करते हैं। दूसरे के प्रति प्रेम-भाव रखते हैं पर अपने भाई के लिये त्याग नहीं करते हैं।

आप अपने भाई से प्रेम कीजिए। रामजी का बंधु-प्रेम कैसा अलौकिक है। कैकेयी ने कहा कि मैंने भरतजी को राज्य दिया है। यह सुनकर राम बहुत प्रसन्न हुए। कैकेयी माता को वंदन करके कहने लगे–माँ! मेरे मन में जो इच्छा थी, उसी के अनुसार आपने वरदान माँग लिया है। मेरे मन में बहुत इच्छा थी कि मेरा भरत राजा हो, मुझे राजा होने की इच्छा नहीं है। अपने भरत को राजा देखने की इच्छा है। मेरे भाई का सुख ही मेरा सुख है। मेरे भाई की जीत मेरी जीत है, मेरे भाई की हार ही मेरी हार है।

जैसा प्रेम रामजी के मन में है, वैसा ही भरतजी के मन में भी है। लक्ष्मणजी के मन में भी है। राम वन में जाने के लिये निकले तब लक्ष्मण कैसे घर में रह सकते थे? लक्ष्मणजी घर में न रह सके। लक्ष्मणजी की धर्मपत्नी घर में हैं, माता-पिता घर में हैं। लक्ष्मणजी का राज्य में हिस्सा है पर लक्ष्मणजी को तो रामजी चाहिए। अन्य किसी की चाहना नहीं है। खेल में भी रामजी ने कभी छोटे भाई लक्ष्मणजी को नाराज नहीं होने दिया है। राम का प्रेम ही ऐसा था कि राम के बिना लक्ष्मण नहीं रह सकते। रामजी के पीछे-पीछे लक्ष्मणजी भी वन में गये हैं।

रामायण की कथा में आता है कि लंका के युद्ध में मेघनाद ने लक्ष्मणजी पर शक्ति का प्रहार किया है। लक्ष्मणजी को मूर्छा आ गई है। रामजी लक्ष्मणजी का मस्तक गोद में रखकर बैठे हैं। लक्ष्मण के सिर पर हाथ रखकर सहलाते-सहलाते रोते हैं। जगत् में बहुत खोज करने पर सीताजी के समान स्त्री कदाचित मिल सकती है पर मेरे लक्ष्मण जैसा भाई कभी नहीं मिलेगा। ऐसा भाई कभी हुआ नहीं, न कभी होगा। मुझे जरा भी कष्ट हो तो मेरा भाई सह नहीं सकता। मेरे भाई का मेरे प्रति अतिशय प्रेम है। भाई! आज तुम क्यों बोल नहीं रहे हो? क्यों नाराज हो? सुषेन वैद्य ने आकर कहा–सूर्योदय से पहिले संजीवनी वनस्पति ले आइए तो ही लक्ष्मण जीवित रह सकेंगे। सूर्योदय के बाद शायद ये न जी सकें। जल्दी जाइए और वनस्पति ले आइए। तब रामचन्द्रजी ने कहा–जहाँ मेरा भाई जायगा, मैं भी जाऊँगा, मुझे अयोध्या की जरूरत नहीं है। मुझे सीताजी की भी जरूरत नहीं है। मुझे मेरा लक्ष्मण चाहिये मैं अपने भाई के पीछे-पीछे जाऊँगा। उसने मेरे लिए सब कुछ छोड़ दिया। इसका कैसा प्रेम है।

आप अपने भाई से प्रेम कीजिए, आपका भाई भी आपसे प्रेम करेगा। आप कभी अपने भाई से प्रपंच करेंगे तो वह भी प्रपंच करेगा। आपके शरीर में जो परमात्मा हैं वे ही उसके शरीर में भी हैं। देह सबके भिन्न-भिन्न है। देह में देव तो एक ही हैं। आप भाई से कपट करेंगे तो कभी भाई को भी कपट करने की इच्छा होगी।

रामचन्द्रजी का बंधु-प्रेम अलौकिक है। जैसा प्रेम रामजी का है वैसा ही प्रेम भरतजी का है। भरतजी ने चौदह वर्षों तक उपवास किये हैं– वे सोचते हैं कि श्रीराम वन में कंदमूल खाते हैं और मैं अनाज खाऊँ? भरतजी का ऐसा नियम था कि कोई साधु आये, कोई ब्राह्मण आये, गरीब आये, उसे प्रेम से मिठाई खिलाते थे, पर श्रीराम-वियोग में भरतजी ने स्वयं चौदह वर्षों तक अनाज नहीं खाया है। भरतजी की निष्ठा है–श्रीसीता-राम जब घर आ जायेंगे, जब मेरे राम भोजन करेंगे, तब मैं दर्शन करूँगा और बाद में मैं प्रसाद पाऊँगा।

संत ऐसा वर्णन करते हैं कि श्रीरामजी की तपस्या से भी भरतजी की तपस्या अधिक है। वन में तप करना सरल है पर राजमहल में तप करना कठिन है। भरतजी राजमहल में तप कर रहे हैं। रामजी वन में तप कर रहे हैं। वहाँ श्रीसीताजी रामजी की सेवा में हैं, लक्ष्मणजी भी हैं। रामायण में ऐसा वर्णन आता है कि भरतजी ने राम-वनवास के चौदह वर्षों में पत्नी की सेवा नहीं ली है। उन्होंने विचारा है मैं राम का सेवक हूँ मुझे किसी की सेवा नहीं लेनी है। वन में श्रीराम दर्भ की शय्या पर सोते हैं राजमहल में भरतजी धरती पर ही सोते हैं। कैसा बंधु-प्रेम है। आप अपने भाई से प्रेम कीजिये। भाई से कपट न कीजिये। पाप और पारा एक-न-एक दिन बाहर आता ही है, पारा कभी छिप नहीं सकता, पाप भी छिपाया नहीं जा सकता। भाई के साथ कपट करेंगे तो आज नहीं, तो दो वर्ष के बाद, दस वर्ष के बाद प्रकट होगा ही।

लोग मंदिर में जाते हैं कथा सुनते हैं, पर भाई से कपट करते हैं। एक भाई ने एक बार कहा–महाराज आप कथा बहुत अच्छी करते हैं। मुझे एक ऐसा मंत्र दीजिये कि कोर्ट में मेरी जीत हो जाय। मैंने पूछा–भाई! आपने किस पर दावा किया है? उसने कहा–अपने भाई पर दावा किया है। उनसे मुझे कहना पड़ा कि आपकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। आपने अपने भाई पर दावा किया है? बड़ा भाई राम-सा होगा तो छोटा लक्ष्मण-सा हो जायगा, पर अगर बड़ा भाई रावण सा होगा तो छोटा कुम्भकर्ण-सा हो जायगा।

प्रेम और मान कभी न माँगना। प्रेम और मान सभी को देना। आप शुद्ध भाव से भाई से प्रेम करेंगे तो आपका भाई आपके साथ अवश्य प्रेम करेगा। श्रीरामचन्द्रजी का बन्धु-प्रेम अनन्य था।

श्रीरामजी का संयम अलौकिक है। रामचन्द्रजी प्रत्येक इन्द्रिय पर संयम रखते हैं। संयम से बहुत सुख मिलता है, सम्पत्ति से थोड़ा सुख मिलता है जिनके जीवन में संयम है, वही भक्ति कर सकता है, उसका ही ज्ञान स्थिर रहता है, संयम के बिना ज्ञान टिकता नहीं है। घट में छिद्र हो तो छिद्र वाला घट कभी भरा हुआ नहीं रहेगा। जिस घड़े में पानी भरना है उसकी बहुत देखभाल की जाती है। कहीं उसमें छिद्र न पड़ जाय। शरीर एक घड़ा है इसमें नौ छिद्र हैं। आँखों से, कानों से, जीभ से ज्ञान बाहर बह सकता है। संयम से ज्ञान टिकता है। संयम से ही भक्ति होती है। जिसके जीवन में संयम है, वह अति सुखी है।

रामचन्द्रजी का संयम अद्‌भुत है। रामायण में लिखा है कि श्रीराम आँखें उठाकर किसी स्त्री की ओर देखते ही नहीं–

रामचन्द्रः परान्दारान् चक्षुणा नाभि वीक्ष्यते।

कभी किसी स्त्री पर दृष्टि पड़ जाये तो रामचन्द्रजी मातृ-भाव से देखते हैं, स्त्री-भाव से नहीं देखते हैं। प्रत्येक स्त्री में मातृभाव रखने वाला भगवान् को बहुत प्रिय लगता है। जगत् के स्त्री-पुरुषों को काम-भाव से देखने वाला प्रभु को प्रिय नहीं लगता है। उसकी भक्ति सफल नहीं होती है। रामचन्द्रजी प्रत्येक स्त्री में मातृभाव रखते हैं। रामजी के सद्‌गुणों का वर्णन कौन कर सकता है? श्रीरामजी अति सरल हैं। श्रीकृष्ण भगवान् भी सरल हैं, पर श्रीकृष्ण सज्जन के साथ सरल हैं, दुर्जन के साथ सरल नहीं हैं। श्रीराम सज्जन-दुर्जन, सभी के साथ सरल हैं। प्रभु के घर सुदामादेव आये हैं, जान कर द्वारिकानाथ दौड़ कर पहुँचे। सुदामा को आलिंगन दिया। सिंहासन पर बैठाया। उनके चरण पखारे। श्रीकृष्ण ने सुदामादेव की पूजा की। श्रीकृष्ण को ब्राह्मण बहुत प्रिय हैं। सुदामा सच्चा ब्राह्मण था। सुदामा सरल था। श्रीकृष्ण सुदामा के साथ सरल हैं। महाभारत में वर्णन है–द्रोणाचार्य को मारने के लिए श्रीकृष्ण कपट करते हैं। सुदामा भी ब्राह्मण, द्रोणाचार्य भी ब्राह्मण। द्रोणाचार्य कोई साधारण ब्राह्मण नहीं हैं। उन्हें चार वेदों और छह शास्त्रों का ज्ञान है, परिपूर्ण ज्ञान है। द्रोणाचार्य ब्रह्म तेजस्वी हैं, फिर कृष्ण को प्रिय नहीं लगते। बहुत पढ़े हैं पर धर्म छोड़ते हैं? बहुत पढ़ा व्यक्ति धर्म छोड़ देता है वह प्रभु को प्रिय नहीं लगता है। प्रभु उसे बहुत सजा देते हैं। बड़ा वह है जो धर्म की मर्यादा में रहता है। इतना बड़ा समुद्र है, पर वह मर्यादा में ही रहता है। चन्द्र-सूर्य परमात्मा की मर्यादा में रहते हैं। एक मानव ही ऐसा दुष्ट है कि जब उसे अधिक धन, मान मिलता है, तब धर्म की मर्यादा को वह तोड़ देता है। स्वेच्छाचारी जीवन व्यतीत करने लगता है। द्रोणाचार्य महान् वीर हैं; ज्ञानी हैं, पर उन्होंने धर्म छोड़ा, इससे वे प्रभु को प्रिय नहीं लगते हैं।

युद्ध करना ब्राह्मण का धर्म नहीं है। ब्राह्मण कभी युद्ध नहीं करता है। कदाचित कभी युद्ध करना भी पड़े तो भी धर्म की रक्षा के लिये, अधर्म के विनाश के लिए ही वह करेगा। द्रोणाचार्य जानते थे कि दुर्योधन दुष्ट है, फिर भी वे अधर्म के पक्ष में रहकर युद्ध करते हैं। द्रोणाचार्य जानंबूझ कर पाप करते हैं और इससे सुदामा के चरणों की पूजा करने वाले कृष्ण द्रोणाचार्य से कपट करते हैं।

महाभारत में वर्णन आता है। द्रोणाचार्य ने बहुत प्रहार किये हैं। प्रभु ने सोचा कि यह बूढ़ा जीता रहेगा तो अनर्थ करेगा। इससे अब इसे मारना है। द्रोणाचार्य ऐसे तपस्वी थे, ऐसे शक्तिशाली थे कि वे अपनी इच्छा से ही मर सकते थे, उन्हें कोई मार नहीं सकता था। वे इच्छा-मरणीय थे। इससे प्रभु ने कपट किया। अस्वत्थामा नाम का हाथी था। उस हाथी को भीमसेन ने मार डाला। द्रोणाचार्य के पुत्र का नाम भी अश्वत्थामा था। प्रभु ने कहा–महाराज! आप लड़ रहे हैं पर आपके अश्वत्थामा की मृत्यु हुई है। द्रोणाचार्य ने यह सुना। बहुत दुःखी हुए। एक ही पुत्र था। वे सोचने लगे–अगर पुत्र ही मर गया तो फिर मुझे लड़ने की क्या जरूरत है? अब मुझे जीना नहीं है। पर द्रोणाचार्य ने फिर सोचा–शायद ये कृष्ण झूठ बोल रहे हों, और अगर ये झूठ बोलें तो उन्हें पूछने वाला भी कोई नहीं है। शास्त्र की मर्यादा जीव के लिए है, ईश्वर के लिये नहीं है। द्रोणाचार्य को आशंका हुई। वे जानते थे कि कुछ भी हो जाय पर धर्मराज झूठ नहीं बोलेंगे। धर्मराज मुझसे कहेंगे कि अश्वत्थामा मर गया तो मैं प्राण छोड़ूँगा।

श्रीकृष्ण को पता लगा कि द्रोणाचार्य धर्मराज से पूछने जा रहे हैं। प्रभु ने धर्मराज से कहा–द्रोणाचार्य जब पूछने आ जाय, तब कहना कि अश्वत्थामा मर गया है। धर्मराज धर्म की मूर्ति हैं। धर्मराज ने कहा–महाराज! मैं जान रहा हूँ कि अश्वत्थामा नाम का हाथी मरा है, मानव नहीं मरा है। मुझे झूठ बोलने का पाप लगेगा। प्रभु ने कहा–सजा देना मेरे हाथ में है, मैं बाद में देख लूँगा, आपको सजा नहीं होगी। मैं कह रहा हूँ, ऐसा कहिये। धर्मराज ने हाथ जोड़े–आप ईश्वर हैं, पर मैं जीव हूँ। मेरे गुरुदेव ने मुझे आज्ञा दी है कि सत्यं वद, धर्मं चर। मैं असत्य नहीं बोलूँगा।

श्रीकृष्ण उसी समय धर्मराज को सत्य का अर्थ समझा रहे हैं–अरे! सत्य का अर्थ आप नहीं जान रहे हैं। सबके प्रति सद्भाव रखकर समाज के कल्याण के लिए विवेक से बोलना सत्य है–

सत्यं भूतहितं प्रोक्तम्

दुर्योधन का राज्य अधर्म का राज्य है। अधर्म के राज्य में प्रजा दुःखी है। श्रीकृष्ण कपट करते हैं पर श्रीकृष्ण का कोई स्वार्थ नहीं है। श्रीकृष्ण समाज को सुखी करने के लिए कपट करते हैं। धर्मराज ने शंका की–आपने मुझे कहा कि सर्व में सद्भाव रखना चाहिये। तो सर्व में द्रोणाचार्य

भी आ जाते हैं कि नहीं? श्रीकृष्ण ने कहा–सर्व में द्रोणाचार्य आ गये, मैं द्रोणाचार्य में सद्भाव ही रखता हूँ, पर वे ब्राह्मण होकर युद्ध कर रहे हैं, पाप कर रहे हैं। वे जब सुनेंगे कि अश्वत्थामा मारा गया, तब युद्ध छोड़ेंगे, इससे पाप छूटेगा और वे सुखी होंगे। आज भले ही उन्हें दुःख हो रहा हो। धर्मराज ने सोचा कि श्रीकृष्ण सच ही कहते हैं। झूठ बोलने में भी द्रोणाचार्य के प्रति सद्भाव ही है। धर्मराज से द्रोणाचार्य पूछते हैं कि क्या अश्वत्थामा मरा है? धर्मराज कहते हैं कि हाँ! अश्वत्थामा मारा गया है? पर धर्मराज को थोड़ी शंका होने लगी कि मुझे पाप तो नहीं होगा। इससे बाद में कहते हैं, 'नरो वा कुञ्जरो वा।' उसी समय प्रभु ने शंख बजाया। द्रोणाचार्य 'नरो वा कुञ्जरो वा' सुन न सके। परमात्मा को जो करना है वही होता है।

श्रीकृष्ण सज्जन के साथ सज्जन–सरल हैं, पर दुर्जन के साथ सरल नहीं हैं। दुर्योधन को कपट करके उन्होंने मारा है। दुष्ट जिन्दा रहता है तो अनेकों को रुलाता है। उसे कपट से मारने में दोष नहीं है। श्रीकृष्ण की राजनीति है और रामजी की धर्मनीति है। राजनीति कहती है कि अति पापी को मारिये, अति पापी जिन्दा रहता है तो अनेक को मारता है, अनेक को दुःखी करता है। अति पापी की हिंसा, हिंसा नहीं है, अहिंसा ही है। श्रीकृष्ण सज्जन के साथ सरल हैं। श्रीराम सरल–दुर्जन सभी के साथ सरल हैं। रामायण में वर्णन आता है कि श्रीराम रावण के साथ भी सरल हैं। रावण की भी स्वीकृति है। रावण का बख्तर फट गया है, रावण बहुत घायल हुआ है, उसका रथ छिन्न–भिन्न हो गया है। तब श्री रामचन्द्रजी ने रावण से कहा कि आज तुम बहुत थक गये हो। अब आराम करो, भोजन करो, अब कल युद्ध करेंगे।

राजनीति कहती है कि शत्रु घायल है तब शत्रु को मार डालिये। कपट करके भी उसे मारिये, पर रामजी की धर्मनीति है।

रामजी ने जब यह कहा, तब रामजी के कथन से रावण का हृदय द्रवित हुआ। उसकी आँखें गीली हो आयीं, उसके मन में ऐसी इच्छा हुई अभी दौड़कर रामजी के चरणों में मस्तक रख दूँ। राम कैसे सरल हैं। लोग रामजी की प्रशंसा जितनी करते हैं बहुत कम है। रावण को प्रतीति हुई कि राम बहुत सरल हैं। रामजी की सरलता का वर्णन कौन कर सकता है?

रामायण में अनेक स्थान पर रामजी की सरलता का निरूपण हुआ है। प्रभु तरुतर, कपि डार पर–रामजी वृक्ष के नीचे बैठते हैं और बंदर वृक्ष के ऊपर बैठते हैं। कानून तो ऐसा है कि मालिक ऊपर बैठते हैं और दास नीचे बैठते हैं, पर ये सब दास–सेवक ऐसे हैं कि ऊपर चढ़कर बैठते हैं। वृक्ष पर शांति से बैठते तो ठीक था पर ये तो वृक्ष पर कूदते हैं, खेलते हैं, फिर भी रामजी को नाराजगी नहीं होती! राम बहुत सरल हैं। जो अति सरल हैं, वे किसी के दोष नहीं देखते हैं।

रामायण में केवट-प्रसंग बहुत सुन्दर है। रामजी वन में जा रहे थे तब, यह केवट रामजी के चरण पखारता है। रामजी को नाव में बैठता है। राम लक्ष्मण जानकी को नाव में बैठाकर गंगा पार करवाता है। श्रीसीताजी गंगा पार करके आती हैं। नाव से उतरकर रामजी गंगा-तट पर खड़े हैं। केवट को खाली हाथ लौटाना रामजी को दुःखी कर देता है। केवट को विदा करते हुए रामजी को बहुत संकोच होता है। कभी किसी ने थोड़ी भी सेवा की हो तो रामजी भूलते नहीं हैं। आज रामजी के पास धन नहीं है। तपस्वी बनकर रामजी आये हैं। स्वामी की दृष्टि धरती पर है। उन्हें बहुत संकोच हो रहा है। सोचते हैं कि इस गरीब को मैं कुछ नहीं दे पा रहा हूँ। इसने मेरी बहुत सेवा की है। तभी केवट दौड़कर आ पहुँचा। श्रीसीताजी के चरणों में बह बार-बार वंदन करता है। प्रभु की आँखें भर आयी हैं। एक पैसा भी इसे दिया नहीं। इसने बहुत सेवा की। बहुत बार प्रणाम कर रहा है।

श्री सीताजी समझ गयीं। सीताजी की उँगली में एक सुन्दर अँगूठी थी। माताजी ने अँगूठी उतारकर रामजी के हाथ में दे दी। आप जरा भी संकोच न रखिये। यह अँगूठी इसे दे दीजिये। श्रीरामजी अँगूठी केवट को देने लगे। तब केवट ने इन्कार कर दिया-महाराज मैं गरीब हूँ पर मेरा ऐसा नियम है कि कोई गरीब, साधु-सन्त, तपस्वी आ जायें तो मैं उतराई नहीं लेता हूँ। केवट ने अनेक वर्षों तक ऐसी सेवा की थी। इससे ही श्रीरामजी उसकी नाव में बैठे थे।

उसने श्रीरामजी से कहा-मैं आप से कुछ नहीं ले सकता। श्रीरामजी समझाने लगे-यह उतराई नहीं है। मैं प्रेम से प्रसाद दे रहा हूँ। श्री रामजी जानते हैं कि यह गरीब है। छोटी सी कुटी में रहता है। बहुत गरीब है। रामजी कहने लगे-प्रसाद तो लेना ही चाहिये। केवट बार-बार रामजी को वंदन करता है। हाथ जोड़कर कहता है-मैं छोटे मुँह की बड़ी बात कह दूँ, तो क्षमा कीजियेगा। बात यह है कि आज का दिन प्रसाद लेने का नहीं है। आज आप मेरे स्वामी नंगे पाँवों चलते हैं। आज मैं प्रसाद नहीं लूँगा। मेरी ऐसी भावना है कि चौदह वर्षों का वनवास सुख से पूर्ण करके आप जब लौटें, तब मुझे पुनः सेवा का लाभ दीजियेगा। आप श्रीसीताजी के साथ सुवर्ण सिंहासन पर विराजमान हों, आपका राज्याभिषेक हो और मैं आपके दर्शन करूँ। उस समय आपको जो उचित लगे वह दीजिये। आप राजाधिराज होकर मुझे जो प्रसाद देंगे, मैं लूँगा, आज कुछ नहीं लूँगा। श्रीसीताजी की आँखों में प्रेमाश्रु आये। विचारने लगीं कि यह केवट अनपढ़ है, गरीब है पर इसका हृदय गंगाजल के समान शुद्ध है, इसकी कैसी सुन्दर भावना है!

समायण में एक कथा है। रावण को मारकर रामजी, श्रीसीताजी, श्रीलक्ष्मणजी और वानर सेना के साथ पुष्पक विमान से, लंका से निकले और अयोध्या पहुँचे। श्रीसीता रामजी जिस दिन अयोध्या पहुँचे, वह था बैशाख शुक्ल पंचमी का दिन। लोग बहुत प्रसन्न हुए। सभी ने आग्रह किया

कि अब तुरन्त राज्याभिषेक होना चाहिये। इससे बैशाख शुक्ल सप्तमी के दिन श्रीसीता-रामजी का राज्याभिषेक हुआ। बहुत बड़ा दरबार हुआ। अनेक देशों के राजा आये, देव आये। रामजी को भेंट समर्पित की गई। जय-जयकार हुआ। बहुत भीड़ है। सुवर्ण-सिंहासन पर रामजी विराजमान हैं और चारों ओर देख रहे हैं। सीताजी ने पूछा—क्या आप किसी को खोज रहे हैं? किसे खोज रहे हैं? तब रामचन्द्रजी ने कहा ये सब मेरे दर्शन के लिये आये हैं पर मुझे जिसके दर्शन की इच्छा है वह कहीं दिखाई नहीं दे रहा है। श्रीसीताजी को आश्चर्य हुआ। ऐसा कौन है कि जिसके दर्शन की इच्छा प्रभु को हो रही है? ऐसा कौन भाग्यशाली है कि जिसे देखने की इच्छा प्रभु को हो रही है?

रामचन्द्रजी ने कहा—तुम्हें याद है कि जिस केवट ने हमें गंगा पार करवायी थी, उसने कहा था कि राज्याभिषेक के बाद मुझे प्रसाद देना। वही केवट नहीं आया है। श्रीराम केवट की सेवा को नहीं भूले हैं। राज्याभिषेक के बाद प्रभु ने सब का सम्मान किया है। शृंगवेरपुर के राजा गुहक को उन्होंने बुलाया और कहा कि तुम्हारे गाँव में मैं आया था, तब जिस केवट ने मुझे गंगा पार करवायी थी, उस केवट के लिये प्रसाद ले कर जाना। रामजी ने केवट के लिये अनेक आभूषण वस्त्र भेजे हैं।

दुःख में किसी ने थोड़ा पानी भी दिया हो तो उसे न भूलना। किसी का उपकार न भूलना और किसी का अपकार मन में न रखना। थोड़ी भी किसी ने सेवा की हो तो याद रखना। परमात्मा आपको संपत्ति दें, तब उपकार का बदला विवेक से चुका देना। हृदय रामजी जैसा सरल रखना।

आप भले ही साधु न बन सकें, आप सरल बनिये। जिसका हृदय सरल है, वह साधु है भले ही वह बँगले में रहता हो। जिसका हृदय सरल है, उसके हृदय में भगवान् का प्रवेश होता है। छल-कपट न कीजिये। कपट से हृदय टेढ़ा हो जाता है। कपट करने वाला मूर्ख होता है। कपट से बहुत नुकसान होता है। भले ही थोड़ा भौतिक लाभ मिलता हो, शांति नहीं मिलती है। परिवेश से साधु होना सरल है, हृदय से साधु होना कठिन है। दूसरे का काम कर देने वाला साधु है। दूसरे के कार्य को सिद्ध करने के लिए प्राण का भी त्याग करता है वह साधु है।

श्रीराम अति सरल हैं, इससे राम-राज्य में प्रजा अति सुखी है। राम-राज्य में प्रजा को जैसा सुख मिला, वैसा स्वर्ग के देवों को भी नहीं मिला।

श्रीराम धर्म की मूर्ति हैं। रामायण में वर्णन है कि रामजी की प्रजा को कालदेव भी वंदन करता है और जिसे मरने की इच्छा है, उसे ही काल पकड़ सकता है। श्रीराम-राज्य में प्रजा अति सुखी है, पर सीता-रामजी को अति दुःख सहना पड़ा है। जो अति सरल है, उसे लोग बहुत त्रस्त करते हैं, इससे ही कृष्णावतार में भगवान् जरा टेढ़े हो गये हैं। श्रीकृष्ण सरल के साथ सरल हैं पर

कोई टेढ़ा होता है तो प्रभु भी टेढ़े हो जाते हैं। सरलता के कारण ही सीताजी को बहुत सहना पड़ा है। श्रीसीताजी सगर्भा हैं। आज उनकी वन में घूमने की इच्छा होती है। सुबह एक दूत आया और रामजी से कहने लगा—मैंने नगर चर्चा सुनते हुए रात्रि में अयोध्या के लोगों को आपकी निंदा करते हुए सुना। श्रीसीताजी रावण के घर में बहुत दिन रहकर आयीं हैं, और आप सीताजी को घर रखते हैं, इससे लोगों को आपके बारे में शंका हो रही है। रामचन्द्रजी ने यह सब सुना किन्तु उन्हें अच्छा न लगा।

रामचन्द्रजी ने राजधर्म को महत्व दिया है तथा पतिधर्म को गौण माना है। राजा का सिंहासन रानी को खुश करने के लिए नहीं है। राजा का पद तो प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए है। श्रीरामजी जानते हैं कि सीताजी पवित्र हैं, महान पतिव्रता हैं और उन पर लगाया हुआ कलंक झूठा है पर लोगों को शंका हो रही है। वे चाहे जैसा बोल रहे हैं। जो व्यक्ति जैसा है, वह वैसे ही भाव से अन्य को देखता है। जो लोभी है, उसे दूसरा लोभी ही लगता है। जो कामी है, वह अन्य को काम-भाव से ही देखता है। ऐसे ही लोग श्रीसीताजी के लिए शंका करते हैं। श्रीसीताजी के स्मरण मात्र से हमारा हृदय पवित्र हो जाता है। एक अधम जीव था, वह माताजी के लिए चाहे जैसा बोला। उचित तो यह है कि जिसने माताजी की निंदा की है, उसे फाँसी की सजा देनी चाहिए थी। लंका-युद्ध के बाद सीताजी ने अग्नि में प्रवेश किया था। उसी समय सभी देव-ऋषि मुनियों ने कहा था कि यह महान पतिव्रता हैं। अब वह मूर्ख न जाने कैसा बोला! पर श्रीराम अति सरल हैं। उन्होंने उस आदमी को सज़ा न दी। प्रभु ने सोचा कि हम दोनों इस दुःख को सहन करेंगे। मुझ पर यह कलंक लगा है। अब मैं सीताजी का त्याग करूँगा तब ही कलंक दूर होगा। प्रभु ने ऐसा निश्चय किया। लक्ष्मणजी को उन्होंने बुलाया। और कहा—भाई! मेरा एक काम तुम्हें करना होगा। अयोध्या के लोग चाहे जैसा बोल रहे हैं। मैंने तुम्हारी भाभी का त्याग किया है। उसे रथ में बैठाकर, दूर जंगल में छोड़कर, तुम वापस आ जाना। श्रीलक्ष्मणजी का श्रीसीताजी के प्रति मातृ-भाव था। श्रीसीताजी मेरी माता हैं। वह व्यक्ति मेरी माता के लिए ऐसा कहता है? मैं उसे मारूँगा, उसे सजा दूँगा। श्रीराम लक्ष्मण का हाथ पकड़कर, उन्हें पास बैठाते हैं, कहते हैं, लक्ष्मण! तुम किसे सजा दोगे? अयोध्या के बहुत-से लोग ऐसा कहते हैं। प्रजा को प्रसन्न रखने के लिये मैंने यह तय किया है। लक्ष्मणजी ने हाथ जोड़े और कहा—'यह काम मुझ से नहीं होगा। श्रीसीताजी को अकेली छोड़कर, मैं वापस आ जाऊँ। मुझसे यह नहीं हो सकेगा, आप किसी और से कहिये।' रामजी ने कहा—लक्ष्मण तुम्हारे सिवाय यह काम कोई नहीं कर सकेगा। तुम्हें ही यह करना पड़ेगा। बहुत सोचकर मैंने यह निर्णय लिया है। यह मेरी आज्ञा है। अब कुछ न बोलना। सेवा-धर्म बहुत कठिन

है। सेवक कहलाना सरल है, सेवा करना अति कठिन है। देव की सेवा करना कठिन है। ज्ञानी होना सरल है, योगी होना सरल है किन्तु सेवक होना अति कठिन है। सेवक वही हो सकता है जो मन को मारता है। सेवक के पास अपना मन नहीं है। उसके लिए तो स्वामी का मन ही अपना मन है। स्वामी की इच्छा ही उसकी इच्छा है।

लक्ष्मणजी की इच्छा नहीं है। फिर भी उन्हें यह काम करा पड़ रहा है। रामचन्द्रजी ने सीताजी से कुछ भी नहीं कहा है। लक्ष्मणजी सीताजी को रथ में बैठाकर ले जाते हैं। प्रभु की आज्ञा थी कि रास्ते में कुछ न कहना। वन में पहुँचकर ही बताना। सीताजी तो ऐसा समझ रही हैं कि उनकी वन में घूमने की इच्छा के कारण ही रामजी ने उन्हें वन में घूमने के लिए भेजा है। रास्ते में अपशकुन हो रहे थे। घनघोर जंगल में पहुँचकर सीताजी रथ में से नीचे उतरीं। उसी समय लक्ष्मणजी छोटे बालक की तरह रोने लगे। वे महान वीर हैं, फिर भी रो रहे हैं! सीताजी अनजान हैं, इससे पूछती हैं–भाई! तुम्हें क्या हुआ? तुम क्यों रो रहे हो? लक्ष्मणजी साष्टांग प्रणाम करके कहने लगे–माँ! मैं यह काम नहीं करना चाहता था, पर मुझे करना पड़ा। मैं सेवक जो हूँ। अयोध्या के लोग चाहे जैसा बोलते हैं, इससे प्रभु ने आपका त्याग किया है। लक्ष्मण की बात सुनकर सीताजी व्याकुल हो गयीं, पर उन्होंने धैर्य धारण करके कहा–लक्ष्मण! अपने प्रति उनके प्रेम को मैं जानती हूँ। वे कभी मेरा त्याग नहीं कर सकते, पर प्रजा को प्रसन्न करने के लिये प्रभु ने यह लीला की है। राजा का पद प्रजा को प्रसन्न रखने के लिये है। वे जो कुछ करते हैं, उचित ही होता है। लक्ष्मण! उन्होंने मेरा त्याग किया, इसकी चिंता नहीं है पर मुझे उनकी चिंता है। उनकी सेवा अब कौन करेगा? वे किसी स्त्री का स्पर्श नहीं करते न दृष्टि उठाकर किसी स्त्री को देखते हैं। लक्ष्मण! आज तक मैंने किसी से नहीं कहा पर आज तुम्हें कह रही हूँ कि रात्रि में जब तक मैं उनके चरणों की सेवा नहीं करती, तब तक उन्हें नींद नहीं आती। अब उन्हें सुख की नींद नहीं मिलेगी। लक्ष्मण! मेरे वियोग में वे बहुत दुःखी रहेंगे। आप मेरी चिंता न कीजिये, आप अपने बड़े भाई की देखभाल करना। आप उनकी सेवा कीजियेगा। एक क्षण भी उनको छोड़ना नहीं। लक्ष्मण, श्रीराम–वियोग जैसा कोई दुःख नहीं है, पर मैं सहन कर लूँगी। मुझे आत्महत्या नहीं करनी है। आप जानते हैं कि मैं सगर्भा हूँ। सूर्यवंश का पवित्र तेज मेरे पेट में है। मैं बालक को बड़ा करूँगी। मुझे दुःख यह हो रहा है कि इस वन में कोई साधु-संत जब पूछेंगे कि आपके पति ने आपका त्याग क्यों किया? तब मैं क्या उत्तर दूँगी? ऐसा कहकर सीताजी विलाप करने लगीं। लक्ष्मण बुद्धिमान हैं। वे सीताजी को धैर्य बँधाने लगे–'माँ, पास में वाल्मीकि ऋषि का आश्रम है। वे आपके पिता के मित्र हैं, माता! यह आपका सेवक पुनः आपके दर्शन करने आयेगा। अब मुझे आज्ञा दीजिये।

सीताजी को वंदन करके लक्ष्मणजी लौट गये। सीताजी बहुत व्याकुल हो गयीं। उनकी यह दशा देखकर जंगल के पशु-पक्षी भी रोने लगे। सीताजी के दर्शन से पशु-पक्षियों के हृदय में भी उनके प्रति प्रेम उमड़ रहा था, इससे वे भी प्रेमाकुल होकर रोने लगे।

वाल्मीकि ऋषि ने सुना कि कोई स्त्री रो रही है। वे दौड़कर वहाँ पहुँचे। उन्होंने सीताजी को पहिचान लिया। वे समझाने लगे-बेटी! मैं सब कुछ जानता हूँ। तुम मेरी पुत्री हो। मैं तुम्हारे पिता का मित्र हूँ। सीताजी को समझाकर वाल्मीकिजी उन्हें अपने आश्रम में ले आये।

श्रीराम चक्रवर्ती सार्वभौम राजा हैं। श्रीराम के दोनों पुत्रों का जन्म एक ऋषि के आश्रम में हुआ है। लव-कुश को वाल्मीकि ऋषि, रामायण पढ़ा रहे हैं। भागवत की रचना गंगा तट पर हुई है और रामायण की रचना तमसा नदी के तट पर हुई है। वाल्मीकिजी का आश्रम तमसा नदी के तट पर है। लव-कुश रामायण की कथा बहुत सुन्दर कहते हैं। दोनों सात वर्ष के हैं।

समाज दोनों पक्षों में बोलता है। रामचन्द्रजी का सीता-त्याग कई लोगों को पसन्द है, कइयों को नापसन्द भी है। राम-राज्य में सभी आनन्द में हैं। लोगों को अति सुख मिला है, पर सीता-रामजी के सुख का विचार किसी को नहीं है। अकेले राम राजमहल में रहते हैं, अकेली सीताजी वाल्मीकि के आश्रम में रहती हैं, पर रामजी के पास जाकर कोई नहीं कहता कि माता सीता को बुला लीजिये, नहीं तो मैं अन्न त्याग करूँगा, मैं प्राण त्याग दूँगा।

एक ब्राह्मण का हृदय व्याकुल हुआ है। वे आज दरबार में बहुत विलम्ब से आये हैं। राजसभा में वशिष्ठजी को बहुत सम्मान दिया जाता है। वशिष्ठजी पधारे हैं। सब खड़े होकर उन्हें सम्मान देते हैं। रामचन्द्रजी ने वशिष्ठजी की पूजा की। वशिष्ठजी तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ महा ज्ञानी ब्राह्मण हैं। गुरुदेव के चरणों में वंदन करके रामजी पूछते हैं-आपको क्या हो रहा है? आपका स्वास्थ्य तो अच्छा है न? आपको आज सभा में आने में विलम्ब कैसे हुआ? वशिष्ठजी ने पूछा-सीताजी कहाँ हैं? वे महान् पतिव्रता हैं। सीताजी के स्मरण मात्र से इस ब्राह्मण की आँखों में आँसू आ गये, वे बोले-आप दोनों सिंहासन पर विराजमान हों और मैं दर्शन करूँ, यही आकांक्षा है। अन्य कोई इच्छा नहीं है। रामजी ने गुरुजी के चरण पकड़ लिये और कहा-आपके आशीर्वाद से सब अच्छा ही होगा। जो कुछ किया है, बहुत सोच-विचार के बाद किया है। गुरुजी, इस विषय में अब मुझे आप कुछ न कहियेगा।

रामचन्द्रजी को यज्ञ करना है। राजा को यज्ञ करना ही चाहिये। यज्ञ प्रजा के कल्याण का साधन है। वशिष्ठजी ने रामचन्द्रजी से कहा-अकेला पुरुष यज्ञ नहीं कर सकता, अकेली स्त्री भी यज्ञ नहीं कर सकती। पति-पत्नी के साथ में बैठेंगे तो ही यज्ञ होगा। सीताजी को बुलाइये। प्रभु

ने हाथ जोड़कर इन्कार कर दिया बोले—यह नहीं हो सकेगा। तब एक भूदेव ने कहा—राजा तो अनेक विवाह कर सकता है। आप किसी राजकन्या से विवाह कर लीजिये। रामचन्द्रजी ने हाथ जोड़े कहा—यह आप क्या कह रहे हैं? जगत् की प्रत्येक स्त्री मेरी माता है। रामचन्द्रजी का एक पत्नीव्रत है।

एक-पत्नीव्रत का हमारे शास्त्रों में बहुत महत्व है। देव, अग्नि और ब्राह्मण—इन तीनों की साक्षी में जिस पुरुष के साथ, जिस स्त्री के साथ विवाह किया गया हो, उसके साथ जो काम-भाव रखता है और अन्य सर्व स्त्री-पुरुष को जो भगवद्भाव से देखता है, वह गृहस्थ होने पर भी साधु है। रामजी का एक-पत्नीव्रत परिपूर्ण है।

दशरथ महाराज चाहे अनेक रानियों से विवाह करें, पर रामजी ने कभी ऐसा नहीं कहा है कि मेरे पिता ने बहुपत्नीत्व का आचरण करके भूल की है, पर रामजी ने बहुत विवेक से पिताजी की भूल सुधार ली है। बुजुर्गों का जो आचरण पवित्र होता है, उसका ही अनुकरण होता है। बुजुर्ग अगर कोई भूल करते हों तो पुत्र को उस भूल का अनुकरण नहीं करना चाहिए।

चार वेदों और छह शास्त्रों का अध्ययन करके विद्या परिपूर्ण करके, जब विद्यार्थी घर जाने के लिए तैयार होता है। जब गुरुदेव को वंदन करके वह कहता है—अब मुझे अन्तिम उपदेश दीजिये। गुरुदेव कहते हैं—बेटा, अब घर जाकर तुम विवाह करोगे। विवाह के बाद यह न भूलना कि तुम्हारी माता भगवान् हैं, तुम्हारे पिता परमात्मा हैं, तुम्हारे आचार्य परमात्मा हैं। मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव। पहिला क्रमाँक माता का है, दूसरा क्रम पिता का है और गुरुजी तीसरे क्रम पर आते हैं। गुरु कहते हैं—बेटा! बारह वर्षों तक तुम मेरे आश्रम में रहे हो, मेरी कई भूलें तुमने देखी होंगी। जीव मात्र भूल करता ही है, निर्दोष तो एक परमात्मा हैं। बेटा! मैंने जो भूलें की हैं, वैसी भूलें न करना। मेरे पवित्र आचरण का ही अनुकरण करना। गुरुजी को तम्बाकू का व्यसन हो तो चेला कहेगा कि हम भी तम्बाकू खायेंगे। तो यह उचित नहीं है। अरे, गुरुजी भले ही खायें, गुरुजी बड़े हैं। बड़े जो कहते हैं। वह कीजिये। बड़े जो कर रहे हैं, वह न कीजिये। गुरु की कोई भूल हो, गुरु व्यसनी हों तो शिष्य को वैसी भूल न करनी चाहिए, ऐसी गुरुजी की आज्ञा होती है। रामचन्द्रजी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, मर्यादा का परिपूर्ण पालन करते हैं।

रामचन्द्रजी का एक-पत्नीव्रत है। यज्ञ करने के लिये भी रामजी दूसरा विवाह करने के लिए तैयार नहीं है। तब वशिष्ठजी ने निर्णय दिया—आप दूसरा विवाह करना नहीं चाहते, आप सीताजी को भी नहीं बुलाते हैं, तो आपको यज्ञ करने का अधिकार नहीं है। रामजी ने युक्ति की। सीताजी की सुवर्ण-प्रतिमा बनवाई और उसे श्रृंगार करवाकर तैयार किया। उस सुवर्ण प्रतिमा को साथ में बैठाकर रामचन्द्रजी यज्ञ करने बैठे।

वाल्मीकि ऋषि को यज्ञ का निमंत्रण मिला है। वाल्मीकि लव-कुश-दोनों शिष्यों के साथ अयोध्या में आये हैं। लव-कुश सात वर्ष के बालक हैं। रामायण की कथा बहुत सुन्दर शैली में कहते हैं। बड़े-बड़े ऋषि इस कथा को सुनकर डोल उठते हैं। सोचते हैं कि बालक कैसा बोलते हैं! रामजी ने बात सुनी-वाल्मीकि ऋषि के दो शिष्य आये हैं। रामायण की कथा बहुत सुन्दर कहते हैं। रामजी ने उन्हें सभा में बुलाया। ऋषियों ने कहा कि यज्ञ पूर्ण होने पर सभारंभ में क़था हो, ऐसी हमारी इच्छा है। हम कथा सुनना चाहते हैं। रामायण की प्रथम कथा, रामजी के दो बालक, रामजी के सम्मुख राम-दरबार में कर रहे हैं। अयोध्या की प्रजा सुन रही है। बड़े-बड़े ऋषि लव-कुश की कथा सुनने बैठे हैं।

रामजी के दरबार में लव-कुश ने चौबीस दिनों तक कथा की है। हर रोज बीस-बीस सर्गों की कथा करते हैं। श्रीराम कथा सुनने बैठे हैं। श्रीसीता-वियोग में रामचन्द्रजी श्रीसीताजी का चरित्र सुनते हैं। लव-कुश जब कथा का प्रारंभ करते हैं तब कहते हैं-हम एक महान पतिव्रता स्त्री की कथा कह रहे हैं। श्रीराम कथा सुनते हैं। अयोध्या के लोग कथा सुनते हैं। जो वयोवृद्ध थे वे लव-कुश को अपलक देख रहे हैं-वे सोचते हैं कि ये कैसे दीख रहे हैं! राम-लक्ष्मण जब छोटे थे, तब ऐसे ही दीखते थे! ये किसके बालक होंगे?

वक्ता से भी श्रोता का आसन ऊँचा न होना चाहिये। जब लव-कुश कथा करते तब श्रीराम सिंहासन छोड़कर नीचे बैठते थे। मर्यादा-पुरुषोत्तम की प्रत्येक लीला में मर्यादा है। रामजी ने लक्ष्मण से कहा-लक्ष्मण! इन दोनों को देखकर मुझे तृप्ति नहीं होती। मुझे ऐसा लगता है कि इन्हें सारा दिन देखता ही रहूँ। इन बालकों को देखकर मेरे हृदय से प्रेम प्रस्फुटित हो रहा है। ऐसी इच्छा होती है कि इन्हें हृदय से लगा लूँ। मेरा हृदय द्रवित हो रहा है। लक्ष्मण! मुझे इनका सम्मान करना है।

रामजी ने लव-कुश के लिये वस्त्राभूषण मँगाये हैं, तब लव-कुश ने कहा-हमारे गुरुदेव की आज्ञा है कि जब कथा कर रहे हों, तब कुछ न लेना। हम जंगल में रहते हैं। कंद-मूल खाते हैं। हम कभी अनाज भी नहीं खाते। सात वर्ष के वे बालक कहते हैं-हम अनाज भी नहीं खाते। तब प्रभु ने दृष्टि झुका ली। बालक कहने लगे-हम वन में तपश्चर्या करते हैं। ये वस्त्र-आभूषण हमारे काम के नहीं हैं।

रामचन्द्रजी ने कहा-लक्ष्मण! ये बालक कैसा बोल रहे हैं? मुझे इनका परिचय लेना है। इन बालकों की माता कौन होंगी? पिता कौन होंगे? लक्ष्मण! इन्हें बुरा न लगे, तुम विवेक से इनसे पूछ लो।

लक्ष्मणजी ने हाथ जोड़े हैं और बालकों से पूछ रहे हैं—आपकी कथा से रामचन्द्रजी को बहुत आनंद हुआ है। वे आपका परिचय चाहते हैं। आप कौन हैं? तब लव-कुश ने कहा—हम वाल्मीकि ऋषि के शिष्य हैं। लक्ष्मणजी ने कहा—आप वाल्मीकि ऋषि के शिष्य हैं, यह तो राजा राम भी जानते हैं, पर उनकी यह जानने की इच्छा है कि आपके माता-पिता कौन हैं?

लक्ष्मणजी ने जब सभा में प्रश्न पूछा, तब बालकों ने कहा—सनातन धर्म की मर्यादा है। जिसने घर छोड़ दिया, उससे घर का परिचय न पूछना चाहिये, गुरुदेव का परिचय पूछना चाहिये। साधु को, सन्यासी को, ब्रह्मचारी को घर का स्मरण कराने वाले को पाप लगता है। राजा राम सनातन धर्म की मर्यादा जानते हैं, फिर भी ऐसा प्रश्न क्यों पूछ रहे हैं। हमारे माता-पिता चाहे जो हों, राजा राम को यह जानने की क्या आवश्यकता है?

लव-कुश ने दरबार में राज्याभिषेक तक की रामायण की कथा की है। रामचन्द्रजी ने कहा—राज्याभिषेक के बाद की कथा जानने की बहुत इच्छा है। तब लव-कुश ने मना किया। कहा कि हमारे गुरुदेव की आज्ञा है, राज्याभिषेक तक की ही रामायण की कथा की जाय। राज्याभिषेक के बाद का राम-चरित्र सभा में वर्णन करने जैसा नहीं है। रामचन्द्रजी ने फिर दृष्टि नीचे झुकाली—विचारने लगे कि ये बालक सच ही कह रहे हैं।

लव-कुश वाल्मीकि ऋषि के साथ आश्रम में वापस आ गये। श्रीसीतामाता को वे साष्टाँग वंदन करते हैं। श्रीसीताजी ने बालकों को हृदय से लगा लिया। बालक कहते हैं—माँ! हम गुरुदेव के साथ यज्ञ में गये थे। वहाँ एक बड़े राजा थे। उनका नाम है राजा राम। वे यज्ञ कर रहे थे।

यह सुनकर श्रीसीताजी की आँखों में आँसू आ गये। श्रीसीताजी सोच रही हैं—पत्नी के बिना यज्ञ तो हो नहीं सकता। मैं यहाँ हूँ, यज्ञ किस तरह करते होंगे? माता को थोड़ी शंका हुई। प्रभु ने किसी राजकन्या से विवाह किया होगा। पत्नी के बिना यज्ञ हो ही नहीं सकता। उन्होंने यज्ञ किया अर्थात् उनकी दूसरी पत्नी है। मन में विचार आया—सीताजी रोने लगीं, इन्हें देखकर बालक भी रोने लगे। माँ! तुम्हें क्या हो रहा है? तुम क्यों रो रही हो? माता! तुम रोना नहीं, तुम रो रही हो, इससे हमें बहुत दुःख हो रहा है।

लव-कुश सीताजी को समझाने लगे—माँ, जब राजा राम यज्ञ कर रहे थे तब, उन्होंने साथ में सुवर्ण की एक प्रतिमा साथ में रखी थी। माँ! वह प्रतिमा तुम्हारे जैसी ही थी। हमें ऐसा लगा कि हमारी माता ही राजा राम के साथ बैठी हैं। माँ! राजा राम तुम्हारी प्रतिमा को क्यों साथ रखते हैं? सीताजी ने सोचा कि मेरी सुवर्ण-प्रतिमा बनाकर उन्होंने साथ में रखी है और यज्ञ कर रहे हैं। तब उन्हें विश्वास हो गया कि प्रभु ने दूसरा विवाह नहीं किया है। रामचन्द्रजी ने सीताजी का त्याग

नहीं किया है। राजा ने रानी का त्याग किया है। प्रजा को प्रसन्न रखने के लिये राजा ने रानी का त्याग किया है। सीताजी तो रामजी के साथ ही विराजमान हैं। श्रीराम, सीता के बिना रह ही नहीं सकते। श्रीसीताजी रामजी के बिना नहीं रह सकतीं। श्रीसीता रामजी का नित्य संयोग है।

श्रीराम चरित्र दिव्य है, श्रीसीताजी का चरित्र अति दिव्य है। वाल्मीकिजी ने ऐसा कहा है कि रामायण सीताजी का चरित्र है। रामायण में से सीताजी का पात्रत्व निकाल लीजिए, तो उसमें विशेष राम रहेंगे नहीं। श्रीसीताजी के कारण ही रामजी की शोभा है।

४४– जगत्-माँ श्रीसीताजी

स्त्री धर्म कैसा हो, यह बात श्रीसीताजी ने दिखाई है। स्त्री बहुत योग्य हो तो वह पति तथा पिता दोनों के कुलों को तार देती है। पुरुष लायक हो तो एक ही कुल को तार देता है। कई लोग पुत्र-जन्म होता है तो बहुत प्रसन्न होते हैं। मिठाई बाँटते हैं, पर पुत्री का जन्म हो तो मुँह बिगाड़ते हैं। अरे, पुत्री क्या बुरी है? उसे अच्छे संस्कार दीजिये। धर्म का शिक्षण दीजिये। वह योग्य बनेगी तो दो कुलों को तार देगी। श्रीसीताजी ने स्त्री-धर्म समझाया है। सीताजी महान् पतिव्रता है।

रामायण में वर्णन है–श्रीसीताजी की खोज में हनुमानजी समुद्र लाँघकर लंका पहुँचे। अशोकवन में सीताजी से मिले। बाद में जब हनुमानजी लौटने लगे तब श्रीसीताजी रोने लगीं। हनुमानजी ने कहा–माँ! आप रोइये नहीं, आपकी इच्छा हो तो आप मेरे कंधे पर बैठ जाइए, मैं अभी आपको रामजी के पास पहुँचाये देता हूँ।

तब सीताजी ने कहा–यह सच है कि तुम मेरे पुत्र के समान हो। मैं तुम्हारे कंधे पर बैठूँ तो जरा भी दोष नहीं है। तुम जितेन्द्रिय हो। बालब्रह्मचारी हो, पवित्र हो। पर मेरा स्त्री-धर्म मुझे मनाकर रहा है। अभी तक मैंने किसी पुरुष का स्पर्श नहीं किया है। रावण अपहरण करके मुझे उठाकर ले आया, तब मेरा कुछ बस न चला। मैंने कभी किसी पुरुष का स्पर्श नहीं किया है। बेटा! मैं तुम्हारा स्पर्श करूँ तो धर्म की मर्यादा टूटेगी। अब तो रामजी इधर आयें, रावण को मारकर, मुझे ले जायँ तो ही रामजी की कीर्ति बढ़ेगी।

स्त्री जान-बूझकर पुरुष का स्पर्श न करे। स्त्री के लिये पुरुष का स्पर्श वर्ज्य है। परपुरुष से स्त्री का पावित्र्य नष्ट होता है। साधु को, ब्राह्मण को स्त्री दूर से प्रणाम करे। स्त्री-धर्म की यह मर्यादा है। श्रीसीताजी के समान महान् पतिव्रता स्त्री कोई नहीं है। श्रीसीताजी वन में कभी जोर

से नहीं बोली हैं। रामायण में लिखा है कि रामजी को क्रोध आया है, पर सीताजी को कभी क्रोध नहीं आया है। वे बहुत मधुर बोलती हैं।

लंका युद्ध के बाद जब हनुमानजी राक्षसियों को मारने के लिये तैयार हुए तब सीताजी ने मना किया—किसी राक्षसी को न मारना। चरित्र संतों का भूषण है। उपकार का बदला उपकार से देने वाला संत है। हनुमानजी ने कहा—माँ, इन राक्षसियों ने आपको बहुत त्रास दिया है। मैंने स्वयं देखा है। तब माता सीता ने कहा—बेटा! वह तो रावण के कहने से उन्होंने त्रास दिया। तुम किसी राक्षसी को न मारना। मुझे इन पर बहुत दया आती है।

श्रीहनुमानजी ने सीतामाता का जय-जयकार किया—माँ, ऐसी दया तो रामजी में भी नहीं है। रामजी को राक्षसों पर दया नहीं आयी है; सीतामाता को आई है। श्रीसीताजी जगन्माता है। रामजी की माता कौशल्या हैं; सीताजी की कोई माता नहीं हैं। वे तो धरती से बाहर आई हैं और धरती में ही समा गई हैं! नैमिषारण्य में जानकी कुण्ड है। वहाँ साधु रहते हैं। वे कहते हैं—माताजी यहाँ धरती में लीन हो गई हैं।

रामजी ने अंतिम यज्ञ नैमिषारण्य में किया। यज्ञ में वाल्मीकिजी पधारे। उनकी इच्छा थी कि इस बार रामजी को समझाऊँगा कि वे सीताजी को स्वीकार करें।

ऋषि-समाज में वाल्मीकिजी ने प्रकट किया कि सीताजी निर्दोष हैं। सीताजी महान् पतिव्रता हैं। सीताजी पतिव्रता न हों तो मेरी हजार वर्ष की तपश्चर्या व्यर्थ है। ऋषि ने आवेश में आकर अयोध्या की प्रजा को बहुत खरी-खोटी सुनाई और क्रोध में रामजी को भी उलाहना दिया। रामजी ने सिंहासन से उठकर, दौड़कर ऋषि के चरण पकड़ लिये और कहा—मेरा दोष नहीं है। कलंक दूर करने के लिये ही मैंने सीताजी का त्याग किया है। अयोध्या की प्रजा को विश्वास हो जाय तो मैं सीता को स्वीकार करूँगा।

वाल्मीकिजी आश्रम में लौट आये हैं और रामदरबार में चलने के लिये सीताजी को समझाते हैं। सीताजी व्याकुल हुईं पर धैर्य धारण करके उन्होंने कहा—अपने पति की आज्ञा पालन करना मेरा धर्म है, मैं चलूँगी।

वाल्मीकिजी रामचन्द्रजी के पास आये और सीताजी को दरबार में लाने का दिन निश्चित हुआ। उस दिन बहुत बड़ा मेला लग गया। वाल्मीकिजी सीताजी को लेकर आ पहुँचे। माँ ने दोनों हाथ जोड़े थे। माँ जगत् को वंदन कर रहीं थीं। श्रीसीताजी राम-वियोग में अनाज नहीं खाती थीं, इससे उनका शरीर दुर्बल हो गया था। उन्हें देखकर लोग बहुत दुःखी हुए। पीछे-पीछे लव-कुश चल रहे थे। श्रीसीताजी का सुन्दर भाषण हुआ। वे बोलीं मन, कर्म, वचन से मैंने सुयोग्य रूप से

पतिव्रत-धर्म का पालन किया है। मैंने परपुरुष का कभी स्मरण नहीं किया है। अपने त्याग के बाद भी रामजी के प्रति मुझ में कभी कुभाव नहीं आया। यह सत्य हो तो, हे धरती माता तुम मुझे बुला लो। उसी समय बड़ा धमाका हुआ। धरती फटी और एक सुवर्ण-सिंहासन बाहर आ गया स्वर आये–माता, यह जगत् आपके रहने के लिये उपयुक्त नहीं है। लोगों को परख करना नहीं आता आप भीतर पधारिये।–सुवर्ण सिंहासन में बैठकर सीताजी अदृश्य हो गयीं। सीताजी का चरित्र दिव्य है। सीताजी ने जगत् को स्त्री-धर्म दिखाया है।

श्रीसीता-राम की लीला अति दिव्य है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की मर्यादा को तोड़ने वाले की भक्ति छिन्न-भिन्न होगी। उसका ज्ञान बह जायगा। भक्ति और ज्ञान का रक्षण धर्म की मर्यादा से होता है। जब तक देह भान है, तब तक धर्म की मर्यादा को न छोड़ना। सनातन धर्म को जानने के लिए बार-बार श्रीराम-सीता के दर्शन कीजिये। रामायण का बार-बार पठन कीजिये।

कई लोग शृंगार के उपन्यास पढ़ते हैं और व्यर्थ में समय बिगाड़ते हैं, जीवन बिगाड़ते हैं। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि शृंगार के वर्णन वाली पुस्तकों को न पढ़िये। बुरे शब्दों का प्रभाव मन पर पड़ता है। आपको जब समय मिले तब रामायण का पठन कीजिये। छोटी-बड़ी ढैया आने पर शनि महाराज एक-एक को सजा देते हैं। कई लोग ऐसा कहते हैं कि मुझे शनि परेशान कर रहा है! अरे, शनि क्या परेशान करेगा, तुम्हारे पाप तुम्हें–परेशान कर रहे हैं। शनि महाराज तो शिव स्वरूप हैं। शनि महाराज किये–गये पापों की सजा देते हैं। उनका न कोई मित्र है और न कोई शत्रु है। शनि महाराज बिना कारण किसी को भी परेशान नहीं करते हैं।

ढैया के समय में जो व्यक्ति रामायण का पाठ हनुमानजी को सुनाता है, उस पर उस ढैया का असर कम होता है।

श्रीसीताजी जब स्वधाम में पधारीं, तब हनुमानजी ने कहा–मुझे नहीं चलना है। जगत् में जब तक राम नाम है, जगत् में जब-तक राम कथा है, तब तक मुझे रहना है। हनुमान महाराज कृपा करके आज भी प्रत्यक्ष विराजमान हैं। जब भी समय हो, दिया जलाकर हनुमानजी के सम्मुख रामायण का पाठ कीजिये। इससे बुद्धि पवित्र होती है।

४५– भागवत और रामायण–परमात्मा के नाम-स्वरूप

परमात्मा श्रीकृष्ण का नाम-स्वरूप यह भागवत है। परमात्मा ने इस जगत् में स्वरूप छिपाया है पर प्रभु ने जगत् में नाम प्रकट रखा है। परमात्मा का स्वरूप नहीं दिखाई देता, प्रभु का नाम दिखाई देता है। नाम के साथ प्रीति करने वाले का पाप छूटता है। रामायण से प्रीति कीजिये।

रामायण के सातों काण्ड मानव की उन्नति के सात सोपान हैं। तुलसीदासजी ने एक-एक काण्ड को 'सोपान' ऐसा नाम दिया है। प्रथम सोपान, द्वितीय सोपान। एक-एक सीढ़ी चढ़ते हुए परमात्मा तक पहुँचना है। रामायण का प्रथम काण्ड है बाल काण्ड। आप हृदय से बालक जैसे बनिये। आपका ज्ञान बढ़े, परमात्मा आपको बहुत दें, धन दें, मान दें, पर हृदय से बालक जैसे बनिये। जिसका हृदय बालक-सा शुद्ध होता है, प्रभु के दरबार में उसे प्रवेश मिलता है। मन, वाणी और क्रिया-बालक में एक-सी होती हैं। बालक के मन में जैसा होता है, वैसा वह बोलता है और वैसा ही व्यवहार करता है। बालक को कपट करना नहीं आता है। बालक का मन शुद्ध होता है। बालक को देखने वाले का मन भी शुद्ध होता है। बड़े-बड़े साधु-महात्मा ज्ञान का अभिमान छोड़कर, अज्ञानी बालक से होकर भक्ति करते हैं। ज्ञान अच्छा है पर ज्ञान का अभिमान बुरा है। ज्ञान का अभिमान छोड़कर सन्त बालक से बनते हैं। बालकाण्ड हमें बोध देता है-प्रपंच छोड़िये, दंभ छोड़िये, बालक-सदृश बनिये। जिसका मन बालक-सा है, उसका तन अयोध्या-सा बनता है।

बालकाण्ड के बाद अयोध्या काण्ड है। जीवन थोड़ा है, छोटा है। छोटे से जीवन में युद्ध न कीजिये। जहाँ युद्ध है, वहाँ भगवान् नहीं है। जहाँ युद्ध नहीं है वहाँ अयोध्या है। कलह रहित काया अयोध्या है। अयोध्या शुद्ध प्रेम-भूमि है। अपने घर को अयोध्या बनाइये। छोटे-से जीवन में वैर न कीजिये। मन से ऐसा निश्चय कीजिए कि इस जगत् में मेरा कोई शत्रु नहीं है। किसी ने मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा है। किसी ने मुझे जरा भी दुःख नहीं दिया है। कोई किसी को सुख नहीं दे सकता, दुःख भी नहीं दे सकता। अपने कर्म के फल सब भोगते हैं। मुझे दुःख देने वाला मेरा पाप है। जगत् में एक भी जीव के लिये कुभाव रखने वाला अशांत रहता है। पापी का तिरस्कार न कीजिये। पाप करने वाला पापी जीव दया का पात्र है। उसकी कुछ भूल होगी। उसे कुसंग लगा होगा। अयोध्या बोध दे रही है-वैर न कीजिये।

अयोध्या काण्ड के बाद आता है अरण्य काण्ड। थोड़े दिन भी वन में रहकर भक्ति करेंगे तो वासना का विनाश कर सकेंगे। घर में रहकर वासना का विनाश असम्भव सा है। गृहस्थ का घर भोगभूमि है। गृहस्थ के घर में काम के परमाणु घूमते हैं और वे मनुष्य का मन बिगाड़ते हैं। बारह मासों में अधिक नहीं तो दो मास घर छोड़कर तीर्थ में रहिये। सादा भोजन लेकर भक्ति कीजिये। सरकार भी छुट्टियाँ देती है पर छुट्टी पाने पर कई व्यक्तियों की नीयत बिगड़ जाती है। वे ऐसा सोचते हैं कि छुट्टी का अर्थ है, बहुत खाना, बहुत आराम करना। बहुत खाने वाला और बहुत आराम करने वाला कुम्भकर्ण का भाई है। आपको जब छुट्टियाँ मिलें, तब गंगा-तट पर, नर्मदा-तट पर जाकर उस सात्विक भूमि पर परमात्मा के जप कीजिये। विष्णु सहस्रनाम का पाठ

कीजिये। एक विष्णु यज्ञ करना हो तो दस हजार रुपये खर्च करने पड़ते हैं। कोई गरीब ब्राह्मण वैष्णव नर्वदा तट पर बैठकर शांति से विष्णु सहस्त्रनाम के बारह सौ पाठ करे, एक ब्राह्मण को भोजन कराये तो उसे विष्णुयज्ञ का फल मिलता है।

थोड़े दिनों के लिए भी घर छोड़िये। पवित्र तीर्थ में रहकर सत्कर्म कीजिये। कई लोग तीर्थ में पहुँचते हैं तो वहाँ भी अखबार माँगते हैं। अरे! तुम अखबार ही पढ़ना चाहते हो, तो घर छोड़कर तीर्थ में क्यों आये हो? तीर्थ में भगवान् के लिए जाना होता है। वहाँ सारा दिन भक्ति करनी है। भक्ति करते हुए, थक गये हों तो सो जाइए, पर अन्य काम न कीजिये। ऐसी निष्ठा रखिए कि यह समय तो भगवान् के लिये ही रखा है। सर्दी के मौसम में लोग विशेष पकवान-मेवा खाते हैं। सोचते हैं कि इस ऋतु में खाने से सारा साल शक्ति रहती है। बारह मास में से एक मास सादा भोजन लेकर, तीर्थ में रहकर, सारा दिन भक्ति करने से, दस-ग्यारह मास पाप से बचने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। जगत् के सभी महापुरुषों ने वन में रहकर भक्ति की है। तब वे अधिक महान् बने हैं। अरण्य काण्ड बोध देता है कि वासना का विनाश कीजिये। विलासी व्यक्ति से दूर रहिये। विलासी का संग मन को बिगाड़ता है। विरक्त साधुओं के संग रहकर, निरन्तर भक्ति कीजिये।

अरण्य काण्ड के बाद आता है किष्किन्धा काण्ड। किष्किन्धा काण्ड में श्रीराम-सुग्रीव की मैत्री की कथा है। सुग्रीव जीवात्मा है, श्रीराम परमात्मा है। परमात्मा के साथ मैत्री कीजिये। जगत् के साथ वैर न रखिये, पर किसी मानव के प्रति अधिक प्रेम न रखिये। वैर रखने से मन बिगड़ता है और किसी मानव से अधिक प्रेम करने से भी मन बिगड़ता है। प्रेम करने योग्य एक परमात्मा ही हैं। परमात्मा जीव के सच्चे मित्र हैं।

सुग्रीव को जब हनुमानजी का बल मिलता है, तब वे राम से मैत्री करते हैं। हनुमानजी का बल न मिलता तो सुग्रीव रामजी से मैत्री न करते। हनुमानजी का बल अर्थात् ब्रह्मचर्य का बल। काम की मैत्री छोड़िये तो राम की मैत्री होगी। काम शत्रु है पर मित्र सा लगता है, काम सबको रुलाता है। काम शब्द पर थोड़ा विचार कीजिये। क+आम-मिलकर काम हुआ। 'आम' शब्द का अर्थ है कच्चा। कच्चा सुख ही काम है और सच्चा सुख राम है। राम के साथ मैत्री करनी है तो काम की मैत्री छोड़िये।

जीव, ईश्वर से मैत्री कर ले तो जीवन सुखी हो जाय। किष्किन्धा काण्ड के बाद सुन्दर काण्ड आता है। इस काण्ड में हनुमानजी की कथा है। जिसका जीवन भक्तिमय है, उसका ही जीवन सुखी है, सुन्दर है। राम-सेवा ही हनुमानजी का जीवन है। श्रीराम-नाम ही हनुमानजी का भोजन है। श्रीहनुमानजी रामनाम के जप के बिना रह नहीं सकते। जो जीवन परमात्मा की सेवा के

लिये, स्मरण के लिये, परोपकार के लिये है, वह जीवन ही सच्चा है। परिवार के पोषण की बुद्धि तो कौआ भी रखता है। कौए में एक सद्गुण हैं, वह कभी अकेला नहीं खाता है। पत्तल पड़ी हों तो वह अपने भाइयों को बुलाता है। सुन्दर काण्ड में हनुमानजी की दिव्य लीला का वर्णन है।

सुन्दरकाण्ड के बाद है लंका काण्ड। लंका काण्ड में राक्षसों का विनाश किया गया है। जो रुलाता है, वह राक्षस है। काम-राक्षस, लोभ-राक्षस, क्रोध-राक्षस–ये सब राक्षस हैं। जो परमात्मा से प्रेम करता है, वह राक्षसों को मार सकता है। कई लोग ऐसा मानते हैं कि काम-क्रोध मन के विकार हैं। विकार के नष्ट होने के बाद मैं भक्ति कर सकूँगा। यह भूल है। अंतिम सांस तक विकार रहते हैं। भक्ति करेंगे तो धीरे-धीरे विकार नष्ट होंगे। भक्ति में ऐसी शक्ति है कि वह विकारों को नष्ट कर सकती है।

लंकाकाण्ड के बाद उत्तरकाण्ड आता है। जो काम, क्रोध इत्यादि राक्षसों को मार सकता है, उसका उत्तर जीवन मंगलमय होता है। तुलसीदास महाराज का उत्तरकाण्ड अति मधुर है। सर्व शास्त्रों का–सारतत्व इसमें है। उत्तरकाण्ड में काकभुशुंडिजी और गुरुजी महाराज की कथा आती है। ज्ञान और भक्ति का समन्वय इसमें है। इस तरह यहाँ रामायण के सात-काण्डों का थोड़ा भावार्थ समझाया गया है। रामायण अति दिव्य ग्रंथ है। जिस घर में रामायण का पाठ होता है, वहाँ झगड़ा नहीं होता है। बड़ा भाई रामायण का पाठ करता है तो छोटा भाई भी रामायण का पाठ करता है। रामायण का ऐसा दिव्य इतिहास है। राजनैतिक इतिहास पढ़ने से राग-द्वेष बढ़ते हैं। राजनैतिक इतिहास में देश के लिये मरने वालों की प्रशंसा की जाती है। देश के लिये मरने वाले देश की सेवा करते हैं–यह ठीक है, पर देश के लिये अच्छा जीवन व्यतीत करना उत्तम सेवा है। किस तरह जीवन व्यतीत करना है। यह रामायण सिखाती है। भाई कैसा होना चाहिये–रामायण बतलाती है। पुत्र कैसा होना चाहिये रामायण से यह सीखिये।

रामायण का प्रत्येक पात्र अलौकिक है। राम सा पुत्र हुआ नहीं है और दशरथ के समान पिता नहीं हुए हैं। दशरथ महाराज जब तक जीवित रहे, राम-दर्शन करके ही जीवित रहे। रामजी वन में पधारे तब दशरथजी, जी न सके। अंतिम साँस तक श्रीराम-श्रीराम रटते रहे। रामजी का सरल स्वभाव, रामजी के सद्गुण दशरथ महाराज को याद आते रहे सोचते रहे कि मैंने कहा था राज्याभिषेक करूँगा, पर मैंने उसे वन में भेज दिया। मेरे राम को जरा भी बुरा न लगा। वह मेरे पाँवों पड़ा और कहने लगा–पिताजी! धैर्य रखिये। आप तो धर्म-धुरन्धर हैं। विपत्ति के समय पर महापुरुष प्राण देकर भी धर्म का पालन करते हैं। पिताजी! आपके आशीर्वाद से वन में मेरा कल्याण होगा। दशरथ महाराज को मृत्यु-शय्या पर सब याद आ रहा है। उन्होंने अंतिम साँस तक

रामजी का स्मरण किया। दशरथ महाराज कौशल्याजी से बार-बार कहते हैं—जहाँ मेरा राम है, वहाँ मुझे ले जाओ। मैंने राम को ठीक से देखा तक नहीं—अंतिम सांस तक श्रीराम-श्रीराम जप करते हुए दशरथ महाराज ने प्राण छोड़ दिये। राम जैसा पुत्र नहीं हुआ, दशरथ जैसे पिता नहीं हुए। कौशल्या जैसी माता नहीं हुई। कैकेयी की दृष्टि में विषमता रही होगी पर कौशल्याजी के लिए चारों पुत्र समान हैं। भरत-लक्ष्मण से भाई भी नहीं हुए हैं। जगत्-जननी जानकीजी-सी पतिव्रता नहीं हुई हैं। हनुमानजी-सा बलवान् सेवक नहीं हुआ है। वशिष्ठजी-से सद्गुरु नहीं हुए हैं। रामायण का प्रत्येक पात्र अलौकिक है।

आप रामायण का पाठ कीजिये। रामायण हनुमानजी को सुनाइए। आपका पाप जल जायगा। आपका मन पवित्र होगा। राक्षस भी रामायण का पाठ करते हैं। उन्हें राम-चरित्र बहुत प्रिय है। राक्षसों को राम बहुत प्रिय हैं। घर के लोग प्रशंसा करें, या मित्र-मित्र की प्रशंसा करे तो ठीक है; पर शत्रु भी प्रशंसा करे तो वहाँ सच है। रामजी की प्रशंसा शत्रु भी करते हैं। रावण भी रामजी की प्रशंसा करता था। रामायण में कथा है—लक्ष्मण-इन्द्रजित का भयंकर युद्ध हुआ। लक्ष्मणजी इन्द्रजित का हाथ काटते हैं, और बाद में मस्तक काटते हैं। इन्द्रजित का हाथ उसके आँगन में गिरता है। इन्द्रजित की धर्मपत्नी सुलोचना अति सुन्दर है महान् पतिव्रता है। पतिदेव का हाथ देखकर उसकी आँखों में आँसू आते हैं। उसने हाथ जोड़ कर कहा—मैंने किसी भी पुरुष का स्मरण किया हो, मैंने सुयोग्य रूप से पतिव्रता-धर्म का पालन किया हो, तो यह हाथ मुझे लिखकर कह दे कि क्या हुआ है? हाथ लिखता है—लक्ष्मणजी के साथ युद्ध करते हुए मेरा मरण हुआ है, मैं तुम्हारी राह देख रहा हूँ, तुम तुरन्त आ जाओ। सुलोचना पढ़ती है और निश्चय कर लेती है—मेरे पतिदेव बुला रहे हैं, अब इस संसार में मुझे नहीं रहना है। सती-धर्म का पालन करते हुए मैं अग्नि में प्रवेश करूँगी।

सुलोचना रावण को वंदन करने आती है। पुत्र-वियोग में रावण शोक-मग्न है। महान वीर पुत्र की मृत्यु से उसे बहुत दुःख हुआ है पुत्र वधू को देखकर उसकी आँखों में आँसू आते हैं। सुलोचना सती-धर्म से अग्नि में प्रविष्ट होने के लिये तैयार हुई है। वह रावण से कहती है—मुझे आज्ञा दीजिये। तब रावण ने रोते-रोते कहा—बेटा! तुमने जो निश्चय किया है, वह उचित ही है पर मेरी बहुत इच्छा है कि अग्नि में प्रविष्ट होने से पहिले तुम एक बार श्रीराम के दर्शन कर लो। राम-दर्शन से जीवन-मरण मंगलमय होता है। यह कौन बोल रहा है? यह रावण बोल रहा है। कब बोलता है? जब उसके युवा पुत्र ने मृत्यु का वरण किया है!

सुलोचना ने रोते-रोते कहा—मैं अति सुन्दर हूँ। आप मुझे शत्रु के घर भेज रहे हैं। अगर कुछ अनर्थ हुआ तो? रावण कहता है—कभी अनर्थ हो ही नहीं सकता। रावण के मन में राम के प्रति

कितना विश्वास है! अति सुन्दर पुत्र-वधू को रामजी के पास भेजते हुए वह कहता है—श्रीराम तुम्हें माता के समान मान देंगे। जहाँ जितेन्द्रिय लक्ष्मणजी मंत्री हैं, जहाँ बाल ब्रह्मचारी श्रीहनुमानज़ी महाराज विराजमान् हैं, वहाँ, राम-दरबार में तुम पर अन्याय नहीं होगा। रामजी के दरबार में अन्याय नहीं हुआ है। रावण राम दरबार में एक-एक की प्रशंसा करता है।

सुलोचना रामजी के पास जाती है। रामचन्द्रजी उसे बहुत मान देते हैं। श्रीराम उसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—यह महान् पतिव्रता नारी है। श्रीरामजी ने कहा—यह इन्द्रजित और लक्ष्मण का युद्ध न था। यह दो पतिव्रता स्त्रियों का युद्ध था। लक्ष्मण की धर्मपत्नी उर्मिला अयोध्या में पतिव्रता धर्म का यथोचित पालन करती है। यहाँ सुलोचना महान् पतिव्रता है।

सुग्रीव ने इस अवसर पर शंका की है आप इनकी बहुत प्रशंसा कर रहे हैं। आप कहते हैं कि यह महान् पतिव्रता हैं—तो फिर इनके पति का मरण क्यों हुआ? पत्नी के पुण्य से पति का आयुष्य बढ़ता है। पत्नी के पुण्य से पति सुखी होता है। पत्नी के भाग्य से लक्ष्मी आती है। इन्द्रजित का मरण क्यों हुआ? प्रभु ने कहा—सुलोचना के पति को काल भी नहीं मार सकता था पर यह तो उर्मिला और सुलोचना का युद्ध था। उर्मिला का बल बढ़ा और सुलोचना का बल कम हुआ। इसका एक ही कारण है। सुलोचना के पति परस्त्री में काम भाव रखने वाले रावण के पक्ष में थे और उर्मिला के पति लक्ष्मण परस्त्री में मातृभाव रखने वाले के पक्ष में रहे हैं और इससे उर्मिला की जीत हुई और सुलोचना की हार हुई।

इन्द्रजित का मस्तक सुलोचना को दिया गया है। पतिदेव का मस्तक देखकर सुलोचना रोने लगी। रामचन्द्रजी व्याकुल हुए! सुलोचना से उन्होंने कहा—बेटा! तुम रो रही हो। इससे मुझे दुःख हो रहा है। तुम रोना नहीं! तुम मेरी पुत्री हो। तुम कहो तो मैं तुम्हारे पति को जीवित कर दूँ और एक हजार वर्ष का आयुष्य दे दूँ! आप दोनों सुख से लंका का राज्य सँभालना मैं अभी यहाँ से वापस चला जाता हूँ। तुम्हारा रोना मुझ से सहन नहीं होता है। सुलोचना को आश्चर्य हुआ है। लोग रामजी की बहुत कम प्रशंसा कर रहे हैं। सुलोचना ने हाथ जोड़कर कहा—आप इन्हें जीवित करेंगे तो कदाचित् वे मुझे उलाहना देंगे। वे महान वीर थे। वीरगति प्राप्त हुई है, इससे जीवित होकर वे शायद ऐसा ही कहें कि तुमने यह क्या किया? इस से तो यही अच्छा है कि मैं उनके पीछे जाऊँ। मेरे पतिदेव मुझे बुला रहे हैं। रामजी को वंदन करके सुलोचना ने अग्नि में प्रवेश किया। राक्षसों को भी श्रीराम प्रिय लगते हैं। राक्षस भी रामजी की प्रशंसा करते हैं। राक्षस भी रामायण का पाठ करते हैं। रामायण के प्रधान आचार्य भगवान् शंकर हैं। रामायण के एक सौ करोड़ श्लोक हैं। एक बार ऐसा हुआ कि शिवजी के दरबार में देव आये ऋषि आये और राक्षस भी आये। सब शंकर

भगवान् से कहने लगे—महाराज! आपने रामायण बनायी है। वह हमें दीजिये। हम रामायण का पाठ करेंगे। अपना जीवन सुधारेंगे। सौ करोड़ श्लोक हैं, लेने वाले तीन हैं। शिवजी ने तीनों को श्लोक बाँट दिये। एक-एक के हिस्से में ३३ करोड़, ३३ लाख, ३३ हजार, ३३३ श्लोक आ सके। कुल ९९ करोड़, ९९ लाख, ९९ हजार, नौ सौ निन्यानवे श्लोक हुए। एक श्लोक बचा। तब तीनों झगड़ने लगे—यह श्लोक हमें दीजिये, हमें दीजिये। शंकर दादा को झगड़ा जरा भी पसन्द नहीं है। शिव अति शांत हैं, ऐसा भागवत में वर्णन है।

अति शांति ही शिव का स्वरूप है। शिव शांति रखें तो क्या आश्चर्य है? शिवजी के दरबार में जो भी आते हैं—पशु-पक्षी आदि सभी वैर भूलकर शांति से बैठते हैं। शिवजी का दरबार दिव्य है। शिवजी के दरबार में गणपति महाराज विराजमान हैं। गणपति महाराज का वाहन है चूहा। शिवजी के कंठ में है सर्प। चूहे और सर्प का जन्म-जन्म का वैर है। चूहा देखकर सर्प दौड़कर उसे पकड़कर मार डालता है पर भगवान् शंकर के दरबार में आने के बाद सर्प वैर भूल जाता है, वह हिंसा ही नहीं करता है। वह चूहे के साथ प्रेम से खेलता है। माता पार्वतीजी का वाहन है सिंह। आद्या शक्ति जगदम्बा सिंह वाहिनी हैं। देवी भागवत में माताजी के सिद्ध पीठों की कथा आती है। भारत में इक्यावन सिद्ध पीठ हैं। काशी में विशालाक्षी, कोचीन में कामाक्षी, मदुरा में मीनाक्षी आदि। माताजी के सिद्ध पीठों में सिंह की स्थापना होती है। आद्या-शक्ति जगदम्बा को सिंह बहुत प्रिय हैं। सिंह बहुत हिंसा करता है और वह क्रोधी भी है पर सिंह में एक बड़ा सद्गुण है। सिंह वर्ष में एक ही बार काम-सुख भोगता है। तीन सौ उनसठ दिन वह संयम रखता है। सिंह संयम की मूर्ति है। आद्या-शक्ति जगदम्बा सिंह पर बैठती हैं। माताजी का वाहन है सिंह और भगवान् शंकर का वाहन है नन्दीकेश्वर। सिंह और बैल का वैर-भाव जन्म-जन्म सिद्ध है। शिवजी के दरबार में आने के बाद सिंह वैर को भूलता है। भगवान् नारायण के दरबार में सभी शत्रु ही इकट्ठे हुए हैं। आदिनारायण परमात्मा का वाहन गरुड़ और भगवान् की शैय्या है शेष। गरुड़ और सर्प का भी जन्म-सिद्ध वैर है। पुराणों में कथा है कि गरुड़ और गरुड़जी की माता को सर्पों ने बहुत परेशान किया था पर नारायण के सम्मुख आने पर वे वैर भाव भूलते हैं। पर यह मानव कैसा है क्या आप जानते हैं? कई लोग मन्दिर में जाकर भी पक्ष खड़ा करते हैं। मन्दिर में सबको प्रेम से देखिये।

रामायण के एक श्लोक के लिये तीनों झगड़ने लगे। तब शंकर दादा ने कहा—झगड़ा न कीजिये। एक श्लोक मैं तीनों को बाँट दूँगा। श्लोक के अक्षर आप लोगों में बाँट दूँगा। श्लोक के अक्षर बत्तीस थे। प्रत्येक के हिस्से में दस-दस अक्षर आये और दो अक्षर बचे। इन दो अक्षरों के लिये भी ये तीन झगड़ने लगे तब शंकरदादा ने कहा—झगड़ा न कीजिये। ये दो अक्षर मैं किसी को

देना नहीं चाहता। ये तो मेरे कंठ में ही रहेंगे। ये दो अक्षर हैं–राम। सर्व वेदों का सार राम-नाम में है। राम-नाम अति मधुर है, अति श्रेष्ठ है। राम नाम की महत्ता का बहुत वर्णन हुआ है।

कई संत ऐसा मानते हैं, राम-कृष्ण एक ही हैं। राम-कृष्ण में भेद नहीं है। कई लोग ऐसा दुराग्रह रखते हैं कि रामजी में दो कलाएँ कम हैं। श्रीकृष्ण में सोलह कलाएँ परिपूर्ण हैं पर ऐसा भागवत में व्यासजी ने लिखा नहीं है। व्यास महर्षि ने तो भागवत में एक बार नहीं अनेक बार वर्णन किया है कि राम परिपूर्ण हैं। रामजी में दो कलाएँ कम हैं, ऐसा कहने वाला बहुत साहसी है। श्रीराम परिपूर्ण ब्रह्म-परमात्मा हैं। श्रीराम-श्रीकृष्ण एक ही हैं, फिर भी संतों ने ऐसा वर्णन किया है कि नाम में राम नाम अति-मधुर है और लीला में कृष्ण-लीला अति मधुर है। कृष्ण-लीला सर्व को आनन्द देने वाली है।

शंकर भगवान् रामनाम कंठ में धारण करते हैं। वे श्मशान में विराजमान हैं। विष पीने का प्रसंग आता है, सम्मुख भूत-प्रेत नाचते हैं, पर शिवजी की शांति जरा भी भंग नहीं होती है। वे अति आनंद में अति शांत हैं। सारा दिन राम-नाम कंठ में रखते हैं, इससे विष भी अमृत बन जाता है। आपके जीवन में भी विष पीने का अवसर आयगा। आपका कोई मित्र आपको दगा देगा, आपके साथ विश्वासघात करेगा, तो वह आपको विष के समान लगेगा। जिससे आप बहुत आशा करेंगे कि यह मेरा काम करेगा, मेरी मदद करेगा, मेरे लिए अच्छा बोलेगा, वही साधारण कारण से आपका शत्रु हो जायगा। आपको वह विष जैसा लगेगा। संसार में आने वाले को कभी-न-कभी, एकाध बार तो विष पीना ही पड़ता है। आपका पुत्र आपकी बात न मानेगा तो आपको विष-सा लगेगा।

अरे! कई लोग ऐसे हैं कि इनकी इच्छा के अनुसार कभी खाना नहीं बनता तो उन्हें विष-सा लगता है। प्रतिकूल परिस्थिति विष है। दुःख विष है। जीवन में जब विष पीने का प्रसंग आ जाय, तब राम नामामृत का पान कीजिये। रामनाम का जप कीजिये। विष अमृत हो जायगा। दुःख भूल जायगा। लड़का कहना नहीं मानता तो जी न जलाइए। श्रीराम-श्रीराम का जप कीजिये। बहुत प्रेम से बोलिये। राम नाम में ऐसी शक्ति है कि विष का–दुःख का असर नहीं होता। श्रीराम, श्रीराम बहुत प्रेम से बोलिये तो पंद्रह मिनट के बाद तालु में से अमृत प्रस्फुटित होने लगेगा। पंद्रह मिनट जो राम नाम का जप करता है, उसे अमृत मिलता है। राम नाम अमृत से भी मधुर है। रामायण सर्व वेदों का सार है। रामायण के तो सौ करोड़ श्लोक हैं। यहाँ तो राम-कथा का वर्णन संक्षेप में ही है। दशरथ महाराज के यहाँ चार पुत्रों का जन्म हुआ। दशरथ महाराज के हृदय में आनंद ही आनंद है।

तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः।
अंशांशेन चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः।
रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया।। (९-१०-२)

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न--चारों भाई धीरे-धीरे बड़े हो रहे हैं। रामजी की बाल-लीला भी मर्यादा में है। रामजी इस तरह खेलते हैं कि लक्ष्मण की जीत हो और अपनी हार हो। रामजी ने खेल में भी भाई को नाराज नहीं किया है। रामजी बहुत सरल हैं। वे स्वयं हार जाते हैं और दूसरे को विजयी बनाते हैं।

रामजी कौशल्या माता से कहते हैं--माँ! मेरा लक्ष्मण छोटा है पर बहुत प्रवीण हैं हम खेल रहे थे, तब मेरी हार हुई और मेरे लक्ष्मण की जीत हुई। लक्ष्मणजी की आँखें गीली हो गयीं। लक्ष्मणजी कौशल्याजी माँ से कहने लगे--माँ! बड़े भाई का मुझ पर बहुत प्रेम है, वे जानबूझकर हार जाते हैं। अयोध्या के लोगों का मन भी तृप्त नहीं होता। वे राम-लक्ष्मण के दर्शन करते ही रहना चाहते हैं। वे रामजी से कहते हैं--आप हमारे घर पधारिये, हमारी बहुत इच्छा है। तब रामचन्द्रजी कहते हैं--मैं स्वतंत्र नहीं हूँ। मैं अपने माता-पिता की आज्ञा में हूँ; आप कौशल्या माता से पूछिये। मेरी माता आज्ञा दें तो मैं आपके घर आ सकूँगा। लोग कौशल्या माता को वन्दन करते हैं और मनाते हैं--माता! आप कहेंगी तब ही रामजी हमारे घर पधारेंगे। कौशल्याजी आज्ञा देती हैं तो ही रामचन्द्रजी जाते हैं। किसी के घर जाते हैं तो शांति से बैठे रहते हैं। रामजी बहुत सरल हैं।

परन्तु बालकृष्ण नहीं कहते थे कि आप यशोदा माता से पूछिये और माता मुझे आज्ञा देगी तो ही मैं आपके घर आ सकूँगा। कन्हैया कहता है कि मुझे कौन आज्ञा देगा? मैं ही घर का स्वामी हूँ। इससे मैं सबको एकत्र करके जाता हूँ। एक गोपी की बहुत दिनों की भावना थी कि कन्हैया उसके घर आय। वह सोचती है कि कन्हैया सबके घर जाता है पर मेरे घर नहीं आता। मेरे कुछ पाप होंगे। उसे दिन मैं भूख नहीं लगती रात्रि में नींद नहीं आती। वह निरंतर श्रीकृष्ण-स्मरण करती रहती है। गोपी की बहुत भावना है इससे एक बार लाला ने विनोद किया। जब गोपी यमुना में से पानी लेने गयी तब बाल कृष्णलाल उसके घर गये। लाला ने घर में प्रवेश किया। माखन की मटकी उतार ली और धीरे-धीरे माखन खाने लगे। सिर पर पानी का घड़ा लेकर जब गोपी घर आयी तो देखा कि रसोई घर खुला है और कन्हैया वहाँ बैठा है! बहुत प्रसन्न हो गयी। मेरी बहुत भावना थी कि मैं वहाँ जाऊँगी तो कन्हैया लजायेगा और माखन नहीं खायगा। कन्हैया खाये और मैं देखूँ--ऐसी मेरी इच्छा है। गोपी द्वार के पीछे खड़ी रही। कन्हैया माखन खा रहा है और चारों ओर देख रहा है--सोचता है कि यहाँ कोई आ तो नहीं रहा! कन्हैया ने देखा कि गोपी आ गयी है और द्वार

के पीछे खड़ी है। तब वह थोड़ा घबराया। गोपी को विश्वास हो गया कि कन्हैया भाग जायगा। उसने एकदम भीतर आकर लाला को बाँह से पकड़ लिया। कन्हैया गोपी को मनाने लगा–आज तुम मुझे छोड़ दो। अब मैं कभी तुम्हारे घर नहीं आऊँगा। मैं तुम्हारे भाई की कसम खाकर कहता हूँ। गोपी नाराज हो गयी। बोली कि तुम मेरे भाई की कसम क्यों खाते हो? गोपी भीतर से प्रसन्न है। उसके हृदय में प्रेम भरा है। बाहर से क्रोध दिखाकर नाटक कर रही है। तुम्हें चोरी करने की आदत पड़ गयी है। मैंने खुद देखा है। तुम मेरे घर में क्यों आये? लाला ने कहा–मैं यहाँ से जा रहा था। मुझे ऐसा लगा कि यह मेरा ही घर है, इससे मैं इधर चला आया। सुनकर गोपी प्रसन्न हो गयी–सोचने लगी कि कन्हैया मेरे घर को अपना घर मान रहा है, मुझे स्वीकार रहा है। गोपी ने लाला से कहा–कन्हैया यह घर तुम्हारा है, पर तुम्हें मटकी में हाथ डालने की क्या जरूरत पड़ी? लाला ने कहा–माखन में चीटियाँ चढ़ रही थीं, इन्हें निकालने के लिये ही मैंने हाथ डाला और तुम आ गयीं। गोपी ने कहा–लाला, तुम तो मुझे बनाने लगे। पाँच वर्ष के भी अभी तुम नहीं हो और ऐसा झूठ बोल रहे हो? तुम चींटी निकाल रहे थे कि माखन खा रहे थे? तुम झूठ बोल रहे हो। तुम्हारे होठों पर माखन लगा है। लाला ने कहा–मैं चींटी निकाल रहा था कि मेरे होंठ पर दो–मक्ख्यिां आकर बैठ गयीं, मक्खियों को उड़ाने लगा कि होठों पर माखन लग गया।

कन्हैया जैसा बोल रहा है, वैसा बोलना किसी को नहीं आ सकता। कन्हैया ठुम–ठुम करता हुआ चलता है। वैसा चलना भी किसी को नहीं आता है। लाला के सभी काम बहुत मधुर हैं, मंगलमय हैं। गोपी ने कहा–आज यह कुछ भी नहीं चलेगा। मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगी। आज मैं तुम्हें बाँधूँगी।

गोपी ने लाला को खंभे के पास खड़ा किया और लाला को बाँधने लगी। गोपी जानती थी कि यह बालक बहुत चंचल है, इससे उसने डोरी को खींचकर बाँध दिया। स्वामी का श्रीअंग माखन से भी कोमल है। गोपी ने डोरी को खींचकर बाँधा है। लाला की आँखों में आँसू आ गये। गोपी ने यह देखा। उससे सहन नहीं हुआ। वह लाला से पूछने लगी–बेटा क्या तुम्हें कष्ट हो रहा है? लाला ने कहा–हाँ! तुम डोरी को खींचकर बाँधती हो इससे मेरा पेट दुःख रहा है। मैं यहाँ से कहीं भी नहीं जाने वाला हूँ। तुम डोरी को जरा ढीला कर दो। गोपी को दया आ गयी। उसके हृदय में प्रेम है। लाला को त्रस्त तो नहीं करना है। गोपी ने डोरी को ढीला कर दिया। लाला को बाँध कर गोपी घर–घर कहने गयी। यही गोपी ने गलती कर दी। वह कहती फिरती थी–अरी सखी, मैंने लाला को बाँधा है। माखन चोर को मैंने बाँधकर रखा है। वह मेरे घर में है। ध्यान रखें, आप भी लाला को बाँध लें तो किसी से न कहें कि मैंने बाँधा है। आप बहुत भक्ति कीजिए पर भक्ति का विज्ञापन न कीजिए। जगत् से कहिये कि मैं तो संसार में फँसा साधारण जीव हूँ बाहर से जगत्

के साथ प्रेम रखिये। भीतर से श्रीकृष्ण के साथ प्रेम कीजिए। अनेक बार ज़ीव भीतर से रुपयों के साथ प्रेम करता है। काम-सुख से प्रेम करता है, बाहर से भगवान् के साथ प्रेम करता है।

गोपी सभी से कहने गई। इतने में बाल कृष्णलाल उस डोरी से बाहर निकले। सूक्ष्म रूप साधारण करके वे बाहर निकल गये। बाद में लाला ने गोपी को अँगूठा दिखा दिया। कहने लगा-लो, पकड़ो। मैं जा रहा हूँ। गोपी को आश्चर्य हुआ कि लाला, कैसे निकल गया! लाला ने कहा-निकल गया कैसे? तुम्हें बाँधना आता ही कहाँ है? दो बच्चों की माता हो गयी पर तुम्हें अक्ल नहीं आयी। तुम्हें मैं बाँधना सिखा सकता हूँ। गोपी ने पूछा-लाला, तुम्हें बाँधना आता है? लाला ने कहा-हाँ मेरी माँ ने मुझे सब कुछ सिखाया है। गोपी की लाला के साथ खेलने की इच्छा तो थी ही उसने लाला से पूछा-लाला, किस तरह बाँधना चाहिये, तुम मुझे बताओ। तब एक स्तंभ के पास गोपी खड़ी हो गयी। उसे बालकृष्णलाल का स्पर्श हुआ। बड़े-बड़े योगी मन से परमात्मा का स्पर्श करते हैं। गोपी भाग्यशाली है कि प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण का स्पर्श हुआ। गोपी के शरीर में रोमांच हुआ। गोपी को अति आनंद हुआ। वह लाला के मुखारविंद के दर्शन में तन्मय हो गयी विचारने लगी कि लाला की आँखें कैसी सुन्दर हैं। लाला के बाल कैसे हैं! देखते-देखते लाला ने डोरी को खींच कर ऐसी दो गाँठ लगा दीं कि गोपी को पता तक न चला। बाद में उसे बोध हुआ। उसने कहा-तुम तो मुझे बना रहे थे। मुझे तो तुम ने सचमुच ही बाँध दिया। अब मुझे छोड़ दो।

लाला ने कहा-मेरी माँ ने बाँधना ही सिखाया है। छोड़ना नहीं सिखाया है। कन्हैया कभी छोड़ नहीं सकता। वह तुरन्त नहीं पकड़ता है, पर एक बार पकड़कर, छोड़ता नहीं है। परमात्मा को छोड़ना नहीं आता है। जीव को छोड़ना आता है। यह जीव दुष्ट है। जब तक स्वार्थ है, तब तक स्नेह सम्बन्ध रखता है और स्नेह-सम्बन्ध जब स्वार्थ नहीं रहता है तब तोड़ देता है। अरे! रास्ते में मिल जाय तो जय श्रीकृष्ण भी नहीं कहता है और सामने तक नहीं देखता है। जीव दुष्ट है, अभिमानी है। स्वार्थ न रहने पर सम्बन्ध तोड़ देता है। कन्हैया एक बार जिसे अपना लेता है, उसे कभी भी नहीं छोड़ता है। गोपी लाला को समझाने लगी-कन्हैया! मेरी सास कथा में गई है, घर का काम अभी बाकी है। सासजी घर आकर मुझ से क्या-क्या कहेंगी? लाला ने कहा-सासजी घर आकर बहुत अच्छी तरह से तुम्हारी पूजा करेंगी। तुम एक-एक घर कहने गईं कि मैंने लाला को बाँध दिया है? गोपी ने कहा-लाला! मुझ से भूल हो गयी।

श्रीकृष्ण लीला में प्रेम भरा है। रामजी की प्रत्येक लीला में मर्यादा है। जो धर्म की मर्यादा में रहता है उसके मन में ही प्रभु-प्रेम जगता है। इससे भागवत में मर्यादा-पुरुषोत्तम की कथा पहिले आती है और प्रेम-पुरुषोत्तम की कथा बाद में आती है।

धीरे-धीरे रामचन्द्रजी बड़े हो रहे हैं। श्रीराम सोलह साल के हुए, तब उन्हें गुरु वशिष्ठजी ने योगवशिष्ठ का उपदेश दिया। योगवाशिष्ठ ग्रन्थ कठिन ग्रंथ है किन्तु उसका प्रथम प्रकरण यानी वैराग्य प्रकरण अति सुन्दर है। उसे एक बार नहीं; पाँच-दस बार पढ़िये। संसार का सुख जीव को मधुर लगता है पर इससे उसका मन बिगड़ा रहता है। वैराग्य का प्रचार हो तो जगत् के बहुत से झगड़ों के अंत आ सकते हैं। सच्चा सुख संसार में नहीं है, परमात्मा में है—ऐसा समझने वाला झगड़ा नहीं करता है।

रामजी के मन में राजमहल में रहते हुए भी वैराग्य जागता है। गीताजी के प्रथम अध्याय का नाम है—अर्जुन विषाद योग। अर्जुन को वैराग्य नहीं है, विषाद इस बात का है कि अपने भाइयों के साथ मैं युद्ध करने को तैयार हुआ हूँ! गीताजी में प्रभु ने अर्जुन को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया है। किन्तु फिर कहा है कि तुम युद्ध करो, निष्काम भाव से अपना कर्त्तव्य पूर्ण करो। रामजी को राजमहल में वैराग्य होता है। राजमहल में सभी प्रकार का सुख है। सब तरह की अनुकूलता है पर रामजी सोचते हैं कि यह सब सुख झूठा है। भौतिक सुख भोगते हुए मैंने जीवन गँवाया है। सच्चा सुख इस राजमहल में कहाँ है? धन में कितना दुःख है, स्त्री शरीर, पुरुष शरीर कितना खराब है तथा यौवन में कितने दोष हैं। रामचन्द्रजी एक-एक अध्याय में इन सबका वर्णन करते हैं। रामजी को विश्वास हो गया है कि संसार का सुख कच्चा है। झूठे सुख के पीछे मैंने जीवन गँवाया है, मैंने भूल की है।

राम उदास होकर बैठे रहते हैं तब वशिष्ठजी ने उन्हें योगवाशिष्ठ का उपेदश किया है। रामचन्द्रजी से कहा है कि राजमहल छोड़कर आप जंगल में जायेंगे तो वहाँ भी कुटिया की जरूरत पड़ेगी। आप सभी कपड़े फेंक दें तो भी आपको लंगोट की जरूरत तो होगी ही। प्रारब्ध के अनुसार ज्ञानी पुरुष सुख-दुःख भोगते हैं। ज्ञान में, भक्ति में, कभी कोई विघ्न नहीं आता। उसमें हमारी ममता विघ्न लाती है। उचित तो यही है कि मानव अपनी ममता परमात्मा में रखें। भगवान् में ममता रखकर विवेक से व्यवहार करें।

वशिष्ठजी रामचन्द्रजी को अनेक दृष्टान्त देकर समझाते हैं, अपने कर्तव्य का पालन कीजिये। ममता भगवान् में ही रखिये। मानव में ममता रखने वाला दुःखी होता है। किसी मानव को अपना समझने वाला दुःखी होता है। भगवान् मेरे हैं, मैं परमात्मा का अंश हूँ। प्रभु के चरणों में जाने वाला हूँ—इस तरह भगवान् में ममता रखकर विवेक से कर्तव्य-पालन कीजिये। प्रारब्ध भोगकर इसका विनाश करना है। प्रारंब्ध भोगते हुए सावधान रहना है। नया प्रारब्ध उत्पन्न न हो। किसी भी मानव के साथ वैर करने से नया प्रारब्ध उत्पन्न होता है। किसी मानव के साथ प्रेम करने

से भी नया प्रारब्ध उत्पन्न होता है। ज्ञानी बहुत सावधान रहते हैं। जो प्रारब्ध लेकर आया हूँ, उसे भोगकर पूर्ण करना है। मुझ से नया पाप न हो, नया प्रारब्ध खड़ा न हो। इस प्रकार ममता परमात्मा के स्वरूप में रखकर कर्तव्य पूर्ण करना है। वशिष्ठजी ने रामचन्द्रजी को आत्म-स्वरूप का वर्णन करके समझाया है। इसके श्रवण से रामचन्द्रजी की समाधि लग गई। वशिष्ठजी समाधि से रामचन्द्रजी को जाग्रत करते हैं और कहते हैं–अपना अवतार कार्य पूर्ण कीजिए। आपको राक्षसों का विनाश करना है।

४६– जगन्मित्र और जगदीश

श्रीराम की कुमारावस्था चल रही है। उस समय विश्वामित्र ऋषि अपने आश्रम में यज्ञ कर रहे थे। यज्ञ में राक्षस विघ्न डाल रहे थे। विश्वामित्र ने सोचा कि राम-लक्ष्मण प्रकट हुए हैं। मैं अयोध्या जाऊँगा। अपने आश्रम में सारा दिन उनका दर्शन करूँगा। यज्ञ के रक्षण का एक अच्छा निमित्त है। विश्वामित्रजी अयोध्याजी में आये। सरयू-गंगा को वंदन करके स्नान किया। आप किसी तीर्थ में जायें तो तीर्थ देव को प्रणाम करके स्नान कीजिए। कई लोग घूमते-घूमते नर्वदाजी के तट पर जाते हैं, परन्तु ठण्डी हवा चल रही हो तो नर्वदाजी में स्नान नहीं करते हैं। तीर्थ में जाकर तीर्थदेव को वंदन न करना, स्नान न करना– अच्छा नहीं है। ऐसे लोगों को पाप लगता है। तीर्थ में कुल्ले करने से बहुत पाप लगता है। तीर्थ में साबुन लगाकर स्नान नहीं करना चाहिए। साबुन लगाने से पाप लगता है। तीर्थ पानी नहीं है। सरयूजी के माहात्म्य का कौन वर्णन कर सकता है?

कोटि कल्प काशी बसे, मथुरा कल्प हजार।
एक निमिष सरयू बसे तुलइ न तुलसीदास॥

भगवान् आपको अनुकूलता दें, तो आप अयोध्याजी में एक-दो मास जाकर रहिये। अयोध्या अति दिव्य भूमि है। वहाँ झगड़ा नहीं है। आज भी इसका अनुभव होता है। अयोध्या के संत अति शांत हैं। विरक्त साधु वहाँ विराजमान हैं। सरयूजी का नाम रामगंगा है। वहाँ घाट के नाम भी दिव्य हैं। जैसे स्वर्गद्वार घाट, रामघाट, ऋणगोचर घाट। किसी का ऋण जाने-अनजाने बाकी रह गया हो तो ऋणगोचर घाट पर स्नान करना चाहिये। वहाँ सीताराम विराजमान हैं। उनके दर्शन करें, एकाध गरीब को भोजन करायें और हाथ जोड़कर खड़े रहें तो ऋण से मुक्ति मिलती है। अयोध्याजी के एक-एक घाट पर स्नान करने का माहात्म्य है। कभी आप अयोध्याजी जायें तो याद रखकर रामघाट पर स्नान कीजियेगा। रामघाट आज अयोध्या से तीन-चार मील की दूरी पर है। अब वहाँ घाट नहीं हैं, रेत है। सरयूजी वहाँ विराजमान हैं। वहाँ पहले घाट था। श्रीसीताजी वहाँ स्नान करती थीं।

रामघाट ऐसी दिव्य भूमि है कि वहाँ सरयूजी में स्नान करके, रेत में बैठने से हृदय द्रवित हो जाता है। उस भूमि का मन पर बहुत असर होता है। चाहे कैसा भी नास्तिक क्यों न हो, सरयूजी में स्नानकर, (रामघाट पर स्नान कर) वहाँ के तट की रेत में बैठने पर उसका हृदय आर्द्र होता ही है। वहाँ परमात्मा का निवास है, ऐसा लगता है। वहाँ बैठकर ध्यान तथा जप करने से तन्मयता प्राप्त होती है, आनंद आता है। ऐसा लगता है कि मानो सीतारामजी यहाँ विराजमान हैं।

विश्वामित्रजी सरयू नदी में स्नान करके राजा दशरथ के राज-दरबार में आते हैं। दशरथ राजा को पता चला और वे उठकर खड़े हो गये। ऋषि का उन्होंने स्वागत किया बोले आपने बहुत कृपा की, आज आपके दर्शन हुए, बहुत आनंद हुआ। मेरे दादा महाराज रघु ने पुण्य किया था, इससे आप जैसे संत के दर्शन हुए। मैं आपकी क्या सेवा करूँ? विश्वामित्रजी ने कहा–राजन्! मेरे यज्ञ में राक्षस बहुत विघ्न डालते हैं, इससे रक्षक के रूप में राम-लक्ष्मण की माँग करने आया हूँ। रामजी की माँग की बात सुनकर दशरथ राजा का हृदय भर आया। पर धैर्य धारण करके राजा ने कहा–गुरुजी आपने उचित माँग नहीं की है। वृद्धावस्था में आप सबके आशीर्वाद से मेरे चार पुत्र हुए। चारों मुझे बहुत प्रिय हैं पर गुरुजी, आपसे क्या कहूँ? मेरा राम मुझे प्राणों से भी प्रिय है। मेरे राम को मेरी दृष्टि से दूर न कीजिये। मैं आपसे सच-सच कहता हूँ। कदाचित् जल के बिना मीन जीवित रह जाये, पर राम के बिना दशरथ नहीं जी सकेगा। अपने राम को देखने से मेरी दृष्टि की तृप्ति नहीं होती। पाँच-दस मिनट भी उसके बिना, मैं नहीं रह सकता। मुझे व्याकुलता होती है। गुरुजी! राम मेरा पुत्र है। इससे ही मुझे प्रिय है, ऐसा नहीं है। राम शत्रु को भी प्रिय लगता है। मेरे राम में सभी सद्‌गुण हैं। वह तीनों माताओं की सेवा करता है। छोटे भाइयों की देखभाल करता है। मेरा राम जितेन्द्रिय है। वह आँख उठाकर किसी स्त्री की ओर देखता तक नहीं है। वह बहुत भोला है, बहुत सरल है। राम-सा पुत्र कभी हुआ नहीं, न कभी होगा। गुरुजी! मैं सब कुछ दे सकता हूँ पर राम को नहीं दे सकता। मेरा जीवन राम के अधीन है। यदि राम न दिखाई देगा, तो मेरे प्राण-पखेरू उड़ जायेंगे। दशरथ राजा बोले हैं, वैसा ही हुआ है। दशरथ राजा का रामचन्द्रजी में अलौकिक प्रेम था। विश्वामित्रजी ने स्मित करके वशिष्ठजी की ओर आँख से इशारा किया और कहा कि राजा को समझाइए।

महाराज दशरथ चक्रवर्ती सार्वभौम राजा हैं, पर वे मानते हैं कि मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मैं अपने गुरुदेव के आधीन हूँ। दशरथ राजा को यदि कोई कार्य करना हो तो वे वशिष्ठ ऋषि से पूछते हैं। वशिष्ठजी राजा को एकांत में ले गये और समझाने लगे–कल राम की जन्म-कुण्डली मेरे हाथ में आ गई उसे देखकर मुझे विश्वास हो गया कि इस वर्ष में किसी अति सुन्दर राजकन्या के साथ

राम का विवाह होने वाला है। विश्वामित्रजी राम के विवाह के लिये आये हैं। दशरथ राजा प्रसन्न हो गये। बोले गुरुजी, मेरे राम के विवाह के लिये आये हैं, तो मैं राम को कल क्या आज ही भेजने के लिये तैयार हूँ। अब राम बड़ा हो गया। गुरुजी! मेरी वृद्धावस्था है। मुझे राम के विवाह के दर्शन करने हैं।

वशिष्ठजी ने कहा–आप दिन में तीन बार शंकर भगवान् की पूजा करते हैं। भगवान् शंकर सब मंगल करेंगे। दशरथ महाराज ने राम-लक्ष्मण को सभा में बुलाया। राम-लक्ष्मण पिता के चरणों में वंदन कर, हाथ जोड़कर खड़े रहे। श्रीराम विनय की मूर्ति हैं। पुत्र पिता को विनय से वंदन करता है। उनकी आज्ञा का पालन करे तो पिता का हृदय आर्द्र होता ही है और ऐसे में हृदय से आशीर्वाद निकलते हैं। ऐसे आशीर्वाद हर रोज नहीं मिलते। एकाध बार ही ऐसा प्रसंग आता है।

रामचन्द्रजी हाथ जोड़कर खड़े हैं, कहते हैं–पिताजी, मुझे आज्ञा दीजिये। मैं आपकी क्या सेवा करूँ? तब दशरथ राजा कहते हैं–गुरुजी के यज्ञ का रक्षण करना है। कर सकोगे? रामचन्द्रजी ने कहा–हाँ! पिताजी, जो कहेंगे वही करूँगा। राम-लक्ष्मण कौशल्या माता को वंदन करने आये हैं। रामजी बहुत कम बोलते हैं। लक्ष्मणजी ने सारी कथा सुनायी है और कहा–माता! आपके आशीर्वाद लेने के लिये आये हैं। कौशल्या माता ने विचार किया–मेरे राम यौवन में प्रविष्ट हो रहे हैं, अभी उन्हें सत्संग की बहुत जरूरत है। बाल्यावस्था में सत्संग न हो तो कोई चिन्ता नहीं है। उस समय माता-पिता का छत्र सिर पर रहता है। माता-पिता समझाकर पाप करने से रोकते हैं। वृद्धावस्था में शरीर दुर्बल होता है और वृद्ध को अक्ल आती है। वृद्धावस्था में मानव सादा, सात्विक जीवन व्यतीत करता है। यौवनकाल ऐसा बुरा है कि इस में मानव होश गंवा देता है। जवानी में ही सत्संग की जरूरत होती है। यौवन में जितेन्द्रिय तपस्वी संतों का सत्संग जो करता है, उसका जीवन बहुत पवित्रता से बीत जाता है। विश्वामित्रजी तपस्वी हैं, जितेन्द्रिय हैं। राम को उनका सत्संग मिले तो अच्छा है। कौशल्या माता ने कहा–आपके पिता की जो आज्ञा है, वही हमारी आज्ञा है। पिताजी प्रसन्न हों, ऐसा ही कीजिये। कौशल्याजी विश्वामित्रजी को प्रणाम करती हैं और कहती हैं–गुरुजी! मेरे राम-लक्ष्मण को आप ले जाते हैं। मेरा लक्ष्मण छोटा है और मेरा राम बहुत संकोची है। उसे भूख लगती है तो मुझे भी कभी नहीं कहता कि मुझे भूख लगी है।

राम लक्ष्मण जब प्रातःकाल कौशल्या माता को प्रणाम करने आते हैं, तब कौशल्या माता राम-लक्ष्मण को माखन-मिसरी खिलाती हैं। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि कौशल्याजी लक्ष्मीनारायण की सेवा में ऐसी तन्मय हो जाती हैं कि उन्हें माखन-मिसरी देना भूल जाती हैं। राम वंदन करते हैं। दस मिनट बैठते हैं। माता माखन खिलाती हैं तो खाते हैं, अन्यथा उठ जाते हैं।

संध्या के समय पर कौशल्याजी को याद आता है कि कटोरी में माखन तो पड़ा रहा। मेरा राम आया पर कुछ बोला नहीं। मेरा राम भूखा ही रहा बहुत लजीला है। कौशल्याजी विश्वामित्रजी से कहती हैं–मेरे राम जैसा कोई पुत्र नहीं होगा। गुरुजी! राम माँगेगा नहीं। आप याद रखकर राम-लक्ष्मण को माखन-मिसरी खिलाइयेगा। उनकी माखन मिसरी खाने की आदत है। श्रीराम को-श्रीकृष्ण को माखन-मिसरी बहुत पसंद है। बालकृष्ण लाल तो हाथ में ही माखन-मिसरी रखते हैं। कन्हैया हमें बोध देता है–आप माखन से मृदु और मधुर बनिये तो मैं आपको हाथ में रखूँगा। जिनके जीवन में मिठास है, वे प्रभु को प्रिय हैं। जिनके जीवन में कटुता है वे भले ही भक्ति करें, पर प्रभु को उनकी भक्ति भी नहीं भाती है। जीवन में संयम से मिठास आती है। जीवन में सभी को सम्मान देने से मिठास आती है। सभी को सम्मान दीजिये। कभी किसी का अपमान न कीजिये। विश्वामित्रजी ने कौशल्याजी से कहा कि माँ! आप जरा भी चिन्ता न कीजिये आश्रम में बहुत गायें हैं, वहाँ बहुत माखन होता है। मैं याद रखकर राम-लक्ष्मण को माखन खिलाऊँगा।

माता-पिता को वंदन करके राम-लक्ष्मण गुरुदेव विश्वामित्र के पीछे-पीछे चले हैं। विश्वामित्र शब्द का अर्थ होता है जगन्मित्र। पाणिनी ऋषि ने विश्वामित्र शब्द के लिये व्याकरण में एक सूत्र लिखा है–विश्वं मित्रं यस्य सः विश्वामित्रः। जो जगत् का मित्र है, उसे विश्वामित्र कहते हैं। जगन्मित्र के पीछे-पीछे जगदीश चलते हैं। राम परब्रह्म हैं। लक्ष्मण शब्द ब्रह्म हैं। शब्द-ब्रह्म परब्रह्म के साथ ही रहता है। जिसका कोई शत्रु नहीं है, जिसकी सबके साथ मैत्री है, परमात्मा स्वयं जिसके पीछे-पीछे चलते हैं, वही विश्वामित्र हैं। सर्व के साथ मैत्री करना शक्य नहीं है, अशक्य सा है परन्तु किसी के साथ वैर न करना ही सर्व के साथ मैत्री करने जैसा है।

विश्वामित्रजी के आश्रम में जाते हुए रास्ते में ताडका राक्षसी मिली है। विश्वामित्रजी ने रामचन्द्रजी से कहा–आप इसे मारिये। रामचन्द्रजी ने कहा–यह स्त्री शरीर है। कैसे मारूँ? स्त्री को मारा नहीं जाता। जिस घर में स्त्री को मारा जाता है, उस घर में दारिद्रय आता है। स्त्री बहुत से अपराध करे तो भी पुरुष को उसे मारना नहीं चाहिये। स्त्री, अपराध करे तो पुरुष उसके साथ बोलना छोड़ दे। एक भी अक्षर न बोले। वह स्वयं समझ जायगी। स्त्री को मारा नहीं जाता।

विश्वामित्र समझा रहे हैं–यह स्त्री-शरीर है पर राक्षसी है। अनेक लोगों को त्रस्त करती है। ऐसे एक को मारने से सब सुखी होते हों तो वह स्त्री हो या पुरुष उसे मारने में पाप नहीं है। इस राक्षसी के कारण सारा देश दुःखी है। रामचन्द्रजी ने ताडका को वाण मारकर उसका उद्धार ही किया। विश्वामित्रजी के आश्रम में राम-लक्ष्मण पधारे हैं। श्रीराम-लक्ष्मण के दर्शन करते ही ऋषि कुमारों में प्रेम जाग्रत होता है। उन्हें परमानंद मिलता है। विश्वामित्रजी ने यज्ञ का प्रारंभ किया

है। यज्ञ-मंडप के द्वार पर राम-लक्ष्मण पहरा दे रहे हैं। रामचन्द्रजी पीताम्बर पहिनते हैं। लक्ष्मणजी हरा वस्त्र पहिनते हैं। लक्ष्मणजी गौर वर्ण के हैं। श्रीराम श्याम हैं। धनुष-बाण सजा हुआ है। वक्षःस्थल विशाल है। भाल-प्रदेश भव्य है। नेत्र दिव्य हैं। आजानुबाहु हैं। हाथ घुटनों का स्पर्श करते हैं। यह महायोगी, महान् भाग्यवान् के लक्षण हैं। श्रीराम आजानुबाहु हैं।

एक वैष्णव ने रामचन्द्रजी से पूछा था कि महाराज आपके हाथ बहुत लम्बे हैं। इतने लम्बे हाथ क्यों रखे हैं? तब रामचन्द्रजी ने कहा—मेरे भक्त जब दर्शन करने आते हैं, तब उन्हें मिलने की बहुत इच्छा होती है। मेरा कोई भक्त मोटा-तगड़ा हो तो उसे आलिंगन में लेने में सुविधा हो, इसलिए हाथ लम्बे रखे हैं। रामजी बहुत सरल हैं। वे बन्दरों से मिले हैं। वे भालुओं से मिले हैं। रामजी प्रेम से बन्दरों से मिलते हैं। वे बन्दर रामजी की क्या सहायता करेंगे? वे तो पशु हैं पर रामजी सबसे प्रेम से मिलते हैं। एक मानव ही अभागा है। उसकी ऐसी इच्छा नहीं होती कि मुझे रामजी के दर्शन करने हैं, रामजी से मिलना है। जब आप किसी मानव से मिलते हैं, तब आपको प्रसन्नता होती है, फिर जब आप परमात्मा से मिलेंगे तब आपको कितना आनन्द होगा! आप ऐसी इच्छा रखिये कि मुझे भगवान् से मिलना है।

विश्वामित्र जी यज्ञ करते हैं। आहुति अग्नि में देते हैं, पर उनकी दृष्टि राम-लक्ष्मण में स्थिर है। आप कोई भी कार्य कीजिये, जब हर एक काम में आपको प्रभु दिखाई दें, प्रभु की याद आती रहे, तब मानिये कि काम सफल हुआ है। सत्कर्म करते समय भी भगवान् के दर्शन करने हैं। इसका अर्थ यही है कि मैं यह कार्य नहीं कर रहा, पर मेरे प्रभु कर रहे हैं। भगवान् को भुलाया जाय तो सत्कर्म करने से अभिमान आ जाता है।

धनुष-बाण से सज करके प्रभु खड़े हैं। मारीच और सुबाहु राक्षस यज्ञ में विघ्न डालने के लिए आते हैं। मारीच को रामजी के दर्शन हुए। मारीच का स्वभाव सुधरा उसका हृदय आर्द्र हुआ। मारीच सोचने लगा कि इस ब्राह्मण का कोई स्वार्थ नहीं है। देश के लिये, समाज के कल्याण के लिये ब्राह्मण यज्ञ करते हैं। यज्ञ में मुझे सेवा देनी है। मारीच राक्षस था फिर भी रामचन्द्रजी के एक बार दर्शन करके वह सुधर गया।

कुछ लोग हर रोज मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं पर उनका स्वभाव नहीं सुधरता है। बहुत प्रेम से प्रभु से दर्शन करने से प्रभु के सद्गुण प्राप्त होते हैं। भगवान् के दर्शन करने पर भी स्वभाव न सुधर सके तो समझिये कि मारीच राक्षस से भी अधम राक्षस मैं हूँ। मारीच यज्ञ में विघ्न डालने आया था, फिर भी उसे यज्ञ में सेवा करने की इच्छा हुई। यज्ञ-मंडप के उस द्वार को छोड़कर मारीच दूसरे द्वार पर गया। वहाँ भी राम-लक्ष्मण प्रहरी थे। चारों द्वारों पर राम-लक्ष्मण दिखाई पड़े।

मारीच को आश्चर्य हुआ—ये बालक बहुत सुन्दर दीख रहे हैं। विश्वामित्र इन बालकों को कहाँ से लाये होंगे? ये बालक बहुत सुन्दर दीख रहे हैं। ऐसे कोई बालक जगत् में न होंगे। इन्हें देखकर ही प्रेम जाग उठता हैं, युद्ध करने की इच्छा ही नहीं होती है। मन में ऐसा आता है कि इन्हें सिंहासन पर बैठाकर आरती उतार लूँ। रामदर्शन करते हुए मारीच में ऐसा प्रेम जाग उठता है। छह दिन और छह रात्रि तक राम-लक्ष्मण ने जागरण किया और विश्वामित्रजी के यज्ञ का रक्षण किया। यज्ञ जब परिपूर्ण हो गया तब विश्वामित्रजी को बहुत आनन्द हुआ। उन्होंने राम-लक्ष्मण को आशीर्वाद दिया। राम-लक्ष्मण विश्वामित्रजी के आश्रम में रहने लगे। एक दिन जनकपुरी से सीताजी के स्वयंवर की निमन्त्रण-पत्रिका आ पहुँची।

विश्वामित्रजी ने रामचन्द्रजी से पूछा—आप दोनों जनकपुरी चलेंगे? रामचन्द्रजी ने कहा—गुरुजी! आप जहाँ जायेंगे, वहीं हम आपके साथ चलेंगे। हमारे माता-पिता की आज्ञा है कि गुरुजी की सेवा करना। रामचन्द्रजी को लेकर विश्वामित्रजी जनकपुरी पहुँचे। उनके साथ अनेक ऋषि भी हैं। रास्ते में अहिल्याजी का आश्रम आता है। गौतम ऋषि के शाप से अहिल्याजी पत्थर की शिला बन गयी हैं। विश्वामित्रजी ने रामचन्द्रजी को आज्ञा दी—इस शिला का चरण से स्पर्श कीजिये? रामजी पूछ रहे हैं—इस पत्थर में क्या है? गुरुजी ने कहा—यह ऋषि-पत्नी अहिल्या है। आपके चरणों के स्पर्श से इसका उद्धार होगा।

रामचन्द्रजी ने कहा—गुरुजी! मेरा ऐसा नियम है कि मैं किसी स्त्री का स्पर्श नहीं करता हूँ। रामायण में वर्णन है—सीताजी ने कहा है कि मैंने आज तक किसी पुरुष का स्पर्श नहीं किया है। श्रीसीताजी किसी पुरुष का स्पर्श नहीं करती हैं, श्रीरामचन्द्रजी किसी स्त्री का स्पर्श नहीं करते हैं। स्पर्श से अनेक दोष होते हैं। रामचन्द्रजी ने कहा—मैं स्त्री को वंदन करूँगा पर स्पर्श नहीं करूँगा। विश्वामित्रजी ने कहा—आप वंदन करें, इससे इसका उद्धार नहीं होगा। आप चरण से स्पर्श करें तो ही इसका उद्धार होगा। रामचन्द्रजी ने कहा—गुरुजी! किसी स्त्री का स्पर्श करूँगा तो मुझे पाप लगेगा। राम परमात्मा हैं, ऐसा बोल रहे हैं। कहते हैं कि मैं किसी स्त्री का स्पर्श करूँगा तो मुझे पाप लगेगा। आजकल लोगों को पाप का जरा भी डर नहीं लगता है। पाप का डर रखिये। जो पाप का डर रखता है, जो पाप छोड़ता है वह निर्भय बन जाता है। पाप करने वाला भयाकुल रहता है।

रामजी की किसी भी लीला में मर्यादा का भंग नहीं होता है। रामचन्द्रजी जहाँ खड़े थे, वहाँ उस समय हवा चलने लगी और हवा के साथ राम-चरण की रज उड़कर शिला पर पड़ी। चरण का स्पर्श नहीं है पर राम चरण-रज का स्पर्श है। प्रत्यक्ष रामजी को स्पर्श करने की जरूरत ही नहीं। राम-चरण-रज में ऐसी शक्ति है। मानव की बुद्धि काम सुख के चिन्तन से शिला के समान

जड़ हो जाती है। इससे सेवा में भक्ति से हृदय द्रवित नहीं होता है। बुद्धि काम-सुख का चिंतन न करने लगे, इसके बारे में सावधान रहिये। काम-सुख के चिंतन से बुद्धि बिगड़ती है। काम सुख के चिंतन से बिगड़ी हुई बुद्धि भगवद्-चरण के स्पर्श से सुधरती है, निर्मल हो जाती है।

अहिल्याजी का उद्धार हुआ है। अहिल्याजी ने परमात्मा की स्तुति की-मुझे मुनि ने शाप दिया सो अच्छा ही हुआ इससे ही मुझे आज आपके चरणों की रज का स्पर्श प्राप्त हुआ। अहिल्याजी का उद्धार करके राम-लक्ष्मण विश्वामित्रजी के साथ जनकपुरी आ पहुँचे।

नगर के बाहर आम्र-कुंज था। वहाँ उन्होंने निवास किया। जनक महाराज को मालूम हुआ, वे दौड़ते आ पहुँचे, विश्वामित्रजी की उन्होंने पूजा की और कुशल समाचार पूछा। वहाँ राम-लक्ष्मण विराजमान थे। जनक महाराज ने अपलक देखते हुए, राम-लक्ष्मण के दर्शन किये और पूछा-

कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक।।

महाराज ये कौन हैं? ऋषि-कुमार हैं कि राजकुमार हैं? इन्हें देखकर ही प्रेम जागता है। विश्वामित्रजी ने जनक राजा से कहा- आप महान ज्ञानी हैं, आप ही परीक्षा कीजिए कि ये कौन होंगे? तब जनक राजा ने कहा कि महाराज, मुझे ऐसा लगता है कि वेद जिन्हें नेति नेति कहते हैं, भगवान् शंकर जिस स्वरूप को हृदय में रखकर ध्यान करते हैं, वे ही परमपिता परमात्मा ये हैं। विश्वामित्र पूछने लगे कि राम परमपिता परमात्मा हैं, ऐसा आप से किसने कहा? जनक राजा ने कहा- मुझे से किसी ने नहीं कहा। मेरा पवित्र मन मुझ से कहता है। मेरा मन पाप नहीं कर सकता है। मैं संसार में रहता हूँ पर मेरा मन संसार में नहीं है। मेरा मन कभी संसार का चिंतन नहीं करता है; मैं निरंतर परमात्मा का ध्यान करता हूँ।

दो आँखों के मध्य ललाट में एक ज्योति है। आप आँखें बंद करके ललाट में दृष्टि जमाइयेगा तो वहाँ प्रकाश दिखाई देगा। ज्ञानी इस प्रकाश को देखकर निरंतर इसका ध्यान करते हैं- मैं स्त्री नहीं हूँ, मैं पुरुष नहीं हूँ, मैं शरीर से अलग हूँ, मैं परमात्मा का अंश हूँ। मैं प्रकाशमय हूँ। ज्ञानी पुरुष इस प्रकार ब्रह्मचिंतन करते हैं। जनक राजा ने कहा- आज तक मैं निराकार ज्योति का ध्यान करता था। राम के दर्शन के बाद मेरा मन ऐसा कहता है कि मैं राम का ध्यान करूँ। राम परमात्मा न होते तो मेरा ध्यान खींच ही न सकते।

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि की सोई आवा।।
सहज बिराग रूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा।।

मुझे संसार का सौंदर्य तुच्छ लगता है। राम मेरे मन का आकर्षण करते हैं। मेरे मन का आकर्षण वे ही कर सकते हैं, जो ईश्वर है।

शकुन्तला नाटक में दुष्यंत–शकुन्तला की कथा है–दुष्यंत राजा शिकार खेलते-खेलते कण्व ऋषि के आश्रम में आ पहुँचे। मध्याह्न-काल में कण्व ऋषि मध्याह्न-संध्या करने के लिये गंगा-तट पर गये थे। शकुन्तला आश्रम में थी। उसने दुष्यंत का स्वागत किया। दुष्यंत ने शकुन्तला से पूछा–तुम किसकी पुत्री हो? शकुन्तला ने कहा–मैं कण्व ऋषि की पुत्री हूँ। दुष्यन्त ने कहा–तुम ऋषि-पुत्री नहीं हो। शकुन्तला ने कहा–आप कैसे कह सकते हैं? दुष्यन्त ने कहा–मैंने मन से भी कभी पाप नहीं किया है। मेरा मन पवित्र है। मेरा ऐसा मन आज तुम्हें देखकर चंचल हो रहा है, इससे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम मेरी ही जाति की क्षत्रिय–कन्या हो। अगर तुम ब्राह्मण की कन्या होती तो तुम्हें देखकर मेरा मन कभी चंचल नहीं होता। शकुन्तला सहमत हुई। उसने कहा–आप कहते हैं, यह सच है। मैं क्षत्रिय-कन्या हूँ पर ब्राह्मण के घर में बड़ी हुई हूँ।

जनक राजा ने कहा–राम मेरे मन का आकर्षण कर रहे हैं, इससे वे ईश्वर ही होने चाहिये। ईश्वर के बिना अन्य कोई मेरे मन को आकर्षित नहीं कर सकता।

रामजी ने विश्वामित्र को इशारा किया–मेरा विज्ञापन न कीजिये। मुझे प्रकट नहीं होना है। विश्वामित्र ने रहस्य छुपाया। बोले नहीं, ऐसा कुछ नहीं है ये तो दोनों, दशरथ राजा के पुत्र हैं। मेरे यज्ञ की रक्षा करने आये हैं।

जनक राजा ने कहा–महाराज, मुझे तो ऐसा लगता है कि ये किसी के पुत्र नहीं हैं। ये तो सभी के पिता हैं। ये परमात्मा हैं। इसकी मुझे प्रतीति हुई है।

जनक राजा ने राजमहल में पधारने का बहुत आग्रह किया परन्तु रामजी को आम्र-कुंज बहुत अच्छा लगता है। इससे उन्होंने वहीं निवास रखा। जनक राजा ने सब व्यवस्था कर दी है। रामायण में लिखा है–संध्या-समय पर श्रीराम-लक्ष्मण संध्या करते हैं। संध्या के समान श्रेष्ठ कोई सत्कर्म नहीं है। भागवत के दशम स्कंध में लिखा है–द्वारिकानाथ श्रीकृष्ण संध्या कर रहे हैं। जैसा भागवत में लिखा है, वैसा आज भी द्वारिका में है। आप कभी द्वारिका में जायें तो याद रखकर उस स्थान का दर्शन कीजियेगा। द्वारिकानाथ संध्या कर रहे हैं। ठाकुरजी के शृंगार के बाद भगवान् के सम्मुख सुवर्ण का कलश, सुवर्ण की आचमनी आदि सामग्री पधराई जाती है–उसमें ऐसी भावना है कि द्वारिकानाथ संध्या करने बैठे हैं।

श्रीराम-कृष्ण परमात्मा हैं फिर भी संध्या करते हैं। राम-लक्ष्मण का रात्रि में विश्वामित्रजी के साथ सत्संग हुआ। बाद में विश्वामित्रजी ने शयन की। इसके बाद राम-लक्ष्मण गुरुजी की चरण-सेवा करने लगे। गुरुदेव ने हृदय से आशीर्वाद दिये विश्वामित्रजी को नींद आ गयी, तब रामचन्द्रजी उठकर चले–अब सेवा करेंगे तो कदाचित् गुरुजी की निद्रा में विक्षेप होगा। रामजी ने

भी तब शयन की। लक्ष्मणजी रामजी की चरण-सेवा करने लगे। रामायण में लिखा है कि छोटा भाई बड़े भाई की सेवा कर रहा है। जगत में आज ऐसा कुछ भी नहीं है। सोने में लक्ष्मणजी की बारी अंतिम है, पर जागने मे उनका क्रम प्रथम है।

नौकर का धर्म है मालिक के सो जाने के बाद सोना और मालिक के जागने से पहले जागना। पतिव्रता स्त्री का धर्म है पतिदेव के सोने के बाद सो जाना और पतिदेव के जागने से पहिले जाग जाना। ऐसा नहीं कि आज रात्रि में बारह बजे तक जागरण हुआ है तो आज आप पहिले उठिये। आज मुझे आराम करना है! कई स्त्रियाँ तो पति को हुक्म भी देती हैं! जिस स्त्री को पति में परमात्मा नहीं दिखाई देते, उसे किसी जगह भगवान् के दर्शन नहीं होते।

लक्ष्मणजी पहिले जाग गये, बाद में रामचन्द्रजी जागे और अंत में विश्वामित्रजी जागे। विश्वामित्रजी स्नान करके शालिग्राम भगवान् की सेवा करने बैठे। राम-लक्ष्मण से कहा—पास में एक बगीची है, वहाँ जाकर पुष्प और तुलसी ले आइए। राम-लक्ष्मण बगीची में पुष्प-तुलसी लेने गये। मर्यादा-पुरुषोत्तम की प्रत्येक लीला में मर्यादा है। वे सोचते हैं कि माली की अनुमति के बिना पुष्प लूँगा तो मुझे चोरी का पाप लगेगा। रामजी ने माली को, चाचा, कहकर संबोधित किया। माली को आश्चर्य हुआ। पीछे देखा तो राम-लक्ष्मण खड़े थे। वह तुरन्त दौड़कर के आ पहुँचा और रामजी के चरणों में साष्टांग वंदन किया। उसने हाथ जोड़कर कहा—मैं आपका दास हूँ। मुझे 'चाचा' कहकर न पुकारिये। प्रभु ने स्मित हास्य किया और कहा—आप उम्र में बड़े हैं। मेरे पिता के समान हैं। जब राम ऐसा कहते हैं, तब माली की आँखों में आँसू आ जाते हैं वह सोचता है कि कहाँ दशरथ महाराज और कहाँ मैं? श्रीराम मुझे पिता के समान मानते हैं! नौकरों के प्रति श्रीराम का ऐसा ही व्यवहार था। श्रीराम जब वन में गये तब घर के नौकर बहुत रोने लगे। श्रीराम सभी को प्राण से भी प्रिय लगते थे।

माली ने कहा—आप यहाँ विराजिये। मैं पुष्प-तुलसी लाता हूँ। रामजी ने कहा—आप पुष्प-तुलसी लायेंगे तो आपकी सेवा होगी। मुझे तो गुरुजी की सेवा करनी है। सेवा में चतुराई न कीजिए। सेवा स्वयं कीजिये। कई लोग ऐसे हैं कि सब कुछ दूसरों के द्वारा करवा लेते हैं और स्वयं ऐसा दिखाते हैं कि मैं करके लाया हूँ। अरे! भगवान् सभी को देख रहे हैं। चतुराई न कीजिए। रामचन्द्रजी स्वयं पुष्प-तुलसी लेने गये। रामचन्द्रजी ने तुलसी को वंदन किया।

तुलसी वृक्ष नहीं है। हमारे सनातन धर्म में तीन-चार तत्व बहुत श्रेष्ठ हैं। गाय-माता पशु नहीं है। गंगाजी, यमुनाजी, नर्वदाजी पानी नहीं हैं। तुलसीजी वृक्ष नहीं हैं। तुलसीजी का विवाह भगवान् के साथ हुआ है। तुलसीजी, राधाजी का अंश हैं। तुलसी को नाखून से तोड़ने में पाप

लगता है। तुलसीजी परमात्मा की दिव्य शक्ति हैं। हमारे शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि द्वादशी के दिन तुलसी को न तोड़िये। वैष्णव द्वादशी के लिए, एकादशी के दिन तुलसीजी तोड़कर अलग रख लेते हैं। सूर्य अस्त होने के बाद तुलसीजी रास खेलने जाती है।

रामचन्द्रजी फूल-तुलसीजी चुन रहे थे, उसी समय वहाँ श्रीसीताजी सखियों के साथ पधारीं। श्रीसीताजी का ऐसा नियम था कि घर में तुलसी पूजा करना और मंदिर में अम्बाजी की पूजा करना। जो स्त्री नियम से तुलसी की पूजा करती है, पार्वतीमाता की पूजा करती है, उस स्त्री को अखण्ड सौभाग्य और सुपुत्र की प्राप्ति होती है। सीताजी को रामजी के दर्शन से अति आनंद हुआ। रामजी पुष्प-तुलसी लेकर आये और गुरुजी को अर्पण करते हुए कहने लगे–गुरुजी! हम जिस बाग में फूल-तुलसी लेने गये उस बाग में वह राजकन्या भी आयी थी, जिसका स्वयंवर है और वह हमें देख रही थी। रामजी अति सरल हैं। प्रपञ्च-कपट का नाम तक नहीं जानते हैं। गुरुजी से उन्होंने सब कह दिया। विश्वामित्रजी ने कहा–बेटा, मैं जानता हूँ, राजकन्या वहाँ हर रोज पूजा के लिये जाती हैं, इससे ही मैंने तुम्हें भेजा था। सीताजी को भी मालूम हो जाय कि हमारा राम कितना सुन्दर है! विश्वामित्रजी ने रामजी को आशीर्वाद दिया। सीताजी ने अम्बाजी की पूजा की। माताजी ने सीताजी को आशीर्वाद दिया।

स्वयंवर के लिये जनक राजा की आज्ञा को बड़ा मण्डप तैयार किया गया था। उसमें एक बड़ा रंगमंच तैयार किया गया था। तीन सौ वीर बहुत मेहनत से वहाँ शिव-धनुष ले आये। देश-विदेश के राजा वहाँ आये थे। समय के अनुसार शतानन्द ऋषि विश्वामित्रजी को लेने पहुँचे। राम-लक्ष्मण के साथ विश्वामित्रजी स्वयंवर के मंडप में पधारे। रामजी के दर्शन में सभी तन्मय हुए। जिसके मन में जैसा भाव था, वैसे दर्शन सभी को मिले। सभा मंडप में जो ऋषि बैठे थे, रामजी के दर्शन से उनके मन में ऐसा लगा कि सुबह हम गायत्री मंत्र के जप करते हुए जिन तेजोमय परमात्मा नारायण का ध्यान करते हैं, वही नारायण राम हैं। राजाओं को ऐसा लगा कि राम बड़े राजा हैं, बलवान हैं। स्त्रियों को रामजी कामदेव के समान लगें।

जनक राजा ने स्वागत किया और मंत्रीजी से कहा– आप खड़े होकर भाषण कीजिए और कहिये कि यह भगवान् शंकर का धनुष है। इक्कीसवीं बार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन करके परशुरामजी ने इसे हमारे घर में रखा है। यह वही भयंकर धनुष है। हजार वीर बहुत मेहनत करके ही इसे उंठा सकते हैं। मेरी पुत्री जब तीन वर्ष की थी तब इस धनुष का घोड़ा बनाकर इससे खेलती थी। इससे उसी समय मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जो वीर पुरुष इस धनुष को उठायेगा, उसे आधा राज्य दे दूँगा और राजकन्या भी दूँगा। मन्त्रीजी ने खड़े होकर भाषण देना प्रारम्भ किया। उस

समय वहाँ आकाश मार्ग से रावण जा रहा था। बड़ा मंडप देखकर उसने नौकरों से पूछा–इतना बड़ा मंडप किसने बाँधा है? नौकरों ने कहा–सुना है कि जनकपुरी में जानकीजी का स्वयंवर है, वहाँ सभी राजा आये हैं। रावण ने पूछा–हमारे घर निमन्त्रण नहीं आया है? नौकर ने कहा–नहीं, हमारे घर निमन्त्रण नहीं आया है। रावण को निमन्त्रण नहीं आया है। रावण को निमन्त्रण नहीं मिला था पर वह ऐसा मूर्ख था कि बिना निमन्त्रण के मंडप में पहुँचा और जनक राजा से कहने लगा–क्या मैं राजा नहीं हूँ? तुमने सभी राजाओं को निमन्त्रण भेजा है, मुझे क्यों नहीं भेजा? तुमने मेरा अपमान किया है, इससे मैं युद्ध करने आया हूँ।

राजा जनक घबराये। पुत्री के विवाह के समय यह पाप कहाँ से आ गया? यह तो लड़ने की बात कर रहा है। जनक राजा ने हाथ जोड़कर कहा–आप तो बड़े वीर हैं। मैंने मन्त्री जी से कहा था सभी को निमन्त्रण भेजना। आपको निमन्त्रण न मिला हो तो भूल मेरी नहीं, मन्त्री जी की है। मन्त्री की भूल है और मैं क्षमा माँग रहा हूँ। मैं बहुत वृद्ध हुआ हूँ! आप जवान हैं, वीर हैं, मेरे साथ युद्ध करेंगे तो शोभास्पद नहीं होगा।

रावण ने कहा–अपने मंत्री को बुलाओ। मन्त्रीजी थर-थर काँपने लगे। सोचने लगे कि यह एक चपत लगायेगा, तो चेहरा विकृत कर देगा। यह बड़ा मूर्ख है। रावण मंत्रीजी को धमकाने लगा–मूर्ख तुम्हें इतना मालूम नहीं है? मेरा नाम सुना है कि नहीं? मुझे निमन्त्रण पत्रिका नहीं भेजी? मन्त्रीजी ने हाथ जोड़कर कहा–पत्रिका लिखने का काम मेरा है पर घर-घर पहुँचाने का काम मेरा नहीं है, वह तो सिपाही का काम है। आपके घर पत्रिका न पहुँची हो तो इसमें दोष मेरा नहीं, सिपाही का है। मैं क्षमा माँगता हूँ, भूल मेरी नहीं, भूल सिपाही की है। रावण ने कहा–तो अब अपने सिपाही को बुलाओ। मन्त्री ने एक बुद्धिमान सिपाही को बुलाया। सिपाही घबरा गया पर मन्त्रीजी जानते थे कि सिपाही बुद्धिमान है। वह रावण को उल्लू बनायेगा। सिपाही को रावण ने धमकाया–मूर्ख, तुम में कुछ अक्ल है कि नहीं? मन्त्रीजी कह रहे हैं कि उन्होंने निमन्त्रण तो लिखा है, तुमने पहुँचाया क्यों नहीं? सिपाही ने कहा–मैं तो पत्रिका देकर आया हूँ, आपको नहीं मिली है क्या? रावण ने पूछा–तुमने किसे पत्रिका दी थी? सिपाही ने कहा–सुबह जब मैं निकला तब समुद्र तट पर पहुँचा। वहाँ बहुत से लोग आपकी प्रशंसा कर रहे थे। कह रहे थे कि रावण महाराज ने इंद्रिकादिक देवों को पराभव किया है, इससे सभी देव दास भाव से रावण महाराज की लंका में सेवा करते हैं। समुद्र तट पर जाकर मैंने सोचा कि इस समुद्र को पार करके कैसे पहुँच सकूँगा? मैंने सोचा कि जब सब देव रावण के दास हैं तो समुद्र भी दास होगा ही। मैंने समुद्र को पत्रिका दी और कहा कि इस पत्रिका को रावण महाराज तक प्रहुँचा देना। समुद्र में पत्रिका डालकर

मैं वापस आ गया। अगर समुद्र ने आपको पत्रिका नहीं दी है तो इसमें मेरा क्या दोष? इसमें समुद्र का दोष है, आप समुद्र से लड़िये।

रावण को क्रोध आ गया—अरे! तुम कैसा बोल रहे हो? मेरा अपमान करेगा तो मैं तुम्हारी मौत का कारण बनूँगा। उतने समय में जनक राजा ने एक सुन्दर सिंहासन मँगाकर रख दिया। रावण को दिखाकर कहा—यह सिंहासन आपके लिये ही है। पत्रिका की बात में कुछ घोटाला हुआ है, पर अब आप इस सिंहासन पर विराजिये। रावण सिंहासन को देखकर शांत हुआ। रावण बहुत अभिमानी है। अकड़ में चलकर सिंहासन पर बैठ गया। राजा से कहा—हे जनक! अब अपनी कन्या को बाहर बुलाओ। वह आकर मुझे विजयमाला पहिनाये।

जनक राजा ने कहा—हमारा ऐसा नियम है कि जब तक धनुष भंग नहीं होगा, तब तक राजकन्या बाहर नहीं आयेगी। रावण अभिमान में कहने लगा। इस धनुष में क्या है? आप मुझे जानते नहीं हैं। आपको क्या यह मालूम नहीं है कि यह शंकर-पार्वती के साथ सारा कैलास पर्वत इस रावण ने उठा लिया था। तो मात्र धनुष है। एक धक्का मारने पर टूट जायगा। रावण ऐसा अभिमानी और ऐसा मूर्ख है कि अपने आप अपनी प्रशंसा करता है। आत्म प्रशंसा मृत्यु है। आत्म प्रशंसा से शक्ति का, पुण्य का, आयुष्य का विनाश होता है।

रावण एक हाथ से धनुष उठाने लगा। माता पार्वती ने अपने तीन सौ शिवगणों को आज्ञा दी थी कि रावण की फजीहत करना। रावण का अभिमान बहुत बढ़ गया है। वह चाहे जैसा बोलता है। तीन सौ शिव-गण धनुष पर चढ़ गये। ये शिवगण किसी को दिखाई न देते थे। रावण जैसे ही एक हाथ से धनुष उठाने लगा, धनुष हिला तक नहीं। रावण ने दूसरा, तीसरा हाथ लगाया पर वह हिला तक नहीं। रावण के बीस हाथ थे। उसने उन्नीस हाथों से धनुष उठाया। अभिमानी था, चारों ओर देखने लगा। उसने सोचा कि लोग सब मूर्ख हैं मेरी जय-जयकार नहीं करते। वह ऐसा मूर्ख कि स्वयं अपनी जय-जयकार करने लगा। किसी ने साथ नहीं दिया। रावण ने सबको बहुत त्रास दिया था। सबको दुःखी करने वाले की जय कौन कहेगा? उसी समय शिवगणों ने जोर से धनुष दबाया। धनुष रावण की छाती पर पड़ा। रावण रुधिर उगलने लगा। रावण चीखने लगा—मर गया, मर गया, बचाओ कोई बचाओ। सब हँसने लगे। रावण की बदनामी से सब प्रसन्न हो गये। जनक राजा ने आज्ञा की—क्या देख रहे हो, ब्राह्मण का लड़का है, इसकी छाती पर से धनुष हटा लो। एक हजार वीर पुरुषों ने एकत्र होकर रावण की छाती पर पड़ा धनुष खींच लिया। रावण वहाँ से भाग निकला। रावण की इस स्थिति को देखकर वहाँ एकत्र राजाओं का हौसला टूट गया। वे सोचने लगे—रावण तो चलकर घर भी पहुँच जायगा, पर हम धनुष उठाने जायेंगे तो हम

चलकर क्या जायेंगे। चार व्यक्ति उठाकर श्मशान में ही हमें ले जायेंगे। यह हमारा काम नहीं है। सभा के सब लोग चुप बैठे रहे। सारी सभा स्तब्ध थी। उसी समय विश्वामित्रजी ने रामचन्द्रजी को आज्ञा दी–

उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा॥

राम! तुम उठो। गुरुदेव की आज्ञा हुई। रामजी ने उठकर गुरुदेव को वंदन किया। गुरुजी ने आशीर्वाद दिया। रामजी के चलने में मर्यादा, बोलने में मर्यादा, पुरुषोत्तम की प्रत्येक लीला में मर्यादा थी। रामजी धीरे-धीरे चल रहे थे। रामजी ने शिव धनुष को वंदन किया भगवान् शंकर का धनुष था। रामजी ने सुना। शिवजी को भी आश्चर्य हुआ– राम मेरे धनुष को भी वंदन करते हैं। वे तो परमात्मा हैं, मुझे कितना मान देते हैं। वंदन कर के रामजी ने जब धनुष उठाया तब बिजली की चमक के समान धनुष चमक उठा। सबकी आँखें चौंधिया गईं। प्रभु ने बाँये हाथ से इसे झुकाया........ कड़, कड़, कड़, कड़ शब्द हुआ। धनुष के दो टुकड़े हो गये।

यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम्।
आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये॥

(९-१०-६)

लोगों को आश्चर्य हुआ! धनुष भंग होने पर विश्वामित्रजी ने जनक राजा से कहा– जानकीजी को बुलाइए। वे पधारकर मेरे राम को विजयमाला पहिना दें। जनक राजा की आज्ञा हुई। श्रीजानकीजी पधारीं। वे साक्षात् महालक्ष्मी थीं। उनके अलौकिक शृंगार का वर्णन कौन कर सकता है? हाथों में विजयमाला थी। पाँच सखियाँ दायीं ओर थीं, पाँच सखियाँ बाँयी ओर थीं। सखियाँ मंगल-गीत गा रही थीं। श्रीजानकीजी धीरे-धीरे चल रही थीं। रामचन्द्रजी ने देखा कि राजकन्या विजयमाला पहिनाने आ रही हैं। रामजी सोच रहे थे कि गुरुजी ने धनुष-भंग की आज्ञा दी। मैंने धनुष-भंग किया पर अपने माता-पिता की आज्ञा के बिना मुझे विवाह नहीं करना है। मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मैं माता-पिता के अधीन हूँ। सीताजी सुन्दर हैं, तो क्या हुआ? अपनी माता की आज्ञा के बिना मुझे विवाह नहीं करना है। रामजी सुधारवादी नहीं हैं। आजकल लोग माता-पिता को पूछते नहीं तक नहीं। परिणामत: दु:खी होते हैं।

श्रीसीताजी पधारीं। श्रीसीताजी जरा नाटे कद की थीं। उन्होंने हाथ ऊँचे किये। हाथ में काँच की चूड़ियाँ थीं। उसमें रामजी का प्रतिबिम्ब दीख पड़ा। सीताजी ने जरा सा घूँघट निकाला हुआ था। इससे वे प्रत्यक्ष रामजी के दर्शन नहीं कर पाती थीं। उन्होंने रामजी का प्रतिबिंब देखा। रामजी का प्रतिबिंब कितना सुन्दर था! करोड़ों सूर्य जैसे श्रीराम तेजोमय थे! करोड़ों कामदेवों से अधिक

सुन्दर श्रीराम थे! करोड़ों चन्द्रों से अधिक शीतल श्रीराम थे! रामजी के मुखारविंद का वर्णन कौन कर सकता है? अति सुन्दर श्रीरामजी के दर्शन से श्रीसीताजी की समाधि लग गई। विश्वामित्रजी ने देखा कि श्रीसीताजी ने हाथ ऊँचे बढ़ाये हैं पर मेरा राम अभी तक मस्तक क्यों नहीं झुकाता है? विश्वामित्रजी दौड़कर आये। उन्होंने राम के कान में कहा–राम! जब मैं अयोध्या आया था, तब कौशल्याजी से बातें हुई थीं। तुम्हारे माता-पिता बहुत प्रसन्न होंगे। कौशल्याजी की बहुत इच्छा है कि उनके राम का विवाह हो। गुरुजी! राम का विवाह हो, ऐसी माताजी की इच्छा है पर इसी कन्या से विवाह हो, ऐसी इच्छा है–श्रीरामजी ने पूछा। विश्वामित्र ने कहा– हाँ! बेटा! दशरथ राजा और कौशल्या माता ने श्रीसीताजी की बहुत-सी प्रशंसा सुनी है। उन दोनों की तीव्र इच्छा है कि श्रीसीताजी उनकी पुत्रवधू हों। राम! तुम्हारे माता-पिता बहुत प्रसन्न होंगे।

रामचन्द्रजी ने कहा–गुरुजी! हम दोनों भाई आपकी सेवा के लिए आये हैं। मुझे लगता है कि आपका, लक्ष्मण से, अधिक प्रेम मुझ पर है। आप मुझ अकेले का विवाह कर रहे हैं,लक्ष्मण का विवाह नहीं कर रहे हैं! रामजी का बन्धु-प्रेम कैसा है! इतनी सुन्दर राजकन्या विजयमाला पहिनाने आती है, तब रामजी को लक्ष्मण याद आते हैं।

विश्वामित्रजी ने रामजी को समझाया–राम! सीताजी की एक छोटी बहिन है, उसका नाम उर्मिला है। वह भी बहुत सुन्दर है। मैं जनक राजा से कहूँगा कि मेरे लक्ष्मण का विवाह भी यहीं कीजिये। विश्वामित्रजी की बात सुनकर रामजी ने सिर झुकाया। जैसे ही राम का सिर झुका, कि सखियों ने संकेत करके सीताजी को समझाया। श्रीसीताजी ने रामजी को विजयमाला अर्पण की–

सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससि हि सभीत देत जयमाला।।
गावहिं छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली।।

सुवर्ण-सिंहासन में श्रीरामचन्द्रजी के साथ सीताजी विराजमान हैं। जनकपुरी की प्रजा बहुत भाग्यशाली है। लोग श्रीसीता-रामजी के दर्शन करते हैं। वे बातें करते हैं– यह सीताजी हैं,ये जनक राजा की पुत्री नहीं है। ये तो धरती से बाहर आयीं हैं। ये महालक्ष्मी हैं।

जानकीजी सभी की माता हैं। जगत्-माता हैं। राम आदिनारायण परमात्मा हैं। हमने प्रत्यक्ष लक्ष्मीनारायण के दर्शन किये हैं।

परमात्मा के दर्शन में सभी तन्मय हुए हैं। दर्शन से किसी की तृप्ति नहीं हो रही है। बाल राम की आनन्द-कथा यहाँ परिपूर्ण होती है।

शुक्ल पक्ष, पंचमी तिथि, गुरुवार और गोधूलि के मुहूर्त में श्री सीतारामजी का विवाह हुआ। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न सभी के विवाह भी यहीं हुए। बहुत उत्साह से विवाह महोत्सव

मनाया गया–

जित्वानुरूप गुण शील वयोऽङ्गरूपां सीताभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम्।
मार्गे व्रजन् भृगुपतेर्व्यनयत् प्ररूढं दर्पं महीमकृत यस्त्रिराजवीजाम्॥

(९-१०-७)

सब ने आनन्द से अयोध्या की ओर प्रयाण किया। रास्ते में रामजी ने भगवान् परशुराम का तेज हर लिया। सुख रूप होकर सभी अयोध्या में प्रविष्ट हुए। दशरथ राजा के सुख का अन्त नहीं है। उनके चार वीर, सुशील, राजपुत्र हैं। श्रीसीताजी-सी पुत्रवधू हैं। पृथ्वी का राज्य हाथ में है। दशरथ महाराज ने कहा कि मैं अति सुख में हूँ। अति सुख अच्छा नहीं है। जीवन में एकाध दुःख तो होना ही चाहिए। दुःख से ही बुद्धि आती है। अति सुख में जीव भान भूलता है। अति मान प्राप्त हो तो भी अच्छा नहीं है। जिसे बहुत मान मिलता है, उसका पतन होता है। अति मान, अति धन, अति सुख पाना अच्छा नहीं है।

सन्त ऐसा वर्णन करते हैं कि दशरथ महाराज के सुख को काल की नजर लग गई। काल से उनका सुख सहन न हुआ। अयोध्या काण्ड में दशरथ महाराज के दुःख का वर्णन हुआ। मंथरा के कुसंग से कैकेयी की बुद्धि भ्रष्ट हुई। आपके जीवन में सुख-दुःख का, मान-अपमान का कैसा भी प्रसंग आये पर सत्कर्म न छोड़िये, सत्संग न छोड़िये। चाहे कुछ भी हो प्रेम से परमात्मा की सेवा कीजिये, पूजा कीजिये। अच्छे लोगों का संग रखिये। अच्छा वह है, जिसे पाप का डर है, जो परमात्मा से प्रेम करता है तथा जिसका जीवन भक्तिमय है। कैकेयी ने कुसंग किया, इससे उसका जीवन बिगड़ा। कैकेयी की रामजी के प्रति बहुत प्रीति थी, पर मंथरा का कुसंग हुआ, इससे बुद्धि बिगड़ी। सत्संग से तुरन्त लाभ नहीं होता, पर कुसंग से तुरन्त नुकसान होता है, तुरन्त जीवन बिगड़ता है।

मंथरा के कुसंग में पड़कर कैकेयी ने दशरथ महाराज से दो वरदान माँगे–भरत को राजसिंहासन और राम को वनवास। श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी वनवास पधारे–

यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः।
राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसङ्गः॥

(९-१०-८)

अयोध्या की प्रजा बहुत दुःखी हुई। वन में जाते हुए रामजी के पीछे लोग दौड़े। रामजी ने सबको समझाया पर कोई मानता न था। लोगों ने कहा–जहाँ राम वहाँ अयोध्या। हम रामजी के साथ चौदह वर्ष वन में रहेंगे।

प्रभु ने लीला की। तमसा नदी के तट पर रात्रि में जब सब सो रहे थे, तब योगमाया का आवरण आ गया। सब गहरी नींद में थे। तब सबको भुलावा देकर श्रीरामजी लक्ष्मण-जानकी के साथ गंगा पार कर गये।

घनघोर जंगल में श्रीराम, सीता और लक्ष्मण नंगे पाँवों आगे-आगे चलते थे। आगे रामजी, बीच में सीताजी तथा पीछे लक्ष्मणजी चल रहे थे। छोटी-सी पगडंडी थी। दोनों ओर कंटीली झाड़ियाँ थीं। लक्ष्मणजी पीछे चलते तब उनके लिये पैर रखने की जगह न रहती थी। एक ओर सीताजी के चरण चिह्न दीख पड़ते, तो दूसरी ओर श्रीराम के चरण चिह्न थे। लक्ष्मणजी कहाँ पैर रखें? श्रीराम-सीताजी के चरण-चिह्न जहाँ दीखते, वहीं लक्ष्मणजी मन से वंदन करते हैं—श्रीराम सीताजी के चरण-चिह्नों पर मेरा पैर न पड़ जाय! चलने में भी मर्यादा है। लक्ष्मणजी कंटीली झाड़ियों में चल रहे हैं। राम ने देखा और कहा—लक्ष्मण! तुम सबसे आगे चलो, पीछे-पीछे तुम्हारी भाभी चलेगी। आप दोनों की रक्षा करते हुए मैं सबसे पीछे चलूँगा। भगवान् की एक आदत है। वे भक्त के पीछे-पीछे चलते हैं। रामचन्द्रजी चित्रकूट में पधारे। वहाँ के ऋषियों को अतिशय आनन्द हुआ।

इस ओर दशरथ महाराज व्याकुल हुए हैं। अंतिम साँस तक रामजी का स्मरण करते रहे। सोचते थे कि मेरा राम बहुत सरल है। विनय का विवेक कैसा है इसको मुझे वंदन करके कहने लगा—पिताजी, धीरज रखिये! अहा! कैसा बोल रहा था! रामजी के एक-एक सद्गुण को याद करके दशरथ महाराज रोने लगे—श्रीराम, श्रीराम—कहते-कहते उन्होंने प्राण छोड़ दिये। भरतजी को ननीहाल से बुलाया गया भरतजी आये। श्राद्धादिक विधि की गयी। सबकी इच्छा थी कि भरतजी का राज्याभिषेक हो, पर भरतजी ने इन्कार कर दिया। कैकेयी का पुत्र कैकेयी से अनुपम है। भरतजी ने कह दिया—इस सूर्यवंश के सिंहासन पर बैठने की मेरी योग्यता नहीं है। इस सिंहासन पर तो श्रीराम और श्रीसीताजी विराजेंगे।

भरतजी के प्रेम की कथा का वर्णन कौन कर सकता है? भरतजी जब प्रेम से श्रीसीताराम, श्रीसीताराम बोलते तब चारों ओर से प्रेम प्रस्फुटित होता। भरतजी के दर्शन से भी प्रेम जाग उठता। भरतजी के दर्शन से पशु-पक्षी की समाधि लग जाती। चित्रकूट में राम-भरत का मिलन हुआ। चित्रकूट के पत्थर तक द्रवित हुए। भरतजी को प्रभु ने आज्ञा दी, चरण पादुकाएँ दीं। भरतजी इन्हें लेकर अयोध्या लौटे। अनेक ऋषियों को कृतार्थ करते श्रीरामचन्द्रजी गोदावरी के तट पर पंचवटी में पधारे।

लक्ष्मणजी को राम-सीता का सुन्दर बोध प्रभु ने दिया। लक्ष्मणजी ने शूर्पणखा के नाक-कान काटे। रामचन्द्रजी ने खरदूषण आदि असंख्य राक्षसों का संहार किया—

रक्षःस्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धेस्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून्।
जघ्ने चतुर्दशसहस्त्रमपारणीय कोदण्डपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम्॥

(९-१०-९)

रावण को मालूम हुआ। उसने कपट किया मारीच की अनिच्छा होने पर भी उसके द्वारा कंचनमृग का स्वरूप धारण करवाया। प्रभु ने लीला की। छाया सीताजी में मृग का मोह उत्पन्न हुआ। मृग के पीछे रामजी गये। उसी समय श्रीसीताजी की छाया को रावण हरण करके ले गया। श्रीसीताजी के तीन स्वरूप हैं–सत्वमय, राजसी और तामसी। श्रीसीताजी का अति शुद्ध सत्वमय स्वरूप रामजी के साथ ही रहता है। श्रीसीता रामजी का नित्य संयोग है। शक्ति और शक्तिमान एक ही है, साथ ही रहते हैं। सीताजी रामजी से अलग रह ही नहीं सकतीं। श्रीरामजी सीताजी को छोड़ ही नहीं सकते। लीला करनी थी, इससे श्रीसीताजी का राजसी स्वरूप अग्नि में समा गया और तामसी छाया-स्वरूप रावण ले गया–

सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण।
जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाऽऽश्रमतोऽपकृष्टो मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः॥
रक्षोऽधमेन वृकवद् विपिनेऽसमक्षं वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम्।
भ्राता बने कृपणवत् प्रियया वियुक्तः स्त्रीसंगिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार॥

(९-१०-१०/११)

श्रीराम-लक्ष्मण सीताजी को खोजने निकले हैं। शबरीजी के आश्रम में श्रीराम लक्ष्मण पधारे हैं। शबरीजी को प्रभु ने सद्गति दी। सुग्रीव के साथ मैत्री की। बाली को मारा। किष्किन्धा का राज्य सुग्रीव को दिया। वानर-सेना एकत्र की। चारों दिशाओं में वानर भेजे। दक्षिण दिशा में अंगद, नल, नील, जामवंत, हनुमानजी को जाने की आज्ञा दी। रामचन्द्रजी जान रहे थे कि उनका काम तो हनुमानजी करने वाले हैं। हनुमानजी को सीताजी को देने के लिये संदेश दिया। हनुमानजी ने वंदन करके कहा–लंका में तो अनेक देव-गंधर्व-कन्याएँ हैं, अप्सराएँ हैं, अनेक स्त्रियाँ हैं। श्रीसीताजी को पहिचान सकूँ ऐसा कोई लक्षण कहिये। श्रीरामचन्द्रजी ने कहा–श्रीसीताजी गौरवर्ण की हैं। उनके बाल बहुत सुन्दर हैं।

हनुमानजी ने कहा–महाराज मैं कभी इस शरीर का चिंतन नहीं करता हूँ। गौरवर्ण है, सुन्दर बाल हैं–यह सब मेरे ध्यान में नहीं रहता है। मैं ब्रह्मचारी हूँ। जो व्यक्ति मन का चिंतन करता है, उसका मन बिगड़ता है। शरीर सुन्दर है–इस कल्पना से ही काम उत्पन्न होता है। इस शरीर का चिंतन न कीजिए। मल-मूत्र से भरा यह शरीर ध्यान करने योग्य नहीं हैं। हनुमानजी ने कहा–मैं

ध्यान में रख सकूँ, ऐसा कोई लक्षण बतलाइए। तब रामचन्द्रजी ने कहा—मेरे वियोग में वह निरंतर मेरा ध्यान कर रही हैं। मेरे नाम के जप कर रही हैं। श्रीसीताजी जिस घर में होंगी, उस घर की दीवारों से भी श्रीराम-श्रीराम ऐसी ध्वनि निकलती होगी। श्रीसीताजी वन में हों, वृक्ष तले हों, तो वृक्षों में से रामनाम की ध्वनि निकलती होगी।

हनुमानजी ने यही लक्षण ध्यान में रखा। समुद्र लाँघकर हनुमानजी ने लंका में प्रवेश किया। श्रीसीताजी जिस वृक्ष के नीचे बैठी थीं, उस वृक्ष से 'श्रीराम-श्रीराम' ऐसी ध्वनि निकलती थी। ध्वनि प्रतिध्वनि उत्पन्न करती है। माताजी सारा दिन जप करती हैं। श्रीराम-वियोग में रामजी का ध्यान और रामनाम निरन्तर जप करते हुए वे तन्मय हुई हैं। हनुमानजी को सीतामाता के दर्शन हुए। हनुमानजी ने प्रभु का संदेश दिया। बाद में लंका जलाकर हनुमानजी वापस गये। तब रास्ते में ब्रह्माजी मिले। ब्रह्माजी ने हनुमानजी को एक पत्र लिखकर दिया। ब्रह्माजी ने सोचा कि हनुमानजी ने लंका में बड़े-बड़े पराक्रम किये हैं, उसका वर्णन रामजी से कौन करेगा? हनुमानजी स्वयं तो नहीं कहेंगे। हनुमानजी तो इतना ही कहेंगे कि माताजी को वंदन करके, संदेश कहकर मैं वापस आया हूँ। इससे ब्रह्माजी ने हनुमानजी की अलौकिक शक्ति का, हनुमानजी की दिव्य बुद्धि का वर्णन पत्र में किया। कई काम हनुमानजी ने बुद्धि से किये, कई काम शक्ति से किये। रामजी ने पत्र पढ़ा। रामजी को आनन्द हुआ। हनुमानजी को उन्होंने आलिंगन दिया। वानर-सेना एकत्र की गयी। प्रभु ने भाषण दिया। तब हनुमानजी ने मंगलाचरण किया।

जय जय राजा राम की, जय लक्ष्मण बलवान।
जय कपीश सुग्रीव की, कहत चले हनुमान।।

हनुमानजी ने जो गर्जना की, उसे राक्षसों ने सुना। वे सभी घबरा गये। वे सोचने लगे—वह बन्दर, जो एक बार लंका जलाकर वापस गया था, पुनः आ गया है। आगे चलकर रामनाम से पत्थर भी तैर गये। सेतुबंध रचाया गया,रामेश्वर की स्थापना की गई। वानर-सेना के साथ श्रीरामजी ने समुद्र पारकर, लंका में प्रवेश किया। भयंकर युद्ध हुआ। रामजी के दर्शन करते हुए, राक्षस मरे। प्रभु ने सभी को सद्बुद्धि दी। रावण का प्रभु ने उद्धार किया। राम-लक्ष्मण जानकी, वानर सेना के साथ पुष्पक-विमान में बैठकर श्रीअयोध्या पधारे। अयोध्यापुरी सजायी गयी। सब दर्शन के लिये, मिलने के लिये आतुर थे। श्रीराम एक ही समय में अपने अनेक स्वरूप प्रकट करके सब से एक ही समय मिले। सभी को उन्होंने आनन्द दिया। श्रीसीता-रामजी को सुवर्ण की चौकी पर बैठाकर, ब्राह्मणों ने वेदमंत्र के पाठन से, चारों समुद्र के जल से तथा अनेक तीर्थजल से तीर्थाभिषेक किया। शृंगार किया गया। गुरुजनों ने आशीर्वाद दिये। श्रीसीताजी के साथ श्रीरामजी सुवर्ण-सिंहासन पर विराजमान हुए।

श्रीसीता-रामजी सुवर्ण-सिंहासन में विराजमान हैं। अयोध्या की भाग्यशाली प्रजा श्रीसीता-रामजी के दर्शन करके तृप्त ही नहीं हो रही है। राम-राज्य में प्रजा बहुत सुखी हुई। रामराज्य में कोई दरिद्र नहीं था, कोई भिखारी न था। किसी के घर झगड़ा न था। रामराज्य में कोई स्त्री विधवा न थीं। कोई मूर्ख न था। सब ज्ञानी थे। सबके घर सत्संग था। रामराज्म में माता-पिता के रहते हुए किसी बालक की मृत्यु नहीं होती थी। रामराज्य में सभी ब्राह्मण अग्निहोत्री थे। रामराज्य में सभी एकादशी का व्रत करते थे। रामराज्य में कारागृह खाली ही रहते थे। न कोई चोरी करता था, न कैद में जाता था। कोई भी अन्याय का, अधर्म का धन नहीं लेता था। रामराज्य में सभी सुखी हुए–

नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः।
मृत्युश्चानिच्छतां नासीद् रामे राजन्यधोक्षजे।।

(९/१०/५४)

रामराज्य में किसी को आधि-व्याधि न थीं। शरीर के रोग को व्याधि कहते हैं। मन के रोग को आधि कहते हैं। राम-राज्य में वैद्य का व्यवसाय नहीं चलता था। वे सब बेकार बैठे रहते थे। हाँ! अब उनका धंधा बहुत चल रहा है। उनकी उन्नति हो रही है! रामराज्य में किसी को रोग नहीं होते थे। मानव, धर्म की मर्यादा का पालन करता रहे, संयम-सदाचार से भक्तिमय जीवन व्यतीत करे तो रोग नहीं होते। रोग, पाप का फल है। मानव, जब धर्म छोड़ता है, संयम-सदाचार छोड़ता है, तब शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं।

रामायण का एक-एक अक्षर वक्ता-श्रोता के पाप को जलाने वाला है। श्रीरामजी के गुण अनंत हैं। श्रीरामजी की लीलाएँ अनंत हैं। अनंत की कथा का अंत ही नहीं है।

नेदं यशो रघुपतेः सुरयाञ्चयाऽऽत्त-लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः।
रक्षोवधोजलधिबन्धनमस्त्रपूगैः किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः।।
यस्यामलं नृपसदःसु यशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम्।
तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्ट-पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये।।

(९-११-२०/२१)

श्रीरामचन्द्रजी की दो संतानें –लव और कुश हुईं। कुश का वंश बढ़ा। इस वंश में निष, मरु, सुदर्शन, नाभ इत्यादि अनेक राजा हुए। इस सूर्य वंश में अन्तिम राजा हुआ, सुमित्र।

इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति।
यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ।। (९-१२-१६)

भागवत में लिखा है कि सुमित्र राजा तक ही यह वंश रहेगा। बाद में इस वंश का विनाश होगा। सूर्यवंश प्रकरण परिपूर्ण हुआ। अब यहाँ चन्द्रवंश की कथा का प्रारंभ है। जिस चन्द्रवंश में भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट होने वाले हैं, उसी चन्द्रवंश की यह कथा है।

आदिनारायण परमात्मा की नाभि में से कमल उत्पन्न हुआ। कमल में से ब्रह्माजी प्रकट हुए। ब्रह्माजी के पुत्र अत्रि हुए। अत्रि ऋषि का पुत्र चन्द्र हुआ, चन्द्र का पुत्र बुध। बुध का पुत्र पुरुरवा। पुरुरवा का विवाह उर्वशी के साथ हुआ। इस वंश में आयु, श्रुतायु, विजय, जय, रय–ऐसे अनेक बालक हुए। विजय के वंश में भीम हुआ। भीम राजा के वंश में जह्नु, नाम का राजा हुआ। जह्नु के वंश में गाधि हुआ। गाधि राजा की कन्या सत्यवती का विवाह क्रचीक ऋषि के साथ हुआ। उनके घर यमदग्नि हुए। यमदग्नि के घर परशुराम भगवान् प्रकट हुए।

परशुरामजी ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय–विहीन कर दिया। उनकी थोड़ी कथा, इसमें प्रसंग वर्णित है। पुरुरवा के पुत्र आयु के वंश में नहुष राजा हुए। नहुष राजा के वंश में यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति और कृति नाम की छह संतानें हुईं। ययाति महाराज की दो रानियाँ थीं–देवयानी और शर्मिष्ठा। देवयानी के यदु और तुर्वसु नाम के बालक हुए। शर्मिष्ठा के प्रहभु, अनु और पुरु ऐसें तीन बालक हुए। भागवत में एक–एक के वंश का वर्णन है। पुरु सबसे छोटा था पर उसने माता–पिता की बहुत सेवा की। इससे पुरु को सिंहासन पर बैठाया गया। सुधु, ऋतेयु, सुमति, रैभ्य ऐसे अनेक राजा हुए। इस वंश में दुष्यन्त राजा हुए। दुष्यन्त का पुत्र भरत हुआ। भरत राजा के वंश में संकृति नाम का राजा हुआ। संकृति राजा के वंश में रंतिदेव हुआ। इस वंश में देवाति, शंतनु आदि हुए। शंतनु महाराज का विवाह गंगाजी के साथ हुआ। उनके पुत्र का नाम देवव्रत था। एक पुत्र अर्पण करके गंगाजी बैकुण्ठ में गयीं। शंतनु राजा की दूसरा विवाह क़रने की इच्छा हुई। मत्स्यराज की कन्या सत्यवती बहुत सुन्दर थी। उसकी उन्होंने माँग की। मत्स्यराज ने कहा–आप दूसरा विवाह करना चाहते हैं? घर में जो पुत्र है, उन्हें राज्य का एक पैसा भी नहीं देंगे, ऐसी प्रतिज्ञा कीजिए, तो अपनी कन्या आपको दूँ।

शंतनु राजा विचार में पड़ गये। घर में जो पुत्र था वह बहुत योग्य था। सोचने लगे कि उसे एक पैसा भी न दूँ, तो अन्याय होगा। विवाह रुक गया। देवव्रत को मालूम हुआ कि मेरे कारण पिताजी दुःखी हो रहे हैं। देवव्रत मत्स्यराज के घर गया और बोला–आपकी पुत्री मेरी सौतेली माता होगी। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि राज्य का एक पैसा भी न लूँगा और अपने सौतेले भाई की सेवा करूँगा।

मत्स्यराज ने कहा–आप राज्य के लिए लड़ाई न करें पर आपके पुत्र करें तो? देवव्रत ने कहा–मैं आज से संसार–सुख के त्याग की प्रतिज्ञा लेता हूँ। मैं आज से ब्रह्मचर्य–पालन का प्रण लेता हूँ।

देवव्रत ने पिता के लिए संसार-सुख और संपत्ति-सुख का त्याग किया। विधाता ने इन दो वस्तुओं में ऐसी माया रखी है कि प्रायः लोग इनमें फँसे रहते हैं। जीव अनेक बार काम सुख भोगता है पर फिर भी मन में उसके प्रति घृणा नहीं आती है। मन इसमें फँसा रहता है। धन में मन रहता है। मन से जो काम-त्याग करता है, मन से जो धन-त्याग करता है, देव उसका जय-जयकार करते हैं। जिनके मन में काम नहीं है, वे महान तपस्वी हैं। मन से काम का त्याग महान् तप है। देवों ने पुष्पवृष्टि की। देवव्रत का जय-जयकार किया। ऐसी भीष्म प्रतिज्ञा करने वाले को भीष्माचार्य का नाम दिया गया।

सत्यवती के साथ शान्तनु राजा का दूसरा विवाह हुआ। उनके दो पुत्र हुए। चित्रांगद और विचित्रवीर्य। इस वंश में धृतराष्ट्र, विदुर और पांडु हुए। पांडु के पाँच पांडव हुए। पांडवों में अर्जुन श्रेष्ठ हैं। अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु हुआ और हे राजन्! अभिमन्यु के पुत्र, तुम हो। परीक्षित राजा तक इस वंश की कथा सुनायी गयी है।

परीक्षित राजा ने कहा—महराज! हमारा वंश कितना आगे चलेगा? इसकी कथा कहिये। शुकदेवजी महाराज ने कथा कही। तब वह भविष्यकाल की थी, हमारे लिए आज वह कथा भूतकाल की है।

शुकदेवजी ने कहा—तुम्हारा पुत्र जनमेजय सर्पों के साथ वैर करेगा। जनमेजय राजा ने बड़ा सर्प सत्र किया है। जनमेजय राजा को ऐसा दुराग्रह था कि मेरे पिता को सर्पदंश हुआ, इससे मैं उस सर्पवंश का नाश करूँगा। जगत् में कोई सर्प न रहेगा। उसने मंत्रों के द्वारा सर्पों का आकर्षण करके उन्हें अग्नि में होम कर दिया। लाखों सर्प जलकर भस्म हो गये पर तक्षक नाग अग्नि में नहीं पड़ा। जनमेजय राजा ने ब्राह्मणों से कहा कि मेरे पिता को दंश देने वाले तक्षक को आप अग्नि में डालिए। ब्राह्मणों ने कहा कि तक्षक इन्द्र की शरण में है। जनमेजय ने कहा—महाराज! आपके पास ऐसा कोई मंत्र है कि जिससे इन्द्र के तक्षक को भी अग्नि में होम कर सकें? मंत्रों में दिव्य शक्ति रहती है। ब्राह्मण मंत्रों की शक्ति का दुरुपयोग करने लगे। वे इन्द्र के साथ तक्षक को भी होम ने को भी तैयार हो गये। उस समय आस्तिक नाम का ब्राह्मण राजा जनमेजय को समझाता है—आप यह क्या कर रहे हैं? आपके पिता को सद्गति प्राप्त हुई है। मरण का कुछ निमित्त होता है। आप इस तरह सर्पों से वैर करते हैं, यह उचित नहीं है। सर्पवंश का रक्षण कीजिए। आस्तिक की सलाह से सर्पसत्र रुक गया। आस्तिक ब्राह्मण ने सर्पवंश का रक्षण किया। इससे आस्तिक का नाम सुनते ही सर्प शांत हो जाते हैं, सर्प जब क्रोध में हो, तब आप 'आस्तिक-आस्तिक' बोलेंगे

तो उसका क्रोध शांत हो जायगा। परमात्मा की सृष्टि चमत्कारों से पूर्ण है। सर्प आँख से देखते हैं, आँख से ही सुनते हैं, सर्प के कान नहीं होते। इससे संस्कृत में सर्प को चक्षु श्रवण कहते हैं।

इस जनमेजय के वंश में शत्रुसेन, उग्रसेन, भीमसेन– ऐसे अनेक राजा होंगे।

क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ।
अथ मागधराजानो भवितारो वदामि ते॥ (९-२२-४५)

पांडवों के वंश में अंतिम राजा क्षेमक होगा। क्षेमक राजा तक ही यह वंश रहेगा। बाद में इस वंश का विनाश होगा।

नवम स्कंध की समाप्ति में पुरुरवा के बड़े पुत्र यदु के वंश का वर्णन है, जिस यदुवंश में भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट होने वाले हैं।

यत्रावतीर्णो भगवान् परमात्मा नराकृतिः।
यदोः सहस्रजित् क्रोष्टा नलो रिपुरिति श्रुताः॥ (९-२३-२०)

यदु राजा के वंश में सहस्रजित, क्रोष्टा, रिपु, सत्रजित, कृतवीर्य, कार्तवीर्य– ऐसे अनेक राजा हुए। कार्तवीर्य राजा गुरु दत्तात्रेय के अनन्य भक्त थे। श्रीदत्तात्रेय स्वामी की कृपा से उनहें सर्व तरह की सिद्धियाँ प्राप्त थीं। कार्तवीर्य राजा महान योगी थे। कार्तवीर्य राजा के वंश में जयध्वज इत्यादि राजा हुए। अंधक राजा के दो पुत्र देवक और उग्रसेन हुए। देवक राजा के वंश में सात कन्यायें हुई। शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, अहदेवा, कृतदेवा और देवकी। वसुदेव के साथ देवकी का विवाह हुआ। देवकी के भाई उग्रसेन के नौ बालक हुए, जिसमें कंस सबसे बड़ा था। इसके बाद सातों कन्याओं के वंश का वर्णन है।

समाप्ति में देवकीजी के वंश का वर्णन है। शुकदेवजी महाराज कहते हैं–देवकीजी के आठ सन्तानें हुईं, परन्तु छः सन्तानों को कंस ने मार डाला। सातवें बलरामजी हैं और आठवें मेरे इष्टदेव परमात्मा श्रीकृष्ण हैं। जब-जब धर्म का विनाश होता है, अधर्म बढ़ता है तब परमात्मा प्रकट होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण को सनातन धर्म अतिशय प्रिय है। धर्म की पराजय प्रभु को पसन्द नहीं है।

यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः।
तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः॥

(९-२४-५६)

धर्म की रक्षा के लिए परमात्मा अवतार धारण करते हैं। मेरे भगवान् का प्राकट्य मथुरा के कारागृह में हुआ है। वहाँ से वे गोकुल पधारे हैं। लगभग ग्यारह वर्षों तक उन्होंने गोकुल में लीलाएँ कीं। ब्रजवासियों को परमानन्द का दान दिया। कंसादिक राक्षसों का विनाश किया। मथुरानाथ हुए।

श्रीकृष्ण द्वारिकाधीश हुए। अनेक रानियों के साथ विवाह किया। गृहस्थ धर्म का आदर्श जगत् को भगवान् श्रीकृष्ण दिखाते हैं।

यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्ण-भ्राजत्कपोलसुभगं सविलासहासम्।
नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबन्त्यो नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च॥
जातो गतः पितृगृहाद् व्रजमेधितार्थो हत्वा रिपून् सुतशतानि कृतोरुदारः।
उत्पाद्य तुषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे आत्मानमात्मनिगमं प्रथयञ्जनेषु॥

(९-२४-६५,६६)

श्रीकृष्ण सोलह हजार रानियों के पति हैं, पर किसी जीव में आसक्त नहीं हैं। श्रीकृष्ण में वैराग्य परिपूर्ण है। घर के लोगों से शुद्ध भाव से प्रेम कीजिए। घर में कोई दुःखी न हो, इस बात का ध्यान रखिये परन्तु अत्यधिक ध्यान में रखिये कि आनंद किसी स्त्री के पास नहीं है, आनंद किसी पुरुष के पास भी नहीं है। आनंदमय तो परमात्मा हैं। कोई स्त्री या पुरुष मुझे आनंद देंगे– ऐसी आशा न रखिये। श्रीकृष्ण सभी रानियों को प्रसन्न रखते हैं पर भीतर से परिपूर्ण वैराग्यमय हैं। सोलह हजार रानियों को ऐसा लगता है कि मुझसे उनका विशेष प्रेम है। बाहर से घर के लोगों के प्रति प्रेम-भाव दिखाइए। भीतर से तो परमात्मा के प्रति ही प्रेम रखिये। पति-पत्नी प्रेम रखें पर आसक्त न बनें। यह शरीर मल-मूत्र से भरा है। शरीर प्रेम के योग्य नहीं है। प्रेम के योग्य तो परमात्मा ही हैं। शुकदेवजी महाराज राजर्षि को सावधान करते हैं। प्रभु ने गृहस्थ धर्म का आदर्श जगत् को दिखलाया है–

पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन् कुरूणामन्तः समुत्थकलिना युधि भूपचम्वः।
दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य प्रोच्योद्धवाय च परं समगात् स्वधाम॥

(९-२४-६७)

कौरव-पाण्डवों के युद्ध के निमित्त से प्रभु ने पृथ्वी का भार उतारा। पश्चात् अर्जुन और उद्धव को तत्त्व ज्ञान का उपदेश देकर भगवान् श्रीकृष्ण गोलोक-धाम में पधारे।

इति नवम् स्कंधः समाप्तः

हरि ॐ तत्सत्

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

दशम स्कन्धः

४८- श्रीकृष्ण कथा गंगा

परमात्मा श्रीकृष्ण रसमय हैं। अति मधुर रस ही परमात्मा श्रीकृष्ण का स्वरूप है। संसार नीरस है, परमात्मा रसमय हैं। कई लोग ऐसा मानते हैं कि बँगला कितना सुन्दर बनवाया है! क्या बँगला सुन्दर है? एक सौ चार डिग्री बुखार आने पर बँगला अच्छा लगता है क्या? बुखार आने पर बँगला फीका लगता है। साधारण मानव अज्ञान से ऐसा समझता कि संसार रसमय है, संसार सरस है। वस्तुतः संसार नहीं है, रसमय तो परमात्मा श्रीकृष्ण ही हैं। श्रीकृष्ण प्रेम-रस के स्वरूप हैं।

इस संसार में जितने रस हैं, उन सभी को भोगने के बाद मानव नीरस बनता है। आप जिस रस का उपभोग नहीं करते हैं वह ही आपको मीठा लगता है पर रस को भोगने के बाद उस रस में से मन विरक्त हो जाता है। संसार के सभी रस ऐसे ही हैं। उन्हें भोगने के बाद मन नीरस बनता है। यही प्रेम रस ऐसा मधुर है कि इस रस को भोगने के बाद जीव रसमय बनता है! संसार के सभी रसों में भोज्य और भोक्ता दो हैं, द्वैत हैं। प्रेम-रस ऐसा मधुर है कि इस रस का उपभोग करने वाला भोक्ता मिट जाता है और वह रस-रूप बन जाता है।

संसार के जितने रस हैं, उन सभी में मिठास कम है, कड़वाहट अधिक है। इस से संसार के रसों को भोगने के बाद उनसे अरुचि होती है। वे सभी रस तुच्छ लगते हैं। मन उनसे विरक्त हो जाता है। संसार के सभी रसों में कड़वाहट अधिक है।

इस जीव की किसी न किसी रस में रुचि होती है। कइयों को हास्य रस बहुत पसंद है। वे ऐसा समझते हैं कि महाराज कथा में बहुत हँसते हैं, और हँसाते हैं, इससे आनंद आता है। अरे, कथा हँसने के लिए है क्या? कथा मनोरंजन का साधन नहीं है। कथा सुनने के बाद थोड़ा सा दुःख होना चाहिए। मानव सोचे कि आज तक मेरा जीवन कैसा व्यर्थ गया। मैंने परमात्मा के लिए कुछ भी नहीं किया! कथा में हास्य रस तुच्छ माना गया है। जो व्यक्ति कथा में बहुत हँसता है, उसका मन खराब होता है। बहुत हँसना अच्छा नहीं है। शास्त्रों में लिखा है कि जो बहुत हँसता है वह

रोने की तैयारी में है। हास्यरस में मिठास कम है कड़वाहट अधिक है। कइयों को वीर रस अधिक भाता है। मार-धाड़ की कथा आती है, इससे उन्हें आनंद आता है। वीर रस में भी मिठास कम है, कड़वाहट अधिक है। कइयों को शृंगार रस प्रिय है। वे शृंगार रस में मिठास पाते हैं। प्रारंभ में उस में मिठास महसूस होती है, पर शरीर के दुर्बल होने पर उसमें मिठास नहीं लगती है। विवाह के बाद घर में सब कुछ अनुकूल हो तो पति-पत्नी को स्वर्ग सा सुख लगता है परन्तु दो-चार बालक हो ज़ाने के बाद शरीर दुर्बल होता है। शरीर के बिगड़ जाने के बाद लगता है कि वह स्वर्ग का सुख न था, वह तो शरीर का भोग था। मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी, माया ने मुझे फँसा कर रखा था। मुझे असली सुख नहीं मिला है!

संसार के रसों में बहुत कम मिठास है, कड़वाहट अधिक है। यह प्रेम रस ऐसा मधुर है। इस रस में अपूर्व मधुरता है, मिठास है! इसमें कड़वाहट नहीं है। कलियुग के लोगों ने प्रेम शब्द का बहुत अनर्थ किया है। वे उसे विकृत रूप दे रहे हैं। लोग मोह को प्रेम समझते हैं। मोह और प्रेम का आकार थोड़ा समान है, पर प्रकार में बहुत भिन्नता है। सुख भोगने की इच्छा को मोह कहते हैं। मोह भोग माँगता है, प्रेम भोग देता है। गुलाब के फूल को देखकर ऐसा मन हो कि इसे तोड़कर, इसकी सुगंध लूँ तो वह मोह है, पर गुलाब को देखकर ऐसी भावना हो कि इसे प्रभु के चरणों में अर्पण कर दूँ, तो वह प्रेम कहा जायगा। मोह में सुख भोगने की भावना है; प्रेम में त्याग है। शरीर बिगड़ जाय, रोगी हो जाय, तो मोह नहीं रहता है, पर शरीर के बिगड़ जाने पर भी प्रेम का विनाश नहीं होता है। मोह मर जाता है, प्रेम अविनाशी है। मोह में मिलन की बहुत उत्कण्ठा व जल्दी रहती है, प्रेम में धैर्य रहता है। मोह संयोग में पुष्ट होता है, प्रेम वियोग में भी पुष्ट होता है। मोह देह का धैर्य रहता है। मोह संयोग में पुष्ट होता है, प्रेम वियोग में भी पुष्ट होता है। मोह देह का धर्म है, प्रेम परमात्मा का दिव्य स्वरूप है।

श्रीकृष्ण प्रेमरस के स्वरूप है। कृष्ण-कथा जो बार-बार सुनते हैं, प्रेम से 'श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण' कीर्तन करते हुए जो तन्मय होते हैं, उनके मन को भगवान् धीरे-धीरे अपनी ओर खींच लेते हैं। श्रीकृष्ण की आकर्षण-शक्ति अलौकिक है। भगवान् मन का आकर्षण करके प्रेम-रस का दान करते हैं। इस रस का अनुभव करने वाला रसमय बनता है। भोग्य और भोक्ता-ऐसा द्वैत भाव नहीं रहता है। वह आत्मा के साथ एकरूप हो जाता है। अलौकिक प्रेम-रस की कथा का अब दशम स्कंध में प्रारम्भ होने वाला है।

दशम स्कंध की लीला अति मधुर है। शुकदेवजी महाराज ने सब कुछ छोड़ दिया है किन्तु वे कृष्ण कथा नहीं छोड़ते है। उन्हें लँगोट की भी जरूरत नहीं है। वे पूर्ण निर्विकार हैं, निर्वसन हैं।

यह पुरुष है—वह स्त्री है—ऐसा भेद उनके मन में नहीं है। उन्हें सारा जगत ब्रह्मरूप दीखता है। कई योगी, ज्ञानी पुरुष आँखें बन्द करके बैठते हैं, तो उन्हें ज्योति दीख पड़ती है, परमात्मा दीख पड़ते हैं; पर आँखें खोल दें तो उन्हें जगत दिखाई देता है। आँखें बन्द करने पर जिन्हें परमात्मा दिखाई देते हैं, पर आँखें खोलने पर जिन्हें जगत दिखाई पड़ता है, उनका ज्ञान कच्चा है। खुली आँखों से, प्राणायाम किये बिना, जिन्हें परमात्मा दीख पड़ते हैं, जगत नहीं दिखाई देता, उनका ज्ञान सच्चा है। शुकदेवजी महाराज को खुली आँखों से भी जगत नहीं दिखाई देता, परमात्मा दीख पड़ते है।

महापुरुषों ने समाधि के दो भेद माने हैं—जड़ और चेतन। दोनों समाधियों को उन्होंने नाम दिया है—जड़ समाधि और चेतन समाधि। जड़ समाधि में योगी मन को जबर्दस्ती, पकड़कर, ब्रह्मरंध्र में ले जाते हैं, और समाधि लगाते हैं। मन को जबर्दस्ती पकड़ना अच्छा नहीं है। महाभारत में पराशर महर्षि की कथा आती है। पराशर ऋषि ब्रह्मचिंतन कर रहे थे। वे मन को जबर्दस्ती पकड़कर बैठे थे। उन्होंने साठ हजार वर्षों तक समाधि लगाई थी। पर एक बार ऐसा हुआ कि साठ हजार वर्षों के बाद वे एक नाव में बैठे। एक साधारण कन्या नाव चला रही थी। उसे देखकर ऋषि के मन में, आँखों में पाप आया। आँखें खोलने पर, प्राणायाम छोड़ने पर, मन शांत रहना चाहिए। मन को जबर्दस्ती पकड़ने वाले को मन कभी गर्त में गिराता है। मन दगा दे देता है। मन को प्रेम से समझाकर प्रभु के मार्ग पर ले जाइए। आप सब गुरु हैं, मन आपका शिष्य है। अन्य को कभी समझाने के झंझट में न पड़िए। जब कभी हो सके, अपने मन को, शांति से समझाइए। आप मन को समझायेंगे तो मन सुधर सकेगा। आपका मन अन्य किसी को नहीं दीख पड़ता है। व्यवहार में लोग कहते हैं—मेरा मन बिगड़ा है। बिगड़ा जिसको दीख पड़ता है, वह आप हैं। आप तन नहीं, मन नहीं पर आप बिगड़े मन को सुधारने वाले चेतन आत्मा हैं। अपने मन को आप ही सुधार सकेंगे।

मन को बार-बार समझाइए कि संसार के विषयों में विष है। विष खाने वाला एक ही बार में मर जाता है, पर वासना तो ऐसा विष है जो अनेक बार मारती है। वासना भयंकर विष है। वह इस जन्म में मारती है और दूसरे जन्म में भी मारती है। ज्ञान और भक्ति को इतना बढ़ाइये कि वासना का विनाश हो जाय। वासना का विष अगर मन में रह जाता है तो वह दूसरा जन्म भी बिगाड़ता है। समझाने से मन धीरे-धीरे सुधरता है। कल्पना कीजिए कि एक समय का आपका मित्र आपका शत्रु हुआ और फिर वह आपका मित्र हुआ। एक दिन ऐसा मित्र आपके घर आ पहुँचा और कहने लगा कि ये पाँच लड्डू हैं। यह प्रसाद है, इसे तुम खाओ। वह प्रसाद देकर चला गया। आपको बहुत भूख लगी और आप लड्डू खाने के लिए तैयार हो गये। उसी समय आपका एक मित्र आया, और कहने लगा कि ये लड्डू तुम न खाना। मुझे आशंका है, कि शायद इनमें

विष हो! जब मालूम पड़ता है कि ये लड्डू विष हैं तब मन उनमें से हट जाता है। संसार के विषयों का हाल भी ऐसा ही है। विषयों में वासना का विष है। उसके द्वारा थोड़े समय तक सुखों का भास होता है, पर बाद में वे रुलाते हैं। मन को बार-बार समझाकर प्रभु के मार्ग पर ले जाइए। मन के ऊपर जबर्दस्ती न कीजिए। समाधि जड़ न होनी चाहिए, चेतन होनी चाहिए।

समाधि सहज होनी चाहिए। गोपियों की सहज समाधि है और इसीसे शुकदेवजी महाराज गोपियों की कथा कहते हैं। शुकदेवजी महाराज संन्यासी महात्माओं के आचार्य हैं, पर गोपियों की प्रशंसा कर रहे हैं। कई गोपियाँ तो विवाहित हैं। गोपियों का वस्त्र-संन्यास नहीं है, गोपियों का प्रेम-संन्यास है। कपड़े भगवे रँगवाकर संन्यास लेना ठीक है, पर सच्चा संन्यास तो यह है कि मन भक्ति के रंग से रँगा जाय। वस्त्र संन्यास से प्रेम-संन्यास श्रेष्ठ है। गोपियों ने घर नहीं छोड़ा है, पर गोपियों के मन में घर नहीं है।

गोपियों के मन में श्रीकृष्ण का स्वरूप स्थिर है। गोपियों की सहज समाधि है। गोपियाँ नाक नहीं पकड़ती हैं, वे प्राणायाम भी नहीं करती हैं। योगियों की सहज समाधि में इन्द्रियों के साथ झगड़ा है। श्रीकृष्ण-लीला में इन्द्रियों को, समाधि को सहज मार्ग पर ले जाना है।

गोपियों की अनायास समाधि लग जाती है। श्रीकृष्ण-कथा में ऐसी ही शक्ति है। वक्ता विवेक से, भगवान् का स्मरण करते हुए कथा करे, तो वक्ता को याद नहीं रहता कि इस गाँव का नाम क्या है? कौन से गाँव में मैं बैठा हूँ? मैं कौन हूँ? कहाँ हूँ? श्रोता शांति से कथा सुनते रहें तो वे भी जगत को भूल जाते हैं। कृष्ण-कथा में ऐसी शक्ति है कि यह कथा अनायास जगत को भुलवा देती है।

जगत् में रहकर, जगत् को भूलना है। सच्चा आनंद जगत् में नहीं है। जगत् भुलाया जाता है, तब आनंद प्रकट होता है। संसार सुख-दुःख से भरा हुआ है। जहाँ सुख है, वहाँ दुःख है। आनंद सुख-दुःख से परे है। आनंद जगत् में नहीं है, जगत् को भूल जाने में है। कृष्ण-लीला में ऐसी दिव्य शक्ति है कि इससे परमात्मा के दर्शन में तन्मयता आती है, दिव्य आनंद प्रकट होता है। इससे शुकदेवजी महाराज कृष्ण-कथा कर रहे है। शुकदेवजी को कोई स्वार्थ नहीं है। शुकदेवजी महाराज को कृष्ण कथा करने से क्या लाभ? जो आनंद उन्हें समाधि में मिलता है वही आनंद उन्हें कृष्ण-कथा द्वारा मिलता है। यह कथा इतनी मधुर है कि वह अनायास जगत् की विस्मृति करवाती है। कृष्ण-कथा योगियों को आनंद देती है और भोगी जीव को भी आनंद देती है। श्रीकृष्ण के समान कोई महान् योगी नहीं हुआ है। श्रीकृष्ण के समान भोगी भी नहीं हुआ है। योगी, भोगी होने का यत्न करता है तो उसका पतन होता है; और भोगी तो योगी हो ही नहीं सकता है। वह तो रोगी

हो जायगा। योग और भोग एक-दूसरे के विपरीत हैं पर श्रीकृष्ण में दोनों का समन्वय है। श्रीकृष्ण में ये दोनों परिपूर्ण दीख पड़ते हैं, इससे श्रीकृष्ण देव नहीं, परमात्मा हैं।

द्वारिका में श्रीकृष्ण हररोज छप्पन भोग आरोगते हैं। बेट द्वारिका में आप गये होंगे। वहाँ तो अनगिनत भोग लगते हैं। सत्यभामाजी भोग ले आती हैं, जांबवतीजी के घर से भोग आता है। राधाजी लाती हैं, लक्ष्मीजी लाती हैं। वैष्णव लाते हैं। जो कुछ जितना आता है, भगवान् हर रोज आरोगते है। इतना सब कुछ आरोगने पर भी प्रभु को अजीर्ण नहीं होता है।

छप्पन भोग का प्रसाद आप दो-तीन दिन लेंगे तो आपकी स्थिति क्या होगी? अंतिम यात्रा ही निकलेगी। श्रीकृष्ण महाभोगी हैं, श्रीकृष्ण महायोगी हैं। सोलह हजार रानियों के वे स्वामी हैं फिर भी उन्हें काम का स्पर्श नहीं होता है। इससे ही श्रीकृष्ण का नाम अच्युत है। श्रीकृष्ण महायोगी भी हैं। उन्हें वृद्धावस्था नहीं आती है। श्रीकृष्ण-लीला में योगियों को आनंद आता है, भोगियों को भी आनन्द आता है। श्रीकृष्ण-कथा ऐसी मधुर है कि गृहस्थ को भी इसमें आनंद आता है, संन्यासी को भी आनंद आता है। श्रीकृष्ण-कथा में बालक को भी आनंद आता है, स्त्रियों को आनंद आता है। वृद्धों को भी आनंद मिलता है। यह कथा ऐसी दिव्य है कि वह सभी को आनंद देती है। नास्तिक भी इस कथा को सुनकर आस्तिक हो जाता है। इस कथा के श्रवण से प्रभु के प्रति प्रेम हो जाता है। आप जितनी शांति से इस कथा को सुनेंगे, उतना अधिक आनंद पायेंगे। आपको कभी ऐसा महसूस होगा कि अभी मैं गोकुल में हूँ, वृन्दावन में हूँ। आप अनायास जगत् को भूल जायेंगे। जगत् को भूलने के लिए योगी नाक पकड़ते हैं, प्राणायाम करते हैं, आँखें बंद करके बैठते हैं, फिर भी जगत् को भूलना असंभव हो जाता है। श्रीकृष्ण-कथा से अनायास जगत् भुलाया जाता है। जगत् की विस्मृति होती है। अलौकिक आनंद प्रकट होता है। श्रीकृष्ण-लीला निरोध-लीला है। जगत् की विस्मृति के साथ परमात्मा के चरणों में तन्मयता होने को ही निरोध कहते है। श्रीकृष्ण लीला के श्रवण-चिंतन से आनंद प्रकट होता है। मानव को मरने से पहिले ही मुक्ति का आनंद मिलता है। सर्व को आनंद देनेवाली यह लीला है।

शुकदेवजी महाराज ने यह लीला-कथा भी उसी तरह की है। परीक्षित राजा श्रवण करते हुए जगत को भूल जाते हैं। देह का बोध उनके द्वारा भुलाया जाता है, फिर तक्षक नाग के काटने की बात ही कहाँ रहती है? तक्षक नाग डँसने आये तो भी क्या? तक्षक नाग आत्मा को नहीं डँसेगा, शरीर को डँसनेवाला है। परमात्मा में तन्मय होकर, देह-बोध भूलने पर ही, मृत्यु से पहिले मुक्ति मिलती है। बाद में, तक्षक नाग काट ले तो भी क्या? बंधन मन को है, मृत्यु तन को है। आत्मा को बंधन

नहीं है। आत्मा की मृत्यु भी नहीं है। राजा को मृत्यु से पहिले ही मुक्ति मिल जाय, ऐसी कथा शुकदेवजी कहते हैं। परीक्षित राजा को शुकदेवजी की कथा में बहुत आनंद आता है।

दशम स्कंध के प्रारंभ में राजा ने शुकदेवजी महाराज से प्रश्न पूछा है– आपने सूर्यवंश की, चन्द्रवंश की कथा सुनायी पर कृष्ण कथा में आपने बहुत संक्षेप किया। विस्तार से कृष्ण-कथा सुनने की मेरी इच्छा है।

शुकदेवजी ने राजा से कहा कि पाँच-छह दिन हो गये हैं। अभी तुमने कुछ खाया-पिया नहीं है। तुम जलपान कर लो, बाद में मैं कथा सुनाऊँगा। परीक्षित ने कहा–

नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते।
पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम्।। (१०-१-१३)

महाराज! इस कथा में ऐसा आनंद आ रहा है कि मुझे भूख नहीं लगती है, पानी पीने की इच्छा भी नहीं होती है। भागवत में ऐसा लिखा है कि भक्ति रस में, प्रेम रस में मन जब निमग्न हो जाता है। तब धीरे-धीरे भूख-प्यास कम हो जाती है। जिन्हें भक्ति का आनंद मिलता है, भीतर से जिन्हें भक्ति का रंग लगा है, उनकी भूख कम हो जाती है, उन्हें प्यास नहीं लगती है। श्रीकृष्ण-कथा में राजा का प्रेम देखकर शुकदेवजी महाराज बहुत प्रसन्न हुए–

एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम्।
प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः।।
(१०-१-१४)

राजन, धन्य है। बहुत शांति से, बहुत प्रेम से तुम यह कथा सुन रहे हो। श्रीकृष्ण भगवान् को प्रणाम करके शुकदेवजी कहते हैं कि रामजी की कथा बहुत सरल थी; राम-लीला का वर्णन मैंने किया पर, हे प्रभु, आपकी लीलाएँ बहुत विलक्षण है। अब आप मेरे हृदय में विराजमान होकर अपनी कथा कीजिए। मैं आपके दर्शन करूँगा, स्मरण करूँगा, आपके चरणों में वंदन करूँगा। दशम स्कंध की कथा में, मैं कथा कर रहा हूँ–यह बात शुकदेवजी महाराज भूल गये हैं। जिस वक्ता को यह याद रहता है कि मैं पंडित हूँ, शास्त्री हूँ, पढ़ा-लिखा हूँ। मैं लोगों को उपदेश कर रहा हूँ, उसकी कथा में प्रभु जल्दी से नहीं आते हैं। वक्ता श्रीकृष्ण-कथा में श्रीकृष्ण-दर्शन स्मरण में जब यह भूल जाता है कि मैं कथा कर रहा हूँ–तब उसके मुख के द्वारा प्रभु कथा करते हैं।

दशम स्कंध की कथा में शुकदेवजी के हृदय में श्रीकृष्ण का स्वरूप स्थिर हो गया है। शुकदेवजी की समाधि लग गयी है। दशम स्कंध की कथा करने वाले श्रीकृष्ण हैं। शुकदेवजी तो सुन रहे हैं। श्रीकृष्ण-कथा-गंगा प्रकट हुई। उस दिन से भागीरथी गंगा का माहात्म्य कम हुआ है।

भागीरथी गंगा में स्नान करना अच्छा है। तीर्थों में स्नान करने से पाप जलते हैं, पर मन शुद्ध नहीं होता है। कई लोग चारों धामों की यात्रा करके आते हैं, पर उनका स्वभाव जरा भी नहीं सुधरता है। उनका मन शुद्ध नहीं होता है। श्रीकृष्ण-कथा-गंगा में जो समुचित रूप से गोता लगाता है, उसके मन का मैल धीरे-धीरे धुल जाता है। कृष्ण-कथा-गंगा में जो स्नान करते हैं, उनका स्वभाव सुधरता है, उन्हें भक्ति का रंग लगता है। कृष्ण-कथा-गंगा सभी का कल्याण करने वाली है।

४९- प्रभु-प्राकट्य

शुकदेवजी कहते हैं कि अनेक देशों में दुष्ट राजा हुए जैसे-कंस, जरासंध, शल्य, शिशुपाल, दंतवक्र आदि प्रत्येक देश में पापी राजा उत्पन्न हुए हैं। ये पापी राजा लोगों को बहुत त्रस्त करते थे। कंस ऐसा दुष्ट था कि वह अपने पिता को भी मारता था। जो अपने पिता को मारता है, वह क्या न करेगा? प्रजा बहुत दुःखी रहती थी। अधिक आबादी से धरती को भार नहीं लगता, किन्तु अधिक पाप के कारण धरती को भार लगता है। पाप बहुत बढ़ गया। धरती माता अकुलाने लगीं। वे गायमाता का स्वरूप धारण करके ब्रह्मलोक में गयीं। ब्रह्मादिक देव धरती माता को लेकर क्षीर-समुद्र के तट पर पहुँचे-

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम्।
पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः॥ (१०-१-२०)

आदिनारायण परमात्मा की उन्होंने स्तुति की, प्रार्थना की। प्रार्थना में बहुत शक्ति होती है। जिसने भोजन किया है उसे पाँच-छह घण्टे भूख नहीं लगती है। जिसने प्रेम से प्रार्थना की है वह पाँच-छह घण्टे पाप नहीं कर सकता। कई लोग मंदिर में भक्ति करते हैं, पर मंदिर से बाहर आने के बाद पाप शुरू कर देते हैं। उचित रूप से भक्ति करने पर भक्ति का असर पाँच-छह घंटे तो रहता ही है। प्रार्थना प्रेम से कीजिए। प्रभु के दर्शन करते हुए प्रार्थना कीजिए। ऐसी निष्ठा रखकर प्रार्थना कीजिए कि प्रभु यहाँ विराजमान हैं और वे मेरी प्रार्थना सुन रहे हैं। प्रार्थना करते समय जगत् को छोड़ दीजिए। जिसे याद रहता है कि मैं पति हूँ, पत्नी हूँ, पिता हूँ, पुत्र हूँ, वह प्रार्थना मं तन्मय कैसे हो सकता है? जगत् का सम्बन्ध छोड़कर, प्रभु में तन्मय होकर प्रार्थना कीजिए।

सभी देव, ऋषि परमात्मा की प्रार्थना करते हैं, स्तुति करते हैं, पर प्रार्थना में सिर्फ ब्रह्माजी ही तन्मय हुए हैं। परमात्मा की दिव्य वाणी सिर्फ ब्रह्माजी ही सुन सके। प्रभु ने ब्रह्माजी से कहा- अब मैं तुरन्त प्रकट होने वाला हूँ। मेरा प्राकट्य मथुरा में कारागृह में होगा। वहाँ से मैं गोकुल जाऊँगा। ग्यारह वर्ष तक वहाँ लीला करूँगा। मेरी सेवा के लिए तुम सब मथुरा-गोकुल में अवतार

धारण करो। ब्रह्माजी ने देवों को समझाया–अब परमात्मा प्रकट होने वाले हैं। आप चिंता न कीजिए। परमात्मा का चिंतन कीजिए।

इस ओर मथुरा में वसुदेवजी का विवाह देवकीजी से हुआ। विवाह के बाद घर जाने के लिए वसुदेव-देवकी रथ में बैठे। कंस रथ का सारथी होकर बैठा। रथ निकलने की तैयारी में ही था कि देवों ने सोचा–वसुदेवजी महान् वैष्णव हैं। कंस वसुदेवजी के साथ वैर कर ले और उन्हें त्रस्त करे तो भगवान् जल्दी प्रकट होंगे। पापी के दुःखी होने पर परमात्मा को जल्दी दया नहीं आती है पर भगवान् के लाड़ले भक्तों को जब कोई अकारण त्रास देता है तो भगवान् सहन नहीं कर सकते। ऐसा सोचकर देवों ने आकाशवाणी से कहा–

अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध॥ (१०-१-३४)

मूर्ख, तुम्हें अक्ल नहीं है। जिस देवकी को तुम पहुँचाने जाते हो, उस देवकी की आठवीं सन्तान तुम्हारा काल है। कंस ने आकाशवाणी सुनी। कंस को क्रोध आ गया। इस देवकी को ही मार डालूँ तो उसे गर्भ कहाँ से रहेगा। चोटी पकड़कर देवकी को मारने के लिये कंस तैयार हो गया। तब वसुदेवजी कंस को समझाने लगे–यह आप क्या कर रहे हैं? अरे, जिसका जन्म हुआ है, उसे मरना तो पड़ता ही है। मरण का निवारण असंभव है। महापुरुष मरण सुधारने का यत्न करते हैं। वासना से मरण बिगड़ता है। वैर से मरण बिगड़ता है। अपने मन को बारंबार समझाकर वासना का विनाश कीजिए। किसी के साथ अनबन हो जाय तो उसके घर जाकर 'जय श्रीकृष्ण' कर आइये। वैर-भाव रखकर मरना नहीं चाहिए।

वसुदेवजी राजा कंस से कहते हैं–देवकी को मारने से तुम अमर नहीं हो जाओगे। उसे तुम न मारो। कंस राजा ने कहा–अपना ज्ञान अपने पास रखिये। मैं आपका शिष्य नहीं हूँ। कंस जब माना नहीं तब वसुदेवजी ने कंस से कहा–इस देवकी के द्वारा तो तुम्हारा मरण है न? कंस ने कहा–'न, देवकी द्वारा मरण नहीं है, पर उसके आठवें गर्भ से मरण है। वसुदेव ने कहा–मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि देवकीजी के जितने बालक होंगे, तुम्हें दूँगा। तुम देवकीजी को मारना नहीं। देवकीजी को तुम मारोगे तो तुम्हारी अपकीर्ति होगी। जिसकी जगत् में बहुत अपकीर्ति है, वह जीवित होने पर भी मृत है। जिसको अधिक क्रोध आता है, वह जीवित होने पर भी मृत है। जो स्वयं के लिए ही जीता है, वह जीवित होने पर भी मृत है।

कंस राजा ने सोचा। उसको यह विचार उचित लगा। उसने सोचा–बहिन को मारूँगा तो मेरी अपकीर्ति होगी, मैं तो बालकों को मारूँगा। इस तरह वसुदेवजी कंस को वचन देकर, कंस के त्रास से देवकीजी को बचाकर घर ले आये।

कई दिनों के बाद देवकीजी को गर्भ रहा। बालक का जन्म हुआ। बालक बहुत सुन्दर था। वसुदेवजी को स्मरण हुआ। सोचने लगे कि मैंने कंस राजा को वचन दिया है। वे भीतर गये। उन्होंने बालक को उठाया। देवकीजी रोने लगीं–मेरा भाई काल-सा है। मेरे बालक को मार डालेगा। वसुदेवजी ने कहा–मैंने वचन दिया है। मैं पाप करना नहीं चाहता। वसुदेवजी को पाप से बहुत डर लगता था। किसी मानव का डर न रखिये, पाप का डर रखिये। जो पाप का डर रखता है, पवित्र जीवन व्यतीत करता है, उसके घर परमात्मा पधारते हैं।

वसुदेवजी बालक को कंस के दरबार में ले गये। कंस के समक्ष बालक को उन्होंने रखा। बालक को देखकर कंस का हृदय आर्द्र हुआ। यह तो दो-तीन दिन का बालक दिखाई देता है। वसुदेव के घर बालक का जन्म हुआ, उससे मैं अनजान था। धन्य हैं वसुदेवजी कि मुझे दिये हुए वचन को सत्य करने के लिये बालक को लेकर आ गये हैं।

वसुदेवजी के सत्संग से कंस की बुद्धि सुधरी। मुझे पाप नहीं करना है। आकाशवाणी ने तो कहा है कि आठवाँ गर्भ ही मेरा काल है। यह तो प्रथम पुत्र है। इसे मारने से मुझे क्या मिलेगा? कंस राजा ने वसुदेवजी से कहा–इस बालक को आप घर ले जाइए। सात बालक घर में रखिये, इससे मुझे कोई हर्ज नहीं है। आठवाँ बालक मुझे दे दीजियेगा। वसुदेवजी प्रसन्न हुए। बालक को उठाकर घर पहुँचे। देवकीजी को आनंद हुआ। सात संतानें तो जी सकेंगी। इस ओर नारदजी को चिन्ता हुई। कंस मामा की बुद्धि सुधरेगी तो वह जल्दी नहीं मरेगा। अगर वह अधिक पाप करे तो ही अधिक जल्दी मरेगा। नारदजी जहाँ जाते हैं, कलह जगाते हैं। पर नारदजी के कलह में समाज कल्याण का भाव रहता है। नारायण-नारायण करते हुए नारदजी कंस राजा के घर पहुँचे। कंस राजा ने स्वागत किया। नारदजी से पूछा–महाराज! कहाँ से पधारे? नारदजी ने कहा–भाई! मैं तो स्वर्ग में गया था देवों की गोपनीय सभा थी। ये सब गोपनीय बातें तुम्हें कह दूँ, तो वह उचित नहीं हैं,पर तुम विशेष प्रिय हो, इससे मैं कहने आया हूँ। तुम्हारे प्रति मुझे बहुत प्रेम है। सब देव तुम्हारे पीछे पड़े हैं। तुम्हें मारने का प्रयत्न कर रहे हैं। तुम भोले हो। तुम्हें शत्रु पर भी दया आती है। शत्रु को साधारण न समझना चाहिए।

ऋण, शत्रु, पाप और रोग–चारों को साधारण न मानिये। साधारण ऋण अनर्थ करता है। साधारण रोग कभी बहुत त्रस्त करता है। कई लोग जब पाप करते हैं, तब मन में होता है कि यह अच्छा नहीं है पर बाद में मन को समझाते हैं अरे! ठीक तो है, व्यवहार में थोड़ा पाप करना ही पड़ता है। पड़ोस के लोग तो बहुत पाप करते हैं। उनसे मैं समझदार हूँ। इस प्रकार मानव पाप को साधारण समझता है। साधारण पाप भी बहुत अनर्थ करता है। शत्रु भी साधारण न समझना चाहिए। नारदजी ने कंस से कहा–शत्रु पर भी मुझे दया आती है। आकाशवाणी ने तुम्हें कहा कि आठवाँ

गर्भ तुम्हारा काल है। देवों की भाषा गूढ़ार्थ से पूर्ण होती है। ये पाँच उँगलियाँ हैं। अनामिका से गिनती करने से अँगूठा पाँचवा आता है और अँगूठे से गिनती करने पर अनामिका पाँचवीं आती है। आठवाँ पुत्र जो होने वाला है, उसे अगर हम प्रथम गिन लें तो आज का पुत्र प्रथम माना जायगा कि नहीं? अरे, कोई भी आठवाँ हो सकता है। यह तो गिनती करने वाले की इच्छा पर रहता है।

कंस राजा ने पूछा–तो क्या महाराज! प्रत्येक बालक को मार डालें? नारदजी बोलने में चतुर थे। कहने लगे–भाई! ऐसा मैं नहीं कह रहा हूँ मैं तो तुम्हें सावधान करने आया हूँ। शत्रु के प्रति दया रखना उचित नहीं है। वैसे तुम्हें जैसा उचित लगे वैसा करो। अब मेरा समय हो गया है। मुझे संध्या करने के लिए जाना है और इस प्रकार नारदजी 'नारायण-नारायण' कहते हुए चल पड़े।

कंस विचार में पड़ गया कि संत कभी ऐसा नहीं कहते कि बालक को तू मार दे, पर उनके कहने का यही भाव था बहुत स्नेह-भाव के कारण कहने आये थे। कंसराजा ने वसुदेव-देवकी को बुलाया। माता-पिता के समक्ष ही बालक की उसने हिंसा की। वसुदेव-देवकी को कैद में डाल दिया। उनकी संपत्ति का विनाश हुआ। बिना अपराध हाथ-पैरों में बेड़ियाँ डाली गयीं।

शाँति से थोड़ा सोचिये। भगवान् के जो माता-पिता हैं, उन्होंने कितना दुःख सहन किया है। वसुदेव-देवकी अति दुःख में भी मन को शाँत रखते थे। भगवान् की भक्ति करते थे। सुख में परमात्मा की कृपा समझने वाला साधारण वैष्णव है। दुःख में भी जो परमात्मा की अति कृपा समझता है, वह सच्चा वैष्णव है।

श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। आनन्द उसे मिलता है, जो सुख-दुःख से परे है। संसार सुख-दुःख से भरा हुआ है। संसार में जितना सुख है, उतना ही दुःख है। सुख-दुःख भाई हैं। वे साथ ही रहते हैं। संसार का किसी तरह का सुख पाँच मिनट से अधिक नहीं रहता है। आपको सुख मिल जाय तो मन को समझाइये कि यह सच्चा सुख नहीं है। यह झूठा सुख है। सुख को दुःख मानकर भक्ति कीजिये। सुख मिलने पर सोचिये कि प्रभु ने मुझे सच्चा सुख नहीं दिया है, अभी तक मेरा मन शुद्ध नहीं है। मेरे मन में अभी वासना-विकार भरे हुए हैं। सुख मिलने पर प्रसन्न न होना और आपके जीवन में कभी दुःख का प्रसंग आ जाय तो भी घबराना नहीं। दुःख को सुख मानना। दुःख आने पर मन को समझाना कि प्रभु ने मुझे यह सजा दी है। पुस्तकों के पढ़ने से मानव का शब्द-ज्ञान बढ़ता है, पर मानव की समझदारी नहीं बढ़ती है। समझदारी दुःख में आती है। दुःख में भीतर से ज्ञान स्फुटित होता है। दुःख में विश्वास हो जाता है कि संसार स्वार्थपूर्ण है। भगवान् के सिवाय मेरा कोई नहीं है। दुःख को सुख मानकर भक्ति कीजिए। हृदय को जलाइए नहीं। जो व्यक्ति दुःख को सुख समझ सकता है, वह भक्ति कर सकता है। जो सुख को दुःख स्वरूप मानता है, उसे

आनन्द मिलता है। सुख का विरोधमूलक शब्द दुःख है। लाभ का विलोम है हानि शब्द। मान का विरोधमूलक है अपमान पर आनन्द का विरोधमूलक कोई शब्द नहीं है। श्रीकृष्ण आनन्द स्वरूप हैं। आनन्द पाना हो तो सुख-दुःख से परे हो जाइए। सुख में और दुःख में मन को शाँत रखिये।

वसुदेव-देवकी कारागृह में अति दुःख में थे पर अतिशय दुःख में भी वे मन को शाँत रखते थे। दुःख को सुख मानते थे। पति-पत्नी ऐसा मानते थे कि प्रभु ने हमें कैद में रखकर अच्छा ही किया है। प्रभु की कृपा हुई। इस कारागृह में कोई प्रवृत्ति नहीं है। यहाँ निरन्तर भक्ति हो सकती है। घर में रहते तो समुचित भक्ति न हो पाती। वसुदवे-देवकीजी भगवान् का उपकार मानते थे। दुःख को सुख मानकर जो भक्ति करते हैं, उन्हें आनंद मिलता है। आनन्द ही श्रीकृष्ण हैं। छह संतानों की कंस ने हत्या की। देवकीजी को सातवाँ गर्भ रहा है। जिसमें बलदेवजी पधारे हैं। प्रभु ने-बलरामजी से कहा-बड़े भाई! आप आगे जाइये बाद में मैं आऊँगा। बलरामजी महाराज शब्दब्रह्म का स्वरूप हैं। योगमाया को परमात्मा ने आज्ञा की-मेरे दो काम करो। देवकीजी के पेट में जो सातवाँ गर्भ है, वहाँ से उठाकर नन्दबाबा के गोकुल में रोहिणीजी के पेट में रखकर आओ और दूसरा यह है कि यशोदाजी के घर कन्या के रूप में जन्म लो। मैं कारागृह में प्रकट होऊँगा। मेरे पिता वसुदेव मुझे गोकुल ले आयेंगे और तुम्हें लेकर मथुरा लौटेंगे। कंस तुम्हें मारने का यत्न करेगा पर उसके हाथ से तुम छिटक जाना। जगत् में तुम्हारी अनेक स्वरूप में पूजा होगी।

भगवान् जगत में आते हैं, तब भगवान् को भी माया की जरूरत पड़ती है। जीव माया का दास होकर जगत् में आता है। परमात्मा माया को दासी बनाकर आते हैं। व्यवहार में माया के बिना कोई कार्य नहीं होता है। संसार मायामय है। संसार के व्यवहार में माया का उपयोग कीजिए पर माया के गुलाम न बनिये। आप सब वैष्णव है, परमात्मा के प्यारे हैं। अपने स्वरूप को याद रखिये कि मैं भगवान् का अंश हूँ। मैं माया का दास नहीं हूँ, मैं श्रीकृष्ण का दास हूँ। जो माया के अधीन बनता है, माया उसे रुलाती है। जो विवेक से माया का उपयोग करते हैं, उन्हें माया भक्ति में भी आनंद देती है। माया प्रारम्भ में मनोहर लगती है, पर जीव के माया के अधीन होने पर माया राक्षसी हो जाती है। माया इसे मारती है। माया का उपयोग करते हुए अपने लक्ष्य को न भूलिये। मुझे भगवान् के चरणों में जाना है-जो इस लक्ष्य को भूलता है, वह चौरासी लाख योनियों के चक्कर में भटकता रहता है।

प्रभु की आज्ञा के अनुसार योगमाया ने देवकीजी के पेट में से सातवाँ गर्भ उठाकर रोहिणीजी के पेट में रख दिया-

गर्भसंकर्षणात् तं वै प्राहुः संकर्षणं भुवि।
रामेति लोकरमणाद् बलं बलवदुच्छ्रयात्।। (१०-२-१३)

रोहिणीजी ने बलभद्र को जन्म दिया। बलभद्रजी ने निश्चय किया कि जब श्रीकृष्ण प्रकट होंगे, श्रीकृष्ण के दर्शन होंगे, तब श्रीकृष्ण के स्वरूप को हृदय में उतारूँगा। भगवान् का स्वरूप हृदय में स्थिर करूँगा, बाद में जगत् को दृष्टि दूँगा। दृष्टि देते हुए, सोच लीजिए किसे दे रहा हूँ? किस भाव से दे रहा हूँ? दृष्टि चाहे जिसे न दीजिए। आप जिसे दृष्टि देंगे, मन भी उसे देना पड़ता है। जिसे दृष्टि देंगे वह दृष्टि के द्वारा भीतर आ जायेगा।

यशोदा माता को चिन्ता होने लगी–इस बालक को किसी की नजर लग गयी है क्या? आँख खोलता नहीं है! उन्होंने शाण्डिल्य मुनि की धर्म पत्नी पूर्णमासी को बुलाया। कहा कि आप बालक की नजर उतारिये। बालक आँख नहीं खोल रहा है? पूर्णमासी आयी हैं। वे बालक को देखकर कहने लगीं, कि बालक आँख बंद करके किसी का ध्यान कर रहा है। इसके हाथ-पैर के लक्षण बहुत सुन्दर दीख रहे हैं। इस बालक के चरण बहुत उत्तम है, शुभ हैं। मुझे ऐसा लगता है कि अब थोड़े ही दिनों में तुम्हारे घर पुत्र होगा। यशोदामाता ने हाथ जोड़े–आज तक बहुत प्रयत्न किये, पर सफलता न मिली। अब मेरी उम्र पचपन वर्ष की हुई। अब पुत्र क्या होगा मैंने तो मान लिया है कि जितने भी लड़के इस गाँव में हैं सब मेरे पुत्र से हैं। अब पुत्र हो, ऐसी मुझे आशा नहीं हैं।

पूर्णमासी समझा रही हैं–यह पुत्र बहुत उत्तम सकुन लेकर आया है। इसके चरणों के शुभ लक्षण से ही पता लगता है कि तुम्हारे घर पुत्र होना ही चाहिये। सारा गाँव नंद-यशोदा को आशीर्वाद देता है। छोटा-सा गोकुल गाँव है। नंदबाबा के प्रति सबका प्रेमभाव है। नंदबाबा सभी को चाहते हैं। वे विचारते रहते हैं कि मेरे गाँव में कोई भूखा न रहे, कोई नग्न न रहे, किसी के घर झगड़ा न हो। नंदबाबा सभी का बहुत ध्यान रखते हैं। जो सभी को आनंद देते हैं, वह हैं नंद। इससे सारा गाँव नंदबाबा को आशीर्वाद देता है–आपके घर पुत्र हो! जिसको सभी का आशीर्वाद मिलता है, उसके घर सर्वेश्वर पधारते हैं।

यशोदा शब्द का अर्थ है–जो सभी को यश देती है। किसी को अपयश न दीजिए। अगर कोई काम बिगड़ता है तो अपने पाप के कारण बिगड़ता है। कोई मानव हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ता है। जो कुछ बिगड़ता है वह मेरे पाप के कारण और जो कुछ सुधरता है आपके आशीर्वाद के कारण–ऐसा कहने वाले, दूसरे को यश देने वाले प्रभु को बहुत प्रिय लगते हैं। दूसरे को अपयश देनें वाला प्रभु को भाता नहीं है। अगर कोई कार्य अच्छा हो तो सभी को वंदन कीजिए और कहना

कि आपके आशीर्वाद से हुआ है। कोई कार्य बिगड़ जाये तो कहना कि–मेरा पाप है जो कार्य बिगड़ गया।

यशोदा माता बहुत भोली हैं। भोले व्यक्ति की गोद में ही भगवान् खेलते हैं। कपटी के घर वे नहीं जाते हैं। ये व्रजवासी बहुत सरल हैं। पाप करके धन कमाने की अक्ल इनमें नहीं है। वे रोटी–सब्जी में आनंद पाते हैं, संतोष मनाते हैं। जीवन बहुत सादा है। लाला को गोकुल भा गया है। वहाँ वे प्रकट हुए। मथुरा में भी सच्चा आनंद तो व्रजवासियों को ही प्रभु ने दिया है।

यशोदा मैया सभी को यश देती हैं, नंदबाबा सभी को आनंद देते हैं। उनके घर परमात्मा प्रकट होने वाले हैं। सारा गोकुल गाँव नंद–यशोदा को आशीर्वाद देता है–आपके घर पुत्र हो! व्रजवासियों के कुलगुरु हैं शाडिल्य ऋषि। शाडिल्य ऋषि से व्रजवासियों ने कहा–नंद बाबा के घर पुत्र हो, ऐसा आप कुछ कीजिए। शाण्डिल्य ऋषि ने कहा–आप सब मुझे आज कहते हैं, परन्तु मैं तो बारह वर्षों से उनके लिये संतान–गोपाल का नित्य जप करता हूँ। मैं इसका पुण्य नंदबाबा को देता हूँ। नंदबाबा के जन्माक्षर में पुत्र–योग तो है ही, पर मंगल के कारण रुकावट है। व्रजवासियों ने कहा–महाराज आप हमें आज्ञा दीजिए, हम भी कुछ करेंगे। शाण्डिल्य ऋषि ने कहा–सारा गोकुल एकादशी का निर्जल व्रत करे और इसका पुण्य नंदबाबा को दे तो जल्दी बालक हो, ऐसे योग हैं। भाद्रपद शुक्ल छठी के दिन दाऊजी महाराज प्रकट हुए। भाद्रपद शुक्ल एकादशी का व्रत सारा गोकुल कर रहा है। बालक भी निर्जल व्रत करने लगे। नंदबाबा को यह उचित नहीं लगता है। नंदबाबा पूछते हैं–बेटा! तुम आठ वर्ष के हो, तुम्हें फलाहार नहीं करना है? बालक उत्तर देता है–बाबा, आपके घर पुत्र हो, इसलिये मैं व्रत कर रहा हूँ। छोटे बालक कभी जब बोलते हैं, तब वह सत्य हो जाता है। ये व्रजवासी बहुत भोले हैं। गायों की सेवा करते हैं। घर आये गरीब की सेवा करते हैं। एकादशी का व्रत करते हैं। 'नारायण–नारायण'......कीर्तन करते हुए भगवान् को मनाते हैं कि नंदबाबा के घर पुत्र हो। तेंतीस एकादशी के बाद श्रीकृष्ण प्रकट हुए हैं। सभी को ऐसा लगता है कि हमने व्रत किया, इससे पुत्र हुआ है। कन्हैया हमारा है।

बालकृष्ण लाल प्रकट हुए, तब सारा गोकुल गाँव आनंद से नाच उठा है। विधवा, सधवा, गरीब, श्रीमंत, बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष–सब श्रीबालकृष्ण लाल को देखकर नाचने लगे हैं। सभी के हृदय में प्रेम जागा है। सभी को ऐसा लगता है कि कन्हैया मेरा ही पुत्र है। यशोदाजी सभी को वंदन करती हैं और कहती हैं कि आपके आशीर्वाद से ही पुत्र हुआ है। मैं तो नाम के लिये ही माता हूँ।

देवकीजी को आँठवाँ गर्भ रहा तब यशोदा माता भी सगर्भा हुईं। देवकीजी के मुख पर तेज है। कंस को विश्वास हो गया– मेरा काल इसके पेट में आ गया है। उसने सेवकों से कहा– अब मेरा काल आने वाला है, आप सब सावधान रहियेगा।

वसुदेव-देवकीजी परमात्मा के ध्यान में तन्मय हुए हैं। आजतक देवकीजी को कंस का डर लग रहा था। अब जब परमात्मा हृदय में आये हैं, तब देवकीजी निर्भय हो गयी हैं। वे ध्यान कर रही हैं। माता देवकी के गर्भ में विराजमान परमात्मा की स्तुतिं देव-गन्धर्व करते हैं–

सत्त्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्त्ये।
सत्त्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥
स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन् भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदः।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान्॥
येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥

(१०-२-२६/३१/३२)

आप परम सत्य-स्वरूप हैं। हमें दिया हुआ वरदान सत्य करने के लिये अब आप जल्दी ही प्रकट होने वाले हैं। आपके चरणों का स्पर्श अब धरती को होगा।

बड़े-बड़े ज्ञानी पुरुष आपके सेवा-स्मरण से इस संसार सागर को तैर जाते हैं। जो ज्ञान का अभिमान रखते हैं, जो श्रीकृष्ण के सेवा-स्मरण को गौण मानते हैं, ऐसे ज्ञानी पुरुषों का पतन हमने अपनी आँखों से देखा है। ज्ञान बढ़ने पर कई व्यक्ति भक्ति को गौण मानते हैं। वे भूल करते हैं। ज्ञान भक्ति से परिपूर्ण होता है। भक्ति-रहित ज्ञान नीरस है। ज्ञानी होना बहुत कठिन नहीं है। प्रभु प्रेमी होना कठिन है। कइयों में ज्ञान होता है पर प्रभु के साथ वे प्रेम नहीं करते हैं। ऐसा ज्ञान किस काम का? कई ज्ञानी ऐसे होते हैं कि जब कोई उनकी निंदा करता है तो उन्हें बहुत दुःख होता है। मान-अपमान, स्तुति-निंदा जिन्हें दुःख देते हैं, उनका ज्ञान कच्चा है। उनका जगत् के प्रति प्रेम है। वे परमात्मा से प्रेम नहीं करते हैं।

यह जीव जगत् के साथ बहुत प्रेम करता है। इससे भगवान् माया के पर्दे में रहते हैं। जहाँ कम प्रेम है वहाँ जीव भी अपना स्वरूप छिपाता है। अतिशय प्रेम है वहाँ जीव अपना स्वरूप प्रकट करता है। यह जीव जब परमात्मा के प्रति अतिशय प्रेम करता है, तब माया का पर्दा फाड़ कर परमात्मा प्रकट होते हैं। ज्ञानी को प्रभु-प्रेमी होना ही चाहिये।

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मंगलानि ते।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते।।

(१०-२-३७)

परमात्मा के साथ अतिशय प्रेम करने पर जन्म-मरण का आवागमन टलता है। देव परमात्मा की स्तुति करते हैं। उन्होंने देवकीजी को आश्वासन दिया है—माता, अब चिंता न करना। अब परमात्मा प्रकट होने वाले हैं। परमात्मा के प्राकट्य का समय हुआ है। अन्तःकरण अतिशय शुद्ध हो तो भगवान् का अवतार भीतर भी होता है। आज श्रीकृष्ण भीतर नहीं बाहर प्रकट होने वाले हैं। इसके बाद आठ श्लोकों में अष्टधा प्रकृति की शुद्धि दिखलायी है—

अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः।
यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम्।। (१०-३-१)

काल सर्व का भक्षण करता है, इससे लोग काल को क्रूर मानते हैं। आज काल कोमल हुआ है। श्रीकृष्ण काल के मालिक हैं। पर आज वे काल की मर्यादा में आते हैं। काल प्रसन्न हुआ। मेरे मालिक मुझे कितना मान देते हैं! वे मेरे स्वामी हैं, पर आज से वे मेरी मर्यादा में रहेंगे। परम पवित्र समय हुआ है। दसों दिशाएँ प्रसन्न हुई हैं। एक-एक दिशा के एक-एक स्वामी देव हैं और इनको कंस राजा ने कैद में डाल रखा है। दसों दिशाएँ प्रसन्न हैं कि बालकृष्णलाल अब प्रकट होंगे, और कंस को मारेंगे। तब हमारे पति घर आयेंगे।

शीतल मन्द, सुगंध हवा चलने लगी है। रामावतार में वायुदेव को सेवा का लाभ मिला है। वहाँ वायु पुत्र हनुमानजी ने सेवा की ही थी। श्रीकृष्णलीला में तो प्रत्यक्ष वायुदेव पधारने वाले हैं। वायु ने सोचा कि श्रीकृष्ण गायों को लेकर वृंदावन में पधारेंगे उन्हें गर्मी का जरा भी परिश्रम न होने दूँगा। वायुदेव को आनंद है। अब मेरा ब्रह्मस्पर्श होगा, अब मैं श्रीकृष्ण का स्पर्श करूँगा।

आज संतों को अति आनंद है। उनका मन अति प्रसन्न है। आज परमात्मा प्रकट होने वाले हैं। ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि मन ही संसार है। मन नहीं है तो संसार नहीं है। मन को मारिये। ज्ञान-मार्ग में मन के साथ झगड़ा करना पड़ता है, भक्ति मार्ग में झगड़ा नहीं है। मन को सुमन बनाकर प्रभु-मार्ग में ले जाना है। वैष्णवों को मन मारने की जरूरत नहीं है। उनका ऐसा निश्चय है कि मन को परमात्मा की लीला में ले जायेंगे, प्रभु-चरणों में ले जायेंगे।

आसमान के मेघ गर्जना करने लगे हैं। बहुत प्रसन्न हैं। उन्होंने सुना था कि परमात्मा समुद्र में विराजमान हैं। समुद्र में विराजमान नारायण के दर्शन करने की उनकी इच्छा है। उन्होंने समुद्र के पास जाकर कहा—आपके भीतर नारायण हैं, उनके दर्शन करवाइए। समुद्रदेव ने कहा—नारायण

के दर्शन सुलभ नहीं हैं, दुर्लभ हैं। मेरा नमकीन पानी ले जाओ, और मधुर बनाकर जगत् को दो। समाज की निःस्वार्थ भाव से सेवा करो। शुद्ध होकर आओ।

मेघ नमकीन पानी पी जाते हैं और मधुर बनाकर समाज को देते हैं। मेघ महान संत हैं। संत उसे कहते हैं, जो दुःख सहन करके दूसरों को सुख देते हैं। स्वयं सुख भोग ले और दूसरों को सुख दे, वे संत नहीं, सज्जन हैं। संत तो दूसरों के लिये दुःख सहन करते हैं।

आज लाला को मेघ का रंग बहुत भाया है। संतों का स्वरूप परमात्मा को बहुत प्रिय है। आज श्रीकृष्ण मेघ-श्याम प्रकट होने वाले हैं। श्रीअंग, मेघ-सा श्याम है। आज मेघ बहुत प्रसन्न हैं—सोचते हैं कि लाला के हम विशेष मित्र हैं। लाला का और हमारा रंग समान है।

अग्निहोत्री ब्राह्मणों के कुंड से अग्निदेव कूदकर बाहर आये हैं। रामावतार में प्रत्यक्ष सेवा नहीं हो सकी है। श्रीकृष्ण अग्नि पी जाने वाले हैं। इससे अग्नि को बहुत आनंद आ रहा है। आज धरती बहुत प्रसन्न है। बैंकुठ से परमात्मा आज पृथ्वी पर पधारने वाले हैं। बैंकुठ में श्रीदेवी मुख्य हैं, लक्ष्मीजी का प्राधान्य है, आज परमात्मा लक्ष्मीदेवी को छोड़कर भूदेवी से मिलने आने वाले हैं। धरती को आज बहुत आनंद है। रात्रि के समय कमल नहीं खिलते हैं, पर आज कमल-स्वामी परमात्मा प्रकट होने वाले हैं, इससे रात्रि में कमल खिल उठे हैं!

सारा जगत् प्रगाढ़ निद्रा में है। उस समय दो जीव जाग रहे हैं—वसुदेव और देवकी। सोने वाले को संसार मिलता है, जागने वाले को परमात्मा मिलते हैं। जो काम की मार खाता है, जो काम के आधीन है, वह सोया है, जिसने काम पर विजय पा ली है वह जाग्रत है। श्रीकृष्ण-दर्शन के लिये वसुदेव-देवकी के प्राण तड़फ रहे हैं। संपत्ति का नाश हुआ है। संतति का भी नाश हुआ है। बिना अपराध पैरों में बेड़ियाँ है, फिर भी मन को शांत रखकर दोनों भक्ति कर रहे हैं—प्रार्थना कर रहे हैं कि प्रभु एक बार दर्शन दीजिए, नाथ कृपा कीजिए। वैष्णव दर्शन के लिये जब अति आतुर उत्कंठित होते हैं, तब परमात्मा का अवतरण होता है।

मध्य रात्रि का समय हुआ है। परम पवित्र भादों मास कृष्ण पक्ष अष्टमी तिथि, रोहिणी नक्षत्र का सुयोग, मध्य रात्रि में देवकीजी के सम्मुख चतुर्भुज स्वरूप श्रीकृष्ण-कन्हैया प्रकट हुए—

तमद्भुतं बालकम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभि कौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्॥
महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्त्रकुन्तलम्।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत॥

(१०-३-९/१०)

चारों ओर प्रकाश प्रसारित हुआ है और उस प्रकाश से शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज नारायण के दर्शन हुए हैं। अंग मेघ-सा श्याम है। प्रभु ने पीताम्बर पहिना है। आँखें कमल-सी सुन्दर हैं। उनमें प्रेम परिपूर्ण है। वसुदेव-देवकी को चतुर्भुज नारायण के प्रत्यक्ष दर्शन पाकर अतिशय आनंद हुआ है। वसुदेव-देवकी परमात्मा की स्तुति करते हैं। देवकीजी ने कहा—मुझे कंस राजा से डर लगता है। प्रभु ने स्वरूप का बोध करवाया और कहा—इस स्वरूप को आँखों में उतारिये। बराबर ध्यान कीजिये। ग्यारह वर्ष के बाद मैं आऊँगा। अभी मुझे गोकुल में लीला करनी है। मुझे तुरंत गोकुल पहुँचा दीजिए।

वसुदेव-देवकी को प्रभु ने ध्यान करने की आज्ञा दी है। परमात्मा के माता-पिता को भी ध्यान करने की आवश्यकता है। इसके बाद चतुर्भुज स्वरूप को अंतर्ध्यान करके, दो हाथों वाला बाल-स्वरूप प्रकट किया है। देवकी माता ने उन्हें गोद में लिया है। माता देवकी, लाला को हृदय का प्रेम-रस अर्पित करती हैं। वसुदेव जल्दी करते हैं। टोकरी में एक गद्दी रखी है और उसमें बालकृष्ण को उन्होंने सुला दिया है। वसुदेवजी को शंका हुई कि ये सब दरवाजे बंद हैं। हाथ-पैरों में बेड़ियाँ हैं। मैं गोकुल कैसे जाऊँगा?

देवकीजी ने कहा—यह बालक कोई साधारण नहीं है, अद्भुत है। आप लाला को सिर पर रखिये। वसुदेवजी बालकृष्णलाल को सिर पर पधराते हैं कि तुरन्त हाथ-पैरों की हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ टूट गयीं। परमात्मा को घर में पधराइए, सिंहासन पर पधराइए, वह अच्छा ही है। बाहर दर्शन करके उसी स्वरूप के दर्शन भीतर कीजिए। भीतर जो परमात्मा के दर्शन करते हैं, उन्हें परमात्मा का वियोग नहीं होता है। बाहर दर्शन करने वालों को भगवान् का वियोग होता है।

लाला को सिर पर पधराने के साथ ही कारागृह के द्वार भी खुल गये हैं। परमात्मा को सिर पर धारण करने से भव के बंधन टूट जाते हैं और मोक्ष के द्वार खुल जाते हैं। वसुदेवजी बालकृष्ण को सिर पर पधराकर बाहर आते हैं। मध्य रात्रि का समय है। योगमाया का ऐसा आवरण है कि सभी को प्रगाढ़ निद्रा लग गयी है। कंस के सभी सेवक सोये हैं। गाढ़ निद्रा में हैं। झरझर-झरझर बरसात बरस रही है।

बलरामजी को पता चला। वे शेष-स्वरूप धारण कर दौड़ते आये हैं। फनों से छत्र बनाकर सिर पर धारणकर दिया है कि जिससे लाला को त्रास न हो। अभी तक यशोदा माता को दर्शन नहीं हुए हैं। किसी गोपी को भी दर्शन नहीं हुए हैं। प्रथम दर्शन श्रीयमुनाजी को हुआ है। वे प्रसन्न हैं कि मेरे प्राणनाथ प्रकट हुए हैं। यमुनाजी को अति आनंद है। प्राणनाथ के चरण-स्पर्श की इच्छा से यमुनाजी का जल बढ़ने लगा। वसुदेवजी के गले तक जल आ गया है। मध्यरात्रि का समय है।

अब वसुदेवजी घबरा गये यह सोचकर की लाला को त्रास होगा।

बालकृष्णलाल समझ गये कि यमुनाजी मिलना चाहती हैं। लाला ने टोकरी में से चरण बाहर निकाले। यमुनाजी ने प्रत्यक्ष चरण-स्पर्श किया और चरणों पर कमल की भेंट समर्पित की। बालकृष्ण की जय, परमात्मा का जय-जयकार सभी ने किया है। आसमान के देव-ऋषि देखते हैं। देव-ऋषि यमुनाजी के चरणों में बारंबार वंदन करते हैं। देव-ऋषि यमुनाजी का जय-जयकार करने लगे। अति आनंद में यमुनाजी स्तब्ध हुई हैं। धीरे-धीरे जल कम होने लगा। वसुदेवजी गोकुल आ पहुँचे हैं। नंदबाबा के राजमहल में उन्होंने प्रवेश किया है। योगमाया का आवरण ऐसा है कि सभी को प्रगाढ़ निद्रा आ गयी है। यशोदाजी भी निद्रा में हैं। योगमाया का जन्म हुआ है पर यशोदामाता को इतना मालूम हुआ कि कुछ अवतरित हुआ। लड़का या लड़की कुछ होश नहीं रहा है। वसुदेवजी भीतर पहुँचे हैं। बालकृष्णलाल को यशोदामाता की शय्या में उन्होंने पधराया है और योगमाया को टोकरी में रखा है। वसुदेवजी लाला को बार-बार प्रेम से निहारते हैं—अब ग्यारह वर्ष के बाद मुझे मिलेंगे। मेरे पाप कैसे हैं। परमात्मा अन्य को दे रहा हूँ और माया को ले जाता हूँ। पसंद हो या न हो, परमात्मा की आज्ञा-पालन में ही जीव का कल्याण है। योगमाया को टोकरी में रखकर वसुदेवजी दौड़ते हुए मथुरा पहुँचे हैं। जैसे ही कारागृह में प्रविष्ट हुए, द्वार बंद हो गये। योगमाया भीतर आती हैं, तब द्वार बंद हो जाते हैं। वसुदेवजी के हाथ-पैरों में बेड़ियाँ लग जाती है। ब्रह्म-संबंध टिकता नहीं है तो, माया के साथ संबंध होने पर पुनः बेड़ियाँ आती हैं। ब्रह्म-संबंध करना कठिन नहीं है, पर उसे सर्वकाल टिकाकर रखना कठिन है। योगमाया रोती है। कंस के सेवक जाग गये, दौड़कर जाकर कंस को उन्होंने खबर दी। वह क्रोध में दौड़कर आ पहुँचा है। देवकीजी घबरा गयीं। उन्होंने कहा—मेरी अनेक संतानों की तुमने हत्या की। यह तो कन्या है। अब संतति की आशा नहीं है। कन्या की हत्या न करना। तुम्हें कन्यादान का पुण्य मिलेगा। कंस न माना। उसने कन्या के पैर पकड़े हैं। उसने यह भी न देखा कि यह लड़की है या लड़का है? उसे लगा कि यह ही मेरा काल है। यह मेरा काल है! जैसे ही पत्थर के साथ उसे पटकने गया, योगमाया उसके हाथ से छिटक गयीं। कंस के सिर पर योगमाया ने लात लगा दी और आसमान में उड़ गयीं। अष्टभुजा भद्रकाली माता की जय।

भद्रकाली माता अंतरिक्ष में प्रकट हुई हैं। कंस से उन्होंने कहा—मूर्ख! तुम्हें अक्ल नहीं है। बालकों की हिंसा कर रहा है। तेरे काल का जन्म तो कब से हो गया है। कंस ने देखा कि यह तो कोई महान् देवी थी। मुझसे कहा कि मेरे काल का जन्म हो गया है। आकाशवाणी ने कहा था कि देवकी का आठवाँ गर्भ मेरा काल है। जमाना बदल गया, अब तो आकाशवाणी भी झूठ होती

है। कंस घबरा गया। उसने वसुदेव-देवकी को वंदन किया। मैंने तुम्हारे बालकों को नहीं, अपने ही बालकों को मारा है। मैं क्षमा माँग रहा हूँ। आकाशवाणी ने मुझे झूठ कहा था। आपके बालकों का आयुष्य कम होगा, इससे मेरी बुद्धि बिगड़ गई। आत्मा की कभी मृत्यु नहीं है। आप अब आत्म स्वरूप पर विचार कीजिए। वसुदेव-देवकी को कारागृह से मुक्त करके कंस अपने घर गया।

५०- नंद-महोत्सव

अब नंद-महोत्सव की कथा आती है। बहुत आनंद देने वाली यह कथा अति मधुर है। जन्माष्टमी के दिन रात्री में बारह बजे तक नंदबाबा ने जागरण किया। यशोदाजी के प्रसव का समय हुआ है। ब्रजवासी वहाँ आये हैं। सब अधीर भाव से प्रतीक्षा कर रहे हैं कि आनन्द की वार्ता कब आयेगी? नंदबाबा के कुलगुरु शाण्डिल्य ऋषि को परमात्मा की प्रेरणा हुई। उन्होंने नंदबाबा से कहा- अभी इस समय जागने की जरूरत नहीं है। बाबा, आप सो जाइए। आप जाग रहे हैं, इससे सभी जाग रहे हैं। सुबह आनंद की वार्ता सुनेंगे। नंदबाबा जैसे ही शय्या में पड़े कि योगमाया का आवरण हो गया। सभी को प्रगाढ़ निद्रा आ गयी। वसुदेवजी जब बालकृष्णलाल को गोकुल में ले आये, कन्हैया जब नंदबाबा के घर आये, तब नंदबाबा शय्या में सोये हुए थे। नंदबाबा को एक सुन्दर स्वप्न दीख पड़ा। नंदबाबा ने स्वप्न में देखा कि मैं गायों की पूजा कर रहा हूँ। मेरे घर बड़े-बड़े ऋषि महात्मा आये हैं। सब मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। यशोदा की गोद में अति सुन्दर बालक खेल रहा है। नंदजी निद्रा से जागे। शय्या में बैठकर सोचने लगे-रात्रि में बारह बजे तक मैं पुत्र का चिन्तन कर रहा था, इससे स्वप्न में मुझे बालक दिखाई दिया। स्वप्न में मैंने जैसा बालक यशोदाजी की गोद में देखा, वैसा जगत् में कहीं नहीं होगा। नंदबाबा के घर में नारायण की पूजा थी। नंदबाबा सोचते हैं कि मेरे नारायण से भी वह बालक सुन्दर था! नारायण से अधिक सुन्दर कौन हो सकता है? आज का स्वप्न सरस है। मैंने स्वप्न में गाय की सेवा-पूजा की है। गायों का दान दिया है। जागने के बाद नंद गौशाला में गये। घर में अनेक दास-दासियाँ हैं, पर नंदबाबा गायों की सेवा स्वयं कर रहे हैं। गायों की सेवा करते हुए नंदबाबा स्वप्न का स्मरण कर रहे हैं। यशोदाजी की गोद में बालकृष्ण के दर्शन की याद आती है कैसा सुन्दर बालक था! परम आश्चर्य हुआ है। नंदबाबा सोच रहे हैं कि अगर नारायण की कृपा हो, तो ही ऐसा सुन्दर पुत्र हो। अगर ऐसा पुत्र हो तो मेरे घर की शोभा बढ़ जायगी। मैंने साधुओं के मुँह से सुना है कि जो गायों की सेवा करता है, उसके वंश का नाश नहीं होता है। मैंने गायों की सेवा की है। गायें मुझे बहुत प्यारी हैं। परमात्मा! कृपा कीजिए। मेरे लिये नहीं, पर गायों के लिये मुझे एक पुत्र दीजिए।

लाला ने खेल किया। बालकृष्णलाल घुटनों के बल रेंगते हुए गौशाला में आये हैं। जो बालक स्वप्न में देखा था, वही आज गौशाला में भी दीख पड़ा। नंदबाबा को लगा कि मैं जाग रहा हूँ या स्वप्न देख रहा हूँ। कन्हैया सिर हिलाता है। मानो कह रहा हो कि बाबा! गायों की चिन्ता न कीजिए, मैं गायों की सेवा करने ही आया हूँ। अति आनंद में नंदबाबा की समाधि लग गयी है। शरीर स्तब्ध हो गया है। याद नहीं आ रहा कि जाग रहा हूँ कि सो रहा हूँ।

यशोदा माता के समक्ष अतिशय प्रकाश फैल गया। बालकृष्णलाल की सुन्दरता देखकर यशोदाजी को अति आनन्द हुआ। यशोदाजी और लाला की आँखें चार हुईं।

नंदबाबा की सुनंदा बहिन थीं वे जाग गईं। देखा, तो प्रकाश फैला है। भाभी की गोद में अत्यंत सुन्दर बालक है। सुनंदा दौड़कर गौशाला में पहुँची। एक ओर नंदबाबा बालकृष्णलाल के दर्शन में तन्मय हैं, दूसरी ओर उसी समय सुनंदा दौड़कर पहुँची और कहा—भैया, भैया। लाला भयौ है।

नंदजी पूछते हैं—बालक कैसा है?

सुनंदा कहती है—हमारे घर ठाकुरजी हैं न। हमारे नारायण-सा ही यह पुत्र है!

व्रजवासी नंदजी को यमुना-तट पर ले गये हैं। स्नान करवाया है शृंगार करवाया है। नंदबाबा को पटड़े पर बैठाकर गणपति महाराज की पूजा करवायी है। पुण्याहवाचन हुआ है। श्राद्ध में पितरों की पूजा होती है।

नंदबाबा प्रत्येक ब्राह्मण को वंदन करते हैं। कहते हैं— इस वृद्धावस्था में मुझे पुत्र हुआ है। लाला को आशीर्वाद दीजिए। मैं आपको क्या दूँ? घर में जो कुछ है, सब आपका ही है।

नंदबाबा ने अन्नदान, वस्त्रदान, सुवर्णदान और गायों का दान दिया है। कई ऋषि गायों के रूप में थे। कई वर्षों तक तप किया पर मन में से काम गया नहीं, ब्रह्म-संबंध न हुआ, इससे गाय बनकर आये हैं, जिससे कि उनका ब्रह्म-संबंध हो सके। गायें भी उत्साह में आ गयी हैं। दो लाख गायों का बाबा ने दान दिया है। नंदबाबा अति उदार हैं। सभी को बहुत दान दिया है। आज तो लक्ष्मीपति ने बैकुण्ठ छोड़कर व्रज को प्रिय माना है।

शुकदेवजी महाराज कथा नहीं कर रहे मानो दर्शन करते हुए बोल रहे हैं—

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्यश्चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः।
नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजुर्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः।।

(१०-५-११)

गोपियों की दर्शन की बहुत उत्कंठा थी। वे दौड़ती हुई आ जाती हैं। उन्होंने शृंगार किया है। वे लाला को भेंट देने के लिए अधीर हो रहीं हैं। ऐसा लगता है मानो नवधा भक्ति भगवान्

के लिए दौड़कर आ जाती है। आज गोपी दौड़ रही हैं। उनकी आँखों को वाणी मिली है। आँखें मुखर हो रही हैं। मानो कह रही हैं कि सच्चा आनन्द तो हमें मिलने वाला है। हम भाग्यवान हैं। श्रीकृष्ण-दर्शन का आनंद हमें मिलेगा। इतने में कान मुखर हुए कि लाला के आगमन की बधाई तो हमने सुनी है। लाला के प्राकट्य की कथा हमने ही तुम्हें सुनाई है। सच्चा आनंद तो हमें मिल रहा है! और आगे भी हमें ही मिलने वाला है। कन्हैया जब बाँसुरी बजायेगा तो हम ही सुनेंगे। अब संसार-व्यवहार की बातें नहीं सुननी हैं, इतने में हाथ कहने लगे–तुमको तो सुनने और दर्शन का आनंद मिलेगा पर सच्चा आनंद तो हमें मिलेगा। हम लाला को उठाकर गोद में लेंगे। बालकृष्णलाल के मुख में माखन-मिसरी देंगे। श्रीबालकृष्णलाल की सेवा में हम जा रहे हैं। हम भाग्यशाली हैं। इतने में पैर बोलने लगे–आप सब को उठाकर हम ले जा रहे हैं। हम भाग्यवान हैं। अपने अनेक जन्म हमें याद आ रहे हैं। पूर्वजन्म में हम पैसों के लिये भटकते थे। कामांध होकर स्त्रियों के पीछे-पीछे चलते थे। आज धन के लिये नहीं, काम के लिये नहीं, आज हम परमात्मा के लिये दौड़ते हैं। यह हमारा अंतिम जन्म है। अब हमें संसार में जन्म नहीं लेना है। इतने में हृदय कहने लगा–सच्चा आनंद तो मुझे मिलेगा मैं लाला को उठाकर स्वयं से लगा लूँगा। मैं श्रीकृष्ण को आलिंगन दूँगा। मैं श्रीकृष्ण से एक हो जाऊँगा। अब किसी स्त्री से मिलने की इच्छा नहीं है। इस संसार में बहुत अनुभव ले लिया। अब परमात्मा से मिलना है। मैं भाग्यशाली हूँ।

गोपियाँ दौड़कर जाती हैं। यशोदामाता की गोद में विराजमान बालकृष्णलालको विवेक से, स्नेहवश वस्त्राभूषणों की भेंट देती हैं। प्रथम दर्शन से ही प्रभु ने सभी का मन अपनी ओर खींच लिया है। कई गोपियाँ बहुत गरीब हैं। वे लाला के लिये वस्त्र-आभूषण कहाँ से लायें? उनके घर में कुछ नहीं है पर उनकी ऐसी भावना है कि आज खाली हाथ न जाना चाहिये। घर में दही की मटकी है। वे मटकी उठाकर ले आयी हैं। यशोदा माता की गोद में सर्वांग-सुन्दर बालकृष्णलाल के दर्शन से उन्हें अति आनंद हुआ है। वे दही लायी हैं, लाला को भेंट करने, पर अति आनंद में होश ही न रहा और उसी दही से सखी को नहलाने लगीं।

यशोदाजी ने आज्ञा दी है कि प्रत्येक गोपी का सम्मान करना है। एक-एक को पटडे पर बैठाकर पूजा करनी है। निर्धन गोपी को चाँदी की थाली दी है। गोपी थाली लेकर जाती है। रास्ते मे एक सखी मिलती है, पूछती है–तुम्हें क्या दिया? गोपी ने कहा–माँ ने मुझे यह चाँदी की थाली दी है। तुम्हें क्या दिया? उत्तर मिला कि मेरे गले में देखो। मुझे यह चंद्रहार दिया है। तुम माँगों तो तुम्हें भी चंद्रहार देंगी।

गोपी दौड़कर वापस आयी है–माँ, मुझे चाँदी की थाली दी, पर सखी को चंद्रहार दिया। मुझे भी चंद्रहार दीजिए। आज मुझे बहुत आनंद हो रहा है। आपके लाला को देखकर मन में ऐसा होता है कि बहुत नाचूँ। यशोदाजी ने चंद्रहार देने की आज्ञा की, पर सारा दिन घर को लुटाया था, इससे चंद्रहार मिल नहीं रहा था। माँ के गले में नव-रत्न हार था। माँ ने उतारकर वही हार गोपी को पहिना दिया। इतना दे रही हैं, पर यशोदामाता के मन में अभिमान नहीं है। यशोदाजी बारंबार वंदन कर रही हैं। गोपी लाला का जय-जयकार करती हुई दौड़ती है। रास्ते में दूसरी सखी मिलती है। वह पूछती है कि तुम्हें क्या दिया? गोपी ने कहा–माता ने मुझे अपने गले से उतारकर यह नवरत्न हार पहिना दिया। अरे! वह हार तो माँ मुझे भी दे रही थीं पर मैंने लेने के लिए मनाकर दिया। पहिली गोपी ने पूछा कि तब तुमने क्या लिया? उत्तर मिला मैंने तो माँ से कहा कि बालकृष्णलाल मेरी गोद में दीजिए। मैं तो लाला को लेने आयी हूँ। अरे, तुम कैसी मूर्ख हो। वहाँ जाकर हार ले आयीं। यशोदाजी तो एक-एक को कन्हैया गोद में देती हैं।

गोपी पुनः वापस गयी और वही हार माता के गले में पहिना दिया। बोली माँ! मेरी भूल हुई यह हार तो आपके गले में ही शोभा देता है। माँ, आज मैं जो माँगूँ वह आप दें। यशोदाजी ने कहा–माँग लो, तुम जो माँगोगी, वह मैं दूँगी। गोपी ने कहा–माँ! आप ना नहीं कहोगी न! माँ, दो मिनट के लिये लाला को मेरी गोद में दीजिए। मैं लाला को लेने आयी हूँ।

यशोदाजी ने हाथ जोड़े और कहा– आपके आशीर्वाद से पुत्र हुआ है। आपका ही पुत्र है। यशोदा माता गोपी को पास बैठाकर उसकी गोद में बालकृष्णलाल देती हैं। हजारों वर्षों से जीव ईश्वर से बिछुड़ गया था। वह आज मिला है। जीव और परमात्मा का मिलन हुआ है। अति आनंद हुआ है। गोपी लाला को प्यार कर रही है। बारंबार निहारती है। अति आनंद में देह का होश गवाँ दिया है। कहती है–आज तक नंद-यशोदा हमें आनंद देते थे, आज परमानंद उनके घर आया है। लक्ष्मी हाथ में आती है तो जीव नाचता है। आज गोपी के हाथ में लक्ष्मीपति आये हैं। अति आनंद में गोपी नाचती हैं–नंद घर आनंद भयौ, जय कन्हैयालाल की।

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान्।
हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप॥

(१०-५-१८)

परमात्मा श्रीकृष्ण परमानंद के स्वरूप हैं। निराकार आनन्द ही नराकार श्रीकृष्ण-स्वरूप में प्रकट हुए हैं। निराकार आँखों को दिखता नहीं है। जिसका कोई आकार नहीं है, वही निराकार है, उसके साथ प्रेम कैसे हो। निराकार का बुद्धि से अनुभव किया जाता है पर निराकार के साथ कोई

प्रेम नहीं कर सकता है। प्रेम तो साकार के साथ ही हो सकता है। साकार श्रीकृष्ण परिपूर्ण प्रेम हैं, परिपूर्ण आनंद हैं।

कई महापुरुष ऐसा मानते हैं कि ईश्वर में आनंद है। ईश्वर में आनंद है–ऐसा जो मानते हैं वे सिद्धांत–दृष्टि से ईश्वर और आनंद दो तत्वों को अलग कर देते हैं। व्यास नारायण का सिद्धांत है कि आनंद ही परमात्मा है। आनंद, परमात्मा ब्रह्म, श्रीकृष्ण सब एक के ही नाम हैं। तत्व एक है, नाम अनेक हैं। भगवान् के श्रीअंग में आनंद के सिवाय और कुछ नहीं है। आप भगवान् के दर्शन कर रहे हैं, तब आपको ऐसा लगेगा कि मेरे शरीर में जैसे हाथ–पैर हैं वैसे ही प्रभु के भी हैं। अरे, हमारे शरीर में और प्रभु के स्वरूप में बहुत भेद है। हमारे में रुधिर, मांस, हड्डियाँ हैं। भगवान् के श्रीअंग में रुधिर नहीं है, मांस नहीं है, मल–मूत्र नहीं है, हड्डियाँ नहीं हैं। केवल आनंद ही भरा है। स्वर्ण का टुकड़ा था तब सोना था। जब उसमें से मूर्ति बनायी गयी तब भी वह सोना ही रहा। मूर्ति के हाथों में, पैरों में सुवर्ण के बिना और कुछ नहीं है। सोने की मूर्ति जिस तरह सोने की ही होती है, उसी तरह श्रीकृष्ण में आनन्द के बिना और कुछ नहीं है। भगवान् का श्रीअंग आनन्दमय है। संसार में आनन्द नहीं है। आनन्द परमात्मा का स्वरूप है। संसार सुख और दुःख से भरा है। संसार में दो बड़े दुःख हैं। संसार में वियोग का दुःख बड़ा है। संयोग वियोग के लिये ही होता है। जिसका संयोग सुख देता है, उसका वियोग दुःख देता है। जिसके संयोग से सुख होता है, उसके वियोग से अति दुःख भी होता है। जो एकबार परमात्मा से मिलते हैं, उन्हें परमात्मा का वियोग कभी नहीं होता है। संसार में दूसरा बड़ा दुःख जन्म–मरण का है। जिसका जन्म है, उसका मरण भी है परन्तु परमात्मा है, उसका जन्म–मरण का आवागमन टल जाता है। संसार के साथ प्रेम करने वालों को सुख मिलता है और दुःख भी भोगना पड़ता है। श्रीकृष्ण से प्रेम करने वाले को आनन्द ही मिलता है। मानव को आनन्द की भूख है। आनन्द परमात्मा का स्वरूप है। श्रीकृष्ण में आनन्द के सिवाय और कुछ नहीं हैं।

अलौकिक सिद्धांत समझने के लिये लौकिक दृष्टाँत देना पड़ता है। चीनी के खिलौने में चीनी ही होती है। चीनी के बिना उनमें कुछ नहीं होता है। एक भाई को रात्रि में बारह बजे तक नींद नहीं आती है। शय्या में पड़े हैं। वे सोच रहे हैं कि आज नींद क्यों नहीं आती है? बहुत सोचने के बाद पता चला कि आज रात्रि में गर्म पानी नहीं मिला है। उनकी रात्रि में चाय पीने की बुरी आदत होगी। याद आने पर रात्रि में चाय की तैयारी की। पानी गर्म करने रखा, पर योग ऐसा हुआ कि चीनी ही खत्म थी। चीनी के बिना चाय कैसे हो? चाय न मिले तो नींद कैसे आये? अब चीनी कहाँ से आये? रात्रि के बारह बजे हैं। उन्हें याद आ गया कि बच्चों के लिये चीनी के खिलौने

लाया था वे कहीं पड़े होंगे। वे खिलौने खोजने लगे। रात्रि में बारह बजे हाथ में माला लेकर कभी जप करने तो बैठे नहीं हैं पर अब चाय के बिना बेचैन हो रहे हैं। कइयों को खाना न मिले तो चल सकता है पर चाय न मिले तो न चले! कइयों के प्राण चाय के अधीन होते हैं। अरे! जिसके प्राण चाय के अधीन हैं, उसके प्राण शरीर में रहकर क्या कर सकेंगे? व्यसन जैसा कोई पाप नहीं है। भाई रात्रि में चीनी खोजने लगे। बहुत तपश्चर्या के बाद सफलता मिली है। खिलौने मिल गये। चीनी के हाथी को हाथ में लिया उसके दो पैर तोड़कर चाय में डाल दिये। हाथी के पैर डाल दिये कि चीनी डाल दी? चीनी के खिलौने आपको चीनी ही दीख पड़ते हैं। अभी तक बालक को समझा रहे थे—यह तुम्हारा हाथी है, यह घोड़ा है। वे अगर हाथी और घोड़ा होते तो खिलौने के डिब्बे में नहीं रह सकते थे। चीनी का खिलौना चीनी ही है, हाथी नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीअंग में मात्र आनन्द ही है। भगवान् के नाम में आनन्द हैं। भगवान् का सारा स्वरूप अलौकिक, अप्राकृत, दिव्य है। भगवान् के नख के दर्शन पाने से भी जगत् भुलाया जा सकता है और उससे आनन्द मिलता है। आनन्द जगत् में नहीं है, जगत् को भुलाने में है। जगत् जब भुलाया जाता है और परमात्मा के स्वरूप में तन्मयता होती है, तब आनन्द मिलता है।

श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। वे नंदबाबा के घर प्रकट हुए हैं। 'नंद' शब्द का अर्थ होता है, जो दूसरे को आनन्द देता है। दूसरे को सुख देने वाले को नन्द कहते हैं। मधुर वाणी, विनय, सरल स्वभाव, उदारता आदि सद्गुणों से सभी को जो आनन्द देते हैं, उन्हें नन्द कहते हैं। सर्व को जो आनन्द देता है, उसे सर्व का आशीर्वाद मिलता है। आप दूसरों को जो देंगे, वही आपको मिलेगा। आप अन्य को सुख देंगे तो आपके घर कभी दुःख नहीं आयेगा। मानव का जन्म दूसरों को सुख देने के लिए है। दूसरे को सुखी करने की इच्छा रखने वाला कभी दुःखी नहीं होता है। 'मैं सुख भोगूँगा'—ऐसी इच्छा रखने वाला कभी सुखी नहीं होता है। आपको जो पसन्द है, वह दूसरे को दीजिए। आपको जो पसन्द नहीं है, वह आप अपने लिये ही रख लीजिये। आपको जो पसन्द है, वह भगवान् को देंगे तो आप भगवान् के प्रिय होंगे।

आप किसी भी मानव का अपमान करेंगे तो जगत् में आपका अपमान होगा। आप किसी भी मानव के साथ कपट करेंगे तो आपसे कपट करने वाला जगत् में उत्पन्न होगा। यह संसार कर्मभूमि है। जैसे कर्म करेंगे, वैसे फल भोगेंगे। करेले के बीज बोने वाले को आम नहीं मिलते हैं। यह संसार भावमय है। आप लोगों के लिये जैसा भाव रखेंगे, वैसा भाव जगत् आपके लिये रखेगा।

केदारनाथ जाते हुए रास्ते में गुप्तकाशी से एक रास्ता ऊखीमठ जाता है। वाणासुर की कन्या उषादेवी का वहां राजमहल था। इससे उस स्थान को ऊखीमठ कहते हैं। सर्दी के दिनों में केदारनाथ

भगवान् की भोगमूर्ति को ऊखीमठ में प्रतिष्ठित करते हैं। केदारनाथ के मन्दिर में बहुत बर्फ गिरती है। इससे उन दिनों वहाँ कोई नहीं रह सकता है। ऊखीमठ में तीन-चार पहाड़ एकत्र हुए हैं। आप जो कुछ भी बोलते हैं, वे सभी शब्द प्रतिध्वनि के रूप में वहाँ सुनाई देते हैं। एक बार 'गंगे हर' आप बोलेंगे तो तीन-चार बार 'गंगे हर' की प्रतिध्वनि आती है। कदाचित् कोई वहाँ बोले कि 'तुम्हारा सत्यानाश हो' तो प्रतिध्वनि भी ऐसी ही होगी। जैसी ध्वनि वैसी प्रतिध्वनि।

जो सर्व में सद्भाव रखता है, सर्व उसमें सद्भाव रखते हैं। नन्दबाबा सर्व के प्रति प्रेम रखते हैं। परमात्मा के चरणों में जाने के लिए दो मार्ग हैं—ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग, प्रेम-मार्ग। परिपूर्ण वैराग्य होना है, तब ही ज्ञान मार्ग में सफलता मिलती है। महापुरुष सर्व को झूठ समझकर सर्व का त्याग करते हैं। ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि इस शरीर में मैं रहता हूँ, पर शरीर से मैं भिन्न हूँ। देह का सुख मेरा सुख नहीं है। लकड़ी को काटने से क्या लकड़ी में रहने वाली अग्नि को काटा जा सकता है? लकड़ी में अग्नि है पर लकड़ी को काटने में अग्नि काटी नहीं जा सकती। यह शरीर लकड़ी है। मैं लकड़ी नहीं हूँ, मैं अग्नि हूँ। मैं परमात्मा का अंश हूँ। मुझे कोई काट नहीं सकता है। मुझे कोई दुःख नहीं दे सकता है। मैं आनन्दमय हूँ। ज्ञानी पुरुष शरीर में होने पर भी शरीर से भिन्न रहते हैं। सर्व को त्याग करते हैं। सर्व का अर्थात् देह का भी मन से त्याग करते हैं। ज्ञानी पुरुष मरण से पहिले शरीर से आत्मा को अलग कर लेते हैं। ज्ञान मार्ग में परिपूर्ण त्याग है। पूर्ण वैराग हो, तो ज्ञान-मार्ग में सिद्धि मिलती है। वैराग्य-पात्र में ही ज्ञान टिकता है। सर्व का त्याग बहुत सरल नहीं है, बहुत कठिन है।

भगवान् शंकर ज्ञान स्वरूप है। प्रायः वे शहर से दूर श्मशान में विराजमान होते हैं। शिवजी महाराज सर्व का त्याग करते हैं। शिवजी कहते हैं कि जगत् को जो चाहिये, वह मुझे नहीं चाहिये। शिवजी का स्वरूप अति दिव्य है। उनके सिर पर ज्ञान-गंगा है। शिवजी आनन्दमय हैं। शंकर भगवान् कहते हैं कि आनन्द बाहर नहीं है। जड़ वस्तुओं में आनन्द नहीं है। जड़ वस्तुओं का त्याग कीजिए। चैतन्य के साथ प्रेम कीजिए। शिवजी महाराज ने सभी का त्याग किया है। अधिक तो क्या कहूँ? द्वारिकानाथ ने बहुत कहा तब शंकर भगवान् ने पार्वतीजी के साथ विवाह किया। विवाह के बाद पार्वती माता से उन्होंने कहा कि आप उस ओर बैठिये, मैं इस ओर बैठता हूँ, जब कि राधा-कृष्ण एक साथ विराजते हैं। श्रीसीता-रामजी भी साथ ही विराजते हैं। श्रीलक्ष्मी-नारायण भी एक साथ विराजते हैं। ब्रह्मा-गायत्री भी साथ विराजते हैं। परन्तु भगवान् शंकर के मन्दिर में एक ओर पार्वती माता हैं और दूसरी ओर भगवान् शंकर हैं। शिव-पार्वती एक साथ विराजमान हों—ऐसे दर्शन मन्दिर में बहुत कम होते हैं। वेदान्त में अन्वयव्यतिरेक की भाषा आती है। शिवजी व्यतिरेक

का स्वरूप समझाते हैं। श्रीकृष्ण अन्वय दिखाते हैं। शिवजी कहते हैं कि प्रकृति का त्याग करो। श्रीकृष्ण कहते हैं–प्रकृति का उपयोग करो, पर उसके दास न बनो। दोनों का लक्ष्य एक ही है। मार्ग थोड़ा भिन्न है। शिवजी ज्ञान रूप हैं। वे सर्व से अलग रहते हैं, वे पार्वतीजी से भी दूर रहते हैं। वे प्रकृति का त्याग करते हैं। श्रीकृष्ण सब के साथ प्रेम करते हैं। ज्ञान मार्ग में सर्व का त्याग है। भक्ति-मार्ग में सर्व को प्रभु का स्वरूप समझकर सर्व के साथ प्रेम करना है। वैष्णव सर्व को प्रभु का स्वरूप समझकर, किसी तरह की अपेक्षा के बिना सर्व के साथ प्रेम करते हैं।

ज्ञान-मार्ग कठिन है, भक्ति-मार्ग भी सरल नहीं है। सर्व का त्याग करना कठिन है पर सर्व को प्रभु का स्वरूप समझकर सर्व के साथ प्रेम करना भी सरल नहीं है। कई लोग ऐसा मानते हैं कि भक्ति-मार्ग सरल है। भगवान् को पुष्प-माला अर्पण करना, भोग लगाना, आरती करना और प्रसाद खाना–इससे कहीं भक्ति होती है क्या? भोग लगाना, आरती करना भक्ति का एक अंग है पर इससे भक्ति परिपूर्ण नहीं होती है। भक्ति अर्थात् प्रेम। प्रेम करना है तो सभी के साथ प्रेम कीजिए। अपने को गाली देने वाले के साथ भी प्रेम कीजिए। आपको जो कष्ट देता है, जो त्रास देता है, उसमें भी भगवान् हैं। ऐसा समझकर उससे भी प्रेम कीजिए। भक्ति-मार्ग में प्रेम प्रमुख है। श्रीकृष्ण प्रेम-स्वरूप हैं। श्रीकृष्ण सर्व के साथ प्रेम करते हैं। श्रीकृष्ण विष देने वाली पूतना के साथ भी प्रेम करते हैं। शिशुपाल सभा में सौ गालियाँ देता है पर श्रीकृष्ण उसे, सद्‌गति देते हैं। भीष्माचार्य ने श्रीकृष्ण को युद्ध में अनेक बाण मारे हैं, पर भीष्म की बाण-शय्या के समय श्रीकृष्ण उन्हें मिलने जाते हैं। श्रीकृष्ण बाण मारने वाले भीष्म से भी प्रेम करते हैं। एक बार भृगुऋषि देवों की परीक्षा करने गए। भगवान् नारायण शेष-शय्या में सोये हुए थे। लक्ष्मीजी सेवा कर रही थीं। भृगुऋषि को क्रोध आ गया। सोचने लगे कि ये तो सारा दिन सोते ही रहते हैं? उन्होंने नारायण की छाती पर लात लगायी। नारायण जागे। प्रभु ने भृगुऋषि से कहा–आपके कोमल चरणों को आघात लगा होगा। लाइए, आपकी सेवा करूँ! प्रभु ने भृगुलांछन-चिह्न छाती में धारण कर लिया। लक्ष्मीजी ने कहा–इस ब्राह्मण को सजा दीजिये। पर प्रभु ने तो भृगुऋषि की सेवा करनी शुरू कर दी। लक्ष्मीजी नाराज हो गयीं। लक्ष्मीजी ने प्रभु से कहा–विद्या बढ़ती है और साथ में अभिमान भी बढ़ता है तो विद्या-तप का विनाश हो जाता है। इसलिये इन्हें सजा दीजिए, पर प्रभु ने इन्कार किया। इससे लक्ष्मीजी बैकुण्ठ छोड़कर कोल्हापुर जाकर रहीं। वहाँ वे अकेली हैं; नारायण साथ में नहीं हैं। कोल्हापुर में उनका स्वरूप उग्र है। आँखें बहुत बड़ी हैं। तब से उन्होंने निश्चय किया कि ब्राह्मण बहुत अभिमानी होते हैं। अब मुझे ब्राह्मणों के घर नहीं जाना है। तब

से ब्राह्मण के घर लक्ष्मीजी नहीं जाती हैं, पर भगवान् ब्राह्मण को मान देते हैं। नारायण तो छाती पर लात मारने वाले ब्राह्मण से भी प्रेम करते हैं।

वेदांत में ज्ञान से अभेद सिद्ध किया गया है। वेदांती कहते हैं कि जो भेद दीख पड़ता है, वह माया के कारण, अज्ञान से दीख पड़ता है। एक परमात्मा ही सत्य है। आसमान में चन्द्र एक ही है, पर आँखें मूंद कर देखने से दो चन्द्र दिखाई देंगे। अद्वैतंपरमार्थक: एक ही ब्रह्मतत्व सत्य है माया से भले ही भेद दीख पड़ता हो पर भेद वास्तविक नहीं हैं, एक तत्व है। वैष्णव-सिद्धांत में प्रारम्भ में दो तत्व हैं। भक्त और भगवान् अलग हैं, पर जब अतिशय प्रेम बढ़ता है तब दो मिलकर एक हो जाते हैं। भक्ति से, प्रेम-भेद का विनाश होता है।

भक्तिमार्ग में आगे बढ़ना हो तो जो दिखाई देता है, उसे प्रभु का स्वरूप मान कर प्रेम कीजिए। सभी को सुख देना संभव नहीं है। किसी को भी दु:ख न हो, इसका ख्याल रखिये। जगत् में एक जीव की आह भी ज्ञान-भक्ति में विक्षेप पहुँचाती है। कई लोग प्रेम करते हैं और मन में इच्छा रखते हैं, कि कभी यह व्यक्ति काम में आयगा! अपेक्षा रखकर किया गया प्रेम मन को अशांत करता है। अपेक्षा ईश्वर की रखिये। किसी मानव की अपेक्षा न रखिये। अपेक्षा से अशान्ति का जन्म होता है। प्रेम कीजिए पर निरपेक्ष भाव से प्रेम कीजिए। नंदबाबा सर्व के साथ निरपेक्ष प्रेम करते हैं, इससे परमानंद उनके घर आया है। गोपियाँ कहती हैं कि नंद घर आनन्द भयौ है। गोकुल में नंद-महोत्सव होता है। आप नंदमहोत्सव हर रोज अपने घर में कीजिए। सारा दिन आनन्द में व्यतीत होगा। भगवान् आपको अनुकूलता देते हैं तो वृन्दावन में जाकर दो-तीन मास रहिये। आज भी वहाँ अनेक भजनानंदी महात्मा रहते हैं। प्रत्येक तीर्थ में भगवान् एकाध संत को रखते हैं। तीर्थ की शोभा संतों के कारण है। वृन्दावन प्रेमभूमि है। संतों के मन में आपके प्रति स्नेह हो, ऐसा स्नेह संतों से कीजिए। संतों का आचरण जीवन में उतारिये। संत सदैव साधना करते हैं। वृन्दावन में कई वैष्णव हर रोज नंद-महोत्सव करते हैं। गरीब वैष्णव सुपारी में गणपति की स्थापना करते हैं। श्रीमंत सुवर्ण-मूर्ति बनवाते हैं, पर सेवा का फल दोनों को समान मिलता है। गणपति महाराज तो भाव देखते हैं। प्रेम से पूजा करने वालों का कल्याण करते हैं फिर चाहे हम सुपारी में प्रस्थापन करें या सुवर्ण की मूर्ति में स्थापन करें। भक्ति में धन गौण है, मन ही मुख्य है। उत्सव में भी धन गौण है, मन ही प्रमुख है।

ब्रह्ममुहूर्त में नंदबाबा को स्वप्न में यशोदा की गोद में बालकृष्णलाल दीख पड़े, तब से नंद-महोत्सव प्रारंभ होता है। ब्रह्म-मुहूर्त का समय अतिशय पवित्र है। कोई साधु-संत चार बजे के बाद शय्या में नहीं सोते हैं। वे बालकृष्णलाल का ध्यान करते हैं, जप करते हैं, साधन करते हैं।

लोग अच्छे ग्रंथ पढ़ते हैं, कथा सुनते हैं पर साधना नहीं करते हैं। कथा कीजिए, करवाइए, सुनिये–यह तो अच्छा है पर कथा सुनने के बाद साधना करना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्त साधना–काल है। उस समय ध्यान कीजिये। जिस स्वरूप से जिसका प्रेम है, उस स्वरूप का ध्यान करते हुए, तन्मय हो जाय, तो उसका कल्याण होता है। वंदन–पूजन सर्व का कीजिए पर ध्यान किसी एक का ही कीजिये। पतिव्रता स्त्री सेवा तो सभी की करती है, पर उसका ध्यान तो पतिदेव में ही रहता है। जीव के पति परमात्मा हैं। परमात्मा का ध्यान कीजिये।

प्रातःकाल का समय बहुत पवित्र होता है। रात्रि में जल्दी सो जाइए। सुबह चार बजे उठ जाइए। सुबह जो शय्या में लेटता है, उसके पुण्य का नाश होता है। ब्राह्ममुहूर्त में प्रायः निद्रा नहीं आती है, तंद्रा रहती है। तंद्रा का त्याग कीजिए। किसी भी मानव का मुख देखने से पहिले भक्ति कीजिए। ध्यान से पहले ठाकुरजी की मानसी सेवा कीजिए। मानसी सेवा अतिशय श्रेष्ठ है। इसमें एक पैसे का भी खर्च नहीं है। इस में शरीर को भी कष्ट नहीं है।

एक कंजूस बनिया गुसाईंजी के पास गया। उसने कहा–एक पैसे का भी खर्च न हो, ऐसी सेवा बतलाइये। गुसाईंजी ने कहा–तुम मन से सेवा करो। अपने इष्टदेव बालकृष्ण की सेवा करो। पैसे का भी खर्च न करना। सुबह चार बजे उठ जाना। भावना करना–मैं गंगाजी–यमुनाजी में स्नान करता हूँ। मन से प्रणाम करके गंगा जल में स्नान करना। फिर ठाकुरजी के लिये पवित्र गंगाजल लेकर आना। फिर ऐसी भावना करना कि शय्या में बालकृष्णलाल सोये हैं, रेशमी, सुन्दर बाल कपोल पर हैं। कन्हैया बहुत सुन्दर दीख रहा है। मैं अपने लाला को जगा रहा हूँ। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण–कृष्ण हरे हरे–प्रेम से ताली दे–देकर कीर्तन करना। कीर्तन करते हुए जब हृदय आर्द्र होगा, तब ठाकुरजी जागेंगे। फिर सुवर्ण–सिंहासन में मखमल की सुन्दर गद्दी पर उनको प्रतिष्ठित करना।

मन से ही सेवा करनी है। इससे कंजूस क्यों बना जाय? इसके बाद मन से लाला को गाय का दूध अर्पण करना। लाला को भैंस का दूध–माखन पसंद नहीं है। भैंस के दूध माखन बुद्धि को जड़ बनाते हैं। मन से ही भाव करना कि चाँदी के कटोरे में माखन–मिसरी लाला को अर्पण करता हूँ। बालकृष्णलाल अपने सखाओं को इसमें से देते हैं। तुम हर रोज ऐसा भाव करोगे तो कभी तुम्हें ऐसी अनुभूति होगी कि परमात्मा तुम्हें भी माखन खाने के लिये बुला रहे हैं। मानसी सेवा करने वाले के मन में नये–नये भाव जाग्रत होते हैं। फिर मन से लाला के श्रीअंग पर तेल लगाकर गर्म जल से मांगलिक स्नान करवाना। धीरे–धीरे लाला के चरणों को पखारना। लाला का श्रीअंग बहुत कोमल है। लाला को जरा भी कष्ट न हो, यह देखना। बाद में पीतांबर पहिनाना, सुन्दर श्रृंगार करना, तिलक करना, चरणों में तुलसी जी अर्पण करना, भोग लगाना और आरती करना।

दर्शन और मिलन के लिए जब हृदय आर्त होता है, तब उसे आरती कहते हैं। परमात्मा के वियोग का जिसके मन में दुःख है, वह ही भक्ति करता है। उसका ही हृदय आर्त बनता है। तीन बार चरण ऊपर से आरती उतारिये। तीन बार जंघा के पास आरती उतारिये। तीन बार वक्षःस्थल पर से और तीन बार मुखारविंद पर से आरती उतारिये। सात बार समग्र श्रीअंग पर से उतारिये। साष्टांग प्रणाम कजिए। मानसी सेवा में मन की धारा खंडित न होनी चाहिए। अन्य लौकिक विचार न आने चाहिए। नहीं तो सेवा का भंग होता है। मन को भगवद्-स्वरूप में लीन रखिये। सेवा में जितना समय लेते हैं, उतने समय तक आँखें और मन भगवान् में लीन रहे—ऐसी तन्मयता से मानसी सेवा हो तो बहुत आनंद आता है।

सेवा पूर्ण होने के बाद भगवान् को वंदन करके प्रार्थना कीजिए—आप मेरे हृदय में विराजिये। मेरे हाथ से सत्कर्म करवाइए। कोई भी सत्कर्म बारह वर्ष तक करने से उसका फल मिलता है। भक्ति का नियम जीवन के अंतकाल तक रखिये। मन को बहुत स्वच्छन्द न बनने दीजिए। मन को नियम में रखिये।

बनिया हर रोज सुबह चार बजे उठकर, आज्ञा के अनुसार मानसी सेवा करने लगा। बनिये ने बारह वर्षों तक मानसी सेवा की। प्रत्यक्ष ठाकुरजी आरोग रहे हैं—ऐसे दर्शन होने लगे। उसे बहुत आनंद आने लगा। एक बार ठाकुरजी की सेवा करते हुए, मन से दूध ले आया, गर्म किया, दूध में शक्कर डाली—वह अधिक पड़ गयी। उसकी प्रकृति कंजूसी की थी। सेवा में तन्मयता तो हुई पर दूध में अधिक शक्कर पड़ गयी है—ऐसा सोचकर दूध में पड़ी हुई अधिक शक्कर निकाल लूँ, तो दूसरे दिन उपयोग में आ सकेगी—वह शक्कर निकालने को तत्पर हुआ। वहाँ दूध नहीं है, शक्कर नहीं है, कुछ नहीं है। पर मानसी सेवा में तन्मय होने से उसे सब कुछ दीख रहा था। गोपाल को मजाक करने का मन हुआ। लाला ने सोचा इस आदमी जैसा रत्न मैंने इस संसार में नहीं देखा। मानसी सेवा कर रहा है, एक पैसे का भी खर्च नहीं कर रहा है, फिर भी अधिक शक्कर पड़ी है तो निकालने जा रहा है। बालकृष्णलाल घुटनों के बल चलकर आ पहुँचे और उसका हाथ पकड़ लिया। अरे! अधिक शक्कर पड़ गई तो इसमें तेरे बाप का क्या जाता है? तुम तो मानसी सेवा कर रहे हो। एक पैसे का भी खर्च नहीं है। श्रीकृष्ण का स्पर्श हुआ। वह सच्चा वैष्णव बन गया। महान भगवद्-भक्त हो गया।

मानव-शरीर साधन करने के लिये है। छह मास नियम से ब्रह्म मूहूर्त में उठकर लाला की मानसी सेवा करने पर उसका फल अवश्य मिलता है। मन के संकल्प-विकल्प कम हो जाते हैं। जिस दिन आपकी अंतरात्मा कहने लगे कि तुम्हारा मन शुद्ध हुआ है, तब आप सच्चें वैष्णव होंगे।

बालकृष्णलाल की सेवा करते हुए, आँखों से प्रेमाश्रु निकलते हैं, तब मन शुद्ध होता है। प्रातःकाल परमात्मा की ध्यान-सेवा में जो तन्मय होता है, उसे भक्ति रस का आनंद मिलता है। उसके मन पर संसार के सुख-दुःख का प्रभाव नहीं पड़ता है। प्रारब्ध के अनुसार सुख-दुःख आते ही हैं पर भक्त के मन पर इनका असर नहीं होता है हमारे जीवन में कोई विशेष दुःख नहीं आता है। संतों के जीवन में अनेक दुःख आते हैं। अनेक जन्म के पाप उनके एक ही जन्म में परमात्मा जला देते हैं। नरसिंह मेहता का युवक पुत्र मर गया पर वे 'राधे-गोविंद' रटते रहते, मन को अशांत होने नहीं देते। एक दवा में ऐसी शक्ति है कि शरीर के अंग को सुन्न कर देती है, इससे शल्य-क्रिया के समय पीड़ा नहीं होती है। जब एक दवा में ऐसी शक्ति है तो भक्ति-रस में कितनी शक्ति होगी? उस रस में निमग्न होने पर संसार के दुःखों का असर मन पर नहीं होता। तुकारामजी के जीवन में दुःख के अनेक प्रसंग आये। कई दुष्ट दीपावली के दिन उनके पास गये और कहने लगे—आज तो गधे पर बैठाकर आपकी शोभा-यात्रा निकालनी है। संत गधे पर बैठ गये। उन लोगों ने संत का बहुत अनादर किया; पर तुकारामजी की शांति का भंग नहीं हुआ। उनकी पत्नी को बहुत दुःख हुआ। वह रोने लगी। तुकाराम के चरित्र में बहुत चमत्कार हैं, पर वे तो परमात्मा ने दिखाये हैं। तुकाराम महाराज ने तो जीवन में एक ही बार चमत्कार दिखाया है। तुकारामजी ने पत्नी से कहा—यह गधा नहीं है, मेरे प्रभु ने मुझे गरुड़ पर बैठाया है। सब को गधा दीख पड़ता है, पर उनकी पत्नी को गरुड़ दीख पड़ा। चाहे कैसा भी दुःखद प्रसंग क्यों न हो, भक्तों का मन शांत रहता है क्योंकि उनका मन भक्ति-रस में निमग्न रहता है। सुख-दुःख मन के धर्म हैं, उनका स्पर्श आत्मा को नहीं होता है। आप तन नहीं है, आप मन भी नहीं हैं। आप तो मन के साक्षी हैं, चैतन्य आत्मा हैं। जिसे भक्ति का आनंद मिला है, उसे सुख मिलता है, तो उसे सुख तुच्छ लगता है, दुःख भी तुच्छ लगता है। मन पर सुख-दुःख का प्रभाव न हो—ऐसी इच्छा है तो प्रातः काल ब्रह्ममुहूर्त में नंदमहोत्सव कीजिए।

५१— जोगी-लीला

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि राजन्! नन्दमहोत्सव भादों कृष्ण नौमी के दिन हुआ है। उस समय तो भगवान् शंकर समाधि में थे। जब वे जागृत हुए तब मालूम हुआ कि बालकृष्णलाल प्रकट हुए हैं। इससे शिवजी महाराज ने भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए जाने का विचार किया। भगवान् शंकर के दो गण शृंगी और भृंगी ने भी कहा कि महाराज, हमें भी साथ ले चलिये। हमें भी दर्शन करने हैं। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जब आप सब सत्संग करते हैं, कथा-कीर्तन करते हैं,

तब अनेक वैष्णव एकत्र हों तो अच्छा है, पर जब आप ध्यान करते हैं, सेवा करते हैं, दर्शन करते हैं, तब किसी व्यक्ति के साथ अच्छा नहीं है। यह सब आप अकेले ही कीजिए। प्रत्येक व्यक्ति के संस्कार भिन्न-भिन्न होते हैं, इससे ऐसा साथ-संग भक्ति में कुछ अंशों में विक्षेप लाता है।

दर्शन करने जाते हैं, तो अकेले ही जाइये। कोई साथ में होगा तो बहुत बातें होंगी। दर्शन करने जाते हैं तब मौन रखकर जाइए। भगवान् के नाम का जप करते हुए जाइए। दर्शन करने जा रहे हैं तब अंधे, बहरे, गूंगे होकर जाइए। मैं भगवान् के मुख के दर्शन करने के लिये जा रहा हूँ, किसी मानव का मुख मुझे नहीं देखना है, किसी मानव की बातें नहीं सुननी हैं, किसी से बातें नहीं करनी हैं।

भगवान् के जप करते हुए जो रास्ते में चलते हैं, उन्हें यज्ञ का फल मिलता है। शिवजी ने सोचा कि मैं अकेला ही जाऊँगा। ये साथ में होंगे तो बातें करेंगे। शिवजी ने उन्हें मना किया। शृंगी-भृंगी ने हाथ जोड़ कर कहा-महाराज! हमें साथ ले चलिये, हम आपके ध्यान में विक्षेप नहीं डालेंगे। आप साथ नहीं ले चलेंगे तो हम पीछे से आयेंगे, और वहाँ सबसे-प्रत्येक के घर कहते जायेंगे कि ये साधु महाराज नहीं हैं, ये तो शंकर भगवान् हैं। तब आपका नाटक खुल जायेगा।

शिवजी ने कहा-चलिये मेरे साथ, पर रास्ते में बातें नहीं करनी है। किसी की ओर दृष्टि भी नहीं डालनी है। घर छोड़कर मन्दिर जाने का अर्थ यह है कि मैं प्रभु को ही दृष्टि दूँगा। कई लोग मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं तो पूछते हैं-कल आप दिखायी नहीं दिये! अरे, कल क्या इनका मुख देखने तुम गये थे? वह नहीं आया तो तुम्हें कैसा मालूम हुआ? दर्शन करने जाते हैं तब सावधान होकर जाइए।

शिवजी ने साधु का स्वाँग सजाया है। शृंगी-भृंगी दोनों शिष्य बने हैं। श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव-कीर्तन करते हुए चलते हैं। श्रीयशोदा माता के द्वार पर आकर खड़े हो गये हैं। 'अलख निरंजन' पुकार की है। जो ब्रह्म अलक्षित था, अति दुर्लभ था, आँख से दिखाई नहीं देता था, वह आज सर्व-सुलभ है। आज प्रत्यक्ष परमात्मा प्रकट हुए हैं। शिवजी इस साकार ब्रह्म के दर्शन के लिये आये हैं। यशोदामाता को पता चला कि कोई साधु द्वार पर भिक्षा लेने के लिये खड़े हैं। दासी को आज्ञा दी। इससे दासी थाली में फल लेकर बाहर आयी है। शिवजी की आँखें ब्रह्मानंद में मस्त थीं। साधु की परीक्षा कपड़ों से नहीं होती है, जाति से भी नहीं होती है, आँखों से होती है। संतों की आँखें भगवान् में स्थिर होती है। संत भगवान् को आँखों से दूर नहीं होने देते हैं। संतों का नियम होता है कि दो-तीन मिनट के अन्तर पर वे भगवान् के दर्शन करते

हैं। संत परमात्मा को आँखों में रखते हैं। दासी ने हाथ जोड़े और कहा—महाराज! यशोदामाता ने आपको भिक्षा दी है। इसको स्वीकार कीजिये और हमारे लाला को आशीर्वाद दीजिए।

शिवजी ने आँखें न खोलीं और कहा—मैं भिक्षा के लिए साधु नहीं हुआ हूँ। मैं बालकृष्णलाल के दर्शन के लिए साधु हुआ हूँ। मेरे गुरु ने मुझसे कहा है कि गोकुल में यशोदाजी के घर परमात्मा प्रकट हुए हैं। इससे मैं दर्शन करने आया हूँ। मुझे लाला के दर्शन करने हैं।

कई लोग घर छोड़कर साधु हो जाते हैं, पर बाद में उनको यह याद नहीं रहता कि मैं क्यों साधु हुआ हूँ। शिवजी कहते हैं कि श्रीकृष्ण-दर्शन के लिए मैं साधु हुआ हूँ। मुझे लाला के दर्शन करने हैं। दासी ने भीतर जाकर यशोदामाता को बात बतायी, यशोदाजी को आश्चर्य हुआ। यशोदाजी ने खिड़की से देखा कि बाहर साधु खड़े हैं। बाघाम्बर पहिना है, गले में सर्प है, भव्य जटा हैं, हाथ में त्रिशूल है। ऐसा दिव्य शिवस्वरूप था कि यशोदामाता ने सोचा—यह शंकर भगवान् तो नहीं हैं? ऐसा साधु तो कभी नहीं देखा। बारम्बार प्रणाम करके यशोदामाता ने कहा—महाराज! आप कोई महान् पुरुष लगते हैं। हम आपको पहिचान नहीं पा रहे हैं। क्या भिक्षा कम लग रही है? आप माँगिये तो मैं आपको कमण्डल दूँ, कम्बल दूँ। जो माँगेंगे वह दूँगी, पर मैं लाला को बाहर नहीं लाऊँगी। अनेक मनौतियाँ मानी हैं, तब वृद्धावस्था में यह पुत्र हुआ है। मुझे प्राणों से भी प्रिय है। आपके गले में सर्प है। लाला उसे देखकर डर जायगा। बालक अति कोमल है।

शिवजी ने कहा—माँ! लाला को डर नहीं लगेगा। तुम्हारा कन्हैया कौन है, वह मैं जानता हूँ। मेरे गुरु ने मुझसे कहा है कि 'वह काल को काल, देव-देवन को, शिव को धन और सर्वस्व संतन को' है। तुम्हारा कन्हैया देव का देव है, वह काल का भी काल है। वह मुझे देखकर बहुत प्रसन्न होगा, वह मुझे पहिचानता है।

यशोदामाता ने कहा—महाराज! यह आप क्या कह रहे हैं? मैं पचपन वर्ष की हुई और आपको नहीं पहिचान रही हूँ, तो मेरा पुत्र कैसे पहिचान लेगा? शिवजी ने कहा—माँ! आप मुझे नहीं पहिचान रही हैं पर कन्हैया मुझे पहिचान रहा है। वह मुझे देखकर प्रसन्न होगा।

यशोदाजी ने कहा—महाराज! आप ऐसा हठ कर रहे हैं, यह उचित नहीं है। शिवजी ने कहा—माँ, लाला के दर्शन के बिना मुझे पानी तक नहीं पीना है। मैं आपके आँगन में अब बारह वर्ष की समाधि लगा रहा हूँ। यशोदामाता घबरा गयीं। यशोदाजी को यह उचित न लगा शिवजी महाराज बैठे हैं। आप नंदगाँव में गये होंगे। वहाँ आशेश्वर महादेव का मंदिर है। श्रीकृष्ण-दर्शन की आशा से शिवजी बैठे हैं। इससे इस का नाम आशेश्वर है। आँखें बंद रखकर बालकृष्णलाल का वे ध्यान करते हैं। ध्यान चेतन का करेंगे तो ही लाभ है, जड़ वस्तु के ध्यान से लाभ नहीं है। जड़

वस्तु के ध्यान से बुद्धि जड़ होती है, मन बिगड़ता है। ध्यान चेतन का कीजिए। आप जहाँ हैं, वहीं भगवान् प्रकट होंगे। किसी व्यक्ति को प्यास लग जाय, तब वह पानी का ध्यान करेगा तो क्या पानी पास आ जायेगा? पानी आपके पास नहीं आ सकता, आपको पानी के पास जाना पड़ेगा। चेतन सर्वव्यापक है। इससे जहाँ बैठकर आप चेतन का ध्यान करेंगे, वहाँ श्रीकृष्ण प्रकट होंगे। शिवजी महाराज ध्यान करते हुए तन्मय हुए और तब बालकृष्णलाल उनके हृदय में पधारे हैं।

यशोदामाता का कन्हैया रोने लगा है। यशोदामाता कन्हैया को दूध पिलाने लगीं, पर लाला ने दूध पीने से इन्कार कर दिया। माता ने लाला को खिलौने दिये, पर लाला ने फेंक दिये। लाला को बाहर जाना है। माता नहीं ले जा रही है। भगवान् के दर्शन के लिये तड़पते हैं, उसी तरह भगवान् भी भक्त को देखने के लिए उत्कंठित होते हैं। भक्त को देखकर भगवान् को आनन्द होता है। लाला को शिवजी के दर्शन की इच्छा हुई है।

गोपियों को मालूम हुआ। वे दौड़ती आयी हैं। वे लाला को मना रही हैं—बेटा! तुम्हें क्या हो रहा है? गोपियाँ व्याकुल हुई हैं। आज कन्हैया क्यों रो रहा है? तीन-चार दिन से तो जरा भी रोया नहीं है। आज लाला को क्या हो रहा है? एक गोपी ने कहा—माँ, मैं जब आ रही थी तब आँगन में बैठे हुए साधु महाराज के होंठ हिल रहे थे। इससे माता मुझे लगता है कि आँगन में बैठे हुए साधु ने लाला पर कोई मंत्र तो नहीं किया होगा? बाद में नजर उतारने के लिए शाण्डिल्य ऋषि को बुलाया गया। शाण्डिल्य ऋषि समझ गये हैं। उन्होंने कहा—माँ आँगन में जो ऋषि बैठे हुए हैं, उनका लाला से जन्म-जन्म का संबंध है। साधु महराज आँगन में भूखे बैठे हैं, यह अच्छा नहीं है। माँ, उन्हें दर्शन करवाइए।

यशोदामाता ने लाला का सुन्दर श्रृंगार किया। पीला वस्त्र पहिनाया है। गले में बाघ के नाखून को सुवर्ण में जड़ित करके पहना दिया है। बालक के गले में बाघ के नाखून होते हैं तो नजर नहीं लगती है। यशोदाजी ने दासी से कहा—लाला को लेकर मैं आ रही हूँ, तुम साधु महाराज से कहो कि एक-दो मिनट दर्शन कीजिए और फिर यहाँ से पधारिये। एकटक न देखिएगा। एकटक देखने पर लाला को कुछ हो जाय तो? सब कहते हैं कि कन्हैया बहुत सुन्दर है, कन्हैया बहुत सुन्दर है—इससे मुझे घबराहट होती है कहीं किसी की नजर न लग जाय!

आप वृन्दावन गये होंगे। वृन्दावन में भगवान् के असंख्य स्वरूप हैं। पंद्रह-बीस दिन रहेंगे तब ही सभी के दर्शन हो सकेंगे। वृन्दावन में भगवान् के अनेक स्वरूप भक्तों के लिये प्रकट हुए हैं। प्रत्येक स्वरूप के साथ एक इतिहास-कथा है। वृन्दावन के प्रधान ठाकुर हैं बाँके-बिहारीलाल। बाँके-बिहारीलाल का स्वरूप ऐसा सुन्दर है कि उसका वर्णन करना संभव नहीं है। वह अवर्णनीय

है। ठाकुरजी की आँखें अति दिव्य हैं। मुखारविंद अलौकिक है। उनके दर्शन से तृप्ति ही नहीं होती है। ऐसा लगता है कि भगवान् अभी कुछ बोलेंगे। अभी कृपा करेंगे। उस मंदिर का ऐसा नियम है कि तीन-चार मिनट हों कि दर्शन दर्शन बंद कर दिये जाते हैं एकटक किसी को देखने नहीं देते हैं। वहाँ के गोस्वामी से कहा कि महाराज! आप शांति से दर्शन करने दीजिए न। यह पर्दा क्यों लाते हैं? उन्होंने कहा-महाराज! इन ठाकुरजी को लोगों की नजर लग जाती है। अति सुन्दर बाल-स्वरूप है, इससे भगवान् को भी नजर लगती है। यह बाल-स्वरूप है, अपलक देखने से नजर लगती है। इससे पर्दा लाते हैं। जीव ईश्वर का दर्शम करता है तब माया का पर्दा बीच में आता ही है। वह माया शांति से दर्शन करने नहीं देती।

यशोदाजी ने दासी से कहा-तुम महाराज से कह देना। दासी ने बाहर आकर शिवजी से कहा-महाराज! पधारिये। यशोदामाता आपको बुला रही हैं। शिवजी महाराज, पधारे हैं। यशोदामाता बालकृष्णलाल को लेकर बाहर आती हैं। कोई भी बालक सुन्दर दीखता है क्योंकि बालक में विकार नहीं है, वासना नहीं है। विकार-वासना जगने से सौंदर्य नष्ट हो जाता है। विकार-वासना के न होने तक सौंदर्य रहता है। बालक का मन शुद्ध होता है। उसकी आँखों में विकार नहीं होता है, पाप नहीं रहता है। इससे वह सुन्दर लगता है। जब तक विकार-वासना नहीं होती, तब तक वह परमात्मा का स्वरूप है और जब परमात्मा बालक बनते हैं, तब क्या कहना? लाला का बालस्वरूप दिव्य है। श्रीकृष्ण और शिवजी की आँखें जब चार हुईं तब शिवजी को अति आनन्द, हुआ। श्रीअंग में रोमांच हुआ। आँखें गीली हो गईं।

शिवजी ने लाला का जय जयकार किया। शिवजी की दृष्टि पड़ी कि बालकृष्णलाल धीरे-धीरे हँसने लगे। यशोदामाता को आश्चर्य हुआ। साधु महाराज की आँखें बहुत पवित्र हैं। इनकी दृष्टि पड़ने पर बालक हँसने लगा है। घर में बहुत रो रहा था अब माता को विश्वास आ गया। उन्होंने शिवजी को भीतर बुलाया।

नंदगाँव में नंदबाबा का राजमहल है। नंदगाँव में श्रीकृष्ण-बलराम की बालभाव की सेवा है। बालस्वरूप है। अति सुन्दर है। राजमहल के भीतर शिवजी महाराज हैं। एक स्वरूप बाहर है। उन्हें आशेश्वर महादेव कहते हैं। यशोदामाता ने शिवजी को भीतर बुलाया। वहाँ वही दूसरा स्वरूप भी है। उनका नाम है नंदीश्वर महादेव। माता शिवजी को भीतर बुलाकर बारंबार वंदन करती हैं-महाराज! आप आये सो बहुत अच्छा हुआ। वृद्धावस्था में पुत्र जन्म हुआ है, इससे मुझें बहुत चिंता होती है कि लाला को किसी की नजर न लग जाय। महाराज क्या आप नजर न लगने का मंत्र जानते हैं? यह जल्दी मोटा हो जाय, ऐसा कोई मंत्र दीजिए।

शिवजी को बालकृष्णलाल के दर्शन से आनंद हुआ है पर दर्शन में थोड़ा द्वैतभाव भी है। जहाँ भेद है वहां पूर्ण आनंद नहीं है। शिवजी को तो कृष्ण से एक होना है। उनमें अद्वैतभाव है। इससे शिवजी ने यशोदामाता से कहा—माँ, मेरे गुरु ने मुझे एक मंत्र दिया है पर मंत्र को लाला के कान में कहना पड़ेगा। वह आपकी गोद में है तो मैं उसके कान में मंत्र कैसे कह सकूँगा? यशोदामाता समझ गयीं। इससे उन्होंने लाला को शिवजी की गोद में दे दिया। शिवजी ने जैसे ही बालकृष्णलाल को गोद में लिया कि उनकी समाधि लग गयी। माँ से कहा—मैंने लाला को आशीर्वाद दिये हैं। कोई राक्षस आये या राक्षसी आये, लाला का बाल भी बाँका नहीं होगा। माँ! आप जरा भी चिंता न कीजिए। यह बड़ा राजा होगा। यह सुवर्ण की नगरी बनायेगा। इस बालक की कीर्ति सारे, जगत में फैलेगी, अखंड रहेगी। यह सभी को सुखी करेगा। माँ, यह बालक सोलह हजार रानियों का पति होगा। यशोदा माता ने कहा कि महाराज, यह आप क्या कह रहे हैं? सोलह हजार स्त्रियों का पति होगा? शिवजी ने कहा—माँ, मेरे मुख में से ऐसा क्यों निकला यह मुझे मालूम नहीं है पर यह सत्य ही होगा। यह सोलह हजार रानियों का पति होगा।

यशोदाजी ने कहा—महाराज! एक-दो विवाह हों तो ठीक है। कई स्त्रियाँ बहुत बुरी होती हैं। ये सब लाला को त्रास देंगी? शिवजी ने कहा—माता, मैंने इसे आशीर्वाद दिये हैं, यह सभी को वश में रखेगा। रानियाँ लाला की सेवा करेंगी। यह बहुत वीर होगा। सभी की देखभाल रखेगा, सभी को सुख देगा।

महाराज! हम दोनों की वृद्धावस्था है। आप कहते हैं कि बड़ा राजा होगा! तो क्या हमारे देखते हुए राजा होगा कि हमारी मृत्यु के बाद राजा होगा? शिवजी ने हाथ जोड़े—माँ, यह आप क्या कह रही हैं। आप इसे बड़ा राजा देखेंगी।

यशोदामाता वंदन करती हैं। शिवजी आशीर्वाद देते हैं—अखंड सौभाग्यवती भव। यशोदामाता ने शिवजी से कहा—महाराज! आप सदैव के लिये यहाँ रहिये। आपकी सब व्यवस्था मैं करूँगी। जब जब कन्हैया रोयेगा, मैं आपको बुला लूँगी। आपकी आँखें दिव्य हैं। सारा नंद गाँव शिवलिंगाकार बन गया है। आज़ भी है। कभी वहाँ जाकर दर्शन कीजिए। तो प्रतीति होगी। नंदगांव पहाड़ पर है और नीचे से दर्शन करने पर ऐसा लगता है कि भगवान् शंकर बैठे हैं।

यशोदा माता ने वस्त्राभूषण मँगाये हैं। शिवजी ने कहा कि माँ, यह आप क्या कह रही हैं इस जगत में जो कुछ है मेरा ही है। मैंने ही लोगों को दिया है। माँ, मेरा नाम विश्वनाथ है। मुझे कुछ नहीं चाहिये। यशोदा माता ने बहुत आग्रह किया तब शिवजी ने कहा—माँ, जब-जब मैं आऊँ, तब-तब इस बालक को दो मिनट के लिये मेरी गोद में दीजियेगा। और क्या माँगू? यशोदाजी ने

कहा–यह बालक आपका ही है। लाला को आशीर्वाद दीजिए। पर महाराज आप कुछ भी न लेंगे? आप मेरा कुछ स्वीकारिये। यशोदामाता की आँखों में आँसू आ गये।

शिवजी ने कहा–माँ! मुझे कुछ नहीं चाहिये। थोड़े फल दीजिए। मैं फलाहार करूँगा। शिवजी ने और कुछ न लिया। फलों को स्वीकार किया। यशोदा माँ को आनंद हुआ। शिवजी को उन्होंने बार-बार वंदन किये।

श्रावण शुक्ल द्वादशी के दिन जोगी लीला हुई। शिवजी योगीश्वर हैं और श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं। श्रीकृष्ण प्रवृत्ति-धर्म समझाते हैं। योगीश्वर शिव जगत् को निवृत्ति-धर्म समझाते हैं। निवृत्ति लेकर भक्ति करने का आदर्श शिवजी दिखाते हैं। प्रवृत्ति में सावधान रहकर, किस तरह परमात्मा का स्मरण करना चाहिये–यह श्रीकृष्ण दिखाते हैं। सनातन धर्म के ये दो अंग हैं। तत्त्व से हरि-हर दोनों एक ही हैं।

५२– वासना-विनाश

गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः।
नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह॥ (१०-५-१९)

श्रावण कृष्ण द्वादशी के दिन यह लीला हुई और त्रयोदशी के दिन नन्दबाबा मथुरा में कंस को राज्य का महसूल देने गये। कंस बड़ा राजा था। प्रतिवर्ष नन्दबाबा कंस को महसूल देते थे। महसूल देने का समय हो गया है। नन्दबाबा ने व्रजवासियों से कहा कि अब मुझे मथुरा जाना है, आप लाला की देखभाल करना। प्रत्येक द्वार पर दो-दो व्रजवासियों को प्रहरी के रूप में उन्होंने रखा है जिससे कि कोई भीतर न जा पाये।

जो जगत् की रक्षा करते हैं उनकी रक्षा कौन करेगा? श्रीकृष्ण ने जगत् को एक आदर्श दिखाया है। भगवान् को घर में रखना बहुत कठिन नहीं है, पर ठाकुरजी को घर में प्रतिष्ठित करके उनकी देखभाल करना कठिन है। हृदय-गोकुल में बालकृष्णलाल को प्रतिष्ठित करने के बाद उन्हें संभाल कर रखना। जो जगत् के साथ बहुत प्रेम करते हैं, बालकृष्णलाल उनके भीतर–उनके हृदय में नहीं बिराजते हैं। परमात्मा को हृदय में प्रतिष्ठित करने के बाद संसार के किसी भी लौकिक सुख का संकल्प करना उचित नहीं है, ऐसा होने पर भगवान् हृदय में विराजमान नहीं होंगे। कंस और श्रीकृष्ण एक ही स्थान पर नहीं रह सकते हैं। अंधकार और प्रकाश एक ही स्थान पर नहीं रह सकते हैं। प्रभु को घर में प्रतिष्ठित करने के बाद बहुत सावधान रहना। आपके मन में संसार के किसी सुख का संकल्प न आ जाय। जब कोई लौकिक सुख भोगने का विचार करता है, तब

पाप शुरू हो जाता है और तब शक्ति का विनाश होता है। तब भगवान् अंतर्धान हो जाते हैं। भगवत्कृपा से जब सुख मिल जाय, तब प्रभु को साथ में रखकर सुख का उपभोग कीजिए। सुख को प्रभु का प्रसाद मानिये और सुख भोगने के लिए प्रभु को साथ रखिये। श्रीकृष्ण को साथ रखकर जब जीव सुख भोगता है, तब मन-बुद्धि बिगड़ती नहीं है। जीव जब ईश्वर से विमुख होकर सुख भोगने लगता है, तब मन बिगड़ता है।

नन्दबाबा कंस राजा के दरबार में गये। वार्षिक महसूल वे देते हैं। वहाँ सुवर्ण की थाली में रखकर उन्होंने पाँच हीरों की भेंट दी। एक-एक हीरा लाख-लाख रुपये का है। नन्दबाबा के घर लक्ष्मीजी पधारी हैं। लक्ष्मीजी को बैकुण्ठ से व्रज प्रिय लगता है।

वैकुण्ठ में ऐश्वर्य है। ऐश्वर्य है तो वहाँ पर्दा भी है। जहाँ प्रेम है वहाँ पर्दा नहीं है। व्रजभूमि प्रेमभूमि है। लक्ष्मीजी को वैकुण्ठ से भी व्रज प्रिय लगता है। लक्ष्मीजी नन्दबाबा के घर में विराजमान हैं। नन्दबाबाब ने कंस राजा को ऐसी मूल्यवान भेंट दी है।

कंस को आश्चर्य हुआ। कहने लगा कि इतनी बड़ी भेंट क्यों दे रहे हो? नन्दजी ने कहा- आपके आशीर्वाद से वृद्धावस्था में मेरे घर बालक का जन्म हुआ है। कंस भेंट पाकर खुश हुआ। कहने लगा-बाबा! मुझे बहुत आनन्द हुआ। इस अवस्था में आपके घर बालक का जन्म हुआ। आपके बालक को आशीर्वाद देता हूँ। आपका बालक सुखी हो, और उसका शत्रु जलकर भस्म हो जाय! श्रीकृष्ण प्रकट हुए, तब देवों, महात्माओं और ऋषियों ने जय-जयकार किया तो क्या आश्चर्य है जब कि लाला को शत्रु कंस राजा ने भी आशीर्वाद दिये-

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम्।
ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम्।। (१०-५-२०)

श्रीकृष्ण के प्रकट होने के बाद नन्द-वसुदेवजी का प्रथम मिलन होता है। नन्दबाबा ने वसुदेवजी से कुशल समाचार पूछे हैं। आपसे किसी की मुलाकात हो, तब अपनी सुख-संपत्ति, मान-बड़ाई की बातें न कीजिए। आप उससे पूछिये कि उसे क्या तकलीफ है, क्या दुःख है? कई व्यक्तियों की ऐसी आदत होती है कि कोई भी मिल जाय तो वे अपनी कथा कहने लगेंगे अथवा कोई घर आ जाता है तब अपना मान-पत्र दिखलाते हैं। कहते हैं कि देखिये, लोगों ने हमें ऐसा मान-पत्र दिया है। मेरा सम्मान किया गया है! अरे! तुम अपनी ही कथा कहोगे? अपनी ही कथा न कहिये। मिलने वाले को क्या दुःख है, पहिले यह पूछिये। दुःखी को आश्वासन देना महान् पुण्य है। नन्दबाबा ने वसुदेवजी से नहीं कहा कि मेरे घर पुत्र-जन्म हुआ। नन्दजी ने तो वसुदेवजी से दुःख की बातें पूछ ली हैं। कहने लगे कि मुझे बहुत दुःख होता है। यह कंस आपको त्रस्त कर

रहा है। मैंने सुना था कि आपके घर कन्या का जन्म हुआ था और कंस जब उसे मारने दौड़ा तो वह उड़ गयी! भगवान् कंस को देख रहे हैं! कभी उसे सजा करेंगे। वसुदेवजी ने हाथ जोड़े और कहा–बाबा! मैं किसी को दोष नहीं दे रहा हूँ। मैंने पाप किया है, इससे कंस मेरे बालकों को मार रहा है। मेरा कुछ पाप होगा। इसमें कंस राजा का कोई दोष नहीं है। मेरे बालक तो मर गये पर मैंने सुना है कि आपके घर लाला का जन्म हुआ है। उसे मैं अपना ही पुत्र मानता हूँ। नन्दबाबा भोले हैं। वसुदेवजी से कहते हैं कि कन्हैया आपका ही पुत्र है।

वसुदेवजी ने कहा–बाबा, मैं मथुरा में रहता हूँ, मुझे आपके लाला की बहुत चिंता होती है। समय बहुत प्रतिकूल है। अब आप बाहर घूम रहे हैं। यह अच्छा नहीं है। कंस ने ब्राह्मणों को बुलाकर पूछा कि मेरा काल कहाँ है? ब्राह्मणों ने कहा कि आपका काल गोकुल-वृन्दावन में है और अभी वह बालक है। कंस ने पूतना को भेजकर दस दिनों में वहाँ के सभी बालकों को मार डालने की आज्ञा की है। वसुदेवजी यह बात जान रहे थे, इससे वे नन्दजी से जल्दी से घर जाने का आग्रह कर रहे थे। नन्दजी ने कहा–आज बाजार में जाना है। लाला के लिए खिलौने खरीदने हैं। कल जाऊँगा।

आप जब बाहर जाते हो, तब अपने ठाकुरजी को साथ लेकर जाइए। ठाकुरजी की सेवा-पूजा के बिना आपको चैन नहीं मिलेगा। किसी कारण से ठाकुरजी को नहीं ले जा सकते हैं तो उस दिन मानसिक पूजा कीजिए और घर जाते समय ठाकुरजी के लिए कोई सुन्दर वस्तु लेते जाइए। परमात्मा प्रसन्न हों, ऐसा कीजिए। कई लोग बाहर से आते हैं तब बच्चों के लिये मिठाई ले आते हैं। कई लोग अपनी स्त्री को प्रसन्न करने के लिये साड़ी ले आते हैं। अरे, कोई स्त्री प्रसन्न हो, पुरुष प्रसन्न हो, तो वे आपको क्या देंगे? स्त्री के पास, पुरुष के पास क्या है? घर के लोग दुःखी न हों, इसका ध्यान रखना,चाहिए, पर कोई स्त्री, कोई पुरुष बहुत प्रसन्न हों, ऐसी इच्छा न रखनी चाहिए। मानव ऐसा दुष्ट है कि वह प्रसन्न भी होता है और नाराज भी होता है। एक दिन प्रशंसा करेगा, दूसरे दिन निंदा करेगा। कभी कम मिलेगा तो आज तक दिया हुआ सब भूल जायगा। किसी मानव को प्रसन्न करने इच्छा न रखिये। सोचिये कि मुझे तो परमात्मा को प्रसन्न करना है। ऐसा ही भाव मन में रखिये। कन्हैया प्रसन्न हो, ऐसा कार्य कीजिए। नंदजी बाजार में कन्हैया के लिये खिलौने खरीदने के वास्ते मथुरा में रुक गये।

श्रावण कृष्ण पक्ष चतुर्दशी के दिन पूतना प्रातः काल में गोकुल में पहुँची। पूतना चतुर्दशी के दिन क्यों आयी? तेरहवीं के दिन भी नहीं और अमावस्या के दिन भी नहीं? कैकेयी ने रामजी को चौदह वर्ष का वनवास दिया था। तेरह का नहीं और चौदह का क्यों? रावण काम प्रतीक है। वह चौदह स्थानों पर है।

इन्द्रियाणि मनोबुद्धि रस्याधिष्ठान मुच्यते।
अस्य कामस्य अधिष्ठानम् इन्द्रियाणि।।

पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार–इन चौदह स्थानों पर काम–वासना रहती है। इससे चौदह वर्षों का वनवास है। श्रीराम चौदह वर्ष वन में तप करने के बाद रावण को मारते हैं। प्रभु ने जगत् को बोध दिया है। चौदह वर्ष वन में रहकर तप करने की बहुत जरूरत है। वासना त्रास देती है, रुलाती है। चौदह वर्ष तप करने पर वासना मरती है। पूत=पवित्र और न=नहीं यानी जो पवित्र नहीं है, वह है पूतना। पवित्र क्या है? गीताजी में प्रभु ने कहा है, ज्ञान पवित्र है।

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

आत्म–स्वरूप का ज्ञान पवित्र है। उसका अज्ञान अपवित्र है। मैं शरीर हूँ इस अज्ञान से ही वासना जाग्रत होती है। वासना का मूल अज्ञान है। आप स्त्री नहीं हैं, आप पुरुष भी नहीं है। आप शुद्ध–चेतन आत्मा हैं, परमात्मा का अंश हैं, पर जब आत्मस्वरूप का अज्ञान होता है तब वासना जाग्रत होती है। कई आचार्य पूतना को अविद्या माया मानते हैं। कई कहते हैं–ना, ना, वह तो वासना है। इन्द्रियाँ धर्म–विरुद्ध विषयों में दौड़ने लगें, तब यह समझ लीजिए कि पूतना इन्द्रियों में बैठी है। आँख बिगड़े तो समझिये कि पूतना आँख में है। जो चीज खाने के लिये शास्त्र मना कर रहा है, उसे खाने के लिए जीभ ललचाने लगे तो समझ लीजिए कि जीभ में पूतना है।

ऋषियों ने प्याज–लहसुन खाने को मना किया है क्योंकि वे विकार–वासना को बढ़ाती हैं। जीव के कल्याण के लिये ऋषियों ने शास्त्रों की रचना की है परन्तु जब साहब कचहरी से घर आते हैं और पूछा जाता है कि क्या बनायें? रात्रि में क्या भोजन खायेंगे? तब साहब कहेंगे–बहुत दिन हो गये, प्याज के पकौड़े नहीं खाये हैं, वही बनाइए। यह साहब नहीं बोल रहे, साहब की जीभ में बैठी पूतना बोल रही है। जिसकी जीभ बिगड़ती है, उसका जीवन बिगड़ता है। जीवन सुधारने की इच्छा हो तो जीभ को शुद्ध रखिये। यह वासना पूतना राक्षसी है। यह ऐसी भयंकर है कि उसे जितना भी खिलाओगे, वह अधिक माँगेगी, शांत नहीं होगी। खिलाने वालों को भी यह खा जाती है। उसे तृप्ति ही नहीं होती है। मानव को लगता है कि विषयों को भोगने से शांति मिलती है, पर यह शांति क्षणिक है, बाद में तो अशांति जाग्रत होती है। मानव समझता है कि मैं विषय–सुख भोग रहा हूँ। विषय–वासना बाहर से सुन्दर दीखती है, पर भीतर से वह विष है। भागवत में शुकदेवजी महाराज ने ऐसा कहा है–

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी।
शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु।। (१०-६-२)

संस्कृत भाषा में तीन वर्ष तक के बालक को शिशु कहते हैं। शेते इति शिशुः–जिसको निद्रा अधिक आती है, वह है शिशु। तीन वर्ष तक के बालक को निद्रा अधिक आती है। पूतना तीन वर्ष तक के बालक को मारती है। चार वर्ष तक के बालक को पूतना का डर लगता है। भागवत की कथा का महापुरुष अनेक रीति से वर्णन करते हैं। पूतना तीन वर्ष तक अर्थात् तीन अवस्था में जीव को त्रास देती है। जीव को वह रुलाती है। सुषुप्ति में वह बहुत त्रस्त नहीं करती है पर वह मरती नहीं है। इन तीन अवस्थाओं को पार करके, तुरीया अवस्था में जाने वालों के ब्रह्म-संबंध ठीक से होने पर पूतना त्रस्त नहीं करती है।

बड़े-बड़े ज्ञानी पुरुष ज्ञानमुद्रा से जगत् को बोध देते हैं। अँगूठा और उसके पास की उँगली जिसे तर्जनी कहते हैं–इन दोनों का संयोग ज्ञानमुद्रा है। अँगूठा ब्रह्मरूप है, तर्जनी जीवरूप है। तर्जनी का अर्थ होता है, जो डराती है वह तर्जनी। तर्जयति इति तर्जनी। तर्जनी को शास्त्र में अशुद्ध माना गया है। इस उँगली से तिलक नहीं होता है। माला करते समय इस उँगली का स्पर्श माला को अपवित्र करता है। बालक जब परेशान करता है तब माता इस उँगली को नाकपर रखकर रोकती है। अँगूठा या अन्य किसी उँगली के रखने पर रुआब नहीं पड़ता है। इस उँगली में अभिमान का निवास है। इससे इसे अशुद्ध माना है। यह जीव का प्रतीक है। अन्य तीन उँगलियाँ जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति और तीन गुण राजस, तामस और सत्त्व की प्रतीक हैं।

तीन अवस्थाओं में तीन गुणों के साथ जीव मिला है। जो जीव तीन गुणों का सम्बन्ध छोड़कर ब्रह्म सम्बन्ध जोड़ता है, तीन अवस्था से परे होकर, ब्रह्म-सम्बन्ध जोड़ता है, परमात्मा का स्पर्श करता है, उसे पूतना त्रास नहीं देती है। गीताजी में कहा है–

त्रैगुण्यविषयाः वेदाः निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

निस्त्रैगुण्य बन जाइए। तीन गुणों से परे हो जाओ। जीव तीन गुणों में फँसा रहता है, ईश्वर से विमुख रहता है, तब पूतना त्रस्त करती है।

पूतना राक्षसी है। शृंगार करके आयी है। वासना प्रारम्भ में मन-भावनी लगती है। जिसकी आकृति बहुत सुन्दर हो, पर प्रकृति बहुत खराब हो, वह राक्षसी है। जिसका तन सुन्दर है पर मन मैला है। जिसके मुख में मिठास है पर मन में कड़वाहट है। जो स्वार्थ के कारण बाहर से प्रेम का आडम्बर करता है पर मन में वैर-भाव रखता है। जो प्रत्यक्ष में प्रशंसा करता है पर पीछे से निंदा करता है, वह पूतना है। पूतना बहुत शृंगार करके आयी है–

तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम्।
सुवाससं कम्पितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम्।।

(१०-६-५)

कोई व्यक्ति बाहर से भले ही सुन्दर दीख पड़े पर जब तक उसके चरित्र का विश्वास न हो जाय, तब तक उसके हाथ का पानी नहीं पानी चाहिए। मानव बाहर से जितना स्वच्छ दिखाई देता है, भीतर से वैसा है, यह शंका होती है। पूतना के वस्त्र और शृंगार से सभी को मोह हुआ। सौन्दर्य का मोह होते ही विवेक बह जाता है। ज्ञान तब टिकता नहीं है। सभी ब्रजवासियों से नन्दबाबा ने कहा था–लाला का ध्यान रखना। व्रजवासी एक-एक द्वार पर पहरा दे रहे हैं किन्तु यह अनजान-सी स्त्री भीतर चली जा रही है। फिर भी सौन्दर्य के मोह वश होकर कोई उसे रोकता नहीं है।

सौन्दर्य के मोह से विवेक बह जाता है, ज्ञान टिकता नहीं है। सभी व्रजवासियों से नन्दबाबा ने कहा था कि लाला का ध्यान रखना। व्रजवासी एक-एक द्वार पर पहरा दे रहे हैं। एक अनजान स्त्री भीतर जा रही है, पर सौन्दर्य का ऐसा मोह हुआ है कि कोई उसे रोकता नहीं है। कोई पूछता भी नहीं है कि 'तुम कौन हो? भीतर क्यों जा रही हो?' सभी होश गँवा बैठे हैं। मोह से सोचते हैं कि यह बड़े घर की है, ऐसा दिखता है। हम इससे पूछेंगे कि आप कौन हैं और भीतर क्यों जा रही हैं, तो उसे बुरा लगेगा। इस प्रकार सब उसे देखते ही रह गये और पूतना भीतर जाकर यशोदाजी से कहने लगी कि मैं मथुरा में रहने वाले एक ब्राह्मण की पत्नी हूँ। मैंने सुना है कि वृद्धावस्था में तुम्हारे घर पुत्र का जन्म हुआ है, इससे आशीर्वाद देने आयी हूँ। तुम्हारे पुत्र को मैं खिलाऊँगी। मैं उसे स्तन-पान कराऊँगी तो वह मोटा हो जायगा।

यशोदामाता बहुत भोली है। जिसका मन भोला सरल है, उसे जगत् में कहीं भी छल-कपट नहीं दिखायी पड़ता है और जो कपटी है, उसे सब कपटी ही लगते हैं। उसे कहीं साधु-संत नहीं दिखायी देते। यशोदाजी के मन में छल-कपट नहीं है। यशोदामाता पूतना को भीतर ले जाती हैं–

विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं चराचरात्माऽऽस निमीलितेक्षणः।
अनन्तमारोपयदंकमन्तकं यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः।।

(१०-६-८)

बालकृष्णलाल पालने में विराजमान हैं। जैसे ही पूतना भीतर आयी, लाला ने आँखें बन्द कर लीं। लाला ने सोचा कि यह तन का शृंगार करके आयी है, पर इसका मन मैला है। मुझे इसका मुँह नहीं देखना है। जिसका मन मलिन है, उसका मुख नहीं देखना चाहिए। भगवान् आपको दृष्टि दें, ऐसी इच्छा हो तो भगवान् के समक्ष जाते समय मन का शृंगार करके जाइए। लोग जब मन्दिर

में जाते हैं, तब प्रायः कपड़े बदलकर जाते हैं। मन को बदलकर नहीं जाते हैं। प्रभु किसी के कपड़े नहीं देखते हैं। कपड़ों में माया होती है। आप भी किसी के कपड़े न देखिये। एक महापुरुष ने वर्णन किया है कि लाला ने आँखें बन्द कीं, इसका कारण दूसरा है। श्रीकृष्ण की आँखों में ज्ञान और वैराग्य है। भगवान् जब किसी की ओर एक बार भी प्रेम से देखते हैं, उसको संसार तुच्छ प्रतीत होता है। उसकी बुद्धि में ज्ञान का स्फुरण होता है। आप लाला से बार-बार कहना कि मुझे एकबार देखो। श्रीकृष्ण सोच रहे हैं कि आज पूतना मुझे बालक समझकर विष देने आयी है। मैं उसे दृष्टि दूँगा तो वह समझ जायगी कि यह बालक नहीं, पर काल है। यह बालक काल का भी काल है। यह तो ईश्वर है। इसे मेरे ऐश्वर्य स्वरूप का ज्ञान होगा तो वह जो कार्य करने आयी है, वह नहीं करेगी और मेरे पैर पड़ेगी। मेरी पूजा करेगी, आरती करेगी। इससे लाला ने आँखें बन्द कर लीं।

एक महात्मा कहते हैं—ना, ना, ऐसा नहीं है। भगवान् की दृष्टि पाने से क्या कहीं अचानक ज्ञान हो जाता है? दुर्योधन को प्रभु ने समझाया, फिर भी उसे कहाँ ज्ञान हुआ? लाला ने आँखें बन्द कर लीं, इसका कारण कुछ और है। प्रभु ने सोचा कि मैंने शास्त्र में नियम बनाया है कि 'स्त्री अबला है, उसे मारना नहीं चाहिये।' इस नियम का भंग मेरे ही द्वारा हो जायगा! कोई वीर पुरुष होता तो मैं आँखें खोलकर युद्ध करता, उसे मार डालता पर यह तो स्त्री है, अबला है। उसे मैं क्या मारूँ? पर इसे तो मारे बिना काम चलेगा भी नहीं। इस प्रकार लाला को क्षोभ हुआ और उसने आँखें बन्द कर ली हैं। कभी कोई काम करने की आपकी इच्छा न हो पर आपको अनिवार्य रूप से करना पड़े, तब आप आँखें बन्द कर लेते हैं।

एक महात्मा वर्णन करते हैं—नहीं, नहीं, लाला ने आँखें बन्द कर लीं, इसका कारण यह नहीं है। कारण यह है कि लाला ने सोचा कि अब मैं पूतना के प्राण चूसने वाला हूँ। तब पूतना बहुत तड़फेगी। मैं उसे मुक्ति तो देने ही वाला हूँ, पर मुक्ति से पहिले वह सिर पटकेगी, बहुत रोयेगी। मुझसे यह देखा नहीं जायगा। लाला को दया आ गयी। इससे उसकी आँखें बन्द हो गयी हैं।

एक महात्मा कहते हैं कि ना, ना, ऐसा नहीं है। ईश्वर है और वह जाग रहा है। ऐसा जिसको ज्ञान है, वह पाप नहीं कर सकता है। ईश्वर नहीं हैं और हैं तो सोये हुए हैं, ऐसा जो मानते हैं वही जीव पाप कर सकते हैं। पूतना पाप करने के लिये आयी है। लाला ने सोचा कि मैं आँखें खुली रखूँगा तो वह पाप नहीं कर सकेगी। मैं सोया हुआ हूँ, ऐसा समझेगी तो ही पाप करेगी। मैं निद्रा का थोड़ा-सा नाटक करता हूँ। इससे लाला ने आँखें बंद कर ली हैं।

एक महात्मा कहते हैं—ना, ना, ऐसा भी नहीं है। पूतना वासना है। वासना आँखों से भीतर आती है। भीतर आने के बाद ज्ञान को धक्का देती है। इससे जगत् को प्रभु ने बोध दिया है कि

मन को पवित्र रखना हो तो आँखों को पवित्र रखना। आँखें बिगड़ती हैं तो मन बिगड़ता है। आँख से ही पूतना-वासना भीतर आती है। उसे भीतर न आने देना।

एक महात्मा ने कहा है—ऐसा नहीं है। पूतना जब भीतर आयी, तब प्रभु ने आँखें बंद कर लीं, इसका कारण भिन्न है। इन वृन्दावन के साधुओं को कोई काम न था। सनातन गोस्वामी, जीव गोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती, श्रीधर स्वामी—ये सब महान् पुरुष दशम स्कंध की लीला में पागल हो गये। लाला ने आँखें क्यों बंद कीं? दूध में उफान क्यों आया? कन्हैया क्यों हँसा? लाला ने बाँसुरी क्यों बजायी? इन सब पर ये विचार किया करते और जैसे जैसे सोचते नये-नये विचार प्रस्फुटित होते। पूतना जब आयी तब लाला की आँखें बंद करने के विषय में एक महापुरुष ने कहा है—भगवान् सोच रहे हैं कि कोई जीव मेरे पास जल्दी से नहीं आता। यह पूतना क्यों आ रही है?

जीव ईश्वर के सम्मुख जाता ही नहीं है। परमात्मा को ऐसा लगता है कि जीव मेरा अंश है पर मुझे भूल गया है। वह मेरे सम्मुख आ जाय। मानव के लिए इसीलिए तो दुःख के प्रसंग खड़े रहते हैं। दुःख का मारा मानव प्रभु के सम्मुख जायगा। आपके जीवन में भी ऐसी अनुभूति हुई होगी। जिसके साथ आप प्रेम कर रहे हैं, वह ही आपसे दगा करेगा। मित्र विश्वासघात करेगा, शत्रु जैसा हो जायगा। जिसके लिए तन-तोड़ मेहनत की है, पैसा पानी तरह बहाया है, जिसके प्रति आपको विश्वास है, वही आपके प्रति बेईमान हो जायगा। आपके लिए बुरा-भला कहेगा। आपको तब अति दुःख होगा। दुःख में जीव थोड़ा समझदार होता है। जीव को अपनी ओर खींचने के लिए ही प्रभु ऐसे प्रसंग उत्पन्न करते हैं। दुःख में जीव जगत् के समक्ष भीख माँगने जायगा, पर परमात्मा के सम्मुख नहीं जाता है। भगवान् के सम्मुख जाना सरल नहीं है, बहुत कठिन है। कोई तन से परमात्मा के सम्मुख जाना सरल नहीं है, बहुत कठिन है। कोई तन से परमात्मा के सम्मुख जाता है पर मन से नहीं जाता है। कदाचित् कोई मन से प्रभु के सम्मुख जाता है तो कह नहीं पाता कि मैं आपकी शरण आया हूँ, मैं आपका हूँ। भीतर का अभिमान उसे नम्र नहीं बनने देता। मानव में बहुत अभिमान है इससे ही वह पाप करता है। यह जीव ईश्वर के पास नहीं जाता है। अनेक जन्मों का पुण्य एकत्र होता है तब जीव परमात्मा के सम्मुख जाता है।

लाला ने सोचा—पूतना आज मेरे सम्मुख आती है। पूतना ने इस जन्म में तो कोई पुण्य नहीं किया है। उसने पूर्व जन्म में कोई पुण्य किया होगा। इसीसे मेरे सम्मुख आती है। उसने क्या पुण्य किया होगा? लाला ने आँखें बंद की हैं। लाला ने देखा—यह तो बलिराजा की पुत्री है। बलिराजा के यज्ञ में भगवान् वामनजी का रूप धारण करके भिक्षा माँगने गये थे। सात वर्ष के वामनजी महाराज बहुत सुन्दर दिख रहे थे। बलिराजा की कन्या को जब वामनजी के दर्शन हुए, तब उसके

मन में ऐसा प्रेम जाग्रत हुआ कि ऐसा बालक मेरी गोद में आ जाय तो कितना अच्छा हो, कितना सुन्दर दिख रहा है। ऐसे बालक को मैं खिलाऊँ, स्तन-पान कराऊँ। वामनजी को देखते ही बलिराजा की पुत्री के मन में वात्सल्य-भाव जागा पर जब वामनजी ने विराट स्वरूप धारण किया और बलिराजा का सर्वस्व अपहरण कर लिया, तब कन्या को बहुत बुरा लगा। वह सोचने लगी कि मेरे पिता को, कपट करके छले जाता है। इसे मारना चाहिये। एक बार गोद में खिलाने का संकल्प और फिर मारने का संकल्प। भगवान् के सम्मुख बैठने के बाद मन में बुरे विचार आने लगें तो वहाँ से उठ जाइए। वहाँ बैठना नहीं चाहिये। भगवान् के सम्मुख बैठकर जो विचार करेंगे, वे सत्य हो जायेंगे। मन में बुरे विचार आने लगें तो 'हरे कृष्ण.....' का उच्चारण करके कीर्तन कीजिए। भगवान् से कहिये कि मेरा मन बहुत बिगड़ा है। मेरे मन में बहुत बुरे विचार आते हैं। मैं अपने मन को संभाल नहीं पाता मैं आपकी शरण आया हूँ।

बलिराजा की कन्या ने वामनजी के स्वरूप को देखकर दो संकल्प किये हैं—एक, गोद में खिलाने का और दूसरा मारने का। दोनों संकल्प एकत्र हुए और बलि राजा की कन्या पूतना होकर आयी। पूतना के पूर्वजन्म के पुण्य देखने के लिये लाला ने आँखें बंद कीं।

एक महात्मा ने ऐसा लिखा है—ऐसा नहीं है। खुली आँखों से क्या लाला नहीं देख सकता? अरे, उसे तो खुली आँखों से भी सब दीख पड़ता है। ज्ञान-शक्ति प्रकट करने के लिए जीव को आँखें बंद करनी पड़ती हैं। ईश्वर की ज्ञान-शक्ति तो प्रकट ही है। लाला ने आँखें बंद की हैं, इसका कारण भिन्न है। पूतना के आने के बाद प्रभु सोचने लगे कि मैं इसे किस तरह सद्गति दूँ? इसे स्वर्ग में ले जाऊँ, बैंकुठ में ले जाऊँ या गोलोक धाम में ले जाऊँ? यह सोचते हुए लाला ने आँखें बंद कीं।

एक महापुरुष कहते हैं—ऐसा भी नहीं है। लाला ने आँखें बन्द कीं, इसका कारण भिन्न है। लाला ने सोचा कि मैं तो मथुरा छोड़कर गोकुल में आया। मैं तो मलाई-मिसरी आरोगने के लिए आया हूँ। अभी तक तो किसी ने यह किया नहीं और यह विष देने आयी है! विष पीने की आदत तो शिवजी को है। जिसके सिर पर ज्ञान-गंगा हो, उसे सबका पाचन हो जाता है। इससे लाला ने आँखें बन्द की हैं, और शंकर भगवान् का स्मरण किया। लाला शिवजी से कहने लगा—महाराज! जल्दी आइए। इस पूतना के स्तन में जितना विष है, पी जाइए। विष ही पीजिए, दूध न पीना। दूध तो मेरे लिये रखना! किसी देव को बुलाना हो तो आँखें बंद करके उनका स्मरण करना ही पड़ता है।

सनातन गोस्वामी कहते हैं—ऐसा भी नहीं है। कारण दूसरा ही है। सनातन गोस्वामी की वृन्दावन में समाधि है। घर के बहुत सुखी थे। एक बार एक ब्राह्मण के मुख से दशम-स्कंध की

कथा सुनी। भीतर से भक्ति का रंग लगा। अपने हाथों सब कुछ लुटा दिया। महाराज माटी का बर्तन और टाट की लंगोटी रखते थे। पास में और कुछ था नहीं। वृन्दावन में बैठे-बैठे सारा दिन 'राधे-कृष्ण', 'राधे-कृष्ण' नाम का एक लाख जप करते थे। मदनमोहनजी की सेवा थी। एक लाख जप पूर्ण करके माधुकरी माँगने जाते। माधुकरी में जो कुछ मिलता, उसे यमुनजी के पानी में डुबोकर ठाकुरजी को समर्पित करते। ठाकुरजी आरोगते। सनातन गोस्वामी महाराज ने भागवत पर टीका लिखी है। लाला ने आँखें बन्द कीं। उसका कारण स्पष्ट करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं कि वेदों में वर्णन है कि श्रीकृष्ण की दायीं आँख में सूर्य है, बायीं में चन्द्र है। सूर्य-चन्द्र वैष्णव हैं। उन्हें कन्हैया बहुत प्रिय है। पूतना जब विष देने आयी तब सूर्य-चन्द्र को यह बात पसन्द न आयी। वे सोचने लगे कि हमारा कन्हैया कोमल है। यह कैसी दुष्ट है कि हमारे कन्हैया के लिए माखन-मिसरी तो न लायी, पर विष लायी है! आपके किसी प्रिय को कोई विष देने आये तो क्या आप देख सकेंगे? सूर्य-चन्द्र से यह सहन न हुआ। सूर्य-चन्द्र उसे देख न सके। इससे आँखें बन्द हो गयीं।

एक महापुरुष कहते हैं कि ऐसा भी नहीं है। पूतना के आने के बाद श्रीकृष्ण आंखें बन्द करते हैं, इसका कारण यह है कि पूतना, वासना है। वासना का विनाश उपासना से होता है। उपासना अर्थात् क्या? संसार के विषयों से आँखें हटाकर, आँखें भगवान् में स्थिर करना। मन से भगवान् के चरणों में जाना ही उपासना है। उपासना में आँखें बन्द रखनी पड़ती है।

महापुरुष अनेक कारण दिखाते हैं। यशोदा मैया बालकृष्णलाल को उठाकर पूतना की गोद में रखती है। पूतना प्रेम का नाटक करती है, वात्सल्य दिखाती है। वह लाला को खिलाती है। उसने यशोदामाता से कहा—मैं तो सारा दिन आपके घर रहने वाली हूँ। आपको घर का काम करना हो तो कीजिए। यशोदामाता ने पूतना में विश्वास रखा। यशोदामाता जैसे ही भीतर जाती हैं, पूतना स्तन लाला के मुख में देती है। वह कन्हैया को स्तन-पान कराती है। लाला ने सोचा कि यह मुझे प्रेम से देती है। प्रेम से जो कुछ मिलता है, मैं स्वीकार लेता हूँ। कन्हैया धीरे-धीरे स्तन-पान करते हुए पूतना के प्राण चूसने लगा। इस तरह प्राण का आकर्षण हुआ। तब पूतना व्याकुल हुई। उसने लाला से कहा—बहुत हुआ, बहुत हुआ। बेटा! अब मुझे छोड़, छोड़ अब।

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि।
विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रूरोद ह।।

(१०-६-११)

लाला ने मन में कहा कि तुम्हें छूटना ही था, तो मेरे पास क्यों आयीं? मैं जिसे एक बार पकड़ता हूँ उसे कभी छोड़ता नहीं हूँ।

पूतना 'छोड़-छोड़' दो बार कहती है। अस्माँल्लोकात् परांच लोकात् मुंच-मुंच वह कहती है कि पाप और पुण्य-दोनों से मुझे मुक्त कर दो। राग द्वेष से मुझे मुक्त कर दो। ममता-अहंता से छुड़ाकर मुझे अपने धाम में ले जाओ।

ये राक्षस जब स्वरूप बदलते हैं, तब उन्हें भीतर से अनुसंधान रखना पड़ता है कि मैं राक्षस हूँ। लोगों को ठगने के लिये यह स्वरूप मैंने लिया है। पूतना के प्राण जब चूसे जाने लगे, तब वह बहुत व्याकुल हुई और उसे अपने स्वरूप का अनुसंधान न रहा। असली राक्षसी स्वरूप तब प्रकट हुआ। एकदम से धमाका हुआ। पूतना लाला को लेकर आसमान में उड़ने लगी। यशोदामाता दौड़कर आ पहुँची हैं-मेरे लाला को पकड़कर यह ले जा रही है। ब्रजवासी घबरा गये हैं। ऊपर आसमान में पूतना दौड़ती है। नीचे धरती पर यशोदामाता और ब्रजवासी दौड़ते हैं।

बालकृष्णलाल पूतना के वक्षःस्थल मैं हैं। यशोदामाता थोड़ा-सा दौड़ी हैं, पर राक्षसी लाला को लिये जा रही है, ऐसा देखते ही व्याकुल होकर, रास्ते में ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ती हैं। गोप-गोपियाँ दौड़ते हैं। धरती पर वे दौड़ रहे हैं पर दृष्टि ऊपर है, श्रीकृष्ण की ओर है। कदाचित मन में शंका हो कि ऊपर दृष्टि रखकर दौड़ने पर कोई नीचे गर्त में न गिर पड़े, किसी से टकरा न जाये? शंका उचित है। सभी की दृष्टि पूतना के वक्षःस्थल पर विराजमान श्रीकृष्ण को ही देखती है। कोई पूतना को नहीं देखता है। पूतना को देखते तो पतन होता। पूतना वासना है। जिसकी दृष्टि वासना में है, उसका पतन होता ही है पर जिसकी दृष्टि कृष्ण में स्थिर है, उसका पतन नहीं होता है।

श्रीकृष्ण एक लीला में अनेक कार्य करते हैं। पूतना को कंस राजा के बगीचे में वृक्ष पर उन्होंने गिरा दिया है। इस तरह गिराया है कि उस वृक्ष पर दूसरा वृक्ष गिर पड़े और दूसरे पर तीसरा वृक्ष गिर पड़े। लाला ने सोचा कि पूतना के अग्नि-संस्कार में लकड़ी की आवश्यकता होगी, तो पहिले से ही व्यवस्था करके रखूँ। कंस का बगीचा लाला ने वीरान कर दिया। पूतना के प्राण निकलते हैं। बालकृष्णलाल वक्षःस्थल पर विराजमान हैं। एक गोपी दौड़ कर आ पहुँची है। पूतना के वक्षःस्थल पर विराजमान लाला को वह उठा लेती है। कहती है कि यह कैसी भयंकर राक्षसी थी! यह तो नारायण की कृपा, कि पुत्र बच गया। गोकुल के ब्रजवासी ऐसा नहीं मानते कि श्रीकृष्ण पूतना को मारते हैं। वे तो ऐसा मानते हैं कि कन्हैया हमारा बालक है। कन्हैया देव नहीं है। वह परमात्मा भी नहीं है, वह तो हमारा पुत्र है। अनेक मनौतियों के बाद आया है। वह राक्षसी को कैसे मार सकता है? हम नारायण की सेवा करते हैं इससे नारायण की कृपा से बालक बच गया और राक्षसी अपने पापों के कारण मर गयी। गोकुल के ब्रजवासियों का वात्सल्यभाव है। नंदगांव के वैष्णवों का श्रीकृष्ण में सखा-भाव है। वे मानते हैं कि कन्हैया हमारा मित्र है। वृन्दावन

में माधुर्य है। द्वारकालीला में ऐश्वर्य है। द्वारिका में श्रीकृष्ण राजाधिराज हैं, गोकुल में वे बालक है। प्रेमरस लेने के लिये, प्रेम-रस देने के लिये कन्हैया बालक होकर आया है।

गोपियाँ लाला को लेकर आती हैं। रास्ते में यशोदामाता मूर्च्छा में पड़ी हैं। एक गोपी ने यशोदामाता से कान में कहा—माँ! मैं लाला को लेकर आयी हूँ। कन्हैया बच गया है। राक्षसी मर गई है। यशोदामाता मूर्च्छा से जाग्रत नहीं होती हैं। वे यशोदामाता की गोद में बालकृष्णलाल को रखती है। लाला का स्पर्श होते ही माता आँखें खोलती हैं। लाला को देखकर उन्हें आनन्द हुआ। एक-एक गोपी को वंदन करके कहने लगीं—मेरी गोद आपने भरी है। राक्षसी लाला को लेकर चली थी। मैं आप सब का उपकार कभी नहीं भूलूँगी।

गोपियों ने यशोदामाता को उलाहना दिया—माँ राक्षसी की गोद में आपने बालक क्यों दिया? माँ बाहर से जो सुन्दर दीखता है, भीतर से कभी-कभी वह राक्षस-सा होता है। जिसके चरित्र की पहिचान नहीं है, उसके कपड़ों को देखकर विश्वास न करना चाहिये। माता ने कहा—मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी। बालक पहला ही है, इससे बालक के लालन-पालन का तरीका मैं जानती ही नहीं हूँ।

गोपी ने कहा—माँ अब कोई आये तो कन्हैया को उसकी गोद में न देना। आज तो नारायण की कृपा हुई। माँ, राक्षसी के स्पर्श से लाला को नजर लगी होगी। लाला की नजर उतारियें। यशोदामाता बहुत भोली है। माता को अभी तक नजर उतारने का मंत्र भी नहीं आता है। एक गोपी बालकृष्णलाल को उठाकर गौशाला में ले गई।

नंदबाबा के घर में अनेक गायें हैं। उनमें से एक का नाम गंगी। गंगी गाय का दूध लाला को बहुत भाता है। गंगी गाय को कन्हैया बहुत प्यारा है। गंगी गाय का ऐसा नियम था कि बालकृष्णलाल के दर्शन के बिना वह पानी नहीं पीती थी, खाना तक नहीं खाती थी। ग्वाल जब दूध दूहने जाते तब एक बूँद भी दूध न निकलता। गंगी गाय 'हम्म, हम्म'— कहकर पुकारती। मानो कह रही हो कि लाला को जगाइए, मुझे दर्शन करने हैं। यशोदामाता लाला को जगाकर गौशाला में ले आती। कन्हैया सुबह सर्वप्रथम गायों के दर्शन करते। यशोदामाता की ऐसी भावना थी कि गायों के आशीर्वाद से ही पुत्र हुआ है। अन्यथा पचपन वर्ष की उम्र में मुझे पुत्र हो, ऐसी मुझे आशा न थी। इससे कन्हैया के जाग्रत होने के साथ ही माता उसे गौशाला में ले आती हैं। बालकृष्णलाल के दर्शन होते ही गंगी गाय को बहुत आनंद होता। दूध की धारा उसके थनों से बहने लगती। गायों का ऐसा नियम था कि कन्हैया के दर्शन के बिना पानी भी न पीती थीं कई व्यक्ति मंगला के दर्शन का नियम लेते हैं पर घर में चाय-पानी, जलपान करके; झूमते हुए दर्शन के लिये जाते हैं।

जो लोग दर्शन नहीं करते, उनकी तुलना में तो अच्छा ही है। पर पेट की पूजा प्रथम है कि परमात्मा के दर्शन प्रथम हैं? पेट में कुछ डालने के बाद रजोगुण आता है। पेट अगर हल्का हो तो सात्विक भाव तुरंत जाग्रत होता है। पेट एकदम शुद्ध होता है, तब मन भक्ति रस में आर्द्र हो जाता है। उस समय पर ध्यान कीजिए, भक्ति कीजिए।

गोपी नजर उतारने के लिए बालकृष्णलाल को गंगी गाय के पास ले आयी। उसने गंगी की पूँछ को हाथ में लेकर तीन बार लाला के चरणों से मुख तक सर्वांग में घुमाया। गोपी मंत्र बोल रही थीं—मेरे लाला को किसी की नजर लग गयी हो ग्रह की बाधा हो, बाहर की कुछ बला लग गयी हो तो निकलकर इस गंगी गाय की पूछ में आ जाय! मेरा कन्हैया प्रसन्न हो। वह आनन्द में रहे।

लाला की नजर उतारकर गोपी ने कहा—माता! अब आप लाला को स्नान कराइये, उसे राक्षसी का स्पर्श हुआ है।

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसार्भकम्।
रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशांगेषु नामभिः॥ (१०-६-२०)

लाला को गाय का गोवर मला गया। गाय के गोबर में अनेक जन्तुओं को मारने की शक्ति होती है। लाला को मांगलिक स्नान करवाया। बाद में यशोदामाता लाला को गोद में लेकर बैठी। गोपियाँ उनके चारों ओर बैठ गयीं। ये गोपियाँ ऋषि-रूपा हैं। बड़े-बड़े ऋषि हजारों वर्ष तक तपस्या करते हैं, पर उनकी बुद्धि से काम निकलता नहीं है। काम बुद्धि में घर करके बैठा है। हम परमात्मा से मिलेंगे, हमें ब्रह्म-स्पर्श होगा। हमारी बुद्धि से काम निकल जायगा—इस तरह का अभिमान छोड़कर ये ऋषि, गोपी रूप धारण करके आये हैं। ऋषि होने के बाद गोपी हो सकते हैं। गोपियाँ कोई साधारण नहीं हैं। वे अनेक जन्मों के ऋषि हैं, इससे उन्हें मंत्रों का ज्ञान परिपूर्ण है। वे एक-एक मंत्र बोलती हैं—

अव्यादजोऽङ्घ्रि मणिमांस्तव जान्वथोरू यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः।
हृत् केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम्॥
(१०-६-२२)

आज भगवान् तुम्हारे चरणारविंद का रक्षण करें, मणिमान भगवान् तुम्हारी जंघा की रक्षा करें। विष्णु भगवान् तुम्हारे हाथों का रक्षण करें, जनार्दन वासुदेव तुम्हारे कंठ की रक्षा करें। श्रीवामनजी महाराज मुखारविंद का रक्षण करें—

क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः। (१०-६-२५)

मेरा कन्हैया खेलने जाय, तब गोविंद भगवान् उसकी रक्षा करें। मेरा कन्हैया जब सोये तब हे माधवराय! आप उसकी रक्षा करना!

मेरे लाला को कोई स्वप्न न आये। बालक घबराये नहीं। उसे प्रगाढ़ निद्रा आ जाय। हे, माधवराय! मैं आपके चरणों में बारंबार वंदन करती हूँ। मेरे लाला का रक्षण कीजिए। गोपी नहीं जानती कि जिस माधवराय को वह मना रही है वही माधवराय यशोदाजी की गोद में विराजमान है।

चरणों से मुखारविंद तक के लाला के सर्वांग को गोपी धीरे-धीरे सहला रही है। आदिनारायण परमात्मा के नाम का कीर्तन करती हुई सखियाँ परमात्मा को मना रही हैं—मेरे लाला का सर्वकाल में रक्षण करना।

गोपियाँ कहती हैं—माँ, बालक के पेट में डर होगा तो वह दूध नहीं पी सकेगा। आप लाला को स्तनपान कराइये। यशोदामैया लाला को हृदय का प्रेम-रस अर्पण करती है। माता का हृदय प्रेम से द्रवित होता है, तब प्रेम ही दूध बनकर बाहर निकलता है। इस दूध को गर्म करने की जरूरत नहीं है, न इसमें पानी डालने की जरूरत होती है। प्रेम ही दूध बन जाता है। स्तनपान करते हुए, लाला की आँखें बन्द हो गयी हैं। यशोदा मैया लाला को पालने में सुलाकर झुलाती हैं। उसी समय मथुरा से नंदबाबा आ गये हैं। सुना था कि राक्षसी आयी थी। इससे नंदबाबा घबराये हुए हैं। लाला को स्वस्थ देखकर प्रसन्न हुए। पूतना के शरीर का अग्नि-संस्कार किया गया। तब चिता से अगर चंदन की सुगन्ध आने लगी है। पूतना को प्रभु ने सद्गति दी है।

योगी कल्पना से परमात्मा का स्वरूप हृदय में धारण करके ध्यान-दर्शन करते हुए, तन्मय होते हैं। परमात्मा को मन से स्पर्श करने वाले योगियों को सद्गति मिलती है। आज पूतना के वक्षःस्थल में प्रत्यक्ष परमात्मा विराजमान थे। तब पूतना को सद्गति मिल गई, तो क्या आश्चर्य है? श्रीकृष्ण की मार में भी प्यार है। विष देने वाली पूतना को भी श्रीकृष्ण मुक्ति देते हैं। फिर प्रेम से माखन-मिसरी खिलाने वाले को कन्हैया क्या न देगा?

य एतत् पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम्।
शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम्॥ (१०-६-४४)

पूतना-चरित्र पढ़ने-सुनने के बाद इसका मनन कीजिए। पूतना वासना है। वासना ही भक्ति में बहुत बिघ्न लाती है। वासनारूपी राक्षसी भयंकर है। निरन्तर भक्ति करने की आदत डालिये। साधारण भक्ति को—ज्ञान को पूतना धक्का मारकर हटा देती है। जो व्यक्ति नित्य हरि-स्मरण में लीन रहता है, वही वासना का विनाश कर सकता है। वासना के विनाश के बाद ही भक्ति में आनंद आता है।

५३- मंगला-दर्शन

कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम्।
वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकैश्चकार सूनोरभिषेचनं सती।।

(१०-७-४)

श्रीकृष्ण-लीला निरोध-लीला है जिसके मन का निरोध हुआ है, उसे मुक्ति जैसा ही आनन्द मिलता है। मन में विरोध हो या मन में कोई वासना हो तो मन का निरोध नहीं होता है। दीपक में जब तक तेल होता है तब तक वह जलता है, उसी तरह मन में जब तक वासना रहती है, तब तक मन अशांत रहता है।

शुकदेवजी महाराज राजर्षि को सावधान करते हैं। श्रीकृष्ण-लीला प्रभु का बहुत बड़ा अनुग्रह है। आनंदमय परमात्मा का कोई स्वार्थ नहीं है। भगवान् हमारे लिये लीला करते हैं। गोपियों को मृत्यु से पहिले मुक्ति का आनन्द देने के लिये गोकुल की लीला है। भागवत की कथा ऐसी नहीं है कि मरने से ही मुक्ति मिलती है। भागवत की कथा में ऐसी शक्ति है कि मानव को मरण के पहिले ही मुक्ति जैसा आनन्द देती है। गोपियों को परमानन्द का दान देने के लिये ही प्रभु ने यह लीला की है। आज हजारों वर्षों के बाद भी श्रीकृष्णलीला-स्मरण से ऐसा आनन्द मिलता है तो गोपियों को प्रत्यक्ष एक-एक लीला के दर्शन करते हुए कितना आनन्द मिला होगा।

इन्द्रियों की शक्ति संसार के विषयों में बह जाती है। संसार के विषयों में बह जाने वाली शक़्ति को विवेक से रोक कर प्रभु के मार्ग में ले जाइए। शक्ति का उपयोग भक्ति के लिये कीजिए। प्रत्येक इन्द्रिय में दिव्य शक्ति है। मानव शक्ति को नष्ट कर देता है। वह शक्ति का दुरुपयोग करता है, इंसलिए दुःखी होता है। शक्ति का सदुपयोग महान पुण्य है। आपकी आँखों में बहुत्त-सी शक्ति है। इस शक्ति का दुरुपयोग न होना चाहिये। साधारण मानव ऐसा समझता है किं इन्द्रियों के स्वामी विषय हैं पर वे उनके सच्चे पति नहीं है। श्रीकृष्ण का नाम है हृषि अर्थात् इन्द्रिय और ईस अर्थात् स्वामी। इन्द्रियों के स्वामी परमात्मा श्रीकृष्ण का नाम है। कान को शब्द सुनाई दे तो निद्रा नहीं आती है। आँखों को सुन्दर रूप दिखाई देता है, तो निद्रा नहीं आती है। ये इन्द्रियाँ रूप, रस, शब्द, स्पर्श और गंध आदि विषयों को छोड़ देती हैं, तब अंतर्यामी के साथ सो जाती हैं और तब ही निद्रा आती है। जब ये इन्द्रियाँ परमात्मा की ओर उन्मुख नहीं होती हैं, तब विषय इन्हें अपनी ओर खींचते हैं। आँख का परमात्मा के साथ विवाह कर दो। जहाँ बैठे हो वहाँ बैठे-बैठे ठाकुरजी के स्वरूप का दर्शन करो। आपकी दृष्टि ठाकुरजी से दूर न जाय, ऐसा निश्चय कर लो।

प्रभु ने ऐसा दिव्य स्वरूप प्रकट किया कि ठाकुरजी के दर्शन के बाद गोपियों को अब अन्य किसी को देखने की इच्छा नहीं होती है। श्रीकृष्ण अति सुन्दर हैं। अपने अति सुन्दर अलौकिक सौंदर्य से प्रभु ने गोपी का आकर्षण किया है। कन्हैया ऐसी सरस बाँसुरी बजाता है कि लाल की बाँसुरी सुनने के बाद गोपियों की और कुछ सुनने की इच्छा ही नहीं होती है।

यह तो बहुत अच्छा है कि आप लाला की कथा सुन रहे हैं और अभी तक बाँसुरी नहीं सुन रहे हैं। सचमुच ही जब आप कृष्ण की बाँसुरी सुनेंगे तो आपको घर में रहना नहीं भायेगा। जो लाला की बाँसुरी सुनता है, उसे लाला से मिलने की तीव्र इच्छा होती है। सोचता है कि यह मधुर नाद कहाँ से आया? जिसके कानों में स्वर आते हैं वे पागल से हो जाते हैं।

बड़े-बड़े ज्ञानी परमहंस ॐकार का जप करते हैं, ज्योतिर्मय ब्रह्म का ध्यान करते हैं। मैं ब्रह्म हूँ–ऐसी भावना के साथ ब्रह्म-चिंतन करते हुए तन्मय होते हैं। उनके कानों में जब वंशी के स्वर पहुँचते हैं, तब वे भी निराकार का ध्यान छोड़ देते हैं। श्रीकृष्ण उनके मन का आकर्षण करते हैं–

योगिनामपि चेतांसि हरतीति हरिः

लाला की बाँसुरी सुनने के बाद महान् परमहंस निराकार के ज्ञान को, निराकार ब्रह्म के ध्यान को छोड़कर नराकार श्रीकृष्ण के दर्शन और मिलन के लिये उत्कंठित होते हैं। लाला की बाँसुरी में ऐसी ही शक्ति है। बड़े-बड़े राजाओं को लाला की बाँसुरी सुनने के बाद राजमहल में रहना पसंद नहीं आता है। उन्हें संसार के सभी सुख तुच्छ प्रतीत होते हैं श्रीकृष्ण-मिलन की तीव्र उत्कंठा उनके मन में जागती है। वे पागल से राधे कृष्ण-राधे कृष्ण... कीर्तन करते हुए श्रीधाम वृन्दावन में जाते हैं। लाला ने वंशी से कानों का आकर्षण किया है लाला की वंशी सुनने के बाद और कुछ सुनने की इच्छा नहीं होती है।

लाला ने अलौकिक सौंदर्य से गोपियों की आँखों का आकर्षण किया है। वंशी से गोपियों के कानों का आकर्षण किया है। अलौकिक लीलाओं से गोपियों के मन का आकर्षण किया है। गोपियाँ मुझे देखें, मुझे सुनें, मन में रख लें। गोपियाँ मेरी ही बातें करें। प्रभु ने परमानन्द का दान देने के लिये लीला की है। श्रीकृष्ण-लीला में ऐसी शक्ति है कि इसके द्वारा अनायास जगत् भुलाया जाता है। किसी भी निमित्त से जगत् को भूल ही तो जाना है। परमात्मा के दर्शन में, स्मरण में तन्मय होना है। बड़े-बड़े योगी प्राणायाम, प्रत्याहार करते हैं। नाक पकड़कर बैठे रहते हैं। जितने समय तक वे प्राणायाम करते हैं। उनका मन शांत रहता है। प्राणायाम छोड़ने पर मन पुनः कूद फाँद करता है। यह मन कुत्ते की पूँछ के समान है। कुत्ते की पूँछ को नली में रखेंगे तब तक सीधी रहेगी पर नली से बाहर निकालेंगे कि वह टेढ़ी हो जायेगी।

शुकदेवजी महाराज गोपियों की प्रशंसा करते हैं। खुली आँखों से गोपियों का मन शांत रहता है। गोपियाँ नाक नहीं पकड़ती हैं, प्राणायाम-प्रत्याहार नहीं करती हैं। अनायास ही उनके मन का निरोध होता है। श्रीकृष्ण-लीला में ऐसी शक्ति है। सभी इन्द्रियाँ भगवान् की ओर उन्मुख हों, इसलिये भगवान् ने कृपा करके यह लीला की है। गोपियों का ऐसा नियम था कि मंगला के दर्शन करने के लिये वे जाती थीं। मंगला के दर्शन अंधेरे में हों तो अति उत्तम है। अंधेरे में दर्शन का अर्थ यह है कि किसी मानव के मुख को देखने से पहिले भगवान् का बराबर दर्शन कीजिए।

दर्शन वे ही करते हैं जो भगवान् को अपने हृदय के भीतर उतारते हैं। दर्शन करने जाने वालों से पूछिये कि आज ठाकुरजी के वस्त्र कैसे थे? शृंगार कैसा था? वे तो सिर खुजलाने लगेंगे। उनको न तो सिर की सुध रहती है, न पाँवों की। भगवान् के दर्शन इस तरह से कीजिए कि स्वरूप आँखों में से भीतर आकर बस जाय। आज के बाद जब कल दर्शन करने जायें तब तक वही स्वरूप आँखों के समक्ष प्रत्यक्ष रहे, कभी ओझल न हो!

गोपियों की आदत है कि श्रीकृष्ण के दर्शन के बिना उन्हें कहीं चैन नहीं आता है। कई व्यक्तियों को सुबह गर्म पानी नहीं मिलता तो चैन नहीं आता। आप सब प्रभु के प्यारे हैं। सब वैष्णव हैं। भले ही चाय पीजिए पर चाय के गुलाम न बनिये। निरंतर निष्ठा रखिये कि मैं वैष्णव हूँ। मैं भगवान् का दास हूँ। मैं भगवान् के आधीन हूँ। गोपियों को सुबह जाग्रत होने के साथ कन्हैया याद आता है। शय्या में से जाग्रत होने के बाद आपको क्या याद आता है?

कई लोग ऐसे हैं कि जाग्रत होने के साथ उन्हें याद आता है कि पैसे के लिए कहाँ-कहाँ जाना है? पैसे कहाँ से आयेंगे? शय्या में प्रभु का स्मरण कीजिए। जागने के साथ ही, उस क्षण में प्रभु के दर्शन कीजिए, स्मरण कीजिए। गोपियाँ दर्शन के लिए उत्कंठित होकर दौड़ती हैं। यशोदाजी ने कहा—अरी सखी, अभी तो अंधेरा है। इस समय तुम आयी हो? गोपी कहती है कि माँ मुझे लाला के दर्शन के बिना चैन नहीं आता है। इससे लाला के दर्शन करने आयी हूँ। यशोदाजी ने कहा—अरी सखी! अभी तो कन्हैया निद्रा में है। अभी आधा घंटा उसे आराम करने दे, बाद में मैं लाला को जगाऊँगी। कन्हैया तो आँखें बंद रखकर माँ और गोपी की सारी बातें सुन रहा है।

श्रीकृष्ण नाटक करने में बहुत चतुर हैं। लाला का नाम है नटवर गोपाल। नाटक में काम करने वालों का असली स्वरूप तो भिन्न ही होता है और जगत् को वे भिन्न स्वरूप दिखाते हैं। नाटक देखने वालों को यह अभिनय भुलाता है। श्रीकृष्ण परमात्मा हैं पर वे ऐसा नाटक करते हैं कि ना, ना, मैं देव नहीं हूँ, मैं तो यशोदा माता का पुत्र हूँ। माता ऐसा मान रही है कि कन्हैया निद्रा में है। सचमुच ही अगर श्रीकृष्ण सो जायें तो जगत् में जाग्रत कौन रहेगा? वे तो सोचते हैं कि मेरी माता

की इच्छा कि मैं अभी आधा घंटा आराम करूँ। इसी से लाला आधा घंटा आँखें बंद रखता है, नाटक करता है। गोपियाँ पालने के चारों ओर खड़ी हैं। एक-एक श्रीअंग में वे आँखें स्थिर करती हैं।

गंगातट पर शुकदेवजी महाराज संत-समाज में किसी ग्वालिन की कथा करने नहीं बैठे हैं। गोपी मात्र ग्वालिन नहीं है। गोपी भक्ति-संप्रदाय की आचार्या हैं। गोपी जगत् को समझा रही हैं कि भक्ति किस तरह से की जाती है। भक्ति करना अर्थात् क्या करना? भगवान् के स्वरूप में आसक्ति को भक्ति कहते हैं। संसार में आसक्ति ही माया है। परमात्मा के स्वरूप में मन और आँखें आसक्त बनती हैं, वही भक्ति है। जिसे संसार में सौंदर्य दीख पड़ता है, वह भगवान् की भक्ति उचित रूप से नहीं करता है। वह तो संसार की भक्ति करता है। जिसे ऐसी प्रतीति हुई है कि मेरे श्रीकृष्ण अति सुन्दर हैं, वही भगवान् की भक्ति करता है। ठाकुरजी के एक-एक स्वरूप में मन को, आँखों को स्थिर कीजिए, तब ही भक्ति हो सकेगी। गोपी भगवान् के चरणों में आँखें रखती हैं। एक गोपी कहती है कि अरी सखी, लाला के चरण मुझे बहुत भाते हैं। उन्हें सहलाने की इच्छा होती है। तुम देखो, उसके तलवे कितने लाल हैं। लाला के नाखून रत्न-से हैं। लाला की उँगलियाँ बहुत सुन्दर हैं। इस चरण में कमल का चिह्न है, स्वस्तिक का चिह्न है। इस प्रकार दास्य भाव में भक्त भगवान् के चरणों में ही दृष्टि रखते हैं। हनुमानजी दास्य भक्ति के आचार्य हैं। एक सखी कहती है कि अरी सखी, लाला के चरण तो अति सुन्दर है, पर मुझे लाला का वर्ण भी बहुत प्रिय लगता है। मेघ-सा इनका श्रीअंग है। एक गोपी कहती है कि लाला के मुखारविंद के दर्शन के बिना मुझे चैन नहीं आता है। जिनका सख्य भाव है, वात्सल्य भाव है, उसे मुख देखे बिना संतोष नहीं होता है। एक गोपी कहती है कि लाला की आँखें कैसी हैं। एक अन्य गोपी कहती है कि लाला के बाल कितने सुन्दर हैं।

श्रीकृष्ण के एक-एक अंग में आँखों और मन को स्थिर कीजिए। संसार के ध्यान से मन बिगड़ा है, परमात्मा के स्वरूप का ध्यान करने से वह सुधरता है। भगवान् के एक-एक अंग में आँखों और मन को स्थिर करके, प्रभु के स्वरूप में आसक्त होने पर भक्ति होती है। भक्ति करना सरल नहीं है। अपने मन को बारम्बार समझाइए कि संसार सुन्दर नहीं है, श्रीकृष्ण अति सुन्दर हैं। ये पुष्प अभी सुन्दर लगते हैं, दो-चार घंटों के बाद मुरझा जायेंगे। पुष्प के मुरझाने के बाद पुष्प में सौंदर्य नहीं दिखाई देता। फिर लोग उसे उठाकर फेंक देते हैं। जिस तरह पुष्प मुरझाते हैं, उसी तरह सारा जगत् मुरझा जाता है। नित्य-सुन्दर एक परमात्मा श्रीकृष्ण ही है।

गोपियाँ लाला के दर्शन में तन्मय हुई हैं। उसी समय लाला ने करवट बदलना प्रारंभ किया। उसे देखकर गोपियों को अतिशय आनंद हुआ। एक गोपी दौड़ती हुई यशोदामाता के पास पहुँची

और बोली कि लाला ने करवट ली है। मैंने अपनी आँखों से देखा। यशोदामाता को अति आनन्द हुआ। अभी तो कन्हैया दो-तीन महीनों का है और करवट बदल रहा है। मुझे उत्सव करना है।

घर में ठाकुरजी को प्रतिष्ठित करने के बाद रोज-रोज उत्सव कीजिएगा। ठाकुरजी के नाम हैं-नित्योत्सव-नित्यश्री। भगवत-स्मरण में तन्मय होने के लिये उत्सव है। उत्सव जगत् को भुलाने के लिये है। उत्सव के दिन जगत् भुलाया जाता है, भूख-प्यास भुलाई जाती है, देह का बोध भुलाया जाता है, तब ही उत्सव सफल होते हैं। उत्सव में धन गौण है, मन मुख्य है।

परमात्मा को धन की जरूरत नहीं है। परमात्मा जीव से प्रेम माँगते हैं और प्रेम देते हैं। जो अतिशय गरीब है, वह भी उत्सव कर सकता है। लाला को प्रसन्न रखने के लिए उत्सव कीजिए। भगवान् ने आपको धन दिया हो, तो उत्सव में थोड़ी सामग्री बनाइए। भगवान् को भोग लगाइए। किसी गरीब को बुलाइए और लाला का प्रसाद उसे दीजिए। कई लोग उत्सव मनाते हैं। दो सेर, पाँच सेर का मोहनथाल बनाते हैं पर किसी गरीब या ब्राह्मण को नहीं खिलायेंगे। कई लोग अपने साढू भाई को बुलाते हैं। कई व्यक्ति अपने संबंधियों को ही बुलाते हैं और घर के लोग इकट्ठे होकर खाते हैं। यह क्या उत्सव कहा जा सकता है? इसे तो 'व्यवहार-क्रिया' कहते हैं। किसी साधु-संत, किसी गरीब को बुलाइए और लाला का प्रसाद उन्हें दीजिए। भगवान् गरीब के मुँह से आरोगते हैं। ग्वाले बहुत गरीब थे, इससे कन्हैया उन्हें बहुत चाहता था। गरीब की पूजा होती है तब कन्हैया बहुत प्रसन्न होता है। आप गरीब की पूजा कीजिए। गरीब का सम्मान कीजिए और फिर लाला के दर्शन कीजिए। तब कन्हैया धीरे-धीरे होठों में हँसता हुआ दीखेगा। लाला को यह बहुत अच्छा लगता है। यशोदा माता ने निश्चय किया कि आज मुझे ग्वालों की पूजा करनी है। आज उत्सव करना है। आज कन्हैया ने करवट ली, आज के उत्सव का नाम है-अंग-परिवर्तन उत्सव। यशोदा माता कैसा सुन्दर बोलती हैं। यशोदामाता ने नहीं कहा कि गोपियाँ गरीब हैं, मैं उनकी मदद करना चाहती हूँ। यह जीव लक्ष्मी का पुत्र है। लक्ष्मी माता हैं और नारायण पिता हैं। लक्ष्मीपुत्र का कोई अनादर करता है तो प्रभु को बहुत बुरा लगता है। वे सोचते हैं कि जीव मेरा पुत्र है, उसे गरीब कहने वाले तुम कौन हो?

गरीब का अनादर न कीजिए। यशोदामाता कहती हैं कि मुझे ग्वालों की पूजा करनी है। 'समागतान् व्रजौकसः पूजयती। जो ऐसा समझता है कि मैं गरीबों की मदद करता हूँ, तो यह कथन उसके अभिमान का है। उसका अभिमान बढ़ जाता है। गरीब तो उसे हाथ जोड़ते हैं, उसका आभार मनाते हैं। गरीब की पूजा करने वाले को आशीर्वाद मिलते हैं, मदद करने वाले को आभार मिलता है। आप गरीब की पूजा कीजिए, आपको आशीर्वाद मिलेंगे। ''मैं'' भाव, अभिमान मर जाय, हृदय

में कोमल भाव जाग्रत हों तो मानना कि दान सफल है। कई व्यक्ति गरीब को देते हैं, पर घंटे-दो-घंटे बैठाने के बाद देते हैं। उससे कहा जाता है कि साहब अभी काम में हैं। इन बड़े साहब को झूठ बोलते हुए भगवान् का भी डर नहीं लगता है। साहब कुछ काम में नहीं है, वे तो बीबी के साथ गप्पें लड़ा रहे हैं। देने वाला अभिमान में रहता है, पर देने वाला बड़ा नहीं है। लेने वाला छोटा नहीं है। देने वाला परमात्मा का स्वरूप है, लेने वाला भी परमात्मा का स्वरूप है। गरीब में परमात्मा के दर्शन कीजिए। गरीब की पूजा कीजिए। जीवन में दस वर्ष भाग्योदय के होते हैं। उस समय प्रभु का स्मरण करके विवेक से व्यय करेंगे, तो वह सब वापस मिलेगा। भाग्य प्रतिकूल हो जाने के बाद लक्ष्मी नहीं रहेगी। धन कमाना कठिन नहीं है। विवेक से सत्कर्म में व्यय करना कठिन है।

भाग्य अनुकूल है, तब अपने हाथों से बहुत दीजिए। लक्ष्मी का सदुपयोग कीजिए। लक्ष्मीं माता है, जीव पुत्र है। माता का उपयोग कीजिए। जहाँ लक्ष्मी का सदुपयोग होता है, वहाँ लक्ष्मीजी अखण्ड भाव से विराजती हैं। नंदबाबा के घर लक्ष्मीजी पधारी हैं। नंदबाबा ने कहा कि पुत्र बहुत भाग्यवान है। नंदबाबा उदारता से सब लुटाते हैं।

५४- जीवन की गाड़ी को संभालिये

उत्सव में माँ ने सभी को निमंत्रण दिया है माँ सोच रही हैं कि बहुत-से लोग आयेंगे। मैं एक-एक की पूजा करना चाहती हूँ। यह कन्हैया जागता है तो मुझे छोड़ता नहीं है। यह सो जाय तो अच्छा है। घर का मुख्य व्यक्ति किसी को मान दे, और दूसरा कोई मान दे, उसमें बहुत फर्क होता है।

यशोदामाता की ऐसी भावना है कि मैं स्वयं एक-एक व्यक्ति की पूजा करूँगी। बालकृष्णलाल को पता चला कि माँ आज ग्वालों-गोपियों की पूजा करने वाली है। कन्हैया प्रसन्न हुआ। माँ की इच्छा है कि कन्हैया सो जाय तो अच्छा है। लाला ने ऐसी लीला की, कि आँखें बंद करके सो गया। यशोदामाता बहुत खुश हुईं कि पुत्र बहुत अच्छा है। कहती हूँ कि सो जाओ, सो जाता है। जगाती हूँ तो जाग जाता है। ऐसा बालक कभी हुआ नहीं है न कभी होगा।

कन्हैया बालक है? उसे बालक होना भी आता है और प्रतिकूल प्रसंग पर पिता होना भी आता है। वह आपकी रक्षा करेगा। वह सभी का पिता है, सभी का पुत्र है। वह अति उदार है। वह प्रेम भरा है। आप जब जगायेंगे वह जागेगा। कई लोग ऐसे हैं कि कभी सुबह सात बजे सेवा करते हैं तो कभी दस बजे सेवा करते हैं। पर कन्हैया कहता है कि मैं आपके हाथों में हूँ। जब जगायेंगे, जागूँगा और जब सुलायेंगे, सो जाऊँगा। सेवा का एक समय निश्चित कीजिए और उसी समय नियमित सेवा कीजिए।

माता की इच्छा के अनुसार बालकृष्णलाल निद्रा में हैं। माता ने सोचा कि आज बहुत से लोग आयेंगे, इससे लाला का यह पालना बाहर रख दूँ, इससे घर में बहुत जगह हो जायगी। बाहर एक बैल गाड़ी थी उसके तले माँ ने पालना रख दिया। पालने में बालकृष्णलाल सोये हैं। गोपियाँ आ रही हैं। यशोदा मैया एक-एक का पूजन करती हैं। पटड़े पर बैठाकर आदर के साथ भेंट देती हैं। लेने वाला भगवान् का स्वरूप है, ऐसा भाव रखकर वे देती हैं, पूजा करती हैं, चंदन की अर्चा करती हैं। कुमकुम का तिलक करती हैं, पुष्प की वेणी देती हैं, साड़ी देती हैं। जब कोई गोपी अकेली आती है तो माँ कहती हैं कि अकेली क्यों आयी हो? तुम्हारे बालक की भी पूजा करनी है। तुम घर जाकर बालक को ले आओ। इससे गोपी दौड़कर घर जाती है और बालक को लाती है। यशोदा माता पूजा करती हैं, तिलक करती हैं, गले में मोती की माला पहिनाती हैं, और सिर पर हाथ रखकर कहती हैं कि बेटा, तुम चिरायु होओ, सुखी रहो। बालक की पूजा से माता प्रसन्न होती है। यशोदामाता ने बालक के गले में मोती की माला पहिना दी गोपी की जीभ नहीं बोल रही, गोपी का हृदय बोल रहा है। बालकृष्णलाल की जय—वह हृदय से बोलती है और हृदय से ही आशीर्वाद देती है। लाला का जय जयकार करती है।

इस ओर पालने में सोये बालकृष्णलाल जागे हैं। उन्होंने देखा कि मेरी माता ने मुझे बैल गाड़ी के तले रखे दिया है। मेरी माता मेरा ही उत्सव कर रही है और मुझे ही उसने बाहर निकाल दिया है। लाला को यह अच्छा न लगा। उत्सव भगवान् में तन्मय होने के लिये है। उत्सव अंतर्मुख होने के लिये है। भीतर का आनन्द न मिले तो उत्सव उचित नहीं है। कई लोग उत्सव करते हैं पर उनका मन बाहर भटकता है। सोचते हैं कि कितने लोग आये हैं? कहाँ से आये हैं? अरे, जगत का स्मरण करने के लिये उत्सव नहीं है। भगवान् में तन्मय होने के लिये उत्सव है, देह-भान भूलने के लिये उत्सव है भगवान् भुलाये जायँ, ऐसा उत्सव किस काम का? यशोदामाता गोपियों के साथ बातें कर रही हैं। कन्हैया रो रहा है पर माता ने सुना नहीं।

कंसराजा का भेजा हुआ शकटासुर नाम राक्षस आया है। वह पूतना का भाई है। इस शकटासुर ने सोचा कि पूतना को मारने वाला, पूतना का काल यही बालक है। अभी वह बैलगाड़ी के तले सोया है। मैं बैलगाड़ी पर चढ़कर जोर से दबा दूँ तो पूतना का काल मर जायगा। ऐसा सोचकर वह बैलगाड़ी पर चढ़ गया। रोते-रोते ही बालकृष्ण की दृष्टि ऊपर गई। लाला ने देखा कि शकटासुर राक्षस बैठा है। लाला ने सोचा कि आज कंस मामा ने नया खिलौना भेजा है। मामा हैं और मामा ही खिलौने भेजते हैं न! कंस मामा खिलौने भेजते हैं और लाला एक-एक कर के तोड़ देता है। आज कंस मामा ने यह खिलौना भेजा है। बालक की प्रकृति है वह रोते-रोते पैर उछालता

है। लाला ने रोते-रोते पैर ऐसे उछाला कि शकटासुर को लात लगी। बैलगाड़ी को ठोकर लगी। कट्-कट्-कट् शब्द हुआ। बैलगाड़ी नीचे गिर पड़ी है। बड़ा धमाका हुआ गोप-गोपियाँ दौड़कर आ पहुँचे। कहने लगे कि क्या हुआ? क्या हुआ? इतनी बड़ी बैलगाड़ी नीचे गिर पड़ी? माता ने लाला को उठा लिया। इतनी बड़ी बैलगाड़ी कैसे उलटकर नीचे गिर पड़ी? यशोदामाता को आश्चर्य हो रहा है। तीन चार वर्ष के बालक वहाँ खेल रहे थे। कहने लगे कि यह कन्हैया रो रहा था। रोते-रोते लाला ने एक पैर उछाला। वह पैर एकदम लम्बा हो गया! लाला ने बैलगाड़ी उलट दी। लाला ने राक्षस मार डाला–

न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमित्युत।
अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः॥ (१०-७-१०)

यशोदामाता को विश्वास नहीं आ रहा है। कन्हैया तो बालक है। वह इतनी बड़ी बैलगाड़ी को कैसे उलटा कर गिरा सकता है? माँ कहती है कि तुम सब झूँठ बोल रहे हो। बालक कहने लगे–ना, माँ हमने अपनी आँखों से देखा है। लाला का पैर लम्बा हुआ और उसने बैलगाड़ी उलटाकर गिरा दी। लाला ने राक्षस को मारा है। बैलगाड़ी के तले जो श्रीकृष्ण को रखते हैं, उनके जीवन की गाड़ी उलटी गिर पड़ती है। जो प्रमुख है, उसे ऊपर रखिये। जब जीवन में प्रभु गौण हो जाते हैं, तब काम-सुख प्रमुख हो जाता है। भक्ति गौण होती है, तब भोग मुख्य हो जाता है। वह ही शकटासुर का स्वरूप है। यशोदामाता ने बैलगाड़ी के ऊपर लाला को रखा होता तो शकटासुर आने वाला न था। माता की भूल थी कि बैलगाड़ी के तले लाला को उन्होंने रखा। मानव का जीवन एक बैलगाड़ी है। गाड़ी के ऊपर श्रीकृष्ण को रखिये। गाड़ी के तले जो श्रीकृष्ण को रखते हैं, उनकी गाड़ी को श्रीकृष्ण ठोकर लगाते हैं। जीवन में धन प्रमुख नहीं है, परमात्मा प्रमुख हैं। जीवन में धन की जरूरत है पर हमारे ऋषियों ने धन को साधन माना है, साध्य नहीं। जीवन में पैसा प्रमुख हुआ, तब से पाप बढ़ा है। और तभी से जीवन बिगड़ा है। यशोदामाता बैलगाड़ी के तले लाला को रखती हैं। परमात्मा हुए गौण, लौकिक सुख हुआ प्रमुख। जीवन में भक्ति गौण है, उसकी छाती पर काम चढ़कर बैठता है, उसके जीवन में काम प्रमुख हो जाता है। मानव काम को एकदम नहीं छोड़ सकता है। काम त्याग सरल नहीं है, अति कठिन है। धर्म की मर्यादा में रहकर विवेक से थोड़ा सुख भोगना ठीक है, पर जीवन में काम प्रमुख नहीं है, परमात्मा मुख्य हैं। चेतन गौण हो जाता है, तब जड़ मुख्य होता है। जिसके जीवन में चेतन परमात्मा गौण हो जाते हैं, उसकी बुद्धि जड़ हो जाती है। मानव जड़बाद है। चेतन जड़ से श्रेष्ठ है। जीवन में भगवान् की भक्ति मुख्य है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–ये चार पुरुषार्थ माने गये हैं। इस में पहला धर्म है, अंतिम मोक्ष

है। अर्थ और काम दोनों को मध्य में रखा है। अर्थ और काम मुख्य नहीं है। धर्म मुख्य है, मोक्ष मुख्य है। ऐसा क्यों न कहा कि अर्थ, काम धर्म, मोक्ष? अर्थ धर्मानुकूल हो तथा काम धर्मानुकूल हो। प्रथम है धर्म और अंतिम है मोक्ष पर जब परमात्मा गौण हो जाते हैं, तब गाड़ी उलटे मार्ग पर चढ़ जाती है। मानव का जीवन गाड़ी है। पति-पत्नी इसके दो बैल हैं। कई लोग ऐसे हैं कि रोज कथा में नहीं जाते, पर कहते हैं कि रविवार के दिन जायेंगे। रविवार के दिन भी कथा में नहीं आते।

जब मित्र पूछते हैं कि आप तो कह रहे थे कि रविवार के दिन कथा में जाना है, पर आप तो आये नहीं? तब उत्तर मिलता है कि आना तो था पर बालक रोने लगा, इससे पत्नी ने कहा कि बालक को रोते हुए छोड़कर कथा में जायेंगे तो क्या पुण्य मिलेगा? बालक को ही खिलाइये न। मित्र पूछते हैं कि घर में बैठकर क्या किया? विष्णुसहस्त्रनाम का जप किया कि रविवार की छुट्‌टी का दिन था इसलिये और कोई जप-पाठ किया? भक्ति करने से तन-मन को आराम मिलता है। इससे तन मन शुद्ध होते हैं। बहुत खाने से, बहुत भटकने से तन-मन दोनों बिगड़ते हैं। रविवार छुट्‌टी के दिन अधिक भक्ति कीजिए। उस भाई ने कहा-आप जानते ही हैं कि घर में कुछ नहीं हो सकता है। फिर याद आया कि यह अंतिम रविवार है इसलिए सिनेमा देखने गये। किसी एक जीव को निमित्त बनाकर परमात्मा सत्संग करवाते हैं। यह प्रभु की कृपा चाहती है कि यह जीव जहाँ जाय, जीवन सुधार करे। कथा का एकाध शब्द भी मर्म का स्पर्श कर ले तो जीवन सुधर जाता है। श्रृंगार के चित्र देखने से और श्रृंगार के गीत गाने से जीवन मन बहुत बिगड़ते हैं। कथा में जाने पर प्रसाद मिलता है। सिनेमा देखने से प्रसाद नहीं मिलता है। कथा में जाने से मन शुद्ध होता है। भगवान् को बैलगाड़ी के ऊपर रखिये। भगवान् मुख्य हैं, भोग गौण है। जीवन में भगवान् मुख्य हैं तो बैलगाड़ी सीधे रास्ते पर चलती है। जीवन में परमात्मा गौण हो जाय तो बैलगाड़ी उलट जाती है। यशोदा माता ने लाला को गाड़ी के तले रखा और गाड़ी में दही-माखन रखा था। इससे भगवान् गौण हुए और गाड़ी उलट गई। यशोदाजी को गोपियाँ समझा रही हैं कि माता आपके घर आकर हम आपके सब काम करेंगी, आप लाला को संभालना लाला को गोद में लेकर बैठना। नंद-यशोदा जब श्रीकृष्ण से दूर जाते हैं, तब ही राक्षस आते हैं। कृष्णलीला में यही रहस्य है। नंद-यशोदा श्रीकृष्ण के पास रहते हैं तो कोई राक्षस नहीं आता है। बुद्धि विश्वनाथ के सम्मुख हो, बुद्धि परमात्मा के पास हो तो कभी कोई राक्षस नहीं आता है। नंदबाबा लाला को छोड़कर मथुरा गये, तब पूतना आयी। यशोदा मैया लाला को पालने में रखकर गोपियों का स्वागत करती हैं। वे लाला को भूल गयी हैं। तभी शकटासुर आया। नंद-यशोदा जब-जब लाला से दूर गये हैं, तब तब विपत्ति आयी है, राक्षस आये हैं। व्यवहार का काम कीजिए पर आपकी बुद्धि श्रीकृष्ण

से दूर न हो, इसका ध्यान रखिये। जीवन का लक्ष्य धन नहीं है, जीवन का लक्ष्य परमात्मा हैं। लक्ष्य को ध्यान में रखकर व्यवहार कीजिए। व्यवहार का काम तो करना ही पड़ता है पर व्यवहार के कार्य को करते हुए अपने लक्ष्य को नहीं भूलना चाहिये। शरीर और इन्द्रियाँ भले ही व्यवहार का कार्य करें, पर मन बुद्धि श्रीकृष्ण से दूर न जाने चाहिये। भगवान् से दूर जाने से विपत्ति आती है। बालकृष्णलाल ने शकट-भंजन की लीला की है। शकटासुर का प्रभु ने उद्धार किया, प्रभु ने शकट-भंजन किया, तब प्रभु एक सौ आठ दिन के थे। शकटासुर छाती पर चढ़कर बैठ जाय तो एक सौ आठ मनकों वाली माला हाथ में रखिये। माला के साथ मैत्री कीजिए। निरंतर जप करने की आदत डालिये। परमात्मा के नाम के साथ मैत्री करेंगे, तो शकटासुर का नाश होगा।

बाद में, तृणावर्त के प्रसंग का आलेखन है। तृणावर्त रजोगुण है। वह आँखों में धूल फेंकता है। प्रभु ने तृणावर्त का उद्धार किया है। दशम स्कंध की लीला सागर के समान है।

इस स्कंध में तृणावर्त लीला और विजृंभण लीला भी है। यशोदा मैया प्रेम से लाला को दूध पिला रही हैं। माता के हृदय में बहुत प्रेम है, इससे दूध भी बहुत आता है। कन्हैया दूध पीता है। बालक बहुत दूध पीता है तो माता को चिंता होती है कि लाला को अपच न हो जाय। उस समय लाला को उबासी आती है और यशोदामाता को तो लाला के मुख ब्रह्मांड के दर्शन हुए हैं। कन्हैया कहता है कि माँ, मैं अकेला दूध नहीं पीता हूँ। मेरे पेट में ये सब हैं। सारा जगत लाला के पेट में है। शकट-भंजन, तृणावर्त का उद्धार और विजृंभण—ये तीनों लीलाएँ सातवें अध्याय में हैं।

५५– नारायण के समान गुण

धीरे-धीरे बालकृष्णलाल बड़े होते हैं।

गर्गः पुरोहित राजन् यदूनां सुमहातपाः।
व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः॥ (१०-८-१)

बालकृष्ण लाल घुटनों के बल सरक रहे हैं। सरकते-सरकते कन्हैया गौशाला में जाता है और तब गायें बहुत प्रसन्न होती हैं। यशोदामाता को चिन्ता होती है कि कदाचित कोई गाय लाला को मारे तो? पुनः वे मन को मनाती हैं कि ना, ना, मेरी गायें तो लाला को सहलाती हैं, लाला की देखभाल रखती हैं। कन्हैया गौशाला में खेल रहा है। एक गाय ने अभी बछड़े को जन्म दिया है। तीन-चार दिन का बछड़ा अभी वहाँ बैठा था। आधी आँखें खुली थीं, आधी बंद थीं। बालकृष्णलाल वहाँ घुटनों के बल चलते आये हैं। बछड़े को देखकर लाला को लगा कि यह तो मेरा मित्र बैठा है और मेरे समान ही है। तीन-चार दिन का बछड़ा निर्दोष होता है, निर्विकार होता है। श्रीकृष्ण

को काम का स्पर्श नहीं है। इस से जो निष्काम हैं, वे ही लाला को प्रिय हैं। निष्काम के साथ परमात्मा खेलते हैं। लाला को बछड़ा बहुत अच्छा लगता है, इससे वह बछड़े के गले में हाथ डालकर प्यार करता है। प्रेम से बछड़े को वह खिलाता है। इससे वह बछड़ा तो थोड़ा घबरा गया और हम्मा बोलने लगा। तब लाला को भी डर लगा। कन्हैया भी मैया- मैया पुकारने लगे। बछड़ा गाय माता को और कन्हैया यशोदामाता को पुकारने लगे। रसोई घर से यशोदामाता दौड़कर आ पहुँची, बोली कि क्या है? क्या है? अब यह लड़का मुझे घर के काम करने नहीं देता है। बहुत चंचल हो रहा है। लाला को उन्होंने उठा लिया। यशोदाजी का श्रीअंग भारी था, इससे यशोदामाता घर का काम करतीं तो लाला को अखरता था, वह मानो कहता है कि माँ, तुम मुझे छोड़कर घर का काम करती हो, मुझे तो बहुत डर लगता है। माँ! तुम अकेला छोड़कर न जाओ। यशोदाजी कहती हैं कि लाला मैं तुम्हें गोद में लेकर बैठी रहूँ तो घर का काम कौन करेगा? लाला कहता है कि घर का काम गोपी करेगी। मेरी माता बहुत काम करेगी तो थक जायेगी। कन्हैया माता की बहुत सँभाल रखता है।

एकबार गर्गाचार्यजी घूमते हुए वहाँ पधारे हैं। गर्गाचार्यजी ज्योतिष शास्त्र के पंडित हैं। नंदबाबा ने गर्गाचार्यजी का स्वागत किया और कहा–महाराज, आप आये तो बहुत अच्छा हुआ। वृद्धावस्था में बालक आया है, इससे उसका नाम नहीं रखा है। सब इसे लाला कहते हैं। आप ज्योतिष शास्त्र के पंडित हैं। तो लाला का नामकरण कीजिए। गर्गाचार्यजी ने कहा–नामकरण एक धार्मिक संस्कार है। विधि से करेंगे तो छह-सात घंटे लगेंगे। नगर में आपका सभी से प्रेम भाव है। आप सभी को निमंत्रण दें तो लौकिक कामों में ही समय व्यतीत हो जायगा। कई लोग तो पुरोहितजी से कह देते हैं कि पूजा जल्दी निबटाना हमारा दूल्हा दो घंटों तक घूमेगा। पूजा में निबटाने की वृत्ति वालों की पूजा-पूजा ही नहीं है। दूल्हा धार्मिक नहीं है। लौकिक रस्मों को बहुत महत्व न देना चाहिए। लौकिक को बहुत महत्व देने वाले का अलौकिक बिगड़ता है। नंदबाबा ने कहा– मुझे लौकिक को बहुत महत्व नहीं देना है। आप धार्मिक विधि बराबर कीजियेगा। सनातन धर्म में सोलह संस्कार बतलाये गये हैं। पुत्र के जन्म मात्र से कुछ सुख नहीं मिलता है। पुत्र लायक हो तो ही सुख मिलता है। सत्पुत्र सुख देता है। पुत्र लायक न हो तो अधिक त्रास देता है। बालक माता के पेट में आ जाय, तब से उसे अच्छे संस्कार देना चाहिये। लोग पानी को छानकर पीते हैं। दूध, घी, तेल को भी छाने बिना लेना नहीं चाहिए। यह उसका संस्कार है। संस्कार से शुद्धि होती है। संस्कार से नयी शक्ति आती है। यह जीव पशु, पक्षी की योनि में भटकते-भटकते मानव-शरीर में आया है। इससे उसे अच्छे संस्कारों की जरूरत है।

मानव कभी-कभी पशु जैसा बोलता है। कभी-कभी पशु जैसी क्रिया करता है। वह किसी जन्म में पशु होगा। उसे संस्कार देना आवश्यक है, अनिवार्य है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि बालक के जन्म के बाद उसके ऊपर किसी संत-महात्मा की दृष्टि पड़े, या छाया पड़े तो बालक में संत-महात्मा के कुछ संस्कार आते हैं। जातकर्म संस्कार से पवित्र ब्राह्मण की दृष्टि पड़ती है। जातकर्म संस्कार में पितरों की पूजा होती है। वेदमन्त्र बोलकर अभिमन्त्रित शहद बालक को चटवाते हैं। ये सभी संस्कार अब भुलाये गये हैं। संस्कार न होने से बुद्धि बिगड़ती है। नामकरण एक संस्कार है। गर्गाचार्यजी ने कहा कि नामकरण संस्कार में होम करना पड़ता है। लाला का जन्म नक्षत्र रोहिणी है। उस रोहिणी नक्षत्र में देव की स्थापना करके, देव की पूजा करनी पड़ती है। अग्नि प्रकट करके उस देव का होम करना पड़ता है। नामकरण संस्कार विधि छह-सात घंटों तक चलती है। नंदबाबा ने कहा कि महाराज, मुझे किसी को निमंत्रण नहीं देना है। उनकी माताएँ, आप, मैं और ये दो बालक रहेंगे। मैं लौकिक को बहुत महत्व नहीं देता हूँ। धार्मिक विधि बराबर कीजियेगा। गर्गाचार्यजी कर्मकाण्ड में निपुण हैं। वे विधि से नामकरण संस्कार करते हैं। होम किया गया और फिर नामदेव की पूजा की है, फिर नामकरण हुआ है। रोहिणीजी की गोद में दाऊजी बैठे हैं। यशोदाजी की गोद में हैं बालकृष्णलाल। गर्गाचार्यजी ने कहा कि बाबा, रोहिणीजी की गोद में जो बालक है, वह बहुत बलवान होगा। यह लोगों को खिलायेगा, सुखी करेगा। इस बालक का नाम रखता हूँ बलराम। यशोदाजी की गोद में जो बालक है, वह तो युग-युग में रंग परिवर्तित करता रहा है। सत्ययुग में उसका शुक्ल स्वरूप था, त्रेतायुग में रक्त स्वरूप था। इस द्वापरयुग में यह मेघ-समान श्याम है।

इस बालक के नाम अनंत हैं, इसके गुण भी अनंत हैं। एकबार यह वसुदेवजी के घर प्रकट हुआ है, इससे कुछ लोग इसे वासुदेव कहेंगे। यह बालक सभी का आकर्षण करेगा, इससे इसका नाम रखता हूँ श्रीकृष्ण। यशोदाजी ने पूछा-लाला के जन्माक्षर में कैसे ग्रह हैं। गर्गाचार्यजी ने कहा-माता! ग्रह बहुत उत्तम हैं। लाला के जन्माक्षर में तीन ग्रह उच्च क्षेत्र के हैं, पाँच ग्रह स्वक्षेत्र के हैं। यह बड़ा राजा होगा। लक्ष्मी इसके चरणों में रहेगी। इसकी कीर्ति बहुत होगी। यह सर्वका रक्षण करेगा। लोगों का उद्धार करेगा। यह बालक बहुत प्रतापी होगा। यशोदाजी का शुद्ध प्रेम है। यशोदाजी कहती हैं कि महाराज आप तो सब अच्छा ही बतलाते हैं। लाला के जन्माक्षर में कोई खराब ग्रह तो नहीं है न? क्या किसी अनिष्ट का योग है? ऐसा हो तो पहिले ही बतला दीजिये।

गर्गाचार्यजी ने विचार करके कहा कि लाला के जन्माक्षर में आठ ग्रह अच्छे हैं। एक ग्रह खराब पड़ा है। राहु नीच क्षेत्र का है। यशोदा मैया घबरा गयीं और कहने लगीं कि महाराज, आप

आज्ञा कीजिए, मैं बारह ब्राह्मणों को राहु के जप के लिए बैठा देती हूँ। क्या राहु मेरे लाला को त्रास देगा? गर्गाचार्यजी ने कहा–माँ, किसी तरह के जप की आवश्यकता नहीं है। लाला को परेशानी हो, ऐसा खराब ग्रह नहीं है। हमारा तो ऐसा सिद्धान्त है कि जिस पुरुष के जन्माक्षर में सप्तम स्थान में नीच क्षेत्र का राहु हो, वह पुरुष अनेक स्त्रियों का पति होता है। लाला के लिए कुछ बुरा नहीं है। यह बालक अनेक स्त्रियों का पति होगा। यशोदामाता यह सुनकर खुश हुईं। अनेक स्त्रियों का पति हो तो क्या बुरा है? लाला का विवाह तुरंत हो जायेगा, ऐसा लगता है। गर्गाचार्यजी कहते हैं कि माँ विवाह तुरंत होगा, ऐसा लगता है। माँ, मैं आपसे क्या कहूँ। आपका कन्हैया नारायण भगवान् के समान होगा।

तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः।
श्रिया कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः॥ (१०-८-१९)

गर्गाचार्यजी ने कहा–यह बालक भगवान् नारायण जैसा होगा। श्रीधर स्वामी का अर्थ सरल है–नारायणेन सम श्रीकृष्णः। श्रीकृष्ण नारायण के समान होंगे। वृन्दावन के साधुओं को श्रीधर स्वामी का अर्थ बहुत अच्छा लगा। इससे संत अर्थ को परिवर्तित करते हैं। नारायण के समान श्रीकृष्ण हैं ऐसा नहीं हैं, पर नारायण श्रीकृष्ण के समान हैं। नारायणः समः येन श्रीकृष्णेन इति नारायणसमः–नारायण श्रीकृष्ण के समान हैं। पर ज़ो संत ऐसा अर्थ करते हैं कि नारायण के समान श्रीकृष्ण हैं, उस अर्थ में नारायण प्रमुख होते हैं और श्रीकृष्ण गौण होते हैं। वृन्दावन के साधुओं की श्रीकृष्ण में आसक्ति है। तत्त्व से नारायण और श्रीकृष्ण एक ही हैं। नारायण और श्रीकृष्ण में जरा भी भेद नहीं है। एक होने पर भी भिन्न हैं। नारायण, चतुर्भुज हैं और श्रीकृष्ण द्विभुज मुरलीमनोहर हैं। यह तो प्रेम की कथा है। प्रेम में पक्षपात का गुण प्रमुख है। वृन्दावन के साधु नारायण और श्रीकृष्ण को एक ही मानते हैं। किन्तु एक होने पर भी वे भिन्न हैं। हमारा कन्हैया दो हाथों वाला है। वह हमारा मुरली मनोहर है। नारायण को मैं मानता हूँ, नारायण को मैं वंदन करता हूँ पर नारायण से भी अधिक अपना कन्हैया मुझे प्रिय है। नारायण-श्रीकृष्ण समान हैं। मेरा कन्हैया तो नारायण से भी श्रेष्ठ है। गोपियों में अनेक बार चर्चा होती है–अरी सखी! मैं नारायण को वंदन करती हूँ पर मुझे ऐसा लगता है कि मेरा बालकृष्ण, नारायण से भी श्रेष्ठ है। मैं तुम्हें क्या कहूँ? नारायण शंख बजाते हैं, पर मेरा कन्हैया मधुर बाँसुरी बजाता है। शंख बजाने वाले देव बड़े हैं कि बाँसुरी बजाने वाले देव बड़े? इस जगत् में जितने भी देव हैं,वे सभी हाथ में शस्त्र लेकर बैठे हैं। कोई धनुष-बाण हाथ में रखते हैं तो कोई त्रिशूल हाथ में रखते हैं। कोई सुदर्शन चक्र हाथ में लेकर बैठे हैं। ये सभी देव एक-एक को शस्त्र से घायल करते हैं। अरी सखी! मेरा कन्हैया तो बाँसुरी

के स्वर से घायल करता है, प्रेम से घायल करता है। जब कन्हैया एक बार प्रेम से देखता है, तब वह चाहे राक्षस हो, या पशु, उसका दास बन जाता है। उसमें प्रभु का प्रेम जागता है। कृष्ण आँखों से घायल करता है। उसकी आँखों में प्रेम भरा रहता है। मेरा कन्हैया मुझे प्राणों से भी प्रिय है। नारायण में साठ गुण हैं, मेरे बालकृष्ण में चौंसठ गुण हैं।

श्रीकृष्ण में नारायण से भी चार गुण अधिक हैं। श्रीकृष्ण की वेणु-माधुरी, श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी, श्रीकृष्ण की लीला-माधुरी—ये चार गुण नारायण से भी कन्हैया में अधिक हैं। कन्हैया जैसी बांसुरी बजाता है, वैसी बांसुरी कोई नहीं बजा सकता है। कन्हैया जैसी लीला करता है, वैसी लीला कोई नहीं कर सकता है। गोपी के घर कन्हैया जाता है और कहता है—तुम्हारा माखन मुझे बहुत भाता है। तुम्हारे घर की छाछ बहुत मधुर है। गोपी लाला से कहती है—लाला मेरे घर जैसी छाछ तुम्हें सारे गाँव में कहीं नहीं मिलेगी, क्योंकि मेरे अनेक जन्मों का प्रेम इस छाछ में है। प्रेम-रस अति मधुर है। लाला! तुम्हें मेरे घर की छाछ पीनी है तो थोड़ा नाचो। तब मैं तुम्हें छाछ दूँगी। कन्हैया नाचता है। वैंकुण्ठ के नारायण से कोई कह सकता है कि आप थोड़ा नाचिये? अरी सखी! वैंकुण्ठ के नारायण को मैं मानती हूँ। मैं उन्हें वंदन करती हूँ पर वे हमारे साथ बातें नहीं करते हैं। उन्हें अभिमान है क्या? हमारा कन्हैया सर्व-से श्रेष्ठ है, पर लाला को जरा भी अभिमान नहीं है। बिना बुलाये वह मेरे घर आता है। मेरे पीछे-पीछे चलता है। मैं जब पूछती हूँ कि कन्हैया! तुम मुझ में क्या देखते हो? तब कन्हैया कहता है कि तुम्हारे घर मुझे बहुत आनंद आता है। क्या मैं तुम्हारे घर आ जाऊँ? अरी सखी! कन्हैया जैसी लीला करता है, वैसी लीला वैंकुण्ठ के नारायण भी नहीं कर सकते हैं। श्रीकृष्ण की लीला-माधुरी अलौकिक है। एक गोपी छाछ व माखन बेचने जा रही थी। घर में उसने संकल्प किया कि आज रास्ते में अगर कन्हैया मिल जायेगा तो मैं उसे घर लाकर माखन आरोगने दूँगी। इस विचार में ही गोपी तन्मय हो गयी। उसकी आँखों में श्रीकृष्ण हैं, उसके मन में श्रीकृष्ण हैं, उसकी बुद्धि में श्रीकृष्ण हैं। इससे बाजार में जाकर माखन लो, माखन लो, कहने के स्थान पर भूल से कहने लगी—'माधव लो, माधव लो—मैं तो बेचने निकली, व्रज की नारि.....माधव लो रे.... माधव लो...., लाला ने सोचा—यह तो आश्चर्य है। यह गोपी तो मुझे ही बेचने निकली है? इसका कितना प्रेम है। निरंतर स्मरण करते हुए चलती है। बालकृष्णलाल रास्ते में प्रकट हुए हैं। छुम-छुम करते हुए गोपी के पीछे-पीछे चलते हैं। गोपी श्रीकृष्ण के स्मरण में ऐसी तन्मय हुई कि उसे मालूम ही नहीं हो रहा कि लाला उसकी साड़ी पकड़ रहा है और कह रहा है कि मुझे माखन दे। मैं गोकुल का राजा हूँ। मुझे दान दो। गोपी लाला को चिढ़ाती है—तू कैसा गोकुल का राजा? गोकुल के राजा तो दाऊजी भैया हैं। तुम्हें माखन नहीं दूँगी। मुझे छोड़ दे, पर

कन्हैया छोड़ ही नहीं रहा है। किसी देव में है ऐसी ताकत कि रास्ते में जाती हुई किसी स्त्री की साड़ी पकड़ ले, उसका हाथ पकड़ ले। परस्त्री से देवों को भी संकोच होता है। कदाचित् इस तरह करूँगा तो लोग मेरी पूजा नहीं करेंगे। परस्त्री से सब घबराते हैं। कन्हैया के लिये कोई परस्त्री नहीं है। कन्हैया कहता है कि मैं सबका हूँ, सब मेरे हैं। कन्हैया गोपी का हाथ पकड़ लेता है, गोपी की साड़ी पकड़ता है और कहता है कि मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। गोपी कहती है—लाला में बड़े घर की हूँ। तुम इस तरह व्यवहार करो, तो उचित नहीं है। मुझे घर जाना है। गोपी लाला को छोड़कर घर जाने लगी। वह जानती है कि लाला को मेरा माखन भाता है वह थोड़ा चलती है और पीछे देखती है कि कन्हैया आ रहा है या नहीं। उसे घर ले जाना है।

रास्ते में एक पत्थर पड़ा था। लाला ने वह उठा लिया और छिपा दिया। गोपी की आँखें श्रीकृष्ण के मुखारविंद में स्थिर हैं। लाला के हाथ में क्या है, इसका ध्यान उसे नहीं है। उसे कुछ नहीं दीख रहा है। गोपी ने लाला को रास्ते में माखन नहीं दिया और इससे लाला रूठ गया है। लाला ने मटकी पर पत्थर मारा। दही फैल गया। माखन लुढ़क गया। गोपी की साड़ी बिगड़ गयी। कन्हैया दौड़ते-दौड़ते घर पहुँच गया। घर आकर माता की गोद में बैठ गया। कहने लगा कि माँ, एक गोपी तो बाघिन जैसी है। वह मेरे पीछे पड़ी है। यशोदा माता पूछ रही हैं कि बेटा! तुमने तो कुछ नहीं किया है न? लाला कहता है कि ना! मैंने तो कुछ नहीं किया, मैं तो कुछ नहीं जानता। गोपी ने आकर यशोदामाता से कहा—माँ, देखिये, मेरी साड़ी लाला ने बिगाड़ दी, मेरी मटकी फोड़ डाली। ऐसी-ऐसी शैतानी यह करता है। कन्हैया ने मटकी फोड़ दी, सो यशोदामाता को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने पूछा कि बेटा! तुमने मटकी फोड़ डाली? लाला ने कहा कि 'माँ! तुम गोपी को उसके घर जाने को कह दो। मुझे उससे डर लगता है। उसके घर जाने पर मैं तुम्हें सब समझा दूँगा। यशोदा माता ने कहा—बेटा, तुम्हें कोई नहीं मारेगा, तुम्हें जो कुछ कहना है, कह दो। लाला ने कहा—माँ, यह गोपी कंजूस है। दो-तीन दिन का बासी दही बेचने जा रही थी। मैं तो सब की सँभाल रखता हूँ कि हमारे गांव में किसी को बुखार न आ जाय। ऐसा दही खाने से तो बुखार आयेगा ही न? तीन दिनों का रक्खा दही था, इससे मैंने मटकी फोड़ डाली। आरोग्य-प्रचारक मंडल का अध्यक्ष मैं हूँ। जगत् में जितनी संस्थाएँ हैं, सभाएँ हैं, उनके अध्यक्ष श्रीकृष्ण हैं। यशोदाजी ने तो गोपी को उलहाना दिया—हमारे गांव में दही-माखन की क्या कमी है? कन्हैया कहता है कि तीन दिन का बासी दही है। ऐसा बासी दही तुम बेचने ले जाती हो? यशोदामाता ने कहा—जो हुआ सो हुआ, पर हमारे गांव में ऐसा विज्ञापन हो जाय, तो इसे लड़की कौन देगा?

इसने मटकी फोड़ दी है, ऐसा किसी से न कहना। मैं अपने घर की पाँच मटकियाँ देती हूँ। मटकी फोड़ता है पर कन्हैया गोपियों को इतना ही प्रिय है, प्राणों से प्यारा है। लाला को देखे बिना उन्हें चैन नहीं है। उसके साथ बातें किये बिना गोपियों का मन ही नहीं मानता है। गोपी कहती है—माँ! आपका यह कन्हैया हमें प्राणों से भी प्यारा है। मैं किसी से कहने वाली नहीं हूँ। श्रीकृष्ण की लीला-माधुरी ऐसी ही अलौकिक है। इससे महापुरुषों की समाधि लग जाती है और वे कृष्ण-लीला में तन्मय हो जाते हैं।

गर्गाचार्यजी यशोदामाता से लाला के जन्माक्षर देखकर कहते हैं कि मैया! यह बालक बहुत प्रतापी होगा। सबको सुखी करेगा। आपको भी सँभालेगा।

५६– चतुर्भुज-विष्णु को शीश झुकाता हूँ

यशोदाजी ने हाथ जोड़े और गर्गाचार्यजी से कहा—महाराज! यह सब तो ठीक है पर अब आप भोजन कीजिये। गर्गाचार्यजी ने कहा—मैं तो स्वयंपाकी हूँ। हाथ से खाना बनाता हूँ। माँ! मुझे किसी का पानी भी नहीं चलता है। गर्गाचार्य महान् तपस्वी और ज्ञानी ब्राह्मण थे। उन्होंने यमुनाजी में स्नान किया। बाद में घड़ा भरकर यमुनाजी का जल लाये। यशोदाजी विवेक से पूछती हैं—महाराज! आपके ठाकुरजी को क्या प्रिय है? आपके ठाकुरजी को जो प्रिय है, वही बनाइए। आप भी बोलते हुए विवेक रखियेगा। खाना बना रहे हैं तो ऐसा भाव रखिये कि भगवान् के लिये खाना बना रहा हूँ। प्रभु का स्मरण करते हुए, पवित्रता से खाना बनाइए। गर्गाचार्यजी ने कहा—अपने ठाकुरजी के लिये खीर बनाता हूँ। यशोदाजी ने सभी तरह की तैयारी कर दी है। गर्गाचार्यजी खीर बनाते हैं। थाली में खीर को ठण्डी कर रहे हैं। ठाकुरजी को गर्म-गर्म खाना प्रस्तुत न कीजियेगा। भगवान् बहुत कोमल हैं। आरोगते हुए उन्हें बहुत कष्ट होता है। आप जैसा अपने प्रति प्रेम रखते हैं, उससे हजार गुना प्रेम भगवद्-स्वरूप में रखिये। गर्गाचार्यजी ने खीर ठण्डी कर ली। खीर में तुलसी पधराई और नारायण का स्मरण करने लगे। हाथ जोड़कर नारायण की प्रार्थना करने लगे—हे वैकुण्ठाधिपते! हे चराचराधिपते! हे लक्ष्मीपते! गर्गाचार्यजी ने बहुत प्रेम से, पवित्रता से खीर बनायी है। यह खीर आरोगिये, गर्गाचार्यजी प्रेम से नारायण की प्रार्थना करते हैं। उनके शब्द लाला के कानों में पड़े। लाला ने सोचा कि यह तो मुझे ही बुलाते हैं। लक्ष्मीजी का पति और वैकुण्ठाधिपति तो मैं ही हूँ। अन्य कोई लक्ष्मी का पति तो नहीं है। हमें कोई प्रेम से बुलाता है और हम नहीं जाते हैं तो यह अच्छा नहीं है। बालकृष्ण तो दौड़ते हुए आते हैं और धीरे-धीरे प्रेम से खीर आरोगते हैं। गर्गाचार्यजी का ऐसा नियम था कि ठाकुरजी को भोग लगाकर आँखें बन्द करके ॐ.....नमो

नारायणाय.....ॐ नमो नारायणाय.....इस महामन्त्र की बारह माला करते और तब तक ऐसी भावना करते कि ठाकुरजी आरोग रहे हैं। भावना से भगवान् के आरोगने की कल्पना करते हैं। भक्तिमार्ग में भावना मुख्य है। भावना से भक्ति बढ़ती है। गर्गाचार्यजी आँखें बंद रख करके ॐ नमो नारायणाय का जप कर रहे हैं। बालकृष्णलाल धीरे-धीरे खीर आरोग रहे हैं। बारह माला पूर्ण होने पर आँखें खोलते हैं तो गर्गाचार्यजी को दर्शन हुए हैं......बालकृष्णलाल आरोगते हैं। अभी गर्गाचार्यजी ठीक-ठीक नहीं जानते हैं कि यह कौन है। गर्गाचार्यजी ने विचार किया कि मैं ब्राह्मण हूँ, नन्दबाबा वैश्य हैं। बनिया का पुत्र मेरी खीर को छू गया है। अब मुझसे यह खीर नहीं खायी जा सकती है। अरी यशोदा! अरी यशोदा!—गर्गाचार्यजी यशोदा को बुलाते हैं। यशोदामाता दौड़कर आयी है। यशोदामाता आती हैं, तब लाला को थोड़ा डर लगता है। लाला सोचता है, कि मेरी माता मुझे मारेगी तो?

कन्हैया एक बार माता को देखता है और दूसरी ओर महाराज को देखता है। लाला की आँखों में प्रेम भरा है। लाला की आँखें बहुत सुन्दर हैं। यशोदामाता ने पूछा—महाराज! यह कन्हैया खीर को छू गया क्या? महाराज कहने लगे—अरे! छू गया, आधी खीर खा गया। मैं तो आँखें बंद करके—ॐ नमो नारायणाय का जप कर रहा था। तुम्हारा पुत्र कब आया, पता ही नहीं चला। यशोदाजी को यह अच्छा न लगा। उन्होंने लाला से कहा—क्या तुम्हें घर में खाना नहीं मिलता है? इधर क्यों आया? लाला ने उत्तर दिया—इन महाराज ने मुझे बुलाया, इसलिए मैं आया। यशोदाजी ने गर्गाचार्यजी से पूछा—क्या आपने लाला को बुलाया था? गर्गाचार्यजी ने कहा—नहीं। मैं तो अपने इष्टदेव नारायण को बुला रहा था, और तुम्हारा पुत्र आ गया। मैंने इसे नहीं बुलाया था। यशोदाजी ने लाला को उलाहना दिया—तुम्हें कहाँ बुलाया था? वे तो अपने ठाकुरजी को बुला रहे थे। लाला ने कहा—मैं ही इनका ठाकुरजी हूँ। माँ! मैं नारायण हूँ। यशोदाजी ने अपने कानों पर हाथ रखते हुए कहा—यह लड़का कैसा कह रहा है? चाहे जैसा बोलता रहता है! अरे! तुम कैसे हो नारायण? तुम तो मेरे पुत्र हो। तुम्हें मालूम है कि नारायण के चार हाथ होते हैं। तुम्हारे कहाँ चार हाथ हैं। लाला ने कहा—माँ! तुम्हें चार हाथ देखने हैं? बतलाऊँ? यशोदा माता घबरा गईं......यह लड़का तो बहुत चमत्कारी है। इसका जन्म हुआ तब मुझे मालूम भी न हुआ। अभी ये चार हाथों वाला हो जायगा तो लोगों को ऐसा लगेगा कि यह यशोदा का लड़का नहीं है। लोग शंका करेंगे। माता ने कहा—तुम मेरे दो हाथों वाले बालकृष्ण रहो, यही मुझे पसन्द है। चार हाथों वाले न होना। कभी भी इस माँ के देखते चार हाथों वाले न होना। चार हाथों वाले देव को मैं मानती हूँ, पर मुझे मेरा बालकृष्ण अधिक प्रिय लगता है। कैसा सुन्दर है तू यशोदामाता ने बालकृष्णलाल को अति ममता से उठा

लिया और फिर गर्गाचार्यजी से कहने गईं—महाराज! बालक है, भूल हो गयी। गर्गाचार्यजी ने कहा तुम्हारा पुत्र खीर को छू गया, अब इस खीर को मैं नहीं खा सकूँगा। यशोदामाता ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज! मैं यह नहीं कहती कि आप इस खीर को खाइए, पर मेरी ऐसी भावना है कि आप फिर से खीर बनाइए। आप भूखे रहेंगे तो मुझे बहुत दुःख होगा। बोलते-बोलते माता की आँखों में आँसू आ गये। लाला ने ब्राह्मण को बहुत परेशान किया, आज ब्राह्मण भूखे हैं।

गर्गाचार्यजी ने पुनः घड़ा उठाया। नदी में स्नान करने गये। इधर यशोदाजी ने सब तैयारी कर दी। माँ ने निश्चय किया कि मैं लाला को छोड़ूँगी नहीं। महाराज शाँति से तो भोजन करेंगे। यशोदामाता बालकृष्णलाल को आँगन में ले आयीं। लाला को देखकर कोकिला कुहू-कुहू करने लगीं। लाला का शरीर मेघ-सदृश श्याम है। मोर को भी मेघ का रंग बहुत प्रिय है।

कन्हैया को देखकर मोर थेई-थेई नाचते हैं। लाला के चरणों में दो-चार पँख गिर पड़ते हैं। लाला ने कहा—माँ! यह मोर जैसा नाचता है, वैसा नाचना मुझे आता है। माता ने पूछा—लाला तुम्हें नाचना आता है? बेटा! मैंने तो नहीं देखा कि मेरा कन्हैया कैसा नाचता है? यशोदामाता तालियाँ बजाती हैं। बालकृष्ण छुम्-छुम् करते हुए नाचते हैं। चरणों में सुवर्ण के नूपुर हैं। कन्हैया ऐसा सुन्दर नृत्य करता है। देखकर यशोदा मैया को अति आनंद हुआ। बोलीं कि लाला तुम बहुत सुन्दर नाच रहे हो। दौड़ते-दौड़ते कन्हैया माँ के पास आता है और माता के गले में बाँहें डाल देता है। माता लाला को हृदय से लगा लेती हैं। यशोदामाता कहती हैं, कि बेटा, तुम बहुत सुन्दर नाचते हो। ऐसा सुन्दर नाचना किसने सिखाया है? लाला ने कहा—माँ! तुम्हारे पेट में था, तब से सीखकर जन्म लिया है मैंने। लाला को सब कुछ आता है। वह किसी को गुरु नहीं मानता है। वह सबका गुरु है। मोर जब नाचता है, तब उसके साथ-साथ मोरनी भी नाचती है। लाला ने पूछा—माँ, इस मोर के साथ-साथ कौन नाचता है? यशोदाजी ने कहा—बेटा! यह मोरनी है। माँ, मोरनी अर्थात् क्या? यशोदाजी समझाती हैं कि बेटा! मोर की बहू को मोरनी कहते हैं। मोर नाचता है तो उसके साथ उसकी बहू भी नाचती है। कन्हैया पूछता है कि माँ, मेरी बहू कहाँ है? मुझे बहू के साथ नाचना है। तुम मेरी बहू मुझे दिखलाओ। यशोदामाता को आनंद हुआ लाला माता से पूछता है कि माता! मेरी बहू कहाँ है? माँ, बहू के आने के बाद क्या होता है? माता कहती है कि अब, क्या होता है? तुम जब बड़े हो जाओगे, तब तुम्हें सब मालूम पड़ जायगा। लाला, तुम बहुत शरारत करते हो? चोरी करते हो तो तुम्हें बहू कौन देगा? लाला कहता है अच्छा, माँ मैंने अब, शरारत छोड़ दी है। अब तो तुम मेरी बहू मुझे दिखला दो। मुझे अपनी बहू देखनी है। माँ ने कहा—बेटा, जब तुम बड़े हो जाओगे तो मैं तुम्हारे लिये सुन्दर बहू लाऊँगी। यशोदामाता लाला को स्नेह से समझाती हैं।

इस ओर गर्गाचार्यजी ने फिर से खीर बना ली है और वे खीर को ठंडा करते हैं। लाला ने सोचा कि खीर तो अच्छी बनायी है। मुझे अर्पण किये बिना ये पानी भी नहीं पीते हैं। ऐसी सरस खीर बनायी है इससे मुझे तो बुलायेंगे ही पर मेरी माँ मुझे वहाँ जाने नहीं देगी। लाला का मजाक करने का मन हुआ। वह खेलते-खेलते माता की गोद में सो गया। यशोदामाता खुश हुईं। सोचने लगीं कि लाला सारा दिन खेलता रहता है, इससे थक गया है और सो गया है। बहुत अच्छा हुआ। बेचारे ब्राह्मण अब शांति से भोजन कर सकेंगे। बाद में मैं लाला को लेकर उनके चरणों में प्रणाम करूँगी। श्रीकृष्ण गोकुल में बालक होकर खेलते हैं। वे जतलाते हैं कि मैं देव नहीं हूँ, मैं ईश्वर नहीं हूँ, मैं तो आपका बालक हूँ पर श्रीकृष्ण परमात्मा हैं। जहाँ श्रीकृष्ण बिराजते हैं, वहाँ ऐश्वर्य-शक्ति हाथ जोड़कर सेवा में उपस्थित रहती है। आज लाला ने ऐश्वर्य-शक्ति को आज्ञा दी—मेरी माता को निद्रा आ जाय ऐसा करो। अचानक ठंडी हवा चलने लगी। ऐश्वर्य शक्ति ने माता की आँखों में प्रवेश किया। या देवी सर्व भूतेषु निदारूपेण संस्थिता—यशोदामाता को नींद आ गयी है। गोद में बालकृष्णलाल हैं और माता को नींद आ गयी है।

गर्गाचार्यजी प्रार्थना करते हैं—

ससंखचक्रं सकिरीट कुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहक्षणम्।
संहारवक्षः स्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम्॥

नारायण को वे मना रहे हैं— मेरे नाथ! आप पधारिये। एक बार बालक खीर को छू गया, इससे मैंने पुनः स्नान करके आपके लिये बहुत पवित्रता से तथा प्रेम से खीर बनाई है। आप इस खीर को आरोगिये। लाला के कानों तक शब्द पहुँचे। गर्गाचार्य मुझे बुला रहे हैं—ऐसा सोचकर बालकृष्णलाल उठे हैं। यशोदामाता निद्रा में हैं और बालकृष्णलाल दौड़ते-दौड़ते पहुँचे हैं। प्रेम से खीर आरोग रहे हैं। यह दूसरी बार हुआ। गर्गाचार्यजी को बहुत भूख लगी है। गर्गाचार्यजी सोचते हैं कि बारह माला करते हुए, समय लगेगा। तब तक मैं आँखें बंद रखूँगा किन्तु वह पुनः आकर छू जाय तो बालक बहुत चपल है। बारह माला करते हुए, आँखें बंद रखूँ तो ठीक नहीं है। ॐ नमो नारायणाय मंत्र जप करते-करते आँखें खोलकर देख लूँ कि वह आ तो नहीं रहा है? जैसे ही गर्गाचार्यजी ने आँखें खोलीं तो समक्ष कन्हैया दीख पड़ा। गर्गाचार्य व्याकुल हो गये। विचारने लगे कि यह तो पुनः आ गया। मेरी खीर फिर छू गया। अब मुझसे खीर नहीं खायी जायगी। लाला को दया आ गयी है। सोचा कि ब्राह्मण है, मेरा भक्त है। उसे कब तक भ्रान्ति में रखूँ? प्रभु ने लीला की। बालस्वरूप अंतर्धान हुआ और चतुर्भुज श्रीनारायण सम्मुख आ गये। गर्गाचार्यजी ने देखा कि यह तो मेरे इष्टदेव हैं। गर्गाचार्यजी को विश्वास हो गया कि मेरी भक्ति को सफल करने के लिये

मेरे भगवान् पधारे हैं। गर्गाचार्य साष्टांग वंदन करते हैं। मानते हैं कि आज मेरा जीवन सफल हुआ। आज मेरी भक्ति सफल हुई मेरे प्रभु प्रत्यक्ष आरोग रहे हैं। गर्गाचार्य वंदन करते हैं, तब उनके कानों में शब्द पड़े कि बैंकुण्ठ के नारायण ही श्रीकृष्ण हैं। नारायण और श्रीकृष्ण एक ही हैं। आपकी भक्ति सफल करने के लिए मैंने यह लीला की है। बाद में चतुर्भुज स्वरूप अंतर्धान होकर बालस्वरूप प्रकट हुआ है। कन्हैया जैसा प्रेम करता है, वैसा प्रेम करनेवाला जगत् में कोई नहीं हुआ और न कोई होगा। वह जब प्रेम करता है, तब जीव की योग्यता का विचार नहीं करता है।

एक रुपया जब देना हो तो आप बहुत सोचते हैं कि व्यक्ति योग्य है कि नहीं? बिना सोच-विचार मानव एक रुपया भी नहीं देता है, पर कन्हैया जब प्रेम करता है, तब विचार कहाँ करता है? वह अकारण कृपा करता है, अकारण प्रेम करता है। वह प्रत्येक जीव के साथ प्रेम करता है। लाला ने सोचा कि ब्राह्मण हैं। दो बार खीर बनायी पर स्वयं भूखे रहे और इन्हें भूख भी बहुत लगी है। मैं इन्हें खिलाऊँ। लाला ने लीला की है। गर्गाचार्यजी हाथ जोड़कर बैठे हैं। बालकृष्णलाल खड़े हैं तथा गर्गाचार्यजी के मुख में ग्रास दे रहे हैं। मेरे इष्टदेव ने मुझे उच्छिष्ट प्रसाद दिया—गर्गाचार्य यह सोचकर प्रेम से आरोग रहे हैं।

इस ओर यशोदामाता जागी हैं। माता ने देखा कि कन्हैया गोद में नहीं है। वे भीतर आती हैं; देखा कि कन्हैया कुछ दे रहा है और महाराज आरोग रहे हैं। एकबार मेरा पुत्र खीर को छू गया तो महाराज ने खीर ही न खायी और अब कन्हैया मुख में देता है और महाराज खा रहे हैं। महाराज की यह कैसी अनोखी रीति है? यशोदामाता को आश्चर्य हुआ? वे धीरे-धीरे आगे आती हैं। गर्गाचार्यजी ने देखा कि यशोदाजी पधार रही हैं, वे तुरंत उठकर खड़े हो जाते हैं और उनके चरणों में साष्टाँग वंदन करते हैं। यशोदाजी मना करने लगीं—महाराज! आप ब्राह्मण हैं मैं ग्वालिन हूँ। मुझे पाप में न डालिये। मैं आपके चरणों में वंदन करती हूँ। गर्गाचार्यजी ने कहा—माँ, तुमने बहुत पुण्य किया है। तुम्हारी गोद में परमात्मा खेल रहे हैं। लाला का तब जय-जयकार हुआ है। यशोदामाता को थोड़ी शंका हुई कि यह परमात्मा है कि मेरा पुत्र है? लाला ने सोचा कि महाराज ने घोटाला कर दिया। माँ अगर मुझे परमात्मा मानेंगी तो प्यार नहीं कर सकेंगी। ऐश्वर्य और वात्सल्य दोनों का विरोध है। जीव को ईश्वर से संकोच होता है। जहाँ ऐश्वर्य है, वहाँ संकोच है। मैं परमात्मा नहीं हूँ। मैं तो यशोदामाता का पुत्र हूँ। अगर यशोदामाता मुझे परमात्मा मानेगी तो लीला नहीं होगी। माता मुझे बालक मान लें तो ही अच्छा है। प्रेमरस लेने और देने के लिये ही मैं बालक हुआ हूँ, मैं ईश्वर हूँ, ऐसा ज्ञान अगर मेरी माता को हो जायगा तो वह मुझे धमकायेगी नहीं, प्यार भी नहीं कर सकेगी। जीव ईश्वर से दूर खड़ा रहता है, इससे प्रभु ने वैष्णवी माया का ऐसा आवरण डाल दिया

कि यशोदामाता सब भूल गयीं। यशोदामाता ने सोचा कि बालक सुन्दर है। इससे जो आता है वही प्रेम करता है। यह तो महाराज ने लाला को आशीर्वाद दिये हैं। माता ने लाला को गोद में उठा लिया। वह कन्हैया से प्यार करने लगीं।

५७– वत्सों को छोड़ रहे हैं........... असमय में........

बालकृष्णलाल के अब चार वर्ष पूर्ण हुए हैं। पाँचवा वर्ष शुरू हुआ है। कन्हैया अब ग्वाल-बाल मित्रों के साथ खेलने जाता है। मधुमंगल, मनसुखा, श्रीदामा–ये सब गरीब ग्वालों के बालक हैं। वे लाला के मित्र हैं। श्रीकृष्ण का प्रेम अलौकिक है। ग्वालों के साथ ग्वाल होकर वे खेलते हैं। मैं देव नहीं हूँ, मैं ईश्वर नहीं हूँ, मैं आपके समान ग्वाल ही हूँ–ऐसा मानकर प्रेम करते हैं। मनसुखा बहुत दुर्बल है। उसके शरीर की सभी हड्डियाँ दीख रही हैं। लाला ने मनसुखा के कंधे पर हाथ रखा और कहा–मनसुखा! तुम मेरे मित्र हो कि नहीं? मनसुखा ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी कि मैं मित्र हूँ। कन्हैया ने कहा कि तुम बहुत दुबले हो। ऐसा दुबला मित्र मुझे पसन्द नहीं है। तुम मेरे जैसे तगड़े हो जाओ। मनसुखा रोने लगा। उसने कहा–कन्हैया! तुम राजा के पुत्र हो। तेरी माता तुझे मलाई-माखन खिलाती है। इससे तुम तगड़े हो गये हो। मैं तो गरीब हूँ। मैंने कभी माखन नहीं खाया है। मेरी माता मुझे दूध भी नहीं देती है। छाछ ही देती है। कन्हैया! मुझे कोई माखन खिलाये तो मैं भी तुम्हारे जैसा तगड़ा हो जाऊँगा पर मुझ जैसे गरीब को कौन माखन देगा? लाला ने मनसुखा से कहा कि मैं तुम्हें हर रोज माखन खिलाऊँगा। मनसुखा ने कहा–कन्हैया! तुम हर रोज माखन नहीं खिला सकोगे। अगर तुम हर रोज माखन खिलाओगे तो तुम्हारी माता को गुस्सा आयेगा। वह नाराज हो जायगी। वह तुम्हें मारेगी तो?

लाला ने कहा–अपने घर का माखन नहीं, पर बाहर से कमाकर मैं तुम्हें खिलाऊँगा। मनसुखा पूछने लगा–लाला! तुम्हें कमाना आता है? कन्हैया कहता है–मुझे सब कुछ आता है। मनसुखा पूछता है–लाला! तुम कैसे कमाओगे? लाला कहता है कि हम सब मिलकर एक सहकारी मण्डली बनायेंगे, और तब बहुत कमा सकेंगे। मुझे सब कुछ आता है। मित्रों ने पूछा कि अपनी सहकारी मण्डली का नाम क्या रखेंगे? लाला ने कहा–बालगोपाल-चौर्यविद्या प्रचार मण्डल। मित्र पूछते हैं कि लाला, चौर्यविद्या मण्डल अर्थात् चोरी करना? लाला! तुम अभी से हमें चोरी सिखाते हो? चोरी करने पर हमें कोई पकड़कर, मारेगा। लाला ने कहा–तुम लोग इसकी चिंता न करना। मेरे गुरु ने मुझे एक मन्त्र सिखलाया है। इसको बोलते हुए, चोरी करने पर कोई हमें देख नहीं सकता और कदाचित् पकड़े गये तो भी छिटक कर भाग सकते हैं। मेरे पास मन्त्र है। लाला मित्रों के लिये

माखन–चोर बनने के लिये तैयार है। लाला ने एक–एक मित्र के कान में मंत्र कहा–कफलम्–कफलम्। बालक लाला से कहने लगे कि कन्हैया, 'कफ़लम्' का क्या अर्थ होता है? कन्हैया समझा रहा है कि अर्थ की तुम लोगों को क्या जरूरत है? इस जगत् में जितनी विद्याएँ हैं, उनके गुरू ब्राह्मण होते हैं। ब्राह्मण सबके गुरू हैं तो चोर के गुरू कौन हैं? चौर्य.... कला है। कफल ऋषि इसके आचार्य थे। जितने चोर हैं, सभी कफल ऋषि के शिष्य होते हैं। लाला ने मित्रों को मंत्र दिया है। यह मंत्र तो प्रभु ने ग्वालबाल मित्रों को ही दिया है। आप इस मंत्र को याद रखकर चोरी करने न जाइयेगा। थोड़ा सोच लीजिए कि चोरी पाप है। पाप कौन करेगा? शरीर के साथ खेलने में जो सुख मानता है, वह चोरी करता है। संसार में जड़ पदार्थों के साथ खेलता है, वह पाप करता है। ये बालक तो श्रीकृष्ण के साथ खेलते हैं। परमात्मा के स्वरूप में जो खेलता है, प्रभु के नाम में जो रमता है, परमात्मा से जो प्रेम करता है, वह पाप कर ही नहीं सकता है।

परमात्मा के साथ खेलने वाला पाप कर ही नहीं सकता। 'अविद्यावत् जीवपरायण सर्वाणि शास्त्राणि प्रवर्तन्ते सर्वेषां अविद्या दृष्टत्वात्। शास्त्र की प्रवृत्ति अज्ञानी जीवों के लिये है। जो श्रीकृष्ण के साथ खेलते हैं, उनके द्वारा कदाचित् पाप हो जाय तो इसका जबाब प्रभु ही देते हैं। आपका अगर इस 'कफलम्' मंत्र का उपयोग करने का मन हो या इच्छा हो तो आज से श्रीकृष्ण का ध्यान कीजिए। बालकृष्णलाल की प्रेम से सेवा कीजिए। श्रीकृष्ण–कीर्तन में तन्मय हो जाइए। आप अपने ठाकुरजी से कहिए कि मुझे आपके साथ खेलना है। अब मुझे किसी मानव के साथ नहीं खेलना है। प्रभु! द्वापर युग में जब आप प्रकट हों, तब मुझे भी किसी ग्वाले के घर जन्म देना। मैं आपका ग्वाला बनूँगा। मैं आपकी गोपी बनूँगा। हम सब लाला के ग्वाल मित्र बनकर गोकुल में जन्म लेंगे। लाला के साथ खेलेंगे और फिर 'कफलम् कफलम्' बोलते–बोलते चोरी करेंगे तो कोई हर्ज नहीं है।

लाला ने बालकों को मंत्र दिया है। बालकों ने लाला से कहा कि कन्हैया! अब तुम ही हमारे मण्डल के प्रमुख बनो। तुम्हारे सिवाय अध्यक्ष और कौन होगा? लाला ने कहा कि आप की इच्छा है तो मैं अध्यक्ष बनने के लिये तैयार हूँ। बालकों ने पूछा कि लाला, तुम अध्यक्ष हुए हो, पर क्या हमें कुछ काम करना पड़ेगा? लाला ने कहा कि काम किये बिना कैसे चलेगा? काम तो करना ही पड़ेगा। बालक पूछने लगे कि कन्हैया! हमें इस मण्डल का क्या काम करना पड़ेगा? लाला ने कहा कि और तो कुछ काम नहीं है, पर तुम लोग इतना करना कि गोपियाँ कब बाहर जाती हैं, और कब घर लौटती हैं, इसका पता लगाकर आना। और काम मैं सँभाल लूँगा। एक बालक ने कहा कि कन्हैया! मेरी माता तीन बजे बाहर जाती है, सात बजे वापस आती है। लाला ने कहा कि अगर ऐसा है तो मैं आज तुम्हारे घर आकर श्रीगणेश करूँगा। बालक कहता है–

लाला! तुम मेरे घर आना, आज मेरे घर बहुत-सा माखन है। लोग कहते हैं कि श्रीकृष्ण चोरी करता है। यह चोरी की कथा है।

जगत् का आकर्षण श्रीकृष्ण करता है, श्रीकृष्ण का आकर्षण गोपी-प्रेम करता है। गोपियाँ तन, मन, धन सर्वस्व श्रीकृष्ण को अर्पण करती हैं। जिन गोपियों ने सर्वस्व अर्पण किया है, उन गोपियों के घर जाकर लाला थोड़ा माखन आरोगता है तो क्या यह चोरी कही जायगी? लाला के घर बहुत सी गायें हैं, हर रोज बहुत-सा माखन होता है किन्तु कन्हैया घर का माखन नहीं खाता है। गोपियों के घर जाकर माखन आरोगता है यह अलौकिक दिव्य प्रेम कथा है। गंगातट पर संत-समाज में शुकदेवजी महाराज गोपियों की प्रशंसा कर रहे हैं। अलौकिक दृष्टि से जगत् के मालिक श्रीकृष्ण हैं। वे घर के स्वामी हैं, चोर नहीं हैं। अलौकिक भाव रखते हुए यह बात स्पष्ट होती है पर कदाचित् कोई मानव लौकिक भाव रखता हो तो भी यह चोरी नहीं है। जिस गोपी के घर में श्रीकृष्ण माखन आरोगते हैं, उस गोपी का पुत्र लाला की मंडली में है और लाला से कहता है कि मेरी माँ सात बजे के बाद घर आती है। गोपी का पुत्र घर का स्वामी ही कहा जायगा। फिर सब साथ माखन खाते हैं तो उसे चोरी कैसे कहा जा सकता है? लौकिक दृष्टि से भी यह चोरी नहीं है।

गोपियों का हर रोज का नियम है कि सुबह वे यशोदाजी के घर जाती हैं। लाला का दर्शन करती हैं और यशोदामाता को लाला की एक-एक लीला सुनाती हैं। गोपियाँ वर्णन करती हैं और यशोदा माता सुनती हैं-

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः
स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः।
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति
द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान्॥ (१०-८-२९)

एक गोपी ने कहा कि मां! कन्हैया बहुत शैतानी करता है। यशोदा माता पूछती हैं कि अरी सखी! मेरे लाला ने क्या किया? गोपी कहती है कि कल कन्हैया मेरे घर आया था दूध दुहने का समय नहीं हुआ था, फिर भी उसने बछड़ों को छोड़ दिया। माँ! सभी बछड़े सारा दूध पी गये। असमये वत्सान् मुञ्चन-दूध दुहने के बाद बछड़ों को छोड़ें वह तो साधारण ग्वाले हैं, पर यह ग्वाला तो ऐसा है कि दूध दुहने के समय से पहिले ही बछड़ों को छोड़ता है-

असमये-समयं अतिक्रम्य, वत्सान् विषयासक्त जीवान् संसार वंधनात् मुञ्चन्।

श्रीकृष्ण पुष्टि-पुरुषोत्तम हैं। श्रीकृष्ण जिस जीव पर विशिष्ट कृपा करते हैं, उस जीव को उसी जन्म में मुक्ति देते हैं। मुक्ति और सद्यो-मुक्ति-क्रम-मुक्ति में जीव एक-एक सीढ़ी चढ़ता हुआ परमात्मा के चरणों में पहुँच जाता है। शास्त्रों में वर्णन आता है कि ८३,९९,९९९ जन्मों के बाद इस जीव को शूद्र के घर जन्म मिलता है। शूद्र हो जाने के बाद चोरी न करे, व्यभिचार न करे तो दूसरे जन्म में वैश्य होता है। सत्य नीति के अनुसरण से व्यापार-धंधा करे, तो मरने के बाद क्षत्रिय होता है। क्षात्र-धर्म का यथायोग्य पालन करने पर, शरीर छोड़ने पर ब्राह्मण होता है। दिन में तीन बार संध्या करने पर, गीता का अध्ययन करने पर, सत्कर्म करने पर मृत्यु के बाद दूसरे जन्म में अग्निहोत्री होता है। अग्निहोत्री ब्राह्मण देहाध्ययन करे, उपासना, ब्रह्मचर्य इत्यादि का पालन करे तो अग्निहोत्री के बाद योगी होता है। योगी परमात्मा के साथ मन से संयोग सिद्ध करते हैं। योगी बहुत सावधान रहते हैं कि नया पाप न हो जाय। जितने पाप हैं, वे भोग कर पूर्ण कर लूँ। हमारे शास्त्रों में वर्णन है कि योगी को भी तीन जन्म लेने पड़ते हैं। संचित, क्रियमान, और प्रारब्ध –इन तीनों के विनाश के लिये योगी जन्म लेते हैं–

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।

योगी, नया पाप न हो, इसका ध्यान रखते हैं। वे सतत् परमात्मा का ध्यान करते हुए ब्रह्ममय होते हैं। तीसरे जन्म में संचित, क्रियमाण तथा प्रारब्ध का विनाश करके योगी भगवान् के चरणों में लीन हो जाते हैं। इसका नाम है क्रम-मुक्ति पर श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम हैं। जिस जीव पर उनकी कृपा-दृष्टि होती है वह जीव अपने इस जीवन में ही मुक्ति पाता है। कल्पना कीजिए कि कोई वैश्य प्रेम से बालकृष्णलाल की सेवा करता है कीर्तन करता है, प्रभु से विनय करता है कि प्रभो! मुझे किसी के पेट में नहीं जाना है। मुझे पति नहीं होना है, पत्नी भी नहीं होना है। इस संसार का मैंने बहुत ही अनुभव किया। अब तो मुझे आपके चरणों में आना है। वैश्य प्रभु की बहुत सेवा करता है। कीर्तन करते-करते प्रभु की प्रार्थना करता है, तो प्रभु को दया आती है और प्रभु जीव को उठाकर स्वधाम में ले जाते हैं। मुक्ति का नियम ऐसा है कि वैश्य के बाद क्षत्रिय होना पड़े, ब्राह्मण होना पड़े अग्निहोत्री होना पड़े, योगी होना पड़े तो बाद में मुक्ति मिलती है पर वैश्य पर प्रभु की कृपा हो तो उसे ब्राह्मण, अग्निहोत्री योगी कुछ भी होने की जरूरत नहीं रहती है। उसे इस जन्म में ही श्रीकृष्ण, मुक्ति दे देते हैं। इतिहास में ऐसे उदाहरण हैं। राजा की कृपा सिपाही पर होती है तो सिपाही को वह दीवान बना देता है। राजा चाहे तो सिपाही को राजा भी बना सकता है पर राजा कभी ऐसा नहीं चाहता है।

परमात्मा की साधारण कृपा सर्वजीवों पर है पर जिस जीव पर विशिष्ट कृपा भगवान् करें, तो उसे परमात्मा, परमात्मा बनाते हैं। भगवान् विशिष्ट कृपा कब करते हैं? जब यह जीव एकांत में बैठकर परमात्मा के लिये रोता है कि मेरा प्रभु से वियोग हुआ है। मुझे परमात्मा के चरणों में जाना है। तब प्रभु को दया आती है। यह जीव रोता हुआ माता के पेट से बाहर आता है और जब संसार छोड़ता है, तब हाय-हाय करके जाता है। पैसा नहीं रहता तो कई लोग बहुत रोते हैं। कई लोग ऐसे हैं कि अपमान होने पर बहुत रोते हैं। कई लोग संतान न होने के कारण रोते हैं। जीव पुत्र के लिये, पैसे के लिये, स्त्री के लिये रोता है पर कभी परमात्मा के लिये नहीं रोता है। जो जीव एकांत में बैठकर परमात्मा के लिये रोता है, उस पर प्रभु को दया आती है। जो बहुत हँसता है, उस पर परमात्मा की कृपा तुरन्त नहीं होती है। जो प्रभु के लिए रोता है उसके दुःख का अंत आता है। हर रोज एकांत में बैठकर परमात्मा के लियें रोइये। मैं प्रभु से बिछुड़ गया हूँ। मैं इतना बड़ा हुआ अभी तक मुझे प्रभु के दर्शन नहीं हुए हैं। मैं प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूँ। मुझे प्रभु के चरणों में जाना है। ऐसा सोचते हुए श्रीकृष्ण-वियोग में जो व्याकुल होता है और जो व्याकुल होकर रोता है तथा जिसे श्रीकृष्ण-वियोग का दुःख होता है, वह भक्ति कर सकता है।

श्रीकृष्ण-वियोग में जिसका मन संसार में रमता है, प्रभु के वियोग में जिसे संसार सरस लगता है, वह भक्ति नहीं कर पाता है। भक्ति का प्रारंभ तब होता है, जब जीव को संसार नीरस लगता है तथा संसार का सुख, दुःख-रूप प्रतीत होता है। जब प्रभु के वियोग में दुःख लगता है और जब भक्ति परिपूर्ण होती है, तब परमात्मा उसे सद्यो-मुक्ति देते हैं, समय से पहिले ही मुक्त कर देते हैं। असमय पर.......'असमयेन वत्सान् जीवान मुञ्चन'.... समय नहीं हुआ है, पर बंधन से छुड़ाते हैं। यशोदाजी गोपियों को समझाती हैं–वृद्धावस्था में बालक का जन्म हुआ है। मैं तो माता हूँ, बालक को कैसे धमका सकूँगी? वह मुझे प्राण से भी प्रिय है। कन्हैया बालक है। तुम्हारा ही बालक है। तुम सबके आशीर्वाद से पुत्र मिला है। वह आपके घर आकर शैतानी करे, तो आप उसको धमकाना। एक गोपी ने कहा–माँ, आप किसे समझा रही हैं वह तो ऐसा धृष्ट हो गया है कि उसे कौन धमका सकेगा? वह तो मुझे ही धमकाने लगा है। कल मेरे घर शरारत करने आया। जब मैं उसे पकड़ने गयी तो वह हाथ ही नहीं आया। वह बहुत चंचल हो गया। वह तो दूर-दूर चला गया। माँ मैं तो दौड़ते-दौड़ते थक गयी। वह तो मुझे अगूँठा दिखाता रहा......लो पकड़ लो!. .....लड़कों को सिखलाता है कि इसको चिड़ाओ फजीहत करो। लड़के सब मेरा नाम ले-लेकर मेरा मजाक करने लगे। माँ वह तो ऐसा ही करता रहता है। क्रोशसंजातहास....

एक गोपी ने कहा—माँ! लाला को चोरी करने की आदत हो गयी है। कोई इसे बुलाकर माखन खिलाता है तो वह नहीं खाता है। कहता है कि मुझे माखन नहीं भाता है। पर जब कोई नहीं होता तो चोरी करके वह माखन खा जाता है। वही उसे भाता है। उसे ऐसी आदत पड़ गयी है। यह सब सुनकर माता को बहुत क्षोभ हुआ। यशोदाजी ने कहा—अरी सखी! क्या आप लोगों को पता चल जाता है कि आज कन्हैया आने वाला है? गोपी ने कहा—माँ, पता तो चल जाता है। जिस दिन वह आनेवाला होता है, उस दिन उसकी बहुत याद आती है। माँ! मैं आपको क्या बतलाऊँ। रात्रि में जब मैं शय्या पर सोती हूँ, तब कन्हैया बहुत याद आता है।

रात्रि में शय्या में सोने पर आपको क्या याद आता है, जरा विचार कीजिये। मन की परीक्षा दिन में ठीक से नहीं होती है। रात्रि के समय पर होती है। देखिये कि निवृत्ति के समय पर मन कहाँ जाता है? निवृत्ति के समय पर मन जहाँ जाता है, वहाँ मन फँसा है, ऐसा समझ लीजिये।

श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण नाम का जप करते हुए गोपी सो जाती है। रात्रि में शय्या में वह बहुत भक्ति करती है। शय्या में जो भक्ति नहीं करता है, उसे काम मारता है। जब तक निद्रा नहीं आती, तब तक प्रभु के नाम का जप करते रहिये। जाग्रत अवस्था की समाप्ति और निद्रा की प्रारंभ की अवस्था की संधि में श्रीकृष्ण को रखने वाले की निद्रा भी भक्ति ही है। गोपी ने यशोदाजी से कहा—माँ! कभी मुझे ऐसी अनुभूति होती है कि श्रीकृष्ण मेरी शय्या में ही हैं। छोटे बालकृष्णलाल मुझे शय्या में ही दिखाई देते हैं। गोपी श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए श्रीकृष्ण के साथ ही सो जाती है। जो परमात्मा के साथ सोता है, उसे कैसा आनंद मिलता होगा? गोपी को काम का स्पर्श नहीं है। जो प्रभु के साथ सोता है, उसे काम का स्पर्श नहीं होता है।

जीव जब ईश्वर से विमुख होता है, तब काम उसे मारता है। शय्या में बहुत भक्ति कीजिये। शय्या में भक्ति की जरूरत है। गोपी ने कहा कि आज मुझे स्वप्न में आपका कन्हैया दिखाई दिया। मैंने स्वप्न में देखा कि बालकृष्णलाल ग्वाल बाल मित्रों के साथ मेरे घर आये हैं। मेरे घर का माखन छींके से उतार लिया है। सुबह चार बजे मैंने स्वप्न देखा और फिर जाग गयी। मुझे बहुत आनंद आया। मैं जान रही हूँ कि सुबह का स्वप्न सत्य होता है, इससे मुझे विश्वास है कि आज कन्हैया मेरे घर आयेगा।

माँ! मैं अपने घर का काम करती हूँ तो भी मुझे आपका कन्हैया ही दीख पड़ता है। कभी ऐसा आभास होता है कि कन्हैया दाँयें खड़ा है, बाँयें खड़ा है। गोपी को घर का काम करते हुए कन्हैया ही दीख पड़ता है। गोपी कहती है कि माँ! सुबह जब घर का काम करती हूँ, तो कन्हैया

बहुत याद आता है। माँ! सुबह उठकर जब मैंने चूल्हा जलाया तो चूल्हे में लकड़ियों के साथ बेलन भी जला दिया मुझे कुछ होश ही नहीं रहा। तब मुझे कन्हैया ही दिखायी दे रहा था।

माँ! कन्हैया जिस दिन आने वाला होता है, उस दिन हमें उसकी याद आती है। हमें होश ही नहीं रहता है। एक गोपी ने कहा कि माँ! मैं आपसे क्या कहूँ? लाला ने मेरी रक्षा जिस तरह से की है मैं कभी भी नहीं भूलूँगी। माँ! वह संकट के समय दौड़ता आ पहुँचा। हम तो क्या प्रेम करते हैं। हमारा प्रेम तो कुछ भी नहीं है। प्रेम तो कन्हैया करता है। वह हमारी रक्षा करता है। माँ! आज मुझे मार पड़ने वाली ही थी, पर लाला ने मुझे बचा लिया। यशोदामाता ने पूछा–अरी सखी, क्या हुआ? गोपी कहने लगी कि माँ! मैं आपसे क्या कहूँ? मेरे ससुरजी को क्रोध बहुत शीघ्र आ जाता है। वे बहुत क्रोध करते हैं। आज मेरे घर मेहमान आये थे। ससुरजी ने कहा कि हम खेत में जा रहे हैं, दो बजे वापस आ जायेंगे। आज खाना ठीक से बनाना। माँ! मैं रसोई में गलती कर बैठती हूँ। मुझे ऐसी आदत हो गयी है कि 'हरे कृष्ण-हरे कृष्ण' बोलते-बोलते मैं आटा तैयार करती हूँ। रोटी बनाती हूँ तो भी 'हरे कृष्ण-हरे कृष्ण' बोलती रहती हूँ। माँ! मैंने लाला से कहा कि तुम मेरे घर आना चाहो तो आ जाना, पर बेटा, जब मैं खाना बनाती हूँ, तब न आना। माँ! आपके लाला को देखने के बाद मुझे कुछ होश ही नहीं रहता है। कभी नमक डालना भूल जाती हूँ तो कभी छोंकना ही भूल जाती हूँ। यह गोपी जब खाना बनाती है, तब 'हरे कृष्ण-हरे कृष्ण' जप करती रहती है।

खाना बनाने वाला बहुत पवित्र होना चाहिये। खाना बनाने वाले का भाव सूक्ष्मरूप से अन्न में आता है और खानेवाले के भीतर जाता है। अन्न-दोष मन-बुद्धि को बिगाड़ता है। बहुत पवित्रता से, मन से प्रभु के नाम के जप करते हुए प्रेम से खाना बनाइये। भगवान् को भोग लगाइये। आजकल माताएँ भगवान् का नाम लेकर खाना नहीं बनाती हैं। कई तो ऐसी हैं कि सिनेमा के गीत गाते-गाते खाना बनाती हैं। रात्रि में सिनेमा देखकर आती हैं और सुबह बनाते-बनाते वही चित्र उन्हें याद आता है। रसोई बनाने वाले का मन बहुत पवित्र होना चाहिये। पति की बुद्धि को सुधारना पत्नी के हाथ में है। छह मास पवित्र अन्न पेट में जाता है तो धीरे-धीरे बुद्धि सुधरती है। अन्न के तीन भाग हैं–अन्न का स्थूल भाग, मल-रूप से बाहर निकलता है। मध्य भाग लहू-मांस बनता है और सूक्ष्म भाग से मन-बुद्धि बनती है। गोपी कहती है कि माँ! मुझे ऐसी आदत हो गयी है कि रोटी बनाते हुए मैं जप करती रहती हूँ। मैं रोटियों को घी लगाते हुए भी जप करती रहती हूँ। कृष्ण कृष्ण बोले बिना मुझे चैन नहीं आता है और जब मैं कृष्ण बोलती हूँ तब कन्हैया ही दिखाई देता है। मुझे तब बहुत आनंद होता है। मुझे होश भी नहीं रहता है। आज मैंने निश्चय किया था कि मेहमान

भोजन करने वाले हैं, इससे भोजन बनाते समय मैं लाला का स्मरण नहीं करूँगी। लाला को भूल जाऊँगी। बड़े-बड़े योगी जगत् को भूलने का यत्न करते हैं। जगत् भूलने के लिये वे आँखें बंद रखते हैं, नाक पकड़ते हैं, प्राणायाम करते हैं, फिर भी जगत् भुलाया नहीं जाता। आँखें बंद करने के बाद भी उन्हें जगत् दिखाई देता है। योगियों की ऐसी इच्छा होती है कि जगत् को भुलाया जाय और भगवान् के स्मरण में, दर्शन में तन्मयता आ जाय। धन्य हैं व्रज की गोपी, जो भगवान् को भूलने का प्रयत्न करती हैं पर श्रीकृष्ण उनसे भुलाये नहीं जाते। गोपी कहती है कि माँ! मैंने सब खाना बना लिया, पर अन्त में जब मोहन भोग बनाने लगी, तब कन्हैया बहुत याद आया। माँ! मैं जानती हूँ कि कन्हैया को मोहन भोग बहुत भाता है। कहीं अच्छी मिठाई या अच्छा फल दिखाई देता है तो गोपी की इच्छा होती है लाला को अर्पण करने की। लाला को अच्छी वस्तु खिलाने की उसकी बहुत इच्छा होती है। गोपी का भाव है कि कन्हैया आरोगे और हम दर्शन करें।

गोपी लाला को सब कुछ अर्पित करती है। गोपी कहती है कि माँ! मैं जानती हूँ कि लाला को मोहन भोग भाता है। मुझे लगता है कि कन्हैया आ जाय तो अच्छा है। ये मेहमान तो दो बजे के बाद आने वाले हैं। अभी कन्हैया आ जाय तो मैं उसे मोहन भोग खिलाऊँ। मेरा कन्हैया खुश हो जायगा। माँ! मैंने आज निश्चय किया था कि खाना बनाते समय कन्हैया का स्मरण नहीं करूँगी। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' नहीं बोलूँगी पर यह रटन कब शुरू हो गयी, पता ही न चला और उसके विचारों में मैं तन्मय हो गयी। माँ! फिर मुझे कुछ होश ही न रहा। मोहन भोग में शक्कर के स्थान पर मैंने नमक डाल दिया। माँ! आज आँगन में मैंने कन्हैया को दो बार देखा। मैं पागल की तरह रसोईघर से दौड़कर बाहर आयी पर कन्हैया हाथ नहीं आया। यशोदाजी पूछने लगीं कि अरी सखी! फिर क्या हुआ? गोपी कहने लगी कि माँ! मोहन भोग में नमक डालने के कारण आज मुझे मार ही पड़ने वाली थी, पर लाला ने मुझे बचा लिया। मुझे कुछ भी मालूम न था। दो बजे ससुरजी मेहमान के साथ घर आये। मैंने ठाकुरजी को भोग लगाया। सभी को भोजन परोस दिया। माँ! लाला ने मेरी इज्जत रख ली। मेहमान तो खुश-खुश हो गये। मेरी प्रशंसा करने लगे बोले कि ऐसा स्वादपूर्ण मोहन भोग तो हमने कभी नहीं खाया है, यह कैसे बनाया है?

मोहन भोग में गोपी ने भले ही नमक डाल दिया हो, पर एकाएक कण गोपी के मन का श्रीकृष्णनामामृत में भीगा हुआ था। श्रीकृष्ण का नाम अमृत से भी मधुर है। श्रीकृष्ण ने सोचा कि मेरे नाम-स्मरण में यह तन्मय बन जाती है। इसकी बेइज्जती न होनी चाहिए। गोपी कहती है कि मेरे लाला ने तो ऐसी लीला रचायी कि किसी को पता तक न चला। ससुरजी कभी मेरे लिए अच्छे शब्द नहीं कहते थे, पर आज वे भी मेरी प्रशंसा करने लगे। बोले कि कितनी सुन्दर रसोई

बनायी है। यह बहू क्या है, यह तो लक्ष्मी है। जब से इसका आगमन हुआ तब से मैं सुखी हुआ हूँ। माँ! मैंने सोचा कि मैंने खाना अच्छा बनाया है, इससे सब खुश हुए हैं। सब के भोजन कर लेने के बाद मैं जब भोजन करने बैठी तब मुझ अकेली को ही पता चला कि मैंने तो शक्कर के स्थान पर नमक डाल दिया है। माँ! आज लाला ने मेरी रक्षा की है। दूसरी गोपी ने कहा कि माँ! आज तो मेरी फजीहत हुयी। मेरे जेठजी भोजन करने बैठे थे, तब उनके लिए मैंने मरब्बा निकाला और उसी समय मुझे कन्हैया याद आ गया। मेरी सासजी कन्हैया को पटड़े पर बैठा देती है और मैं उसे खिलाती हूँ। हमारे घर में कन्हैया सबको बहुत प्यारा है। मेरे पतिदेव भी लाला के संग से बदल गये हैं। वे अब ब्रह्ममुहूर्त में उठकर ध्यान करते हैं। मेरे पतिदेव तो भगवान का कीर्तन करते हुए कभी-कभी देह-भान भी गँवा देते हैं। कन्हैया आये-ऐसे विचार में मैं तन्मय हो गयी और काँच का मर्तबान छींके में रखने के बदले अपने लड़के को ही उसमें रख दिया। बालक जब रोने लगा तब मुझे पता चला। माँ! आज ऐसा हुआ। व्यास महर्षि ने गोपियों को 'प्रेम संन्यासिनी' की उपाधि दी है। गोपी परमहंस हैं। भागवत परमहंसों की संहिता है।

यशोदाजी ने फिर कहा कि सखी आप लोगों को पता तो चल जाता है न कि कन्हैया आने वाला है? गोपियाँ कहती हैं कि हाँ माँ! पता तो चल ही जाता है। यशोदाजी ने कहा-तो ऐसा कीजिए कि जिस दिन आपको पता चले कि आज कन्हैया आयेगा, उस दिन घर में कुछ खाने का सामान ही न रखना। सब पीहर रखकर आना। सखी के घर रख देना। बालक है। आपके घर अच्छा-अच्छा खाना मिलता है न, इससे आता है। दो-चार बार कुछ नहीं मिलेगा तो फिर नहीं आयेगा। एक गोपी ने कहा कि माँ! आप किसे सीख देती हैं? कल ही मुझे मालूम हो गया था। माँ! मैं आँगन में बैठी थी। कन्हैया गोपाल-मंडली के साथ मेरे घर के पास से निकल गया। वह गोपालों के पीछे-पीछे चलता था। सब लोग आगे निकल गये। कन्हैया मेरे आँगन में खड़ा रह गया। मेरे सामने देखने लगा। लाला ने मुझ पर नजर डाली। माँ! लाला की आँखें बहुत सुन्दर हैं। लाला की आँखों में प्रेम भरा है। मुझे देखकर होठों में हँसने लगा। मैंने पूछा-कन्हैया! क्यों हँस रहा है? तो कहने लगा कि कल तुम्हारी बारी है। मुझे तुम्हारे घर का माखन खाना है, मैं कल तुम्हारे घर आने वाला हूँ। मैं समझ गई। मैंने घर में कुछ न रखा। माँ! कन्हैया जब घर आया तो उसे कुछ न मिला। इससे रूठ गया। उसने मेरे बच्चे को जगाया। मेरा बच्चा पालने में सोया था। कहने लगा कि मेरा ऐसा नियम है कि जिसके घर जाता हूँ घर के स्वामी का कल्याण करता हूँ और प्रसाद देकर घर छोड़ता हूँ। पर तेरी माँ ने कुछ रखा ही नहीं, मैं तुम्हें क्या प्रसाद दूँ? लो, मेरा प्रसाद।

ऐसा कहकर मेरे बच्चे को चुटकी काटने लगा। मेरा बच्चा रोने लगा। माँ! घर में कुछ नहीं रखते तो वह बच्चों को रुलाता है।

कन्हैया जब आपके घर आयेगा तब उसका सम्मान नहीं होगा तो वह रुलायेगा। प्रत्येक जीव से एकबार भगवान् मिलने जाते हैं, पर जीव भगवान् को पहिचान नहीं पाता। हमारे घर शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म लेकर प्रभु पधारेंगे तो उनका तेज हम सह नहीं सकेंगे। तब हम उलझन में पड़ जायेंगे। इससे हम देख सकें ऐसे ही स्वरूप में प्रभु पधारते हैं। कभी आपके घर भिखारी के रूप में आ जायँ या संभव है कि कभी वे साधु-संन्यासी के रूप में आ जायँ। वेदान्त कहते हैं कि प्रभु अरूप हैं, रूप-रहित हैं। ईश्वर का कोई स्वरूप नहीं है। इसका अर्थ यह है कि ईश्वर का कोई एक रूप नहीं है। हाथ में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म हो तो ही क्या ईश्वर होते हैं? क्या उनका दूसरा कोई स्वरूप नहीं है? वस्तुत: ईश्वर का कोई एक स्वरूप निश्चित नहीं है। अनेक रूपरूपाय विष्णवे प्रभुविष्णवे– इस जगत् में जितने रूप दिखाई देते हैं, वे सभी तत्त्व से परमात्मा के ही हैं, ऐसा समझकर विवेक से व्यवहार कीजियेगा। किसी जीव का तिरस्कार न कीजियेगा। सभी को मान देना, सभी में सद्भाव रखना। अगर आपको तिरस्कार करने की आदत पड़ गयी तो जब कभी प्रभु आयेंगे, आपसे तिरस्कार हो जायेगा। सभी के समक्ष हाथ जोड़ने में क्या होता है? सभी को मान देने में क्या आपका कुछ कम हो जाता है? आपके घर प्रभु पधार रहे हैं और आप सोये हुए हैं, प्रभु का सम्मान नहीं कर पाते तो प्रभु आपको रुलायेंगे ही। बोलेंगे कि तुम्हारे घर आया था। मेरे कारण ही तुम्हें सब कुछ प्राप्त होता है, पर जब मैं आया तुमने मेरी ओर देखा तक नहीं। तुमने मेरा तिरस्कार किया। तुम इस सबके लिए लायक नहीं हो!

यशोदा कहती हैं–अरी सखी! आप सब कहती हैं कि कन्हैया शरारत करता है पर जब मैं उससे पूछती हूँ, तब वह इन्कार कर देता है। ऐसा करो कि जब लाला तुम्हारे घर आ जाय, तब उसे पकड़कर मेरे घर ले आना। मैं उसे सजा दूँगी। प्रभावती ने लाला को पकड़ने का बीड़ा उठाया। प्रभावती से लाला ने कहा–कल मैं तुम्हारे घर आनेवाला हूँ। प्रभावती ने घर दही, माखन सब कुछ रखा उसने सोचा कि लाला जब माखन खायेगा, तब ही उसे पकड़ लूँगी।

गोपाल-मंडली के साथ लाला आ पहुँचा। प्रभावती पलंग के नीचे छिप गई। लाला ने मटकी उतार ली और मित्रों को माखन देने लगा। प्रभावती को बहुत आनंद आया। वह धीरे-धीरे बाहर निकली। लड़कों की दृष्टि गई। बोले–कन्हैया, कन्हैया, वह आयी! बालक सब भाग गये पर कन्हैया खड़ा ही रहा। प्रभावती ने लाला की कलाई पकड़ ली। लाला ने कहा–तेरे पाँवों पड़ूँ, अब कभी तुम्हारे घर नहीं आऊँगा। आज के दिन मुझे छोड़ दे। प्रभावती लाला को नहीं छोड़ती

है। उसका एक पुत्र था। लाला जैसा ही था। उसने देखा कि माँ तो लाला को पकड़कर यशोदाजी के पास ले जा रही है। वह अपनी माता से कहने लगा—माँ! मैंने ही कल लाला को अपने घर बुलाया था। यशोदा माँ मुझे हर रोज माखन देती हैं। इससे मैंने आज लाला को निमंत्रण दिया है। लाला ने चोरी नहीं की है। माँ! तुम लाला को छोड़ दो मुझे मारो, मुझे सजा दो। मंडली के बालक रोने लगे। यशोदामाता लाला को मारेंगी तो!

प्रभावती सोच रही है कि आज मैं लाला को पकड़कर ले जाऊँगी। यशोदामाता लाला को धमकायेंगी तो कुछ नहीं बोलूँगी, अगर वे लाला को मारने जायेंगी तो मैं उनका हाथ पकड़ लूँगी। कन्हैया बहुत कोमल है। उसे मार पड़े, ऐसा मैं नहीं चाहती हूँ।

वह लाला को पकड़कर ले जाने लगी। लाला ने बालकों से कहा—तुम लोग घबराना नहीं, मैं मजाक करने वाला हूँ। प्रभावती लाला को पकड़कर ले जाने लगी, तब वह लाला को भूल गयी। जीवन की अंतिम साँस तक भक्ति कीजिए। कई व्यक्ति भक्ति में आनन्द की अनुभूति करते हैं, पर इससे भक्ति परिपूर्ण नहीं होती है। परमात्मा हाथ में आ जायँ तो भी भक्ति नहीं छोड़नी है। जीव को भक्ति मिलती है, और जगत का मोह होता है तो भगवान् छिटक जाते हैं। भगवान् हाथ में आ जायँ, तो भी भक्ति को नहीं भूलना चाहिए। प्रभावती के हाथ में श्रीकृष्ण के आ जाने के बाद वह श्रीकृष्ण का स्मरण नहीं कर रही है, पर अपना ही चिंतन करने लगी कि मैं कैसी हूँ.....लाला को मैं पकड़ सकी हूँ। निष्काम बुद्धि प्रभावती है। निष्काम बुद्धि भगवान् को पकड़ सकती है पर ईश्वर हाथ में आ जायँ, तब अभिमान आ जाता है और अभिमान आ जाने से ईश्वर छिटक जाते हैं।

लाला ने मजाक किया। प्रभावती से कहा—मैं तुम्हारे साथ चलने के लिए तैयार हूँ पर मेरी कलाई तुमने बहुत जोर से पकड़ ली है, यह दुःख रही है, इसे छोड़ दो, और मेरा दूसरा हाथ पकड़ लो।

प्रभावती ने लाला का दूसरा हाथ पकड़ लिया। रास्ते में वृद्ध लोग मिले तो प्रभावती ने घूँघट निकाला। लाला ने अपने तीव्र नाखूनों से चुटकी काटी। प्रभावती ने हाथ बदला। उसे बार-बार हाथ बदलना पड़ा। कन्हैया ने युक्ति करके उसके पुत्र का हाथ ही उसके हाथ में दे दिया और स्वयं दौड़ता हुआ अपने घर पहुँचा गया। प्रभावती के पाँवों में गति थी। घूँघट निकाला था, इसलिए उसे कुछ भी पता न चला। कन्हैया घर में पहुँच गया, और तब पीछे से वह आ पहुँची। प्रभावती ने कहा—माँ! देखिये! आपके कन्हैया को पकड़कर ले आयी हूँ।

यशोदाजी ने कहा—श्रीकृष्ण तो भीतर हैं। प्रभावती ने कहा—बाहर हैं। आनंद भीतर ही है, आनंद को जो बाहर ढूँढ़ने जाता है उसकी फजीहत होती है। आनंद चेतन परमात्मा का स्वरूप है। किसी जड़ वस्तु में आनंद नहीं हो सकता है। उपनिषद् कहते हैं—'निहितं गुहायाम्'।

यशोदाजी हँसने लगीं। प्रभावती ने घूँघट हटाकर देखा तो.... अपना ही पुत्र। प्रभावती बालक को मारने लगी। बालक मार सहता है पर रोता नहीं है सोचता है कि आज मैं लाला के लिये मार खा रहा हूँ। मेरा कन्हैया बच गया। जो परमात्मा के लिये मार खाता है, जो परोपकार के लिये मार खाता है, उस मार में परमात्मा का प्यार होता है।

प्रभावती को आश्चर्य हुआ। उसने यशोदामाता से कहा—माँ, रास्ते में कुछ गड़बड़ हो गयी है। यशोदामाता ने उसकी बात को नहीं माना—

नरसैया का स्वामी सच्चा, झूठी सब व्रज नारी रे।

प्रभावती को बहुत दुःख हुआ। वह धीरे-धीरे घर की ओर चल पड़ी। लाला ने खेल किया। एक स्वरूप यशोदाजी के पास रखा और दूसरा स्वरूप उसके पीछे चला। प्रभावती के ससुरजी की सी आवाज निकालकर लाला ने कहा—अरी प्रभावती! प्रभावती ने मुड़कर देखा, तो कन्हैया खड़ा था। कन्हैया ने कहा—मैं तुम्हें विशेष रूप से कहने आया हूँ कि अगर तुम मेरे या मेरे मित्रों के पीछे पड़ोगी तो मैं तुम्हारी फजीहत करूँगा। आज तो तुम्हारे लड़के को ही पीछे लगा दिया, पर दूसरी बार मुझे पकड़ोगी तो तुम्हारे पति को ही तुम्हारे पीछे लगा दूँगा और फिर सारे गाँव में तुम्हारी फजीहत होगी। प्रभावती पूछने लगी—लाला! तुम्हें ऐसा कौन सिखाता है? लाला कहने लगा—मुझे कौन सिखायेगा? मैं ही सभी को सिखाता हूँ—

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्॥

श्रीकृष्ण जगद्गुरु हैं। बाललीला एक दो नहीं, अनेक हैं। अनेक तरह की हैं। लाला ने ललिता गोपी के साथ खिलवाड़ किया है। चन्द्रावली की कथा आती है। दुर्वासा ऋषि के साथ भी खेल किया है। दुर्वासा ऋषि को शंका हुई कि क्या यह श्रीकृष्ण परमात्मा हैं? ना, ना, यह तो ग्वाले का बेटा है। दुर्वासा ऋषि परीक्षा करने लाला के पेट में गये। लाला ने ऋषि को पेट में ही ब्रह्मांड के दर्शन करवाये हैं। दुर्वासा ऋषि को विश्वास हो गया कि यह ही परमात्मा हैं। इसके बाद गणपति महाराज की कथा है। यशोदा माता ने गणपति महाराज की मनौती मानी है। गणपति महाराज लाला को लड्डू खिलाते।

५८– निष्काम भाव से प्रस्फुटित होती है प्रेमलक्षणा भक्ति

भागवत में तो बाल लीला के एक-दो श्लोक ही वर्णित हैं, पर वृन्दावन के साधुओं द्वारा इनका बहुत विस्तार हुआ है। वृन्दावन में सुखिया नाम की मालिन रहती थी। वह गोकुल में गोपियों के घर पुष्प तुलसी देने जाती थी, और जब-जब वह जाती गोपियों से लाला की बातें सुनती थी। उसे कृष्ण-कथा सुनने का व्यसन सा हो गया। जब तक लाला की बातें न सुनती, उसे अच्छा न लगता। वह नियम से कृष्ण-कथा सुनती थी। लाला ने आज ऐसा किया.......लाला ने कल ऐसा किया.....। उसके हृदय में धीरे-धीरे कृष्ण-प्रेम अंकुरित होता है और लाला के दर्शन की भावना होती है। वह सोचती रहती है कि गोपियाँ जिसकी बातें करती हैं, वह कन्हैया कैसा होगा? मुझे लाला के दर्शन करने हैं। मालिन यशोदाजी के आँगन में खड़ी रहती है। सोचती है कि कन्हैया बाहर निकलेगा तो मैं उसे देखूँगी। मालिन की श्रीकृष्ण दर्शन की बहुत इच्छा है पर साथ-साथ उसके मन में अन्य वासनाएँ भी हैं। जब तक संसार की एक भी वासना मन में रहती है, तब तक जीव प्रभु-दर्शन के योग्य नहीं होता है। मालिन जब-जब दर्शन करने आती है, कन्हैया भीतर ही बैठा रहता है, बाहर निकलता ही नहीं है। कई दिनों तक ऐसा होता रहा। मालिन लाला की प्रतीक्षा करती है पर लाला बाहर ही नहीं आता है। एक दिन मालिन ने भूदेव से पूछा—महाराज! जब-जब मैं वहाँ जाती हूँ, वह बाहर नहीं आता है। गोपियाँ कहती हैं कि वह प्रेममय है। मेरे कुछ पाप होंगे इससे मुझे उसके दर्शन नहीं होते हैं। मुझे लाला के दर्शन हों, ऐसा कोई उपाय बतलाइये। भूदेव ने कहा—सुबह उठकर जब ध्यान में बहुत तन्मय होती है, तब उसके दर्शन होते हैं। तब देह-भान भुलाया जाता है और देव दिखाई देते हैं। जिसे याद रहता है कि मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ—उसे देव के दर्शन ठीक से नहीं होते हैं। तुम परमात्मा का ध्यान-स्मरण करो। मालिन ने कहा—सुबह से ही मैं कैसे ध्यान करूँ? भूदेव ने कहा—लाला की सेवा घर में ही करना। मालिन ने कहा—महाराज मैं लाला की सेवा नहीं कर सकती हूँ। भूदेव ने कहा—लाला के लिए कोई एक नियम लेना पड़ता है। भक्ति के लिए तुम कोई एक नियम ले लो।

मन तो छलिया है। मन को पाप करने की छुट्टी न दीजियेगा। एक बार मन को पाप करने की छुट्टी देने पर वह पुनः-पुनः वही माँगेगा और फिर मन को पाप करने में आनन्द आयगा। जीवन बिगड़ जायगा। इस कथा सुनने के बाद आप अपने मन को किसी नियम में बाँध लो, उसे मुक्त न रखो। उसे एकबार भी पाप करने के लिये छुट्टी न दीजियेगा। पाप छोड़िये। भक्ति का कोई एक नियम लीजिये, तो कथा का पूर्ण फल मिलेगा। आपका कल्याण होगा। आप पर भगवान्

की बहुत कृपा होगी। लोग समझते हैं कि पाँच-दस रुपये भेंट करने से भागवत का सब पुण्य मिल जाता है। अरे धन से कभी पुण्य मिलता है? प्रभु ने धन दिया है और उसका सदुपयोग कर रहे हैं तो अच्छा है, पर कथा के फल की इच्छा है तो पाप छोड़िये। विचारिये कि आज से मैंने निश्चय किया है कि मैं झूठ नहीं बोलूँगा। मैं क्रोध नहीं करूँगा। पाप छोड़कर भक्ति करने वाले पर भगवान् तुरन्त प्रसन्न होते हैं। लोग भक्ति करते हैं पर प्रायः पाप चालू रखते हैं। इससे ऐसी भक्ति प्रभु को भाती नहीं है।

भूदेव ने मालिन से कहा—तुम्हें कोई नियम तो लेना ही पड़ेगा। मालिन ने कहा—महाराज मैं बहुत गरीब हूँ। मैं रख सकूँ ऐसा नियम दीजिए। भूदेव ने सोचकर कहा—मालिन, तुम नन्दबाबा के आँगन में खड़ी रहती हो न! वह अच्छा नहीं है। तुम आज से नन्दबाबा के राजमहल की एक सौ आठ प्रदक्षिणा करने का नियम ले लो। तुम्हारे पाप भस्म हो जायेंगे। प्रभु को तब दया आयगी। प्रदक्षिणा करते-करते प्रभु से प्रार्थना करना कि हे परमात्मा! मुझे आपके दर्शन करने हैं। मालिन ने सोचा कि इसमें तो दो पैसे का भी खर्च नहीं है। मुझे हर रोज गोकुल में तो जाना ही पड़ता है। मैं आँगन में खड़ी रहती हूँ, यह तो अच्छा नहीं है। इससे आज से हर रोज एक सौ आठ प्रदक्षिणा का नियम लूँगी। उसने महाराज से कहा—महाराज! प्रदक्षिणा कैसे करनी है यह समझाइए। महाराज ने कहा—श्रीकृष्ण के स्मरण में हाथ जोड़कर प्रदक्षिणा करनी चाहिए। मन से स्मरण करना और जीभ से भगवान् के नाम के जप करते हुए प्रदक्षिणा करना। प्रदक्षिणा कर रहे हो, तब धीरे-धीरे चलना। कुत्ता पीछे पड़ जाय और हम दौड़ते हैं—उस तरह से दौड़ते हुए कई लोग परिक्रमा पूर्ण करते हैं। यह अनुचित है। मालिन ने भूदेव से पूछा—मुझे श्रीबालकृष्णलाल के दर्शन कब होंगे? भूदेव ने कहा—तीन वर्षों तक तुम नियम से परिक्रमा करो। लाला को दया आयेगी। वह बहुत प्रेममय है। वह अति उदार है।

मालिन हर रोज नियम से नन्दबाबा के राजमहल की एक सौ आठ प्रदक्षिणा करती है। प्रदक्षिणा करते हुए लाला को मनाती है—नन्दकुमार! बाहर आइये, मुझे दर्शन दीजिये। धीरे-धीरे उसका मन शुद्ध हो रहा है। श्रीकृष्ण-दर्शन के लिए उसके प्राण तड़प रहे हैं। मालिन सोचती है कि गोपियाँ कहती हैं, वह तो बहुत प्रेममय है। छुम-छुम करके बाहर आता है। तीन वर्ष व्यतीत हो गये। मैं लाला के पीछे पड़ी हूँ। अभी तक मुझे एकबार भी नहीं दिखाई दिया। आज मालिन ने निश्चय किया कि लाला के दर्शन के बिना पानी भी नहीं पीना है। सुन्दर-सरस फलों की टोकरी सिर पर है और पुकार रही है—फल लो, फल लो। लाला के कानों तक शब्द पहुँचे। लाला

ने सोचा कि यह जीव तीन साल से मेरे पीछे पड़ा है। यह जीव दर्शन के लिये योग्य तो नहीं है पर इसकी भक्ति को दृढ़ करने के लिए आज मैं दर्शन दूँगा। किये हुए कर्म का फल देने वाले परमात्मा की आज फल लेने की इच्छा हुई। आज बालकृष्णलाल दौड़ते हुए बाहर आये। पाँच वर्ष का कन्हैया है, बहुत सुन्दर दिखाई दे रहा है। यशोदा माता ने पीताम्बर पहिनाया है। सुवर्ण की करधनी है, बाजूबन्द पहिने हैं। कानों में कुण्डल हैं, नाक में मोती लटक रहा है। गाल पर सुन्दर तिलक है। रेशम से बाल है। मोर पंखों का मुकुट है। हाथ में छोटी सी बाँसुरी है। चरणों में सुवर्ण के नूपुर हैं। छुम-छुम-छुम करके चलता है। लाला की आँखों में प्रेम भरा है। लाला ने दो हाथ आगे किये और माँगने लगा मुझे फल दो। मालिन को बालकृष्णलाल के दर्शन हुये। चार आँखें जब मिलती हैं, तब दर्शन में बहुत आनन्द आता है। कन्हैया प्रेम से मालिन को देखता है। मालिन को लाला के दर्शन से बहुत आनन्द हुआ। सोचने लगी कि कैसा दिखाई देता है। यशोदा माता ने बहुत पुण्य किये होंगे। तभी ऐसे बालक का उनके पेट से जन्म हुआ। लाला को मेरी नजर न लग जाय कहीं! मेरी आँखें बहुत खराब हैं। यह बालक सदा-सर्वदा आनन्द देता है। लाला के दर्शन के बाद मालिन की लाला के साथ बोलने की इच्छा हुई है। उसका प्रेम क्षण-क्षण बढ़ रहा है। लाला से उसने कहा—बेटा मैं गरीब हूँ। फल देने नहीं आयी हूँ, फल बेचने आयी हूँ। तुम थोड़ा अनाज ले आओ। बालकृष्णलाल दौड़ते हुए भीतर गये। मालिन ने अनाज तो माँगा, पर बाद में उसे दुःख होने लगा।

वह सोचने लगी कि मुझ से गलती हो गई है। इसने फल क्या मेरे प्राण माँगे होते तो भी कम थे। वह प्रेम से बाहर आया। मेरी बुद्धि भ्रष्ट हुई और मैंने कहा कि फल बेचने आयी हूँ। गरीब हूँ। पर मैंने इसमें कुछ झूँठ तो कहा नहीं है। सच ही तो कहा है। मालिन को चिंता थी, कि घर जाकर क्या खाऊँगी? मालिन ने लाला से सच ही कहा था पर अब सोच रही है कि लाला बाहर नहीं आयेगा क्या? नहीं वह आयेगा तो। मुझ से कहा है कि मैं आऊँगा! मालिन को प्रेम बहुत बढ़ने लगा। मालिन के घर में आठ कन्याएँ थीं। एक भी पुत्र न था। लाला को देखकर उसके मन में ऐसा प्रेम जाग्रत हुआ कि मेरा भी ऐसा पुत्र हो तो कितना अच्छा! यशोदा माता जब बालकृष्णलाल को गोद में लेती हैं, तब उन्हें कितना आनन्द होता होगा? मुझे भी कभी ऐसा आनन्द मिल सकेगा? लाला को देखकर मालिन के मन में ऐसा भाव जगा कि कन्हैया ,दो मिनट मेरी गोद में आ जाय तो मुझे बहुत आनन्द हो। वह राह देख रही है। बालकृष्णलाल घर में गये हैं। एक मुट्ठी में चावल लेकर दौड़ते-दौड़ते लौटते हैं। लाला के हाथ बहुत कोमल हैं। रास्ते में चावल बिखर जाते हैं । थोड़े से चावल मुट्ठी में बचे हैं। वे टोकरी में डाल दिये। मालिन के हृदय

में प्रेम है। ऐसी भावना है कि यह बालक मेरी गोद में आ जाय पर मैं ऐसा कैसे कहूँ कि तुम मेरी गोद में आ जाओ? ऐसा मुझ से कैसे कहा जायगा? उसके हृदय का प्रेम बालकृष्णलाल समझ गये। बालकृष्णलाल उसकी गोद में गये। वे गोद में बैठ गये। मालिन को आनन्द मिलने लगा। उसका प्रेम बढ़ने लगा। उसके मन में ऐसा प्रेम जगा कि कन्हैया मुझें एक बार माँ कह कर पुकारे। मुझ से ऐसा कहा तो नहीं जायगा। मालिन क्षोभ के कारण ऐसा नहीं कह पाती कि तुम मुझे एक बार 'माँ' कह कर पुकारो।

लाला को दया आ जाती है। कन्हैया सोचता है कि इसकी ऐसी भावना है कि मैं इसका पुत्र हो ज़ाऊँ! मैं तो सभी का पुत्र हूँ। मैं सभी का पिता हूँ और सभी का दादा भी हूँ। जीव जैसा भाव रखता है, उसी भाव के अनुसार मैं प्रेम रखता हूँ। मालिन की बहुत भावना थी, इससे लाला ने कहा कि माँ मुझे फल दे। लाला ने मालिन को 'माँ' कहा। मालिन को अतिशय आनन्द हुआ। वह सोच रही है कि लाला को क्या दूँ? उसके हाथ में अंगूर हैं, जामुन हैं। मालिन लाला पर निछावर हो जाती है। उसने लाला से कहा कि बेटा! आज मुझ से भूल हो गयी, मैंने अनाज की माँग की। अब मैं तुम से कभी कुछ नहीं माँगूँगी। हर रोज तुम्हारे लिये सरस फल ले आऊँगी। बेटा! मेरी बहुत इच्छा है कि जब मैं फल लेकर आऊँ तब तुम बाहर आ जाना। बेटा! मैं ऐसा आग्रह नहीं कर रही हूँ कि तुम मेरी गोद में बैठना, पर तुम्हारा मन हो जाय, तो मेरी गोद में बैठना, मुझे बहुत आनन्द होगा। बेटा! मैं योग्य तो नहीं हूँ पर अगर तुम मुझे एकबार 'माँ' कहकर पुकारोगे तो मैं अपना सब दुःख भूल जाऊँगी। मालिन कह रही है पर लाला ने तो कुछ सुना ही नहीं। हाथ में फल आ गये तो वह दौड़ता हुआ घर में भाग जाता है। साथ में मालिन का मन भी चोरी करके ले जाता है। मालिन के पास अब मन नहीं है। वह तो पागल सी हो गयी। वह स्वप्न देखने लगी कि कन्हैया मेरी गोद में बैठा है, कन्हैया मुझे माँ कहकर बुलाता है। मालिन का ऐसा मन हुआ कि मैं यहीं रह जाऊँ। यशोदा माता मुझे दासी बनाकर रखें, तो अच्छा है। मैं तुच्छ से तुच्छ कार्य करूँगी। घर का जूँठा खाना देंगे तो भी मेरा काम चल जायेगा। मैं अपने घर जाना नहीं चाहती। इस तरह मालिन की घर जाने की इच्छा ही नहीं हो रही है। पर घर तो उसे जाना ही पड़ेगा अन्यथा घर से सब लोग खोजते हुए आ जायेंगे। उसने टोकरी सिर पर रख ली। और लाला का स्मरण करते-करते घर पहुँच गयी। घर आकर देखा, तो उसकी टोकरी रत्नों से भर गयी थी! एक-एक रत्न लाख-लाख रुपये का था। उसके जन्म का दारिद्रय लाला ने दूर कर दिया था। लाला का प्रण है कि मेरे आँगन में आया जीव दीन नहीं रहेगा। आप जो कथा सुन रहे हैं प्रभु के नाम का जप

कर रहे हैं, जो दान दे रहे हैं–इन सब सत्कर्मों का पुण्य-रूपी फल श्रीकृष्ण को अर्पण कीजिये। कोई भी अच्छा कार्य करने के बाद उसे भूल जाइए। जो अपने कर्म-रूपी पुण्य का फल भगवान् को अर्पण करता है, उसकी टोकरी भगवान् रत्नों से भर देते हैं। मानव की बुद्धि भी टोकरी जैसी है। प्रेम लक्षणा भक्ति रत्न-सदृश है। अपरोक्ष ज्ञान ही रत्न है। अपने किये हुए सत्कर्मों के फल श्रीकृष्ण को अर्पण करने से बुद्धि में प्रेम-लक्षणा भक्ति प्रस्फुटित होती है। अपरोक्ष ज्ञान-सा स्फुरण होता है। मालिन की टोकरी कन्हैया ने रत्नों से भर दी। उसका प्रकाश चारों ओर फैल गया है और प्रकाश में बालकृष्णलाल दिखाई देते हैं। दायीं ओर श्रीकृष्ण, बायीं ओर श्रीकृष्ण, आगे श्रीकृष्ण, पीछे श्रीकृष्ण, भीतर श्रीकृष्ण, बाहर श्रीकृण–श्रीकृष्ण के सिवाय उसे और कुछ भी नहीं दिखाई देता है। वह चारों ओर श्रीकृष्ण के दर्शन करती हुई–

हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण हरे-हरे।
हरे राम, हरे राम, राम-राम हरे-हरे॥

कीर्तन करती है। श्रीकृष्ण-दर्शन में–अति आनन्द में वह तन्मय हो गयी है। बालकृष्णलाल अंगूर लेकर घर में जाते हैं। माता से कहते हैं–माँ अंगूर लेकर आया हूँ। यशोदा माता के मुँह में देते हैं। यशोदा माता को आनन्द होता है। यह अंगूर कहाँ से लाया होगा? ऐसे मधुर अंगूर मैंने कभी नहीं खाये हैं। एक दासी ने कहा कि कन्हैया बाहर गया था। वहाँ एक मालिन की गोद में बैठा था। इसने मालिन को माँ कहकर पुकारा, तब मालिन ने इसे अंगूर दिये।

यशोदा माता को यह सुनकर जरा भी बुरा न लगा। कन्हैया सभी को माँ कहकर पुकारता है, तो क्या बुरा है! यह तो सभी का पुत्र है। आज सब लाला को आशीर्वाद देते हैं, मेरा पुत्र सुखी होगा, आज सुबह से कन्हैया सभी को–गोपियों को ग्वालों को मित्रों को अंगूर देता है फिर भी टोकरी भरी ही रहती है। यशोदामाता ने सोचा कि आज लाला को आशीर्वाद देने के लिये अन्नपूर्णा माता मेरे घर आयी होंगी। श्रीकृष्ण की बाललीला सुनने से श्रीकृष्ण में श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा से सेवा स्मरण करने से धीरे-धीरे श्रद्धा आसक्ति में परिणत होती है। भगवत्स्वरूप में मन आसक्त बनता है। स्वरूप में और नाम-स्मरण में आसक्त होकर जो भक्ति करते हैं, उनकी भक्ति व्यसन-रूपा हो जाती है। भक्ति जब व्यसन-रूपा हो जाती है, तब उसे प्रेमलक्षणा भक्ति कहते हैं। प्रेम-लक्षणा भक्ति वासना का विनाश करती है। प्रेम-लक्षणा-भक्ति परमात्मा को बाँधती है। जीव जब ईश्वर को बाँधता है, तब माया के बन्धन से मुक्त हो जाता है। गोपियों का प्रेम अति बढ़ गया है। गोपियाँ प्रेम से लाला को बाँधती हैं।

५९. प्रेम-परतंत्र परमात्मा

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी।
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि।।
यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च।
दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत।। (१०-९-१/२)

परमात्मा श्रीकृष्ण परम प्रेमस्वरूप हैं। प्रेम और परम प्रेम में अन्तर है। जो पुत्र या मित्र के साथ स्नेह किया जाता है, उसे प्रेम कहते हैं। सब के साथ प्रेम किया जाता है, उसे परम प्रेम कहते हैं। श्रीकृष्ण सभी जीवों से प्रेम करते हैं। जब परमात्मा प्रेम करते हैं, तब इस जीव की पात्रता का भी विचार नहीं करते। इस जगत् में अनेक जीव ऐसे हैं, जो परमात्मा का अनादर करते हैं कि ईश्वर कहाँ हैं? मैं ईश्वर को नहीं मानता। फिर भी परमात्मा सबको मानते हैं। यह पृथ्वी परमात्मा की है। मानव पृथ्वी के आधार पर स्थित है। परमात्मा पवन सभी को देते हैं। परमात्मा सभी को प्रकाश देते हैं। परमात्मा ही अन्न-जल देते हैं। फिर भी जीव अभिमान में आकर बोलता है कि मैं ईश्वर को नहीं मानता। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि मैं ईश्वर को मानता हूँ; किन्तु एक आसन पर तीन घण्टे बैठकर मुझे भगवान् की भक्ति करने की फुरसत नहीं है। जिसे चौबीस घण्टे में केवल तीन-चार घण्टे एक आसन बैठकर भगवान् की भक्ति करने की फुरसत नहीं है वह ईश्वर को माने. या न माने दोनों समान ही हैं। ''मैं ईश्वर को मानता हूँ।'' यह कहने से कोई लाभ नहीं। तुम भगवान् के लिए कितना समय देते हो, उसी का महत्त्व है। जो भगवान् के लिए तीन-चार घण्टे का भी समय नहीं देता, वह भगवान् को ठीक तरह से मानने वाला नहीं कहा जा सकता।

प्रेम और परम प्रेम में दूसरा भी अन्तर है। जो प्रेम थोड़ा-सा भी स्वार्थ लेकर किया जाता है। वह साधारण प्रेम कहलाता है। जो प्रेम किसी बदले की भावना छोड़कर निःस्वार्थ भाव से किया जाता है, उसे परम प्रेम कहते हैं। परमात्मा बिना किसी स्वार्थ के जीव से प्रेम करता है। लक्ष्मीपति परमात्मा किसी से पैसा नहीं माँगते, वह केवल प्रेम चाहते हैं। यह जीव अनेक बार परमात्मा को पैसा देता है किन्तु प्रेम नहीं देता। मनुष्य स्त्री के साथ प्रेम करता है, किसी पुरुष के साथ प्रेम करता है, किसी कपड़े से प्रेम करता है। उसे परमात्मा को साष्टाँग दण्डवत् प्रणाम करने में संकोच होता है, लज्जा आती है। उसे कपड़ा गन्दा होने की चिन्ता होती है। मनुष्य जितनी सावधानी कपड़ा सम्हालने में करता है उतनी वह अपने दिल की नहीं करता। उसे कपड़े में दाग लगने की तो चिन्ता होती है, किन्तु अपने मन को दाग लगने की चिन्ता नहीं होती। थोड़ा-सा

अपने अन्तर की ओर देखो, मन को बारंबार देखो तो पता लगे कि मन में कितने दाग लगे हुए हैं? यदि कपड़े में दाग लगेगा तो वह बाजार से दूसरा खरीदा जा सकता है; किन्तु यदि मन खराब हो जाएगा, तो वह बाजार से दूसरा नहीं मिलेगा।

शरीर एक दिन गलित हो जाएगा। इस संसार में जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका क्षय भी होता है। जिसका क्षय होता है, उसे शरीर कहते हैं। ''शीर्यते इति शरीरम्'' किसी के मरण से ईश्वर की सृष्टि में कोई अन्तर नहीं पड़ता। मरने पर पंच महाभूत में मिल जाते हैं। जीवात्मा मरने के बाद केवल मन को साथ लेकर जाता है, शरीर छोड़ने पर मन ही साथ में आता है। हमारा यह तन पूर्व जन्म का मन लेकर आता है। जो मन मरने के बाद भी साथ जाने वाला है, उसे अधिक सावधानी से सम्हालना चाहिए।

मैं यह नहीं कहता कि जगत् से घृणा करो; किन्तु यहाँ किसी जीव से अधिक प्रेम भी न करो। इस संसार में केवल परमात्मा ही प्रेम करने योग्य है। परमात्मा से प्रेम करो। कदाचित् आप यह शंका करेंगे कि महाराज आप प्रतिदिन परमात्मा से प्रेम करने को तो कहते हैं, किन्तु प्रभु में तो प्रेम होता ही नहीं। आप भगवान् में प्रेम होने का कोई उपाय बताइए। आप जरा विचार तो कीजिए कि अपने घर के लोगों से कैसे प्रेम करते हैं? पति ऐसा समझता है कि पत्नी मुझे सुख देती है और पत्नी ऐसी कल्पना करती है कि पति के कारण ही सुखी हूँ। घर के लोग मुझे सुख देते हैं, ऐसा समझने से प्रेम होता है। आज से आप ऐसा निश्चय कीजिए कि प्रभु ने ही मुझे सुख दिया है। न कोई स्त्री सुख देती है, न कोई पुरुष सुख देता है। यहाँ सब अपने किये गये कर्म का फल भोगने के लिए इकट्ठा हुए हैं। कर्म का सम्बन्ध पूरा होते ही सुख देने वाला ही दुःख का कारण बनता है।

व्यवहार में यह देखा गया है कि जिससे अधिक सुख मिलता है, वही रुलाता है। सुख तो परमात्मा देता है। आपको यदि थोड़ा ठंडा पानी मिले तो विचार करो कि यह किसने दिया है? किसी मनुष्य में पानी पैदा करने की शक्ति नहीं है। पानी तो परमात्मा देता है। यदि पानी मिले, तो भगवान् का एहसान मानना कि उसने पानी दिया। यदि आप बारंबार अपने मन में विचार करेंगे कि मैं परमात्मा की कृपा से सुखी हूँ, तो ही प्रभु में प्रेम उत्पन्न होगा। जो यह समझता है कि मैं अपने कर्म से सुखी हूँ, वह अभिमानी है। ऐसा विचार करो कि भगवान् मुझे सुख देते हैं; प्रभु की कृपा से मुझे धन मिला है और जो मान या धन आपको मिला है क्या वह किसी योग्यता से मिला है? इसके लिए अपनी दृष्टि अन्दर की ओर मोड़ो और विचार करो कि क्या मैं इसके योग्य हूँ?

मैंने आज तक कितना पाप किया है? विचार करो कि मैंने मन से बहुत पाप किया है, आँख से बहुत पाप किया है। फिर भी प्रभु ने मुझे बहुत कम सजा दी है। प्रभु ने मुझे बहुत सुख दिया है।

परमात्मा मनुष्य की योग्यता से अधिक मान या आदर देते हैं, सुख देते हैं। परमात्मा अत्यन्त उदार हैं। अहेतुकी प्रेम करना प्रभु का स्वभाव है। परमात्मा प्रेम किये बिना रह ही नहीं सकता। वह नास्तिकों से भी प्रेम करता है। वैष्णव-जन अपने प्रेम द्वारा ही भगवान् को अपने वश में करते हैं। इसलिए प्रेम-बल ही सबसे श्रेष्ठ बल है। जब द्रव्य-बल, बुद्धि-बल, शरीर-बल, ज्ञान-बल इन सबकी हार हो जाती है, तब प्रेम की जीत होती है। जहाँ अतिशय प्रेम है, वहाँ मनुष्य हार स्वीकार कर लेता है। प्रेम के सब नियम भिन्न हैं। प्रेम में अति मान मिलना अपमान जैसा लगता है। प्रेमी को अति मान नहीं सुहाता। इसीलिए वह कह पड़ता है कि मैं तो घर का हूँ। मैं क्या कोई पराया हूँ? मुझे इतना आदर क्यों देते हो? प्रेम में अति मान ही अपमान जैसा लगता है। इसीलिए वह कह पड़ता है कि मुझे अपना समझकर ही ऐसा कहा जाता है। प्रेम में अपमान भी मान है, आदर है। प्रेम के अनेक तत्त्व काफी भिन्न हैं।

प्रेम में हार ही जीत है और जीत ही हार है। यानी मेरे प्रियतम की जीत ही मेरी जीत है और उसकी हार ही मेरी हार है। जहाँ अतिशय प्रेम है, वहाँ जीव भी हार पसन्द करता है। कल्पना करो कि कोई माता कथा सुनने के लिए जाने वाली है। उसके घर में तीन-चार वर्ष का बालक है। माता की ऐसी इच्छा है कि बालक घर में ही खेले उसे यहीं छोड़ मैं कथा सुनने जाऊँ। माता बालक को समझाती है, उसे खिलौना देती है, मिठाई देती है, पैसा देती है और कहती है कि बेटा! तू घर में ही खेलना। लेकिन बालक पैसा फेंक देता है। उसे पैसा भी नहीं चाहिए, खिलौना भी नहीं चाहिए। उसे तो उसकी माता चाहिए। उसे माता को छोड़ कोई चीज पसन्द नहीं आती। बालक का सम्पूर्ण प्रेम माता में होता है। यदि बालक अपनी माता की साड़ी पकड़कर खूब रोने लगे तो क्या उसकी माता उसे रोता हुआ छोड़कर कथा में जाएगी। वास्तव में माता अपने बालक का प्रेम देखकर विह्वल हो जाएगी। यदि उससे कोई पूछे कि तुम कथा में क्यों नहीं आई? तो वह जवाब देगी कि बच्चे ने मुझे रोक लिया। क्या छोटा बालक माता को रोक सकता है? माता में तो बालक से अधिक शक्ति है; किन्तु बालक में प्रेम अधिक है। बालक का प्रेम देखकर माता दुर्बल बन जाती है कि बेटा! तेरी इच्छा नहीं है, तो मैं कथा में नहीं जाती।

मान लो कि वह बालक अब बड़ा होकर चौबीस-पच्चीस वर्ष का जवान हो गया। उसकी शादी भी हो गई और उसकी पत्नी घर में आ गई। तब यदि माता कथा में जाने को तैयार हुई और वह विवाहित युवक उसे रोकना चाहता हो, तो क्या माता उसका कहना मानेगी? माता साफ शब्दों में कह देगी कि तू आज कथा में जाने से रोकेगा, तो भी मैं जाऊँगी। मुझे अपनी देह का, अपनी

आत्मा का कल्याण करना है। विवाहित युवक माता को कथा में जाने से कितना ही रोके, किन्तु वह अवश्य जाएगी। अब यदि लड़का माता से कहे कि मैं छोटा था तो कथा में जाने से जब तुझे रोकता था, तब तू नहीं जाती थी। इस समय मैं पैसा कमाता हूँ और कथा में जाने से तुझे रोकता हूँ, फिर भी तू कथा में क्यों जाती है? माता बड़ी सरलता से उत्तर देगी कि जब तू छोटा था, तब तेरा सम्पूर्ण प्रेम मुझ में ही था। अब तेरी पत्नी आ गई है और तेरा पहले जैसा प्रेम मुझ में नहीं है।

आज लड़कों की शादी होती है। उसके बाद वे माता-पिता का प्रेम और उनका उपकार भूलने ही लगते हैं। बालक बाल्यावस्था में माता के आधीन था। इसलिए माता भी उसके आधीन रहती थी और बालक जो कहता था उसे वह करती थी। लड़के के बड़ा होने पर माता उसके अधीन नहीं रहती। पुत्र का प्रेम कम होते ही माता का प्रेम भी कम हो जाता है। जीव और ईश्वर का सम्बन्ध पिता-पुत्र जैसा है, माता-पुत्र जैसा है। परमात्मा सबकी माता है। वही सबका पिता है। उस परमात्मा से प्रेम करो, सतत प्रभु-स्मरण की आदत डालो, भगवान् का नाम जप करो, प्रतिपल भगवान् के उपकारों का स्मरण करो कि उसकी मुझ पर बड़ी कृपा है। जो परमात्मा के उपकारों का स्मरण करता है, प्रतिपल भगवान् की मुझ पर कृपा है—ऐसा सोचता रहता है वही भक्ति कर सकता है। उसे ही प्रभु के प्रति प्रेम जगता है। कोई भी जीव प्रेम किये बिना रह ही नहीं सकता। जीव प्रेम तो करता है किन्तु जगत् के साथ प्रेम करता है। वह परमात्मा से प्रेम नहीं करता। जीव पैसे से भी प्रेम करता है। कितने ऐसे सुधरे हुए लोग भी हैं, जो अपनी चप्पल से भी बहुत प्रेम करते हैं। वे चप्पल पहनकर घर में फिरते हैं और चप्पल पहनकर रसोई घर में भी जाते हैं। वे ऐसा समझते हैं कि हम सभ्य हैं। जो चमड़े से अधिक प्रेम करे, उसे सुधरा हुआ कहें या बिगड़ा हुआ कहें? मन्दिर की तरह ही अपना रसोईघर पवित्र रखना चाहिए।

सूतजी सावधान करते हुए कहते हैं, कोई भी जीव प्रेम किये बिना नहीं रह सकता। लेकिन मनुष्य भगवान् से प्रेम नहीं करता। यह जीव जगत् से प्रेम करके ही दुःखी हुआ है। जगत् के साथ वैर मत करो, परन्तु उससे अधिक प्रेम भी मत करो। यह जगत् अधिक प्रेम करने योग्य नहीं है। तुमसे जो मिले, उसे 'जय श्रीकृष्ण' कहो, हाथ जोड़ो, दो मधुर शब्द कहो, किन्तु यदि तुमसे कोई न मिले, तो ऐसा न सोचो कि वे भाई दो-तीन महीनों से क्यों नहीं मिले? कोई मिले तो अच्छा, न मिले तो अधिक अच्छा! यह सोचो कि मुझे परमात्मा से मिलना है, परमात्मा से एकाकार होना है; जगत् के साथ विवेक पूर्वक प्रेम करो। उससे अधिक प्रेम मत करो। जिसका संयोग तुम्हें अधिक सुख देता है, उसका वियोग बहुत रुलाएगा। संसार का संयोग वियोग के ही लिए होता है। संयोग में जितना सुख है, उससे हजार गुना दुःख वियोग में है। एक दिन ऐसा आएगा जिस दिन तुम उसे छोड़ दोगे अथवा वह तुम्हें छोड़कर चला जाएगा। यह सोचकर कि एक दिन वियोग

होने ही वाला है, यह याद रखते हुए विवेक पूर्वक प्रेम करो। यदि शरीर से प्रेम करो, तो उसे काम कहेंगे, धन से प्रेम करो, तो उसे लोभ कहेंगे। मनुष्य का प्रेम अनेक स्थानों पर बिखरा हुआ है। इस बिखरे हुए प्रेम को इधर-उधर से बटोर कर परमात्मा को अर्पित कर दो। सर्व शक्तिमान परमात्मा प्रेम-परतंत्र, प्रेमाधीन बन जाता है।

सूरदासजी महाराज के जीवन में एक घटना घटी थी। वे जन्म से अन्धे नहीं थे। जब उन्होंने आँख से पाप होते देखा तब यह जानकर कि आँख भक्ति में विघ्न डालती है, उन्होंने उसे फोड़ डाला था कि मुझे अब जगत् को नहीं देखना है, बल्कि सतत श्रीकृष्ण का दर्शन करना है, सतत भक्ति करनी है। सूरदासजी वृन्दावन में रहते थे। उनके इष्टदेव बालकृष्णलाल थे। वे सारे दिन शुद्ध भाव से ध्यान करते थे, जप करते थे और कीर्तन करते थे। उनके चरित्र में लिखा है कि जब वे बड़े प्रेम से कृष्ण-कीर्तन करते, तब बालकृष्णलाल उनके सामने बैठकर कीर्तन सुना करते थे। उनके कीर्तन में भगवान् को बहुत आनन्द आता था। सूरदासजी का ऐसा नियम था कि किसी मनुष्य से भीख न माँगे। जब वे कहते कि लाला मुझे बहुत भूख लगी है। मैं किसी मनुष्य से नहीं माँगूंगा। वे बालकृष्णलाल को अपना मालिक मानकर कहते कि मेरा कपड़ा बहुत फट गया है। श्रीकृष्ण किसी न किसी को प्रेरणा प्रदान करते और किसी से सूरदास को वह वस्तु मिल जाती। एकबार सूरदासजी कहीं जा रहे थे। उनके रास्ते में एक बड़ा गड्ढा मिला। वे उसमें जा गिरे। गड्ढा बड़ा होने के कारण वे उससे बाहर न निकल सके। वे कुछ घबरा गये कि क्या करें? बालकृष्णलाल को दया आ गई। बालकृष्णलाल वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने सूरदासजी का हाथ पकड़ लिया। सूरदासजी को मालूम दिया कि किसी ने हाथ पकड़ा है। वे पूछ बैठे कि तुम कौन हो? बालकृष्णलाल ने कहा, ''मैं नन्दबाबा के गाँव के एक ग्वाले का पुत्र हूँ। मैं गायों को लेकर इस ओर आया था। यहाँ आपको गड्ढे में पड़ा देखकर आपको निकालने के लिए चला आया।'' सूरदासजी विचार में पड़ गए कि वह किस ग्वाले का लड़का है? किसे मेरी इतनी चिन्ता है? यह कोई दूसरा ग्वाला नहीं है। यह तो मेरा बालकृष्ण हैं वे उस लाला को पकड़ने के लिए आगे बढ़े। उनकी आँख से तो दिखाई नहीं देता था। बालकृष्णलाल आगे भाग गए। तब सूरदास ने कहा-

हाथ छुड़ाए जात हौ, निबल जानि के मोहि।
हिरदय ते जो जाउ तौ, सबल कहौं मैं तोहि॥

तुम बलवान हो, मैं निर्बल हूँ, तुम सिन्धु हो, मैं बिन्दु हूँ। तुम अंशी हो मैं अंश हूँ। तुम सर्वज्ञ हो, मैं अल्पज्ञ हूँ, तुम ईश्वर हो, मैं जीव हूँ। तुमको सर्वशक्तिमान मानते हैं, किन्तु मैं तुमको सर्व शक्तिमान तब मानूँगा, जब तुम मेरे हृदय से बाहर निकल सको। सूरदासजी ने प्रभु को

प्रेम से अपने हृदय में बाँध रखा है। परमात्मा प्रेम का बन्धन नहीं तोड़ सकते। सर्वतंत्र-स्वतंत्र परमात्मा प्रेम-परतंत्र हैं। जहाँ अतिशय प्रेम, वहाँ परमात्मा अपनी हार मान लेते हैं।

भ्रमर को कमल से अतिशय प्रेम होता है। वह भ्रमर कमल के मकरन्द में लीन होता है। संध्याकाल सूर्य अस्त होने पर कमल मुँद जाता है। भ्रमरकाल की पंखुरियों में बन्द होकर सबेरा होने की प्रतीक्षा करता है। और अन्त में घुट कर मर जाता है। लकड़ी को छेदने वाला समर्थ भ्रमर कमल को तोड़ नहीं सकता। क्योंकि उसे कमल से प्रेम है। परमात्मा भी प्रेम-बन्धन नहीं तोड़ सकता। इसीलिए परमात्मा से प्रेम करो। यदि प्रभु-प्रेम न हो सके, तो भगवान् का नाम-जंप करो। जब पाप कम होता है, तब प्रभु में प्रेम जागृत होता है। जो श्रीकृष्ण के साथ प्रेम करता है, उसे श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण बना देते हैं। यदि तुम किसी धनवान की खुशामद करो, तो वह धनवान तुमको क्या देगा? यदि बहुत उदार होगा, तो तुम्हें दस हजार देगा, बीस हज़ार देगा। अति उदार होगा, तो तुम्हें अठन्नी का पचास प्रतिशत का हिस्सेदार बना देगा। क्या कोई तुम्हें अपना सोलहों आना भाग देगा? मानो कोई उदार हुआ, तो आधी सम्पत्ति देगा। उससे अधिक तो क्या देगा? कोई तुमको अपनी सोलहों आने सम्पत्ति देने को तैयार नहीं हो सकता। केवल श्रीकृष्ण ही सोलह आना दे सकते हैं।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

जब तक ईश्वर के साथ पूर्ण प्रेम न करो, तो वह प्रेम अधूरा है, अपूर्ण है। जो परमात्मा से प्रेम करता है, उसे परमात्मा पूर्ण बनाता है। फिर भी भगवान् परिपूर्ण ही रहता है। परमात्मा की तरह प्रेम करने वाला संसार में कोई नहीं है, न कोई हो सकेगा। भगवान् गोप-बालकों का स्वरूप धारण करते हैं और गोपियों को आत्म-स्वरूप का दान करते हैं। वे अत्यन्त उदार हैं। जब तक जीव भगवान् से प्रेम न करे, तब तक वह माया के बन्धन में पड़ा रहता है। जब जीव परमात्मा को प्रेम-बन्धन से बाँधता है, तभी यह जीव माया के बन्धन से मुक्त होता है। जब गोपियों का प्रेम बढ़ने लगता है, तब वे बालकृष्णलाल का नाम माखनचोर रख देती हैं। उन्हें 'माखनचोर-माखनचोर-कहकर बुलाती हैं। यशोदामाता को ऐसा पुकारना। अच्छा नहीं लगता। वे कहतीं हैं कि मेरे बालक का नाम चोर रखती हैं। कन्हैया अपने घर का माखन नहीं खाता, वे गोपियों के घर का मक्खन खाने जाता है। इसीलिए तो वे सब उन्हें माखन चोर कहती हैं। लाला मुझ से कहता है कि मुझे अपने घर का माखन पसन्द नहीं। लाला को घर का माखन पसन्द न होने का कारण क्या है? घर का काम नौकर करता है। इसलिए नौकर का काम नौकर जैसा ही होता है। माता प्रेम से रसोई बनाती

है। इसलिए उसके स्वाद में बहुत फर्क पड़ जाता है। माता के परोसने और नौकर के परोसने में काफी फर्क पड़ जाता है। घर में नौकर काम करते हैं। इसलिए लाला को माखन नहीं भाता है इसलिए यशोदा माता ने आज यह निश्चय किया है कि आज मैं अपने हाथ से दधि-मन्थन करूँगी और अपने हाथ से स्वादिष्ट माखन निकालूँगी। उसे अपने लाला को मना-मनाकर खिलाऊँगी। जब वह पेट भरकर माखन खालेगा, तब उसे दूसरे के घर का माखन खाने की इच्छा नहीं होगी। शुकदेवजी महाराज कथा नहीं सुना रहे हैं, बल्कि नीचे के श्लोक में यशोदा का दर्शन कर कह रहे हैं–

क्षौमं वासः पृथुकटि तटे विभ्रती सूत्रनद्धं।
पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्पं च सुभ्रूः॥
रज्ज्वाकर्ष श्रमभुजचलत्कंकणौ कुण्डले च।
स्विन्नं वक्त्रं कबर बिगलन्मालती निर्ममन्थ॥ (१०-९-३)

शुकदेवजी ने यशोदा का वर्णन करते हुए कहा है कि आज 'क्षौमं वासः' अर्थात् रेशमी साड़ी पहन रखी है। यशोदा में शुद्ध भक्ति का स्वरूप है। शुद्ध भक्ति भगवान् को बाँध लेती है। वस्त्र वासना का प्रतीक है। सूत्री वस्त्र रेशमी वस्त्र की अपेक्षा अधिक मुलायम होता है। जीव वासना का बिल्कुल नाश नहीं कर सकता। वह पहले वासना को मुलायम बनाता है। इसलिए यदि तुम्हें भक्ति-मार्ग में आगे बढ़ना हो तो सुख भोगने की वासना मत रखना। तुम दूसरे को सुखी करने और सुखी देखने की इच्छा करना, अपनी वासना को मुलायम बनाना। जिसे दूसरे को सुख देने की वासना होती है, वही भक्ति कर सकता है और वह कभी दुःखी नहीं हो सकता। यशोदा ने रेशमी साड़ी धारण की है। उनके कान में कुण्डल हैं। वह भक्ति का शृंगार है। यशोदा माता भक्ति-रूपिणी है। साँख्य और योग रूपी कुण्डल भक्ति का शृंगार है। ये दोनों भक्ति के साधक हैं। साँख्य शास्त्र जड़-चेतन का विभाग करता है। जो जड़-चेतन का विभाग करता है। जो जड़-चेतन का अच्छी तरह विभाग कर सकता है, वही भक्ति कर सकता है। मैं इस शरीर से पृथक् हूँ। मैं यह शरीर नहीं हूँ। यह शरीर पंच महाभूत (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) अथवा पाँच तत्त्वों से बना है। शरीर से आत्मा भिन्न है, पृथक है। आत्मा परमात्मा का अंश है। शरीर जड़ है, आत्मा चेतन है। यही समझना साँख्य शास्त्र है। योग-शास्त्र का काम मन को एकाग्र करना है। जब भगवत के स्वरूप और उनके नाम में आँख और मन एकाग्र होंगे, तो भक्ति होगी। भक्ति करने का अर्थ है भगवान की मूर्ति में परमात्मा के मंत्र में मन को पिरो देना। तभी भक्ति सिद्ध होती है।

यशोदामाता दधि-मंथन करते समय लाला को देखती हैं। माता की नजर श्रीकृष्ण में है। हमें भी ऐसी आदत डालनी चाहिए। घर में चाहे जो भी काम करो अपनी नजर भगवान् में स्थिर

करो। जो अपनी आँखें भगवान् में रखता है, उसे भगवान दिव्य भक्ति देते हैं। आँखें भगवद्-स्वरूप में स्थिर करो। यशोदा माता जो काम करती हैं, वह लाला के लिए करती हैं। घर का प्रत्येक काम भगवान् के लिए करना ही भक्ति है।

कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि मन्दिर में जाकर काम करना ही भक्ति है। वास्तव में तुम्हारे घर के मालिक परमात्मा हैं यदि घर में जो काम करो, वह भगवान् को ध्यान में रखकर करो और भगवान् के लिए करो, तो यह भी भक्ति है। जब बाजार में साग-सब्जी लेने जाओ, तो भगवान् को याद करना कि मैं यहाँ भगवान् के लिए आया हूँ। अपने घर में कोई काम करो तो उसे भगवान् के लिए करो। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि स्नान तो शरीर को स्वच्छ करने के लिए किया जाता है। अरे, यह शरीर तो मल-मूत्र से भरा हुआ है। एक-दो बार क्या अनेक बार धोने या स्नान करने पर भी यह स्वच्छ नहीं हो सकता। अनेक लोग शरीर पर खूब साबुन घिसते हैं। क्या बहुत साबुन रगड़ने पर शरीर का रंग बदल जाएगा? एकाध बार साबुन लगाना तो ठीक है। स्नान सेवा करने के लिए है। ऐसा भाव रखो कि मुझे स्नान करके भगवान् की सेवा में जाना है। अधिक क्या कहें? कोई भी काम हो, वह भगवान् के लिए करो।

गोपियों का शृंगार करना भी भक्ति है। यदि शृंगार करने में कोई मानसिक विकार हो, वासना हो, तो वह आसक्ति कहा जाएगा। यदि परमात्मा को प्रसन्न करने के विचार से शृंगार किया जाए तो वह भी भक्ति है। यह सोचना कि मुझे ठाकुरजी के सामने बैठना है। यदि मेरा कपड़ा गन्दा होगा तो मेरे भगवान् को पसन्द नहीं पड़ेगा। मैं भगवान् का हूँ। तुम्हें अच्छा और स्वच्छ कपड़ा पहिनकर भगवान् की सेवा करनी है, परमात्मा का ध्यान करो, प्रेम से कीर्तन करो। तुमको इस प्रकार देखकर भगवान् प्रसन्न होंगे।

मीराबाई के चरित्र में लिखा है कि वह सुन्दर शृंगार करती और गोपालजी के सम्मुख कीर्तन करती-'गोपालजी की नजर मुझ पर पड़ने वाली है। इसलिए मैं शृंगार करती हूँ।' उनका भाव ऐसा था। यदि शृंगार के पीछे शुद्ध भाव हो तो शृंगार भी भक्ति है। प्रायः ऐसा होता है कि लोग जब बाहर निकलते हैं, तब अच्छा कपड़ा पहनते हैं, किन्तु कुछ लोग ऐसे होते हैं, कि जब घर के अन्दर ठाकुरजी की पूजा करने बैठते हैं, तब फटा कम्बल पहनकर बैठते हैं अथवा साधारण कपड़ा पहनते हैं और सोचते हैं कि यहाँ कौन देखने वाला है? तुम जगत् को अच्छा कपड़ा दिखाते हो और भगवान् को साधारण कपड़ा दिखाते हो। क्या यह भगवान् को पसन्द आएगा? तुम यदि भगवान् को अच्छा कपड़ा पहनाकर प्रेम से पूजोगे, तो भगवान् की तुम पर नजर पड़ेगी। केवल तन को ही नहीं, अपने मन को भी सजाना है, मन को शुद्ध और सुन्दर बनाना है। कपड़े

की अपेक्षा हृदय का शृंगार अधिक महत्वपूर्ण है। शृंगार में यदि कोई शुद्ध भाव है तो वह भक्ति ही है। व्यवहार और भक्ति दोनों भिन्न नहीं है। अपने व्यवहार को भक्तिमय बनाओ। यशोदा मैया दधि-मन्थन करते समय अपने लाला को निहार लिया करती हैं। इस पर थोड़ा विचार करें तो यह संसार भी एक मटकी (दुग्ध पात्र) जैसा ही है। इसमें माया ने विषय रूपी दही भरा है। जिस प्रकार दही में खट्टापन होता है, उसी प्रकार संसार के विषयों में अधिक खट्टापन होता है, अधिक कड़वाहट होती है, मीठापन बहुत ही कम होता है। दही का मन्थन करने से मक्खन निकलता है। दही में भले ही खट्टापन हो; वह मक्खन मधुर होता है। तुम विषयों का मन्थन विवेक पूर्वक करो और प्रेमरूपी मक्खन निकालकर परमात्मा को अर्पित करो। यशोदा श्री सम्पन्न हैं। उन्होंने कभी ऐसी मेहनत नहीं की थी, किन्तु आज अपने लाला के लिए वह मेहनत कर रही हैं। इसीलिए उसे पसीना छूट रहा है (स्वीनं वक्त्रं) फिर भी उनके हृदय में श्रीकृष्ण प्रेम भरा पड़ा है। वह सोच रही हैं कि आज लाला के लिए मक्खन निकाल रही हूँ। आज मैं लाला को मना-मनाकर अपने हाथ से निकाला हुआ मक्खन खिलाऊँगी, जिससे वह फिर दूसरी जगह मक्खन खाने न जाए। माता यशोदा थक गई हैं, प्रेम में हृदय गद्गद हो गया है, द्रवीभूत हो उठा है। इसीलिए उसे अपनी थकावट का पता नहीं लगता। यदि तुम प्रेम से काम करो, परमात्मा प्रसन्न करने की भावना से काम करो, श्रीकृष्ण में नजर रखकर काम करो, थकावट होने पर भी उसकी खबर नहीं पड़ेगी, पता नहीं लगेगा। प्रेम एक ऐसी ही शक्ति है। प्रेम में भले ही थक जाए किन्तु उस थकावट का पता नहीं लगता। श्रीकृष्ण के प्रेम में माता यशोदा का हृदय पिघल गया है—पुत्रस्नेहस्नुत कुचयुगम्।

धम-धम-धम की जो मधुर ध्वनि होती है, वह दधि-मन्थन की धमधमाहट है। यशोदा मैया प्रेम से श्रीकृष्णलीला का वर्णन करती हैं कि मेरे लाला का जब से जन्म हुआ, तभी से इस गाँव की शोभा बढ़ी है। मेरा लाल सारे गाँव को प्राणों से भी प्यारा लगता है। श्रीकृष्ण की एक-एक लीला का स्मरण करते-करते माता के शरीर में रोमाँच हो उठता है, आँखें गीली हो जाती हैं। यशोदा माता दधि-मन्थन में तन्मय हो गई हैं। उनकी बहुत इच्छा है कि कन्हैया के जागने से पहले मक्खन निकाल लें। इसका कारण यह कि वह जागने के बाद काम नहीं करने देता। हर रोज का नियम तो यह था कि यशोदा माता के मंगल गीत गाने पर श्रीबालकृष्णलाल जागते थे। कई बार ऐसा भी होता था कि कन्हैयालाल बिछौने पर जागते, किन्तु माता की गोद में फिर सो जाते। यशोदा मैया लाला को समझातीं कि बेटा! अब सूर्योदय का समय हो गया है। तुझे तेरी गायें बुला रही हैं। इस प्रकार जब यशोदा माता बहुत प्रेम से जगातीं, तब कन्हैया जागता है। आज यशोदा माता की ऐसी इच्छा है कि जल्दी-जल्दी मन्थन करूँ, तो मक्खन निकले। उसे निकाल कर रख

लूँ। इसके बाद लाला को जगाऊँगी, लेकिन आज लाला को जगाने की कोई जरूरत पड़ी नहीं। बालकृष्णलाल जाग उठे हैं और जगकर घुटनों से चलते हुए पीछे से माता की साड़ी खींचने लगे हैं। माता को आश्चर्य हुआ कि यह कौन आया? माता ने मुड़कर देखा तो बालकृष्ण नजर आए। निद्रा से जागने के बाद तो कन्हैया की शोभा कुछ और ही होती है। बालकृष्णलाल के बाल रेशम की तरह नरम हैं बाल उनके गाल पर आ गए हैं। लाला की आँखों में केवल प्रेम भरा है। वे प्रेम से अपनी माता को देख रहे हैं कि वह मेरे लिये कितना दुःख सहन कर रही है। आज लाला से यह न देखा गया। वे बोले, माँ तू मेरे लिए कितना दुःख सहन करती है। लाला को आज सहन नहीं हुआ। वे बोल पड़ा, माँ, मुझे भूख लगी है! माता का हृदय प्रेम से पिघल उठा। इसीलिए लाला को आज भूख लगी है। माता ने मटकी में नजर दौड़ाई, तो थोड़ा मक्खन ऊपर आया देखा।

माता को अब ऐसा लगा कि यदि दस-पन्द्रह मिनट और दधि-मन्थन करूँ तो अच्छी तरह मक्खन निकलेगा। माता ने लाला से कहा, बेटा, तू बैठ! मैं मक्खन निकाल लूँ तो तुझे खिलाऊँ। माता पुनः दधि-मन्थन आरम्भ कर देती है, किन्तु लाला को जरा भी भूख सहन नहीं होती। उसे खूब भूख लगी है। फिर तो कन्हैया वहाँ से उठा और मथानी पकड़ कर रोने लगा। माता को उस पर दया आ गई। माता ने दही मथना बन्द कर दिया है और बालकृष्णलाल को अपनी गोदी में उठा लिया है। माता अपने हृदय का प्रेम-रस अर्पित कर रही है।

तमंक मारूढमपायमस्तनं स्नेहस्तुतं सस्मितमीक्षती मुखम्।
अतृप्तमत्सज्य जनेत सा यथा वत्सिच्य माने पयसि त्वधिश्रिते।।

माता जिस समय अपने बालक को दूध पिलाती है माता और पुत्र दोनों एक हो जाते हैं। यशोदा माता और बालकृष्णलाला दोनों एक हो गए हैं। यही यशोदाजी की ब्रह्म सम्बन्धी कथा है। माता बालकृष्णलाल को गोद में लेकर बैठी है। वह अपने लाला को हृदय का प्रेम-रस अर्पित कर रही है, तन्मय बन गई है। उसी समय माता ने देखा कि चूल्हे पर रखा हुआ दूध उफन रहा है। जब जीव का ब्रह्म से सम्बन्ध होता है, तभी दूध में उफान आता है।

यदि शान्ति से विचार करें, तो ज्ञात होगा कि यह लीला हर घर में होती है। तुम सबेरे चार बजे उठे, स्नान किया, पवित्र आसन पर बैठे और ऐसा संकल्प किया कि ध्यान के साथ जप करते हुए मैं तन्मय हो जाऊँगा, मुझे भगवान् के दर्शन होंगे, मुझे परमात्मा से मन पूर्वक मिलना है। परमात्मा से मिलने की भावना रखते हुए ध्यान के साथ जप करने के कारण तुम्हारी तन्मयता थोड़ी बढ़ेगी, लेकिन जीव जब परमात्मा से मिलता है, तभी दूध में उफान आता है।

जब जप करने पर थोड़ी तन्मयता बढ़ी, लेकिन यदि उसी समय याद आया कि आज कौन सा साग लाऊँगा? तो यह दूध का उफान कहलाएगा। इस जीव की यह कुटेव है कि यह जो सुख भोग चुका है, उसका स्मरण करता है, जो सुख भोगना है उस पर विचार करता है, यही दूध का उफान है। यशोदा माता ने देखा कि चूल्हे पर दूध है और उसमें उफान आ गया है। प्रश्न यह है कि दूध में उफान क्यों आया? महापुरुषों ने इसके सम्बन्ध में अपने अनेक भाव प्रदर्शित किए हैं। इस दूध की ऐसी इच्छा थी कि यशोदा माता अपना दूध कम पिलायें। कम दूध पिलाने पर लाला को भूख बनी रहेगी तो कन्हैया मुझे पिएगा। अथवा लाला के पेट में मैं जाऊँ तो मेरा उद्धार होगा। इस प्रकार श्रीकृष्ण सेवा में, भगवद् सेवा में मेरा सदुपयोग होगा। मुझे किसी विलासी के पेट में नहीं जाना है। अथवा दूध की यह भी इच्छा है कि मेरा दुरुपयोग न हो। मुझे लाला के पेट में जाना है। किन्तु यशोदा के हृदय में कृष्ण के प्रति बहुत प्रेम है। वह उन्हें खूब दूध पिलाती है। इसलिए दूध को यह विश्वास हो गया कि अब लाला के पेट में भूख नहीं रहेगी और मेरा उपयोग कृष्ण सेवा में नहीं होगा। इसलिए मेरा जीवन व्यर्थ है। इसलिए मैं अग्नि में गिर कर मर जाऊँ। जीकर भला क्या करूँगा।

जीना है उसका भला, जो इन्सान के लिए जिए,
मरना भी उसका भला, जो अपने लिए जिए।

जो परोपकार के लए जीता है, परमात्मा के लिए जीता है, उसी का जीवन जीवन है। इसीलिए दूध चूल्हे में गिरकर जल जाना पसन्द करता है। कुछ महात्मा कहते हैं, "दूध यह विचार करता है कि मुझे पता लगने के मुताबिक जो श्रीकृष्ण का दर्शन हमेशा करता है, उसका पाप–ताप–सन्ताप सबका विनाश हो जाता है। जो श्रीकृष्ण को प्रेम से देखता है, उसका पाप जल जाता है, उसे संसार का कोई ताप नहीं लगता। श्रीकृष्ण का दर्शन करने के बाद दुःख का अन्त हो जाता है। परमात्मा के दर्शन से दुःख का अन्त हो जाता है। मुझे यशोदा माता की गोद में कन्हैया दिखाई देता है। फिर भी मेरा पाप कैसा है कि अग्नि का ताप सहन करना पड़ता है? दूध को यह बात पसन्द न आई। उसके मन में आया कि मैं अग्नि में गिरकर मर जाऊँ। इसीलिए दूध में उफान आया है।

कुछ महापुरुषों का कथन है कि यशोदामाता की थोड़ी भूल हुई। इसीलिए दूध में उफान आया है। यशोदा की गोद में बालकृष्णलाल हैं। जब तक वे गोद में हों, तब तक उनमें नजर स्थिर करनी है। उसके बदले माता की आँख ऊपर गई है, चूल्हे पर रखे दूध पर गई है। श्रीकृष्ण का जीव उनके भक्तों से प्रेम करने के बदले दूसरी किसी वस्तु से अधिक प्रेम करे, इसे वे सहन नहीं कर पाते। तुम यदि ठाकुरजी की सेवा में लगे हुए हो और तुम्हारा मन कदाचित् चंचल हो तो उसे

चंचल होने देना, किन्तु अपनी आँखें मत चंचल होने देना। अपनी आँखें भगवान् में लगाए रखना। यशोदामाता अपनी गोद में विराजित लाला को ठीक तरह देख नहीं पातीं। वे दूध देखने जाती हैं। इससे लाला को नाराजगी होती है कि मेरी माता को दूध में क्या कोई विशेष स्नेह है। लाला ने अग्नि को हुक्म दिया कि चूल्हे में जा। इस से जोर की आवाज होगी, तो दूध में उफान आएगा।

जीव का जब ब्रह्म से सम्बन्ध होता है, तब परमात्मा थोड़ी परीक्षा लेता है। भक्ति का अर्थ है प्रेम। जीव जब जगत् की अपेक्षा भगवान् से अधिक प्रेम करता है, तब उसे भक्ति कहते हैं। यदि वह भगवान् की अपेक्षा जगत् से अधिक प्रेम करे, तो भक्ति में व्यभिचार आ जाता है। जब जीव भगवान् के साथ अतिशय प्रेम करता है, तब उसे भक्ति कहते हैं। यदि वैष्णव भगवान् की अपेक्षा जगत् से अधिक प्रेम करता है, तो यह बात ठाकुरजी को नहीं सुहाती। वे सोचते हैं कि प्रेम करने योग्य मैं हूँ। मुझे क्यों नहीं देखता? मुझे तेरी सारी चिन्ता है। जब गोद में बालकृष्णलाल बिराजमान हैं, यशोदाजी को दूध की ओर देखने की जरूरत ही कहाँ है?

एक महापुरुष ने कहा है कि यह दूध लाला को अधिक भाता था। उनके घर में अधिक गायें थीं; किन्तु उनमें से गंगी गाय का दूध लाला को बहुत भाता था। इसलिए यशोदामाता गंगी गाय के दूध का बहुत ध्यान रखती थी। यशोदामाता को लाला की अपेक्षा दूध अधिक पसन्द नहीं था। फिर भी यह दूध यदि आग में गिर जाए, तो कन्हैया क्या पियेगा इसकी उनको अधिक चिन्ता थी। प्रियतम को जिस विषय में अधिक सुख मिले, उसी से अधिक प्रेम होता है। लाला को यही दूध अधिक भाता है। इसलिए माता की नजर दूध की ओर गई है। माता दूध की ओर देख रही है, यह बात लाला को ठीक नहीं लगी। लाला ने अग्नि को आज्ञा दी। इससे आग प्रज्वलित हो उठी और दूध में एकदम उफान आ गया।

इसीलिए यशोदामाता ने लाला को धरती पर उतार दिया और दूध उतारने गईं।

अतृप्तमुसृज्य जवेन सा ययौ..........

लाला को अभी तृप्ति नहीं हुई है। माता जल्दी से दूध उतारने जा रही है। लाला को यह बात पसन्द नहीं आई कि मेरी माता मुझे छोड़कर दूध उतारने जाए! उसने मेरे लिए अनेक वर्षों तक जंगल में रहकर, पेड़ों के पत्ते खाकर भक्ति की थी किन्तु अब? जीव का एक स्वभाव है कि उसे जो मिलता है, उसकी उपेक्षा करता है। माता ने भी यही सोचा कि कन्हैया कहाँ जाने वाला है? मैं उसे बाद में दूध पिलाऊँगी! पहले इस दूध को अग्नि में गिरने से बचा लूँ। इसीलिए यशोदामाता लाला को धरती पर उतारकर दूध उतारने गईं। लाला से यह सहन नहीं हो सका। जो भगवत् सेवा और स्मरण छोड़कर लौकिक सुधारने जाता है, भगवान् उसका लौकिक अधिक बिगाड़ देते हैं।

आप सब वैष्णव हैं, प्रभु के प्यारे हैं। इसलिए भगवान् में अधिक विश्वास रखिए। भगवान् को आपके लौकिक-अलौकिक की अधिक चिन्ता है। जो परमात्मा से प्रेम करता है और परमात्मा के सेवा-स्मरण में रहता है, उसके लौकिक की चिन्ता भगवान् को अधिक होती है। आप जिस देव की पूजा करते हैं और जिस देव का नाम-जप करते हैं, उस देव को आपकी सभी चिन्ता होती है। माता जब लाला को छोड़कर दूध उतारने गई तो इससे लाला को बहुत बुरा लगा। उनके मन में यह बात आई कि माता मेरी कीमत एक दो लीटर दूध से भी कम समझती है। वह उफनता दूध उतारने गई है। यशोदा ने एक-दो सेर दूध बचाया होगा; किन्तु लाला ने विचार किया आज मैं एक मन दही का नुकसान करूँगा। माता को भी यह याद रहेगा कि मैं लाला को छोड़ दूध उतारने गई तो उसने इतना बड़ा नुकसान कर दिया। उसी समय लाला को क्रोध आ गया। वहाँ एक चटनी पीसने वाला पत्थर पड़ा था। लाला ने उसे उठा लिया दही की मटकी पर दे मारा। उससे दही भरी मटकी फूट गई। संसार की आसक्ति ही मटकी है। जो भगवत् स्वरूप में आसक्ति होती है, उसे भक्ति कहते हैं। विषयासक्ति भक्ति का विनाश करती है। श्रीकृष्ण एक-एक घर में जाकर मटकी इसलिए फोड़ते थे कि मेरी शरण में आया हुआ जीव मेरी अपेक्षा दूसरे से अधिक प्रेम करे, तो वह मुझ से कैसे सहन होगा? भगवान् विषयासक्ति का विनाश करते हैं। प्रायः ऐसा देखा गया है कि यह जीव संसार को ठीक करने जाता है। वह यह भी समझता है कि संसार को ठीक करके भगवान् की भक्ति करूँगा। आश्चर्य है कि अब तक न किसी का संसार व्यवस्थित हुआ है न होगा। संसार तो क्षण-प्रति क्षण बदलता है, किन्तु परमात्मा का स्वरूप एक सा स्थिर रहता है। संसार को व्यवस्थित करने के बाद भक्ति करने की कल्पना ही गलत है। इसलिए भगवान् मटकी फोड़ देते हैं। संसार की आसक्ति तोड़ देते हैं।

उलखराँध्रेरुपरि व्यवस्थितं यर्काय कामं दस्तं शिचि स्थितम्।
हैयंगवं चौर्यावशंकितेक्षणं निरीक्ष्य पश्यात्सुत मागमच्छनैः।।

उसी समय वहाँ ग्वाल-बाल मित्र आ जाते हैं। उन्होंने लाला से पूछा कि कन्हैया! आज किसके घर चोरी करने जाना है? लाला को इस समय क्रोध चढ़ा है। उन्होंने क्रोध में ही कह दिया कि मुझे आज अपने ही घर में चोरी करनी है।

बालकृष्णलाल ग्वाल-बालों की पीठ पर चढ़कर मक्खन उतारते हैं और ग्वाल-बाल मित्रों को मक्खन देते हैं। श्रीकृष्ण जिस घर में चोरी करते हैं, उस घर के झरोखों के पास बन्दर एकत्र हो जाते हैं। उस समय भगवान् को यह बात याद आती है कि ये मेरे रामावतार के भक्त हैं। रामावतार में मैं तपस्वी था। उस समय मैं इन बन्दरों को कुछ खिला न सका। ये सब पेड़ के पत्ते

खा-खाकर मेरे लिए युद्ध करते थे। इसलिए वे उन बन्दरों को कृष्णावतार में मक्खन खिलाते हैं। बन्दर ही वैष्णव हैं। बन्दर बहुत अधिक चपल और चंचल होने पर भी उनमें कई सद्गुण होते हैं। उनमें एक सद्गुण ऐसा है कि वे एक ऋतु में संयम रखते हैं। बानर जाति में दूसरा सद्गुण यह भी है कि वे जंगल में खारे, खट्टे, मीठे, कड़वे सभी फल खायेंगे किन्तु कभी भी वे सीताफल और रामफल नहीं खाते। दक्षिण भारत में रामफल होता है। बन्दर यह मानते हैं कि हम श्रीसीतारामजी के सेवक हैं। हमसे रामफल या सीताफल नहीं खाया जाएगा। बन्दर भी अपने जीवन में संयम रखते हैं। जिसके जीवन में संयम नहीं है, जिसके जीवन में भक्ति का कोई नियम नहीं है, वह पशु से भी तुच्छ है। जो इन्द्रियों का संयम और भक्ति का नियम पालता है, उसे यमराज भी दण्डित नहीं करते।

भगवद्गीता किंचिद्धीता गंगाजल लवकणिका पीता।
सकृदपि येन मुरारिसमर्चा क्रियते तस्य यमेन न चर्चा॥ भज गोविन्दम्

इसलिए संयम रखो और भक्ति के नियमों का पालन करो। नियम के बिना भक्ति नहीं हो सकती। लाला सबको मक्खन देते हैं, किन्तु उसकी आँखें चारों ओर फिरती हैं। वह देखता है कि कहीं मेरी माता तो नहीं आ रही है? प्रभु ने इस घटना से यह उपदेश दिया है कि मैं ईश्वर हूँ। फिर भी चोरी करने पर मुझे भी डरना पड़ता है।

यशोदामाता ने दूध उतारकर रख लिया है। अग्नि बुझाकर उन्होंने फिर चूल्हे पर दूध रख दिया है। वहाँ से वापस आने पर यशोदामाता ने देखा कि लाला ने मटकी फोड़ दी है सारा दही ढुलक गया है और लाला यहाँ नहीं है। माता ने यह सोचा कि लाला कहाँ गया? उन्होंने घर में नजर दौड़ाकर देखा तो लाला घर में ओखली पर चढ़कर मक्खन उतार रहा है और उसे ग्वाल-बाल मित्रों तथा बन्दरों को खिला रहा है। माता को बड़ा दुःख यह हुआ कि मेरे लाला को चोरी करने की आदत पड़ गई है। जो वह माँगे, वह देने को तैयार हूँ। मैंने देने से मना ही कब किया है? घर में बहुत माखन है। उसके मित्रों को भी दूँगी; किन्तु इसे चोरी करने की आदत पड़ गई है। आज मुझे उसका व्यवहार ठीक नहीं लगा है, कुछ क्रोध भी पैदा हो गया है। यशोदामाता ने हाथ में सोटी पकड़ ली है। ग्वाल-बालों ने माता को देखकर कहा कि कन्हैया! कन्हैया! तेरी माता आ गई है। लाला तुरन्त कूदकर वहाँ से भागने लगता है। यशोदा माता लाला के पीछे-पीछे दौड़ पड़ती हैं और कहती हैं, "तू बहुत शरारती हो गया है। तू भागकर कहाँ जाएगा! आज मैं तुझे सजा अवश्य दूँगी।"

यशोदाजी कन्हैया के पीछे-पीछे दौड़ती हैं, किन्तु वह हाथ नहीं आता। इससे हमें उपदेश मिलता है कि लाला को पकड़ना हो तो सोटी फेंक कर दौड़ो। जो हाथ में सोटी लेकर दौड़ता है,

वह लाला को पकड़ ही नहीं सकता। सोटी अर्थात् अभिमान। हाथ में सोटी लेकर कोई कितना भी दौड़े, उसके हाथ में कृष्ण आ ही नहीं सकता। इसलिए अभिमान छोड़कर भगवान् के पीछे दौड़ो। यशोदाजी में यहं एक सूक्ष्म अभिमान है कि लाला मेरा बेटा है, मैं उसकी माता हूँ। यशोदामाता दौड़ते-दौड़ते थक गई हैं। कन्हैया हाथ में नहीं आता। इस पर महापुरुषों ने अनेक भाव प्रकट किये हैं। वे कहते हैं कि यशोदा के दौड़ने पर भी कन्हैया क्यों हाथ में नहीं आता? माता की यंह भूल है कि लाला की पीठ पर नजर रखकर दौड़ती है। उन्हें लाला का मुँह नहीं दिखाई देता। उनकी नजर लाला की पीठ पर है। अर्थात् जो भगवान् की पीठ पर नजर रखकर दौड़ता है, वह उसे नहीं पकड़ सकता। ईश्वर को वह पकड़ सकता है, जो श्रीकृष्ण के चरण अथवा मुखारविन्द पर नजर रखकर सामने को दौड़ता है। तीसरे स्कन्ध में ऐसा ही वर्णन आया है कि भगवान् की पीठ में अधर्म है और उनके हृदय में धर्म है।

धर्मः स्तनाद्दक्षिणतो यत्र नारायणः स्वयम्।
अधर्मः पृष्ठतो यस्मान्मृत्युर्लोकभयंकरः॥ (३-१२-२५)

यदि भक्ति धर्मानुकूल हो, तो भगवान् हाथ में आते हैं। अधर्म के सामने दौड़ने से अनेक लोग भक्ति तो करते हैं, किन्तु धर्म का पालन ठीक तरह नहीं करते। वे ऐसा समझते हैं कि हम भक्ति करते हैं, सेवा करते हैं। इसलिए हमें धर्म का पालन करने की कोई आवश्यकता नहीं। तुम भक्ति करो, सेवा करो। यह बहुत अच्छी बात है, किन्तु धर्म को मत छोड़ो। धर्म का भक्ति के साथ कोई विरोध नहीं है। अपने धर्म का ठीक-ठीक पालन करते हुए भक्ति करो। मनुष्य आकाश से सीधे धरती पर नहीं उतर आया है। उसका किसी कुल में, किसी जाति में जन्म हुआ है। जन्म से ही कुल धर्म और जाति के साथ सम्बन्ध जुड़ गया है। यह समझकर धर्म को छोड़ना नहीं चाहिए। धर्म के छोड़ देने पर भक्ति सफल नहीं होती और भक्ति में विघ्न आते हैं। धर्म को कभी मत छोड़ना। जब तक देह में चेतना है, तब तक धर्म का पालन करना चाहिए। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि हम ध्यान-क्षेत्र में आगे बढ़ गए हैं। अब हमें धर्म का पालन करने की आवश्यकता नहीं। भागवत में विशेष रूप से आज्ञा दी गई है कि जिसे देह का ज्ञान है, उसे धर्म की आवश्यकता है। जो देहातीत अवस्था में है या जिसे देह का ज्ञान नहीं है, उसके लिए कोई धर्म नहीं है।

श्रीकृष्ण भागते जा रहे हैं। वे माता के हाथ में नहीं आते। यशोदामाता चिढ़ गई हैं। उन्हें अब थोड़ा क्रोध भी आ गया है। वे दौड़ती-दौड़ती थक गई हैं। इसलिए वे रास्ते में एक जगह बैठ जाती हैं और सोटी हाथ से दूर फेंक देती हैं। लाला तो यही चाहता था कि माता सोटी फेंक दे और उसके हाथ में आ जाऊँ। अब श्रीकृष्ण माता के पास जाते हैं। यशोदामाता यह समझ जाती हैं कि

मेरे सोटी फेंक देने से लाला को यह विश्वास हो गया है कि अब माता मुझे नहीं मारेगी। इसीलिए कन्हैया पास आता है। लेकिन कन्हैया कहता है कि माता! तेरा ऐसा सोचना ठीक नहीं है। मैं तेरा अभिमान उतर जाने के कारण तेरे पास आया हूँ। अब यशोदा माता की नजर श्रीकृष्ण के मुँह पर है, पीठ पर नहीं है। कन्हैया पास आ जाता है। मुँह पर नजर रखकर जहाँ यशोदाजी थोड़ा दौड़ती हैं कि कृष्ण हाथ में आ जाता है। यशोदाजी ने कहा कि लाला! तू बहुत शरारत करता है। आज मैं तुझे सजा देने वाली हूँ। यह सुनकर लाला ने तुरन्त कहा कि माता! अब मैं ऐसा कभी नहीं करूँगा। आज तू मुझे छोड़ दे। माता ने कहा, "आज मैं बिल्कुल मानने वाली नहीं हूँ। तूने जिस ओखली पर चढ़कर चोरी की है, उसी से आज तुझे बाँधूँगी। यशोदामाता कृष्ण को पकड़कर घर ले गयीं और उसे ओखली में बाँधने की तैयारी कर रही हैं। इससे कृष्ण के ग्वाल-बाल मित्र दुःखी हो गए हैं। आज बाल-मण्डल का अध्यक्ष पकड़ा गया है। इसीलिए सारी बाल-मण्डली रो पड़ी।

बालक यशोदामाता का वन्दन करते हैं और समझाते हैं कि माता, लाला ने हमारे लिये चोरी की है। माँ मुझे आज घर पर कुछ खाने को नहीं मिला। इसलिये मैंने लाला से बार-बार कहा कि मुझे भूख लगी है। इसके कारण लाला ने मेरे लिये चोरी की। तुम्हें जो सजा करनी हो, मुझे करो। लाला को मत बाँधो। अब इसे छोड़ दो। यह सुनकर यशोदामाता को आश्चर्य होता है कि बालकों का यह कैसा प्रेम है! वह बालकों को धमकाती है कि तुम अपने घर चले जाओ। मेरे सामने तुम वकालत करने चले हो! यहाँ से निकल जाओ। यशोदामाता ने अब तक किसी बालक से घर चले जाने को नहीं कहा था। वे ऐसा मानती थीं कि गाँव के सब बालक मेरे ही हैं। आज वे क्रोध में हैं। इसीलिए उन्होंने बालकों से घर जाने को कहा। बालक भागकर अपने घर गये और वहाँ जाकर गोपियों से कहा कि आज यशोदामाता बहुत चिढ़ गई हैं। लाला ने मटकी फोड़ डाली है। इसलिए उन्होंने लाला को बाँध रखा है। तुम जाओ और यशोदा माता को समझाओ कि लाला को बाँधे नहीं।

गोपियाँ यह खबर पाते ही दौड़ी-दौड़ी यशोदा माता के पास जाती हैं और उनको समझाती हैं कि माता, तू यह क्या करती है? हमने अनेक देवों की मनौती मानी अनेक व्रत किये, तब हमें यह बालक मिला है। मैं घर की गरीब हूँ। तेरा कन्हैया मेरे घर आता है, कभी मटकी भी फोड़ देता है, तब मैं इसे कभी धमकाती हूँ, किन्तु कभी इसे बाँधने का विचार नहीं किया है। माता! क्या तुमको इस पर दया नहीं आती? तुम इसे बाँधना मत। मेरे बालक घर पर जाकर रो रहे हैं। इस कारण आज कोई मेरे घर पानी भी नहीं पीता है। सभी को कन्हैया दुलारा है। आज तुमको

यह क्या हो गया है? तुम इतनी निष्ठुर क्यों बन गई हो? आज गोपियों की ये बातें माता को नहीं सुहाती। वे कहती हैं कि मैंने अपनी आँखों से देखा है कि इसे चोरी करने की आदत पड़ गई है। यह किसी की परवाह नहीं करता। तुम लोग इसको बहुत लाड़-प्यार करती हो, इसे सिर पर चढ़ा रही हो। क्या यह उसे समझता है? यह मेरा लड़का है। मुझे जैसा उचित लगेगा वैसा करूँगी। यशोदा माता ये बातें कहकर कन्हैया को बाँधने का प्रयत्न करती हैं। वे जिस डोरी से उन्हें बाँधने जाती हैं, वह एक अंगुल छोटी हो जाती है।

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः॥ (१०-९-१३)

महापुरुषों ने वर्णन किया है कि श्रीकृष्ण के कोमल गात को स्पर्श करते ही डोरी में दया आ गई है। वह सोचती है कि कन्हैया अत्यन्त कोमल है। उसे बाँधने पर कष्ट होगा। तात्पर्य यह है कि जो ब्रह्म-संस्पर्श करता है, उसका स्वभाव सुधरता है आज डोरी भगवान् का स्पर्श करती है और दो अंगुल छोटी हो जाती है, इस प्रकार जीव और ईश्वर में दो अंगुल का अन्तर है। यदि जीव निर्मोही और निर्मानी बने, तो ही ईश्वर को बाँध सकता है। माता उस डोरी के साथ दूसरी डोरी जोड़ती है, लपेटती है और उससे फ़िर कृष्ण को बाँधने जाती है, लेकिन वह डोरी भी दो अँगुल छोटी पड़ती है। गोपियों ने माता से कहा, ''यह तेरा कन्हैया है। इसके भाग्य में बन्धन लिखा ही नहीं है। यह हम सबको बन्धन से छुड़ाने आया है। इसको कोई बाँध नहीं सकता। यह सुनकर कन्हैया धीरे-धीरे मन में हँसने लगता है। इससे यशोदामाता चिढ़कर बोलती हैं, ''तू चार-पाँच वर्ष का बालक मुझे दाँत दिखाता है? तू समझता क्या है? आज मैं तुझे बाँधने ही वाली हूँ। चाहे जो भी हो। घर की सारी डोरियाँ इकट्ठी करूँगी, लेकिन तुझे जरूर बाँधूँगी।

माता यशोदा दूसरी डोरी जोड़ती है और बालकृष्णलाल को जहाँ बाँधने के लिए जाती है, वहाँ डोरी दो अँगुल छोटी हो जाती है। इस पर महापुरुषों ने कहा है, ''श्रीकृष्ण जहाँ विराजते हैं, वहाँ ऐश्वर्य शक्ति सेवा उपस्थित होती है। ऐश्वर्य शक्ति और वात्सल्य भक्ति का झगड़ा शुरू हो गया है। यशोदाजी में वात्सल्य भाव है। इसीलिए वे कहती हैं कि यह मेरा बालक है। इसे चोरी करने की आदत पड़ गई है। इसकी आदत मैं नहीं सुधारूँ तो कौन सुधारेगा? मुझे इसकी आदत सुधारनी है। ऐश्वर्य शक्ति कहती है कि यह मेरा पति है मेरे पतिदेव को कोई बाँधे, तो मुझ से सहन नहीं होगा। मैं देखती हूँ कि ये कैसे बाँधती हैं? ऐश्वर्य शक्ति डोरी में प्रवेश कर उसे छोटा कर देती है। शुकदेव महाराज ने दर्शन करते-करते कहा है–

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने॥ (१०-९-१८)

माता थक गई है। उसे देख बालकृष्णलाल को दया आ गई। अल्पशक्ति होने पर भी जीव दुराग्रही है और ईश्वर अनन्त शक्तिमान होने पर भी अनाग्रही है। इस जीव में शक्ति तो कम है; किन्तु वह अपना ही उल्लू सीधा करना चाहता है। दुराचारी हमेशा दुःखी होता है। माता का यह दुराग्रह था कि चाहे जो हो, मुझे तो लाला को बाँधना ही है। बालकृष्णलाल आज माता के दुराग्रह पर सहमत हैं। इस पर ऐश्वर्य शक्ति से कहा है कि मेरी माता मुझे बाँधना चाहती है; तू डोरी को क्यों छोटा कर देती है? इस समय मैं तेरा मालिक नहीं हूँ, बल्कि यशोदा माता का बालक हूँ। मैं प्रेम-रस लेने और प्रेम-रस देने के लिए बालक हुआ हूँ। तू द्वारका चली जा। जब मैं द्वारका आऊँगा, तब तेरा मालिक होकर आऊँगा। श्रीकृष्ण द्वारका में तो राजाधिराज हैं, किन्तु गोकुल में बालक हैं। इस समय लाला को दया आ गई है।

परमात्मा ने बन्धन स्वीकार किया है। जब ईश्वर बन्धन में आता है, तब जीव बन्धन से मुक्त होता है। लाला ने यशोदाजी से कहा "माता, तू मुझे छोड़ दे।" इस पर माता इन्कार कर देती है। उसके हृदय में तो प्रेम है कि मुझे कोई बाँधने की इच्छा नहीं; लेकिन क्या करूँ? लाला को चोरी करने की आदत पड़ गई है। वह मुझे छुड़ानी है। यशोदाजी ने विचार किया कि मैं जब रसोई घर में रसोई बनाने जाऊँगी, तो लाला को छोड़ूँगी उसे खिलाऊँगी। फिर बालक सब भूल जाएगा। लाला को बाँध कर वे रसोई बनाने गईं। उनका तन तो रसोई बनाने में लगा है; किन्तु मन श्रीकृष्ण में लगा है। वह रसोई बनाते-बनाते बारंबार कृष्ण को देखती हैं। लाला के ग्वालबाल मित्र आते हैं और वे उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न करते हैं; किन्तु यशोदा माता ने गाँठ इतनी मजबूत बाँधी थी कि वह किसी से खुली नहीं। कोई बालक लाला के कन्धे पर हाथ रखता है, कोई उनके माथे पर हाथ फिराता है। वे पूछते हैं कि लाला, क्या तेरे पेट में दर्द होता है? तुझे क्या कोई तकलीफ होती है? लाला ने सोचा कि यदि मैं मित्रों से यह कहूँगा कि मुझे तकलीफ हो रही है, तो ये रोने लगेंगे। मित्रों का प्रेम विशुद्ध है। लाला ने कहा, "मुझे कोई तकलीफ नहीं है। तुम मेरी जरा भी चिन्ता मत करो। मैं तो झूठा-झूठा रो रहा था। मैं आनन्द से हूँ। मेरी माता ने मुझे बाँध कर अच्छा ही किया है। आज तो मुझे बैलगाड़ी का खेल खेलना ही था, लाला को खेल पसन्द है। कन्हैया ऐसा खेल करता है, जिसे देखकर ग्वाल बाल रीझ उठते हैं, मक्खन-मिश्री खाते लाला अपने मित्रों का बड़ा ध्यान रखता था।

६०– हमारी वाणीः भगवद्-गुणगान करे

कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः।
आद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ॥ (१०-९-२२)

नवें अध्याय में यशोदा माता कृष्ण को बाँधती हैं, यह कथा आई है। दसवें अध्याय में यमलार्जुन के मोक्ष की कथा है।

नारदजी के शाप से कुबेर के दो बालक नन्दजी के आँगन में दो पेड़ बन गए थे। इन दोनों बालकों को अपने बाप की सम्पत्ति बिना मेहनत किये मिली थी। इनका नाम नलकुबेर और मणिग्रीव था। बिना मेहनत से प्राप्त सम्पत्ति बुद्धि को भ्रष्ट कर देती है। अति सम्पत्ति में तीन दोष हैं– (१) जुआ खोरी, (२) मदिरापान, (३) स्त्री-प्रसंग।

यत्र स्त्रीद्युतमासवः

अति सम्पत्ति के कारण जुआखोरी का व्यसन आ जाता है। अति सम्पत्ति से माँस-मदिरा का व्यसन पैदा हो जाता है। सम्पत्तिवान लोग सादा भोजन नहीं करते। वे वासना-विकार बढ़ाने वाले तामसी अन्न का सेवन करते हैं। तदुपरांत अति सम्पत्ति में स्त्री-भोग का व्यसन होता है। कुबेर के दोनों पुत्र अनेक गन्धर्व-कन्याओं से विवाह करते हैं, मदिरा-पान कर स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करते हैं। नारदजी को यह देखकर क्रोध आया। उन्होंने सोचा कि यह गंगा-तट बहुत पवित्र है। ये विलासी लोग गंगा-तट पर आकर इस तीर्थ को भ्रष्ट कर रहे हैं। विलासी लोगों के आने से तीर्थ-देवों को भी कष्ट होता है। कितने ही लोग गंगा-तट या यमुना-तट पर बैठकर अपने घर की बातें करते हैं। यदि घर की बात ही करनी थी तो उसे छोड़ा ही क्यों? तुम किसी यात्रा में जाओ, भगवान् के लिए घर छोड़ो, भगवान् में यह विश्वास करो कि वह तुम्हारा घर सम्हालेगा, तुम्हारे बच्चों को सम्हालेगा। घर में रहकर गंगाजी और यमुनाजी का स्मरण करना पुण्य है किन्तु गंगा के किनारे बैठकर घर का स्मरण करना पाप है। नारदजी सोचते हैं कि मनुष्य को कितना सुन्दर शरीर मिला है, प्रभु ने बिना टूटे फूटे यह शरीर दिया है। इसका दुरुपयोग वह भोग-विलास में करता है। इस जीव को यह पता नहीं है कि इस शरीर पर किसका अधिकार है? माता यह समझती है कि पुत्र हमारा है। मैंने इसे पेट में दस मास रखा है। वर्ना यह पैदा ही नहीं होता। इस प्रकार माता अपने पुत्र के शरीर पर अपना अधिकार जताती है। बाप यह समझता है कि पुत्र मेरा है। मेरे बिना पुत्र पैदा ही नहीं होता। इस प्रकार पुत्र-शरीर पर मेरा अधिकार है। पत्नी यह कहती है कि जब तक विवाह नहीं हुआ था, तब तक आप दोनों का अधिकार था। मैं अपने माँ-बाप को छोड़कर

यहाँ आई हूँ। इस शरीर पर अब आपका कोई अधिकार नहीं। अब इस पर मेरा अधिकार है। अग्नि देव इन सबसे पहले कहते हैं कि पिता, माता और पत्नी इस शरीर पर अपना-अपना अधिकार जताते हैं, किन्तु प्राण निकल जाने के बाद कोई इसे घर में रखने को तैयार नहीं होता? ये लोग उसे जल्दी से जल्दी श्मशान में ले जाते हैं। वे मुझे मेरा भोजन देने के लिए वह शरीर मेरे पास ले आते हैं। यह शरीर मेरा भोजन है। इस पर मेरा अधिकार है। प्रभु ने यह फैसला किया कि इस शरीर पर न तो पत्नी का, न पिता का, न माता और न अग्नि का अधिकार है। इस पर भगवान् का अधिकार है। यह जीव अनेक योनियों में भटकते-भटकते थक जाता है। इसलिए प्रभु को इस पर दया आती है और वह इसे मनुष्य योनि प्रदान करते हैं, जिससे यह परमात्मा का काम करे और उसकी शरण में जाए। भगवान् ने मानव-शरीर भगवान् की भक्ति करने के लिए दिया है। फिर भी कोई मनुष्य भक्ति नहीं करता। मनुष्य को सुन्दर शरीर मिला है, घर में सब सुविधाएँ मिली हैं। फिर भी वह भोग-विलास में फँस गया है; अपने को भूल गया है। नारदजी ने शाप दिया कि जाओ, तुम वृक्ष बन जाओ। जो सम्पत्ति और शक्ति का दुरुपयोग करता है, वह दूसरे जन्म में वृक्ष बन जाता है।

भगवान् वृक्ष को धूप सहने, ठण्डी सहन करने की तपश्चर्या कराते हैं, इसके लिए विवश कर देते हैं। इसलिए भगवान् यदि तुमको खूब सम्पत्ति दें तो सुख मत भोगना, नित्य कुछ दुःख सहन करके भी भक्ति करना, तप करना। यदि तप नहीं करोगे, वृक्ष बनना पड़ेगा। वृक्षों को तप करना ही पड़ता है। नारदजी ने उनको शाप दिया कि तुम नन्द बाबा के आँगन में वृक्ष होगे। नारदजी उस समय गंगा-तट पर विराजमान थे; किन्तु उनका मन गोकुल में था। इसीलिए नारदजी के मुखसे यह वाणी निकली कि तुम नन्दबाबा के आँगन में वृक्ष बनोगे। नारदजी ने क्या यह शाप दिया या वरदान दिया? नल कुबेर और मणिदीप ने नारदजी से हाथ जोड़कर कहा कि महाराज, हमारी भूल हुई है। हम आपसे क्षमा चाहते हैं। आपकी शरण में आए हैं। नारदजी ने कहा, "नन्दबाबा के आँगन में बालकृष्णलाल का चरण-स्पर्श पाकर तुम्हारा उद्धार होगा। वह ही नलकुवेर और मणिग्रीव नन्दजी के आँगन में दो वृक्ष हैं। प्रभु ने नारदजी का वचन पूरा करने के लिए यह लीला की है। बालकृष्णलाल ओखली खींचते बाहर आते हैं। ये दोनों वृक्ष नन्दबाबा के आँगन में थे। उनके बीच से होकर बाल कृष्णलाल बाहर निकले और दोनों वृक्षों के बीच फैली हुई ओखली को जोर से खींचकर बाहर निकाला। श्रीकृष्ण-चरण के स्पर्श से ये दोनों वृक्ष दो देवपुरुष के रूप में बदल गये और श्रीकृष्ण-कन्हैया लाल की जय कहकर उन्हें बारंबार वन्दन करते हैं, उनकी स्तुति करते हैं—

नमः परमकल्याण नमः परममंगल, वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः।
वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां, हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे, दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥

(१०-१०-३६/३८)

वे कहते हैं कि अब हमारी एक-एक इन्द्रिय को भक्ति से सराबोर कर दो। हमारी वाणी भगवद्-गुणगान करे, आपका गुणगान करे।

यदि तुम किसी मानव का अति वर्णन करोगे, तो जीभ और मन खराब होंगे। जीभ और मन से परमात्मा का गुणगान करो। भगवान् के चरण कैसे हैं! भगवान् के नेत्र कैसे हैं! भगवद्-स्वरूप और भगवद्-स्वभाव का वर्णन करने से ही वाणी पवित्र बनती है। संसार का वर्णन करने से जीभ अपावन बनती है, मन विकृत बनता है। नलकुबेर और मणिग्रीव कहते हैं, "हे भगवान्, हम तुम्हारा वर्णन करें, तुम्हारी कथा कहें, ऐसी कृपा करो।

प्रभु ने नलकुबेर और मणिग्रीव को सद्गति दे दी है। उनके स्वधाम में जाने के बाद कड़-कड़-कड़-कड़ का शब्द होता है और वे दोनों एक जोर के धड़ाके के साथ जड़ से उखड़कर जमीन पर गिर पड़ते हैं। गोपी और ग्वाल-वाल यह आवाज सुनते ही दौड़ पड़ते हैं। वे कहते हैं, 'क्या हुआ? क्या हुआ? ये वर्षों के पुराने पेड़ किस तरह जड़ से उखड़कर गिर गए हैं? अरे, वहीं पर कन्हैया ओखल के साथ बँधा हुआ है।" गोपियाँ बातें करती हैं, "यह बालक कितना भाग्यशाली है! अनेक राक्षस आए, राक्षसनियाँ आईं, किन्तु इसका बाल भी बाँका न कर सकीं। यह बच जाता है। भगवान् की कैसी कृपा है! ये वृक्ष किस तरह गिरे होंगे! नन्दबाबा ने ज्यों ही सुना कि दो वृक्ष टूट गिरे हैं, त्यों ही वे उधर को दौड़ पड़े हैं। उन्होंने दूर से देखा कि दोनों वृक्ष टूट गिरे हैं और कन्हैया ओखली के साथ बँधा पड़ा है। कन्हैया मेरा पुत्र है। नन्दबाबा ने इस प्रकार अपना वात्सल्य भाव दिखाया। उनको ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरा बालक घबड़ा गया है। ये गोप गोपियाँ बातें कर रहे हैं। कोई लाला को छुड़ाता नहीं। अनेक देवताओं की मनौती मानने पर बुढ़ौती में यह बालक मिला है। इसकी माता को जरा भी इसकी चिन्ता नहीं है।

नन्दबाबा यह दृश्य न देख सके। आँखें गीली हो गईं। वे दौड़कर उस स्थान पर आ गये। लाला ने देखा कि नन्दबाबा दौड़ते हुए आ रहे हैं। इसलिये वे मुझे छुड़ा देंगे। लाला ने दोनों हाथ जोड़ कर ऊँचा किया और कहा, "बाबा, मुझे। मेरी माता ने बाँधा है।" नन्दबाबा ने क़हा कि बेटा, मैं तुझे छुड़ा देता हूँ। नन्दबाबा लाला को छुड़ा देते हैं और उसे अपनी छाती से चिपका लेते हैं। पिता-पुत्र एकाकार हो जाते हैं। लाला बाबा को प्यार करता है और कहता है कि बाबा, मेरी माता

मुझे बाँधती है और मारती है। नन्दबाबा ने कहा कि तेरी माता ने तुझे बाँधा, किन्तु मैंने तुझे छुड़ाया है। लाला ने कहा, ''हाँ आपने छुड़ाया है।'' नन्दबाबा ने पूछा, ''तू किसका लड़का है? कृष्ण ने कहा कि मैं अपनी माता का बालक हूँ। नन्दबाबा की बड़ी इच्छा है कि लाला कभी यह कहे कि बाबा, मैं आपका बालक हूँ आपका पुत्र हूँ, लेकिन उनकी इच्छा परिपूर्ण न हुई। वे बालकृष्णलाल को लेकर घर में आए और यशोदाजी को उलाहना दिया कि क्या तेरी बुद्धि खराब हो गई है? तू ने मेरें लाला को क्यों बाँधा? यशोदा माता ने कहा, 'सब मुझे ही उलाहना देते हैं गोपियाँ मुझे उलाहना देती हैं, किन्तु इसे चोरी करने की आदत पड़ गई है।'' नन्दबाबा ने कहा कि यह अभी बालक है। बाल्यावस्था में सब ऐसा ही करते हैं। बड़ा होने पर भला ऐसा क्यों करेगा? तूने लाला को बाँधकर अच्छा नहीं किया। यशोदा माता व्याकुल हो उठीं और कहा कि मैंने प्रेम से बाँधा है। वे लाला को प्रेम से बुलाती हैं, ''बेटा, तू मेरे पास आ। लाला ने माता के पास जाने से इनकार करते हुए कहा कि मैं तो बाबा का पुत्र हूँ। लाला को खुश करने के लिए नन्दबाबा ने कहा, ''लाला, तू रो मत। तुझें तेरी माँ ने बाँधा था। तो मैं उसे खम्भे से बाँध दूँगा और सोटी से मारूँगा।'' लेकिन यह सुनकर भी कन्हैया खुश नहीं हुआ। लाला ने कहा, ''बाबा, मेरी माता भले मुझे मारे, किन्तु उसे न बाँधिए और न मारिए। वह मेरी माता है'' यशोदा माता इसे सुनती है और कहती है कि बालक का यह कैसा प्रेम है! मुझे सब रोकते थे, किन्तु मैंने इसे बाँधा। मेरी बुद्धि ही बिगड़ गई थी, मैं बहुत निष्ठुर बन गई। यह कैसे प्रेम कर रहा है और मेरे बाँधे जाने की बात पसन्द नहीं करता। मैं इसकी योग्य माता नहीं हूँ। मैं निष्ठुर हूँ, यह प्रेम की मूर्ति है, सबके साथ प्रेम करता है। यह सोचकर यशोदा माता रोने लगती हैं और कहती हैं कि कन्हैया मेरी गोद में कब आएगा? वह मुझसे रूठ गया है, वह मेरे पास नहीं आएगा। माता का हृदय विकल हो उठा है।

कोई भी जीव जब परमात्मा के लिए रोने लगता है, तब प्रभु को दया आ जाती है। लाला ने देखा कि मेरी माता मेरे लिए रो रही है। उसी समय लाला ने नन्दबाबा से कहा ''बाबा, मुझे तो भूख लगी है। आपके पास तो कुछ है नहीं। मैं आपका लड़का नहीं हूँ, बल्कि अपनी माता का लड़का हूँ।''

यह कहकर कन्हैया बाबा को छोड़ दौड़ता-दौड़ता अपनी माता के पास पहुँच जाता है, उनकी गोद में बैठ जाता है और उनसे कहता है कि माता, मैं आ गया। उस समय माता ने अपनी आँखें खोलकर देखा तो कन्हैया उनकी गोद में था। माता ने उसे छाती से लगा लिया और कहा कि मेरा रोना इससे सहा नहीं गया, मेरी आँखों में आँसू आना इसे सहन नहीं होता है। यह मुझसे बहुत प्रेम करता है। माता लाला को प्यार करने लगी। रस्सी से बाँधे जाने के कारण लाला का नाम दामोदर पड़ गया।

ग्वाल-बालों ने आज अपने-अपने घरों में पानी भी नहीं पिया। क्योंकि उनका कन्हैया बाँधा गया है। लाला ने कहा कि मैंने अपने मित्रों से कहा था कि अपनी माता का बन्धन छूट जाने पर वह सबको अपनी ओर से खाने की दावत देगा। माता! मुझे मित्रों को खाने के लिए दावत देनी है? यशोदा माता ने कहा, ''बेटा, घर में सभी चीजें तैयार हैं। तुम सब एक साथ खाने बैठ जाओ।'' लाला ने कहा कि मुझे आज परोसना है। मुझे परोसने में बड़ा मजा आता है; खाने में मजा नहीं आता। जब मैं अपने मित्रों को खिलाता हूँ, तब मुझे और भी मजा आ जाता है।

खाने वाले की अपेक्षा प्रेम से परोसने वाले को हजार गुना सुख मिलता है। खाने वाले में भगवान् के दर्शन करो, प्रेम से परोसो। कुछ लोग परोसते समय दौड़ते-दौड़ते चलते हैं, ऐसा नहीं होना चाहिए। जो खिलाकर तृप्त होता है, वह सच्चा वैष्णव है।

यशोदा माता समझाती हैं, ''बेटा! तू अभी छोटा है। तुझे परोसना नहीं आएगा।'' बालकृष्णलाल ने कहा कि मुझे परोसना बड़ा अच्छा आता है। आज मुझे परोसने दो। मेरे मित्र भूखे हैं। यह कहकर बालकृष्णलाल परासेने लगे। सभी उनकी जय-जय करते हैं और प्रेम से भोजन करते हैं। वे यह भी कहते हैं कि आज बहुत खाया, बहुत खाया। अब मेरे पेट में जगह नहीं है। कन्हैया कहता है कि मेरे गुरु ने मुझे ऐसा मंत्र सिखाया है कि उसे बोलने पर पेट के अन्दर भी दिखाई देता है। मैं उसके प्रभाव से देख रहा हूँ कि अभी तुम्हारे पेट में दो मालपुए की जगह है। इस प्रकार वे प्रेम से मालपुआ परोसते हैं, बारंबार मित्रों से विनोद करते हैं। इससे बालक प्रसन्न हो जाते हैं। कन्हैया एक-एक का हाथ पकड़ता है, उसे उठाता है और जल देता है। एक मित्र कहता है, ''मेरा पेट बहुत भर गया है; मुझसे तो उठा ही नहीं जाता। लाला तूने मुझे बहुत परोस दिया था। अब तो यदि कोई बिछौना बिछा दे, तो यहीं सो जाऊँ। इस समय मुझे नींद आ रही है।'' कन्हैया मजाक में जबाब देता है, ''मित्र, प्रसाद तो मेरा था, किन्तु पेट तो तेरा था। तू ने इतना अधिक क्यों खा लिया?'' मित्रों ने कहा कि लाला, जब परोसने लगा तो अपने आप ही अधिक खाया गया। इस प्रकार सब विनोद करते हैं और परमानन्द प्राप्त करते हैं।

६१- वंसी का बजवैया

गोकुल में उपनन्द नाम के एक वयोवृद्ध गोप थे। ये उपनन्द काका सभी बालकों को बड़े प्रिय लगते थे। ये नन्दजी के आँगन में बैठकर बालकों को ऐसी रसीली कहानियाँ सुनाते कि उन्हें सुनकर बालक अपने माता-पिता का आदर करें, ईश्वर में विश्वास करें और दीन-दुखियों पर दया करें।

कहानियों का मन पर बहुत प्रभाव पड़ता है, यह जानकर उपनन्दजी ऐसी सुन्दर कथाएँ सुनाते, विनोद करते, मनोरंजन करते और उपदेश भी देते क्योंकि उन्हें बालक बड़े प्रिय लगते। काका को देखते ही बालक दौड़ कर उनके पास जाते और उनको चारों ओर से घेरकर कहते कि कोई कहानी सुनाइए। उस समय गोकुल में राक्षसों का उत्पात बढ़ गया था। काका ने कहा कि यदि तुम सबको पसन्द हो, तो गोकुल छोड़कर वृन्दावन चले चलें।

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम्।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम्॥

(१०-११-२८)

वृन्दावन बहुत सुन्दर है और सब तरह अनुकूल है। सभी बालकों को उपनन्द काका की बात पसन्द आई और सब उनसे सहमत हुए। फिर वे वृन्दावन में रहने गए।

अब धीरे-धीरे कन्हैया बड़ा होता जा रहा है। उसका मित्र प्रेम-आलौकिक है। ग्वालवाल उनसे कहने लगे कि चलो, हम बछड़े लेकर यमुनाजी के तट पर क्रीड़ा करने चलें। तू दिन भर क्यों घर में बैठा रहता है। अब तो तू बड़ा भी हो गया है। लाला ने अपनी माता यशोदा से कहा कि मेरे मित्र बछड़े लेकर यमुना तट पर क्रीड़ा करने को कहते हैं। तुम्हारी क्या इच्छा है यशोदा ने कहा, ''बेटा, अभी तू छोटा है। बछड़े बड़े शरारती होते हैं। तुझे कोई मार दे तो क्या हो? कन्हैया ने कहा कि मुझे यमुनाजी के किनारे बछड़े लेकर जाना ही है, मुझे कोई नहीं मारेगा।

नन्दबाबा ने विचार किया कि लाला पाँच वर्ष का हो गया है। अब इसका छठा वर्ष आरंभ हो गया है। अब कन्हैया बाहर जाए और मित्रों के साथ खेल-कूद करे तो कोई हर्ज नहीं है। इससे कसरत होगी कसरत से शरीर सुधरेगा। लाला कसरत करेगा तो उसे थोड़ी भूख लगेगी और अधिक तगड़ा बनेगा। यशोदा, माता ने यह कहा कि कन्हैया बहुत शरारत करता है। अभी से पेड़ पर चढ़ता है। यदि यह यमुना के किनारे खेलने जाए; वहाँ काली नाग का बिल है। शरारत करते-करते लाला अन्दर जाए, तो अनर्थ हो जाए। नन्दबाबा ने उपनन्दजी से कहा कि लाला की यमुनाजी के किनारे खेलने की इच्छा है। यदि तुम इसके साथ जाओ, तो वहाँ खेलने भेजूँ। काका तो यह चाहते ही थे। उन्होंने कहा, ''यमुनाजी के तट पर खेलने के लिए ले जाऊँगा। जरा भी चिन्ता मत कीजिए।'' उपनन्दजी के साथ जाने की बात जानकर यशोदा माता को सन्तोष हुआ कि वे लाला को ठीक तरह सम्हाल लेंगे।

बालकृष्णलाल जब ग्वालवाल मित्रों और बछड़ों को साथ लेकर यमुनाजी के किनारे की ओर चल पड़ते हैं। इस अध्याय में श्रीकृष्ण वत्सपाल हो गए हैं। उनके साथ उपनन्दजी हैं।

उपनन्दजी बंसी बजाते हैं। उनको बंसी बजाते देख कृष्णजी बहुत खुश होते हैं। वे उनके पीछे-पीछे जाते हैं और कहते हैं, ''काकाजी, मुझे आप जैसी बाँसुरी बजानी हैं। मुझे आप बांसुरी दे दीजिए। उसे बजाऊँगा। उपनन्दजी ने कहा कि मेरे पास तो यह एक ही बाँसुरी है। जंगल में बाँस का एक पेड़ है। उसका बाँस काटकर उससे एक बाँसुरी तुम्हारे लिए बना दूँगा। लाला ने कहा, ''काका मुझे आप जैसी बाँसुरी बजानी है।'' काका को इस बात का अभिमान था कि मैं चालीस वर्ष से बाँसुरी बजाता हूँ। मेरीं जैसी बाँसुरी कोई बजा ही नहीं सकता। उन्होंने लाला से कहा कि तुम एकदम मेरे जैसी बाँसुरी बजाना कैसे सीख सकोगे। हाँ, मैं तुमको धीरे-धीरे सिखा दूँगा। बांसुरी अनेक रागों में बजानी पड़ती है। प्रभाती राग, भैरवी राग, सारंगी राग एक-एक राग में बजाना पड़ता है। जंगल में बाँस का एक पेड़ दिखाई दिया। कन्हैया ने काका से जिद की कि आप जिस बाँस के पेड़ की बात कर रहे थे। वह सामने दिखाई देता है। आप ऊपर चढ़ जाइए। उपनन्दजी बाँस के पेड़ पर चढ़ गए। वहाँ देवताओं ने लाला के लिए एक सुन्दर बाँसुरी बनाकर रख छोड़ी है। उसे देखकर उपनन्दजी को आश्चर्य होता है कि किसने यह बाँसुरी बनाकर रख छोड़ी है? यह कन्हैया ऐसा है कि इसके मन में जो आता है, उसे तुरन्त करना चाहता है। यह बड़ा भाग्यवान है। उपनन्दजी ने वह तैयार बाँसुरी लाला को देते हुए कहा कि देख, तेरे लिए यह किसी ने तैयार कर रखी है। इससे लाला के मन में बड़ा आनन्द हुआ। उसने कहा, ''काका मुझे आप जैसी बाँसुरी बजानी है। आप मुझे अच्छी तरह सिखाइए।'' उपनन्दजी ने कहा, ''बेटा, एकदम मेरी जैसी बाँसुरी बजाना तो नहीं आएगी। तू मुझे बजाते देखकर बजा।''

लाला ने बायाँ गाल झुकाकर बाँसुरी बजाई। उससे इतनी मधुर ध्वनि निकली कि उसे सुनकर दूर-दूर तक चरती हुई गाएँ हुम्-हुम् करती हुई लाला के पास दौड़ती-दौड़ती आ गईं। मुरलीधर भगवान् की जय! आज वे ही वेणुधर या मुरलीधर कहलाते हैं। इससे बालकों को आनन्द हुआ। बालक लाला की जय-जयकार करते हुए कहते हैं,''कन्हैया, तू बाँसुरी बहुत मीठी बजाता है। यह बुड्ढा बाँसुरी बजाता है, तब गाएँ दौड़कर नहीं आतीं, यह दुनियां भर का बनावटी नखरा अधिक करता है। जब हमारी गायें दूर-दूर जंगल में चली जाती हैं, तब हम उन्हें खोजते-खोजते थक जाते हैं। अब बहुत अच्छा हुआ। जब मेरी गाएँ दूर जाएँगी, तब मैं तुझे बताऊँगा कि बाँसुरी बजाओ। सुनकर गायें दूर से आती हैं। कन्हैया तो चुपचाप काका का मुँह देखता है और कहता है, ''काका मेरे मित्र मुझसे कहते हैं कि तू बहुत मीठी बंशी बजाता है। क्या मुझे आप जैसी मीठी बाँसुरी बजानी आएगी?''

लाला की बाँसुरी सुनने के बाद काका का चालीस वर्ष तक का बाँसुरी बजाने का अभिमान गलकर पानी हो गया। लाला किस खूबी से बाँसुरी बजाता है कि उसे सुनकर काका ने कहा, "तू मुझसे भी मीठी बाँसुरी बजाता है लाला, क्या यशोदा के पेट में से ही बाँसुरी बजाना सीख कर आया है–बनाई बाँस की बंशी, बजाना किससे सीखे हो?

शाम को कन्हैया घर आया। उसने यशोदा माता से कहा, "माँ मुझे बाँसुरी बजानी आ गई।" माता ने कहा, "क्या तूने एक ही दिन में सीख लिया?" कन्हैया ने कहा, "हाँ, एक ही दिन में आ गई।"

यशोदाजी ने गोपियों को आमंत्रण दिया है। सब गोपियाँ यशोदा माता के आँगन में आकर एकत्र हो गई हैं। गोपियों की मण्डली में बालकृष्ण खड़े हो गए हैं। वे बड़े प्रेम से बाँसुरी बजा रहे हैं। कन्हैया जब अपने दाहिने कन्धे की ओर दाहिना गाल झुकाकर बाँसुरी बजाते हैं, तब गोपियाँ और गाएँ बावली बन जातीं और जब वे नजर ऊपर कर बाँसुरी बजाते, तब स्वर्ग के देवता, इन्द्र, चन्द्र, वरुण आदि तन्मय हो जाते। जब वे धरती की ओर नजर कर बाँसुरी बजाते, तब पाताल की नागकन्याएँ भी डोल पड़ती थीं। वे चार प्रकार से बाँसुरी बजाते थे। इस अध्याय में केवल श्रीकृष्ण के मुरलीधर होने का ही वर्णन है। बाँसुरी की कथा तो इक्कीसवें अध्याय में फिर जानने को मिलेगी। यह ग्यारहवाँ अध्याय चल रहा है। शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि कन्हैया इस प्रकार बाँसुरी बजाता है कि उसे सुनकर माता को बड़ा आनन्द मिलता है। अत्यन्त आनन्द में उनकी आँखें बन्द हो जाती हैं। कन्हैया की बाँसुरी सुनकर माता यशोदा की दोनों आँखें बन्द हो गई हैं। यह देखकर कन्हैया दौड़ता हुआ उसके पास गया और बोला, "माँ-माँ, क्या तू सो गई?" यशोदा माता ने कहा, "नहीं बेटा, मैं सो नहीं गई, जाग रही हूँ। बेटा, तू बहुत मीठी बाँसुरी बजाता है। ऐसी कोई भी नहीं बजा सकता।" सभी को इससे आनन्द होता है।

एक बार श्रीकृष्ण ग्वाल बाल मित्रों के साथ बछड़ों को लेकर यमुनाजी के किनारे खेलने के लिए आए। उस समय कंस द्वारा भेजा गया बकासुर नाम का राक्षस एक बड़े बगुले का रूप बनाकर वहाँ आया। बकासुर वहाँ उपस्थित बालकों को खाने के लिए दौड़ता है। इससे बालक घबड़ा गए। श्रीकृष्ण दौड़ते-दौड़ते वहाँ पहुँच जाते हैं और उस बगुले की दोनों चोंचें पकड़कर उसे चीर डालते हैं। उस समय सभी बालक 'जय कन्हैयालाल" कह उठते हैं। बालक सायंकाल अपने-अपने घर लौटकर आते हैं और अपनी-अपनी माताओं को लाला की कहानी सुनाते हुए कहते हैं, "माँ, कन्हैया बड़ा बहादुर है। जंगल में एक बड़ा बगुला आया। वह हम सबको काटने के लिए दौड़ पड़ा। हम सब बहुत डर गए, किन्तु लाला को जरा भी डर नहीं लगा। वह दौड़ता

हुआ उसके पास गया और उसकी दोनों पकड़ीं चोंचें और उन्हें (माँ की साड़ी का पल्ला पकड़कर दिखाते हुए) इस प्रकार चीर डाला। और आवेश में आकर उन्होंने अपनी माँ की साड़ी का पला चीर डाला।

यह देखकर उनकी माँ ने कहा, ''अरे, यह तू यह क्या कर रहा है?'' बालक ने कहा, ''माँ, मैं लाला के आवेश में आ गया और वैसा ही करने लगा।'' गोपी बोली, ''लाला ने बगुला मारा, राक्षस मारा और तूने मेरी साड़ी ही फाड़ दी।'' बालक बोला, ''माँ, मेरे घर साड़ियों की क्या कमी है? क्या तू रोज-रोज नई-नई साड़ियाँ नहीं पहनती। कन्हैया जब से ब्रज में आया है, तब से लक्ष्मीजी यहाँ पधारी हैं।''

जो लोगों पर अपनी छाप डालने के लिए भक्ति करते हैं, उसे दंभ कहते हैं। बगुला मानो दंभ है। भक्ति के तट पर दंभ आ जाता है। मनुष्य अनेक बार दंभ करता है। अन्दर से उसका मन काम-सुख और रुपये-पैसे में फँसा होता है और बाहर से वह ऐसा नाटक करता है कि मैं बड़ा ज्ञानी हूँ बड़ा भक्त हूँ। दंभ करने वाला मनुष्य दूसरे को धोखा देता है, समाज को छलता है। समाज तो परमात्मा का स्वरूप है। समाज को छलना परमात्मा को छलने के समान है। दंभ के समान दूसरा पाप नहीं है। हमारे शास्त्रों में एक-एक पाप का प्रायश्चित्त लिखा है, किन्तु दंभ का कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है।

दंभ का ज्ञान मार डालता है। बगुले से कौआ अच्छा है। कौआ बाहर और अन्दर से काला है। बगुला बाहर से उजला और अन्दर से काला है। 'मुख में राम बगल में छुरी' की बात है। तुम अन्दर जैसे हो, वही स्वरूप संसार को दिखाओ। किसी को छलना मत। मनुष्य लोभ के कारण दंभ करता है। कीर्ति-लोभ और धन-लोभ पाप कराता है। बकासुर की दो चोंचें हैं। एक कीर्ति का लोभ है और दूसरी द्रव्य का लोभ है। श्रीकृष्ण दंभ का विनाश करते हैं।

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे।
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः॥ (१०-११-५९)

दसम स्कन्ध का ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ। अब बारहवाँ अध्याय आरम्भ होता है।

क्वचिद् वनाशाय मनो दधद् व्रजात् प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान्।
प्रबोधयञ्छृंगरवेण चारुणा, विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः॥

(१०-१२-१)

प्रतिदिन बालक लाला के घर आते, उन्हें जगाते और कभी कन्हैया ही एक-एक के घर जाते और उन्हें जगाते हैं। वे मित्रों के साथ बड़े प्रेम से ऐसा व्यवहार करते कि मैं तुम्हारे जैसा एक

ग्वाला हूँ, कोई बड़ा या महान् नहीं हूँ। एक दिन बछड़ों को लेकर वे अपने मित्रों के साथ जमुनाजी के किनारे आए। वहाँ कंसराज का भेजा हुआ अघासुर नाम का एक राक्षस अजगर का रूप धारणकर पहुँचा और अपना मुँह फाड़कर बैठा था। अघासुर का मुँह पर्वत की गुफा के समान दिखाई दे रहा था। ग्वाल बाल मित्र खेलते-खेलते वहाँ पहुँचे और बोले, ''कन्हैया, यह गुफा है। चलो, इसके अन्दर चलें।'' एक बालक बोला कि इससे कुछ श्वास निकलती मालूम होती है। यह कोई गुफा नहीं है, बल्कि कोई जानवर है। यह सुनकर दूसरा बोल उठा, चाहे यह कोई हो। यदि कन्हैया साथ आयेगा, तो हम सब भी अन्दर चलेंगे। यदि यह अजगर होगा तो कन्हैया कोई ऐसा मन्त्र बोलेगा जिससे यह मर जाएगा। लाला के पास इसका मन्त्र है।''

इन बालकों का एक नियम था कि ये श्रीकृष्ण के बिना जाते नहीं थे और न ये श्रीकृष्ण को कहीं अकेला जाने देते हैं। वे जहाँ जाते हैं श्रीकृष्ण को लेकर जाते हैं। अकेले नहीं जाते। यदि आपसे हो सकता हो, तो ऐसा ही नियम बना लीजिये कि अकेले कहीं नहीं जाएँगे। जहाँ जाना हो तो वहाँ भगवान् को लेकर जाना। अनेक लोगों की यह आदत होती है कि वे जहाँ कहीं जाते हैं पैसे का पाकिट साथ लेकर जातें हैं, उसमें सौ दो सौ रुपए होते हैं। वे इससे खूब अकड़ कर चलते हैं और सोचते हैं कि पैसा अपने पास है। इसलिए कोई तकलीफ नहीं होगी। पैसे से आपको सुख जरूर होगा किन्तु इससे दुःख का अन्त नहीं आएगा, जिसके पास पैसा होता है, वह सुख भले ही भोगे, किन्तु उन्हें दुःख तो भोगना ही पड़ता है। जो परमात्मा को साथ रखता है, उसे कदाचित दुःख उठाना पड़े, किन्तु उस दुःख का असर मन पर नहीं होता। इसलिए जहाँ कहीं जाओ, वहाँ भगवान् को अपने साथ रखो। किसी जगह पर अकेले मत जाओ।

अनेक वैष्णवजनों की ऐसी आदत होती है कि वे घर से बाहर जाते समय घर में स्थित ठाकुरजी को वन्दन कर कहते हैं, ''भगवान्, हमें बाहर जाना है। आपको स्वरूप बनाना आता है। आप एक स्वरूप लेकर घर में विराजिए, इस घर को सम्हालिये। दूसरा स्वरूप लेकर मेरे साथ बाहर चलिए। मुझे तुम्हारे बिना अच्छा नहीं लगेगा। मैं अकेला बाहर नहीं जाऊँगा। आप भी साथ चलिए।'' आप जहाँ जाइए, वहाँ ठाकुरजी को साथ लेते जाओ। अकेले कदपि मत जाओ।

हमेशा भगवान् को साथ लेकर जाने का अर्थ भगवान् की मूर्ति हाथ में लेकर फिरना नहीं है। एक वैष्णवजन गाड़ी में बैठे थे और बड़ी लम्बी चौड़ी बातें कर रहे थे, स्टेशन आने पर उन्होंने अन्य सामान तो उतारा किन्तु ठाकुरजी तो गाड़ी में ही रह गये। इस प्रकार भगवान् को अपने साथ ले जाने का कोई अर्थ नहीं। भगवान् को अपने मन से साथ रखो। दो-चार मिनट बीतने पर दर्शन करो, उनके चरणों में वन्दन करो, भगवान् को मत भूलो। ईश्वर से मन का विभक्त न होना ही

भक्ति है। बालकों ने लाला से कहा, ''कन्हैया, तू आएगा तो अन्दर चलेंगे, खेलने की बड़ी इच्छा है।'' कुछ ग्वालबाल तो लाला से कहकर अन्दर चले गये। भगवान् सब जानते थे कि ये भोले व्रजवासी हैं और यह तो बहुत बड़ा अजगर है। ग्वालबाल के पीछे-पीछे श्रीकृष्ण भी चल पड़ते हैं। श्रीकृष्ण अन्दर जाते हैं। वे विचार करते हैं कि इन ग्वालों का मुझ से कितना प्रेम है यदि अकेले जाएँगे तो अजगर इन्हें खा जायेगा, मार डालेगा। प्रभु ने अपनी महिमा शक्ति प्रकट की और अपना इतना स्वरूप विस्तार किया कि अघासुर के प्राण को बाहर निकलने का रास्ता ही न रहा। अब अघासुर के प्राण अन्दर ही अन्दर व्याकुल हो गए हैं। अघासुर बहुत घबरा गया है। ब्रह्मरंध्र को फाड़कर उसके प्राण बाहर निकल जाते हैं। ग्वालबाल मित्रों के साथ श्रीकृष्ण बाहर चले आते हैं। अघासुर के प्राण आकाश में चक्कर लगा रहे थे। जैसे ही श्रीकृष्ण बाहर आये वैसे ही ''कृष्ण कन्हैयालाल की जय'' कहकर पड़ जाते हैं। अघासुर को मुक्ति मिल जाती है। अभिप्राय यह है कि मुक्ति तभी मिलती है जब भगवान् बाहर से अन्दर आते हैं। अन्दर बिराजने वाले भगवान् जीव को मुक्ति नहीं देते। प्रत्येक जीव के अन्दर भगवान् विराजमान रहता है। फिर भी वह बन्धनग्रस्त रहता है। अन्दर ईश्वर के होने पर भी जीव अज्ञानी है। जब भगवान् बाहर से अन्दर आते है तब जीव के अज्ञान का विनाश हो जाता है, और तभी माया का बन्धन छूट जाता है। अन्दर का जो भगवान् है वह निराकार है। निराकार कुछ कर नहीं सकता। जो करता है वह साकार भगवान् ही करता है। इसलिए भगवान् को बाहर से अन्दर पधराओ। घर में ठाकुरजी का स्वरूप पधराकर भगवान् का शृंगार करो। केवल भगवान् के दर्शन में ही मत फँसो बल्कि दर्शन करते-करते भगवान् को आँख में से अन्दर उतार लो।

जब अन्दर का निराकार भगवान् और बाहर का साकार भगवान् ये दोनों मिलते हैं तब माया का बन्धन छूट जाता है और तभी जीव को मुक्ति मिलती है। प्रभु ने अघासुर का उद्धार कर दिया। अब हम अघासुर शब्द पर भी थोड़ा विचार करें। 'अघ' शब्द का अर्थ पाप होता है। 'अश' शब्द का अर्थ है प्राण, 'र' शब्द का अर्थ है रमण करना अर्थात् जिसका प्राण पाप में रमण करता है, जो पाप करने में सुख मानता है, जिसे पाप करने में आनन्द आता है। ऐसे सभी लोग अघासुर जैसे हैं। इस बात पर खूब ध्यान देना कि इस जगत् में पाप करने वाला कोई सुखी नहीं हुआ, पापी दुःखी होता है। पाप का फल दुःख है। इस कलियुग में कदाचित ऐसा दिखाई देगा कि पाप करने वाला सुखी है और जो पाप से डरता है, पाप नहीं करता वह दुःखी है। देखने में चाहे ऐसा लगे किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि पाप करने के कारण ही पापी सुखी है। यदि कोई पापी सुखी दिखाई दे तो यह मान लेना कि वह इस समय किसी पूर्व जन्म के पुण्य का फल भोग रहा है,

इसीलिए वह सुखी है। यदि पुण्यशाली जीव दुःखी दिखाई दे तो समझना कि इस समय वह पूर्व जन्म के किसी पाप का फल भोग रहा है। क्या कोई मनुष्य आज झूँठ बोले तो आज ही दुःखी होगा? जो आज झूँठ बोलता हैं सम्भव है उसे धन अधिक मिल जाए, इससे वह सुखी हो जाएगा। इस प्रकार भले वह सुखी हो जाये किन्तु उसने जो झूँठ बोला है उसके कारण सुखी नहीं हो सकता। जो आज सुखी है वह इस समय अपने पूर्वजन्म के किसी पुण्य का फल भोग रहा है और उसी पुण्य के कारण सुखी हुआ है। आज जिसने झूँठ बोला है उसकी सजा तो उसको मिलने ही वाली है। वह सजा आज नहीं तो वर्ष, दो वर्ष, बारह वर्ष बाद भी भोगनी पड़ती है।

बहुत से पाप ऐसे होते हैं जिनका फल इस जन्म में भोगने का आता ही नहीं है, वह फल दूसरे जन्म में भोगना पड़ता है। यह जीव किए गए कर्म का फल भोगता है। पाप सबसे पहले मन में आता है। इससे पहले मन बिगड़ता है, इसके बाद वाणी बिगड़ती है, फिर व्यवहार बिगड़ता है। इसलिए मन को बार-बार समझाओ कि पाप करके कोई सुखी नहीं हुआ है, तू पाप छोड़ दे। पाप को मन में घर मत करने दो। यदि पाप मन में आये, तो तुरन्त उसे मन से निकाल दो, जोर से हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, का कीर्तन प्रेम से करो, अपने भगवान् का स्मरण करो और भगवान् को वन्दन कर कहो कि मेरा मन बिगड़ गया है। मन बिगड़ने के बाद वाणी बिगड़ती है और उसके बाद व्यवहार बिगड़ता है। कोई भी क्रिया शब्दोच्चार पूर्वक ही होती है। मनुष्य कोई खराब काम करने के पहले खराब शब्द बोलता है और अच्छा काम करना हो तो पहले अच्छा शब्द बोलता है। व्याकरण शास्त्र का एक नियम है कि बिना शब्दोच्चार के कोई क्रिया नहीं होती। मनुष्य पाप कर्म करने के पहले एक दो मिनट खराब शब्द बोलता है, यह खराब शब्द जीभ से न बोला जाकर भी अन्दर की वाणी से बोला जाता है। इसलिए कभी खराब शब्द मत बोलना। अपनी जीभ से हरे कृष्ण, हरे राम का सतत जप करो। वाणी बिगड़ने पर व्यवहार बिगड़ता है। वाणी न बिगड़े तो व्यवहार नहीं बिगड़ता। लोग स्वप्न में बात करते हैं, स्वप्न में जीभ से बोलते हैं।

परा, पश्यन्ति मद्यमा, और वैखरी वाणी के ये चार प्रकार हैं। परा वाणी या अन्दर की वाणी से खराब शब्द बोलने पर खराब काम होता है। क्योंकि मन और वाणी का बहुत गाढ़ा सम्बन्ध है। इसलिए तुम्हारे जीवन में कैसा ही कठोर अवसर आवे तब भी खराब शब्द मत बोलना। वाणी के बिगड़ने से ही बर्ताव बिगड़ता है। जीवन में ऐसा भी समय आएगा कि पाप की इच्छा न करने पर भी तुम से पाप हो जाएगा। यह जीव अनेक जन्म से पाप करता आया है। इसलिए पाप का संस्कार बुद्धि में दृढ़ हो गया है। इस पाप-संस्कार के जगने पर चतुर मनुष्य भी मूर्ख बन जाता है। फिर तो उसे पाप करने में सुख का आभास मिलने लगता है। अनेक बार ऐसा प्रतीत होता

है कि कोई अन्दर से बैठा-बैठा पाप करा रहा है। तुम्हें जब ऐसा लगे कि मन हाथ से छटक गया है, मन अब हाथ में नहीं है, अब पाप होने वाला है तो ऐसे समय में तुम प्रभु का नाम जप करो या स्नान करो, या ध्यान करो तो भी मन पाप करेगा ही। जीवन में जब ऐसी घड़ी आ जाती है कि मन पाप करेगा ऐसा प्रतीत होने लगता है, तब पाप करो। कथा का एक ही शब्द पकड़ कर मत रखो नहीं तो तुम इतना ही ध्यान में रखोगे कि महाराज ने पाप करने के लिए कहा है।

मैंने पाप करने के लिए नहीं कहा है कि बल्कि जब पाप मन में आंवे तो स्नान करो, ध्यान करो, हरे कृष्ण हरे राम कीर्तन करो। यह सब करने पर भी पाप होगा। जब ऐसा लगे कि अब पाप होगा ही तब भगवान् से हाथ जोड़कर कहना कि, ''मैं पाप करता हूँ, मैं अपने मन को सम्भाल नहीं सकता, हे भगवान्! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ, मैं तुम्हारा हूँ, मुझे पाप करने से रोको और मेरे साथ रहो।''

श्रीकृष्ण को साथ रखकर पाप करना, श्रीकृष्ण से कहकर पाप करना। भगवान् को साथ रखकर पाप करने का क्या अर्थ? इसका अर्थ 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, बोलते-बोलते पाप करना। मनुष्य का एक स्वभाव है कि वह पुण्य कर सकता है किन्तु पाप नहीं छोड़ सकता। यदि परमात्मा अतिशय कृपा करे तो ही पाप छूट सकता है। यदि भगवान् को साथ रखकर पाप करोगे तो धीरे-धीरे पाप छूट जाएगा। भगवान् को साथ रखकर किए गए पाप की सजा बहुत कम होती है। जब भगवान् पूछेंगे कि तूने ऐसा पाप क्यों किया तब उस समय हाथ जोड़कर उनसे कहा जाएगा कि मैंने पाप किया है किन्तु आपको साथ रखकर पाप किया है। इसलिए आधी सजा आप भोगिए और आधी मैं भोगूँगा क्योंकि आप पाप करते समय साथ थे। जो चोरी नहीं करता किन्तु चोर के साथ घूमता है उसे भी तो सजा भुगतनी पड़ती है।

६२- ब्रह्म कृष्ण-जगत् कृष्ण

एतत्कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम्।
मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे॥ (१०-१२-३७)

बालक अपने घर जाकर प्रतिदिन की कथा अपनी माताओं को प्रतिदिन सुनाते हैं। वे कहते हैं कि लाला ने आज ऐसा किया, लाला ने आज ऐसी लीला की। किन्तु उन्होंने अघासुर वध की कथा एक वर्ष बाद सुनाई यह सुनकर राजा परीक्षित को आश्चर्य हुआ कि बालकों ने यह कथा एक वर्ष बाद क्यों सुनाई? शुकदेवजी महाराज का हृदय यह जानकर पिघल उठा है, आँखें भीगी हो गई हैं और शरीर में रोमांच हो आया है, वे कहते हैं, ''मेरे श्रीकृष्ण अति उदार हैं, अतिशय

प्रेमालू हैं। इस जीव को परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान नहीं हैं, भगवान् के स्वभाव को वह नहीं जानता। इसीलिए वह जगत् की खुशामद करता है। किसी धनवान की बहुत खुशामद करोगे तो वह देते देते भी क्या देगा? जो परमात्मा की खुशामद करता है उसे वह भगवान् बना देता है। यदि जीव श्रीकृष्ण से प्रेम करे तो वह उसे श्रीकृष्ण बना देते हैं। यह जीव बड़ा अभागा है इसलिए वह भगवान् से प्रेम नहीं करता, परमात्मा की खुशामद नहीं करता, जगत् की खुशामद करता है। शुकदेवजी को श्रीकृष्ण की उदारता का स्मरण हो आता है। उनकी आँखें भीग गई हैं, उनका गला भर आया है, वे दो मिनट तक बोल नहीं सके। जब वैष्णवजन कीर्तन करते हैं तब उन्हें अपने देह का भान होता है। उन्होंने इस लीला का बहुत प्रेम से वर्णन करते हुए कहा है कि हे राजा! तूने बहुत सुन्दर प्रश्न किया है। अघासुर के मारने के बाद बालकों ने लाला से कहा कि कन्हैया बहुत भूख लगी है। लाला ने कहा, ''चलो जमुना किनारे चलें वहाँ पंक्ति में बैठकर भोजन करेंगे।'' वे ग्वाल बालमित्र, श्रीकृष्ण यमुना किनारे श्रीधाम वृन्दावन में वृक्षों की छाया में भोजन करने बैठे हैं। तुम मन से उनका दर्शन करो और अनुभव करो कि मैं इस समय वृन्दावन में हूँ, यमुनाजी का दर्शन करता हूँ, सभी वृक्ष फल-भार से झुक गए हैं। श्रीकृष्ण के स्पर्श की आशा से बड़े-बड़े ऋषियों ने वृंदावन में पेड़ का रूप धारण कर लिया है। श्रीकृष्ण उन्हीं वृक्षों की छाया में अपने ग्वाल बालमित्रों के साथ भोजन करने बैठे हैं। शुकदेवजी महाराज कथा नहीं कर रहे हैं, वे दर्शन करते-करते कह रहे हैं-

बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृंगवेत्रे च कक्षे, वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु।
तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः॥

(१०-१३-११)

आज की भोजन व्यवस्था कमलाकार हो रही है। यह बालकों का शुद्ध प्रेम है। उनकी इच्छा है कि मुझे आज श्रीकृष्ण से सटकर ही बैठना है। जो श्रीकृष्ण से दूर बैठता है उसे आनन्द नहीं मिल पाता, श्रीकृष्ण को स्पर्श कर बैठने वाले को ही आनन्द प्राप्त होता है। वृन्दावन के साधु रासलीला की कथा चार प्रकार से करते हैं, चार प्रकार की रासलीलाओं का वर्णन है। एक रास लीला में श्रीकृष्ण वृद्ध गोपियों के साथ रमण करते हैं। दूसरी रासलीला गायों के साथ होती है, तीसरी रासलीला ग्वालमित्रों के साथ होती है और चौथी रासलीला युवती गोपियों के साथ होती है। युवती गोपियों के साथ रास करने की कथा उन्नीसवें अध्याय में आएगी। यह तेरहवाँ अध्याय चल रहा है। इस अध्याय में श्रीकृष्ण की रासलीला वृद्ध गोपियों, गायों और ग्वालमित्रों के साथ हुई है।

शुकदेवजी महाराज कहते हैं ''हे राजर्षि यह अलौकिक रासलीला है। रासलीला का क्या तात्पर्य है इसे समझो। उपनिषद् में ''रसो वै सः'' कहकर परमात्मा का वर्णन किया गया है। अर्थात् परमात्मा रसस्वरूप है, रसमय है। अति मधुर रस ही परमात्मा है। रसमय मनुष्य ही परमात्मा को प्राप्त करता है। रसमय परमात्मा के साथ एक होना ही रास कहलाता है। गोकुल में वृद्ध गोपियाँ थीं। वे बालकृष्णलाल का दर्शन करती हैं। दर्शन में आनन्द तो आता है किन्तु उनके मन में यह भाव जगता है कि यदि हमें श्रीकृष्ण के दर्शन में इतना अधिक आनन्द आता है तो जब यशोदा माता लाला को अपनी गोद में लेकर छाती से चिपकाती होंगी तो उन्हें कितना आनन्द आता होगा। हमें लाला से मिलना है, मुझे उसके साथ एकाकार होना है। ये वृद्ध गोपियाँ श्रीकृष्ण के दर्शन करते-करते अपने मन द्वारा श्रीकृष्ण से मिलती हैं। वे मन से तो श्रीकृष्ण से मिल रही हैं, किन्तु अब भी उनकी भावना प्रत्यक्ष मिलन की है। इस अध्याय में इन वृद्ध गोपियों के साथ रास है, मिलन है।

गोकुल में जो गायें थीं, उन्हें भी लाला से मिलने की इच्छा थी। अरे! इन गायों से लाला किस प्रकार मिले? यह बड़ा भारी प्रश्न है। गायों के मन में ऐसा भाव जगता है कि जिस प्रकार बछड़ा गाय का दूध पीता है, उसी प्रकार कृष्ण मेरा दूध पिएँ तो मैं उससे मिलूँ। गाय जब बछड़े को दूध पिलाती है तब गाय और बछड़ा दोनों एकमय हो जाते हैं। उनका अद्वैत ऐसा हो जाता है कि उसे कोई तीसरा नहीं समझ सकता। इसका अनुभव गाय और बछड़े ही कर सकते हैं। इन गायों को कन्हैया के साथ एकाकार होना है, लाला से मिलना है। इस अध्याय में परमात्मा ने गायों के साथ भी रास किया है।

तत्पश्चात् इस अध्याय में ग्वाल मित्रों के साथ भी रास है। ग्वालों की ऐसी भावना है कि मुझे श्रीकृष्ण को स्पर्श करके ही बैठना है। कोई श्रीकृष्ण से दूर बैठने को तैयार नहीं है। अब श्रीकृष्ण तो ठहरे एक और बालक हैं अनेक। फिर वे एक ही समय सबसे किस प्रकार मिलें। शुकदेवजी महाराज समाधि-भाषा में एक ऐसा वर्णन करते हैं-

यथाम्भोरुहकर्णिकायाः।

आज की भोजन-बैठक कमल जैसी है। कमल के मध्य में गाभा (पुष्प दण्ड) होता है। श्रीकृष्ण मध्य में हैं। छोटी-छोटी पंखुरियाँ गाभे के पास होती है। बड़ी पंखुरी गाभा से दूर दिखाई देती हैं। दूर दिखाई देने पर भी प्रत्येक पंखुरी का संयोग गाभा के साथ होता ही है। कमल एक हजार पंखुरियों का होता है। उसमें एक भी पंखुरी ऐसी नहीं होती जिसका सम्बन्ध गाभा से न हो। छोटे बालक श्रीकृष्ण के पास हैं और बड़े बालक थोड़े दूर हैं। तुम्हारे बड़े हो जाने पर कन्हैया तुम्हें

दूर रखेगा। तुम यदि छोटे होगे, मन से बालक की तरह छोटे रहोगे, तो श्रीकृष्ण तुम्हें पास बैठाएँगे। प्रभु ने अनेक बालकों को एक साथ अपने मिलने का अनुभव कराया है कि तुम से सटकर बैठा हूँ। श्रीकृष्ण ने रासलीला में प्रत्येक गोपी को यह अनुभव कराया है कि मैं तेरे पास हूँ।

बालकों का प्रेम शुद्ध है। ये बच्चे अपने-अपने घर से जो कुछ लाते उसमें जो अच्छी से अच्छी वस्तु होती उसे लाला के लिए अलग रख देते, जो मध्यम वस्तु होती उसे मित्रों को देते और जो साधारण वस्तु होती उसे अपने खाते। अच्छी वस्तु दूसरे को देना ही भक्ति है। जो अच्छी वस्तु अपने लिए रखी जाए, वह आसक्ति है बालकों की ऐसी भावना है कि लाला के मुँह में मुझे कौर (कवल) देना है। यदि मैं श्रीकृष्ण से दूर बैठूँ तो मुँह में कौर किस प्रकार दे सकूँगा? बालक प्रेम से लाला को भोजन कराते हुए कहते हैं, 'लाला मेरी माँ ने तेरे लिये जलेबी बनाई है। उसने मुझसे यह कहा है कि तू इसे लाला के हाथ में मत देना। उसके मुँह में ही खिला देना। लाला मैं इसे तेरे मुँह में ही दूँगा।' कन्हैया भोजन में भी बालकों को बोध देता है और कहता है कि तू मुझ अकेले को ही जलेबी देता है, मेरे मित्रों को नहीं देता। मेरे गुरु ने मुझे यह विशेष रूप से सिखाया है जो अकेला खाता है, वह दूसरे जन्म में बिल्ली हो जाता है। इसलिए किसी दिन अकेले नहीं खाना चाहिए। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जो वस्तु अधिक हो तो देने की उदारता दिखाते हैं, किन्तु थोड़ी होने पर उसे छिपा रखते हैं। यदि अंगूर खाते हों और उस समय अपने किसी साथी को आते हुए देखते हैं, जिनके साथ दो बच्चे हैं तो तुरन्त ही अपनी पत्नी से कहते हैं इसे अन्दर रख दो, वे आते हैं। इसलिए जय श्रीकृष्ण-जय श्रीकृष्ण किया जाता है। वह पूछता है कि क्या कर रहे हो? तो जवाब मिलता है कि-'कुछ नहीं खाली बैठे हैं।' मित्र ने देखा था इसका सीढ़ी चढ़ते समय मुँह कुछ हिल रहा था, यह कुछ खाता होगा; लेकिन यह बात बदल गया। जगत् में कोई मूर्ख नहीं है, जो दूसरे को मूर्ख समझता है वही मूर्ख होता है। सभी यह समझते हैं कि जीव ईश्वर का अंश है। यदि तुम खाने बैठे हो और उसी समय तुम्हारे घर कोई आ जाए, तो ऐसा मानना कि इस अन्न में इसका भी भाग है। वह अपना भाग लेने आया है। अर्थात् वह खाने नहीं आया है। आज़ उसका भाग नहीं दोगे तो एक दिन व्याज के साथ उसे देना पड़ेगा। दूसरे को देने से कुछ घटता नहीं है बल्कि बढ़ता है। जिसका मन बड़ा है, उसके घर में कमी नहीं होती। मन बड़ा रखो। कोई चीज़ थोड़ी हो, तो थोड़े में से भी थोड़ा भाग दूसरे को दो।

कन्हैया उस बालक को समझता है, 'सभी को जलेबी दो।' वह बालक सभी को जलेबी देने के बाद लाला के मुँह में जलेबी डालता है। कन्हैया उसे खाता है, उसकी प्रशंसा करता है और कहता है कि तेरी माँ ने जलेबी बहुत अच्छी बनाई है। ऐसी जलेबी मेरी माँ को बनानी नहीं आती।

तात्पर्य यह है कि जिसका खाओ उसका बखान करो। जिसने मेहनत की है, जिसने पैसा लगाया है उसकी ऐसी इच्छा होती है कि लोग मुझे अच्छा कहें, मेरा बखान करें और मैं उसे सुनूँ। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि मेरा बखान मुझे पसन्द नहीं आता। किन्तु प्रायः वे गलत कहते हैं। अपना बखान सभी को पसन्द आता है। क्योंकि बखान सुनने के बाद क्या नया उत्साह आता है, थकावट उतर जाती है। दूसरा एक बालक आया और उसने कहा कन्हैया मैं तो बरफी लाया हूँ। मैंने सभी को दे दी है। तू ही अकेला बाकी है। उसने लाला के मुँह में बरफी डाल दी। इस प्रकार श्रीकृष्ण ग्वालबाल मित्रों के साथ प्रेम से भोजन करते हैं। तुम इसका दर्शन मन से करो और ऐसी भावना करो कि मैं इस समय वृन्दावन में हूँ, श्रीकृष्ण के ग्वालबाल मित्रों के साथ मण्डल में हूँ। मैं लाला के लिए अच्छी सामग्री ले गया हूँ। मैं लाला को खिला रहा हूँ। उस समय तुमको समाधि लग जाएगी। यह मन संसार की लीला का चिन्तन करने से बिगड़ गया है। यह यदि श्रीकृष्ण लाला का चिन्तन करे, तो धीरे-धीरे सुधर सकता है। कन्हैया बर्फी खाता है और बखान करता है कि यह बहुत अच्छी है।

श्रीकृष्ण के बाल मण्डल में एक ब्राह्मण का बालक भी है। वह शांडिल्य ऋषि का पुत्र है। उसका नाम मधुमंगल है। उस बालक की उम्र चार-पाँच वर्ष की है। नंदबाबा ने शांडिल्य ऋषि से कहा है कि यज्ञोपवीत करने के बाद आपका बालक हमारे घर में नहीं खाएगा। अभी उसको जनेऊ नहीं दिया गया है। इसलिए रोज सुबह-शाम हमारे यहाँ भोजन करने के लिए भेजना। वह पुरोहित महाराज का लड़का था इसलिए यशोदा माता उसका बहुत आदर करती हैं उसे लाला के साथ ही भोजन करने के लिए बैठाती हैं। यशोदा मैया यदि लाला के लिए कुछ बनातीं तो बनाने के बाद सबसे पहले पुरोहित महाराज के लड़के को देतीं। इसके बाद लाला को देतीं। यशोदा माता की ऐसी भावना है कि पुरोहित महाराज के आशीर्वाद से बालक का जन्म हुआ है। कन्हैया उसका यजमान है। इसलिए वह रोज लाला के घर भोजन करने आता है।

आज कन्हैया मधुमंगल के पीछे पड़ गया और कहा कि तू प्रतिदिन मेरे घर खाने आता है, लेकिन किसी दिन अपने घर मुझे भोजन करने के लिए नहीं बुलाता। आज मुझे तेरे घर भोजन करना है। तू अभी अपने घर जा और तेरी माँ ने जो कुछ बनाया हो, उसे ले आ। यह सुनकर मधुमंगल थोड़ा शरमा गया और सोचने लगा कि मेरी माँ ने कभी लाला को अपने घर नहीं बुलाया। वह दौड़ते-दौड़ते अपने घर गया। उसकी माँ का नाम पूर्णमासी है। उसने माँ से कहा कि लाला को अपने घर क्यों नहीं बुलाती? तूने अपने घर जो खाने की चीज तैयार की हो, उसे लाला को खाने की इच्छा प्रबल हो उठी है। तू उसमें से मुझे थोड़ा दे दे। पूर्णमासी जानती थी कि कन्हैया

परमात्मा है। आज परमात्मा को मेरे घर की वस्तु खाने की इच्छा हुई है। परमात्मा तो माँगता है, किन्तु मैं उन्हें क्या दूँ! पूर्णमासी का हृदय पिघल गया है। वह बोली, ''बेटा, मैं घर में रसोई करती ही नहीं। तेरे पिता महान् तपस्वी भक्त हैं। उन्हें खाने के लिए अधिक फुर्सत ही नहीं मिलती।

शांडिल्य ऋषि ऐसे तपस्वी ब्राह्मण हैं कि सबेरे चार बजे उठते हैं, यमुनाजी में स्नान कर आसन पर बैठते हैं और रात के सात-आठ बजे तक नित्य कर्म पूरा करते हैं। उन्होंने सत्कर्म के इतने अधिक नियमों का पालन किया था कि एक पूरा हो, तो दूसरा शुरू करें। प्रातः संध्या पूरी होने पर सूर्यनारायण को अर्घ्य देते हैं, वंदन करते हैं। इसके बाद उनकी स्तुति करते हैं। फिर गणपति महाराज की पूजा शंकर-पार्वती की पूजा, लक्ष्मीनारायण की पूजा करते हैं, वेद मन्त्र बोल-बोल कर एक-एक देवता की अभिषेक के साथ पूजा करते-करते बारह बज जाते हैं। बारह बजने के बाद मध्याह्न की संध्या करते हैं। मध्याह्न की संध्या में गायत्री का जप करते हैं, वेदाध्ययन करते हैं, देव, ऋषि, पितरों का तर्पण करते हैं। महाराज का नियम है कि प्रतिदिन प्रभु के नाम के इक्कीस हजार जप नियमपूर्वक करें। ब्राह्मण का अवतार खाने के लिए नहीं, बल्कि सारे दिन भक्ति करने के लिए है। एक घण्टे में ९०० स्वाँस ली जाती हैं। इस प्रकार २४ घण्टे में २१६०० स्वाँस ली जाएँगी। प्रत्येक स्वाँस पर भगवान् का जप होना चाहिए वे प्रभु के नाम का २१६०० जप करते हैं। यह सब करते-करते सायंकाल की संध्याकाल की संध्या का समय हो जाता है। फिर वे सायं-संध्या करते हैं। भला उन्हें खाने की फुर्सत ही कहाँ है? सायं-संध्या के बाद रात को दो-चार केले खाकर सो जाते हैं। कभी-कभी दूध पीकर सो जाते हैं।

पूर्णमासी महान् पतिव्रता है। वह यह सोचकर कि मेरे पतिदेव भोजन नहीं करते, तो मुझे भी भोजन नहीं करना है। इसलिए वह घर में रसोई ही नहीं बनाती। उसके घर में एक लड़का है वह रोज नंदबाबा के घर खाने जाता है फिर रसोई की आवश्यकता किसके लिए? पूर्णमासी सारे दिन पतिदेव की सेवा में रहती है। पतिदेव फल खाएँ तो रात को वह बाकी बचे दो-चार फल खाकर उनके चरणों में सो जाती है। पति-पत्नी सारे दिन तपश्चर्या करते हैं। उनका घर तपस्वी ब्राह्मण का घर है। उनके घर में कुछ नहीं है, किन्तु सन्तोष है जहाँ सन्तोष है वहाँ सब कुछ है। जहाँ सन्तोष नहीं है वहाँ सब कुछ होने पर भी कुछ नहीं है। पूर्णमासी को सन्तोष है, वह कहती है कि मैं बहुत गरीब हूँ, किन्तु मैंने पूर्वजन्म में कुछ पुण्य तप किया था, जिससे मुझे ऐसे पति प्राप्त हुए हैं। उसके पति को पैसे के लिए कोई प्रवृत्ति करने की इच्छा नहीं होती। वे सारे दिन भक्ति करते हैं। वे प्रायः गरीबी ही में रहते हैं। जो सारे दिन भक्ति करता है वह लक्ष्मीजी को पसन्द नहीं होता। लक्ष्मीजी को मन में ऐसा लगता है कि यह व्यक्ति मुझे अपने मालिक के साथ

पाँच-सात मिनट भी एकान्त में बोलने नहीं देता! यह यहाँ से चला जाय तो मैं कुछ अपनी निजी बात करूँ। यह तो मेरे पतिदेव का चरण छोड़ता ही नहीं। इसीलिए जो दिन भर भक्ति करता है, वह लक्ष्मीजी को नहीं सुहाता। जो भगवान् को छोड़कर प्रवृत्ति करता है वह लक्ष्मीजी को सुहाता है।

पूर्णमासी ने सुना कि लाला को मेरे घर की वस्तु खाने की इच्छा हुई है, यह सुनकर उनका हृदय भर आया। भला यह गरीब ब्राह्मणी लाला को क्या दे? यशोदाजी रोज मुझसे कहती हैं कि मुझे कुछ सेवा बताओ, किन्तु मेरे पतिदेव किसी की सेवा लेते ही नहीं। कल मैं यशोदाजी से कहूँगी कि थोड़ा खोआ भेजो। मैं उससे लाला के लिए मिठाई बनाऊँगी और उसे दूँगी। आज तो घर में कुछ भी नहीं है। यह सुनकर बालक बोला, ''माँ तू मुझे कुछ दे। दूसरे सभी मित्र लाला के लिये मिठाई लाते हैं। मैं ही एक ऐसा हूँ जो खाली हाथ जाता हूँ।'' यह कहकर बालक रोने लगा। पूर्णमासी ने अपने घर में देखभाल की, किन्तु उसे दूसरा कुछ नहीं मिला। थोड़ी छाछ पड़ी थी। वही हाथ लगी। पूर्णमासी ने विचार किया कि यह गरीब ब्राह्मणी लाला को दूसरा कुछ क्या दे? वह छाछ देते समय आँख में आँसू भरकर बोली, लाला के लिए घर में जो अच्छी से अच्छी वस्तु हो वही देनी चाहिए, किन्तु मेरे घर में कुछ दूसरी वस्तु नहीं है। केवल यह छाछ है, किन्तु वह भी खट्टी है। कन्हैया का शरीर बहुत कोमल है। उसे यह खट्टी छाछ पीने पर बहुत तरह की तकलीफ खड़ी होगी। बेचारी गरीब ब्राह्मणी दूसरा कर ही क्या सकती थी। उसने छाछ में थोड़ी चीनी मिला दी और उसे मीठी बनाकर एक छोटी-सी हाँडी में रख दिया। उसने बालक के हाथ में वह हाँडी देते हुए कहा, 'बेटा, आज मैं लाला के लिए छाछ दे रही हूँ, किन्तु कल मैं उसके लिए मिठाई दूँगी। आज मेरे घर में कुछ नहीं है। लाला से कहना कि यह छाछ देते हुए मेरी माँ रोने लगी थी, मैं छाछ लेकर आया हूँ।'

गरीब ब्राह्मण का बालक प्रेम से वह छाछ लेकर आया है, लेकिन उसे लाला को छाछ देने की हिम्मत नहीं होती। वह जानता है कि कन्हैया परमात्मा है। यदि उसे छाछ दूँ तो मुझे भी जन्म भर छाछ पीनी पड़ेगी। हमें लाला को अच्छी से अच्छी वस्तु देनी चाहिए। यह छाछ लाला को नहीं दी जा सकती। इसे मैं ही पी जाऊँ। कल मेरी माँ मिठाई बनाएगी। वह मिठाई लाकर मैं लाला को दूँगा। यह विचारकर मधुमंगल छाछ पीने लगा। यह देखकर लाला ने कहा, 'हे मधुमंगल तेरी माँ ने मेरे लिए छाछ भेजी है, वह मुझे दे।' मधुमंगल ने कहा कन्हैया मैं वह छाछ तुझे नहीं दूँगा कल मैं तुझे मिठाई लाकर दूँगा। कन्हैया बोला, 'तू यह छाछ क्यों नहीं देगा, कल की बात कल देखी जाएगी। मैं तेरी हाँडी खींच लूँगा। मधुमंगल ने देखा कि कन्हैया खड़ा हो गया है। वह

दौड़ता हुआ आएगा और हाँडी मुझसे छीन लेगा। मुझे लाला को मिठाई खिलानी है। क्या मैं उसे छाछ दूँ। जब तक कन्हैया आए, तब तक मैं अकेले सारी छाछ पी जाऊँ और हाँडी खाली कर दूँ। ऐसा विचार कर मधुमंगल ने छाछ पीली और हाँडी खाली कर दी। लेकिन अधिक जल्दी के कारण उसके मुँह में से छाछ की एक धारा बाहर निकल पड़ी। वह प्रेम में देह का भान भूल गया था। कन्हैया दौड़ता आया और मधुमंगल का मुँह चाटने लगा।

यह प्रेम कथा है। यह जीव जब परमात्मा के साथ प्रेम करते हुए अपना देह भान भूल जाता है, तब परमात्मा भी उसके सामने अपना ईश्वरत्व भूल जाता है। आज श्रीकृष्ण को यह याद नहीं आता कि मैं लक्ष्मी का पति हूँ, वैकुण्ठ का स्वामी हूँ। उसने ग्वालों के साथ ऐसा सच्चा प्रेम किया है कि मधुमंगल उससे शरमा गया। उसने कहा कि कन्हैया, तू यह क्या कर रहा है? लाला ने कहा, 'तेरे घर की जूठी छाछ भी यदि मुझे मिल जाए, तो मेरी बुद्धि सुधर जाए। तेरे पिता महान् तपस्वी ब्राह्मण हैं। उनके पुण्य प्रताप से हमारा ब्रज सुखी हुआ है।' चौबीस लाख गायत्री जप का एक पुरूश्चरण होता है। उस तपस्वी ब्राह्मण ने ऐसे तीन पुरूश्चरण किए हैं। दिन में तीन बार नियमित रूप से संध्या करता है, भगवान् भी उसके घर का माँगकर भोजन करते हैं। लाला ने मधुमंगल के पिता का खूब बखान किया। गरीब ब्राह्मण का बालक अपने पिता का बखान सुनकर खूब खुश हो गया और लाला के कंधे पर हाथ रखकर कहा, "कन्हैया, मेरे घर में आज कुछ नहीं था। इसलिए मेरी माँ रोने लगी थी। मेरी माँ ने कहा है कि कल मैं लाला के लिए स्वादिष्ट मिठाई बनाऊँगी। इसलिए मैं कल तेरे लिए मिठाई ले आऊँगा।

आकाश में ब्रह्मादि देवता इस लीला का दर्शन करते हैं। ब्रह्माजी के मन में शंका हुई कि यह श्रीकृष्ण तो बालकों का मुँह चाटता है। क्या यह परमात्मा है? क्या जो परमात्मा होगा वह बालकों का मुँह चाटेगा? श्रीकृष्ण की लीला ऐसी विचित्र है कि देवता भी भ्रम में पड़ जाते हैं। यदि आज कल के लोग शंका करें, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। ब्रह्माजी ने ऐसा निश्चय किया कि मुझे श्रीकृष्ण की परीक्षा करनी पड़ेगी कि वे ईश्वर हैं या देव हैं? यदि उसे मेरे जैसा संसार बनाना आएगा, तो मैं मान लूँगा कि वह ईश्वर है।

श्रीकृष्ण बालकों के साथ भोजन करते हैं। उस समय सबने बछड़े चरने के लिए छोड़े हैं। ब्रह्माजी बछड़ों को उठाकर ब्रह्मलोक में ले गए। भोजन के बाद बालकों ने देखा कि बछड़े नहीं हैं। उन्होंने लाला से कहा कि कन्हैया, बछड़े दिखाई नहीं देते। लाला ने कहा कि तुम भोजन करो। मैं बछड़ों को खोजकर ले आता हूँ। कन्हैया बछड़े खोजने निकल पड़ता है। उसी समय ब्रह्माजी

ने उन बालकों को भी उठा लिया और उन्हें ब्रह्मलोक में ले गए। लाला को मालूम हो गया कि यह बुड्ढा आज अकारण ही मेरे पीछे पड़ गया है। यह बात लाला को पसन्द नहीं आई। इसलिए उसने एक ही समय सभी बछड़ों और ग्वालबालों का स्वरूप अचानक प्रकट कर दिया। शुकदेवजी महाराज कहते हैं, राजन्! मैं तुझे क्या बताऊँ?

यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्करंघ्र्यादिकं
यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषाम्बरम्।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं
सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ॥

(१०-१३-१९)

कमरी भी श्रीकृष्ण हो गई, लकड़ी भी श्रीकृष्ण हो गई। जिसका जो स्वभाव था, वह श्रीकृष्ण हो गया। जिसका स्वभाव उतावलापन था, भगवान् भी उसी तरह उतावले हो गए। श्रीकृष्ण इसके स्वभाव के अनुसार उनका स्वरूप धारणकर घर लौट आए हैं। सबेरे गए हुए बालक शाम को घर लौट आए हैं और वे दौड़ते-दौड़ते अपनी दादी माँ के पास गए हैं। दादी माँ ने बालकों को गोद में लेकर छाती से लगा लिया है। अत्यंत आनन्द-आनन्द पैदा हो गया है। इस प्रकार आज ये वृद्ध गोपियाँ बालकों से न मिलकर सीधे परमात्मा श्रीकृष्ण से मिलती हैं, जब कि उनके बालक ब्रह्मलोक में हैं। इन वृद्ध गोपियों को श्रीकृष्ण मिलन की तीव्र भावना थी इसलिए बालकों के स्वरूप में श्रीकृष्ण उनके घर आए हैं, वृद्ध गोपियों से मिलते हैं तथा एक-एक का मनोरथ सफल करते हैं।

आज गोकुल के एक-एक घर में आनन्द समुद्र बह रहा है। आज तक गोपियाँ आनन्द लेने के लिए यशोदाजी के घर जाती थीं, किन्तु आज प्रत्येक गोपी के घर परमानन्द प्रकट हुआ है। आज गायों को भी अत्यंत आनन्द हुआ हैं उनके बछड़े ब्रह्मलोक में हैं और बछड़ों के स्वरूप में श्रीकृष्ण ही घर आए हैं। यह गायों के साथ रासलीला है। यह जीव और ईश्वर का मिलन है। गायों को अत्यंत आनन्द हो रहा है। ग्वाल गायों को रोकने के लिए जाते हैं लेकिन उन्हें अपने बछड़ों के प्रति ऐसा अलौकिक प्रेम जागा है कि वे दौड़ती-दौड़ती बछड़ों के पास चली जाती हैं। यह देखकर ग्वालों को आश्चर्य होता है। इस प्रकार गायों को ब्रह्म-सम्बन्ध प्राप्त हो गया है। इस समय कमरी श्रीकृष्ण, डण्डा श्रीकृष्ण, गोप बालक श्रीकृष्ण, बछड़े श्रीकृष्ण, यानी सभी श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण बनकर परस्पर क्रीड़ा कर रहे हैं।

ज्ञानी पुरुष आत्म-स्वरूप में रमण करते हैं, बिहार करते हैं। वेदान्त का विवर्तवाद और वैष्णवाचार्यों का ब्रह्म परिणामवाद इन दोनों का उद्भव इस लीला से हुआ है। भागवत में इन दोनों वादों का समन्वय किया गया है। वेदान्त का ऐसा कहना है कि ब्रह्म तत्व सत्य है, सभी में ब्रह्म ही सत्य है, माया के कारण यह संसार चित्र-विचित्र दिखाई देता है। प्रभु के सहारे यह संसार दृष्टिगोचर होता है। सिनेमा के पर्दे पर अनेक चित्र दिखाई देते हैं। कभी उस पर जोरदार बरसात दिखाई देती है, कभी समुद्र उछलता है। चित्र में यह भले दिखाई दे, किन्तु पर्दे का एक सूत भी भीगता नहीं। ब्रह्म एक सच्चा आधार है। सहारा है। ब्रह्म में माया के कारण यह संसार चित्र-विचित्र रूप में दिखाई देता है। लकड़ी और बछड़ा दिखाई देते हैं, किन्तु वे श्रीकृष्ण हैं उन्हें छोड़ कुछ दूसरे नहीं। माया के कारण विविधता दिखाई देती है। इस प्रकार की अनेकता और विविधता ही अविद्या है। इसलिए ज्ञानी महापुरुष इसे माया का भँवर मानते हैं। वैष्णवाचार्यों का कथन है कि यंह जगत् ब्रह्म का परिणाम है अर्थात् ब्रह्म ही एक प्रकार से जगत् है। ब्रह्म ही अनेक स्वरूप धारण करता है और वही सर्वत्र दिखाई देता है। श्रीकृष्ण ही अनेक रूपों में दर्शन देते हैं।

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं, ''यह लीला एक वर्ष तक चलती रही। किसी को वास्तविक बात खबर न पड़ी। श्रीकृष्ण अनेक बछड़ों के स्वरूप में, अनेक ग्वाल-बालों के स्वरूप में स्वयं अपने स्वरूप के साथ क्रीड़ा करते रहे। महान् योगी अपने ही आत्म-स्वरूप में अथवा आत्मरति में ही लीन रहते हैं। ब्रह्माजी ने विचार किया कि ग्वाले बहुत दुःखी हुए होंगे, रोते होंगे, उन्हें देखने के लिए वे गोकुल में आए। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि एक भी बालक कम नहीं हुआ है, सभी दिखाई दे रहे हैं। अब ब्रह्माजी विचार में पड़ गए कि मैंने जिन्हें ब्रह्मलोक में रखा है, वे सच्चे हैं अथवा जो सामने दिखाई दे रहे हैं वे सच्चे हैं?

उस समय लाला ने एक और चमत्कार दिखाया। वे ब्रह्माजी का स्वरूप धारणकर उनकी गद्दी पर जा बैठे और उनके सेवकों से कहा, ''अब मैं अन्दर आराम कर रहा हूँ। आजकल एक भूत जैसा नकली ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है। वह कदाचित् आधे घण्टे बाद यहाँ आएगा। तुम उसके लिए मुझसे पूछे बिना ही बाहर ही छड़ी से अच्छी तरह से उसकी पूजा करना।'' श्रीकृष्ण ब्रह्मा होकर उनकी गद्दी पर बैठे हैं और आराम कर रहे हैं। ब्रह्मा विचार करते-करते गोकुल से ब्रह्मलोक में आते हैं। यहाँ आने पर उनके नौकर ही उन्हें मारने लगते हैं। इससे ब्रह्मा को बहुत बुरा लगता है। उन्होंने अपने नौकरों से कहा ''अरे! तुम्हें कुछ होश है। तुम मेरे नौकर हो और मेरा ही अपमान कर रहे हो! मैं ब्रह्मलोक का राजा हूँ। नौकर कहते हैं ''तुम किसके राजा? हमारे राजा तो अन्दर आराम कर रहे हैं। तू भूत जैसा कहाँ से यहाँ आया है? हम लोग तुझे अन्दर नहीं जाने देंगे।'' इस प्रकार

लाला की परीक्षा करने वाले बूढ़े ब्रह्मा की ही परीक्षा हो गई। मार पड़ने पर ही अक्ल आती है। मार न पड़े तो बुद्धि नहीं आती यह एक सिद्धांत है। ब्रह्माजी ने आँखें बन्दकर ज्यों ही ध्यान लगाया तो, उन्हें विश्वास हो गया कि मेरी गद्दी पर कृष्ण कन्हैयालालजी विराजमान हैं। यह बस श्रीकृष्ण की लीला है। वास्तव में श्रीकृष्ण देव नहीं हैं, सर्व देवों के देव हैं, परमात्मा हैं। ब्रह्माजी को पश्चाताप होने लगता है कि मैंने भूल की है, परमात्मा का अपमान किया है। क्या अब मैं उनके पास जाकर क्षमा माँगू? ब्रह्माजी जिस समय क्षमा माँगने आए, उस समय अनेक बछड़े और अनेक ग्वाल-बालों में श्रीकृष्ण का जो स्वरूप था वह एक ही क्षणमें अन्तर्धान हो गया। अकेले श्रीकृष्ण रह गए और ऐसा नाटक किया मानों उन्हें डर लग रहा है। उस समय श्रीकृष्ण रोते जा रहे हैं, बछड़ों और मित्रों को दूँढ़ रहे हैं और कहते हैं, हे मधुमंगल! हे मनसुखा! हे श्रीदामा! तुम सब मुझे छोड़कर कहाँ चले गए? मुझे अकेले बहुत डर लग रहा है। ब्रह्माजी ने उन्हें देखकर हाथ जोड़े और कहा, महाराज किसी को तुम्हारे जैसा नाटक करना नहीं आएगा, मैं तुम्हारे चरणों में पड़कर क्षमा माँगने आया तो मुझे आप ऐसा स्वरूप दिखा रहे हैं?

रोना यह माया का धर्म है श्रीकृष्ण में माया का यह धर्म भले ही दिखाई दे, किन्तु श्रीराम श्रीकृष्ण माया रहित शुद्ध ब्रह्म हैं, आनन्दमय हैं। जिस प्रकार सूर्य के पास अन्धकार नहीं जा सकता उसी प्रकार ब्रह्मा के पास माया नहीं जा सकती, उसे स्पर्श नहीं कर सकती। यह तो प्रभु ने ऐसा नाटक किया है कि आज आनन्द रोता हुआ दिखाई देता है। कदाचित् श्रीराम-श्रीकृष्ण रोएँ, किन्तु वे अपने स्वरूप में स्थिर होकर ही लीला करते हैं। जिस प्रकार किसी नाटक में कोई राजा भिखारी का वेश धारणकर भीख माँगने जाए और भीख न मिलने पर नाटक करे कि मुझे कुछ नहीं मिला और रोने लगे किन्तु अन्दर से उसे पता है कि मैं राजा हूँ। उसी प्रकार परमात्मा श्रीराम-श्रीकृष्ण आनंन्दमय हैं। भले ही वे रोते हुए दिखाई दें।

रामायण में वर्णन आता है। जब रावण सीताजी को हरण करके ले गया, तब श्रीराम सीताजी को खोजने निकल पड़ते हैं। जब लंका में रामजी का स्मरणकर सीताजी रोती हैं, तब रामचन्द्रजी ऐसा नाटक करते हैं कि सीता के वियोग से मुझे बहुत दुःख है। यदि कभी भक्त भगवान् के वियोग में रोने लगे, तब भगवान् कभी-कभी ऐसी लीला करते हैं कि मुझे भक्त का वियोग सहन नहीं होता। श्रीसीताजी के वियोग में रामजी को रोते देखकर लक्ष्मणजी समझाते हैं, "बड़े भाई, आप रोएँ नहीं, सीताजी मिलेंगी।" रामजी कहते हैं कि मेरी सीता कहाँ है? वृक्ष से पूछते हैं कि सीता कहाँ है? श्रीराम ज़िस समय दंडकारण्य से होकर गुजर रहे थे उसम समय भगवान् शंकर सतीजी के साथ उसी मार्ग में आ जाते हैं और उन्हें श्रीराम-लक्ष्मण के दर्शन होते हैं। शिवजी वृक्ष

की ओट में खड़े हैं, प्रेम से उनका दर्शन करते हैं, शरीर में रोमाँच का अनुभव करते हैं। उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़ लिए हैं। यह कैसा नाटक है! मनुष्य जैसी लीला हो रही है। आज आनन्द रोता- रोता जा रहा है।

श्रीराम आनन्दमय हैं, श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। शिवजी महाराज वृक्ष की ओट में खड़े होकर वंदन करते हैं। वे सोचते हैं कि यदि मैं सामने जाकर वंदन करूँ, तो भगवान् की लीला में विघ्न पड़ेगा। सतीजी ने पूछा कि आप किसे वंदन करते हैं। शिवजी ने कहा, ''ये परमात्मा हैं। मैं इनको वंदन करता हूँ।'' सतीजी ने कहा, ''यह तो रोते-रोते जा रहे हैं। क्या आनन्द कभी इस प्रकार रोयेगा? यह तो राजा दशरथ के पुत्र हैं।'' शिवजी ने कहा, ''ये राम हैं, परमात्मा हैं, मेरे इष्ट-देव हैं। ये राम सर्वमय हैं। ये अंदर से आनन्दमय हैं, सावधान हैं। यह तो लीला कर रहे हैं।'' सतीजी को इस बात पर विश्वास नहीं होता। वे कहती हैं कि मैं इनकी परीक्षा लूँगी। शिवजी ने परीक्षा लेने की अनुमति दी। सतीजी परीक्षा लेने निकल पड़ीं। रामचन्द्रजी जिस मार्ग से आने वाले हैं, उसी मार्ग पर वे सीता का रूप धारण कर खड़ी हो गई हैं। सतीजी ने सोचा कि राम जब सीता का स्वरूप देखेंगे, तब एकदम प्रसन्न हो जाएँगे। सतीजी को सामने खड़ी देखकर राम ने वह रास्ता छोड़ दिया और दूसरा रास्ता पकड़ लिया। सतीजी ने यह समझा कि राम स्त्री-वियोग में बहुत व्याकुल हैं, बहुत दुःखी हैं। इसलिए उन्होंने मुझे नहीं देखा है। अतः वे फिर रामजी के रास्ते में चलकर आगे खड़ी हो जाती हैं। यह भी पुकारकर कहा कि मैं तो यहाँ खड़ी हूँ। आप क्यों रो रहे हैं? श्रीराम इस बात को अनसुनी कर देते हैं और वे रास्ता छोड़कर दूसरा रास्ता पकड़ लेते हैं। सतीजी को आश्चर्य होता है कि अभी उनकी नजर ठीक तरह मुझ पर नहीं पड़ी है। मैं उनके पास जाकर खड़ी रहूँ तो वे प्रसन्न होंगे। सीताजी के रूप में सतीजी रामचन्द्रजी के पास जाकर खड़ी हो गईं। उन्हें देखकर श्रीराम अपना मस्तक धरती पर झुकाकर वन्दन करते हैं और कहते हैं, ''दशरथ-पुत्र राम आपको वन्दन करता है। माँ, तुम अकेले ही जंगल में क्यों घूम रही हो? भगवान् शंकर कहाँ हैं?'' अब सतीजी को विश्वास हो गया, ''भले ही ये रो रहे हैं, किन्तु अन्दर से बहुत सावधान हैं, आनन्द में हैं। इनको माया का स्पर्श नहीं है।'' जो परमात्मा का सेवा-स्मरण करे, उसे माया का स्पर्श नहीं होता। फिर स्वयं परमात्मा को, श्रीराम को, श्रीकृष्ण को माया कैसे स्पर्श कर सकती है?

ब्रह्माजी ने निश्चय किया है कि श्रीकृष्ण भले ही रोयें, किन्तु ये परमात्मा हैं। ब्रह्माजी को यह विश्वास हो गया। हंस पर विराजे हुए ब्रह्माजी नीचे उतरते हैं और 'कृष्ण कन्हैयालाल की जय' कहकर श्रीकृष्ण के चरणों में वंदना करते हैं। ब्रह्माजी परमात्मा की स्तुति करते हुए कहते हैं–

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय।
वन्यस्त्रजे कवलवेत्रबिषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय।।

(१०-१४-१)

आपका श्रीअंग मेघ जैसा श्याम है। आपने पीला पीताम्बर धारण किया है और आपके गले में गुँजा अर्थात् चणोठी (गुजराती शब्द) ब्रह्माण्ड का आकार गुँजा जैसा है। श्रीकृष्ण अनंत कोटि ब्रह्माण्ड के नायक हैं। उन्होंने ब्रह्माजी को बताया है तुम तो एक ही ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा हो, ऐसे-ऐसे अनेक ब्रह्माण्ड मेरे श्रीअंग में विलास करते हैं। वे अनंत कोटि ब्रह्माण्ड के नायक हैं इसलिए उन्होंने गले में गुंजा की माला धारण की है, उनके मस्तक पर मोर-पिच्छ का मुकुट है। लाला को मोर बहुत पसन्द आता है। मोर में अनेक गुण है। वह दूसरे के दुःख से दुःखी और सुख से सुखी होता है। अधिक गर्मी पड़े और सब कुछ सूख जाए, तो मोर को मरण-तुल्य दुःख होता है। आकाश में बादल के गड़गड़ाने पर वह अत्यंत आनन्द से नाचता है और उसकी आँख से आनन्दाश्रु प्रवाहित हो उठता है, जिसे मोरनी पी जाती है और उससे सगर्भा बन जाती है। जो काम सुख का त्याग करता है, उसे श्रीकृष्ण अपने मस्तक पर स्थान देते हैं। ब्रह्माजी कहते हैं-

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे।
किमस्तिनास्तिकव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः।।

(१०-१४-१२)

माता के पेट में निवास करने वाला बालक यदि अज्ञान में उसे लात भी मारे, तो वह उसे क्षमा करती है। इसी प्रकार आप मुझे क्षमा कीजिए। मैं आपकी लीला से विमोहित हो गया था। आपकी लीला का पार भला कौन पा सकता है?

को वेत्ति भूमन्भगवन्परात्मन् योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम्।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन्क्रीडसि योगमायाम्।।

(१०-१४-२१)

श्रीकृष्ण की लीला ही उनकी बहुत बड़ी कृपा है। श्रीकृष्ण आनन्द में हैं। इसलिए उन्हें सुख भोगने की इच्छा होती ही नहीं। श्रीकृष्ण को कोई भी स्वार्थ नहीं होता। परमात्मा जो कोई काम करता है, वह हमारे लिए करता है। यह जीव ईश्वर का है। परमात्मा का होते हुए भी यह जीव अपने को भूल गया है। यह जीव ऐसा मानता है कि मैं ही जगत् हूँ, मैं किसी स्त्री का हूँ, मैं किसी पुरुष का हूँ। जीव का जगत् से जो सम्बन्ध है, वह कच्चा है, केवल श्री परमात्मा, श्रीकृष्ण के साथ ही स्थापित होने वाला सम्बन्ध सच्चा है। यह ज़ीव भगवान् का होने पर भी

संसार में उलझ गया है। जीव के आकर्षण के लिये ही परमात्मा लीला करते हैं। शुकदेवजी राजर्षि को सावधान करते हुए कहते हैं, ''संसार का चिन्तन करने से मन विषयों में उलझ जाता है, किन्तु श्रीकृष्ण-लीला में ऐसी दिव्य शक्ति है कि उनकी कथा सुनते ही अनायास हमारा मन संसार को भूल जाता है। मुक्ति मन को मिलती है, आत्मा को नहीं मिलती। आत्मा परमात्मा का अंश है। भला राजा के पुत्र को कौन बाँध सकता है? हम सब राजा के बालक हैं। अतः राजकुमार को कोई रुला नहीं सकता। सुख और दुःख की अनुभूति मन को होती है, मन संसार के विषयों में फँसता है, मन को बन्धन होता है, आत्मा को कोई बन्धन नहीं है।

आत्मस्वरूप के सम्बन्ध में सन्तों में थोड़ा मतभेद है। अनेक सन्त ऐसा मानते हैं कि आत्मा और परमात्मा दोनों एक ही हैं। आत्मा-परमात्मा के स्वरूप में जो भेद दिखाई देता है वह सच्चा नहीं है, वह अज्ञान से पैदा हुआ है। अनेक साधु-सन्त ऐसा मानते हैं कि यह जीव ईश्वर का अंश है, परमात्मा अंशी है। ज्ञानी पुरुषों का कथन है कि परमात्मा का स्वरूप ऐसा दिव्य है कि उसमें से थोड़ा भी अंश अलग नहीं हो सकता।

जीव अंश नहीं है बल्कि अंश जैसा है। यदि एक करोड़ रुपए में से एक भी पैसा निकाल लो, तो करोड़ का नाश हो जाता है, उसके बाद वह करोड़ नहीं रहता। यदि जीव को ईश्वर का अंश मानें, तो यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि जीव के ईश्वर से अलग हो जाने पर परमात्मा का स्वरूप भंग हो जाता है। इसलिए ईश्वर से थोड़ा भी अंश अलग नहीं हो सकता, जीव अंश जैसा है, वैसा ही वह परमात्मा का स्वरूप है। अनेक सन्त ऐसा मानते हैं कि जीव ईश्वर का अंश है। यदि परमात्मा सिन्धु है, तो जीव बिन्दु है। समुद्र से एक छींटा भी यदि (कोई) बाहर निकाले तो क्या उससे समुद्र का विनाश होता है। जिसकी बुद्धि तर्क की कसौटी में कसी हुई होगी वह ऐसा ही कहेगा कि समुद्र में से यदि एक बिन्दु भी बाहर निकालो, तो समुद्र का जो असली रूप होता है वह बना नहीं रहता। जिसकी बुद्धि तर्क की कसौटी पर कसी होती है, उसे वेदान्त का सिद्धांत पसंद होता है। जिसकी बुद्धि भावना प्रधान होती है, उसे वैष्णव-सिद्धांत पसंद होता है। किसी भी सिद्धांत में जीव को बंधन नहीं बताया गया है। चाहे जीव को ईश्वर का अंश मानो या उसे परमात्मा का स्वरूप मानो। जो सिंह का बालक है वह सिंह ही होगा। जो परमात्मा का पुत्र है, उसे कोई नहीं बाँध सकता, जो राजा का बालक है उसे कोई रुला नहीं सकता। यह जीव अज्ञान के कारण ही दुःखी होता है। सुख-दुःख का स्पर्श मन को होता है, बन्धन मन को होता है। जब मन बंधन में होता है, तब आत्मा को ऐसी प्रतीति होती है कि मैं बन्धन में हूँ। मन को होने वाले बंधन का आरोप आत्मा अपने स्वरूप में करती है। आत्मा को किसी ने बाँधा नहीं है।

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।

सो माया बस भयउ गोसाईं। बध्यो कीट मर्कट की नाईं।।

महापुरुषों ने इस सिद्धांत को समझाने के लिए बहुत सुन्दर दृष्टांत दिया है। वे कहते हैं कि बन्दर बहुत चंचल होता है। वह जल्दी पकड़ा नहीं जा सकता। पारधी बंदर पकड़ने की युक्ति करता है। जहाँ बंदर घूमते होते हैं वहाँ वे छोटी-सी हाँडी में चना रख देते हैं। हाँडी का मुँह सँकरा होता है। बंदर चना देखते ही बहुत खुश हो जाता है। वह एकदम दोनों हाथ हाँडी में डाल देता है। जब उसकी मुट्ठी में चना आ जाता है, तब मुट्ठी फूल जाती है। फलतः उसका हाथ हाँडी से बाहर नहीं निकलता। बन्दर को ऐसी भ्राँति होती है कि हाँडी में कोई भूत बैठा है। उस भूत ने मेरा हाथ पकड़ लिया है। वास्तव में बंदर को किसी ने पकड़ा नहीं है। हाथ में चना है उसका हाथ बाहर नहीं निकलता। यदि वह चना छोड़ दे तो हाथ बाहर निकल सकता है। बन्दर को चना बहुत भाता है। इसलिए वह हाथ में आए हुए चने को छोड़ने की इच्छा नहीं करता। यदि तुम्हारे हाथ में स्वादिष्ट केसरी पेड़ा आ जाए तो क्या तुम उसे छोड़ने की इच्छा करोगे? कुछ लोग ऐसे होते हैं जो पेड़ा इसलिए छिपा रखते हैं कि उस पर किसी की नजर पड़े तो आधा पेड़ा देना पड़ेगा। इस जीव को बन्धन नहीं है, किन्तु मन विषयों में उलझा हुआ है। इसलिए जीव अपने अज्ञान के कारण समझता है कि मैं आबद्ध हूँ। बन्धन केवल मन का है। अनेक लोगों को व्यवहार में यह अनुभव होता है कि ठाकुरजी ने मुझपर बड़ी कृपा की है, मुझे किसी तरह की चिन्ता नहीं है। क्योंकि दो लड़के काम-धन्धे में लग गए हैं। दो लड़कों के लिए दो बंगले अलग बनवा दिये हैं। उनमें झगड़ा होगा ही नहीं। मुझे कोई परेशानी नहीं है, कोई बन्धन नहीं है। अब मैं स्वतंत्र हूँ। अब मैं कितनी भक्ति करूँ, उतनी कम है। अब मुझे भक्ति करने के लिए गंगा-तट पर जाना है। मनुष्य जितना बोलने में होशियार है, उतना व्यवहार में होशियार नहीं है। वह कहता है कि मुझे कोई झंझट नहीं है। एक पुत्री बाकी है। इसकी शादी हो जाए, तो मैं तुरन्त गंगा-तट पर भजन करने चला जाऊँगा। वहीं अपना शरीरान्त करना है। क्या अभी आप गंगा-तट पर नहीं गए? यह सुनकर कोई वृद्ध पुरुष उत्तर देता है, ''मुझे तो सब कुछ छोड़ना है; किन्तु ये लड़के जाने नहीं देते। ये घर में रहने के लिए ही जिद करते हैं और कहते हैं कि घर में भी भक्ति होती है।

यह बात सत्य है कि घर में भक्ति होती है, लेकिन घर में रहकर सतत भक्ति नहीं होती। घर में रहने पर बालक बालिकाओं की भी भक्ति करनी पड़ती है। घर में सारे दिन भगवान् की भक्ति करना अशक्य है। वृद्ध कहता है कि लड़कों के इनकार करने के कारण मैं कहीं बाहर

भक्ति करने नहीं जाता। वास्तव में उसे घर छोड़ने की इच्छा नहीं है किन्तु लड़कों को व्यर्थ अपयश देता है। जब यमराज के यहाँ से धर-पकड़ का वारण्ट आएगा, तब क्या उसे किसी प्रकार रोका जा सकेगा? या यह कहा जाएगा कि लड़के जाने नहीं देते। उस समय तो यमदूत धक्का मारकर ले जाएँगे। एक दिन सब कुछ छोड़ना ही पड़ेगा। जब विवश होकर छोड़ना पड़ता है, तो बड़ी तकलीफ होती है और मनुष्य सोच समझकर छोड़ दे तो बड़ा सुख मिलता है। उसके बिना कोई काम रुका नहीं है, न किसी ने उसे बाँध रखा है। फिर भी वह अपने अज्ञान के कारण स्वयं बँधा हुआ है। आत्मा को किसी प्रकार का बन्धन नहीं है। बन्धन तो मन को है।

श्रीकृष्ण-लीला में ऐसी दिव्य शक्ति है कि सांसारिक विषयों में फँसा हुआ मन अनायास ही संसार को भूल जाता है। इस जगत् में रहकर किसी न किसी निमित्त से इसे भूलना है और परमात्मा के स्मरण में तन्मय होना है। यही श्रीकृष्ण-लीला का रहस्य है। श्रीकृष्ण की लीला अमृत है। मनुष्य स्वर्ग का अमृत पीने से अमर नहीं बनता। उल्टे स्वर्ग का अमृत पीने से विकार-वासना की वृद्धि होती है। यदि कृष्ण-कथामृत का पान करे और प्रभु में प्रेम जगे, तो धीरे-धीरे मनुष्य की वासना विनष्ट होती जाती है। स्वर्ग का अमृत पीने से पुण्य का नाश होता है; किन्तु कथामृत-पान से पापों का विनाश होता है। स्वर्ग का अमृत थोड़े समय के लिए सुख-शान्ति देता है; किन्तु कुछ समय पश्चात् मन अशान्त बन जाता है। तुम जितने समय तक कथा सुनते हो, उतने समय तक संसार को भूल जाते हो। भगवान् की लीला में ऐसी दिव्य शक्ति है। योगीजन जगत् को भूलने के लिए प्राणायाम, प्रत्याहार करते हैं। कृष्ण-लीला ऐसी मधुर है कि इसमें अनायास ही यह जीव जगत् को भूल जाता है। इससे प्रभु में प्रेम जगता है और परमात्मा के दर्शन-स्मरण में तन्मयता उत्पन्न होती है। ब्रह्माजी कहते हैं–

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय प्रसादलेशानुगृहीत एव हि।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥

(१०-१४-२९)

श्रीकृष्ण की कृपा से ही श्रीकृष्ण-लीला का रहस्य ध्यान में आता है। भगवान् की सारी लीला बड़ी अटपटी है। उसमें अनेक बार ब्रह्मादिक देवता भी भ्रम में पड़ जाते हैं। प्रभुजी ने ब्रह्मा का मोह दूर कर दिया। ब्रह्माजी बालकों और बछड़ों को ब्रह्मलोक से धरती पर ले आए हैं। वे सब मानो ऊँघ में से जाग गए हैं। पूरा वर्ष का समय बीत जाने पर भी उन्हें ऐसा लगता है कि अघासुर का वध मानो आज ही हुआ है। इसलिए एक वर्ष के बाद अपने घर पर पहुँच कर बालक अघासुर की बात सुनाते हैं।

६३– गोपाल कृष्ण

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे।
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः।।

(१०-१४-६१)

ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः।।

(१०-१५-१)

इस प्रकार खेलते-कूदते कुमारावस्था बीत गई। दोनों भाई प्रौढ़ावस्था में प्रवेश करते हैं। श्रीकृष्ण ने यशोदा माता से कहा, ''माँ मैं बड़ा हो गया। मुझे गायों की सेवा करनी हैं। माँ, मुझे गोपाल होना है।'' आज तक श्रीकृष्ण वत्सपाल थे, छोटे-छोटे बछड़ों को लेकर चराने जाते थे। अब लाला को ऐसी इच्छा हुई है कि मैं गायों की सेवा करूँ यदि भगवान् तुमको संपत्ति दे, तो ऐसा नियम पालना कि गरीब को खिलाकर ही मैं खाऊँगा। भगवान् तुम्हें यदि खूब संपत्ति दे, तो गाय माता को घर में रखना, गाय माता की सेवा करना।

गायमाता के श्रीअंग में सारे देवों का वास है। जो गायमाता को खुश करता है, वह सभी देवों को खुश करता है। सभी देवता उसे आशीर्वाद देते हैं। हमारे सनातन धर्म में कोई भी काम गाय के बिना नहीं होता। जो घर गाय के गोबर से नहीं लीपा जाता, वह अशुद्ध माना जाता है। आजकल लोगों को पत्थर बहुत पसंद आता है। सभी जगहों पर पत्थर बहुत लगवाते है। इससे उनका हृदय भी पत्थर जैसा हो जाता है। गाय के गोबर से भूमि शुद्ध होती है। गौमूत्र से देह की शुद्धि होती है। श्रीकृष्ण को अब गोपाल बनना है। यशोदा मैया लाला को समझाती हैं, बेटा तू अभी छोटा है। तू ग्यारह वर्ष का हो जाए, तो तुझे गोपाल बनाऊँगी। लाला ने कहा, ''माँ अब मैं बड़ा हो गया हूँ।'' इस वर्ष लाला ने छठा वर्ष पूरा किया है और सातवाँ आरंभ हुआ है। यशोदाजी ने कहा, ''बेटा गोर महाराज तेरा जन्माक्षर देखकर जो अच्छा मुहूर्त बताएँगे; उसी मुहूर्त में तुझे गोपाल बनाऊँगी।'' यह बात होते समय शांडिल्य ऋषि वहाँ आ गये हैं। लाला ने कहा, माँ! पुरोहित महाराज आ गए हैं, तू मुहूर्त पूछ ले। मुझे जल्दी गोपाल होना है।'' यशोदा माता ने शांडिल्य ऋषि की पूजा की और कहा, ''महाराज, लाला को गोपाल होने की इच्छा है। इसके लिए आप कोई अच्छा मुहूर्त बताइए। शांडिल्य ऋषि ने लाला के जन्माक्षर पर विचार कर मुहूर्त बताया, कार्तिक शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को महापुरुष लोग गोपाष्टमी कहते हैं। लाला को बड़ी

उतावली है। वे कहता है, माँ, अभी तो अष्टमी को आठ दस दिन बाकी हैं। माँ ने कहा बेटा पुरोहितजी ने जो मुहूर्त दिया है, उसे मानना ही पड़ेगा।

लाला को सप्तमी की रात में निद्रा भी नहीं आई। वे प्रातः काल जाग गए। उन्होंने गायों की पूजा की और उनके मुँह में लड्डू खिलाया। उन्होंने गायों की प्रदक्षिणा की और साष्टांग वंदन भी किया। गायें हृदय से लाला को आशीर्वाद देती हैं कि हमारे गोपाल का सदा-सर्वदा जय-जयकार हो। श्रीकृष्ण यशोदा माता को वंदन करते हैं। माता का हृदय प्रेम से भर उठता है और वे कहती है, ''बेटा, अब तू बड़ा हो गया है। गायों की सेवा कभी व्यर्थ नहीं जाती। गायों का आशीर्वाद पाकर मेरा बालक सुखी होगा।'' यशोदा माता श्रीकृष्ण बलराम को भोजन कराती हैं। वे बड़ी भाग्यशाली हैं। उनके एक हाथ में बलराम हैं, दूसरे हाथ में श्रीकृष्ण हैं। इस प्रकार उन्होंने शब्द ब्रह्म और परब्रह्म को हाथ में रखा है। ग्वाल बालमित्र भी आ गए हैं। यशोदा माता उनमें से एक-एक को समझाती हैं, ''मेरे लाला का ध्यान रखना। अकेले यमुनाजी में स्नान करने न जाए, न अकेले वृक्ष पर चढ़े। यह बहुत शरारती हो गया है। तुम सब इसे सम्हालना।'' ग्वाल बालमित्रों ने कहा ''माँ, ज़रा भी चिन्ता मत करना। मैं तो उम्र में लाला से चार वर्ष बड़ा हूँ। मैं इसका हाथ पकड़कर ही चलने वाला हूँ, मैं लाला को सम्हालूँगा।'' जो जगत् को सम्हालने वाला है उसे ये ग्वाल मित्र प्रेम से सम्हालने चले हैं! वे कहते हैं, 'माँ, यदि कन्हैया कुछ तूफान करेगा, तो मैं उसे धमकाऊँगा।' यह सुनकर यशोदाजी कहती हैं, मेरा कन्हैया बहुत कोमल है इसे धमकाना मत। इसे समझाना। यह मान जाएगा।

यशोदा माता ने खाने के लिए स्वादिष्ट सामग्री दी है। और कहा है कि भूख लगने पर तुम सारे मित्र एक साथ भोजन करना। श्रीकृष्ण ग्वालों को साथ लेकर गायों के साथ जाते हैं। यशोदा माता ने एक ब्रजवासी से कहा कि आज तक कृष्ण बछड़े लेकर यमुनाजी के किनारे जाता था। अब वह गायों को लेकर दूर-दूर तक जाएगा। खूब धूप पड़ती है। मेरा लाला अत्यन्त कोमल है। उसके लिये सुन्दर जूता-जोड़ा बना देना। वह ब्रजवासी जूता बनाकर ले आता है। सबकी इच्छा है कि कन्हैया पैर में जूता पहनकर जाए। लाला ने साफ कह दिया है कि मैं पैर में जूता क्यों नहीं पंहनना चाहता। लाला ने कहा, ''ये मेरी गायें कभी पैर में जूता पहनतीं हैं? मैं तो गोपाल हूँ। गोपाल तो गायों का सेवक है। यदि गाएँ नंगे पैर चलती हैं, तो उनका नौकर भी नंगे पैर चलेगा। मुझे अपने पैरों में जूता नहीं पहनना है।'' लाला ने गायों की सेवा बड़े प्रेम से की है। ऐसी सेवा अब तक किसी ने नहीं की।

यशोदा माता का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने कहा, ''तू क्या कहता है? तू गायों की सेवा करेगा, तो वे सुखी होंगी। इस समय धूप बहुत तेज पड़ रही है। जंगल में काँटे कंकड़ अधिक होते हैं। बेटा तू बहुत कोमल है। तेरे पैर में काँटे गड़ जाएँगे। तू नंग पैर चले, यह मुझे पसन्द नहीं है।'' लाला ने कहा कि तू मेरी चिन्ता मत कर। मैं गायों की सेवा करने जाता हूँ। इसलिए नंगे पैर जाऊँगा। यह सुनकर यशोदा माता ने कहा कि तू गायों की सेवा करे, यह ठीक है। आखिर गाय तो पशु ही है। लाला ने कहा, ''माँ, आज आपने कहा तो कहा। फिर ऐसा मत कहना। गायें पशु नहीं हैं, ये विश्वमाता हैं। जो गाय को पशु कहता है, वह जरा भी नहीं सुहाता। माँ, गाय में तो सभी देवों का निवास है। मैं नंगे पाँव ही चलूँगा। श्रीकृष्ण गोकुल और वृन्दावन में नंगे पाँव घूम चुके हैं। इसलिए ब्रज-रज पावन हो गई। महापुरुष ब्रज-रज का अपने ललाट पर तिलक करते हैं। ब्रज-रज मन को शुद्ध करती है।

श्रीकृष्ण आज गायों को लेकर ताल-वन में पहुँच गए हैं। वे वहाँ अपने ग्वाल बालमित्रों के साथ खेलते हैं। ताल-वन में बेर, कैंथ आदि के पेड़ है। बालकों ने लाला से कहा कि मुझे ये फल खाने की इच्छा है। लाला ने कहा, ''जरूर फल खाओ।'' बालकों ने कहा, ''कैसे खाएँ? यहाँ एक राक्षस रहता है। उसकी शक्ल गदहे जैसी है। वह लोगों को बहुत सताता है।''

ताल-वन यह समाज की सार्वजनिक सम्पत्ति है। धेनुकासुर बहुत दिनों से यहाँ पर रहता है। वह जबर्दस्ती यहाँ का मालिक बन गया है। जो समाज की सम्पत्ति पर अधिकार करता है, वह गदहा बनता है। यदि कोई ताल-वन के फल खाए, तो धेनुकासुर उसे मारता है। फल भले ही सड़ जाए, किन्तु धेनुकासुर उसे खाने नहीं देता। यदि घर में कोई वस्तु बिगड़े, तो उस वस्तु का अभिमानी देव उसे शाप देता है। प्रत्येक वस्तु का एक-एक अभिमानी देव होता है। इसलिए घर में कोई वस्तु खराब न हो, ऐसा उसका सदुपयोग करो। जो उसका सदुपयोग नहीं करता, वह दरिद्र हो जाता है। इतनी सावधानी रखना कि एक कण का भी दुरुपयोग न हो। एक कण से अनेक चीटियों का पेट भरेगा।

बालक कहते हैं, ''लाला, हमें फल खाना है; किन्तु धेनुकासुर मारता है।'' बलरामजी ने कहा, ''तुम सब निश्चिन्त होकर फल खाओ। वह राक्षस आएगा, तो मैं देख लूँगा।'' ग्वाल बाल मित्र फल खा रहे थे। उसी समय धेनुकासुर क्रोध से आगबबूला होता हुआ वहाँ आ पहुँचा। बलरामजी चौकन्ना होकर उसे देखते हैं। वे उसका पैर पकड़ कर गोल-गोल चक्कर कराते हुए उसे धरती पर पटक देते हैं। धेनुकासुर मर जाता है। सब बालक दाऊजी महाराज की जय बोलते हैं। वे श्रीकृष्ण कन्हैयालाल की जय, श्रीकृष्ण-बलराम की जय भी कहते हैं।

धेनुकासुर यह देहाभिमान है। उसे बलरामजी मारते हैं। अनेक जन्म का यह देहाभिमान इतना मजबूत हो गया है कि जीव यह समझता है कि शरीर मैं हूँ। जबकि तुम इस शरीर से पृथक हो। मनुष्य यह नहीं कहता मैं ही शरीर हूँ। वह यह कहता है कि यह मेरा शरीर है। इस शरीर से आत्मा पृथक् है। शरीर का आत्मा समझना ही देहाभिमान है। जो शरीर के सुख को अपना सुख और देह के दुःख को अपना दुःख समझता है अर्थात् शरीर को आत्मा समझता है वही राक्षस है। ''आत्मा इस शरीर से भिन्न है। आत्मा उस परमात्मा का अंश है।'' इस सिद्धान्त का चिन्तन अपने फुरसत के समय में अवश्य करो। यह सोचो कि मैं परमात्मा का अंश हूँ। मैं शरीर नहीं हूँ, बल्कि इस शरीर से भिन्न हूँ। इस देह का सुख मेरा सुख नहीं है। मैं परमात्मा का अंश हूँ। इसलिए मुझे प्रभु के चरणों में जाना है। ऐसा समझने वाला ही भगवान् की भक्ति करता है। जो शरीर को आत्मा समझता है, वह संसार-सुख में फँसा है। इस शरीर से आत्मा को पृथक् करो। जो शरीर से आत्मा को पृथक् समझकर व्यवहार करता है उसी का पाप छूटता है। वही भगवान् की भक्ति भी कर सकता है। यह देहाभिमान साधारण ज्ञान या साधारण भक्ति से नहीं छूट सकता। क्यों कि यह अनेक जन्मों से बुद्धि में दृढ़ होकर बैठा है। जिस प्रकार देहाभिमान दृढ़ है, उसी प्रकार भक्ति भी दृढ़ करो। सतत भक्ति करने की आदत डालो। बलरामजी शब्द-ब्रह्म के स्वरूप हैं। जो शब्द-ब्रह्म की उपासना करता है, उसका देहाभिमान छूट जाता है।

आज बलरामजी ने बहुत बड़े राक्षस को मारा है। श्रीकृष्ण अपने ग्वाल बालमित्रों के साथ घर लौटते हैं। लाला ने आते समय विचार किया कि कल मुझे कालिया नाग की खबर लेनी है। मेरे बड़े भाई शेषनाग के स्वरूप हैं। वे कालिया नाग के जाति-भाई हैं। मैं यदि उसको मारने जाऊँ और बड़े भाई उसका पक्ष लें तो क्या हो? लाला की ऐसी इच्छा हुई कि कल यदि बड़े भाई साथ न आएँ तो अच्छा हो। भोजन करने के बाद श्रीकृष्ण और बलराम बिछौने पर लेटे हैं। यशोदा माता उनके पास बैठी हैं। उस समय लाला ने बड़ी चतुराई से हँसना शुरू कर दिया। यशोदाजी के पूछने पर उन्होंने बताया, ''माँ, ये मेरे बड़े भाई आज गदहे के पीछे पड़ गए थे। ये गदहा मारकर आए हैं।'' लाला का यह कहना बड़े भाई को पसन्द न आया। बलरामजी ने कहा, ''माँ, वह गदहा नहीं था, बड़ा राक्षस था। मैंने उस राक्षस को मारा और सभी को फल खिलाये।'' इस पर कन्हैया ने कहा, ''नहीं, वह राक्षस नहीं था, गदहा था।'' यह बात बलरामजी को बहुत बुरी लगी। उन्होंने लाला से कहा, ''कन्हैया, अब मेरी-तेरी दोस्ती नहीं रहेगी। मैं कल तेरे साथ नहीं जाऊँगा।'' यह सुनकर लाला ने कहा, ''मुझे इससे खुशी है। मुझे कल कालिया नाग की खबर लेनी है। परसों मैं आपके पैरों पड़कर और समझाकर वहाँ ले चलूँगा।''

दूसरे दिन बलरामजी गुस्सा होकर घर रह गए। श्रीकृष्ण अपने ग्वाल बालमित्रों के साथ उस स्थान पर पहुँचे जहाँ कालिय नाग यमुना में रहता था। सब गेंद खेल रहे हैं। लाला ने आज शर्त रखी है कि जिसके हाथ से यह गेंद यमुना में जाकर गिरेगी, उसे गेंद को लाना पड़ेगा। लाला ने जान-बूझकर वह गेंद कालिय नाग की जगह पर फेंक दी और कहा कि मेरे हाथ से गेंद यमुना में गिरी है मैं उसे अन्दर जाकर ले आऊँगा। ग्वाल बालमित्र लाला को समझाते हैं, ''कन्हैया यशोदा माता ने मुझसे कहा है कि लाला को सम्हालना। मैं तुझे अन्दर नहीं जाने दूँगा। मैं तुझे सम्हाल रहा हूँ। लाला ने कहा कि तू मुझे रोकता क्यों है? ग्वालबालों ने कहा, ''कन्हैया तुझे खबर नहीं है। इसके अन्दर एक जहरीला नाग रहता है।'' लाला ने कहा कि नाग मेरा क्या बिगाड़ लेगा? मित्रों ने कहा, ''कन्हैया तू अन्दर जाए और नाग तुझे काट खाए तो?'' लाला ने कहा, ''वह मुझे काटे तो मैं उसे काटूँगा। मेरे गुरू ने मुझे नाग का मन्त्र सिखाया है। मैं किसी को काटता नहीं, यदि कोई मुझे बिना कारण सताए तो मैं उसका दिमाग ठीक कर दूँगा। यह कालिय नाग ब्रजवासियों को बहुत सताता है। मैं अन्दर जाऊँगा, तुम मेरी चिन्ता मत करो। मैं अपने मण्डल का अध्यक्ष हूँ। यदि मैं अध्यक्ष होकर अपने नियम को भंग करूँ तो दूसरा कोई नियम का पालन किस प्रकार करेगा?''

यदि घर का बड़ा आदमी अथवा मुख्य आदमी बहुत भक्ति करता हो, बहुत पवित्र जीवन गुज़ारता हो तो दूसरे को भी भक्ति करने की प्रेरणा मिलती है। आप सब लोग भी अपने बालकों में अच्छा संस्कार डालने के लिए उनके सामने खूब भक्ति कीजिए। बालक के देखते-देखते कोई भी पाप मत कीजिए।

यमुना के किनारे कदम्ब का एक पेड़ था। श्रीकृष्ण उस पर चढ़ गए और वहाँ से कूद पड़े। वे कालिया नाग के स्थान में प्रवेश करते है। मनुष्य जैसी गंध आते ही कालिय नाग क्रोध में फूँ-फूँ-फूँ करता हुआ वहाँ दौड़ आया। वह लाला को काटने लगता है। अत्यन्त क्रोध में यदि कोई बरफी काटे तो क्या हो? उससे काटने वाले का मुँह मीठा होगा, क्रोध शांत होगा। आज अमृत को जहर काटने जा रहा है। श्रीकृष्ण अमृत हैं, आनन्दमय हैं। कालिय नाग लाला को काटने दौड़ता है। लाला ने उसका जहर खींच लिया है। कालिय नाग को आश्चर्य हो रहा है कि मेरे जहर की गंध भी कोई सहन नहीं कर सकता। यह बालक कैसा है! कालिय नाग लाला को बाँधने का प्रयत्न करता है। सभी ग्वाल बाल मित्र किनारे खड़े हैं और देख रहे हैं कि कालिय नाग ने लाला को लपेट लिया है। यह देखकर सब रोने लगते हैं, व्याकुल हो गए हैं। प्रभु ने अपना हाथ ऊपर उठा दिया है और मित्रों को ढाँढस बँधाया है, ''घबड़ाना मत, मैं आता हूँ।''

प्रभु ने अपनी महिमा-शक्ति प्रकट कर दी है और कालिय नाग के बन्धन से अलग हो गये हैं। इसके बाद वे कूद कर उसके फण पर सवार हो गये हैं और उसे एड़ी से मारते हैं, थेई-थेई कर नाचते हैं। ग्वालबाल मित्र लाला को घूर-घूरकर देखते हैं। वे कहते हैं कि कन्हैया का होठ हिल रहा है, वह कोई मन्त्र बोलता होगा। ये व्रजवासी बड़े भोले हैं। ये मानते हैं कि लाला के पास जरूर कोई मन्त्र है। कालिय नाग का जहर बाहर निकल गया है। वह रुधिर की उल्टी कर रहा है। नाग पत्नियाँ आकर भगवान् को वंदन कर रही हैं, प्रभु से क्षमा माँगती हुई कह रही हैं, 'लोग हमारे पति को दुष्ट मानते हैं किन्तु हम ऐसा मानते हैं कि हमारा पति श्रेष्ठ है। हे भगवान्, दुष्टों को सजा देने के लिए आपका अवतार हुआ है। यह हमारे पति के पूर्वजन्म का कोई पुण्य होगा कि आपके चरण हमारे पति के माथे पर पड़े हैं, उसके पुण्य का परिचय देते हैं। हमारे पति दुष्ट नहीं, श्रेष्ठ हैं। आप हमें सौभाग्य का दान करें।' प्रभु ने कालिय नाग को मारा नहीं, केवल नाथा है। उन्होंने कालिय नाग को आज्ञा दी है तू यहाँ से चला जा। क्योंकि व्रजवासी और ग्वाल मित्र यहाँ जलपान करने आते हैं। तेरे जहर से यमुनाजी का जल खराब हो जाता है। तू रमणक द्वीप में जाकर रह।

श्रीकृष्ण कालिय नाग को आदेश देकर बाहर आ गए हैं और अपने ग्वालबाल मित्रों से मिले हैं। इससे सभी को आनन्द हुआ है। प्रश्न यह है कि यह कालिय नाग कौन है? कालिय नाग के तो गिने हुये फण थे, किन्तु मनुष्य के मन में अनेकानेक फण होते हैं, वे फण गिने ही नहीं जा सकते। मनुष्य को थोड़ी भी छुट्टी मिली तो वह संसार सुख का ही विचार करता है। वह सोचता है कि इतने सुख मैंने भोग लिए हैं और इतना सुख मुझे भोगना है। उसका यही विचार कालिय नाग के फण हैं। कालिय नाग के फणों में जिस प्रकार जहर हैं, उसी प्रकार मनुष्य की एक-एक इन्द्रिय में वासना का विष है। जहर तो अपने खाने वाले को एक ही बार मारता है, किन्तु यदि वासना का विष मन में रह जाए तो दूसरे जन्म में भी मारने आता है। इसलिये सतत भक्ति करो, परमात्मा के साथ प्रेम करो, इन्द्रियों में स्थित वासना का विष बाहर निकालो। इन्द्रियों में जब तक वासना का विष है, तब तक उनको भक्तिरस नहीं मिल सकता। जो जितेन्द्रिय है, वह देव की सेवा और देश की सेवा कर सकता है। जिसकी इन्द्रियों में वासना का विष है वह सेवा-भक्ति का बहाना कर सुख भोगता है सेवा और स्वार्थ ये एक दूसरे के विरोधी शब्द हैं। सेवा वह कर सता है, जिसने स्वार्थ का बलिदान किया है और जिसे यह भी इच्छा नहीं है कि लोग मुझे धन्यवाद दें। जिसे लोक-आदर की इच्छा होती है, उसका मन अशांत रहता है। प्रायः ऐसा होता है कि मनुष्य कोई अच्छा काम करे, तो यदि हजार लोग खुश होते हैं, तो दो-चार लोग बिना कारण

नाराज हो जाते हैं। इसलिये कभी यह इच्छा न रखो कि सब तुम्हें धन्यवाद ही देंगे, अच्छा ही कहेंगे। यदि तुम्हें अपने मन को शांत रखना हो तो लोगों की बातें कभी मत सुनना। यदि लोग तुम्हारी प्रशंसा करें, तो उसे सुनकर अभिमान बढ़ जाएगा। यदि लोग तुम्हारी निन्दा करें तो उसे सुनकर उनके प्रति बैर-भाव पैदा होगा। यदि लोग तुम्हारी प्रशंसा करें तो कोई लाभ नहीं है और कोई निन्दा करे तो उससे जरा भी नुकसान नहीं है। जगत् के साथ जीव का सच्चा सम्बन्ध है, जो सब प्रकार का स्वार्थ छोड़ देता है, वही अच्छी तरह देव सेवा कर सकता है और वही देश सेवा भी कर सकता है। जिसके मन में कोई स्वार्थ होता है वह सेवा का बहाना ढूँढ़ कर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। प्रायः लोग देश सेवा का बहाना कर सुख भोगते हैं, मज़ा लूटते हैं। वे लोग कालिय नाग के समान हैं।

कालिय नाग जब से यमुनाजी में आया है, तब से यमुनाजी का जल दूषित हो गया है। यमुनाजी भक्ति महारानी का स्वरूप हैं। भक्ति-संप्रदाय में जब से विलासी लोग घुस गये हैं, तब से वह बिगड़ने लगी है। प्रभु में प्रेम रखना ही भक्ति है। यदि संसार के विषयों में वैराग्य हो तो ही ईश्वर में प्रेम पैदा होता है। जिसे संसार के विषय बहुत मधुर लगते हैं, जिसे अच्छा-अच्छा खाने में मजा आता है, ऐसा मनुष्य भला भक्ति क्या करेगा? वह तो लूली-लंगड़ी से प्यार करता है। जिसे दूसरे के झगड़े बहुत पसन्द आते हैं, जिसे दूसरे की बातें सुनने में आनन्द आता है, वह भक्ति नहीं करता। जिसे भक्ति का आनन्द मिला है, उसका जीवन कुछ भिन्न प्रकार का ही होता है। ज्ञान-वैराग्य विहीन भक्ति रोती है, भक्ति-सम्प्रदाय के जितने आचार्य हुए हैं—भगवान् श्रीमाध्वाचार्य स्वामी, भगवान् श्रीरामानुजाचार्य, भगवान् श्रीवल्लभाचार्य इत्यादि उनमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति तीनों की परिपूर्णता है। इसीलिए वे भक्ति-मार्ग की स्थापना करने में सफल हुए हैं। भक्ति-मार्ग में विलासी लोग घुस जायें, तो उसे छिन्न-भिन्न बना देते हैं—

पुजारी पूजा करे, मन में राखे आँट।
बाल भोग भीतर धरे, चरणामृत दे बाँट॥

किसी के आने पर पुजारी कहता है कि चरणामृत लो, तुलसी लो यदि कोई पुजारी से मोहन भोग बाहर निकालकर बाँटने के लिए कहें तो वह कहेगा, 'यह मोहन भोग सबके चले जाने के बाद हम लोग लेंगे—मैं, मेरी पत्नी, मेरा बच्चा और मेरी बच्ची। भगवान् गरीब के मुख से भोजन ग्रहण करते हैं। भगवान् ब्राह्मण और साधु के मुख से भोजन ग्रहण करते हैं। भगवान् के हजार मुँह हैं। दूसरे को बाँटकर खाओ, अकेले मत खाओ। सूतजी सावधान करते हुए कहते हैं, जिसे इन्द्रियों

का सुख मीठा लगता है, वह अच्छी तरह भक्ति नहीं कर सकता। इन्द्रियों का सुख ही मानो दुःख है। यदि भक्ति रस का पान करना हो तो इन्द्रियों में समाया हुआ वासना का विष बाहर निकालकर फेंक दो। क्योंकि यदि इन्द्रियों में वासना का विष होगा, तो भक्ति रस टिक नहीं सकेगा। प्रभु ने कालिय नाग को मारा नहीं है, नाथा है, उसका उद्धार किया है। तुम इन्द्रियों को मारना मत, बल्कि उन्हें प्रभु के मार्ग में मोड़ देना।

प्रभु ने कालिय नाग को आज्ञा दी है कि तू रमणक द्वीप में चला जा। इन्द्रियों का रमण भक्ति रस से होता है। भोग से इन्द्रियाँ घिस जाती हैं, दुर्बल हो जाती हैं। अतः एक-एक इन्द्रिय को भक्तिरस का पान कराओ और इन्द्रियों को प्रभु के मार्ग में मोड़ो। ऐसे विरक्त भजनानन्दी सन्तों का संग करो जिनको भक्ति में ही आनन्द आता है और जिसे अधिक परोपकार की झंझट में पड़ने की इच्छा नहीं होती। जिसे भगवान् के चरणों तक पहुँचना है, उसे अधिक परोपकार के झंझट में नहीं पड़ना है। क्योंकि परोपकार के झंझट में अधिक पड़ने से भगवान् भूल जाता है, अभिमान बढ़ जाता है। तुम्हें ऐसे सन्तों के सत्संग से भक्ति का रंग प्राप्त होगा, जो सतत भक्ति करते हैं। सत्संग में इन्द्रियों का रमण होता है। तुम ऐसी सात्विक भूमि में रहना जहाँ महात्मा लोग विराजते हैं। क्योंकि विलासी लोगों के संग में रहकर भक्ति करना अशक्य है।

एक बार वन में चारों ओर दावाग्नि लग गई। ग्वालबाल मित्र घबड़ा गए। लाला ने सबकी आँखें बन्द कराईं। उन्होंने अपना विराट स्वरूप धारण कर सारी दावाग्नि पी ली। संसार दावाग्नि अनेक प्रकार से जीव को जलाने के लिए आती है दरिद्रता, सन्तान का अभाव, अनारोग्य, झगड़ा। जब-जब यह दावाग्नि तुमको जलाने आए तब-तब आँखें बन्द करो, जगत् का सम्बन्ध छोड़कर परमात्मा के साथ मन से सम्बन्ध जोड़ दो। संसार के विषयों से भी अपनी आँखें हटा लो अथवा उनकी तरफ से आँखें बन्द कर लो और परमात्मा का स्मरण-कीर्तन करो। यदि जीव संसार का सम्बन्ध छोड़ कर परमात्मा के स्मरण में लीन हो जाए, तो ही वह संसार की दावाग्नि से बच सकता है। भक्ति वही कर सकता जो यह समझता है कि भगवान् मेरे हैं और मैं भगवान् का हूँ। जो ऐसा समझता है कि मैं किसी स्त्री का हूँ अथवा किसी पुरुष का हूँ, वह विलासी जीव अच्छी तरह भक्ति नहीं कर सकता। भक्ति का आरम्भ तभी होता है, जब ऐसा भाव दृढ़ होता है कि मैं भगवान् का हूँ। भक्ति ज़ब बढ़ती है तब यह अनुभव होने लगता है कि भगवान् मेरे हैं, परमात्मा मेरे हैं। उसी मनुष्य की संसार दावाग्नि शान्त होती है जो ऐसा भाव रखकर सतत सेवा-स्मरण में तन्मय रहता है।

६४- वेणु गीत

इसके बाद ऋतुओं का वर्णन किया गया है। गोपियाँ लाला की बाँसुरी सुनकर आपस में बातें करती है। उसी का वर्णन वेणुगीत कहलाता है। भक्ति के बढ़ने पर दूर-दर्शन और दूर श्रवण दो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। आज तक गोपियाँ लाला के दर्शन की इच्छा से यशोदा माता के घर जाती थीं और लाला की झाँकी प्राप्त करती थीं। अब गोपियाँ का प्रेम इतना बढ़ गया है कि उनके घर में ही श्रीकृष्ण का दर्शन होता है। जो मन्दिर में जाकर भगवान् के दर्शन करता है, वह साधारण वैष्णव है। जिनको अपने रहने के स्थान पर ही भगवान् दिखाई देता है, वे सच्चे वैष्णव हैं। गोपियों को रास्ता चलते-चलते भी श्रीकृष्ण दिखाई देते हैं, उनके घर में भी श्रीकृष्ण के दर्शन होते हैं, उनकी बाँसुरी का नाद सुनाई देता है। गोपियों का ऐसा नियम है कि वे अपने घर का काम-काज पूरा करने के बाद शान्ति से बैठकर श्रीकृष्ण का ध्यान करती हैं, प्रेम से प्रभु नाम का कीर्तन करती हैं। वे अपने घर का उतना ही काम करती हैं, जिसे किये बिना नहीं चल सकता। अपनी प्रवृत्ति अधिक मत बढ़ाना। क्योंकि प्रवृत्ति और भक्ति में विरोध है। प्रवृत्ति उतनी ही करो, जिसके बिना काम न चल सके। जितनी बोलने की जरूरत हो, उतना ही बोलना। जिससे बोलने की जरूरत न हो, उससे मत बोलना। अधिक बोलने से भक्ति का विनाश होता है। जिसे विचारने की अधिक आवश्यकता है, उसे ही विचारो जिसे विचारने से जीवन में कोई लाभ नहीं, भक्ति बढ़ती नहीं है, उसे मत विचारो।

एक भाई कह रहे थे कि कौए के कितने दाँत होते हैं, यह हमें जानना है। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि कौए के दाँतों की संख्या जानकर क्या मिलने वाला है? लाभ क्या है? ऐसे विचार मत करो जिनसे भक्ति-प्रेम बढ़ते न हों। जिसे देखने की जरूरत हो, उसे ही देखो, जो विचारने की जरूरत हो, उसे ही विचारो। जो बोलने की जरूरत हो, वही बोलो। वृथा भाषण, वृथा चिन्तन और वृथा कथन से भक्ति में विक्षेप पड़ता है। कुछ लोगों को ऐसी कुटेव होती है कि घर का काम पूरा हो जाने पर बातचीत करने के लिए पड़ोसी के घर चले जाते हैं। अथवा बम्बई में क्या हुआ? समाचार पत्रों में क्या छपा है? अथवा जगत् भर की बातें जानने से क्या लाभ? कुछ लोगों को अपने पड़ोसी के साथ बात करने से तृप्ति नहीं होती। इसीलिए वे किसी रास्ता-चलने वाले को बुलाते हैं और उन्हें बैठाते हैं, जय श्रीकृष्ण करते हैं। फिर थोड़ी बात करने के लिए कहते हैं। "मेरा तो सत्यानाश हुआ है। तुम मेरे पास आओ, तो तुम्हारा भी सत्यानाश करूँ।" इस प्रकार वृथा भाषण पाप है। वृथा चिंतन उससे बड़ा पाप है। गोपियाँ भगवान् की आज्ञा मानकर ही घर का काम

करती हैं वे अपने घर का काम करते-करते भी लाला का स्मरण करती हैं। वे अपने घर का काम पूरा करने के बाद लाला की जो बातें करती हैं, उसे ही महापुरुष लोग वेणुगीत कहते हैं।

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननु विवेशयतोर्वयस्यैः।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्ष मोक्षम्॥

(१०-२१-७)

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम्।
भङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः॥

(१०-२१-९)

श्रीकृष्ण गिरिराज में बाँसुरी बजाते हैं। गोपियों के घर पर सुनाई देती है। गोपियाँ लाला के बारे में परस्पर बातें करती हैं, ''सखी, देख तो जरा कन्हैया बाँसुरी बजा रहा है। यह बाँसुरी बड़ी भाग्यशाली है। यह सारे दिन उनके हाथ में रहती है। जो सारे दिन श्रीकृष्ण का स्पर्श करता होगा, उसे कितना आनन्द मिलता होगा! मैंने सुना है कि वे जब भोजन करने बैठते हैं, तब बाँसुरी को कमर में बाँध लेते हैं। अरी सखी, मैं तुझसे क्या कहूँ? मेरे श्रीबालकृष्णलाल बाँसुरी को लेकर बिछौने पर सोते हैं। उन्हें बाँसुरी के बिना नींद नहीं आती। जो परमात्मा के साथ सोता होगा, उसे कितना आनन्द आता होगा। यह बाँसुरी तो लाला की रानी बन गई है। इसने बहुत पुण्य किया होगा! जिसके कारण परमात्मा ने इसे अपना लिया है। इसे परमात्मा का नित्य संयोग प्राप्त है। अरी सखी, मुझे भी प्रभु से विवाह करना है, श्रीकृष्ण के साथ एकाकार होना है।'' गोपी ने बाँसुरी से पूछा है, अरी बाँसुरी तूने क्या पुण्य किया है कि भगवान् को तेरे बिना कुछ नहीं सुहाता? भगवान् द्वारा तुझे अपनाए जाने का कारण क्या है? अयं वेणुः कुशालं किं आचरन्–

बाँसुरी ने कहा, ''मैंने बड़ी तपश्चर्या की है। मैंने बड़े-बड़े दुःख सहे हैं।'' जो मन को शान्त रखकर दुःख सहन करता है, वह भगवान् को बहुत भाता है। तुम जितना ही अधिक दुःख सहन करोगे, उतने ही अधिक सुखी बनोगे। जो मन को शान्त रखकर दुःख सहन करता है, उस जीव पर भगवान् जल्दी कृपा करते हैं। बाँसुरी ने कहा, ''मैंने धूप सहन की है, ठंडी सहन की है, बरसात सहन की है। मैं तुमसे अधिक क्या कहूँ? लोगों ने मेरे शरीर में सात छेद किये हैं। उसे भी मैंने चुपचाप सहन किया है। इसीलिए मैं अपने भगवान् को भाती हूँ। जो गम खाता है, वह मालिक को प्रिय लगता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि कोई उनकी जगह पर बैठ जाए, तो वह उनकी आँखों में पाँच दस मिनट खटकता है। मनुष्य गम नहीं खाता। जो मन शान्त रखकर गम

खाता है, दुःख सहन करता है, उसे भगवान् अपना लेते हैं। मुझमें अनेक सद्‌गुण हैं, एक भी गाँठ नहीं है। इसीलिए मैं भगवान् को बहुत प्रिय लगती हूँ।''

उपनिषदों में कहा गया है कि वासना ही ग्रन्थि है, गाँठ है। जिसके अन्दर वासना की गाँठ होती है, वह भगवान् को प्रिय नहीं होता।

बाँसुरी कहती है, ''मैं अन्दर से पोली हूँ। जिसका हृदय मेरे जैसा पोला है, वह प्रभु को प्रिय लगता है।'' तुम अपनी आँखें बन्द करो, अपने हृदय पर हाथ रखकर देखो कि तुम्हारा हृदय पोला है, या उसमें कोई कूड़ा कचरा भरा है? लोग जब बैठते हैं, तब चारों ओर देख लेते हैं कि कहीं यहाँ कूड़ा कचरा तो नहीं है? यदि कूड़ा कचरा होगा, तो मेरा कपड़ा खराब होगा। तो जिस हृदय में भगवान् का आगमन कराना है, उसमें यदि कचरा पड़ा होगा, तो भगवान् वहाँ कैसे बिराजेंगे? यदि कोई तुम्हारे लिए खराब शब्द बोले, तो तुम उसे भूल जाओ। उसे कभी अपने मन में स्थान मत दो। जिसके मन में कर्कश वाणी का कचरा भरा हैं, उसमें भगवान् कभी भी नहीं बिराजेंगे।

बाँसुरी कहती है, ''मैं कभी अकेली नहीं बोलती मैं अपनी इच्छा से भी नहीं बोलती। जब मेरे मालिक को बोलने की इच्छा होती है, तब मैं बोलती हूँ। तुमको भी जब बोलना हो तो ठाकुरजी की ही इच्छा के अनुसार बोलना। क्या तुम जब बात करते हो, तब भगवान् याद आता है? परमात्मा का स्मरण करते-करते बोलने की आदत डालो। बाँसुरी ने कहा कि मेरे मालिक को जो पसन्द है, वही मैं बोलती हूँ, उनको जो ध्वनि निकालनी हो, वही निकालती हूँ। मैं कभी अकेली नहीं बोलती। मनुष्य जब अकेला बैठता है, तब वह अपने मन से बात करता है, ''यह अच्छा है, यह खराब है। यह जो हुआ है, बहुत खराब, ऐसा होना चाहिए–इत्यादि।''

मनुष्य जब अकेला बैठता है, तब भी बोलता है। लोग तन को आराम देते हैं। तुम मन से एक अक्षर भी बोले बिना शान्ति से बैठो। जो मन से न बोले, उसे मौन कहते हैं। मन के बोलने पर मौन भंग होता है। कुछ लोग जीभ से न बोलकर मन से बोलते हैं। वह मौन सच्चा मौन नहीं है। जब मन एक भी अक्षर बोलता नहीं और संसार-चिन्तन छोड़ देता है, तब उसकी शक्ति बढ़ती है। कदाचित् आप यह कहें कि मैं तो कथा में मौन रहता हूँ, तीन-चार घण्टे बाद बोलता हूँ। यह सच है कि आप कथा के समय जीभ से नहीं बोलते; किन्तु कभी-कभी आपका मन बोलता है, जो मुझे भी सुनाई देता है। कितने लोग कथा में बैठे-बैठे मन से बोलते हैं कि आज गोवर्धन-लीला है इस लिए सात तो बजेगा ही। महाराज यदि थोड़ी जल्दी कथा पूरी कर दें, तो बहुत अच्छा है। मनुष्य मन की उपेक्षा जीभ से अधिक नहीं बोलता। जो मन से अधिक बोलता है, उसकी शक्ति

नष्ट होती है। यदि तुम अपनी शक्ति का संग्रह करो, तो सुखी बनोगे। बहुत सुख है शक्ति के संग्रह मैं और शक्ति के विनाश में बहुत दुःख है।

बाँसुरी ने कहा कि मैं कभी अकेली नहीं बोलती। जब मेरे प्रभु की प्रेरणा होती है, तभी मैं बोलती हूँ और ऐसा बोलती हूँ कि सुनने वाला डोल उठता है। मेरा शब्द सुनकर नाग भी डोलने लगता है और हिरन भी तन्मय हो जाता है। नाग के फण में जहर है और हिरन की नाभि में कस्तूरी है। मैं इस प्रकार विवेक से बोलती हूँ कि सज्जन-दुर्जन सभी को सुख मिलता है। तुम भी बोलो, तो ऐसा बोलो कि सुनने वाले का हृदय डोल उठे। मधुर बोलो और वाणी में विनम्रता रखो। कुछ लोग सच तो बोलते हैं, किन्तु बहुत जोर से और ऊँची आवाज से बोलते हैं। उनकी वाणी सुनने वाले को ऐसा लगता है कि मानो वे अपमान कर रहे हों बहुत ऊँचे स्वर से नहीं बोलना चाहिए।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्–सुनने वाले के कान को प्रिय लगे ऐसा बोलो।

कबीरदास महाराज के दो शिष्य थे। एक शिष्य किसी गृहस्थ के दरवाजे पर जाकर बोला, 'मैया–साधु को भिक्षा दे।' घर में लक्ष्मी जैसी गृहिणी ने बाहर आकर देखा और विचार किया कि साधु महाराज को एक मुट्ठी चावल देने की अपेक्षा भोजन करा दूँ तो हमारे यहाँ कुछ नुकसान नहीं है। उसने साधु महाराज को प्रेम से भोजन कराया। वे इससे खूब सन्तुष्ट हुए। उसने अपने गुरु भाई को सारी बात बता दी कि इस गली में पाँचवाँ घर है, लक्ष्मी जैसी स्त्री है। उसने मुझे भोजन कराया। तू जाए तो तुमको भी भोजन कराएगी। दूसरा शिष्य अधिक चालाक था। उसने सोचा कि मेरे गुरु भाई ने 'मैया-मैया भिक्षा दे।' ऐसा कहा है। यदि मैं भी ऐसा ही कहूँ तो मेरी चतुराई किस काम की? वह उस गृहस्थ के घर आकर बोला, 'ऐ मेरे बाप की औरत, तू बाहर आकर हमको भिक्षा दे।' घर की लक्ष्मी हाथ में डण्डा लेकर आई और बोली; 'महाराज तुम क्या बोलते हो? क्या तुमको कुछ होश है?'

'मैया' और 'मेरे बाप की औरत' में क्या अन्तर है? फिर भी 'मैया' शब्द कान को कितना मधुर लगता है! और 'मेरे बाप की औरत' यह कान को कितना कर्कश लगता है! तात्पर्य यह है कि सच बोलो, मधुर बोलो। बाँसुरी बहुत मधुर बोलती है। इसलिए वह परमात्मा को बहुत भाती है। बाँसुरी अपनी इच्छा से नहीं बोलती, प्रभु की प्रेरणा होने पर ही बोलती है।

वेणु=व+ई+णु। व=विषयानन्द, इ=ब्रह्मानन्द, णु=तुच्छ। विषयानन्द और ब्रह्मानन्द ये दोनों जिसके सामने तुच्छ हैं, उसे वेणु कहते हैं। ये दोनों आनन्द इकलौते जैसे किसी एक को ही मिलते हैं किन्तु बाँसुरी का आनन्द सभी को मिलता है।

एक गोपी कहती है, अरी सखी तू जरा देख तो, जब कन्हैया बाँसुरी बजाता है तब ये पेड़ भी खुश हो जाते हैं और इनमें से मधु की धारा बहने लगती है।

अश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्थाः

लाला की बाँसुरी जड़ को भी चैतन्य बना देती है। ये वृक्ष यह मानते हैं कि लाला के हाथ में जो बाँसुरी है वह बाँस की पुत्री है। बाँस एक वृक्ष है, मैं भी वृक्ष हूँ। मेरे जाति बन्धु की कन्या परमात्मा के साथ ब्याही गई है। इससे वृन्दावन के वृक्ष भी लाला से अपना नाता-रिश्ता जोड़ते हैं। वे कहते हैं कि कन्हैया हमारा जामाता या दामाद है। इसी प्रकार तुम भी लाला से अपना नाता-रिश्ता जोड़ लो। व्यवहार में भी देखा जाता है कि स्वार्थ होने पर लोग किसी बड़े आदमी के साथ अपना दूर-दूर का रिश्ता खोज निकालते हैं। तुम भी लाला के साथ रिश्ता जोड़ो। जीव जब संसार का सम्बन्ध छोड़ता है, तब बहुत घबराता है। यदि परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित कर ले तो जीव को अन्तकाल में शान्ति मिलती है। ईश्वर के साथ सम्बन्ध रखने के लिये यदि वह सोच ले कि मैं भगवान् का दास हूँ, भगवान् मेरा मालिक हैं। मैं प्रभु के धाम में जाने वाला हूँ। तो मृत्यु सुधरती है। जो परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ता है, अन्तकाल में भगवान् उसे लेने के लिए आते हैं।

श्री श्रीधर स्वामी ने अपनी टीका में लिखा है कि वेणुगीत में बोलने वाली गोपी भिन्न है। प्रत्येक श्लोक में वक्ता बदलता रहता है। इसलिए एक श्लोक का दूसरे श्लोक से सम्बन्ध नहीं होता। एक गोपी ने कहा है, सखी मैं तुझसे क्या बताऊँ? इस वृन्दावन की हिरनियाँ मेरी अपेक्षा अधिक भाग्यशाली है।

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम्।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः॥

(१०-२१-११)

ये हिरनियाँ आँख से श्रीकृष्ण के दर्शन करती हैं और कान से बाँसुरी सुनती हैं। ये जब दर्शन करती हैं तब इनकी पलकें भी नहीं गिरतीं, टकटकी लगाकर देखती हैं ये दर्शन में कितनी तन्मय हो गई हैं! अरी सखी! ये हिरणियाँ बहुत भाग्यशाली हैं। क्योंकि जब ये दर्शन करने जाती हैं, तब अकेली नहीं जाती हैं। अपने पति को समझाकर साथ ले जाती हैं।

यदि पत्नी बहुत लायक हो तो अपने पति को सुधार सकती है, किन्तु स्त्री लायक न हो तो पति उसे नहीं सुधार सकता। ये हिरनियाँ अपने पति को समझाती हैं कि तुम भी दर्शन करने चलो। पति-पत्नी का पवित्र सम्बन्ध परमात्मा के लिए ही है। जो पति को प्रेम से समझाकर पाप

करने से रोकती है, पति को प्रभु के मार्ग में लगाती है, जो भक्ति में बहुत साथ देती है, वही पत्नी है। जो पति को भोग-विलास में फँसाती है वह शत्रु है। ये हिरणियाँ अपने पति को समझाकर साथ ले जाती हैं। तू यह तो देख कि पति-पत्नी आज लाला के दर्शन में कितने तन्मय बन गए हैं! ये हिरनियाँ जब लाला की बाँसुरी सुनती हैं, तब उन्हें बड़ा आनन्द आता है। लाला की बाँसुरी सुनकर इनमें प्रेम जागता है। प्रेम की एक यह रीति है कि जिसमें यह जागता है, उसे कुछ लेने की इच्छा नहीं होती। प्रेम में समर्पण की भावना होती है। लाला की यह बाँसुरी सुनने के बाद हिरणियों की यह इच्छा होती है कि मैं इनको कुछ भेंट दूँ। वे सोचती है कि क्या भेंट दूँ? ये हिरणियाँ श्रीकृष्ण को अपना नेत्र-कमल भेंट देती हैं। आँख की भेंट देने के योग्य न कोई पुरुष है, न कोई स्त्री है। यदि आँख भेंट लेने लायक कोई है, तो वह पुरुषोत्तम परमात्मा श्रीकृष्ण हैं। भगवान् को अपनी आँख अर्पित करो। कदाचित तुमको यह शंका होगी कि महाराज क्या कह रहे हैं? संसार को आँख तो देनी ही पड़ती है। आँख दिये बिना कोई काम नहीं होता। वास्तव में सन्त लोग संसार को देखते हैं, किन्तु उपेक्षा भाव से देखते हैं। आप घर से यहाँ पर आए हैं तो रास्ते में पड़ा हुआ कूड़ा-कचरा भी आँख को दिखाई दिया। आप कचरे को उपेक्षा भाव से देखते हैं। इस समय वह आपको याद नहीं आता। दृष्टि दो प्रकार की होती है—अपेक्षात्मक और उपेक्षात्मक। जो जगत को उपेक्षा भाव से देखता है, वह सन्त है। सन्त वह है जो भगवान् में अपेक्षा दृष्टि रखता है।

गोपी कहती है, 'अरी सखी! मैं तो यह मानती हूँ कि ये वृन्दावन की हिरणियाँ भी मुझसे बहुत श्रेष्ठ हैं।' दूसरी गोपी ने पूछा कि अरी सखी! तू ऐसा क्यों कहती है? कुछ भी हो आखिर यह हिरणी तो पशु है और हम मनुष्य हैं। पशु की अपेक्षा मनुष्य श्रेष्ठ समझा जाता है। यह सुनकर पहली गोपी कहती है, 'सखी! यह मेरी अपनी बात है, तू किसी से कहना मत। मैं इन हिरणियों को अपने से श्रेष्ठ इसलिए मानती हूँ कि इनको जो पति मिला है, वह भक्ति में इन्हें बहुत साथ देता है।' यदि पति-पत्नी एक विचार लेकर भक्ति करें, तो भगवान् जल्दी कृपा करें। यदि पति-पत्नी का लक्ष्य एक न हो, एक पैसा चाहता हो और दूसरे को भगवान् के दर्शन की इच्छा हो, परस्पर मतभेद हो तो वहाँ किसी को शाँति नहीं मिलेगी। मेरे घर में मुझे जो पतिदेव मिले हैं, उन्हें ठाकुरजी से थोड़ा प्रेम तो है, वे सबेरे आधे घण्टे तक थोड़ी भक्ति भी करते हैं, किन्तु बाद में उन्हें भगवान् की भक्ति करने की बिल्कुल इच्छा नहीं होती। अरी सखी! मैं अधिक भक्ति करूँ यह मेरे पतिदेव को पसन्द नहीं। मुझ से कहते हैं कि चलो घूमने चलें। मैं आज तक घूमती ही तो रही, किन्तु मुझे शान्ति नहीं मिली। मुझे अब एक जगह बैठकर लाला का ध्यान करने में, स्मरण करने में ही आनन्द आता है। मुझे अब इधर-उधर भटकना अच्छा नहीं लगता। मुझे बहुत बोलने

की इच्छा नहीं होती। यदि मैं बहुत भक्ति करूँ तो मेरे पतिदेव कभी-कभी घर में झगड़ा करते हैं, क्रोध करते हैं। मुझे जो पति मिले हैं, वे मेरी भक्ति में बहुत अनुकूल नहीं हैं। ये हिरणियों के पति इन्हें भक्ति में बहुत साथ देते हैं। इसलिए मैं ऐसा मानती हूँ कि ये हिरणियाँ मुझसे श्रेष्ठ हैं।

धन्या!.........मझे ऐसा पति मिला होता तो इस जन्म में मेरा उद्धार हुआ होता। ये हिरणियाँ मुझसे बहुत ही श्रेष्ठ हैं।

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः।
शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः।।
(१०-२१-१३)

एक गोपी ने कहा, 'सखी तू जरा देख तो, मेरा कन्हैया कदम्ब वृक्ष पर शोभित हो रहा है और वहाँ से जब बाँसुरी बजाता है तब गायें पागल बन जाती हैं। तू अच्छी तरह दर्शन कर। गायें खली खा रही है। उनके मुँह में खली है, किन्तु लाला की बाँसुरी कान में पड़ते ही उन्हें खली खाने का ध्यान नहीं रहता। उनके मुंह से खली नीचे गिर पड़ती है। इन गायों के विचित्र-विचित्र नाम हैं। कुछ गायों के नदी के नाम—गंगा, गोदावरी, यमुना, कावेरी, नर्मदा, सरयू इत्यादि हैं। कुछ गायें लताओं के नाम की हैं—वासन्ती, मधुमालती, चम्पकलता इत्यादि। कुछ गायों के नाम केसरगन्धा, कर्पूरगन्धा, कस्तूरीगन्धा हैं। जिस गाय के दूध से केसर का रंग और उसकी सुगन्ध प्राप्त हो उसका नाम है केसरगन्धा। इसके दूध में केसर डालने की जरूरत नहीं पड़ती। कन्हैया बाँसुरी में से एक-एक गाय का नाम लेकर बुलाता है। जब कन्हैया नाम लेकर बुलाता है, तब इन्हें बहुत आनन्द आता है। ये गायें मन में यह सोचकर कि मेरा मालिक मुझे बुलाता है। हुम-हुम करती हुई, दौड़ती हुई आती हैं। ये कदम्ब को घेर कर खड़ी हो जाती हैं। ये अपना मुँह ऊपर उठाती हैं और देखती हैं। अरी सखी! वास्तव में ये देखती नहीं, बल्कि अपनी आँखों द्वारा श्रीकृष्ण को अन्दर उतारती हैं। और मन से उनका आलिंगन करती हैं। इसलिए इनको बहुत आनन्द आता है। जो परमात्मा से मिलता है उसको कितना आनन्द मिलता होगा? गायों के बीच खड़े गोपालकृष्ण के दर्शन से बहुत आनन्द आता है। मानो ये गायें लाला की बाँसुरी सुनने के बाद उनसे मिलने जाती हैं। मेरे हृदय में भी कभी-कभी ऐसा प्रेम उभर आता है कि दौड़कर जाऊँ और लाला का आलिंगन करूँ। जिस प्रकार ये गायें दौड़ती हैं, उसी प्रकार मैं भी प्रेम में पागल बनकर लाला के पीछे-पीछे दौड़ती जाती हूँ। मुझे उनसे मिलने की तीव्र इच्छा होती है, किन्तु बाद में याद आता है कि मैं तो स्त्री हूँ। लोग मुझे क्या कहेंगे। मुझे जब स्त्रीत्व का स्मरण हो आता है, मुझे जब लोकलज्जा का ख्याल आता है तब मैं रास्ते में ही बैठ जाती हूँ। मेरे मन में यह बात पैदा होती है कि मुझे प्रभु

ने गाय बनाया होता तो कितना अच्छा होता! मैं स्त्री होने के कारण लाला से मिल नहीं सकती।

अभी इस गोपी को यह याद आता है कि मैं स्त्री हूँ। यह गोपी जब श्रीकृष्ण-प्रेम में अधीर बनकर अपने स्त्रीत्व को भूल जाएगी, तब भगवान् इसे रास में बुलायेंगे। जिसको यह याद आता है कि मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, उसकी बुद्धि में काम बैठा होता है। काम श्रीकृष्ण-मिलन में विघ्न पैदा करता है। भगवान् की भक्ति इस प्रकार करो कि तुम्हें यह न याद आये कि मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ। परमात्मा के स्मरण में जो स्त्रीत्व-पुरुषत्व भूल जाता है। जो पूर्ण निष्काम बन जाता है, वह रासलीला में प्रवेश पा सकता है।

गायों की दशा जैसी ही दशा उनके बछड़ों की भी है। बछड़े स्तन-पान करते हैं। उनके मुँह में दूध होता है, किन्तु लाला की बाँसुरी सुनते ही उन्हें इतना आनन्द आता है कि मुँह का दूध गले में उतारने अथवा पी जाने का ख्याल नहीं रहता। इसलिए उनके मुँह में से दूध की धारा बहती है। एक गोपी कहती है, अरी सखी! गायों का प्रेम तो ठीक है, वृन्दावन के ये पक्षी भी बहुत प्रेम रखते हैं।

प्रायो बताम्ब बिहगा मुनयो वनेऽस्मिन्कृष्णोक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम्।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः॥

(१०-२१-१४)

पक्षियों का स्वभाव है कि वे सायंकाल कोलाहल करते हैं। जब कन्हैया बाँसुरी बजाता है, तब वृन्दावन के पक्षी एक शब्द भी नहीं बोलते, ये मौन बनकर लाला की बाँसुरी सुनते हैं। ये जिस प्रकार तन्मय हो जाते हैं! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ये पूर्वजन्म के ऋषि हैं और इन्हें यमुनातट पर मौन रहकर भक्ति करने की आदत पड़ गई है। वृन्दावन के पक्षी मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। तू जरा देख तो। अरी सखी! कितने ऐसे पक्षी भी हैं, प्यास लगती है, वे यमुना तट पर रहते हैं, किन्तु पानी पीने के लिए नीचे उतरते ही नहीं। गोपी पक्षी से पूछती है, "प्यास लगने पर यमुनाजी के किनारे रहने वाला पक्षी जलपान करने के लिए नीचे क्यों नहीं आता।" पहली गोपी जवाब देती है, 'इसका कारण यह है कि वृन्दावन के पक्षी राधाकृष्ण-राधाकृष्ण बोलते हैं। इन पक्षियों को वृक्ष में वृक्ष के पत्ते में श्रीकृष्ण का दर्शन होता है। इन्हें दर्शन में ऐसा आनन्द आता है कि उसे छोड़ पानी पीने कौन जाए? श्रीकृष्ण का वियोग ही महान दुःख है। अरी सखी! मैंने ऐसा सुना है कि अगर वहाँ कोई वैष्णव आए और बहुत प्रेम से राधाकृष्ण-राधाकृष्ण, राधाकृष्ण बोले, तो ही ये पक्षी जलपान करने नीचे उतरते हैं। ये पानी पीते-पीते भी लाला को देखते हैं, उसका स्मरण करते हैं।

यह बात गोपियों में हो रही है, उसी समय यशोदाजी वहाँ पधारती हैं। उन्होंने पूछा कि अरी सखियों, तुम किसकी बात कर रही हो? गोपियाँ कहती हैं, "माँ हमारे गाँव में तो एक ही विषय है–श्रीकृष्ण। हम सब हमारे लाला की ही बात कर रही हैं। हमें लाला की बात छोड़कर कुछ भाता ही नहीं।" यशोदाजी ने कहा, "लाला की तो बात क्या करें? धूप बहुत पड़ती है, किन्तु लाला के पैर में जूते नहीं हैं, माथे पर छतरी नहीं है, इससे उसको कितनी तकलीफ होती होगी? वह गायों के लिए कितना दुःख सहन करता है। मैं हर रोज कहती हूँ, किन्तु वह मानता नहीं। वह कहता है कि मैं गायों का नौकर हूँ। मुझे बहुत चिन्ता होती है।" तब एक गोपी बोली, "माँ, तुम जरा भी चिन्ता मत करना। लाला का एक खास मित्र है। वह उसके माथे पर छतरी लगाकर चलता है।" माता यशोदा बहुत खुश होती हैं और कहती हैं, मेरे लाला के माथे पर छतरी लगा के चलने वाला कौन है? आज घर लौटने पर तू मुझे उसको दिखाना। मैं उसे भोजन कराऊँगी वह मेरे लाला का बहुत ध्यान रखता है, इसलिए मुझे उसका सम्मान करना है। उस समय गोपी कहती है, माँ लाला का वह मित्र ऐसा है जो कभी घर नहीं आता!" यशोदाजी को आश्चर्य होता है कि वह मित्र कैसा है जो कभी घर आता ही नहीं। तब गोपी कहती है–

दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून् सहरामगोपैः सञ्चारयन्तमनु वेणुमुदीरयन्तम्।
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम्॥

(१०-२१-१६)

यह मेघराज है। यही लाला का मित्र है। मेघराज यह मानता है कि मेरा और लाला का रंग एक जैसा है। माँ! मैंने अनेक बार देखा है कि भले ही धूप हो तो भी मेरा कन्हैया गायों को लेकर जहाँ विराजता है, उस जगह छाया होती है। लाला को गरमी से जरा भी परेशानी न हो इसका ख्याल वह बादल रखता है। माँ, कन्हैया यदि चलने लगे, तो आकाश में मेघ भी चलने लगता है। तुम्हारा कन्हैया सभी को प्यारा लगता है। सभी तुम्हारे लाला को सम्हालते हैं, सभी उसकी सेवा करते हैं। यशोदाजी ने कहा, अरी सखी! तू कहती है कि मेघराज छाया करता हुआ चलता है, यह ठीक है; किन्तु लाला के पैर में जूता नहीं होता इसलिए उसके पैर में तकलीफ तो होती ही होगी। दूसरी गोपी कहती है–"माँ! उसके पैरों में जरा भी तकलीफ नहीं होती।

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत् पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः॥

(१०-२१-१८)

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां, निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम्॥

(१०-२१-१९)

यह गिरिराज है। कन्हैया जहाँ चरण रखता है वहाँ यह मक्खन से भी कोमल बन जाता है। श्रीकृष्ण के चरण-स्पर्श से उसे ऐसा ही आनन्द मिलता है। वह जानता है कि लाला के चरण अत्यन्त कोमल हैं, लाला को जरा भी परिश्रम न हो इसका वह बहुत ख्याल रखता है। यशोदाजी कहती हैं कि सखी! तू यह क्या कह रही है? यदि कोई मक्खन डाले तो उसमें गड्ढा पड़ जाता है। इतने सब ग्वाले और गाय गिरिराज पर फिरें और गिरिराज मक्खन से भी कोमल हो तो उस पर कितने गड्ढे पड़ें? गोपी कहती है, 'माँ! तुम्हारी शंका ठीक है, किन्तु तुम्हारे लाला के पास एक ऐसी दवा है, जिससे सारे गड्ढे भर जाते हैं। सायंकाल जब कन्हैया नीचे उतरता है, तब गिरिराज महाराज थोड़ा अकड़ जाते हैं। क्योंकि उनको सारे दिन श्रीकृष्ण के चरण स्पर्श का आनन्द मिला था। उनको इस बात का आनन्द होता है कि ये अब कल सबेरे आयेंगे और मुझे सारी रात श्रीकृष्ण का वियोग सहन करना पड़ेगा। श्रीकृष्ण के वियोग समान कोई दुःख नहीं है। माँ! लाला का यह नियम है कि गिरिराज से उतरने के बाद वे एकबार बड़े प्रेम से देखते हैं। माँ! लाला की आँखों में तो अमृत है। कन्हैया गिरिराज को देखते-देखते प्रेम से ऐसी बाँसुरी बजाता है, ऐसी तान छेड़ता है कि उसकी बाँसुरी सुनकर उनको अतिशय आनन्द होता है। गिरिराज महाराज अत्यन्त आनन्द से फूल उठते हैं। इससे उनके सारे गड्ढे भर जाते हैं।

वेणोः मधुरसूरया गिरिराजस्य रंध्रान् पूरयन्

लाला की बाँसुरी सुनकर गिरिराज बहुत आनन्दित होता है, उनके शरीर में रोमाँच हो उठता है।

यशोदाजी ने कहा 'अरे सखी! मैं लाला से रोज कहती हूँ कि जल्दी आना, किन्तु वह अँधेरा हो जाने पर आता है। घर में तीन बजने के बाद मुझे कुछ सूझता नहीं, उसे देखे बिना मेरा मन मानता ही नहीं, मैं तो बाहर जाकर पागल जैसी बैठ जाती हूँ और उसकी प्रतीक्षा करती हूँ। लाला को आने में बहुत देर हो जाती है।' तब गोपी कहती है माँ! वे तो वहाँ से जल्दी चल पड़ते हैं, किन्तु रास्ते में बहुत देर हो जाती है। माँ! इस गोकुल के व्रजवासियों को विश्वास हो गया है कि तुम्हारा कन्हैया परमात्मा है। माँ! तुम्हारे देखते-देखते कोई कन्हैया को वन्दन नहीं करता। यशोदा माँ देखे और कोई उसके लाला को वन्दन करे, यह उन्हें अच्छा नहीं लगता। वे कहती हैं, 'यह मेरा पुत्र है। इसके पैर क्यों पड़ते हो? यह तुम्हारा बालक है। तुम इसे आशीर्वाद दो।' गोपियाँ कहती हैं, मेरी सासुजी का एक नियम है कि जिस रास्ते श्रीकृष्ण आने वाले हों, उस रास्ते पर

खड़ी रहती हैं। उस रास्ते के एक ओर बूढ़ी स्त्रियाँ खड़ी रहती हैं और दूसरी ओर बूढ़े लोग खड़े रहते हैं। सबेरे जब वे गाय लेकर जाते हैं तब उन्हें उतावली होती है। वे दौड़ते हुए जाते हैं, किन्तु जब सायंकाल होती है, लौटते हैं तब वे थके होने के कारण धीरे-धीरे चलते हैं। माँ! कन्हैया जैसा किसी को रास्ता चलना नहीं आएगा। लाला का सब मंगलमय है। वह बाँसुरी बजाता हुआ चलता है। रास्ते में किसी की ओर नजर कर गाल में स्मित हास्य करते हुए जिसे देखता है, उसे बड़ा आनन्द मिलता है कि मुझे देखकर लाला ने स्मितहास्य किया। वह सारे गाँव को प्राणों से भी प्यारा लगता है। वह एक-एक से पूछता है कि काकी तुम्हारी तबीयत तो ठीक है। बुढ़ियों को बहुत आनन्द होता है कि मैं लाला की काकी हूँ। लाला मेरा बहुत ख्याल रखता है। माँ! बहुत-सी बुढ़ियाँ तो अपनी नजर उतारती हैं। कुछ गोपियाँ रास्ते में लाला को तिलक करती हैं और उसकी आरती उतारती हैं। वे किसी को नज़र से देखता है और किसी से दो शब्द बोलता है, किसी को देखकर स्मित करता है। इस प्रकार वह सबको आनन्द देता है। इससे सब प्रसन्न हो जाते हैं। इसीलिए उसे देर हो जाती है।

एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः।
वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः॥

(१०-२१-२०)

गोपियाँ लाला की बात करती हैं और उसकी बात करते-करते उनकी समाधि लग जाती है। गंगा-तट पर सन्त-समाज में शुकदेवजी महाराज गोपियों का बखान करते हैं। बड़े-बड़े योगी प्राणायाम-प्रत्याहार कर मन को शान्त करते हैं किन्तु गोपियाँ तो उघड़ी आँखों द्वारा नाक पकड़े बिना लाला की बात करते-करते जगत् को भूल जाती हैं। तन्मयता ययुः-

वेणुगीत में ब्रह्मचारिणी गोपियों की कथा है यज्ञपत्नियाँ ही गृहस्थ गोपियाँ हैं। गोवर्धन लीला में वानप्रस्थ गोपियों को कथा है और रासलीला में संन्यासिनी गोपियों की कथा है। संन्यासिनी का अर्थ भगवा वस्त्र धारिणी नहीं। इकतीसवें अध्याय में श्लोक है-

पतिसुतान्वयभ्रातृ बान्धवा नतिविलंध्य तेन्त्यच्युतागताः।

इस श्लोक से गोपियों का संन्यास सिद्ध होता है। जो परमात्मा के लिए सारे सुखों का न्यास या त्याग करे, वह संन्यासी है।

वेणुगीत में ब्रह्मचारिणी योगियों की कथा है। परमात्मा श्रीकृष्ण की आकर्षण-शक्ति अलौकिक है। परमात्मा समस्त जीवों को आकर्षित करने के लिए बाँसुरी बजाते हैं। बाँसुरी से दिव्य मधुर ध्वनि निकलती है। उसके द्वारा परमात्मा समस्त जीवों को बुलाते हैं, "तुम यहाँ आओ। मैं

ही सच्चा आनन्द हूँ। आज तुम्हारे लिए मेरे मन में प्रेम का उफान आया है। मैं तुमको आत्मस्वरूप का दान करने के लिए बुलाता हूँ।''

आज हजारों वर्ष बाद लाला की बात सुनकर हमें आनन्द आता है, तो फिर गोपियाँ उसे प्रत्यक्ष देख उसकी बाँसुरी सुनकर समाधिस्थ हो जाती हों तो आश्चर्य क्या? चाहे कैसा जीव हो, उसे श्रीकृष्ण-कथा सुनने में आनन्द आता है। राजस, सात्विक किसी भी प्रकृति का जीव हो, मनुष्य हो उसे इस कथा में आकर्षण होता है और इस कथा में वह अनायास ही जगत् को भूल जाता है। परमात्मा श्रीकृष्ण सभी शक्तियों से क्रीड़ा करते हैं। इसलिए श्रीकृष्ण अवतार नहीं हैं, अवतारी परमात्मा हैं। श्रीकृष्ण के विराजित होने पर परमात्मा ने जो दिव्य शक्ति प्रकट की है, वही दिव्य शक्ति कृष्ण-कथा में है। यदि परमात्मा के पास जाना हो, तो मन से संसार का सम्बन्ध छोड़ना पड़ेगा। हमारा जीव जगत् का नहीं है, यह ईश्वर का है। यह ईश्वर का होते हुए भी अपना स्वरूप भूल गया है और जगत् का बन गया है। संसार के साथ जीव का सम्बन्ध सच्चा नहीं है, झूँठा है। जीव को अपने पास बुलाने के लिए परमात्मा बाँसुरी बजाता है बाँसुरी नादब्रह्म का स्वरूप है। जब नादब्रह्म और नामब्रह्म एक हो जाते हैं, तब परब्रह्म प्रकट होता है।

एकबार श्रीकृष्ण को भूख लगी। उस समय बालकों ने कहा, ''लाला, आज हम लोग कुछ लाए नहीं हैं।'' श्रीकृष्ण ने कहा, ''ब्राह्मण पूड़ी बनाते हुए दिखाई दे रहे हैं। वहाँ तुम जाओ। वे तुमको कुछ दे देंगे।'' बालक ब्राह्मणों के पास गए। ब्राह्मण भाँग के नशे में चूर पड़े थे। उन्होंने बालकों को कुछ नहीं दिया, यज्ञ में आहुति डालने से ही यज्ञ होता है। वे गरीब बालकों को कुछ दे देंगे, तो कोई हर्ज नहीं था। बालकों ने फिर माँगा। इस पर एक ब्राह्मण ने क्रोधित होकर उसे डण्डा दिखाया। लक्ष्मीजी को यह देखकर बुरा लगा। उन्होंने ब्राह्मणों को शाप दिया, ''तुमने मेरे बालकों को डण्डा दिखाया है। इसलिये तुम भी डण्डा और लोटा लेकर भटकते रहोगे।''

जब इसकी खबर ब्राह्मण-पत्नियों को पड़ी, तब वे स्वादिष्ट भोजन बनाकर श्रीकृष्ण के पास ले गईं और उन्हें खिलाया। इससे श्रीकृष्ण को आनन्द हुआ। परमात्मा ने इस प्रकार यज्ञ-पत्नियों का उद्धार किया।

६५– लाला का ठाकुरः जागती ज्योति

अब गोवर्धन-लीला आरंभ होती है। यह लीला बहुत मधुर है। गोवर्धन शब्द पर थोड़ा विचार करें। संस्कृत में 'गो' शब्द के अनेक अर्थ हैं। 'गो' का अर्थ उपनिषद-सर्वोपनिषदो गावो। 'गो' का अर्थ गाय, धरती, ज्ञान इन्द्रिय। गोवर्धन अर्थात् ज्ञान और भक्ति को बढ़ाने वाली जो

लीला है, उसे ही गोवर्धन-लीला कहते हैं। गोवर्धन-लीला के बाद रासलीला आती है। जब ज्ञान और भक्ति की अतिशय वृद्धि होती है, तभी देहाभिमान छूटता है और रासलीला में प्रवेश मिलता है। तुम ज्ञान और भक्ति बढ़ाने का प्रयत्न करो। लोग अपनी आमदनी बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। यह अच्छा है। तुम भक्ति बढ़ाने का प्रयत्न करो। अपने मन को बारंबार देखो, ''मन सुधरता है या बिगड़ता है? भक्ति घटती है या बढ़ती है? दो महीने पहले जैसा धन था, वैसा आज है या नहीं? ज्ञान-भक्ति की वृद्धि करना,'' ज्ञान-भक्ति की वृद्धि के लिए क्या करना चाहिए? यह एक स्वभाविक प्रश्न है। लोग अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए हवा खाने जाते हैं, हवा-परिवर्तन करने जाते है। जहाँ का हवा-पानी अच्छा हो, वहाँ रहने से शक्ति बढ़ती है। इसलिए भक्ति वृद्धि के लिए कुछ दिन घर छोड़ो।

हमारे शास्त्रों में लिखा है कि गृहस्थ बारहों महीने घर पर रहे, यह अच्छा नहीं है। एक दो महीने घर छोड़कर गंगा-तट या यमुना-तट के किसी तीर्थ में रहकर शुद्ध होना चाहिए। क्योंकि गृहस्थ का घर भोगभूमि है। गृहस्थ के घर में काम के परमाणु उड़ते हैं। ये परमाणु मन को बिगाड़ते हैं। इसलिए घर में भक्ति नहीं हो सकती। कसाई के घर घृणा पैदा होती है, हिंसा होती है। इसलिए वहाँ के परमाणु हिंसक होते हैं। वहाँ कभी सात्विक भाव नहीं जगेगा। मन्दिर में जाने पर कुछ सात्विक भाव जगता है, वहाँ की भूमि भक्ति में थोड़ा साथ देती है। बारहों महीने घर पर मत रहना। एक दो महीना ऐसे तीर्थ में जाकर रहो, जहाँ सन्त-महात्मा वास करते हों। यदि सन्त कुछ न बोले, तो भी उसके पास जाकर बैठे रहना। सन्तों का मौन भी ज्ञान है—गुरोस्तु मौन व्याख्यानम्।

यदि सन्त चुपचाप बैठे हों, तो भी बहुत-सा उपदेश देते हैं। तुम किसी ऐसे विरक्त साधु के पास जाकर बैठो, जिसे भक्ति का रंग लगा है, जिसे संसार का सुख तुच्छ लगता है। उसका सत्संग करने की बड़ी आवश्यकता है। गृहस्थ का धर्म है कि बारह महीने में एक दो महीने भी किसी तीर्थ में रहे और सात्विक पवित्र जीवन गुजारे। ऐसी कोई सात्विक भूमि ढूँढ़कर वहाँ रहो, एकान्त में बैठकर साधना करो। प्रवृत्ति का विषयानन्द छोड़कर निवृत्ति या एकान्त में बैठकर भक्ति करो तो ही भक्ति बढ़ती है। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिन्हें भगवान् के दर्शन की इच्छा होती है, किन्तु सांसारिक प्रवृत्ति छोड़ने की इच्छा नहीं होती। कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि संसार के सुख-भोग में ही भगवान् मिल जाएँ तो अच्छा है। यह होना असम्भव है। भगवान् के लिए लौकिक सुख छोड़ना ही पड़ता है। इसलिए प्रवृत्ति छोड़कर एकान्त में बैठो। वहाँ बैठकर ऐसी साधना करो, 'मैं और मेरे भगवान् को छोड़कर यहाँ कोई तीसरा न आये।'

एक गृहस्थ के घर दो कन्यायें थीं। एक कन्या की शादी एक किसान के घर और दूसरी की शादी एक कुम्हार के घर हुई थी। दोनों कन्याओं का विवाह एक ही गाँव में हुआ था। कन्याओं का समाचार बहुत दिनों तक न मिला, तो उनका बाप हाल-चाल लेने के लिए उस गाँव में गया। वह कुम्हार के घर वाली कंन्या से पहले मिलने गया। वहाँ जाकर उसने पूछा, 'बेटी तुम्हें कोई तकलीफ तो नहीं है? घर में कोई अड़चन तो नहीं है?' कन्या ने कहा, 'पिताजी, ये सब मिट्टी के बर्तन बनकर तैयार हो गये हैं, किन्तु ये अभी कच्चे हैं। कल से हमारी भट्टी का काम शुरू होगा और पन्द्रह-बीस दिन तक चलेगा। मैं भगवान् से रोज प्रार्थना करती हूँ कि इन बर्तनों के पकने के बाद बरसात आए। इन दिनों में बरसात का एक छींटा भी न पड़े। अन्यथा हमारी सारी मेहनत पर पानी फिर जाएगा। इन बर्तनों के पक जाने पर बरसात भले ही आए। पन्द्रह-बीस दिन तक बरसात न आए तो सारा वर्ष सुख से बीतेगा।'

बाप उस कन्या के घर से उठकर जिस कन्या की शादी किसान के घर में की थी, उसके घर मिलने गया। बाप ने बेटी से पूछा 'तुम्हारा काम कैसा चल रहा है?' कन्या ने कहा 'पिताजी बोवाई का सारा काम हो गया है। मैं तो भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि अब जल्द ही जोर की बरसात आ जाए तो अच्छा हो। इन सात-आठ दिनों में बरसात आ जाए तो सारा वर्ष आनन्द से बीतेगा। यदि आठ-दस दिन में बरसात न आई तो बहुत तकलीफ होगी। यह भी चिन्ता होगी कि क्या खायें, बेचारे बाप की कैसी दशा है? बरसात पड़े तो कुम्हार के घर जो कन्या ब्याही गई है, वह दुःखी हो और बरसात न पड़ने पर किसान के घर जो कन्या ब्याही गई है वह दुःखी होगी। तात्पर्य यह है कि दोनों कन्याएँ सुखी नहीं होने वाली हैं। उनमें एक तो दुःखी होगी ही।

थोड़ा विचार करो ख्याल में आएगा कि यह तुम्हारी ही कथा चल रही है। इस जीव की दो कन्याएँ हैं। एक कन्या का नाम प्रवृत्ति है और दूसरी का नाम निवृत्ति है। ये दोनों कन्याएँ एक साथ कभी सुखी नहीं होने वाली हैं। दोनों में से एक तो दुःखी होने ही वाली है। प्रवृत्ति में विषयानन्द और निवृत्ति में भजनानन्द मिलता है। जीव दोनों आनन्द लेना चाहता है। उसे विषयानन्द छोड़ना नहीं है और भजनानन्द लेना है। फलतः कोई लाभ हाथ में नहीं आता। विषयानन्द छोड़ना ही पड़ेगा, मन को समझाकर उसे विषय से विमुख करना ही पड़ेगा। इसलिए अब प्रवृत्ति का विषयानन्द छोड़ो। खूब समझकर प्रवृत्ति छोड़नी है। कितने ही लोग प्रवृत्ति तब छोड़ते हैं, जब ब्लड प्रेशर बढ़ जाए और डाक्टर उन्हें मूर्ख कह दे। शरीर बिगड़ जाने पर प्रवृत्ति छोड़ने का कोई विशेष अर्थ नहीं। शरीर में शक्ति हो और बाजी तुम्हारे हाथ में हो तो प्रभु को खुश करो। शरीर अस्वस्थ होने के बाद या शरीर दुर्बल होने पर भगवान् की भक्ति नहीं होती। इसके बाद शरीर की ही अधि

क भक्ति करनी पड़ती है। शरीर में शक्ति रहते-रहते प्रवृत्ति घटाते जाओ। इस समय प्रभु ने जो दिया है, उसे बहुत बढ़ाने की इच्छा मत करो। हमारे शास्त्रों में तो लिखा है कि पुत्र यदि योग्य है, तो कुछ अधिक संचय करने की जरूरत नहीं है। पुत्र के योग्य होने का अर्थ है कि भूखे नहीं मर सकता। वह कमाकर खा लेगा। उसके लिए अधिक संचय करने की आवश्यकता नहीं। यदि पुत्र नालायक हो, अयोग्य हो तो उसके लिए भी अधिक संचय करने की आवश्यकता नहीं। उसके लिए यदि बहुत कुछ संचय करो, तो भी वह उड़ा देगा, दिवाला निकाल देगा, दुःखी होगा। योग्य के लिए भी बहुत संचय करना वृथा है। विवेक से कुछ संचय करो। ऐसा करना ठीक है किन्तु प्रवृत्ति को विषयानन्द समझकर छोड़ते जाओ और एकान्त में बैठने की आदत डालो।

गोवर्धन लीला अर्थात् ज्ञान-भक्ति को बढ़ाने वाली लीला। व्रजवासी लोग अपना घरबार छोड़कर गिरिराज महाराज के चरणों में आश्रय ले चुके हैं। गोवर्धन-लीला में वर्णन आता है कि व्रजवासियों के गिरिराज-शरण में जाने के बाद इन्द्रराज ने मूसलाधार वर्षा की है। इन्द्र राजा अर्थात् इन्द्रियों के अभिमानी देव! देव भी प्रायः विघ्न पैदा करते हैं। इसीलिए उपनिषदों में देवों को स्तुति का विधान है। यदि हम एकान्त में बैठें, तो कभी-कभी हमारी इन्द्रियाँ वासना की तीव्र वर्षा करती हैं। इसलिए एकान्त में बैठने पर कभी ध्यान में या भक्ति में जल्दी से आनन्द नहीं आएगा। प्रायः इन्द्रियाँ एकान्त पाकर अधिक उच्छृँखल हो जाती हैं, भक्ति में आनन्द न आने पर मन धोखा देता है, मन अपने भोगे हुए सुखों का स्मरण करता है, आगे भोगे जाने वाले सुखों पर विचार करता है। प्रवृत्ति छोड़ने के बाद उसके संस्कार मन को चंचल बना देते हैं। निवृत्ति में ब्रह्मानन्द-भजनानन्द न मिलने पर प्रवृत्ति का विषयानन्द फिर भोगने का लालच जीव को व्यग्र बना देता है। कुछ लोग फिर से वही पाप कर बैठते हैं। एकान्त में बैठने पर जब इन्द्रियाँ वासना की बरसात करती हैं; तब जीव घबरा उठता है। उस समय घबराने की नहीं, अपितु मन को समझाने की आवश्यकता है कि हे मन, तू ने विषयानन्द का अनेक बार लाभ लिया है, किन्तु आज तक शान्ति नहीं मिली। अब तो भक्ति में आनन्द न आए तो भी मुझे भक्ति ही करनी है। मुझे अब किसी तरह भक्ति छोड़नी नहीं है।

वासना की बरसात दूध के उफान के समान है। यदि दूध में थोड़ा उफ़ान आए और तुम उस पर थोड़ा पानी डाल दो तो वह उफान बैठ जाता है। इसी प्रकार वासना की बरसात की दशा है। एकान्त पाकर इन्द्रियों का त्रास बढ़ जाने पर सावधान रहो। उस समय वासना की बरसात सहन करो। तभी तुम सुखी बनोगे। तुमको भगवान् भक्ति में आनन्द देंगे। जो वासना की बरसात सहन करता है, उसे क्या करना चाहिए? यह एक प्रश्न है। जिसका उत्तर यह है कि उसे स्वरूप-सेवा का आधार लेकर मन और आँख को भगवान् के स्वरूप में स्थिर कर देना चाहिए। यदि भगवान्

का स्वरूप मन से ओझल हो जाए तो मन को भगवान् के रूप में जोड़ दो। जो अपने मन को मन्त्र और मूर्ति दोनों जगह्रों में लगा देते हैं, जो नाम-सेवा और स्वरूप-सेवा दोनों का आधार लेता है वही वासना की बरसात सहन कर सकता है। वासना की बरसात सहन करने के लिए इसे छोड़ कोई उपाय नहीं है। भक्ति में जल्दी आनन्द नहीं आता। जब भक्ति में आनन्द आ जाएगा, तब वह स्थिर हो जाएगा।

इन्द्र राजा ने जब बरसात बरसाना आरम्भ किया तब प्रभु ने अपनी तर्जनी अँगुली पर गिरिराज गोवर्धन को धारण कर लिया है। उन्होंने गिरिराज को अँगूठे पर नहीं, अपितु तर्जनी उँगली पर ही क्यों धारण कर रखा है? इसका कारण यह है कि तर्जनी उँगली सत्त्वगुण का स्वरूप है। सत्त्वगुण ब्रह्म सम्बन्ध स्थापित कराता है। ब्रह्म-सम्बन्ध के टिकाए रखने से और सत्वगुण के बढ़ाने से वासना की बरसात सहन की जा सकती है। संयम से सत्वगुण बढ़ता है। इसके लिए सादा भोजन करो। पवित्र ग्रंथों का पठन करो और सत्व प्रधान साधुओं का सत्संग करो।

ज्ञान-भक्ति बढ़ाने वाली लीला ही गोवर्धन-लीला है। ज्ञान-भक्ति को बढ़ाने के लिए गोवर्धन लीला में एक रहस्य वर्णित किया गया है। पूजा करने वाले श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्ण ही गिरिराज के शिखर में गोवर्धननाथ के स्वरूप में भी प्रकट हुए हैं। इस प्रकार जब पूज्य और पूजक एक हो, सेव्य और सेवक एक हों, भक्त और भगवान् एक हों, तो ही भक्ति की वृद्धि होती है। यदि भक्ति बढ़ाने की इच्छा हो तो भगवान् से एकाकार हो जाओ। ब्राह्मण पूजा करते समय अंग-न्यास और कर-न्यास करते हैं। एक-एक अंग में प्रभु की स्थापना करने के बाद पूजा होती है। जो प्रभु के समान नहीं होता, उसकी पूजा को प्रभु ग्रहण नहीं करते।

देवो भूत्वा यजेत् देवं, शिवो भूत्वा यजेत् शिवम्

भगवान् के साथ एकाकार होने का अर्थ है भगवान् की इच्छा में अपनी इच्छा का मिलाना। जीवन में सुख-दुःख का, लाभ-हानि का, मान-अपमान का चाहे जैसा अवसर आए, उसे अपना मन शान्त रखकर सहन करो। तुम भगवान् की पूजा करोगे, तो भी बहुत से लोग तुम्हारी व्यर्थ निन्दा करेंगे। उससे तुम्हें घबराना नहीं चाहिये। क्योंकि सब काम भगवान् की इच्छा से ही होते हैं। ऐसा मान लेना कि सब कुछ भगवान् की इच्छा से होता है और मेरी निन्दा भी भगवान् की इच्छा से हो रही है। भगवान् की इच्छा ही मेरी इच्छा है, यह मानकर काम करना। यदि भगवान् की इच्छा से तुम्हारी इच्छा भिन्न होगी तो भक्ति नहीं बढ़ेगी। भगवान् की इच्छा से जो कुछ होगा वह तुम्हारे कल्याण के लिए होगा, ऐसा प्रभु में विश्वास करना। भगवान् को किसी का बुरा करना नहीं आता। कोई जीव बिगाड़ सकता है; किन्तु प्रभु किसी का नहीं बिगाड़ता। कदाचित भक्ति करने से हानि

भी हो, दुःख का अवसर भी आए, तो भी प्रभु को मत कोसना। ऐसी श्रद्धा रखना कि भगवान् की इच्छा से जो हुआ है, वह अच्छा ही हुआ है। ऐसी निष्ठा पैदा करना कि मेरे भगवान् को जो पसन्द है, वह मुझे पसन्द है। पूज्य और पूजक के एक हो जाने पर ही भक्ति बढ़ती है। मन से भगवान् के साथ एकता स्थापित करो, तो तुम्हारी भक्ति बढ़ेगी। जब ज्ञान-भक्ति खूब बढ़ती है, तब जीव को रासलीला में प्रवेश मिलता है। रासलीला जीव और ईश्वर के मिलने की कथा है। जब ज्ञान-भक्ति की वृद्धि होती है और देहाभिमान ध्वस्त होता है, तब जीव परमात्मा से मिलता है और तब गोवर्धन लीला के बाद रासलीला आती है। पहले गोवर्धन लीला आती है। इसलिए ज्ञान और भक्ति बढ़ाने का प्रयत्न करो। इस प्रकार हमने थोड़ी प्रस्तावना की है। श्रीशुकदेवजी महाराज हमें बताते हैं कि श्रीकृष्ण के सातवें वर्ष पर गोवर्धन लीला हुई है।

भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः।
अपश्यन्निवसन् गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान्॥ (१०-२४-१)

नन्दबाबा प्रतिवर्ष इन्द्र का यज्ञ करते थे। इन्द्र के यज्ञ की तैयारी होने लगी है। सात वर्ष के श्रीकृष्ण नन्दबाबा से पूछते हैं, 'बाबा, यह किसकी तैयारी कर रहे हो? नन्दबाबा ने उत्तर दिया, 'बेटा, इन्द्र सब देवों के राजा हैं। इन्द्र राजा को प्रसन्न करने के लिए हम सब यज्ञ करते हैं। उनके प्रसन्न होने पर बरसात होती है और अन्न पैदा होता है। इन्द्र बरसात का आधार है।''

प्रभु ने इन्द्र का गर्व चूर करने के लिए लीला की है। श्रीकृष्ण नन्दबाबा को समझाते हैं, बाबा, आप इन्द्र की पूजा करते हैं यह मुझे पसन्द है। मैं इन्द्र को मानता हूँ; किन्तु आप जो यह कहते हैं कि इन्द्र सभी देवों का राजा है, यह कथन ठीक नहीं है। बाबा मैंने ऐसे सुना है कि जो सौ अश्वमेध कर सकता है, वह इन्द्र बन सकता है। इन्द्र स्वर्ग का राजा है, वह ईश्वर नहीं है। जिसने इस इन्द्र को स्वर्ग का राज्य दिया है वह इन्द्र का राजा या इन्द्र का इन्द्र कोई और है बाबा, इन चार दिशाओं के चार मालिक देव हैं। पूर्व दिशा के मालिक देव जगन्नाथ स्वामी, दक्षिण दिशा के मालिक देव श्रीरामेश्वर भगवान्, पश्चिम दिशा के मालिक देव श्रीद्वारकानाथ हैं और उत्तर दिशा के मालिक देव बद्रीनाथ हैं। बद्रीनारायण में उत्तर दिशा समाप्त हो जाती है। उसके आगे जाने पर हिमालय आ जाता है। पश्चिम दिशा की समाप्ति द्वारका में होती है। उससे आगे बढ़ो तो समुद्र आ जाता है। दक्षिण दिशा में रामेश्वर से आगे जाने पर कन्याकुमारी में समुद्र का संगम होता है, समुद्र एक जगह मिलते हैं। वहाँ दक्षिण दिशा समाप्त होती है। पूर्व दिशा की समाप्ति जगन्नाथपुरी में होती है। इन चार दिशाओं के चार मालिक देव हैं। बाबा, हमारा यह गोवर्धननाथ सब देवों का राजा है। इन्द्र को स्वर्ग का राज्य देने वाले गोवर्धननाथ ही हैं। बाबा आप इनकी पूजा कीजिए। आप

अनेक वर्षों से इन्द्र की पूजा करते हैं। क्या कभी उनका दर्शन हुआ है? बाबा ने कहा, हमें इन्द्रदेव का दर्शन कभी नहीं हुआ है।

कन्हैया ने कहा, वह इन्द्र बड़ा अभिमानी है जो आपके अनेक वर्षों से पूजा करने पर भी दर्शन नहीं देता। मेरे गोवर्धननाथ की पूजा करो, तो ये तुमको अवश्य दर्शन देंगे। मुझे उनका दर्शन हुआ है। बालकों ने कहा कि लाला का ठाकुर तो जागती ज्योति है। गोवर्धननाथ की पूजा की जाए तो जो माँगो, वह प्रसाद मिल सकता है।

नन्दबाबा ने कहा, बेटा, गोवर्धननाथ की पूजा करने में कोई हर्ज नहीं है, किन्तु यदि इससे इन्द्र नाराज हो गया तो क्या होगा? लाला ने कहा, इन्द्र नाराज होकर हमारा क्या बिगाड़ेगा? मेरा गोवर्धननाथ सबकी रक्षा करेगा। किसी का बाल भी बाँका न होगा। इन्द्र अभिमानी है। गोवर्धननाथ जरा भी अभिमानी नहीं हैं। बाबा, क्या आपने आज दिन तक कभी गोवर्धन की पूजा की है? नन्दबाबा ने कहा कि कभी हमने गोवर्धननाथ की पूजा नहीं की है। यह सुनकर कन्हैया बोला, पूजा न करने पर भी गोवर्धननाथजी हमारी रक्षा करते हैं और प्रसाद देते हैं। बाबा, मैं एकबार गायें लेकर अपने मित्रों के साथ जंगल में घूम फिर रहा था। रास्ते में दो बड़े-बड़े बाघ दिखाई दिए। बाबा, मुझे तो बहुत डर लगा। उसी समय इस गिरिराज की गुफा से चार हाथ वाला एक देव बाहर निकला और उसने बाघों को मार डाला। जब मैं उनके पैरों पड़ा, तो उन्होंने मेरे माथे पर हाथ रखा और कहा कि गिरिराज में रहने वाला गोवर्धननाथ मैं ही हूँ। बेटा तू मुझे बहुत प्यारा लगता है तुझे देखते ही मुझ में प्रेम जागता है। मैं तुझे अपनी सारी शक्ति देना चाहता हूँ। गोवर्धननाथजी का मुझ को आशीर्वाद मिला है। मुझ पर उनकी बहुत कृपा है। बाबा आप गोवर्धननाथ की पूजा कीजिए। नन्दबाबा ने कहा हम गोवर्धननाथ की पूजा करें, किन्तु हम उसकी कोई विधि जानते नहीं हैं। फिर किस प्रकार उनकी पूजा करें? कन्हैया बोला, बाबा मैं विधि जानता हूँ नए वर्ष के दिन पूजा करूँगा। मुझे बहुत अन्नकूट करना है। बाबा उस दिन सारे गाँव को भोजन कराना है और प्रसाद देना हैं बाबा, मैं सच कहता हूँ। मेरे ठाकुरजी किस प्रकार भोजन करते हैं यह उस दिन आप सबको दिखाऊँगा। यह सुनकर सभी सहमत हो गए और लाला ने सभी को सुन्दर भोजन-सामग्री लाने को कहते हुए बताया कि जिसके घर की भोजन सामग्री ठाकुरजी ग्रहण करेंगे उसके घर लक्ष्मीजी और अन्नपूर्णाजी विराजेंगी।

व्रजवासियों ने बहुत ही पवित्रता से सुन्दर सामग्री तैयार की है। नए वर्ष के दिन सभी गिरिराज महाराज के चरणों में आ गए हैं। शास्त्रों में वर्णन है कि गोवर्धननाथ के हजार मुख हैं, अनेक मुख हैं। उनका प्रधान मुख जतीपुरा में है। मथुरा से २० मील दूर जतीपुरा गाँव है। वैष्णव

वहाँ सारे दिन ठाकुरजी का अभिषेक करते हैं। सायंकाल भगवान् का शृंगार होता है। इसके बाद भगवान् भोजन करते हैं। तुम यहाँ मन से गिरिराज महाराज के दर्शन करो और ऐसी भावना करो कि मैं इस समय गोवर्धननाथ के चरणों में बैठा हूँ तो मन से किए पुण्य का फल मिलता है। जिस प्रकार मन से किए गए पाप की सजा मिलती है, उसी प्रकार मन से भगवान् के दर्शन और उनकी पूजा करने पर फल मिलता है। गोवर्धन का स्वरूप अत्यंत दिव्य है। ग्वालों के साथ सभी वृजवासी वहाँ आए हैं और भोजन सामग्री गाड़ियों में भरकर लाए हैं। वे नए वर्ष पर गोवर्धननाथ की पूजा करते हैं। श्रीकृष्ण सभी देवताओं का मान करते हैं। जो सबको मानता है वह बड़ा होता है। गोवर्धन पूजा के आरंभ में लाला ने कहा, ''पहले गणपति महाराज की पूजा करनी पड़ेगी। गणपति पूजा के बिना गोवर्धननाथ की पूजा नहीं हो सकती। गणपति महाराज विघ्नकर्ता हैं और वे विघ्नहर्ता भी हैं।

ओम् गणानान्त्वा गणपति गुं हवामहे,
प्रयाणान्त्वा प्रियपति गुं हवामहे,
निधिनान्त्वा निधिपति गुं हवामहे,
वसोमम आहमजानिगर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।

वेदों में गणपति महाराज की महिमा का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। गणपति महाराज की सभी पूजा करते हैं। पून्याहवाचन हुआ है। इसके बाद गोवर्धननाथ की पूजा करते हैं। ब्राह्मण वेद-मंत्र बोलते हैं और वैष्णवजन प्रेम से प्रभु-नाम का संकीर्तन करते हैं सब गोवर्धननाथ पर दूध से अभिषेक करते हैं। अभिषेक में बहुत सावधान रहना होता है। दूध की धारा अखण्ड रहनी चाहिए। खण्डित नहीं होनी चाहिए। दूध की धारा खण्डित होने पर अभिषेक भंग हो जाता है। क्या दूध की धारा खण्डित होने पर ठाकुरजी गुस्सा हो जाते होंगे ऐसा नहीं है, ठाकुरजी गुस्सा नहीं करते। वे बड़े प्रेमालु हैं। दूध की धारा खण्डित हो या न हो, किन्तु तुम्हारे मन की धारा खण्डित न होनी चाहिए। वह मन की धारा भगवान् के चरणों में पड़नी चाहिए। मन सतत परमात्मा का चरण-चिंतन करे, स्मरण करे यही अभिषेक का महत्व है। अभिषेक करते समय मन में कोई लौकिक विचार नहीं आना चाहिए। दूध की धारा खण्डित होने पर भगवान् को बुरा नहीं लगता। क्योंकि भगवान् कहते हैं कि तेरे मन की धारा मेरे चरणों में पड़ती है। ब्रजवासी दूध से अभिषेक करते हैं।

श्रीयमुनाजी गिरिराज से दूर हैं! बालक यमुनाजी का जल ले आते हैं। गिरिराज का स्वरूप बहुत विशाल है। बालक थक गए हैं। ठाकुरजी की सेवा करते-करते शरीर थक जाए, खूब पसीना छूटने लगे तो परमात्मा को वंदन करके कहना कि अब मेरे हाथ से कुछ हो नहीं पाता है। यह सुनकर परमात्मा को दया आएगी। मनुष्य पैसे के लिए पसीना बहाता है, लेकिन परमात्मा के लिए

पसीना नहीं बहाता है। बालक थक गये हैं और कहते हैं कि लाला, तेरे ठाकुरजी तो बहुत बड़े हैं। हम लोग तो थक गये हैं। लाला ने प्रार्थना की, ''हे गोवर्धननाथ, अपने अन्दर से गंगाजी को प्रकट करें।'' उसी समय गिरिराज में से खल-खल, खल-खल करती हुई गंगाजी प्रकट हो गईं। उन्हें मानसी गंगा कहते हैं।

गंगा-जल से गोवर्धननाथ का खूब अभिषेक किया गया है, स्नान कराया गया है। इसके बाद श्रीकृष्ण उनका सुन्दर शृंगार करते हैं। उनको पीला पीताम्बर पहनाया गया है। केसरी अंगोछा कन्धे पर डाला गया है। लाला ठाकुरजी का शृंगार करें तो फिर पूछना ही क्या? लाला ने इस संसार को कैसा बनाया है! सभी के चेहरे अलग-अलग हैं। एक का चेहरा दूसरे से नहीं मिलता-जुलता। यदि वह पूरा-पूरा मिल जाए तो संसार में गड़बड़ी पैदा हो जाए। मोर का अण्डा सफेद होता है। उस अण्डे में भगवान् नए-नए रंग कैसे भर देते हैं। मोर को किस प्रकार रंगबिरंगा बनाया गया है। यह जगत् उसी प्रभु का सूचक है। यह सबसे बड़ा चमत्कार है। आज श्रीकृष्ण शृंगार करते हैं। गोवर्धनाथ बहुत प्रसन्न दिखाई देते हैं। आज परमात्मा के दर्शन में बहुत आनन्द आता है। बालक लाला से कह रहे हैं, ''कन्हैया ये तेरे ठाकुरजी आज बहुत आनन्दमग्न हैं। ये मुझे देखकर धीरे-धीरे गाल में हँसते हैं।'' तुम कभी गोवर्धनाथ का दर्शन करने जाओ तो इस बात को याद रखकर दर्शन करना। ठाकुरजी की आँख बहुत सुन्दर हैं। भगवान् की आँख जगत् को देखने के लिए नहीं हैं, वह बिना आँख के भी देख सकते हैं। भगवान् की आँख जीव के आकर्षण के लिए हैं। दाहिनी ओर खड़े होकर गोवर्धननाथ का दर्शन करने वाले प्रभु की तुम प्रार्थना करो, हे गोवर्धननाथ! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ, मुझे कुछ माँगना नहीं है। मेरी तीव्र भावना यह है कि एक बार आप मुझ पर नजर कीजिए। तुम दाहिनी ओर खड़े होकर प्रभु से प्रार्थना करो, तो तुम्हें ऐसा प्रतीत होगा कि भगवान् के नेत्र दाहिनी ओर हैं। फिर वहाँ से तुम बाईं ओर आओ और गोवर्धननाथ को मनाओ कि मैं आपकी शरण में आया हूँ। आपने मुझे बहुत सुख दिया है। मैं उसके योग्य नहीं हूँ। मेरी भावना है कि एक बार मुझ पर नजर कीजिए। इस प्रकार तुम बाईं ओर खड़े होकर प्रार्थना करोगे, तो तुमको ऐसी प्रतीति होगी कि ठाकुरजी की आँख बाईं ओर रही है। तुम सामने खड़े रहो, तो भगवान् की नजर सामने रहेगी। इस प्रकार भगवान् नजर देते हैं, भगवान् आँख फिराते हैं। जब नजर मिलती है, तब दर्शन में बहुत आनन्द आता है।

बालक लाला से कहते हैं कि क्या तुम्हारे ठाकुरजी तुमसे बातें करते हैं? लाला ने कहा 'हाँ जो प्रेम से सेवा-पूजा करता है, उसके साथ बातचीत करते हैं, कभीं-कभी बोलते हैं। रोज नहीं बोलते।' गोवर्धननाथ को तिलक करने के लिए नन्दबाबा चन्दन का कटोरा ले आए हैं। लाला ने

कहा 'यह कार्तिक का महीना है। इसलिए ठण्डी अधिक पड़ती है। आप लोग चन्दन की अर्चा करेंगे, तो मेरे ठाकुरजी को ठण्डी हो जाएगी। मेरे भगवान् बहुत कोमल हैं। उनकी सेवा प्रेम से करनी है। गर्मी बहुत पड़ती हो और चन्दन से अर्चा करो तो ठाकुरजी को ठण्डक लग जाएगी। वे सब सहन कर लेते हैं, कुछ बोलते नहीं। लेकिन चन्दन की अर्चा करना मुझे पसन्द नहीं।' बालकों ने कहा, 'कन्हैया क्या हम कुमकुम का तिलक करें?' लाला ने कहा कि कुमकुम का तिलक अच्छा होगा, किन्तु तुम सब यदि कुमकुम का तिलक करो, तो कुमकुम ठाकुरजी की नाक पर पड़े। वह कुमकुम यदि श्वास लेते समय अन्दर जाए तो शायद उनको छींक आए? नन्दबाबा ने कहा, कन्हैया, तू किसे समझाता है? क्या तेरे ठाकुरजी को छींक आती है?' लाला ने कहा आप इसे क्या समझते हैं? नन्दबाबा ने कहा, हम इसमें कुछ नहीं जानते। हम तो केवल इतना ही मानते हैं कि यह एक ऊँचा पहाड़ है। लाला ने कहा आज तो आपने कहा सो कहा; फिर कभी ऐसा मत कहिएगा। क्या हम लोग पहाड़ की पूजा करने आए हैं? पूजा जड़ की नहीं होती है, चेतन की होती है। बाबा यह जो पहाड़ जैसा स्वरूप है, यह ठाकुरजी का भौतिक स्वरूप है। ठाकुरजी आध्यात्मिक स्वरूप में तो सबमें विराजमान हैं। मेरे भगवान् का आधिदैविक स्वरूप चार हाथ वाला है। वह कभी प्रत्यक्ष प्रकट होता है। बाबा हम किसी पहाड़ की पूजा करने नहीं आए हैं। ये हमारे प्रत्यक्ष परमात्मा हैं। मेरे ठाकुरजी की नाक से श्वास निकलता है। उसकी परीक्षा आप कर सकते हैं। इससे आपको विश्वास होगा।' लाला ने मजाक किया। उसने अपना एक स्वरूप नन्दबाबा के पास रखा और दूसरे स्वरूप से गिरिराज में प्रवेश किया। नन्दबाबा ने नाक पर उँगली रखी तो गिरिज श्वाँस लेते प्रतीत हुए। नन्दबाबा ने कहा, 'तूने हमें जागती ज्योति दिखाई है। यह तो प्रत्यक्ष परमात्मा है। हम अभी तक इसे नहीं जानते थे।'

सभी व्रजवासियों ने विचार किया कि लाला के हाथ से ही गोवर्धननाथ को तिलक कराया जाए। क्योंकि इसने ही इनके दर्शन कराये हैं। व्रजवासी शङ्खनाद और घण्टानाद करते हैं तथा श्रीकृष्ण उसी समय तिलक करते हैं। चारों ओर श्रीगोवर्धननाथ की जय-जयकार हो रही है। लाला ने ठाकुरजी पर अक्षत चढ़ाने की मनाई की और कहा 'तुम लोग दूसरे देवताओं को अक्षत चढ़ाते हो यह अच्छा है; किन्तु ये तो देवों के देव हैं। तुम इन पर अक्षत चढ़ाओ, तो मेरे ठाकुरजी को कष्ट होगा। अक्षत आँख-कान में जाए और उससे माथे में चोट लगे तो इन्हें कितना कष्ट होगा। ये तो बहुत प्रेमालु हैं, सहन करने वाले हैं; किन्तु तुमको भी सावधान रहना है। लाला के गले में मोती की कण्ठियाँ थीं। प्रभु ने लीला की और कण्ठियाँ तोड़कर मित्रों में बाँट दी। ग्वाले गरीब हैं। बालकों के हाथ में मोती आ गए हैं। वे लाला से कहते हैं कि कन्हैया एक-एक मोती एक-एक

हजार रुपये का होगा, ऐसा हमारा मानना है। मेरे घर में एक भी मोती नहीं है कहो तो यह मोती मैं कण्ठी बनाने के लिए अपने घर ले जाऊँ। लाला ने कहा, सेवा में मन अच्छी तरह लगाओ। यदि तुम इस मोती से मेरे ठाकुरजी को सजाओगे तो तुम्हारे घर के कूँड़े भरे रहेंगे।' यह सुनकर बालकों ने कहा कि तब तो हम इसे ठाकुरजी पर चढ़ाने को तैयार हैं। इस जीव को विश्वास हो जाए कि मुझे कुछ अधिक मिलेगा या मेरे ऊपर प्रभु की कृपा होगी।' इसलिए थोड़ा अपने काम में लूँगा। काम में लेने से अधिक मिलेगा और मुझे लाभ होगा। उसे इस बात का विश्वास है तभी वह मोती निकालता है, नहीं तो कभी अपने गले में से नहीं निकालता। घर में लक्ष्मी विराजेगी इस लालच से ग्वाले गोवर्धननाथ की पूजा मोती चढ़ाकर करते हैं और गोवर्धननाथ की जय बेलते हैं। जय-जयकार होता है।

बालकों ने लाला से पूछा ''कन्हैया, अब क्या करना है?'' कन्हैया ने कहा कि अब मेरे ठाकुरजी को भूख लगी है। इसलिए भोजन की सामग्री भगवान् के सामने उपस्थित करो। सब भगवान् के सम्मुख सामग्री प्रस्तुत करते हैं और तुलसीजी अर्पण करते हैं। श्रीकृष्ण-लीला अत्यंत मधुर है। श्रीकृष्ण हाथ जोड़कर खड़े हैं और गोवर्धननाथ से प्रार्थना करते हैं, ''हे गोवर्धननाथ आप तो सारे जगत् को भोजन कराते हैं। जगत् को भोजन कराने वाले को कौन भोजन करा सकता है। हम ब्रजवासी तो बहुत प्रेम से, पवित्रता से आपके लिए यह सुन्दर सामग्री बनाकर लाए हैं। हे गोवर्धननाथ आप कृपा कीजिए। सबकी भावना है कि आप भोजन ग्रहण कीजिए और हम दर्शन करें। आप प्रत्यक्ष प्रकट होकर भोजन ग्रहण कीजिए।'' लाला ने मजाक किया अपना एक स्वरूप नन्दबाबा के पास रखा और दूसरा स्वरूप चतुर्भुज-स्वरूप गिरिराज के शिखर पर गोवर्धननाथ में प्रकट किया। कन्हैया ने ऐसा मजाक किया कि अपने ही अपने चरणों में पड़ रहा है। कन्हैया ने कहा, बाबा यह मेरा ठाकुर है। मैंने आपसे कहा था कि ठाकुरजी का आधिदैविक स्वरूप चार हाथों वाला है।'' श्रीकृष्ण को वन्दन करते देखकर सभी वन्दन करते हैं और गोवर्धननाथ से भोजन करने की प्रार्थना करते हैं। गोवर्धननाथजी तो शिखर पर प्रकट हुए और भोजन सामग्री तो पहाड़ की तलहटी में है। गोवर्धननाथ शिखर से अपना हाथ बढ़ाकर भोजन की टोकरियाँ उठाते हैं और प्रसन्न होकर पाते हैं। यह देखकर ग्वाले चकित हो जाते हैं, खुश हो जाते हैं और कहते हैं लाला-लाला, तेरा ठाकुर तो खा रहा है, खा रहा है।'' यह सामग्री ठाकुरजी के लिए ही बनाई गई है। एक के बाद एक टोकरी उठाकर गोवर्धननाथ भोजन कर रहे हैं और सभी दर्शन कर रहे हैं।

जो छोटे बालक थे वे कुछ घबरा गए और लाला से कहने लगे ''कन्हैया, तेरा गोवर्धननाथ तो अनेक वर्षों के भूखे दिखाई देते हैं। यह तो सब कुछ खाने लगे हैं। यह एक के बाद दूसरी

टोकरी खाली करते जा रहे हैं। यह कितना खाते हैं? लाला, तू तो हमें दिए बिना कभी नहीं खाता और यह तो अकेले ही सब खाते जा रहे हैं! लाला, देखो, इनने सूतरफेनी (एक प्रकार की मिठाई) की टोकरी उठा ली। मुझे तो सूतरफेनी बहुत अच्छी लगती है। क्या मुझे कुछ प्रसाद मिलेगा?'' लाला ने कहा मेरा ठाकुर सब खा जाएगा और जितना खाएगा उतना ही प्रसाद भी देगा। बालकों ने कहा कि लाला, तू कहता है कि हम सबको प्रसाद मिलेगा, लेकिन यह तो एक के बाद दूसरी टोकरी खाली करते जा रहे हैं। फिर प्रसाद कैसे मिलेगा? लाला ने कहा ''तुम श्रद्धा रखो। मेरे ठाकुरजी जिस घर में भोजन करते हैं, उसमें लक्ष्मीजी अन्नपूर्णा पधारती हैं। तुम लोग अच्छी तरह दर्शन नहीं करते। बाँई ओर लक्ष्मीजी हैं। आज तो सामग्री अधिक है तुम लोग भोजन कराने में जल्दी मत करो शांति रखो।'' बालकों ने कहा कि लाला, तेरे ठाकुर भोजन करें तो हमें क्या करना है? लाला ने कहा, चलो, हम सब गिरिराज महाराज की परिक्रमा करें। लाला के कहने के अनुसार सभी व्रजवासी ''श्रीकृष्ण-गोविन्द हरे-मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव'' कीर्तन करते-करते गिरिराज की परिक्रमा करते हैं। गिरिराज की परिक्रमा करते समय रास्ते में राधा कुण्ड आता है उसकी रज अत्यन्त पावन है।

इसके बाद गोवर्धननाथ की आरती उतारी गई ब्राह्मणों और साधुओं को प्रसाद दिया गया। फिर व्रजबासियों की पंक्ति भोजन करने बैठी है। बालकृष्णलाल परोसने लगे हैं। इस प्रकार मालिक परोसने जाता है और सभी को समझाता है, ''यह प्रसाद देवों के लिए भी दुर्लभ है। तुम सब प्रेम से प्रसाद लेना, किन्तु जरा भी छोड़ना मत। इस प्रसाद में ठाकुरजी का अधरामृत टपका है। इसलिए यह अधिक मीठा हो गया है। जो प्रसाद का अपमान करता है, उसे बहुत पाप लगता है। थाली या पत्तल में जरा भी प्रसाद मत छोड़ना। कुछ बालक लाला को अपना मित्र मानते थे। वे लाला से कहने लगे, ''कन्हैया तू तो हमें बहुत उपदेश देता है। यदि हम कुछ प्रसाद छोड़ दें, तो क्या होगा?'' लाला ने कहा ''प्रसाद मत छोड़ना। नहीं तो गोवर्धननाथ रात को स्वप्न में आकर तुझे डंडे से मारेंगे क्योंकि प्रसाद का अपमान प्रभु का अपमान है।'' थाली या पत्तल में प्रसाद छोड़ने जैसा कोई पाप नहीं है। लोग अन्न की निन्दा करते थे, उसे बिगाड़ते थे इसलिए मँहगाई हुई है। कभी भी अन्न की निन्दा मत करना, कितने ही लोग बहुत होशियारी दिखाते हैं और ऐसा समझते हैं कि हम अन्न छोड़ देंगे तो भिखारी को खाना मिलेगा। हमें भिखारी को भी जूठा अन्न नहीं देना चाहिए। शास्त्रों में लिखा है कि जो तुम्हारा जूठा खाएगा वह तुम्हारा थोड़ा पुण्य ले जाएगा। इसलिए किसी को उच्छिष्ट या जूठा भोजन नहीं देना चाहिए। यह सुनकर सभी व्रजवासियों को आनन्द हुआ है और प्रसाद लेने के बाद सभी गिरिराज के चरणों में सो गए हैं।

उधर नारदजी इन्द्र के पास पहुँचे और उन्होंने उनसे जाकर कहा, तू किस प्रकार के देवों का राजा है? ग्वाले तेरी पूजा छोड़कर गोवर्धननाथ की पूजा करते हैं। यह सुनकर इन्द्र राजा को क्रोध आ गया। उसने मेघों को आज्ञा दी कि ब्रज पर टूट पड़ो, मूसलाधार बरसात करो और उसे छिन्न-भिन्न कर दो। कार्तिक महीना होने पर भी आकाश में मेघ छा गए। गड़गड़-गड़गड़ गर्जना होने लगी। जोर से बिनौले (तुषार) बरसने लगे। नन्दबाबा बहुत घबरा उठे, व्याकुल हो गए कि गोपियाँ अपने छोटे-छोटे बच्चे लेकर आई हैं। उन्हें कहाँ ले जाएँ? उस समय सात वर्ष के श्रीकृष्ण नन्दबाबा को समझाते हैं, 'बाबा घबराइए मत। मैंने गोवर्धननाथ की पूजा प्रेम से की है। मुझे रात में उनके दर्शन हुए हैं। गोवर्धननाथ ने मुझसे कहा कि तूने सात दिन मेरी पूजा की है। मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ, किन्तु कल से सात दिन तक बहुत बरसात पड़ेगी। फिर भी तुम लोग घबराना मत। कन्हैया, तू मुझे बहुत प्यारा लगता है तेरी तर्जनी उँगली पर मैं फूल जैसा हल्का रहूँगा, तू मुझे उठा लेना। मैं सबकी रक्षा करूँगा। किसी का बाल भी बाँका नहीं होगा।' नन्दबाबा ने कहा कि कन्हैया, यदि तुझे आज्ञा हुई हो तो तू गिरिराज को जल्दी उठा ले। लाला ने कहा, नन्दबाबा, मैं तो तुम्हारा लड़का हूँ। मुझ में कोई ऐसी शक्ति नहीं कि मैं गिरिराज को उठा सकूँ। भीति के बिना प्रीति नहीं होती। सब घबरा उठे सबने गोवर्धननाथ को साष्टाँग वंदन करके कहा, हे गोवर्धननाथ! हम तुम्हारे चरणों में पड़े हैं, हमारी रक्षा करो। 'श्रीगोवर्धननाथ की जय! श्रीगोवर्धननाथ की जय!' इस प्रकार कहकर सब जय-जयकर कर रहे हैं।

लाला ने तलहटी में जहाँ हाथ बढ़ाया वहीं गिरिराज धीरे-धीरे ऊपर उठने लगे।

कन्हैया ने तर्जनी उँगली पर गिरिराज गोवर्धन को उठा लिया और व्रजवासियों को बुलाया, 'तुम सब यहाँ आओ! यहाँ आओ! बिल्कुल घबराना मत। गिरिराज महाराज तुम्हारी रक्षा करेंगे। गाय, ग्वाले और गोपियाँ दौड़कर वहाँ पहुँच गए। आज श्रीकृष्ण गिरिराज-धरण हो गए हैं। यों तो ब्रजवासी प्रतिदिन लाला का दर्शन करते हैं, किन्तु आज का कन्हैया कुछ और ही है। दाऊजी ने शेष स्वरूप धारणकर गिरिराज को चारों ओर से घेर लिया है, जिससे बरसात का एक छींटा भी अन्दर न आ सके। श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी। उनकी आज्ञा से उसने चारों ओर प्रकाश फैला दिया है। उस प्रकाश में सबको गिरिराज-धरण श्रीकृष्ण का दर्शन करने में बड़ा आनन्द आता है। यशोदामैया हाथ से प्यार करती हुई कहती हैं, बेटा तुझे क्या यह बोझ भारी लगता है? लाला ने कहा कि माँ तूने मुझे मक्खन खिलाया है। इससे मुझ में शक्ति आ गई है। तू मेरी चिन्ता मत कर। ग्वालों का स्वभाव बड़ा भोला हैं वे लाला को बालक मानते हैं। कुछ ग्वालों ने विचार किया कि लाला तो सात वर्ष का बालक है। यह पहाड़ इतना बड़ा है! कहीं कोई गड़बड़ी हुई तो क्या

दशा होगी? कुछ व्रजवासियों ने लाठियों से सहारा दिया। एक ब्रजवासी लाला से कहने लगा, 'मैंने गिरिराज को अपनी लाठी पर टाँग लिया है।' यह सुनकर लाला ने कहा, 'तेरी लाठी ऊपर है। इसलिए क्या मेरी उँगली ऊपर नहीं है?' ग्वालमित्र बोले कन्हैया तू, अकेले पहाड़ कैसे उठा सकता है? हम सबने उसे लाठी पर टाँग रखा है। लाला ने कहा, 'तेरी लाठी ऊपर हो, तो मैं अपना हाथ नीचे कर लूँ।' ग्वालबाल मित्र ने कहा यदि तू थक गया हो तो हाथ नीचे कर ले। हम सब लाठी पर रख लेंगे। कन्हैया ने जैसे ही हाथ नीचे करना आरम्भ किया कि गिरिराज हिलने लगे। ग्वाले एकदम चिल्ला उठे, 'कन्हैया-कन्हैया, यह गिरिराज गिर पड़ेगा।' लाला ने झट अपनी उँगली ऊपर उठा ली। तब सबको विश्वास हो गया कि गिरिराज हमारी लाठी पर नहीं, बल्कि लाला की उँगली पर टिका है। वह श्रीकृष्ण की उँगली पर है। यह घर किसके आधार पर है? यह जगत् किसके आधार पर है? जब तक ठाकुरजी की कृपा हो, तब तक पौबारा है। उनकी कृपा घटते ही राजा रंक बन जाता है, लाख की राख बनते देर नहीं लगती। इस जीव के पास गर्व करने जैसी कोई चीज ही नहीं है। सब कुछ भगवान् की मर्जी पर है। फिर भी जीव अकड़कर चलता है और अभिमान से बोलता है।

यह लीला सात दिन तक चलती रही। लाला ने अपनी बाँसुरी बजा दी है। व्रजवासी अब गिरिराज-धरण श्रीकृष्ण के दर्शन करते हैं और उनकी बाँसुरी सुनते हैं। किसी को भूख नहीं लगती, किसी को प्यास नहीं लगती। लाला ने ऐसी बाँसुरी बजाई कि उसे सुनकर गिरिराज महाराज डोलने लगे हैं। अब इन्द्र को विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण परमात्मा हैं। उसने मेघों को आज्ञा दी कि बरसात बन्द करो। बरसात बन्द हो गई है, सूर्य उदय हो गया है, गोपी-ग्वाल और गोपीगण बाहर निकल रहे हैं। गिरिराज की स्थापना हो गई है। श्रीगोवर्धन महाराज की जय। गोपियों को अत्यन्त आनन्द हुआ है।

आज सबको विश्वास हो गया कि कन्हैया के कारण हमारी जिन्दगी बच गई। अनेक जनों को यह शंका होने लगी, 'क्या यह नन्दजी का लाला है या कोई बड़ा देव है? व्रजवासी नन्दबाबा के आँगन में एकत्र हो गए हैं। एक कहता है, 'यह नन्दबाबा का पुत्र नहीं है।' दूसरा कहता है तुझे तो यह बात समझ में आई है, किन्तु मुझे तो इसके जन्म से ही यही शंका है नन्दबाबा गोरे हैं, यशोदाजी गोरी हैं। यह कन्हैया काला क्यों है? क्या नन्दबाबा किसी दूसरे का लड़का ले आए हैं?

सबने इस सभा में नन्दबाबा को बुलाया और पूछा, महाराज आप सच-सच बताइए। क्या यह कन्हैया आपका लड़का है?'' नन्दबाबा ने हाथ जोड़कर कहा, ''मैं अपनी गायों की शपथ खाकर कहता हूँ कि कन्हैया मेरा लड़का है। यशोदाजी की गोद में कृष्ण उस समय खेल रहे थे।

यहाँ यह बात यशोदाजी के कान में भी पड़ी। उसने कन्हैया से पूछा, "बेटा तू किसका लड़का है?" कन्हैया बोला कि मैं तेरा लड़का हूँ। यशोदाजी ने विनोद किया, "बेटा, तू मेरा लड़का नहीं है। मेरा लड़का तो दाऊजी है। यह सुनकर कन्हैया रोने लगा और बोला, "नहीं मैं तेरा लड़का हूँ और तू मेरी माता है।" यह सुनकर माता ने कन्हैया को अपनी गोद में उठा लिया और कहा, "बेटा ये सब सन्देह कर रहे हैं कि हम दोनों गोरे हैं। फिर तू काला कैसे हुआ?"

श्रीकृष्ण ने कहा, "माँ–इसमें तेरा दोष है। मेरा जन्म रात को बारह बजे हुआ। मैं तुझे जगाने लगा, किन्तु तू जग नहीं पाई। इसलिए मैं सबेरे तक अन्धकार में लोटता रहा। अन्धकार मुझसे लिपट गया। इसलिए मैं काला हो गया।"

यशोदामाता बड़ी भोली हैं। वे श्रीकृष्ण की बात सच मान लेती हैं। सन्त ज्ञानेश्वर महाराज महान् ज्ञानी थे। महाराज ने सोलह वर्ष का समय लगा कर गीता पर एक भाष्य लिखा है। इसके बाद उनसे परमात्मा का वियोग सहन न हुआ और उन्होंने जीतेजी समाधि ले ली। सत्वगुण के अतिशय बढ़ जाने पर जीव पंच महाभूत में कैद नहीं रह सकता, ईश्वर से पृथक नहीं रह सकता। ज्ञानेश्वरजी ने गीताजी पर लिखे गए भाष्य में एक स्थान पर लिखा है कि गीता के उपदेशक श्रीकृष्ण साँवले क्यों हैं? वे कहते हैं कि दूर से श्रीकृष्ण का अंग दर्शक को श्याम लगता है, किन्तु समीप जाने पर खबर पड़ती है कि वह अतिशय प्रकाशमय हैं।

एकनाथ महाराज ने भागवत पर भाष्य लिखते हुए कहा है कि श्रीकृष्ण श्याम क्यों है? लोभ का रंग पीला है, क्रोध का रंग लाल है, काम का रंग काला है। मनुष्य के कलेजे में काम रहता है। इसलिए कलेजा काला होता है। जो श्रीकृष्ण का ध्यान करता है, प्रेम से श्रीकृष्ण की सेवा करता है उसका कलेजा धीरे-धीरे उजला हो जाता है। भगवान उसके कलेजे के कालेपन को खींच लेते हैं और अपने श्रीअंग में रखते हैं। इसीलिए श्रीअंग थोड़ा श्याम है।

एकबार श्रीकृष्ण दूत बनकर दुर्योधन के यहाँ गए। दुर्योधन मूर्ख है, मालिक का अपमान करता है और पूछता है, "तुम नंद यशोदा के पुत्र हो फिर काले क्यों हो?" श्रीकृष्ण ने कहा, 'मैं गोरा था किन्तु तेरा काल होने के कारण काला होकर आया हूँ।'

कालोऽस्मि लोकक्षयकृतप्रवृत्तः

हरितनिकुंज में श्रीकृष्ण राधाजी के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। राधा-कृष्ण वृन्दावन में कभी लम्बे नहीं होते। हमेशा छोटे आकार के होते हैं। वहाँ नित्य लीला होती है। एकबार राधाजी ने कहा, 'श्यामसुन्दर आप सुन्दर तो हैं किन्तु काले क्यों हैं?' श्रीकृष्ण कहते हैं, 'राधे मैं तो तेरी शोभा बढ़ाने के लिए ही काला होकर आया हूँ।'

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।

वृज में खूब बरसात कर वृजवासियों को भयभीत करने के बाद इन्द्र राजा को पश्चात्ताप हुआ। इन्द्र क्षमायाचना करने आये, और उन्होंने प्रभु की स्तुति की–

विशुद्धंसत्त्वं तव धाम शान्तं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम्।
मायामयोऽयं गुणसम्प्रवाहो न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः।।

(१०-२७-४)

इसके बाद इन्द्र-पत्नी सुरभि ने भगवान् का खूब अभिषेक किया। अभिषेक से जो दूध इकट्ठा हुआ उसका आज भी वहाँ सुरभिकुण्ड है।

सत्ताईसवें अध्याय में गोवर्धन लीला समाप्त हुई है। अट्ठाईसवाँ अध्याय बहुत छोटा है, उसमें वरुणदेव की पराजय की कथा का वर्णन है।

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम्।
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत्।। (१०-२८-१)

सारा गोकुल गाँव एकादशी का व्रत करता है। नन्दबाबा रात्रि में जागरण करते हैं। एकादशी करना बहुत जरूरी है। उसे विधिपूर्वक करने से पाप नष्ट होते हैं।

एकबार मध्य रात्रि के समय नन्दबाबा अनजान से यमुनाजी में स्नान करने गए। वहाँ वरुण के सेवक थे। वे उन्हें पकड़कर वरुणदेव के पास ले गए। रात को दस बजे के बाद निषेध काल (प्रातः साढ़े तीन बजे तक) में स्नान नहीं करना चाहिए और खाना भी नहीं चाहिए। जो इस निषेध काल को भंग करता है, वह दूसरे जन्म में राक्षस होता है। क्योंकि यह समय राक्षसों का भोजनकाल है।

जब श्रीकृष्ण को यह पता लगा तब वे वरुण लोक में पहुँचे। वरुणदेव ने श्रीकृष्ण की पूजा की और नन्दजी से क्षमा माँगते हुए कहा, 'भूल से मेरे सेवक तुमको पकड़कर यहाँ ले आये हैं।' श्रीकृष्ण वहाँ से नन्दबाबा को भूलोक में ले आए हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण आदि देवों को पराजित किया है। वे देवों के देव परमात्मा हैं।

इसके बाद उन्नीसवें अध्याय में रासलीला प्रकरण का प्रारम्भ होता है। प्रभु रास में अलौकिक रस का दान करने वाले हैं, किन्तु जिसका मन लौकिक रस में फँसा है, उसे अलौकिक रस नहीं मिलता। जब जीवात्मा भक्ति रस में डुबकी लगाती है, तब उसे षड्रस पकड़ लेते हैं। खारा, खट्टा, कसैला, तीखा, कड़वा और मीठा रस, ये षड्रस हैं। जो षड्रस के आधीन है उसे भक्तिरस नहीं प्राप्त होता। परमात्मा कृपा करके जीव को षड्रस के बन्धन से मुक्त कराते हैं। अब रासलीला का आरम्भ हो रहा है। यह भागवत का दिव्य फल है।

६६– शुद्ध जीव और ईश्वर का मिलन

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥
तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः॥

(१०-२९-१/२)

परमात्मा श्रीकृष्ण का नाम-स्वरूप ही यह भागवत है। भागवत का एक-एक स्कन्ध परमात्मा का हृदय है। हृदय में ही पंच प्राण निवास करते हैं। रासलीला के पाँच अध्याय भागवत के पंच प्राण है। सन्तों ने माना है कि रासलीला भागवत का फल है। रासलीला की कथा गंगा-किनारे हुई है। कथा करने वाले श्री शुकदेवजी महाराज हैं। उनकी कमर पर करधनी नहीं हैं फिर तो लँगोटी कहाँ से होगी? जिसे सारा जगत् ब्रह्मरूप में दिखाई देता है उसे सारे जगत् में ज्ञान की अन्तिम कक्षा में पहुँचने के बाद बाकी केवल परमात्मा ही रहता है। साधारण ज्ञान में यह जगत् है और यह ईश्वर है, ऐसा भेदभाव होता है। ज़ब ज्ञान-निष्ठा परिपूर्ण हो जाती है, तब जगत्, जगत् नहीं रहता। वह ईश्वर बन जाता है। शुकदेवजी की ज्ञान-निष्ठा परिपूर्ण है। पहले यह कथा आ गई है कि सुन्दर देव कन्यायें और अप्सरायें सरोवर में स्नान करती हैं। उस समय शुकदेवजी महाराज की आँखें खुली हैं। उनको आँखें खुली होने पर भी यह पता नहीं लगा कि कोई स्त्री स्नान कर रही है। उनका हृदय गंगा के समान अति शुद्ध है। स्नान करती हुई कन्याओं को ऐसा प्रतीत हुआ कि इस सन्त को सच्चा आनन्द मिल रहा है। ये आनन्द में कितने निमग्न हैं! यह हमारी भूल हुई कि पशु-पक्षी जो सुख भोगते हैं, उस पर हमारा ध्यान गया है। शुकदेवजी के दर्शन से अप्सराओं को विलासी जीवन से घृणा हो गई थी। उन्होंने उनको कोई उपदेश नहीं किया था, केवल दर्शन ही हुआ था। जिनके दर्शन से काम का विनाश होता है वे महापुरुष यह कथा सुनाने बैठे हैं। इस कथा के श्रोता वे राजा परीक्षित हैं, जिनकी मृत्यु अत्यन्त नजदीक है। यदि रासलीला में काम-सुख का वर्णन हो, तो परीक्षित उसे कभी भी नहीं सुन सकते, शुकदेवजी महाराज कथा ही सुना सकते हैं। क्योंकि शुकदेवजी पूर्ण निष्काम हैं।

रासलीला में स्त्री और पुरुष के मिलन की कथा नहीं है, बल्कि जीव-ब्रह्म के मिलन का वर्णन है। 'गोपी' शब्द सुनने से प्रायः लोगों को स्त्री का शरीर दिखाई देता है। चीनी का करेला बनाया जाए तो वह देखने में करेला जरूर दिखाई देगा, उसमें कड़वापन नहीं होता। इसी प्रकार गोपियों का आकार कुछ स्त्री जैसा दिखाई देता है, किन्तु उनमें स्त्रीत्व नहीं है। आचार्यों ने 'गोपी'

शब्द के अनेक अर्थ किए हैं। 'गोपायती श्रीकृष्ण इति गोपी' अर्थात् जिसके शरीर में कृष्ण का स्वरूप गुप्त है, जिसके हृदय में श्रीकृष्ण को छोड़ कुछ नहीं है जो भगवद्-स्वरूप को ही अपने हृदय में रखता है उसे गोपी कहते हैं। साधारण मनुष्य अपने मन में संसार को रखता है। मन में जो संसार है, वही रुलाता है, वही सताता है। तुम संसार में भले रहो, किन्तु संसार को अपने मन में मत रखो। संत लोग संसार में रहते हैं, किन्तु संसार उनके मन में नहीं आता। संत जन अपने मन में परमात्मा का स्वरूप स्थिर करते हैं। गोपी ने मन से सर्वस्व त्याग कर दिया है और मन में परमात्मा का स्वरूप स्थिर कर लिया है। न तो गोपी नाम की कोई स्त्री, न कोई पुरुष और न कोई स्त्री- पुरुषोत्तर है। परमात्मा के दर्शन की, मिलन की तीव्र इच्छा ही गोपी है। भागवत में ही 'गोपी' शब्द का अर्थ परमात्मा को प्राप्त करने की तीव्र इच्छा बताया गया है। इस जीव को प्रभु के दर्शन की इच्छा ही नहीं होती। मनुष्य का मन ऐसा मैला है कि इसे संसार सरस लगता है। मनुष्य का मन संसार में उलझा हुआ है। इसे यह इच्छा नहीं होती कि मुझे भगवान् का दर्शन हो अथवा मुझे परमात्मा से मिलना है। प्रभु-मिलन की तीव्र भावना ही गोपी है।

आचार्यों ने गोपी शब्द का अर्थ इस प्रकार किया है, ''गोभिः पीबति इति गोपी'' अर्थात् गोभिः इन्द्रियभिः भक्ति रसं पीबति। अर्थात् जो प्रत्येक इन्द्रिय से भक्तिरस का पान करता है। भक्ति अलौकिक दिव्य रस है। जो आँख से भक्ति करे, कान से भक्ति करे, मन से भक्ति करे, जीभ से भक्ति करे, जो अपनी प्रत्येक इन्द्रिय को भक्तिरस में डुबो दे उसे गोपी कहते हैं। जब प्रत्येक इन्द्रिय से भक्ति फूटती है, तब देहाभिमान छूटता है। गो-इन्द्रियाणि पाति इति गोपः अर्थात् इन्द्रियों को भक्तिरस से पुष्ट करना है। वासना का विनाश करने के बाद प्रेम-मार्ग में प्रवेश मिलता है। प्रेम और मोह दोनों का आकार समान है, किन्तु दोनों में बहुत अन्तर है। मोह में सुख भोगने की इच्छा होती है, किन्तु प्रेम-मार्ग में प्रियतम के लिए सर्वसुख का त्याग करना पड़ता है। मोह प्रेम माँगता है और प्रेम प्रेम देता है। प्रेम सारी वासनाओं को नष्टकर, प्रतिकूल सारे विषयों में से इन्द्रियों को हटाकर अनुकूल परमात्मा के प्रति अपने भावों को मोड़ता है। आचार्यों ने गोपी के अनेक भेद किए हैं—नित्यसिद्धा, साधनसिद्धा, ऋषिरूपा, अनन्यपूर्वा, अन्यपूर्वा इत्यादि।

रासलीला में स्त्री और पुरुष के मिलन की कथा नहीं है। न तो गोपी कोई स्त्री है और न श्रीकृष्ण कोई पुरुष। श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम परमात्मा हैं, गोपी शुद्ध जीव है और रासलीला शुद्ध जीव तथा ईश्वर के मिलने की कथा है। यही भागवत का फल है। भागवत में वर्णन आता है, ''गोपियों के शरीर ने प्रभु का स्पर्श किया ही नहीं, जब शरीर का विचार किया जाता है, जब शरीर का स्पर्श होता है तभी काम पैदा होता है। गोपियों के शरीर ने परमात्मा का स्पर्श किया ही नहीं।

मल-मूत्र भरे हुए शरीर के साथ साधु-सन्त भी रमण नहीं करते, फिर परमात्मा क्या मल-मूत्र भरे हुए शरीर से क्रीड़ा करेंगे? परमात्मा का स्वरूप आनन्दमय है। निराकार आनन्द निराकार श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुआ है। हमारे शरीर में माँस-रुधिर है। ठाकुरजी का स्वरूप आनन्दमय है। जीव को जो शरीर मिलता है, वह पूर्वजन्म की वासना के अनुसार ही मिलता है। परमात्मा अपनी इच्छा से शरीर धारण करते हैं।

निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार।

भगवान् की तरह गोपियों का स्वरूप भी अलौकिक, अप्राकृतिक और दिव्य है। जिस शरीर में मल नहीं जिस शरीर में मूत्र नहीं ऐसा गोपियों का शरीर भगवान् का सतत ध्यान करने से भगवान् जैसा दिव्य बन गया है। गोपियों का पंच-भौतिक शरीर श्रीकृष्ण-वियोग में भस्म हो गया है। वियोग बहुत बड़ी अग्नि है। पतिव्रता स्त्री-पतिदेव के परदेश में होने पर वियोग में व्यथित होती है। जिस प्रकार वियोग पतिव्रता स्त्री को पति की ओर मोड़ता है उसी प्रकार भक्त भगवान् के वियोग में अपने को भस्म कर देता है। गोपियों ने परमात्मा का अलौकिक दिव्य स्वरूप प्राप्त किया है। गोपियों को श्रीकृष्ण के दर्शन के बाद प्रेम जगा है। प्रेम का आरम्भ द्वैत से होता है किन्तु प्रेम की समाप्ति अद्वैत में होती है। आरम्भ में प्रेमी और प्रियतम दोनों अलग होते हैं, किन्तु अतिशय प्रेम बढ़ने पर ये दोनों अलग नहीं रह सकते और मिट कर एक हो जाते हैं। प्रेम का अर्थ है 'मैं' मिटाकर 'तू' हो जाना। साधारण प्रेम में 'मैं' और 'तू' दोनों अलग है। अतिशय प्रेम बढ़ने पर 'मैं' अलग नहीं रह सकता, वह 'तू' में मिल जाता है। गोपियाँ अब श्रीकृष्ण से अलग नहीं रह सकतीं। गोपियों का प्रेम अन्तिम कक्षा में पहुँच गया है। रासलीला में गोपी और श्रीकृष्ण एक हो गए हैं। यह अलौकिक दिव्य कथा है। भागवत परमहंसों की संहिता है। प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर लिखा है कि यह परमहंसों की संहिता है। परमहंस वह है जो परमात्मा के साथ एकाकार हो गया है। रासलीला की कथा सुनने के पहले तीन सिद्धान्त ध्यान में रखने चाहिए। प्रथम यह कि यह रमण शरीर के साथ नहीं है, दूसरा यह शुद्ध जीव-ईश्वर की दिव्य लीला है और तीसरा यह कि इसमें स्त्री-पुरुष के मिलन की इच्छा नहीं है। गोपी में स्त्रीत्त्व है ही नहीं। कदाचित् आप यह सोचेंगे कि महाराज, क्या यह आप अपनी तरफ से बनाकर कहते हैं या भागवत में लिखा है? वास्तव में यह भागवत में ही लिखा है। इसको वही समझ सकता है, जो अच्छी तरह विचार करे और जिसे संस्कृत भाषा का ज्ञान हो। भागवत के श्लोक से सिद्ध हुआ है कि गोपी में स्त्रीत्त्व रहा ही नहीं क्योंकि शुकदेवजी ने किसी गोपी का नाम लिया ही नहीं— अन्याः कश्चिताः .... नामरूप की पूर्ण विस्मृति होने के बाद ही गोपी-भाव जगता है। गोपी-भाव एक सर्वोच्च भाव है। आत्मा तीनों

शरीरों से भिन्न है। बाहर से जो शरीर दिखाई दे रहा है उसे स्थूल शरीर कहते हैं। अन्दर सूक्ष्म शरीर है जिसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन और बुद्धि ये सत्रह तत्व होते हैं। सूक्ष्म शरीर में मन के अन्दर अनेक जन्मों की जो वासनाएँ होती हैं, उन्हीं के कारण उसे शरीर कहा गया है। जिस दीपक में तेल नहीं होता वह बुझ जाता है। उसी प्रकार जिस मन में कोई वासना नहीं होती वह शांत हो जाता है। मन वासना से ही जीता है। बिना संकल्प के मन नहीं जी सकता। हमारे जैसे साधारण मनुष्य यह कथा कहने के योग्य नहीं हैं और हमारे जैसे साधारण मनुष्य यह कथा सुनने योग्य भी नहीं हैं। यह सर्वोच्च भाव है। मन के पूर्ण निष्काम होने के बाद अब गोपियाँ परमात्मा से अलग नहीं रह सकतीं। यह शुद्ध मिलन की कथा है। गोपियाँ ऋषिरूपा हैं। वेदाचार्यों ने गोपियों को अनेक प्रकार माना है। पूर्वजन्म के महान्-महान् ऋषि गोपी बनकर आए हैं। ऋषि लोग हजारों वर्षों तक तपश्चर्या करते हैं, किन्तु काम बहुत बलवान है, वह उन्हें सताता है। काम किसी को छोड़ता नहीं, किसी की परवाह नहीं करता, जंगल में रहकर कंदमूल, पान, फल और पत्ते खाने वाले को भी काम त्रास देता है तो स्त्री को प्यार करने वाले की तो क्या दशा होती होगी? जंगल में रहने वाले ऋषियों को भी यह काम सताता है। बेचारे ऋषि थक जाते हैं। यदि काम शरीर से किसी प्रकार निकल जाता है तो भी बुद्धि में सोया हुआ होता है। ऋषि विचार करते हैं, कि बुद्धि में से काम किस प्रकार बाहर निकले? वही काम अब वे श्रीकृष्ण को अर्पण करती हैं।

यदि काम का विषय कोई स्त्री या पुरुष हो तो वह पतन करता है और यदि परमात्मा उसका विषय हो तो जीव निष्काम बन जाता है। भुने और उबाले हुए बीज में से जिस प्रकार अँकुर नहीं फूट सकता उसी प्रकार निष्काम परमात्मा को अर्पण किए गए काम से विकार उत्पन्न नहीं होता। काम के सकाम होने पर विकार-वासना जागृत होती है और उसे निष्काम में रखने पर विकार-वासना का विनाश होता है। सकाम का स्मरण करने पर काम जागृत होता है, किन्तु निष्काम का चिन्तन करने पर निष्काम बना जा सकता है। गोपियाँ ऋषिरूपा हैं। उन्होंने निश्चय किया है कि श्रीकृष्ण को काम अर्पित करूँगी। काम एक काँटा है। काँटे को काँटे से ही निकालना पड़ता है। जंगल में चलते-चलते यदि पैर में काँटा धँस जाता है तो उसे निकालने के लिए सूई कहाँ मिलेगी? इसलिए पैर में जो काँटा धँसा था उसे दूसरे काँटे द्वारा निकालने के बाद दोनों काँटे फेंकने पड़ते हैं। काम एक काँटा है। इसका विनाश काम से ही करना है। तुम यह इच्छा रखो कि भगवान् से मिलना है। विचार करो कि तुम्हें किसी मनुष्य से मिलने पर सुख मिलता है, तो यदि भगवान् से मिलो तो कैसा आनन्द प्राप्त होगा! जो एक बार परमात्मा से मिलता है वह उससे अलग नहीं हो सकता। वह परमात्मा के साथ एकाकार हो जाता है। ऋषिरूपा गोपियाँ काम को श्रीकृष्ण को अर्पण

करती हैं। बड़े-बड़े ऋषि गोपी बनकर आए हैं। गोपियाँ चार-पाँच वर्ष की थीं, तभी से उनकी इच्छा है कि श्रीकृष्ण उनके पति हों। इसके लिए गोपियों ने उन दिनों में कात्यायनी व्रत किया था।

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम्॥ (१०-२२-१)

ऋषिरूपा गोपियों के लिए भागवत में कुमारिका शब्द प्रयोग किया गया है। संस्कृत भाषा में चार-पाँच वर्ष की कन्या को कुमारिका कहा गया है। पाँच वर्ष पूरा होने पर छठा वर्ष लगते ही कन्या कुमारिका नहीं कही जा सकती। ये गोप-कन्यायें चार-पाँच वर्ष की हैं और आशा रखती हैं कि श्रीकृष्ण पति होकर मिलें। चार-पाँच वर्ष की कन्या को भला क्या खबर पड़े कि पति क्या और पत्नी क्या? श्रीकृष्ण पतिरूप में मिलें ऐसी अपेक्षा रखने का अर्थ यह है कि मेरा सम्बन्ध किसी जीव से न हो। मुझे परमात्मा से मिलना है और परमात्मा के साथ एकाकार बनना है। ये कन्याएँ अविषयान्न का भोजन करती हैं, यमुनाजी में स्नान करती हैं रेती से पार्वती की मूर्ति बनाती है। पार्वती ब्रह्मविद्या का स्वरूप हैं। वह परमात्मा से मिलन कराती हैं। वे उस माता पार्वती की स्थापना कर पूजा कर प्रार्थना करती हैं कि मुझे परमात्मा से मिलना है और श्रीकृष्ण से एकाकार होना है। वे चार-पाँच वर्ष की कन्याएँ है। ये अपना वस्त्र यमुनाजी के किनारे रखती हैं और नग्न स्नान करती हैं। नग्न स्नान करने वाला तीर्थदेव का अपमान करता है और उसे पाप लगता है। भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचते हैं, उनके वस्त्र उठाकर कदम्ब वृक्ष पर रख देते हैं और कहते हैं तुम बाहर आओ और अपने वस्त्र पहनकर ले जाओ। कुछ लोगों को इस लीला में अश्लीलता दिखाई देती है। वास्तव में यह लीला शुद्ध है। ध्यान में रखकर विचार करने पर पता लगेगा कि वहाँ श्रीकृष्ण गोपियों की नग्न काया देखने नहीं आए हैं। यमुनाजी के जल में श्रीकृष्ण जलस्वरूप बनकर निवास करते हैं, गोपियों से मिले ही हैं। गोपियों पर वासना का पर्दा पड़ा होने के कारण मिलन का अनुभव नहीं होता था। यह समस्त जगत् भगवान् में स्थित है। जगत् का आधार परमात्मा हैं। इसलिए वह सबमें सम्मिलित हैं। यदि ईश्वर एक से मिले और दूसरे से न मिले तो उसे सर्वव्यापक कौन माने? सर्वव्यापक तो सबका आधार होता है। वे भगवान् सबसे मिले ही हैं। जीव और ईश्वर तो साथ ही होते हैं। ईश्वर जीव को देखता है, किन्तु जीव ईश्वर को देख नहीं सकता। जीव और ईश्वर के बीच एक परदा है। परमात्मा सबसे मिले हुए हैं और वह मिला हुआ भगवान् ही मिलता है।

तत्त्व दृष्टि से विचार करने पर परमात्मा सबसे मिला हुआ दिखाई देता है। गाँव में रहने वाले और बहुत कम पढ़े लिखे दस आदमी एक बार घूमने निकले। उनके रास्ते में एक नदी आई। वे

सब नदी पार कर दूसरे किनारे पहुँचे। इसके बाद एक बोला कि नदी में कोई डूबा तो नहीं? कोई खो तो नहीं गया? हम दस आदमी रवाना हुए थे, उनको गिन लो। गणना करने पर दस की संख्या पूरी नहीं होती, नौ ही होते हैं। एक के बाद एक इस प्रकार सबने गणना की, किन्तु नौ ही संख्या हुई! यह देखकर सब रोने लगे और कहने लगे कि हम दस निकले थे उसमें से एक कम हो गया। दूसरे लोग पूछते हैं कि कौन डूब गया। इस पर वे कहते हैं कि मुझे खबर नहीं पड़ती। यहाँ तो सब दिखाई देते हैं, किन्तु गिनने पर एक कम होता है। उस रास्ते से एक सन्त जा रहे थे। सन्त ने गिनकर देखा, तो संख्या पूरी थी। बात यह हुई कि कम पढ़े-लिखे वे लोग गणना में अपने को शामिल नहीं करते थे। इस कारण दस की संख्या पूरी नहीं होती थी। वह दसवाँ मिल गया। वह मिला ही था अथवा नदी में डूबा हुआ मिला? वास्तव में दसवाँ कहीं गया नहीं था, वह उनके मण्डल में ही था। वह अज्ञान के कारण दिखाई नहीं देता था। उसी प्रकार हम में मिले हुए या हमारे अन्दर निवास करने वाले परमात्मा ही हमें मिलते हैं। इस प्रकार वे सबसे मिले ही होते हैं। वासना रूपी अज्ञान अथवा माया का पर्दा होने के कारण जीव को ईश्वर का अनुभव नहीं होता। शरीर को वस्त्र और आत्मा को वासना ढँकती है। जिस प्रकार सामान्य बादल सूर्य को ढँकता है उसी प्रकार वासना परमात्मा को ढँकती है। परमात्मा सर्वत्र है, किन्तु उसका दर्शन नहीं होता। प्रभु ने वस्त्रहरण द्वारा वासना का पर्दा दूर किया है।

जप करने से, तप करने से, सत्कर्म करने से इन्द्रियों में से काम निकलता है, किन्तु बुद्धि में स्थित काम सद्गुरु दूर करते हैं। सद्गुरु परमात्मा के दर्शन कराते हैं। इसलिए क्या वह दूर देश में किसी स्थल पर रहने वाले परमात्मा का दर्शन कराते हैं? वास्तव में ईश्वर तो जीव के साथ ही होता है, किन्तु माया के पर्दे के कारण उस जीव को ईश्वर का अनुभव नहीं होता। सद्गुरु माया का आवरण दूर करते हैं। सद्गुरु भी भगवान् हैं। मनुष्य चाहे ज्ञानी हो या बुद्धिमान हो? किन्तु बुद्धि से काम नहीं निकलता। जब कोई महापुरुष कृपा करता है, तभी काम निकलता है और तभी जीवात्मा को परमात्मा का अनुभव होता है। प्रभु ने गोपियों का वासना रूपी पर्दा दूर किया है और गोपियों से कहा है, ''यह तुम्हारा आखिरी जन्म है। तुम शरद पूर्णिमा की रात्रि को मिलना। फिर तुम्हें जन्म लेने का अवसर नहीं आयगा।''

गोपियों की संख्या अधिक है, किन्तु उनमें सबको रास में प्रवेश नहीं मिला है। जिसका अन्तिम जन्म है, जिसकी वासना का पर्दा प्रभु ने दूर किया है और जिस जीव को परमात्मा ने अपनाया है, वही जीव रास में जाता है। यह लीला दिव्य है, मधुर है।

भागवत के टीकाकार श्रीधर स्वामी ने अपनी टीका में लिखा है कि भागवत परमहंसों की संहिता है। परमहंस निवृत्ति-प्रधान होते हैं। निवृत्ति धर्म का एक फल है—आत्मा और परमात्मा का मिलन है। श्री श्रीधर स्वामी ने रासलीला को काम-विजय लीला या मदन-मानभंग लीला कहा है। रासलीला श्रीकृष्ण का काम-विजय है। ब्रह्मादि देवों का पराभव करने से कामदेव का अभिमान बहुत बढ़ गया है। वह अपने को ईश्वर समझने लगा हैं काम का नाम ही महारथी है। अनेक देवों और ऋषियों को मारने से जिस कामदेव का अभिमान बढ़ गया है, वह श्रीकृष्ण से युद्ध करने आया है। कामदेव कहता है कि मैं इस बात को भूला नहीं हूँ, यह मुझें याद है कि आपने रामावतार में मुझे हराया है। रामावतार में कामदेव ने अनेक बार ऐसा अवसर उपस्थित किया है, जिससे रामजी की आँख में अथवा उनके मन में विकार उत्पन्न हो, किन्तु वे तो निष्काम हैं, कामदेव ने कहा कि रामावतार में मेरी हार तो हुई, किन्तु मेरे मन में सन्देह रह गया है। रामावतार में आपका नियम था कि किसी स्त्री का स्पर्श न करूँगा, प्रत्येक स्त्री में मातृभाव रखूँगा। आपने मर्यादा में रहकर मुझें हराया। वास्तव में मर्यादा का बन्धन ईश्वर के लिए नहीं है। वह जीव के लिए है। आपको सब ईश्वर मानते हैं। इसलिए आपको बन्धन में रहने की क्या आवश्यकता है? श्रीकृष्ण ने कहा कि भाई, तेरी क्या इच्छा है? कामदेव ने कहा, ''मेरी इच्छा है कि शरद ऋतु हो, पूर्णिमा हो, मध्यरात्रि का समय हो उस समय किसी स्त्री को स्पर्श न कर उसमें मातृ-भाव रखने की मर्यादा आप न रखिये। उस समय आप स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कीजिए और मैं आकाश में रहकर बाण मारूँ। यदि आपके मन में विकार पैदा हो, तो मैं ईश्वर होऊँगा। उस समय आप निष्काम रूप ईश्वर नहीं माने जाएँगे। काम की मार खाने वाला जीव है और जो काम की मार नहीं खाता, वह ईश्वर है।

प्रभु ने कहा कि मैं यह शर्त मानने को तैयार हूँ। प्रभु इसीलिए शरद पूर्णिमा की मध्य रात्रि को गोपियों के साथ क्रीड़ा करते हैं। कामदेव आकाश में खड़ा है और श्रीकृष्ण को बाण मारता है। श्रीकृष्ण के चरण में गंगाजी है, और भगवान् शिवजी के माथे पर भी गंगाजी हैं। शिवजी और श्रीकृष्ण ज्ञान-स्वरूप हैं। उनका काम क्या बिगाड़ सकता है? काम अनेक प्रयत्न करने पर भी श्रीकृष्ण को अपने आधीन नहीं बना सका। इसलिए उसे विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण भगवान् हैं। वह अब श्रीकृष्ण की शरण में आया है। श्रीकृष्ण ने मदन का पराभव किया। इसलिए उनका नाम मदनमोहन पड़ गया। मदन का अर्थ है काम। अर्थात् काम से ही काम का नाश करना। महापुरुष लौकिक काम को अलौकिक काम से मारते हैं। मुझे किसी मनुष्य से नहीं मिलना है, केवल परमात्मा से मिलना है और उनके साथ एकाकार होना है ऐसी प्रस्तावना कर चुकने के बाद आगे कथा आरम्भ होती है।

प्रभु ने गोपियों से कहा था, ''तुम्हारा यह अन्तिम जन्म है। मैं तुमसे शरद पूर्णिमा की रात को मिलूँगा।'' शुकदेवजी महाराज को समाज के सामने रासलीला की कथा कहने में थोड़ा संकोच हुआ। वे विचारने लगे कि मैं रासलीला की कथा कहूँ या नहीं। क्योंकि समाज में सब अधिकारी जीव नहीं होते। उन्होंने राधाजी का स्मरण किया। क्योंकि वे पूर्वजन्म में राधाजी की निकुँज के शुक (तोता) थे। निकुँज में गोपियों के साथ परमात्मा क्रीड़ा करते हैं। शुकदेवजी सारे दिन श्रीराधे-राधे कहते हैं। यह सुनकर श्रीराधाजी ने हाथ उठाकर तोते को अपनी ओर बुलाया। तोता आकर राधाजी के चरणों की वन्दना करता है। वे उसे उठाकर अपने हाथ में लेती हैं। तोता फिर श्रीराधे-राधे-राधे बोलने लगा। राधा ने कहा कि अब तू 'राधे-राधे' न कहकर 'कृष्ण-कृष्ण' कह। राधेति मा वद–कृष्ण-कृष्ण बोल। इस प्रकार राधाजी तोते को समझा रही हैं। उसी समय श्रीकृष्ण वहाँ आ जाते हैं। राधाजी ने उनसे कहा कि यह तोता कितना मधुर बोल रहा है! और उसे उनके हाथ में दे दिया। इस प्रकार राधाजी ने शुकदेवजी का ब्रह्म के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध कराया है। इसलिए शुकदेवजी की सद्‌गुरु श्रीराधाजी हैं। राधाजी ही सद्‌गुरु हैं। इसलिए उन्होंने भागवत में उनका नाम स्पष्ट रूप से नहीं लिया है। सद्‌गुरु का मन से स्मरण कर 'सद्‌गुरु देव की जय' का उच्चारण करना चाहिए। उनका नाम नहीं लेना चाहिए। मर्यादा का भंग नहीं करना चाहिए। यदि पत्नी अपने पति का नाम स्पष्ट रूप से ले, तो पति की आयु घटती है, ऐसा शास्त्रों में वर्णन आता है। इसीलिए श्रीराधाजी का नाम भागवत में स्पष्ट रूप से नहीं मिलता। उनका नाम गुप्त रीति से दो-तीन स्थानों पर लिया गया है। क्योंकि शुकदेवजी को सभा में उनका नाम लेने में संकोच होता है। वे विचार करते हैं कि रासलीला की कथा सुनाऊँ या नहीं सुनाऊँ? उन्होंने राधाजी का स्मरण किया। राधाजी ने कहा, ''बेटा, तू कथा सुना किन्तु कथा विवेक से सुनाना।

भगवानपि ता रात्रीः

परिपूर्ण आनन्दमय श्रीकृष्ण को कोई सुख भोगने की इच्छा ही नहीं होती। प्रभु ने यह लीला गोपियों को परमानन्द देने के लिए की है और योगमाया का आश्रय लिया है। भगवान् ने आज क्रीड़ा करने की इच्छा की है, बाँसुरी बजाई है, गोपियों को बुलाया है। बाँसुरी की ध्वनि गोपियों के कान में पड़ती है। गोपियाँ परमात्मा से मिलने की तीव्र भावना लेकर दौड़ पड़ती हैं। तुमको चाहिए कि भगवान से मिलने के लिए दौड़ते-दौड़ते नहीं तो रोज थोड़ा चलते-चलते अवश्य जाओ। ऐसा निश्चय करो कि इस जन्म में मुझे उनके दर्शन करने हैं, उनके चरणों तक पहुँचना है। धीरे-धीरे भक्ति बढ़ाना, संयम बढ़ाना है। उस समय गोपियाँ जो काम कर रही थीं, उसे छोड़कर दौड़ पड़ती हैं?

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः॥ (१०-२९-७)

उस समय एक गोपी घर लीप रही थी। उसके हाथ में मिट्टी लिपटी हुई थी। उसे इसका ध्यान-भान ही नहीं रहा। वह दौड़ने लगी। एक गोपी घर में शृंगार कर रही थी। उसी समय उसे बाँसुरी की आवाज सुनाई दी। उसने सोचा कि भगवान् मुझे बुला रहे हैं। वह जल्दी में काजल लगाने के बदले कंकु लगाकर उधर दौड़ी। यदि गोपी में स्त्रीत्व होता, तो वह ऐसा कदपि नहीं करती। हम दर्पण में मुँह देखकर सब ठीककर बाहर निकलते हैं। 'व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः' शब्द से सिद्ध होता है कि गोपियों में स्त्री-भाव नहीं है। रासलीला में किसी स्त्री को प्रवेश नहीं मिला है। उसमें तो शुद्ध जीव ही जा सकता है, जिसके वासना का पर्दा दूर हो गया हो, जिसमें लौकिक नाम-रूप की पूर्ण विस्मृति हो।

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः।
ब्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम्॥ (१०-२९-१८)

भगवान् गोपियों से कहते हैं कि तुम बहुत भाग्यशाली हो। 'महाभागा' हो बहुत भाग्यशाली वह है, जिसे भगवान् से मिलने की तीव्र इच्छा हो। जो पैसा कमाकर सुखी होता है, वह भाग्यशाली नहीं है। जिसके सिर पर काल सवार है, जिसे मृत्यु का भय है, वह कैसे भाग्यशाली हो सकता है? भाग्यशाली वह होता है, जो परमात्मा से मिलने के लिए आतुर हो। भगवान् कहते हैं, ''तुम बड़ी भाग्यशाली हो। तुम इस समय क्यों आईं? सुन्दर रात्रि है। इसमें तुम वृन्दावन की शोभा देखो। इसके बाद अपने घर जाओ, अपने पति के पास जाओ।'' इस पर आप शान्ति से विचार करेंगे तो ध्यान में आएगा कि ऐसा तो आपके घर में भी होता है। आप कल स्नानकर पवित्र आसन पर बैठिए और मन में ऐसा संकल्प कीजिए कि आज मैं ध्यान के साथ जप करते हुए तन्मय हो जाऊँ। आज भगवान् प्रकट होंगे। मैं भगवान् को वन्दन करूँगा। भगवान् मुझे उठाकर छाती से लगा लेंगे। आज मैं अपने भगवान् से मिलने वाला हूँ।''

इस प्रकार भगवान् से मिलने की इच्छा करते हुए जब उनसे मिलने जाओगे, तब वे तुम्हारी परीक्षा करेंगे। तुमसे कहेंगे कि तू मेरे पीछे क्यों पड़ा है। तू संसार में जा। तुझे कोई पुरुष सुख देगा, कोई स्त्री सुख देगी। श्रीकृष्ण किसी को सुख नहीं देते। वे आनन्द देते हैं। यह संसार सुख-दुःख से भरा हुआ है। जो सुख देता है, वही दुःख का कारण बनता है। यहाँ न सुख है, न दुःख है। श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। सभी को आनन्द देते हैं। उन्होंने गोपियों से कहा कि तुम्हें सुख तुम्हारे पति देंगे। तुम उनके पास जाओ। गोपियाँ कहती हैं कि जिसे सुख की इच्छा है, वह पति या पत्नी के

पास जाएगा। जिसे सुख की इच्छा नहीं है, वह परमात्मा के पास आता है। हमें कोई सुख नहीं चाहिए। श्रीकृष्ण गोपी- वृन्द को स्त्री-धर्म समझाते हैं और घर जाने की आज्ञा देते हैं।

दु:शीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी।। (१०-२९-२५)

गोपी से कहा है कि पति रोगी हो, दरिद्री हो तो भी उसमें परमात्मा की भावना रखकर सेवा करने से स्त्री का यह लोक सुधरता है और परलोक भी सुधरता है। रात्रि काल में तुम क्यों बाहर आती हो? तुम्हारा पति तुम्हारी प्रतीक्षा करता होगा। पति में परमात्मा की भावना रखो। श्रीकृष्ण ने गोपियों को घर जाने की आज्ञा दी है। शास्त्र में लिखा है कि पुरुष को जल्दी मुक्ति नहीं मिलती; किन्तु स्त्री को भगवान् जल्दी मिल जाते हैं। स्त्री को भगवान् के लिए इधर-उधर भटकने की जरूरत नहीं है। उसका हृदय कोमल होता है। यदि स्त्री घर के एक-एक जीव में ईश्वर का भाव रखकर उसकी सेवा करे और भगवान् का स्मरण करे, तो उसे अनायास ही मुक्ति मिल जाती है। क्यों कि उसका हृदय अत्यन्त कोमल होता है। पुरुष अपने व्यवसाय में जो पाप करता है, उसका पूरा फल उसे अकेले ही भोगना पड़ता है। यदि वह पैसे से कोई दान पुण्य करे, तो उसमें स्त्री का भी आधा भाग होता है। जो स्त्री अपने पति में परमात्मा का भाव रखकर उसकी सेवा करती है, उसे ही पुण्य मिलता है। भगवान् गोपियों से कहते हैं, ''स्त्री का इधर-उधर भटकना ठीक नहीं है। फिर तुम सब क्यों इधर-उधर भटक रही हो?'' गोपियाँ उसका उत्तर देती हैं कि भगवान् की हार हो गई है। श्रीकृष्ण की कभी हार नहीं हुई है; किन्तु गोपियों से बातचीत करने में भगवान् की हार हो गई है। गोपियों का एक-एक शब्द दिव्य है।

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान् देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून्।।
यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरंग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम्।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा।।
कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन् नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैःकिम्।
तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या आशां भृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र।।
(१०/२९/३१-३२-३३)

श्रीकृष्ण गोपियों को स्त्री-धर्म समझाते हैं और गोपियाँ उसका उत्तर आत्मधर्म से देती हैं। वे भगवान् से कहती हैं कि जो स्त्री होगी, वह स्त्री-धर्म का पालन करेगी। जो स्त्री न हो, उसे स्त्री-धर्म का पालन करने की क्या आवश्यकता है? मेरा मन रिक्त है। मैंने सबका त्याग कर दिया

है और स्त्रीत्व का भी त्याग कर दिया है। गोपी-वृन्द में स्त्रीत्व नहीं है। वे 'संत्यज्य सर्व विषयान्–समझकर कर सब कुछ छोड़ चुकी हैं। श्रीकृष्ण के बिना सब कुछ दुःख रूप है ऐसा समझकर जो बुद्धि पूर्वक त्याग किया जाये वह सच्चा त्याग है। जब हाथ में पैसा नहीं होता, सट्टा में सब कुछ चला जाता है, तब कुछ लोग ज्ञान की बात करते हैं, वैराग्य की चर्चा में पड़ते हैं कि जगत् में सब खराब है। जब उनके हाथ में पैसा था, तब तो उनकी अक्ल ठिकाने न थी और अब त्याग की बात करते हैं; अज्ञानपूर्ण त्याग करते हैं। गोपियाँ सब बातें समझकर त्याग करती हैं। खाना न मिलने पर भिखारी एकादशी की बात करे, तो उचित नहीं है। वास्तव में उसे खाना नहीं मिला है। इसलिए उसने भोजन का त्याग किया है।

गोपियों ने कहा कि हमारे लिए यह बात नहीं कही जा सकती। क्योंकि हमने खूब समझकर सब कुछ छोड़ा है। श्रीकृष्ण के बिना सब कुछ दुःख रूप ही है। ऐसा मानकर हमने सर्वस्व का त्याग किया है और आपके चरणों का सहारा लिया है। हे नाथ! आप निष्ठुर मत बनिए।

प्रभु ने कहा कि मैं निष्ठुर नहीं हूँ। मैं तुम्हारा प्रेम जानता हूँ, किन्तु मुझे धर्म बहुत प्रिय है। तुम अपना धर्म छोड़ रही हो। अपने पति की सेवा करना तुम्हारा धर्म है। एक गोपी ने कहा कि महाराज, आपने मुझे अपना धर्म समझाया। अब यह समझाइये कि धर्म का फल क्या होता है? अथवा धर्म करने से क्या होता है? श्रीकृष्ण उन्हें समझाते हैं कि प्रभु ने जिसका ज़ो धर्म निश्चित किया है उसे फल की अपेक्षा छोड़कर पालन करके अपना कर्तव्य निभाना चाहिए, इससे उसका पाप नष्ट हो जाता है। धर्म का फ़ल है पाप का विनाश करना। यह सुनकर गोपियों ने पूछा कि पाप का विनाश होने के बाद क्या होता है? यदि धर्म का फल पाप का विनाश है तो पाप के नाश का फ़ल क्या है? प्रभु ने कहा कि जिसके पाप का विनाश होता है, उसका मन शुद्ध हो जाता है। अर्थात् पापनाश का फल है–मन की शुद्धि। गोपियों ने कहा कि अब यह बताइए कि मन की शुद्धि का क्या फल होता है? भगवान् ने कहा कि जिसका मन शुद्ध होता है उसे परमात्मा मिलता है। गोपियों ने कहा कि हमारा मन शुद्ध है। इसीलिए तो हमें आप मिले। यदि धर्म का फल पापनाश है, पापनाश का फल मन-शुद्धि है, मन-शुद्धि का फल परमात्मा की प्राप्ति है तो परमात्मा के मिलने के बाद धर्म पालने की क्या आवश्यकता है? फल हाथ में आने के बाद कोई वृक्ष को नहीं पकड़ने जाता। परमात्मा फल-स्वरूप मिलता है। साधन की अपेक्षा साध्य के हाथ में आ जाने पर साध्य छोड़कर साधन कौन पकड़ने जाए? आज़ तक हमने धर्म का बहुत पालन किया और हमारा मन शुद्ध हो जाने पर आप मिले हैं। मन की शुद्धि के बिना परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन का लाभ मिल ही नहीं सकता। अब आपको छोड़कर हमें धर्म पालने की जरूरत

नहीं रहती। आपने हमें धर्म का जो उपदेश दिया है उसका हमने ठीक तरह पालन किया। हमारा मन शुद्ध हो गया है। इसीलिए आपके दर्शन हुए हैं। आपको छोड़ हम धर्म पालने के लिए कहाँ जाएँ? हमने आपके चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण किया है। नाथ! हम पर कृपा कीजिए।

प्रभु ने गोपियों से कहा कि सखियो! क्या तुम मुझे मानती हो? सखियों ने कहा 'हाँ हम आपको मानती हैं।' भगवान् ने कहा, 'तो मेरी आज्ञा है कि तुम यहाँ से अपने घर जाओ। नौकर का अधिक बोलना अच्छा नहीं माना जाता। नौकर का एक ही धर्म है कि वह मालिक की आज्ञा का पालन करे। तुम्हारे पति के शरीर में भी मैं ही निवास करता हूँ। क्या मैं यहाँ जो खड़ा हूँ, उतना ही हूँ? मैं सबका आधार हूँ। तुम अपने पति के शरीर में विराजने वाले परमात्मा से मिलो।

यह सुनकर गोपी ने बहुत सुन्दर जबाब दिया, ''पति के शरीर में परमात्मा है और पत्नी के शरीर में जो परमात्मा है, वह माया से ढँका हुआ है। पति–पत्नी में विद्यमान परमात्मा वासना के स्पर्श से दूषित है। आप वासना रहित शुद्ध परमात्मा हैं, पूर्ण निष्काम हैं। मैं वासना का पर्दा फेंककर यहाँ आयी हूँ, पूर्ण निर्वसन होकर आई हूँ। जहाँ वासना का स्पर्श है, वहाँ हमें परमात्मा से नहीं मिलना है। जो वासना–रहित है, शुद्ध है। उस परमात्मा से मैं मिलने आई हूँ। प्रभु ने यह बात सुनी। वे मन में विचार करते हैं कि मुझे किसी ने भी ऐसा उत्तर नहीं दिया। फिर कहा कि तुम्हारी बात सुनकर मुझे बहुत आनन्द होता है, किन्तु मेरी इच्छा है कि तुम अपने घर जाओ। तुम अपने पति में ऐसी भावना रखो कि वह माया–रहित परमात्मा है। लोग पत्थर की मूर्ति पूजते हैं। मूर्ति पत्थर की होती है, किन्तु लोग भावना रखते हैं कि यह भगवान् की है। वह ईश्वर की मूर्ति है, ईश्वर मूर्ति नहीं है। यदि कोई मूर्ति में ईश्वर की भावना रखकर पूजा करे, तो वह पूजा भगवान् को मिलती है। इससे पूजा सफल होती है और पूजा करने वाले का कल्याण होता है। पति चाहे जैसा है, किन्तु वह चेतन है, पत्थर की मूर्ति जड़ है। जड़ में परमात्मा की भावना रखकर, जड़ में चेतन की भावना रखकर जो पूजा की जाती है, वह सफल होती है। फिर तुम चेतन पति में परमात्मा की भावना क्यों नहीं करतीं? तब एक गोपी ने उत्तर दिया, ''पति में परमात्मा की भावना रखी जाए तो वह भावना वियोग में फलित होती है। वह भावना संयोग में नहीं होती। प्रत्यक्ष परमात्मा के दर्शन के बाद कोई पत्थर की मूर्ति की पूजा नहीं करता। जिसे दर्शन नहीं हुआ है, वह ऐसी भावना रखता है कि 'यही भगवान् है।' जब तक आपके दर्शन नहीं हुए थे तब तक हम सब में आपकी ही भावना करते थे। अब आपके दर्शन हो जाने पर आपको छोड़कर हम भावना सिद्ध करने के लिए कहाँ जाएँ?

परमात्मा ने कहा, ''मेरी आज्ञा है कि तुम अपने घर जाओ।'' गोपियों ने कहा कि हम आपकी आज्ञा मानकर घर तो जाएँ, किन्तु हमारा मन जो आपके पास है, उसे वापस दीजिए।

परमात्मा ने कहा, ''तुम्हारा मन तो मुझ में मिल गया है।'' परमात्मा में मन मिलने के बाद उसे परमात्मा भी अलग नहीं कर सकता। जो मन भगवान् को अर्पण किया जाता है, वह उसमें मिल जाता है। उसे भगवान् भी अलग नहीं कर सकता।

एक गोपी बोली, ''जहाँ मन मिलता है वहीं आत्मा स्थिर हो जाती है। हे नाथ, ऐसा मत कीजिए।''

एक ब्राह्मण ने छह महीने तक समुद्र देव की पूजा की। इससे समुद्र देव प्रसन्न हुए और वरदान माँगने को कहा। ब्राह्मण ने वरदान माँगा, ''महाराज, मैं घर से जो जल ले आया और तुम्हें अर्पित किया, उसे मुझे वापस कर दो।''

वरुण देव ने कहा, ''वह जल तो मुझमें मिल गया। अब वह वापस नहीं मिल सकता।''

जैसे समुद्र वह जल अलग नहीं कर सकता वैसे ही परमात्मा में समाया गया मन ईश्वर भी अलग नहीं कर सकता।

प्रभु ने कहा, ''सखियो, तुम्हारे वचन बड़े सुन्दर हैं। तुम्हारी इंच्छा क्या है?'' गोपी कहती हैं—

सिञ्चांग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम्।
नो चेद् वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते।।

(१०-२९-३५)

मुझे अधरामृत दीजिए। मैं अधरामृत लेने आई हूँ।

भागवत समाधि-भाषा का ग्रन्थ है। अधरामृत का अर्थ भागवत में एक-दो स्थानों पर ऐसा किया गया है—इतर राग विस्मरणम् यानी जहाँ जगत् नहीं है, जहाँ मैं नहीं हूँ, जहाँ केवल परमात्मा ही विराज रहा है। उस परमात्मा के साथ मैं एकाकार हो जाऊँ। परमात्मा के साथ एकाकार होने का अर्थ जगत् की विस्मृति है। मुझे ऐसा ही अधरामृत दीजिए। गोपी अधरामृत माँगती है। मुझे ऐसा ज्ञानामृत दीजिए। पृथ्वी ही धरा है—''धरति इति धरा।'' संसार के विलासी जीव तो धरामृत का भोग करते हैं, जो अमृत पीने पर मृत्यु होती है। 'धरामृतम् इति न भवति ते इति अधरामृतम्' ऐसा ज्ञानामृत दो कि मैं एक क्षण भी श्रीकृष्ण से दूर न होऊँ, ऐसा अधरामृत दो कि आपका नित्य संयोग प्राप्त हो। यानी जहाँ जगत् नहीं, जहाँ केवल परमात्मा है। गोपी अब श्रीकृष्ण से अलग रह ही नहीं सकती। उसे अब श्रीकृष्ण का वियोग असह्य है। रासलीला में गोपी श्रीकृष्ण का रूप ग्रहण करती है। वह कहती है, ''मुझे ऐसा अधरामृत दीजिए। उसे ही पीने मैं यहाँ आई हूँ।'' श्रीकृष्ण

ने कहा, "तुम्हें तो अधरामृत लेने की इच्छा है, किन्तु यदि मेरी इच्छा अधरामृत देने की न हो तो? मुझे अधरामृत नहीं देना है। तुम यहाँ से अपने घर जाओ।" गोपियों ने कहा, "आप घर जाओ, घर जाओ" किससे कहते हैं। हम आपको अपने लिए नहीं मना रही हैं। हम जानती हैं कि आप बड़े ही संकोची हैं। यदि हम सब घर चली जाएँ, तो आप यहाँ रहकर क्या करेंगे? भगवान् की शोभा भक्तों से है। आप भी हमसे मिलने के लिए आतुर हैं। ईश्वर की इच्छा होती है कि जीव मेरा अंश है, वह मुझसे मिले। हे नाथ, हम पर कृपा करो। हमारे मन में श्रीकृष्ण को छोड़ दूसरा कोई नहीं है। हम यहाँ से घर जाकर आपके वियोग में प्राण-त्यागकर आपसे ही मिलने वाली हैं। अन्तिम उपाय तो हमारे हाथ में है। अर्थात् हम अपने प्राण छोड़कर आपसे मिलने ही वाली हैं, किन्तु उसका कलंक आपको न लगने पाए। आपकी अपकीर्ति न हो, इसीलिए हम आपको मना रही हैं।

नो चेद्वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यायेन यार्मापदयोः पदवीं सखे ते।

मुझे मरण से थोड़ी भी भीति नहीं लगती। मृत्यु से वही घबराता है; जिसके मन में वासना होती है। जिसके मन में वासना नहीं होती, उसे मृत्यु से कोई भय नहीं लगता। मृत्यु तो मिलन कराने वाली होती है, वह परमात्मा के साथ ऐक्य कराती है। गोपियों को मरने का न तो कोई दुःख है, न भीति है। प्रभु ने यह सुना और उनकी हार हो गई।

भगवान् विचार करते हैं, "इन गोपियों में कितनी आतुरता है? मैं इनसे मिलूँ और मिलन-क्रम में जिसकी अन्तिम बारी हो, वह कदाचित् अपने प्राण छोड़ दे तो?" इसीलिए श्रीकृष्ण ने जितनी गोपियाँ थीं उतने स्वरूप धारण कर यह अनुभव कराया कि मैं तेरे साथ ही हूँ। हजारों वर्षों से भगवान् से बिछुड़ा हुआ यह जीव प्रभु के पास आया है और भगवान् उसे भुजाओं में भरकर आलिंगन देते हैं। गोपी और श्रीकृष्ण का यह मिलन जीव ईश्वर का मिलन है। इस समय अंशी और अंश एक हो गए हैं। गोपी के हाथ में भगवान् आ गए हैं। वे इस बात से मगन हैं कि मुझे परमात्मा मिले हैं। इससे उन्हें अत्यन्त आनन्द हुआ। आज भगवान् को भी आनन्द हो रहा है कि मुझसे बिछुड़ा हुआ अंश आज मुझसे मिला है। रास में संगीत, साहित्य और नृत्य तीनों का समन्वय हुआ है। गोपियाँ आनन्दातिरेक में नाच रही थीं। उन्हें देखकर श्रीकृष्ण ने भी ताल का अनुसरण करते हुए नाचना शुरू कर दिया।

क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार।

(१०-२९-४६)

शुकदेवजी महाराज ने दर्शन करते-करते कहा है, "यह लीला खुले मैदान में हुई है। यह दरवाजा बन्द करके नहीं की गई। श्रीकृष्ण ने वृन्दावन में खुले मैदान में यह लीला की है। प्रत्येक

गोपी के साथ श्रीकृष्ण का एक स्वरूप है। मध्य में राधा-माधव हैं। उस समय ब्रह्मादिक देव इस लीला के दर्शन करने आए। ब्रह्माजी ने विचार किया कि यह लीला शुद्ध तो है; किन्तु मेरे विचार से कुछ लोक-विरुद्ध है। गीता में भगवान् ने कहा है, ''मेरा अवतार धर्म-रक्षण के लिए है।'' वास्तव में इस मिलन में कोई विकार नहीं है, कोई वासना नहीं है। यह बिल्कुल निष्काम है, शुद्ध है। फिर भी लोक-विरुद्ध है इस प्रकार स्त्रियों के साथ नाचना-कूदना अधर्म है। इससे ब्रह्माजी को थोड़ी शंका हुई। श्रीकृष्ण तो ब्रह्माजी के मन में विराजमान हैं, अन्तर्यामी हैं। श्रीकृष्ण को ज्ञात हुआ कि ब्रह्माजी की भावना कुछ बिगड़ी है। मैंने उसे धर्म का मर्म समझाया है; किन्तु आज वह मुझे समझा रहा है। प्रभु ने अब ऐसी लीला की कि गोपी को छाती से लगा कर आलिंगन किया और उसे आत्मस्वरूप दान किया। अब साड़ी पहनने वाली कोई गोपी नहीं रह गई। सभी पीताम्बर धारी कृष्ण बन गईं। अब श्रीकृष्ण के साथ श्रीकृष्ण की क्रीड़ा हो रही है। शुद्ध जीव अब ब्रह्म रूप बन जाता है। ब्रह्म का ब्रह्म के साथ विलास करने का नाम रास है।

यदि सजातीय सजातीय से मिले तो धर्म-मर्यादा का भंग नहीं होता। विजातीय का सजातीय से मिलना यह भले ही धर्म-भंग हो। यह तो सयुजा सखाया अर्थात् आत्मा का अंश परमात्मा को मिला। यह लोक विरुद्ध नहीं हो सकता न तो धर्म-विरुद्ध है। यह तो स्वयं धर्म का फल है। ब्रह्माजी को दर्शन हुआ कि साड़ी पहनने वाली कोई गोपी है ही नहीं। सभी पीताम्बरी धारी श्रीकृष्ण हैं! तब उन्हें विश्वास हुआ कि यह मिलन लोक-विरुद्ध नहीं है, यह अति शुद्ध है। ब्रह्माजी साष्टांग वन्दन करते हैं और रासबिहारी लाल की जय-जयकार करते हैं। जब ब्रह्माजी वन्दन कर खड़े हुए तब लाला ने विनोद किया अब तो पीताम्बरधारी कृष्ण दिखाई नहीं देते, सब गोपियाँ हैं। श्रीकृष्ण एक बार दर्शन कराते हैं तो सब श्रीकृष्ण ही हैं, उनके सिवाय कोई अन्य नहीं है। अब जो दर्शन कराते हैं, उनमें कोई पीताम्बरधारी श्रीकृष्ण नहीं है। सभी साड़ी पहनने वाली गोपियाँ ही हैं। यह पूर्ण अद्वैत की कथा है।

श्रीकृष्ण-लीला का रहस्य श्रीकृष्ण-कृपा से ही ध्यान में आता है। अब गोपी के साथ श्रीकृष्ण का स्वरूप दिखाई देता है। उस समय नारदजी वहाँ आए। उनकी इच्छा हुई कि यदि मैं अन्दर जाऊँ तो क्या भगवान् मुझे आलिंगन देंगे? मुझे परमात्मा से मिलना है लेकिन इधर तो सखियों का पहरा है। उन्होंने नारदजी से कहा, ''आप दूर से दर्शन कर सकते हैं। आपको अन्दर प्रवेश नहीं मिल सकता। आप अन्दर नहीं जा सकते।'' प्रवेश न मिलने पर नारदजी को दुःख हुआ। उनको मन में ऐसा आया कि ब्रह्माजी का पुत्र होकर मैंने बड़ी भूल की। मैं यदि गोपी हुआ होता

तो मुझे अन्दर प्रवेश मिलता। अब नारदजी 'श्री राधे-राधे' कहकर रोने लगे। इस पर राधाजी को दया आ गई। श्रीधाम वृन्दावन में यदि कोई जीव रोने लगे, तो श्रीराधाजी वहाँ तुरन्त पहुँच जाती हैं।

आनन्दमय वृन्दावन में कोई रोता नहीं है। वहाँ तो ब्रह्म भी नाचता है। राधाजी नारदजी से पूछती हैं, 'नारद, तू क्यों रोता है? तुझे क्या हो गया है?' उस समय नारदजी ने हाथ जोड़कर कहा है 'मुझे अन्दर आना है किन्तु ये सब मुझे रोकती हैं।' राधाजी की आज्ञा मिल गई। नारदजी राधा-कुण्ड में स्नान कर रहे हैं। इससे उनमें अलौकिक गोपी भाव पैदा हो जाता है, और नई नारदी गोपी उत्पन्न हो उठती है। अब नारदजी ने पुरुषत्व के अभिमान का त्याग कर दिया। क्योंकि किसी पुरुष या स्त्री को रास में प्रवेश नहीं मिलता। राधाजी इस नई सखी को श्रीकृष्ण के पास ले जाती हैं। श्रीकृष्ण नारदी सखी का आलिंगन कर रहे हैं। नारदजी ने विचार किया यदि भगवान् मिलता हो, तो साड़ी पहनने से मेरा क्या बिगड़ता है? मैं बहुत भटक चुका। मैं कथाकार हूँ, मैं पुरुष हूँ। यह अहं धारण कर मैं बहुत दुःखी हुआ। गोपियाँ स्त्रीत्व छोड़कर प्रभु से मिलने आती हैं। इसलिए नारदजी ने पुरुषत्व का अभिमान छोड़ दिया। उनमें गोपीभाव जागृत हो उठा। इस प्रकार प्रभु ने गोपियों को परमानन्द दिया है और गोपियाँ कृतार्थ हो उठी हैं।

६७– वियोग-लीला

अब थोड़ी वियोग-लीला का वर्णन आता है। जीव को ईश्वर का वियोग है। ईश्वर के वियोग में यह जीवन कैसा होना चाहिए, इसका आदर्श गोपियों ने इस वियोग-लीला में प्रस्तुत किया है। परमात्मा के साथ रास-क्रीड़ा करते-करते गोपियों के मन में सूक्ष्म अभिमान पैदा हो गया है। वे मन में विचार करती हैं, मेरे समान इस संसार में कोई भाग्यशाली नहीं है। मैं बहुत श्रेष्ठ हूँ। पहले तो ये इनकार करते थे, किन्तु अब प्रेम से क्रीड़ा कर रहे हैं। मैं अतिशय सुन्दर हूँ, अत्यन्त योग्य हूँ। परमात्मा जीव के सारे अपराध क्षमा करता है, किन्तु यदि जीव में अभिमान आ जाए तो वे उसकी उपेक्षा नहीं करते। गोपियों में अभिमान आने के कारण भगवान अचानक अन्तर्धान हो गए। गोपियों को प्रभु का वियोग हो गया।

गोपियों में यह अभिमान आया कहाँ से? उनके मन में श्रीकृष्ण को छोड़कर कुछ था ही नहीं। जो एकबार परमात्मा से मिलता है, उसे कभी प्रभु का वियोग नहीं होता। पारसमणि एक बार लोहे को सोना बनाने के बाद उसे लोहा नहीं बना सकती, वह सोना ही रहता है। इसी प्रकार ब्रह्म-स्पर्श के बाद जीव ब्रह्म-रूप हो जाता है। फिर भी प्रभु ने यहाँ अपनी लीला दिखाई है और उन्होंने ही गोपियों में अभिमान भी उत्पन्न कर दिया है। भागवत के सभी श्लोकों का मनन करने

पर ऐसा प्रतीत होता है कि गोपियों में अभिमान हो ही नहीं सकता। वे तो शुद्ध हैं, निष्काम हैं। इसलिए उनमें यह जो अभिमान पैदा हुआ है, वह ईश्वरेच्छा से ही पैदा हुआ है। ठाकुरजी की लीला करने की इच्छा होने के कारण ही प्रभु की स्वजनमोहिका माया ने गोपियों के मन में अभिमान जागृत किया।

भगवान की माया तीन प्रकार की होती है—स्वमोहिका, स्वजन मोहिका और विमुखजन मोहिका। श्रीकृष्ण को स्वयं में भी मोह उत्पन्न कराने वाली माया स्वयं मोहिका माया है। जब प्रभु को लीला करनी होती है, तब वे अपने जीवों में मोह उत्पन्न करने वाली माया उत्पन्न कर देते हैं। उसे स्वजन मोहिका माया कहते हैं। साधारण जीव को भ्रम में डालने वाली माया विमुखजन मोहिका माया है।

स्वजन मोहिका माया के वश में होने के कारण गोपियों में सूक्ष्म अभिमान पैदा हुआ, रासलीला में गोपी की दृष्टि संसार के किसी विषय में नहीं गई, किन्तु श्रीकृष्ण से हट गई। गोपी ने जगत् को नहीं देखा, किन्तु अपने को ही देखना आरम्भ कर दिया।

श्रीकृष्ण में वैराग्य परिपूर्ण अवस्था में है। जहाँ प्रेम है, वहाँ कन्हैया मक्खन-मिश्री देने पर नाचने लगता है। ऐसा प्रेम से होता है, न कि आसक्ति से। जो दूसरे से आनन्द लेने जाता है, वह दुःखी होता है। इसलिए यह भावना रखकर प्रेम न करो कि कोई तुम्हें सुख देगा। श्रीकृष्ण में प्रेम परिपूर्ण है, ज्ञान परिपूर्ण है और वैराग्य भी परिपूर्ण है। इसीलिए द्वारकानाथ होने के बाद वे कभी गोकुल में नहीं आए। श्रीकृष्ण दूसरे से आनन्द नहीं लेते। वे स्वयं आनन्दस्वरूप हैं। जिसका आनन्द दूसरे से होता है, उसके समान कोई दुःखी नहीं है। गोपी को अभिमान हुआ कि श्रीकृष्ण अधीन हैं। जैसे मैं नचाती हूँ वैसे वे नाचते हैं। प्रभु ने कहा कि अब गोपी को मेरी आवश्यकता नहीं है। वह मुझे अब कहाँ देखती है? वह तो अपने को ही देखती है। इसलिए भगवान् अन्तर्धान हो गए।

यशोदामाता की गोद में श्रीकृष्ण हैं। फिर भी वह दूध के उफान की ओर देखती है। वात्सल्य भाव में यदि दृष्टि किसी अन्य की ओर जाए तो बुरा नहीं है। जिसे जगत् को देखकर कुछ सुख का भास होता है, वह ईश्वर से विमुख होता है। इसलिए तुमको यदि जगत् दिखाई दे तो दिखाई देने दो, किन्तु जगत् को देखने की इच्छा मत करना। जगत में देखने योग्य तो केवल ईश्वर ही है। प्रेम-भाव में प्रियतम से बढ़कर कोई प्रिय लगे तो वह ईश्वर को पसन्द नहीं। यदि भगवान् की अपेक्षा जगत् के विषय मधुर लगें तो भक्ति में व्यभिचार पैदा हो जाता है। गोपी की दृष्टि जगत् में तो नहीं गई, किन्तु वह अपने को देखने लगी। मान के पीछे अभिमान खड़ा रहता है। अनेक लोगों को कम मान मिलने पर मन अभिमान से घायल हो जाता है। ज्ञानियों को अभिमान बहुत सताता है। उनमें प्रायः

अहं बढ़ जाता है। ऐसा भाव पैदा हो जाता है कि जहाँ हरि नहीं है वहाँ मैं नहीं हूँ और जहाँ मैं हूँ वहाँ हरि नहीं हैं। गोपी में भी अहं के जागृत होने से भगवान् अन्तर्धान हो गए।

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत।। (१०-२९-४८)

अन्तर्धान का अर्थ अन्दर छिपना है। अर्थात् वे अन्तर्हित हो गए। तात्पर्य यह है कि अब वे अन्दर रहकर हित करते हैं। श्रीकृष्ण अब गोपियों के हृदय में प्रवेश करते हैं। गोपियों की आँखों पर अब अभिमान का पर्दा पड़ गया। इसलिए उन्हें अब प्रभु दिखाई नहीं देते। अर्थात् गोपियों को बहिरंग में परमात्मा का वियोग हो गया है।

जिसे वियोग में अत्यन्त दुःख होता है, उसके संयोग में अत्यन्त आनन्द आता है। जीव के लिए तो वियोग से ही संयोग की पुष्टि होती है। परमात्मा के लिए संयोग-वियोग सब समान हैं। जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार तीनों स्थितियों में परमात्मा में कोई परिवर्तन नहीं होता। जगत् क्षण-प्रतिक्षण बदलता है, किन्तु परमात्मा के रूप में परिवर्तन नहीं होता। ईश्वर का रूप आनन्दमय है। एक वैष्णव ने भगवान् से कहा, "महाराज, आपका स्वरूप सदैव एक-सा रहता है। उसमें कुछ-न-कुछ परिवर्तन होना चाहिए।" प्रभु ने कहा, "जा, अब तुझे मेरा वियोग होगा।" यह कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गए।" वैष्णव को खूब वियोग हुआ। वह रोने लगा और प्रभु का कीर्तन करने लगा। यह देख प्रभु प्रकट हो गए। प्रभु को देख उसे खूब आनन्द हुआ। यह आनन्द क्यों अधिक हुआ? स्पष्ट है कि वियोग के बाद प्रभु के दर्शन से आनन्द बढ़ जाता है। प्रभु ने गोपियों को परमानन्द का दान देने के लिए वियोग-लीला की है।

प्रभु का अन्तर्धान होना भी उनकी लीला है। श्रीकृष्ण ने पीताम्बर माथे पर बाँध लिया। गोपी ने समझा कि यह कोई सखी हैं वह भगवान् को बाहर ढूँढ़ने लगी। श्रीकृष्ण तो गोपियों के मण्डल में ही हैं। आनन्द तो अन्दर है। उसे बाहर मत ढूँढ़ो।

श्रीकृष्ण-वियोग में गोपियाँ श्रीकृष्ण-लीला का खूब अनुकरण करती हैं। वे श्रीकृष्ण-स्मरण में इतनी तन्मय हो गई हैं कि वृक्ष से पूछती हैं कि मेरे श्रीकृष्ण कहाँ हैं? उनको यह भी ख्याल नहीं है कि पेड़ बोलते नहीं। एक को सभी के अन्दर श्रीकृष्ण के दर्शन से ऐसी प्रतीति हुई कि मैं ही श्रीकृष्ण हूँ।

लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।

गोपियों ने श्रीकृष्ण की बड़ी खोज की, किन्तु वे दिखाई नहीं दिये। गोपियों को पूर्ण विश्वास है कि मेरा श्रीकृष्ण मुझे छोड़कर कहीं नहीं जा सकता। वह यहीं कहीं छिपा हुआ है।

वह वे सब बातें सुनता है, जो हम सब बोलती हैं। किसी गोपी को ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण मेरी दाहिनी तरफ खड़े हैं। किसी को बाईं ओर खड़े प्रतीत होते हैं। किसी को अपने पीछे खड़े प्रतीत होते हैं। किसी को अपने सम्मुख और किसी को सर्वत्र दिखाई देते हैं। वियोग में ध्यान-स्मरण में अतिशय तन्मयता के कारण श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष उपस्थिति की प्रतीति होती है। गोपियों को ऐसी प्रतीति हुई कि हम जैसे-जैसे उन्हें अधिक ढूँढ़ रही हैं, वैसे-वैसे वे निकुँज में अधिकाधिक अन्दर चले जा रहे हैं। वे निकुँज के अन्दर अन्दर प्रवेश करते जाएँ और उनके पैरों में काँटे धँस जाएँ तो क्या हो?

अन्त में गोपियों ने निश्चय किया कि श्रीकृष्ण जिस स्थान से अन्तर्धान हुए हैं, वहाँ चलकर उन्हें स्मरण-कीर्तन करते हुए खोजें। ज्ञान-मार्ग में ध्यान प्रधान होता है और भक्ति मार्ग में स्मरण-कीर्तन प्रधान है। तुम ईश्वर का सतत ध्यान भले ही न कर सको, किन्तु संसार के किसी भी विषय का ध्यान मत करो। जगत् को देखने से मन नहीं बिगड़ता अपितु जगत् का ध्यान करने से मन बिगड़ता है। ज्ञान-मार्ग में प्रवृत्ति उतनी ही होती है। प्रवृत्ति पूरी होने पर ध्यान किया जाता है। भक्ति-मार्ग में गुण-गान मुख्य होता है। निवृत्ति के समय मनुष्य जगत की स्तुति-निन्दा करता है। महापुरुष न तो स्तुति करते हैं, न निन्दा करते हैं। सूर्य नारायण जगत् को देखते हैं, किन्तु बोलते नहीं। तुम भी जगत् कैसा है, इसका परिचय प्राप्त करना, किन्तु उसका चिन्तन मत करना। जब-जब समय मिले, तब-तब परमात्मा की स्तुति करना।

अब गोपी स्तुति करती हैं। उस स्तुति को महापुरुष गोपी-गीत कहते हैं। गोपी-गीत वियोग का गीत है।

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

(१०-३१-१)

हे श्रीकृष्ण जब से आपने इस ब्रजभूमि में जन्म लिया है, तब से इसका महत्त्व खूब बढ़ गया है। भगवान् को ब्रज बहुत प्रिय है। ब्रज़ की महिमा बैकुण्ठ से भी बढ़ गई। है। कण्ठ अर्थात् बुद्धि। विगता कुण्ठा इति बैकुण्ठ। जो निष्काम बुद्धि में प्रकट होता है। उसे बैकुण्ठ कहते हैं। सूर्य के प्रकाश में अग्नि है, किन्तु वह अग्नि नहीं उत्पन्न कर सकता। अग्नि तो सूर्यमणि द्वारा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार परमात्मा सर्वव्यापक है, किन्तु वह निष्काम बुद्धि से ही प्रकट होता है। बैकुण्ठ में काम नहीं है किन्तु काम और क्रोध तो रजोगुण है। गीता में कहा गया है—

काम एव क्रोध एव रजोगुण समुद्भवः

बैकुण्ठ अति दिव्य सत्व प्रधान भूमि है। वहाँ जाने के बाद जीव संसार में नहीं आता।

गोपी कहती है कि वैकुण्ठ से भी ब्रज की कक्षा ऊँची हो गई है। वैकुण्ठ में परमात्मा राजाधिराज हैं। यदि कोई वैकुण्ठ में जाए, तो प्रभु का चरण स्पर्श नहीं कर सकता। वहाँ उनकी चरण-सेवा लक्ष्मी करती हैं। प्रभु की चरण-पादुका सामने पड़ी होती है स्वर्ग में जाने वाला प्रभु के चरणों का नहीं, बल्कि उनकी चरण-पादुका का स्पर्श करता है। वैकुण्ठ में ऐश्वर्य है, ब्रज में प्रेम है। जहाँ ऐश्वर्य होता है, वहाँ पर्दा होता है, किन्तु ब्रज में कोई पर्दा नहीं है ग्रन्थों से पता चलता है कि नारायण निद्राहीन होते हैं और लक्ष्मीजी इनकी चरण-सेवा करती हैं। जब कोई जीव स्वर्ग में पहुँचता है, तब लक्ष्मीजी चरण सेवा करते हुए जोर से चरण दबाती हैं। इसके बाद ठाकुरजी अपनी आँखें थोड़ी-सी खोलते हैं और पूछते हैं कि कहो क्या बात है? उन्हें श्रीलक्ष्मीजी बताती हैं कि यह जीव आपकी शरण में आया है, सुनकर परमात्मा कहते हैं कि इसे बैकुण्ठ में रखो। इतना कहकर वे पुनः आँख बन्द कर सो जाते हैं। बैकुण्ठ में तो ऐश्वर्य है, जहाँ के वे राजाधिराज हैं। ब्रज में श्रीकृष्ण किसी के बालक हैं, किसी के सखा हैं। यहाँ केवल प्रेम है। श्रीकृष्ण ने ब्रज में रहकर व्रजवासियों को जो आनन्द दिया है, वह बैंकुण्ठ में नहीं है। क्या कोई बैकुण्ठ में नारायण से कहने की हिम्मत कर सकता है कि मेरा यह काम करो। कन्हैया ब्रज में यदि किसी के घर जाता है तो वह उनसे कहता है, ''क्या मक्खन ले आऊँ! यदि तुम्हें मक्खन खाना हो, तो मेरा थोड़ा सा काम करो। यह सुनकर कन्हैया कहता है कि तेरा क्या काम करना है? गोपी कहती है, 'मेरा वह पीढ़ा (पाटला) ले आ।''

जहाँ प्रेम होता है वहाँ संकोच नहीं होता। यह तो शुद्ध प्रेम-लीला है। कन्हैया पाटला (पीढ़ा) उठाता तो है; किन्तु भारी होने के कारण उसे उठा नहीं पाता। कन्हैया अत्यन्त कोमल शरीर का है। यों तो उसने अपनी तर्जनी उँगली पर गोवर्धन उठा लिया था फिर भी उसे मक्खन का लालच हैं वह पीढ़ा उठाता तो है; किन्तु वह भारी होने के कारण रास्ते में उसके हाथ से छूट गिरता है और उसका पीताम्बर भी खुल जाता है। वेदान्त में लिखा है कि ज्ञानी पुरुष को ब्रह्म-साक्षात्कार होता है। फिर भी ज्ञानी पुरुष जब तक पंचभौतिक शरीर में होता है, तब तक माया का थोड़ा पर्दा होता ही है। उसे प्रारब्ध का कुछ भोग भोगना ही पड़ता है। माया यदि थोड़ी भी बाकी होती है, तो भी प्रारब्ध भोगना पड़ता है। इसलिए वह माया के आवरण के साथ ही परमात्मा के दर्शन करता है। गोपियाँ निरावरण परमात्मा के दर्शन करती हैं। जहाँ अतिशय प्रेम होता है, वहाँ परदा छूट जाता है।

पीढ़ा गिरते ही कन्हैया रोने लगता है। गोपी दौड़ कर आती है और कहती है, अरे! तुझे क्या हो गया? क्या कुछ चोट लग गई? कन्हैया कहता है, ''चोट तो नहीं लगी; किन्तु मेरा पीताम्बर खुल गया है।'' गोपी लाला को पीताम्बर पहनाती है। जहाँ ऐश्वर्य होता है, वहाँ पर्दा होता है। प्रेम में पर्दा नहीं होता। कृष्ण ने गोपियों को जो आनन्द दिया है, वह भला वैकुण्ठ में कहाँ मिल सकता है? वैकुण्ठ में नन्द-महोत्सव नहीं होता, वहाँ नारायण का जन्म ही नहीं होता, नन्द-महोत्सव की बात कैसे उपस्थित हो?

भगवान् लक्ष्मीजी को अपने हृदय में रखते हैं। क्योंकि लक्ष्मीजी उन्हें अतिशय प्रिय हैं। एक कारण यह भी है कि यदि कोई जीव ईश्वर की बहुत भक्ति करे तो उस पर कृपा दिखाने के लिए भगवान् लक्ष्मीजी से कहते हैं। लक्ष्मीजी की एक बार कृपा हो जाय, तो जीव उस आश्चर्य में चकमका उठता है। जीव को मान सम्मान वृद्धि का मोह हो उठता है। थोड़ा मोह होते ही जीव ईश्वर से दूर हो जाता है। ईश्वर जीव की अच्छी तहर परीक्षा करने के बाद ही उसे वैकुण्ठ में स्थान देता है। इसीलिए उन्होंने अपने हृदय में लक्ष्मीजी को स्थान दे रखा है।

लक्ष्मीजी ने परमात्मा से कहा, ''आप मुझे अपने हृदय में रखते हैं; किन्तु मुझे तो आपके चरणों की सेवा ही करनी है।'' ''परमात्मा के चरणों में अलौकिक दिव्य रस है। कुछ महापुरुषों को मुक्ति की अपेक्षा भगवान् के चरणों में पड़ा रहना खूब भाता है, अधिक आनन्द मिलता है। यह दास्य भक्ति है।

लाला को एकबार अपने मन में यह विचार आया कि लोगों को मेरे चरण में क्या विशेषता दिखाई देती है? वे क्यों मुक्ति को तुच्छ समझते हैं और मेरे चरणों में पड़े रहना पसन्द करते हैं? मेरे चरणों में आखिर क्या है? वे अपना चरण उठाकर मुंह में डालते हैं।

करारविन्देन पदारविंदं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्

वैकुण्ठ तो सत्व-प्रधान भूमि है। वहाँ रज नहीं है।

जहाँ रजोगुण न हो, वहाँ भला रज कहाँ मिलेगी? लक्ष्मीजी को भगवान्‌जी के चरण रज लेने की इच्छा है। इसलिए वे व्रज में एकबार आती हैं।

व्रज प्यारा है, वैकुण्ठ न आऊँ।

श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि॥

गोपी कहती हैं, ''सब बैकुण्ठ में लक्ष्मीजी की सेवा करते हैं। वे ही लक्ष्मीजी ब्रज में दासी बनकर सेवा करती हैं। ब्रज के वृक्षों-पत्तों में लक्ष्मीजी का प्रवेश होता है। वैकुण्ठ से भी ब्रज श्रेष्ठ है। हे नांथ! हम आपको सभी में खोज रही हैं। आप हमें दर्शन दीजिये।'' इस सृष्टि में कई ऐसे

जीव हैं, जिन्हें प्रभु का मूल्य एक पैसा भी नहीं है, न उन्हें प्रभु के दर्शन की इच्छा ही होती है। वे भगवान् को नहीं खोजते। गोपी कहती हैं, 'हे प्रभु, हम सभी में आपको ढूँढ़ रही हैं, हम आपके लिए जीवित हैं। यदि आपके प्रयोग में हमारे प्राण प्रस्थान कर जायेंगे तो आपको कलंक लगेगा, आपकी अपकीर्ति न हो इसीलिए हम जी रही हैं और आपको ढूँढ़ रही हैं। हे दयित! दृष्यताम् (दया ही श्रीकृष्ण का स्वरूप है।) परमात्मा अकारण कृपा करते हैं। वे जीव की योग्यता पर बहुत विचार नहीं करते। जीव पर अकारण कृपा करने के कारण आप दयित हैं। आप हमारे लिए प्रत्यक्ष प्रकट हों।'

ज्ञानी महापुरुष कहते हैं कि भगवान् के दर्शन इन चर्म-चक्षुओं से नहीं होते, ज्ञान-चक्षुओं से होते हैं। वेदान्त का सिद्धान्त है कि जो सबका द्रष्टा है, उसे भला कौन देख सकता है? किन्तु गोपी कहती है कि अब मेरी आँखों के सामने प्रकट हों। भक्ति-प्रेम के अतिशय बढ़ जाने पर इन चर्म चक्षुओं से भी भगवान् दिखाई देते हैं। गोपी भगवान् से कहती हैं, 'आप बनें दृश्य और मैं बनूँ द्रष्टा।' वह श्रीकृष्ण के रसात्मक रूप के दर्शन का भी अनुरोध करती है, 'हम आपको सबमें ढूँढ़ रही हैं। आपको ढूँढ़ने वाला रात्रिकाल में वन में भटके यह ठीक नहीं है। इसलिए आप हमारे समक्ष प्रकट हों, हमें प्रत्यक्ष दर्शन दें।

सखियाँ परमात्मा को मनाती हैं, ''हे नाथ कृपा कीजिए और जगत को प्रेम का आदर्श समझाने के लिए आप आए हैं, यह आदर्श लुप्त होगा तो प्रेम छिन्न-भिन्न हो जायेगा। स्वरूप तो ब्रह्म छिपाता है। आपका स्वरूप छिपाना उचित नहीं है। हम आपकी दासियाँ हैं। यदि हमसे कुछ भूल हुई हो तो हमें दण्ड दें, किन्तु हमारा त्याग करना आपको उचित नहीं है, आपकी आँखें बहुत सुन्दर हैं। आपने आँख से ही हमें वरदान दिया है। आपने आँख से ही हमें बुलाया, आँख से ही हमें अपनाया और आज आँख से ही आप हमारा वध करें, यह ठीक नहीं। क्या आपने आज तक हमारा रक्षण इस वियोग में मारने के लिए किया है? कालियानाग से हमारी मृत्यु हुई होती तो अच्छा था, किन्तु यदि आपके वियोग से हमारी मृत्यु होगी, तो आपको कलंक लगेगा। आपने अघासुर, बकासुर से हमारी रक्षा की। आज हमें बिरहासुर सता रहा है। नाथ! कृपा करें। अपने चरण को हमारे मस्तक तक पहुँचने का अवसर दें।

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥ (१०-३१-९)

आपके वियोग में कथामृत-नामामृत हमारी रक्षा कर रहा है। स्वर्ग का अमृत पीने से विकार-वासना बढ़ती है, पुण्य का नाश होता है। नामामृत-कथामृत वासना को भस्म कर देता है, पाप का नाश कर देता है। अन्नदान और द्रव्यदान से कुछ समय के लिए शान्ति मिलती है। निर्पेक्ष

बुद्धि से ज्ञान-दान करने वाला, कथा कहने वाला, ही बहुत बड़ा वीर है। आपकी कथा में आनन्द आता है।

प्रभु ने कहा है ''यदि कथा में आनन्द आता है तो मुझे किसलिए खोज रही हो?''

गोपी कहती है, 'अब तो कथा में भी रस नहीं आता है। क्योंकि आपके दर्शन की आतुरता बढ़ गई है।'

रासलीला में संन्यासिनी गोपी है। गोपी का प्रेम-संन्यास है। वह कहती है, आपके लिए हमने सब कुछ छोड़ दिया है।' ऐसा कहकर श्रीकृष्ण का कीर्तन करते-करते गोपियाँ रोने लगीं? श्रीकृष्ण-दर्शन के लिये उनके प्राण व्याकुल हो उठे। गोपी का रुदन परमात्मा से सहन नहीं हुआ। उनके प्रेम के कारण परमात्मा प्रकट हो गये और उन्होंने कहा, 'सखी, मैं तुमसे सच कहता हूँ कि तुम्हें मेरे वियोग में जितना दुःख हुआ है उसकी अपेक्षा तुम्हारे वियोग में मुझे अधिक दुःख हुआ है। तुम्हारा मंडल बड़ा है। वह अन्दर-अन्दर बात करते हुए अपने दुःख को भूलता था और मैं अकेला बैठा-बैठा रोता था मुझे प्राप्त करने वाला जीव भला फिर से संसार में कैसे डूब सकता है! मुझे तुम्हारी अपेक्षा अधिक दुःख था। मैं तुम्हारे प्रेम का क्या बदला दूँ? मैं तुम्हारा ऋणी हूँ। इससे अधिक क्या कहूँ? इस प्रकार श्रीकृष्ण ने सखियों से बात की। इसके बाद जल-विहार और थल-बिहार कर रहे हैं।

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः॥

(१०-३३-१७)

यह सुनकर गोपियाँ कृतार्थ हो गईं। प्रभु ने परमानन्द का दान किया है।

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

(१०-३३-४०)

काम से क्रोध का जन्म हुआ है। किसी मनुष्य से मिलने की इच्छा को काम कहते हैं और परमात्मा से मिलने की इच्छा को प्रेम कहते हैं। श्रीकृष्ण से मिलने की तीव्र इच्छा ही गोपी है और तीव्र प्रभु-मिलन की इच्छा से, अलौकिक काम से लौकिक काम का विनाश हुआ है। काम का नाश काम से ही करो। जब मन में परमात्मा से मिलने की इच्छा होती है और हम कहते हैं कि अब मुझे ईश्वर से ही मिलना है, तभी काम का विनाश होता है।

विधिपूर्वक छह मास तक अनुष्ठान करने से धीरे-धीरे काम का नाश होता है। बहुत से साधु-सन्त आधी रात में स्नान करते हैं और गोपालजी की पूजाकर रासलीला का पाठ करते हैं।

यदि कोई जीव रास-लीला की कथा सुने और उसका मनन करे तो वह धीरे-धीरे काम पर विजय प्राप्त कर सकता है। परमात्मा को अर्पण किया गया काम ही निष्काम कर्म है। सकाम कर्म का चिन्तन करने से काम जागृत होता है; किन्तु यदि परमात्मा के साथ प्रेम करे तो जीव भी निष्काम बनता है। यही रास-लीला का रहस्य है।

हमने यहाँ रास-लीला की थोड़ी कथा सुनाई। इसके बाद प्रभु ने किस प्रकार शंखचूर दैत्य और सुदर्शन विद्याधर को सद्गति दी उस कथा का वर्णन है। इसके बाद युगल-गीत आता है।

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम्।
कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः॥

(१०-३५-१)

युगल-गीत में गोपियाँ परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करती हैं और उनकी एक-एक लीला का वर्णन करती हैं। यह संसार मायामय है। तुम यदि संसार का वर्णन करोगे, तो माया मन में आएगी। संसार का वर्णन करने से जीभ बिगड़ती है, मन बिगड़ता है। गोपियों को जब मौका मिलता है तब श्रीकृष्ण का वर्णन करती हैं, कृष्ण-लीला का वर्णन करती हैं। यदि तुम्हें अपना मन शुद्ध और शान्त रखना हो तो जगत् का वर्णन छोड़ दो। जगत् में जो कुछ है वह अपनी जगह पर ठीक होते हुए भी वर्णन करने योग्य नहीं है। वर्णन करना हो तो परमात्मा का वर्णन करो।

इसके बाद प्रभु ने अनेक राक्षसों का उद्धार किया।

६८- उस जन्म को धिक्कार है, जिसमें न प्रभु-आदर भरा।

यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च, रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता॥

(१०-३६-१७)

शुकदेवजी महाराज कहते हैं कि "राजन्! एकबार नारदजी राजा कंस से मिलने गए और उनसे कहा, "भाई मुझे अभी जो खबर मिली है, उसे मैं तुम्हें बताने आया हूँ। नन्दबाबा के गोकुल में लोग जिसे कन्हैया-कन्हैया कहते हैं वह उनका पुत्र नहीं है। वह वसुदेव का पुत्र है। वह देवकी की आठवीं सन्तान है। वही तुम्हारा काल है।" कंस बोला "मुझे शंका तो हो रही थी कि कृष्ण अनेक राक्षसों को मार रहा है। वही मेरा काल है और वही देवकी की आठवीं संतान है।" कंस राजा को आश्चर्य हुआ कि मैंने वसुदेव और देवकी को कैद में डाल रखा था। फिर यह कैसे वहाँ चला गया? नारदजी ने कहा, "भाई! तू बड़ा भोला है, वह भोला नहीं है। वह तो इस प्रकार गया कि तुझे खबर भी न पड़ी। कंस राजा को ऐसा मन में लगा कि मुझे धोखा देकर वसुदेव-देवकी

ने अपना पुत्र वहाँ पहुँचा दिया। कंस को क्रोध आ गया और वह वसुदेव को मारने के लिए तैयार हो गया। नारदजी को जिस प्रकार आग लगाना आता है उसी तरह बुझाना भी आता है। आजकल लोगों को केवल आग लगाना आता है। कुछ लोग तो आज ऐसे हैं जो सबेरे उठते ही आग लगाने की बात करते हैं। हमें सबेरे सोकर उठने के बाद आग नहीं लगाना चाहिए, बल्कि बिछौने पर बैठकर आधे घण्टे तक परमात्मा का स्मरण करना चाहिए। शान्ति से भक्ति करो, भगवान् का ध्यान करो, बड़े दुलार के साथ श्रीकृष्ण की सेवा करो, बिछौने पर बैठकर आधे घण्टे तक परमात्मा का स्मरण करना चाहिए। शान्ति से भक्ति करो, भगवान् का ध्यान करो, बड़े दुलार के साथ श्रीकृष्ण की सेवा करो, बिछौने पर बैठकर जप करो। भगवान् के चरण में वंदन कर कहो, "मैंने कथा सुनी। आज से मैं तुम्हारा हो गया हूँ। मुझे पाप करने से रोको, मुझे पाप करने की कुटेव पड़ी है। मेरी आँख और मेरे मन जो पाप करते हैं, मैं उसे नहीं छोड़ सकता। मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मेरे हृदय में विराजमान होकर मुझे पाप करने से बचाइये।" प्रातःकाल में की गई प्रार्थना बड़ी उपयोगी होती है। स्त्रियाँ किसी स्थान पर जब इकट्ठी होती हैं, तब कहती हैं कि तेरी बहू ऐसा कहती थी, वैसा कहती थी। ऐसा कहना महा पाप है। किसी की चुगली न करो। वैष्णव वह है जो वैर का विनाश करता है। नारदजी ने कंस से कहा कि वसुदेव को मारने से भला तुमको क्या मिलेगा? क्योंकि तेरा काल तो श्रीकृष्ण है। उसका अभी ग्यारहवाँ वर्ष शुरू हुआ है। वह बहुत कम उम्र का है, छोटा है। फिर भी वह बहुत होशियार है। तू अपने काल को मारने का प्रयत्न कर। कंस राजा को समझाकर नारदजी मथुरा से गोकुल आए। उन्होंने बालकृष्णलाल को वंदन किया और कहा, नाथ "मैं सब तैयारियाँ करके आया हूँ। अब आप मथुरा जायेंगे, कंस को मारेंगे और द्वारका के राजा बनेंगे। अनेक रानियों से आपका विवाह होगा। उस समय मैं आपका गृहस्थाश्रम देखने द्वारका आऊँगा। मैं आपकी सभी लीलाएँ जानता हूँ।" नारदजी एक-एक लीला का वर्णन करते हैं।

इस ओर कंस घबरा उठा। उसने वसुदेव और देवकी को फिर बेड़ियों से जकड़ दिया। वह विचार करने लगा कि श्रीकृष्ण को कैसे मारूँ? उस समय कंस से मिलने के लिये वहाँ बड़े-बड़े पहलवान आए और उन्होंने उसको समझाया कि तुम घबराना नहीं। वह बालक भला तुम्हें क्या मारेगा? तुम उसे मथुरा में बुला लो। मैं उसका हाथ पकड़कर उसे अखाड़े में उतारूँगा। मुझमें हजार हाथियों का बल है। मेरा वजन उससे सहन नहीं होगा। उसे मैं मिट्टी बना दूँगा और कुश्ती करते हुए ऐसा हुआ है यह लोगों को बताऊँगा। आपका नाम होगा। कंस के पुरोहित महाराज वहाँ आए हैं, और वे उसे समझाते हैं, पाँच दिन का एक धनुष-यज्ञ है। वह यदि ठीक तरह पूरा हो जाये,

तो यजमान का शत्रु मर सकता है और यजमान की आयु बढ़ सकती है। यदि यज्ञ में कोई विघ्न आ जाये और वह अधूरा रहे तो यजमान का नाश हो जाता है। कंस ने कहा 'किन्तु हमारे सामने विघ्न कैसे आयेगा? हम उसे दूर हटा देंगे। तुम शत्रु को मारने के लिए यज्ञ करो।'

कंस राजा को यह उपाय ठीक लगा और उसने यज्ञ की तैयारी करने का आदेश दे दिया। वह विचार करता है कि मैं इस यज्ञ के दर्शन के लिए नन्दबाबा को आमन्त्रण दूँगा। नन्दबाबा कृष्ण को लेकर मथुरा आयेंगे। इसके बाद मैं अपने हाथी को मदिरापान कराकर कृष्ण के सामने छोड़ दूँगा। हाथी उसे पैर के नीचे कुचल देगा। फिर भी यदि कृष्ण जीवित बचेगा तो उसे मेरे पहलवान मार डालेंगे। कंस राजा ने ऐसा षड्यन्त्र तैयार किया है और नन्दबाबा को यज्ञ के दर्शन के लिये निमन्त्रण देने का विचार किया है। उसने सोचा कि निमन्त्रण देने के लिये किसे भेजूँ? उसी समय उसे वयोवृद्ध अक्रूर की याद आई। उसने सोचा कि अक्रूर गम्भीर हैं, वयोवृद्ध हैं, वे विश्वाघात नहीं करेंगे। ऐसा विचार कर उसने अक्रूर के घर जाकर कहा, 'काका, मेरा एक खास काम आपको करना है। अभी नारदजी आए थे वे मुझसे कह गए हैं कि वसुदेव ने मुझे धोखा दिया है। नन्दबाबा के गोकुल में जिसे कन्हैया कहते हैं, वही मेरा काल है। मैं भी उसे कष्ट से मारूँगा। शत्रु को मारने के लिये मुझे यज्ञ करना है। कल मेरा रथ लेकर आपको नन्दबाबा के यहाँ आमन्त्रण देने जाना है कि वे यज्ञ के दर्शन के लिये अवश्य पधारें। नन्दबाबा को विश्वास हो कि राजा का मुझ पर प्रेम है। इसलिये मैं अपना सोने का रथ भेज रहा हूँ। नन्दजी भले बैलगाड़ी में बैठकर आवैं किन्तु आप बालकों को मेरे इस रथ में बैठाकर ले आइए। इसके बाद हाथी उन्हें पैरों के नीचे कुचलेंगे, मेरे पहलवान भी उन्हें मारेंगे। मैंने अपने इस काल को मारने के लिये यह कपट किया है। मेरा इतना विशाल राज्य है, सुन्दर रानियाँ हैं। फिर भी मैं सुख-भोग नहीं कर सकता। मुझे अपने काल का बहुत भय लगता है। जिस समय मेरा काल मर जायेगा उसके बाद सुख भोगूँगा। काका, मैंने जो यह विचार किया है यह ठीक तो है?' अक्रूरजी ने कहा कि विचार करना मनुष्य के हाथ की बात है, किन्तु भाग्य में होने पर और परमात्मा की कृपा प्राप्त होने पर ही मानव का विचार सफल हो सकता है।

श्रीकृष्ण कँस के काल हैं। कंस को जीने की प्रबल इच्छा होने पर भी वह श्रीकृष्ण को अपने काल को-अपने पास बुलाता है। हमको मरने की बहुत इच्छा नहीं रखनी चाहिए और न बहुत जीने की ही इच्छा रखनी चाहिए। कथा सुनने के बाद एक ही इच्छा रखनी चाहिए कि मैं अब भगवान् का हो गया हूँ। मैंने अब पाप छोड़ दिया है, मुझे अब सतत भक्ति करनी है। जब भगवान बुलाए तब जाने को तैयार हूँ। जो सावधान होकर भक्ति करता है। उसे काल का भय नहीं

होता। समय आने पर जीव अपने आप ही काल को बुलाता है। कंस श्रीकृष्ण को मथुरा में न बुलाता तो अधिक समय तक जीवित रहता, किन्तु कंस का समय हो गया है। इसलिए वह अपने काल को बुलाता है। महापुरुषों ने कथा वर्णन करते हुए कहा है, व्यासजी का एक शिष्य था। उसका नाम दास था। वह गुरु की बड़ी सेवा करता था। एक दिन उसने हाथ जोड़कर व्यासजी से कहा कि महाराज मुझे कब मरना है यह बताइये। मेरा मरण कब होगा? व्यासजी ने कहा, 'ऐसा नहीं पूछना चाहिए। मनुष्य क्षण-क्षण मरता है। मृत्यु सिर पर बैठी है। उसे याद करके पाप छोड़ो और भक्ति करो। मृत्यु कब आएगी इसका विचार न करो।' दास ने कहा कि मुझे सचमुच यह जानना है कि मैं कब मरूँगा? मुझे वह समय आप अवश्य बताइए। व्यासजी ने कहा कि मृत्यु का समय जानने से कोई लाभ नहीं। यह सुनकर दास ने हठपूर्वक कहा कि मृत्यु का समय जानने से लाभ हो या न हो किन्तु आप मुझे अवश्य बताइये। दास ने व्यासजी की बहुत सेवा की थी। इसलिये वे उसे लेकर यमपुरी गए। उन्होंने यमराज से कहा कि यह मेरा शिष्य है। इसे आप यह बताइए कि कब मरेगा? यमराज ने कहा कि मैं यह नहीं जानता, मेरे मन्त्री मृत्युदेव जानते होंगे। यमराज व्यासजी और दास तीनों मृत्युदेव के घर गये। मृत्युदेव ने कहा कि महाराज विधाता ने इसके कपाल में क्या लिखा है, इसकी मुझे जानकारी नहीं। मुझे तो जब आदेश मिलता है, तब पकड़ने के लिये जाना पड़ता है। कोई कब मरेगा, इसकी मुझे खबर नहीं होती, विधाता जानें। सबने मृत्युदेव से कहा कि चलो हम विधाता के पास चलें। तुम यदि साथ रहोगे तो काम जल्दी होगा। यमराज, व्यास, दास और मृत्युदेव चारों विधाता के घर गये। उन्होंने विधाता से पूछा कि यह कब मरेगा, इसे हमें बताइये। विधाता ने व्यासजी से कहा, 'यह तुम्हारा शिष्य है। यह तुम्हारी सेवा करने के लिए आया है। यह तुम्हारी सेवा बहुत समय तक करे इस इच्छा से मैंने इसके कपाल में लिखा है कि व्यास, दास, यमराज और मृत्युदेव जब ये चारों मेरे घर आएँ तो इसकी मृत्यु हो। मुझे ऐसा विश्वास था कि तुम चारों किसी दिन एकत्र नहीं हो सकते। यदि एकत्र हो भी जाओ तो मेरे घर नहीं आ सकते, किन्तु अब आज ही यह मर जाएगा।' समय होने पर जीव काल को अपने पास बुलाता है। कंस की आयु पूरी हो गई।

अक्रूरजी ने कहा कि विचार तो मनुष्य कर सकता है, किन्तु भाग्य के अनुकूल होने पर ही विचार सफल होता है। संसार का सब सुख भाग्य के आधीन है। भाग्य के अनुसार ही सुख-दु:ख और संयोग-वियोग होता है। इसलिये परमात्मा को पाने का प्रयत्न करो और लौकिक सुख प्रारब्ध पर छोड़ दो। प्रारब्ध में लिखा होने पर ही सुख मिलता है। परमात्मा प्रारब्ध से नहीं किन्तु प्रयत्न से मिलता है। राजा, तुम्हारी इच्छा है तो मैं नन्दबाबा के यहाँ जाऊँगा? कंस राजा ने

कहा कि काका, मेरा यह भेद कोई न जानने पाये। अक्रूरजी ने कहा कि मैं यह भेद किसी पर प्रकट नहीं करूँमा, कोई इसे नहीं जानेगा। मैं विश्वासघात को बहुत बड़ा पाप समझता हूँ। यह सुनकर कंस अपने घर चला गया, किन्तु अक्रूर को सारी रात नींद न आई। वे रात भर परमात्मा का चिन्तन करते रहे और सोचते रहे कि आज की रात कब पूरी होगी। कल मुझे गोकुल जाना है। मुझे श्रीकृष्ण के दर्शन का लाभ मिलेगा। प्रातःकाल जल्दी उठकर अक्रूरजी ने स्नान किया और नित्यकर्म से निवृत्त होकर मथुरा से गोकुल के लिए प्रस्थान किया।

गच्छन् पथि महाभागो भगवत्यम्बुजेक्षणे।
भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिन्तयत्॥ (१०-३८-२)

तुम रास्ते चलते-चलते भी भक्ति करना। क्योंकि भक्ति सर्वत्र और सर्वकाल होती है। रास्ते में तो भक्ति करने की अधिक आवश्यकता है। तुम घर से यहाँ आए तो रास्ते में क्या करते थे? कुछ लोग तो दूसरे का मुँह देखते-देखते चल रहे थे, किन्तु किसी का मुँह या कपड़ा देखने से हमें क्या लाभ? अक्रूरजी रास्ते में यह पवित्र विचार करते हुये जा रहे हैं कि आज मेरे भाग्य का उदय हुआ है। आज मैं परमात्मा श्रीकृष्ण के दर्शन के लिये जा रहा हूँ मैंने पूर्वजन्म में कोई बड़ा यज्ञ किया होगा, किसी सन्त की सेवा की होगी, मैंने गरीब को प्रेम से भोजन कराया होगा। इसलिए आज मेरे उस पुण्य का उदय हुआ है। मेरे जैसे कामी-विलासी को भगवान् के दर्शन का लाभ नहीं मिल सकता, किन्तु प्रभु ने कृपा कर मुझे बुलाया है। जब परमात्मा कृपा करता है तब मन अत्यन्त शुद्ध हो जाता है। आज मेरा मन बहुत पवित्र हो गया है। आज मैं कंस राजा का उपकृत हूँ कि उसने मुझे गोकुल जाने की प्रेरणा दी। मैं सायंकाल गोकुल पहुँचूँगा। उस समय श्रीकृष्ण गौशाला में गायों की सेवा करते हैं। गोपालकृष्ण के दर्शन का मुझे सौभाग्य मिलेगा।

नमस्य आभ्यां च सखीः वनौकसः

मेरी तो ऐसी इच्छा थी कि श्रीकृष्ण को वंदन करने के पहले वहाँ जितने ग्वालमित्र होंगे उन सबको वंदन करूँगा। क्योंकि वे सभी मुझसे श्रेष्ठ हैं, इसीलिये परमात्मा के साथ क्रीड़ा करते हैं। जो प्रभु के धाम में क्रीड़ा करता है वही श्रेष्ठ है। जो शरीर के साथ क्रीड़ा करने में सुख समझता है वह कनिष्ठ है। ग्वाल पढ़े-लिखे नहीं हैं, गरीब हैं, किन्तु मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। क्योंकि वे श्रीकृष्ण के साथ प्रेम करते हैं, परमात्मा के साथ प्रेम करते हैं। जो संसार के पदार्थों के साथ प्रेम करता है वह कनिष्ठ है।

मैं ग्वालों को वन्दन करूँगा। बलरामजी को भी वन्दन करूँगा। इसके बाद अपने श्रीकृष्ण को साष्टांग वन्दन कर कहूँगा कि मैं तुम्हारा हूँ। जब मैं साष्टांग वन्दन करूँगा, तब ठाकुरजी मुझे

देखेंगे। वह कैसी शुभ घड़ी होगी? उनकी दृष्टि मुझपर पड़नी चाहिये। उनको यह मालूम होना चाहिए कि यह जीव शरण में आया है। जब स्वामी की प्रेमासिक्त दृष्टि मुझ पर पड़ेगी तब मेरा जीवन सफल होगा।

यद्यपि अक्रूरजी रास्ते में हैं, फिर भी परमात्मा के विचार में ऐसे तन्मय बन गये हैं कि वे मन से गोकुल में पहुँच गए हैं। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि गोपालकृष्ण के दर्शन का लाभ मिल गया है। आज श्रीकृष्ण ने पीला पीताम्बर पहना है। दाऊजी ने नीलाम्बर पहना है। श्रीकृष्ण श्याम हैं, दाऊजी गौर हैं। श्यामसुन्दर और गौरसुन्दर के दर्शन का लाभ अक्रूरजी को रास्ते में हुआ। अक्रूरजी विचार करते हैं कि जब मैं भगवान् को वन्दन करूँगा, तब वे मुझे प्रेम से देखेंगे और मेरे मस्तक पर हाथ रखेंगे। अक्रूरजी ने जहाँ अपने मन में यह विचार किया, वहाँ उन्होंने अपना हाथ स्वयं अपने मस्तक पर रख दिया इसके बाद वे विचार करते हैं, स्वामी का हाथ मेरे मस्तक पर पड़ते ही मेरी बुद्धि सुधर जाएगी, आज मैं कृतार्थ होने वाला हूँ। तत्पश्चात् मैं हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करूँगा। मैंने ऐसा सुना है कि यदि कोई भी जीव उनके पास जाए, तो उसे वे छाती से लगाकर एक बार उससे भेंट करते हैं।

लब्धाँगसंगं प्रणतं कृताञ्जलिं मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः।
तदा वयं जन्भभृतो महीयसा नैवादृतो यो धिगमुष्य जन्म तत्॥

(१०-३८-२१)

अक्रूरजी ने मन में सोचा कि श्रीकृष्ण बहुत प्रेम करते हैं। मैं उनके योग्य नहीं हूँ, किन्तु मेरी उम्र बड़ी है, मैं वयोवृद्ध हूँ उनके पिता वसुदेव का मैं मित्र हूँ। इसलिये वे मेरा नाम लेकर नहीं बुलाएँगे। मुझे वे 'काका' कहकर बुलायेंगे, उस समय मुझे बहुत आनन्द होगा। वे यदि एक बार 'काका' कहकर बुलायेंगे तो मेरा मरण मंगलमय होगा। क्योंकि भगवान् जिसे अपनाते हैं, उसे अन्त समय में लेने के लिए आते हैं।

इस जीव को मान-सम्मान की भूख होती है। प्रभु के दरबार में जाकर मान मिलता है और प्रभु जिसे मान देते हैं उसी का मान स्थायी बनता है। जगत् में कुछ लोग मान-सम्मान देते हैं, किन्तु बाद में खराब भी बोलते हैं। इसलिये जगत् खराब है, जगत् में मिला हुआ मान-सम्मान भी खराब है, और अपमान हो तो भी खराब है। जिसका मन मान और अपमान में शान्त रहता है, वही भक्त भक्ति कर सकता है। अक्रूरजी विचार करते हैं; 'आज मुझे बहुत आनन्द मिलेगा और मेरा जीवन सार्थक हो जायेगा। मैं आज परमात्मा के साथ एकाकार होने वाला हूँ।'

अक्रूरजी विचार करते-करते चले जा रहे हैं। उनका रथ नन्दगाँव के पास पहुँच गया है। जिस मार्ग से भगवान् श्रीकृष्ण गायों को लेकर घर गये हैं, उस रास्ते पर अक्रूरजी का रथ आ गया है उस भूमि में उन्हें श्रीकृष्ण के चरण-चिह्नों के दर्शन हुए हैं। वे विचार करते हैं, 'मैंने सुना है कि जिस समय वे गायों के पीछे-पीछे चलते हैं उस समय पैर में जूते नहीं पहनते, नंगे पैर चलते हैं। वे श्रीकृष्ण के चरण-चिह्न दिखाई दे रहे हैं। यह स्वस्तिक का चिह्न है और यह कमल का चिह्न दिखाई दे रहा है। इस ओर ग्वालों के चरण-चिह्न दिखाई दे रहे हैं। जब अक्रूरजी को ब्रज-रज में श्रीकृष्ण के चरणारविन्द के दर्शन हुए, तब उनका हृदय प्रेम से द्रवीभूत हो गया और उनकी आँखें गीली हो गईं। उस समय वे रथ में नहीं बैठ सके और रथ से जमीन पर कूद पड़े। श्रीकृष्ण की चरण-रज में वे लोटने लगे। उनकी दशा पागल जैसी हो गई। लोभी मनुष्य पैसे के लिए पागल बन जाता है। जब वह अनेक की खुशामद करता है, तब पैसा हाथ में आता है। जब पागल हुए बिना पैसा नहीं मिल सकता, तो परमात्मा उसे आसानी से कैसे मिल सकता है?

अति लोभी जीव पैसे में पागल बनता है। अति कामी जीव काम में पागल बनता है; किन्तु वह परमात्मा के लिए पागल नहीं बनता है। जो भगवान् के लिये पागल बनता है, उसे ही परमात्मा मिलता है। अक्रूरजी के मन में विचार आता है, 'मेरे भगवान् नंगे पैर चलते जा रहे हैं, तो फिर हमें रथ में नहीं बैठना है। क्योंकि मैं तो श्रीकृष्ण की सेवा करने वाले वैष्णवों का दास हूँ। यदि मैं रथ में बैठकर जाऊँ तो मुझे पाप लगेगा।' इसलिए अक्रूरजी साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते-करते आगे चले जा रहे हैं। बद्रीनारायण जाते समय अन्तिम मुकाम हनुमानचट्टी आता है। कुछ लोग हनुमानचट्टी से साष्टाँग प्रणाम करते-करते बद्रीनाथ जाते हैं। बहुत दुःख सहने पर और पापों का क्षय होने पर सात्विक भाव जागृत होता है। अक्रूरजी को याद आता है कि मेरा जीवन कैसा है! मैं श्रीकृष्ण के दर्शन के लिये जाता हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वे दर्शन नहीं देंगे। भला वे मेरे जैसे कामी और विलासी को क्यों दर्शन दें? अपनी जवानी का स्मरण करते हुए अक्रूरजी रो पड़ते हैं और विचार करते हैं, 'मैं दर्शन करने के योग्य नहीं हूँ, किन्तु मेरे भगवान् उदार हैं। यदि वे हमारे जैसे पापी को न अपनाएँ तो उन्हें पतितपावन कौन कहेगा? मैंने पाप किया है, किन्तु मेरे भगवान् ने उन पापों को भुला दिया है। इसीलिये तो प्रभु ने मुझे बुलाया है। वे मुझे अपनायेंगे।' अक्रूरजी को जब अपनी करनी याद आती है, तब वे हिम्मत खो बैठते हैं। फिर भी परमात्मा की दयालुता के विचार से उनमें हिम्मत आ जाती है। अक्रूरजी ने रास्ते में जो-जो मनोरथ किये प्रभु ने उन सबको परिपूर्ण कर दिया। परमात्मा के लिए जो विचार किया जाता है उन विचारों को वह सत्य सिद्ध करता है। पवित्र संकल्प करने से ही मन सुधरता है। तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु।

संकल्प करना मन का एक स्वभाव है। यदि संकल्प करना ही हो तो पवित्र संकल्प करना। संसार-सुख का संकल्प करके मन को खराब मत करना। एक बार मन के बिगड़ जाने पर फिर वह जल्दी नहीं सुधरता। अक्रूरजी जैसा पवित्र विचार करो।

अक्रूरजी का संकल्प था कि जिस समय वे गौशाला में गायों का दूध दुहने की तैयारी में होंगे उसी समय मैं पहुँचूँगा। आज ऐसा ही हुआ। गायें ऐसे स्वभाव की हैं कि जब श्रीकृष्ण उन पर हाथ फिराते हैं अथवा अपनाते हैं तो ही वे दूध देती हैं। लाला गाय दूहने की तैयारी में लगे हैं। ग्वालबाल मित्र यहाँ खड़े हैं। अक्रूरजी ने श्रीकृष्ण के दर्शन किए और उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया। उनकी आँखें भीग गईं, गला भर आया और मुँह से एक शब्द भी न निकला। वे लाठी की तरह ढलकर भगवान् के चरणों में पड़े। उन्होंने ''कृष्ण कन्हैयालाल की जय'' कहकर साष्टाँग प्रणाम किया। जब जीव को अपने किए गए पापों के प्रति हृदय से पश्चाताप होता है और जब यह जीव सब प्रकार का अभिमान छोड़कर भगवान् की शरण में जाता है तब वे इसे प्रेम से देखते हैं। भगवान् अक्रूरजी को प्रेम से देखते हैं और उनके माथे पर हाथ फिराते हैं। अक्रूरजी का सारा संकोच पिघल उठता है। प्रभु ने उनके मस्तक पर हाथ फिराया और कहा, 'उठो'। अक्रूरजी विचार करते हैं कि श्रीकृष्ण ने मस्तक पर हाथ तो फिराया; किन्तु वे अभी मुझे 'काका' कहकर नहीं बुलाते। क्या वे मुझे काका कहकर नहीं बुलाएँगे? मैंने बहुत पाप किए हैं। इसलिए मेरे जैसे पापी को 'काका' कहने में उन्हें संकोच होता होगा। अनेक वर्षों से हमने पाप छोड़ दिया है। मैं सबेरे उठकर ध्यान धरता हूँ, सेवा करता हूँ, और श्रीकृष्ण का कीर्तन करते-करते तन्मय हो उठता हूँ। कभी-कभी तो उनके कीर्तन में मुझे अपने देह का भान भी नहीं रहता। मेरे भगवान् मेरी इच्छापूर्ण नहीं करेंगे तो दूसरा कौन करेगा? जब वे मुझे 'काका' कहकर बुलाएँगे तभी मैं उठूँगा। मुझे पानी भी नहीं पीना है। मुझे कुछ माँगने की इच्छा नहीं है। वे मुझे एकबार 'काका' कहकर बुलायें तो मेरा मरण सुधरेगा। प्रभु के साथ सम्बन्ध जोड़ने पर भी भक्ति होती है। बिना सम्बन्ध जोड़े स्मरण नहीं होता। अक्रूरजी ने भगवान् से सम्बन्ध जोड़ लिया है। वृन्दावन में एक सन्त रहते थे। यौवन में वे योगी थे। वे प्राणायाम करते और समाधि में बैठते थे; किन्तु वृद्धावस्था में महान् भगवत-भक्त बन गए। उन सन्त को ऐसा विश्वास था कि जब तक नाक पकड़कर प्राणायाम करते हैं, तब तक मन शांत रहता है; किन्तु उसके बाद मन चंचल बन जाता है। अंतकाल में योग मुझे धोखा देगा। क्योंकि अंत समय की वेदना में योग सफल नहीं होगा। ध्यान रखो कि अन्त समय में अति दुःख पड़ता है। उस समय ज्ञान पर अधिक भरोसा मत करना। अंत समय की वेदना के समय मनुष्य यह भूल जाता है कि मैं शुद्ध चैतन्य आत्मा हूँ। उस समय यह देहाध्यास ही याद आता है

कि मैं शरीर हूँ। इसीलिए उस समय शरीर छोड़ने में बहुत व्याकुलता होती है। यदि योग का भक्ति से साथ नहीं होता है तो योग के कारण मरण बिगड़ जाता है। भक्ति से मरण सुधरता है।

अक्रूरजी ने विचार किया कि इस संसार में रहकर मुझे इसे भूल जाना है, श्रीकृष्ण में तन्मय होना है। मैं ऐसा कौन-सा काम करूँ जिससे यह संसार भूल जाए उन्होंने श्रीकृष्ण से अपना सम्बन्ध जोड़ा कि कन्हैया मेरा पुत्र है, मैं नंदबाबा हूँ। मुझे वृद्धावस्था में यह बालक मिला है। इसलिए मेरे प्राणों से भी प्यारा है। एक महात्मा परमात्मा को बालक मानकर श्रीकृष्ण की सेवा में तन्मय हो जाते हैं, बाललीला के चिन्तन में तन्मय बन जाते हैं। एकबार वे गंगाजी के दर्शन के लिए इच्छा करते हैं और गंगा में स्नान करने की कामना करते हैं। उन्होंने पहले गंगाजी को नहीं देखा था। काशी में गंगाजी सुशोभित हैं। इसलिए वे काशी जाने की तैयारी कर रहे हैं। किन्तु जिस समय वे बालकृष्ण-लाल की सेवा में तन्मय हो जाते उस समय उनका हृदय द्रवित हो जाता। उनको ऐसा अनुभव होता कि कन्हैया गोद में है और वह कह रहा है, ''मैं तुम्हारा बालक हूँ। मुझे छोड़कर क्या काशी जाने वाले हो? मुझे तुम्हारे बिना कुछ सुहाता नहीं बाबा, तुम मुझे छोड़कर यात्रा में मत जाना।''

सन्तजी काशी जाने की तैयारी करते; किन्तु अन्त में जाना बन्द कर देते थे। वे कहते कि मेरा पुत्र मना करता है। मुझे काशी नहीं जाना है।

वे सन्त वृन्दावन में पड़े रहे। उनकी उम्र १०५ वर्ष हो गई है। महाराज का शरीर अत्यन्त वृद्ध हो गया, किन्तु उनका कन्हैया चार-पाँच वर्ष का बालक ही बना रहा वह बड़ा नहीं हुआ। उनको बालस्वरूप में बहुत प्रीति है। उन्होंने बालकृष्णलाल को प्रेम से बालक माना है। वे श्रीकृष्ण में ही तन्मय रहते। एक दिन लाला का सेवा-स्मरण करते-करते महात्माजी ने अपना शरीर त्याग दिया। सभी साधु एकत्र हुए और कीर्तन करते-करते उनके शरीर को श्मशान में ले गए। अग्नि संस्कार की तैयारी के समय श्मशान में पाँच-छह वर्ष का एक सुन्दर बालक आया। उसने पीला पीताम्बर पहन रखा था और उसके कंधे पर गंगाजल का छोटा घड़ा था उस बालक को देखकर सब स्तब्ध रह गए उस बालक ने कहा, ''ये मेरे पिता हैं, मैं इनका पुत्र हूँ, इनके अग्नि-संस्कार का अधिकार मेरा है और मैं इनका अग्नि-संस्कार करूँगा इन्होंने मेरा बड़ा लाड़-प्यार किया है। मैं तो हठ करता था, किन्तु इन्होंने मुझ पर बहुत प्रेम किया था। पिताजी की इच्छा काशी में जाकर गंगा-स्नान करने की थी, किन्तु ये गंगा-स्नान नहीं कर सके। पिताजी की अंतिम इच्छा पूरी करना पुत्र का धर्म है।'' बालक ने महात्मा के शरीर को गंगा-जल से स्नान कराया। पुत्र ने पिता की जिस प्रकार अंतिम पूजा की जाती है उसी प्रकार उनकी अंतिम पूजा की उन्होंने कपाल में तिलक किया और उनको फूल की माला पहनाई। बालक ने उनके चरण में माथा झुकाया और कहा बाबा,

तुम्हारा कन्हैया तुमको वन्दन करता है। वन्दन करते-करते उसकी आँख में आँसू आ गए और उसने कहा, ''ऐसे पिता को धन्य है। इनका मुझ पर कितना प्रेम था। बालक ने सन्त का अग्नि-संस्कार किया।'' इसके बाद देखते ही देखते वह अदृश्य हो गया।

यदि परमात्मा के साथ सम्बन्ध रखोगे तो अन्त समय में वे तुम्हारे बहुत काम आयेंगे। आजकल यदि कोई पिता पुत्र को लाखों रुपये की सम्पत्ति दे तो भी वह पुत्र अन्त समय में पिता को धोखा दे देता है, पिता को मृत्यु-शय्या पर छोड़कर कहीं चला जाता है। यदि तुम ईश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ोगे तो धोखा नहीं होगा और मन शान्त रहेगा। यदि श्रीकृष्ण से सम्बन्ध जोड़ोगे तो वे अन्त समय में तुमको लेने आयेंगे। इसलिए भक्ति से ही मरण सुधरता है और भक्ति से ही जीवन मंगलमय बनता है।

अक्रूरजी की इच्छा थी कि श्रीकृष्ण उन्हें एकबार 'काका' कहकर पुकारें। प्रभु को जब यह पता चला कि इस जीव को 'काका' कहकर पुकारने की तीव्र इच्छा है तो इसमें मेरी क्या हानि है? मैं सबका बाप हूँ और सबका दादा भी हूँ। तुम श्रीकृष्ण के साथ जो सम्बन्ध जोड़ो, वे अवश्य सहायक बनते हैं। श्रीकृष्ण ने अक्रूरजी के मस्तक पर हाथ फेरा और कहा, 'काका, अब उठो।' यह सुनकर अक्रूरजी को आनन्द हुआ। कोई भी जीव जब भगवान् के पास आता है तब परमात्मा उसे एकबार भुजाओं में लेकर भेंट करते हैं। उन्हें यह लगता है कि मेरा जीव मेरे पास आया है। श्रीकृष्णजी के भेंट करने से अक्रूरजी को आनन्द हुआ। भगवान् ने अक्रूर काका का हाथ पकड़ा और कहा, 'काका आप अन्दर आइए। आपको नन्दबाबा बुला रहे हैं।' यह कहकर श्रीकृष्ण उन्हें अन्दर ले गए। नन्दजी ने अक्रूरजी का स्वागत किया। स्नान और भोजन से निवृत्त होकर बिछौने पर बैठने के बाद नन्दबाबा कुशल समाचार पूछते हैं। अक्रूरजी ने कहा, बाबा, सभी आनन्द से हैं, और आपको सब बहुत याद करते हैं। आप बहुत दिन से मथुरा नहीं आए हैं। कंस राजा कल से एक बड़ा यज्ञ कर रहे हैं। मैं उस यज्ञ के दर्शन के लिये विशेष रूप से आपको आमन्त्रण देने आया हूँ। कंस राजा की मुझे यह आज्ञा मिली है कि नन्दबाबा दर्शन के लिये मथुरा आयें। लाला भी ग्यारह वर्ष के हो गए हैं। मथुरा पास ही है। फिर भी वे अब तक वहाँ एक बार भी नहीं आए हैं। सबकी इच्छा है और कंस राजा की अधिक इच्छा है कि वे भी आयें। कंस राजा ने लाला के लिये सोने का रथ भेजा है।

कँस राजा ने रथ तो भेजा है लेकिन कपट से भेजा है। नन्दबाबा बहुत भोले हैं। बहुत भोले को संसार में कहीं छल-कपट नहीं दिखाई देता। नन्दबाबा यह समाचार सुनकर खुश हो गये और कहा कि एक ब्राह्मण ने लाला की जन्मकुण्डली देखकर मुझे यह बताया था, 'तुम्हारे कन्हैया को

ग्यारहवाँ वर्ष आरम्भ होते ही उसे लेने के लिये कोई सवारी लेकर तुम्हारे घर आयेगा। इसके बाद लाला गायों के पीछे-पीछे नंगे पैर नहीं घूमेगा। ऐसा योग है कि वह राजा होगा।' फिर नन्दबाबा ने कहा कि ब्राह्मण की यह बात सत्य सिद्ध हुई। आज तुम रथ लेकर आये हो। मेरी भी बहुत इच्छा थी कि लाला को मथुरा दिखा दूँ। अब मैं कल श्रीकृष्ण-बलराम को मथुरा ले जाऊँगा। मुझे उस रथ में नहीं बैठना है। मैं तो बैलगाड़ी में बैठकर आऊँगा। तुम मेरे बालकों को उस रथ में बैठाकर ले आना।

६८- मथुरा-प्रयाण

बालकों को यह समाचार मिला कि उन्हें मथुरा जाना है, तब वे दौड़ते-दौड़ते नन्दबाबा के पास पहुँचते हैं और कहते हैं, 'बाबा मुझे भी अपने साथ ले चलो। कन्हैया अकेला जायेगा तो उसके साथ कौन खेलेगा? मैं लाला के साथ खेलूँगा। मुझे जाने से मत रोकना। बाबा हमको रथ में नहीं बैठना है। हम तो कंस के रथ के पीछे-पीछे दौड़ेंगे।' नन्दबाबा ने उनसे कहा कि तुम अपने घर जाओ और अपने माता-पिता से आज्ञा ले आओ। यह सुनकर बालक अपने-अपने घर जाते हैं। और अपनी माँ से कहते हैं, माँ कल कन्हैया मथुरा जाने वाला है, मुझे भी उसके साथ मथुरा जाना है। माँ को अपना बालक प्राणों से प्यारा लगता है। वे अपने बालक से कहती है कि तुम लाला के साथ जाना और उसको अच्छी तरह सम्हालना। लाला बहुत कोमल है।

मथुरा जाने की तैयारी होने लगी। सभी आनन्द मग्न हैं। केवल यशोदामाता व्याकुल हैं। वे नन्दबाबा से पूछती हैं कि क्या आप कल मथुरा जाने वाले हैं? क्या अपने साथ मेरे लाला को भी ले जाने वाले हैं? नन्दबाबा ने कहा, "हाँ, कल मथुरा जाना है। तू देखती नहीं कि कंस राजा ने लाला के लिए रथ भेजा है।" यशोदामाता ने कहा, "यह रथ देखकर आप भ्रम में मत पड़िए। कंस कपटी है। उसकी नीयत अच्छी नहीं है। इधर दो-तीन दिनों से मुझे बड़े खराब-खराब सपने दिखाई देते हैं। मैं विचार कर रही थी कि मुझे ऐसे खराब स्वप्न क्यों दिखाई देते हैं? मैं आपसे क्या कहूँ? आप अक्रूर से बातें करते हैं; किन्तु मुझे यह अक्रूर काल जैसा दिखाई देता है। मेरा लाला मथुरा नहीं जाएगा। उसे सबेरे उठते ही भूख लगती है। जब मैं उसे सबेरे मक्खन देती हूँ, तब वह थोड़ा खाता है। वह बड़ा संकोची है। लाला देखने में बड़ा सुन्दर लगता है। मुझे भय रहता है कि अत्यन्त सुन्दर होने के कारण कन्हैया को किसी की नजर न लग जाए। मथुरा जाने पर कोई स्त्री उस पर जादू कर देगी। वह यहाँ से मथुरा जाने के बाद फिर वापस नहीं आ सकेगा। यह मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्यारा लगता है। यही मेरा आधार है। इसे वृद्धावस्था में मेरी आँखों से दूर न

हटाइये। आपकी वहाँ जाने की बड़ी इच्छा हो, तो बलराम को साथ ले जाइए। मैं लाला को आपके साथ नहीं भेजूँगी। यदि कन्हैया हठ करेगा, तो भी मैं उसे नहीं भेजूँगी।''

नन्दबाबा कहते हैं, कन्हैया का ग्यारहवाँ वर्ष चल रहा है। इसे कुछ बाहरी ज्ञान होना चाहिए। तू इसे घर में कितने दिन कैद रखेगी? मैं इसे जल्दी गोकुल का राजा बनाना चाहता हूँ। कंस एक बड़ा राजा है। उसके साथ उसकी जान-पहचान होगी। कंस ने इसे लाने के लिए रथ भेजा है। यदि इसे न भेजूँ, तो वह बुरा मानेगा और दुश्मनी करेगा।''

यशोदाजी कहती हैं, ''यहाँ से जाने के बाद वह जल्दी वापस नहीं आएगा।''

नन्दबाबा ने कहा, ''यह वापस क्यों नहीं आएगा? मैं इसके साथ जाने वाला हूँ। मैं इसे मथुरा में सब कुछ दिखाऊँगा। फिर इसे रथ में बैठाकर वापस ले आऊँगा।''

नन्दबाबा को यह पता नहीं कि मथुरा में क्या होने वाला है। वे यशोदा की बात नहीं मानते।

घर के सब लोग सो गए हैं। नन्दबाबा यह बात भूल गए हैं। उन्हें भी नींद आ गई है। आज यशोदामाता उद्विग्न हैं। उन्होंने बालकृष्ण को बिछौने पर सुला दिया है वे बारंबार उसकी पीठ थपथपाती हैं, उनके मस्तक पर हाथ फ़िराती हैं और सोचती हैं, ''आज यह मेरे बिछौने पर है। कल यहाँ नहीं होगा। मथुरा जाने के बाद क्या होगा?'' यह सोचकर यशोदामाता व्याकुल हो उठती हैं और रो पड़ती हैं। उनको निद्रा नहीं आती। उन्होंने बिछौना छोड़ दिया है। आधी रात का समय है। वे अपने आँगन में बैठ गई हैं। रात्री काल में कन्हैया की नींद खुल गई। उन्होंने माता को बिछौने पर नहीं देखा। वे विचार में पड़ गए, ''मेरी माता मेरा बड़ा ध्यान रखती है। वह इस समय बिछौने पर नहीं दिखाई देती। वे माता को रात्रिकाल में खोजने के लिए निकल पड़ते हैं। जब उन्होंने उसे घर में नहीं देखा, तो बाहर निकल पड़े। उन्होंने देखा कि माता आँगन में बैठी-बैठी रो रही है। वे अपने पीताम्बर से माता के आँसू पोंछने लगते हैं और कहते हैं, ''माँ, तू क्यों रो रही है? मैं तेरा पुत्र हूँ। तू जो कहेगी, वह करने को मैं तैयार हूँ। तू बिल्कुल मत रो।''

माता बोली, मुझे कुछ नहीं होता है; किन्तु कल तू जाने वाला है, इसका मुझे दुःख है। मेरा कन्हैया मुझसे दूर न जाए, यह मेरी इच्छा है।

लाला ने कहा, ''मैया मुझे मथुरा नहीं जाना है; किन्तु कंस मामा की आज्ञा न मानूँ तो उनको बुरा लगेगा। इसलिए कल मैं उनके यहाँ जाऊँगा।'' यह सुनकर माता ने कहा कि मुझे तेरे बिना कुछ नहीं सुहाता। किन्तु जब लाला ने यह कहा कि मैं वापस आऊँगा, तब माता को आनन्द हुआ कि मेरा पुत्र जो कहता है उसीके अनुसार कार्य करता है। इसने मुझसे कहा है कि मैं,

आऊँगा? माता को आनन्द हुआ। आनन्द के कारण वह यह भी न पूछ सकी कि तू कब वापस आएगा? बालकृष्णलाल ने भी इतना ही कहा कि मैं आऊँगा। हमें किसी मनुष्य की आशा नहीं करनी चाहिए और परमात्मा की आशा छोड़नी नहीं चाहिए। व्रजवासी इस आशा से जी रहे हैं कि कृष्ण ने आने के लिए कहा है इसलिए वह अवश्य आएगा। यशोदामाता ने विचार किया कि बेटा अकेला सोने वाला नहीं है इसलिए वे भी सो गईं। माता को निद्रा तो नहीं आती; किन्तु लाला को समझाने के लिए बिछौने पर पड़ी आँख बन्द कर लेती हैं। माँ लाला को अपनी छाती से चिपका लेती है। आज यशोदा माँ के हृदय में लाला ने प्रवेश किया।

प्रातःकाल हो गया। यशोदामाता ने श्रीकृष्ण-बलराम को जगाया। उनके शरीर पर सुगन्धित तेल की मालिश की और स्नान कराया। लाला ने पीताम्बर धारण किया। यशोदा माता ने लाला का अन्तिम शृंगार किया और उनका शृंगार करते-करते रो पड़ीं। माता का प्रेम देखकर लाला की आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने कहा कि माँ, तुझे रोती देखकर मुझे दुःख होता है। माँ ने अपने दुःख का वेग दबा लिया।

इस ओर अक्रूरजी ने रथ तैयार किया और आँगन में ले आए। जब गोपियों को यह समाचार मिला तो वे सब यशोदाजी के आँगन में पहुँच गईं। आज तो श्रीराधाजी भी आ गईं। उनकी उम्र ९ वर्ष की है। उनका शृंगार बहुत सादा है। उन्होंने जबसे यह जाना है कि श्रीकृष्ण मथुरा जाने वाले हैं तभी से मूर्छावस्था में हैं। कुछ गोपियाँ श्रीराधाजी की सेवा में लगी हैं, कुछ रथ घेरकर बैठी हैं और कुछ अक्रूरजी से बातें करती हुई कहती हैं, अक्रूरजी आप कैसे हैं? आप क्या हमारा गोकुल गाँव उजाड़ने आए हैं? हम आपसे सच कहती हैं कि जब श्रीकृष्ण नहीं दिखाई देते तब गायें घास नहीं ख़ातीं पानी नहीं पीतीं। आपको इन गायों की हाय लगेगी। क्या आपको हम पर दया नहीं आती? आपके चरणों में मैं वंदना करती हूँ। यदि आप कहेंगे तो मैं आपके घर आकर आपका छोटे से छोटा काम करूँगी। आप हमें श्रीकृष्ण के वियोग में क्यों मार रहे हैं? श्रीकृष्ण का वियोग हमें एक क्षण के लिए भी सहन नहीं होता। बिना श्रीकृष्ण के हमारा जीवन व्यर्थ ही है। गोपी अन्दर ही अन्दर बात करते-करते कहती हैं कि इसकी बुआ ने बिना विचारे ही इसका नाम अक्रूर रखा है। यह तो बड़ा क्रूर दिखाई देता है। दूसरी गोपी ने कहा कि विधाता दो प्रेमियों को एक स्थान पर देख नहीं सकता। गोपी सेवा किस प्रकार करें यह समझ नहीं आता। मैं तो मूर्ख हूँ, पागल हूँ। मैं सारे दिन "हे कृष्ण! हे कृष्ण! याद करती हूँ। मथुरा की स्त्रियाँ बहुत सुन्दर हैं, बहुत शिक्षित हैं। लाला की ऐसी सेवा करेंगी कि वह फिर गोकुल में वापस नहीं आएगा, हमें भूल जाएगा। श्रीकृष्ण के बिना यह जीवन व्यर्थ है।"

कुछ गोपियाँ विचार करती हैं, ''मैं रथ के आगे सो जाऊँगी और देखूँगी कि वे रथ को कैसे आगे ले जाते हैं।''

अक्रूरजी ने गोपियों का प्रेम देखा। उनकी नजर धरती पर गड़ी है और उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़ लिए हैं।

यशोदा माँ श्रीकृष्ण-बलराम को भोजन कराती हैं। भोजन करने के बाद वे बाहर आते हैं। उस समय राधाजी तो मूर्छित होकर जमीन पर पड़ी हैं। वे राधाजी के मस्तक पर हाथ रखते हैं और उनके कान में कहते हैं कि तुम और मैं एक ही हैं। अर्थात् हम दोनों एक ही हैं। राधा ही श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्ण ही राधा हैं। केवल लीला करने के लिए दोनों स्वरूप प्रकट हुए हैं। आज तक मैं श्रीराधाजी को खुश करने के लिए बाँसुरी बजाता था। मैं गोपियों को खुश करने के लिए नाचता था। हे श्रीराधे, इस जगत् में पाप बढ़ गया है। इस समय देश दुःखी है। इस देश को सुखी करने के लिए, पृथ्वी का भार-उतारने के लिए और धर्म की स्थापना करने के लिए मथुरा जाता हूँ। मैं जा तो रहा हूँ, किन्तु मैंने अपने प्राण तुममें रख छोड़े हैं। श्रीराधे, मैं तुम्हें क्या दूँ?

यह बाँसुरी मुझे प्राणों से भी प्यारी है। यह मैं तुम्हें देता हूँ। मथुरा जाने के बाद मैं बाँसुरी नहीं बजाऊँगा, शंख बजाऊँगा। उन्होंने बाँसुरी श्रीराधाजी के हाथ में देते हुये कहा कि श्रीराधे, तुम जब बाँसुरी बजाओगी तो मैं दौड़ता हुआ तुमसे मिलने आऊँगा। यह सुनकर श्रीराधाजी एक अक्षर भी बोल न सकीं। श्रीकृष्ण ने गोपियों से कहा, 'यदि तुम रोओगी तो मेरे प्रस्थान में अपशकुन होगा, इसलिये रोना मत। मैं तुम्हारा प्रेम जानता हूँ।' स्वामी की आज्ञा होते ही गोपियाँ आँख के आँसू रोकते हुये खड़ी हो जाती हैं।

अक्रूरजी ने कहा कि मैं आप सबसे आज्ञा चाहता हूँ। गोपियाँ परमात्मा को मनाती हुई कहती हैं कि हे प्यारे! हमारा नियम है, हम तुमको प्रतिदिन मक्खन मिश्री देती हैं वह तैयार रखा है। तुमको अधिक नहीं रोकना है। इसे खाकर मथुरा जाओ।

दूसरी गोपी कहती है, 'मेरा नियम है कि मैं प्रतिदिन सायंकाल श्रीकृष्ण को तिलक करती हूँ, लाला की आरती उतारती हूँ। आप अपने प्रस्थान करने के पूर्व दो घड़ी के लिये पधारिये। मैं आपको अधिक नहीं रोकूँगी।'

गोपी-प्रेम का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है। प्रभु ने सबको आश्वासन दिया और बलरामजी के साथ रथ में बैठे। रथ में विराजमान श्रीकृष्ण के दर्शन से गोपियाँ व्याकुल हो उठीं कि कन्हैया जा रहा है। अब इसका दर्शन कब होगा? गोपियों के दबाये हुए आँसू बाहर छलक पड़े। सबने हाथ उठाकर कहा कि हे गोविन्द, हे दामोदर, हे प्राण प्यारे, आप जल्दी वापस आना।

एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः।
विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति॥

(१०-३९-३१)

हे दामोदर, हे गोविन्द! हम तुम्हारे ही आधार पर जी रही हैं। हमारा त्याग न करना। प्रभु ने अक्रूरजी की ओर देखा और रथ चलाने का इशारा किया। जब अक्रूरजी ने रथ चलाया तो गोपियाँ बहुत व्याकुल हो गईं और बोल पड़ीं, 'अक्रूर, अक्रूर, तू हमें गोविन्द के दर्शन करने दे। हमने अभी इनके दर्शन नहीं किए। अक्रूर तू क्या क्रूर हो गया है। तुझे हम पर दया नहीं आती।'

अक्रूर ने रथ आगे बढ़ाया। कुछ गोपियाँ मूर्च्छित हो गईं। अब तक यशोदा माता धीरज रखकर वहाँ खड़ी थीं। उनका लाड़ला कन्हैया जा रहा है। उन्होंने कहा कि मेरे लाल को कोई क्यों नहीं रोकता? उस समय यशोदा माता को लोकलज्जा का कुछ ख्याल नहीं रहा और वे रथ के पीछे-पीछे दौड़ने लगीं। प्रभु ने देखा कि मेरी माता दौड़ती हुई आ रही है। वे रथ से नीचे उतर पड़े। यशोदा माँ ने उनसे कहा, 'बेटा मेरी इच्छा थी कि तू मेरी आँख से दूर न जा। मैंने तुझे आनन्दमय रूप में देखने का हमेशा प्रयत्न किया है। अब तुझे मथुरा जाने की इच्छा हुई है इसलिए मैं तुझे रोकती नहीं। तेरा सुख ही मेरा सुख है। लाला तू ऐसा है कि तुझे याद कर सब रोते हैं। मैं भी तुझे याद कर रोऊँगी।'

रोने में अत्यन्त सुख है। परमात्मा का स्मरण करते-करते जो उनके वियोग में रोता है उसके दुःख का अन्त होता जाता है। यह जीव अनेक जन्मों से रोता ही आया है। कोई धन के लिए रोता है तो कोई कीर्ति के लिए रोता है। यह जीव किसी दिन परमात्मा के लिए नहीं रोता। यशोदा माता कहती हैं कि मैं तुझे याद करके रोऊँगी। उन्होंने लाला का हाथ दाऊजी के हाथ में देते हुए कहा, 'बेटा तू बड़ा है। तू इसे सम्भालना। मेरी इच्छा है कि कन्हैया कहीं इधर-उधर न जाए और यह यदि कभी हठ करे तो तू इसे खुश करना।

माँ ने लाला से कहा, 'बेटा आज तक मैंने तुझसे कुछ कहा नहीं और मेरी कुछ कहने की इच्छा भी नहीं है, किन्तु तू आज जा रहा है इसलिए कहती हूँ कि तू मुझे माँ-माँ कहकर बुलाता है तो लोग यह बात करते हैं कि मैं तेरी माँ नहीं हूँ, तेरी माँ देवकी है। मैं तेरी दासी हूँ, तेरी धाय हूँ। बेटा मैंने तो तुझे दूध पिलाया है। मैं अधिक कुछ नहीं जानती। केवल इतना ही जानती हूँ कि मैंने तुझे प्रेम किया है और पालपोस कर बड़ा किया है। मैं केवल यही इच्छा रखती थी कि लाला को कोई तकलीफ न हो। इसे छोड़कर मैंने कोई दूसरा विचार नहीं किया। बेटा, आज

मुझे याद आता है कि मैंने एक बार तुझे ओखली से बाँधा था। यह मेरी भूल थी। इसलिये तेरी वह माँ क्षमा माँगती है। बेटा मन में उसके लिए नाराज न होना। जब तेरी इच्छा हो तब घर आना।

यशोदा माँ खूब रोती हैं, घर की गायें रोती हैं और वृन्दावन के पशु-पक्षी भी रोते हैं। गोपियाँ रोती हुई कहती हैं कि हमारा कन्हैया जा रहा है। सबका प्रेम देखकर अक्रूरजी भी रोने लगे। श्रीकृष्ण बार-बार माँ के चरणों में वंदना करते हैं और कहते हैं, माँ आज तूने कहा तो कहा फिर ऐसा न कहना। लोग चाहे जो कुछ कहें किन्तु कन्हैया तो तेरा ही है। तू मेरी माँ है और मैं तेरा पुत्र हूँ। माँ-माँ तूने प्रेम से बाँधा है। तेरा यह प्रेम कन्हैया कभी नहीं भूलेगा। माँ मैं आऊँगा, माँ तू रोना मत। माँ मुझे आशीर्वाद दे।

माँ लाला को छाती से लगाकर आलिंगन करती है। श्रीकृष्ण-बलराम रथ में बैठ गए और रथ चल पड़ा।

यावदालक्ष्यते केतुर्यावद् रेणू रथस्य च।
अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः।। (१०-३९-३६)

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि कन्हैया निष्ठुर नहीं है, वह बहुत दयालु है, वह अतिशय प्रेम करता है। श्रीकृष्ण प्रेम की मूर्ति हैं। प्रभु ने विचार किया कि ब्रजवासी मेरा बहुत ध्यान धरते हैं। इसलिए वे मेरे स्वरूप को प्राप्त होंगे। ध्यान संयोग में नहीं, वियोग में ही होता है। श्रीकृष्ण अपने सतत ध्यान के लिए ही वियोग देते हैं। कुछ सन्त ऐसा कहते हैं कि जब श्रीकृष्ण का रथ आगे बढ़ा तब जितनी गोपियाँ रथ के पीछे-पीछे दौड़ती रही थीं, उतने श्रीकृष्ण के रूप प्रकट हो गए। श्रीकृष्ण एक गोपी के कान में कहते हैं, 'तू मुझे कहीं छिपा दे। मुझे अब जाना नहीं है। तू किसी से यह मत कहना कि मैं यहाँ हूँ।' इससे कुछ गोपियों को यह अनुभव होता है कि श्रीकृष्ण मेरे लिए रथ से उतर पड़े हैं। किसी को ऐसा प्रतीत होता है कि वे मेरे साथ हैं। किसी को ऐसा लगता है कि वे मेरे घर आए हैं। इस प्रकार गोपियों की आँखों में श्रीकृष्ण हैं, उनके हृदय में श्रीकृष्ण हैं, उनके रोम-रोम में श्रीकृष्ण हैं। गोपी कृष्ण रूप हैं। भक्त और भगवान् दोनों अन्दर से एक ही होते हैं। वे गोपियों को ऐसा ही अनुभव कराते हैं। वहिरंग में वियोग है और अन्तरंग में संयोग है।

अक्रूरजी यमुनाजी की धारा तक रथ ले आए। श्रीकृष्ण-बलराम रथ में विराजमान हैं। अक्रूरजी यमुना में स्नान कर मध्याह्न की संध्या करते हैं। उस समय उन्हें यमुनाजी में श्रीकृष्ण-दर्शन का लाभ मिलता है। श्रीकृष्ण रथ में विराजमान हैं और यमुनाजी में भी दिखाई देते हैं। अक्रूरजी को विश्वास है कि श्रीकृष्ण परमात्मा हैं और भगवान् के दर्शन का आनन्द मिला है। अक्रूरजी

श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं। श्रीकृष्ण मथुरा पहुँच जाते हैं। नन्दबाबा ने मथुरा के बाहर एक बगीचे में मुकाम किया है। श्रीकृष्ण ने अक्रूरजी से कहा कि मुझे भी इसी बगीचे में रहना है। अक्रूरजी की बड़ी इच्छा थी कि श्रीकृष्ण मेरे घर पधारें और मेरा घर पवित्र हो जाए किन्तु श्रीकृष्ण ने कहा कि काका, मामा की खबर लिए बिना मुझे किसी के घर नहीं जाना है। कंस मामा की खबर लेने के बाद मैं आपके यहाँ आऊँगा। अक्रूरजी राजमहल में गए हैं और कंस को खबर दी है कि मैं श्रीकृष्ण और बलराम को ले आया हूँ। वे दोनों गाँव के बाहर बगीचे में ठहरे हैं। वे कल आपसे मिलेंगे। यह सुनकर कंस बहुत खुश हुआ।

इस ओर श्रीकृष्ण-बलराम बगीचे में आते हैं। नन्दबाबा लाला की प्रतीक्षा करते हुए बैठे हैं। उस समय कन्हैया को वहाँ आया देखकर सबको आनन्द होता है। नंदबाबा ने लाला को गोद में उठा लिया और प्यार करते हैं। यशोदा माता ने लाला को रास्ते में खाने के लिए उनको पसन्द आने वाली सुन्दर सामग्री दी है। वे अपने बालमित्रों के साथ भोजन करने बैठे हैं। श्रीकृष्ण के जीवन में यह पहला अवसर है जब यशोदा माता उनके साथ नहीं हैं। भोजन करते समय उन्हें माँ का प्रेम याद आता है कि वह कितना प्रेम करती है। श्रीकृष्ण यशोदा माँ का स्मरण करते हैं और उनकी आँख में आँसू भर आते हैं। उनका कौर हाथ में ही रह जाता है। वे भोजन नहीं कर सकते। नन्दबाबा से कहते हैं कि मुझे मेरी माँ बहुत याद आती है। मेरी माँ बहुत भोली है। वह घर में बैठकर रोती होगी। उस समय मेरी माँ को कौन समझाता होगा? भक्ति इस प्रकार करो कि भगवान् तुम्हें किसी दिन याद करें। यह जीव ईश्वर का स्मरण करे तो यह साधारण भक्ति है, किन्तु ऐसा प्रेम करो कि भगवान् किसी दिन जीव का स्मरण करे तो वह भक्ति है। यशोदा माता का प्रेम ऐसा है कि श्रीकृष्ण भोजन नहीं कर सकते। श्रीकृष्ण को गायें याद आती हैं। वे जब से गोकुल से अलग हुए तब से गायें घास नहीं खातीं, पानी नहीं पीतीं, नजर गड़ाकर रँभाती हैं। वे कहती हैं कि हमारा गोपाल अदृश्य हो गया है। वह कब लौटेगा? गायें लाला का रास्ता देखती हैं। वे चारा नहीं खातीं। यदि गायें उपवास करें तो उनका नौकर किस प्रकार भोजन करे। श्रीकृष्ण ने कहा मुझे आज कुछ भोजन नहीं करना है। नन्दबाबा ने बहुत आग्रह किया है कि बेटा थोड़ा तो खा लो। श्रीकृष्ण ने कहा कि बाबा मैं सबेरे घर से निकला तो मेरी माँ ने मुझे खूब खिला दिया था। अब मुझे जरा भी भूख नहीं। रात में सब वहाँ सो गये।

प्रातःकाल हो गया है। सबने स्नान कर लिया है। ग्वालबाल मित्रों ने लाला से कहा कि कन्हैया तू हमको मथुरा नहीं दिखाएगा? मथुरा देखने के लिए सब नन्दबाबा की आज्ञा लेने आए हैं। नन्दबाबा ने उन्हें समझाते हुए कहा कि तुमको मथुरा देखनी हो तो जाओ, किन्तु शरारत मत

करना। तुम जानते हो कि यह बड़ा शहर है और कंस राजा की राजधानी है। यहाँ कंस राजा की जय बोलनी पड़ेगी। लाला की जय बोलने पर यदि किसी को बुरा लगे तो क्या होगा? तुम सब अँधेरा होने के पहले ही वापस आ जाना। श्रीकृष्ण अपने बालमित्रों के साथ मथुरा में प्रवेश करते हैं। बालकों को रोज लाला की जय बोलने की आदत है। उनको ऐसा लगता है कि कन्हैया हमें बहुत देता है और हम उसे कुछ नहीं देते। इसलिए वे चाहे लाला बाहर हो या घर में हो लाला की जय बोलते हैं। मथुरा में लाला की जय बोलने के लिए नन्दबाबा ने मना किया था किन्तु लड़के यह भूल गए। जब लाला ने महाद्वार में प्रवेश किया तब वे कृष्ण-कन्हैयालाल की जय......दाऊजी महाराज की जय.........श्रीकृष्ण और बलराम का जय-जयकार करते हैं। जय-जयकार के वे शब्द मथुरा की स्त्रियों के कान में पड़ते हैं। वे सब अपना काम छोड़कर दर्शन की आतुरता से दौड़ती हुई आती हैं। जो स्त्रियाँ भोजन कर रही थीं, वे हाथ में कौर लेकर दौड़ने लगीं। सारे नगर में ग्यारह वर्ष के कृष्ण के दर्शन की आतुरता बढ़ी हुई थी।

मनांसि तासामरविन्दलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकनैः।
जहार मत्तद्विरदेन्द्रविक्रमो दृशां ददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम्॥

(१०-४१-२७)

प्रभु ने प्रथम दर्शन में ही प्रत्येक का मन जीत लिया है। राजमार्ग से जाते समय रास्ते में कंस का धोबी मिला। यह रामावतार का जीव है। इसने श्रीजानकी माता की निन्दा की थी। श्रीसीता राम बहुत सरल हैं। उन्होंने निन्दा करने वाले को जरा भी दण्ड नहीं दिया। निंदा करने वाले को धोबी के घर जन्म लेना पड़ता है। कंस का धोबी दुष्ट जीव है, वह बहुत अकड़कर चलता है। उसने कपड़ों की गठरी अपने सहायकों के सिर पर रख दी है। श्रीकृष्ण ने धोबी से कहा कि तुम बहुत कपड़े ले जा रहे हो। क्या इसमें से थोड़ा मुझे और मेरे मित्रों को दे दोगे? धोबी ने अकड़कर कहा, 'तुम्हारे बाप-दादों ने क्या कभी ऐसा कपड़ा देखा है। ये कंस महाराज के कपड़े हैं। तुम इसे क्या समझो। यह तुम्हारा गोकुल गाँव नहीं है। मैं सिपाही को बुलाकर तुमको पकड़वाऊँगा।' धोबी प्रभु श्रीकृष्ण की बहुत निन्दा करने लगा। यह सुनकर बलरामजी को बहुत बुरा लगा। उन्होंने लाला से कहा कि इसे मरने का सन्निपात हो गया है। तू इसे मार। बड़े भाई की आज्ञा मानकर श्रीकृष्ण दौड़ पड़े और धोबी के मुख पर थप्पड़ मारा। राजा का नियम है कि मनुष्य जिस अंग से अधिक पाप करता है उसी अंग को अंत समय में अति सजा मिलती है। धोबी ने अपने मुख से अधिक पाप किया है। इसलिए उसके मुख पर थप्पड़ मारा गया है। इससे उसका सिर और धड़ अलग हो गया। धोबी के नौकर कपड़े की गठरियाँ फेंककर भाग गए। लाला ने कहा

कि मित्रों! ये गठरियाँ खोलो। मित्रों ने घबराकर लाला से कहा कि कन्हैया नंदबाबा ने कहा है कि जरा भी शरारत मत करना। तुझे चोरी करने की आदत है। वह आदत अभी गई नहीं है। तूने रास्ते में धोबी को मार डाला और हमें कपड़ा लेने के लिए कहता है। कन्हैया कहता है '' मैं चोरी नहीं करता। यह सब मेरा है। मैं मालिक हूँ। तुमको इसके बाद इसकी अधिक ज़ानकारी मिलेगी यह सुनकर भी जब बालकों को हिम्मत नहीं हुई तब श्रीकृष्ण गठरियाँ खोलते हैं। वे एक-एक को पीताम्बर देते हैं, जरी का दुपट्टा देते हैं। साफा बाँधते हैं और मित्रों को सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहनाते हैं। आज तक तो वे काली कमली ओढ़कर और ग्वालों के साथ गाएँ लेकर वृन्दावन में जाते थे आज तक मालिक का नियम था कि सिले हुए कपड़े न पहनें और हाथ में शस्त्र न लें। आज तक वे गोपालकृष्ण थे। अब वे मथुरा नाथ होने वाले हैं। लाला और बलरामजी ने भी सुन्दर कपड़े पहने। बालक बहुत खुश हो गये।

रास्ते में कुब्जा मिली। वह कंस की सेवा करती है और शरीर में तीन जगहों से टेड़ी है। वह हाथ में चंदन का कटोरा लेकर जा रही है। प्रभु ने उससे चंदन माँगा। कुब्जा ने चंदन दे दिया। चन्दन हृदय को शीतल करता है। प्रभु ने विचार किया कि इसने चन्दन देकर मेरी शोभा बढ़ा दी। इसको सुन्दर रूप दें दूँ। प्रभु ने कुब्जा के पग पर अपना पग रखा और उसकी ठुड्डी पकड़कर ऐसा झटका दिया कि उसके तीनों अंग सीधे हो गए।

बुद्धि तीन जगहों पर टेढ़ी होती है। अर्थात् बुद्धि के तीन दोष है– काम, क्रोध और लोभ। जिसकी बुद्धि टेढ़ी होती है उसका मन टेढ़ा होता है। जिसका मन टेढ़ा होता है उसकी आँख टेढ़ी होती है और जीवन टेढ़ा होता है। कंस की सेवा करने से बुद्धि टेढ़ी होती है। वह श्रीकृष्ण के सम्मुख आने पर सीधी हो जाती है। श्रीकृष्ण बुद्धि के पति हैं और सद्गुरु बुद्धि के पिता हैं। सद्गुरु बुद्धि को प्रभु के साथ विवाहित करते हैं। स्त्री अपने पिता के पास सुखी होती है और पति के पास भी सुखी होती हैं। जो स्त्री अपने पिता या पति को छोड़कर भटकती है वह दुःखी होती है। जो बुद्धि सद्गुरु को छोड़कर बाहर जाती है, उसे रास्ते में पाँच विषय मिलते हैं। वह उनसे जबर्दस्ती विवाह करती है। इसीलिए बुद्धि टेढ़ी हो जाती है। वह परमात्मा के पास जाने पर सीधी हो जाती है। तुम अपनी बुद्धि परमात्मा के साथ विवाहित होने तक किसी सन्त की सेवा में रखो। बुद्धि को स्वतंत्र रखना अच्छा नहीं है। बुद्धि में अनेक दोष होते हैं और मनुष्य को अपने दोष ही गुण जैसे दिखाई देते हैं।

प्रभु ने कुब्जा का उद्धार किया है। वे राजमार्ग से जा रहे हैं। बड़े-बड़े महाजन लोग दुकान में बैठे हैं, दो महीने बाद भाव बढ़ेगा या घटेगा इसका विचार वे कर रहे हैं। अनेक लोग बुद्धि का

उपयोग धन के लिए करते हैं; किन्तु जो बुद्धि का उपयोग परमात्मा के लिए करता है वही बुद्धिमान है। इन वैश्यों ने विचार किया कि आज कुछ खर्च करें तो कल लाभ होगा। वे दुकान से बाहर निकल पड़ते हैं और हाथ जोड़कर भगवान् से कहते हैं कि यह आपकी दुकान है, नमस्ते-नमस्ते। भगवान् कहते हैं कि हम सब समझते हैं। वैश्य लोग प्रभु को अपनी दुकान में ले जाते हैं। उन्होंने प्रभु को कुछ और न देकर पान-सुपारी ही दी। भगवान् ने कहा कि तुम्हारी जो इच्छा हो वह मुझसे माँग लो। वैष्णव ने कहा, ''पहली कृपा यह कीजिए कि लक्ष्मीजी हमारे घर में आएँ, दूसरे के घर में न जाएँ। प्रभु ने कहा कि जहाँ वैराग्य है, वहाँ भक्ति है। इस पर वैष्णव ने कहा कि हमको वैराग्य की जरा भी जरूरत नहीं है। हमें लक्ष्मी दीजिए। प्रभु ने वैश्यों का उद्धार किया।

प्रभु अब और आगे बढ़े, तब उन्हें एक बड़ा मण्डप दिखाई दिय। उसमें बैठकर ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे। कंस के सेवक उसका पहरा दे रहे थे। श्रीकृष्ण का स्वरूप इतना मंगलमय है कि वे सब उनको देखते ही रह गए श्रीकृष्ण ने मंडप में प्रवेश किया यज्ञ का धनुष उठाया और उसे कड़-कड़ करते हुए तोड़ दिया। ब्राह्मण घबरा गए। उनको ऐसा लगा कि यज्ञ में विघ्न हो गया। इससे यजमान की कुछ हानि होगी। कंस के सेवक दौड़ते हुए आए। दाऊजी ने उन्हें मार भगाया। उन सबने महल में जाकर कंस को सारी खबर दी।

यह समाचार सुनकर कंस बहुत क्रोधित हुआ। मृत्यु की छाया पड़ने पर स्वभाव बदल जाता है।

श्रीकृष्ण-बलराम अपने मित्रों के साथ बगीचे में लौट आए नंदबाबा ने पूछा, ''लाला, तुमने कोई शरारत तो नहीं की। श्रीकृष्ण ने कहा कि बाबा, हमने कोई शरारत नहीं की। सब मुझसे पूछते रहे कि तू किसका पुत्र है। मैंने कहा कि मैं नंदबाबा का लड़का हूँ, यशोदा माता का पुत्र हूँ। बाबा, इस नगर के लोगों ने यह जान लिया कि मैं आपका पुत्र हूँ। सबने मुझे अच्छे-अच्छे कपड़े दिए और मेरे मित्रों को भी दिए।

नन्दबाबा ने समझा कि आज तक यादवों से हमारा अच्छा सम्बन्ध था। इसलिए सबने अच्छा व्यवहार किया है। आज तक मैंने उनको बहुत कुछ दिया है। मेरा कन्हैया पहली बार यहाँ आया है। इसीलिए उसे यह सब दिया होगा। कंस ने सभा बुलाई। कंस का हुक्म होते ही एक सेवक दौड़ते-दौड़ते नन्दबाबा को बुलाने गया। नन्दबाबा ने दरबार में जाते-जाते लाला से कहा, 'लाला बहुत बड़ा दरबार है, मैं जाता हूँ। तुझे आना हो तो पीछे आना; किन्तु वहाँ जाकर शान्ति से बैठना। शरारत मत करना। कन्हैया ने कहा कि बाबा मैं शरारत नहीं करता; किन्तु हम लोग गाँव

में रहते हैं। इसलिए लोग हमको चिढ़ाते हैं। मेरे मित्र मुझे बहुत प्यारे हैं। यदि कोई उन्हें सताएगा तो मैं उसे मारूँगा। नन्दबाबा दरबार में गए और वहाँ उन्होंने कंस राजा को भेंट दी।

तमापतन्तमासाद्य भगवान् मधुसूदनः।
निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले॥ (१०-४३-१३)

इस ओर श्रीकृष्ण-बलराम अपने बालमित्रों के साथ निकले। उन्होंने रास्ते में कुवलयापीढ़ नाम के हाथी को मारा। इसके बाद सब सभा में गए और उन्हें बड़ा आनन्द हुआ।

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्।
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रो शिशुः॥
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगे गतः साग्रजः॥

(१०/४३/१७)

वहाँ बैठे हुए ऋषियों को यह विश्वास हो गया कि गायत्री-जप करते हुए हम जिस नारायण का ध्यान करते हैं वह परब्रह्म यही है। वे स्त्रियों को कामदेव जैसे सुन्दर प्रतीत हुए और कंस को काल के समान दिखाई दिये। जिसके हृदय में जैसा भाव था उसको उसी रूप में श्रीकृष्ण ने दर्शन दिए। पहलवानों ने अपना हाथ ऊँचा करके श्रीकृष्ण-बलराम को अपनी ओर बुलाते हुए कहा कि इधर आओ। तुम गिरिराज में बहुत कसरत करते हो। राजा को खुश करने के लिए चलो हम कुश्ती करें। जिसकी जीत होगी उसे कंस महाराजा भेंट देंगे। प्रभु ने हाथ जोड़कर कहा, 'राजा को खुश करना प्रजा का धर्म है। यदि राजा को कुश्ती देखने की इच्छा हो तो मैं कुश्ती करने के लिए तैयार हूँ। आप बड़े पहलवान हैं और मैं बालक हूँ। आप किसी बालक को बुलाइये तो मैं कुश्ती करूँगा।

कंस ने चाणूर को इशारा किया। चाणूर नशे में मस्त था। उसने कहा कि ऐसा नहीं होगा तू बालक नहीं है। तूने बड़ा हाथी मारा है। चल मेरे साथ कुश्ती कर। ऐसा कहकर उसने श्रीकृष्ण का हाथ पकड़कर खींचा। लाला को भी क्रोध आ गया। लाला ने कूदकर अखाड़े में प्रवेश किया। चाणूर से उनकी कुश्ती होने लगी। बलरामजी ने उसे देखा और विचार किया कि यशोदा माता की आज्ञा है कि कन्हैया अकेला कहीं न जाए। बलरामजी दौड़ते हुए अखाड़े में कूद पड़े। एक अखाड़े में दो कुश्तियाँ होने लगीं। चाणूर के साथ श्रीकृष्ण की और मुष्टक के साथ श्रीबलभद्र की, शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं, 'हे राजन्, यह संसार ही एक बड़ा अखाड़ा है। इस अखाड़े में काम और क्रोध ये दोनों बड़े पहलवान हैं। ये दोनों इस जीव को अनेक बार पछाड़ते हैं। यह

जीव अनेक जन्म से काम और क्रोध की मार खाता आया है। क्रोध का विनाश करने और काम पर विजय पाने के लिए ही जन्म लेना पड़ता है। बलराम ही शब्द ब्रह्म हैं और श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं। जो नाद ब्रह्म की उपासना करता है और परमात्मा के साथ अतिशय प्रेम करता है वह काम और क्रोध पर विजय प्राप्त कर सकता है। सभा में बैठे हुए लोग तमाशा देख रहे हैं किन्तु नन्दबाबा इसे देख नहीं सके। वे बोले यह पहलवान तो पहाड़ जैसा दिखाई देता है और मेरा कन्हैया केवल ग्यारह वर्ष का बालक है। क्या यह कन्हैया को मार डालेगा? यशोदाजी मुझसे कहती थीं कि कंस कपटी है। सोने का रथ देखकर मैं भूल पड़ा। नहीं तो मैं लाला को लाने ही वाला नहीं था। नन्दबाबा बहुत घबरा उठे और उन्होंने हाथ जोड़कर कंस राजा से कहा कि राजा, यह तो अधर्म युद्ध हो रहा है। एक ओर बड़े पहलवान हैं और दूसरी ओर मेरे छोटे बालक हैं। कंस ने क्रोध में कहा कि मैं धर्म को नहीं मानता, तुम बैठ जाओ। नंदबाबा बहुत घबरा उठे, वे विचारने लगे कि अखाड़े के मालिक देव श्रीहनुमानजी हैं। उनकी कृपा जिस पर होगी अखाड़े में उसी की जीत होगी। नन्दबाबा ने हनुमानजी महाराज की मनौती मानी कि हे हनुमानजी महाराज! मैं आपकी वंदना करता हूँ।

जय-जय-जय हनुमान गोसाईं।
कृपा करो गुरुदेव की नाईं॥

तुम मेरे लाला को सम्हालना और शक्ति देना। गोकुल में लौटने पर मैं दो मन लड्डू बनवाकर आपको चढ़ाऊँगा। लाला आपका बालक है। लाला ने देखा कि बाबा बहुत घबरा रहे हैं। उसने चाणूर को ऐसा धक्का मारा कि वह नीचे गिर पड़ा। नन्दबाबा को ऐसा लगा कि लाला में हनुमानजी का प्रवेश हो गया है। मैंने मनौती मानी है। मेरा कन्हैया अभी बालक है। क्या यह किसी पहलवान को नीचे गिरा सकता है? यह तो हनुमानजी की कृपा है। चाणूर को विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण बालक नहीं, किन्तु मेरा काल है। क्या केई ऐसा बालक हो सकता है? मैंने ऐसा पहलवान आज तक नहीं देखा। यदि मैं कुश्ती से भाग जाऊँ तो कंस मुझे मार डालेगा। इसलिए श्रीकृष्ण के हाथ मरूँ तो मेरा मरण सुधरेगा। आखिरी उपाय करूँ। उसकी मुठ्ठियाँ बज्र से भी कठोर थीं। उसने निश्चय किया कि मैं द्रौड़ता हुआ आकर श्रीकृष्ण की छाती पर मुष्ठि-प्रहार करूँ। काम इसी प्रकार जीव को मारने आता है। जो गाफिल रहता है वह काम की मार खाता है। श्रीकृष्ण सर्वकाल सावधान हैं, गाफिल नहीं हैं। चाणूर ने क्रोध में दौड़ते हुए श्रीकृष्ण की छाती में जैसे ही मुष्टि प्रहार करने का इरादा किया वैसे ही श्रीकृष्ण ने उसकी दोनों कलाइयाँ पकड़ लीं और उसे चारों ओर फिरा कर ऐसा पटका कि उसकी मृत्यु हो गई। बलरामजी ने मुष्टिक को मारा।

कंस राजा ने अपने सिपाहियों को हुक्म दिया था कि जब वे पहलवान बालकों को मारें तो बाजा बजाना। बाजे बजने लगे। यह देखकर कंस राजा ने कहा कि बाजा बजाना बन्द करो और इन दोनों बालकों को पकड़कर जेल में डाल दो। बलरामजी ने कहा कि मामा को मरने की जल्दी है। इसीलिए उन्हें अक्ल नहीं आती। श्रीकृष्ण में अनन्त शक्तियाँ हैं। उनमें दो मुख्य हैं–निग्रह और अनुग्रह। प्रभु ने इन शक्तियों का परिचय दिया। कुब्जा को सीधा बनाना अनुग्रह शक्ति है और कुश्ती करते-करते पहलवानों को मारना निग्रह शक्ति है। बलरामजी ने कहा, 'तूने दोनों शक्तियों का परिचय दिया है। तो भी मामा को अभी अक्ल नहीं आती। अब तू इसे मार डाल तो ही अक्ल आएगी। जब बड़े भाई ने कहा तब श्रीकृष्ण वहाँ से कंस की ओर दौड़ पड़े। उन्हें अपनी ओर आता देखकर कंस घबरा उठा और बोला कि मेरा काल आया, मेरा काल आया। उसके सिर पर जो मुकुट था वह एकदम नीचे गिर पड़ा। श्रीकृष्ण ने उसके माथे के बाल पकड़ लिये और कहा कि तूने रास्ते में मेरी माँ के बाल पकड़े थे, इसलिए मैं तुझे मारूँगा। घबराया हुआ कंस बोल नहीं पाया। श्रीकृष्ण ने चारों ओर घुमाकर ऐसा पछाड़ा कि वह मर गया। प्रभु ने कंस राजा को सद्‌गति दी। उन्होंने कंस को मारा नहीं बल्कि तार दिया।

परमात्मा श्रीकृष्ण के साथ सम्बन्ध रखने से जीवन और मरण दोनों मंगलमय बनते हैं। परमात्मा के साथ सम्बन्ध रखने पर लक्ष्मी भी मिलती है। बिना सम्बन्ध के स्नेह नहीं होता। सम्बन्ध से ही भाव पैदा होता है। गाँव में सभी के घर बुखार आता होगा; किन्तु हम सभी के यहाँ नहीं जाते। जिसके साथ सम्बन्ध होता है, उसी के यहाँ जाते हैं। लोग परमात्मा से सम्बन्ध नहीं जोड़ते। ईश्वर से कोई भी सम्बन्ध नहीं जोड़ता। परमात्मा को पिता मानो, तुम बालक बनो। परमात्मा को स्वामी मानो, तुम सेवक बनो। यदि कुछ लोगों को संकोच हो तो परमात्मा कहते हैं कि तू मेरा बाप बन, मैं तेरा बेटा बनने को तैयार हूँ। मुझे तो एक ग्रन्थ में ऐसा भी पढ़ने को मिला है कि परमात्मा पत्नी भी होती है। सन्त सखुवाई को पंढरपुर में भगवान् के दर्शन करने की बहुत तीव्र इच्छा थी, किन्तु पति और सास उसे जाने नहीं देते थे। उस समय ईश्वर सन्त सखुबाई के लिए पत्नी भी बन गए। भगवान् सब बन सकते हैं फिर भी सबसे अलग रहते हैं। कंस राजा ने तो श्रीकृष्ण के साथ वैर का सम्बन्ध स्थापित किया था; किन्तु बैर से भी वह श्रीकृष्ण का ध्यान धरता था।

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं पिबन् वदन् वा विचरन् स्वपञ्छ्वसन्।
ददर्श चक्रायुधमग्रतो यस्तदेव रूपं दुरवापमाप॥

(१०-४४-३९)

प्रभु ने कंस को मुक्ति दे दी। श्रीकृष्ण के क्रोध में भी प्रेम भरा होता है। उनकी मार में भी प्यार है। उन्होंने कंस के त्रास से अपनी जन्मभूमि मथुरा का उद्धार किया।

कंस के मरने पर सब बालक 'कृष्ण-कन्हैयालाल की जय' कहकर उनका जय-जयकार करने लगे। सब प्रसन्न हो गये। इसके बाद उनकी प्रजा ने सुन्दर हाथी सजाकर उस पर श्रीकृष्ण-बलराम को बैठाया। इस प्रकार यादवों ने जलूस निकाला।

७०- बाबा! मेरी गायों को सम्हालना

नन्दबाबा ने देखा कि कल कन्हैया रथ पर बैठा था और आज हाथी पर बैठा है। ऐसा मालूम होता है कि अब वह राजा बनेगा। नन्दबाबा में वात्सल्य भाव भरा है। वे सोचते हैं, कन्हैया सारे गाँव में हाथी फिरा रहा है। इसे किसी की नजर लग जायेगी। सबकी नजर पवित्र नहीं होती। इन यादवों में प्रेम तो है; किन्तु विवेक कम है। बड़े-बड़े पहलवानों से कुश्ती करने के बाद लाला को भूख लगी होगी। उसे कोई खाने के लिए नहीं बुलाता। नन्दबाबा मक्खन, मिश्री और मिठाई लेकर यमुनाजी के तट पर आए। जब जुलूस घाट पर पहुँचा तो उन्होंने कहा कि बेटा अब तू यहाँ उतर जा। सारे गाँव में जुलूस फिराने की क्या जरूरत है। श्रीकृष्ण यह सुनकर हाथी से उतर पड़े और कहा कि बाबा यहीं जलूस समाप्त को कहते हैं। श्रीकृष्ण और बलराम ने नन्दबाबा को वन्दन किया। नन्द-यशोदा की वात्सल्य-भावना का ध्यान रखते हुए श्रीकृष्ण ने कहा 'बाबा मेरी माता ने ऐसा आशीर्वाद दिया है कि तेरी जीत हो। इसीलिए मैं कंस को मार सका हूँ। यह सुनकर नन्दबाबा ने कहा कि यह सब तो ठीक है। तूने इतने बलवान पहलवान से कुश्ती की। कुछ चोट तो नहीं लगी है। श्रीकृष्ण ने कहा कि बाबा मुझे जरा भी चोट नहीं लगी। जिस समय मैं अखाड़े में उतरा, उस समय मुझे विशाल हनुमानजी दिखाई दिये। बाबा ने कहा कि मैंने उनकी मनौती मानी थी। श्रीकृष्ण ने कहा, 'बाबा आपने बहुत अच्छा किया। हनुमानजी ने मुझे शक्ति दी।'

कंस को मारने के बाद श्रीकृष्ण ने जिस घाट पर विश्राम किया, उसे विश्राम घाट कहते हैं। नन्दबाबा ने लाला से कहा कि इस समय वसुदेव-देवकी बहुत दुःखी हैं। तुम उनके पास जल्दी जाओ और उन्हें जल्दी कारागृह से छुड़ाओ।

बाबा की बात सुनकर श्रीकृष्ण और बलराम दौड़ते-दौड़ते वहाँ पहुँचे। कारागृह में वसुदेव और देवकी बैठे हैं। अत्यन्त दुःख होने पर भी यह समझते हैं कि भगवान् की हम पर बड़ी कृपा है। पति-पत्नी कारागृह में हाय-हाय नहीं करते, बल्कि मन शान्त रखते हुए रहते हैं। उनका शरीर दुबला है, सादा वस्त्र पहने हुए हैं। श्रीकृष्ण के दर्शन हेतु उनके प्राण तरस रहे हैं। श्रीकृष्ण जन्म

भूमि का उद्धार करने के बाद अपने जननी-जनक का वन्दन करने के लिए दौड़ते-दौड़ते उनके पास आए हैं। वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण-बलराम ने उनके चरणों की वन्दना की। माता-पिता के हाथ-पैर में बड़ी-बड़ी बेड़ियाँ देखकर उनकी आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने विचार किया कि इन्होंने कितना दुःख सहन किया! उन्होंने बेड़ियाँ तोड़ने के लिए कारीगर को बुलवाया; किन्तु उसे आने मैं देर हुई। इससे वे क्षुभित हो उठे और अपने दाँतों से बेड़ियाँ काट दीं। उन्होंने माता-पिता को कारागृह से मुक्त किया। वसुदेव-देवकी श्रीकृष्ण भगवान् और बलराम को गोद में लेकर पुलकित हो उठे। कन्हैया ग्यारह वर्ष के बाद उनके पास आया था। दोनों की बोलने की बहुत इच्छा होती है; किन्तु मुँह से एक भी शब्द नहीं निकलता। प्रेम की बात जीभ से व्यक्त नहीं की जा सकती। उसे आँख ही कह सकती है। देवकी माता मौन भाव से बालकृष्णलाल को प्रेम करती हैं और उन्हें प्रेम से निहारती हैं। वे कुछ बोल नहीं पातीं। उस समय श्रीकृष्ण बोलना आरंभ करते हैं–

सर्वार्थसम्भवो देहो जनितः पोषितो यतः।
न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा।। (१०-४५-५)

यह शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को सिद्ध कर सकता है; किन्तु जो माता-पिता यह शरीर देते हैं, उनके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता। माता-पिता प्रत्यक्ष परमात्मा हैं। उनके उपकार कभी मत भूलना। श्रीकृष्ण ने देवकी माता से कहा कि आज तक मेरे लिए आप लोगों ने बहुत कष्ट सहे हैं। मैंने आपकी कोई सेवा नहीं की है। अब मैं आपकी सेवा करूँगा। इस प्रकार उन्होंने उनको आश्वासन दिया।

सबकी बड़ी इच्छा थी कि कंस-वध के बाद मथुरा की राजगद्दी पर श्रीकृष्ण विराजमान हों और उनका राज्याभिषेक किया जाए; किन्तु प्रभु ने इसे अस्वीकार कर दिया और कहा कि मैंने राजगद्दी लेने के लिए कंस को नहीं मारा है। मुझे राजा नहीं बनना है कंस के पिता उग्रसेन अभी जीवित हैं। उनको राजगद्दी दो। प्रभु ने गीताजी में अर्जुन को आज्ञा दी है–

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि

किसी भी फल की अपेक्षा किये बिना सत्कर्म करो। अर्थात् तू निरपेक्ष रहकर सत्कर्म कर। गीताजी में उनका जो उपदेश है, वह उनके जीवन में परिपूर्ण दिखाई देता है। शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि श्रीकृष्ण को मथुरा का राज्य मिला है; किन्तु उन्होंने उसमें से एक पैसा भी नहीं लिया है। यदि कोई तुमको एक-दो हजार देना चाहे, तो क्या तुम उसे लेने से इनकार करोगे? इस प्रकार श्रीराम और श्रीकृष्ण के जीवन में सम्पूर्ण अनासक्ति दिखाई देती है। कोई फल कभी बाधक नहीं होता, उसकी आसक्ति बाधक होती है। रामचन्द्रजी को लंका का राज्य मिला था। लंका में बहुत

सम्पत्ति थी; किन्तु वे वहाँ से एक पैसा भी अयोध्या नहीं ले गए। लंका में जो कुछ था, उसे वहीं छोड़ दिया, उसे विभीषण को दे दिया। श्रीकृष्ण को मथुरा का राज्य मिला; किन्तु प्रभु ने कंस के पिता उग्रसेन को राजगद्दी पर बैठाकर उनका अभिषेक किया। राजा उग्रसेन ने कहा, ''मैं तो केवल नाम का राजा हूँ। यह सब श्रीकृष्ण का है।'' यादव-गण श्रीकृष्ण और बलराम को राजमहल में ले गए।

नन्दबाबा के विदा होने का समय आया। भागवत में तो इस सम्बन्ध का वर्णन केवल एक-दो श्लोकों में ही आया है; किन्तु अन्य ग्रन्थों में कुछ अधिक विस्तार मिलता है। नन्दबाबा मथुरा के बाहर एक बगीचे में ठहराए गए थे। वे विचार करते थे कि अब मैं लाला को गोकुल में ले चलूँगा। मैं उसको मथुरा में तो ले आया किन्तु यहाँ उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। उसे यहाँ बड़े-बड़े पहलवानों से कुश्ती करनी पड़ी। वह थक गया है। इसलिए घर चलकर आराम करेगा। नन्दबाबा को अब गोकुल में जाने की इच्छा हुई। सायंकाल होने पर भी कन्हैया आया नहीं है। नन्दबाबा उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्हें रात भर नींद नहीं आई। प्रातःकाल गर्गाचार्यजी ने उनके पास आकर बताया कि कन्हैया देवकी का आठवाँ पुत्र है, वह वसुदेव का पुत्र है। सबकी यह इच्छा है कि वह मथुरा में ही रहे। नन्दबाबा ने यह सुना कि कन्हैया उनका पुत्र नहीं है, वह वसुदेवजी का पुत्र है। यह सुनकर वे व्याकुल हो गए। उनका सर्वस्व चला गया था। जिस प्रकार कोई कंजूस आदमी बहुत परिश्रम कर धन संग्रह करे और वह सारा धन नष्ट हो जाने पर जिस प्रकार उसे व्याकुलता होती है उसी प्रकार नन्दबाबा बहुत व्याकुल हो उठे उनको मूर्च्छा आ गई। जब श्रीकृष्ण-बलराम को इसकी खबर पड़ी, तो वे दौड़ते हुए वहाँ आए। उन्होंने नन्दबाबा के चरणों में अपना मस्तक रखते हुए कहा, ''बाबा, आप अपनी आँखें खोलिए। आपका कन्हैया आपके चरणों में वन्दन करता है।'' नन्दबाबा ने अपनी आँखें खोलीं। आँखों से प्रेमाश्रु बह उठे और वे लाला का मस्तक भिगोने लगे। प्रभु ने नन्द-यशोदा की वात्सल्य-भावना को अपने हृदय में स्थायी बना लिया है, उनको किसी प्रकार का दुःख न हो, इसका वे ध्यान रखते हैं। उन्होंने नन्दबाबा से कहा, ''लोग चाहे जो भी कहें। उनकी बात मत सुनना। किसी का हाथ तो पकड़ा जा सकता है; किन्तु जीभ नहीं पकड़ी जा सकती। यह लाला आपका पुत्र है। यशोदाजी मेरी माता हैं। आपके आशीर्वाद से ही कंस को मार सका। कंस के मारने के बाद उनके मित्र राजा मुझे अपना शत्रु मानते हैं। वे मुझसे शत्रुता करते हैं। यदि मैं अभी आपके साथ गोकुल जाऊँगा तो कंस के मित्र मेरे साथ गोकुल जाएँगे और सब लोग परेशान करेंगे। वे परेशान न करें इसीलिए मैंने यह घोषणा की है कि मैं देवकी का पुत्र हूँ। यदि कंस मित्रों को यह खबर पड़े कि मैं आपका पुत्र हूँ, तो वे युद्ध करने के लिए गोकुल पहुँच जाएँगे। ब्रजभूमि तो प्रेम भूमि है। ब्रजवासी कभी झगड़ा नहीं करते। गरीबों की सेवा ही मनुष्य का बड़ा धर्म है।

ब्रजवासी सभी को प्रेम से बेसुध करते हैं। वे शस्त्र से किसी को घायल नहीं करते। ब्रजवासी कभी अपने हाथ में शस्त्र नहीं धारण करते। श्रीकृष्ण जब तक ब्रज में थे तब तक उन्होंने कभी अपने हाथ में शस्त्र नहीं लिया था। उस समय उनके एक हाथ में मक्खन और दूसरे में बाँसुरी थी। गोकुल के निवास काल में भगवान् की चार प्रतिज्ञाएँ थीं–(१) पैर में जूता नहीं पहनना, (२) कभी भी सिले कपड़ों का उपयोग नहीं करना। वे पीला पीताम्बर और काली कमली लेकर ग्वालों के साथ जाते थे। (३) जब तक लाला गोकुल में थे, तब उनके बाल काटे नहीं गए थे। इससे वे काफी बढ़ गये थे। यशोदा माता विचार करती थीं कि मुझे लाला की मनौती उतारनी है। यह सुनकर ब्रजवासी उन्हें रोकते और कहते कि बालों के साथ लाला के मुखारविन्द के दर्शन से आनन्द आता है। इसीलिए वे जब तक गोकुल में रहे, तक उनके बाल नहीं उतारे गए। (४) जब तक वे गोकुल में थे तब तक उन्होंने हाथ में शस्त्र नहीं धारण किया।

कन्हैया ने नन्दबाबा से कहा, 'यदि मैं अभी आपके साथ गोकुल आऊँ तो कंस के मित्र राजा मेरे कारण गोकुल पर चढ़ाई करेंगे। मेरे ब्रजवासियों को परेशान न होना पड़े इसीलिए मैंने यह घोषणा की है कि मैं वसुदेव का पुत्र हूँ। ये दुष्ट राजा सबको परेशान करते हैं। मैंने जिस प्रकार कंस को मारा है, उसी प्रकार इन दुष्ट राजाओं को मारकर अपने देश को सुखी करूँगा और सुराज्य की स्थापना करूँगा। इसके बाद आपका कन्हैया वन्दन करने के लिए आएगा। मैं इस समय नहीं आ सकता। क्योंकि सारी प्रजा बहुत दुःखी है। मुझे मजबूर होकर यहाँ रहना पड़ रहा है। बाबा, मेरी इच्छा है कि आप जल्दी यहाँ से गोकुल जाइये।'

नन्दबाबा ने कहा, 'मैं तुझे साथ लिये बिना गोकुल नहीं जाऊँगा। क्योंकि मेरे साथ तुझे न पाकर तेरी माता बहुत रोयेगी।'

श्रीकृष्ण ने कहा, 'बाबा मैं जानता हूँ कि माता का हृदय कैसा होता है? मेरी माता के चरण में मेरा वन्दन है। मुझे मेरी माता का प्रेम कभी नहीं भूलेगा। मेरी माता जब-जब रोने लगती थी, तब-तब मैं उसे पुराण की कथायें सुनाता था। बाबा मेरी माता को खूब सम्हालना। इस समय मैं आपके साथ नहीं चल सकता।' नन्दबाबा ने कहा, 'बेटा तुझे मथुरा में रहने की इच्छा हुई है तो यहाँ रह। मेरे लिए तो तेरी इच्छा ही मेरी इच्छा है, तेरा सुख ही मेरा सुख है। हमने तेरे प्रति जो प्रेम किया है वह केवल सुख भोगने के लिए नहीं किया है। बेटा, मैं अधिक आग्रह नहीं करूँगा।

प्रेम में आग्रह तो होता है, किन्तु दुराग्रह नहीं होता? ब्रजवासियों का प्रेम शुद्ध है। नन्दबाबा ने कहा 'बेटा यदि तुम्हारी इच्छा है तो मथुरा में रहो। हम सब तुम्हें भूलने वाले नहीं हैं। मैं नारायण

से प्रार्थना करूँगा कि मेरे लाला को कोई कष्ट न हो। बेटा तू मेरी चिन्ता मत करना। जब तुम्हारी इच्छा हो, तब गोकुल आना।' नन्दबाबा श्रीकृष्ण को लिए बिना गोकुल जाने को तैयार हुए। श्रीकृष्ण ने ग्वालबालों का सम्मान किया और उनके लिये वस्त्र आभूषण दिये। ग्वालबालों का प्रेम शुद्ध है। एक ग्वाल बोला 'कन्हैया क्या तू हमको कपड़ा देकर समझाना चाहता है? क्या तू गोकुल नहीं आयेगा? मथुरा आने के बाद तेरा स्वभाव बदल गया है। तू निष्ठुर हो गया है।' यह सुनकर श्रीकृष्ण की नजर झुक गई। उन्होंने कहा कि तेरी बात सच है। अब मुझे निष्ठुर ही होना है। इस समय मुझे फुरसत नहीं है। तुम सब घर जाओ। मुझे याद करते रहना। मेरे माता पिता की सेवा करना और उनको धीरज बँधाना। यह सुनकर बालक व्याकुल हो गए। श्रीकृष्ण ने नन्दबाबा को गाड़ी में बैठाकर उनके चरणों में माथा नबाया और कहा कि बाबा, मेरी गायों को सम्हालना। यह सुनकर नन्दबाबा के मुँह से कोई आवाज नहीं निकल सकी। ब्रजवासियों के प्रेम का वर्णन भला कौन कर सकता है? ब्रजवासियों ने जगत् को यह आदर्श बताया है कि श्रीकृष्ण के वियोग में जीवन कैसा होना चाहिए? ब्रजवासी श्रीकृष्ण के वियोग में किस प्रकार व्याकुल हुए, ऐसा दुःख जब मनुष्य को होगा तभी वह परमात्मा की भक्ति कर सकता है। जिसका मन कृष्ण-वियोग में संसार में भटकता है अथवा जिसे संसार सुखदायी लगता है, वह भगवान् की भक्ति किस प्रकार करता होगा? जिसे संसार नीरस लगता है, जिसे कृष्ण-वियोग का दुःख होता है, वह भगवान् की भक्ति अच्छी तरह कर सकता है। ब्रजवासियों का प्रेम आदर्श प्रेम है।

इसके बाद वसुदेवजी ने श्रीकृष्ण का यज्ञोपवीत-संस्कार किया।

ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ।
गर्गाद् यदुकुलाचार्याद् गायत्रं व्रतमास्थितौ।। (१०-४५-२९)

गर्गाचार्यजी ने गायत्री की दीक्षा दी। श्रीकृष्ण बलराम ब्रह्मचारी बन गए। परमात्मा यह आदर्श उपस्थित करते हैं कि मैं परमात्मा हूँ; किन्तु संसार में आने पर मुझे भी सद्गुरु देव की आवश्यकता होती है। यह संसार मायामय है। संसार में जो जन्म लेता है, उसे माया का शिकार होना पड़ता है। माया में बड़ी शक्ति होती है। कोयले की खान में उतरने वाला भले ही कहे कि मुझे दाग नहीं लगेगा, किन्तु उसे दाग तो लगने ही वाला है। इसलिए संसार में आने वाले को माया का शिकार होना पड़ता है। ऐसा कौन है, जिसे कामदेव ने एक बार भी पागल न किया हो? किसका मन हितेषणा, वित्तेषणा, और भावेषणा से दूषित नहीं हुआ है! संसार में जो आता है, उसे माया में रहना ही पड़ता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह ये सब माया की सेना हैं। ये सभी को मारते हैं। इनसे बचने के लिए किसी संत का चरण पकड़ रखना या सद्गुरु देव का सहारा लेना चाहिए।

आजकल तो अनेक लोग आराम कुर्सी पर लेटे-लेटे वेदान्त की पुस्तकें पढ़ते हैं, ब्रह्म-ज्ञान की बात भी करते हैं। उनको संयम की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे पढ़कर ज्ञानी बन जाते हैं। वह ज्ञान कदाचित् उनको पैसा दे सकता है, किन्तु शान्ति नहीं दे सकता। संसार में आने वाले प्राणी को सद्‌गुरु देव की अति आवश्यकता है।

उज्जयिनी क्षेत्र में क्षिप्रा नदी के तट पर सान्दीपनि मुनि का एक आश्रम था। वहाँ श्रीकृष्ण-बलराम पहुँचे। वे गुरुदेव की सेवा करने लगे। सद्‌गुरु देव की सेवा से जो ज्ञान मिलता है, वह विनय और विवेक सिखाता है। पुस्तक पढ़ने से जो ज्ञान मिलता है, वह, प्राय: अभिमान के साथ आता है। पुस्तक-पठन से प्राप्त ज्ञान ऐसी प्रतीति लेकर आता है कि मैं होशियार हूँ और दूसरे सब मूर्ख हैं। ज्ञान बढ़ने पर उस व्यक्ति को सबकी भूल ही दिखाई देती है। क्या ज्ञान किसी को मूर्ख समझने के लिए है? वास्तव में ज्ञान किसी का दोष देखने के लिए नहीं है। ज्ञान तो जीवमात्र में परमात्मा का अनुभव करने के लिए और सबको ब्रह्मस्वरूप समझने के लिए है। श्रीकृष्ण-बलराम गुरुदेव की सेवा करते, पानी भरते और गौ चराते थे। विद्या विनय और विवेक से सफल होती है। यदि विद्या को विनय और विवेक का साथ न मिले, तो वह विनाशकारी बनती है। गुरुजी जो कहते, उसे श्रीकृष्णजी ध्यान से सुनते। श्रीकृष्ण को एक बार सुनने पर ही सब कुछ कंठस्थ हो जाता था। उन्होंने पैसा कमाने के लिए विद्या नहीं पढ़ी। आजकल स्कूल-कालेज में केवल पैसा कमाने के लिए ही विद्या पढ़ाई जाती है। पैसा कमाने की विद्या तो वैश्या को भी आती है। यदि पैसा कमाने की विद्या पढ़ाते समय आध्यात्मिक विद्या भी पढ़ाई जाए और जीवन में अच्छी तरह समझाई जाए, तो अनेक झगड़ों का अन्त हो। लोगों को सच्चे सुख का ज्ञान प्राप्त नहीं करना है; बल्कि उसका मजा लेना है। आजकल के लोग जिसे मजा कहते हैं, वैसा मजा तो गौरा-गोरैया पक्षी भी लेते रहते हैं। वे अपना घोंसला बनाते हैं और बच्चे जनमाते हैं। मनुष्य यह नहीं जानता कि सच्चा आनन्द कहाँ है? जब आध्यात्मिक विद्या का प्रचार हो, आत्मा का स्वरूप और परमात्मा का तत्व समझाया जाय तभी सच्चे सुख का ज्ञान होगा। पैसा कमाने की शिक्षा दी जाए; किन्तु आध्यात्मिक विद्या भी सिखानी चाहिए। आध्यात्म विद्या सारी विद्याओं में श्रेष्ठ है, जो मनुष्य को जन्म-मरण के बन्धन से छुड़ाती है। कहीं-कहीं कालेजों में वेदान्त पढ़ाया जाता है, किन्तु वेदान्त पढ़ाने वाले प्रोफेसर प्राय: विलासी होते हैं। विलासी भला वेदान्त क्या पढ़ा सकता है? वेदान्त की शिक्षा तो विरक्त ही दे सकता है। भजनानन्दी साधु, सन्त, संन्यासी, महात्मा, तपस्वी और ब्राह्मण ही आध्यात्मिक विद्या सिखा सकते हैं। जिसका मन सुख में फँसा है, ऐसा विलासी या व्यसनी व्यक्ति वेदान्त सिखाने के योग्य नहीं है।

श्रीकृष्ण ने सान्दीपनि मुनि के आश्रम में अध्यात्म विद्या का ज्ञान प्राप्त किया। वे जब गुरुकुल में थे उस समय अन्य अनेक विद्यार्थी भी विद्या सीखने के लिए वहाँ आए थे किन्तु उनमें से एक ही विद्यार्थी के साथ उनकी मित्रता हुई। श्रीकृष्ण के उस मित्र का नाम भागवत में दिया गया है। वह मित्र सौराष्ट्र के एक अतिशय गरीब ब्राह्मण का पुत्र था। उसका नाम सुदामा था। श्रीकृष्ण ने सुदामा से मैत्री की थी। विद्यार्थी सुदामा के साथ मित्रता करे, तो ही उसकी विद्या सफल होती है। सुदामा बचपन से ही जितेन्द्रिय थे। हमारे शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि विवाह के पश्चात् थोड़ा विलासी जीवन गुजारना अच्छा है; किन्तु विद्यार्थी को विलासी जीवन बिताना अच्छा नहीं है। यदि विद्यार्थी विलासी जीवन गुजारे, तो विद्या का विनाश होता है। विद्या के साथ संयम की शिक्षा देने से मनुष्य सुखी होता है। उससे कुटुम्ब भी सुखी होता है। आजकल संयम की शिक्षा नहीं दी जाती। जब पढ़ाने वाले में ही संयम नहीं है, तो वह पढ़ने वाले में कहाँ मिलेगा? पढ़ाने वाला जितेन्द्रिय होना चाहिए। उसे किसी प्रकार का व्यसन नहीं होना चाहिए।

प्राचीन काल में पढ़ाने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही था। ब्राह्मण को छोड़ कर कोई दूसरा गुरु नहीं हो सकता था। तिलक तो गाय को ही लगाया जाता है। भले ही आधा मन दूध देने वाली भैंस हो। उसे तिलक नहीं लगाया जाता। यदि रास्ते में भैंस मिले, तो शकुन नहीं माना जाता। गाय रास्ते में मिले तो शकुन माना जाता है। इसीलिए गुरु होने का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही था। वह ब्राह्मण जो केवल जाति का ही नहीं, कार्य का भी हो, अर्थात् जो ब्राह्मण संध्या करे, जितेन्द्रिय हो, गुण कर्म से भी ब्राह्मण हो। विद्यार्थी को विद्या के साथ संयम का शिक्षण देना बहुत जरूरी है। संयम से ही विद्या सफल होती है। आजकल के विद्यार्थियों में कोई संयम नहीं दिखाई देता। जो खराब चित्र (सिनेमा) देखे उसकी आँख किस प्रकार पवित्र रह सकती है? जब से इन होटलों की संख्या बढ़ी है, तब से जीभ का संयम गायब हो गया है। कुछ लोगों को घर की चीज पसन्द नहीं आती। बाज़ार में तुम्हें कोई चीज स्वच्छ दिखाई देती है, किन्तु शुद्ध नहीं होती। स्वच्छता और पवित्रता दोनों भिन्न वस्तुयें हैं। यदि अपने मन को पवित्र रखना हो तो बाजार की कोई वस्तु मत खाओ। संयम रखो। संयम से मनुष्य को बहुत सुख मिलता है, सम्पत्ति से थोड़ा सुख मिलता है। सुदामदेव संयम की प्रतिमूर्ति हैं।

जिसके श्वास से वेदों की रचना हुई है उसे पढ़ने की क्या जरूरत है? भगवान् श्रीकृष्ण ने केवल पढ़ने के आदर्श का दिग्दर्शन कराया है। थोड़े दिन में उनकी विद्या परिपूर्ण हो गई? इसके बाद श्रीकृष्ण ने सान्दीपनि ऋषि को वन्दन किया और कहा, 'गुरुदेव, मुझे कुछ दक्षिणा देनी है। आप कुछ आज्ञा दीजिए। मैं आपकी क्या सेवा करूँ। सान्दीपनि ऋषि ने कहा, 'बेटा, मैंने यह ज्ञान

कुछ लेने के लिए नहीं दिया है। यह क्षिप्रा नदी मुझे जल देती है, यह पेड़ मुझे फल देता है। मुझे इससे अधिक कुछ नहीं चाहिए। जिसे जल और फल से सन्तोष है, वही सच्चा गुरु है। ज्ञान का विक्रय करना बहुत बड़ा पाप है। गुरु ने कहा 'मैं ज्ञान का विक्रय नहीं करता। मुझे किसी चीज की अपेक्षा नहीं है। मेरे पास बहुत कुछ है।' प्रभु ने कहा 'आपकी इच्छा तो नहीं है, किन्तु गुरु दक्षिणा देने की मेरी बड़ी भावना है। आपने मुझे जो बोध दिया है उसकी तुलना में इस जगत् में कोई दूसरी चीज नहीं है। वस्त्र दान, सुवर्ण दान आदि की अपेक्षा ज्ञान-दान अनेक गुना अधिक अच्छा है। दान से चौबीस घण्टे की तृप्ति होती है, किन्तु ज्ञान-दान से लोक-परलोक की तृप्ति होती है, अखण्ड तृप्ति मिलती है। आपने मुझे यह समझाया है कि आनन्द कहाँ है? आपने हमारा स्वभाव सुधारा है। ज्ञान में बहुत सुख है और अज्ञान में अत्यन्त दुःख है। आपने हमारा अज्ञान दूर किया है। मेरी भावना कुछ सेवा करने की है। आप आज्ञा कीजिए कि क्या सेवा करूँ?

श्रीकृष्ण के बहुत आग्रह करने पर गुरुजी ने दक्षिणा माँगते हुए कहा, 'बेटा मैंने जो ज्ञान दिया है वह किसी बदले की भावना से नहीं दिया है तुमको यदि कोई शिष्य मिले तो उससे कुछ लेना मत, बल्कि विद्या की वंश-वृद्धि करना।'

दो वंश महत्वपूर्ण हैं–विन्दु वंश और नाद वंश। पिता और पुत्र के वंश को विन्दु वंश कहते हैं। गुरु-शिष्य परम्परा को नाद वंश कहते हैं। नाद वंश अतिशय श्रेष्ठ है। सद्गुरु तो अपने शिष्य को सर्वस्व देता है। इसलिए गुरु ने शिष्य को बिना कुछ लिए ज्ञानोपदेश करने हेतु आज्ञा दी।

प्रभु ने अपने गुरु की इस आज्ञा का अच्छी तरह पालन किया है। गीता में अर्जुन कहते हैं–'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वाँ प्रपन्नम्।' अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान् को अपना गुरु मानते हैं और कहते हैं 'मैं उलझन में पड़ गया हूँ। मुझे कुछ समझ में नहीं आता। मैं आपका शिष्य हूँ। आप मुझे ज्ञान दीजिए।' यह सुनकर प्रभु ने लेशमात्र अपेक्षा रखे बिना अर्जुन को गीता शास्त्र का उपदेश दिया है। उन्होंने कभी यह इच्छा नहीं की कि अर्जुन मेरा शिष्य है और वह मेरी सेवा करेगा। भगवान् ने अर्जुन की सेवा तो ली नहीं उल्टे उसकी सेवा की है। महाभारत में ऐसा वर्णन आता है कि भगवान् ने अर्जुन की सेवा कर उसे ज्ञान दिया। उन्होंने अर्जुन की सेवा तो की ही, किन्तु उसके घोड़ों की भी सेवा की। वे युद्ध में घायल घोड़ों को मलहम लगाते हैं। प्रभु को अर्जुन के घोड़ों की सेवा करने में ज़रा भी संकोच नहीं होता। इसीलिए व्यासजी ने लिखा है–'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्' श्रीकृष्ण को जगद्गुरु कहा जाता है। संसार में जितने भी गुरु हुए हैं, उन्होंने अपने शिष्यों से कुछ लेकर ज्ञान दिया है किन्तु ये तो ऐसे गुरु हैं, जिसने शिष्य के साथ उसके घोड़ों की भी सेवा की है।

श्रीकृष्ण सबसे श्रेष्ठ हैं। उनमें अभिमान तो लेशमात्र भी नहीं है। श्रीकृष्ण की ज्ञान-शक्ति कितनी तीव्र है? क्या उन्होंने गीताजी का उपदेश दो-चार दिन तक कथा सुनाकर किया होगा? बेचारा अर्जुन युद्धभूमि में घबरा उठा था। उस समय भगवान् ने घण्टे दो घण्टे में ही गीता का उपदेश किया है, जिसका अर्जुन के मन पर खूब प्रभाव पड़ा है। उसने कहा है–'करिष्ये वचनं तव।' ज्ञानी पुरुष समस्त जीवन गीता-शास्त्र का वर्णन करते हैं, तब भी तत्व-ज्ञान का अन्त नहीं आता। उस गीताजी का उपदेश प्रभु ने अर्जुन को बहुत थोड़े समय में दिया। प्रभु ने उद्धवजी को भी उपदेश दिया किन्तु उनसे दक्षिणा नहीं ली। जिस गुरु को शिष्य से कुछ लेने की इच्छा होती है वह उसका कल्याण नहीं कर सकता। गुरु निरपेक्ष होना चाहिए। निरपेक्षिता उसमें आती है, जिसे परमात्मा मिलता है। लक्ष्मी हाथ में आने पर जीव निरपेक्ष नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण निरपेक्ष हैं। गुरु की आज्ञा हुई है कि विद्या का वंश बढ़ाओ। गुरुजी ने दक्षिणा में श्रीकृष्ण से इतना ही माँगा।

भगवान् को तो गुरुजी की बहुत सेवा करने की इच्छा थी। श्रीकृष्ण अन्दर गुरु-पत्नी के पास गए। उन्होंने माताजी को वन्दन कर कहा, 'माताजी मुझे कुछ आज्ञा दीजिये। मुझे आपकी सेवा करनी है। माताजी जानती थीं कि यह विद्यार्थी साधारण नहीं है। गुरु-पत्नी ने कहा, 'हम लोग जिस समय प्रभास की यात्रा में गए थे उस समय मेरा पुत्र समुद्र में डूबकर मर गया था। यदि सम्भव हो, तो उस बालक को तुम ले आओ।' ऐसी दक्षिणा भगवान् को छोड़कर दूसरा कौन दे सकता है? प्रभु ने प्रभास पहुँचकर पंच राक्षसों का विनाश किया। उनका पंचजन्य शंख धारण किया। इसके बाद वे यमपुरी गए। यमराज ने प्रभु को गुरुदेव का बालक अर्पण किया। प्रभु ने उस बालक को लाकर गुरु-पत्नी के हवाले किया। अपना पुत्र पाकर माता का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने हृदय से आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद न तो माँगने से मिलता है, न सौ-दो सौ रुपये की भेंट चढ़ाने से मिलता है। जब हृदय पिघलता है तब आशीर्वाद उस पिघले हुए हृदय से अपने आप फूट निकलता है।

तुम अपने माता-पिता की सेवा करो, किसी वृद्ध की सेवा करो, तो उनका हृदय द्रवित होने से उससे आशीर्वाद अपने आप निकल पड़ेगा। श्रीकृष्ण ने गुरु-माता की सेवा की। गुरु-माता ने आशीर्वाद दिया, 'तुम्हारे मुख में सरस्वती का वास होगा, चरणों में लक्ष्मी का वास होगा, तुम्हारी कीर्ति सारे संसार में फैली रहेगी। तुम कभी भी ज्ञान को नहीं भूलोगे।' ज्ञान प्राप्त करना कठिन नहीं है, बल्कि प्राप्त ज्ञान को स्थिर रखना बहुत कठिन है। ज्ञान सुलभ होने पर भी उसमें स्थिरता का अभाव होता है। ज्ञान भूल जाता है, बह जाता है। हृदय के आशीर्वाद और सद्गुरु की कृपा से प्राप्त ज्ञान स्थिर रहता है।

७१– गोपिकाभ्यो नमोस्तु

गुरुजी और गुरू-पत्नीजी के हृदय का आशीर्वाद पाकर श्रीकृष्ण और बलराम मथुरा लौटे। उन्हें देखकर राजा उग्रसेन को बहुत आनन्द हुआ। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति श्रीकृष्ण को अर्पण कर दी। अब श्रीकृष्ण मथुरा के राजा बने। जीव अति सम्पत्ति पाकर अपना भान भूल बैठता है; लेकिन श्रीकृष्ण अतिशय सम्पत्ति में सावधान हैं। इस पर थोड़ा विचार करो। श्रीकृष्ण का गोकुल का जीवन कैसा था! वे गोकुल में गायों के पीछे-पीछे फिरते थे अब वे मथुरा के राजा हो गए हैं! उनका राजमहल सोने का बना है, नित्य प्रति छप्पन भोग की सामग्री बनती है, सेवा में अनेक सेवक हैं। फिर भी इस अति सम्पत्ति में श्रीकृष्ण ब्रजवासियों का प्रेम नहीं भूले हैं। श्रीकृष्णजी ने उद्धव को गोकुल में भेजा।

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा।
शिष्यो वृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः।। (१०-४६-१)

अब उद्धवागमन की बात आती है। दक्षिण के एक सन्त एकनाथजी महाराज की इस अध्याय में समाधि लग गई है। उद्धवागमन के प्रसंग में ज्ञान और भक्ति का मधुर झगड़ा है। उद्धवजी के विचार से ज्ञान श्रेष्ठ है। क्योंकि ज्ञान से ही मुक्ति मिलती है। गोपियों की यह निष्ठा है कि यदि ज्ञानी प्रभु-प्रेमी हो, तो ही उसे मुक्ति मिलती है। यदि ज्ञानी प्रभु-प्रेमी न हो, तो परमात्मा उससे अपने स्वरूप को छिपा रखता है। यह जीव जब तक ईश्वर के साथ अतिशय प्रेम नहीं करता, तब तक परमात्मा माया के पर्दे में छिपा रहता है। भगवान् को प्रत्यक्ष होना पसन्द नहीं आता। उद्धवजी की यह निष्ठा है कि ज्ञान से कल्याण होता है और गोपियों की निष्ठा है कि ज्ञानी यदि प्रभु प्रेमी न हो, तो उसका पतन होता है। कुछ ज्ञानी-जन अपमान के कारण अपना हृदय जलाते हैं, कुछ ज्ञानी किसी हानि से हृदय जलाते हैं। कुछ ज्ञानी पुरुष ईश्वर की अपेक्षा जगत् के पदार्थों से अधिक प्रेम करते हैं। उस समय पतन की संभावना होती है। दोनों की आवश्यकता होती है--ज्ञान को भक्ति की और भक्ति को ज्ञान की आवश्यकता होती है। दोनों में से कोई गौण नहीं है। दोनों प्रधान हैं। भक्ति से हृदय कोमल होता है और ज्ञान से हृदय विशाल बनता है। भक्ति से अभिमान का शमन होता है। बिना भक्ति के ज्ञान लंगड़ा है और बिना ज्ञान के भक्ति अन्धी है। महापुरुषों का कहना है कि दो नहीं तीन की आवश्यकता है। तीसरी वस्तु वैराग्य है। मिष्ठान तैयार करते समय तीन वस्तुएँ एकत्र करनी पड़ी हैं--आटा, घी और चीनी ब्रह्म रसमय है। उसके रसात्मक स्वरूप का सतत अनुभव करने के लिए तीन की आवश्यकता है--ज्ञान, भक्ति और वैराग्य। जो

ब्रह्मवत होकर स्थिर हो जाता है, उस ज्ञान का कोई फल नहीं है। ब्रह्मविद्या प्राप्त होने के बाद यदि ब्रह्म में प्रीति न हो, प्रभु के प्रति प्रेम न जगे, तो ज्ञान व्यर्थ हो जाता है। ब्रह्म ज्ञानी होना सरल है; किन्तु ब्रह्म-दृष्टि रखना बहुत कठिन है। जिसे यह जगत् ब्रह्म रूप दिखाई देता है, वही अपने अन्दर परमात्मा का अनुभव कर सकता है। गोपी को सारा जगत् श्रीकृष्ण रूप दिखाई देता है। इसलिए वह प्रेम-मूर्ति है। उद्धवजी गोकुल में गोपियों का गुरु बनने के लिए और उनको समझाने के लिए आए थे, किन्तु गोपियों का प्रेम देखने के बाद उनका अभिमान पानी-पानी हो गया।

एवं भक्तिः सकलभुवने नेक्षिता न श्रुता वा।
किं शास्त्रौघैः किमिह तपसा, गोपिकाभ्यो नमोस्तु॥ (नारायणीयम्)

उद्धवजी ने ब्रज जैसी भक्ति इस संसार में न कहीं देखी थी, न सुनी थी। यहाँ ज्ञान की क्या आवश्यकता है? तप की क्या आवश्यकता है? ब्रजवासी ऐसा कहते हैं कि "ऊधो सीधो भयो है।" जब तक उद्धवजी को गोपियों का सत्संग नहीं मिला था, तब तक वे ज्ञानी होने के कारण बहुत अकड़कर चलते थे, अपने को सर्वज्ञाता समझते थे। गोपियों के सत्संग से उनका अभिमान पिघल गया। उद्धवजी गोपियों को यह समझाने आए थे कि तुम आँख बन्दकर निराकार का ध्यान करो। गोपियों ने कहा कि आप आँख बन्द करने के लिए कहते हैं; किन्तु हमारी दृष्टि जहाँ जाती है, वहाँ-वहाँ श्रीकृष्ण दिखाई देते हैं। जिसको अपनी खुली आँखों से जगत् न दिखाई देकर परमात्मा दिखाई दे उसीका ज्ञान सच्चा है। जिसको आँख बन्द करने के बाद जगत् न दिखाई दे उसका ज्ञान कच्चा है। उद्धवजी यह समझाने लगे कि सगुण के आधार पर ही निर्गुण का अनुभव होता है। तुम निराकार ब्रह्म का ध्यान करो। गोपी ने कहा, "मुझे सगुण और निर्गुण कुछ पता नहीं लगता। मैं तो इतना ही जानती हूँ कि जब मैं प्रेम से श्रीकृष्ण बोलती हूँ तो (सगुण हो अथवा निर्गुण हो) मेरी आँखों के सामने मुझे श्रीकृष्ण के दर्शन होते हैं। आपने ज्ञान की बात तो सुनाई; किन्तु उसका असली स्वरूप नहीं देखा है। जो एक बार श्रीकृष्ण के दर्शन कर लेता है; वह उसे छोड़ ही नहीं सकता।"

उद्धवजी राधाजी का दर्शन करने जाते हैं। यह प्रसंग भ्रमर गीत का है। वे राधाजी से कहते हैं, "प्रभुजी तुमको भूले नहीं है। वे तुम्हें स्मरण करते हैं। वे इस समय मथुरा में विराजमान हैं। फिर भी तुमको याद करते हैं।" राधाजी कहती हैं, "उद्धव, तू ने चार वेद और छह शास्त्र पढ़कर भी कुछ नहीं जाना, कोरा का कोरा ही रहा। मुझे तो चारों ओर श्रीकृष्ण ही दिखाई देते हैं। मुझे सारा ब्रज कृष्णरूप दिखाई देता है। जो ब्रह्म व्यापक है, उसे तू मथुरा में ही क्यों बन्द रखता है? तू यह क्या बोल रहा है?" 'किं वदति' श्रीराधाजी ने हाथ में बाँसुरी ले ली। बाँसुरी के अन्दर से

'राधे गोविन्द' की ध्वनि निकली। गोपी ने नृत्य आरंभ किया और उद्धवजी को दिव्य लीला के दर्शन का लाभ मिला। एक-एक गोपी के साथ एक-एक श्रीकृष्ण दिखाई दे रहे हैं। गोपी कहती हैं, "उद्धवजी, मेरे कृष्ण तो मुझे छोड़कर गए ही नहीं हैं। मथुरा के कृष्ण कोई और ही होंगे।" भक्त और भगवान् अन्दर से एक ही होते हैं उद्धवजी गोपी को वन्दन करते हैं।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां,
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा,
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥
या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै-
र्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम्।
कृष्णस्य तद् भगवतश्चरणारविन्दं,
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम्॥
वन्दे नन्दब्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः,
यासां हरिकथोद् गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥

(१०-४७-६१,६२,६३)

उद्धवजी को अब विश्वास हो गया कि भक्ति से ही ज्ञान परिपूर्ण बनता है। भक्ति प्रेम से विहीन ज्ञान शुष्क है। ज्ञानी को प्रभु प्रेमी बनना ही पड़ता है। ज्ञानी की अपेक्षा श्रीकृष्ण-प्रेमी श्रेष्ठ है। उद्धवजी केवल दो-चार दिन के लिए ब्रज में आए थे, किन्तु वे गोकुल में दो महीने तक रह गए। उन्हें ब्रज छोड़कर मथुरा जाने की इच्छा ही नहीं होती। जब राधाजी की आज्ञा हुई, तब उद्धवजी मथुरा गये।

उद्धवजी विचार कर रहे हैं कि मथुरा में चल कर मैं श्रीकृष्ण को उलाहना दूँगा कि आपने गोपी का प्रेम ठुकराया है। वहाँ पहुँचकर वे श्रीकृष्ण का चरण-वन्दन करते हैं। श्रीकृष्ण उद्धव के मस्तक पर अपना हाथ रखते हैं। वे उनको अपनी एक-एक लीला के दर्शन कराते हैं, 'मैं ब्रज छोड़कर कहीं नहीं गया हूँ। मैं तो नित्य उसके साथ रहता हूँ।' यह लीला प्रेम लक्षणा भक्ति का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए है।

इसके बाद श्रीकृष्ण ने अक्रूर को हस्तिनापुर भेजा। उनके काम में पाँडवों को लाक्षागृह में जलाने का समाचार सुनाई दिया था। उसका ठीक पता लगाने के लिए वे हस्तिनापुर गए। उन्होंने धृतराष्ट्र को उपदेश दिया।

एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एकोनुभुँक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥

(१०-४९-२१)

जिस शरीर को तुम सुख देना चाहते हो, वह भी तुम्हारे साथ जाने वाला नहीं है। प्राण या जीव अकेला आता है और अकेला जाता है। यदि तुम बहुत पैसा कमाओगे तो बहुत से सगे सम्बन्धी एकत्र होंगे। सुख पूर्वक रहने पर सब लोग साथ देंगे। संकट के समय कोई साथ नहीं देता। संकट अकेले ही सहन करना पड़ता है। अक्रूर ने धृतराष्ट्र को समझाया कि तुम दुर्योधन के लिए पक्षपात करते हो, पाप करते हो। जब तुमको दण्ड भोगना पड़ेगा, तब दुर्योधन तुम्हारा साथ न देगा। तुम आधा राज पाँडवों को दे दो। यह बात उन्होंने धृतराष्ट्र को अनेक रीतियों से समझाई; किन्तु उसने इसे नहीं माना। अक्रूरजी धृतराष्ट्र को समझाकर हस्तिनापुर से मथुरा आ गए हैं और उन्होंने भगवान् से निवेदन किया है कि मार पड़ने पर ही उसे बुद्धि आएगी। मैंने उसे समझाने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उसने ध्यान ही नहीं दिया।

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम्।
पाण्डवान् प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम्॥ (१०-४९-३१)

इति दशम् स्कन्ध पूर्वार्धः समाप्तः

हरिः ॐ तत्सत्

श्रीमन्नारायण नारायण नारायण
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण
लक्ष्मीनारायण नारायण नारायण
लक्ष्मीनारायण नारायण नारायण
बद्रीनारायण नारायण नारायण
बद्रीनारायण नारायण नारायण
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्‌भागवत-रसामृत

दशम स्कन्धः उत्तरार्ध

७२- ब्रह्मविद्यापुरी द्वारका

सत्यं ज्ञानमनन्तं नित्यमनाकाशं परभाकाशं।
गोष्ठं प्रांगणरिंगणलोलमनायासं परमायासम्।।
मायाकल्पितनानाकारमनाकारं भुवनाकरं।
क्ष्माया नाथमनाथं प्रणमत गोविन्दं परमानंदम्।। (गोविन्दाष्टकम्)

परमात्मा श्रीकृष्ण आनन्द स्वरूप हैं। निराकार आनन्द ही नराकार श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुआ है। श्रीकृष्ण की सारी लीला आनन्दमय है। श्रीकृष्ण की कथा जब कभी सुनें, तब आनन्द आता है। प्रभु का दर्शन जब भी करो, तब नया ही आनन्द मिलता है। श्रीकृष्ण का स्मरण जब करो, तब नया ही आनन्द मिलता है।

अब दशम् स्कन्ध का उत्तरार्ध आरम्भ होता है।

अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ।
मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पित्तुर्गृहान्।। (१०-५०-१)

कंस जब तक जीवित था, तब तक व्यासजी ने भागवत में उसकी रानियों का नाम नहीं दिया था। उसके मरने के बाद उनका नाम दिया गया है। वह उत्तरार्ध के प्रथम श्लोक में वर्णित है। कंस की दो रानियों का नाम है अस्ति और प्राप्ति। अस्ति और प्राप्ति का पति कंस है। अस्ति अर्थात् बैंक में इतना रुपया जमा है। प्राप्ति का अर्थ है कि इस वर्ष इतने रुपये आने वाले हैं। यह सुख मुझे मिला है और यह सुख मुझे भोगना है। सभी जानते हैं कि आत्मा इस शरीर से भिन्न है। इसलिए आत्मा का आनन्द भी भिन्न होना चाहिए। फिर भी मनुष्य का अधिकाँश जीवन शरीर और इन्द्रिय का सुख भोगने में ही बीतता है। सुख की इच्छा तो सभी को होती है, किन्तु मनुष्य सच्चे सुख का विचार नहीं करता। यही कंस का स्वरूप है। कंस के मरने के बाद उसकी दोनों

रानियाँ अपने पीहर चली गईं। उन्होंने अपने पिता जरासन्ध को मथुरा की सारी घटनायें बता दीं। जरासन्ध ने श्रीकृष्ण को अपना बैरी मान लिया।

जरासन्ध ने तेईस अक्षौहिणी सेना एकत्र कर मथुरा पर चढ़ाई कर दी। प्रभु ने बलरामजी से कहा कि बड़े भाई, आप जरासन्ध को मारिए मत। श्रीकृष्ण के कहने से बलरामजी ने जरासन्ध को नहीं मारा। फिर भी उसकी सारी सेना का विनाशकर डाला। जरासन्ध घर गया और कई अक्षौहिणी सेना लेकर फिर युद्ध करने आया। प्रभु ने उसे पराजित किया और उसकी सेना का विनाश किया। इस प्रकार जरासन्ध सत्रह बार पराजित हुआ। इस उत्तरार्ध में जरासन्ध के साथ किए गए युद्ध का वर्णन अच्छी तरह किया गया है। उनचासवें अध्याय में पूर्वार्ध पूरा हुआ है।

तुम्हारे जीवन में उनचास वर्ष पूरा होने पर जरासन्ध लड़ने आयेगा। भोजन न पचना, आँख से अच्छी तरह न दिखाई देना, थकावट लगना ही जरासन्ध की सेना है। जिस समय लोग सौ वर्ष जीवित रहते थे उस समय पचास वर्ष तक पूर्वार्ध और उसके बाद का समय उत्तरार्ध था। अब लोग सौ वर्ष जीवित नहीं रहते। पैंतीस-चालीस वर्ष की उम्र से उत्तरार्ध शुरू हो जाता है। उत्तरार्ध में बहुत सावधान रहना चाहिए। सत्रह बार जरासन्ध यांनी बीमारी आती है। उससे रक्षा होने पर अठारहवीं बार जरासन्ध काल यवन को लेकर लड़ाई करने आता है। उस समय शरीर छोड़ना ही पड़ता है। अन्त में श्रीकृष्ण मथुरा छोड़कर चले जाते हैं।

भागवत की कथा अनेक तरह से कही जाती है। जरासन्ध काल यवन से मैत्री करता है और उससे कहता है कि तुम मथुरा जाओ। फिर बाद में मैं मथुरा आऊँगा। काल-यवन ने मथुरा पर चढ़ाई कर दी। उसके बाद जरासन्ध भी आने वाला था। प्रभु ने बलरामजी से कहा कि अब क्या किया जाएगा? बलरामजी ने कहा कि जरासन्ध को सत्रह बार हराया, फिर भी वह लड़ने आया है। ये लोग मथुरा में शान्ति से नहीं रहने देंगे। मुझे तो आनर्त (गुजरात) देश में जाकर रहना है। उसी समय रेवत की पुत्री के साथ बलरामजी का विवाह हो गया। बलरामजी को इस विवाह में आनर्त-ओखा मण्डल का राज्य दहेज में मिला था। बलरामजी ने वहाँ रहने की इच्छा प्रकट की और मथुरा छोड़ना चाहा। प्रभु ने कहा कि आप बड़े भाई हैं। आपकी इच्छा यदि वहाँ रहने की है तो मैं भी वहीं रहने आऊँगा। उन्होंने विश्वकर्मा को बुलाया और समुद्र के मध्य एक नगरी बनाने की आज्ञा उन्हें दी। देवताओं ने अपनी सारी सम्पत्ति श्रीकृष्ण को अर्पण कर दी। समुद्र के मध्य सुवर्ण नगरी की रचना की गई। उसमें बड़े-बड़े बाड़े (घेरे) बनाए गए थे। यादवों को उसमें से बाहर निकलने के लिए जल्दी रास्ता नहीं मिला। वे बार-बार पूछने लगे। 'द्वार कहाँ है? द्वार कहाँ

है?' इसलिए उसका नाम द्वारका पड़ा। द्वारकाधीश की जय! इस प्रकार श्रीकृष्ण ने मथुरा नगरी छोड़ दी। जरासन्ध जब अन्तिम बार युद्ध करने आया, तब श्रीकृष्ण द्वारका पहुँच चुके थे।

द्वारका ब्रह्मविद्यापुरी है। जिस प्रकार समुद्र का अन्त नहीं है, वैसे ही ब्रह्म का अन्त नहीं है। इसीलिए परमात्मा को अनमा कहते हैं। समुद्र में स्थित द्वारका ब्रह्मविद्या स्वरूप है। द्वार का अर्थ दरवाजा और 'का' अर्थ ब्रह्म परमात्मा है। द्वारिकं-परमात्मा है। ब्रह्म यस्यां सा द्वारका। इसके प्रत्येक द्वार में भगवान् विराजमान हैं। हम सब लोग यदि द्वारका जाकर रहने लगें, तो वहाँ कितनी भीड़ होगी? तीर्थ में रहना अच्छा है; किन्तु प्रभु ने तुम्हें रहने के लिए जो घर दिया है, उसे तीर्थ तुल्य पवित्र बनाओ तो अधिक अच्छा है। अपना घर ऐसा पवित्र रखो कि वहाँ कोई आए तो उसका मन शुद्ध हो और उसे भगवान् की भक्ति करने की भावना पैदा हो अपने घर को तीर्थ बनाने की कोशिश करो, जिसके प्रत्येक स्थान पर भगवान् विराजमान हों। शरीर रूपी घर में इन्द्रिय रूपी दरवाजे हैं भगवान् को अपने शरीर में रखो। अपनी आँख में श्रीकृष्ण को रखो, कान में श्रीकृष्ण को रखो। जिस इन्द्रिय से भक्ति नहीं होती उससे जाने अनजाने पाप होता है। जो अपनी सभी इन्द्रियों से भक्ति करता है उसकी बुद्धि में ज्ञान का प्रकाश होता है। पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान समय बीतते भूल जाता है; किन्तु अन्दर से प्राप्त किया गया ज्ञान स्थायी होता है। इसलिए अपनी एक-एक इन्द्रिय से भक्ति करो। जो ब्रह्मरूप हो जाता है, उसे काल-यवन भी नहीं मार सकता।

यादवों को द्वारका में छोड़कर श्रीकृष्ण ने काल-यवन से युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया। ब्रह्मा ने काल-यवन को वरदान दिया था कि तुमको कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मार सकेगा जिसने यदुकुल में जन्म लिया हो। प्रभुजी ने ब्रह्माजी का वरदान सफल किया। युद्ध में काल-यवन की जीत हुई और श्रीकृष्ण की हार हुई। परमात्मा ने लीला की। वे रण छोड़कर भागे। काल-यवन ने श्रीकृष्ण का पीछा किया। उसने प्रभु से कहा, ''लोग तुमको मानते हैं, लेकिन मुझे विश्वास है कि तुम डरपोक हो। तुम रण छोड़कर जा रहे हो। काल यवन ने 'रण-छोड़, रण-छोड़' कहकर पुकारा। इसलिए उनका नाम रणछोड़राय पड़ गया। रणछोड़राय की जय। श्रीकृष्ण ने भागते-भागते गिरनार पर्वत में स्थित मुचकुंद ऋषि की गुफा में प्रवेश किया। उस समय राजर्षि मुचकुंद सो गये थे। श्रीकृष्ण ने उनके शरीर पर अपना पीताम्बर उढ़ा दिया। काल यवन इसके बाद वहाँ पहुँचा। मुचकुंद ने राजऋर्षि को श्रीकृष्ण मानकर जोर से लात मारी। मुचकुंद ऋषि ने अपनी आँखें खोलीं। मुचकुंद ऋषि को यह वरदान था कि जो तुम्हारी निद्रा भंग करे उस पर यदि तुम्हारी दृष्टि पड़े तो वह जलकर भस्म हो जाए। फलस्वरूप मुचकुंद ऋषि की नजर पड़ते ही काल-यवन जलकर भस्म हो गया। इसके बाद मुचकुंद ऋषि को द्वारकानाथ का दर्शन हुआ। मुचकुंद महाराज ने परमात्मा की स्तुति की।

विमोहितो जन ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक्।
सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित् पुरुषश्च वञ्चितः॥

(१०-५१-४६)

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया, प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम्।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे, क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः॥

(१०-५१-५०)

चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापै रवितृषषडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथञ्चित्।
शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकं पाहि माऽऽपन्नमीश॥

(१०-५१-५८)

मुचकुंद महाराज ने अपनी स्तुति में वर्णन करते हुए कहा, ''मनुष्य की दशा सर्प के मुँह में स्थित मेढ़क जैसी है। सर्प के मुँह में जो मेढ़क होता है उसका आधा शरीर सर्प के मुख में होता है। वह एक-दो मिनट में ही काल का कौर बनने वाला होता है। ऐसे समय यदि मेढ़क के ऊपर कोई मक्खी फड़कती हुई आई हो, ते वह उसे खाने का प्रयत्न करता है।'' शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं, ''पचास वर्ष की उम्र पूरी होते ही मनुष्य का शरीर काल के मुख में पड़ जाता है, फिर भी उसे भक्ति की ओर प्रेरणा नहीं होती और वह विषयों में लगा-लिपटा रहता है। यह जीव कितना गाफिल है? यदि किसी को कहीं बाहर जाना हो तो वह दो-तीन दिन पहले तैयारी करता है, कुछ लोग तो दो-चार महीने पहले से तैयारी करते हैं। आश्चर्य है कि प्रभु के घर जाने का निश्चय होने पर भी कोई उसकी तैयारी नहीं करता। यह कथा सुनने के बाद आप लोग हर रोज थोड़ी तैयारी करते रहें। इस में घबराने की आवश्यकता नहीं। अभी बहुत देर है। फिर भी थोड़ी-थोड़ी तैयारी करने की आवश्यकता है। देश के बदलने के साथ-साथ उसका सिक्का भी बदलता रहता है। इसलिए यहाँ का सिक्का वहाँ नहीं चल सकता मनुष्य अपने जीवन-काल में मरने की तैयारी नहीं करता। इसीलिए उसे अंत काल में बहुत पछताना पड़ता है। मुचकुन्द महाराज ने कहा है, ''मुझे गर्गाचार्य का सत्संग प्राप्त हुआ है। आज मैं आपका दर्शन कर कृतार्थ हो गया हूँ। आप मुझे अपनी भक्ति दीजिए।'' प्रभु ने कहा कि जिसने जवानी में विलासी जीवन गुजारा है उसे शेष जीवन में अनन्य भक्ति नहीं मिलती, अपितु उसका सारा जीवन विलास में बरबाद हो जाता है। यदि वह वृद्धावस्था में भक्ति करे तो उसका दूसरा जन्म सुधरता है। हाँ, उसे एक ध्यान होना होता है। बद्री केदार में जाकर वहाँ एक ध्यान करो वहीं शरीर छोड़ दो।'' मुचकन्द

महाराज ने बद्री केदार जाकर अपना शरीर छोड़ा। वे कलियुग में नरसिंह मेहता के रूप में पैदा हुए। प्रभुने मुचकुन्द ऋषि को सद्गति दी।

इसके बाद श्रीकृष्ण मथुरा पहुँचे। उनसे जरासंध अठारहवीं बार युद्ध करने आया। उसने ब्राह्मणों को यह कहकर धमकाया कि यदि मेरी हार होगी तो मैं तुम्हारा कतल कर दूँगा। प्रभु ने लीला की। जरासंध की जीत हुई और श्रीकृष्ण की हार हुई। जरासंध प्रभु के पीछे-पीछे उन्हें मारने के लिए दौड़ा। उस समय श्रीकृष्ण प्रवर्षण पर्वत पर पहुँचे। यदि तुम्हारे पीछे भी जरासंध दौड़े तो तुम भी प्रवर्षण पर्वत पर जाओ। जहाँ ज्ञान और भक्ति की नित्य वर्षा होती है वही सात्विक भूमि प्रवर्षण पर्वत है। पचास-पचपन वर्ष हो जाने के बाद विलासी लोगों से दूर रहना। क्योंकि उनका संग मन को दुर्बल बनाता है। समाज में रहकर मनुष्य होना सरल है, किन्तु विलासी लोगों का साथ कर मन को पवित्र रखना कठिन है। इक्यावन, बावन, सत्तावन का अर्थ यह होता है कि अब 'वन' में जाओ। इस जीवन में बहुत सावधान रहो। जरासंध के पीछा करने के बाद अधिक नहीं तो प्रतिदिन नियमपूर्वक प्रभु का इक्कीस हजार जप करो। एक घंटे में नौ सौ साँस ली जाती है। चौबीस घंटे में २१,६०० साँस ली जाती है। प्रति साँस पर जप करने की आवश्यकता है। नियम से इक्कीस हजार जप करो। 'श्रीराम', 'श्रीकृष्ण' जैसा दो तीन अक्षरों का मन्त्र हो तो एक घण्टे में चार-पाँच हजार मन्त्र बोला जा सकता है। ऐसा एक आसन पर पाँच घण्टा बैठने पर पूरा होगा। जब पुत्र विवाहित हो गया और घर में पुत्र-वधू आ गई तो यह समझना कि अब तुम्हारा गृहस्थाश्रम पूरा हो गया वानप्रस्थाश्रम शुरू हो गया अब तुम्हें वन में जाने की आवश्यकता है। कुछ वृद्धाएँ ऐसी होती हैं जो मरते समय तक चाभी का गुच्छा अपनी बहू को नहीं देतीं और बहू को यह इच्छा होती है कि यदि सासु को कुछ हो जाए तो अच्छा। पुत्र के विवाहित हो जाने के बाद सावधान होकर रहना। घर में रहना हो तो भले रहो; किन्तु विवेकपूर्वक रहो, सादा भोजन करो और सतत भक्ति करो। ऐसा भाव रखो कि मेरा घर भगवान् के चरणों में है। मुझे अब यह घर छोड़ना है।

मन घर में रहने से नहीं बिगड़ता, किन्तु वह घर पर अधिक ममता रखने से बिगड़ता है। सतत भक्ति करने से मरण सुधरेगा। भक्ति करने से जरासंध के त्रास से यानी जन्म और मरण के संकट से छूट सकोगे। प्रभु का नाम जप सतत करने की बहुत आवश्यकता है। बिना जप के पाप की आदत नहीं छूटती। यज्ञ करने से पुण्य बढ़ता है, किन्तु पाप नहीं छूटता। पाप करने की आदत इस जीव को जन्म-जन्मान्तर से पड़ी है। एक स्थान पर शान्ति से बैठकर जप करने पर ही पाप छूटता है। बिना जप के वासना का विनाश नहीं होता। छः महीने जप करके देखोगे और अनुभव करोगे कि मेरा मन अब पहले की अपेक्षा कुछ सुधरा है। मन्त्र-जप करने से पाप कुछ क्रम होगा

और तुम्हारी आत्मा यह कहेगी कि अब तुझे भक्ति का रंग लगा है। इस प्रकार प्रभु ने जगत् को प्रवर्षण पर्वत पर जाने का उपदेश दिया है।

जीत होने से जरासंध प्रसन्न हुआ उसने ब्राह्मणों की पूजा की और उनका सम्मान किया। वे स्वयं द्वारका आए और उसके बाद रुक्मिणीजी से विवाह किया।

७३– रुक्मिणी विवाह

ब्रह्मन् कृष्णकथाः पुण्या माध्वीर्लोकमलापहाः।
को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतना॥ (१०-५२-२०)

राजा परीक्षित ने प्रश्न किया "मैंने रुक्मिणिजी के विवाह की कथा सुनी है, किन्तु मुझे फिर वह कथा सुनने की इच्छा है।" कृष्ण-कथा में बहुत आनन्द आता है। जब-जब श्रीकृष्ण की कथा प्रेम से सुनोगे, तब-तब आनन्द आएगा। श्रीकृष्ण का स्वरूप मंगलमय है। उनका प्रेम से दर्शन करने पर प्रत्येक बार नया आनन्द आता है। कृष्ण-कथा नित्य नवीन लगती है। राजा ने कहा मुझे यह कथा विस्तारपूर्वक सुनाइये। शुकदेवजी महाराज कथा सुनाते हैं–

राजाऽऽसीद् भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान्।
तस्य पञ्चाभवन् पुत्राः कन्यैका च वरानना॥ (१०-५२-२१)

विदर्भ नगरी जिसे आज लोग अमरावती कहते हैं उसमें प्राचीन काल में भीष्मक नामक एक राजा राज करता था। उसके पुत्र का नाम रुक्मी और पुत्री का नाम रुक्मिणी था। रुक्मिणीजी के रूप में मानों साक्षात् लक्ष्मीजी प्रकट हुई थीं। रुक्मिणीजी की माता का नाम भागवत में नहीं दिया गया है। किन्तु उनका नाम शुद्धमति है। जहाँ शुद्धमति है वहीं लक्ष्मी का निवास है। इसके बाद रुक्मिणी-विवाह की कथा का वर्णन है। गंगा का किनारा है, बड़े-बड़े साधु-संन्यासी कथा सुनने के लिए बैठे हैं। उनके आचार्य शुकदेवजी महाराज हैं। वे विवाह की कथा आरम्भ करते हैं। जिस घर में विवाह होता है, उस घर में प्रायः साधु संन्यासी नहीं जाते। क्योंकि विवाह की बहुत सी बातें सुनने पर मन में विकार आ जाता है। इसलिए वे वहाँ नहीं जाते। जिसकी मृत्यु अधिक है समीप उसे भी विवाह की कथा सुनने से बहुत लाभ नहीं।

शुकदेवजी महाराज को भी विवाह की कथा कहने से कोई लाभ नहीं है। बाहर से देखने पर ऐसा लगता है कि यह वर-कन्या की कथा है, किन्तु इसका वर्णन सुनने पर ऐसा लगता है कि यह साधारण वर-कन्या की कथा नहीं है। यह जीवात्मा और परमात्मा की कथा है। यह जीव अनेक बार पति हुआ है और अनेक बार पत्नी भी हुआ है। पति को शान्ति नहीं है और पत्नी

को भी शान्ति नहीं है। यदि यह जीव परमात्मा के साथ एक रूप हो जाए अथवा उनके साथ विवाह कर ले तो ही इसके दु:ख का अन्त हो सकता है। शुकदेवजी महाराज परमात्मा के साथ विवाहित हुए हैं। महाराज की इच्छा है कि मेरी कथा सुनने वाला यदि परमात्मा के साथ विवाह कर ले तो उसका मरण मंगलमय होगा। परीक्षित महाराज को जब तक्षक नाग काटने वाला था, उसके पहले ही वे परमात्मा से विवाहित हो जाते हैं। उनका विवाह निश्चित हो जाने के बाद यदि तक्षक नाग काट ले, तो भी कोई परवाह नहीं। तक्षक केवल शरीर को काटने वाला है। वह आत्मा को नहीं काट सकता। यह साधारण विवाह की कथा नहीं है, बल्कि आत्मा का परमात्मा के साथ विवाह की कथा है। रुक्मिणीजी श्रीकृष्ण को जो पत्र लिखती हैं उसमें कामी पुरुषों की निन्दा करते हुए लिखती हैं, 'कामी राजा तो शृगाल के समान होते हैं। मुझे तो कामी पुरुषों का नाम लेना भी पसन्द नहीं है।' क्या कोई साधारण कन्या अपने वर के पत्र में यह लिख सकती है कि कामी पुरुष शृगाल के समान होता है।

भागवत में लिखा है कि विवाह होने के बाद जब श्रीकृष्ण कहते हैं कि मुझे संतान बढ़ाने की इच्छा नहीं है। अर्थात् मुझे किसी स्त्री की थोड़ी भी आवश्यकता नहीं है। यह अलौकिक विवाह की कथा है। रुक्मिणीजी तो जगन्माता हैं; वे कन्या नहीं हैं और श्रीकृष्ण वर नहीं हैं; वे सर्वोत्तम परमात्मा हैं। जिसे परमात्मा से विवाह करना है, उसे घर के लोगों का सताना सहन करना ही पड़ता है। लोगों का सताना सहनकर भक्ति करते रहने से अच्छा फल मिलता है। जो दूसरे का सताना सहन करता है उसकी सहायता भगवान् भी करते हैं। रुक्मिणीजी के भाई रुक्मी की यह इच्छा थी कि मेरी बहन राजा शिशुपाल की रानी बने। शिशुपाल के साथ सम्बन्ध स्थापित होने पर मुझे बहुत लाभ होगा मेरी बहन संसार सुख भोगे, तो बहुत अच्छा है। जिससे वह भक्ति की ओर अधिक न बह जाए। लेकिन रुक्मिणीजी को राजा की रानी होना पसन्द न था। संसार में रानी का जीवन श्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि राजा को राज्य चलाने की चिन्ता होती है किन्तु रानी को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती। फिर भी रुक्मिणीजी को रानी बनना तुच्छ प्रतीत होता है।

रुक्मिणीजी बचपन से ही अपने इस विचार पर दृढ़ हैं। इसलिए उन्हें परमात्मा के साथ विवाह करने की इच्छा है। जिसे प्रभु के साथ विवाह करना हो उसका जीवन अत्यन्त सादा होना चाहिए। रुक्मिणीजी का जीवन अत्यन्त सादा था। भागवत में लिखा है कि रुक्मिणीजी जब अम्बाजी की पूजा करने गईं तब किसी सवारी में न बैठकर पैदल गईं। रुक्मिणीजी ही महालक्ष्मीजी हैं। राजकन्या होने पर भी उन्हें विलासी जीवन नहीं सुहाता। वे बचपन से ही सन्तों का सत्संग

करती थीं। जिसे परमात्मा के साथ विवाह करना हो उसे सद्गुरु की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए रुक्मिणीजी को सुदेव ब्राह्मण की आवश्यकता पड़ी।

रुक्मिणीजी के पिता भीष्मक की इच्छा है कि अपनी कन्या श्रीकृष्ण को अर्पण करूँ। लेकिन उनके पुत्र रुक्मी का आग्रह है कि मैं अपनी बहन शिशुपाल को दूँगा। शिशुपाल का अर्थ है छोटे बालकों के पालन करने में जिसके समय और सम्पत्ति का नाश हो। शिशुपाल का अर्थ है अति कामी जीव। जब शिशुपाल को इसकी खबर पड़ी कि उसका विवाह रुक्मिणीजी के साथ होना है तब वह प्रसन्नता से पागल हो गया। वह गणपति का पूजन करते समय कन्या का चिन्तन कर रहा था। यह देखकर उसकी माता कहती है, 'तू शान्ति से पूजा नहीं करता। इसलिए विवाह में विघ्न पड़ेगा। जो मनुष्य शान्ति से पूजा करता है और पूजा में ध्यान रखता है। उसे अच्छा फल मिलता है। शिशुपाल मूर्ख है। इसलिए उसे महालक्ष्मी नहीं मिल सकती। महालक्ष्मी तो निष्काम श्रीकृष्ण के चरण में जायेगी। जब शिशुपाल बारात लेकर विवाह करने निकलता है, तब रास्ते में अपशकुन होता है।

शिशुपाल के साथ विवाह करना रुक्मिणीजी को पसन्द न आया। उन्हें तो परमात्मा के साथ ही विवाह करना है। रुक्मिणीजी ने सात श्लोकों में एक पत्र लिखा। और उसे सुदेव ब्राह्मण को देते हुए कहा 'मुझे द्वारकानाथ से ही विवाह करना है। आप यह पत्र उनके पास पहुँचा दें और मेरे लिए थोड़ी सिफारिश भी करें।' सिफारिश से काम जल्दी हो जाता है। यदि साधु-सन्त भगवान् को मनाएँ तो भगवान् जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं और उनका स्नेह देखकर परमात्मा भाव-विभोर हो उठते हैं। सुदेव द्वारका गए। उन्होंने श्रीकृष्ण को वह पत्र दिया और कहा, 'रुक्मिणीजी अति सुन्दर है, अति योग्य है। मैं उसे बचपन से जानता और देखता हूँ। आप उसे ग्रहण कीजिये। श्रीकृष्ण वह पत्र पढ़ते हैं। अक्षर से ही बुद्धि की परीक्षा होती है जिसके अक्षर अत्यन्त सुन्दर होते हैं, वे बहुत बुद्धिमान होते हैं। बहुत से लोगों के अक्षर ऐसे होते हैं कि वे उसे स्वयं ही नहीं पढ़ पाते। रुक्मिणीजी के अक्षर मोती के दाने के समान हैं। उनके थोड़े शब्दों में अधिक भावार्थ निहित है। पत्र का अति विस्तार कोई बहुत उपयोगी नहीं होता। उसमें थोड़ा लिखने पर बहुत कुछ भाव आ जाता है। पत्र विवेक से लिखा होना चाहिए। पत्र में श्रीकृष्ण के लिये दो शब्दों से सम्बोधित किया गया है—भुवन सुन्दर और अच्युत।

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽगताम्।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपंमे॥

(१०-५२-३७)

जो वैष्णव सहस्त्रनाम का पाठ करते हैं, उनको पता है कि उसमें अच्युत एक नाम आता है। अच्युत का अर्थ है जिसे काम का स्पर्श न हो, जो पूर्ण निष्काम हो। काम का स्पर्श होने पर जीव का पतन होता है, वह च्युत होता है। श्रीकृष्ण पूर्ण निष्काम हैं। इसलिए उन्हें अच्युत कहा जाता है। बिना सूर्य अन्धकार दूर नहीं होता और सूर्य को अन्धकार का स्पर्श नहीं होता। इसी प्रकार श्रीकृष्ण के पास काम नहीं आ सकता। रुक्मिणीजी का दूसरा सम्बोधन है—भुवन सुन्दर। श्रीकृष्ण के समान कोई सुन्दर नहीं है। अर्थात् श्रीकृष्ण अति सुन्दर हैं। श्रीकृष्ण करोड़ों सूर्यों से भी सुन्दर हैं, प्रकाशमय हैं और आनन्ददाता हैं। जिसे काम का स्पर्श होता है, उसका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। मनुष्य तब तक ही टिक सकता है, जब तक उसे काम का स्पर्श नहीं होता है। श्रीकृष्ण निष्काम हैं। इसीलिए वे अधिक सुन्दर हैं। इस संसार में जो सौन्दर्य दिखाई देता है, वह श्रीकृष्ण का अल्पांश है। कोई सुन्दर वस्तु देखने को मिले तो उसका चिन्तन मत करना। जिस प्रभु ने ऐसे सुन्दर संसार की रचना की है वह कितना सुन्दर होगा! प्रभु का चिन्तन करो। रुक्मिणीजी लिखती हैं, "आप अति सुन्दर हैं। आप निष्काम हैं। मैंने अनेक साधु-सन्तों के मुख से आपकी कथा सुनी है। आप साधु-सन्तों के दु:ख-भंजक हैं।

तन्मे भवान् खलु वृतः पतिरंग जायामात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि।
मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद् गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष॥

(१०-५२-३९)

मुझे किसी राजा की रानी बनने की इच्छा नहीं है। मुझे निष्काम परमात्मा से ही विवाह करना है। आप निष्काम हैं, मैं निर्विकारी हूँ। मैं आपका एक भाग हूँ। हे नाथ, मुझ पर कृपा कीजिए। यदि सिंह का भाग सियार ले जाए, तो सिंह के लिए कलंक की बात होगी। शिशुपाल शृगाल के समान है।

यस्यांघ्रिपंकजरजःस्नपनं महान्तो, वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै।
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून् व्रतकृशाच्छतजन्मभिः स्यात्॥

(१०-५२-४३)

मुझे तो विश्वास है कि मुझ दासी को आप स्वीकार करेंगे। यदि आप ग्रहण नहीं करेंगे तो मैं दूसरा जन्म लूँगी, अनेक जन्म लूँगी, किन्तु विवाह करूँगी तो परमात्मा के साथ ही करूँगी। प्रभु ने पत्र पढ़ा। उन्हें आनंद हुआ। उन्होंने सुदेव ब्राह्मण से कहा, "मैं उस कन्या को जानता हूँ। मैंने उसकी प्रशंसा सुनी है। मैं उसे ग्रहण करूँगा।"

परमात्मा ने दारुक सारथि को बुलाकर रथ तैयार कराया और उस रथ में अपने साथ सुदेव ब्राह्मण को भी बैठाया। उन्होंने भूदेव को वन्दन किया और गणपति महाराज का स्मरण कर प्रस्थान किया।

श्रीकृष्ण संसार को यह आदर्श दिखाते हैं कि मैं ईश्वर होकर भी सबका सम्मान करता हूँ मैं धर्म–मर्यादा का पालन करता हूँ और धर्म नहीं छोड़ता।

श्रीकृष्ण एक ही रात्रि में विदर्भ नगरी में पहुँच गए। विदर्भ के लोग द्वारकानाथ श्रीकृष्ण के दर्शन करते हैं। उन्हें बड़ा आनंद होता है। वे लोग विचार करते हैं, हमारी राजकन्या राजलक्ष्मी के समान है। उसके लिए यही सुन्दर वर है।

राजमहल में रुक्मिणी देवी प्रतीक्षा कर रही है कि समय हो गया है, किन्तु अभी भूदेव पधारे नहीं हैं। उसी समय सुदेव ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचे। वे बहुत प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। उनको देखकर ही रुक्मिणीजी ने समझ लिया कि ये काम पूरा करके लौटे हैं। सुदेव ने कहा, ''बेटी, चिंता मत करना! मैं तो भगवान् को लेकर ही आया हूँ। तू पार्वती की पूजा करने जा रही है। परमात्मा तुझसे मिलेंगे। पूजा करने के बाद वे रथ में बैठाकर तुझे द्वारका ले जाएँगे। यह सुनकर रुक्मिणीजी की आँखें भर आईं। वे ब्राह्मण को वंदन कर कहती हैं, ''महाराज मैं आपकी क्या सेवा करूँ? ब्राह्मण ने कुछ लिया नहीं। उसने आशीर्वाद दिया और हाथ हिलाता हुआ घर चला गया। रुक्मिणीजी मन से ब्राह्मण को वंदन करती हैं।

रुक्मिणीजी को पति के रूप में श्रीकृष्ण के मिलने पर जो आनन्द होता, उससे अधिक आनंद सुदेव को रुक्मिणी के साथ श्रीकृष्ण को देखकर हुआ। सदगुरु सद्शिष्य का परमात्मा के साथ सम्बन्ध स्थापित कर आनंद का अनुभव करता है। पवित्र ब्राह्मण के चरण में महालक्ष्मी वंदन करती हैं। श्रीधर स्वामी ने अपनी टीका में लिखा है कि जो ब्राह्मण तीन बार संध्या करता है और सूर्य को अर्घ्य देता है उसकी सभी चिन्ताएँ सूर्य ले लेते हैं और उसके चरण में महालक्ष्मी वंदन करती हैं। त्रिकाल संध्या करने वाला दरिद्र और मूर्ख नहीं रहता। यदि कोई ब्राह्मण अति मूर्ख हो तो समझना चाहिए कि उसे सूर्य नारायण का श्राप हुआ है।

शिशुपाल बारात लेकर आया था। जरासंध दन्तवक्त्र इत्यादि अनेक राजा उसके साथ थे। वहाँ पहुँचने पर उसे समाचार मिला कि श्रीकृष्ण आए हुए हैं। यह सुनकर शिशुपाल घबरा उठा अति कामी बहुत डरपोक होता है। शिशुपाल रोने लगा। जरासंध उसे समझाने लगा, तू क्यों घबरा रहा है। हम लोग तुम्हारी सहायता के लिए हैं। वह अकेला आया हुआ है। मैंने उसे एकबार हरा दिया है। तू कोई चिन्ता मत कर।

वहाँ रुक्मी आया और बोला, ''तुम जरा भी चिन्ता मत करना। मैंने ऐसी व्यवस्था की है कि राजकन्या के पास कोई चिड़िया भी नहीं फड़क सकती। बड़े-बड़े पहलवान घेरा बनाकर उसके साथ चलने वाले हैं। पार्वती के मन्दिर तक खुली तलवार से पहरे की व्यवस्था की गई है।

सोलह सखियों ने रुक्मिणीजी को सोने के पाटले पर बैठाकर मांगलिक स्नान कराया और उनका सुन्दर श्रृंगार किया। रुक्मिणीजी प्रतिदिन अपने महल में तुलसीजी और बालकृष्णलाल की सेवा करती हैं और उनकी प्रदक्षिणा करती हैं। रुक्मिणीजी अपने पिताजी को वंदन करती हैं। उनके पिता आशीर्वाद देते हैं कि यह कन्या जिसके घर जाएगी वह बहुत सुखी होगा। ऐसा इस कन्या का योग है।''

माता-पिता को वन्दन कर रुक्मिणीजी आगे बढ़ती हैं। वे द्वार तक पहुँचती हैं। उस समय उन्हें कुछ याद आया और तुरन्त लौट पड़ीं। उन्होंने अन्दर जाकर अपनी माता के चरण पकड़े। माता ने पुत्री को उठा लिया और कहा, 'बेटी, तू क्यों दुबारा वन्दन करती है?' रुक्मिणीजी विचार करती हैं कि पूजा करने के बाद तो मैं द्वारका जाऊँगी। मुझे अब माँ के घर जल्दी नहीं आना है। इसलिए वह बारम्बार माँ की वंदना करती है। श्रीरुक्मिणीजी माता-पिता का आशीर्वाद प्राप्त कर आगे बढ़ती हैं। उनके दाहिने आठ सखियाँ हैं और बाँए आठ सखियाँ हैं। वे सखियों के साथ धीरे-धीरे चलती हैं।

पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं

उनकी चाल हँस के समान है। देश-विदेश के राजा रुक्मिणीजी को देखने के लिए एकत्र हुए हैं। सब पहलवान घेरा बनाकर रुक्मिणीजी को ले जा रहे थे। इसीलिये राजाओं को रुक्मिणीजी के दर्शन से वंचित होना पड़ा। राजा लोग अब पार्वतीजी के मन्दिर के पास जाकर खड़े हो गये हैं। उनकी इच्छा है कि पार्वतीजी के दर्शन से लौटती हुई रुक्मिणीजी के दर्शन करें। पार्वतीजी का वह मन्दिर आज भी वहाँ मौजूद है।

रुक्मिणीजी ने पार्वती की पूजा की और उनके चरणों पर अपना मस्तक रख कर कहा कि हे अम्बे, मुझे पति के रूप में श्रीकृष्ण मिलें। अम्बाजी के गले में सुन्दर पुष्पों की एक माला थी। वह एकदम सरक कर रुक्मिणीजी के माथे पर गिर पड़ी। रुक्मिणीजी ने ब्राह्मणों को दान दिया और मन्दिर के बाहर आईं। वे ऊपर से धीरे-धीरे मन्दिर की सीढ़ियाँ उतरने लगीं। राजा लोग उन्हें आँख फाड़-फाड़कर देखने लगे। वे कामान्ध थे, मोहान्ध थे। उनकी आँखों में काम था और मन में पाप था। वे बोल उठे अरे यह तो अति सुन्दर है। शिशुपाल बड़ा भाग्यशाली है। रुक्मिणीजी

को यह ढंग पसन्द नहीं आया। वे सोचने लगीं कि मैं तो जगत् की जननी हूँ। ये सब मेरे बालक हैं। ये मुझे काम-भाव से देखते हैं।

श्रीमान का अर्थ लक्ष्मीपुत्र है। यह जीव लक्ष्मी का पुत्र है। यदि लक्ष्मी को माता मान कर उन्हें घर में रखोगे ते उनकी तुम पर कृपा होगी। यदि कोई जीव लक्ष्मी का पति होने जाए, तो वह उसे थप्पड़ मारेगी। रुक्मिणीजी को कुछ क्रोध आ गया। उनकी आँखों से तेज प्रकट हो गया, जिसे श्रीकृष्ण को छोड़कर कोई दूसरा नहीं सहन कर सकता। वह तेज राजाओं से सहन नहीं हुआ। अति तेज से जीव को मूर्छा आ जाती है। राजाओं को मूर्छा आ गई।

उस समय श्रीकृष्ण के सारथी ने अपने घोड़ों को इशारा किया। घोड़े इतने गतिवान थे कि इशारा पाते ही उन्होंने रथ कुदा दिया। रुक्मिणीजी ने वह रथ देखा और उस पर फहराती गरुड़ ध्वजा देखी। वे दौड़ती हुई उस ओर गईं। प्रभु ने अपना हाथ बढ़ाया और रुक्मिणीजी का हाथ पकड़कर उन्हें रथ में बैठा लिया। वे द्वारका की ओर चल पड़े।

धरती पर गिरे हुए राजा खड़े हुए। वे अपने कपड़े पर पड़ी धूल झाड़ने लगे और कहने लगे, कृष्ण रुक्मिणी को ले गया। अभी कोई बहुत देर नहीं हुई है। उन्होंने अपनी सेना को हुक्म दिया। सब मिलकर कृष्ण से लड़ने को तैयार हो गये।

इस ओर दाऊजी महाराज को रात्रिकाल में द्वारका में यह खबर मिली। इन दोनों भाइयों में कितना प्रेम था? दोनों साथ भोजन करते हैं। बलरामजी पाटल पर बैठकर श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रहे हैं और सोच रहे हैं कि अभी तक श्रीकृष्ण क्यों नहीं आए। उन्हें यह खबर मिली कि श्रीकृष्ण जल्दी में रथ पर बैठकर कहीं गए हैं। वे विचार में पड़े कि मेरा कन्हैया बहुत संकोची है। उसने मुझसे भी कुछ नहीं कहा और निकल पड़ा। वहाँ पर राजा लोग उससे युद्ध करेंगे। उन्होंने रात में ही सेना के साथ विदर्भ नगरी की ओर प्रस्थान किया। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि राजा लोग लड़ने को तैयार हैं। वहाँ पहुँचकर दाऊजी ने ऐसा पराक्रम दिखाया कि हल से खींचकर और मूसल से मारकर उनकी सारी सेना छिन्न-भिन्न कर दी। सभी राजा घबरा उठे कि यह दाऊजी है या ऊपर से काल उतरकर आया है। सभी राजा वहाँ से भाग खड़े हुए।

रुक्मी भी लड़ने आया था। प्रभु ने उसे रथ के स्तम्भ से बाँध दिया। रास्ते में श्रीकृष्ण और बलदेवजी मिले। दाऊजी लड़ने में बड़े वीर हैं और व्यवहार में भी कुशल हैं। उन्होंने विचार किया कि विवाह होने के बाद दो भाइयों का प्रेम कम हो जाता है। दोनों की पत्नियों के कारण अन्दर-अन्दर खटपट शुरू हो जाती है। मुझे भाई से अलग नहीं रहना है और एक ही घर में रहना है। रामायण और महाभारत का आदर्श है एक ही कुटुम्ब में, यदि संयुक्त कुटुम्ब में रहना हो तो भाभी

के साथ स्नेह रखना चाहिए और भाभी के पीहर वालों के साथ भी स्नेह दिखाना चाहिए। दाऊजी ने रुक्मी को छोड़ दिया और श्रीकृष्ण को डाँट दिया कि चाहे कुछ हो यह अपना सम्बन्धी है। इसे तुमने क्यों बाँधा? यह रुक्मिणीजी का बड़ा भाई है। दाऊजी ने रुक्मी को वस्त्र आभूषण दिया और सम्मान किया। अपने दोनों हाथ भी जोड़े। दाऊजी ने रुक्मी के साथ वेदान्त की चर्चा की, 'यह सब तो माया का खेल है। क्या हार? क्या जीत? हमारी जीत तुम्हारी ही जीत है। हम लोग अलग कहाँ हैं? ज्ञानी पुरुष जीत होने पर खुश नहीं होते, शाँत रहते हैं।' दाऊजी ने वेदान्त का उपदेश किया और ज्ञान दिया। यह देखकर रुक्मिणीजी दाऊजी को वन्दन करती हैं। पहले दिन ही रुक्मिणीजी के मन में दाऊजी ने प्रेम का ऐसा बीजारोपण किया।

श्रीकृष्ण-बलराम रुक्मिणीजी के साथ द्वारका आए नारदजी ने मुहूर्त बताया माघ महीना, शुक्ल पक्ष, पंचमी तिथि को विवाह हो। प्रभु ने उद्धवजी से कहा, "उद्धव, मेरे माता-पिता गोकुल में हैं। माता जब तक द्वारका नहीं आएगी, तब तक कन्हैया कुंवारा ही रहेगा।" उद्धवजी ने नन्दबाबा को पत्र लिखा। वह पत्र गोकुल में पहुँचा है। जिस दिन से श्रीकृष्ण ने गोकुल छोड़ा है, उस दिन से नन्दबाबा और यशोदा ने अनाज छोड़ दिया है। सखियों के बहुत आग्रह करने पर यशोदाजी थोड़ा दूध पी लेती हैं। उन्हें रात को नींद नहीं आती और दिन को भूख नहीं लगती। पति-पत्नी बहुत दुर्बल हो गए हैं। उनको सारे दिन कन्हैया की याद आती है और वे लाला की बात करते रहते हैं। कभी-कभी यशोदा माँ प्रेम में इतनी तन्मय हो जाती हैं कि श्रीकृष्ण का लगातार स्मरण करने से पालने में कन्हैया के सोते रहने का भ्रम होता है। दोनों सारी रात जागते हैं और पालना हिलाते हुए कहते हैं कि सूर्योदय हो गया। अभी कन्हैया क्यों नहीं उठता? वे पालना देखते हैं तो खाली दिखाई देता है। कभी-कभी उन्हें लाला की बाँसुरी सुनाई देती है। जब यशोदा स्नान करने जाती हैं, तब उन्हें ऐसा भ्रम होता है कि मेरा लाला छुम-छुम करता हुआ दौड़कर आ रहा है। यशोदाजी लाला को उठाने जाती हैं।

यशोदाजी ने नन्दबाबा को अनेक बार ठपका दिया और कहा, "मुझे ऐसा लगता है कि हमारे घर में लाला को कष्ट हुआ। तुम उसे बार-बार गायों के पीछे क्यों भेजते थे? मुझसे कन्हैया कहता था कि माँ, ये गायें बहुत दौड़ाती हैं। मेरे घर में लाला को बहुत त्रास हुआ। इसी से वह गोकुल को भूल गया। कन्हैया यहाँ से जाने के बाद निष्ठुर हो गया। लेकिन यह कहना भी ठीक नहीं है। वह तो बहुत प्रेमालु है। मुझे ऐसा लगता है कि किसी स्त्री ने लाला पर जादू किया होगा। कोई मेरे लाला से जाकर कहे कि तेरी माता रो रही है, तो मेरा कन्हैया दौड़कर आएगा। लेकिन द्वारका तो यहाँ से बहुत दूर है। वहाँ तक खबर पहुँचाने कौन जाएगा?"

नन्दबाबा यशोदा से कहते हैं, ''तू मुझे ठपका देती है, किन्तु कन्हैया मुझसे कहता है कि मैं गायों के लिए आया हूँ, इसी से मैं उसे गाय चराने भेजता था। कन्हैया जब तक मेरे घर में था तब मेरी गायें हृष्ट पुष्ट थीं। अब तो गायें खली खाती नहीं और पानी पीतीं नहीं। मुझसे यह दुर्दशा नहीं देखी जाती। तूने लाला को बाँधा था इसीलिए वह गुस्सा हो गया है।''

इस प्रकार पति-पत्नी लाला की बात करने में तन्मय थे उसी समय द्वारका से पत्र आया, पत्र देखकर यशोदा माता कुछ घबरा गईं। वे सोचने लगीं कि पत्र में क्या लिखा होगा? मेरे लाला को कुछ हुआ तो नहीं है? नन्दबाबा पत्र पढ़ते हैं। उसमें लिखा है, ''एक अति सुन्दर कन्या के साथ कन्हैया का विवाह होने वाला है। उसने विशेष रूप से लिखाया है कि यदि मेरी माँ द्वारका नहीं आएगी तो मुझे विवाह नहीं करना है।'' यह सुनकर यशोदाजी को बहुत आनन्द हुआ। उन्होंने सोचा कि द्वारका तो यहाँ से बहुत दूर है। हम लोग ब्रज छोड़कर कहीं गए नहीं है। मुझे अपने लाला को देखना है। उसे देखे बिना मुझे मरना नहीं है; किन्तु इस समय वह यहाँ आने वाला नहीं है और हम वहाँ जाने वाले नहीं हैं। फिर भी नन्दबाबा यशोदा ने निश्चय किया कि जिस दिन लाला का विवाह होगा उस दिन सारे गाँव वालों को भोजन कराऊँगा।

नन्दबाबा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। विवाह का समय आ गया। श्रीकृष्ण बलरामजी से कहते हैं, ''बड़े भाई, मैंने ऐसा सुना है कि माता बहुत याद करती है। चलिए, हम दोनों उसके पास चलें।'' दोनों भाई रथ पर सवार हो गये। यशोदा माता को कन्हैया बहुत याद आता है। वे सोचती हैं कि अब कन्हैया एक राजा हो गया है। आज मुझे अच्छा शकुन हो रहा है। वह जरूर आएगा। उनके आँगन में कौआ 'का-का' करता है। जब भक्ति बढ़ती है, तब अभिमान नष्ट हो जाता है। यशोदा माता कौए से बात करती हैं, ''आज यदि मेरा कन्हैया आएगा, तो मैं तेरी पूजा करूँगी।'' उसी समय श्रीकृष्ण और बलराम का रथ वहाँ आ पहुँचा। दोनों ने रथ से उतरकर यशोदा माता को वन्दन किया। माता को देखते ही दोनों के नेत्रों में आँसू आ गए। उन्होंने कहा, ''माँ-माँ, यहाँ से जाने के बाद मैं ऐसा उलझ गया कि वापस नहीं आ सका। बहुत देर से यहाँ आया। मुझे क्षमा करो।'' आज यशोदा का आनन्द हृदय में नहीं समाता वे बोल उठीं, ''बेटा अब तू कितना बड़ा हो गया है। कैसा दिखाई देता है?'' उन्होंने दोनों को पाटले पर बैठाकर नजर उतारी गोपियों को यह समाचार मिला है। दर्शन करने के लिए दौड़ पड़ीं। उन्हें खूब आनन्द हुआ है। श्रीकृष्ण ने कहा, ''माँ, यदि तू विवाह में नहीं आएगी, तो मैं विवाह नहीं करूँगा। मैं तुझे लेने के लिए ही आया हूँ।''

श्रीकृष्ण द्वारका की अति सम्पत्ति में अत्यन्त सावधान हैं। वे ब्रजवासियों का प्रेम नहीं भूले हैं। वे गोपियों और अन्य ब्रजवासियों को लेकर द्वारका आए हैं। द्वारका के पास गोपी तालाब है।

उसके पास ही गोपियों के निवास स्थान हैं। श्रीमहाप्रभु ने भागवत का पाठ किया है। विवाह वसन्त पंचमी के दिन माधवपुर में हुआ। उस दिन परमात्मा सोने के सिंहासन पर विराजमान हुए। मधुपर्क विधि करके उन्होंने रुक्मिणीजी को महल में ले लिया। ब्रजवासियों ने अन्तर्पट धारण कर कहा–

कस्तूरी तिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभम्,
नासाग्रे चरमौक्तिकं करतले वेणुः करे कंकणम्।
सर्वांगे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावलिः,
गोपस्त्रिपरिवेष्टितो विजयते कुर्यात् सदा मंगलम्।।

लक्ष्मीनारायण का जयजयकार हुआ। जहाँ साक्षात् महालक्ष्मी का शुभागमन हुआ है, वहाँ के ऐश्वर्य का वर्णन कैसे किया जा सकता है? वहाँ श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ सुवर्ण के सिंहासन पर विराजमान हैं। श्रीकृष्ण के साथ गोपियों ने रुक्मिणीजी को देखा तो वे बहुत आनन्दित हुईं। उनका ध्यान करते-करते वे परमात्मा के चरणों में लीन हो गईं। गोपी के श्रीअंग की मिट्टी का गोपी चन्दन हुआ।

रुक्मिणीजी जब से द्वारका आईं, तब से नगरी की शोभा खूब बढ़ गई है। द्वारका सोने की बनी है। वैष्णव कहते हैं, 'ये रुक्मिणीजी राजकन्या नहीं है। ये साक्षात् महालक्ष्मी हैं। श्रीकृष्ण आदिनारायण हैं। हम सब लक्ष्मीनारायण का ही दर्शन करते हैं।'

परमात्मा श्रीकृष्ण की आह्लादिका शक्ति का नाम ही श्रीरुक्मिणीजी है। जीव को ईश्वर का वियोग हुआ है। भगवान् से बिछुड़े हुए जीवों को उनका संयोग सिद्ध कराने वाली उनकी कृपा शक्ति का नाम ही रुक्मिणीजी है। वे सारे जीवों की माता हैं। वे दया की मूर्ति है। रुक्मिणीजी को जीवन में कभी क्रोध नहीं आया है। भागवत में ऐस लिखा है कि भगवान् श्रीकृष्ण को कभी-कभी क्रोध आता है, किन्तु श्रीरुक्मिणीजी को जीवन में कभी क्रोध नहीं आया।

भगवान् कृपापूर्वक मनुष्य को भक्ति करने का अवसर देते हैं, वे मनुष्य को भक्ति करने के लिए सुख देते हैं और सभी अनुकूलता करते हैं। इसका कारण यह है कि परमात्मा यह मानते हैं कि इससे मनुष्य अधिक भक्ति करेगा। लेकिन यह जीव जब सभी अनुकूलताएँ पाकर भी सुखभोगी बन जाता है और सब प्रकार की अनुकूलता में भी पाप करता है तब भगवान् को बुरा लगता है। वे सोचते हैं, मैंने अधिक भक्ति करने के लिए तुझे सारी अनुकूलता दे दी थी और तुझे भक्ति करने का एक मौका दिया था। तूने यह मौका खो दिया।' जो मौका खो देता है, उसकी उम्र घट जाती है। भगवान् कृपा कर जीव को भक्ति करने का मौक देते हैं, किन्तु यह जीव वह मौका

खो देता है। उस समय भगवान् को कुछ क्रोध भी आ जाता है। तब वे जीव को दण्ड देते हैं। ऐसे समय पर रुक्मिणीजी भगवान् को समझाती हैं–''दण्ड न दीजिए, दया कीजिएं।''

भगवान् आवेश में आकर कहते हैं, यह जीव दुष्ट है। आज तक मैंने इस पर बड़ी दया की। अब यह दया करने योग्य नहीं है।

उस समय रुक्मिणीजी समझाती हैं 'यह जीव योग्य नहीं है किन्तु आप तो योग्य हैं, महान् हैं। यदि आप इसे दण्ड देंगे तो यह कहाँ जायेगा? मुझे इस पर दया आती है।' जगन्माता होने के कारण रुक्मिणीजी को सब पर दया ही आती है। वे जीव को ब्रह्म-सम्बन्ध प्रदान करती हैं।

रुक्मिणीजी महालक्ष्मीजी का स्वरूप हैं। हमारे शास्त्रों में लक्ष्मी के तीन भेद किये गए हैं– अलक्ष्मी, लक्ष्मी और महालक्ष्मी। पाप का पैसा अलक्ष्मी है। अलक्ष्मी का वाहन उल्लू है। जो धन रुला-रुलाकर बाहर जाता है, उसे ऐसा समझो कि अधर्म अथवा पाप से घर में आया था। लक्ष्मी एक वह धन है, जो धर्म या अधर्म से घर में आती है। जो धन भगवद् सेवा में और परोपकार में थोड़ा जाए और भोग-विलास में भी थोड़ा जाए। वह लक्ष्मी का स्वरूप है। वह धन महालक्ष्मी का स्वरूप है, जो धर्म और नीति से घर में आता है। वही धन धर्म का है। महालक्ष्मी का वाहन गरुड़ है। श्री रुक्मिणीजी महालक्ष्मी स्वरूप हैं।

जीव पुत्र है। लक्ष्मी उसकी माता है और नारायण उसके पिता हैं। लक्ष्मी का विवेक से सदुपयोग करो। उसका दुरुपयोग न करो। पैसा कमाना बहुत मुश्किल नहीं है, बल्कि हाथ में आए हुए पैसे का विवेक पूर्वक सदुपयोग करना बहुत मुश्किल है। भगवान् शंकर स्वामी ने अर्थ को अनर्थ रूप माना है। पैसा विष है और पैसा अमृत भी है। वह लक्ष्मीमाता का स्वरूप है। यदि पैसा नीति से घर में आए और उसका सदुपयोग हो, तो वह जीव को परमात्मा के चरणों में ले जाता है। लक्ष्मी माता है। माता का उपयोग महत्त्व पूर्ण है। लक्ष्मी उपयोग के लिए है। वह उपभोग के लिए नहीं है।

कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि यह सब मैंने कमाया है। फिर अधिक सुख क्यों न भोगूँ? यह ठीक नहीं है। सुख उतना ही भोगना चाहिए जिसे भोगने से भगवान् न भूले और भगवान का स्मरण हो, उसकी याद आए। अति सुख भोगने से मन बिगड़ता है। लक्ष्मी भोग का साधन नहीं है, अपितु भक्ति का साधन है।

कोई भी जीव लक्ष्मी का पति नहीं हो सकता। लक्ष्मी के पति तो केवल एक नारायण ही हैं। नारायण को छोड़कर न तो कोई लक्ष्मी का पति हुआ है और न हो सकेगा। आगे यह कथा बताई गई है कि रुक्मिणीजी का अलौकिक सौन्दर्य देखने वाले राजा धरती पर पछाड़ खाकर गिर

पड़े। वे लक्ष्मी को काम-भाव से देखने लगे। इसलिए उनका पतन हुआ। यदि कोई जीव लक्ष्मी का उपयोग करने जाता है, तो उसे लक्ष्मी गड्ढे में धकेल देती है। यदि लक्ष्मी को माता मानकर घर में रखोगे तो वह तुम्हें नारायण की गोद में बैठाएगी।

यह जीव लक्ष्मी पुत्र है। बालक को सब कुछ मिलता है। मालिक को सब कुछ नहीं मिलता। इसलिए बालक होने में ही मजा है। कल्पना करो कि किसी माता को मन्दिर में पेड़े का प्रसाद मिला। वह प्रसाद लेकर माता घर में आती है। घर में तीन-चार वर्ष का एक बालक है। वह दौड़ता-दौड़ता अपनी माता के पास आता है। माता ने वह प्रसाद बालक को दे दिया बालक वह पेड़ा खा गया। यह देखकर माता पिता प्रसन्न हो उठे। वे ऐसा मानते हैं कि पुत्र के पेट में जो प्रसाद गया है, वह हमारे ही पेट में गया है। यदि घर में बालक न हो और केवल पति-पत्नी ही हों, तो क्या पति को पूरा पेड़ा मिलने वाला है? पत्नी कहेगी, ''प्रसादी में पेड़ा मिला है। आधा तुम खाओ, आधा मैं खाऊँगी।'' इसी प्रकार पति को आधा पेड़ा ही मिलेगा। यों पुत्र को पूरा पेड़ा मिल जाता है। इसलिए बालक होने में ही मजा है। मलिक होने की इच्छा मत रखो।

सूतजी सावधान करते हैं कि रुक्मिणी स्वयंवर से ऐसे अनेक भाव निकलते हैं।

७४- प्रभु का गृहस्थाश्रम

कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग् रुद्रमन्युना।
देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत॥ (१०-५५-१)

रुक्मिणीजी ने प्रद्युम्नलाल को जन्म दिया। प्रद्युम्नलाल ने शंबासुर का विनाश किया।

भगवान् का दूसरा विवाह सत्राजीत की कन्या सत्यभामाजी से हुआ। उनका तीसरा विवाह उस समय जामवंती से हुआ, जिस समय वे स्यमंतक मणि ढूढ़ने के लिए गए थे। श्रीयमुनाजी के अंश से प्रकट हुई कालिन्दीजी के साथ उनका चौथा विवाह हुआ है। पाँचवाँ विवाह मित्रविन्दाजी के साथ और छठा विवाह नाग्नजीतीजी के साथ हुआ। उनका सातवाँ विवाह सत्याजी के साथ और आठवाँ विवाह लक्ष्मणांजी के साथ हुआ है। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की आठ पटरानियाँ हैं।

गीता के सातवें अध्याय में अष्टधा प्रकृति की कथा आती है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन बुद्धि और अहंकार-यह अष्टधा प्रकृति है। यह जीव जब प्रकृति का दास बनता है तब बहुत दुःखी होता है। प्रकृति का उपयोग भक्ति के लिए करो। आप सब वैष्णव हैं, प्रभुजी के प्यारे हैं और परमात्मा के दास हैं। प्रकृति का उपयोग करते समय सावधान रहना है कि मैं प्रकृति का गुलाम नहीं हूँ बल्कि परमात्मा का दास हूँ। जो प्रकृति के आधीन बनता है उसे प्रकृति

रुलाती है और ज़ो अपने को परमात्मा का दास समझता है तथा परमात्मा को याद करते हुए प्रकृति का उपयोग करता है तो प्रकृति उस जीव को भक्ति पाने में सहायता करती है। जीव प्रकृति पर विजय प्राप्त कर सुखी होता है। प्रकृति अर्थात् स्वभाव। मनुष्य के दुःख का कारण उसका स्वभाव है। अनेक बार मनुष्य अपना दोष तो समझता है, किन्तु स्वभाव के वशीभूत होकर काम करता है। मनुष्य अपना स्वभाव सुधार नहीं सकता। कथा सुनने के बाद यदि थोड़ा भी स्वभाव सुधरे तो मानना कि कथा अच्छी तरह सुनी है। कथा सुनने के बाद नया जन्म होता है, किए गए पाप के लिए मन से पश्चाताप होता है, पाप छोड़ने की इच्छा होती है और प्रभु में प्रेम होता है। स्वभाव सुधरने पर मनुष्य को मुक्ति भी सुलभ होती है।

अष्टधा प्रकृति श्रीकृष्ण की दासी है। अष्ट पटरानी हैं श्रीकृष्ण प्रकृति के अधीन नहीं होते, बल्कि प्रकृति परमात्मा की इच्छानुसार काम करती है। जब कि जीव प्रकृति के अधीन होकर काम करता हैं। जीव जो करता है, उसका नाम क्रिया है और परमात्मा जो काम करता है उसे लीला कहते है। क्रिया बंधन देने वाली है और लीला बंधन से मुक्त कराने वाली है। तुम अपने स्वरूप को मत भूलो।

इस स्कन्ध के एक अध्याय में सोलह हजार कन्याओं के साथ श्रीकृष्ण के विवाह की बात आती है। ये सोलह हजार राजकन्याएँ वेद के अभिमानी देवता हैं। वेद केवल शब्दरूप हैं ऐसा मत मानो। प्रत्येक वेद-मंत्र का अभिमानी एक देवता होता है, ऋषि होता है, व छन्द होता है। देव, ऋषि और छंद का ज्ञान होने पर ही वेद-मंत्र सफल होता है। आजकल कोई भी वेद-मंत्र बोलने लगता है, किन्तु बिना इन बातों को जाने वह सफल किस प्रकार हो सकता है? तुम उससे पूछो कि जो मंत्र बोल रहे हो उसका ऋषि कौन हैं? उसका छंद कौन है? और उसका देव कौन है? छंद, ऋषि और देवता इन तीनों का अच्छी तरह ज्ञान हुए बिना वेद-मंत्र फलदायी नहीं होता। कभी-कभी तो वह विपरीत फल देता है।

वेद परमात्मा का वर्णन करते-करते थक गए, किन्तु उनको परमात्मा का अनुभव नहीं हुआ-''नायं आत्मा प्रवचनेन लभ्यः।'' केवल भोजन का वर्णन करने से तृप्ति नहीं होती, भोजन करने से ही तृप्ति होती है। परमात्मा के दर्शन करना भले ही थोड़ा सरल हो, किन्तु परमात्मा का अनुभव करना बहुत कठिन हैं। परमात्मा के दर्शन से बहुत लाभ नहीं है, परमात्मा का अनुभव करो।

यदि राजमहल में कोई राजा बैठा हो, तो उसे देखने से हमें क्या मिला? राजा के साथ कुछ प्रीति होनी चाहिए। यदि राजा के साथ कुछ प्रीति होगी, तो ही लाभ होगा, मन्दिर में भगवान्

विराजमान हैं। उन्हें देखने से कोई लाभ नहीं होना, न उनके दर्शन से बहुत लाभ ही है। यदि परमात्मा के साथ प्रेम करो, प्रीति करो तो ही लाभ है।

किसी ने कहा कि इस धरती के अन्दर सोना है, किन्तु इतना जानने से कोई लाभ नहीं होता। इसके बाद गड्ढा खोदने पर सोना दिखाई दिया, किन्तु सरकार को इसकी खबर पड़ी इसलिए सरकार के कर्मचारी आए और धरती का धन कहकर उसे ले गए। तुम जानते थे तुमने गड्ढा भी खोदा और तुम्हें सोना भी दिखाई दिया। फिर भी तुमको कुछ मिला नहीं। इस प्रकार धन दिखाई देने से कोई लाभ नहीं। यदि वह तुम्हारे हाथ में आए, तो ही लाभ है। अरे, धन हाथ में आने पर भी लाभ नहीं मिलता। यदि सेठ का रुपया मुनीम के हाथ में हो तो वह जानता है कि यह पैसा मेरा नहीं है, सेठ का है। मुझे तो सेठ को हिसाब देना है। मुझे तो जो वेतन मिलता है, वही मेरा है। इस प्रकार तुम्हारे हाथ में रुपया आए तो भी लाभ नहीं है, बल्कि रुपया तुम्हारा हो तो ही लाभ है इसलिए परमात्मा के साथ ऐसा प्रेम करो कि वह तुम्हारा बन जाए। केवल भगवान् के दर्शन से लाभ नहीं होता, बल्कि उसका अनुभव करने से लाभ होता है। महापुरुष लोग परमात्मा का अनुभव करते हैं। जो परमात्मा बैकुण्ठ में है और जो परमात्मा मन्दिर में है वही तुम्हारे हृदय में विराजमान है। आत्मस्वरूप में परमात्मा का दर्शन ही अनुभव कहा जाता है।

वेद के अभिमानी देवता ब्रह्म का वर्णन करते-करते थक गए, किन्तु ब्रह्मानुभव नहीं हुआ। इसीलिए वेद के अभिमानी देवता ब्रह्म सम्बन्ध स्थापित कर परमात्मा का अनुभव करने के लिए राज-कन्याओं के रूप में प्रकट हुए।

हमारे शास्त्रों में वर्णन है कि वेद-मन्त्र एक लाख हैं। उसमें से चार हजार मन्त्र ज्ञानकांड के हैं। सोलह हजार मन्त्र भक्ति उपासना कांड के हैं और शेष अस्सी हजार मन्त्र कर्मकाण्ड के हैं। वेद में कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनों का वर्णन है। जीवन में इन तीनों की आवश्यकता है। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि ज्ञान या कर्म की आवश्यकता नहीं। ये सभी भूल करते हैं।

कोई मिष्ठान्न बनाना हो तो तीन वस्तुएँ एकत्र करनी पड़ती है। एक या दो से मिष्ठान्न नहीं बन सकता है। लड्डू में मुख्य क्या है? शायद कोई मनुष्य ऐसा माने कि लड्डू में घी की कीमत अधिक होती है इसलिए घी ही मुख्य है और आटे की कीमत कम होती है इसलिए आटा गौण है परन्तु आटा गौण नहीं है। यदि आटा न हो तो लड्डू बनें ही नहीं। केवल घी और चीनी का गोला नहीं खाया जा सकता। इसी प्रकार जीवन में भी कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनों की ही आवश्यकता है। इन तीनों में कोई गौण नहीं।

सत्कर्म से चित्त की शुद्धि होती है–'चित्तस्य शुद्धये कर्मः।' जिस प्रकार वर्तन पर जंग चढ़ता है उसी प्रकार मन पर अनेक जन्मों का जंग चढ़ा हुआ है। मन का यह जंग साफ करने के लिए अपने मन को किसी भी सत्कर्म में पिरो दो। सत्कर्म से कभी सन्तोष मत मानना। एक सत्कर्म पूरा होने पर दूसरा शुरू करो। जब तक अतिशय थकावट न लग जाए, तब तक सत्कर्म चालू रखो। भक्ति से मन एकाग्र होता है। प्रश्न है कि भक्ति किस प्रकार की जाती है? भगवान् के स्वरूप में भगवान् के नाम में मन को एकाग्र करने और मन को भगवान के चरणों में स्थिर करने के साधन का नाम भक्ति है। ज्ञान से परमात्मा के व्यापक स्वरूप का अनुभव होता है। जीवन में तीनों की आवश्यकता है। कुछ लोग कहते हैं कि गीताज़ी में कर्मयोग मुख्य है। कुछ लोग ज्ञानयोग मुख्य बताते हैं। कुछ लोग भक्तियोग को प्रधान मानते हैं। इन तीनों में कोई गौण नहीं है। गीताजी के प्रथम छह अध्याय कर्मयोग के हैं। सातवें अध्याय से बारहवें अध्याय तक भक्ति योग है। तेरहवें से अठारहवें अध्याय तक ज्ञानयोग है। ये तीनों ही मुख्य हैं। इनमें से कोई गौण नहीं है। यद्यपि वेद में कर्मकाण्ड के अस्सी हजार मन्त्र हैं, भक्तिकाण्ड के सोलह हजार मन्त्र है और ज्ञानकाण्ड के चार हजार मन्त्र हैं। ज्ञानकाण्ड बहुत कम है। विरक्त साधु-संन्यासी महात्मा ही ज्ञानकाण्ड पर विचार करते हैं। वेद की समाप्ति उपनिषद् में होती है। उपनिषद् आरण्यक में आता है। वेद के तीन भाग हैं–(१) संहिता, (२) ब्राह्मण और (३) आरण्यक। संहिता मन्त्र पर है और उस मन्त्र का उपयोग यज्ञ में किस प्रकार करना चाहिए, इसका वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थ में है। तीसरा भाग आरण्यक है। ऋषिमुनि अरण्य में रहकर कन्दमूल, फल खाकर जिस ज्ञान-तत्व पर विचार करते हैं, उसे आरण्यक कहते हैं। बंगले में रहकर विलासी जीवन गुजारना और उपनिषद् पढ़ना उचित नहीं है। ज्ञान एक पारा है, जो वैराग्य के पात्र के बिना नहीं टिक सकता। साधारणजन को ज्ञान का अधिकार ही नहीं दिया गया है।

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं, राजन्! वेद में भक्तियोग के मन्त्र सोलह हजार हैं। सोलह हजार वेद मन्त्रों के अभिमानी देवता परमात्मा के साथ एकाकार होने के लिए ब्रह्मानुभव करने के लिए, राजकन्याओं के स्वरूप में प्रकट हुए हैं। इन राजकन्याओं को भौमासुर ने बन्दी बना लिया था। भौमासुर शब्द पर थोड़ा विचार करें। 'भौम' का अर्थ है शरीर, 'असु' का अर्थ है प्राण और 'र' का अर्थ रमण करना है। जो शरीर के साथ रमण करने में सुख मानता है, वह भौमासुर है। उसकी नीयत अच्छी नहीं है। वह राजकन्याओं को कैद में रखता है। यदि वेदमन्त्र विलासी के हाथ में आ जाए, तो वे लोग उसका अर्थ अपनी वासना के अनुसार करते हैं। वेदों को भोग पसन्द नहीं है। वेद का तात्पर्य त्याग में निहित है। निवृत्तिनिष्ठ वेदों में संसार-सुख भोगने की आज्ञा दी

गई है–'ऋतौ भार्यां उपेयात्।' वेद भगवान् जानते हैं कि जीव इस संसार को एकदम छोड़ नहीं सकता। इसीलिए उसने कहा है 'धर्म की मर्यादा में रहकर सुख भोगना चाहिए, किन्तु वेदों का तात्पर्य भोग में नहीं है, त्याग में है। वेदों को निवृत्ति इष्ट है। प्रवृत्ति केवल निवृत्ति का साधन है। जीवन केवल प्रवृत्ति के लिए नहीं है। मनुष्य प्रवृत्ति को एकदम छोड़ दे, यह भी इष्ट नहीं है। साधारण मनुष्य प्रवृत्ति छोड़ कर सारे दिन भक्ति नहीं कर सकता और यदि सारे दिन भक्ति न करे तो मन पाप करेगा। इसीलिए वेदों में वर्णन है कि प्रवृत्ति करो। फिर भी वेदों का लक्ष्य प्रवृत्ति नहीं है बल्कि निवृत्ति है–'त्यागेनैके अमृतं त्वमानशुः।' यदि वेदमन्त्र विलासी के हाथ में जाए तो वह अपनी वासना के अनुसार उसका अर्थ करता है कि वेद में भी ऐसा लिखा है।

एक सज्जन मुझसे कह रहे थे कि महाराज आप भले ही न मानें किन्तु गीताजी में भगवान् अर्जुन को समझाते हैं कि तू मजाकर। मैंने कहा 'भाई, मैं गीताजी का पाठ करता हूँ। मुझे उसमें ऐसा कोई श्लोक नहीं मिला है।' वे सज्जन बोले, 'आप जानते नहीं हैं। मैं आपको बताता हूँ। भगवान् ने कहा है–'सिद्धि भक्ति कर सजा।' यानी तू मजाकर, तुझे सिद्धि मिलेगी। विलासी लोग अपनी वासना के अनुसार उल्टा ही अर्थ निकालते हैं। राजकन्या स्वरूप इन वेदमन्त्रों के अभिमानी देवता भौमासुर के अधिकार में आ गए हैं।

भौमासुर की नीयत बिगड़ गई है। वह राजकन्याओं को कैद में रखता है। भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचे हैं। वे भौमासुर को मार डालते हैं और राजकन्याओं को कारागृह से छुड़ाते हैं। इन राजकन्याओं के साथ जगत् का कोई राजपुरुष इसलिए विवाह करने को तैयार नहीं हुआ कि भौमासुर के कारागृह में रह चुकी हैं। सभी इन्हें ग्रहण करने से इनकार करते हैं और इनका तिरस्कार करते हैं। भगवान् निराधार के आधार हैं। मनुष्य दुःख में कभी ऐसा सोचता है कि संसार में मेरा कोई नहीं है। उस समय भगवान् को यह बात बहुत बुरी लगती है। ईश्वर सबके हैं। वे चौबीस घण्टे तुम्हें देखते हैं। कुछ लोग मन्दिर में दो-तीन बार दर्शन करने जाते हैं तो ऐसा लगता है कि मैं खूब भक्ति करता हूँ, मन्दिर में चार बार दर्शन करने जाता हूँ। भगवान् कहते हैं, 'तुझे खबर नहीं है। तू चार बार दर्शन करता है, किन्तु मैं चौबीस घण्टे तेरा दर्शन करता हूँ।' ईश्वर सर्वकाल सबको देखता है। भगवान् सबके हैं। ऐसा न मानो कि मेरा कोई नहीं है। भगवान् तुम्हारे हैं, वे तुमको देखते हैं। फिर भी यह जीव ईश्वर को देखता नहीं है।

ये सोलह हजार राजकन्याएँ निराधार हो गई हैं और श्रीकृष्ण की शरण में आई हैं। प्रभु ने निश्चय किया है कि मैं इन राजकन्याओं के साथ में विवाह करूँगा। वे बेचारी अपना जीवन कैसे व्यतीत करेंगी? ये बहुत दुःखी हो गई हैं। प्रभु ने विचार किया कि रामावतार में मुझे ऐसी इच्छा

हुई कि अयोध्या की प्रजा मेरे लिये क्या कहती है? इसका पता लगाने के लिए मैंने अपने सेवकों को रात्रि में अयोध्या में भेजा। एक सेवक ने आकर मुझसे कहा कि सीताजी के लिए खराब बोलते हैं। यह सुनकर मुझे सीताजी का त्याग करना पड़ा। इससे सीतारामजी दुःखी हुए। जो यह सोचता है कि लोग मुझे क्या कहते हैं उसका मन अशान्त रहता है। यदि तुम्हारे लिए लोग अच्छा कहें तो उसे मत सुनना और जहाँ तुम्हारी प्रशंसा हो वहाँ मत बैठना। क्योंकि प्रशंसा सुनने से अभिमान बढ़ता है। अपनी निन्दा भी मत सुनना। लोगों के निन्दा करने से तुम्हारा कोई नुकसान नहीं है और प्रशंसा करने से कोई लाभ नहीं है। जगत् खराब है। इसमें कोई निन्दा करे या प्रशंसा करे तो यह दोनों खराब हैं। तुम्हें अपने मन को शाँत रखना हो तो इसकी परवाह मत करना कि लोग तुम्हारे लिए क्या कहते हैं?

प्रभु ने कृष्णावतार में निश्चय किया है कि लोग चाहे जो कुछ भी कहें; किन्तु मुझे जो उचित लगेगा वही करना है। यदि इन १६००० (सोलह हजार) राजकन्याओं के साथ विवाह करूँ तो कुछ लोग मेरी भी निन्दा करेंगे। वे भले निन्दा करें। ये सोलह हजार राजकन्याएँ बेचारी किसी प्रकार अपना जीवन निर्वाह करेंगी? श्रीकृष्ण महायोगेश्वर हैं। उन्होंने सोलह हजार मंडप खड़े कर दिये। सोलह हजार राजमहल तैयार करा दिये। श्रीकृष्ण के सोलह हजार स्वरूप भी प्रकट कर दिये। ग्रन्थों में तो यह वर्णन आता है कि यादवों के कुलगुरु गर्गाचार्य हैं। प्रत्येक विवाह में ब्राह्मण की आवश्यकता पड़ती है। हमारे भारत में जो विवाह होता है वह धर्म के लिए होता है; किन्तु विदेश के लोग जो विवाह करते हैं वह भोग के लिए करते हैं। विवाह में देव ब्राह्मण और अग्नि–इन तीनों की साक्षी होती है। इसलिए विवाह का भंग नहीं हो सकता। प्रत्येक विवाह में गर्गाचार्य की–पुरोहित महाराज की आवश्यकता होती है। बिना पुरोहित महाराज के विवाह नहीं हो सकता। प्रभु ने तो ऐसी लीला की श्रीकृष्ण के सोलह हजार स्वरूप प्रकट हुए, उसमें कोई आश्चर्य नहीं है, सोलह हजार गर्गाचार्यों की भी रचना की। प्रत्येक मंडप में गर्गाचार्य बैठे थे। उन्होंने एक ही शुभ मुहूर्त में सोलह हजार राजकन्याओं से विधिपूर्वक विवाह किया। इस प्रकार श्रीकृष्ण सोलह हजार रानियों के स्वामी बने।

श्रीकृष्ण सबको प्रसन्न रखते। वे इस बात का अधिक ध्यान रखतें कि घर के लोग दुःखी न हों और सब आनन्द में रहें। यदि तुम भी अपना आनन्द किसी स्त्री या पुरुष में न बाँधकर घर के सभी लोगों के साथ प्रेम करो तो तुम्हें भी परमात्मा आनन्द देंगे। आनन्द किसी पुरुष या स्त्री के पास नहीं होता। प्रभु ने गृहस्थ का धर्म समझाया है। वे सभी रानियों को सन्तुष्ट रखते हैं। वे रानियों से बाह्य रूप से प्रेम प्रकट करते हैं; किन्तु अन्दर से उनमें वैराग्य है। तुम्हें भी घर के लोगों

के साथ बाहर से प्रेम दिखाना चाहिए और अन्दर से ईश्वर के साथ प्रेम करना चाहिए। क्योंकि कोई मनुष्य अन्दर से प्रेम करने योग्य नहीं है। श्रीकृष्ण में वैराग्य परिपूर्ण है। वे सबको सन्तुष्ट रखते हैं; किन्तु किसी रानी में आसक्त नहीं हैं। गृहस्थाश्रम में पति-पत्नी शुभ भाव से प्रेम करें किन्तु शरीर में आसक्त न हों। क्योंकि यह मल-मूत्र से भरा हुआ शरीर अधिक प्रेम करने लायक नहीं है। आत्मदृष्टि से प्रेम करना चाहिए। यदि देहदृष्टि से प्रेम करने जाएँ तो पति-पत्नी का पतन होगा। परमात्मा सोलह हजार रानियों के पति हो गए हैं और सभी को सन्तुष्ट रखते हैं। उनके घर में तनिक भी झगड़ा नहीं है। अरे दो-चार स्त्रियाँ इकट्ठी हों, तो भी झगड़ा शुरू हो जाता है; किन्तु भगवान् के घर में सोलह हजार रानियाँ होने पर भी उनको ऐसा लगता है कि प्रभु का विशेष प्रेम मुझ पर ही है। प्रभु ने यहाँ गृहस्थ धर्म का आदर्श उपस्थित किया है। गृहस्थाश्रम भक्ति में बाधक नहीं हैं, पति-पत्नी का पवित्र सम्बन्ध संसार-सागर तरने के लिए है।

एक बार ऐसा हुआ कि श्रीरुक्मिणीजी को ऐसा अभिमान हुआ कि, ''इतनी सारी रानियाँ हैं, किन्तु इनमें कोई भी मेरे समान सुन्दर नहीं हैं। मेरे बिना प्रभु को जरा भी कुछ सुहाता नहीं। मेरे पीछे फिरते रहते हैं। कुछ करना होता है उसे करने से पहले मुझसे पूछते हैं।

कर्हिचित् सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम्।
पतिं पर्यचरद् भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः।। (१०-६०-१)

श्रीकृष्ण पलंग पर विराजमान हैं। रुक्मिणीजी ने सुन्दर श्रृंगार किया है, हाथ में पंखा ले लिया है और एकान्त में श्रीकृष्ण भगवान् की सेवा कर रही हैं। आश्चर्य है कि आज रुक्मिणीजी प्रभु की सेवा करती हैं; किन्तु बारंबार अपना श्रृंगार देखती हैं और सोचती हैं, ''मेरा कितना सुन्दर श्रृंगार है। संसार में मेरे समान कोई सुन्दर नहीं है। इसीलिए ये मेरे आधीन हो गए हैं। मेरे बिना इनको जरा भी कुछ पसन्द नहीं आता। रुक्मिणीजी सेवा तो करती हैं श्रीकृष्ण की किन्तु चिन्तन करती हैं अपने सौन्दर्य का। वे अपने श्रृंगार को ही बारंबार देखती हैं। जगत् की अपेक्षा भगवान् के साथ अधिक प्रेम करना ही भक्ति है; किन्तु यह जीव जब भगवान् की अपेक्षा जड़ वस्तुओं के साथ अधिक प्रेम करता है, तब भक्ति में व्यभिचार नाम का दोष पैदा हो जाता है। तुम विचार करो कि तुमको इस संसार की अपेक्षा भगवान् अधिक प्रिय है अथवा भगवान् की अपेक्षा जगत् का कोई पदार्थ प्रिय लगता है? भगवान् की अपेक्षा जगत् में अधिक प्रेम करना प्रभु को पसन्द नहीं है। क्योंकि इससे भक्ति में दोष आ जाता है। इस संसार के साथ अधिक प्रेम स्थापित कर जीव दुःखित हो गया है। इसलिए जगत् के साथ विवेक से प्रेम करो, किसी जीव से वैर न करो और किसी का तिरस्कार मत करो। तुम जिस मनुष्य के साथ अथवा जिस जड़ वस्तु के साथ अधिक प्रेम करते हो उसका

वियोग होने ही वाला है। वियोग होने की बात याद रखते हुए प्रेम करो। जीव का ईश्वर के साथ होने वाला संयोग ही सच्चा है, जीव का संसार के साथ संयोग कच्चा है। जिसका संयोग तुमको सुख देता है, उसका वियोग तुमको अत्यन्त दुःख भी देगा। रुक्मिणीजी सेवा तो भगवान् की करती हैं; किन्तु सेवा में प्रमाद उपस्थित हो गया है। तुम ठाकुरजी की सेवा में बैठो तो आँख और मन को भगवान् में पिरो दो। मन को प्रभु में पिरो रखना कठिन है; किन्तु आँख को भगवान् में पिरो रखना बहुत कठिन नहीं है। कदाचित् तुम्हारा मन चंचल हो तो होने देना, किन्तु आँख स्थिर रखना। यदि आँख भगवान् में स्थिर होगी तो धीरे-धीरे मन भी स्थिर होगा। जिसकी आँख चंचल है उसका मन बहुत चंचल होता है। जप करने में, सेवा करने में कदाचित् मन उछल-कूद करे तो परवाह न करना; किन्तु आँख स्थिर करना। जहाँ आँख स्थिर होती है, वहाँ मन भी धीरे-धीरे स्थिर हो जाता है। जागृत अवस्था में मन आँख में होता है। रुक्मिणीजी की आँख चंचल है, मन चंचल है। वे मन से सौन्दर्य का चिन्तन करती हैं और आँख से अपना शृंगार देखती हैं। वे श्रीकृष्ण भगवान् को नहीं देखतीं।

प्रभु ने सब बातें समझ ली हैं कि इसे अभिमान हुआ है। प्रभु ने अभिमान दूर करने के लिए लीला की और रुक्मिणीजी से कहा, ''देवी तुम अत्यन्त सुन्दर हो। मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम्हारे समान सुन्दर स्त्री संसार में कहीं नहीं होगी; किन्तु मेरे साथ विवाह करने में तुमने भूल की है। मुझे यह समझ में नहीं आता कि तुमने मुझसे विवाह क्या देखकर किया है? तुम्हारा और मेरा कुजोड़ा है। तुम्ही विचार करो कि तुम राजमहल में बड़ी हुई हो, राजकन्या हो। मैं किसी राजा का पुत्र नहीं, बल्कि एक ग्वाल का पुत्र हूँ। मैं वृन्दावन में गायों के पीछे-पीछे नंगे पैर भटकता था। तुम गोरी हो; किन्तु मैं कोई गोरा नहीं हूँ। बड़े-बड़े राजा तुम्हारे लिए पागल हो गए हैं। राजा लोग ऐसी इच्छा रखते हैं कि रुक्मिणीजी एक बार मेरी ओर देखें, हम पर नजर करें। ये राजा तुम्हारे साथ बहुत प्रेम करते हैं; किन्तु मेरी निन्दा करते हैं और मुझसे वैर करते हैं। तुम्हें मालूम है कि मेरी जन्मभूमि मथुरा है। उसे छोड़कर मैं इस खारे समुद्र में, द्वारका में आकर रहता हूँ। मुझे राजाओं से बहुत भय लगता है।''

राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रूः शरणं गतान्।
बलवद्भिः कृतद्वेषान् प्रायस्त्यक्तनृपासनान्।। (१०/६०/१२)

श्रीकृष्ण भगवान् की भाषा दो अर्थों वाली है। भगवान् कहते हैं कि मुझे राजाओं से डर लगता है। इसीलिए मैं अपनी जन्मभूमि मथुरा छोड़कर द्वारका में रहता हूँ। मुझे जरासंध से बहुत डर लगा। इसलिए मैं रण छोड़कर भाग आया। इसीलिए मुझे रणछोड़ कहते हैं। रणछोड़ अर्थात् डरपोक। मुझे राजाओं से बहुत डर लगता है।

राजा शब्द पर थोड़ा विचार करें। जहाँ रजोगुण अधिक होता है उसे राजा कहते हैं। गीताजी में भगवान् ने कहा है कि रजोगुण यह काम का बाप है।

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः

रजोगुण से काम की उत्पत्ति होती है। राजा अर्थात् अत्यन्त कामी और विलासी जीव। इसीलिए भगवान् कहते हैं कि राजाओं से दूर रहता हूँ। मुझे उनसे डर लगता है। भगवान् को विलासी लोगों से डर लगता है। भगवान् कहते हैं, "विलासी लोगों के साथ रहकर मन को पवित्र रखना असंभव है, विलासी लोगों का संग मन को बहुत बिगाड़ता है। मेरी जन्मभूमि मथुरा है। मुझे राजाओं अर्थात् विलासी लोगों से डर लगता है। इसीलिए मैं मथुरा छोड़कर द्वारका में आया और यहाँ रहता हूँ, राजा तो मेरी निन्दा ही करते हैं; किन्तु साधु और ब्राह्मण मेरी प्रशंसा करते हैं।

वैदर्भ्येतद्विज्ञाय त्वयादीर्घसमीक्षया,
वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा। (१०/६०/१६)

ये साधु-ब्राह्मण ऐसे होते हैं कि जिसका खाते हैं, उसी का बखान करते हैं। मुझे ब्राह्मणों को भोजन कराने और साधु-सन्तों की पूजा करने की आदत है। बड़े-बड़े धनवान लोग और राजा तो मेरी निन्दा ही करते हैं; किन्तु साधु-ब्राह्मण तो मेरी प्रशंसा ही करते हैं। वह प्रशंसा सुनकर तुम भरमा गई हो। यह तुम्हारी भूल हुई है। तुम अति सुन्दर हो। मैं तुमसे ठीक कहता हूँ। तुम्हारे सौन्दर्य का आदर मेरे घर में नहीं हो पाएगा।" सौन्दर्य का आदर तो कामी पुरुष करते हैं। श्रीकृष्ण पूर्ण निष्काम हैं इसलिए वे सौन्दर्य का आदर नहीं कर सकते। सूर्पणखा श्रृंगार करके और बनठन कर रामजी के सन्मुख गई। रामायण में लिखा है कि श्रीरामचन्द्रजी ने उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। उन्होंने शबरी माता से प्रेम की बातें की हैं और शबरी माता ने जो दिया है उसे उन्होंने खाया है। शबरी माता का मन सुन्दर था, तन सुन्दर न था, उनकी वृद्धावस्था थी, शरीर की सभी हड्डियाँ दिखाई देती थीं। शबरी माता ने मन का श्रृंगार किया था और सूर्पणखा अपने तन का श्रृंगार कर आई थी। रामचन्द्रजी सूर्पणखा की ओर नहीं देखते; किन्तु शबरी माता से प्रेमपूर्वक बातें करते हैं। परमात्मा निष्काम हैं। इसलिए सौन्दर्य का आदर नहीं कर सकते। सौन्दर्य का आदर तो कामी पुरुष कर सकते हैं। प्रभु ने कहा कि तेरे सौन्दर्य का आदर मेरे घर में नहीं हो सकता। मुझे किसी स्त्री की तनिक भी आवश्यकता नहीं। कदाचित तुझे ऐसा लगता होगा कि मेरी आवश्यकता न थी तो मुझे लेने के लिए मेरे पीहर में क्यों आए? मैं वास्तव में वहाँ राजाओं को अपना पराक्रम दिखाने के लिए गया था; तेरे लिए नहीं गया था।

उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः।
आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिर क्रियाः॥ (१०/६०/२०)

मुझे तेरी आवश्यकता नहीं है। मुझे किसी स्त्री की आवश्यकता नहीं है। मुझे यह भी इच्छा नहीं है कि मेरा वंश वृद्धि प्राप्त करे। यह तो परिवार लेकर इसलिए बैठा हूँ कि मेरे माता-पिता को खराब न लगे। विरक्त साधु मुझे प्रिय लगते हैं। जो एकान्त में बैठकर परमात्मा का ध्यान करते हैं उन्हें मैं प्रिय लगता हूँ और मुझे वे प्रिय लगते हैं।

प्रभु ने रुक्मिणीजी का अभिमान दूर करने के लिए कहा है, ''तुम्हारे सौन्दर्य का आदर मेरे घर में नहीं होगा। तुम्हें यहाँ से जहाँ जाना हो, वहाँ जाओ। तुम किसी राजा की रानी भी बन सकती हो। उससे सुखी बनोगी। मेरे घर में तुम्हें सुख नहीं मिलेगा। मुझे किसी स्त्री की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। श्रीकृष्णजी के इस कथन से रुक्मिणीजी बहुत घबरा गईं। वे सोचने लगीं कि कहीं मेरा त्याग तो नहीं करेंगे। उनके शरीर से पसीना छूटने लगा और पंखा हाथ से छूटकर नीचे गिर पड़ा। वे मूर्च्छित होने के समीप पहुँच गईं। प्रभु ने देखा कि दवा का अधिक असर हो गया है और ये मूर्च्छित होने के समीप पहुँच गई हैं। तब उन्होंने रुक्मिणीजी को उठाकर पलंग पर सुला दिया। उनके शरीर से छूटने वाले पसीने को प्रभु अपने रूमाल से पोंछ रहे हैं।

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं, ''राजन्, श्रीकृष्ण सबसे श्रेष्ठ हैं, किन्तु उनको अभिमान नहीं है। अब प्रभु ने अपने हाथ में पंखा लिया और रुक्मिणीजी की सेवा करने लगे। जो वैष्णव 'विष्णु सहस्रनाम' का पाठ करते हैं, उन्हें खबर है-कि भयकृत, भीतिनाशनः। जब यह मानव अपना होश भूलता है, तब भगवान् इसे भयभीत करते हैं। हमारे जैसे साधारण मनुष्य भय लगने पर पाप छोड़ देते हैं और भय लगने पर भक्ति करते हैं। मनुष्य बिना भय के भगवान् की भक्ति करता ही नहीं। बिना भय के पाप नहीं छूटता। इसीलिए तो पुराणों में नरक की कथा का वर्णन है कि ऐसा पाप करने से उस नरक में जाते हैं। जहाँ बहुत सजा मिलती है। नरकों का वर्णन इसीलिए किया गया है कि उनका वर्णन सुनकर भय के कारण भी मनुष्य पाप छोड़ दे। भगवान् ही भय उत्पन्न करते हैं। मनुष्य भय लगने पर सुधरता है और भय लगने पर पाप छोड़ता है। जो अपने को निर्भय समझता है, वह पाप करता है। सभी को काल का भय होता है। इसलिए निर्भय होकर स्वच्छन्दी जीवन मत बिताना। रुक्मिणीजी के अभिमान को दूर करने के लिए प्रभु ने भय दिखाया है; किन्तु जब जीव बहुत घबरा जाता है तब भगवान् उसका भय दूर कर देते हैं। भगवान् भयदाता है और भयनाशक भी हैं। जब घर में लड़का बहुत शरारत करता है तो उसकी माता उसे डराती है। जब बालक सचमुच बहुत घबरा जाता है तो माता उसे छाती से लगाती है और प्यार करती है। परमात्मा का स्वभाव

माता के स्वभाव के समान है। रुक्मिणीजी जब बहुत घबराईं और उनका अभिमान हट गया तब प्रभु ने कहा, "मैं तो मजाक कर रहा था। अरे, मैंने थोड़ा विनोद किया और तूने उस पर विश्वास कर लिया! तेरे बिना तो मुझे कुछ भी नहीं सुहाता। तू गुस्से में कैसा बोलती है वह सुनने के लिए ही मैंने यह मजाक किया था। तू मुझे बहुत प्रिय लगती है। मैं तेरे अधीन हूँ।" इस जीव में जब अभिमान आता है तो ईश्वर उसकी उपेक्षा करता है। यदि जीव सब प्रकार का अभिमान छोड़कर भगवान् की शरण में आता है, सब प्रकार का अभिमान छोड़कर भक्ति करता है तो भगवान् कभी-कभी इस जीव को अपने से भी बड़ा बना देते हैं। जीव जब तक अहं नहीं छोड़ता तब तक भगवान् भी यह नहीं भूलते कि मैं ईश्वर हूँ। रुक्मिणीजी समझ गई हैं, "यह सब बाहरी रूप है। श्रीकृष्ण में वैराग्य परिपूर्ण है। मैं मानती थी कि वे मेरे आधीन हैं; किन्तु यह बात गलत है। उन्हें किसी स्त्री की जरूरत नहीं है। वे स्वयं आनन्द रूप हैं।" अभिमान उतरने के बाद रुक्मिणीजी ने बहुत सुन्दर ढंग से कहा, "आपने जो कहा है वह गलत नहीं है। आपका और मेरा कुजोड़ा हुआ है।

नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाह यद् वै भवान् भगवतोऽसदृशी विभूम्नः।
क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः, क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा।।

(१०/६०/३४)

अब रुक्मिणीजी के ध्यान में आया है कि मैं भगवान् के योग्य नहीं हूँ। जब रुक्मिणीजी को अभिमान हुआ था तब प्रभु ने कहा था कि मैं तेरे योग्य नहीं हूँ। अब अभिमान उतरने के बाद रुक्मिणीजी समझ गई हैं कि भला मैं भगवान् के योग्य कहाँ हूँ? कुछ लोग मेरे पीछे पड़ते हैं और ज्ञानी पुरुष उनके लिए पागल होते हैं। ज्ञानी पुरुष लक्ष्मी के पीछे नहीं पड़ते। वे लक्ष्मीपति के पीछे पड़ते हैं। मूर्ख लोग लक्ष्मी के पीछे पड़ते हैं। तुम्हारा और मेरा कुजोड़ा हुआ है यह बात सच है। योग्य न होने पर भी आपने कृपा कर इस दासी को अपने घर में रखा है, यह आपकी बड़ी महानता है। आज से मैं आपके घर की रानी नहीं, किन्तु इस घर की झाड़ू हूँ। मेरा त्याग मत कीजिए। आपने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक है। फिर भी आपने अन्त में जो यह कहा है कि किसी राजा से विवाह कर लो यह बात मुझे रुची नहीं।

कान्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्धमाघ्राय सन्मुखरितं जनतापवर्गम्।
लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य, मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः।।

(१०/६०/४२)

जिस स्त्री को आपका दर्शन नहीं होता वह भले ही किसी उस पुरुष शरीर के साथ प्रेम कर ले जो मल-मूत्र भरा हुआ है। जिसे आपका दर्शन न हो वह स्त्री भले ही किसी पुरुष को

प्रिय माने, प्रेम करे; किन्तु जिसे एक बार आपके दर्शन का लाभ मिला है उसे तो किसी को देखने की इच्छा भी नहीं होती। हे नाथ, कृपा कीजिए।' यह सब सुनने के बाद प्रभु ने रुक्मिणीजी का बहुत आदर किया और परमानन्द छा गया।

एक अध्याय में वंश की थोड़ी कथा का वर्णन आता है। रुक्मिणीजी से प्रद्युम्नलाल पैदा हुए। प्रद्युम्नलालजी के पुत्र अनिरुद्धजी हुये हैं। अनिरुद्धजी का विवाह बाणासुर की कन्या उषा के साथ हुआ था। उस विवाह में भयंकर युद्ध हुआ। बाणासुर शंकर भगवान् का अनन्य भक्त था। उस समय शिवजी महाराज वहाँ पधारे थे। भगवान् शंकर की भक्ति करने वाला व्यक्ति श्रीकृष्ण भगवान् को बहुत प्रिय लगता है और श्रीकृष्ण के सेवा स्मरण करने वाले वैष्णव शंकरदादा को बहुत प्रिय लगते हैं। शिव और विष्णु में तो परिपूर्ण प्रेम है, अभेद है। फिर भी शिव और श्रीकृष्ण में जैसा प्रेम है, वैसा प्रेम शैव और वैष्णवों में नहीं होता, कितने तो आपस में झगड़ पड़ते हैं। क्या भक्ति मन को बिगाड़ने के लिए है? क्या वह किसी देवता का अनादर करने के लिए है? वैष्णव होकर शिवजी का अनादर करे और शिवभक्त होकर श्रीकृष्ण में कुभाव रखे तो उसका पतन होता है। बाणासुर शिवभक्त था। इसीलिए श्रीकृष्ण उसे मारते नहीं। बाणासुर के हजार हाथ थे उनमें से नौ सो छानबे हाथ काट डाले और प्रभु ने बाणासुर को अपने समान चतुर्भुज बनाया। इससे परम आश्चर्य पैदा हुआ। इसके बाद नृगराजा के उद्धार की कथा आती है। नृगराजा को गिरगिट का अवतार मिला था। प्रभु ने उनका भी उद्धार किया। प्रभु ने सब कुछ जानते हुए भी पूछा कि तुम कौन हो? नृगराजा ने उत्तर दिया, मेरा जन्म इच्छवाकु वंश में हुआ है, मेरा नाम नृग है। मेरी यह भूल हुई थी कि मैंने अनजान के कारण ब्राह्मण का धन अपने घर में रख लिया था। इसीलिए मुझे गिरगिट का अवतार होना पड़ा। देवता का धन, समाज का धन, और ब्राह्मण का धन विष से भी भयंकर होता है उसका सदुपयोग अधिक विवेक से करना चाहिए। नृगराजा ने प्रभु के चरणों में पड़कर कहा कि मैं आपके दर्शन से कृतार्थ हो गया हूँ। इस कथा में नृगराजा को सद्गति देने का वर्णन है।

एक बार दाऊजी महाराज ब्रज में पहुँचे। वहाँ वे नाग-कन्याओं के साथ जो रास करते हैं उस कथा का वर्णन किया गया है। उस समय द्विविद नाम का राक्षस सबको सताता था। उसके उद्धार का वर्णन इस कथा में आता है। जिस समय बलराम ब्रज में आए उस समय करुष देश के राजा द्वारका में युद्ध करने आये थे। भगवान् ने पौण्ड्रक राजा तथा उसके मित्र काशीराज को युद्ध में मार कर सद्गति दी। दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा के साथ साम्ब का विवाह हुआ उसका भी वर्णन किया गया है। एक अध्याय में नारद परिहास की कथा भी आई है।

एकबार नारदजी के मन में ऐसा भाव पैदा हुआ कि दो-चार स्त्रियों वाले पति की दुर्दशा होती है। यदि एक को खुश करने जाएँ, तो दूसरी नाराज हो जाती है। श्रीकृष्ण तो सोलह हजार रानियों के पति हुए हैं। वे उनको किस प्रकार खुश रखते होंगे। वे उनसे कब बात करते होंगे। नारदजी ब्रह्मचारी हैं। जिसे ब्रह्मचर्य का पालन करना है वह काम सुख भोगने वाले गृहस्थ के घर का विचार भी नहीं कर सकता। क्योंकि ऐसा करने से उसका मन दूषित हो जाता है। नारदजी को इस प्रकार के झगड़े में पड़ने की क्या आवश्यकता थी? किन्तु उनकी ऐसी इच्छा हुई कि मैं द्वारका जाकर रानियों में कलह पैदा करूँगा। जिस महल में श्रीकृष्ण नहीं होंगे, उस रानी को समझाऊँगा, 'तेरी बात कौन पूछे?' तुझ पर तो उनका जरा भी प्रेम नहीं। वे तो रुक्मिणीजी और सत्यभामा के पीछे-पीछे फिरते रहते हैं। इससे उसको क्रोध पैदा होगा, क्रोध के बाद भगवान् उसे किस तरह मनाते हैं यह मुझे देखना है। इन ब्रह्मचारी महाराज को ऐसी खटपट करने की भला क्या आवश्यकता थी। इसका अर्थ यह है कि मन हमेशा एक समान नहीं रहता। वह सात-आठ घण्टे में बदलता रहता है। साधारण मनुष्य सात-आठ घण्टे से अधिक भक्ति नहीं कर सकता। आज नारदजी का मन भी बिगड़ गया है। उनको भगवान् के घर कलह पैदा करना है। वे रुक्मिणीजी के महल में आए हैं। भगवान् ने खड़े होकर उनका स्वागत करते हुये कहा है, 'पधारिये, पधारिये, जब आप जैसे सन्त आएँ तभी हमारा गृहस्थ आश्रम सफल हो। आपने बड़ी कृपा की। आपके दर्शन से हम धन्य हो उठे। कहिए, आपने किसलिए पधारने की कृपा की?'

नारदजी ने कहा कि कोई काम नहीं है। मैं आपके दर्शन के लिए ही आया था। भगवान् तो अन्तर्यामी हैं। वे तो जानते थे कि आज नारद दर्शन करने नहीं, किन्तु मेरे घर में आग लगाने आए हैं, कलह जगाने आये हैं। श्रीकृष्णजी ने फिर पूछा कि क्या आप दर्शन करने आए हैं? नारदजी ने फिर वही उत्तर दिया कि हाँ, दर्शन करने आया हूँ। श्रीकृष्णजी ने मन ही मन कहा 'तो मेरा दर्शन कर। मैं तुझे प्रत्येक राजमहल में दर्शन देता हूँ।' नारदजी वहाँ से उठे। वे सत्यभामाजी के महल में गए वहाँ भी श्रीकृष्ण विराजमान थे किन्तु उनका शृंगार भिन्न प्रकार का था। रुक्मिणीजी के महल के श्रीकृष्ण और सत्यभामाजी के महल के श्रीकृष्णजी दोनों अलग-अलग लग रहे थे। श्रीकृष्णजी ने खड़े होकर हाथ जोड़े और कहा कि पधारिये, पधारिये। बहुत दिन बाद आपने पधारने की कृपा की है। नारदजी विचार में पड़ गए कि रुक्मिणीजी के घर में जिसने मेरी पूजा की क्या उससे यह कोई भिन्न है? मुझसे कहते हैं कि बहुत दिन बाद आए हैं! अभी-अभी तो उन्होंने मेरी पूजा की है। नारदजी को आश्चर्य हुआ। वे वहाँ से जाम्बवतीजी के महल में गए। वहाँ भी श्रीकृष्ण विराजमान थे। नारदजी ने विचार किया कि मैं जरा बाहर से जाँच कराकर तभी अन्दर जाऊँगा, जब

वे अन्दर नहीं होंगे। वे जिस राजमहल में नहीं होंगे, वहीं मेरा काम होगा। वे जिस राजमहल में होंगे, वहाँ मेरा कोई बस नहीं चलेगा। नारदजी बाहर से जाँच कराते हैं कि क्या श्रीकृष्णजी अन्दर हैं? उत्तर मिलता है कि हाँ, विराजमान हैं। नारदजी पूछते हैं कि क्या करते हैं? उत्तर मिलता है कि वे स्नान करने बैठे हैं। नारदजी दूसरे राजमहल में जाकर पूछते हैं कि क्या श्रीकृष्णजी अन्दर हैं? तो उत्तर मिलता है कि हाँ, वे विराजमान हैं। क्या करते हैं? उत्तर मिलता है कि संध्या करने बैठे हैं तीसरे राजमहल में उत्तर मिलता है कि अग्नि में हवन करने बैठे हैं। चौथे राजमहल में खबर मिलती है कि अन्दर गरीबों को दान दे रहे हैं। पाँचवें महल में जवाब मिलता है कि छोटे-छोटे बालकों को गोद में लेकर खेल कर रहे हैं। बालक को खेलाते समय सच्चा ज्ञान मिलता है। उसकी आँख शुद्ध होती है और उसका मन अतिशुद्ध होता है, जिससे उसको देखने वाले का मन भी शुद्ध होता है। बालकों के खेलाने से बहुत कुछ जानने को मिलता है। जो ज्ञान बहुत-सी पुस्तकें पढ़ने पर नहीं मिलता वह बालक के साथ खेलते समय अनायास मिल जाता है। बालक का खेल निर्विकार होता है। उसे छल कपट करने की अक्ल नहीं होती। भगवान् बालकों को खेलाने बैठे हैं। छठे राजमहल में खबर मिली कि बाहर से कोई महाराज आए हैं भगवान् उनसे कथा सुनने बैठे हैं।

इतिहासपुराणानि श्रुणवन्तं मंगलानि च।

भगवान् कथा सुन रहे थे। वे साधुओं और ब्राह्मणों को बुलाते, उनकी पूजा करते और प्रार्थना करते कि महाराज, आज ऐसी कथा सुनाओ जिससे इस गृहस्थाश्रम की प्रवृत्ति में भगवान् न भूल सके। गृहस्थाश्रम की प्रवृत्ति में जीव ईश्वर को भूल जाता है। आज ऐसी कथा कहो, ध्यान योग पर कथा कहो। प्रभु के सन्मुख बोलते समय तो ब्राह्मणों और सन्तों को भी संकोच होता है। भगवान् हाथ जोड़कर कथा सुनने बैठते हैं और कहते हैं कि महाराज, मैं कुछ नहीं जानता। आप जरा भी संकोच नहीं करें। आप जो कुछ बोलेंगे वही मुझे सुनना है।

आप सब अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ें यह अच्छा ही है; किन्तु सतत भक्ति करने वाले के मुख से कथा सुनना अधिक अच्छा है। क्योंकि जब साधु-सन्त बोलते हैं तब अपना अनुभव मिलाकर बोलते हैं। जिस अनुभव का ज्ञान किसी साधारण पुस्तक में नहीं मिलता। अच्छी पुस्तकें पढ़ने की अपेक्षा जिसका जीवन बहुत अच्छा है और जो सतत भक्ति करता है ऐसे महापुरुष के मुँह से कथा सुनना अधिक अच्छा है। भगवान् श्रीकृष्ण भी कथा सुनते हैं। यदि घर में झाड़ू न दें, तो घर गन्दा होता है, घर में जाने-अनजाने धूल आ जाती है। इसी प्रकार संसार व्यवहार का काम करते-करते मन पर धूल पड़ जाती है। मन को स्वच्छ करने के लिए सत्संग करने की आवश्यकता रहती है। इसलिए भक्ति करने वाले महापुरुषों का संग करना चाहिए। कुछ साधु ऐसे

होते हैं जिनको एक अक्षर भी बोलने की इच्छा नहीं होती। यदि संत न बोले तो भी उसके पास बैठने से बहुत कुछ जानने को मिलता है।

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्याः गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मानं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयः।।

सन्तों का मौन ही ज्ञान है। वे किस प्रकार चलते हैं, किस प्रकार बोलते हैं और क्या खाते हैं यह देखने पर ज्ञात होगा कि उनका प्रत्येक व्यवहार भक्ति से भरा होता है। सन्त का व्याख्यान ही उपदेश नहीं देता बल्कि उसका बोलना-चालना स्वयं ज्ञान है।

भगवान् कथा सुनने बैठते हैं। यह जानकर नारदजी को आश्चर्य होता है। वे सोचते हैं कि वे तो कथा सुनते हैं। मुझे तो कथा सुननी नहीं है। मैं तो कलह जगाने आया हूँ। यदि अन्दर जाऊँ तो मुझे कथा पूरी होने तक बैठना ही पड़ेगा। नारदजी आगे जाते हैं और अगले महल के पास खड़े होकर पूछते हैं कि क्या अन्दर श्रीकृष्ण भगवान् हैं? उत्तर मिलता है कि हाँ, यहीं विराजमान हैं। क्या करते हैं? उत्तर मिलता है कि दरवाजा बन्द है। एकान्त में रानी के साथ कुछ बातचीत कर रहे होंगे, कुछ कहते होंगे। इस प्रकार भगवान् ने गृहस्थ-धर्म का मर्म समझाया है। नारदजी सोलह हजार राजमहलों में फिर आये हैं। श्रीकृष्ण प्रत्येक राजमहल में विराजमान मालूम हुए हैं। नारदजी चलते-चलते थक गए हैं। फिर उन्होंने विचार किया कि अन्दर जाने पर थोड़ा आराम मिलेगा। वे अन्दर गये उनके अन्दर जाते ही भगवान् खड़े हो गए और बोले, 'महाराज, पधारिये; पधारिये। आपने बहुत दिन बाद आज पधारने की कृपा की।' नारदजी ने कहा कि मैं अभी आया हूँ। भगवान् तो सब कुछ जानते हैं। उनको पता है कि ये महाराज छह-सात घण्टे से भटक रहे हैं, बाहर से पता लगाते हैं और मुझसे कहते हैं कि मैं अभी आया हूँ। मैं इनको अच्छी तरह जानता हूँ। उन्होंने नारदजी की पूजा की। उसके बाद अपने दास-दासियों को आज्ञा दी कि तुम सब बाहर जाओ। मुझे इन महाराज से कुछ निजी बातें करनी हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने अपने दास-दासियों को बाहर निकालकर दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया। इसके बाद नारदजी का कान पकड़कर बोले, 'अरे नारद!' यह सुनकर नारदजी कुछ शर्मिन्दा हो गए और विचारने लगे कि अभी तक मुझे महाराज कहते थे और अब 'अरे' कहकर पुकारते हैं।

भगवान् तो संसार को उपदेश देते हैं कि किसी के आने पर उठकर आदर करना चाहिए। यदि तुम्हारे यहाँ कोई साधु आए, कोई ब्राह्मण आए, कोई गरीब आये, तो उस समय गद्दी-तकिया से उठकर खड़े हो जाओ। भले ही उसे थोड़ा दो, किन्तु जितना दो उतना आदर के साथ दो।

भगवान् ने नारदजी से कहा, 'तू यह जानता है कि मेरा और तेरा क्या निजी सम्बन्ध है? तू किसका पुत्र है?' नारदजी ने कहा मैं ब्रह्माजी का पुत्र हूँ। श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं तेरे बाप का भी बाप हूँ। मेरा वैभव देखकर तुझे खुश होना चाहिए कि यह सब तमाशा करना चाहिए। यह सुनकर नारदजी हरि का स्मरण करते-करते वहाँ से रवाना हो गये।

परमात्मा श्रीकृष्ण सोलह हज़ार रानियों के स्वामी हैं। फिर भी वे प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में उठकर ध्यान करते हैं।

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम्।। (१०-७०-४)

केवल कथा सुनने से जीवन नहीं सुधरता। कथा का सुनना-कहना तो अच्छा ही है। उससे पाप का क्षय होता है। फिर भी कथा सुनने के बाद कुछ साधना करनी होगी। यह साधना ब्राह्म मुहूर्त होगी। यदि नियम से छह-सात साधना करो, तो लाभ होगा। इससे मन सुधरेगा और मन का संकल्प-विकल्प कम होगा। भगवान् का ध्यान करो। उनकी सेवा करो और उनसे यह प्रार्थना करो कि हे प्रभु मेरे हाथों से सत्कर्म कराना।

सबेरे उठकर हाथ के दर्शन करो।

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमूले सरस्वती।
कर मध्ये तु गोविन्दः प्रभाते करदर्शनम्।।

मनुष्य हाथ का अर्थात् क्रिया-शक्ति का उपयोग करे, तो उसे लक्ष्मी प्राप्त होगी। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, किन्तु सभ्य लोग तो प्रातःकाल उठकर करदर्शनम् नहीं, बल्कि कप दर्शन करते हैं। तुम वैष्णव हो, तुम प्रभु के प्यारे हो, तुम किसी ऋषि वंश में पैदा हुए हो। इसलिए तुम्हें अपने पूर्वजों के मार्ग पर चलना है।

येन ते पितरो याताः

तुम सनातन धर्म की मर्यादा का जितना पालन करोगे, उतना ही तुम्हारा मन शुद्ध होगा। यह जीवन स्वेच्छाचार से बिगड़ता है और सदाचार से सुधरता है। तुम्हें क्या करना है और क्या नहीं करना है, इसे अपने मन से मत पूछो, बल्कि शास्त्र से पूछो।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

सबेरे जल्दी उठकर धरती माता को वन्दन करो। फिर जिस नाक से श्वास निकलती हो, उस ओर का पैर धरती पर रखो। यदि दोनों नाकों में से समान प्रमाण में श्वास निकलती हो तो दोनों पैर एक साथ धरती पर रखना चाहिए। धरती माता को वन्दन किए बिना पैर नीचे नहीं रखना

चाहिए। धरती माता की प्रार्थना करो–

समुद्रवसने देवि! पर्वतस्तन मण्डले।
विष्णु पत्नि! नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।

भगवान् श्रीकृष्ण अपनी दिनचर्या से जगत को आदर्श दिखाते हैं। जो भगवान् सूर्य के उगने के पहले स्नान करते हैं, तुलसीजी की माटी–मृतिका का ललाट में तिलक करते हैं उसे स्नान करने का श्रेय मिलता है। आकाश में नक्षत्र दिखाई देते हों ऐसे समय नहाने का आग्रह रखो। स्नान कर भगवान् संध्या करते हैं, अग्नि में आहुति देते हैं, वे सूर्यनारायण को अर्घ्य देते हैं।

यदादित्यगतं तेजः

सूर्यनारायण में श्रीकृष्ण का ही निवास है, किन्तु वे जगत् को यह आदर्श दिखाते हैं कि मैं सूर्यनारायण की पूजा करता हूँ। जो सूर्यनारायण के प्रकाश का उपयोग करता है, वह उनका ऋणी है। उगते हुए सूर्य का दर्शन करते समय कोई मंत्र जपो। यदि उगते हुए सूर्य की किरणें शरीर पर पड़ें, तो तन और मन दोनों सुधर जाते हैं। सूर्यनारायण की उपासना से स्वास्थ्य सुधरता है उनकी उपासना के बिना बुद्धि नहीं सुधरती। सूर्यनारायण प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, किन्तु अन्य देवता नहीं दिखाई देते। दूसरे देवता भावना से दर्शन देते हैं। इसलिए उनकी भावना करनी पड़ती है। सूर्यनारायण के तेजोमय स्वरूप का ध्यान करो।

श्रीकृष्ण प्रतिदिन अपने माता–पिता को वन्दन करते थे। द्वारका के मन्दिर के सामने देवकी माता का मन्दिर है। माता–पिता परमात्मा के स्वरूप हैं।

७५– शिशुपाल-वध

एक दिन श्रीकृष्ण को खबर मिली कि जरासन्ध पकड़े गए राजाओं का वध करना चाहता है। उन अभागे राजाओं ने श्रीकृष्ण से सहायता माँगी। इसी समय महर्षि नारदजी का वहाँ आगमन हुआ। उन्होंने कहा, "धर्मराज को राजसूय यज्ञ करना है। इसलिए आप हस्तिनापुर पधारिए।"

श्रीकृष्ण सब ज़ानते हुए भी उद्धव से पूछते हैं, "क्या करना चाहिए? कहाँ जाना चाहिए? उद्धव कहते हैं–

गायन्ति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च।
गोप्यश्च कुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च।।
जरासन्धवधः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते। प्रायः पाकविपाकेन तव चाभिमतः क्रतुः।।

(१०-७१-९/१०)

आप सब कुछ जानते हैं। फिर भी मुझे अतिशय सम्मान देने के लिए पूछते हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि आप हस्तिनापुर जाइए। राजसूय यज्ञ के लिए दिग्विजय करनी होती है। दिग्विजय में जरासन्ध को भी जीतना पड़ेगा। इस प्रकार वहाँ जाने से दोनों काम सिद्ध होंगे।

भगवान् हस्तिनापुर गए। पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ में दिग्विजय प्राप्त की। उन्होंने जरासन्ध को युक्ति से मारा। इस प्रकार दोनों काम परिपूर्ण हुए।

राजसूय यज्ञ में अनेक ऋषि एकत्र हुए थे। उसमें यह प्रश्न हुआ कि यज्ञ में प्रथम पूजा किसकी की जाए। सबंने कहा कि पहली पूजा श्रीकृष्ण की होनी चाहिए; किन्तु शिशुपाल उठकर उन्हें गाली देने लगा। श्रीकृष्ण चुपचाप उसे सुनते रहे, किन्तु उद्धवजी से यह बात सहन नहीं हुई। उद्धवजी ने उत्तर दिया, ''श्रीकृष्ण की हार नहीं हुई है, जीत हुई है। आज शिशुपाल क्रोध में आकर जो चाहता है, वह बोलता है। वह क्रोध के आधीन हो गया है। क्रोध ने उसे पराजित कर दिया है और श्रीकृष्ण ने क्रोध को हरा दिया है।'' ऐसी निन्दा सुनकर श्रीकृष्ण को जरा भी क्रोध नहीं आता। सभा में निन्दा होने पर भी उनको थोड़ा भी क्रोध न आया। वे शान्ति से सब सुनते रहे। यह उनका क्रोध-विजय है। रासलीला में काम-विजय और शिशुपाल-वध में क्रोध विजय है। श्रीकृष्ण को क्रोध आता ही नहीं। यदि उनको क्रोध आए, तो जगत में कोई बचे ही नहीं। वे अतिशय शान्त हैं। सभा में पूजा होने पर वे जितने शान्त थे, उतने शान्त शिशुपाल की गाली सुनकर भी थे। श्रीकृष्ण की मुद्रा शान्त है, प्रसन्न है। तुमको कोई सभा में गाली दे तो क्या शान्ति से सहन करोगे? अब भागवत की कथा सुनने के बाद सहन करना। इससे तुम बहुत सुखी होगे और तुम्हारा कल्याण होगा।

भगवान् के शान्त रहने का एक ही कारण है कि वे सोचतें हैं, ''यह मूर्ख है, बक रहा है–''ग्रामसिंहस्य सिंहः।''

यह शिशुपाल ग्रामसिंह है, कुत्ता भूँकता है। भला उसका जबाब कौन दे? श्रीकृष्ण नरसिंह हैं। इसीलिए वे नहीं बोलते। भागवत के प्रधान टीकाकार श्रीधर स्वामी हैं। उन्होंने शिशुपाल के गाली के शब्दों को स्तुति पूर्ण अर्थ में देखा है। श्रीधर स्वामी से यह निन्दा सहन नहीं हुई। शिशुपाल कहता है–

यथा काकः पुरोऽशं सपर्यां कथमर्हति।

वह गाली देता है उसमें काक कहता है। वह निन्दा करता है श्रीधर स्वामी ने उसका अर्थ बंदल दिया है–

कं च अकं च इति काके कं सुखं कं दुखं।

श्रीकृष्ण तो आनन्द स्वरूप हैं। जहाँ सुख नहीं है और दुःख भी नहीं है, वहाँ आनन्द ही होता है। सुख-दुःख साथ ही रहते हैं। आनन्द इस सुख-दुःख से पृथक है।

सपर्यां नार्हति– सर्वस्वं अर्हत इति भावः।

जिसको संस्कृति भाषा का ज्ञान है, उसे श्रीधर स्वामी के इस अर्थ में बहुत आनन्द आएगा। वे गाली के शब्दों में से स्तुतिबोधक अर्थ कहते हैं। वास्तवस्त्वयं अर्थः। वाग्देवी श्रीकृष्ण की निन्दा नहीं कर सकतीं। वाग्देवी के पति परमात्मा श्रीकृष्ण हैं। मर्यादा के पूरा होनें पर गाली भी पूरी हो गई। इसके बाद श्रीकृष्ण ने प्रेम से शिशुपाल को मारा और उसका उद्धार किया। भगवान् को क्रोध ही नहीं आता। उन्होंने शिशुपाल का वध प्रेम से किया। उन्होंने सुदर्शन चक्र से उसका मस्तक काट दिया। इस प्रकार शिशुपाल को सद्गति मिली।

राजसूय यज्ञ में सब खुश हो गये, किन्तु दुर्योधन नाराज हो गया। दुर्योधन बड़ा अभिमानी है। जब अभिमान बढ़ता है, तब चाल भी बदलती है, हमको धरती पर नजर रखकर चलना चाहिए और ऐसी सावधानी रखनी चाहिए कि चलते समय किसी भी जीव की हिंसा न हो। दुर्योधन अभिमानी है। वह अकड़कर चलता है। जब वह पैर फिसलने से नीचे गिरा, तब भीमसेन बोल उठते हैं कि अन्धे के लड़के अन्धे ही होते हैं। महाभारत का मूल कारण कर्कश वाणी ही है। कर्कश वाणी से कलह होता है। इसलिए चाहे कैसा भी अवसर आवे, किन्तु घर में कभी कर्कश शब्द न बोलना। यह जीभ किसी का ताना मारने के लिए नहीं है। इस शरीर में सब जगह हड्डी है, किन्तु भगवान् ने जीभ में एक भी हड्डी नहीं दी है। जीभ में हड्डी न देने का कारण यह है कि उसकी रचना मधुर बोलने के लिए की है।

सूतजी सावधान करते हुए कहते हैं, श्रीकृष्ण भगवान् जब हस्तिनापुर के राजसूय यज्ञ में गये, तब द्वारका पर सल्व राजा ने चढ़ाई कर दी। प्रद्युम्न लालजी के साथ भयंकर युद्ध हुआ। जब भगवान् को खबर पड़ी। तब वे द्वारका आये और सल्व, दन्तवक्त्र, विदुरथ इत्यादि अनेक राजाओं का विनाश किया।

इधर दुर्योधन ने कपट किया। उसने पाण्डवों को जुआ खेलने का आमंत्रण दिया। दुर्योधन ने अधर्म से जुआ खेला। इसलिए पाण्डवों की हार हुई। पाण्डव वन में गये। वे राजमहल में रहते थे, किन्तु उनका सब कुछ चला गया और वन में रहने लगे। पाण्डव वनवास में भी मन को शान्त रखकर भक्ति करते थे और सोचते थे कि मेरे प्रभु ने जो किया है वह अच्छा ही किया है। राजमहल में ध्यान में तन्मयता नहीं रहती थी, लेकिन यहाँ ध्यान में तन्मयता आती है।

राजमहल में प्रभु के नाम का कीर्तन करते समय हृदय द्रवित नहीं होता था; किन्तु अब हृदय द्रवित होता है और आनंद आता है। वनवास में सात्विक आनंद है और राजमहल में राजसी सुख है। हमने राजमहल में राजसी सुख तो भोगे किन्तु हमें सात्विक आनन्द नहीं मिला। प्रभु ने सात्विक आनंद लेने के लिये ही वन में भेजा है। वनवास के बिना जीवन में श्वास नहीं आयेगी। जगत् के महापुरुषों ने वन में रहकर तपस्या की। इससे वे महान हो गये। वनवास परिपूर्ण करने के बाद पाण्डवों ने अपने राज्य को मांगा। दुर्योधन ने राज्य देने से इन्कार कर दिया। भगवान् दूत कार्य करने के लिए दुर्योधन के यहाँ गए, किन्तु सफलता नहीं मिली। अंत में कौरव-पाण्डवों में युद्ध होना निश्चित हो गया। उस समय बलरामजी ने विचार किया कि घर में रहने पर मुझे इस युद्ध में किसी का तो पक्ष लेना ही पड़ेगा, किन्तु मुझे इस युद्ध में किसी का पक्ष नहीं लेना है। इसलिए वे द्वारका छोड़कर यात्रा पर चल पड़े उन्होंने चार धाम, सप्तपुरी की यात्रा की।

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्त पुर्योत्र मोक्षदाः॥

सप्तपुरी में साढ़े तीन शिवजी की और साढ़े तीन विष्णु भगवानजी की हैं। अयोध्या, मथुरा और द्वारावती या द्वारका इन तीनों के मालिक विष्णु भगवान् हैं। काशी, अवन्तिका या उज्जयिनी और मायापुरी या हरिद्वार–इन तीनों के मालिक शिवजी महाराज हैं। सातवीं पुरी-काँची है। काँची के दो भाग हैं शिव काँची और विष्णु काँची काँची में वरदराज महा-विष्णु हैं और शिव काँची में अमरनाथ महादेव हैं। साढ़े तीन-साढ़े तीन मिलाकर सात होता है। इस सप्तपुरी में द्वारका की महिमा बहुत बताई गई है। द्वारका की गणना सप्तपुरी में होती है और भगवान् का पश्चिम धाम भी द्वारका है। द्वारका की गणना चार धाम में भी होती है। अयोध्या और काशी सप्तपुरी में होने से भी प्रभु के धाम में नहीं गिनी जातीं। द्वारका की गणना सप्तपुरी में भी है और चार धाम में भी है। द्वारकानाथ के आगमन से इस गुजरात की महिमा बहुत बढ़ गई है। देश के एक-एक मालिकदेव माने गए हैं। महाराष्ट्र के मालिक देव पंढरपुर के विट्ठलनाथजी हैं। महाराष्ट्र के अनेक लोग वर्ष में एक-दो बार विट्ठलनाथजी का दर्शन करने जाते हैं। कर्नाटक-आन्ध्र प्रदेश के मालिक देव श्रीव्यंकट बालाजी महाराज हैं। गुजरात-सौराष्ट्र के मालिक देव द्वारकानाथ हैं। द्वारकानाथ द्वारका में अखण्ड विराजमान हैं। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि भगवान् द्वारका छोड़कर डाकोर में आ गये हैं। भगवान् व्यासजी को यह बात मान्य नहीं है। व्यासजी ने भागवत में द्वारका की महिमा का बहुत वर्णन किया है और कहा है कि भगवान् द्वारका छोड़ते ही नहीं। द्वारकानाथ द्वारका में अखण्ड विराजमान हैं। वृन्दावन में भगवान् का अखण्ड निवास है। इसलिए वृन्दावन में रासलीला

होती है और नित्य रास होता है। जिस प्रकार वृन्दावन में भगवान् का अखण्ड निवास है उसी प्रकार भगवान द्वारका में अखण्ड रूप से विराजमान हैं। बोडाणा को एक स्वरूप दिया गया है, किन्तु प्रभु ने द्वारकापुरी नहीं छोड़ी है। द्वारका अति-सात्विक दिव्य भूमि है। द्वारका में समुद्र नारायण विराजमान हैं। समुद्र और गोमती का संगम भी है। समुद्र में सभी तीर्थ आ जाते हैं–सागरे सर्वतीर्थाणि सप्तपुरी में द्वारका की महिमा विशेष रूप से बताई गई है।

दाऊजी महाराज की यात्रा का वर्णन किया गया है। वह वर्णन इस प्रकार किया गया है कि वे नैमिषारण्य तीर्थ में पहुँचे और वहाँ ऋषियों के साथ सत्संग किया। उन्होंने विल्वल राक्षस को मारा, उनकी लीला अनन्त है।

७६– मेरी मित्रता श्रीकृष्ण से जन्म-जन्मान्तर हो

राजा परीक्षित ने पूछा, ''महाराज, कृपा कीजिए। श्रीकृष्ण की कथा सुनने से अब भी मुझे तृप्ति नहीं हो रही है मुझे मेरे भगवान् की कथा विस्तार से सुनाइए। मुझे श्रीकृष्ण लीला सुनने की बड़ी इच्छा है।'' शुकदेव महाराज राजा परीक्षित का श्रीकृष्ण-लीला के प्रति प्रेम देखकर खुश हो गए। उन्होंने श्रीकृष्ण का स्मरण किया कि मेरे श्रीकृष्ण अधिक उदार हैं। श्रीकृष्ण अतिशय प्रेमालु भी हैं। इस जीव को भगवत स्वरूप का ज्ञान नहीं है।

भगवान् के स्वभाव को यह जीव नहीं जानता। इसीलिए यह संसार की खुशामद करता है। यदि यह ईश्वर का स्वरूप जान ले, परमात्मा का स्वभाव पहचान लें तो यह कभी संसार की खुशामद न करें। श्रीकृष्ण अत्यन्त उदार हैं। जो उनके साथ प्रेम करता है उसे वे श्रीकृष्ण बना देते हैं। शुकदेवजी महाराज कहते हैं, मेरे भगवान् अत्यन्त उदार हैं और बहुत प्रेम करते हैं। फिर भी यह जीव इतना अभागा है कि ईश्वर से प्रेम नहीं करता। यदि यह परमात्मा से प्रेम करे तो परमात्मा इसे परमात्मा बना देते हैं।

कृष्णस्यासीत् सखा कश्चिद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः।
विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः॥ (१०-८०-६)

शुकदेवजी महाराज श्रीकृष्ण के बालमित्र सुदामदेव की कथा सुनाते हैं, ''सुदामदेव गरीब ब्राह्मण हैं; किन्तु महाज्ञानी सुदामदेव ने निश्चय किया था कि ज्ञान का फल पैसा नहीं है। मुझे ज्ञान का उपयोग परमात्मा के ध्यान में ही करना है। मुझे ज्ञान का उपयोग पैसे के लिए नहीं करना है। सुदामदेव दूर-दूर के गाँवों में कथा सुनाने जाते, यज्ञ में भाग लेते, कर्मकाण्ड कराते। उसमें उनको धन का ढेर मिल सकता था। वे चार वेद और छह शास्त्रों के परिपूर्ण ज्ञाता हैं। फिर भी

उन्हें पैसे के लिए ज्ञान का उपयोग पसन्द नहीं हैं। वे सोचते कि पैसे के लिए ज्ञान का उपयोग कौन करे?'' ज्ञान का फल ध्यान है। जब से जीवन में पैसा मुख्य हुआ तब से पाप बढ़ा है। जीवन में पैसा मुख्य होने के कारण जीवन बिगड़ गया है। सुदामदेव को पैसे के लिए प्रवृत्ति करने की इच्छा नहीं हुई। उन्होंने अयाचित व्रत लिया है। अयाचित व्रत में ऐसा नियम होता है कि किसी से यह नहीं कहा जाता कि मेरा अयाचित व्रत है। किसी के घर नहीं जाना। यदि कोई अपने घर आकर कुछ दे तो ले लेना; किन्तु अयाचित व्रत का दूसरा भी नियम है कि जिस दिन जो कुछ भी आए उसे सूर्यास्त होने के पहले ही उपभोग में ले लेना, कल के लिए एक दाना भी छोड़ना नहीं। इसीलिए सुदामदेव गरीब रह गए हैं। वे अत्यन्त शान्त हैं, जितेन्द्रिय हैं, महान् तपस्वी हैं। वे महान् ज्ञानी हैं, अन्तर्मुख हैं। वे सारे दिन घर में रहकर ध्यान करते हैं, ब्रह्मचिन्तन करते हैं। आज जिसे लोग पोरबन्दर कहते हैं वही सुदामापुरी है। सुदामदेव वहीं रहते थे। उनकी पत्नी का नाम भागवत में नहीं लिखा है; किन्तु अन्य ग्रन्थों में उनकी पत्नी का नाम सुशीला आता है। उनकी पत्नी महान् पतिव्रता है। पति को परमात्मा मानती है। स्त्री की परीक्षा सम्पत्ति में नहीं होती विपत्ति में होती है। यदि पति के घर में बहुत सुख हो, अधिक सम्पत्ति हो और पति के साथ प्रेम रखें तो यह ठीक ही है। पति के घर में खाना नहीं है, कपड़ा नहीं है; किन्तु वह पतिव्रता सुशीला पति को परमात्मा मानती है, दुःख सहन करती है। उसने कभी अपने पति से यह नहीं कहा है कि आप पैसे के लिए काम करें। यदि पैसे के लिए प्रवृत्ति नहीं करनी थी तो फिर विवाह करने की क्या आवश्यकता थी? वह महान् पतिव्रता है। उसके पतिदेव सारे दिन घर में बैठे रहते हैं और दिन भर भक्ति करते रहते हैं। वह पति को परमात्मा मानकर उनकी सेवा करती है। नाम के अनुसार उसमें गुण भी हैं वह बहुत सुशील भी है।

कितने लोगों का नाम शान्ताबेन होता है; किन्तु वे बातें बहुत करती है! जरा भी शान्ति नहीं रखती है। नाम के अनुसार गुण होना चाहिए। सुशीला अत्यन्त सुशील थी। घर में एक ही साड़ी थी। उसे स्नान करने पर वह अपने शरीर पर ही सुखाती है। किसी दिन अपने पतिदेव को थोड़ा भी नहीं सताती। कभी-कभी पन्द्रह-बीस दिन ऐसे चले जाते हैं जबकि खाना नहीं मिलता। सुदामदेव महान् ज्ञानी थे। कभी-कभी उन्हें बोलने की इच्छा होती ते वे घर में ही ठाकुरजी के सामने बैठकर कथा सुनाते, ''भगवान् मेरे श्रोता हैं। वे सुनते हैं और मैं बोलता हूँ। वे अपनी पत्नी से कहते कि यदि तेरी इच्छा हो और तुझे फुरसत हो तो मेरी कथा सुन। सुशीला कथा सुनती तो उसे आनन्द आता था। वह विचारती कि ये कैसा सुन्दर बोलते हैं। मेरे पतिदेव महान् ज्ञानी हैं। ये घर से बाहर जाकर कथा सुनाएँ तो इन्हें बहुत कुछ मिल सकता है; किन्तु इनको पैसे के लिए

प्रवृत्ति करने की इच्छा भी नहीं होती। घर में कुछ न होने पर भी पति-पत्नी के जीवन में अत्यन्त संतोष है। जिस घर में सन्तोष होता है उस घर में सब कुछ होता है; किन्तु जिस घर में सन्तोष नहीं होता उसमें कुछ नहीं होता। सुदामदेव अत्यन्त संतोषी थे। सुशीला भी उसी प्रकार पवित्र जीवन गुजार रही थी।

परमात्मा की लीला बड़ी विचित्र है उनके घर एक बालक का जन्म हुआ। वह बालक बड़ा होकर अपनी माँ को सताने लगा। वह कहता, "भूख लगी है, बहुत ठंडी पड़ रही है, कपड़ा नहीं है, खाना नहीं है। सुदामदेव एक छोटी सी झोंपड़ी में रहते हैं। वे एक ओर कोने में बैठे हैं। ध्यान करते हैं और दूसरी ओर लड़का बहुत रोता है। फिर भी महाराज का मन शान्त है। अनुकूल परिस्थिति में मन को शान्त रखना सच्ची शांति नहीं है। विपरीत परिस्थिति में जिसका मन शान्त रहता है उसी की शान्ति सच्ची है। अनुकूल परिस्थिति में तो सभी शान्ति रखते हैं। सुदामदेव के घर में खाना नहीं है। उनकी झोंपड़ी ऐसी है कि उसमें धूप भी अन्दर आती है और बरसात भी अन्दर आती है; लड़का रोता है। महाराज शान्ति से नारायण का ध्यान करते हैं। वे सच्चे ज्ञानी हैं। उनका मन अत्यन्त शान्त है बालक अपनी माता को हैरान करता है। माता का अपना हृदय होता है। सुशीला बहुत व्याकुल हो गई है। वह सोचती है, "प्रभु ने मुझे माता तो बनाया है; किन्तु इस बालक को कुछ खाने के लिए नहीं दिया है। यदि प्रभु ने मुझे बाँझ रखा होता तो कितना अच्छा था। इसके पिता को तो पैसे के लिए प्रवृत्ति करने की इच्छा ही नहीं होती। वे घर से कभी बाहर नहीं निकलते। किसी के सामने नहीं देखते और सारे दिन भक्ति करते रहते हैं। अपने पतिदेव से कैसे कहूँ कि अपनी भक्ति छोड़कर पैसे के लिए कुछ प्रवृत्ति करो। मुझसे कुछ कहा नहीं जाता।" बालक माँ को बहुत सताता है इससे सुशीला एक दिन बहुत व्याकुल हो गई। उसने विचार किया कि मैं अपने पतिदेव को युक्ति से समझाऊँगी। उसने एक दिन पतिदेव को वंदन कर कहा, "आज आपकी कथा मैं आपको सुनाना चाहती हूँ। मैंने आपके मुख से जो सुना है उसे ही मैं आपको सुनाऊँगी। आपने एक बार अपनी कथा में कहा था कि श्रीकृष्ण को अपने मित्र अतिशय प्यारे लगते हैं।" सुदामदेव ने कहा, "हाँ देवी। मेरा कन्हैया मित्रों के साथ बहुत प्रेम करता है। मित्रों के लिए तो वह माखनचोर कहलाया। उसे मित्र बहुत प्यारे लगते हैं।" सुशीला ने हाथ जोड़कर कहा, "मैंने ऐसा सुना है आप भी द्वारकानाथ के मित्र हैं। क्या यह बात सत्य है?" सुदामदेव ने माथा हिलाकर कहा, "यह बात सत्य है। हम दोनों एक ही गुरुकुल में पढ़ते थे। मैं श्रीकृष्ण का मित्र हूँ।" सुशीला ने प्रेम से समझाकर कहा कि यदि आप श्रीकृष्ण के मित्र हैं तो क्या आपको अपने मित्र का दर्शन करने की इच्छा नहीं होती? आप अपने मित्र से मिलने तो जाइए। सुदामदेव

ने कहा, ''देवी, मैं पैसे के लिए जरा भी प्रवृत्ति नहीं करता; किन्तु मैं तुझसे सच कहता हूँ कि मैं इस झोंपड़ी में एक क्षण भी खाली नहीं बैठता। मैं अपने मित्र से मन द्वारा मिलता हूँ, मन से उसके दर्शन करता हूँ, उसके नाम का जप करता हूँ और उसकी स्तुति करता हूँ। उससे मन द्वारा मिलने से मुझे आनन्द आता है। शरीर-मिलन की अपेक्षा मन के मिलने में अधिक आनन्द है।

सुदामदेव महान् ज्ञानी भक्त थे। सुशीला ने उनसे कहा 'आप उनसे मन द्वारा मिलते होंगे, किन्तु उनका प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए क्यों नहीं जाते हैं? एक बार प्रत्यक्ष दर्शन करने तो जाइए।' सुदामदेव ने कहा, मैं उनका प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए नहीं जाता। इसका एकमात्र कारण यह है कि मैं उनका मित्र होने पर भी दरिद्रनारायण हूँ और वे लक्ष्मीपति नारायण हैं। यदि दरिद्रनारायण लक्ष्मीपति नारायण से मिलने आये तो किसी को यह शंका होगी कि कुछ माँगने आया होगा। मेरे नियम के अनुसार माँगना और मरना समान है। चाहे कुछ भी हो मैं नहीं माँगूगा और प्रभु के द्वार पर भी माँगने के लिए नहीं जाऊँगा। भगवान् को जो देना होगा वह मेरे घर पर आकर देंगे।' सुशीला अपने पतिदेव को प्रेम से समझाने लगी। 'मैं वहाँ जाकर आपसे कुछ माँगने के लिए नहीं कहती। आपने ही मुझ से कथा में कहा है कि द्वारकानाथ की आँखें हमेशा प्रेमभीनी ही होती हैं। वे सबको बहुत प्रेम से देखते हैं। इसीलिए वे आपको देखते ही सब कुछ समझ लेंगे। उनसे माँगने की क्या आवश्यकता है? लोग बाग में जाकर बैठते हैं, तो पेड़ बिना माँगे उन्हें सुवास देते हैं। भला पेड़ से कौन माँगने जाता है? यदि ये पेड़ बिना माँगे देते हैं, जो परमात्मा हैं, अन्तर्यामी हैं, सर्वज्ञ हैं और सब कुछ जानते हैं। वे तुमको देखते ही सब कुछ समझ जाएँगे। उनके यहाँ जाकर कुछ माँगने की जरूरत नहीं हैं। केवल उनके पास जाने की जरूरत है। वे आपका आदर करेंगे। आप एकबार द्वारका जाइये।' सुदामदेव महान् योगी हैं, महान् तपस्वी हैं। सब सद्गुण होने पर भी उनके मन में कुछ अभिमान छिपा हुआ है। सुदामदेव ने कहा दूसरे ब्राह्मण जिस प्रकार द्वार-द्वार भटकते हैं उसी प्रकार मैं कहीं नहीं जाता। यह मेरा नियम है। मैं प्रभु के द्वार पर भी नहीं जाऊँगा। सुशीला ने अपने पति से प्रेमपूर्वक कहा, आपने किसी मनुष्य के दरवाजे पर न जाने का नियम बनाया है। श्रीकृष्ण तो परमात्मा हैं। प्रभु के द्वार पर तो जाना ही चाहिए। प्रभु के द्वार पर न जाना अभिमान कहा जायेगा। आप बहुत बड़े हैं। ऐसा अभिमान अपने मन में कभी मत रखिये। पत्नी ने पतिदेव से सत्संग की बात कहकर बहुत युक्तिपूर्वक उनके मन का अभिमान दूर किया।

सुदामदेव के मन में यह विचार आया, पत्नी भला मुझ से क्या गलत कहती है? विवाह करने के बाद आज तक मैंने इसे जरा भी सुख नहीं दिया, इसे खाना नहीं दिया, कपड़ा नहीं दिया। मेरे घर में इसके लिए सब दुःख ही दुःख है। फिर भी यह मुझे परमात्मा मानती है। इसके मन

में मेरे प्रति कैसा भाव है यह बहुत योग्य है। इसीलिए तो मैं भक्ति कर सकता हूँ। यह मुझे कभी सताती नहीं। यह रोज मुझे समझाती है कि अपने मित्र के दर्शन करने जाओ, दर्शन करने जाओ। इसमें खराब क्या है? हमें दर्शन करने तो जाना चाहिए। मेरा प्रभु के द्वार पर न जाना अभिमान है। अब मुझे अपने मन में अभिमान नहीं रखना है। मैं वहाँ जाऊँगा। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, 'मैं द्वारका में तो जाऊँ, किन्तु बहुत दिन के बाद हम लोग मिलेंगे तो मित्र के लिए कुछ भेंट देनी चाहिये न? हमारे घर में तो कुछ भी नहीं है। सुशीला ने कहा कि मैं आपको भेंट लाकर दूँगी। सुशीला आज तक किसी के यहाँ माँगने नहीं गई थी, किन्तु आज पड़ोस में माँगने गई। वह अपने लिए नहीं भगवान् के लिए माँगने गई। वह चिउरा माँगकर ले आई। उसमें से एक दाना भी उसने घर में नहीं रखा और न एक दाना अपने बालक को खाने के लिए दिया। उसने निश्चय किया कि मैं परमात्मा के लिये माँगने गई थी। इस दाने में से मुझे कुछ भी रखने का अधिकार नहीं है। चिउरा बाँधने के लिए कपड़े का एक चीथडा भी उसके घर में नहीं था। उसने दो-तीन चीथड़े एकत्र कर चिउरा की गठरी बनाई और सुदामदेव को दी। वह विचार करने लगी, 'मैंने सुना है कि द्वारका सोने की बनी है, वहाँ जाने पर रानियों का वैभव और श्रृंगार देखकर मेरे पतिदेव घबरा उठेंगे। ये किसी के घर गये नहीं हैं। वे बहुत संकोची हैं। इन्हें यह चिउरा देने की हिम्मत भी नहीं होगी। मुझे डर है कि ये यह गठरी वापस ले आएँगे। उसने पतिदेव से कहा 'यह भेंट द्वारकानाथ को अर्पण करते समय यदि आपको संकोच हो तो मेरा नाम लें और उनसे कहें कि आपकी भाभी ने यह भेंट आपको दी है। उसने यह भी विचार किया कि मैं द्वारकानाथ की भाभी हूँ और द्वारकानाथ के एक मित्र की पत्नी हूँ। मेरे पतिदेव को तो कुछ चाहिये नहीं। यदि भगवान् बालक के लिए कुछ दे दें तो बहुत अच्छा है। वे यह चिउरा देखकर सब समझ जायेंगे। वे अत्यन्त उदार हैं। सुदामदेव द्वारका जाने के लिए तैयार हो गये। उन्होंने एक फटी हुई धोती पहनी थी। उनके बगल में गठरी दबी थी। उनके हाथ में एक छोटा डण्डा था। अन्य कोई चीज नहीं थी। सुशीला प्रेमसे पतिदेव के दर्शन करती है, उनके शरीर में हड्डी ही दिखाई देती है, उनका शरीर बहुत दुर्बल है। पतिदेव को जाता देखकर सुशीला का हृदय भर आया, उसकी आँख में आँसू आ गए। वह सोचती है, आज मैंने अपने पतिदेव को बहुत सताया। इनका शरीर बहुत दुर्बल हो गया है।

मैं बड़ी स्वार्थी हूँ। मैं इनके पीछे पड़ गई। मुझे सब कुछ चाहिए; किन्तु मेरे पतिदेव निरपेक्ष हैं। ये तो ऐसे हैं कि जहाँ बैठकर द्वारकानाथ का ध्यान करें, स्मरण करें वहीं इनको उनके दर्शन हों। ये महान् ज्ञानी भक्त हैं। इनको द्वारका जाने की जरूरत नहीं थी; किन्तु मैं बड़ी स्वार्थी हूँ और मैंने इनसे बहुत आग्रह किया। इसीलिए ये वहाँ जाते हैं। इनका शरीर बहुत दुर्बल हो गया है। द्वारका

तो यहाँ से बहुत दूर है। यदि इन्हें रास्ते में कुछ हो जाए तो। सुशीला का हृदय व्याकुल हो उठा। उसके मन में यह विचार आया कि मैंने अपने पतिदेव को बहुत सताया है यह सोचते ही वह पतिव्रता स्त्री रोने लगी। सुशीला ने सूर्यनारायण की मनौती की; 'हे सूर्यनारायण मेरे पतिदेव द्वारका जा रहे हैं। इनका शरीर बहुत दुर्बल हो गया है। हे सूर्य भगवान्, तुम मेरे पतिदेव के साथ रहना। मेरे पति ही मेरे सच्चे धन हैं। हे सूर्यनारायण यह गरीब ब्राह्मणी भला तुमको क्या दे सकती है? हाँ, मैं दिन में तीन बार तुमको वंदन करूँगी, तुम मेरे सौभाग्य की रक्षा करना। भगवान् भले ही इन्हें एक भी पैसा न दें, किन्तु मेरे पतिदेव सुखपूर्वक घर आ जायें यही मेरी इच्छा है और कोई दूसरी इच्छा नहीं है।

सुदामा ने द्वारका के लिए प्रस्थान किया वे द्वारकानाथ का स्मरण करते-करते चल रहे थे। सुदामदेव ने विचार किया, ''बहुत वर्ष बीत गए। हम दोनों गुरुकुल में साथ-साथ रहते थे। मैं पत्नी के कहने से जा रहा हूँ। वह प्रतिदिन घर में बक-बक करती रहती है। कहीं वहाँ जाने से मेरा अपमान तो नहीं होगा। यदि वे कहें कि मैं तुझे नहीं पहचानता, तो क्या होगा? अब वे महान् बन गए हैं। नहीं-नहीं ऐसा कहना ठीक नहीं। मेरा कन्हैया बहुत प्रेमालु है। वह मुझसे कैसा प्रेम करता था। उसने मुझसे कहा है कि तू मेरे घर आना; किन्तु इस बात को कहे अनेक वर्ष बीत गए हैं।'' सुदामदेव विचार करते-करते चले जा रहे थे।

द्वारकानाथ को यह खबर पड़ी कि एक सच्चा ब्राह्मण मुझसे मिलने आ रहा है। उसने इतना अधिक तो पढ़ा, किन्तु अपनी विद्या का उपयोग कभी पैसे के लिए नहीं किया। बेचारा कितना दुःख सहन करता है। उसने अयाचित व्रत लिया है। वह सारे दिन ध्यान करता है और त्रिकाल संध्या करता है। ऐसा तपस्वी ब्राह्मण किसी के घर नहीं जा सकता; किन्तु वह आज मेरे घर आ रहा है। उसे लाने के लिए मुझे कोई सवारी भेजनी ही चाहिए।''

रास्ते में चलते-चलते सुदामदेव बहुत थक गए। उनके सिर में चक्कर आ गया और शरीर अधिक कमजोर हो गया। वे एक पेड़ के नीचे सो गए प्रभु ने गरुड़ को आज्ञा दी कि तुम सुदामदेव को इस प्रकार द्वारका में उठा लाओ कि उनकी निद्रा भंग न हो। गरुड़जी सुदामदेव को धीरे से उठा लाए और उन्हें द्वारका के पास एक पेड़ के नीचे रख दिया।

एक घण्टे बाद सुदामदेव की नींद खुली। वे आगे ज्यों ही थोड़ा चले त्यों ही उन्हें सोने की द्वारका दिखाई देने लगी। उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने लोगों से पूछा कि इस गाँव का क्या नाम है? लोगों ने कहा कि महाराज इसे द्वारका कहते हैं। यह सुनकर सुदामदेव ने कहा कि क्या यह श्रीकृष्ण के सोने की द्वारका है? उन्हें उत्तर मिला, ''हाँ, महाराज, श्रीकृष्ण के सोने की

द्वारका यही है। सुदामदेव को यह सुनकर आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि मेरे गाँव के लोग तो यह कहते थे कि द्वारका बहुत दूर है। वहाँ पन्द्रह–बीस दिन में पहुँचोगे। मैं आज सबेरे घर से चला और इस समय द्वारका में पहुँच गया। वह कहाँ दूर है?'' भूदेव को पता नहीं है कि गरुड़जी उन्हें उठाकर यहाँ ले आए हैं। वे लोगों से पूछने लगे कि श्रीकृष्ण कहाँ रहते हैं? लोगों को आश्चर्य हुआ कि यह क्या पूछता है! और उन्होंने कहा कि महाराज क्या आप श्रीकृष्ण को पहचानते हैं? सुदामदेव ने कहा, ''मैं उन्हें अच्छी तरह पहचानता हूँ। हम दोनों एक ही गुरुकुल में पढते थे मैं उनका मित्र हूँ। लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे, ''इसने फटी हुई धोती पहनी है, बहुत दिन का भूखा दिखाई दे रहा है और कहता है मैं श्रीकृष्ण का मित्र हूँ। क्या श्रीकृष्ण को दूसरा कोई मित्र मिला नहीं जो उन्होंने ऐसे व्यक्ति को मित्र बनाया। लोगों ने पूछा कि महाराज क्या आप सच कहते हैं? सुदामदेव ने हाथ जोड़कर कहा, ''मैंने आज तक कभी झूठ नहीं बोला है। मैं श्रीकृष्ण का मित्र हूँ।'' लोगों ने कहा, ''इस रास्ते चले जाइए। आपको सोलह हजार राजमहल देखने को मिलेंगे। आप किसी भी राजमहल में जाएँगे, तो वहाँ श्रीकृष्ण विराजमान दिखाई देंगे।''

सुदामदेव आगे बढ़े तो उन्हें सबसे पहले रुक्मिणीजी का राजमहल मिला। महालक्ष्मी के ऐश्वर्य का वर्णन भला कौन कर सकता है? राजमहल सोने का बना हुआ है। चारों ओर सुन्दर बगीचा है और सिपाही पहरा दे रहे हैं। सुदामदेव दूर से वह राजमहल देखते हैं। वे गरीब है; किन्तु उनका हृदय गंगाजल के समान शुद्ध है। उनके मन में जरा भी मत्सर नहीं है। अभी प्रभु ने उनका स्वागत नहीं किया है—और न सन्मान किया है। फिर भी उनका राजमहल देखकर ब्राह्मण खूब खुश हो गया है। उसने हृदय से आशीर्वाद दिया, ''मेरे श्रीकृष्ण के घर में सदा–सर्वदा लक्ष्मी का अखण्ड निवास हो। इनका राजमहल कैसा सुन्दर है।'' एक सिपाही की दृष्टि उस पर पड़ी। उसने देखा कि यह कोई गरीब ब्राह्मण है। वह दौड़ता–दौड़ता उसके पास पहुँचा और वंदन कर बोला, ''यह राजमहल महालक्ष्मी माता रुक्मिणीजी का है। माताजी की हमें विशेष आज्ञा है कि यदि कोई साधु आए, कोई ब्राह्मण आए, कोई भी गरीब आदमी आए तो मुझे पूछे बिना वह जो माँगे उसे दे देना। माँ की ऐसी आज्ञा है। महाराज, हम आपकी क्या सेवा करें? आपको क्या चाहिए?'' सुदामदेव ने कहा मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं श्रीकृष्ण से प्रेमपूर्वक मिलने आया हूँ। मैं उनका मित्र हूँ, अन्दर जाना है और उनसे मिलना है।'' सिपाही ने कहा आप अन्दर जाकर क्या करेंगे? आपको जो काम हो वह मैं करने को तैयार हूँ। सुदामदेव ने कहा, 'मेरा कोई काम नहीं है। मैं प्रेम से मिलने आयां हूँ। तुम अन्दर खबर दे दो कि आपका एक बालमित्र सुदामा आपसे मिलने आया है।'' सिपाही अन्दर चला जाता है। सुदामदेव आँगन में खड़े हैं। वे थोड़ा घबरा उठे और सोचने लगे,

''जिसका वैभव ऐसा है, जिसका ऐश्वर्य ऐसा है, वह कदाचित मुझे भूल गया होगा। मैं यहाँ आया हूँ; किन्तु मेरा अपमान न हो तो ही अच्छा है।''

भूदेव धरती में नजर गड़ाकर खड़े हैं। वह सेवक अन्दर गया है। सिंहासन पर विराजमान द्वारकानाथ को वंदन कर सेवक कहता है, बाहर एक ब्राह्मण आया है, उसके शरीर की सभी हड्डियाँ दिखाई देती हैं वह अधिक दुर्बल है, उसने एक साधारण-सी फटी हुई धोती पहनी है। उसके बगल में एक छोटी सी गठरी हैं उसके हाथ में डण्डा है और कोई सामान उसके पास नहीं है। मैंने उसे बहुत समझाया कि मुझे सेवा बताइए। हम आपकी सेवा करेंगे। फिर भी वह कहता है कि मैं किसी से सेवा लेने नहीं आया हूँ। मैं तो मालिक से मिलने आया हूँ। वह यों तो बहुत गरीब दिखाई देता है, किन्तु उसकी आँख में और ललाट पर तेज दिखाई देता है उसका ब्रह्म तेज भला कैसे छिप सकता है। जो दिन में तीन बार संध्या करता हो और जो सूर्यनारायण की उपासना करता हो उसके कपाल में ब्रह्मतेज होगा ही। वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं है, तेजस्वी ब्राह्मण है और वह यह कहता है कि मैं मालिक का मित्र हूँ मेरा नाम सुदामा है।

सु दा....मा....तीन अक्षर कान में पड़ते ही श्रीकृष्ण सिपाही के साथ बोलने को भी तैयार नहीं हुए, वे अपने स्थान से कूद पड़ते हैं और उनके मुँह से निकलता है मेरा सुदामा आया, मेरा सुदामा आया। जब यह जीव परमात्मा के साथ प्रेम करते हुए अपना देहभान भूल जाता है, तब परमात्मा भी अपने लक्ष्मीपति होने का गौरव भूल जाते हैं। आज भगवान् को यह याद नहीं रहा कि मैं द्वारका का राजा हूँ। वे दौड़ते हुए बाहर निकले। रुक्मिणीजी को बहुत आश्चर्य होता है कि अनेक लोग आए हैं, किन्तु कभी भी ये इस प्रकार दौड़ते हुए बाहर नहीं गए हैं यह कौन आया है? उसे देखने के लिए रुक्मिणीजी दौड़ पड़ती हैं। द्वारकानाथ दौड़ते हुए बाहर निकले हैं और सुदामदेव की छाती से अपनी छाती मिलाकर आलिंगन करते हैं। इनका हृदय स्वच्छ है इनका हृदय गंगाजल जैसा शुद्ध है। परमात्मा को किसी का कपड़ा देखने की जरूरत नहीं, वे तो हृदय देखते हैं। श्रीकृष्ण ने सुदामदेव को आलिंगन किया और उनके कंधे पर अपना मस्तक रखा। जब उन्होंने सुदामा की पीठ पर हाथ फिराया तब उनकी हड्डियों का स्पर्श हुआ। उनके शरीर की हड्डियों के स्पर्श से श्रीकृष्ण की आँखों से चौधार आँसू फूट पड़े। वे बोल पड़े, 'यह मेरा मित्र है इसकी यह दशा! यह कितना दुःख सहनकर रहा है। यह तो मेरी भूल है कि ऐसे तपस्वी मित्र के घर जाकर मुझे कुछ देना चाहिए। मैं वहाँ नहीं गया। यह मेरी बहुत भूल हुई है। यह नियम के कारण किसी के द्वार पर नहीं जाता। श्रीकृष्ण ने सुदामदेव से कहा कि हे मित्र, तू यहाँ आया, तुझे देखकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। वे सुदामदेव का हाथ पकड़कर अन्दर ले जाते हैं। उन्हें अपने सिंहासन

पर बैठाते हैं। श्रीकृष्ण उनके चरणों के पास बैठे हैं। सुदामदेव कहते हैं, आप बड़े हैं। आप यहाँ मेरे साथ सिंहासन पर बैठिये।' श्रीकृष्ण ने कहा, मित्र सबसे श्रेष्ठ होता है। तू सभी से श्रेष्ठ है। मित्र, मैं तेरे आशीर्वाद से बड़ा बना हूँ। मैंने अपने को भुलाया नहीं है मैं तो तेरे चरण में ही बैठूँगा। सुदामदेव के मन में यह शंका थी, मैं दरिद्र हूँ, वे लक्ष्मीपति हैं। यदि वे कहीं मेरा अपमान कर दें तो?' आज परमात्मा चरण में बैठे हैं।

श्रीकृष्णजी ने रुक्मिणीजी से कहा, मुझे मित्र की पूजा करनी है। तुम इसकी तैयारी करो। रुक्मिणीजी जब तक जल लेकर वहाँ पहुँचीं पहले ही प्रभु की आँखों के आँसूओं ने सुदामदेव के चरण धो दिये हैं। जब रुक्मिणीजी जल ले आती हैं और सुदामदेव के चरण पर गिराती हैं तब श्रीकृष्ण उनका चरण पखारते हैं। सुदामदेव तपस्वी ब्राह्मण हैं। इसीलिए वे पैर में जूता नहीं पहनते। रास्ते में चलते समय उनके पैर में काँटे धँस गए थे। श्रीकृष्ण उन काँटों को निकालते हैं और कहते हैं मित्र क्या तू जूता नहीं पहनता? सुदामाजी कहते हैं कि नहीं, जूता नहीं पहनता जिसे सारे दिन जप करना हो वह यदि जूता पहने तो मन्त्र जप किस प्रकार होगा, सारे दिन अस्पर्शावस्था में रहना और रात को भी उसी अवस्था में सोना है। ब्राह्मण का अवतार तप करने के लिए ही है। सुदामा ने कभी जूता पहना ही नहीं।

भगवान् ने सुदामदेव के पैर से काँटा निकाला है। एक काँटा बहुत गहराई तक गड़ गया था। भगवान् ने रुक्मिणीजी को आज्ञा दी कि सूई लाओ। रुक्मिणीजी को सूई लाने में विलंब हुआ। काँटा सुदामदेव के पग में दर्द देता है और श्रीकृष्ण के हृदय में दर्द होता है। श्रीकृष्ण प्रेम में इस प्रकार पागल हो गए हैं कि सुदामदेव का चरण हाथ में लेकर अपने दाँतों से काँटा निकालते हैं। जब जीव ईश्वर के साथ प्रेम करते हुए देहभान भूल जाता है, तब ईश्वर भी अपने ईश्वरत्व को भूल जाता है।

इसके बाद श्रीकृष्ण ने सुदामदेव की पूजा की। जब उन्होंने सुदामदेव के कपाल में चंदन लगाया, तब उनकी नजर उनके कपाल पर पड़ी। विधाता ने कपाल में लिखा था, ''श्रीक्षय:!'' यह विधाता का लेख था कि यह ब्राह्मण ज्ञानी होगा, तपस्वी होगा और जितेन्द्रिय भी होगा; किन्तु इसने पूर्व जन्म में महापाप किया है। इस कारण यह इस जन्म में दरिद्री होगा।

श्रीकृष्ण ने विचार किया, मेरे मित्र के कपाल में ऐसा लिखा है। क्या विधाता को लिखना नहीं आया? भगवान् ने अर्चना करते समय उस लेख को बदल दिया और लिखा, ''यक्षश्री।'' अर्थात् कुबेर के घर जो संपत्ति नहीं है, वह संपत्ति मुझे अपने मित्र को देनी है।

सुदामदेव ने भोजन कर लिया है। इसके बाद दोनों मित्र पलंग पर एक साथ बैठे हैं। भगवान् ने सुदामदेव का हाथ अपने हाथ में ले लिया है। वे पूछते हैं, ''मित्र क्या तुम्हें याद आता है। श्रीकृष्ण ने कहा, ''मैं तुझे लड़कपन से जानता हूँ। न तो तुझे खाने की इच्छा थी, न खेलने की इच्छा थी। तू सारे दिन संध्या करता था। गायत्री-जप बहुत करता था। मैं तुझे जबर्दस्ती खेलने ले जाता था। क्या यह सब तुझे याद आता है? मित्र मुझे कुछ इसकी खबर नहीं मिली कि तेरा विवाह हुआ या नहीं। सुदामदेव ज्ञानी भक्त हैं, वे बहुत कम बोलते हैं। वे मस्तक हिलाकर कहते हैं, विवाह हुआ है।''

श्रीकृष्ण ने कहा, ''मित्र सच कहना। भाभी कैसी मिली है?'' सुदामदेव को अपनी पत्नी का स्मरण हो आया और उनकी आँखों में आँसू आ गए। वे बोले, ''पत्नी ने मुझे परमात्मा के दर्शन कराए। मैं उसका उपकार कभी नहीं भूलूँगा। मैं तो अभिमान में ही घर में बैठा था। पत्नी ने सत्संग कर मेरा अभिमान दूर किया।''

सुदामदेव ने अपनी पत्नी का बहुत बखान किया, ''मेरी पत्नी बहुत योग्य है। मैं यहाँ नहीं आता था, किन्तु आपकी भाभी ने मुझे यहाँ भेजा है।'' श्रीकृष्ण ने कहा, ''मित्र क्या मेरी भाभी ने तुझे यहाँ भेजा है? उसने क्या मुझे कुछ दिया भी है?''

सुदामदेव संकोच में पड़ गए। रुक्मिणीजी पीछे ही खड़ी थीं। उनसे यह सहन नहीं हुआ। उनका स्वभाव ही ऐसा है कि वे जिनके पीछे पड़ती हैं अपना ध्यान भूल जाती हैं। रुक्मिणीजी ने कहा, ''आप यह सब क्या बात कर रहे हैं? आपको यह बात शोभा नहीं देती। आप मुझे आज्ञा दीजिए तो मैं इनके घर कुछ भेजूँ। आप इस गरीब ब्राह्मण को क्यों सता रहे हैं?

रुक्मिणीजी के मुँह से यह शब्द निकला, ''गरीब ब्राह्मण।'' भगवान् को यह सहन नहीं हुआ। उन्हें रुक्मिणीजी के ये शब्द बाण जैसे लगे। वे बोले, ''तू मेरे मित्र को गरीब कहने वाली कौन? हम दोनों मित्र प्रेम से बात करते हैं। इसमें तू अपनी होशियारी दिखाने क्यों आती है? यहाँ से अब चली जा।''

रुक्मिणीजी को आश्चर्य हुआ कि आज ये मुझे ऐसा कहतें हैं कि तू यहाँ से चली जा। मैंने इनका ऐसा मित्र-प्रेम कभी नहीं देखा। क्या ये इस मित्र को घर में रखेंगे और मुझे बाहर निकाल देंगे? हाँ, मेरी एक भूल हुई है कि मैंने इनके मित्र को गरीब कहा है। मेरे पतिदेव जिसका चरण पखारते हैं वह कोई साधारण नहीं है। मेरी भूल हुई है इसीलिए इनको बुरा लगा है।

भगवान् सुदामदेव के पीछे पड़ गए हैं। वे मित्र से माँगते हुए कहते हैं, ''मेरी भाभी ने मेरे लिए जो कुछ दिया हो उसे तू मुझे दे।''

सुदामदेव बगल में अपनी गठरी छिपाते जा रहे हैं। उनको चिउरा देने की हिम्मत नहीं होती। वे विचार करते हैं, "जिसका वैभव ऐसा हो, जो प्रतिदिन छप्पन प्रकार के भोग ग्रहण करता हो उनको मैं वह चिउरा किस प्रकार दूँ? ये सब रानियाँ क्या कहेंगी?" ब्राह्मण बहुत शर्मिन्दा होता है। उसकी नजर धरती पर है और गठरी बग़ल में दबा रखी है। वह बड़े प्रेम से गठरी ले आया है; किन्तु उसे देते समय बड़ा संकोच हो रहा है। प्रभु ने देखा कि सुदामदेव के बगल में कुछ दिखाई दे रहा है। उन्हें ऐसा लगा कि यह कुछ लाया है; किन्तु देता नहीं है। उन्होंने कहा, "मित्र, चल मैं तुझे अपना महल दिखाऊँ। देख, दीवाल पर यह रामायण के सब चित्र हैं, यह श्रीरामजी के वन में ज़ाने का चित्र है। मित्र, तू आँख उठाकर तो देख कि मेरा राजमहल कैसा है?"

भूदेव ने अपनी आँखें कुछ ऊँची कर चित्र देखा। इतने में श्रीकृष्ण ने उनके बगल से गठरी खींच ली और कहा। "मेरी भाभी ने मेरे लिए भेंट भेजी है; किन्तु तू मुझे देता नहीं।"

गठरी छोड़ने की भी जरूरत नहीं पड़ीं। चिउरा निकल पड़ा। श्रीकृष्ण ने कहा, "मित्र, मुझे यह चिउरा बहुत भाता है। आज मुझे बहुत भूख लगी है।"

श्रीकृष्ण को प्रेम की भूख लगी है। उन्होंने चिउरा खाना आरंभ कर दिया है। रुक्मिणीजी वहाँ खड़ी हैं। उनको ठीक नहीं लगता। वे मन ही मन कहती हैं, "ये मित्र से कैसी बातें कह रहे हैं कि मुझे बहुत भूख लगी है। ये छप्पन भोग ग्रहण करते हैं। फिर भी इनको भूख लगी है। कैसा बोलते हैं?

रुक्मिणीजी ने कहा, "क्या आप भूखे हैं? भगवान् कहते हैं कि मैं तुझसे सच कहता हूँ। जब से मैं यशोदाजी को छोड़कर आया तभी से भूखा हूँ। तू मुझे क्या खिलाती है? मेरी माता मुझे खिलाती थी, माँ के समान प्रेम कहाँ है?" श्रीकृष्ण को आज यशोदा माता याद आती हैं।

रुक्मिणजी देखती हैं। वे विचार करती है कि मैं रोज श्रीकृष्ण के दर्शन करती हूँ, इनके साथ ही रहती हूँ; किन्तु मैंने भगवान् का ऐसा स्वरूप कभी नहीं देखा। आज के श्रीकृष्ण कुछ अलग ही दिखाई देते हैं, आज के श्रीकृष्ण की मूर्ति कुछ भिन्न ही है।

भगवान् ने एक मुट्ठी चिउरा के बदले सुदामदेव को द्वारका की संपत्ति दे दी है।

भगवान् सुदामदेव के साथ बात करते हुए कहते हैं, "तेरा संसार किस तरह चलता है?" सुदामदेव सच्चे और तपस्वी ब्राह्मण हैं। उन्होंने अपनी जीभ नहीं बिगाड़ी है। उनके घर में कुछ नहीं है। भगवान् उनसे पूछते हैं कि तेरा संसार किस प्रकार चलता है? ब्राह्मण ने कहा कि बहुत आनन्द से चल रहा है। सुदामदेव को किसी भी वस्तु की थोड़ी भी जरूरत नहीं है।

भगवान् को आश्चर्य हो रहा है कि यह कैसा है। यह कुछ बोलता नहीं। मैंने दिया है; किन्तु मुझे कुछ कहना नहीं है।

रात को दोनों के बीच काफी बातें हुई। सुदामदेव ने प्रातःकाल स्नान किया। उन्होंने विचार किया कि मैं इनसे मिलने आया इसलिए एक दिन मेरे रहने के अधिकार का था। अब यदि ये बहुत आग्रह करेंगे तो दो-चार दिन रह जाऊँगा। ये बहुत प्रेम रखते हैं। इसलिए आग्रह तो करेंगे ही। ऐसा मुझे पूरा-पूरा भरोसा है। फिर भी मुझे विवेक दिखाना पड़ेगा। तुम यदि किसी के घर किसी खास अवसर पर जाओ, तो अवसर पूरा होते ही जो पहली गाड़ी मिले उस गाड़ी से जय श्रीकृष्ण कहकर ही विदा होना। घर वाले यद्यपि यह कहते हैं कि तुम थोड़े दिन रहो; किन्तु अंदर से उनकी इच्छा यह होती है कि अब यह बला यहाँ से चली जाय तो अच्छा है।

सुदामदेव ने श्रीकृष्ण से कहा कि मुझे आज घर जाने की इच्छा है। श्रीकृष्ण ने पूछा कि मित्र क्या तुझे आज ही जाना है? सुदामदेव ने कहा, ''जी हाँ।'' यह सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा कि अच्छी बात है, जाओ।

प्रभु ने विचार किया कि यह आज चला जाए तो बहुत अच्छा है। मैंने ऐश्वर्य तो भेजा है; किन्तु मेरी भाभी वहाँ चौखट पर खड़ी-खड़ी मित्र की प्रतीक्षा कर रही है।

सुशीला महान् पतिव्रता है। उसके सेवक हाथ जोड़ते हैं और प्रार्थना करते हैं कि आप भोजन कीजिए। आप अपना शृंगार कीजिए। प्रभु ने यह सब आपको दिया है। सुशीला कहती है, ''यह सब तो ठीक है; किन्तु मुझे तो मेरे पति ही सच्चे धन हैं। क्या उनको रास्ते में कुछ हो गया होगा? वे अभी तक नहीं आए?'' इस प्रकार सुशीला चौखट पर बैठकर पतिदेव की प्रतीक्षा कर रही है।

प्रभु ने विचार किया कि यदि मैं अपने मित्र को आग्रह करके दो-चार दिन रोक लूँ तो मेरी भाभी की हालत वहाँ खराब हो जायेगी। इसीलिए उन्होंने सुदामदेव को आज ही जाने की छुट्टी दी है।

श्रीकृष्ण कभी-कभी ऐसा नाटक करते हैं कि जगत् में उनके समान निष्ठुर कोई नहीं दीखता। प्रभु ने सुदामदेव के स्नान के बाद उनको जो पीताम्बर दिया था उसे उन्होंने पहन रखा था। जब सुदामदेव पीताम्बर पहनकर जाने लगे तो भगवान् को पसन्द नहीं आया। उन्होंने सुदामदेव के हाथ में धोती दे दी और कहा कि मित्र यह तेरी धोती है, तुझे पहचान हो तो इसे पहन ले। इसका अर्थ यह होता है कि तू मेरा पीताम्बर मत ले जा। तू जो धोती पहनकर आया था वही पहनकर घर जा। श्रीकृष्ण ने विचार किया कि मेरे मित्र का नियम है। उसके अनुसार यह किसी

के घर नहीं जाता। मुझे जो कुछ देना है उसे इसके घर जाकर दूँ। यदि वह यहाँ से पीताम्बर पहनकर जाए तो शायद लोग इसकी निन्दा करेंगे कि ये महाशय मेरे घर तो आते नहीं थे और द्वारका जाकर पीताम्बर ले आए हैं। यह जो धोती पहनकर आया है वही धोती पहनकर अपने घर जाए।

श्रीकृष्ण ने सुदामदेव के हाथ में धोती दे दी है। सुदामदेव ने पीताम्बर खोल कर रख दिया है और धोती पहन ली है। वे सच्चे ब्राह्मण हैं। उनके मन में जरा भी कुभाव नहीं है। उन्हें इसका जरा भी दुःख नहीं कि कुछ मिला नहीं है। उनका मन अत्यन्त शान्त है। वे आनन्दमय हैं। वे तो ऐसा विचार करते हैं कि मुझे श्रीकृष्ण ने कितना आदर दिया।

सुदामदेव घर जाने को तैयार हो गए हैं। श्रीकृष्ण उनको द्वार तक पहुँचाने आए हैं और कहते हैं, 'मित्र तेरे आने से मुझे आनन्द हुआ। मैं तुझे कुछ देता नहीं। तेरे आशीर्वाद से ही मुझे यह सब मिला है। तू इस समय घर जा रहा है। इसलिए मैं तुझसे इतना ही कहता हूँ कि घर जाकर मेरी भाभी के चरणों में मेरा वन्दन कहना।'

सारा जगत् जिसे वन्दन करता है। वे लक्ष्मीपति परमात्मा एक दरिद्र ब्राह्मण की पत्नी को प्रणाम कहते हैं। उनको अभिमान का थोड़ा भी स्पर्श नहीं। यह देखकर ब्राह्मण की आँख में आँसू आ गये। वे बोले, 'महाराज, आपका वन्दन नहीं हो सकता, आपका आशीर्वाद हो सकता है।' श्रीकृष्ण ने कहा, 'मित्र, तू क्या कहता है। मैं भाभी के आशीर्वाद से सुखी हूँ। मित्र, मेरी भाभी तो यशोदा माता के समान हैं। मैं गोकुल में था और गायों को लेकर वृन्दावन में जाता था, तब यशोदा माता मुझे जैसा चिउरा देती थीं। वैसा ही स्वादिष्ट चिउरा भाभी ने मेरे लिए भेजा है। वे तो माता के समान है। उसके चरण में मेरा वन्दन ही कहना।

सुदामदेव को विश्वास हो गया है कि लोग श्रीकृष्ण की जितनी प्रशंसा करते हैं, वह बहुत कम है। श्रीकृष्ण के साथ मेरी मैत्री जन्म-जन्मातर हो और उनके चरणों में मुझे जन्मजन्मान्तर दास्यभक्ति मिले।

सुदामदेव को कुछ मिला नहीं; किन्तु उसको इसका जरा भी दुःख नहीं। वे मन में विचार करते हैं, 'यदि अधिक धन मिलता तो मैं अपने को भूल जाता। इसलिए परमात्मा ने मुझे कुछ दिया नहीं। उनका मन अत्यन्त शान्त है वे श्रीकृष्ण का स्मरण करते-करते सुदामापुरी की तरफ चल पड़ते हैं।

सुदामापुरी और द्वारकाजी एक समान बन गई हैं। परमात्मा ने दोनों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं रखा है। सुदामदेव के मन में ऐसा हुआ कि मैं विचार करता-करता चल रहा था

इसलिए मेरी भूल हुई है। यह तो वही द्वारका दिखाई दे रही है। मैं भटक गया हूँ और लौटकर पुनः द्वारका आ गया हूँ।

सुशीला ने पतिदेव का स्वागत किया और कहा कि आपके मित्र ने आपको यह सब दिया है। सुदामदेव के मन में ऐसा हुआ कि मेरे कन्हैया ने तो एक अक्षर भी मुझसे कुछ नहीं क़हा; किन्तु वह कितना उदार है। मैं तो एक मुट्ठी चिउरा लेकर गया था। उसने उसके बदले में इतना सब मुझे दे दिया।

सुदामदेव को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। वे गरीब थे तब तो भक्ति करते ही थे किन्तु अब सुखी और सम्पन्न होने के बाद अधिक भक्ति करने लगे। संसार का सारा सुख कच्चा है और सच्चा सुख तो परमात्मा ही है। सुदामदेव अति सम्पत्ति में अति भक्ति करते हैं।

एवं स विप्रो भगवत्सुहृत्तदा दृष्ट्वा स्वभृत्यैरजितं पराजितम्।
तद्ध्यानवेगोद्ग्रथितात्मबन्धनस्तद्धाम लेभेऽचिरतः सतां गतिम्॥

(१०-८१-४०)

श्रीकृष्ण के साथ मित्रता कर सुदामदेव द्वारकानाथ हो गये हैं। जब कोई जीव कुछ देता है तो संकोच करता हुआ देता है किन्तु परमात्मा जब जीव को देता है तब उसे थोड़ा भी संकोच नहीं होता। प्रभु ने सुदामदेव को द्वारकाधीश बना दिया। फिर भी इस अति सम्पत्ति में सुदामदेव अत्यन्त परोपकार करते हैं और अति सावधान होकर भक्ति करते हैं। इस प्रकार सुदामदेव कृतार्थ हो गए हैं।

सुदामदेव अपने को भूले नहीं हैं। वे अति सावधान हैं। वे भगवान् का नाम संकीर्तन करते-करते उनके चरणों में लीन हो गये हैं।

परमात्मा परमानन्द का स्वरूप ही है। आनन्दमय होने कारण श्रीकृष्ण को कोई सुख भोगने की इच्छा होती ही नहीं। गंगाजी को प्यास नहीं लगती, धरती माता को भूख नहीं लगती और अग्नि को ठण्डक नहीं लगती। इसी प्रकार आनन्दमय श्रीकृष्ण को कोई सुख भोगने की इच्छा नहीं होती। श्रीकृष्ण सदा सभी के साथ प्रेम करते हैं। संसार का सारा प्रेम स्वार्थ से भरा होता है। जहाँ स्वार्थ होता है वहाँ कपट भी आता है। जहाँ सुख भोगने की इच्छा होती है वहाँ भी थोड़ा कष्ट आ जाता है। संसार का सारा प्रेम स्वार्थ और कष्ट से भरा हुआ है। केवल एक परमात्मा ही इस जीव के साथ निस्वार्थ भावना से प्रेम करता है। प्रभु स्वार्थ छोड़कर सब जीवों के साथ प्रेम करते हैं। परमात्मा जीव को प्रेम करे तो वह इस जीव को परमात्मा बना देता है। सुदामदेव की इस कथा से ऐसे अनेक भाव प्रकट होते हैं।

एतद् ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः।
लब्धभावो भगवति कर्मबन्धाद् विमुच्यते।।

(१०-८१-४१)

यह परम पवित्र सुदामदेव की कथा वक्ता और श्रोता दोनों के मन के पापों का नाश करती है। जो वक्ता इस कथा का अत्यन्त भाव से वर्णन करता है और जो श्रोता इस कथा को बहुत भक्ति भाव से सुनते हैं उनको श्रीकृष्ण के चरणों में भक्ति प्राप्त होती है।

७७– ब्रह्मविद्या

भगवान् श्रीकृष्ण एकबार द्वारका में विराजमान थे। उस समय सूर्यग्रहण का दिन आया। सूर्यग्रहण-स्नान की कुरुक्षेत्र में बहुत महिमा है। इसके बाद वहाँ सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में बड़े-बड़े संत महात्माओं का आगमन हुआ, अनेक देश के राजा आए। उसमें ब्रजवासियों का मिलन हुआ है इसका वर्णन आता है।

जब सूर्य को ग्रहण लगता है तब दिन होने पर भी अन्धेरा हो जाता है। सूर्य ज्ञान स्वरूप है। राहु-केतु इस सूर्य-चन्द्र को निगलने आते हैं। इसी को ग्रहण कहा जाता है। जब ज्ञान किसी अज्ञान से ढँक जाता है तब स्नान करो और ध्यान के साथ जप करो। ग्रहण के समय कोई दूसरा काम नहीं करना चाहिए। ग्रहण में जो जप किया जाता है, उसका हजार गुना फल मिलता है। इसलिए जब-जब ज्ञान अज्ञान से ढँक जाए तब-तब स्नान करके ध्यान और जप करो। सब लोग यह जानते हैं कि सच बोलना चाहिए; किन्तु अपने लाभ के लिए मनुष्य झट झूठ बोल देता है। यहाँ मनुष्य का ज्ञान अज्ञान से ढक जाता है। यही ग्रहण का स्वरूप है।

सूर्यग्रहण की विशेष महिमा है। सूर्यनारायण बुद्धि के मालिक देव हैं। वसुदेवजी ने उस समय जो यज्ञ किया है, उस अवसर का वर्णन मिलता है।

भगवान् श्रीकृष्ण माता-पिता को वन्दन करने के लिए आए हैं। उस समय उन्होंने माता देवकीजी और पिता वसुदेवजी से पूछा है कि आपकी क्या इच्छा है? वासना पुनर्जन्म का कारण बनती है। वसुदेवजी ने कहा है कि मेरी अन्तिम परीक्षा सफल हो यही एकमात्र इच्छा है।

मानव-जीवन में अंतिम परीक्षा मरण है। जिसका मरण सुधरा उसका जीवन सुधरा गया, उसका जीवन मंगलमय बन गया। जिसका जीवन मंगलमय होता है, उसका मरण भी मंगलमय होता है। मनुष्य अपने जीवन में ऐसे पाप करता है कि भगवान् को भी उसे क्षमा करने की इच्छा नहीं होती। वे ही पाप मरण बिगाड़ते हैं।

भगवान् के नाम का जप करते-करते जो उनकी कथा सुनता है उसका पाप भस्मीभूत हो जाता है। जो कथा सुनता है उसका नया जन्म होता है। इस प्रकार कथा–नवजीवन देती है। इसलिए कथा सुनने के बाद कभी पाप न करो। यह पाप ही मरण बिगाड़ता है।

वसुदेवजी ने कहा, ''मेरा मरण मंगलमय बने यही एक इच्छा है।''

श्रीकृष्णजी देवकीजी से पूछते हैं, ''माता, तेरी क्या इच्छा है?'' देवकीजी ने कहा कि कंस राजा ने मेरी जिन छह सन्तानों को मार डाला है। उन्हें एक बार फिर देखने की इच्छा है।

इस वासना की बलिहारी है। देवकीजी श्रीकृष्ण की माता हैं। श्रीकृष्ण का दर्शन करने पर भी देवकीजी के मन में अपने मरे हुए बालकों को देखने की इच्छा हो रही है।

वासना का विवेक से नाश करो और मन को बारंबार समझाओ कि तूने संसार का कोई सुख बाकी नहीं रखा। तूने उसे अनेक बार भोगा भी है। भोग से क्षणिक सुख मिलता है और त्याग में अनन्त शांति मिलती है।

भगवान् श्रीकृष्ण पाताल में जाते हैं। वहाँ से उन बालकों को ले आते हैं और देवकी माँ के सामने उपस्थित कर पूछते हैं कि माँ, अब तेरी क्या इच्छा है? यह सुनकर माँ कहती है कि अब मेरी कोई इच्छा नहीं है। अब एक ही इच्छा है कि मेरा मरण सुधरे।

श्रीकृष्ण ने अपने माता-पिता को तत्वज्ञान का उपदेश दिया है। आगे उसी कथा का वर्णन है। इसके बाद सुभद्राजी के विवाह का वर्णन है। आपने जगन्नाथजी के मंदिर में देखा होगा कि श्रीकृष्णजी और बलरामजी के मध्य में सुभद्राजी हैं। भद्र शब्द का अर्थ है कल्याण। कल्याण करने वाली विद्या का नाम ही सुभद्राजी है। सच्ची विद्या वही है जो जन्म-मरण के संकट से छुड़ाती है और प्रभु में प्रेम जागृत करती है। सुभद्रा ब्रह्मविद्या हैं जो श्रीकृष्ण-बलराम के बीच में विराजित हैं। बलराम शब्दब्रह्म के स्वरूप हैं और श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं। जो शब्दब्रह्म-परब्रह्म की उपासना करता है उसकी बुद्धि में ब्रह्मविद्या स्फुरित होती है। प्रभु ने अर्जुन को सुभद्राजी का दान किया है। इसके बाद भगवान् मिथिला नगरी में श्रुतदेव ब्राह्मण और राजा बहुलाश्व जनक के घर पधारते हैं। उस कथा का वर्णन किया गया है।

इसके बाद वेद-स्तुति की कथा है। सभी वेद-परमात्मा की स्तुति करते हैं। परमात्मा निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार भी हैं। तुम निर्गुण-निराकार का अनुभव करो और सगुण-साकार परमात्मा के साथ प्रीति करो। जो निर्गुण-निराकार परमात्मा का अनुभव करता है उसका पाप कट जाता है। साधारण मनुष्य जब पाप करता है, तब ऐसा समझता है कि यहाँ भगवान् नहीं हैं; परन्तु यह उसकी भूल है। जैसे राजा तो राजमहल में रहता है; परन्तु उसकी सत्ता उसके राज्य के अणु-

परमाणु में व्याप्त रहती है। राजसत्ता निराकार है। सत्ता आँख को दिखाई नहीं देती। इस राजसत्ता के अनुभव की तरह निर्गुण-निराकार परमात्मा का अनुभव करो। किसी धनवान आदमी की मोटर बहुत तेजी से जा रही हो और सिपाही हाथ ऊँचा करे तो मोटर उसे खड़ी करनी पड़ती है। कदाचित् उसके मन में यह विचार आता है कि मैं ऐसे अनेक सिपाहियों को नौकर रख सकता हूँ। यह बात सत्य है। सिपाही को मान देना सिपाही के पीछे छिपी हुई राजसत्ता को मान देना है। सत्ता निराकार होती है; परन्तु वह सत्ता जिसकी होती है वह राजा साकार है। सत्ता का कोई रंग और आकार नहीं होता। फिर भी वह राज-सत्ता है। जिस प्रकार राजसत्ता को मानते हो, उसी प्रकार परमात्मा की सत्ता को मानो। ऐसी कोई जगह ही नहीं है जहाँ भगवान् विराजमान न हो।

सगुण-साकार परमात्मा के साथ प्रेम करने से वासना को विनाश होता है। इस संसार में जितने आकार हैं वे सभी माया से बने हैं। इसलिए संसार के किसी भी आकार का चिन्तन करने अथवा उसके साथ प्रीति करने से मन में विकार ही उत्पन्न होगा। इसलिए इन सबसे बचने के लिए सगुण-साकार और निर्गुण-निराकार दोनों रूपों से भगवान् के दर्शन करो।

कुछ ज्ञानी पुरुष सगुण परमात्मा की भक्ति गौण समझते हैं। इसी प्रकार कुछ भक्त निर्गुण-निराकार परमात्मा के स्वरूप को गौण मानते हैं। ये दोनों भूल करते हैं। वास्तव में भगवान् के दोनों स्वरूपों के दर्शन की आवश्यकता है। क्योंकि ये दोनों उनके स्वरूप हैं। इनमें कोई गौण नहीं है। इसलिए दोनों की आवश्यकता है। माता और पिता दोनों में कौन गौण है? निर्गुण-निराकार परमात्मा पिता के समान है और सगुण-साकार परमात्मा माता के समान हैं।

वेद परमात्मा का निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार दोनों रूप से वर्णन करता है। वेद-स्तुति में आरंभवाद, परिणामवाद एवं विवर्तवाद का रहस्य समझाया गया है।

वेद भगवान् कहते हैं कि ज्ञान से भी ध्यान श्रेष्ठ है। कुछ लोग अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ते हैं। यह ठीक होने पर भी बहुत अच्छा नहीं है। अनेक पुस्तकें पढ़ने से शब्द ज्ञान बढ़ता है और शब्दज्ञान के बढ़ने के कारण मनुष्य बहुत चर्चा करता है। बहुत पुस्तकें पढ़ने की अपेक्षा शांति से बैठकर ध्यान करते-करते प्रभु के नाम का जप करना अधिक अच्छा है।

इस अध्याय में शिव तत्त्व और विष्णु तत्त्व का रहस्य समझाया गया है। बृकासुर के प्रसंग का वर्णन भी आता है। अर्जुन में होने वाला अभिमान प्रभु ने किस युक्ति से दूर किया उस कथा का भी वर्णन है।

श्रीशुकदेवजी महाराज कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण के गुण अनन्त हैं और उनकी कथा अनन्त है। इस अनन्त की कथा का अन्त आता ही नहीं। मेरे भगवान् का प्राक्ट्य मथुरा में हुआ

था। वहाँ से वह गोकुल में पधारे। ग्यारह वर्ष और बावन दिन तक गोकुल में रहकर लीला की और ब्रजवासियों को परमानन्द दिया। उन्होंने कंस आदि राक्षसों का विनाश कर मथुराधीश पद प्राप्त किया। वे द्वारकाधीश भी बने। उन्होंने अनेक रानियों के साथ विवाह किया और जगत् को गृहस्थ धर्म का आदर्श सिखाया।

कौरवों-पाण्डवों के युद्ध का निमित्त उपस्थित कर भगवान् ने अपना भार उतारा। उन्होंने अर्जुन और उद्धव को तत्वज्ञान का उपदेश दिया। अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण गोलोक धाम पहुँचते हैं। दशम स्कंध की समाप्ति में श्रीकृष्ण चरित का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

शुकदेवजी महाराज परीक्षित राजा से कहते हैं कि जो मनुष्य श्रीकृष्ण की कथा रूपी गंगा में स्नान करता है उसके मन का मैल धुल जाता है। लोग चारों धाम की यात्रा करते हैं; किन्तु उनका स्वभाव नहीं सुधरता। यात्रा और यज्ञ करने से पुण्य बढ़ता है; किन्तु स्वभाव नहीं सुधरता। अनेक बार पुण्य बढ़ने पर अभिमान भी बढ़ जाता है। पुण्य के कारण बढ़ा हुआ अभिमान पाप कराता है। यात्रा करने से बिगड़ा हुआ मन जल्दी शुद्ध नहीं होता; किन्तु श्रीकृष्ण की कथा-गंगा में स्नान करने से मन का मैल धुल जाता है और स्वभाव भी सुधरता है।

मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्दश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति।
तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं ग्रामाद् वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः॥

(१०/९०/५०)

इति दशम् स्कन्ध उत्तरार्ध समाप्त

हरिः ॐ तत्सत्

श्रीगणेशाय नमः
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

एकादश स्कन्धः उत्तरार्ध

७८– उपसंहार

कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः।
भुवोऽवतारयद् भारं जविष्ठं जनयन् कलिम्।।

(११-१-१)

दशम स्कन्ध में श्रीकृष्ण का प्रेम स्वरूप बताया गया है और एकादश स्कन्ध में श्रीकृष्ण का ज्ञान स्वरूप बताया गया है। दशम स्कन्ध में निरोध लीला है और एकादश स्कन्ध में मुक्ति लीला है। जिसका मन अत्यन्त अशांत रहता है उसे मरने से पहले ही मुक्ति जैसा आनन्द मिलता है। मन जब तक विषयों का चिन्तन करता है, तब तक मरता नहीं; किन्तु वह परमात्मा का सतत चिन्तन करता है, तब उनमें मिल जाता है। तन के मरने पर मुक्ति नहीं मिलती; किन्तु जिसका मन मर जाता है उसे मुक्ति मिलती है। जब तक मन में संसार रहता है, तब तक वह जीता है। संसार के निकलते ही मन शांत हो जाता है। जब तक दीपक में तेल होता है तब तक वह जलता है; तेल न होने पर वह बुझ जाता है, शांत हो जाता है। इसलिए मन में से संसार को निकालने का प्रयत्न करो। प्रश्न यह है कि संसार छोड़कर कहाँ जाओगे? तुम जहाँ जाओगे वहाँ संसार तो है ही। जिसके मन में संसार है, वह जेल में भी संसार पैदा कर लेता है और मन्दिर में जहाँ पक्षी दिखाई दें वहाँ भी संसार पैदा करता है। इसलिए मन में से संसार बाहर निकालो। जो झाड़ू मारता है। जो कूड़ा-कचरा बाहर निकालने जाता है उस पर भी थोड़ा कूड़ा-कचरा पड़ता है। यदि हम संसार को मन में से बाहर निकालने जाएँ, तो मन संसार का चिन्तन करता है। यदि मन में श्रीकृष्ण का स्वरूप स्थिर हो, मन उनका चिन्तन करे तो धीरे-धीरे मन में से संसार निकल जाता है। श्रीकृष्ण की लीला में ऐसी शक्ति है कि वह जगत् से विस्मृति कराती है और परमात्मा की शरण में तन्मयता पैदा करती है।

एकादश स्कन्ध में पहला अध्याय वैराग्य का है। बिना वैराग्य के ज्ञान-भक्ति में दृढ़ता नहीं आती। मानव थोड़ी भक्ति करता है, ज्ञान की बातें करता है, किन्तु वैराग्य न होने के कारण उसका ज्ञान स्थिर नहीं रहता और संसार का सुख उसे मीठा लगता है। यदि संसार का विषय मनुष्य को रुलावे तो भी उसे वह मीठा लगता है। वैराग्य के बिना ज्ञान-भक्ति दृढ़ नहीं होते।

नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत् कथञ्चिन्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम्।
अन्तःकलिं यदुकुलस्य विधाय वेणुस्तम्बस्य वह्निमिव शान्तिमुपैमि धाम।।

(११-१-४)

वैराग्य विवेक से जागृत होता है। जिसको अच्छा-अच्छा खाने में मजा आता है वह भला भक्ति करेगा? उसकी भक्ति एक दिखावा मात्र है। संसार में जो कुछ दिखाई देता है वह क्षणिक है, दुःखरूप है। ऐसा जानने वाले को ही भक्ति का आनन्द मिलता है। जिसको भक्ति का आनन्द मिला है, उसे संसार का सब कुछ तुच्छ लगता है। विवेक के बिना वैराग्य जागृत नहीं होता। इसलिए अपने मन को बारम्बार समझाओ कि संसार तुच्छ है। इसके सारे सुख खराब हैं। केवल परमात्मा सत्य है, आनन्दमय है।

प्रभु ने इस अध्याय में वैराग्य की लीला की है। द्वारका सोने की है। उसमें यादव रहते हैं। यादव अति सम्पत्तिवान हैं; किन्तु अत्यन्त सुख में अपने आपको भूल गए हैं। इसलिए अत्यन्त सुख मिलना अच्छा नहीं और अत्यन्त मान मिलना भी अच्छा नहीं है। मनुष्य यह सोचता है कि मुझे सब प्रकार का सुख मिल जाए तो उसके बाद में भक्ति करूँगा। यह कल्पना गलत है। अत्यन्त सुख में मनुष्य अपना मान भूल जाता है, उसकी बुद्धि बिगड़ जाती है। अति सम्पत्ति और सन्मति एक जगह नहीं रहती।

यादव अत्यन्त सुखी हो गए थे और उनके पास बहुत सम्पत्ति थी। उनके सब प्रकार से सुखी होने के कारण उनकी बुद्धि बिगड़ गई थी।

प्रभु ने विचार किया कि मुझे उपसंहार करना है। जब तक तुम्हारे शरीर में शक्ति है तब तक ही प्रवृति का उपसंहार करो, निवृति लो और भगवान् की भक्ति करो। जो शरीर बिगड़ने के बाद शरीर प्रवृत्ति छोड़ता है वह भक्ति नहीं कर सकता। शरीर में शक्ति होने पर ही भक्ति होती है। बिना शक्ति के भक्ति नहीं होती। इसलिए शरीर में शक्ति रहते-रहते समझकर प्रवृति का उपसंहार करता है उससे बहुत शान्ति मिलती है तब बहुत कष्ट होता है। रामायण में हनुमानजी ने रावण की लंका जलाकर भस्म कर दी है। इसी प्रकार प्रभु ने अपनी इच्छा से द्वारका को सागर

में डुबा दिया है। काल के धक्का मारने के पहले जो सब कुछ छोड़ देता है उसे आनन्द मिलता है। मनुष्य को बढ़ाना तो आता है किन्तु उसे समेटना नहीं आता।

भूभारराजपूतना यदुभिर्निरस्य गुप्तैः स्वबाहुभिरचिन्तयदप्रमेयः।
मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं यद् यादवं कुलमहो अविषह्यमास्ते।।

(११-१-३)

भगवान् को ऐसा लगता है कि यह सब बहुत बढ़ गया है। मुझे अब सब कुछ छोड़ना है; उपसंहार करना है।

द्वारका के पास पिण्डारक क्षेत्र में ऋषि एकत्र होकर बैठे थे। उस समय यादवों की बुद्धि बिगड़ी। वे साम्ब को साड़ी पहनाकर, स्त्री का श्रृंगार करके ऋषियों के पास ले गए और उन्होंने उनसे पूछा, यह स्त्री सगर्भा है इसे लड़का होगा या लड़की होगी। आप इसे बताइए।

ऋषियों ने आँख बन्द करके देखा तो यह स्त्री नहीं है; किन्तु पुरुष है। ये सब हमारा मजाक कर रहे हैं। ऋषियों को यह मजाक पसन्द नहीं आया। उन्होंने शाप दिया कि लड़का या लड़की नहीं होगी, किन्तु तुम्हारे वंश को नाश करने वाला मूसल पैदा होगा। मूसल काल का स्वरूप है।

हमारे शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि पुरुष को स्त्री के वेश में और स्त्री को पुरुष के वेश में देखने से मन दूषित होता है; मन में माया पैदा होती है। इसीलिए ब्राह्मण को विशेष रूप से आज्ञा दी गई है कि वह नाटक या तमाशा देखने न जाये। क्षत्रिय और वैश्य को थोड़ी छूट दी गई। बेचारे ऋषि शाँति से तपस्या कर रहे थे। उस समय यादव वहाँ गए और पुरुष को स्त्री का श्रृंगार किया। इसलिए क्रोध से भरकर ऋषियों ने वंश के विनाश का शाप दिया।

साम्ब के पेट से मूसल निकला। उसे देखकर सब घबरा उठे। सबने सोचा कि यदि श्रीकृष्ण से यह बात करें तो वे सजा करेंगे, नाराज होंगे। इस डर से उन्होंने यह पाप उनसे छिपाया। पाप करना साधारण अपराध है; किन्तु पाप का परमात्मा के समक्ष स्वीकार न करना बड़ा अपराध है। फिर भी परमात्मा के समक्ष पाप स्वीकार करने में शर्म आती है। जिस दिन पाप हो गए उस रात्रि में सोने के पहले भगवान् को वन्दन कर पाप स्वीकार कर लेना चाहिए। जो पाप स्वीकार करता है उस पर भगवान् को दया आती है, परन्तु जो पाप कबूल नहीं करता और उसे छिपा रखता है उसे बहुत सजा मिलती है।

यादवों ने अपना पाप छिपाया। भगवान् तो सब जानते ही थे। उन्होंने कहा कि जो हुआ वह अच्छा ही हुआ। यादव मूसल उठाकर प्रभास में ले गए। वहाँ उसे खूब घिसा। उसके लोहे का

जो भाग था उसे समुद्र में फेंक दिया जिसे एक मछली खा गई। जरा नाम के शिकारी को वह मछली मिली। मछली के पेट से लोहा निकला। जरा पारधी ने उस लोहे से बाण की अनि बनाई। जरा पारधी ने श्रीकृष्ण को वह बाण मारा है। श्रीधर स्वामी ने अपनी टीका में लिखा है कि जरा पारधी का बाण श्रीकृष्ण को नहीं लगा। 'जरा' शब्द का अर्थ है वृद्धावस्था। वृद्धावस्था भोगी को बाण मारती है और भोगी को चारों ओर से घेर लेती है। श्रीकृष्ण तो योगी हैं। वे तो हमेशा जवान रहते हैं। उनके पास वृद्धावस्था पहुँच ही नहीं सकती। जरा पारधी का बाण भगवान् को लगा ही नहीं।

एकादश स्कन्ध के दूसरे अध्याय से ज्ञान भक्ति का उपदेश आरंभ हो जाता है। एकादश स्कन्ध उपसंहार है। इस दस ग्यारह दिन से ज्ञानभक्ति का जो उपदेश दिया गया उसे फिर से श्रोताओं की बुद्धि में दृढ़ करने के लिए इस स्कन्ध की कथा कही जा रही है। व्यवहार में पुनरुक्ति को दोष माना गया है; किन्तु ज्ञान और भक्ति में पुनरुक्ति गुण है। वेद, उपनिषद् और गीताजी में अनेक बार पुनरुक्ति आती है, लेकिन यह पुनरुक्ति सिद्धांत को दृढ़ करने के लिए है।

अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयोर्ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा।
तत् कर्मसंकल्पविकल्पकं मनो बुधो निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात्॥
(११-२-३८)

एक बार नारदजी द्वारका में पहुँचे। वसुदेवजी ने उनसे प्रश्न किया कि ऐसा कुछ उपदेश दीजिए जिससे जीव का कल्याण हो। नारदजी ने कहा, "राजा जनकजी ने ऐसा ही प्रश्न नौ योगियों से किया था। कवि नाम के योगीराज ने उनको यह उपदेश दिया–

मन्येऽकुतश्चिद्भ्यमच्युतस्य, पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम्।
उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद् विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः॥ (११-२-३३)

यह जीवात्मा परमात्मा का अंश है। यह परमात्मा से बिछुड़ने के कारण ही दुःखी है। यदि यह परमात्मा की शरण में जाए, तो इसका दुःख दूर हो। एक दिन ऐसा था कि हम सब भगवान् के चरण में थे। कुछ भूल के कारण यह जीव ईश्वर से अलग हो गया। तभी से इसकी दशा बिगड़ गई है। इसलिए हमेशा यह चिन्तन करो कि मैं परमात्मा का अंश हूँ और मुझे उसके चरण में जाना है।

तुम्हें जब कुछ फुर्सत मिलती है, तो क्या करते हो? लोगों को जब फुरसत मिलती है तब संसार के बारे में सोचते हैं कि यह अच्छा है और यह खराब है। किसी की निन्दा करेंगे, तो किसी का बखान करेंगे। यह छोड़कर तुम्हें जब कुछ फुरसत मिले तो अपने शरीर का चिन्तन करो कि मैं भगवान् का हूँ और भगवान् मेरे हैं। भगवान् को छोड़कर मेरा कोई दूसरा नहीं है। ऐसा चिन्तन बारंबार करो। घर जाकर ऐसा मत कहना कि तुम मेरे नहीं हो ऐसा मैंने आज कथा में सुना है। ऐसा

कहने से घर में झगड़ा खड़ा हो जाएगा। बाहर से घर के लोगों के साथ प्रेम करो और अन्दर से परमात्मा के साथ प्रेम करो। मन में ऐसा चिन्तन करो कि मैं किसी स्त्री का नहीं हूँ या किसी पुरुष का नहीं हूँ। थोड़ा विचार करने पर पता चलेगा कि जन्म से न कोई पति है और न जन्म से कोई स्त्री है। पति-पत्नी का सम्बन्ध व्यवहार में सत्य है। मरने के बाद न तो कोई पति है, न कोई स्त्री है। जन्म से और मरण के बाद जीव ईश्वर का है। जीव का ईश्वर के साथ का सम्बन्ध सच्चा है।

यदि निर्भय बनना हो, तो भगवान् के चरण का दृढ़ आश्रय ग्रहण करो। "मैं परमात्मा का हूँ।" यह बात कभी न भूलना। तुम चाहे जो काम करो; किन्तु मन में यह धारणा करो कि मेरे भगवान् सभी में विराजमान हैं। तुम जिस देव की पूजा करते हो, जिस देव के नाम का जप करते हो, वह देव तुम्हारे घर में सिंहासन पर ही नहीं बैठा है, बल्कि वह सर्व शक्तिमान् है। यदि तुम यह विचार करो कि वह सबका आधार है, तो इससे प्रभु में प्रेम जागेगा। हरि नाम के योगेश्वर ने कहा है–

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥ (११-२-४५)

यदि यह याद रखकर व्यवहार करो कि परमात्मा सब में विराजमान है, तो पाप से दूर रहोगे। सत्कर्म करो, किन्तु उसका फल मुझे ही मिलना चाहिए, ऐसी अपेक्षा मत रखो। किए गए कर्म का फल परमात्मा को अर्पण करो। जिस प्रकार घर में जाने-अनजाने धूल उड़कर आती है, उसी प्रकार व्यवहार में अशुद्धि भी आती है। उसे दूर करने के लिए प्रतिदिन नियमपूर्वक सत्संग करो।

माया का थोड़ा स्वरूप भी बताया गया है। प्रबुद्ध नाम के योगी ने माया से तरने के लिए उपाय बताया है। उन्होंने कहा है कि जिसे माया से तरने की इच्छा हो, उसे बहुत स्वतंत्र होकर इधर-उधर नहीं भटकना चाहिए। उसे किसी सन्त का चरण पकड़ रखना चाहिए।

पानी पीजे छान के, गुरु कीजे जान के॥

इसलिए गुरु करने में जल्दी मत करना। कुछ थोड़ा अनुभव होने पर गुरु करो। गुरु करने के बाद विचार न करो। गुरु करने के पहले खूब विचार कर लो। यदि गुरु ही लौकिक सुख में फँसा हो, बन्धन में पड़ा हो, उसे परमात्मा के दर्शन का लाभ न मिला हो, तो वह अपने शिष्य को प्रभु के दर्शन कैसे करा सकता है? शब्दब्रह्म और नादब्रह्म में निष्णात् सद्गुरुदेव का आश्रय लो। बहुत स्वतंत्र मत फिरो। स्वतंत्रता पतन की ओर ले जाती है। अपने माता पिता के अधीन रहना, किसी सन्त के अधीन रहना। यदि माया से तरने की इच्छा हो, तो गुरुदेव के चरणों का आश्रय ग्रहण करो और उनकी आज्ञा के अनुसार साधन एकत्र करो। किसी के धर्म की निन्दा मत करो।

जिसे माया से तरना है, उसे दिन में अधिक नहीं तो कम से कम चार घण्टे मौन रहकर शान्ति से भक्ति करनी चाहिए। जीभ से न बोलना साधारण मौन हैं मौन में मन से भी मत बोलना। जो मन से बोलता है वह उसे भंग करता है। बहुत से लोग मौना धारण करते हैं, किन्तु लिखकर बताते हैं कि आज मेरा मौन है। लिखना ही तो बोलना माना जाएगा। कुछ लोग मौन के समय आँख से इशारा करते हैं। वह भी बोलने जैसा ही है। जो मन से भी न बोले, वह सच्चा मौन है। इसलिए माया से पार उतरने के लिए नियम से मौन रखकर प्रभु को स्मरण करने की टेव डालो। इसके लिए प्रेम से परमात्मा के नाम का कीर्तन करो और सभी इन्द्रियों से ब्रह्मचर्य का पालन करो।

राजा ने प्रश्न किया कि महाराज, यह जीव चेतन है और माया जड़ है। तो फिर जड़-चेतन की यह गाँठ किस प्रकार पड़ गई और जीव का माया के साथ कैसे सम्बन्ध हुआ?

शुकदेवजी महाराज सावधान करते हुए कहते हैं, ''अरे, माया को छोड़ो और परमात्मा को पकड़ो। तभी माया का स्वरूप समझ में आएगा। जीव माया को पकड़ रखता है और माया का ही विचार करता है। माया को छोड़े बिना माया समझ में नहीं आती।

एक भाई पेड़ के नीचे बैठे थे। अचानक एक साँप ऊपर से उनकी गोद में गिरा। साँप गोद में पड़ने से वे विचार करेंगे कि यह गोद में कहाँ से आकर गिरा? यह यहाँ कैसे आया? यदि वह ऐसा विचारने लगे, तो उसे सर्पदंश होगा। इसलिए पहले तो साँप को फेंक देना चाहिए उससे दूर हो जाना चाहिए। इसके बाद यह सोचना चाहिए कि वह कहाँ से आया?

माया सर्प के समान है। जिस प्रकार सर्प को फेंकने के बाद विचार करते हो उसी प्रकार पहले माया छोड़ो और परमात्मा के पकड़ो। इसके बाद ही माया का स्वरूप पहिचाना जाएगा।

यर्ह्यब्जनाभचरणैषणयोरुभक्तया चेतोमलानि विधमेद् गुणकर्मजानि।
तस्मिन् विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्वं साक्षाद् यथामलदृ शोः सवितृप्रकाशः॥

(११-३-४०)

जिसे माया से छूटने की इच्छा हो उसे सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सावधानी रखनी चाहिए। सूर्योदय के समय दूसरा कोई काम नहीं करना चाहिए। हाथ जोड़कर सूर्यनारायण के सामने खड़ा होना चाहिए। तुम जिस देवता की पूजा करते हो, वह सूर्यनारायण में ही विराजमान हैं, ऐसी भावना करके तेजोमय मण्डल के साथ इष्टदेव का ध्यान करना चाहिए। सूर्यास्त के समय बाहर भटकना नहीं चाहिए। सूर्य जब अस्त की ओर जाता है, तब घर में बैठकर परमात्मा के सामने दीपक जलाओ, कीर्तन करो, ध्यान करो। प्रत्येक इन्द्रिय का संयम करो।

सूर्य के अस्त-काल में ब्राह्मण लोग सायं सन्ध्या करते हैं। आज के सभ्य लोग तो कुछ मानते ही नहीं हैं। सायंकाल होने पर ताला बन्द कर बाहर भटकने जाते हैं। जो सायंकाल बाहर भटकते हैं, उनकी बुद्धि बिगड़ती है। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय शान्ति से बैठकर भगवान् का कीर्तन करो और दीपक जलाकर पूजन करो। भगवान् से कहो कि आपको दीपक की आवश्यकता नहीं है, पर मुझे उसकी आवश्यकता है। आप प्रकाशमय हैं। आप मुझ पर ऐसी कृपा कीजिए कि मुझ में कभी अन्धकार न आ पाए।

वासना और अज्ञान ये दोनों अन्धकार हैं। भगवान् से प्रार्थना करो कि मुझ में प्रकाश बना रहे इसलिए मैं दीपक जला रहा हूँ। तुम प्रभु के समक्ष दीपक जलाओगे, तो तुमको लाभ होगा। उससे भगवान् को कोई लाभ नहीं है। परमात्मा जहाँ विराजमान होते हैं, वहाँ अन्धकार आ ही नहीं सकता। परमात्मा प्रकाशमय हैं।

उसके बाद कर्म और विकर्म का स्वरूप समझाया गया है सत्, त्रेता, द्वापर और कलियुग का रहस्य समझाया गया है।

गुप्तोऽप्ययये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रौडे हतो दितिज उद्धरताम्भसः क्ष्माम्।
कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात् प्रपंन्नमिभराजममुञ्चदार्तम्।।
संस्तुन्वतोऽब्धिपतिताञ्छ्रमणानृषींश्च शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम्।
देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्नेऽसुरेन्द्रमभयाय सतां नृसिंहे।।
देवासुरे युधि च दैत्यपतीन् सुरार्थे हत्वान्तरेषु भुवनान्यदधात् कलाभिः।
भूत्वाथ वामन इमामहरद् बलेः क्ष्मां याच्ञाच्छलेन समदाददितेः सुतेभ्यः।।
निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिःसप्तकृत्वो रामस्तु हैहयकुलाप्ययभार्गवाग्निः।
सोऽब्धिं बबन्ध दशवक्त्रमहन् सलंकं सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः।।
भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि।
वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हान् शूद्रान् कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते।।

(११-४-१८/२२)

इसके बाद नारदजी ने वसुदेवजी को समझाया कि अब समय बहुत कम है। बहुत गई, थोड़ी रही। ऐसा मत मानना कि श्रीकृष्ण मेरा पुत्र है। वे परमात्मा हैं। मृत्यु को सिर पर सवार जानकर पाप छोड़ो।

मैंने ऐसा सुना है कि जिसे फाँसी की सजा दी जाने वाली होती है उससे दो-तीन घण्टे पूर्व सरकार पूछती है कि तुम्हें क्या मिठाई खानी है? क्या किसी से मिलना है? जिसे फाँसी दी

जाने वाली होती है, वह अन्दर से इतना घबराया होता है कि वह स्वादिष्ट मिठाई खाने की इच्छा ही नहीं कर पाता। इसी प्रकार तुम भी मृत्यु को याद रखकर पाप छोड़ो और खूब भक्ति करो।

नारदजी ने वसुदेवजी को समझाया है और उनसे विदा लेकर प्रस्थान किया है।

७९- कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्

यहाँ ब्रह्मादिक देवता द्वारका में आए हुए हैं। वे द्वारकानाथ की स्तुति करते हैं कि अब आप स्वधाम में पधारिए। उसी समय उद्धवजी वहाँ आए। उनको मालूम हो गया है कि अब भगवान् स्वधाम को पधारने वाले हैं। वे बारंबार प्रभु के चरणों में वन्दन करते हैं। और कहते हैं कि मुझे भी आप अपने साथ लेते चलिए। श्रीकृष्ण कहते हैं कि उद्धव तू मुझे प्यारा लगता है; किन्तु नियम मुझे इजाजत नहीं देता। क्या तू मेरे साथ आया था? जीव अकेला आता है और अकेला ही जाता है। हे उद्धव! अब तक मैंने तुझ पर कृपा की है; किन्तु अब तू मुझ पर कृपा करना। ईशकृपा, सन्तकृपा, शास्त्रकृपा और चौथी आत्मकृपा है। तुझे अपने पर ध्यान होना चाहिए। हे उद्धव, यह जीव अनेक बार पति हुआ, पत्नी हुआ, अनेक बालक अपनी गोद में खेलाये और अनेक का विवाह किया। इसके पूर्व जन्म के बालक इस समय कहाँ होंगे? पूर्व जन्म के पति-पत्नी कहाँ होंगे? जीव तो अनादि काल से अपना संसार बनाता आया है। पशु-पक्षियों में भी पति-पत्नी होते हैं। हे उद्धव! तू ही अपना उद्धार कर। तू ही निश्चित कर कि तुझे किसी का पति होना है, न किसी की पत्नी होना है और हमें अब किसी के पेट में नहीं जाना है। मुझे भगवान् के चरणों में जाना है। जब तक तू अपने को नहीं पहचानेगा, तब तक तेरा उद्धार नहीं होगा।

धनवान् लोगों के घर बालकों को पढ़ाने के लिए मास्टरजी आते हैं। बालक यह समझते हैं कि मेरे पिताजी ने नौकर रखा है। इससे वे कुछ पढ़ते नहीं। उनको परीक्षा में उत्तीर्ण होने की लगन ही नहीं होती। मास्टरजी पढ़ाने आते हैं, सब अनुकूलताएँ हैं। फिर भी वे उत्तीर्ण नहीं होते। धनवान् मनुष्य का बालक यह सोचता है कि बाप की पेढ़ी अच्छी तरह चल रही है। मैं यदि अनुत्तीर्ण ही हो जाऊँ तो कोई हर्ज नहीं है। मेरे घर में किस बात की कमी है? लेकिन गरीब के घर कौन पढ़ाने आता है? उसके घर में कोई अनुकूलता भी नहीं होती; किन्तु उसे लगन रहती है कि मैं उत्तीर्ण हो जाऊँ। वरना अनुत्तीर्ण होने पर खाना नहीं मिलेगा। जिसको परीक्षा में उत्तीर्ण होने की इच्छा होती है, वही अपना पाठ ठीक तरह तैयार करता है। जिसे परीक्षा में उत्तीर्ण होने की तीव्र इच्छा नहीं होती, वह अपना पाठ नहीं तैयार करता।

आत्मनो गुरुरात्मेव पुरुषस्य विशेषतः।
यत् प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोसावनुविन्दते॥

उद्धव, तुझे अपने काम में लगन होनी चाहिए। तुझे संसार-सुख से घृणा नहीं होती। तू ऐसा निश्चय कर कि मुझे फिर इस संसार में नहीं आना है, मुझे भगवान् के चरणों में स्थान लेना है। हे उद्धव, तू देख रहा है कि तुझे जो मेरे बिना दिखाई देता है, वह क्षण-क्षण बदलता रहता है। जगत् सत्य नहीं है, परमात्मा सत्य है। तू जिस प्रकार का प्रश्न मुझसे करता है, वैसा ही प्रश्न यदुराजा ने गुरु दत्तात्रेय से किया था।

दत्तात्रेय स्वामी सह्यादि की तलहटी में विराजमान हैं। उनके शरीर पर लंगोटी छोड़कर कोई वस्त्र नहीं है। वे आनन्दमग्न हैं। उसी समय यदुराजा वहाँ पहुँचते हैं और पूछते हैं कि तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। फिर भी तुम किस प्रकार आनन्दमग्न हो। मेरे घर में तो सब कुछ है। फिर भी मुझे शान्ति नहीं है।

गुरु दत्तात्रेय स्वामी ने उपदेश किया, ''इस संसार में दो ही पदार्थ हैं। एक जड़ है, दूसरा चेतन। मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि जड़ से चेतन श्रेष्ठ है। जो दिखाई देता है उसे जड़ कहते हैं और जिसे दिखाई देता है, उसे चेतन कहते हैं। जो क्षण-क्षण बदलता है वह जड़ है और जिसका रहस्य सदा एक समान बना रहता है, वह चेतन है। चेतन का परिवर्तन नहीं होता, जड़ का परिवर्तन होता रहता है। आनन्द किसी जड़ वस्तु में नहीं होता। आनन्द तो चेतन परमात्मा का स्वरूप है। वह चैतन्य के रूप में मेरे अन्दर है। मैं आनन्द में निवास करता हूँ। मुझे कभी सुख-दुःख की अनुभूति नहीं होती। मैं आनन्द रूप परमात्मा से प्रेम करता हूँ। इसीलिए मैं जहाँ जाता हूँ वहीं मुझे आनन्द मिलता है मुझे जो ज्ञान मिला है, उसका एकमात्र कारण है अपनी दृष्टि को गुणमय रखना। मैं किसी का दोष नहीं देखता। ब्रह्माजी की सृष्टि गुण-दोष से भरी हुई है। फिर भी प्रत्येक में ईश्वर प्रदत्त कोई एकाध सद्गुण होता है। मैं उस सद्गुण पर विचार करता हूँ। जिसमें मुझे गुण दिखाई देता है, उसे मैं अपना गुरु बनाता हूँ। मेरे अनेक गुरु हैं।

शिक्षा-गुरु तो अनेक हैं, किन्तु दीक्षा-गुरु एक होता है। जहाँ उन्हें कोई सद्गुण दिखाई दिया है, वहाँ उस सद्गुण के लिए उसे गुरु बनाया है।

पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः।
कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतंगो मधुकृद् गजः॥
मधुहा हरिणो मीनः पिंगला कुररोऽर्भकः।
कुमारी शरकृत् सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत्॥

एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः।
शिक्षा वृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः॥
(११-७-३३ से ३५)

गुरुदत्तात्रेय ने कहा कि मैंने धरती को भी गुरु माना है। धरती मुझे यह उपदेश देती है कि कम खा और गम खा। जो गम खाता है उसका मन शांत रहता है और उसका मन रोगी नहीं होता। जो कम खाता है उसका शरीर रोगी नहीं होता। धरती माता मुझे सिखाती है कि कुछ लोग मुझमें गड्ढा खोदते हैं, कुछ लोग मुझ पर अपना पैर पटकते हैं किन्तु मैं कहती हूँ कि मेरा बेटा अपना होश भूल गया है। वह भले ही क्रोध में पैर पछाड़ता है किन्तु मुझे कभी क्रोध नहीं आता। धरती माँ सब सहन कर लेती हैं। यदि धरती माँ को क्रोध आ जाये तो हम सबका अच्युतम केशवम् हो जाये मैंने धरती माँ से यह तत्व सीखा है।

मैंने जल को गुरु माना है। मेरा स्वभाव बरफ जैसा शीतल रहता है मैंने अपना स्वभाव जल के समान मधुर रखा है। जिसका स्वभाव ठंडा है वह जहाँ जाता है वहीं ठंडक मिलती है।

मैंने अग्नि को गुरु माना है। अग्नि में यदि विष्ठा भी पड़ जाये तो वह उसे भी जलाकर भस्म कर देती है। मैं अपने पापों को विवेक–अग्नि में जलाकर भस्म करता हूँ। मैं किसी का पाप सुनता नहीं। यदि उसे कभी सुन भी लूँ तो मन में नहीं रखता। दूसरे का पाप मन में रखने से मन दूषित हो जाता है। जीवमात्र कुछ पाप करता ही है। उस पर विचार करने की मुझे क्या आवश्यकता है पानी गड्ढे में ही उतरता है अर्थात् उसका स्वभाव ही ऐसा है। मैं किसी का पाप मन में नहीं रखता।

मैंने वायुदेव को गुरु माना है। वायुदेव इत्र की दुकानों में सुगन्ध नहीं लेते और न किसी गंदे स्थान से दुर्गन्ध लेते हैं। वे सुगन्ध और दुर्गन्ध इन दोनों को छोड़कर फिरते हैं। तुम भी जगत् में मान और अपमान की परवाह किये बिना फिरते रहना। जिसको मान लेने की इच्छा होती है उसका मन अशांत रहता है। मान भी बुरा और अपमान भी बुरा इसीलिए संत लोग जगत् में मान और अपमान दोनों की चिंता छोड़कर जगत् में भ्रमण करते हैं। जिस प्रकार वायुदेव सुगन्ध और दुर्गन्ध को छोड़कर फिरा करते हैं। मैंने वायुदेव से यह तत्व सीखा है। मैंने ईयण को अपना गुरु माना है। ईयण भमरी का चिन्तन करते–करते भमरी बन जाती है। भमरी के साथ चोट सहन करती–करती भय से ईयण भमरी का ही ध्यान करती है। इसीलिए ईयण इसी जन्म में भमरी बन जाती है। यदि ईयण भमरी का चिंतन करती–करती भमरी बन जाती हो तो यह जीव ब्रह्म का चिन्तन करते–करते ब्रह्म रूप बन जाये तो क्या आश्चर्य?

मैंने मधुमक्खी को गुरु बनाया है और उससे यह सीखा है कि अधिक संग्रह मत करो। अधिक संग्रह करने से मृत्यु होती है।

मैंने भ्रमर को गुरु बनाया है। कमल के मकरन्द का पान करते-करते भ्रमर इस प्रकार तन्मय हो गया था कि सूर्यास्त के बाद कमल बंद हो गया और उसके अन्दर बंद होने वाला भ्रमर विचार करने लगा, ''रात गुजर जाएगी, सूर्योदय होगा, और कमल खिलेगा तब मैं बाहर निकलूँगा।'' भ्रमर के दांत में ऐसी शक्ति है कि वो लकड़ी में भी छेद बना सकता है, किन्तु वह कोमल कमल को छेद नहीं सका। आधी रात को वहाँ एक हाथी आया। उसने कमल को उखाड़ लिया और अपने पैर के नीचे कुचल डाला उसके अन्दर बंद भ्रमर मर गया। यह संसार कमल के समान है। यह जीव भ्रमर के समान उसमें फंसा हुआ है। प्रभु ने मनुष्य को ऐसी बुद्धि और शक्ति दी है यदि वह सावधान हो जाये तो पाप को छोड़ सकता है और सतत भक्ति कर सकता है। भ्रमर के दांत में ऐसी शक्ति है कि वह लकड़ी में भी छेद कर सकता है। परंतु ऐसा होने पर भी कोमल कमल में फँसा रहता है। वह कमल को नहीं तोड़ सकता है। इसी प्रकार मनुष्य भी संसार के विषयों में फँसा रहता है। वह उसे छोड़ नहीं सकता। काल उसे पैर के नीचे कुचल डालता है। काल-हाथी इस जीव को कुचल डाले उसके पहले हीं सावधान होना जरूरी है।

मैंने अपने जीवन में अनेक गुरुओं से अनेक तत्व जीवन में ग्रहण किया है।

गुरु दत्तात्रेय स्वामी ने संक्षेप में उपदेश दिया है। वह सुनकर यदुराजा को अतिशय आनन्द प्राप्त होता है वे उनके चरणों में साष्टाँग वन्दन कर जय-जयकार करते हैं।

इसके बाद भगवान् ने उद्धव को साधक-धर्म का तत्व समझाया है। वे यह भी समझाते हैं कि सिद्ध महात्माओं की स्थिति कैसी होती है? वह बन्धन और मोक्ष की महिमा-कथा है।

बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः।
गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम्।। (११-११-१)

संसार रूपी वृक्ष में जीव और शिव दो पक्षी बैठे हैं। उस रूपक की कथा भी सुनाई।

परा; पश्यन्ति, मध्यामा और वैखरी इस प्रकार चार तरह की वाणियों का रहस्य समझाया है और सन्तों का लक्षण भी समझाया है।

प्रायेण भक्तियोगेन सत्संगेन विनोद्धव।
नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सतामहम्।। (११/११/४८)

उद्धव ने प्रश्न किया है कि मन विषयों में जाता है या विषय मन में आते हैं? भगवान् समझाते हैं, ऐसा प्रश्न सनत्कुमारजी ने किया था। उस समय हंसनारायण की उत्पत्ति हुई थी।

हंसनारायण ने उपदेश दिया कि पहले मन विषयों में जाकर विषयाकार बनता है। उसके बाद विषयाकार मन में विषय स्थिर हो जाता है। हे उद्धव! मन में निवास करने वाला संसार बहुत रुलाता है। तू अपने मन से संसार को निकाल डालना और अपने मन को सम्हाल रखना।

दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवो निरीहः।
संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत् स्मृतिरानिपातात्॥

(११/१३/३५)

जो तन और धन को सम्हाले, वह संसारी जीव है। जो मन को सम्हालता है, वह सन्त है। सन्त लोग तन और धन की अपेक्षा मन को अधिक सम्हालते हैं। यदि मन अधिक दूषित हो जाय तो यह जन्म तो बिगड़ेगा ही। तदुपरान्त दूसरा जन्म भी दूषित होगा। दूसरे जन्म में इसी मन के साथ जन्म लेना है। इसलिए हे उद्धव! तू मन को अधिक सम्हालना और अपनी वाणी पर नियन्त्रण रखना। मन जब मिलना चाहेगा तब भगवान् में ही मिल जाता है। वह संसार के विषयों में नहीं मिलता। मन इस संसार के विषयों में कुछ समय फिरता है। फिर वहाँ से हट जाता है। फूल में कुछ देर के लिए मन जाएगा, किन्तु उसमें मिल नहीं जायेगा। जब यह फूल कुम्हला जाता है, तब मन उससे दूर हट जाता है। मन साँसारिक विषयों में नहीं मिलता। मन जब मिलता है, तब भगवान् में ही मिलता है।

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते।
मामनुस्मरतश्चितं मय्येव प्रविलीयते॥

(११-१४-२७)

यदि दूध में चीनी डालो तो वह उसमें मिल जाएगी; किन्तु यदि कोई दूध में पत्थर डालकर उसे खूब औटाए तो भी उसमें नहीं मिल सकेगा। इसका कारण यह है कि पत्थर और दूध दोनों विजातीय तत्व हैं। चीनी और दूध सजातीय तत्व हैं। इसलिये वे परस्पर मिल जायेंगे। चीनी में मीठापन है और दूध में भी मीठापन है सजातीय, सजातीय में मिलते हैं। हे उद्धव! यह मन जड़ नहीं है। इसीलिए संसार के किसी जड़ पदार्थ में यह मन नहीं मिलता। मन यदि मिलेगा तो चेतन परमात्मा के स्वरूप में ही मिलेगा। विषयों में तो मन फँसता है, उसमें मिलता नहीं है। यदि मन परमात्मा का ध्यान करे तो उसमें लीन हो जाता है।

तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथम्।
हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम्॥

(११-१४-२८)

इसके बाद श्रीकृष्णजी ने उद्धवजी को ध्यानयोग का मर्म समझाया है कि एक आसन पर बैठकर आँखों को स्थित करने की आदत डालो। इसके बाद मन स्थिर होगा। एक-एक अंग का चिन्तन करना ही ध्यान है। सर्वांग का चिन्तन करना धारणा है। हे उद्धव! जैसे-जैसे यह जगत् भूलने लगता है, वैसे-वैसे आनन्द बढ़ने लगता है। आनन्द इस जगत् में नहीं है; बल्कि इसकी विस्मृति में है। यह जगत् सुख-दुःख से परिपूर्ण है। जगत् के भूलने पर आनन्द मिलता है। यह प्रतिदिन का अनुभव है कि निद्रा में शान्ति मिलती है। क्योंकि जगत् के होने पर भी निद्रा में उसकी स्मृति नहीं रहती। निद्रा-काल में संसार इस मन से बाहर निकल जाता है। इसीलिए निद्रा में शान्ति मिलती है। हे उद्धव! जिस प्रकार निद्रा में यह मन जगत् को भूल जाता है, उसी प्रकार जाग्रत अवस्था में भी मन जगत् को भूल जाए और परमात्मा में तन्मय हो जाए, तो आनन्द मिलता है। ध्यानकर्ता ध्यान की तन्मयता में अपने आपको भूल जाता है और आत्मा इस देह से पृथक् हो जाती है। जब आत्मा का देह-सम्बन्ध टूटता है, तब ब्रह्म सम्बन्ध स्थापित होता है जिससे ध्यानकर्ता ध्येय में मिल जाता है।

एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि।
विचष्टे मयि सर्वात्मन् ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम्।। (११-१४-४५)

इस प्रकार श्रीकृष्णजी ने ध्यानयोग कां उपदेश दिया। ध्यानकर्ता को अनेक प्रकार की सिद्धियाँ मिलती हैं। यह कथा भी सुनाई। हे उद्धव! सिद्धि का उपयोग करने वाले की प्रसिद्धि होती है, किन्तु प्रसिद्धि से पतन भी होता है। ज्ञानी मनुष्य सिद्धि का उपयोग परोपकार के लिए भी नहीं करते।

अन्तरायान् वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम्।
मया सम्पद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः।। (११-१५-३३)

सिद्धियाँ प्रभु मिलन में विघ्न उपस्थित करने वाली होती हैं। माया गृहस्थ को काम सुख और पैसे में फँसा रखती है। इसलिए गृहस्थ को पैसा और कामसुख छोड़ना बहुत कठिन होता है। साधु को साधना से प्राप्त सिद्धि का मोह छोड़ भक्ति करना बहुत कठिन है।

इसके बाद इस अध्याय में विभूति योग की बात समझाई गई है। तत्पश्चात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का वर्णाश्रम धर्म समझाया गया है।

इसके बाद उद्धवजी ने अनेक प्रश्न किए हैं। उन्होंने पूछा, बड़े से बड़ा दान कौन-सा है? सोना देने से अधिक पुण्य मिलता है या चाँदी देने से? श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा, 'दण्ड न्यास परं

दानम्' सोना-चाँदी का दान तो अच्छा ही है। मैं तुझे अत्यन्त दान बताता हूँ, जो गरीब भी दे सकता है। इस संसार में जो सब दिखाई देता है और सुनाई देता है; वह तत्त्वतः परमात्मा का स्वरूप है। यह भाव अपने मन में लाकर किसी से द्रोह न करो। किसी के लिए बुरा विचार मत करो अथवा खराब शब्द मत बोलो। जो सबमें सद्भाव रखता है, वह बहुत बड़ा दान करता है।

उद्धवजी ने पूछा, महाराज, बड़े से बड़ा तप कौन-सा है? जंगल में रहने वाला बड़ा तपस्वी है? क्या दाढ़ी-जटा बढ़ाने वाला बड़ा तपस्वी है? भगवान् ने कहा उद्धव, यह सब ठीक है। जिसके मन में काम न आए और जो मन से काम-त्याग करे वह महान् तपस्वी है। चाहे वह घर में रहता हो या जंगल में रहता हो। जो मन में काम को नहीं आने देता और मन से ही काम-त्याग करता है, उसे मैं तपस्वी मानता हूँ। 'कामस्तागस्तपः स्मृतम्।'

उद्धवजी ने प्रश्न पूछा, दरिद्र किसे कहते हैं? भगवान् ने उत्तर दिया उद्धव जो ऐसा मानकर मन में सन्तोष करता है कि प्रभु ने मुझे मेरी योग्यता की अपेक्षा अधिक दिया है, बहुत अधिक दिया है वही धनवान् है। जिसे प्राप्त स्थिति में सन्तोष नहीं है, वह दरिद्र है।

उद्धव ने प्रश्न किया कि मूर्ख किसे कहते हैं? भगवान् ने उत्तर दिया, उद्धव जो ऐसा समझकर शरीर-सुख में फँसा रहता है कि मैं ही शरीर हूँ, वह मूर्ख है। आत्मा इस शरीर से अलग है। जो पुस्तक में लिखा गया ज्ञान अपने मस्तक में रखकर बोला जाए, वह साधारण ज्ञान है। जो जितना जानता है उतना अपने जीवन में उतारता है, वही सच्चा ज्ञानी है। तुम जो जानते हो, वह अपने जीवन में उतारो और अपने ज्ञान के अनुसार क्रिया करो। जो ज्ञान के अनुसार क्रिया नहीं करता उसका ज्ञान क्रिया के अनुसार हो जाता है। हे उद्धव जो ज्ञान के अनुसार क्रिया करे, वही ज्ञानी है।

उद्धवजी ने प्रश्न किया, ''सच्चा धन क्या है?'' भगवान् ने उत्तर दिया, ''उद्धव, धर्म ही सच्चा धन है। 'धर्म इष्टं धनं नृणाम्'।

उद्धवजी ने पूछा, ''स्वर्ग किसे कहते हैं? और नरक किसे कहते हैं?'' भगवान् ने बताया, 'हे उद्धव, यदि मन में छल-कपट करने की इच्छा हो, मन में विकार वासना जागे, मन दूषित हो तो समझना चाहिए कि मैं नरक में पड़ा हूँ। यदि मन में सात्विक भाव जागे, परमात्मा का स्मरण करने से मन द्रवित हो, परोपकार में शरीर घिसने की इच्छा हो और अभिमान मरे, तो समझना चाहिए कि मैं स्वर्ग में हूँ।

उद्धवजी ने प्रश्न किया, ''महाराज, जीव किसे कहते हैं और ईश्वर किसे कहते हैं? भगवान् बोले, ''जो परतंत्र है, वह जीव है और जो स्वतंत्र है, वह ईश्वर है। जो माया के आधीन

है, वह जीव है और माया जिसके आधीन है, वह ईश्वर है। जो देह का अभिमान रखता है, वह जीव है और ज़िसे समष्टि ब्रह्माण्ड का अभिमान है, वह ईश्वर है। जीव अनेक हैं, ईश्वर एक है।

उद्धवजी पूछते हैं, ''वीर कौन है?''

भगवान् कहते हैं, ''जो बाहर के शत्रु को मारता है, वह वीर नहीं है। जो अन्दर के शत्रु को मारता है और विषयेन्द्रिय को वश में करता है, वह वीर है।

उद्धवजी प्रश्न करते हैं, ''जीव का मित्र कौन है?''

भगवान्–''सभी का मित्र मैं हूँ। मैं सभी जीवों के साथ निःस्वार्थ भाव से प्रेम करता हूँ।''

उद्धवजी ने पूछा, ''गुण किसे कहते हैं और दोष किसे कहते हैं?'' भगवान् ने कहा, ''दूसरे के दोषों पर विचार करना ही सबसे बड़ा दोष है। अपने दोष का स्मरण कर अपना जीवन सतत सुधारने का प्रयत्न करना ही गुण है। भले ही जगत् धिक्कारे, तिरस्कार करे या कुछ भी करे; किन्तु श्रेयार्थी अपना उद्धार करे यह इष्ट है। उद्धव, तुम जगत् के पीछे मत पड़ना, मेरे पीछे पड़ना। कोई इस संसार को सन्तुष्ट नहीं कर सका है। जो परमात्मा को सन्तुष्ट करता है, वही संसार को संतुष्ट कर सकता है। जो परमात्मा को जानता है, उसे कुछ जानने को शेष नहीं रहता। अपने मन को निन्दा स्तुति में शान्त रखो।

उद्धवजी ने कहा, ''महाराज, खोटी निन्दा क्यों सहन नहीं होती?'' भगवान् ने बताया, ''निन्दा खरी हो या खोटी, यदि वह सहन न हो तो यह मानना कि अभी भक्ति का रंग नहीं चढ़ा है। जिसको अपनी निन्दा सहन न हो, उसका ज्ञान कच्चा है। निन्दा–स्तुति तो शब्द रूप हैं यह शब्द आकाश में जाता है। वह आत्मा का धर्म नहीं है, बल्कि आकाश का धर्म है। वह शुद्ध आत्मा को नहीं स्पर्श करता। उद्धव, सूर्यनारायण न तो किसी की निन्दा करते हैं, न किसी की स्तुति करते हैं। सूर्यनारायण तेजोमय हैं। वे जगत् को पहचानते हैं कि इसमें कौन सज्जन और कौन दुर्जन है? कौन भागवत की कथा सुनता है और कौन चप्पल चुराकर ले जाता है। फिर भी सूर्यनारायण कभी यह नहीं कहते कि यह सज्जन है और यह दुर्जन है। संसार को पहचानना, किन्तु इसका बहुत बखान मत करना। इस संसार में कुछ खराब नहीं है और श्रीकृष्ण को छोड़कर कुछ अच्छा भी नहीं है। जगत् की निन्दा करने से मन दूषित होता है और जगत् का बहुत वर्णन करने से भी मन दूषित होता है।'' यह समझाने के बाद भगवान् ने कदरी ब्राह्मण की कथा सुनाई। कदरी ब्राह्मण को जब लोगों ने बहुत सताया, तब वह अपने मन को समझाता है–

नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवतात्मा ग्रहकर्मकालाः।
मनः परं कारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्तयेद् यत्।। (११-२३-४३)

"यह सिद्धान्त सत्य है कि मैं सब में स्थित हूँ और मुझमें जो चैतन्य है, वह सब में व्याप्त है तो फिर मेरी निन्दा कौन करता है? यदि मेरी उँगली मेरी आँख में जाए तो उस उँगली को कौन सजा देता है? यदि मेरा दाँत मेरी जीभ को कुचले, तो वह उसे सहन करती है। एक ही परमात्मा सबमें है और जीव अपने किए गए कर्मों का फल भोगता है। मन सुख-दुःख की कल्पना करता है। मन माने तो सुख है और न माने तो दुःख है। यह सारा खेल मन करता है। मैं तो साक्षी भाव से उसे देखता रहता हूँ।" इस प्रकार कदरी ब्राह्मण ने अपने को समझाया।

इसके बाद भगवान् ने उद्धव को अनुलोम, प्रतिलोम विधि से सृष्टि की उत्पत्ति-स्थिति की प्रक्रिया समझाई। उन्होंने प्रलय का क्रम बताया और सत्वगुण-रजोगुण तथा तमोगुण का लक्षण समझाया। वे उद्धवजी को सावधान करते हुए कहते हैं, "उद्धव, परमात्मा के कृपा करने पर ही सत्संग मिलता है। फिर भी कुसंग से दूर रहना तुम्हारे वश की बात है। यदि सत्संग न मिले, तो कोई हर्ज नहीं। कुसंग से दूर रहना। अति कामी का संग कुसंग कहलाता है। जिसे पाप का डर नहीं लगता, और जिसे प्रभु से प्रेम नहीं है ऐसे जीव का संग ही कुसंग है। उद्धव, कुसंग से यह जीव जल्दी दूषित होता है। संग का प्रभाव पशु- पक्षियों पर भी पड़ता है। क़साई के घर का तोता गाली देता है और वैष्णव के घर का तोता 'रघुपति राघव राजाराम' बोलता है। हे उद्धव! कोई जन्म से नहीं बिगड़ता, संग से बिगड़ता है। संग से ही जींवन सुधरता है। जो ज्ञान में, भक्ति में वैराग्य में तुम्हारी अपेक्षा आगे बढ़े हैं, ऐसे महापुरुषों का स्मरण करो और ऐसे महापुरुषों को अपनी आँखों में और अपने मन में रखो। संसार-सुख में लिपटे हुए किसी विलासी गृहस्थ का ध्यान न करो। जिसका मन लौकिक सुख में फँसा हुआ है, वह दया का पात्र है। उसे सच्चे सुख की खबर नहीं होतीं।

निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम्।
सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम्॥ (११-२६-३२)

हे उद्धव, ज़ो ज्ञान, भक्ति और वैराग्य में आगे बढ़े हैं, उनका सत्संग करो। इसके बाद श्रीकृष्णजी ने ऐल राजा की कथा सुनाई। फिर सेवा-पूजा की विधि बताई। फिर सांख्य योग की प्रक्रिया का वर्णन किया। आत्मा शुद्ध चेतन है; किन्तु प्रकृति के धर्मों के आरोप के कारण वह किस प्रकार बन्धन में आ जाती है, इसको समझाया। उद्धवजी को भागवत धर्म का उपदेश भी किया। समाप्ति में श्रीकृष्ण ने उद्धवजी से कहा, "अपने घर के लोगों को धन तो देना, किन्तु मन मुझे देना। घर के लोग तुम्हारा मन माँगते भी नहीं हैं। वे तुम्हारा धन माँगते हैं वे तुम्हारा तन भी माँगते हैं; किन्तु परमात्मा तुमसे मन माँगता है। उद्धव, यह मन देने लायक कोई पुरुष नहीं है; कोई स्त्री भी नहीं है। इसलिए तुम अपना मन मुझे ही देना। तू अपना धन देश को, समाज को और

कुटुम्ब को देना; किन्तु याद रखना कि मन देने लायक कोई मनुष्य नहीं है। जो मनुष्य को अपना मन देता है, उसका मन दूषित हो जाता है और वह दुःखी होता है। कभी-कभी कोई मनुष्य ऐसा कहता है कि इन लोगों ने मेरा मन खट्टा कर दिया है। मैं पूछता हूँ कि तुमने अपना मन दिया ही क्यों? मन देने लायक तो एक परमात्मा है। उद्धव तू इसे मत भूलना कि मैं सबमें निवास करता हूँ। अब तू सर्वान्तर्यामी नारायण की शरण में जा। कुछ समय में ही द्वारकापुरी समुद्र में डूब जाएगी। मेरी इच्छा है कि तू जल्द ही बदरीकाश्रम चला जा और वहाँ ध्यान कर।

उद्धव बारंबार वन्दन करते हैं–

नमोऽस्तु ते महायोगिन् प्रपन्नमनुशाधि माम्।
यथा त्वच्चरणाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी।। (११-२९-४०)

उद्धव ने कहा कि आपने थोड़े समय में अच्छा ज्ञान दिया है। मैं आपकी शरण में आया हूँ। मैं कभी अकेला किसी जगह पर नहीं गया हूँ। आप चलिए, तो मैं भी आपके पीछे-पीछे चलूँगा। भगवान् ने कहा, ''उद्धव, तेरे हृदय में चैतन्य रूप से मैं ही स्थित हूँ। तू मेरा जहाँ ध्यान करेगा, वहीं मैं प्रकट हो जाऊँगा। तू यह भावना रखना कि श्रीकृष्ण मेरे साथ ही हैं।'' उद्धवजी ने कहा कि यह भावना करने के लिए कोई आधार दीजिए। यह सुनकर भगवान् को दया आई और अपनी चरण-पादुका उद्धव को देते हुए उन्होंने कहा, ''उद्धव, तू यह चरण-पादुका ले।'' इससे उद्धव को बड़ा आनन्द हुआ।

प्रेम में ऐसी शक्ति है कि वह जड़ को चेतन बना देता है। उद्धवजी को उन चरण-पादुका में श्रीकृष्ण के दर्शन होते हैं। उन्होंने चरण-पादुकाओं को अपने मस्तक पर धारण कर लिया है। श्रीकृष्ण के चरणों में वन्दन कर उद्धव बदरीकाश्रम पहुँचते हैं। बदरीनारायण के पास पाण्डुकेश्वर में अलकनन्दा के किनारे उद्धवजी बैठे हैं। वे आदिनारायण के दर्शन करते-करते परमात्मा के चरण में लीन हो गए हैं। यह कथा एकादश स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय में वर्णित है। तीसवें और इकतीसवें अध्याय में यदुवंश के विनाश की कथा है। महान् सन्त श्री श्रीधर स्वामी ने इन दोनों अध्यायों का विस्तार करने की आज्ञा नहीं दी है। इसलिए इन अध्यायों का बहुत संक्षिप्त वर्णन किया गया है। यादवों में कलह हुआ और उनका विनाश हुआ।

श्री श्रीधर स्वामी ने इस स्कन्ध का उपसंहार बड़ा सुन्दर किया है। भगवान् की इच्छा से यादवों का विनाश हुआ। उस समय परमात्मा प्रभास क्षेत्र में एक पीपल के पेड़ के नीचे विराजमान थे। उस समय दक्षिण भारत में चन्द्रभागा नदी के तट पर पुण्डलीक नाम का एक महान् भक्त था। पुण्डलीक सारे दिन अपने माता-पिता की सेवा करता है और श्रीकृष्ण का स्मरण करता है।

पुण्डलीक बहुत गरीब है। वह प्रतिदिन भिक्षा माँगने जाता है, रसोई बनाता है और माता-पिता को भोजन कराता है। उसके माता-पिता को वृद्धावस्था में अनेक रोग हुए हैं। वृद्धावस्था में मनुष्य का स्वभाव यों ही चिड़चिड़ा बन जाता है। पुण्डलीक के सेवा करने पर भी उसके पिता उसका अपमान करते रहते हैं। वह अपने माता-पिता के सामने कभी जवाब नहीं देता। वह उन्हें बारंबार वन्दन करता है। वह अपने माता-पिता को ही परमात्मा मानता है। उसे बड़ी इच्छा थी कि एक बार द्वारकानाथ के दर्शन करने द्वारका जाऊँ; किन्तु माता-पिता की सेवा छोड़कर वह वहाँ नहीं जा सका। सतत् सेवा और स्मरण से पुण्डलीक का मन शुद्ध हो गया है। उसके शुद्ध मन में एक दिन ऐसा भाव जागा कि मैं तो द्वारका नहीं जा सका; किन्तु द्वारकानाथ श्रीरुक्मिणीजी को साथ लेकर मेरे घर पधारने की कृपा करें। मुझे इन युगल की पूजा करनी है।

पुण्डलीक का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम बहुत बढ़ गया है। उसे परमात्मा का आकर्षण हुआ। प्रभु ने द्वारकाधीश का उपसंहार किया है। वे रुक्मिणीजी को साथ लेकर चन्द्रभागा नदी के तट पर पंढरपुर में पुण्डलीक के घर पहुँच जाते हैं। पुण्डलीक एक छोटी-सी झोंपड़ी में निवास करता है। चौदहों भुवन के नाथ उसके घर आए हैं। उन्हें देखकर उसका आनन्द मन में नहीं समाता। वह सोचता है कि मैं प्रभु का स्वागत किस प्रकार करूँ? मैं एक दरिद्र ब्राह्मण हूँ। उसने द्वारकानाथ को एक ईंट देते हुए कहा, ''आप इस ईंट पर विराजिए। मैं माता-पिता की सेवा करने के बाद आपकी सेवा करूँगा।'' माता-पिता के प्रति उसका प्रेम देखकर भगवान् उस पर खूब प्रसन्न हो गए हैं। उन्होंने कहा है, ''मैं यहाँ खड़ा हूँ। तू अपने माता-पिता की सेवा कर।''

परमात्मा ईंट पर खड़े हैं। माता की सेवा करने के बाद पुण्डलीक अपने पिता की सेवा करने गया है। वहाँ से लौटते समय उसे विलम्ब हो गया है। खड़े-खड़े परमात्मा की कमर दुःखने लगती है। उस समय प्रभु ने अपने दोनों हाथ कमर पर रख लिये हैं। भगवान् की कमर तो भला क्या दुःखी होगी। फिर भी उन्होंने जगत् को उपदेश दिया है कि मैं तुम्हारे लिए यहाँ खड़ा हूँ। इस संसार-सागर में बड़े-बड़े डूब गए हैं, किन्तु जो मुझे भजता है, उसके लिए यह उतना ही गहरा है, जितना कमर तक पानी है।

प्रमाणं भवाब्धेरिदं मामकानां नितम्बः कराभ्यां धृतो येन तस्मात्।
विधातुर्वसत्यै धृतो नाभिकोशः परब्रह्मलिंगं भजे पाण्डुरंगम्॥

जो श्रीकृष्ण-चरण का आश्रय ग्रहण करता है, जो परमात्मा के सेवा-स्मरण में तन्मय बनता है, वह संसार-सागर में नहीं डूबता। कमर तक पानी होने पर कोई डूब नहीं सकता। जो परमात्मा के चरण का आश्रय ग्रहण करता है, वह अनायास ही तर जाता है उन्होंने जगत् से मानों

यह कहा है कि मैं कहीं गया नहीं हूँ। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करता हुआ यहीं खड़ा हूँ। विठ्ठलनाथजी महाराज सबकी प्रतीक्षा करते हैं और कहते हैं, ''जीव मेरा है। मैं जीव मात्र के लिए यहाँ खड़ा हूँ। मैं सन्तों के हृदय में हूँ, भागवत में हूँ।''

भगवान् आज भी प्रत्यक्ष में विराजमान हैं। जहाँ-जहाँ भगवान् का ध्यान होता है, जहाँ-जहाँ वैष्णव परमात्मा के सेवा-स्मरण में तन्मय बनते हैं, वहाँ-वहाँ आज भी वे प्रकट हो जाते हैं। द्वारकानाथ ही विठ्ठलनाथ हैं।

इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतारवीर्याणि बालचरितानि च शन्तमानि।
अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन् मनुष्यो भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत॥

(११-३१-२८)

इति एकादश स्कन्ध समाप्त

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

द्वादशः स्कन्धः

८०– आश्रयलीला

स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे।
कस्य वंशोऽभवत् पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने॥ (१२-१-१)

एकादश स्कन्ध मुक्तिलीला है और द्वादश स्कन्ध आश्रयलीला है। मुक्त जीव परमात्मा के चरण का आश्रय ग्रहण करते हैं।

परीक्षित राजा ने पूछा, ''मुझे कलियुग का वर्णन सुनने की इच्छा है।''

कलियुग का बहुत कुछ भविष्य वर्णन इस स्कन्ध में किया गया है। कलियुग के आरंभ में वृहद्रथ राजा के वंश का पुरंजय नाम का एक राजा भारत में राज्य करेगा। उसका मंत्री शुनक कपट से उसे मार डालेगा और वह अपने पुत्र प्रद्योत को गद्दी पर बिठाएगा। प्रद्योत के वंश के अनेक राजा राज्य करेंगे। इसके बाद कलियुग में चन्द्रगुप्त राजा का साम्राज्य स्थापित होगा। फिर अशोक राजा आएगा। इसके बाद संगत नाम के राजा का राज्य होगा। इस संग राजा के राज्य से बौद्ध धर्म का प्रचार शुरू होगा। उसके बाद भारत में आंभीर जाति के सात राजा राज्य करेंगे। तत्पश्चात् आठ यवन और चौदह गोरों का राज्य कलियुग में होगा। जैसे-जैसे कलियुग बढ़ेगा, वैसे-वैसे वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था छिन्न-छिन्न होती जाएगी। कलियुग के विलासी लोग कुल, जाति-गोत्र का विचार किये बिना स्नेह-विवाह या प्रेम-विवाह करेंगे। कलियुग में वर्णसंकर और जातिसंकर अनेक होंगे। कलियुग में ब्राह्मण वेदाध्ययन नहीं करेंगे। वे तपश्चर्या से विहीन होंगे। कलियुग के साधु-संन्यासी पैसा इकट्ठा करेंगे। वे बड़े-बड़े बंगले बनाएँगे और गृहस्थ जैसा जीवन गुजारेंगे। ब्रह्मचारी विलासी बनेंगे। कलियुग के राजा प्रजा का शोषणकर कर वसूल करेंगे। वे प्रजा की रक्षा नहीं करेंगे, बल्कि भक्षण करेंगे। कलियुग के राजा गायों को बहुत सताएँगे और उनका संहार करेंगे। कलियुग की स्त्रियाँ अति कामी, कपटी और झूँठ बोलने वाली होंगी। कलियुग में पैसे के लिए दो सगे भाई झगड़ा करेंगे। कलियुग की सन्तानें अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा नहीं

करेंगी। भयंकर कलियुग आने पर विष्णुयश नाम के ब्राह्मण के घर कल्कि नारायण का अवतार होगा। कल्कि नारायण कलियुग का उपसंहार करेंगे। कुछ वर्ष बीतने पर सतयुग का आरंभ होगा।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्॥
कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥ (१२-३-५१,५२)

कलियुग में दोष तो अनेक हैं; किन्तु एक सबसे बड़ा सद्‌गुण है। सतयुग में ध्यान-धारणा करने से जो सिद्धि मिलती है, त्रेतायुग में यज्ञ करने से और द्वापर युग में वैदिक-तांत्रिक विद्या से पूजा करने वाले को जो सिद्धि मिलती है वही सिद्धि कलियुग में बहुत प्रेम से परमात्मा के नाम का कीर्तन करने पर मिलती है। कीर्तनादेव कृष्णस्य...कलि परमात्मा के नाम से घबराता है। प्रभु के नाम के साथ जो अतिशय प्रेम करता है, उसको कलि भक्ति में साधक बनता है और सताता नहीं। शुकदेवजी महाराज ने राजा को कलि की समाप्ति में चार प्रकार के प्रलय की कथा सुनाई।

नित्यो नैमित्तकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः।
आत्यन्तिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी॥ (१२-४-३८)

नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृतिक प्रलय और आत्यंतिक प्रलय। शुकदेवजी राजा परीक्षित को सावधान करते हुए कहते हैं, राजन्, आज अन्तिम दिन है। अब तक्षक नाग के आने की तैयारी हो गई है। तक्षक शरीर काटेगा, किन्तु आत्मा को नहीं काटेगा। आत्मा तो परमात्मा का अंश है। यह प्रभु के चरणों में जाने वाला है। तू तेजोमय नारायण का ध्यान कर।

विद्यातपः प्राणनिरोधमैत्री तीर्थाभिषेक व्रत दान जप्यैः।
नात्यन्तशुद्धिं लभतेन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते॥

शुकदेवजी महाराज कहते हैं कि समय तो हो गया है, किन्तु मैं जब तक बैठा हूँ तब तक तक्षक नाग नहीं आयेगा और यदि आ भी जाए तो मेरी नजर उस पर पड़ेगी तो उसका जहर भी मैं अमृत बना दूँगा। मैंने ब्रह्मदृष्टि सिद्ध की है। तेरे मन में कुछ शंका हो तो तू मुझसे प्रश्न कर। यदि तुम्हें अब भी सुनने की इच्छा हो तो मुझसे कह। मैं तुझे कथा सुनाऊँगा। परीक्षित महाराज शुकदेवजी के चरणों में बारम्बार वन्दन करते हैं और कहते हैं, गुरुदेव आपने मुझ पर बड़ी कृपा की। अब मुझ में कोई शंका शेष नहीं है और मुझे कुछ पूछना भी नहीं है। मुझें अब तक्षक नाग से जरा भी डर नहीं लगता। मेरे अन्दर चैतन्य रूप से जो नारायण है वे ही नाग में भी है। आपने मुझे कथा नहीं सुनाई है, बल्कि परमात्मा के दर्शन की आँख दी है और मुझे कृतार्थ किया है।

जिसकी दृष्टि दिव्य होती है, उसकी दृष्टि भी दिव्य बन जाती है। मैं अब चारों ओर नारायण के दर्शन करता हूँ। दाहिनी ओर नारायण हैं, बाई ओर नारायण हैं, आगे नारायण हैं, पीछे नारायण हैं, अन्दर नारायण हैं और बाहर भी नारायण हैं। आपने प्रथम स्कन्ध की कथा कही और मुझे प्रभु के दक्षिण चरण के दर्शन हुए। आपने द्वितीय स्कन्ध की कथा कही उस समय मुझे भगवान् के वाम चरण के दर्शन हुए। तृतीय और चतुर्थ स्कन्ध की कथा सुनने से उनके दो हाथों के दर्शन हुए। पंचम और षष्ठ स्कन्ध की कथा में दो जाँघों के दर्शन हुए सप्तम स्कन्ध की कथा सुनी तो मुझे उनके कटि भाग के दर्शन हुए। अष्टम और नवम स्कन्ध की कथा सुनी तो मुझे परमात्मा के दो स्तनों के दर्शन हुए। आपने मुझे प्रेम रस पिलाया है और पवित्र कर दिया। आपने दशम स्कन्ध की कथा सुनाकर मुझे प्रभु के विशाल वक्षस्थल की झाँकी दिखाई है और एकादश स्कन्ध की कथा सुनाकर मुझे परमात्मा के प्रसन्न मुखारविन्द के दर्शन कराए हैं। भगवान् श्रीकृष्ण प्रेम से मुझे देखते हैं और गाल में धीरे-धीरे हँसते हैं। वे बहुत प्रसन्न दिखाई देते हैं। अब द्वादश स्कन्ध की कथा सुनाकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् अब मुझे बुला रहे हैं, 'तू यहाँ आ जा।'

भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम्।
प्रविष्टो ब्रह्म निर्वाणमभयं दर्शितं त्वया।। (१२-६-५)

आपने मुझे निर्भय बनाया है और सन्देहहीन कर दिया है। मैं अब भगवान् के चरण में जाने वाला हूँ। शुकदेवजी को बहुत आनन्द होता है और वे कहते हैं 'राजन्, तू जैसा बोलता है वैसा मुझे भी दिखाई देता है। तू कृतार्थ हो गया है। तू मेरी कथा बहुत प्रेम से सुनता था। इसलिए मैं अपने श्रीकृष्ण का दर्शन करते-करते बोलता था। तू कथा में बहुत सावधान होकर बैठा था और मैं जगत् को भूलकर, भगवान् में तन्मय होकर कथा कहता था। मैं तेरा उपकृत हूँ कि तूने मेरी कथा बहुत प्रेम से सुनी। तेरे सत्संग में मुझे बहुत आनन्द हुआ है। तू तो भगवान् के धाम में जाने वाला है, किन्तु तेरे शरीर को तक्षक नाग डँस करे, यह प्रसंग मुझसे नहीं देखा जाएगा। मेरा काम पूरा हो गया है। मैं अब जाता हूँ। तू मुझे आज्ञा दे। परीक्षित महाराज बारम्बार वन्दन करते हैं और कहते हैं आप महान् पुरुष हैं। आपको जाने की आज्ञा कौन दे सकता है? आपने मुझ पर बहुत बड़ी कृपा की। मैं अत्यन्त आनन्द में हूँ और मेरा मन अत्यन्त शाँत हो गया है। मेरे मन में कोई विकार नहीं है और कोई वासना भी नहीं है। मैं परमात्मा के दर्शन कर रहा हूँ। मेरे मन में एक छोटी-सी इच्छा है कि समाप्ति के अवसर पर मैं अपने सद्गुरुदेव की पूजा करूँ।

परीक्षित राजा ने शुकदेवजी महाराज की पूजा की और उनके चरण में साष्टांग दंडवत् कर कहा, ''मैं शरण में आया हूँ। गुरुदेव आप एकबार मुझे कृपा-दृष्टि से देखिए। मैं अब प्रभु के धाम

में जाता हूँ।'' शुकदेवजी ने राजा के मस्तक पर अपना हाथ रखकर कहा, ''इस जीव का कल्याण हो।'' जिस समय शुकदेवजी का वरदहस्त राजा के मस्तक पर पड़ा उसी समय द्वारकाधीशजी की जय, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी द्वारकाधीश के दर्शन का लाभ परीक्षित को प्रत्यक्ष रूप से हुआ। राजा को कृतार्थ करने के बाद शुकदेवजी महाराज खड़े हो गए। उनकी कथा सुनने के लिए बड़े-बड़े ऋषि वहाँ आए थे। शुकदेवजी के पूज्य पिता व्यास नारायण भी कथा में बैठे थे। वे उनकी कथा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, ''यह मेरा पुत्र है; किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह मुझसे भी अधिक श्रेष्ठ अति सुन्दर कथा कह सकता है, इसका ज्ञान-वैराग्य, इसकी प्रेमलक्षणा भक्ति अलौकिक है।'' व्यासजी और नारदजी जैसे महान् पुरुषों ने उठकर और खड़े होकर कहा, ''श्रीशुकदेवजी महाराज की जय।'' सबने शुकदेवजी महाराज का जय-जयकार किया।

नैमिषारण्य में सूतजी, शौनक आदि ऋषियों को कथा सुनाते हैं और कहते हैं, ''मेरे सद्गुरु शुकदेवजी महाराज हैं। उनका ध्यान इस बात की ओर नहीं हैं कि कौन मुझे वंदन करता है और कौन मुझे मान देता है। शुकदेवजी की ब्रह्माकार वृत्ति स्थिर हो गई है। इसके बाद वे कहाँ गए और किस प्रकार गए यह किसी ने नहीं देखा। शुकदेवजी अदृश्य हो गए।''

समाप्ति में परीक्षित महाराज ने गंगामाता के दर्शन किए और उसमें स्नान किया। वे गंगा-तट पर पवित्र दर्भासन पर विराजमान हुए। सूतजी कहते हैं, ''मैं वहीं बैठा था। मैंने अपनी आँखों से देखा है कि राजा के शरीर से दिव्य तेज निकलकर व्यापक ब्रह्मस्वरूप में लीन हो गया। परीक्षित विमान में बैठकर बैकुण्ठधाम में चले गए। इसके बाद उनके शरीर को तक्षक का दंश हुआ, तक्षक की विषाग्नि में उनका शरीर धक-धक कर जलने लगा। देवों ने पुष्पवृष्टि करते हुए कहा, ''इस भागवत सप्ताह को धन्य है, शुकदेवजी महाराज को धन्य है और राजा परीक्षित को धन्य है। काल-तक्षक के काटने के पहले ही राजा प्रभु के धाम में पहुँच गए। परीक्षित राजा को सद्गति मिल गई है। गंगा-तट पर अपने सद्गुरुदेव श्रीशुकदेवजी महाराज के मुख से मैंने जो कथा सुनी थी वह मैंने यथामति आपको सुनाई। इस कथा में जो दिव्य तत्त्व है, वे मेरे सद्गुरुदेव का प्रसाद है। कथा में यदि कोई दोष होगा तो वह मेरा है। कथा में अनेक प्रमाद हुए हैं, वे सब भी मेरे हैं। मैं आप सबके चरणों में बारंबार वंदना करता हूँ। मुझे श्रीकृष्ण ही अनेक रूपों में दर्शन देते हैं। आप सब परमात्मा के स्वरूप हैं।'' सूतजी ने दीन बनकर और बारंबार वंदना कर क्षमा माँगी है। सन्त लोग कभी सत्कर्म की समाप्ति करते ही नहीं। जिस दिन इस शरीर की समाप्ति हो उस दिन भले ही सत्कर्म की समाप्ति हो जाए। जीवन की अन्तिम श्वास तक परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान धरो, प्रेम से श्रीबालकृष्णलाल की सेवा करो, परमात्मा के नाम का कीर्तन करो। अंतिम श्वास तक इस शरीर

को परोपकार में लगाओ। परमात्मा की परिपूर्ण कृपा से अपना यह ज्ञानयज्ञ परिपूर्ण होता है। इस ज्ञानयज्ञ में वक्ता पाप करता है और श्रोता भी पाप करता है। इसलिए ज्ञानयज्ञ संपूर्ण सफल नहीं होता। इसलिए सूतजी की आज्ञा है कि प्रायश्चित किया जाए। अपने इष्टदेव के दर्शन मन से करो। भगवान् के चरण में भावपूर्वक वंदन करते हुए, ''हरये नमः, हरये नमः, इस पाँच अक्षर का मंत्र जोर से तीन बार बोलने की आज्ञा दी है। इसे मन में न कहकर जोर से बोलने की आज्ञा दी है।

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्वा वा विवशो ब्रुवन्।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात्॥ (१२-१२-४६)

ऐसा करने से जाने-अनजाने जो पाप हुआ होगा उसे परमात्मा कृपा कर क्षमा कर देंगे, अपना ज्ञानयज्ञ परिपूर्ण सफल होगा; परमात्मा श्रीकृष्ण सबको सद्बुद्धि देंगे और श्रीबालकृष्णलाल सबका कल्याण करेंगे।

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा।
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा॥
योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्राताय कारुण्यत्।
स्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि॥
नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे।
य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे॥
योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे।
संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत्॥
भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते।
तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो॥
नाम संकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥ (१२-१३-१९/२०/२१/२२/२३)

इति द्वादश स्कन्ध
श्रीमद्भागवत-रसामृत ग्रंथ संपूर्ण
हरिः ओम् तत्सत्

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेषनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

भागवत-परायण समाप्त हुआ

हम भगवत्परायण बनने का संकल्प करें

पूज्य श्री रामचन्द्रजी डोंगरे महाराज ने हमको भगवत्परायण बनाने के लिए श्रीमद्भागवत परायण पूरा किया है। क्या आपने भगवत्परायण बननें का संकल्प किया?

भगवत्परायण होने का अर्थ है 'सबमें भगवान् बैठा है, ऐसी भावना करके सबके साथ प्रेम से, सद्भाव से और आदर से व्यवहार करना, हृदय को भगवद्भक्ति में सराबोर रखना और घूमते-फिरते अथवा सोते-जागते या कोई भी काम करते समय सतत् भगवद् स्मरणमय बना रहना।

श्रीमद्भागवत में वर्णित अनेक भक्त-चरित्रों की भगवद्-भक्ति इतनी ऊँचाई पर पहुँच गई थी कि उनके लिए भगवान् की प्रीति जीवन-सर्वस्व थी। भक्ति-मार्ग में आने वाली विपत्ति को भी उन्हौंने सतत् भगवंत-स्मरण करने वाली संपत्ति के रूप में ग्रहण किया है। इसलिए कुन्तीजी जैसे भक्तों ने वरदान में दुःखों का पहाड़ माँगा था। भीष्म पितामह ने भी बाण-शैय्या की वेदना हँसते-हँसते सहनकर अपना मन-हृदय भगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया था। इतना ही नहीं, अपितु आजीवन बन्दी बने वसुदेव देवकी ने भी भक्ति को पराकाष्ठा पर पहुँचाकर प्रभु को पुत्र-रूप में प्राप्त किया था। साथ ही सबके भले में अपना भला देखने नन्दराय और सबको सत्कार्य का यश देने वाली माता यशोदा ने अपने सर्वजन-सद्भाव को पराकाष्ठा पर पहुँचाकर भगवान् के बालस्वरूप को अपने आँगन में क्रीड़ा करने के लिए बुला लिया था।

पूज्य श्री डोंगरेजी महाराज जैसे भगवत्परायण सन्त के श्रीमुख से ये सब भगवत् चरित्रों को श्रवण कर यदि हमारे हृदय की भक्ति इतनी ऊँचाई पर पहुँच जाए, हमारे जीवन में भी भगवत्-प्रीति ही सर्वस्व बन जाए, हम भी विपत्ति को सतत् भगवत्-स्मरण के रूप में ग्रहण करने लगें, हम भी प्रभु द्वारा दी गई परिस्थिति को उनका कृपा-प्रसाद मानकर प्रेम से स्वीकार कर लें, हमारे मन-हृदय प्रभु के चरणों में समर्पित हो जाएँ, हमारी भक्ति भी प्रभु-प्राप्ति की पराकाष्ठा पर पहुँच जाए और हमारा सर्वजन-सद्भाव भी भगवान् को हमारे आँगन में क्रीड़ा करने को ललचा सके, तो कितना अच्छा हो।

यदि हम ऐसा बन सकें तो ही प्रभु-प्रदत्त मानव-देह को सार्थक बना सकते हैं, मानवता को दीक्षित कर सकते हैं और भगवत्परायण होने का बोध देकर विदा होने वाले सन्त के चरणों में सच्ची सद्भाव-दक्षिणा देकर उनके हृदय को सन्तुष्ट कर सकते हैं।

सद्‌विचार-परिवार

समर्पण विद्यापीठ

पूज्य श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज के श्रीमद्भागवत परायण की पूर्णाहुति के समय भगवत्परायण बनने के संकल्प की सद्भाव-दक्षिणा

१. 'सबमें भगवान बैठा है' इस भावना के साथ सबको हृदय से नमन करूँगा। सबके साथ प्रेम से, नम्रता से और प्रमाणिकता से व्यवहार करूँगा।

२. हृदय को भगवद्भक्ति में सराबोर रखूँगा।

३. घूमते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते किसी भी समय भगवद्-स्मरण करता रहूँगा।

४. भगवत्प्रीति प्रीति ही मेरे जीवन का सर्वस्व बनी रहेगी।

५. भक्ति-मार्ग में पड़ने वाली विपत्ति को सतत् भगवद्-स्मरण कराने वाली सम्पत्ति के रूप में मानूँगा।

६. भीष्म पितामह की तरह संकटों की बाण-शैय्या पर सोते-सोते भी मन-हृदय को प्रभु-चरण में समर्पण कर दूँगा।

७. वसुदेव-देवकी तरह अपनी तपस्या-तितिक्षा को ऐसी पराकाष्ठा पर पहुँचा दूँगा कि प्रभु को मेरे पास आना ही पड़े।

८. नन्द-यशोदा की तरह मेरे हृदय में सबकी भलाई के लिए आनन्द की और सबके अच्छे काम के लिए प्रशंसा करने की सर्वजन-सद्भावना को ऐसा व्यापक बनाऊँगा कि भगवान् को भी मेरे आँगन में खेलने का मन हो।

९. मर्यादा पुरुषोत्तम राम की तरह जीवन में विवेकपूर्ण मर्यादा का पालन करूँगा।

१०. रामायण के कर्त्तव्यनिष्ठ पात्रों की तरह सच्ची कर्त्तव्य-परायणता का आचरण करूँगा। जीवन के हर कार्यक्षेत्र में प्रतिपल मानवता को मँहकाऊँगा।

११. रामायण के राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न जैसा परस्पर त्यागपूर्ण बन्धु-प्रेम अपने भाइयों के प्रति भी रखूँगा। भाई पर कभी मुकदमा नहीं करूँगा। मुकदमा करके दोनों पक्ष बरबाद न हों, इसके लिए कुछ अधिक भाग देकर उसके साथ सद्भावपूर्ण समाधान करने के लिए तत्पर रहूँगा।

१२. अपने मन-हृदय को भगवन्नाम में और अपने हाथ-पग को भगवत्कार्य में स्थायी रूप से जोड़कर सच्चा भगवत्परायण बन जाऊँगा।

१३. मैं माता-पिता की ममता और समाज की सुव्यवस्था के कारण ही लाचार बालक से हटकर आज की स्थिति में पहुँच पाया हूँ। इस तथ्य को सदा याद रखकर दोनों का ऋण चुकाने के लिए सदा कार्य करता रहूँगा।

१४. मैं जीवन के किसी भी क्षेत्र में निष्णात् होने के पहले अच्छा मनुष्य बनने की पूरी सावधानी रखूँगा। अपने अगल-बगल वालों की तथा सम्पर्क में आने वाले सभी की सेवा करता रहूँगा।

१५. प्रभु द्वारा दी गई परिस्थिति को उनका प्रसाद मानकर प्रेम से स्वीकार करूँगा।

१६. समाज में सद्भाव और समर्पण भाव के प्रसार के लिए रोज-सप्ताह में-महीने में.....घण्टे सेवा करूँगा।

१७. अपने अगल-बगल में मानव-शिशुओं की सेवा के लिए अपनी आमदनी का...-वाँ भाग अपने आप खर्च करता रहूँगा।
१८. खराब फैशन और दुर्व्यसन से दूर रहकर सादा जीवन गुजारूँगा।
१९. जीवन के व्यवसाय-क्षेत्र में भी सबके साथ ईमानदारी का परिचय दूँगा।
२०. मैं नौकरी में काम-चोरी नहीं करूँगा और न किसी के कागजात व्यर्थ की लिखा-पढ़ी में फँसाऊँगा।
२१. उचित लाभ, पूरी तौल और पक्का माप मेरे व्यापार का ध्येय होगा।
२२. मैं कभी किसी से रिश्वत नहीं माँगूँगा और न किसी को रिश्वत दूँगा।
२३. किसी भी स्थिति में जान-बूझकर चोर-बाजारी का माल उपयोग में नहीं लूँगा।
२४. कभी काला बाजारी या संग्रहखोरी नहीं करूँगा।
२५. जुआ, लॉटरी, सट्टा, वरली-मटका, फीचर इत्यादि दूषणों से सदैव दूर रहूँगा। अपने पसीने की कमाई से स्वावलम्बी जीवन बिताऊँगा।
२६. कुटुम्बी जीवन में आने वाले जन्म, विवाह या मृत्यु के अवसर को बड़ी दावतों और खराब दिखावे से दूर रहकर सच्ची भावना का निर्वाह करते हुए सादगी से मनाऊँगा।
२७. जवानी में रक्त-दान और मृत्यु के बाद चक्षु-दान तथा देहदान करने की सावधानी रखूँगा।
२८. अधिक वृक्ष रोप जाएँ, कम वृक्ष काटे जाएँ और पौधा तैयार करने वाले केन्द्रों की स्थापना की जाए एवं विद्यार्थीवन, ग्रामवन, श्मशानवन लगाए जाएँ, ऐसा परिश्रम करूँगा।
२९. कुटुम्बी जीवन के संस्कार के लिए प्रतिदिन सायंकाल सबके साथ बैठकर पुस्तकाध्ययन, समूह-प्रार्थना और संकीर्तन करूँगा।
३०. रोज 'हरे कृष्ण-हरे राम' महामंत्र की माला का जप करूँगा।

उपर्युक्त बातों तथा जीवन को भगवत्परायण बनाने के लिए उपयोगी हर कोई संकल्प यदि आप भागवत-परायण की पूर्णाहुति के लिए सद्विचार परिवार समर्पण विद्यापीठ, दरियापुर टावर के सामने, अहमदाबाद के पते पर नीचे लिखे विवरण के साथ लिख भेजें, तो कृतज्ञ होऊँगा।

१. ऊपर बताए गए संकल्पों में से किन-किन संकल्पों को आपने ग्रहण किया, उसका उल्लेख।
२. यदि इसके अतिरिक्त कुछ अधिक संकल्प किए हों, तो उसका उल्लेख।
३. नाम, पता उम्र, योग्यता, व्यवसाय, व्यवसाय का पता, टेलीफोन नंबर, वाहन धारणकर्ता होने आदि की जानकारी भी दें। यह भी लिखें कि क्या आप सेवा करने के लिए समय दे सकते हैं?

श्रीकृष्ण शरणं मम

श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम
श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम
श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम
श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम
श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम
श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम
श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम
श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम
श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम
श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम
श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम
श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम

श्रीकृष्ण शरणं मम

श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम श्रीकृष्ण शरणं मम